CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

महाकविभासप्रणीतं

भासनाटकचक्रम्

संस्कृत-हिन्दीव्याख्योपेतम्

प्रधान-सम्पादकः

डॉ. सुधाकर मालवीयः

(प्रथमो भागः)

चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

83
CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

॥ श्रीः ॥

महाकविभासप्रणीतं

भासनाटकचक्रम्

संस्कृत-हिन्दीव्याख्योपेतम्

विद्वन्मण्डलसम्पादितम्

प्रधान-सम्पादकः

डॉ० सुधाकर मालवीयः

एम.ए., पी-एच्.डी., साहित्याचार्यः

संस्कृत-विभागः, कलासंकायः

काशी हिन्दू विश्वविद्यालयः, वाराणसी

(प्रथमो भागः)

चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रकाशक : चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी
मुद्रक : चौखम्बा प्रेस, वाराणसी
मूल्य : रू० [redacted]०० (भाग १-२)

© चौखम्बा कृष्णदास अकादमी
के० ३७/११८, गोपाल मन्दिर लेन
गोलघर (मैदागिन) के पास
पो० बा० नं० १११८, वाराणसी–२२१००१ (भारत)
फोन : (०५४२) २३३५०२०

अपरं च प्राप्तिस्थानम्
चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस
के० ३७/९९, गोपाल मन्दिर लेन
गोलघर (मैदागिन) के पास
पो० बा० नं० १००८, वाराणसी—२२१००१ (भारत)
फोन : (आफिस) (०५४२) २३३३४५८
(आवास) (०५४२) २३३५०२०, २३३४०३२
Fax : 0542 - 2333458
e-mail : cssoffice@satyam.net.in
web-site : www.chowkhambaseries.com

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

THE
BHĀSANĀṬAKACAKRAM

Edited With the
Sanskrit & Hindi Commentaries

By
A Board of Scholars

Chief Editor
Dr. Sudhakar Malaviya
M.A., Ph. D., Sahityacharya
Department of Sanskrit, Arts faculty
Banaras Hindu University

[Patr-1]

CHOWKHAMBA KRISHNADAS ACADEMY
VARANASI

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भासनाटकचक्रम्

प्रथमो भागः

१. मध्यमव्यायोगः
२. दूतवाक्यम्
३. दूतघटोत्कचम्
४. कर्णभारम्
५. ऊरुभङ्गम्
६. पञ्चरात्रम्
७. प्रतिमानाटकम्
८. अभिषेकनाटकम्

द्वितीयो भागः

९. बालचरितम्
१०. अविमारकम्
११. प्रतिज्ञायौगन्धरायणम्
१२. स्पप्नवासवदत्तम्
१३. चारुदत्तम्

—०—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कृष्णदास संस्कृत सीरीज
२३
***

महाकविश्रीभासप्रणीतः

मध्यमव्यायोगः

'ज्योत्स्ना' 'सरला' संस्कृत हिन्दी व्याख्यासहित
विस्तृत भूमिका परिशिष्टादि विभूषितः

सम्पादको व्याख्याकारश्च
डॉ० सुधाकर मालवीयः
एम. ए., पी-एच. डी., साहित्याचार्यः
(संस्कृत-पालि-विभाग : काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी)

प्रस्तावकः
डॉ० विश्वनाथ भट्टाचार्यः
एम. ए., पी-एच. डी.
(मयूरभञ्ज प्रोफेसर : संस्कृत-पालि विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी)

चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रकाशक : चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी
मुद्रक : चौखम्बा प्रेस, वाराणसी
संस्करण : तृतीय, वि०सं० २०६७, सन् २०१०
मूल्य : रू० २५.००

© चौखम्बा कृष्णदास अकादमी
के० ३७/११८, गोपाल मन्दिर लेन
गोलघर (मैदागिन) के पास
पो० बा० नं० १११८, वाराणसी–२२१००१ (भारत)
फोन : (०५४२) २३३५०२०

अपरं च प्राप्तिस्थानम्
चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस
के० ३७/९९, गोपाल मन्दिर लेन
गोलघर (मैदागिन) के पास
पो० बा० नं० १००८, वाराणसी—२२१००१ (भारत)
फोन : (आफिस) (०५४२) २३३३४५८
(आवास) (०५४२) २३३५०२०, २३३४०३२
Fax : 0542 - 2333458
e-mail : cssoffice@satyam.net.in
web-site : www.chowkhambaseries.com

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

KRISHNADAS SANSKRIT SERIES
23
****

MADHYAMA-VYĀYOGA
[THE MIDDLE ONE]
OF
BHĀSA

Edited with Sanskrit & Hindi Commentaries,
Critical Introduction, Explanatory Notes
and Appendices

By
Dr. Sudhakar Malaviya
M.A., Ph. D., Sahityacarya
Department of Sanskrit & Pali, Banaras Hindu University
and
Foreword by
Dr. Biswanath Bhattacharya
M.A., Ph. D.
Mayurbhanja Prof. of Sanskrit, Department of Sanskrit & Pali
Banaras Hindu University

CHOWKHAMBA KRISHNADAS ACADEMY
VARANASI

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Publisher : Chowkhamba Krishnadas Academy, Varanasi
Printer : Chowkhamba Press, Varanasi

© CHOWKHAMBA KRISHNADAS ACADEMY
Oriental Publishers & Distributors
K. 37/118, Gopal Mandir Lane
Post Box No. 1118, Varanasi- 221001
(INDIA)
Phone : (0542) 2335020

Also can be had from :
CHOWKHAMBA SANSKRIT SERIES OFFICE
Publishers and Oriental and Foreign Book-sellers
K . 37/99, Gopal Mandir Lane
At the North Gate of Gopal Mandir
Near Golghar (Maidagin)
Post Box No. 1008, Varanasi- 221001 (India)
Phone { Office : (0542) 2333458
Resi. : (0542) 2334032, 2335020
Fax : 0542-2333458
e-mail : cssoffice@satyam.net.in
web-site : www.chowkhambaseries.com

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

प्रस्तावना

महाकवि कालिदास को भी नाटक लिखने के संकल्प करते हुए अनायास जिनका स्मरण हो आया वह भास संस्कृत नाटयकला के क्षेत्र में निःसंदेह श्रेष्ठतम कोटि के कलाकार हैं। यह दुर्भाग्य की बात है कि 'प्रथितयशा' इस कवि की नाटयकृतियाँ १९१० ई. तक आंशिक रूप में नाममात्र से ज्ञात थीं। म० म० गणपति शास्त्री ने केरल के 'चाक्यार' संप्रदाय के लोगों से जब इनका उद्धार किया तब से 'भासनाटकचक्र' के रूप में १३ नाटक संस्कृतज्ञ समाज में सादर चर्चा के विषय बने। परवर्ती काल में एक और भी नाटक, समान लक्षणों के कारण, भास की ही कृति मान लिया गया, जो 'यज्ञफलम्' नाम से 'प्रतिमानाटक' के पूर्ववर्ती रामकथा पर आधृत है।

समीक्षक-ऐतिहासिकों के सुदीर्घ परिश्रम से इतना निःसंदेह मान लिया जा सकता है कि ये सारी नाटयकृतियाँ एककर्तृक हैं और मञ्चन-सौकर्य में अद्वितीय हैं। बहुचर्चित 'स्वप्न' नाटक के साहचर्य के कारण इन सभी के रचयिता भास ही हैं ऐसा मानना भी पूर्णतया संगत है। साथ ही यह भी मानना आवश्यक है कि नाटयकार की मूलरचना उपलब्ध कृतियों में संभवतः सर्वथा सुरक्षित नहीं है। यही कारण है कि स्थान-स्थान पर संगति ठीक नहीं बैठती है, ऐसा प्रतीत होता है।

भास की कृतियाँ वस्तु, नेता तथा रस तीनों दृष्टियों से विलक्षण वैचित्र्य से भूषित हैं। संस्कृत-साहित्य में इतनी अधिक एवं विविध प्रकार की नाटय रचना करने वाला दूसरा नाटयकार नहीं है। नाटयशास्त्रीय लक्षणों से इन्हें हम बाँध पायें अथवा नहीं, ये सभी कृतियाँ रसनिष्पत्ति की दृष्टि से अनुपम हैं। शृंगार, वीर तथा करुण के अभिव्यञ्जन में भास सिद्धहस्त हैं और शृंगार के अनुचर हास्य का भी सुन्दर समावेश इनकी विशेषता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दीप्त रस प्रधान एकाङ्क नाट्य को शास्त्रकारों ने 'व्यायोग' की संज्ञा दी है। भासकृत 'मध्यमव्यायोग' इस कोटि की सर्वप्राचीन रचना है। सर्वप्राचीन होने पर भी यह सर्वोत्कृष्ट भी है—यही भास की प्रतिभा की अनन्य महत्ता है। संक्षिप्त एक कथानक के द्वारा अपने परिवार की रक्षा के लिए मध्यम पुत्र का आत्मत्याग, राक्षस तक के हृदय में मातृभक्ति की सर्वोच्च प्रतिष्ठा और साथ ही मध्यमपाण्डव भीमसेन की शरणागत की रक्षा करने का महान् आदर्श इसमें नाट्यकार ने प्रतिपादित किया है। भीम घटोत्कच से संबद्ध हो जाने से वीर के साथ ही हास्य का पुट जुड़ गया है और सारी स्थिति ब्राह्मण परिवार की करुण दशा के कारण पूर्णतया सहृदयावर्जक बन गई है।

स्नेहभाजन डा० मालवीय ने लघुकाय इस नाट्य का जो सटीक तथा सानुवाद संस्करण प्रस्तुत किया है उसमें विद्यार्थियों की जिज्ञासा की पूर्ति होगी यह मेरा विश्वास है। विस्तृत भूमिका में सम्पादक ने भास संबन्धी सारे तथ्यों का आकलन करते हुए अद्यावधि उपलब्ध पूर्ण सामग्री का प्रशंसनीय विवेचन और नाट्यकला की दृष्टि से भी इस कृति का मूल्यांकन किया है। साथ ही सारे परिशिष्ट विद्यार्थी तथा विद्वान् दोनों के लिए अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होंगे। मैं इस संस्करण की जनप्रियता की कामना करता हूँ।

दीपावली २०३६
संस्कृत तथा पालिविभाग
काशी हि.वि.वि., वाराणसी

विश्वनाथ भट्टाचार्य

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दो शब्द

महाकवि भास कृत मध्यमव्यायोग नामक एकाङ्की नाटक का यह संस्करण विश्वविद्यालय एवं सामान्य विद्यार्थियों की आवश्यकता की पूर्ति के लिए ही मुख्य रूप से प्रस्तुत है। इस संस्करण में पाठभेद सहित मूल-पाठ उसकी संस्कृत व्याख्या, श्लोकों के अन्वय, पदार्थ, हिन्दी अनुवाद तथा उपयोगी विस्तृत भूमिका और व्यायोग-समीक्षा भी दी गई है। इससे यह संस्करण परीक्षार्थी छात्रों तथा अनुसन्धाताओं के लिए भी अत्यन्त उपयोगी है।

इस पुस्तक के सम्पादन में मुझे पं० टी० गणपतिशास्त्री एवं प्रो० देवधर के संस्करणों से विशेष सहायता प्राप्त हुई है। इसके लिए मैं उन विद्वानों का कृतज्ञ हूँ। प्रस्तावना लेखन के लिए मैं काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के संस्कृत पालि विभाग के मयूरभञ्ज प्रोफेसर गुरुकल्प डा० विश्वनाथ भट्टाचार्य का अत्यन्त आभारी हूँ। पूज्य पिता स्व० पं० रामकुबेर मालवीय (साहित्य-विभागाध्यक्ष, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय और सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्व-विद्यालय) के पुनीत चरणों में बैठकर भास के नाटकों का जो आस्वाद मैं ले पाया था उसे आज साहित्यमार्ग में देखते हुए अत्यन्त हर्ष हो रहा है। वस्तुतः इस सब का श्रेय मेरी श्रद्धेया गुरुवर्य प्रोफेसर डा० पद्मा मिश्र (भूतपूर्व प्रोफेसर संस्कृत विभाग, का० हि० वि० वि०) को ही है, जिन्होंने पाण्डुलिपि का आद्योपान्त संशोधन किया। अतः इस महती कृपा और उनके अथक परिश्रम के लिए मैं श्रद्धावनत हो उनसे आशीर्वाद की कामना करता हूँ।

अन्त में इस कृति के प्रकाशक कृष्णदास अकादमी के संचालक गुप्त बन्धुओं का मैं अत्यन्त आभार स्वीकार करता हूँ; जिनकी प्रेरणा से यह कार्य हो सका।

दीपावली १९७९,
३१/२१ लङ्का,
वाराणसी–२२१००५

विदुषां वशंवदः
सुधाकर मालवीय

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भूमिका

महाकवि भास संस्कृत साहित्य के नाटककारों में अग्रगण्य हैं। इनकी कृतियाँ इतनी प्रसिद्ध थीं कि कालिदास ने भी अपने 'मालविकाग्निमित्र' नामक नाटक में बड़े आदर के साथ इनका स्मरण किया है।[1] बाणभट्ट [७वीं शती] ने 'हर्षचरित' में इनके नाटकों की विशेषताएँ बतलाते हुए इन्हें सूत्रधार से प्रारम्भ होने वाला बताया है।[2] भामह [७वीं शती] ने 'प्रतिज्ञा-यौगन्धरायण' की मूल कथा की आलोचना के साथ-साथ इसके एक प्राकृत पद्य को भी संस्कृत रूप में उद्धृत किया है।[3] बालचरित एवं चारुदत्त में उपलब्ध 'लिम्पतीव तमोङ्गानि' के अलङ्कार की दण्डी [७वीं शती] ने पाण्डित्यपूर्ण मीमांसा की है।[4] वाक्पतिराज [८वीं शती] ने 'गउडवहो' नामक प्राकृत भाषा के महाकाव्य में इनको ज्वलनमित्र [अग्नि का मित्र] कहा है।[5] वामन [९वीं शती] ने 'काव्यालङ्कार' और उसकी 'सूत्र-वृत्ति' में भास के तीन उद्धरण दिये हैं।[6] राजशेखर [१०वीं शती] ने 'स्वप्न-

---

१. प्रथितयशसां भाससौमिल्लकविपुत्रादीनां प्रबन्धानतिक्रम्य वर्तमानकवेः कालिदासस्य क्रियायां कथं परिषदो बहुमानः।

२. सूत्रधारकृतारम्भैर्नाटकैर्बहुभूमिकैः।
सपताकैर्यशो लेभे भासो देवकुलैरिव ॥ हर्षचरित, श्लोक १५

३. हुतोऽनेन मम भ्राता मम पुत्रः पिता मम—काव्यालंकार, अ० ४

४. काव्यादर्श २.२२६

५. भासम्मि जलणमित्ते कुंतीदेवे अ जस्स रघुआरे।
सोबन्धे अ बन्धम्मि हारीयन्द्रे अ आणन्दो ॥
[भासे ज्वलनमित्रे कुन्तीदेवे च यस्य रघुकारे।
सौबन्धवे च बन्धे हारीचन्द्रे च आनन्दः ॥] 'गउडवहो'

६. (i) शरच्छशांकगौरेण वाताविद्धेन भामिनि। काव्यलंकारसूत्रवृत्तिः ५.३
काशपुष्पलवेनेदं साश्रुपातं मुखं मम ॥ स्वप्नवासवदत्तम्, अंक ४
(ii) यो भर्तृपिण्डस्य कृते न युध्येत्। प्रतिज्ञायौगन्धरायण ४.२
(iii) यासां बलिर्भवति मद्गृहदेहलीनां,
हंसैश्च सारसगणैश्च विलुप्तपूर्वः। काव्यालंकार १.५
तास्वेव पूर्वबलिरूढ्यवाङ्कुरासु चारुदत्त १.२
बीजाञ्जलिः, पतति कीटमुखावलीढः ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वासवदत्तम्' नाटक को 'काव्यमीमांसा' में उत्तम कोटि का स्वीकार किया है।[1]

अभिनवगुप्त [१० वीं शती] अभिनवभारती में 'स्वप्नवासवदत्तम्' का उल्लेख किया है।[2] इसके अतिरिक्त 'ध्वन्यालोकलोचन' में इस नाटक से एक श्लोक भी उद्धृत किया है। किन्तु यह सम्प्रति मुद्रित ग्रन्थ में प्राप्त नहीं है।[3] महाराज भोज [११ वीं शती] ने 'शृङ्गारप्रकाश' में 'स्वप्नवासवदत्तम्' का उल्लेख किया है।[4] रामचन्द्र-गुणचन्द्र [१२ वीं शती] ने 'नाट्यदर्पण' में 'स्वप्नवासवदत्तम्' से एक श्लोक उद्धृत किया है।[5] आलङ्कारिक जयदेव [१२ वीं शती] ने 'प्रसन्नराघव' की प्रस्तावना में उन्हें कविता-कामिनी का हास कहा है।[6] इस प्रकार प्राचीन समय में भास का संस्कृत साहित्य में बड़ा गौरवपूर्ण स्थान था।

भास के नाटकों की खोज और उनका एककर्तृत्व–

संस्कृत साहित्य के इतने प्रसिद्ध रत्न होने पर भी बहुत दिनों तक विद्वानों को इनका केवल नाम ही मालूम था। इनके काल, जीवन-वृत्त और ग्रंथों के

---

१. भासनाटकचक्रेऽपि छेकैः क्षिप्ते परीक्षितुम्।
स्वप्नवासवदत्तस्य दाहकोऽभून्न पावकः॥

२. क्वचित् क्रीडा यथा स्वप्नवासवदत्तायाम्। ;अभिनवभारती १.७४
स्वप्न० अंक २

३. सञ्चितपक्षकवाटं नयनद्वारं स्वरूपतडनेन।
उद्घाटय सा प्रविष्टा हृदयगृहं मे नृपतनूजा॥

४. स्वप्नवासवदत्ते पद्मावतीमस्वस्थां द्रष्टुं राजा समुद्रगृहकं गतः। पद्मावतीरहितं च तदवलोक्य तस्या एव शयनीये सुष्वाप। वासवदत्ता च स्वप्नवदस्वप्ने ददर्श। स्वप्नायमानश्च वासवदत्तामाबभाषे।
शृङ्गारप्रकाश, स्वप्नवासवदत्तम्, पंचम अंक का संक्षेप।

५. यथा भासकृते स्वप्नवासवदत्ते—
शेफालिकाशिलातलमवलोक्य वत्सराजः।
पदाक्रान्तानि पुष्पाणि सोष्म चेदं शिलातलम्।
नूनं काचिदिहासीना मां दृष्ट्वा सहसा गता॥ नाट्यदर्पण

६. भासो हासः कविकुलगुरुः कालिदासो विलासः। प्रसन्नराघव

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विषय में कुछ भी ज्ञान न था। सौभाग्यवशात् १९१२ ई० में महामहोपाध्याय श्री टी० गणपति शास्त्री ने 'स्वप्नवासवदत्तम्' आदि तेरह नाटक त्रिवेन्द्रम् से अनन्तशयनं ग्रन्थमाला में प्रकाशित कराये और उन्हें भास की रचावा बतलाया।

ये नाटक अन्य संस्कृत नाटकों से कुछ विलक्षण थे। संस्कृत नाटकों के आरम्भ में ग्रन्थकार अपना परिचय देते हैं। कालिदास, भवभूति आदि नाटककार इसी शैली का अनुसरण करते हैं। परन्तु इन नाटकों में ग्रन्थकार का नाम नहीं स्मरण किया गया है। कल्हणकृत सूक्तिमुक्तावली में राजशेखर का एक श्लोक उद्धृत है, जिसमें 'स्वप्नवासवदत्तम्' को उत्कृष्ट नाटक बताया गया है। प्रस्तुत तेरह नाटकों में एक 'स्वप्न-नाटक' भी है जिसमें वत्सराज उदयन और वासवदत्ता की कथा है। पं० टी. गणपति शास्त्री ने अनुमान किया कि राजशेखर निर्दिष्ट स्वप्न-वासवदत्ता यही है, और क्योंकि स्वप्न-वासवदत्ता के कर्त्ता राजशेखर द्वारा भास माने गए हैं अतः प्रस्तुत स्वप्न नाटक के कर्ता भी भास ही हैं। उन्होंने आगे लिखा कि—१. क्योंकि रचना शैली आदि में ये सब नाटक एक ही प्रकार के हैं; अतः इनके कर्ता भास ही होंगे। एतद्देशीय और विदेशीय अनेक विद्वानों ने पं० टी० गणपति शास्त्री द्वारा निकाला गया परिणाम स्वीकार कर लिया। २. परन्तु अनेक ऐसे भी विद्वान् हैं जो ऐसा नहीं मानते। उनके अनुसार ये नाटक भास के नहीं हैं।

३ इन दोनों मतों के अतिरिक्त एक तीसरा मत भी है। उसके मानने वालों का कथन है कि भारत के केरल आदि दक्षिण प्रान्तों में प्राचीन कवियों के अनेक नाटकों का संक्षेप और परिवर्तन जो किया गया उसका यही प्रयोजन था कि ये नाटक रंगमंच पर आसानी से अभिनीत हो सकें। इसी कारण शकुन्तला आदि नाटकों का भी संक्षिप्त एवं परिवर्तित रूप वहाँ मिलता है। इसी प्रकार त्रिवेन्द्रम् से प्रकाशित होने वाले ये स्वप्न नाटक आदि तेरह ग्रन्थ भी प्राचीन नाटकों का संक्षेप एवं रूपान्तर ही हैं।

यह तीसरा-मत कुछ विद्वानों को मान्य है। इसका कारण यह है कि अनेक प्राचीन ग्रन्थकारों ने भास कृत 'स्वप्न-वासवदत्तम्' के नाम से कई श्लोक अपने-अपने ग्रन्थों में उद्धृत किए हैं। सम्प्रति मुद्रित 'स्वप्न-नाटक' में वे सब श्लोक नहीं प्राप्त होते। अतः विद्वानों का अनुमान है कि प्रस्तुत 'स्वप्न-नाटक' में अनेक श्लोक सम्भवतः संक्षेप के कारण लुप्त हो गए। अस्तु;

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

इस विवाद के रहते हुए भी इतना तो सुनिश्चित ही है कि भास ने कोई 'स्वप्न-वासवदत्तम्' नाटक रचा था और प्रस्तुत 'स्वप्न-नाटक' उसी का रूपान्तर है। इस रूपान्तर का मूल से कितना अन्तर है यह कुछ कहा नहीं जा सकता।

पं० टी० गणपति शास्त्री द्वारा प्रकाशित अन्य बारह नाटकों के अन्त में भी ग्रन्थकार का नाम निर्देशन नहीं प्राप्त होता। यही नहीं आरम्भ में भी कवि अपने नाम का स्मरण भी नहीं करता। किन्तु रचनाशैली की समानता के कारण पं० टी० गणपति शास्त्री ने यही परिणाम निकला कि यह तेरह नाटक एक ही कवि की कृति हैं और वह कवि भास ही हैं। फिर भी जिन तर्कों के आधार पर विद्वान् भास के कर्तृत्व का विरोध प्रस्तुत करते हैं वे इस प्रकार है—

१. इन रूपकों में कवि का नाम नहीं दिया गया, अतः यह भास की रचनाओं पर आधृत किसी अन्य कवि की कृतियाँ हैं।

२. इनमें सूत्रधार नान्दी के बाद प्रवेश करता है। यह विशेषता इन तेरह रूपकों की ही नहीं, अपितु सामान्यतः समस्त दक्षिण भारतीय रूपकों की है।

३. इनमें उपलब्ध नाट्यकला भास की ही अपनी नहीं, अपितु वैसी नाट्यकला तो दक्षिण भारत के सभी रूपकों में मिलती है।

४. इन रूपकों में भरतमुनि के नाट्यशास्त्रीय नियमों का पूर्णतया पालन न होना भी इनकी प्राचीनता का द्योतक नहीं है; क्योंकि निषिद्ध दृश्य तो पश्च-कालीन रूपकों में सामान्यतः अधिक प्रभावोत्पादकता की दृष्टि से अपना लिये गये हैं।

५. जहाँ तक भाषा का प्रश्न है उसे भी ठोस आधार नहीं कहा जा सकता; क्योंकि अपाणिनीय प्रयोग तो आर्ष काव्य, पुराण साहित्य और अत्यन्त पश्चवर्ती अनेक ग्रन्थों में बिखरे मिलते हैं। दूसरे; प्राकृत के प्राचीन प्रयोग मलयालम हस्तलेखों की विशेषता है। इसके अतिरिक्त रूपकों की प्राकृत हस्तलेखों के लेखन-स्थल एवं काल पर निर्भर है, न कि नाट्यकार के काल पर।

६. बाद के लेखकों ने जो पद्य उद्धृत किये हैं, उन्हें उन्होंने भास से संबद्ध नहीं बताया है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

७. सुभाषित ग्रन्थों में उपलब्ध कुछ पद्य त्रिवेन्द्रम में मिले रूपकों में नहीं मिलते।

८. महामहोपाध्याय के० शास्त्री प्रभृति विद्वानों ने इन्हें 'आश्चर्यचूड़ामणि' 'प्रतिमा' तथा 'अभिषेक' की एकत्र प्राप्ति के आधार पर शक्तिभद्र की रचनाएँ माना है।

५. कुछ विद्वानों ने शूद्रक को भास से अभिन्न सिद्ध करते हुए मृच्छकटिक, बालचरित, अविमारक तथा वत्सराजचरित को शूद्रक की कृतियाँ माना है। कुछ ने 'चारुदत्त' को मृच्छकटिक का अभिनयोचित संक्षिप्त संस्करण माना है।

१०. डा० बार्नेट इन रूपकों को भास का न मान कर पाण्ड्य राजाओं के सभा कवियों द्वारा लिखित मानते हैं, जब कि अन्य विद्वान् इनके कर्तृत्व का श्रेय पल्लव-नरेशों के सभा कवियों को देते हैं।

११. रामावतार शर्मा के अनुसार कुछ रूपक भास प्रणीत अवश्य हैं किन्तु सब रूपकों की रचना भास ने नहीं की थी।

१२. केरल प्रदेश में ही इनकी उपलब्धि होने से कुछ विद्वान् इन्हें किसी केरल देशीय नाटककार की कृतियाँ मानते हैं। डाक्टर कुन्हन राजा ने इन पर केरल का प्रभाव दर्शाया है तथा 'चारुदत्त' में केरलीय उत्पत्ति के चार शब्दों को प्रस्तुत किया है। डॉ० टामस ने इस मत का विरोध किया है। कुप्पुस्वामी शास्त्री ने 'संबन्ध' शब्द के आधार पर इन रूपकों में मलाबार के 'संबन्ध विवाहों' की ओर संकेत माना है, किन्तु आर. कवि ने इसका विरोध किया है। वस्तुतः ये रूपक केरल के परम्परानुयायी अभिनेता चाक्यारों के भण्डार का एक अंग हैं। पिशरोति का कथन है कि इन रूपकों के प्रस्तावना भाग बाद में जोड़ दिये गये थे, जब कि मुख्य दृश्यों में मौलिक रूपकों को स्थानीय रङ्गमञ्च की आवश्यकता के अनुकूल ढालकर अथवा संक्षिप्त करके सुरक्षित रखा गया है।

नाटकों का एक-कर्तृत्व

किन्तु सभी नाटकों का सूक्ष्म विश्लेषण करने पर उनमें कुछ ऐसी समानताएँ प्राप्त होती हैं जिनके साक्ष्य पर विद्वानों को निश्चित रूप से मानना पड़ता है कि ये सभी नटक किसी एक ही कवि की कृति हैं। अस्तु, विद्वानों के द्वारा जिन तर्कों और समानताओं के आधार पर भास का कृतित्व स्वीकार किया गया है वे दो प्रकार के हैं—(i) आकृति साम्य और (ii) विषय साम्य।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(i) आकृति साम्य—

१. इन नाटकों में कर्णभार को छोड़कर प्रारम्भिक पूर्वरंग को 'प्रस्तावना' न कहकर स्थापना कहा गया है।

२. इन नाटकों में आदि और अन्त प्रायः एक प्रकार का है; जैसे—

(क) अनेक नाटकों के प्रारम्भ में मुद्रालंकार द्वारा पात्रों की सूचना दे दी गई है।

(ख) प्रायः सभी नाटक 'नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः' इन्हीं शब्दों से प्रारम्भ होते हैं।

(ग) इनमें से अधिकांश नाटकों में 'भरतवाक्य' एक जैसा ही है, जैसे—'इमामपि महीं कृत्स्नां राजसिंहः प्रशास्तु नः।' जहाँ यह नहीं मिलता वहाँ इसी प्रकार का कोई अन्य श्लोक रहता है। इस प्रकार लगभग सभी नाटकों में 'राजसिंहः प्रशास्तु नः' यह अवश्य प्रयुक्त हुआ है।

३. इन नाटकों में भरतप्रतिपादित नाट्यशास्त्र के नियमों का पूर्णतया पालन न किया जाना भी यही सूचित करता है कि इनका कर्ता कोई एक ही व्यक्ति है। जैसे—युद्ध व मृत्यु आदि रंगमंच पर ही प्रदर्शित किये गये हैं, तथा अभिषेक, पूजा, शपथ या अश्रु प्रक्षालनार्थ जल रङ्गमञ्च पर ही लाया गया है। इसी प्रकार शयन, क्रीडा एवं दूराह्वान की योजना भी रङ्गमञ्च पर कर दी गई है।

४. इस नाटकों में भूमिका बहुत छोटी प्राप्त होती है और प्रारम्भिक संवाद के वाक्य भी प्रायः समान ही हैं, जैसे—'एवमार्यमिश्रान् विज्ञापयामि अये····अङ्ग पश्यामि।'

५. सभी नाटकों के नामों का उल्लेख उन नाटकों के अन्त में ही किया गया है, अन्यत्र नहीं।

(ii) विषय साम्य—

१. इन सभी नाटकों में एक मुख्य समानता यह है कि इनकी भाषा और शैली समान है। कितने ही शब्दों; वाक्यों, श्लोकों और पदों को विभिन्न नाटकों में दुहराया गया है। वही उपमा और उत्प्रेक्षा जो एक नाटक में आ गई हैं दूसरों में भी मिलती है। सूक्थंकर ने ऐसे समान वाक्यों आदि की पूरी सूची दी है जिनकी संख्या १२७ है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

२. इन रूपकों में अनेक अपाणिनीय प्रयोग मिलते हैं। जैसे—'आप्रच्छ' का प्रयोग परस्मैपद में है।

३. अनेक नाटकों में नाटकीय व्यङ्ग्य (पताका-स्थानक) का प्रयोग मिलता है।

४. कतिपय अप्रचलित छन्दों का प्रयोग इनमें प्राप्त होता है। जैसे-सुवदना, दण्डक आदि। अनुष्टुप् छन्द का प्रयोग बहुत अधिक किया गया है।

५. कुछ नाटक एक दूसरे से सम्बद्ध से जान पड़ते है; जैसे—'स्वप्न-वासव-दत्तम्' प्रतिज्ञायौगन्धरायण' का ही उत्तरार्द्ध लगता है। इसी प्रकार प्रतिमा नाटक भी अभिषेक से सम्बद्ध है।

६. इनमें से अनेक नाटकों में छोटे पात्रों के नामों में भी समानता है, जैसे 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण' व 'दूतवाक्य' में कञ्चुकी का नाम 'बादरायण' है। इसी प्रकार 'स्वप्नवासवदत्तम्,' 'प्रतिमा,' 'प्रतिज्ञा-यौगन्धरायण' और 'अभिषेक'-चारों नाटकों में प्रतिहारी का नाम 'विजया' है।

७. प्रायः सभी नाटकों में नाट्यनिर्देशों की न्यूनता समान रूप से मिलती है। जो नाट्यनिर्देश हैं उनमें दो-तीन निर्देश साथ-साथ दिये गये हैं, जैसे 'निष्क्रम्य पुनः प्रविश्य' या 'सविस्मयम् परिक्रम्यावलोक्य च' आदि।

इस प्रकार सभी नाटकों में समान दृश्यों की अवतारणा, समान भाव और समान शब्दों एवं समान वाक्यों की उपलब्धि और अन्ततः समान वर्णन पद्धति के आधार पर यही सिद्ध होता है कि इन नाटकों का प्रणेता निश्चित ही कोई एक व्यक्ति है जो राजशेखर और अभिनवगुप्त के साक्ष्य से भास ही हैं।

भास का काल

महाकवि कालिदास द्वारा 'मालविकाग्निमित्र' में स्मरण किये जाने से यह निश्चित ही है कि भास कालिदास के पहले प्रथित-यश वाले हो चुके थे। किन्तु कालिदास का काल ही निश्चित नहीं है। कुछ विद्वान् कालिदास का काल ४०० ई० मानते हैं। अतः उनके अनुसार भास ४०० ई० से प्राचीन थे। अन्य विद्वान् कालिदास को प्रथम शती का मानते हैं। अतः उनके अनुसार भास ई० की प्रथम शती के पहले विद्यमान थे। इसी आधार पर पं० टी० गणपति शास्त्री भास को तृतीय शती ई० पू० का मानते हैं। चाणक्य ने अपने अर्थशास्त्र में 'अपीह श्लोकौ भवतः'—कहकर जो दो श्लोक उद्धृत किये हैं, इनमें दूसरा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्लोक 'प्रतिज्ञागौगन्धरायण' में मिलता है।[1] चाणक्य चन्द्रगुप्त के मन्त्री थे। उन्होंने निश्चित ही यह श्लोक भास से लिया होगा क्योंकि यदि स्मृति से लेते तो अवश्य ही 'इति स्मृतौ' लिखते। जैसा कि इतिहासकारों के अनुसार चन्द्रगुप्त ३२१ ई० पू० राजगद्दी पर आसीन हुए थे; अतः भास का समय उनसे लगभग ५० वर्ष पूर्व मानना ठीक होगा। भास के 'प्रतिमानाटक' में बृहस्पति कृत अर्थशास्त्र में रावण की दक्षता का उल्लेख हुआ है।[2] बार्हस्पत्य अर्थशास्त्र चाणक्य से बहुत पहले का है। यदि भास चाणक्य के बाद होते तो उनके अर्थशास्त्र का उल्लेख अवश्य करते। अतः भास के काल की निम्नतम सीमा ४०० ई० पू० ही सिद्ध होती है।

लोकमान्य तिलक के अनुसार भास कालिदास के पूर्ववर्ती थे, और उनका स्थितिकाल दूसरे या तीसरे शतक के बाद का कदापि नहीं है।[3] वस्तुतः 'भगवद्गीता' के आदि में 'गीता-ध्यान' नाम से नौ श्लोकों की चर्चा करते हुए लोकमान्य का यह भी कथन है कि इन नौ श्लोकों में जो 'भीष्म द्रोणतटां जयद्रथजलाम्' आदि श्लोक उद्धृत है, वह महाकवि भास के 'ऊरुभङ्ग' का आदि श्लोक है।[4] कुछ विद्वान् भास को नारायण काण्व का समकालीन सिद्ध करते हैं।[5] नारायण काण्व का समय ५३–४१ ई० पू० माना गया है। बेलवल्कर के मत से शूद्रक का मृच्छकटिक भास के चारुदत्त से बहुत प्रभावित है अतः भास का समय तीसरी शती० ई० पू० होना चाहिए।[6]

---

१. नवं शरावं सलिलैः सुपूर्णं सुसंस्कृतं दर्भकृतोत्तरीयम्।
तत्तस्य मा भून्नरकं स गच्छेद् यो भर्तृपिण्डस्य कृते न युध्येत्।
(कौटि० अर्थ० १०.३; प्रतिज्ञा० ४.२)।

२ भोः काश्यपगोत्रोऽस्मि, साङ्गवेदमधीये, मानवीयं धर्मशास्त्रं महेश्वरं योगशास्त्रं, बार्हस्पत्यमर्थशास्त्रं प्राचेतसं श्राद्धकल्पञ्च।
(प्रतिमा० अंक ५)

३. लोकमान्यतिलक कृत गीता रहस्य, पृ० ५६०।

४. गीतारहस्य, पृ० ५६१।

5. J. O. A. S. D. Bengal, Jaisawal, p. 259, 1913

6. S. K. Velwalkar, The Relationship of Sudraks's Mrichhakatika to the Carudatta of Bhasa, Presy of the first Oriental conference 1919; Vol. II p. 189–204.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भास की निम्नतम-सीमा पर विचार के बाद उनकी उपरितम सीमा का विचार आवश्यक है। भास के नाटकों में कुछ का सम्बन्ध वत्सराज उदयन से है। भास ने प्रद्योत, दर्शक और उदयन को समकालीन चित्रित किया है। इतिहासकार स्मिथ के अनुसार दर्शक और उनके उत्तराधिकारी का राज्यकाल ४७५ ई० पू० से ४५ ई० पू० के मध्य था।[1] इस प्रकार भास के काल की आदिम सीमा ४५० ई० पू० से पहले भी नहीं मानी जा सकती। अतः भास का काल ५०० ई० पू० होना चाहिए।

भास के नाटकों से प्राप्त अनेक आभ्यन्तर प्रमाण भी इसी काल की ओर संकेत करते हैं। इन नाटकों में पाये जाने वाले अपाणिनीय प्रयोगों से यह स्पष्ट है कि पाणिनि के पूर्व भास के नाटकों की रचना हो चुकी थी। भास के प्राकृत कालिदास के प्राकृतों की अपेक्षा प्राचीन मालूम पड़ते हैं। भास के नाटकों से व्यक्त सामाजिक अवस्था मौर्यकाल की सामाजिक अवस्था के समान है। भास कृत नाटकों की रचना शैली भरत के 'नाट्यशास्त्र' में वर्णित शैली से प्राचीन है। 'मानवीय धर्मशास्त्र' उपलब्ध 'मनुस्मृति' का परामर्श नहीं करता। वह शब्द धर्मसूत्रकार गौतम द्वारा उल्लिखित मानवीय धर्मशास्त्र का बोधक है। गौतम का काल ई० पू० ६०० माना जाता है। महेश्वरकृत 'योगशास्त्र' के समय का ठीक पता नहीं चलता। इसी प्रकार 'प्राचेतस श्राद्धकल्प' का भी पता नहीं चलता। भास के भरतवाक्यों में आये 'राजसिंह' शब्द से ऐसा मालुम पड़ता है कि भास उपर्युक्त तीनों राजाओं में से किसी एक राजकवि थे। 'स्वप्नवासवदत्तम्' और 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण' से ऐसा प्रतीत होता है कि भास वत्सराज उदयन को अमर बनाना चाहते हैं। इस प्रकार नाटकों के आभ्यन्तर साक्ष्यों के आधार पर भी ई० पू० ५०० शती के ही सिद्ध होते हैं।

भास की कृतियाँ और उनके कथा-स्रोत के आधार

कथा स्रोतों के आधार पर भास की कृतियों का विभाजन हम पाँच प्रकार से कर सकते हैं—

कथा-स्रोत का आधार

१. प्रतिमानाटक २. अभिषेक	रामायण

1. Early History of India, P. 38 39.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

३. मध्यमव्यायोग	महाभारत
४. दूतवाक्य	
५. दूतघटोत्कच	
६. कर्णभार	
७. ऊरुभङ्ग	
८. पञ्चरात्र	
९. बालचरित	हरिवंश
१०. स्वप्नवासवदत्तम्	बृहत्कथा
११. प्रतिज्ञायौगन्धरायण	
१२. अविमारक	
१३. चारुदत्त	लोकप्रचलित व काल्पनिक

इन उपर्युक्त रचनाओं के अतिरिक्त कुछ विद्वान् 'यज्ञफल' को भी भासकृत मानते हैं। इसे गोण्डल निवासी राजवैद्य जीवराम कालिदास शास्त्री ने १९४१ में प्रकाशित किया। यह रामायण पर आधारित है। इस सम्बन्ध में प्रोफेसर झाला का कथन है कि यद्यपि 'यज्ञफल' भास के अन्य नाटकों की तरह ही प्रारम्भ और समाप्त होता है। किन्तु इसमें बहुत-सी नवीन बातें हैं जो भास के समय में नहीं थीं। राम धनुर्भङ्ग से पूर्व प्रेम की दृढ़ता के लिए सीता से उद्यान में मिलते हैं। राम को भी दुष्यन्त के ही समान शङ्का होती है कि यह कहीं ब्रह्मर्षि की पुत्री तो नहीं हैं। विश्वामित्र नगर एवं ग्राम्य जीवन की तुलना कर ग्राम्य जीवन को श्रेष्ठ बताते हैं, आदि। अतः सम्भव है कि 'यज्ञफल' भास के नाटकों के अनुकरण पर किसी अन्य परवर्ती नाटककार की रचना हो।

भास के नाटकों का संक्षिप्त परिचय

I. रामायण पर आधृत नाटक—

१. प्रतिमानाटक—इसमें रामवनगमन, सीताहरण आदि से लेकर रावणवध पर्यन्त सम्पूर्ण राम-कथा संक्षेप से वर्णित है। यह सात अंक का है। दशरथ की प्रतिमा को देखकर उनके दिवंगत हो जाने का अनुमान भरत द्वारा नगर से बाहर ही कर लिए जाने से इसका नाम 'प्रतिमानाटक' है।

२. अभिषेक—इसमें किष्किन्धाकाण्ड से राम के राज्याभिषेक तक की कथा संक्षेप से है। यह छः अङ्क का नाटक है। राज्याभिषेक के कारण ही इसका नाम 'अभिषेक' है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

II. महाभारत पर आधृत नाटक—

३ मध्यमव्यायोग—इस एकाङ्की में मध्यम पाण्डव भीम द्वारा घटोत्कच से ब्राह्मण के मध्यम पुत्र के मुक्ति की कथा है। 'मध्यम' शब्द भीम और उस बालक दोनों का बोधक होने से इसका नाम 'मध्यमव्यायोग' है।

४. दूतवाक्य—इस एकाङ्की में पाण्डव पक्ष से दुर्योधन के पास कृष्ण के दूत बनकर जाने और वहाँ उनके द्वारा पाण्डवों के भाग (हिस्सा) माँगने पर दुर्योधन द्वारा कृष्ण को पकड़ने की आज्ञा देने पर कृष्ण के विराट् रूप ग्रहण करने की कथा वर्णित है।

२. दूतघटोत्कच—इस एकाङ्की में अभिमन्यु की मृत्यु के बाद घटोत्कच दूत बनकर कृष्ण का संदेश कौरवों के पास ले जाता है। दुर्योधन और घटोत्कच के बीच गरमा-गरमी हो जाती है जिसे धृतराष्ट्र शान्त करते हैं। घटोत्कच अभिमन्यु के वध का बदला अर्जुन द्वारा लिए जाने की धमकी देकर चला जाता है। इस एकांकी में 'भरतवाक्य' नहीं है।

६. कर्णभार—इस एकाङ्की में द्रोणाचार्य के निधन पर कौरवों की ओर से कर्ण के सेनापति हो जाने पर युद्ध का सारा भार कर्ण पर आ पड़ता है। यह उनके लिए भारस्वरूप हो जाता है जबकि ब्राह्मणवेषधारी इन्द्र को वे कवच और कुण्डल दान में दे देते हैं।

७. ऊरुभंग—इस एकाङ्की में द्रौपदी के अपमान के प्रतीकार स्वरूप भीम द्वारा दुर्योधन की जंघा (=ऊरु) को भङ्ग करके उसका वध करने की कथा वर्णित है। संस्कृत-साहित्य में मात्र यही एक दुःखान्त नाटक है।

८. पंचरात्र—इसमें दुर्योधन के द्वारा यज्ञ करने और यज्ञ पूर्ण होने पर द्रोण को मुँहमागी दक्षिणा देने के लिए कहता है। द्रोण ने दुर्योधन से दक्षिणा रूप में पाण्डवों को आधा राज्य दे देने की माँग की। दुर्योधन इस शर्त पर तैयार होता है कि पाँच रात्रि के अन्दर यदि पाण्डव मिल जाएँगे तभी ऐसा हो सकेगा। कौरवों ने विराट् की राजधानी पर गायों के लिए आक्रमण किया। राजकुमार उत्तर कौरवों से लड़ते हैं। अज्ञातवास में स्थित पाण्डवों की सहायता में उसकी विजय होती है, और पाण्डवों के प्रकाश में आ जाने पर द्रोण द्वारा प्रतिज्ञा की याद दिलाई जाती है। इस पर दुर्योधन आधा राज्य दे देने के लिए मान जाता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

III. हरिवंश पर आधृत नाटक—

९.—बालचरित—इसमें भगवान् श्रीकृष्ण की बाल-लीला का वर्णन है। पाँच अङ्कों में श्रीकृष्ण के जन्म से लेकर कंस वध पर्यन्त की कथा वर्णित है।

IV. बृहत्कथा पर आधृत नाटक—

१०. स्वप्नवासवदत्तम्—इसमें वत्सराज उदयन के वासवदत्ता के साथ स्वप्न में मिलन की कथा है। इसीलिए इसका नाम 'स्वप्नवासवदत्तम्' है। उज्जयिनी के राजा प्रद्योत के महल से वासवदत्ता के हरण के बाद उदयन विलासी हो जाते हैं। इससे शत्रु आरुणि को आक्रमण करने का अवसर प्राप्त हो जाता है। किन्तु उदयन के मन्त्री यौगन्धरायण आरुणि को परास्त करने के लिए मगधराज दर्शक से सहायता लेने के लिए वासवदत्ता को मिलकर लावाणक में उनके अग्नि में जल मरने का समाचार उड़ा देते हैं और वासवदत्ता को मगधराज की कुमारी पद्मावती के पास धरोहर रूप में रख देते हैं। बाद में उदयन का विवाह पद्मावती से होता है। एक बार उदयन स्वप्न देखता है। उसकी स्मृति ताजी हो जाती है। वासवदत्ता प्रकट होती है और उदयन का उनसे मिलन होता है। उधर उदयन का सेनापति रुमण्वान् आरुणि को युद्ध में पराजित कर देता है। इस प्रकार छ अङ्कों का यह सुखान्त नाटक है।

११. प्रतिज्ञायौगन्धरायण—इसमें वत्सराज उदयन द्वारा उज्जयिनी के राजा प्रद्योत की कन्या वासवदत्ता के हरण और प्रेम-विवाह का वृत्तान्त है। प्रद्योत द्वारा उदयन के कैद कर लिए जाने पर उदयन के मन्त्री यौगन्धरायण द्वारा उदयन को छुड़ाने और वासवदत्ता के साथ उसका विवाह कराने की प्रतिज्ञा करता है। इसलिए इसका नाम 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण' है। चार अंक के इस 'ईहामृग' नामक नाटकभेद में यौगन्धरायण को पूर्ण सफल दर्शाया गया है।

१२. अविमारक—इसमें राजा कुन्तिभोज की कुमारी कुरङ्गी और सौवीर राजा के पुत्र विष्णुसेन के प्रेम-विवाह की कथा है। विष्णुसेन का ही दूसरा नाम अविमारक है। विष्णुसेन ने किसी समय 'अवि' नामक भेड़रूपधारी राक्षस को मारा था। इसीलिए नाटक का नाम 'अविमारक' है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

V. काल्पनिक—

१३. चारुदत्तम्—इसमें निर्धन किन्तु उदारमना ब्राह्मण चारुदत्त एवं गणिका वसन्तसेना के प्रेम सम्बन्ध का वर्णन है। नायक के नाम पर ही नाटक का नाम 'चारुदत्त' रक्खा गया है। यह चार अंक का 'प्रकरण' है।

भास की नाटचकला और मध्यमव्यायोग

इस प्रकार भास ने अपने प्रायः सभी नाटकों की कथावस्तु रामायण व महाभारत से ली है। कुछ बृहत्कथा पर आधृत है और एक काल्पनिक है। भास ने जो भी कथास्रोत ग्रहण किया उसे सभी नाटकों में उन्होंने अपने रुचि के अनुसार बदल दिया है। इसी कारण प्रायः सभी कथानक बड़े ही रोचक हो गये हैं और मंचन के योग्य हो गए हैं। इनमें नाटचनिर्देश बहुत कम हैं, जिसे अभिनेता को स्वयं ही करना है। मध्यमव्यायोग में भी इसी प्रकार 'नाटच-निर्देश' बहुत कम हैं और महाभारत के ही पात्रों को लेकर घटना का क्रम कल्पित है। नाटक बहुत बड़ा नहीं है। मात्र कुछ घण्टों का ही दृश्य है जिसमें नाटक समाप्त हो जाता है अतः इसका सफलतापूर्वक मंचन किया जा सकता है।

मध्यमव्यायोग की समीक्षा

मध्यमव्यायोग की कथावस्तु—

मध्यमव्यायोग की कथावस्तु का प्रारम्भ ब्राह्मण परिवार और घटोत्कच की आकस्मिक मुलाकात से होता है। कुरुजाङ्गल प्रदेश के यूपग्राम के निवासी अध्वर्यु केशवदास अपने मातुल यज्ञबन्धु के यहाँ उपनयन संस्कार में सम्मिलित होने के लिए उद्यामक ग्राम जा रहे हैं। उनके साथ उनके तीन पुत्र और पत्नी भी हैं। जाने का मार्ग जङ्गल से होकर पड़ता है। दुर्योधन से जुए में पराजित पाण्डव इसी वन में निवास कर रहे हैं। किन्तु इस समय वे धौम्य महर्षि के आश्रम पर 'शतकुम्भ' नामक यज्ञ देखने गए हैं। मात्र भीम निवासस्थान के रक्षार्थ रुक गए हैं। इसी समय घटोत्कच भी माता की आज्ञा से उसके उपवास के पारणार्थ एक मानव को लाने के लिए चल पड़ा है। घटोत्कच ब्राह्मण परिवार का पीछा करता है। वह राक्षस तरुण सूर्य की किरणों के समान बिखरे बालों वाला, भ्रुकुटि की भङ्गी से प्रदीप्त एवं पीले रङ्ग की आँखों वाला, कण्ठसूत्र से युक्त, विद्युत युक्त मेघ के समान स्थित युग के संहार में प्रवृत्त भगवान् शङ्कर की प्रतिकृति रूप है। उसकी दोनों आँखे सूर्य-चन्द्र की भाँति चमकीली हैं, वक्षस्थल विस्तृत हैं, वह पीला कौशेय वस्त्र पहने हुए

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है। उसके दाँत हाथी के बच्चों के दाँत के समान कुछ निकले हुए हैं। उसके हाथ हाथी की सूढ़ के समान हैं।

घटोत्कच कहता है—'डरपोक ब्राह्मण, कहाँ भाग रहे हो? तुम मेरे सामने उसी प्रकार हो जैसे क्रुद्ध गरुड के सामने स्त्री-सहित मरा हुआ नाग हो।' इस पर वृद्ध अपने पुत्र और स्त्री से कहता है कि मत डरो, क्योंकि इसकी वाणी विवेकपूर्ण है। फिर जलक्लिन्न मुनि ने कहा था कि यह वन निरापद नहीं है, और इस निर्जन वन में किसे पुकारा जाय। अतः इस संकट से मोक्ष का उपाय घटोत्कच से ही पूछता है इस पर घटोत्कच कहता है कि इन तीनों में से मैं एक को ले लूंगा और तब शान्ति से अन्य को जाने दूंगा। इस शर्त पर सभी ने अपने को उत्सर्ग करना चाहा। किन्तु जरा जीर्ण होने के कारण ब्राह्मण और स्त्री होने के कारण ब्राह्मणी छोड़ दी जाती हैं। तीन पुत्रों के बीच ज्येष्ठ को पिता नहीं छोड़ना चाहता और छोटे को माता नहीं छोड़ना चाहती। अतः मध्यम पुत्र ही पिता और माता से न चाहा जाकर बच रहता है जो राक्षस के साथ जाने को तैयार हो जाता है। तब घटोत्कच की अनुमति लेकर मध्यम पुत्र समीप के जलाशय में जल पीने जाता है।

मध्यम पुत्र को लौटने में जब विलम्ब होता है तो घटोत्कच उसे 'मध्यम' 'मध्यम' कहकर पुकारता है, क्योंकि माता के पारणा का काल बीता जा रहा था। भीम अपना नाम सुनकर आश्चर्यान्वित होते हैं कि मुझे कौन बुला सकता है, और घटोत्कच के दुबारा पुकारने पर कहते हैं कि 'यह मैं आ गया' दोनों एक दूसरे को देखकर ठिठक जाते हैं। वह कहता है कि 'क्या आप भी मध्यम हैं।' भीम कहते हैं—'हाँ मैं भी मध्यम हूँ।' वृद्ध ब्राह्मण सोचते हैं कि यह अवश्य ही पाण्डव मध्यम भीम होंगे, जो हम लोगों को मुक्ति दिलाने भाग्यवशात् ही आ गए हैं। इसी बीच मध्यम पुत्र आ जाता है और उसे लेकर घटोत्कच जब चलने लगता है तब वृद्ध ब्राह्मण कातर दृष्टि से भीम से रक्षा की याचना करते हैं। भीम घटोत्कच से कहते हैं कि इस ब्राह्मण परिवार रूपी चन्द्र के लिए तुम क्यों राहु बने हो? ब्राह्मण अवध्य हैं अतः इन्हें छोड़ दो। वह कहता है कि साक्षात् पिता भी यदि आकर कहें कि 'छोड़ दो' तो भी नहीं छोड़ूंगा क्योंकि मैं अपनी माता की आज्ञा से इसे ले जा रहा हूँ। भीम उसकी माता का नाम पूछते हैं और उससे 'हिडिम्बा' नाम सुनकर पुत्र

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

की मातृभक्ति पर प्रसन्न होते हैं। भीम मध्यम पुत्र को रोककर उसके स्थान पर स्वयं ही जाने को तैयार हो जाते हैं और घटोत्कच से कहते हैं कि 'यदि तुम्हारे पास ताकत हो जो मुझे जबरदस्ती ले चलो।'

भीम और घटोत्कच के बीच कुस्ती होती है। किन्तु भीम की हार नहीं होती। घटोत्कच उन्हें मायापाश में बाँध लेता है, भगवान् शङ्कर से प्राप्त मन्त्र से उससे भी भीम मुक्त हो जाते हैं। अन्ततः घटोत्कच उन्हें पूर्व शर्त की याद दिलाता है तो वे उसके साथ चलने लगते हैं। अपने निवास स्थान पर पहुँचकर भीम को खड़ा करके वह माता को खुशखबरी देने जाता है। हिडिम्बा जब मनुष्य को देखने आती है तो आश्चर्यचकित-सी होती है और 'आर्यपुत्र' कहकर भीम का अभिवादन करती है और घटोत्कच को भी प्रणाम करने को कहती है। घटोत्कच अपने कृत्य पर लज्जित-सा हो जाता है और पिता को प्रणाम करते हुए पूर्वापराध के लिए क्षमा माँगता है। हिडिम्बा भी, पारणार्थ मानव के आनयन में मात्र भीम को ही पुनः पाने का आशय भीम से प्रकट करती है। भीम भी पुत्र को गले लगाकर धृतराष्ट्र रूपी वन के लिए दवाग्नि के समान घटोत्कच को प्राप्तकर अत्यन्त प्रसन्न हो उसे पराक्रमी होने का आशीर्वाद देते है। घटोत्कच वृद्ध ब्राह्मण को भी प्रणाम करता है। तीनों मिलकर उन ब्राह्मण केशवदास को आगे की यात्रा के लिए आश्रम द्वार तक छोड़ने जाते हैं और भरतवाक्य के साथ नाटक समाप्त हो जाता है।

मध्यमव्यायोग की कथा का महाभारतीय परिवेश—भास के द्वारा इस व्यायोग में महाभारत की कई घटनाएँ अपने ढङ्ग से जोड़ दी गई हैं। महाभारत में हिडिम्ब-वध और हिडिम्बा से भीम का विवाह होना और उससे घटोत्कच की उत्पत्ति का कथानक है।[1] यद्यपि घटोत्कच द्वारा ब्राह्मण परिवार का पीछा करने की घटना वहाँ नहीं है; किन्तु बकासुर से भीम द्वारा ब्राह्मण परिवार की मुक्ति की कथा अवश्य है।[2]

कथानक के अनुसार बक एक नरभक्षी राक्षस था, जो एकचक्रा से दो कोस की दूरी पर यमुना नदी के किनारे वेत्रवन नामक घने जङ्गल की एक गुफा में रहता था। इसका एकचक्रा नगरी तथा वहाँ के जनपद पर शासन

---

१. महाभा० आदि० १५४।

२. महाभा० आदि० १५६–१६३।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चलता था। एकचक्रा नगरी के व्यक्तियों ने अत्यधिक परेशान होकर इसे घर बैठे ही भोजन भिजवा देने के लिए हर व्यक्ति की पारी बाँध दी। अब हर एक दिन इसके भोजन के लिए ३० मन चावल, दो भैंस तथा एक व्यक्ति नगर-निवासियों की ओर से भेजा जाने लगा।[१] एक दिन एक गरीब ब्राह्मण की पारी आयी, जिसके घर लाक्षागृह से बच निकलने के बाद कुन्ती के साथ पाण्डवों ने निवास किया था। युधिष्ठिर आदि चार भाई भिक्षा के लिए बाहर गए थे। किन्तु भीम किसी कार्यविशेष के कारण कुन्ती के साथ घर पर ही रह गए। ब्राह्मण के घर में सहसा बड़े जोर का आर्तनाद होने लगा। कुन्ती ने भीमसेन से कहा—'निश्चय ही इस ब्राह्मण पर कोई कष्ट आ पड़ा है अतः इसकी सहायता करनी चाहिए। भीतर जाकर कुन्ती ने ब्राह्मण को पत्नी, पुत्र और कन्या के साथ नीचे मुंह किए बैठे देखा। सभी विपत्ति से छुटकारा पाने की चिन्ता में मग्न थे। ब्राह्मण के मन में यह चिन्ता थी कि स्वयं को बचाकर राक्षस के लिए कैसे वह अपनी स्त्री को दे दे जिसे वह विवाह करके लाया था अथवा अपने पुत्र या पुत्री को दे दे जो सदा उस पर निर्भर करते हैं। स्त्री स्वयं मरने के लिए उद्यत होती है[२], और कहती है कि हो सकता है कि वह स्त्री समझकर मुझे छोड़ दे।[३] लेकिन इस पर कन्या कहती है कि 'आप मुझे ही जाने दीजिए, क्योंकि मेरा परित्याग आप धर्मतः एक न एक दिन करेंगे ही।[४] उसके ऐसा कहने पर तीनों फूट-फूट कर जब रोने लगे तो ब्राह्मण का छोटा बालक एक तिनका उठाकर अपनी तोतली बोली में कहने लगा कि मैं इसीसे उस नरभक्षी राक्षस को मार डालूंगा।'

अब कुन्ती ने ब्राह्मण से उनका कष्ट पूछा और अन्त में ब्राह्मण के ऊपर आयी हुई विपत्ति को देखकर, कुन्ती द्वारा भीम सब खाने पीने के सामान के साथ राक्षस के निवास पर पहुँचे। भीम बक के यहाँ पहुँचकर सारे सामान को स्वयं खाने लगे। यह देख बक बड़ा क्रोधित हुआ और भीम पर झपटा।

---

१. 'महिषौ पुरुषश्चैको यस्तदादाय गच्छति' महाभा० आदि० १५९.६।

२. स कुरुष्व मया कार्यं तारयात्मानमात्मना।
अनुजानीहि मामार्य सुतौ मे परिपालय॥ महाभा० आदि० १५७.३०

३. 'अवध्यां स्त्रियमित्याहुः' महाभा० १५७,३१

४. 'त्यक्तव्यां मां परित्यज्य त्राहि सर्वं ममैकया'—महाभा० आदि० १५८,३

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दोनों में मल्लयुद्ध आरम्भ हो गया और अन्त में भीम ने बकासुर का वध करके ब्राह्मण परिवार को मुक्ति दिलाई।

महाभारत में घटोत्कच का यज्ञ व ब्राह्मणों का विद्वेषी होना उल्लिखित है[1]। वैसा ही यहाँ भी कथानक में रक्खा गया। मध्यम पुत्र को माता व पिता द्वारा न चाहा जाना 'ऐतरेय-ब्राह्मण' के शुनःशेपाख्यान में ही उल्लिखित है। अतः भास ने इस घटना और महाभारत के ब्राह्मण परिवार की भीम द्वारा मुक्ति की घटना को मिलाकर हिडिम्बा के चिर-प्रतीक्षित मिलन की कल्पित कथा को बड़े ही कलापूर्ण ढङ्ग से संयोजित कर दिया है। वस्तुतः 'हिडिम्ब-वध-पर्व' में घटोत्कच की उत्पत्ति के बाद भीम से हिडिम्बा का पुनः मिलना कहीं भी महाभारत में आगे उल्लिखित नहीं है। महाभारत में, क्योंकि राक्षसियों को गर्भधारण करते ही सन्तान पैदा हो जाती है,[2] अतः घटोत्कच ने उसी समय उत्पन्न होकर माता-पिता दोनों को प्रणाम किया। यह भास को ठीक नहीं लगा। अतः मानव की सन्तान होने के कारण उसे उन्होंने बड़ी कुशलता के साथ अप्रत्याशित ढङ्ग से मिला दिया है। वस्तुतः यह भास की अपनी उद्भावना है जो व्यायोग को और भी रोचक बना देती है। पुत्र के विरुद्ध पिता का मल्लयुद्ध भास की अपनी उद्भावना है जिससे वह यह दिखाना चाहते हैं कि भीम के ही समान अब धृतराष्ट्र रूपी-वन के लिए दवाग्नि-स्वरूप उनका पुत्र तैयार हो गया है। और उसे भीम भी अत्यन्त बली व पराक्रमी होने का आशीर्वाद देते हैं जब कि महाभारत में घटोत्कच के अभिवादन का कोई उत्तर नहीं दिया गया है। इस प्रकार हिडिम्बा और घटोत्कच दोनों को ही भास ने महाभारतीय स्वरूप से अलग मानवीय रूप प्रदान किया है। यह भीम की—'माता मनुष्यों के देवों की देव है'—इस उक्ति से परिलक्षित है, और फिर वह यहाँ मनुष्य को खाना भी नहीं चाहती।[4]

---

१. महाभा० द्रोण० १८१.२६–२७।

२. महाभा० आदि० १५४. ३६।

३. 'अयं स धार्तराष्ट्रवनदवाग्निः'। म० व्या० पृ० ६६

४. 'माता किल मनुष्याणाम्'''म० व्या० ३७।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शुनःशेप की कथा में परिवर्तन—ऐतरेय ब्राह्मण में शुनःशेप माता-पिता के द्वारा अपनी इच्छा से स्वयं ही बेच दिया जाता है। किन्तु यहाँ मध्यम पुत्र को जाना ही पड़ रहा है जो निश्चय ही महाभारत के बकासुर की कथा पर आधृत है। ऐतरेय ब्राह्मण में अजीगर्त का परिवार के प्रति सम्पूर्ण व्यवहार अमानवीय-सा है जिसे भास ने एकदम बदल दिया है। शुनःशेप की मुक्ति वरुण द्वारा प्रार्थना से होती है किन्तु यहाँ भीम द्वारा मुक्ति दिलाना बकासुर की कथा का ही महाभारतीय रूपान्तर है।

नाटक का प्रकार और मध्यम व्यायोग—प्रस्तुत नाटक एक 'व्यायोग' है। व्यायोग की परिभाषा[1] के अनुसार व्यायोग के मुख्य तत्त्व निम्न हैं—(१) इसमें इतिवृत्त इतिहास प्रसिद्ध होता है, (२) नायक इतिहास प्रसिद्ध और दिव्य होता है, (३) इसमें स्त्रीपात्र बहुत कम होते हैं और पुरुष पात्र अधिक होते हैं जैसा कि इस शब्द की व्युत्पत्ति से भी ज्ञात होता है—'क्योंकि इसमें बहुत से पुरुष व्यायुक्त अर्थात् लगे रहते हैं अतः इसे 'व्यायोग' कहते हैं।[2] (४) इसमें मुख्य रस वीर होता है और [शृङ्गार और हास्य को छोड़कर] अन्य पाँच रस अङ्ग होते हैं। (५) इसमें मुख्य रूप से कुस्ती अथवा संघर्ष व युद्ध होता है, (६) किन्तु यह युद्ध स्त्री के निमित्त नहीं होता।[3] (७) यह मात्र एक अङ्क का ही होता है और (८) इसमें एक दिन का ही वृत्तान्त होता है।

---

१. व्यायोगस्तु विधिज्ञैः कार्यः प्रख्यातनायकशरीरः।
अल्पस्त्रीजनयुक्तस्त्वेकाहकृतस्तथा चैव ॥
बहवश्च तत्र पुरुषाः व्यायच्छन्ते यथा समवकारे।
न तु तत्प्रमाणयुक्तः कार्यस्त्वेकाङ्क एवायम् ॥
न च दिव्यनायककृतः कार्यो राजर्षिनायकनिबद्धः।
युद्धनियुद्धाधर्षणसंघर्षकृतश्च कर्तव्यः ॥
एवंविधस्तु कार्यो व्यायोगो दीप्तकाव्यरसयोनिः ॥
—भरत, हेमचन्द्र के द्वारा काव्यानुशासन में उद्धृत और व्याख्यात, पृ० ३८७ तु० दश० ३. ६०–६२।

२. व्यायुज्यन्तेऽस्मिन् बहवः पुरुषा इति व्यायोगः। दश० ३.६० पर धनिक।

३. 'अस्त्रीनिमित्तसंग्रामो'—दश० ३.६१

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रस्तुत नाटक उपर्युक्त सभी मुख्य तत्त्वों को लेकर ही गठित है। नायक भीम महाभारत की कथा के इतिहास-प्रसिद्ध पात्र हैं। इसमें मात्र दो ही स्त्री पात्र हैं, ब्राह्मणी और हिडिम्बा और इनका अभिनय में भी विशेष योगदान नहीं है। नाटक का मुख्य इतिवृत्त भीम और घटोत्कच के बाहु-युद्ध के मध्य ही निहित है। यह एक अङ्क का नाटक है, और मात्र एक दिन प्रातःकाल के दो-चार घण्टों की कथा ही इसमें वर्णित है। इस प्रकार नाटक के प्रकार व्यायोग की परिभाषा इस एकाङ्की पर पूर्णरूपेण घट जाती है।

'मध्यमव्ययोग' नाम का कारण—इस नाटक का शीर्षक अत्यन्त उपयुक्त और अर्थगर्भित है। यह शीर्षक निम्न बातों का अभिव्यञ्जक है—१. 'मध्यम' शब्द पाण्डवों में मध्यम-पाण्डव भीम के लिए प्रयुक्त है, और २. 'व्यायोग' शब्द रूपक के एक प्रकार के लिए पारिभाषिक शब्द के रूप में प्रयुक्त है। पुसालकर के अनुसार वस्तुतः (i) 'मध्यम' शब्द 'भीम' और उस 'मध्यम ब्राह्मण बालक' का बोधक है जिसे भीम घटोत्कच से मुक्ति दिलाते हैं और 'व्यायोग' शब्द नाट्य के प्रकार की संज्ञा है। दूसरी व्युत्पत्ति से उनके अनुसार (ii) मध्यम पाण्डव भीम का हिडिम्बा से विशेष रूप से संयोग होना ही मध्यमव्यायोग नाम का कारण है।[1] इस प्रकार इस रूपक के शीर्षक की व्युत्पत्तियाँ और भी हो सकती हैं; जैसे—(i) मध्यमः भीमः कुन्ती-तनयत्वावच्छिन्नपाण्डवेषु तस्यैव मध्यमत्वात्। मध्यमम् उद्दिश्य कृतः व्यायोगः मध्यमव्यायोगः। (ii) मध्यमस्य भीमस्य व्यायोगः, व्यायुज्यते इति व्यायोगः—मध्यमव्यायोगः। (iii) मध्यमस्य ब्राह्मणपुत्रस्य व्यायुक्तिनिमित्तकः मध्यमस्य भीमस्य व्यायोगः; युद्धनियुद्धपरः हिडिम्बायोगावसानश्च, तम् उद्दिश्य कृतः ग्रन्थः।

वस्तुतः सम्पूर्ण व्यायोग की कथा 'मध्यम' अर्थात् मध्यम पाण्डव भीम और मध्यम-ब्राह्मणकुमार के ही चारों ओर केन्द्रित होने के कारण ही इस नाटक का नाम 'मध्यमव्यायोग' है, जो अत्यन्त उपयुक्त और सारगर्भित है।

---

१. (i) मध्यममधिकृत्य कृतो व्यायोगसंज्ञो नाटचप्रकारः; (ii) मध्यम-(भीम)स्य (हिडिम्बया सह) व्यायोगः (वि+आ+योगः= विशेषण संयोगः); (iii) मध्यमौ (भीमो ब्राह्मणकुमारश्च व्यायुज्येते अस्मिन् इति नाटकम्। ए. डी. पुसालकर, भास-ए स्टडी, पृ० २०४।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मध्यमव्यायोग में रस और अलङ्कार—इस व्यायोग में मुख्य रस 'वीर' है और अन्य रस भी इसे ही पुष्ट करने में प्रयुक्त हैं। ब्राह्मण और घटोत्कच की मुलाकात में भयानक रस है। ब्राह्मण परिवार के प्रत्येक व्यक्ति का अपना जीवन दे देने का प्रस्ताव करुण रस प्रस्तुत करता है। इसी प्रकार घटोत्कच के साथ भीम की भिड़न्त में रौद्र और हास्य तथा उन दोनों के द्वारा माया-पाश का प्रयोग और उससे छुटकारा पाना अद्भुत रस प्रकट करता है।

सम्पूर्ण नाटक में उपमा और रूपक का ही मुख्य रूप से प्रयोग किया गया है। घटोत्कच के स्वरूप का वर्णन करते हुए ब्राह्मण-परिवार की भयान्वित अवस्था का चित्रण उपमा और रूपक के माध्यम से बहुत सुन्दर प्रस्तुत किया गया है, जैसे—

(i) घटोत्कच के द्वारा ब्राह्मण परिवार का पीछा उसी तरह किया जा रहा है जैसे वत्स के सहित गाय का पीछा सिंह करता है—

भ्रान्तैः सुतैः परिवृतस्तरुणैः सदारो वृद्धो द्विजो निशिचरानुचरः स एषः।
व्याघ्रानुसारचकितो वृषभः सधेनुः सन्त्रस्तवत्सक इव कुलतामुपैति ॥

(ii) स्त्री-पुत्रों की रक्षा में असमर्थ घटोत्कच के भय से विनष्ट धैर्यवाला भयभीत ब्राह्मण उसी प्रकार जा रहा है जैसे गरुड़ के पंख के अग्रभाग से उठी हुई वायु से प्रचण्ड क्रोधाग्नि वाला उत्तेजित सपत्नीक तथा दीन सर्प जाता है।

किं यासि मद्भयविनाशितधैर्यसारो वित्रस्तदारसुतरक्षणहीनशक्ते।
तार्क्ष्याग्रपक्षपवनोद्धतरोषवह्नितीव्रकलत्रसहितो भुजगो यथार्तः ॥ ८ ॥

इसी प्रकार प्रस्तुत नाटक के इन श्लोकों में हमें उपमा देखने को मिलती है—१, ३, ४, ५, ८, २४, २६, २७, ३२, ३८, ४६, ४७ और ४८ आदि।

रूपक के माध्यम से भास ने घटोत्कच का बहुत सुन्दर चित्र-सा खींच दिया है, जैसे—'यह गिरिराजों के लिए वज्रपात-सा, सभी पक्षियों के लिए बाज-सा और मृगसमूह के लिए सिंह-सा मानव शरीर धारण कर साक्षात् मानो यमराज ही आ गये हों—

वज्रपातोऽचलेन्द्राणां श्येनः सर्वपतत्रिणाम्।
मृगेन्द्रो मृगसङ्घानां मृत्युः पुरुषविग्रहः ॥ ७ ॥

इसी प्रकार आगे भी इन श्लोकों में रूपक प्रस्तुत किया गया है—७, १५ २३, ३३ और ४२।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इसी प्रकार ६, ३०, ३१, ३३ श्लोक में उत्प्रेक्षा, ४४ में दृष्टान्त, २० श्लोक में अर्थान्तरन्यास, १० में काव्यलिङ्ग आदि अलङ्कारों का प्रयोग हुआ है।

प्रस्तुत व्यायोग में अनुप्रास तो स्वाभाविक-सा प्रतीत होता है, जैसे—१, ३, ६, २४, २५, २६, ३२ और ३८ में प्रयुक्त है।

मध्यम व्यायोग में भास की काव्यकला—प्रस्तुत नाटक में रस और अलङ्कार का प्रयोग जितनी सफलता के साथ किया गया है वैसे ही भाषा में काव्यात्मक लाने के लिए एक ही शब्द का या उपसर्ग का प्रयोग भी बार-बार एक ही स्थान पर किया गया है। जैसे—२९ वें और ३०वें श्लोक में मध्यम शब्द का आठ बार प्रयोग करके कवि ने बड़ा ही चमत्कार प्रस्तुत किया है। एक ही शब्द की पुनरुक्ति कवि की अपनी कला है, जिसे उन्होंने अन्य स्थल में भी किया है जैसे २२वें श्लोक में 'परिष्वज' का प्रयोग और ५२वें श्लोक में 'प्रभवः' का प्रयोग।

नाटक का उद्देश्य—हिडिम्बा ने घटोत्कच को जो पारणार्थ किसी मनुष्य को लाने के लिए कहा था उसका मात्र उद्देश्य यही था कि उससे भीम का पुनर्मिलन हो। वह जाति से राक्षसी थी। अपने आचारों से वह मानव ही थी। जैसा कि कवि ने भीम की इस उक्ति से 'जात्या राक्षसी न समुदाचारेण' प्रकट किया है। यही मत म०म० टी० गणपति शास्त्री[1] का भी है, जैसा कि 'मध्यमव्यायोग' की संस्कृत टीका में उन्होंने बड़े विस्तृत रूप में इसे प्रदर्शित भी किया है—'मानुषानयनतात्पर्यरहस्यस्य स्वभर्तृमात्रश्रवणीयत्वं तन्यमाना स्वभर्तुः कर्णे तन्निवेदयति—कर्णे इत्यादि। ईदृशमिव इवशब्दो वाक्यभूषणम्। ईदृशं फलरहस्यमित्यर्थः। तच्च पूर्वोत्तरार्थपर्यालोचनयोन्नेनं शक्यमिति ग्रन्थे न निबद्धम्। तद् उत्तरवाक्ये विशदयामः। तदभिप्रायरहस्यश्रवणेन परितुष्ट आह जात्येति। जात्या जन्मना राक्षसी, अर्थात् वम् समुदाचारेण न, राक्षसी न भवसि। अयमाशयः····स्वभर्तृसमागम इति ब्रूमः।'

अन्य बातों से भी नाटक का यही प्रयोजन हमें प्राप्त होता है जैसे—हिडिम्बा ने कहा था कि इसी वन से मनुष्य खोजकर लाओ।[2] फिर जब ब्राह्मणी ने

---

१. हिडिम्बयात्मकारितस्य मानुषग्रहणस्य भीमसेनसमागम एवानन्यथा सिद्धं प्रयोजनमभिसंहितम्। म० व्या०, उपोद्घात पृ० २।

२. अस्मिन् वनप्रदेशे कश्चिन्मानुषः परिमृग्यानेतव्य इति म० व्या० पृ० १९।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ही अपना शरीर देना चाहा तो घटोत्कच ने यही कहा कि मेरी माँ को स्त्री नहीं चाहिए।[1] इसके बाद वृद्ध ने जब अपना शरीर देना चाहा तो भी उसने यही कहा कि 'अरे वृद्ध तुम अलग हटो।' घटोत्कच द्वारा चिराभिलषितः शब्द के प्रयोग से भी यही प्रतीत होता है कि हिडिम्बा को बहुत दिन से भीम से मिलने की अभिलाषा थी। इस प्रकार नाटक का मुख्य प्रयोजन भीम का हिडिम्बा से पुनर्मिलन है।

चरित्र चित्रण—

भास अपने नाटकों में पात्रों का बड़ा ही सजीव चित्र उपस्थित करते हैं। इसी से प्रभावित होकर बाणभट्ट ने उनके नाटकों को 'चरित्रप्रधान' कहा है— 'सूत्रधारकृतारम्भैर्नाटकैर्बहुभूमिकैः।' प्रस्तुत नाटक में छः पुरुषः पात्र हैं और दो स्त्री पात्र हैं। इनमें से कुछ के चरित्र-चित्रण के सम्बन्ध में विचार किया जा रहा है—

भीम—प्रस्तुत व्यायोग के नायक भीम महाभारत के भीम के ही समान अतुलनीय शक्ति वाले चित्रित किये गये हैं। खुले मैदान में वे नित्य व्यायाम करने वाले हैं। घटोत्कच जो स्वयं इतना बलवान् है कह उठता है कि 'अरे यह तो दर्शनीय पुरुष है।' इसकी आकृति सिंह के समान है ताड़ के वृक्ष के समान लम्बे हाथ हैं।[2]

भीम धीरोद्धत नायक हैं। वह बहुत गर्वीले और गर्म स्वभाव के होकर भी ब्राह्मण के प्रति दयावान् हैं। उनका पुत्रवात्सल्य अत्यन्त स्नेहिल है। घटोत्कच का बाल-स्वभाव देखकर उन्हें सुभद्रा-पुत्र अभिमन्यु का स्मरण हो आता है।[3]

भीम मध्यम पाण्डव हैं। उन्होंने अत्यन्त गर्व के साथ अपने को आठ वस्तुओं में मध्यम बतलाया।[4] भीम के मन में ब्राह्मणों का बड़ा सम्मान दृष्टिगोचर होता है। ब्राह्मण को कष्ट में देख वे तुरन्त उन्हें छोड़ देने के लिए कहते हैं।

---

१. न खलु स्त्रीजनोऽभिमतस्तत्रभवत्या । म० व्या० पृ० २३।

२ अहो दर्शनीयोऽयं पुरुषः। य एषः सिंहाकृतिः कनकतालसमानबाहुः'— म० व्या० २७ श्लो०।

३. दृष्ट्वैतद् बालशौण्डीर्यं सौभद्रस्य स्मराम्यहम्॥ ३५ श्लोक

४. ....मध्यमोऽहमवध्यानाम्.....म० व्या० २८ श्लोक।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भीम का चरित्र एक वीर के रूप में चित्रित है। वह केवल बाहु की सहायता से ही बिना अस्त्र-शस्त्र के युद्ध करते हैं। उन्हें दिव्य-शक्ति भी प्राप्त है। वे महेश्वर द्वारा प्राप्त शक्ति से मायापाश से अपने को छुड़ा लेते हैं। यह सब कुछ होकर भी उन्हें सत्य के प्रति आस्था है, जैसा कि घटोत्कच ने जब कहा कि 'अपने पूर्व कथन का स्मरण करो'—तब तुरन्त ही वे उसके पीछे चल पड़ते हैं।

भास ने भीम को प्रेमी पति और पुत्र-स्नेही पिता के रूप में चित्रित किया है। बहुत दिनों बाद हिडिम्बा से मिलकर उनकी 'अस्माकं भ्रष्टराज्यानां' आदि उक्ति के द्वारा प्रसन्नता ही प्रकट होती है। हिडिम्बा कृत पूर्व उपकारों के प्रति वे अत्यन्त कृतज्ञ होते हैं।[1] पुत्र के प्रति उनका स्नेह हमें तब प्रकट होता है; जब वे कहते हैं—'पुत्रापेक्षीणि पितृहृदयानि···।[2], इस प्रकार मध्यम पाण्डव भीम का व्यक्तित्व सर्वातिशायी बन पड़ा है। इस प्रकार वे ब्राह्मणों के अभयदाता, निर्भीक एवं स्वाभिमानी क्षत्रिय योद्धा के रूप में चित्रित किये गये हैं।

घटोत्कच—भीम के बाद प्रस्तुत नाटक में घटोत्कच की ही मुख्य भूमिका है। वह एक राक्षस होकर भी अत्यन्त मातृभक्त है। अपनी माता की आज्ञा का पालन करने के लिए अपने पिता की आज्ञा का भी उल्लंघन कर सकता है। ब्राह्मण को छोड़ देने के लिए जब भीम कहते हैं तो वह कहता है कि यदि मेरे पिता भी आकर कहें कि इसे छोड़ दो तो भी इसे मैं नहीं छोड़ूंगा; क्योंकि इसे हमने अपनी माता की आज्ञा से पकड़ा है। राक्षसी हिडिम्बा से उत्पन्न होकर घटोत्कच को उत्तराधिकार में साहस और अतुल बल प्राप्त हुआ है। पाण्डवों के मध्य उसे मानव रूप में चित्रित किया गया है। उसे दैवी अस्त्र भी प्राप्त है। बाहु युद्ध में जब वह भीम से हार जाता है तब माता से प्राप्त माया-पाश का प्रयोग करता है। उसके आकृति की प्रशंसा भीम भी करते हैं।[3] उसका मुख सिंह के समान है। उसकी आँखें चन्द्र-सूर्य की भाँति तेजस्वी हैं।

---

१. अये, देवी हिडिम्बा—अस्माकम् भ्रष्ट····म० व्या० पृ० ६४।

२. एह्येहि पुत्र, व्यतिक्रमकृत क्षान्तमेव। अयं स धार्तराष्ट्रवनदवाग्निः। पुत्रापेक्षीणि खलु पितृहृदयानि। पुत्र, अतिबलपराक्रमो भव। म० व्या० पृ० ६६।

३. अहो ! दर्शनीयोऽयं पुरुषः। अयं हि सिंहास्यः सिंहदष्ट्रो—म० व्या० २६ श्लोक।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भास के द्वारा राक्षस होते हुए भी घटोत्कच को मानवीय भूमि पर प्रतिष्ठित किया गया है। उसे मालूम है कि ब्राह्मण अवध्य होते हैं। किन्तु वह माता की आज्ञा की अवहेलना नहीं कर सकता। उसमें राक्षसी कठोरता नहीं है। शीघ्रता होने पर भी वह ब्राह्मण बालक को पानी पीने के लिए जाने देता है। घटोत्कच के हृदय में बालोचित चापल्य होकर भी दृढ़ता एवं निर्भीकता है। अत्यन्त बलवान् भीम को पाकर भी उनसे लड़ जाता है। वह बुद्धिमान् भी है। जब भीम से वह हार जाता है तो उनके पूर्व कथन के द्वारा उन्हें चलने के लिए राजी कर लेता है। घटोत्कच में विनय विद्यमान है। माता के पास भीम को लेकर जब वह पहुँचता है और माँ की उपस्थिति में जब उसे यह ज्ञात होता है कि जिस मनुष्य को वह पकड़ लाया है, वह उसका पिता ही है, तो उसे अपने कृत्य पर बड़ी लज्जा आती है और वह अपने पिता भीम से क्षमा याचना करता है।[1]

हिडिम्बा—भीमसेन की स्त्री राक्षसी हिडिम्बा को अत्यन्त बुद्धिमती और चतुर स्त्री के रूप में चित्रित किया गया है। वस्तुतः वह जाति से राक्षसी है, अपने कर्मों से नहीं[2]। जब उसके पति भीम के द्वारा वस्तुस्थिति के बारे में पूछा गया तो उसने अपने प्रिय से मिलने की इसे एक युक्ति ही बतलाया। यह बात उसके द्वारा भीम के कान में कही गई उक्ति (ईदृशमिव) से भासित होता है। कुछ भी हो, किन्तु भीम उसके उत्तर से आश्वस्त होकर यही कहते हैं कि तुम तो जात्या राक्षसी जरूर हो किन्तु कर्मणा तो नहीं। वस्तुतः अपने पति के प्रति उसका प्रेम इतना अधिक हैं कि वह उसे बुलाने के लिए कोई भी युक्ति अपना सकती है। भीम को वह अपने देवता के रूप में देखती है। घटोत्कच द्वारा लाए हुए भीम को वह जब देखती है तो घटोत्कच से यही कहती है कि ये मेरे और तुम्हारे देवता हैं।[3] अतः स्वयं भी उनका अभिवादन करती है और पुत्र से भी अभिवादन करने को कहती है।

'दीपावली' १९७९

संस्कृत-पालि विभाग, का० हि० वि० वि० —सुधाकर मालवीय
वाराणसी.

---

१. पुत्रचापलं क्षन्तुमर्हसि। म० व्या० पृ० ६५।

२. जात्या राक्षसी न समुदाचारेण। म० व्या० पृ० ६५।

३. 'उन्मत्तक, दैवतं खल्वयं।.....तव च, मम च।.... अभिवादय पितरम्'—म० व्या० पृ० ६५।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पात्राणि

पुरुषाः—

वृद्धः—ब्राह्मणः केशवदासनामा ।

प्रथमः—वृद्धस्य ज्येष्ठः पुत्रः ।

द्वितीयः—वृद्धस्य द्वितीयः पुत्रो मध्यमनामा ।

तृतीयः—वृद्धस्य कनिष्ठः पुत्रः ।

घटोत्कचः—राक्षसो हिडिम्बाः भीमसेनयोः सूनुः ।

भीमसेनः—मध्यमः कुन्तीपुत्रः ।

स्त्रियः—

ब्राह्मणी—वृद्धस्य भार्या ।

हिडिम्बा—राक्षसी भीमसेनस्य पत्नी ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

॥ श्रीः ॥

मध्यमव्यायोगः

ज्योत्स्ना-सरला-संस्कृत-हिन्दी-व्याख्योपेतः

प्रथमोऽङ्कः

(नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः)

ज्योत्स्ना

यत्कृपालवमात्रेण प्रपूर्यन्ते मनोरथाः ।
वाग्देवीं विघ्नराजं च तौ वन्देऽहं पुनः पुनः ॥ १ ॥
मिश्रां गुरुवरां पद्मां नौमि ज्ञानप्रदायिनीम् ।
यस्याः संवित् सुधाम्भोधेः सीकरोऽपि रसार्णवः ॥ २ ॥
श्रीभासरूपकस्तोमे नानारससमाश्रये ।
व्याख्या मध्यमपूर्वस्य व्यायोगस्य विरच्यते ॥ ३ ॥
टीकामभिनवां रम्यां 'ज्योत्स्नां' च 'सरलां' तथा ।
करोति स्पष्टबोधार्थं मालवीयः सुधाकरः ॥ ४ ॥

कविकुलमूर्धन्यः कविताकामिनीहासो महाकविर्भासो मध्यमव्यायोगाभिधाने रूपके निर्विघ्नपरिसमाप्तिसूचिकायाः पूर्वरङ्गप्रधानाङ्गायाः नान्द्याः समनन्तरं सूत्रधारस्य प्रवेशं सूचयति—नान्द्यन्त इत्यादिना । नान्द्यन्ते नन्दिरानन्दः; तस्या इयं नान्दी नाम नाटकप्रयोगारम्भे देवतापरिषदानन्दार्थमभिनयप्रारम्भसूचनार्थं च सम्पाद्यमाना वादित्र क्रियोच्यते[1] । तस्या नान्द्या अन्ते अवसाने नान्दीसमाप-नानन्तरमित्यर्थः । ततः तदनन्तरं गीतादिक्रियापरिसमाप्त्यव्यवहितोत्तरकाले

[नान्दीपाठ के अन्त में सूत्रधार का प्रवेश]

१. नान्दीलक्षणं यथा—आशीर्वचनसंयुक्ता स्तुतिर्यस्मात् प्रयुज्यते ।
देवद्विजनृपादीनां तस्मान्नान्दीति संज्ञिता ॥
सा० द० ६. २४ ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सूत्रधारः—

पायात् स वोऽसुरवधूहृदयावसादः
पादो हरेः कुवलयामलखड्गनीलः ।
यः प्रोद्यतस्त्रिभुवनक्रमणे[1] रराज
वैदूर्यसङ्क्रम[2] इवाम्बरसागरस्य ॥ १ ॥

इत्यर्थः । सूत्रधारः—सूत्रं प्रयोगानुष्ठानं धारयति निर्वाहयतीति सूत्रधारः ।[3] प्रविशति रङ्गम् ।

प्रवेशानन्तरं सर्वकार्यकारित्वात् नाटकस्य प्रधानभूतः सूत्रधार आशीर्वाद-पुरःसरं मङ्गलमातनोति पायादिति । असुरवधूहृदयावसादः=असुरवधूनाम् असुरस्त्रीणां हृदयस्य अवसादः दुःखकरः, विषादप्रदो वा, तद्भर्तृविध्वंसनेन । कुवलयामलखड्गनीलः=कुवलयामलः नीलोत्पलविशुद्धः खड्गनीलः असिवच्छ्यामश्च, कुवलयं नीलोत्पलम् अमलखड्गो मलापेतोऽसिः तद्वन्नील इति वा । हरेः=वामनरूपेणावतीर्णस्य, सः प्रसिद्धः पादः=चरणः; वः=युष्मान् रङ्गस्थान्; पायात्=रक्षेत् । प्रकृतरूपकप्रयोगप्रेक्षणरूपाभीष्टसिद्ध्या योजयेदित्यर्थः । तच्छब्देन निर्दिष्टस्य पादस्य विशेषमाह—यः=पादः । त्रिभुवनक्रमणे=लोकत्रयमाने, महाबल्याख्यासुरस्य निग्रहार्थं क्रियमाणे सकलभुवनमाने—इत्यर्थः । प्रोद्यतः=ऊर्ध्वलोकमानार्थं प्रकर्षेणोत्क्षिप्तः सन् । अम्बरसागरस्य=गगनरूपस्य समुद्रस्य । वैदूर्यसंक्रम इव=वैदूर्येण स्वच्छनीलवर्णयुतेन मणिविशेषेण निर्मितः संक्रमः सेतुः इव । 'संक्रमो दुर्गसञ्चरः' इत्यमरः' । रराज=शुशुभे । अत्र 'कुवलयाम-

---

सरला

सूत्रधार—भगवान् विष्णु [का वामन अवतार] का वह चरण आप की रक्षा करे, जो असुरों की पत्नियों के हृदय में विषाद उत्पन्न करने वाला, नीले कमल के समान निर्मल तथा कृपाण के समान श्याम वर्ण एवं तीनों लोकों को नापने के लिए प्रकृष्ट रूप से उठाया गया [जो चरण] आकाश रूपी समुद्र में वैदूर्यमणि से निर्मित सेतु के समान सुशोभित हुआ ॥ १ ॥

---

१. भुवनैकमणे—इति वा पाठः । २. वैडूर्य—इति वा पाठः ।
३. तल्लक्षणं यथा—नाट्यस्य यदनुष्ठानं तत् सूत्रं स्यात् सबीजकम् ।
रङ्गदैवतपूजाकृत् सूत्रधार उदीरितः ॥ ना० शा०

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एवमार्यमिश्रान् विज्ञापयामि। अये किन्नु खलु मयि विज्ञापनव्यग्रे शब्द इव श्रुयते। अङ्ग! पश्यामि।

लखड्गनीलः' इति लुप्तोपमा, अम्बरसागरस्य [अम्बरमेव सागरः] इति रूपकम्, तथा वैदूर्यसंक्रम इवेत्युत्प्रेक्षा अलङ्काराः। वसन्ततिलकावृत्तमिदम्। तल्लक्षणं तु—'ज्ञेया वसन्ततिलका तभजा जगौ गः' ॥ १ ॥

अन्वय—हरेः सः पादः वः पायात् यः असुरवधूनां हृदयाऽवसादः, कुवलयामलखड्गनीलः, त्रिभुवनक्रमणे प्रोद्यतः अम्बरसागरस्य वैदूर्यसंक्रम इव रराज।

पदार्थ—हरेः=भगवान् विष्णु का [वामनावतार वाला], सः=वह प्रसिद्ध, पादः=पैर, वः=आप [सहृदय सामाजिक] लोगों की; पायात्=रक्षा करे; यः=जो; असुरवधूनां=दैत्यराज [बलि] की पत्नियों के; हृदयाऽवसादः=हृदय में विषाद पैदा करने वाला; कुवलय-अमल-खड्ग नीलः=नीले कमल के समान निर्मल तथा कृपाण के समान श्यामल; त्रिभुवनक्रमणे=तीनों लोकों को मापने के लिए; प्रोद्यतः=प्रकृष्ट रूप से उठाया गया; अम्बरसागरस्य=आकाशरूपीसमुद्र के; वैदूर्य-संक्रम इव=वैदूर्यमणि से निर्मित सेतु के समान; रराज=शोभित हो रहा है ॥ १ ॥

एवमाशिषाभिमुखीकृत्य सामाजिकान् नाटकस्य कथावस्त्वंशं विज्ञापयति—एवमित्यादिना। एवम्=अनेन वक्ष्यमाणेन प्रकारेण। आर्यमिश्रान्=आर्याः सभ्याः मिश्राः पूज्याः, आर्याश्च मिश्राश्च आर्यमिश्रास्तान्। 'मिश्र' शब्दश्च आदरार्थकः। पूज्या माननीया इत्यर्थः। यद्यपि आर्यशब्देनैव भावोऽयं व्यज्यते तथापि 'द्वौ नमौ प्रकृतार्थं द्रढयतः' इतिवत् आर्यमिश्रशब्दौ सम्यक् आदरातिशयं द्योतयतः। विज्ञापयामि=सूचयामि। अये इत्यव्ययमाश्चर्ये विषादे वा। अये इति विज्ञापनाभङ्गेनोत्पन्नं विषादम्। अकस्माच्छब्दश्रवणेन संजातमाश्चर्यं वा द्योतयति। किन्नु खलु=नु इति वितर्के, किं कारणम्। मयि विज्ञापनव्यग्रे=विज्ञापनव्यासक्तचित्ते विज्ञाप्यबोधनार्थमुद्यते। 'व्यग्रो व्यासक्त आकुले' इत्यमरः। 'यस्य च भावेन भावलक्षणम्' पा० सू० २.३.३७ इति भावे सप्तमी।

इस प्रकार मैं आप महानुभावों को सूचित करता हूँ। अरे, सूचना देने में व्यस्त मुझको यह कैसा शब्द-सा सुनाई दे रहा है। अच्छा देखूँ तो।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(नेपथ्ये)

भोस्तात ! को नु खल्वेषः ।

सूत्रधारः—भवतु, विज्ञातम् ।

भोः शब्दोच्चारणादस्य ब्राह्मणोऽयं न संशयः ।
त्रास्यते निर्विशङ्केन केनचित् पापचेतसा ॥ २ ॥

शब्द इव=अनिश्चितरूपः शब्दः, इवपदस्यानिश्चयार्थत्वात् नेपथ्यगतशब्दस्यास्फुटत्वाच्च । श्रूयते=कर्णगोचरीभवति । 'अङ्ग' इति सम्बोधने सम्भ्रमे वा । 'स्युः पाट्प्याडङ्गहैहेभोः' इत्यमरः । तच्च सामाजिकविषयम् । पश्यामि= 'कुतोऽयं किमर्थश्च शब्दोऽयम्' इति परीक्ष्य ज्ञास्यामि । नेपथ्यम्=जवनिकान्तर्भागो नटप्रसाधनस्थलं वा 'कुशीलवकुटुम्बस्य स्थलं नेपथ्यमुच्यते' इत्युक्तलक्षणत्वात् । शब्दस्याकारमाह—भोस्तातेति । भोः=इति विषादे । हे तात !=पितः; एषः=सन्निकृष्टो विषादोत्पादकः पुरुषः । भवतु विज्ञातम्=शब्दस्य यथार्थस्वरूपः ज्ञात इत्यर्थः । 'कस्य वाऽयं शब्दः, किमर्थं वा प्रयुज्यते' इति संदेहः सर्वथैव निवृत्तः ।

यत्खलु ज्ञातं तदेव कथयति—भोःशब्देत्यादिना । अस्य=भोस्तातेत्यादि वदतः पुरुषस्य । भोःशब्दोच्चारणाद्=भोःशब्दस्य विषादार्थस्य उद्घोषणात् । विज्ञातम्=नेपथ्ये श्रूयमाणस्य शब्दस्य निमित्तम् । तदेव विवृणोति—अयं ब्राह्मणः =सन्निकृष्टः किन्तु अग्रचरो विप्रः । निर्विशङ्केन=निर्भयेन, पापचेतसा=पापं दुरिताभिनिवेशि चेतो हृदयं यस्य तेन तथाभूतेन दुष्कृतात्मनेत्यर्थः । केनचित्=अज्ञातेन पुंसा, त्रास्यते=भीष्यते । न संशयः=नास्त्यत्र सन्देह लेशोऽपि । अनुष्टुप् छन्दः । तल्लक्षणं तु—'श्लोके षष्ठं गुरु ज्ञेयं सर्वत्र लघु पञ्चमम् । द्विचतुष्पादयोर्ह्रस्वं सप्तमं दीर्घमन्ययोः ॥' इति । अनुष्टुप् छन्दः श्लोकपदेनापि व्यवह्रियते ॥ २ ॥

(नेपथ्य में)

हे तात ! यह कौन है ?

सूत्रधार—अच्छा समझ गया ।

इसके 'भोः' इस शब्द के उच्चारण से 'यह ब्राह्मण है'—इसमें कोई सन्देह नहीं है । यह ब्राह्मण किसी निर्भय और दुष्कृतात्मा के द्वारा डराया जा रहा है ॥ २ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(पुनः नेपथ्ये)

भोस्तात ! को नु खल्वेषः ।

सूत्रधारः—हन्त, दृढं विज्ञातम् । एष खलु पाण्डवमध्यमस्यात्मजो हिडिम्बारणिसम्भूतो राक्षसाग्निरकृतवैरं ब्राह्मणजनं वित्रासयति । भोः ! कष्टं कष्टं खलु पत्नीसुतपरिवृतस्य वृत्तान्तः[1] । अत्र हि,

---

अन्वय—अस्य 'भोः, [इति], शब्दोच्चारणात् अयं ब्राह्मणः, [इत्यत्र], न, संशयः । [अयं] केनचित् निर्विशङ्केन, पापचेतसा, त्रास्यते ॥ २ ॥

पदार्थ—अस्य=इसके, भोः [इति] शब्दोच्चारणात्='भोः' इस शब्द के उच्चारण से, अयम्=यह, ब्राह्मणः=ब्राह्मण है, [इत्यत्र] न संशयः=इस विषय में कोई सन्देह नहीं है । [अयम्=यह ब्राह्मण] केनचित् निर्विशङ्केन=किसी निर्भय, पापचेतसा=और दुष्कृतात्मा के द्वारा, त्रास्यते=भयभीत कराया जा रहा है ॥ २ ॥

शब्दस्य कारणं ज्ञात्वा सूत्रधारः तद्विषयं विवृणोति—हन्तेत्यादिना । हन्तेति विषादे । दृढम्=सम्यक् । विज्ञातम्=शब्दनिमित्तम् अवगतमित्यर्थः । एष खल्वित्यादिवाक्येन विशेषाकारविवरणम् । पाण्डवमध्यमस्य=पाण्डवेषु पञ्चसु मध्यमस्य भीमसेनस्य । यद्यपि भीमार्जुननकुलास्त्रयोऽपि मध्यमाः, तथापि तेषु प्राथम्याद् भीमसेन इह मध्यमो गृह्यते । हिडिम्बारणिसम्भूतः=हिडिम्बा तदभिख्या राक्षसी, अरणिः तत् स्वरूपायाः तस्याः सम्भूतः । राक्षसाग्निः=राक्षस एवाग्निः, संतापकत्वात् । स च घटोत्कचः । अकृतवैरम्=अकृतविरोधम्, निरपराधमित्यर्थः । वृत्तान्तः=दशा ॥

(पुनः नेपथ्य में)

हे तात ! यह कौन है ?

सूत्रधार—ओह ! वस्तुतः अब मैं समझ गया । निश्चय ही यह पाण्डवों में मध्यम [भीम] का पुत्र, हिडिम्बा रूपी अरणि से निकला हुआ अग्नि रूप राक्षस [घटोत्कच] है जो ऐसे ब्राह्मण जन को संत्रस्त कर रहा है जिन्होंने उससे कभी भी द्वेष नहीं किया । ओह ! कष्ट है, स्त्री एवं बच्चों से घिरे हुए इस दीन ब्राह्मण के हाल पर अत्यन्त कष्ट है । क्योंकि यहाँ—

---

१. कष्टं····वृत्तान्तः—क्वचित् पुस्तके नास्ति ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitized by eGangotri

[1]श्रान्तैः सुतैः परिवृतस्तरुणैः सदारो[2]
वृद्धो द्विजो निशिचरानुचरः स[3] एषः ।
[4]व्याघ्रानुसारचकितो वृषभः सधेनुः
सन्त्रस्तवत्सक इवाकुलतामुपैति ॥ ३ ॥

श्रान्तैरिति । श्रान्तैः=वनाध्वसञ्चारखिन्नैः । तरुणैः=युवभिः; सुतैः=तनयैः; परिवृतः; सदारः=सकलत्रः, वृद्धः=स्थविरः, निशिचरानुचरः=निशिचरो राक्षसः अनुचरः अनुगन्ता यस्य सः, तथाभूतः स एषः द्विजः=ब्राह्मणः । व्याघ्रानुसारचकितः=व्याघ्रः हिंस्रपशुविशेषः, तस्यानुसरणेन अनुगमनेन चकितः त्रस्तः । सधेनुः=धेनुर्नवप्रसूता गौः तया सहितः । सन्त्रस्तवत्सकः=सम्यक् त्रस्तः भीतः वत्सको यस्य सः । स्वार्थे कन् । वृषभ इव=महोक्ष इव । आकुलताम्=उद्विग्नत्वम्, उपैति=प्राप्नोति । उपमालङ्कारः । वसन्ततिलकावृत्तम् ॥ ३ ॥

अन्वय—तरुणैः, श्रान्तैः, सुतैः, सदारैः, परिवृतः, निशिचरानुचरः; एषः, सः, वृद्धः, द्विजः सन्त्रस्तवत्सकः सधेनुः व्याघ्रानुसारचकितः, वृषभः, इव, आकुलताम्, उपैति ॥ ३ ॥

पदार्थ—तरुणैः=युवक, श्रान्तैः=थके हुए; सुतैः=पुत्रों, सदारैः=और पत्नी से, परिवृत्तः=घिरे हुए, निशिचरानुचरः=राक्षस से अनुगम्यमान, एषः सः=वह यह, वृद्धः द्विजः=बुड्ढा ब्राह्मण, सन्त्रस्तवत्सकः=भयभीत छोटे छोटे बछड़ों और; सधेनुः=गाय से युक्त, व्याघ्रानुसारचकितः=चीते के आक्रमण से सम्भ्रान्त, वृषभः इव=बैल के समान, आकुलताम्=व्याकुलता को, उपैति=प्राप्त हो रहा है ॥ ३ ॥

युवक एवं डरे हुए पुत्रों और पत्नी से घिरे हुए राक्षस से अनुगम्यमान यह वृद्ध ब्राह्मण, भयभीत छोटे बछड़ों और गाय से युक्त व्याघ्र के आक्रमण; से डरे हुए बैल के समान, व्याकुलता को प्राप्त हो रहा है ॥ ३ ॥

---

१. श्रान्तैः—इति वा पाठः । २. सदारैः—इति वा पाठः ।
३. सरोषः—इति वा पाठः ।
४. ०नुसारचरितो, नुचारचकितो इति वा पाठौ ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

. CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(निष्क्रान्तः)

स्थापना

(ततः प्रविशति सुतत्रयकलत्रपरिवृतः वृद्धः ब्राह्मणः पृष्ठतो घटोत्कचश्च ।)

[1]वृद्धः—भोः ! को नु खल्वेषः,

[2]तरुणरविकरप्रकीर्णकेशो

निष्क्रान्तः=निर्गतः सूत्रधारः ॥

स्थापनेति । स्थापना=प्रस्तावना आमुखं वा । वस्तुतः स्थापकाभिधेन सूत्रधारसहायकेनेदं कर्तव्यम् । कव्यार्थस्य स्थापनात् स्थापकः । तेन च स्थापकेन यत्र कथावस्तु बीजं पात्रं वा स्थाप्यते सा स्थापना । अत्र च तत्कार्यं सूत्रधारेणैव निर्वाहितम् ।

प्रविशतीति । सूत्रधारोद्दिष्टानां पात्राणां प्रवेशः सूच्यते । रङ्गमिति शेषः । घटोत्कचेनानुयातः सपुत्रकलत्रः सन्त्रस्तः वृद्धः ब्राह्मणः प्रविशति । 'घटोत्कच' इत्यभिधानं महाभारते एवं व्याख्यातम्—'घटो हास्योत्कच [ह अस्य उत्कचः] इति माता तं प्रत्यभाषत, अब्रवीत्तेन नामास्य घटोत्कच इति स्मह ॥[3] अर्थात् उत्कचः केशरहितः घटः शिरो यस्य सः घटोत्कचः ॥

तरुणेति । तरुणरविकरप्रकीर्णकेशः=तरुणस्य अप्रौढस्य बालस्येति यावत् । रवेः सूर्यस्य कराः किरणा इव प्रकीर्णाः असंयतप्रसारिताः केशाः यस्य सः । भ्रुकुटिपुटोज्ज्वलपिङ्गलायताक्षः=भ्रुकुट्याः यः पुटः भङ्गी तेन उज्ज्वले दीप्ते पिङ्गले कपिले आयते दीर्घे च अक्षिणी यस्य सः । सकण्ठसूत्रः=कण्ठ-

---

(सब चले जाते हैं)

स्थापना ।

(इसके बाद तीन पुत्र एवं पत्नी से परिवृत वृद्ध ब्राह्मण प्रवेश करता है । साथ ही पीछे से घटोत्कच भी आ जाता है ।)

वृद्ध (ब्राह्मण)—ओह ! यह कौन है ?

तरुण सूर्य को किरणों की भाँति बिखरे बालों वाला, भ्रुकुटि की भंगी से दीप्त व पीले रंग की आँखों वाला, कण्ठसूत्र से युक्त, विद्युत् युक्त मेघ के

---

१. ब्राह्मणः—इति वा पाठः । २. अरुण० इति वा पाठः ।

३. द्र० महाभारत : आदि पर्व १५५.३८ ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भ्रुकुटिपुटोज्ज्वलपिङ्गलायताक्षः ।
सतडिदिव घनः सकण्ठसूत्रो
युगनिधने प्रतिमाकृतिर्हरस्य ॥ ४ ॥
प्रथमः—भोस्तात ! को नु खल्वेषः ।
ग्रहयुगलनिभाक्षः पीनविस्तीर्णवक्षाः

सूत्रेण कण्ठधार्येण स्वर्णाभरणविशेषेण सहितः । सतडिदिव घनः=विद्युत्सहितो मेघ इव स्थितः । श्यामत्वात् मेघसाम्यम् । कण्ठसूत्रस्य हिरण्मयत्वात् तडित्-साम्यम् । युगनिधने=युगसंहारे, प्रवृत्तस्येति शेषः । हरस्य=विश्वसंहरणशील-स्य रुद्रस्य, प्रतिमाकृतिः=प्रतिमाकृतिस्वरूपः भीषणत्वात् । एषः=सन्निकृष्टः पुरुषः, को नु खलु ? उपमालङ्कारः । पुष्पिताग्रा वृत्तम् । तल्लक्षणं तु='अयुजि न युगरेफतो यकारो युजि च नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा' ॥ ४ ॥

[ब्राह्मण के द्वारा राक्षस के स्वरूप का चित्रण इस प्रकार प्रस्तुत है–]

अन्वय—तरुण–रवि–कर–प्रकीर्ण–केशः, भ्रुकुटिपुटोज्ज्वलपिङ्गलायताक्षः, सकण्ठसूत्रः, सतडित्, इव, घनः युगनिधने, हरस्य, प्रतिमाकृतिः ॥ ४ ॥

पदार्थ—तरुणः=अप्रौढ़, रविः कर इव=सूर्य की किरणों की भाँति; प्रकीर्णः केशः=बिखरे हुए बालों वाला; भ्रुकुटिपुटोज्ज्वलपिङ्गलायताक्षः=भ्रुकुटि की भङ्गी से उज्ज्वल और कपिल वर्ण के दीर्घ नेत्रों वाले, सकण्ठसूत्रः=कण्ठसूत्र से युक्त, सतडित् इव घनः=विद्युत् युक्त मेघ के समान स्थित, युग-निधने=युग के संहार में प्रवृत्त, हरस्य=भगवान् शङ्कर के, प्रतिमाकृतिः=प्रति कृति रूप में (यह पुरुष कौन है) ? ॥ ४ ॥

भीतः तत्सुतोऽपि आत्मप्रतिक्रियां विज्ञापयति ग्रहेत्यादिना । ग्रहयुगल-निभाक्षः=ग्रहयुगलनिभे औज्ज्वल्याद् युगलयोः सूर्यचन्द्रयोः[1] तुल्ये नयने यस्य सः ।

समान स्थित, युग के संहार में प्रवृत्त भगवान् शङ्कर की प्रतिकृति रूप (यह पुरुष कौन है ?) ॥ ४ ॥

प्रथम (पुत्र)—हे तात । वस्तुतः यह है कौन ?

(सूर्य एवं चन्द्र रूप) ग्रह–युगल के समान आँखों वाले, स्थूल एवं विशाल

---

१. द्र० 'नेत्रे चन्द्रदिवाकरौ' अभिषेकनाटके ६.३० ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कनककपिलकेशः[1] पीतकौशेयवासाः ।
तिमिरनिवहपर्णः पाण्डरोद्वृत्तदंष्ट्रो
नव इव जलगर्भो लीयमानेन्दुलेखः ॥ ५ ॥

द्वितीयः—क एष भोः !

पीनविस्तीर्णवक्षाः=पीनं पीवरं विस्तीर्णं च वक्ष उरः यस्य सः । कनककपिलकेशः=स्वर्णपिङ्गलकेशः, स्वर्णम् इव कपिलाः पिङ्गलाः केशाः कुन्तलाः यस्य सः । पीतकौशेयवासाः=पीतं हरिद्रावर्णं कौशेयवासः क्षौमवस्त्रं यस्य सः, धूतपीतवस्त्र इत्यर्थः । तिमिरनिवहवर्णः=तमःपुञ्जश्यामः । पाण्डरोद्वृत्तदंष्ट्रः[2]=पाण्डरे शुक्ले उद्वृत्ते उत्क्षिप्ते दंष्ट्रे राजदन्तपार्श्वस्थौ दन्तौ यस्य सः । सन्निहितविशेषणद्वयश्चयामुपमामाह—लीयमानेन्दुलेखः=लीयमाना संश्लिष्यन्ती इन्दुलेखा चन्द्रलेखा यस्मिन् सः । तादृशो नवः=नूतनः, श्याम इति यावत् । जलगर्भ इव=जलयुक्तमेव इत्र स्थितः । 'तडित्पतिः पयोगर्भो नदनुर्मुदिरोऽम्बुभृद्'—इति वैजयन्ती । एष 'को नु खलु' इति ब्राह्मणपुत्रस्यापि जिज्ञासा । उपमालंकारः । मालिनीवृत्तम् । तल्लक्षणं तु—'ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः' ॥ ५ ॥

[राक्षस के स्वरूप को पिता से सुनकर पुत्र भी अपनी अनुभूति इस प्रकार व्यक्त करता है—]

अन्वय—ग्रहयुगलनिभाक्षः, पीनविस्तीर्णवक्षाः, कनककपिलकेशः पीतकौशेय-वासाः, तिमिर-निवह-वर्णः, पाण्डरोद्वृत्तदंष्ट्रः, लीयमान-इन्दु-लेखः, नवजलगर्भः, इव, [भाति] ॥ ५ ॥

पदार्थ—ग्रह-युगल-निभाक्षः=(सूर्य और चन्द्र रूप) ग्रह-युगल के समान

वक्षस्थल वाले, स्वर्ण के समान पीले केशों वाले, पीत एवं रेशमी वस्त्र पहने हुए अन्धकार के समान वर्ण वाले (उस राक्षस) के अत्यन्त धवल और बाहर निकले हुए दाँत—चन्द्रकला जिसमें अन्तर्भूत हो रही हो, ऐसे नवीन मेघों के समान (प्रतीत हो रहे) हैं ॥ ५ ॥

द्वितीय (पुत्र)—ओ ! यह कौन है ?

---

१. कमलकपिशकेशः इति वा पाठः । अत्र कपिशशब्दः कृष्णपीतवाची ।

२. द्र० 'उद्वृत्तदंष्ट्रः' अभिषेकनाटके १-१३ । 'उद्वृत्तं स्यात् त्रिषूत्क्षिप्ते' इति मेदिनी ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitized by eGangotri

कलभदशनदंष्ट्रो लाङ्गलाकारनासः
करिवरकरबाहुर्नीलजीमूतवर्णः ।
हुतहुतवहदीप्तो यः स्थितो भाति भीम-
स्त्रिपुरपुरनिहन्तुः शङ्करस्येव रोषः ॥ ६ ॥

आँखों वाला, पीन–विस्तीर्ण–वक्षाः=स्थूल एवं विशाल वक्षस्थल वाला, कनक-कपिल–केशः=स्वर्ण के समान पीले केशों वाला, पीत–कौशेय–वासाः=पीला एवं रेशमी वस्त्र पहने हुए, तिमिर–निवह–वर्णः=अन्धकार के समान वर्ण वाले (उस राक्षस के); पाण्डरोद्वृत्तदंष्ट्रः=अत्यन्त धवल और बाहर निकले हुए दाँत; लीयमान–इन्दु–लेखः=चन्द्रकला जिसमें निमज्जित हो रही हो ऐसे, नवः=नवीन, जलगर्भः इव [भाति]=मेघसमूह के समान (प्रतीत हो रहे हैं ॥ ५ ॥

कलभेति । कलभदशनदंष्ट्रः=कलभदशनौ करिशावकस्य दन्ताविव दंष्ट्रे यस्य सः । लाङ्गलाकारनासः=वक्राग्रत्वात् लाङ्गलाकारा इव हलसमानाकारा नासिका यस्य सः । करिवरकरबाहुः=करिवरकर इव गजश्रेष्ठशुण्डेव बाहुर्यस्य सः । नीलजीमूतवर्णः=नीलस्य जीमूतस्य मेघस्येव वर्णो यस्य सः । 'घनजीमूत-मुदिरजलमुग्धुमयोनयः' इत्यमरः । एष क इति द्वितीय पुत्रस्य जिज्ञासा । हुतहुतवहदीप्तः=हुतो दत्ताज्याद्याहुतिः अर्थात् सविशेषणं प्रदीप्तः इत्यर्थः, एवं-भूतो हुतवहः हुतं देवान् प्रति वहतीति हुतवहः=अग्निरिव दीप्तः प्रज्वलितः । अतएव भीमः=भयंकरः । स्थितः=गमननिवृत्तः । यः पुरो दृश्यमानः; त्रिपुरपुरनिहन्तुः=त्रिपुरासुरनगरध्वंसिनः (इदं विशेषणं रोषतीव्रत्वसूचकम्), शङ्करस्य=हरस्य, रोष इव=कोप इव; भाति=शोभते । उपमालंकारः । मालिनीवृत्तम् ॥ ६ ॥

अन्वय—कलभ–दशन–दंष्ट्रः, लाङ्गल–आकार–नासः, करि–वर–कर–

हाथी के बच्चे के दाँतों के समान दाँतों वाला, हल के आकार के सदृश नाक वाला, मत्त हाथी के सूँड़ के समान भुजाओं वाला, नीले मेघ के समान वर्ण वाला, यज्ञाग्नि के समान प्रज्ज्वलित-सा जो [राक्षस]—त्रिपुर नामक दैत्य के शरीर का हनन करने वाले भगवान् शंकर के भयंकर क्रोध के समान उपस्थित सा प्रतीत हो रहा है [यह कौन है ?] ॥ ६ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

तृतीयः—भोस्तात ! को नु खल्वयमस्मान् पीडयति ।
वज्रपातोऽचलेन्द्राणां श्येनः सर्वपतत्त्रिणाम् ।
मृगेन्द्रो मृगसङ्घानां मृत्युः पुरुषविग्रहः ॥ ७ ॥
ब्राह्मणी—अय्य ! को एसो अम्हाअं सन्दावेइ ।
(आर्य ! क एषोऽस्मान् सन्तापयति)

वाहुः नील–जीमूत–वर्णः, हुत–हुतवह–दीप्तः, यः, त्रिपुरपुरनिहन्तुः शंकरस्य, भीमः, रोषः, इव, स्थितः, भाति ॥ ६ ॥

पदार्थ—कलभ–दशन–दंष्ट्रः=हाथी के बच्चे के दाँतों के समान दाँतों वाला, लाङ्गल–आकार–नासः=हल के आकार के सदृश नाक वाला, करि–वर-कर–वाहुः=मत्त गज के सूँड़ के समान [लम्बी] भुजाओं वाला, नील-जीमूत–वर्णः=नीले मेघ के समान वर्ण वाला, हुत–हुतवह-दीप्तः=यज्ञ की अग्नि के समान प्रज्ज्वलित, यः=जो [राक्षस], त्रिपुर–पुर–निहन्तुः=त्रिपुर नामक राक्षस के शरीर का हनन करने वाले, शंकरस्य=भगवान् शंकर के, भीमः=भयंकर, रोषः इव=क्रोध के समान, स्थित=उपस्थित-सा, भाति=प्रतीत हो रहा है ॥६॥

संत्रस्तः तृतीयः पुत्रोऽपि आत्मप्रतिक्रियां प्रदर्शयति—वज्रेत्यादिना । अचलेन्द्राणां=गिरिवराणाम् । वज्रपातः=कुलिशपातः, कुलिशो यथा पर्वत-भेदनशक्तस्तथायमपीत्यर्थः । सर्वपतत्त्रिणां=सर्वपक्षिणाम् । श्येन=पक्षिविशेषः, यः महतोऽपि पक्षिणो विनाशयति, घातकत्वात् तत्तुल्यः । मृगसंघानाम्=पशुसमूहानां कृते, मृगेन्द्रः=सिंहः । अतएव, पुरुषविग्रहः=धृतपुरुषशरीरः; मृत्युः=यमराज एव; अयम्=एष पुरः स्थितः 'को नु अस्मान् पीडयति' इति । रूपकालङ्कारः । अनुष्टुप् छन्दः ॥ ७ ॥

[तृतीय पुत्र अपनी संभावना इस प्रकार प्रकट कर रहा है—]

अन्वय—[अयम्] अचलेन्द्राणां, [कृते], वज्रपातः, सर्वपतत्त्रिणां[कृते] श्येनः, मृगसङ्घानां [कृते] मृगेन्द्रः, [एवं] पुरुषविग्रहः, मृत्युः, इव दृश्यते ॥७॥

तृतीय (पुत्र)—हे तात ! यह कौन है, जो हम लोगों को कष्ट दे रहा है। यह गिरिराजों के लिए वज्रपात-सा, सभी पक्षियों के लिए बाज-सा और मृगसमूह के लिए सिंह-सा मानव शरीर धारण कर [साक्षात्] यमराज के समान [दिखाई पड़ रहा] है ॥ ७ ॥

ब्राह्मणी—आर्य ! यह कौन है जो हम लोगों को सन्तप्त कर रहा है ?

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

घटोत्कचः—भो ब्राह्मण ! तिष्ठ तिष्ठ ।

किं यासि मद्भयविनाशितधैर्यसारो
वित्रस्तदारसुतरक्षणहीनशक्ते ! ।
तार्क्ष्याग्रपक्षपवनोद्धतरोषवह्नि-
तीव्रः कलत्रसहितो भुजगो यथार्तः ॥ ८ ॥

पदार्थ—[अयम्=यह राक्षस], अचलेन्द्राणां [कृते]=गिरिराजों के लिए, वज्रपातः=वज्राघात, सर्वपतत्रिणां [कृते]=सभी पक्षियों के लिए, श्येनः=बाज, मृगसङ्घानां [कृते]=मृगसमूह [अर्थात् पशुमात्र] के लिए, मृगेन्द्रः [एव]=सिंह ही, [एवं] पुरुषविग्रहः=इस प्रकार मानवशरीर धारण करके [साक्षात्]; मृत्युः [एव]=यमराज ही के समान [दृश्यते=दिखाई पड़ रहा है] ॥ ७ ॥

घटोत्कच उद्धतवदाह— किं यासीत्यादिना । वित्रस्तदारसुतरक्षणहीनशक्ते ! =वित्रस्तानां विशेषेण भीतानां दारसुतानां कलत्रपुत्राणां, रक्षणे हीना क्षीणा शक्तिः सामर्थ्यं यस्य सः, तत्सम्बुद्धौ । मद्भयविनाशितधैर्यसारः=मत्सकाशाद् भयं मद्भयं, तेन विनाशितः, धैर्यस्य सारः बलं यस्य सः । आर्तः=पीडितः । तार्क्ष्याग्रपक्षपवनोद्धतरोषवह्नितीव्रः=तार्क्ष्यस्य गरुडस्य, तृक्षस्य नाम कश्यपस्य मुनेः अपत्यं पुमान् तार्क्ष्यः, तस्य अग्रपक्षपवनेन पक्षाग्रजनितेन वातेन, उद्धतः संवर्धितः यो रोषवह्निः कोपाग्निः, तेन तीव्रः, तीक्ष्णः । कलत्रसहितः भुजगो यथा=सर्प इव । किं यासि=कथम् अपसर्पसि, मा यासीत्यर्थः । अत्र गरुडागमनत्रस्तभुजगोपमया ब्राह्मणपरिवारस्यापि विनाशस्यावश्यंभावित्वं सूच्यते । उपमालंकारः । वसन्ततिलका वृत्तम् ॥ ८ ॥

अन्वय—तार्क्ष्याग्रपक्ष-पवनोद्धत-रोष-वह्निः तीव्रः कलत्रसहितः आर्तः

[क्रोधाभिभूत घटोत्कच उन्हें रोकता हुआ कहता है—]

घटोत्कच—हे ब्राह्मण ! ठहरो, ठहरो ।

गरुड़ के पंख के अग्रभाग से उठी हुई वायु से प्रचण्ड क्रोधाग्नि वाला एवं उत्तेजित व सपत्नीक एवं दीन सर्प जिस प्रकार जाता है उसी प्रकार विशेष रूप से भयभीत स्त्री एवं पुत्रों की रक्षा में असमर्थ (हे ब्राह्मण) मेरे भय से विशेष रूप से नष्ट हुए धैर्य एवं बल वाले [तुम] क्यों जा रहे हो ? ॥ ८ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भो ब्राह्मण ! न गन्तव्यं न गन्तव्यम् ।

वृद्धः—ब्राह्मणि ! न भेतव्यं, पुत्रकाः ! न भेतव्यम् । सविमर्शा ह्यस्य वाणी ।

घटोत्कचः—भोः ! कष्टम् । [स्वगतम्]

जानामि सर्वत्र सदा च नाम
द्विजोत्तमाः पूज्यतमाः पृथिव्याम् ।

भुजगः यथा [अपयाति तथा] वित्रस्तदार-सुत-रक्षण-हीन-शक्ते, मत्-भय-विनाशित-धैर्य-सारः [त्वं] किं यासि ॥ ८ ॥

पदार्थ—तार्क्ष्याग्र-पक्ष-पवनोद्धत-रोष-वह्नि-तीव्रः=गरुड के पंख के अग्रभाग से उठी हुई वायु से प्रचण्ड क्रोधाग्नि वाला एवं उत्तेजित, कलत्र-सहितः=सपत्नीक, आर्तः=दीन, भुजगः यथा=सर्प जिस प्रकार, [अपसर्प=जाता है, तथा=उसी प्रकार] वित्रस्त-दार-सुत-रक्षण-हीन-शक्ते=विशेष रूप से भयभीत, स्त्री एवं पुत्रों की रक्षा में क्षीण सामर्थ्य वाले [हे ब्राह्मण ?], मत्-भय-विनाशित-धैर्य-सारः=मेरे भय से विशेष रूप से नष्ट हुए धैर्य एवं बल वाले [त्वम्=तुम], यासि=क्यों जा रहे हो ? ॥८॥

विमर्श—तृक्ष अर्थात् कश्यप मुनि की सन्तान होने से गरुड तार्क्ष्य कहलाए । 'भीत्रार्थानां भयहेतुः' इस सूत्र से भय के हेतु 'मत्' में पञ्चमी हुई है ।

निवारितमपि गमनाद् अनिवर्तमानं ब्राह्मणं सोपलम्भमाह—भो ब्राह्मणे—त्यादिना । न गन्तव्यम्=नापसर्तव्यम् । न भेतव्यम्=अयमुत्कटमनर्थ-मुत्पादयिष्यति इति भयं ते मा भूत्-इत्यर्थः । हि=यस्मात् कारणात् । अस्य=उद्धतस्यापि राक्षसस्य, वाणी=वचनम्; सविमर्शा=विमर्शः साध्वसाधुविचारः, तदयुक्ता ॥

जानामीति । पृथिव्याम्=भूमण्डले; द्विजोत्तमाः=ब्राह्मणश्रेष्ठाः; सर्वत्र सदा च=सर्वस्मिन् देशे, सर्वस्मिन् काले च; पूज्यतमा=अतिशयेन पूज-नीया एव; जानामि नाम=निश्चयेन उक्तमर्थमहं सम्यग् वेद्मीत्यर्थः । अद्य=

हे ब्राह्मण । मत जाओ, मत जाओ ।

वृद्ध—हे ब्राह्मणी हमें डरना नहीं चाहिए, मत डरो मेरे पुत्रो, क्योंकि इसकी वाणी विमर्श युक्त मालूम पड़ती है ।

घटोत्कच—ओह ! बड़ा कष्ट है ।

यद्यपि श्रेष्ठ ब्राह्मण, पृथ्वी पर सर्वदा और सभी स्थान पर अत्यन्त पूज-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अकार्यमेतच्च मयाद्य कार्यं
मातुर्नियोगादपनीतशङ्कम्[1] ॥ ९ ॥

वृद्धः—ब्राह्मणि ! किं न स्मरसि तत्रभवता जलक्लिन्नेन

इदानीम्; मया=घटोत्कचेन; एतत् अकार्यम्=इदं गर्हितं कर्म, अर्थात् वक्ष्यमाण-वृद्धब्राह्मणकुटुम्बेष्वन्यतमस्य मातुराहारार्थं नयनम्, मातुः=मज्जनन्याः; नियोगात्=निदेशात्; अपनीतशङ्कम्=निःशङ्कं यथा भवति तथा; कार्यं च=कर्तव्यं च, चशब्दस्तुल्यकालयोगे । इत्थं द्विजोत्तममाहात्म्यज्ञानसमकालमेव द्विजोत्तमनिधनानुकूलं मया चेष्टितव्यम् इत्यहो वैकल्यम्—इति भावः । उपजातिः । सा चेयमुपजातिरिन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रा संमिश्रता । तल्लक्षणञ्च—"स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः" । 'उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ' । 'अनन्तरोदीरितलक्ष्मभाजौ पादौ यदीयावुपजातयस्ताः' ॥ ९ ॥

[प्रस्तुत श्लोक में ब्राह्मणवध से सम्भावित शोक और घटोत्कच की मातृभक्ति दिखाई गई है—]

अन्वय—[यद्यपि] द्विजोत्तमाः, पृथिव्यां, सदा, च, पूज्यतमाः [भवन्ति इति अहं] जानामि, नाम, [तथापि] मातुः नियोगात् अपनीतशङ्कम्, अद्य, मया, एतत् अकार्यम् [अपि] कार्यम् ॥ ९ ॥

पदार्थ—[यद्यपि] द्विजोत्तमाः=यद्यपि श्रेष्ठ ब्राह्मण, पृथिव्याम्=पृथ्वी पर, सदा सर्वत्र च=सर्वदा और सभी स्थान पर, पूज्यतमाः=अत्यन्त पूजनीय [भवन्ति—इति अहं=होते हैं=यह मैं] जानामि नाम=निश्चित रूप से जानता हूँ, [तथापि=फिर भी], मातुः=माता के, नियोगात्=आदेश से, अपनीतशङ्कम्=शङ्का को छोड़कर अर्थात् निःशंक होकर । अद्य=आज, मया=मुझको, एतत् अकार्यम् [अपि]=इस अकरणीय कार्य को [भी], कार्यम्=करना है ॥ ९ ॥

ब्राह्मणीति । जलक्लिन्नेन=तन्नाम्ना मुनिना । अनपेतराक्षसम्=अन-

---

नीय [होते] हैं—[यह मैं] निश्चित रूप से जानता हूँ । [तथापि] माता के आदेश से निःशंक होकर आज इस अकरणीय कार्य को [भी] करना है ॥ ९ ॥

वृद्ध—हे ब्राह्मणी ! क्या तुम्हें याद नहीं है कि पूजनीय जलक्लिन्न मुनि ने कहा था कि—'यह वन [सर्वथा] राक्षसों से विहीन नहीं है । अतः बड़ी

---

१. 'अपनीय शङ्कम्' इति वा पाठः ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मुनिनोक्तम्—अनपेतराक्षसमिदं वनमप्रमादेन गन्तव्यमिति । तदेवोत्पन्नं भयम् ।

ब्राह्मणी—किं दाणि अय्यो मज्झत्थवण्णो विअ दिस्सदि ।

(किमिदानीमार्यो मध्यस्थवर्ण इव दृश्यते) ।

वृद्धः—किं करिष्यामि मन्दभाग्यः ।

ब्राह्मणी—णं विक्कोसामो । (ननु विक्रोशामः) ।

प्रथमः—भवति ! कस्य वयं विक्रोशामः ।

इदं हि शून्यं तिमिरोत्करप्रभै-
र्नगप्रकारैरवरुद्धदिक्पथम् ।
खगैर्मृगैश्चापि समाकुलान्तरं

पेताः अहीनाः राक्षसाः यस्मात् तत् राक्षसयुतं वनम् । अप्रमादेन=अवधानेन गन्तव्यम् । तदेव भयम्=जलक्लिन्नवचनतर्कितं राक्षसभयमेव; उत्पन्नम्=उपस्थितम् । [1]मध्यस्थवर्ण इव=उदासीन इव दृश्यते भवान्; गणपतिशास्त्रिमहोदयेनायं शब्दः द्विधा व्याख्यातः (क) मध्यस्थः त्रिषु वर्गेषु मध्यगतो वर्णः, अर्थात् क्षत्रियः, स इव धीरव्यवहारित्वात् । (ख) अथवा मध्यस्थस्य उदासीनस्येव वर्णश्छाया यस्य सः । उपस्थितविपत्प्रतीकारयत्नाकरणात् ॥

इदं हीति । तिमिरोत्करप्रभैः=तिमिरस्य उत्कराः स्तोमाः राशयः तेषां प्रभा इव प्रभा येषाम्, तमस्तोमश्यामैरित्यर्थः । नगप्रकारैः=विविधैः वृक्षैः विभिन्नप्रकारैः पर्वतैर्वा । अवरुद्धदिक्पथम्=उपरुद्धदिङ्मार्गम्; वृक्षसंकुलत्वात् अस्मिन् वने दिङ्मार्गो न दृश्यते; आवृतः पन्था यस्मिन् तत् वनमित्यर्थः । खगैः=

सावधानी से जाना चाहिए ।' [जो कहा था] वही भय सामने उपस्थित हो गया है ।

ब्राह्मणी—किंकर्तव्यविमूढ़ से आप इस समय क्यों दिखाई दे रहे हैं ?

वृद्ध—मैं भाग्यहीन क्या कर सकता हूँ ?

ब्राह्मणी—हम लोग [सहायता के लिए] क्यों न ? चिल्लाएँ ।

प्रथम (पुत्र)—माँ हम किसे बुलावें ?

क्योंकि, यह वन अत्यन्त सूना है, बड़े-बड़े वृक्षों [अथवा पर्वतों की शृङ्खला] के कारण पुञ्जीभूत अन्धकार की प्रभा से [यहाँ] दिशाओं के रास्ते रोक

---

१. तु० 'तथापि वयमत्र मध्यस्थाः' शाकु० ५.११ ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वनं निवासाभिमतं मनस्विनाम् ॥ १० ॥

वृद्धः—ब्राह्मणि ! न भेतव्यं, न भेतव्यम् । मनस्विजननिवास-

पक्षिभिः, मृगैः=पशुभिश्च; समाकुलान्तरम्=सम्यक् रूपेण आकुलं परिपूर्णम् अन्तरम् अन्तरालम् यस्य; व्याप्तावकाशमित्यर्थः । तादृशं, इदं हि=पुरो दृश्यमानं वनम्=अरण्यम्; शून्यम्=निर्जनम्; मनस्विनाम्=प्रशस्तमनस्कानां मुनीनामिति यावत्; तपोबलादियोगात् मनसः प्राशस्त्यम् । निवासाभिमतम्=निवासाय अभिमतम् इष्टम् । अतः अस्मद् विक्रोशध्वनिः तु अरण्यरोदनमेव स्यात् । काव्यलिङ्गालंकारः । वंशस्थवृत्तम् । तल्लक्षणं तु—'जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ' ॥ १० ॥

[प्रस्तुत श्लोक में प्रथम पुत्र के द्वारा यह बतलाया जा रहा है कि यहाँ चिल्लाना बेकार है; क्योंकि—]

अन्वय—हि; इदं, वनं, शून्यम् । तिमिरोत्कर-प्रभैः, नगप्रकारैः, अवरुद्धदिक्पथम्, अपि, च, खगैः, मृगैः समाकुलान्तरम्, वनं मनस्विनाम्, निवासाभिमतम् ॥ १० ॥

पदार्थ—हि इदं=क्योंकि यह, वनम्=जङ्गल, शून्यम्=अत्यन्त सूना है । तिमिर-उत्कर-प्रभैः=पुञ्जीभूत अन्धकार की प्रभा से, नगप्रकारैः=एवं बड़े वृक्षों [अथवा पर्वतों की शृङ्खला] से, अवरुद्धदिक्पथम्=दिशाओं के पथ रोक दिए गए हैं । अपि च=और, खगैः मृगैः च=पशु और पक्षियों से, समाकुल अन्तरम्=[इस जङ्गल का] अन्तराल सम्यक् रूप से घिरा हुआ है [अतः हम लोगों की आवाज यहाँ कौन सुनेगा ? अर्थात् यहाँ चिल्लाना अरण्यरोदन ही होगा] [इस प्रकार का यह वन तो] मनस्विनाम्=तपस्वियों के ही निवासाभिमतम्=निवासयोग्य है ॥ १० ॥

विमर्श—'समर्थनीयस्यार्थस्य काव्यलिङ्गं समर्थनम्' इस लक्षण से यहाँ काव्यलिङ्ग अलङ्कार है ॥ १० ॥

दिए गए हैं, और पशु एवं पक्षियों से [इस जङ्गल का] अन्तराल सम्यक् रूप से घिरा हुआ है, यह तो तपस्वियों के ही निवास के योग्य है । [अतः हम लोगों की आवाज यहाँ कौन सुनेगा ?] ॥ १० ॥

वृद्ध—हे ब्राह्मणी ! मत डरो, मत डरो । यह वन मनस्वियों के निवास योग्य है—ऐसा सुनकर मेरा भय चला-सा गया है । मैं सोचता हूँ कि पाण्डवों

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

योग्यमिति श्रुत्वा विगत इव मे सन्त्रासः। शङ्के नात्रातिदूरेण[1] पाण्डवाश्रमेण भवितव्यम्। पाण्डवास्तु,

युद्धप्रियाश्च शरणागतवत्सलाश्च
दीनेषु पक्षपतिताः कृतसाहसाश्च।
एवंविधप्रतिभयाकृतिचेष्टितानां
दण्डं यथार्हमिह धारयितुं समर्थाः॥ ११॥

एतादृशानां निग्रहे सक्षमाः पाण्डवा अस्मान् रक्षितुं समर्था इत्यभिप्रायेणाह—पाण्डवास्तु, युद्धेति। पाण्डवाः=भीमसेनप्रमुखाः पञ्चपाण्डवाः, प्रकृत्या युद्धप्रियाः=रणरसिकाः, शरणागतवत्सलाः=शरणागतेषु जनेषु वत्सलाः स्निग्धाः; दीनेषु=आर्तजनेषु; पक्षपतिताः=पक्षपातिनः; कृतसाहसाश्च=कृतम् असकृत् प्रदर्शितं साहसं यैस्ते; एवंविधप्रतिभयाकृतिचेष्टितानाम्=एतदराक्षस-सदृशानां[2]प्रतिभयाकृतिचेष्टितानां भयंकराकारचरितानां दुर्वृत्तजनानामित्यर्थः। 'दारुणं भीषणं भीष्मं घोरं भीमं भयानकम्। भयंकर प्रतिभयम्' इत्यमरः। तेषां यथार्हं=यथोचितम्; दण्डं धारयितुम्=नियमनं कर्तुम्; समर्थाः=शक्ताः सन्तीति शेषः। एतादृशभयंकराकृतीनां निग्रहे पाण्डवाः समर्थाः। परिकरालंकारः। वसन्ततिलकावृत्तम्॥ ११॥

[प्रस्तुत श्लोक में वृद्ध के द्वारा पाण्डवों की शरणागतवत्सलता का प्रतिपादन हो रहा है—]

अन्वय—[पाण्डवाः तु] युद्धप्रियाः, च, शरणागतवत्सलाः; दीनेषु, पक्षपतिताः, कृतसाहसाश्च। इह, एवंविध–प्रतिभय-आकृति–चेष्टितानां, यथार्हम्, दण्डं, धारयितुं, समर्थाः [सन्ति]॥ ११॥

का आश्रम यहाँ से बहुत दूर नहीं होना चाहिए, और पाण्डव तो—'बड़े ही युद्धप्रिय हैं और शरण में आए हुए मनुष्यों पर दया करने वाले हैं। असहायों की सहायता करने वाले हैं और साहस-कर्मी [भी] हैं। [अतः] यहाँ पर इस प्रकार के भयङ्कर आकृति वाले एवं क्रूर कार्य करने वालों को यथोचित दण्ड देने में [वे] समर्थ [हैं]॥ ११॥

---

१. 'न चातिदूरेण' इति वा पाठः।

२. द्र० 'प्रतिभयमध्युषितास्यरण्यवासम्' स्वप्न० ६. १।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizaqtion by eGangotri

प्रथमः—भोस्तात ! न तत्र पाण्डवा इति मन्ये ।

वृद्धः—पुत्र ! कथं त्वं जानीषे ।

प्रथमः—श्रुतं मया तस्मादाश्रमादागतेन केनचिद् ब्राह्मणेन कथितं—शतकुम्भं नाम यज्ञमनुभवितुं महर्षेर्धौम्यस्याश्रमं गता इति ।

वृद्धः—हन्त, हताः स्मः ।

प्रथमः—तात ! न तु सर्व एव । आश्रमपरिपालनार्थमिह स्थापितः किल मध्यमः ।

वृद्धः—यद्येवं, सन्निहिताः सर्वे पाण्डवाः ।

पदार्थ—[पाण्डवाः, तु=पाण्डव तो] युद्धप्रियाः=बड़े ही युद्धप्रिय हैं; च=और, शरणागतवत्सलाः=शरण में आए हुए जन पर दया करने वाले हैं। दीनेषु=असहायों का, पक्षपतिताः=पक्षपात करने वाले हैं, कृतसाहसाश्च= और साहसी कर्मों को करने वाले हैं, इह=यहाँ पर, एवंविधम्=इस प्रकार के, प्रतिभय-आकृति-चेष्टितानाम्=भयङ्कर स्वरूप और [क्रूर] कर्म करने वालों को, यथार्हम्=यथोचित, दण्डं धारयितुम्=दण्ड देने में, [ते] समर्थाः [सन्ति]=[वे] समर्थ हैं ॥ ११ ॥

विमर्श—साभिप्राय विशेषण होने से यहाँ परिकरालङ्कार है ।

शतकुम्भं नाम यज्ञम्=श्रौतादियागेषु नास्य नाम पठ्यते । हन्तेति विषादे । हताः=आत्मरक्षां प्रति भग्नाशा इत्यर्थः । इह=आश्रमे । मध्यमः=

प्रथम (पुत्र)—हे तात ! मेरा अनुभव है कि पाण्डव आश्रम में नहीं हैं।

वृद्ध—तुम कैसे यह जानते हो ?

प्रथम (पुत्र)—वहाँ से आते हुए किसी ब्राह्मण से हमने सुना है कि—वे शतकुम्भ नामक यज्ञ में सम्मिलित होने के लिए महर्षि धौम्य के आश्रम पर गए हैं।

वृद्ध—ओह ! हम लोग मारे गए ।

प्रथम (पुत्र)—हे तात ! वे सब [वहाँ] तो नहीं गए हैं। [जैसा कि हमने सुना है] आश्रम के परिपालनार्थ मध्यम पाण्डव [भीम] नियुक्त किये गए हैं।

वृद्ध—यदि ऐसा है [तो] सभी पाण्डव उपस्थित ही हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रथमः—स चाप्यस्यां वेलायां व्यायामपरिचयार्थं विप्रकृष्टदेशस्थ इति श्रूयते।

वृद्धः—हन्त, निराशाः स्मः। भवतु, पुत्र! व्यपश्रयिष्ये[1] तावदेनम्।

प्रथमः—अलमलं परिश्रमेण।

वृद्धः—पुत्र! निर्वेदप्रत्यर्थिनी खलु प्रार्थना। भवतु, पश्यामस्तावत्। भोः पुरुष! अस्त्यस्माकं मोक्षः?

घटोत्कचः—मोक्षोऽस्ति समयतः।

वृद्धः—कः समयः?

घटोत्कचः—अस्ति मे तत्रभवती जननी। तयाऽहमाज्ञप्तः—पुत्र! ममोपवासनिसर्गार्थमस्मिन् वनप्रदेशे कश्चिन्मानुषः [2]परिमृग्यानेतव्य इति। ततो मयाऽऽसादितो भवान्।

मध्यमपाण्डवो भीमसेनः। अस्यां वेलायाम्=एतस्मिन् समये; व्यायामपरिचयार्थम्=व्यायामो मल्लव्यापारः, तस्य परिचयोऽभ्यासो दैनन्दिनमनुष्ठानं, तदर्थम्। विप्रकृष्टदेशस्थः=स्वाश्रमविदूरप्रदेशगतः; "स्याद् दूरं विप्रकृष्टम्" इत्यमरः। व्यपश्रयिष्ये=प्रार्थयिष्ये; वि+अप+आ+श्रि+लृट्; निर्वेदप्रत्यर्थिनी=विरागो निर्यत्नत्वं वा, तस्य प्रत्यर्थिनी विरोधिनी खलु प्रार्थना। उपवासनिसर्गार्थम्=उपवासस्य निसर्गः उत्सर्गः, तदर्थम्, उपवासाङ्गभूत-

---

प्रथम (पुत्र)—[किन्तु हमने] यह भी सुना है कि—इस समय वे भी व्यायाम करने के लिए कहीं दूर चले गए हैं।

वृद्ध—ओह! हम लोगों को अब कोई आशा नहीं है। ठीक है, बेटा, तब हम इसी से अनुनय विनय करें।

प्रथम (पुत्र)—नहीं, परिश्रम करना व्यर्थ है।

वृद्ध—हे पुत्र! प्रार्थना शान्ति की अभिलाषा से होगी। अच्छा, तो देखा जाय। हे पुरुष! हम लोगों के छुटकारे का क्या कोई उपाय भी है?

घटोत्कच—हाँ! एक शर्त पर छुटकारा हो सकता है।

वृद्ध—क्या शर्त है?

घटोत्कच—मेरी पूजनीया माता हैं। उन्होंने यह आदेश दिया है कि—

---

१. 'व्यपाश्रयिष्ये' इति वा पाठः। २. 'प्रतिगृह्या०' इति वा पाठः।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पत्न्या चारित्रशालिन्या द्विपुत्रो मोक्षमिच्छसि ।
बलाबलं परिज्ञाय पुत्रमेकं विसर्जय ॥ १२ ॥

वृद्धः—हं भो राक्षसापसद ! किमहमब्राह्मणः ?

पारणार्थमित्यर्थः । समयः=शपथः; 'समयः शपथाचारः कालसिद्धान्तसंविदः' इत्यमरः ।

शपथस्य प्रकारं प्रदर्शयति–पत्न्येत्यादिना । त्वं यदि, चारित्रशालिन्या= पतिव्रतया धर्मपत्न्या सह; द्विपुत्रः=पुत्रद्वयविशिष्टः; मोक्षम्=मद्धस्तात् मोचनम्, इच्छसि=अभिलषसि । तर्हि त्रिषु अन्यतमम् एकं पुत्रम्; बलाबलम्= बलाबले, 'विप्रतिषिद्धं चानधिकरणवाचि' (पा० सू० २.४.१४) इति विकल्पाद् द्वन्द्वैकवद्भावः । तेषां प्रियत्वम्, रक्षणीयत्वम् अरक्षणीयत्वं वा; परिज्ञाय=पर्यालोच्य; विसर्जय=परित्यज, मह्यम् अर्पय इत्यर्थः । एवं 'पुत्रमेकमुत्सृजन्तं द्विपुत्रं पत्न्या सह त्वां मोचयिष्ये इति समयः । अनुष्टुप् वृत्तम् ॥१२॥

अन्वय—[हे वृद्ध !] चारित्रशालिन्या, पत्न्या [सह], द्विपुत्रः [यदि मत्तः], मोक्षम्, इच्छसि, [तर्हि] बलाबलं, परिज्ञाय, एकं, पुत्रं, विसर्जय ॥१२॥

पदार्थ—[हे वृद्ध !], चारित्रशालिन्या पत्न्या=सदाचारी और शीलवती पत्नी [और], द्विपुत्रः=दो पुत्रों के सहित [यदि मत्तः=यदि मुझसे] मोक्षम् इच्छसि=मुक्ति की इच्छा रखते हो, [तर्हि=तो], बलाबलम्=योग्य और अयोग्य का, परिज्ञाय=विचार करके, एकं पुत्रम्=एक पुत्र को, विसर्जय= छोड़ दो ॥ १२ ॥

राक्षसापसद=राक्षसेषु मध्ये हीन !; हे नीचराक्षस ! वृद्धोऽहं श्रुत-

---

'हे पुत्र ! इस वनप्रदेश से मेरे उपवास की पारणा के लिए किसी मनुष्य को खोजकर लाओ ।' तभी आप मेरे द्वारा आक्रमित हुए हैं । अतः—

[हे वृद्ध !] सदाचारी एवं शीलवती पत्नी और दो पुत्रों के सहित [यदि मुझसे] मुक्ति की इच्छा रखते हो [तो], योग्य और अयोग्य का विचार करके एक पुत्र को छोड़ दो ॥ १२ ॥

वृद्ध—ओह ! हे दुष्ट राक्षस ! क्या मैं ब्राह्मण नहीं हूँ ?

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ब्राह्मणः[1] श्रुतवान् वृद्धः पुत्रं शीलगुणान्वितम् ।
पुरुषादस्य दत्त्वाहं कथं निर्वृतिमाप्नुयाम् ॥ १३ ॥

घटोत्कचः—

यद्यर्थितो द्विजश्रेष्ठ ! पुत्रमेकं न मुञ्चसि ।
सकुटुम्बः क्षणेनैव विनाशमुपयास्यसि ॥ १४ ॥

वृद्धः—एष एव मे निश्चयः—

वान्=श्रुतं शास्त्रं तद्वान्, शास्त्रज्ञः । शीलगुणान्वितम्=शीलरूपगुणेन समन्वितम्; पुत्रम्=तनयम् 'आत्मस्तनयस्सूनूः सुतः पुत्रः' इत्यमरः । पुरुषादस्य=पुरुषं नरम् अत्ति खादतीति पुरुषादः तस्य नरभक्षकस्य राक्षसस्य दत्त्वा =अर्पयित्वा; कथम्=केनोपायेन; निर्वृतिम्=सुखम्; आप्नुयाम्= लभेय । अनुष्टुप् वृत्तम् ॥ १३ ॥

अन्वय—[हे राक्षस !] अहम्, वृद्धः, श्रुतवान्, ब्राह्मणः, शीलगुणान्वितम्, पुत्रं, पुरुषादस्य, दत्त्वा, कथम्, निर्वृतिम् आप्नुयाम् ॥ १३ ॥

पदार्थ—[हे राक्षस !] अहम्=मैं, वृद्धः=बुड्ढा [अर्थात् बुजुर्ग], श्रुतवान्=शास्त्रज्ञ, ब्राह्मणः=ब्राह्मण होकर, शीलगुणान्वितम्=शील और गुण से युक्त, पुत्रम्=पुत्र को, पुरुषादस्य=मानव-भक्षी राक्षस को, दत्त्वा=देकर, कथम्=किस प्रकार, निर्वृतिम्=मुक्ति को, आप्नुयाम्=प्राप्त करूँगा ॥ १३ ॥

हे द्विजश्रेष्ठ !=द्विजेषु विप्रेषु श्रेष्ठः पूज्यतमः तत् सम्बुद्धौ, प्रशस्य श्रः, यदि=चेत्; अर्थितः=मया याचितः सन्; एकम्=त्रिषु अन्यतमम् एकम्; पुत्रम्=तनयम्; न मुञ्चसि=न अर्पयसि; तर्हि, सकुटुम्बः=परिवार-सहितः; पुत्रकलत्रोपेतः, क्षणेनैव=झटिति; विनाशम्=विनष्टो भविष्यसि; उपयास्यसि=प्राप्स्यसे । अनुष्टुप् वृत्तम् ॥ १४ ॥

[हे राक्षस] मैं बुजुर्ग और शास्त्रज्ञ ब्राह्मण होकर शील एवं सब गुण से युक्त पुत्र को नरभक्षी [राक्षस] को देकर किस प्रकार मुक्ति प्राप्त करूँगा ? ॥१३॥

घटोत्कच—हे श्रेष्ठ ब्राह्मण ! यदि माँगे हुए एक पुत्र को नहीं छोड़ दोगे [तो] क्षण में ही सपरिवार विनाश को प्राप्त हो जाओगे ॥ १४ ॥

वृद्ध—[ठीक है] मेरा भी यही निश्चय है कि—

---

१. 'किमहम्' इति वा पाठः ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कृतकृत्यं शरीरं मे परिणामेन जर्जरम् ।
राक्षसाग्नौ सुतापेक्षी होष्यामि विधिसंस्कृतम् ॥ १५ ॥
ब्राह्मणी—अय्य ! मा मा एवं । पदिमत्ताधम्मिणी पदिव्वदत्ति

अन्वय—हे द्विजश्रेष्ठ ! यदि, अर्थितः, एकम्, पुत्रम्, न, मुञ्चसि, (तर्हि) क्षणेनैव, सकुटुम्बः, विनाशम्, उपयास्यसि ॥ १४ ॥

पदार्थ—हे द्विजश्रेष्ठ=हे ब्राह्मणों में श्रेष्ठ ! [अर्थात् पूज्यतम ब्राह्मण] यदि=यदि, अर्थितः=याचित [माँगे हुए], एकम्=एक, पुत्रम्=पुत्र को, न मुञ्चसि=नहीं छोड़ दोगे, [तर्हि=तो], क्षणेनैव=क्षणमात्र में, सकुटुम्बः=परिवार के सहित, विनाशम्=विनाश को; उपयास्यसि=प्राप्त होगे ॥ १४ ॥

कृतेति । सुतापेक्षी=सुतस्य पुत्रस्य अपेक्षा अस्ति यस्य सः, सुतरक्षणार्थी-त्यर्थः । [अहम्] परिणामेन=वृद्धावस्थया, वृद्धत्वस्य परिपाकेन, जर्जरम्=शिथिलम; कृतकृत्यम्=कृतार्थम्, कृतं कृत्यं येन तम्, ऋणत्रयापाकरणरूपः स्वधर्मोऽनुष्ठितो येनेत्यर्थः । विधिसंस्कृतम्=विधिपूर्वकोऽनुष्ठानः संस्कृतं पूतम्, मे=मम वृद्धस्य; शरीरम्=पार्थिवविग्रहम; राक्षसाग्नौ=हविःस्थानीयं स्वशरीरं राक्षसरूपेऽग्नौ, राक्षस एव अग्निः राक्षसाग्निः तस्मिन्; होष्यामि=आहुतिकरिष्यामि । इदं कृतकृत्यं शिथिलं च शरीरं सुतरक्षायै राक्षसमिमं समर्पयिष्यामि । रूपकालङ्कारः । अनुष्टुप् वृत्तम् ॥ १५ ॥

अन्वय—परिणामेन, जर्जरम्, मे, शरीरम्, कृतकृत्यम् । विधिसंस्कृतम्, [शरीरम्] सुतापेक्षी, राक्षसाग्नौ, होष्यामि ॥ १५ ॥

पदार्थ—परिणामेन=आयु बीत जाने से, जर्जरम्=शिथिल, मे शरीरम्=मेरा शरीर, कृतकृत्यम्=कृतार्थ हो चुका है । विधिसंस्कृतम्=अनुष्ठानों से पवित्र [शरीरम्=शरीर को]; सुतापेक्षी=अपने लड़के की रक्षा के लिए; [मैं स्वयं ही] राक्षसाग्नौ=राक्षस की [क्षुधा रूप] अग्नि में; होष्यामि=हवन कर दूँगा ॥१५॥

पतिव्रता=पतिपरायणा; पतिमात्रधर्मिणी=पतिरेव एकमात्र धर्मो यस्याः

आयु के विपरिणाम [बीत जाने] से जर्जर मेरा शरीर कृतार्थ हो चुका है । [अतः] अनुष्ठानों से पवित्र [इस] शरीर को अपने लड़के की रक्षा के लिए राक्षस की [क्षुधा रूप] अग्नि में हवन कर दूँगा ॥ १५ ॥

ब्राह्मणी—हे आर्य ! ऐसा आपको नहीं सोचना चाहिए, क्योंकि पतिव्रता

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

णाम । गहीदफलेण एदिणा सरीरेण अय्यं कुलं अ रक्खिदुमिच्छामि । (आर्य ! मा मैवम् । पतिमात्रधर्मिणी पतिव्रतेति नाम । गृहीतफलेनैतेन शरीरेणार्यं कुलं च रक्षितुमिच्छामि) ।

घटोत्कचः—भवति ! न खलु स्त्रीजनोऽभिमतस्तत्रभवत्या ।

वृद्धः—अनुगमिष्यामि भवन्तम् ।

घटोत्कचः—आः ! वृद्धस्त्वमपसर ।

प्रथमः—भोस्तात ! ब्रवीमि खलु तावत् किञ्चित् ।

वृद्धः—पुत्र ! कथय ।

प्रथमः—

मम प्राणैर्गुरुप्राणानिच्छामि परिरक्षितुम् ।

सा पत्यभावे धर्मविहीनेत्यर्थः । गृहीतफलेन=कृतकार्येण, गृहीतं प्राप्तं फलं पुत्रोत्पादनरूपं प्रयोजनं येन । तथा च महाभारते—

'यदर्थमिष्यते भार्या प्राप्तः सोऽर्थस्त्वया मयि ।
कन्या चैका कुमारश्च कृताहमनृणा त्वया ॥
भुक्ते प्रियाण्यवाप्तानि धर्मश्च चरितो महान् ।
त्वत्प्रसूतिः प्रिया प्राप्ता न मां तप्स्यत्यजीवितम् ॥
(महाभा० बकवधपर्वणि १५८.७,३३)

स्त्रीजनः; न खल्वभिमतः=नैवेष्टः घटोत्कचजनन्या । उक्तं च महाभारते—'अवध्यां स्त्रियमित्याहुर्धर्मज्ञा धर्मनिश्चये ।' (महाभा० अ० १५७.३१)

वृद्धः अस्थिपञ्जरमात्रशरीरस्त्वम् उपवासपारणाय अनुपयुक्तः, अतः, अपसर=इतो दूरं गच्छ ।

पितुर्देहत्यागमसहमानो ज्येष्ठः पुत्रः परिवारस्य परित्राणाय स्वप्राणान् समर्पयन् वदति=ममेत्यादिना । मम=आत्मनः, प्राणैः=जीवनदानेन;

स्त्री के लिए पातिव्रत-धर्म ही सब कुछ है । अतः इस कृतकृत्य शरीर से आर्य और कुल की रक्षा मैं चाहती हूँ ।

घटोत्कच—हे देवि ! किन्तु मेरी पूज्या माँ को स्त्री-अभिप्रेत नहीं है ।

वृद्ध—तो मैं ही आप के साथ अनुगमन करूँगा ।

घटोत्कच—अरे वृद्ध ! तुम अलग हटो ।

प्रथम (पुत्र)—हे तात ! तो मैं कुछ कहना चाहता हूँ ।

वृद्ध—कहो बेटा ।

प्रथम (पुत्र)—मैं अपने प्राणों के द्वारा [माता-पिता] गुरुजनों के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रक्षणार्थं कुलस्यास्य मोक्तुमर्हति मा भवान् ॥ १६ ॥

द्वितीयः—आर्य ! मा मैवम् ।

ज्येष्ठः श्रेष्ठः कुले लोके पितॄणां च सुसंप्रियः ।

ततोऽहमेव यास्यामि गुरुवृत्तिमनुस्मरन्[1] ॥ १७ ॥

गुरुप्राणान्=गुरूणां प्राणान् तान्, गुरोः वृद्धस्य पितुः भवतः प्राणान् असून्; परिरक्षितुम्=परित्रातुम्; इच्छामि । [अतः] भवान्, अस्य, कुलस्य= कुटुम्बस्य; रक्षणार्थम्=परित्राणार्थम्; मां मोक्तुमर्हति=परित्यक्तुं योग्योऽस्ति । मम परित्यागो भवता कर्तव्य इत्यर्थः । अनुष्टुप् वृत्तम् ॥ १६ ॥

अन्वय—मम, प्राणैः, गुरुप्राणान्, परिरक्षितुम्, इच्छामि, [अतः] अस्य, कुलस्य, रक्षणार्थम्, भवान्, मां, मोक्तुम्, अर्हति ॥ १६ ॥

पदार्थ—मम=मेरे, प्राणैः=प्राणों के द्वारा; गुरुप्राणान्=[माता-पिता आदि] गुरुजनों के प्राणों के, परिरक्षितुम्=परित्राण के लिए; इच्छामि=मैं सोचता हूँ । [अतः] अस्य=इसलिए इस; कुलस्य=कुल की; रक्षणार्थम्=रक्षा के लिए; भवान्=आप; मां मोक्तुम्=मुझे छोड़ देने में; अर्हति=समर्थ हैं ॥ १६ ॥

एवं वदन्तं ज्येष्ठं भ्रातरं वारयन् मध्यमः पुत्रः कथयति—ज्येष्ठ इति । लोके=इह संसारे; कुले=वंशे; ज्येष्ठः=अग्रजः; श्रेष्ठः=अतिशयेन प्रशस्यः । गुणवान् ज्येष्ठो लोके पूज्यतमः साधुभिश्चागर्हितो भवति । तथा च मनुः—

'ज्येष्ठः पूज्यतमो लोके ज्येष्ठः सद्भिरगर्हितः ॥' (मनु० ९.१०९)

पितॄणाम्=गुरुजनानाम्; सुसंप्रियश्च=अत्यन्तप्रियः स्नेहपात्रं भवति; अथवा पिण्डदाने अग्रजस्य अधिकारः, अतः अन्यपुत्रापेक्षया प्रियतरः । ततः=तस्मात् कारणात्, तव रक्षणीयत्वादित्यर्थः । अहमेव=मध्यम एव; गुरुवृत्तिम्= ज्येष्ठं प्रति वृत्तिम् आचारम्, अनुस्मरन्=चिन्तयन्; यास्यामि=गमिष्यामि,

---

प्राणों की रक्षा करना चाहता हूँ । इसलिए इस परिवार की रक्षा के लिए मुझे छोड़ देने में आप समर्थ हैं ॥ १६ ॥

द्वितीय (पुत्र)—आर्य ! इस प्रकार न कहें । [क्योंकि—]

ज्येष्ठ पुत्र परिवार में और लोक में सदा श्रेष्ठ [अर्थात् पूज्य] होता है, और माता-पिता को सबसे अधिक प्रिय भी होता है । अतः अपने गुरुजनों के प्रति अपने कर्तव्य का स्मरण करता हुआ मैं [मध्यम पुत्र] ही जाऊँगा ॥१७॥

---

१. 'अनुस्मर' इति वा पाठः ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तृतीयः—आर्यो ! मा मैवम् ।

ज्येष्ठो भ्राता पितृसमः कथितो ब्रह्मवादिभिः ।
ततोऽहं कर्तुमस्म्यर्हो गुरूणां प्राणरक्षणम् ॥ १८ ॥

प्रथमः—वत्स ! मा मैवम् ।

उपवासपारणार्थं राक्षसेन सहेति शेषः । ज्येष्ठो भ्राता विभागाभावेऽनुजान् भ्रातॄन् भक्ताच्छादनादिभिः पितेव बिभृयात् । अनुजाश्च भ्रातरः पुत्रा इव ज्येष्ठे भ्रातरि धर्माय वर्तेरन् । इत्याचारमनुस्मरन् । तथा च मनुः—

'पितेव पालयेत् पुत्रान् ज्येष्ठो भ्रातॄन् यवीयसः ।
पुत्रवच्चापि वर्तेरन् ज्येष्ठे भ्रातरि धर्मतः ॥ (मनु० ९.१०८)

अनुष्टुप् वृत्तम् ॥ १७ ॥

अन्वय—ज्येष्ठः कुले, लोके श्रेष्ठः पितॄणां, च, सुसंप्रियः; ततः गुरुवृत्तिम्, अनुस्मरन्, अहमेव, यास्यामि ॥ १७ ॥

पदार्थ—ज्येष्ठः=ज्येष्ठ पुत्र; कुले=कुल [एवं], लोके=संसार में; श्रेष्ठः=पूज्य होता है । पितॄणां च=और पिता को; सुसंप्रियः=अत्यन्त प्रिय होता है । ततः=इसलिए; गुरुवृत्तिम्=अपने गुरुजनों के प्रति कर्तव्य का; अनुस्मरन्=स्मरण करता हुआ; अहमेव=मैं [मध्यम पुत्र] ही; यास्यामि=जाऊँगा ॥१७॥

कनिष्ठ पुत्रः उभावपि भ्रातरौ वारयन्नाह—ज्येष्ठ इति । ज्येष्ठः भ्राता, पितृसमः=पितृवत् पूजनीयः—इति, ब्रह्मवादिभिः=ब्रह्मज्ञानसम्पन्नैः मन्वादि-धर्मशास्त्रकारैः; कथितः=प्रोक्तः । ततः=तस्मात् कारणात्; गुरूणाम्=अस्मज्ज्येष्ठानाम् 'गुरुस्तु गीष्पतौ श्रेष्ठे'—इत्यमरः । पिता ज्येष्ठौ भ्रातरौ च गुरवः तेषां गुरूणाम्; प्राणरक्षणम्=जीवनस्य परित्राणम्; कर्त्तुम्=सम्पादयितुम् अहं [कनिष्ठः पुत्रः]; अर्हः=सक्षमः; अस्मि । अनुष्टुप् वृत्तम् ॥ १८ ॥

अन्वय—ज्येष्ठः, भ्राता, ब्रह्मवादिभिः, पितृसमः, कथितः । ततः, अहम्, [एव], गुरूणां, प्राणरक्षणम्, कर्त्तुम्, अर्हः, अस्मि ॥ १८ ॥

तृतीय (पुत्र)—आर्य, इस प्रकार न कहें । [क्योंकि—]

ब्रह्मवादियों के द्वारा ऐसा कहा गया है कि—बड़ा भाई पिता के समान होता है । इसलिए मैं ही अपने गुरुजनों की जीवन रक्षा करने में योग्य हूँ ॥ १८ ॥

प्रथम (पुत्र)—वत्स, नहीं, ऐसा नहीं । [क्योंकि—]

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आपदं हि पिता प्राप्तो ज्येष्ठपुत्रेण [1]तार्यते ।
ततोऽहमेव यास्यामि गुरूणां प्राणरक्षणात् ॥ १९ ॥

वृद्धः—ज्येष्ठमिष्टतमं न शक्नोमि परित्यक्तुम् ।

ब्राह्मणी—जह अय्यो जेट्ठमिच्छदि, तह अहं पि कणिट्ठमिच्छामि । (यथार्यो ज्येष्ठमिच्छति, तथाहमपि कनिष्ठमिच्छामि)

द्वितीयः—पित्रोरनिष्टः कस्येदानीं प्रियः ।

पदार्थ—ज्येष्ठः भ्राता=बड़ा भाई, ब्रह्मवादिभिः=[मनु आदि] ब्रह्मवादियों के द्वारा; पितृसमः=पिता के समान, कथितः=कहा गया है । ततः=इसलिए; अहम् [एव]=मैं ही, गुरूणाम्=गुरुजनों [अर्थात् पूज्यों] की; प्राणरक्षणम्=जीवन रक्षा; कर्त्तुम्=करने में; अर्हः=योग्य; अस्मि=हूँ ॥१८॥

प्रथमः पुत्रः कनिष्ठं भ्रातरं वारयन्नाह—आपदमिति । हि=यस्मात् कारणात्; आपदं प्राप्तः=विपत्ति गतः; पिता=जनकः, ज्येष्ठपुत्रेण=ज्येष्ठश्चासौ पुत्रः ज्येष्ठपुत्रः तेन ज्येष्ठपुत्रेण अग्रजेन; तार्यते=पारं नीयते, रक्ष्यत इत्यर्थः । ततः अग्रजेन रक्षणीयत्वात्; गुरूणाम्=पितुः, आदरार्थबहुवचनम्; प्राणरक्षणात्=प्राणरक्षणार्थम्; फलस्य हेतुत्वं विवक्षया पञ्चमी; अहमेव=ज्येष्ठ एव; यास्यामि=गमिष्यामि राक्षसेन सह इति शेषः । अनुष्टुप् वृत्तम् ॥ १९-॥

अन्वय—हि, आपदम्, प्राप्तः पिता, ज्येष्ठपुत्रेण, तार्यते । ततः गुरूणाम्, प्राणरक्षणात्, अहम्, एव, यास्यामि ॥ १९ ॥

पदार्थ—हि=क्योंकि; आपदम्=विपत्ति को; प्राप्तः=प्राप्त; पिता=पिता; ज्येष्ठपुत्रेण=ज्येष्ठपुत्र के द्वारा; [ही विपत्ति से] तार्यते=वारित किए जाते हैं । ततः=इसलिए; गुरूणाम्=पूज्यों की; प्राणरक्षणात्=प्राण-रक्षा के लिए; अहम्=मैं; एव=ही; यास्यामि=जाऊँगा ॥ १९ ॥

जब-पिता विपत्ति में पड़े तो सदा ज्येष्ठ पुत्र ही उनको [विपत्ति से]निवारित करते हैं । इसलिए मैं ही अपने गुरुजनों की प्राण-रक्षा के लिए जाऊँगा ॥ १९ ॥

वृद्ध—ज्येष्ठ पुत्र अत्यन्त प्रिय है, इसलिए उसे मैं नहीं छोड़ सकता ।

ब्राह्मणी—जिस प्रकार आर्य ज्येष्ठ पुत्र को चाहते हैं तो उसी प्रकार मैं भी कनिष्ठ [छोटे] पुत्र को चाहती हूँ ।

द्वितीय (पुत्र)—माता-पिता के द्वारा न चाहा जाकर मुझे यहाँ फिर कौन प्रिय है ।

---

१. 'धार्यते' इति वा पाठः ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

घटोत्कचः—अहं प्रीतोऽस्मि, शीघ्रमागच्छ ।

द्वितीयः—

धन्योऽस्मि यद् गुरुप्राणाः स्वैः प्राणैः परिरक्षिताः ।
बन्धुस्नेहाद्धि महतः [1]कायस्नेहस्तु दुर्लभः ॥ २० ॥

घटोत्कचः—अहो स्वजनवात्सल्यमस्य ब्राह्मणवटोः ।

द्वितीयः—भोस्तात ! अभिवादये ।

कुलरक्षणाय पितृभ्यां राक्षसाय उत्सृष्टो मध्यमः आत्मानं स्तौति—धन्य इत्यादिना । अहम्, धन्योऽस्मि=कृतार्थोऽस्मि । यत्, गुरुप्राणाः, परिरक्षिताः=मया परित्राताः; हि=यतः; महतः=प्रवलात्; बन्धुस्नेहात्=ज्ञातिजनस्नेहात् निमित्तात्; कालस्नेहस्तु=काले मृत्यौ स्नेहः, बन्धुबान्धवस्नेह-निमित्तात् स्वमरणाभिरुचिरित्यर्थः । 'कायस्नेहस्तु दुर्लभः' इति पाठान्तरे स्व-शरीरस्नेहस्तु; दुर्लभः=मनुष्येषु विरलः; एवंविधं दुर्लभत्वं यन्मयाऽवाप्तम् अतो धन्योऽस्मि । अर्थान्तरन्यासालङ्कारः । अनुष्टुप् वृत्तम् ॥ २० ॥

अन्वय—[अहं] धन्यः, अस्मि, यत्, स्वैः, प्राणैः, गुरुप्राणाः, परि-रक्षिताः । हि, महतः, बन्धुस्नेहात्, कायस्नेहः, दुर्लभः ॥ २० ॥

पदार्थ—[अहं=मैं] धन्यः=धन्य; अस्मि=होऊँगा; यत्=कि; स्वैः=अपने; प्राणैः=प्राणों के द्वारा; गुरुप्राणाः=गुरुजनों के प्राणों की; परिरक्षिताः=[मैं] रक्षा कर पाया; हि=क्योंकि महतः=महान्; बन्धुस्नेहात्=बन्धु-बान्धव आदि स्वजनों के प्रेम से; कायस्नेहः तु=शरीर का प्रेम तो; दुर्लभः=बड़े कष्ट से ही प्राप्त होता है । अर्थात् शरीर के प्रेम की अपेक्षा मैं अपने ज्ञातिजन को ज्यादा चाहता हूँ ॥ २० ॥

घटोत्कच—मैं तुमसे प्रसन्न हूँ । शीघ्र आओ ।

द्वितीय (पुत्र)—अवश्य ही मैं भाग्यवान् हूँ, जो अपने प्राणों के द्वारा मैंने गुरुजनों के प्राणों की रक्षा की । बन्धु-बान्धव के महान् प्रेम की अपेक्षा शरीर [अथवा मृत्यु] का स्नेह दुर्लभ होता है ॥ २० ॥

घटोत्कच—अहो ! इस ब्राह्मण वटु का अपने बान्धवों के प्रति कितना गहरा प्रेम है ।

द्वितीय (पुत्र)—हे तात ! मैं प्रणाम करता हूँ ।

---

१. 'कालस्नेहस्तु'—इति वा पाठः ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वृद्धः—एह्येहि पुत्र !

विनिमाय गुरुप्राणान् स्वैः प्राणैर्गुरुवत्सल ! ।
अकृतात्मदुरावापं ब्रह्मलोकमवाप्नुहि ॥ २१ ॥

द्वितीयः—अनुगृहीतोऽस्मि । अम्ब ! अभिवादये ।

ब्राह्मणी—जाद ! चिरं जीव [जात ! चिरं जीव] ।

द्वितीयः—अनुगृहीतोऽस्मि । आर्य ! अभिवादये ।

प्रथमः—एह्येहि वत्स !

राक्षसेन सह प्रस्थानायोद्यतस्य पुत्रस्य अभिवादनानन्तरं वृद्धस्य आशीर्वचनम्-विनिमायेत्यादि । हे गुरुवत्सल =हे गुरुजनानुरागि, गुरुषु वत्सलः भक्तः तत्सम्बुद्धौ; स्वैः प्राणैः=स्वकीयैः प्राणैः असुभिः; गुरुप्राणान्=पूज्यजनजीवनानि तान् विनिमाय =परिवर्त्य, ल्यबन्तप्रयोगः, वि + नि=मेङ् प्रणिदाने, प्रणिदानं विनिमयः . प्रत्यर्पणं च; स्वप्राणविनिमयेन तेषां जीवनरक्षां विधातुमितिभावः । अकृतात्मदुरावापम्=अकृतात्मभिः दुरात्मभिः दुरावापं दुर्लभम् । दुःखेन अवाप्तुं शक्यम्, दुर् + अव + आप्, अनधिगतात्मज्ञानैरित्यर्थः । ब्रह्मलोकम्= ब्रह्मणः लोकं देवलोकविशेषम्; अवाप्नुहि=लभस्व । अनुष्टुप् वृत्तम् ॥२१॥

अन्वय—हे गुरुवत्सल !, स्वैः, प्राणैः, गुरुप्राणान् विनिमाय, अकृतात्म-दुरावापम्, ब्रह्मलोकम्; अवाप्नुहि ॥ २१ ॥

पदार्थ—हे गुरुवत्सल !=हे पूज्य जनों में अनुराग रखने वाले पुत्र, स्वैः प्राणैः=अपने प्राणों के द्वारा; गुरुप्राणान्=अपने पूज्यजनों के प्राण का; विनिमाय=विनिमय (अर्थात् अदला-बदली) करके; अकृतात्मदुरावापम्=अजि-तेन्द्रियों को सर्वथा दुर्लभ; ब्रह्मलोक=स्वर्गलोक को; अवाप्नुहि=प्राप्त करो ॥२१॥

वृद्ध—आओ, आओ, मेरे पुत्र ।

पूज्य जनों के अनुरागी तुमने अपने प्राणों के विनिमय द्वारा गुरुजनों के प्राणों की रक्षा की है । अतः तुम्हें वह ब्रह्मलोक प्राप्त हो जो पापात्माओं को सर्वथा दुर्लभ है ॥ २१ ॥

द्वितीय (पुत्र)—मैं अनुगृहीत हूँ । माँ ! मेरा प्रणाम स्वीकार करें ।

ब्राह्मणी—चिरंजीवी होओ, मेरे पुत्र !

द्वितीय (पुत्र)—मैं अनुगृहीत हूँ । भाई ! मेरा प्रणाम स्वीकार करें ।

प्रथम (पुत्र)—आओ, आओ, मेरे भाई !

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

परिष्वजस्व गाढं मां परिष्वक्तः शुभैर्गुणैः ।
कीर्त्या तव परिष्वक्ता भविष्यति वसुन्धरा ॥ २२ ॥

द्वितीयः—अनुगृहीतोऽस्मि ।

तृतीयः—आर्य ! अभिवादये ।

द्वितीयः—स्वस्ति ।

तृतीयः—अनुगृहीतोऽस्मि ।

द्वितीयः—भोः पुरुष ! किञ्चिद् ब्रवीमि ।

अभिवादनस्य प्रत्युत्तरं प्रथमः सहोदरः यशोलाभाय एवम् अभिवदति—परिष्वजस्वेत्यादिना । शुभैः गुणैः=दयादाक्षिण्यादिभिः शोभनगुणैः; परिष्वक्तः=उपेतः, त्वम्, माम्=ज्येष्ठं सहोदरं; गाढम्=दृढम्; परिष्वजस्व=आलिङ्ग । तव=भवतः; कीर्त्या=कुलरक्षणजन्येन यशसा; वसुन्धरा=वसूनि धारयतीति वसुन्धरा वसुमती पृथ्वी, 'सर्वंसहा वसुमती वसुधोर्वी वसुन्धरा । गोत्रा कुः पृथिवी पृथ्वी' इत्यमरः । परिष्वक्ता=परिव्याप्ता भविष्यति, अतः त्वम्, गाढालिङ्गनयोग्योऽसि । 'ष्वज्' परिष्वङ्गे—इति धातोः अस्मिन् श्लोके अर्थत्रये प्रयोगः, यथा परिष्वजस्व=आलिङ्ग; परिष्वक्तः=उपेतः; परिष्वक्ता=व्याप्ता । अनुप्रासालङ्कारः । अनुष्टुप् वृत्तम् ॥ २२ ॥

अन्वय—शुभैः, गुणैः, परिष्वक्तः, [त्वम्], मां गाढं, परिष्वजस्व । तव, कीर्त्या, वसुन्धरा, परिष्वक्ता, भविष्यति ॥ २२ ॥

पदार्थ—शुभैः गुणैः=[दया-दाक्षिण्य आदि] शोभन गुणों से, परिष्वक्तः=विभूषित [त्वम्=तुम] मां=मुझे, गाढम्=गाढ़ रूप से; परिष्वजस्व=आलिंगित कर लो । तव=तुम्हारे; कीर्त्या=यश से, वसुन्धरा=[सम्पूर्ण] पृथ्वी; परिष्वक्ता=व्याप्त; भविष्यति=होगी ॥ २२ ॥

[दया-दाक्षिण्य आदि] शुभ गुणों से विभूषित तुम मेरा गाढ़ालिंगन करो। तुम्हारी कीर्ति से सम्पूर्ण पृथ्वी व्याप्त होगी ॥ २२ ॥

द्वितीय (पुत्र)—मैं अनुगृहीत हूँ ।

तृतीय (पुत्र)—आर्य ! आपको मेरा प्रणाम है ।

द्वितीय (पुत्र)—तुम्हारा मार्ग प्रशस्त हो ।

तृतीय (पुत्र)—मैं अनुगृहीत हूँ ।

द्वितीय (पुत्र)—महाशय ! आपसे कुछ प्रार्थना करना चाहता हूँ ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

घटोत्कचः—ब्रूहि, ब्रूहि शीघ्रम् ।

द्वितीयः—एतस्मिन् वनान्तरे जलाशय इव दृश्यते । तत्र मे प्रकल्पितपरलोकस्य पिपासाप्रतीकारं करिष्यामि ।

घटोत्कचः—दृढव्यवसायिन् ! गम्यताम् । अतिक्रामति मातुराहारकालः । शीघ्रमागच्छ ।

द्वितीयः—भोस्तात ! एष गच्छामि । (इति निष्क्रान्तः)

वृद्धः—हा हा परिमुषिताः स्मो भोः ! परिमुषिताः स्मः ।

यस्त्रिशृङ्गो मम त्वासीन्मनोज्ञो वंशपर्वतः ।
स मध्यशृङ्गभङ्गेन मनस्तपति मे भृशम् ॥ २३ ॥

मातुः पारणकालातिक्रमो मा भूत्, अतः शीघ्रं ब्रूहि—इति भावः । प्रकल्पितपरलोकस्य=लोकान्तरं प्रस्थातुमुद्यतस्य । पिपासाप्रतीकारम्=पातुमिच्छा पिपासा तस्या प्रतीकारं शान्तिं जलपानमित्यर्थः ।

दृढव्यवसायिन्=दृढः व्यवसायः लोकान्तर-गमनोद्यमो यस्य सः दृढव्यवसायी तस्य सम्बुद्धौ । परिमुषिताः=पुत्रस्य हरणात् परिलुण्ठिताः ।

लुण्ठनजनितमनोव्यथां वृद्धः प्रकाशयति—यस्त्रिशृङ्ग इत्यादिना । यः, मम=स्थविरस्य; त्रिशृङ्गः=त्रीणि शृङ्गाणि पुत्रत्रयरूपाणि शिखराणि यस्य सः, [अतः] मनोज्ञः=हृद्यः; वंशपर्वतः=वंश एव पर्वतः सुप्रतिष्ठत्वात्; आसीत्=अभूत्; सः वंशपर्वतः, मध्यमशृङ्गभङ्गेन=मध्यमपुत्ररूपशृङ्गस्य भङ्गेन पातेन हेतुना; मे मनः=मम मानसम्; 'चित्तं तु चेतो हृदयं स्वान्तं हृन्मानसं मनः' इत्यमरः; भृशम्=अत्यन्तम्; तपति=सन्तापम् अनुभवति । अतः सावयवरूपकालङ्कारः । अनुष्टुप् वृत्तम् ॥ २३ ॥

[वृद्ध पिता अपना खेद इस प्रकार प्रकट करता है—]

अन्वय—यः, तु, मम, मनोज्ञः, वंशपर्वतः त्रिशृङ्गः, आसीत् । सः, मध्यशृङ्ग-भङ्गेन, मे, मनः भृशम्, तपति ॥ २३ ॥

घटोत्कच—कहो, शीघ्र कहो ।

द्वितीय (पुत्र)-इस घने जंगल में मुझे वहाँ जलाशय-सा दिखाई पड़ रहा है । वहाँ मैं परलोक-यात्रा के लिए तैयार होने के लिए अपनी प्यास बुझा लूँ ।

घटोत्कच—हे दृढ निश्चय वाले ! जाओ, क्योंकि मेरी माता के भोजन का समय बीत रहा है । (अतः जाकर) जल्दी आओ ।

द्वितीय (पुत्र)—हे तात ! अब मैं जाता हूँ । (चला जाता है) ।

वृद्ध—हाय, हाय, हम लोग लूट लिए गए; ओह, हम लोग लूट लिए गए ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हा पुत्रक ! । कथं गत एव ।
तरुण ! तरुणतानुरूपकान्ते !
नियमपराध्ययनप्रसक्तबुद्धे ! ।
कथमिह गजराजदन्तभग्न-
स्तरुरिव यास्यसि पुष्पितो विनाशम् ॥ २४ ॥

पदार्थ—यः=जो; मम=मेरा; मनोज्ञ=मनोहर; वंश-पर्वतः=वंशरूपी पर्वत, त्रिशृङ्ग आसीत्=तीन शिखरों वाला था। सः मध्य-शृङ्ग-भङ्गेन=[मध्यमपुत्र रूपी] मध्य शृङ्ग के टूट जाने से; मे मनः=मेरा मन; भृशम्=अत्यन्त; तपति=सन्ताप का अनुभव कर रहा है ॥ २४ ॥

वृद्धः स्वमनोव्यथां ज्ञापयति—तरुणेत्यादिना। हे तरुण=हे युवन्; हे तरुणतानुरूपकान्ते=हे यौवनानुरूपशोभासम्पन्न; तरुणस्य भावः तरुणता तस्याः तरुणतायाः अनुरूपा सदृशी कान्तिः शोभा यस्य तत्संबुद्धौ, नियमपराध्ययनप्रसक्तबुद्धे=हे अध्ययनतत्परमते, नियमपरा व्रतनिरता अध्ययनप्रसक्ता च बुद्धिः यस्य तत्सम्बुद्धौ; इह=वने; गजराजदन्तभग्नः=गजेन्द्रोत्पाटितः; गजानां हस्तियूथस्य राजा स्वामी द्विरदपतिः, तस्य दन्तः रदः तेन भग्नः उत्पाटितः, पुष्पितः=सञ्जातपुष्पः; तरुरिव[1]=वृक्ष इव; कथम्=केन प्रकारेण; विनाशम्=संहारम्; यास्यसि=प्राप्स्यसि। प्रथमचरणे 'तरुण-तरुण०'—इति यमकालङ्कारः। तारुण्यभूषितस्य तनयस्य पुष्पितवृक्षेण सह सादृश्यत्वात् उपमालङ्कारः। पुष्पिताग्रा वृत्तम्। तल्लक्षणं तु—'अयुजि नयुग-रेफतो यकारो युजि च नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा' ॥ २४ ॥

[पिता अपने सन्ताप को इस प्रकार प्रकट करता है—]

अन्वय—हे तरुण, हे तरुणतानुरूप-कान्ते !, नियम-पराध्ययन-प्रसक्तबुद्धे, इह, गजराज-दन्त-भग्नः, पुष्पितः, तरुः, इव, कथम्, विनाशम्, यास्यसि ॥२४॥

पदार्थ—हे तरुण !=हे युवक !, हे तरुणतानुरूप-कान्ते=हे युवावस्था

जो मेरा तीन शिखरों वाला मनोहर वंश रूपी पर्वत था; उसके [मध्यम पुत्र रूपी] मध्य शृङ्ग के टूट जाने से मेरा मन अत्यन्त सन्ताप का अनुभव कर रहा है।

हाय बेटा, क्या तुम चले ही गए।

हे युवक, हे युवावस्था की तरुणाई के अनुरूप कान्ति वाले, हे संयमी एवं निरन्तर अध्ययन में तत्पर चित्त वाले, यहाँ प्रमत्त गजराज के दन्ताघात से भग्न, फूलों से भरे हुए वृक्ष के समान किस प्रकार विनाश को तुम प्राप्त हुए हो ॥ २४ ॥

---

१. तु० 'नागेन्द्रभग्नवनवृक्ष इवावसन्नः' प्रतिमा० ६.४।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

घटोत्कचः—चिरायते खलु ब्राह्मणवटुः। अतिक्रामति मातुराहारकालः। किन्तु खलु करिष्ये। भवतु दृष्टम्। भो ब्राह्मण! आहूयतां तव पुत्रः।

वृद्धः—आः, अतिराक्षसं खलु ते वचनम्।

घटोत्कचः—कथं रुष्यति। मर्षयतु भवान् मर्षयतु। अयं मे प्रकृतिदोषः। अथ किन्नामा तव पुत्रः?

वृद्धः—एतदपि न शक्यं श्रोतुम्।

की तरुणाई के अनुरूप कान्ति वाले!; नियम-पराध्ययन-प्रसक्त-बुद्धे—हे संयमी एवं निरन्तर अध्ययन में तत्पर चित्त वाले!; इह=यहाँ, गजराज-दन्त-भग्नः=प्रमत्त गजराज के दन्ताघात से भग्न; पुष्पित=फूलों से भरे हुए; तरुः=वृक्ष; इव=के समान; कथम्=किस प्रकार; विनाशम्=विनाश को यास्यसि=] तुम] प्राप्त हुए हो ॥ २४ ॥

विमर्श—इस श्लोक में पूर्णोपमा इस प्रकार बन पड़ी है—उपमान के रूप में 'तरु' और उपमेय ब्राह्मण कुमार है। तरुण और पुष्पित का बिम्ब-प्रतिबिम्बभाव ही साधारण धर्म है। अथवा 'विनाशं यास्यसि' भी साधारण धर्म हो सकता है। उपमावाचक शब्द इव है।

चिरायते=विलम्ब्यते, चिरशब्दात् 'लोहितादिडाज्भ्यः क्यष्' (पा० सू० ३-१-१३) इति क्यष्।

अतिराक्षसम्=राक्षसान् अतिक्रान्तम्,=राक्षसोऽपीदृशं क्रूरं वचनं न ब्रूयादिति भावः। रुष्यति=कुप्यति। मर्षयतु=क्षम्यताम्। प्रकृतिदोषः=अनुचितवक्तृत्वं तु मम स्वभावगतदोषः। अथेति प्रश्ने। किन्नामा=किं नाम यस्य सः। तपस्वी=दीनः, 'मध्यम'—इति पितृभ्याम् उपेक्षितत्वात्। सदृशम्=अनुरूपम् ॥

घटोत्कच—ब्राह्मण-बालक तो देर लगा रहा है। माता के आहार का काल व्यतीत हो रहा है। क्या किया जाय? अच्छा समझ गया। हे ब्राह्मण, अपने पुत्र को बुलाओ।

वृद्ध—ओह, तुम्हारी वाणी अत्यन्त रुक्ष है।

घटोत्कच—क्यों रुष्ट हो रहे हैं? आप मुझे क्षमा करें, क्षमा करें। यह मेरा स्वभावगत दोष हैं। किन्तु आपके पुत्र का क्या नाम है?

वृद्ध—यह भी [तुम हमसे] नहीं सुन सकते।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

घटोत्कचः--युक्तम्, भोः ! ब्राह्मणकुमार ! किन्नामा ते भ्राता ?

प्रथमः--तपस्वी मध्यमः ।

घटोत्कचः--मध्यम इति सदृशमस्य । अहमेवाह्वयामि । भो मध्यम ! मध्यम शीघ्रमागच्छ ।

(ततः प्रविशति भीमसेनः)

भीमः-कस्यायं स्वरः ?

खगशतविरुते विरौति तारं
द्रुमगहने दृढसङ्कटे वनेऽस्मिन् ।
जनयति च मनोज्वरं स्वरोऽयं
बहुसदृशो हि धनञ्जयस्वरस्य[1] ॥ २५ ॥

'मध्यम'—इति सम्बोधनशब्दश्रवणानन्तरम्, अहमेवाहूत इति मन्यमानस्य भीमसेनस्य प्रवेशं सूचयति—तत इत्यादिना ।

स्वरसादृश्येन विस्मितस्य भीमसेनस्य कौतूहलं दर्शयति—खगेत्यादिना । खगशतविरुते=पक्षिशतस्य विरुतं शब्दः यस्मिन् (तस्मिन् वने); द्रुमगहने=द्रुमैः वृक्षैः गहने व्याप्ते; दृढसंकटे=भृशंनिबिडे, अतः बाधापन्ने, अस्मिन् वने=अरण्ये, 'अटव्यरण्यं विपिनं गहनं काननं वनम्' इत्यमरः, स्वरोऽयम्=अयं ध्वनिः तारम्=अत्युच्चं यथा भवति तथा; विरौति= शब्दायते । एवमेव, च=तथा, मनोज्वरम्=उत्कण्ठां कौतूहलं वा; जनयति=उत्पादयति; हि=यतः; धनञ्जय-

---

घटोत्कच—ठीक है, हे ब्राह्मण बालक, तुम्हारे भाई का क्या नाम है ?

प्रथम (पुत्र)—दीन मध्यम ।

घटोत्कच-'मध्यम' नाम इसके अनुरूप है । मैं ही बुलाता हूँ । हे मध्यम, हे मध्यम, शीघ्र आओ ।

(उसके बाद भीमसेन प्रवेश करते हैं)

भीम—यह किसका स्वर है ?

सैकड़ों पक्षियों के कलरव से युक्त, अत्यन्त संकटापन्न, अनेक गहन वृक्षों से संकुलित इस वन में उच्च स्वर से [कौन] पुकार रहा है । यह स्वर मेरे मन में अत्यन्त उत्कण्ठा उत्पन्न कर रहा है कि [यह] अर्जुन के स्वर के अत्यन्त समान है ॥ २५ ॥

---

१. 'धनञ्जयस्य शब्दः' इति वा पाठः ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

घटोत्कचः—चिरायते खलु ब्राह्मणवटुः; अतिक्रामति मातुराहारकालः। किन्नु खलु करिष्ये। भवतु, दृष्टम्। उच्चैः शब्दापयामि। भो भो मध्यम! शीघ्रमागच्छ।

भीमः—भोः! को नु खल्वेतस्मिन् वनान्तरे मम व्यायामविघ्नमुत्पाद्य मध्यम! मध्यम! इति मां शब्दापयति। भवतु, पश्यामस्तावत्। (परिक्रम्यावलोक्य सविस्मयम्) अहो दर्शनीयोऽयं

स्वरस्य = अर्जुनस्वरस्य; धनं जयति, अरीन् निर्जित्य अर्जयतीति धनञ्जयः। अस्य निरुक्तिर्यथा महाभारते—

सर्वान् जनपदान् जित्वा वित्तमाश्रित्य केवलम्।
मध्ये धनस्य तिष्ठामि तेनाहुर्मां धनञ्जयम्॥ (४.४२.१३)

बहुसदृशः = अत्यन्तानुकारी, अर्जुनवाण्याः सदृशोऽयं स्वरः इति भावः। अतः स्वबन्धुभावं द्योतयति। स्मरणालंकारः। पृष्पिताग्रा वृत्तम्॥ २५॥

[घटोत्कच के शब्द को सुनकर भीम इस प्रकार की सम्भावना प्रकट करते हैं—]

अन्वय—खग-शत-विरुते, दृढसंकटे, द्रुम-गहने, अस्मिन् वने, तारं, विरौति अयम्, स्वरः, मनोज्वरम्, जनयति हि धनञ्जयस्वरस्य, बहुसदृशः॥ २५॥

पदार्थ—खगशत-विरुते = सैकड़ों पक्षियों की चहचहाहट से युक्त; दृढसंकटे = अत्यन्त संकटापन्न; द्रुमगहने = अनेक गहन वृक्षों से संकुलित; अस्मिन् वने = इस वन में; तारं = उच्च स्वर से; विरौति = पुकार रहा है। अयम्, स्वरः = यह स्वर; मनोज्वरम् = कौतूहल; जनयति = उत्पन्न कर रहा है; हि = कि; धनञ्जयस्वरस्य = [यह] अर्जुन के स्वर के; बहुसदृशः = अत्यन्त समान [अस्ति = है]॥ २५॥

शब्दापयामि = आह्वयामि; शब्दाद् णिच्, पुगागमः। अपाणिनीयोऽयं प्रयोगः। दूराह्वानं तु न भरतसम्मतः, यथा—दूराह्वानं वधो युद्धं राज्यदेशादिविप्लवः।

दर्शनीयः = विशिष्टाकृतित्वात् द्रष्टुं योग्यः॥

घटोत्कच—ब्राह्मण बालक तो देर कर रहा है और, माता के आहार का काल व्यतीत हो रहा है। क्या किया जाय? अच्छा, समझ गया। जोर से बुलाऊँ। हे मध्यम, शीघ्र आओ।

भीम—आह, यह कौन है जो इस गहन वन में मेरे व्यायाम में विघ्न उत्पन्न करके 'मध्यम' 'मध्यम' कहते हुए मुझे बुला रहा है। अच्छा, तो देखूं। (घूमकर और देखकर विस्मय के साथ) अहा, यह पुरुष तो दर्शन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पुरुषः । अयं हि,—

सिंहास्यः सिंहदंष्ट्रो मधुनिभनयनः स्निग्धगम्भीरकण्ठो
बभ्रुभ्रूः श्येननासो द्विरदपतिहनुर्दीप्त[1]विश्लिष्टकेशः ।
व्यूढोरा वज्रमध्यो गजवृषभगतिर्लम्बपीनांसबाहुः
सुव्यक्तं राक्षसीजो विपुलबलयुतो लोकवीरस्य पुत्रः ॥ २६ ॥

घटोत्कचस्य दर्शनीयत्वं वर्णयति—सिंहास्य इत्यादिना । सिंहास्यः—सिंहमुखः, सिंहस्य मृगेन्द्रस्य आस्यं मुखम् इव मुखं यस्य सः; सिंहदंष्ट्रः=व्याघ्रस्य दंष्ट्रा दन्तः इव दंष्ट्रा यस्य सः; मधुनिभनयनः=मधुनिभे रक्तवर्णत्वात् मधुतुल्ये नयने यस्य सः; स्निग्धगम्भीरकण्ठः=स्निग्धो मधुरः गम्भीरश्च कण्ठः कण्ठनादो यस्य सः, बभ्रुभ्रूः=बभ्रू पिङ्गले भ्रुवौ यस्य सः; श्येननासः=गृध्रनासः, श्येनस्य नासा इव नासिका यस्य सः; द्विरदपतिहनुः=गजराजस्य हनुरिव हनुः यस्य सः, दीर्घविश्लिष्टकेशः=दीर्घाः विश्लिष्टाः विरलाः प्रकीर्णाश्च केशाः कुन्तलाः यस्य सः, 'चिकुरः कुन्तलो बालः कचः केशः शिरोरुहः'—इत्यमरः । व्यूढोरा=व्यूढं विस्तीर्णम् उरो वक्षः यस्य सः; अपाणिनीयोऽयं प्रयोगः । 'उरः प्रभृतिभ्यः कप्' (पा. सू. ५.४.१५१) इत्यनेन कप्रत्ययाभावः । वज्रमध्यः=वज्रं कुलिशं तदिव काठिन्यादिना मध्यभागः यस्य सः; गजवृषभगतिः=गजेन्द्रगतिः; वृषभशब्दोऽत्र श्रेष्ठवाचकः; यथा—

स्युरुत्तरपदे व्याघ्रपुंगवर्षभकुञ्जराः ।
सिंहशार्दूलनागाद्याः पुंसि श्रेष्ठार्थवाचकाः ॥

लम्बपीनांसबाहुः—लम्बौ पीनौ पुष्टौ च अंसौ स्कन्धौ बाहू भुजे च यस्य सः; विपुलबलयुतः=महद्बलसंयुतः; राक्षसीजः=राक्षस्यां जातः घोराकृतित्वात्, लोकवीरस्य पुत्रः=लोके वीरः शूरः तस्य जगत्प्रख्यातशूरस्य पुत्रः

के योग्य है । क्योंकि, यह—

सिंह के समान मुख वाला, सिंह के समान दाढ़ों वाला, मदिरा के समान [मादक] आँखों वाला, चिकने और उन्नत कण्ठ वाला, भूरी भौहों वाला, श्येन पक्षी के समान नाक वाला, गजराज के समान ठोढ़ी वाला, चमकीले और

१. दीर्घ-' इति वा पाठः ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

घटोत्कचः—चिरायते खलु ब्राह्मणवटुः। उच्चैः शब्दापयामि भो भो मध्यम ! शीघ्रमागच्छ।

भीमः—भोः ! प्राप्तोऽस्मि।

घटोत्कचः—न खल्वयं ब्राह्मणवटुः। अहो दर्शनीयोऽयं पुरुषः। य एषः—

सूनुरस्तीति, सुव्यक्तम्=सुस्पष्टम्। इह वह्नानामुपमानां संसृष्टिः। स्रग्धरा वृत्तम्। तल्लक्षणं तु—म्रभ्नैर्यानां त्रयेण त्रिमुनियतियुता स्रग्धरा कीर्तितेयम् ॥ २६ ॥

[घटोत्कच के शरीर की गठन को देखकर भीम इस प्रकार उसका वर्णन प्रस्तुत करते हैं—]

अन्वय—सिंहास्यः, सिंहदंष्ट्रः, मधुनिभनयनः, स्निग्ध-गम्भीर-कण्ठः, बभ्रुभ्रूः, श्येननासः, द्विरद-पति-हनुः, दीप्त-विश्लिष्ट-केशः, व्यूढोराः, वज्रमध्यः, गज-वृषभ-गतिः, लम्ब-पीनांस-बाहुः, विपुल-बल-युतः राक्षसीजः, लोकवीरस्य, [अयम्] पुत्रः सुव्यक्तम् ॥ २६ ॥

पदार्थ—सिंहास्यः=सिंह के समान मुख वाला, सिंह-दंष्ट्रः=सिंह के समान दाढ़ों वाला; मधु-निभ-नयनः=मदिरा के समान [मादक] आँखों वाला; स्निग्ध-गम्भीर-कण्ठः=चिकने और उन्नत कण्ठ [अर्थात् ग्रीवा] वाला; बभ्रु-भ्रूः=भूरी भौहों वाला; श्येन-नासः=श्येन [=बाज] पक्षी के समान [लम्बी कुछ उठी हुई] नाक वाला, द्विरदपति-हनुः=गजराज के समान ठोढ़ी वाला, दीप्त-विश्लिष्ट-केशः=चमकीले और बिखरे हुए बालों वाला, व्यूढ उराः=विस्तीर्ण वक्ष वाला; वज्रमध्यः=वज्र के समान [कठोर] कटिप्रदेश, गजवृषभ-गतिः=गजराज के समान [मदमत्त] चाल वाला;

बिखरे बालों वाला, विस्तीर्ण वक्ष वाला, वज्र के समान [कठोर] कटि-प्रदेश युक्त, गजराज के समान [मदमत्त] चाल वाला, लम्बी भुजाओं और विशाल कन्धों वाला, विपुल शक्ति-सम्पन्न [यह] अवश्य ही किसी राक्षसी से उत्पन्न जगत् प्रसिद्ध योद्धा का पुत्र है ॥ २६ ॥

घटोत्कच—ब्राह्मण-बालक तो देर कर रहा है। जोर से बुलाऊँ। हे मध्यम, हे मध्यम, शीघ्र आओ।

भीम—ओ, मैं आ गया।

घटोत्कच—यह तो ब्राह्मण बालक नहीं है। अहा, यह पुरुष तो दर्शन के योग्य है। जो, यह—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सिंहाकृतिः कनकतालसमानबाहुः
मध्ये तनुर्गरुडपक्षविलिप्तपक्षः[1] ।
विष्णुर्भवेद् विकसिताम्बुजपत्रनेत्रो
नेत्रे ममाहरति बन्धुरिवागतोऽयम् ॥ २७ ॥

लम्ब-पीनांस-बाहुः=लम्बी भुजाओं और विशाल कन्धों वाला; विपुल-बल-युतः=अत्यन्त बलशाली; राक्षसीजः=राक्षसी से उत्पन्न; लोकवीरस्य=जगत् प्रसिद्ध योद्धा का, [अयम्=यह] पुत्रः=पुत्र है; इति सुव्यक्तम्=यह स्पष्ट ही है ॥ २६ ॥

भीमं दृष्ट्वा घटोत्कचः स्वमनोभावं प्रकटयति—सिंहादिना । अयं पुरुषः सिंहाकृतिः=मृगेन्द्राकृतिः, सिंहस्य आकृतिरिव आकारो यस्य सः; कनकताल-समानबाहुः=स्वर्णतालवृक्षसदृशबाहुः; कनकस्य सुवर्णस्य तालः तालवृक्षः-तत्समानौ बाहू भुजे यस्य सः; मध्ये=मध्यभागे; तनुः=कृशः; गरुडपक्षविलिप्त-पक्षः=गरुडपक्षाविव मसृणौ पार्श्वभागौ यस्य सः इत्यर्थः । विकसिताम्बुजपत्र-नेत्रः=प्रफुल्लितपद्मदलसदृशलोचनः, विकसितस्य अम्बुजस्य पत्रे दले इव नेत्रे यस्य सः, किमयम् ?, विष्णुः भवेत्=अच्युतः स्यात् ?; मम=घटोत्कचस्य; नेत्रे=चक्षुषी; आगतः=आगतमात्रोऽयम्, न तु सम्भाषणादिना परीज्ञातः; बन्धु-रिव=ज्ञातिजन इव; आहरति=आकर्षयति, बन्धुभावं जनयतीत्यर्थः । यथा किराते—'अभितस्तं पृथासूनुः स्नेहेन परितस्तरे ।
अविज्ञातेऽपि बन्धौ हि बलात् प्रह्लादते मनः ॥ (११.८)
उपमालङ्कारः । वसन्ततिलका वृत्तम् ॥ २७ ॥

[घटोत्कच भीम के रूप का वर्णन इस प्रकार करता है—]

अन्वय—सिंहाकृतिः, कनक-ताल-समान-बाहुः, मध्ये, तनुः, गरुड-पक्ष-विलिप्त-पक्षः, विकसित-अम्बुज-पत्र-नेत्रः, अयम्, विष्णुः, भवेत् । आगतः, बन्धुः, इव. [अयम्] मम, नेत्रे, आहरति ॥ २७ ॥

सिंह के समान आकृति वाले, स्वर्ण के ताड़ वृक्ष के समान लम्बी भुजाओं वाले, मध्यभाग में कृश, गरुड़ के पङ्खों के समान स्निग्ध पार्श्व-भाग वाले, और प्रफुल्लित कमल की पङ्खुड़ियों के समान आँखों वाले यह सम्भवतः भगवान् विष्णु हो सकते हैं जो पास आते हुए बन्धु के समान मेरी आँखों को आकृष्ट कर रहे हैं ॥ २७ ॥

---

१. 'विलिप्तवक्षा' इति वा पाठः ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भो मध्यम ! त्वां खल्वहं शब्दापयामि ।

भीमः—अतः खल्वहं प्राप्तः ।

घटोत्कचः—किं भवानपि मध्यमः ?

भीमः—न तावदपरः ।

मध्यमोऽहमवध्यानामुत्सिक्तानां च मध्यमः ।
मध्यमोऽहं क्षितौ[1] भद्र ! भ्रातॄणामपि मध्यमः ॥ २८ ॥

पदार्थ—सिंहाकृतिः=सिंह के समान आकृति वाला, कनकताल-समान-बाहुः=सुवर्ण के ताड़ के पेड़ के समान [लम्बी] भुजाओं वाला, मध्ये=मध्यभाग में; तनुः=कृश, गरुड-पक्ष-विलिप्त-पक्षः=गरुड़ के पङ्खों के समान चिकने पार्श्वभाग वाला; विकसित अम्बुज-पत्र-नेत्रः=खिली हुई कमल की पङ्खुड़ियों के समान आँखों वाला; अयम्=यह; विष्णुः भवेत्=[सम्भवतः] भगवान् विष्णु हो सकते हैं । आगतः बन्धुः इव=पास आते हुए बन्धु के समान, [अयम्=यह] मम नेत्रे=मेरी आँखों को; आहरति=आकर्षित कर रहा है ॥२७॥

अहमेव सर्वथा मध्यमः नान्यः कोऽपि इति प्रतिपादयति भीमसेनः—मध्यम इत्यादिना । अहम्=भीमसेनः; अवध्यानाम्=शत्रुभिर्हन्तुम् अशक्यानां पाण्डवानां मध्ये मध्यमोऽस्मि इति शेषः । पाण्डवानां चावध्यत्वं प्रसिद्धम् । उत्सिक्तानां च=शौर्योद्धतानां (उत्+सिच्+क्त) च मध्ये ! मध्यमः=मध्यमपाण्डवोऽहम्; भद्र=हे सौम्य, क्षितौ=पृथिव्याम्; अहं मध्यमः=अहमेव मध्यमत्वेन लोके प्रख्यातः । भ्रातॄणामपि=युधिष्ठिरादीनां मध्येऽपि अहम्; मध्यमः=पञ्चसु पाण्डवेषु मध्ये मध्यमः पाण्डवो भीमसेन इत्यर्थः । अनुष्टुप् वृत्तम् ॥ २८ ॥

[भीम अपना परिचय इस प्रकार देते हैं]—

अन्वय—हे भद्र ! अवध्यानाम्, [पाण्डवानाम्, मध्ये] अहम्, मध्यमः । च उत्सिक्तानाम्, [अहम्] मध्यमः । क्षितौ, अहम्, मध्यमः । भ्रातॄणाम्, अपि, [अहम् एव] मध्यमः ॥ २८ ॥

हे मध्यम, मैं तो तुम्हें ही बुला रहा हूँ ।

भीम—इसीलिए तो मैं आ गया ।

घटोत्कच—क्या आप भी 'मध्यम' हैं ।

भीम—फिर दूसरा तो नहीं ही है, क्योंकि—

---

१. 'क्षिते.' इति पाठः ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

घटोत्कचः—भवितव्यम् ।
भीमः—अपि च,
मध्यमः पञ्चभूतानां पार्थिवानां च मध्यमः ।
भवे[1] च मध्यमो लोके सर्वकार्येषु मध्यमः ॥ २९ ॥

पदार्थ—हे भद्र=हे सौम्य ! अवध्यानाम्=शत्रुओं से न मारे जाने वाले; [पाण्डवानाम्, मध्ये=पाण्डवों के बीच में] अहम्=मैं; मध्यमः=मध्यम [पाण्डव] हूँ। च=और; उत्सिक्तानाम्=निष्कासितों के अथवा शौर्य में गर्व करने वालों के बीच में [अहम्=मैं] मध्यम हूँ। क्षितौ=मध्यमलोक रूप इस पृथ्वी पर; अहम्=मैं; मध्यमः=मध्यम [लोक का मनुष्य] हूँ। भ्रातॄणाम्=भाइयों के बीच; अपि=भी; [अहम् एव=मैं ही] मध्यमः=मझला हूँ ॥ २८ ॥

आत्मनो मध्यमत्वं पुनः समर्थयति भीमसेनः—मध्यम इत्यादिना। अहम्, पञ्चभूतानाम्=पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशानां मध्ये; मध्यमः=पञ्चभूतेषु वायोर्मध्यमस्थानीयत्वेन तत्पुत्रोऽहमपि मध्यमः। पार्थिवानां च=तथा पृथ्वीश्वराणां मम भ्रातॄणाम् अहं मध्यमः। अहम्, लोके=अस्मिन् मृत्युलोके, भवे=भवो नाम मातृकुक्षेर्निर्गमः तत्र मध्ममः जन्मनाऽपि मध्यमोऽहमिति भावः। तथा, सर्वकार्येषु मध्यमः=सर्वेषां जनानां कार्येषु, अहं, मध्यमः=मध्यस्थः। एवमत्र 'भीमसेनस्य मध्यमत्वम् अष्टभिः प्रकारैः प्रतिपादितम्। अनुष्टुप् वृत्तम् ॥ २९ ॥

[अपनी उक्ति का स्पष्टीकरण करते हुए भीम कहते हैं]—

अन्वय—पञ्चभूतानां [मध्ये अहम्] मध्यमः; च पार्थिवानां [मध्ये अहम्] मध्यमः; च लोके भवे [अहम्] मध्यमः; सर्वकार्येषु [अहम्] मध्यमः ॥ २९ ॥

हे सौम्य, शत्रुओं से अवध्य [पाण्डवों में] मैं मध्यम [पाण्डव] हूँ, और शौर्य में गर्व करने वाले [पाण्डवों] के बीच मैं मध्यम [पाण्डव] हूँ। [मध्यमलोक रूप] इस पृथ्वी पर मैं मध्यम [लोक का मनुष्य] हूँ, [और अपने] भाइयों, के बीच भी मैं मध्यम [मझला भाई] हूँ ॥ २८ ॥

घटोत्कच—होंगे।

भीम—और भी—

[पृथ्वी, अप, तेज, वायु व आकाश इन] पञ्चभूतों में मध्यम [पृथ्वी व आकाश के मध्यगत वायु का पुत्र] हूँ, और भाई-राजाओं के मध्य मैं मध्यम हूँ और संसार में उत्पन्न होने वाले [अपने भाइयों] के बीच मैं [जन्मना] मध्यम हूँ, और सभी मानवों के कार्यों में मैं मध्यम [मध्यस्थ] रहने वाला हूँ ॥ २९ ॥

---

१. 'भये' इति वा पाठः।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

वृद्धः--

मध्यमस्त्विति सम्प्रोक्ते नूनं पाण्डवमध्यमः ।
अस्मान् मोक्तुमिहायातो [1]दर्पान्मृत्योरिवोत्थितः ॥ ३० ॥

पदार्थ--पञ्चभूतानाम्=[पृथ्वी, अप, तेज, वायु और आकाश इन] पञ्चभूतों में [पृथ्वी और आकाश के मध्य रहने वाली वायु का पुत्र] [अहम्=मैं]; मध्यमः=मध्यम हूँ । च=और; पार्थिवानाम्=भाई राजाओं के [मध्ये अहम्=मध्य मैं]; मध्यमः=मध्यम; च लोके भवे=और संसार में उत्पन्न होने वाले [अपने भाइयों] के बीच [अहम्=मैं] मध्यमः=मध्यम हूँ । सर्वकार्येषु=सभी [मनुष्यों] के कार्यों में; [अहम्=मैं], मध्यमः=मध्यस्थ रहने वाला हूँ ॥२९॥

विमर्श--प्रस्तुत श्लोक और इसके पहले श्लोक में चार-चार बार-'मध्यम' शब्द का प्रयोग महाकवि भास ने मात्र उस पर बल देने के लिए किया है । विभिन्न स्थलों में इसका अर्थ भी विभिन्न प्रकार से किया जा सकता है । फिर भी संक्षेप में मध्यम का अर्थ सभी के बीच 'प्रमुखता' का द्योतक है । एक ही शब्द की पुनरुक्ति कवि की अपनी एक कला है, जिसे उन्होंने अन्य स्थलों में भी किया है जैसे बाइसवें श्लोक में 'परिष्वज' का प्रयोग और अन्तिम श्लोक में 'प्रभव' शब्द का प्रयोग विभिन्न अर्थों में कई बार किया गया है ।

भीमेनात्मनो मध्यमत्वकथनस्याभिप्रायम् अभिज्ञाय वृद्धः स्वगतमाह--मध्यम इत्यादिना । मध्यमस्तु इति सम्प्रोक्ते=सम्यगुच्चारिते सति; नूनम्=निश्चितम्; पाण्डवमध्यमः=पाण्डवेषु मध्यमत्वेन प्रसिद्धः भीमोऽयम् । राक्षसभयाद् अस्मान्, मोक्तुम्=मोचयितुम्; इह=अस्मिन् स्थाने; मृत्योः=अन्तकस्य; दर्पात्=गर्वात्; उत्थितः=उद्युक्त इव; आयातः=आगतः । उत्प्रेक्षालंकार । अनुष्टुप् वृत्तम् ॥ ३० ॥

[ब्राह्मण अपने मन में विचार करता है कि]--

अन्वय--[अहम्] मध्यमः, इति, संप्रोक्ते, नूनम्, पाण्डवमध्यमः । दर्पात्, मृत्योः, इव अस्मात् [राक्षसात्], मोक्तुम्, उत्थितः, इह, आयातः ॥ ३० ॥

वृद्ध--

'मैं मध्यम हूँ'--ऐसा कहने से निश्चित रूप से [यह] पाण्डवों में मध्यम [भीम] होंगे । मृत्यु के गर्वस्वरूप इस राक्षस से बचाने के लिए मानो उद्यत हुए से यहाँ आये हैं ॥ ३० ॥

---

१. 'दर्पान्मृत्युरिव' इति वा पाठः ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(प्रविश्य)

मध्यमः—

अस्यामाचम्य पद्मिन्यां परलोकेषु दुर्लभम् ।
आत्मनैवात्मनो दत्तं पद्मपत्रोज्ज्वलं जलम् ॥ ३१ ॥

पदार्थ—[अहम्=मैं] मध्यमः=मध्यम हूँ, इति=ऐसा; संप्रोक्ते=कहने से, नूनम्=निश्चित रूप से, [अयम्=यह] पाण्डवमध्यमः=पाण्डवों में मध्यम [भीम] होंगे; दर्पाद् मृत्योः=मृत्यु के गर्व रूपी; अस्मात् [राक्षसात्]=इस [राक्षस] से; मोक्तुम्=बचाने के लिए; उत्थितः, इव=मानो उद्युक्त होकर; इह=यहाँ; आगतः=आये हैं ॥ ३० ॥

पिपासाशान्त्यर्थं जलाशयं समुपगतस्य मध्यमपुत्रस्य वचनम्—अस्यामित्यादि । अस्याम्=पुरोऽवस्थितायाम्; पद्मिन्याम्=सरसि, पद्मानि अस्यां सन्ति इति पद्मिनी तस्याम्; परलोकेषु=स्वर्गादिषु लोकेषु; दुर्लभम्=दुःखेन लब्धुं योग्यम्; अप्राप्यमित्यर्थः । पद्मपत्रोज्ज्वलम्=कमलदलमिव उज्ज्वलम् अर्थात् निर्मलम्, जलम्=सलिलम्, आचम्य=पीत्वा, आत्मनैव=स्वेनैव, आत्मनः=स्वस्य, दत्तम्=अर्पितम् । 'सन्तानविहीनः जीवन्नेवात्मनः श्राद्धं कुर्यात्' इति बौधायनः । अनुष्टुप् वृत्तम् ॥ ३१ ॥

अन्वय—परलोकेषु, दुर्लभम्, अस्याम्, पद्मिन्याम् पद्म-पत्र-उज्ज्वलम्, जलम्, आचम्य, आत्मनैव, आत्मनः दत्तम् ॥ ३१ ॥

पदार्थ—अस्याम्=इस; परलोकेषु दुर्लभम्=परलोक में अप्राप्य, पद्मिन्याम्=कमलों से युक्त सरोवर के, पद्म-पत्र-उज्ज्वलम्=कमल की पङ्खुड़ियों के समान अर्थात् स्वच्छ, जलम्=जल को, आचम्य=आचमन करके, आत्मनैव=अपने से ही, आत्मनः=अपने को, दत्तम्=[जल] दे दिया है; क्योंकि पुत्रविहीन होने से तर्पण कार्य की आशा नहीं है ॥ ३१ ॥

(प्रवेश करके)

मध्यम—

परलोक में अप्राप्य इस कमलों से युक्त सरोवर के कमल की पङ्खुड़ियों के समान अर्थात् स्वच्छ जल का आचमन करके अपने से ही अपने को (जल) दे दिया है [क्योंकि पुत्रविहीन होने से तर्पण की आशा नहीं है] ॥ ३१ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(उपगम्य) भोः पुरुष ! प्राप्तोऽस्मि ।

घटोत्कचः—[1]भवानिदानीं खल्वसि मध्यमः । मध्यम ! इत इतः ।

वृद्धः—(भीममुपगम्य) भो मध्यम ! परित्रायस्व ब्राह्मणकुलम् ।

भीमः—न भेतव्यं, न भेतव्यम् । मध्यमोऽहमभिवादये ।

वृद्धः—वायुरिव दीर्घायुर्भव ।

भीमः—अनुगृहीतोऽस्मि । कुतो भयमार्यस्य ।

वृद्धः—श्रूयताम् । अहं खलु कुरुराजेन युधिष्ठिरेणाधिष्ठितपूर्वे कुरुजाङ्गले यूपग्रामवास्तव्यो माठरसगोत्रश्च कल्पशाखाध्वर्युः केशवदासो नाम ब्राह्मणः । तस्य ममोत्तरस्यां दिश्युद्यामकग्राम-वासी मातुलः कौशिकसगोत्रो यज्ञबन्धुर्नामास्ति । तस्य पुत्रोप-

---

वायुरिव दीर्घायुर्भव = कल्पान्तकालजीवी भव; वायुर्हि प्राणाधिष्ठान-देवता । कुरुजाङ्गले = कुरुक्षेत्रे । माठरसगोत्रः[2] = माठरेण ऋषिविशेषेण समानं गोत्रं यस्य सः । कल्पशाखाध्वर्युः = कल्पो यज्ञविधानम्, तत्प्रतिपादिका शाखा कल्पशाखा, तस्याः अध्वर्युः तदनुसरणपरो तदुक्तप्रयोगानुष्ठाननिपुणः श्रौतकर्मसु ऋत्विग्विशेषः इत्यर्थः ।

(पास जाकर) हे पुरुष, मैं आ गया ।

घटोत्कच—वस्तुतः यहाँ तुम्हीं मध्यम हो । हे मध्यम, इधर आओ, इधर आओ ।

वृद्ध—(भीमसेन के पास जाकर) हे मध्यम, इस ब्राह्मणकुल का परि-त्राण करो ।

भीम—डरना नहीं चाहिए, डरना नहीं चाहिए । मैं मध्यम आपको प्रणाम करता हूँ ।

वृद्ध—वायु के समान दीर्घायु होवें ।

भीम—मैं अनुगृहीत हूँ । आपके भय का क्या कारण है ?

वृद्ध—सुनिए, मैं कुरुराज युधिष्ठिर से पहले शासित कुरुजाङ्गल [=कुरुक्षेत्र] में यूप-ग्राम का रहने वाला माठरगोत्रीय कल्पशाखीय अध्वर्यु केशवदास नामक ब्राह्मण हूँ । उस ग्राम के उत्तर-दिशा में उद्यामक ग्राम वासी

---

१. 'प्राप्तवान् इदानीं खल्वसि' इति वा पाठः ।

२. तु० 'रैभ्यसगोत्रः' स्वप्न० ६. पृ० २०७ । द्र० पा० महाभाष्य ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नयनार्थे[1] सकलत्रोऽस्मि प्रस्थितः ।

भीमः—अरिष्टोऽस्तु पन्थाः । ततस्ततः ।

वृद्धः—ततो मामेष हि—

सजलजलदगात्रः पद्मपत्रायताक्षो
मृगपतिगतिलीलो राक्षसः प्रोग्रदंष्ट्रः ।
जगति विगतशङ्कस्त्वद्विधानां समक्षं
ससुतपरिजनं भो ! हन्तुकामोऽभ्युपैति ॥ ३२ ॥

अरिष्टः=रिष्टो विघ्नः, तद्रहितः निरुपद्रव इत्यर्थः ।

वृद्धः स्वमनोव्यथां वर्णयति–सजलेत्यादिना । भोः इति विषादे । सजलजलदगात्रः[2]=सजलः जलयुक्तो जलदः मेघः तदिव गात्रं यस्य सः । कृष्णवद्धवलशरीरधारी इत्यर्थः । पद्मपत्रायताक्षः[3]=पद्मस्य पत्रे इव आयते अक्षिणी यस्य सः । कमलदलदीर्घनेत्रः, मृगपतिगतिलीलः=मृगपतेः सिंहस्य गतेः लीला यस्य सः । प्रोग्रदंष्ट्रः[4]=प्रकृष्टरूपेण उग्रा दंष्ट्रा दन्तः यस्य सः, घोरदन्त, जगति=संसारे, विगतशङ्कः=निर्भयः, विगता शंका यस्य सोऽयं राक्षसः, त्वद्विधानाम्=त्वद्सदृशानाम्, समक्षम्=पुरतः, ससुतपरिजनम्=सुतैः तनयैः परिजनैश्च युक्तं सपरिवारं मां हन्तुकामः=हन्तुमनाः । अभ्युपैति=समायाति । मालिनीवृत्तम् ॥ ३२ ॥

अन्वयः—भोः ! सजल-जलद-गात्रः, पद्म-पत्रायताक्षः, मृगपतिगतिलीलः,

---

कौशिकगोत्रीय यज्ञबन्धु नामक मेरे मामा हैं । उन्हीं के पुत्र के उपनयन संस्कार में सम्मिलित होने के लिए पत्नी सहित जा रहा हूँ ।

भीम—आपकी यात्रा विघ्नरहित होवे । उसके बाद ?

वृद्ध—उसके बाद, क्योंकि मुझे यह—

हे भद्र पुरुष, जलयुक्त मेघ के समान [नीले] शरीर वाला, कमल के पत्र के समान बड़ी-बड़ी आँखों वाला, सिंह के गमन के समान लीलायुक्त

---

१. 'पनयनानुभवनार्थम्' इति वा पाठः ।

२. तु० 'नीलजीमूतवर्णः'–मध्यमव्यायोगः ८ ।

३. तु० 'विकसिताम्बुजपत्रनेत्रः' मध्यमव्यायोगः २७ ।

४ तु० 'पाण्डरोद्वृत्तदंष्ट्रः' मध्यमव्यायोगः ५ ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

भीमः—एवम् अनेन ब्राह्मणजनस्य मार्गविघ्नः कृतः। भवतु, निग्रहिष्यामि तावदेनम्। भोः पुरुष! तिष्ठ, तिष्ठ।

घटोत्कचः—एष स्थितोऽस्मि।

भीमः—किमर्थं ब्राह्मणजनमपराध्यसि[1]।

पुत्रनक्षत्रकीर्णस्य पत्नीकान्तप्रभस्य च।
वृद्धस्य विप्रचन्द्रस्य भवान् राहुरिवोत्थितः[2]॥ ३३॥

प्रोग्रदंष्ट्राः, जगति, विगतशङ्कः, राक्षसः, त्वद्विधानां, समक्षम्, ससुत-परिजनम्, हन्तुकामः, अभ्युपैति॥ ३२॥

पदार्थ—भोः! भद्र=पुरुष! सजल-जलदगात्र=जलयुक्त मेघ के समान (नीले) शरीर वाला, पद्म-पत्रायताक्षः=कमल के पत्र के समान बड़ी-बड़ी आखों वाला, मृगपति-गति-लीलः=सिंह के समान लीलायुक्त (अलस) गति वाला, प्रोग्रदंष्ट्रः=उन्नत दाढ़ों वाला, जगति=संसार में; विगतशङ्कः=निर्भय [अर्थात् निर्द्वन्द्व घूमने वाला] त्वद्विधानाम्=तुम्हारे सदृश [वीर] पुरुषों के; समक्ष=आँखों के सामने; ससुत-परिजनम्=स्त्री-पुत्रों के सहित; हन्तुकामः [एषः]=मारने की इच्छा वाला [यह]; अभ्युपैति=आ रहा है॥३२॥

विमर्श—परिजन का अर्थ वस्तुतः अनुगामी नौकर आदि है किन्तु यहाँ इसका लाक्षणिक अर्थ स्त्री लेना होगा क्योंकि वही ब्राह्मण की अनुगामिनी है।

किमर्थम् अपराध्यसि=अवध्यब्राह्मणस्य त्रासेन कथम् अपराधभागी भवसि।

भीमः वृद्धब्राह्मणस्य दशां वर्णयति—पुत्रेत्यादिना। भो राक्षस, भवान्=घटोत्कचः; पुत्रनक्षत्रकीर्णस्य=पुत्राः नक्षत्राणि इव (उपमितसमासः) तैः

(अलस) गति वाला, उग्र दाढ़ों वाला, संसार में निर्भय [हो निर्द्वन्द्व घूमने वाला [तुम्हारे सदृश वीर पुरुषों की आँखों के सामने स्त्री-पुत्रों के सहित मारने की इच्छा वाला [यह पुरुष] आ रहा है॥ ३२॥

भीम—ऐसा? ब्राह्मण-जन के मार्ग में इसके द्वारा विघ्न उपस्थित किया गया है। अच्छा, तो मैं इसका दमन करूँगा। ओ पुरुष, रुको, रुको।

घटोत्कच—यह मैं रुका हूँ।

भीम—ब्राह्मण-जन को तुम किसलिए सता रहे हो?

---

१. 'परास्यसि' इति वा पाठः।

२. '-रिवागतः' इति वा पाठः।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

घटोत्कचः—अथ किम् । राहुरेव ।

भीमः—आः—

निवृत्तव्यवहारोऽयं सदारस्तनयैः सह ।
सर्वापराधेऽवध्यत्वान्मुच्यतां द्विजसत्तमः ॥ ३४ ॥

कीर्णस्य व्याप्तस्य; पत्नीकान्तप्रभस्य च=पत्नी कान्तप्रभेव मनोहरा ज्योत्स्नेव यस्य तस्य; वृद्धस्य=स्थविरस्य, विप्रचन्द्रस्य=विप्रश्चन्द्र इव विप्रचन्द्रः तस्य ब्राह्मणेन्दोः, राहुरिव[1]=चन्द्रग्रसनशीला ग्रह इव, 'तमस्तु राहुः स्वर्भानुः सैंहिकेयो विधुन्तुदः' इत्यमरः । उत्थितः=आगतः । सावयवोपमालङ्कारः । अनुष्टुप् वृत्तम् ॥ ३३ ॥

[भीम वृद्ध ब्राह्मण की स्थिति इस प्रकार प्रकट करते हैं]—

अन्वय—पुत्र-नक्षत्र-कीर्णस्य, च, पत्नीकान्त-प्रभस्य, वृद्धस्य, विप्र-चन्द्रस्य, भवान्, राहुः, इव, उत्थितः ॥ ३३ ॥

पदार्थ—पुत्र-नक्षत्र-कीर्णस्य=नक्षत्र के समान पुत्रों से, च=और; पत्नी-कान्त-प्रभस्य=मनोहर ज्योत्स्ना के समान पत्नी से परिवृत, वृद्धस्य=वृद्ध रूपी इस, विप्र-चन्द्रस्य=ब्राह्मण चन्द्र के लिए; भवान्=आप; राहुः इव=राहु के समान; [किं] उत्थितः=[ग्रसने को क्यों] उद्यत हैं ॥३३॥

भीमः घटोत्कचं वारयति—निवृत्तेत्यादिना । निवृत्तव्यवहारः=व्यवहारात् निवृत्तः (पं० तत्पु०), राजदन्तादित्वात् साधुः, कार्यकारित्वशक्तिक्षयात् अपगतः व्यवहारः ऐहिकव्यापारो यस्य सः, सर्वापराधे अवध्यत्वात्=सर्वविधापराधयोगेऽपि वधानर्हत्वाद्, यथाह मनुः—

नक्षत्र के समान पुत्रों से घिरे हुए और मनोहर ज्योत्स्ना के समान पत्नी से परिवृत वृद्धरूपी इस विप्र-चन्द्र के लिए आप राहु के समान [ग्रसने को क्यों] उद्यत हैं ? ॥ ३३ ॥

घटोत्कच—और क्या ? [मैं राहु के समान नहीं किन्तु] राहु ही हूँ ।

भीम—आह,

---

१. (i) तु० 'राहुवक्त्रान्तरगता चन्द्रलेखेव शोभते'—दूत० ७ ।
(ii) 'किं द्रष्टव्यः शशाङ्कोऽयं राहोर्वदनमण्डले' बालचरित १.११ ।
(iii) 'आपूर्णश्च कलाभिरिन्दुरमलो यातश्च राहोर्मुखम्' मालती ९.३९

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

घटोत्कचः—न मुच्यते ।

भीमः—(आत्मगतम्) भोः ! कस्य पुत्रेणानेन भवितव्यम् ।

भ्रातॄणां मम सर्वेषां कोऽयं भो ! गुणतस्करः ।

दृष्ट्वैतद् बालशौण्डीर्यं सौभद्रस्य स्मराम्यहम् ॥ ३५ ॥

'न जातु ब्राह्मणं हन्यात् सर्वपापेष्वपि स्थितम् ।' (८. ३८०) सदारः= सपत्नीकः, तनयैः=पुत्रैः सह, अयम् =पुरोदृश्यमानः, द्विजसत्तमः=द्विजेषु विप्रेषु सत्तमः अतिप्रशस्तः ब्राह्मणश्रेष्ठः, मुच्यताम्=परित्यज्यताम् । अनुष्टुप् वृत्तम् ॥ ३४ ॥

[घटोत्कच के यह कहने पर कि 'हाँ' मैं राहु ही हूँ····भीम उसे इस प्रकार समझाते हैं]—

अन्वय—निवृत्त-व्यवहारः, सर्वापराधे, अवध्यत्वात्, सदारः, तनयैः, सह, अयम्, द्विजसत्तमः, मुच्यताम् ॥ ३४ ॥

पदार्थ—निवृत्तव्यवहारः=[वृद्ध होने के कारण] सांसारिक कार्यों से जो निवृत्त हो चुका है, सर्वापराधे=दोषों का समुदाय भी विद्यमान होने पर; अवध्यत्वात्=ब्राह्मण अवध्य होने से; सदारः=स्त्री के सहित; तनयैः=पुत्रों के साथ; अयम्=इस; द्विजसत्तमः=ब्राह्मणश्रेष्ठ को; मुच्यताम्=छोड़ दो ॥ ३४ ॥

विमर्श—मनु के अनुसार बहुत पापी भी होने पर ब्राह्मण अवध्य है । उनके मत से उसे दूसरे देश में छोड़ देना चाहिए । (मनु० ८.३८०) ।

मया वारितोऽपि अयमेवं दृढसंकल्प इति कस्यचित् पाण्डवस्यैव पुत्र इत्याशङ्क्य भीमस्य स्वगतोक्तिः—भ्रातॄणामित्यादिना । भोः इति विस्मये । मम= भीमस्य; सर्वेषां भ्रातॄणाम्=युधिष्ठिरादीनां सर्वेषां बान्धवानाम्, गुणतस्करः=गुणचोरः, गुणानुकारीत्यर्थः, अयम्=पुरोवर्ती पुरुषः, कः=कोऽसावित्यर्थः । अहम्, एतद्बालशौण्डीर्यम्=एतस्य सन्निहितस्य बालस्य शौण्डीर्यम् औद्धत्यं दृष्ट्वा, सौभद्रस्य=कृष्णभगिन्याः सुभद्रायाः अपत्यं पुमान्

दोषों का संकुल विद्यमान रहने पर भी ब्राह्मण के अवध्य होने से, स्त्री व पुत्रों के सहित इस ब्राह्मणश्रेष्ठ को छोड़ दो ॥ ३४ ॥

घटोत्कच—मैं नहीं छोड़ता ।

भीम—(मन ही मन) ओह, यह किसका पुत्र हो सकता है ?

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(प्रकाशम्) भोः पुरुष ! मुच्यताम् ।

घटोत्कचः—न मुच्यते ।

मुच्यतामिति विस्रब्धं ब्रवीति यदि मे पिता ।
न मुच्यते तथा ह्येष गृहीतो मातुराज्ञया ॥ ३६ ॥

सौभद्रस्तस्य अर्जुनपुत्रस्य अभिमन्योः, स्मरामि = स्मरणं करोमि । 'अधीगर्थ-दयेशां कर्मणि' (पा० सू० २.३.५२) इत्यनेन शेषत्व-विवक्षया कर्मणि षष्ठी । अस्य गर्वोक्तिः अभिमन्युसदृशः इतिभावः । स्मरणालङ्कारः । अनुष्टुप् वृत्तम् ॥

[घटोत्कच का औद्धत्य देखकर भीम अपनी सम्भावना इस प्रकार प्रकट करते हैं—]

अन्वय—भो !, मम, सर्वेषां, भ्रातॄणाम्, गुण-तस्करः, अयम्, कः ? एतत् बाल-शौण्डीर्यम्, दृष्ट्वा, अहम्, सौभद्रस्य, स्मरामि ॥ ३५ ॥

पदार्थ—भोः !, मम=अरे ! मेरे; सर्वेषाम् = सभी, भ्रातॄणाम्=भाइयों के; गुण-तस्करः=गुणों को चुराने वाला; अयम्=यह; कः=कौन है ? एतत् = इसके; बालशौण्डीर्यम्=बालकोचित औद्धत्य को; दृष्ट्वा=देखकर, अहम्= मुझे, सौभद्रस्य=सुभद्रा के पुत्र अभिमन्यु का; स्मरामि=स्मरण आ रहा है ॥३५॥

घटोत्कच आत्मन औद्धत्यं प्रदर्शयन्नाह—मुच्यतामित्यादिना । मे=मम घटोत्कचस्य, पिता=जनकः, अपि, यदि=चेत्, विस्रब्धम्=विश्वासयुक्तं यथा भवति तथा; मुच्यताम्=परित्यज्यताम्; इति ब्रवीति=इत्थं वदति, तथापि, न मुच्यते=मया न परित्यज्यते । तथा हि=यतः; एषः=ब्राह्मणपुत्रः मातुः आज्ञया=जनन्याः निदेशात्; गृहीतः=मया परिगृहीतः । अनुष्टुप् वृत्तम् ॥३६॥

अन्वय—यदि मे पिता 'विश्रब्धं मुच्यताम्' इति ब्रवीति, तथा न मुच्यते । हि, एषः, मातुः, आज्ञया, गृहीतः ॥ ३६ ॥

अरे मेरे सभी भाइयों के गुणों को चुराने वाला यह कौन है ? इसके बालोचित औद्धत्य को देखकर मुझे सुभद्रा के पुत्र अभिमन्यु का स्मरण आ रहा है ॥३५॥

(प्रकट) हे पुरुष, छोड़ दो ।

घटोत्कच—मैं नहीं छोड़ता ।

यदि मेरे पिता भी विश्वस्त रूप से 'छोड़ दो'—ऐसा कहें, फिर भी मैं नहीं छोड़ूंगा; क्योंकि यह [मध्यम पुत्र मेरी] माता की आज्ञा से गृहीत है ॥ ३६ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भीमः—(आत्मगतम्) कथं मातुराज्ञेति। अहो गुरुशुश्रूषुः खल्वयं तपस्वी।

माता किल मनुष्याणां दैवतानां च दैवतम्।
मातुराज्ञां पुरस्कृत्य वयमेतां दशां गताः ॥ ३७ ॥

(प्रकाशम्) भोः पुरुष ! प्रष्टव्यं खलु तावदस्ति।

पदार्थ—यदि मे पिता=यदि मेरे पिताजी [भी]; विश्रब्ध=विश्वस्त-रूप से 'मुच्यताम्' इति='छोड़ दो'—ऐसा; ब्रवीति=कहें; तथा-[पि]=तो भी, न मुच्यते=मैं नहीं छोड़ूंगा; हि=क्योंकि; एषः=यह [मध्यम पुत्र] मातुः=माता की; आज्ञया=आज्ञा से; गृहीतः=गृहीत है ॥ ३६ ॥

भीमस्य मातुर्महत्त्वप्रकाशिका स्वगतोक्तिः—मातेति। मनुष्याणाम्=मानवानाम्; दैवतानां च=अमराणामपि, दैवतम्=देवस्थानीया, देववत् पूज्येति भावः; चशब्दोऽप्यर्थे; दैवतानि पूज्यानि, न केवलं मनुष्याणामपि तु देवनामपि पूज्येत्यर्थः। माता किल=जननी खलु, यतः, मातुः आज्ञाम्=कुन्त्याः आदेशम्; पुरस्कृत्य=स्वीकृत्य; वयम्=युधिष्ठिरादयः, एतां दशाम्=ईदृशीमवस्थाम्; गताः=प्राप्ताः स्म। अर्थान्तरन्यासालङ्कारः। अनुष्टुप् वृत्तम् ॥ ३७ ॥

अन्वय—माता किल, मनुष्याणाम् देवतानां च दैवतम्। मातुः, आज्ञाम्, पुरस्कृत्य, वयम्, एताम्, दशाम्, गताः ॥ ३७ ॥

पदार्थ—माता=माता; किल=निश्चय ही; मनुष्याणाम्=[मनु की सन्तान उन] मनुष्यों की; देवतानाम्; च=और देवताओं की भी; दैवतम्=देवता है। मातुः, आज्ञाम्=माता की आज्ञा को ही; पुरस्कृत्य=स्वीकार करके; वयम्=[युधिष्ठिर आदि] हम लोग; एताम्=इस संसार में सम्मान की; दशाम्=अवस्था को; गताः=प्राप्त हुए हैं ॥ ३७ ॥

भीम—(मन ही मन) कैसी माता की आज्ञा ? अहो, अवश्य ही यह बेचारा अपने गुरुजनों [=माता-पिता] की सेवा करने वाला है।

माता निश्चय ही हनुष्यों की और देवताओं की भी देवता है। माता की आज्ञा को ही स्वीकार करके [युधिष्ठिर आदि] हम लोग इस संसार में सम्मान की अवस्था को प्राप्त हुए हैं ॥ ३७ ॥

(प्रकट) हे पुरुष, तब तुमसे मुझे कुछ पूछना है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

घटोत्कचः—ब्रूहि, ब्रूहि शीघ्रम् ।
भीमः—का नाम भवतो माता ।
घटोत्कचः—श्रूयताम्, हिडिम्बा नाम राक्षसी ।
कौरव्यकुलदीपेन पाण्डवेन महात्मना ।
सनाथा या महाभागा पूर्णेन द्यौरिवेन्दुना[1] ॥ ३८ ॥

घटोत्कचेन नामनिर्देशपूर्वकं स्वमातुः विशिष्टः परिचयः दीयते—कौरव्यकुलेत्यादिना । या=हिडिम्बा; महाभागा कौरव्यकुलदीपेन=कौरवकुलोत्पन्नेन, कुरोः अपत्यं पुमान् कौरवः, तस्य कुलस्य दीपेन प्रकाशकेन, महात्मना=महानुभावेन; पाण्डवेन=पाण्डुपुत्रेण भीमसेनेन; पूर्णेन=षोडशकलायुक्तेन; इन्दुना=चन्द्रेण युक्ता; द्यौरिव=नभ इव; सनाथा=नाथवती भवतीति शेषः कौरव्यकुलदीपः; अत्र रूपकः । पूर्णेन द्यौरिवेन्दुनेति उपमा । अनुष्टुप् वृत्तम् ॥

[सुन्दर विशेषणों और उपमा के साथ घटोत्कच अपनी माता का परिचय इस प्रकार दे रहा है]—

अन्वय—कौरव्यकुल-दीपेन, महात्मना, पाण्डवेन, या, महाभागा, पूर्णेन, इन्दुना, द्यौः, इव, सनाथा [कृता] ॥ ३८ ॥

पदार्थ—कौरव्य-कुल-दीपेन=कौरव कुल के दीपक; महात्मना=महात्मा; पाण्डवेन=पाण्डव के द्वारा; या=जो; महाभागा=सौभाग्यशालिनि [मेरी माँ]; पूर्णेन=[सोलह कलाओं से युक्त] पूर्ण; इन्दुना=चन्द्र के द्वारा; द्यौः, इव=जैसे अन्तरिक्ष [सनाथ होता है उसी प्रकार] सनाथा [कृता]=पति से युक्त की गई ॥ ३८ ॥

घटोत्कच—कहो, शीघ्र कहो ।

भीम—आपकी माता का क्या नाम है ?

घटोत्कच—हाँ, सुनिए । वह हिडिम्बा नामक एक राक्षसी हैं;—

—जो सौभाग्यशालिनी, कौरवकुल के दीपक महात्मा पाण्डव [भीम] के द्वारा सनाथ की गई हैं जैसे पूर्ण चन्द्र के द्वारा आकाश सनाथ होता है ॥३८॥

---

१. '-रिवात्मना' इति वा पाठः, अर्थात् चन्द्रेण । 'आत्मार्कचन्द्रावाताग्नि-जीवेषु परमात्मनि' इति केशवस्वामी ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

भीमः—(सहर्षमात्मगतम्) एवम्, हिडिम्बायाः पुत्रोऽयम् । सदृशो ह्यस्य गर्वः ।

रूपं सत्त्वं बलं चैव पितृभिः सदृशं बहु ।
प्रजासु वीतकारुण्यं मनश्चैवास्य कीदृशम् ॥ ३९ ॥

(प्रकाशम्) भोः पुरुष ! मुच्यताम् ।

घटोत्कचः—न मुच्यते ।

भीमः—भो ब्राह्मण ! गृह्यतां तव पुत्रः । वयमेनमनुगमिष्यामः ।

द्वितीयः—मा मा भवानेवम् ।

पाण्डवकुलोत्पन्नोऽपि घटोत्कचः कथमेवं निर्दय इत्याह भीमसेनः—रूपमित्यादिना । अस्य=घटोत्कचस्य; रूपम्=आकृतिः; सत्त्वम्=पराक्रमः; बलम्=सामर्थ्यम्; पितृभिः=युधिष्ठिरादिभिः जनकैः; बहु=अत्यर्थम्; सदृशम्=तुल्यम्; किन्तु, प्रजासु=प्रजाजनेषु; वीतकारुण्यम्=निर्दयम्, वीतं विगतं कारुण्यं यस्मात् (बहु०) तत्, मनः=चित्तम्; कीदृशम्=कथम् ? अस्य मनः कुत्सितं न तु पितृसदृशमित्यर्थः । अनुष्टुप् वृत्तम् ॥ ३९ ॥

[घटोत्कच के विषय में भीम मन में यह सोचता है कि]—

अन्वय—अस्य, रूपम्, सत्त्वम्, च, बलम्, बहु, पितृभिः, एव, सदृशम्; [किन्तु] प्रजासु, वीतकारुण्यम्, मनः कीदृशम् ॥ ३९ ॥

पदार्थ—अस्य=इस [लड़के] का; रूपम्, सत्त्वम्=रूप, पराक्रम, च बलम्=और शक्ति, बहु=सभी कुछ; पितृभिः, एव=माता-पिता के ही; सदृशम्=तुल्य है [किन्तु]; प्रजासु=प्राणियों के प्रति; वीत-कारुण्यम्=दयाविहीन; मनः=हृदय वाला; कीदृशम् [जातम्] कैसे हो गया ॥ ३९ ॥

भीम—(प्रसन्नता के साथ मन ही मन) तो यह हिडिम्बा का पुत्र है । तब तो इसका गर्व अनुरूप ही है । क्योंकि—

इसका रूप, पराक्रम और शक्ति सभी कुछ माता-पिता के ही सदृश है (किन्तु) प्राणियों के प्रति दयाविहीन हृदय वाला यह कैसे हो गया ? ॥ ३९ ॥

(प्रकट) हे पुरुष, छोड़ दो ।

घटोत्कच—मैं नहीं छोड़ता ।

भीम—हे ब्राह्मण, अपने पुत्र को ग्रहण करो । मैं ही इसका अनुगमन करूँगा ।

द्वितीय (पुत्र)—नहीं, नहीं, आप ऐसा न करें ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

त्यक्ताः प्रागेव मे प्राणा गुरुप्राणेष्वपेक्षया ।
युवा रूपगुणोपेतो भवांस्तिष्ठतु भूतले ॥ ४० ॥

भीमः—आर्य ! मा मैवम् । क्षत्रियकुलोत्पन्नोऽहम् । पूज्यतमः खलु ब्राह्मणः । तस्मान्मच्छरीरेण ब्राह्मणशरीरं विनिमातुमिच्छामि ।

घटोत्कचः—[आत्मगतम्] एवम्, क्षत्रियोऽयम् । तेन गर्वः । भवतु, इममेव हत्वा नेष्यामि । [प्रकाशम्] अथ केनायं वारितः ?

भीमः—मया ।

द्विजस्य मध्यमः पुत्रः भीमं वारयन्नाह—त्यक्ता इत्यादिना । गुरुप्राणेषु=पूज्यानां जीवनेषु, अपेक्षया, मे=मम; प्राणाः=असवः; प्रागेव=पूर्वमेव; त्यक्ताः=विमुक्ताः; [अतः] युवा=तरुणः; भवान्=भीमः; रूपगुणोपेतः=रूपेण सौन्दर्येण तथा दयादिना गुणेन उपेतः युक्तः, भूतले=पृथिव्याम्; तिष्ठतु=दीर्घकालं यावत् प्राणैर्युक्तोऽवतिष्ठतु । अनुष्टुप् वृत्तम् ॥ ४० ॥

अन्वय—गुरु-प्राणेषु, अपेक्षया, मे, प्राणाः, प्राक्, एव त्यक्ताः । [अतः] युवा, भवान्, रूप-गुणोपेतः, भूतले, तिष्ठतु ॥ ४० ॥

पदार्थ—गुरु-प्राणेषु=गुरुओं के प्राणों की; अपेक्षया=अपेक्षा से; मे, प्राणाः=अपने प्राणों का; प्राक् एव=पहले ही से; त्यक्ताः=मैंने त्याग किया है । [अतः] युवा भवान्=युवक आप; रूप-गुणोपेतः=रूप और गुण से युक्त होकर, भूतले=पृथ्वी पर; तिष्ठतु=रहें ॥ ४० ॥

गुरु-जनों के प्राणों के बदले में अपने प्राणों का पहले से ही मैंने त्याग किया है । अतः रूप एवं गुणों से सम्पन्न युवा आप पृथ्वी पर रहें ॥ ४० ॥

भीम—आर्य, ऐसा न कहें । मैं क्षत्रिय कुल में उत्पन्न हूँ और ब्राह्मण तो सबसे पूज्य होते हैं । अतः मैं अपने ही शरीर से ब्राह्मण शरीर को बदलने का इच्छुक हूँ ।

घटोत्कच—(मन ही मन) तो यह क्षत्रिय है । इसीलिए इसे इतना दम्भ है । ठीक है, मैं इसी को मारकर ले जाऊँगा । (प्रकट) तो यह किसके द्वारा रोका गया है ?

भीम—मेरे द्वारा ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

घटोत्कचः—किं त्वया ?

भीमः—अथ किम् ।

घटोत्कचः—तेन हि भवानेवागच्छतु ।

भीमः—एवम्, अतिवीर्यबलं नानुगच्छामि। यदि ते शक्तिरस्ति बलात्कारेण मां नय ।

घटोत्कचः—किं मां प्रत्यभिजानीते भवान् ?

भीमः—मत्पुत्र इति जाने ।

घटोत्कचः—कथं कथं तव पुत्रोऽहम् ?

भीमः—कथं रुष्यति, मर्षयतु, मर्षयतु भवान् । सर्वाः प्रजाः क्षत्त्रियाणां पुत्रशब्देनाभिधीयन्ते । अत एव मयाभिहितम् ।

घटोत्कचः—भीतानामायुधं गृहीतम् ।

भीमः—

भीतानाम् आयुधम्=मर्षणायानुरोधोऽयं भीतमेव सूचयति । अतः एषः भयार्तानां पन्थाः ।

भीमः सगर्वं भयस्य स्वरूपं पृच्छति—शपामीत्यादिना । हे भद्र=हे सौम्य; अहं भीमः, सत्येन, शपामि=शपथं करोमि; भयम्[1]=भयनामकं

घटोत्कच—क्या, तुम्हारे द्वारा ?

भीम—और क्या ?

घटोत्कच—तो आप ही चलिए ।

भीम—ऐसा, बलिष्ठ और पराक्रमी मैं इस प्रकार अनुगमन नहीं करूँगा। यदि तुम्हारे पास शक्ति हो तो मुझे बलपूर्वक ले चलो ।

घटोत्कच—आप नहीं जानते कि मैं कौन हूँ ?

भीम—हाँ, मैं जानता हूँ कि 'तुम मेरे बेटे हो ।'

घटोत्कच—कैसे, मैं आपका पुत्र कैसे ?

भीम—क्यों रुष्ट होते हैं ? हमे क्षमा करें, क्षमा करें; क्योंकि सारी प्रजा क्षत्त्रियों द्वारा 'पुत्र' शब्द से ही अभिहित होती है। इसीलिए मेरे द्वारा ऐसा कहा गया ।

घटोत्कच—आपने तो डरपोक लोगों का आयुध ग्रहण कर लिया ।

---

१. तु० 'किमेतद् भो भयं नाम भवतोऽद्य मया श्रुतम्'—बाल० ३.८.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शपामि सत्येन भयं न जाने
ज्ञातुं तदिच्छामि भवत्समीपे ।
किंरूपमेतद् वद भद्र ! तस्य
गुणागुणज्ञः सदृशं प्रपत्स्ये ॥ ४१ ॥

घटोत्कचः—एष ते भयमुपदिशामि, गृह्यतामायुधम् ।

भीमः—आयुधमिति । गृहीतमेतत् ।

घटोत्कचः—कथमिव ।

पदार्थः; न जाने=कीदृशं तदिति न जानामि । तद्=भयम्, भवत्समीपे=त्वदन्तिके, ज्ञातुम्=अवगन्तुम्; इच्छामि=गच्छामि; एतद्=भयस्य; किं रूपम्=किमाकारं च; वद=ब्रूहि; हि, तस्य=भयस्य; गुणागुणज्ञः=गुण-दोषाभिज्ञः, भूत्वा, सदृशम्=तदनुरूपम्; प्रपत्स्ये=करिष्यामि । उपजाति वृत्तम् ॥ ४१ ॥

[घटोत्कच के व्यवसाय को जानने की इच्छा से भीम इस प्रकार पूछते हैं]—

अन्वय—हे भद्र !, [अहम्], सत्येन, शपामि, [यत्], भयम् न जाने, तत्, ज्ञातुम्, भवत्, समीपे, इच्छामि । एतत्, रूपम्, किम् ? वद । तस्य, गुणागुणज्ञः; सदृशम्, प्रपत्स्ये ॥ ४१ ॥

पदार्थ—हे भद्र=हे सौम्य !' [अहम्=मैं]; सत्येन=सचमुच, शपामि=शपथ खाता हूँ । [यत्=कि]; भयम्=भय को; न जाने=मैं नहीं जानता हूँ । तत्=उसीको; ज्ञातुम्=जानने के लिए; भवत् समीपे=आप के समीप; इच्छामि=इच्छा कर रहा हूँ । एतत्=इसका; रूपम्=रूप; किम्=क्या है ? वद=कहो; तस्य=उसके; गुणागुणज्ञः=गुणों और अवगुणों को जानने के बाद; सदृशम्; प्रपत्स्ये=जैसा होगा वैसा करेंगे ॥ ४१ ॥

भीम—हे सौम्य, मैं सचमुच शपथ खाता हूँ कि भय को मैं नहीं जानता । अतः आपके समीप उसी को जानने के लिए इच्छुक हूँ । इसका रूप क्या है ? कहो । उसके गुणों और अवगुणों को जानने के बाद जैसा होगा वैसा करेंगे ॥४१॥

घटोत्कच—ठीक है, मैं बताता हूँ कि 'डर क्या है ।' अपना आयुध ले लो ।

भीम—आयुध ? लो यह ले लिया ।

घटोत्कच—किस तरह ?

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भीमः—

काञ्चनस्तम्भसदृशो रिपूणां निग्रहे रतः।
अयं तु दक्षिणो बाहुरायुधं सदृशं मम ॥ ४२ ॥

घटोत्कचः—इदमुपपन्नं पितुर्मे भीमसेनस्य।

भीमः—अथ कोऽयं भीमो नाम ?

कथमहं सायुध इति भीमसेनः कथयति—काञ्चनेत्यादिना। रिपूणाम्;=शत्रूणाम्; निग्रहे=दमने; रतः=संलग्नः; काञ्चन-स्तम्भसदृशः=स्वर्णस्तम्भ-तुल्यः, काञ्चनस्य सुवर्णस्य स्तम्भः तेन सदृशः; अयम्=शरीरवर्ती; दक्षिणः=वामेतरः; बाहुः=भुजः; मम=भीमसेनस्य; सहजम्[1]=सहजातं स्वाभाविकम्; आयुधम्=शस्त्रम्। अतः आयुधस्थान्यस्य न आवश्यकता—इति भावः। उपमालङ्कारः। अनुष्टुप् वृत्तम् ॥ ४२ ॥

[अन्य अस्त्रों को अनावश्यक समझते हुए भीम अपने हाथ को ही शस्त्र रूप में बताते हैं]—

अन्वय—काञ्चनस्तम्भ सदृशः, रिपूणां, निग्रहे, रतः, अयम्, दक्षिणः बाहुः, मम, सहजम्, आयुधम् [अस्ति] ॥ ४२ ॥

पदार्थ—काञ्चन-स्तम्भ-सदृशः=सुवर्ण के खम्भे के समान; रिपूणाम्=शत्रुओं का; निग्रहे=दमन करने में; रतः=संलग्न; अयम्=यह; दक्षिणः बाहुः=दाहिना हाथ; मम=मेरा; सहजम्=स्वाभाविक; आयुधम्=शस्त्र; [अस्ति=है] ॥ ४२ ॥

भीम—स्वर्ण-स्तम्भ के समान शत्रुओं का दमन करने में संलग्न यह दाहिना-हाथ ही मेरा स्वाभाविक शस्त्र है ॥ ४२ ॥

घटोत्कच—यह तो मेरे पिता भीमसेन के लिए सम्भव है।

भीम—तो, तो यह 'भीम' कौन है ?

---

१. तु० (i) 'सहजौ मे प्रहरणं भुजौ पीनांसकोमलौ'—पञ्चरात्र २.२५।
(ii) 'गिरितटकठिनांसौ एव बाहू ममैतौ प्रहरणमपरं तु त्वाशां दुर्बलानाम्'—बाल० ३.११।
(iii) 'आर्यकः भीमस्यानुकरिष्यामि शस्त्रं बाहुर्भविष्यति'—मृच्छ० २.१७।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विश्वकर्ता शिवः कृष्णः शक्रः शक्तिधरो यमः।
एतेषु कथ्यतां भद्र ! केन ते सदृशः पिता ॥ ४३ ॥

घटोत्कचः—सर्वैः।

भीमः—धिगनृतमेतत्।

घटोत्कचः—कथम् ? कथम् अनृतमित्याह। क्षिपसि मे गुरुम्।

कोशः—रिपूणाम्–'रिपो वैरिसपत्नारि द्विषद्द्वेषणदुर्हृदः' अमरकोषः।

'कोऽयं भीमो नाम' इति पृच्छति भीमसेनः—विश्वेत्यादिना। विश्वकर्ता=ब्रह्मा, विश्वस्य जगतः कर्ता निर्मातेति भावः। शिवः=महेश्वरः; कृष्णः=विष्णुः, कर्षति जनेभ्यः दुःखान् यः सः कृष्णः; 'विष्णुर्नारायणः कृष्णो वैकुण्ठो विष्टरश्रवा' इत्यमरः। शक्रः=इन्द्रः; 'जिष्णुर्लेखर्षभः शक्रः शतमन्युर्दिवस्पतिः' इत्यमरः। शक्तिधरः=स्कन्दः 'धरतीति'धरः शक्तेः, धरः कुमारः; 'षाण्मातुरः शक्तिधरः कुमारः क्रौञ्चदारणः' इत्यमरः। यमः=कृतान्तः, 'कृतान्तो यमुना भ्राता शमनो यमराड् यमः' इत्यमरः। एतेषु=देवविशेषेषु मध्ये; ते=तव; पिता=जनकः; केन=देवेन; सदृशः=तुल्यः; अस्ति इति शेषः; भद्र=हे सौम्य, कथ्यताम्=उच्यताम्; एष्वन्यतमेन सदृशप्रभावशाली यदि यः कोऽपि स्यात् तमेवाऽहं वीर गणयेयम्, न तु ततो हीनगुणमिति भावः। अनुष्टुप् वृत्तम् ॥४३॥

अन्वय—विश्वकर्ता, शिवः, कृष्णः, शक्रः, शक्तिधरः, यमः—हे भद्र ! कथ्यताम् एतेषु ते पिता केन सदृशः ? ॥ ४३ ॥

पदार्थ—विश्वकर्ता=जगत् के रचयिता (ब्रह्मा); शिवः=भगवान् शङ्कर; कृष्णः=विष्णु, शक्रः=इन्द्र; शक्तिधरः=कुमार कार्तिकेय, यमः=यमराज; एतेषु=इन (देवताओं) के बीच; हे भद्र !=हे सौम्य; कथ्यताम्=कहो; ते पिता=तुम्हारे पिता; केन सदृशः=किसके सदृश; वर्तते=हैं ॥ ४३ ॥

सर्वैः=पूर्वोक्तैः षड्भिः। क्षिपसि=निन्दसि। प्रहरामि=ताडयामि, गिरिकूटम्=पर्वतशृंगम् ॥

जगत् के कर्ता ब्रह्मा, भगवान् शङ्कर, विष्णु, इन्द्र, कुमार कार्तिकेय व यमराज—इन देवों के मध्य, हे सौम्य, कहो तुम्हारे पिता किसके सदृश हैं ?

घटोत्कच—सभी के समान हैं।

भीम—ओह, झूठ, यह बिलकुल झूठ है।

घटोत्कच—कैसे, यह कथन झूठ कैसे है ?

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भवतु, इमं स्थूलं वृक्षमुत्पाटच प्रहरामि। (उत्पाटच प्रहरति) कथमनेनापि न शक्यते हन्तुम्। किन्तु खलु करिष्ये। भवतु, दृष्टम्। एतद् गिरिकूटमुत्पाटच प्रहरामि।

शैलकूटं मयाक्षिप्त· प्राणानादाय यास्यति।

भीमः—

रुष्टोऽपि कुञ्जरो वन्यो न व्याघ्रं धर्षयेत् वने ॥ ४४ ॥

घटोत्कचः—(प्रहृत्य) कथमनेनापि न शक्यते हन्तुम्। किन्तु खलु करिष्ये। भवतु, दृष्टम्।

मया=घटोत्कचेन, आक्षिप्तम्=प्रक्षिप्तम्; शैलकूटम्=गिरिशिखरम्; अस्य; प्राणान्=असून्; आदाय=गृहीत्वा; यास्यति=गमिष्यति। वने=अरण्ये; वन्यः=वने भवः वन्यः, रुष्टः अपि=कुपितोऽपि; कुञ्जरः=गजः, व्याघ्रम्=शार्दूलम्; न धर्षयेत्[1]=न परिभवेत्। लोकोक्त्यलङ्कारः। तल्लक्षणं तु—'लोकाप्रवादानुकृतिर्लोकोक्तिरिति भण्यते।' अनुष्टुप् वृत्तम् ॥ ४४ ॥

अन्वय—मया, आक्षिप्तम्, [इदम्] शैलकूटम्, [तव] प्राणान्, आदाय, [एव] यास्यति। रुष्टः, अपि, वन्यः, कुञ्जरः, वने, व्याघ्रम्, न धर्षयेत् ॥४४॥

पदार्थ—मया=मेरे द्वारा; आक्षिप्तम्=फेंका गया, [इदम्] शैलकूटम्=यह पर्वत-शिखर; [तव] प्राणान्=तुम्हारे प्राण, आदाय [एव]=लेकर (ही), यास्यति=जायगा। रुष्टः अपि=क्रुद्ध होकर भी; वन्यः=जङ्गली; कुञ्जरः=हाथी; वने=जङ्गल में; व्याघ्रम्=सिंह को; न धर्षयेत्=भर्त्सना नहीं करता है ॥४४॥

तो तुम हमारे पूज्य की निन्दा करते हो। अच्छा तो इस विशाल वृक्ष को उखाड़ कर प्रहार करूँ। (उखाड़ कर प्रहार करता है) कैसे? मैं तो इससे भी इसे नहीं मार सकता। तो क्या किया जाय। अच्छा, समझा। इस पहाड़ की शिखर को ही उखाड़ कर प्रहार करूँ।

मेरे द्वारा फेंका गया यह पर्वत-शिखर [अब] तुम्हारे प्राण लेकर ही जायगा।

भीम—किन्तु,

क्रुद्ध होकर भी जङ्गली हाथी जङ्गल में सिंह का धर्षण नहीं करता ॥४४॥

घटोत्कच—(प्रहार करके) कैसे? मैं तो इससे भी इसे मारने में समर्थ नहीं हूँ। क्या करूँ? अच्छा, समझा।

---

१. तु० 'न व्याघ्रं मृगशिशवः प्रधर्षयन्ति—'प्रतिमा० ५.१८।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नन्वहं भीमसेनस्य पुत्रः पौत्रो नभस्वतः ।
तिष्ठेदानीं सुसन्नद्धो नियुद्धे नास्ति मत्समः ॥ ४५ ॥

(इत्युभौ नियुद्धं कुरुतः)

घटोत्कचः—(भीमसेनं बद्ध्वा)

व्रजसि कथमिह त्वं वीर्यमुल्लङ्घ्य बाह्वो-

घटोत्कचः प्रकारान्तरेण जयमपश्यन् स्ववंशपरिचयं दत्त्वा बाहुयुद्धाय भीमसेनस्य आह्वानं करोति–नन्वहमित्यादिना । अहम्=घटोत्कचः; भीमसेनस्य=पाण्डवमध्यमस्य; पुत्रः=तनयः; नभस्वतः=वायोः, 'नभस्वद्वातपवनपवमानप्रभञ्जनाः' इत्यमरः । पौत्रः=वायुपौत्रत्वेन बलजवतिशययोगित्वमुक्तम्; ननु=निश्चितम् । इदानीम्=साम्प्रतम्, सुसन्नद्धः=सुजज्जितः; तिष्ठ=स्थिरो भव; नियुद्धे=मुष्टियुद्धे मल्लयुद्धे वा; मत्समः=मत्तुल्यः; नास्ति=न कोऽपि वर्तते । अनुष्टुप् वृत्तम् ॥ ४५ ॥

[घटोत्कच अपने वंश का परिचय देते हुए मल्लयुद्ध के लिए ललकारता है]–

अन्वय–ननु, अहम्, भीमसेनस्य, पुत्रः, [अथ च] नभस्वतः, पौत्रः [अस्मि] । [अतः] तिष्ठ; इदानीम्, नियुद्धे, मत्समः, सुसन्नद्धः [कश्चिद्] नास्ति ॥४५॥

पदार्थ—ननु अहम्=निश्चय ही मैं; भीमसेनस्य=भीमसेन का; पुत्रः=पुत्र; [अथ च=और] नभस्वतः=वायु का; पौत्रः=पौत्र; [अस्मि=हूँ] । [अतः] तिष्ठ=इसलिए ठहरो । इदानीम्=इस समय; नियुद्धे=बाहु-युद्ध में, मत्समः=मेरे समान, सुसन्नद्धः=अच्छी प्रकार से डटकर लड़ने वाला; [कश्चिद्] नास्ति=[कोई] नहीं है ॥ ४५ ॥

घटोत्कचः बाहुपाशेन भीमसेनं बद्ध्वा एवं वदति–व्रजसीत्यादिना । इह=अस्मिन् युद्धे; त्वम्=भीमसेनः; बाह्वोः=मद् भुजयोः; वीर्यम्=पराक्रमं शक्तिः वा;

निश्चय ही मैं भीमसेन का पुत्र और वायु का पौत्र हूँ । अतः रुको, अब बाहु-युद्ध में मेरे समान अच्छी प्रकार से डटकर लड़ने वाला कोई नहीं है ॥४५॥

(इस प्रकार दोनों बाहु युद्ध करते हैं)

घटोत्कच—[भीमसेन को बाहुपाश में बाँधकर)—

सुदृढ बन्धन में बँधे हुए हाथी के समान मेरी बाहों से निबद्ध तुम मेरी भुजाओं की शक्ति का उल्लङ्घन करके अब इस वन में किस प्रकार जा सकते हो ?

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गज इव दृढपाशैः पीडितो मद्भुजाभ्याम् ।

भीमः—(आत्मगतम्) कथं गृहीतोऽस्म्यनेन । भोः सुयोधन ! वर्धते खलु शत्रुपक्षः । कृतरक्षो भव । (प्रकाशम्) भोः पुरुष ! अवहितो भव ।

घटोत्कचः—अवहितोऽस्मि ।

भीमः—(नियुद्धबन्धमवधूय)

व्यपनय बलदर्पं दृष्टसारोऽसि वीर !

उल्लङ्घ्य=अतिक्रम्य; मद्भुजाभ्याम्=मम बाहुभ्याम्, पीडितः=दृढं बद्धः; दृढपाशैः=दृढरज्जुभिः बद्धः, गज इव=हस्तीव, कथम्=केन प्रकारेण; व्रजसि=गच्छसि; मम भुजपाशमुल्लङ्घ्य कथमपि गन्तुं न शक्नोषीत्यर्थः । 'गज इव दृढपाशैः' इत्युपमालङ्कारः ॥

वर्धते खलु=शत्रुपक्षः वृद्धिं प्राप्नोति खलु; मत्सूनोः शक्त्या सहायभूतया त्वत्पक्षादभ्यधिकबलो भवतीत्यर्थः । अवधूय=तिरस्कृत्य ॥

भीमः स्वपरिश्रमलाघवं प्रकाशयन्नाह—व्यपनयेत्यादिना । हे वीर=हे पराक्रमशालिन्; दृष्टसारः=प्रत्यक्षीकृतबलः, दृष्टः सारो यस्य सः; 'सारो बले स्थिरांशे च' इत्यमरः । एवंभूतस्त्वम्, असि । अतः; बलदर्पम्=बलस्य विक्रमस्य दर्पं गर्वम्, व्यपनय=परित्यज । हि=यतः, बाहुयुद्धे=मल्लयुद्धे मुष्टि-युद्धे वा, बाह्वोः युद्धं तस्मिन्, मम=भीमसेनस्य; परिखेदः=परिश्रमः; न विद्यते=न वर्तते । मालिनी वृत्तम् ॥ ४६ ॥

अन्वय—दृढपाशैः, गज, इव, मद्भुजाभ्याम्, पीड़ितः, बाह्वोः वीर्यम्, उल्लङ्घ्य, त्वम्, इह, कथम् व्रजसि ।

पदार्थ—दृढपाशैः=सुदृढ़ बन्धन में बँधे हुए; गज इव=हाथी के समान; मद्भुजाभ्याम्=मेरी भुजाओं से; पीड़ितः=बँधे हुए; बाह्वोः=मेरी भुजाओं की; वीर्यम्=शक्ति का, उल्लङ्घ्य=उल्लङ्घन करके, त्वम् इह=तुम इस वन में,

---

भीम—(मन ही मन) इससे मैं कैसे पकड़ लिया गया ? ओ दुर्योधन तुम्हारा शत्रुपक्ष बढ़ रहा है । अब अपनी रक्षा के लिए सतर्क हो जाओ । (प्रकट) हे पुरुष, अपनी रक्षा में तैयार हो जाओ ।

घटोत्कच—हाँ, मैं चौकस हूँ ।

भीम—(बाहुपाश को छुड़ाकर)—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

न हि मम परिखेदो विद्यते बाहुयुद्धे ॥ ४६ ॥

घटोत्कचः—कथमनेनापि न शक्यते हन्तुम्। किन्नु खलु करिष्ये। भवतु, दृष्टम्। अस्ति मातृप्रसादलब्धो मायापाशः। तेन बद्ध्वैनं नेष्यामि। कुतः खल्वापः। भो गिरे। आपस्तावत्। हन्त स्रवति। (आचम्य मन्त्रं जपति) भोः पुरुष !

मायापाशेन बद्धस्त्वं विवशो न गमिष्यसि।

कथम्=किस प्रकार; व्रजसि=जा सकते हो ?

अन्वय—हे वीर ! बल-दर्पम्, व्यपनय। दृष्ट-सारः, असि; हि, बाहुयुद्धे मम, परिखेद, न, विद्यते ॥ ४६ ॥

पदार्थ—हे वीर !=हे पराक्रमी, बलदर्पम्=अपने बल का घमण्ड, व्यपनय=छोड़ दो, दृष्टसारः असि=तुम्हारी शक्ति देख ली गई। हि=क्योंकि, बाहु-युद्धे=मल्लयुद्ध में, मम=मुझे, परिखेदः=परिश्रम, न विद्यते=नहीं हुआ ॥ ४६ ॥

कुतः खल्वापः[1] ? आपस्तावत् 'स्रवन्तु' इति शेषः। स्रवति अर्थाद् गिरिणापः प्रदत्ताः।

मायापाशस्य प्रभावं वर्णयति घटोत्कचः—मायेत्यादिना। मायापाशेन=मायामयः पाशः मायापाशः तेन मायायाः पाशेन अर्थात् ऐन्द्रजालिक-प्रयोगानुष्ठानेन बद्धः सन् त्वम् इदानीं, विवशः=परतन्त्रः; विगतः वशः स्वातन्त्र्यं यस्य सः; न गमिष्यसि=अंग-चलनशक्ति-विरहात् यत्र तत्र गन्तुं न सक्षमो भविष्यसि; अतः अधुना, उत्सवे=वर्षारम्भे अनुष्ठेयोत्सवे, शक्रध्वज इव=इन्द्र-

---

हे वीर, अपने बल का दम्भ छोड़ दो। तुम्हारी शक्ति देख ली गई है क्योंकि मल्लयुद्ध में मुझे परिश्रम नहीं करना पड़ा ॥ ४६ ॥

घटोत्कच—क्या मैं इससे भी इसे नहीं मार सकता। फिर क्या करूँ ? अच्छा, समझ गया। मेरे पास तो माता के प्रसाद से प्राप्त एक माया-पाश भी है। उससे ही बाँधकर इसे ले जाऊँगा। किन्तु जल कहाँ से प्राप्त करें ? हे गिरि, मुझे जल दो। अहा, यह बहने लगा। (आचमन करके मन्त्र जपता है) हे पुरुष,—

माया पाश से बँधे हुए परतन्त्र तुम अब कहीं न जा सकोगे और

---

१. तु० पञ्चरात्र, दूतवाक्य, प्रतिज्ञा, अभिषेक, प्रतिमा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राजसे रज्जुभिर्बद्धः शक्रध्वज इवोत्सवे ॥ ४७ ॥

(इति मायया बध्नाति)

भीमः—कथं मायापाशेन बद्धोऽस्मि । किमिदानीं करिष्ये । अस्ति महेश्वरप्रसादलब्धो मायापाशमोक्षो मन्त्रः । तं जपामि । कुतः खल्वापः ? भवतु, भो ब्राह्मणकुमार ! आनय कमण्डलुगता अपः ।

वृद्धः—इमा आपः ।

ध्वज इव, शक्रस्य इन्द्रस्य ध्वजः केतुः इव, रज्जुभिः वद्धः राजसे=शोभसे । परिस्पन्दशक्तिविरहात् त्वं यष्टिरिव शोभसे इत्यर्थः इन्द्रध्वजो नाम वृष्ट्यर्थं राज्ञां पूज्य इन्द्रसम्बन्धी कोऽपि ध्वजो वेणुयष्टिमयः । तदुक्तं यथा भविष्योत्तरपुराणे—

एवं यः कुरुते यात्रामिन्द्रकेतोर्युधिष्ठिर ।
पर्जन्यः कामवर्षी स्यात् तस्मिन् राष्ट्रे न संशयः ।

शक्रध्वज इवेत्युपमालङ्कारः । अनुष्टुप् वृत्तम् ॥ ४७ ॥

अन्वय—मायापाशेन, बद्धः, विवशः, त्वम्, अनुगमिष्यसि । उत्सवे, रज्जुभिः, वद्धः, शक्रध्वज, इव, राजसे ॥ ४७ ॥

पदार्थ—मायापाशेन=इन्द्रजालिक वन्धन के द्वारा, वद्धः=बँधे हुए, विवशः=परतन्त्र होकर, त्वम्=तुम, अनुगमिष्यसि=मेरा अनुगमन करोगे । उत्सवे=सांवत्सरिकउत्सव में, रज्जुभिः=रस्सियों से, बद्ध=बँधे हुए, शक्रध्वज इव=इन्द्र की ध्वजा के समान, राजसे=शोभित होगे ॥ ४७ ॥

सांवत्सरिक उत्सव में रस्सियों से बँधे हुए इन्द्र की ध्वजा के समान शोभित होगे ॥ ४७ ॥

(इस प्रकार माया से बांधता है)

भीम—अरे, क्या मैं मायापाश से बँध गया ? अब क्या करूँ ? अच्छा, समझ गया । मेरे पास तो भगवान् शङ्कर के प्रसाद से प्राप्त मायापाश से छुटकारे का मन्त्र है । उसको ही जपता हूँ । किन्तु जल कहाँ है ? ठीक है, हे ब्राह्मण कुमार, कमण्डलु का जल लाओ ।

वृद्ध—यह जल लीजिए ।

(भीम जल लेकर और आचमन करके मन्त्र जपकर माया को हटाते हैं)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(भीम आचम्य मन्त्रं जप्त्वा मायां मोचयति)

घटोत्कचः—अये पतितः पाशः। किमिदानीं करिष्ये। भवतु, दृष्टम्। भोः पुरुष ! पूर्वसमयं स्मर।

भीमः—समय इति। एष स्मरामि। गच्छाग्रतः।

(उभौ परिक्रामतः)

वृद्धः—पुत्रकाः ! किं कुर्मः। अयं गच्छति वृकोदरः।

आक्रम्य राक्षसमिमं ज्वलदुग्ररूप-
मुग्रेण बाहुबलवीर्यगुणेन युक्तम्।

समयानुरोधात् अनुगच्छतो भीमसेनस्य पराक्रमं वृद्धो वर्णयति—आक्रम्येत्यादिना। ज्वलदुग्ररूपम्=प्रज्वलितभयङ्करस्वरूपम्; ज्वलत् उग्रं भयङ्करं रूपं स्वरूपं यस्य तम्; उग्रेण=घोरेण; बाहुबलवीर्यगुणेन युक्तम्=भुजबल-पराक्रमगुणेन सहितम्; इमम्=पुरो दृश्यमानम्; राक्षसम्=घटोत्कचम्; आक्रम्य=अभिभूय; एषः=भीमसेनः; शनकैः=मन्दं मन्दम्; सलीलम्=लीलया सहितम्; शीघ्रम्=वेगपाति; आसारवर्षम्=धारासंपातवृष्टिम्, 'धारा-संपात आसारः' इत्यमरः। अवधूय=तिरस्कृत्य; गोवृषभ इव=गोषु वृषभः महोक्ष इव, वृषश्रेष्ठो वा; प्रयाति=गच्छति। यथा गोवृषभः धारासंपातवृष्टिं तिरस्कृत्य स्वेच्छया सलीलं गच्छति, तथायं भीमसेनोऽपि राक्षसबाधाम् अवधूय विस्रब्धम् अनुसरतीत्यर्थः। गोवृषभ इवेत्युपमालङ्कारः। वसन्ततिलका वृत्तम्॥

[भीम के जाने पर खेद युक्त वृद्ध अपनी व्यथा इस प्रकार प्रकट करता है—]

अन्वय—ज्वलदुग्ररूपम्, उग्रेण, बाहु-बल-वीर्य-गुणेन, युक्तम्, इमम्, राक्षसम्, आक्रम्य, एषः, शनकैः, असार-वर्षम्, शीघ्रम, अवधूय, गोवृषभः, इव, सलीलम्, प्रयाति ॥ ४८ ॥

पदार्थ—ज्वलद्-उग्र-रूपम्=प्रदीप्त और उग्र रूप वाले, उग्रेण=अत्यन्त

घटोत्कच—अरे, यह पाश तो छूट गया। अब क्या करूँ ? अच्छा, समझ गया। हे पुरुष, पहले की हुई शर्त का स्मरण करो।

भीम—शपथ ? अच्छा, मैं स्मरण करता हूँ। ठीक है, आगे चलो।

(दोनों जाते हैं)

वृद्ध—हे पुत्रो ! हम लोग क्या करें ? यह भीमसेन तो जा रहे हैं।

प्रदीप्त और उग्र रूप वाले, अत्यन्त प्रचण्ड, भुजाओं के बल एवं शौर्य से

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एष प्रयाति शनकैरवधूय शीघ्र-
मासारवर्षमिव गोवृषभः सलीलः ॥ ४८ ॥

घटोत्कचः—इह तिष्ठ । त्वदागमनमम्बायै निवेदयामि ।

भीमः—बाढम् । गच्छ ।

घटोत्कचः—(उपसृत्य) अम्ब, अभिवादये घटोत्कचोऽहम् । चिराभिलषितो भवत्या आहारार्थमानीतो मानुषः ।

(प्रविश्य)

हिडिम्बा—जाद ! चिरं जीव । कीदिसो माणुसो आणीदो । [जात चिरं जीव । कीदृशो मानुष आनीतः] ।

घटोत्कचः—भवति ! वाङ्मात्रेण मानुषो, न वीर्येण ।

प्रचण्ड, बाहु-बल-वीर्य-गुणेन=भुजाओं के बल एवं शौर्य से; युक्तम्=युक्त; इमम्=इस; राक्षसम्=राक्षस को; आक्रम्य=हराकर; एषः=यह [भीम]; शनकैः=धीरे-धीरे; सलीलम्=लीला के सहित, शीघ्रम्=वेग से गिरने वाली, आसारवर्षम्=मूसलाधार वृष्टि को; अवधूय=तिरस्कृत करके; गोवृषभः इव=वृषभ के समान प्रयाति=जा रहे हैं ॥ ४८ ॥

घटोत्कचोऽहम्=घटोहं (घट+ऊहम्) घटवद् वितर्क्यम् आस्यं—तदुपलक्षितं शिरः यस्य सः घटोहास्यः; स चासौ उत्कचश्च । रूपमात्रेण मानुषः—आकृत्या एव मानवः, न वीर्येण=न पराक्रमेण । अत्र काकूत्या घटोत्कचः भीमसेनस्य निन्दां करोति । 'वाङ्मात्रेण' इति पाठान्तरे जात्यभिलापकशब्दमात्रेणेत्यर्थः इति गणपतिशास्त्रिणा व्याख्यातम् ।

युक्त इस राक्षस को अभिभूत करके यह [भीम] धीरे-धीरे उसी प्रकार लीला-सहित जा रहे हैं जैसे वेग से गिरने वाली मूसलाधार वृष्टि की परवाह न करके श्रेष्ठ वृषभ जाता है ॥ ४८ ॥

घटोत्कच—यहीं रुको । मैं तुम्हारे आगमन की सूचना माता को दे दूँ ।

भीम—ठीक है, जाओ ।

घटोत्कच—(समीप जाकर) माँ, यह मैं घटोत्कच प्रणाम करता हूँ । बहुत दिनों से आप द्वारा अभिलषित मनुष्य आपके आहार के लिये लाया हूँ ।

(हिडिम्बा का प्रवेश)

हिडिम्बा—पुत्र, चिरञ्जीवी होओ । किस प्रकार का मनुष्य लाये हो ?

घटोत्कच—वह कहने का ही मनुष्य है, बल से नहीं ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हिडिम्बा—किं बह्मणो। [किं ब्राह्मणः]।

घटोत्कचः—न ब्राह्मणः।

हिडिम्बा—आदु थेरो। [अथवा स्थविरः]।

घटोत्कचः—न वृद्धः।

हिडिम्बा—किं बालो। [किं बालः]।

घटोत्कचः—न बालः।

हिडिम्बा—जइ एव्वं पेक्खामि दाव णं। [यद्येवं पश्यामि तावदेनम्]।

(उभौ परिक्रामतः)

हिडिम्बा—किं एसो माणुसो आणीदो। [किमेष मानुष आनीतः]।

घटोत्कचः—भवति ! कोऽयम्।

हिडिम्बा—उम्मत्तअ ! दव्वदं खु अअं। [उन्मत्तक ! दैवतं खल्वयम्]।

घटोत्कचः—आः, कस्य दैवतम् ?

उन्मत्तक = हे भ्रान्तचित्त।

हिडिम्बा—क्या ब्राह्मण है ?

घटोत्कच—ब्राह्मण नहीं है।

हिडिम्बा—तो क्या वृद्ध है ?

घटोत्कच—वृद्ध भी नहीं है।

हिडिम्बा—तो क्या बालक है।

घटोत्कच—बालक भी नहीं है।

हिडिम्बा—यदि ऐसा है तो इसे मैं देखूंगी।

(दोनों जाते है)

हिडिम्बा—क्या यही मनुष्य लाये हो ?

घटोत्कच—माँ, यह कौन है ?

हिडिम्बा—अरे जड़मति, यह हम लोगों के देवता हैं।

घटोत्कच—आह, किसके देवता हैं ?

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हिडिम्बा--तव अ मम अ। [तव च मम च]।

घटोत्कचः--कः प्रत्ययः ?

हिडिम्बा-एसो पच्चओ। जेदु अय्यउत्त। [एष प्रत्ययः। जयत्वार्यपुत्रः]।

भीमः (विलोक्य) का पुनरियम्। अये, देवी हिडिम्बा।

अस्माकं भ्रष्टराज्यानां भ्रमतां गहने वने।
जातकारुण्यया देवि ! सन्तापो नाशितस्त्वया ॥ ४९ ॥

हिडिम्बे ! किमिदम्।

हिडिम्बा--(कर्णे) अय्यउत्त ईदिसं बिअ। [आर्यपुत्र ! ईदृशमिव]।

जतुगृहदाहानन्तरम् अरण्यवासकाले हिडिम्बया उपकृतमात्मानं स्मरतो भीमसेनस्य कृतज्ञतासूचकं वचनम्—अस्माकमिति। हे देवि=हे हिडिम्बे; भ्रष्टराज्यानाम्=भ्रष्टं च्युतं राज्यं येभ्यः तेषां विनष्टराज्यानाम्; गहने=दुर्गमे, वने=अरण्ये; भ्रमताम्=इतस्ततः सञ्चरताम्, अस्माकम्=युधिष्ठिरादीनां भ्रातॄणाम्; जातकारुण्यया=उद्भूतदयया वा, त्वया=भवत्या हिडिम्बया; संतापः=क्लेशः; नाशितः=शमितः। अनुष्टुप् वृत्तम् ॥ ४९ ॥

अन्वय—हे देवि !, भ्रष्टराज्यानाम् भ्रमताम्, गहने, वने, अस्माकम्, जातकारुण्यया, संतापः, त्वया, नाशितः ॥ ४९ ॥

पदार्थ—हे देवि !=हे देवि, भ्रष्टराज्यानाम्=विनष्ट राज्य वाले; अस्माकम्=हम लोगों के; गहने वने=गहनवन में; भ्रमताम्=घूमते हुए; जातकारुण्यया=उत्पन्न दयालुता के कारण; त्वया=तुम्हारे द्वारा; संतापः=हमारे क्लेश; नाशितः=नष्ट कर दिये गये ॥ ४९ ॥

हिडिम्बा—तुम्हारे और मेरे।

घटोत्कच—क्या प्रमाण है ?

हिडिम्बा--यही प्रमाण है कि 'आर्यपुत्र की जय हो।'

भीम—(देखकर) यह कौन है ? अरे, देवी हिडिम्बा।

हे देवि, विनष्ट राज्य वाले हम लोगों के गहन वन में घूमते हुए उत्पन्न दयालुता के कारण तुम्हारे द्वारा हमारे क्लेश नष्ट कर दिये गये ॥ ४९ ॥

हिडिम्बे, यह क्या है ?

हिडिम्बा—(कान में) आर्यपुत्र, यह ऐसा ही है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भीमः—जात्या राक्षसी, न समुदाचारेण।

हिडिम्बा—उम्मत्तअ ! अभिवादेहि पिदरं [उन्मत्तक ! अभिवादय पितरम्]।

घटोत्कचः—भोस्तात !

अज्ञानात्तु मया पूर्वं यद्भवान्नाभिवादितः।
अस्य पुत्रापराधस्य प्रसादं कर्तुमर्हसि ॥ ५० ॥

अहं स धार्तराष्ट्रवनदवाग्निर्घटोत्कचोऽभिवादये। पुत्रचापलं क्षन्तुमर्हसि।

घटोत्कचः भीमम् अभिवादयन् स्वापराधस्य मार्जनं प्रार्थयति—[1]अज्ञानादित्यादिना। मया=घटोत्कचेन, भवान्=पूज्यः भीमतातः; यत् अज्ञानात्=तातोऽयमिति परिचयविरहात्; पूर्वम्=प्राक्; न अभिवादितः=प्रणामादिना समुदाचारेण न सत्कृतः; अस्य पुत्रापराधस्य=अनभिवादनरूपस्य पुत्रकृतस्यागसः; प्रसादम्=अनुग्रहम्; कर्तुम्=विधातुम्; अर्हसि=योग्योऽसि। अनुष्टुप् वृत्तम् ॥ ५० ॥

अन्वय—मया, अज्ञानात्, पूर्वं यत् भवान् न अभिवादितः, अस्य, पुत्रापराधस्य, प्रसादम्, कर्तुम्, अर्हसि ॥ ५० ॥

पदार्थ—मया=मेरे द्वारा; अज्ञानात्=अज्ञान के कारण; पूर्वम्=पहले; यत्=जो; भवान्=आपका; न अभिवादितः=अभिवादन नहीं किया गया, अस्य=इस, पुत्रापराधस्य=पुत्र के द्वारा किये गये अपराध को, प्रसादम्=क्षमा, कर्तुम्=करने के लिए, अर्हसि=योग्य होइए अर्थात् मेरा अपराध क्षमा कीजिए और मेरा प्रणाम स्वीकार कीजिए ॥ ५० ॥

भीम—तुम जन्म से राक्षसी हो, न कि आचरण से।

हिडिम्बा—ओ जड़मति, अपने पिता का अभिवादन करो।

घटोत्कच—ओ तात—

अज्ञान के कारण मेरे द्वारा पहले जो आपका अभिवादन नहीं किया गया पुत्र द्वारा किये गये इस अपराध को क्षमा कीजिए ॥ ५० ॥

धृतराष्ट्रवंशरूपी वन के लिए वनाग्नि के समान मैं घटोत्कच आपको

---

१. तु० पञ्चरात्र २.६८।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भीमः—एह्येहि पुत्र ! व्यतिक्रमकृतं क्षान्तमेव । (इति परिष्वज्य) अयं सः धार्तराष्ट्रवनदवाग्निः । पुत्रापेक्षीणि खलु पितृहृदयानि । पुत्र ! अतिबलपराक्रमो भव ।

घटोत्कचः—अनुगृहीतोऽस्मि ।

वृद्धः—एवम्, भीमसेनपुत्रोऽयं घटोत्कचः ।

भीमः—पुत्र ! अभिवादयात्रभवन्तं केशवदासम् ।

घटोत्कचः—भगवन् ! अभिवादये ।

वृद्धः—पितृसदृशगुणकीर्तिर्भव ।

घटोत्कचः—अनुगृहीतोऽस्मि ।

वृद्धः—भो वृकोदर ! रक्षितमस्मत्कुलं स्वकुलमुद्धृतं च । गच्छामस्तावत् ।

धार्तराष्ट्रवनदवाग्निः=दुर्योधनादयः धृतराष्ट्रस्य पुत्राः, ते धार्तराष्ट्रा एव वनम्, तस्य दवाग्निः वनाग्निः ।

प्रणाम करता हूँ । पुत्र-कृत चपलता को क्षमा करें ।

भीम—आओ, आओ पुत्र, तुम्हारे द्वारा किये गये अपराध को तो पहले ही क्षमा कर दिया गया । (आलिङ्गन करके) यही वह धृतराष्ट्रवंशरूपी वन की दावाग्नि है । पिता का हृदय तो सर्वदा पुत्रापेक्षी ही होता है । पुत्र, अत्यन्त बलवान् और पराक्रमी होओ ।

घटोत्कच—मैं अनुगृहीत हूँ ।

वृद्ध—इस प्रकार यह भीमसेन का पुत्र घटोत्कच है ।

भीम—पुत्र, इन पूजनीय केशवदास का अभिवादन करो ।

घटोत्कच—भगवन्, मैं आपको प्रणाम करता हूँ ।

वृद्ध—पिता के समान गुण एवं कीर्ति वाले होओ ।

घटोत्कच—मैं अनुगृहीत हूँ ।

वृद्ध—हे भीम, आपने हमारे कुल की रक्षा की, और अपने कुल का भी उद्धार किया । अब हम लोग चलें ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

भीमः—

अनुग्रहात् तु भवतः सर्वमासीदिदं शुभम्।
आश्रमोऽदूरतोऽस्माकं तत्र विश्रम्य गम्यताम् ॥ ५१ ॥

वृद्धः—कृतमातिथ्यमनेन जीवितप्रदानेन। तस्माद् गच्छामस्तावत्।

भीमः—गच्छतु भवान् सकुटुम्बः पुनर्दर्शनाय।

वृद्धः—वाढम्। प्रथमः कल्पः।

भीमः ब्राह्मणस्य सत्कारं कुर्वन्नाह—अनुग्रहादित्यादि। इदं सर्वम्=पाण्डवकुलोद्धरणं त्वत्कुलरक्षणञ्चेदं समग्रम्; भवतः=तव ब्राह्मणस्य, अनुग्रहात्=अनुकम्पातः, शुभम्=मङ्गलम्, आसीत्=अभवत्, भवत्परित्राणार्थमागतस्य मम भीमस्य दारपुत्रसमागमसिद्धया मांगलिकमभवदित्यर्थः। अस्माकम्=पाण्डवानाम्, आश्रमः=आवासः, अदूरतः=सन्निकट एव वर्तते। तत्र=आश्रमे, विश्रम्य=मदीयातिथ्यस्वीकारादिना मार्गसञ्चरणपरिश्रमम् अपनीय, गम्यताम्=सुखपूर्वकं गन्तव्यदेशं प्रति प्रस्थीयताम्। अनुष्टुप् वृत्तम् ॥ ५१ ॥

अन्वय—भवतः, अनुग्रहात्, इदम्, सर्वम्, शुभम्, आसीत्। आस्मकम्, आश्रमः, अदूरतः [वर्तते, अतः] तत्र, विश्रम्य, गम्यताम् ॥ ५१ ॥

पदार्थ—भवतः=आपकी, अनुग्रहात्=अनुकम्पा से, इदम्=यह, सर्वम्=सब कुछ, शुभम्=शुभ ही, आसीत्=हुआ। अस्माकम्=हमलोगों का, आश्रमः=निवासस्थान, अदूरतः [वर्तते]=दूर नहीं [है]। [अतः] तत्र=वहाँ, विश्रम्य=विश्राम करके, गम्यताम्=यात्रा कीजिए ॥ ५१ ॥

भीम—आपकी अनुकम्पा से यह सब कुछ शुभ ही हुआ। हम लोगों का आश्रम यहाँ से दूर नहीं है। अतः वहाँ विश्राम करके फिर आगे यात्रा करें ॥ ५१ ॥

वृद्ध—इस जीवन-दान के द्वारा तो आपने सम्पूर्ण आतिथ्य कर ही दिया। अतः हम लोग चलें।

भीम—कुटुम्बसहित पुनः दर्शन देने के लिए आप जायें।

वृद्ध—अच्छा, बहुत अच्छा विचार है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

(सपुत्रत्रयकलत्रो निष्क्रान्तः केशवदासः)

भीमः—हिडिम्बे ! इतस्तावत् । वत्स ! घटोत्कच ! इतस्तावत् । तत्रभवन्तं केशवदासमाश्रमपदद्वारमात्रमपि सम्भावयिष्यामः ।

[भरतवाक्यम्]

यथा नदीनां प्रभवः समुद्रो
यथाहुतीनां प्रभवो हुताशः ।

आश्रमपदद्वारमात्रम्=आश्रमद्वारावधिकम् । सम्भावयिष्यामः=अनुगमिष्यामः; अर्थात् अनुगमनेन सत्करिष्यामः ।

'प्रशस्तिः शुभशंसनम्'—इत्युक्तरूपं शुभशंसनं प्रयोगान्ते प्रयुञ्जान आह—भरतवाक्यम्=भरतस्य नटस्य वाक्यं वचनम् । नाटकाभिनयसमाप्तौ सामाजिकेभ्यो नटेनाशीर्दीयते इत्यर्थः ।

नटः शुभाशंसनं करोति—यथेत्यादिना । यथा समुद्रः=येन प्रकारेण सरित्पतिः, 'समुद्रोऽब्धिरकूपारः पारावारः सरित्पतिः' इत्यमरः । नदीनाम्=सरिताम्, प्रभवः=स्वामी उत्पत्तिलयहेतुत्वात्, यथा हुताशः=येन प्रकारेण, हुतम् अश्नातीति हुताशः अग्निः, आहुतीनाम्=होमानाम्, प्रभवः=स्वामी भोक्तृत्वात् । यथा मनः=येन प्रकारेण चित्तम्. इन्द्रियाणाम्=चक्षुरादीनाम्; प्रभवम्=स्वामी प्रेरकत्वात्, तथा=तेनैव प्रकारेण, भगवान्=भगः ऐश्वर्यादि षट्कं तद्वान्,

"ऐश्वर्यस्य समग्रस्य वीर्यस्य यशसः श्रियः ।
ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीरणा ॥" विष्णुपुराणे इत्युक्तत्वात् । उपेन्द्रः=इन्द्रावरजः, भगवान् विष्णुरित्यर्थः । 'उपेन्द्रइन्द्रावरजश्चक्रपाणिश्चतुर्भुजः' इत्यमरः, नः=अस्माकम्, प्रभुः=ईश्वरः भवेदिति शेषः । मालारूपकालङ्कारः । उपेन्द्रवज्रावृत्तम् । तल्लक्षणं तु—'उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ' ॥५२॥

(अपने तीनों पुत्रों और पत्नी के सहित केशवदास का निष्क्रमण)

भीम—ओ हिडिम्बे, इधर आओ । वत्स, घटोत्कच, इधर आओ । इन आदरणीय केशवदास को हम लोग आश्रम के द्वार तक ती पहुँचा दें ।

[उत्पत्ति और लय के कारण] जैसे नदियों का स्वामी समुद्र है, [भोक्ता होने के कारण] जैसे आहुतियों का स्वामी अग्नि है और [प्रेरक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

यथेन्द्रियाणां प्रभवं मनोऽपि
तथा प्रभुर्नो भगवानुपेन्द्रः ॥ ५२ ॥

(निष्क्रान्ताः सर्वे)

॥ मध्यमव्यायोगं नाम नाटकं समाप्तम् ॥

—:०:—

अन्वय—यथा, नदीनाम्, समुद्रः, प्रभव; यथा आहुतीनाम्, हुताशः, प्रभवः, अपि, यथा, इन्द्रियाणाम्, मनः, प्रभवम्; तथा भगवान्, उपेन्द्रः, नः, प्रभुः ॥५२॥

पदार्थ—यथा=जैसे; नदीनाम्=नदियों का, समुद्रः प्रभवः=स्वामी समुद्र है; यथा=जैसे; आहुतीनाम्=आहुतियों का; हुताशः प्रभवम्=स्वामी अग्नि है; अपि=और; यथा=जैसे, इन्द्रियाणाम्=समस्त इन्द्रियों का; मनः प्रभवः=स्वामी मन है, तथा=वैसे ही, भगवान्=ऐश्वर्यों वाले, उपेन्द्रः=भगवान् विष्णु, नः=हम [सामाजिक लोगों के] प्रभुः=ईश्वर हैं ॥ ५२ ॥

विमर्श—महाकवि भास ने प्रभु शब्द का प्रयोग इस श्लोक में तीन बार किया है। यह उनकी विशेषता है, जो पहले भी की गयी है।

नटराजं नमस्कृत्य देवीं च भरतं तथा।
भागीरथ्यास्तटे काश्यां लंकाक्षेत्रे सुशोभने ॥ १ ॥
श्रीमद्रामकुबेरस्य मालवीयस्य सूनुना।
सुधाकरेण रचिता व्याख्या व्यायोगसंगता ॥ २ ॥

—:०:—

होने से चक्षु आदि] इन्द्रियों का स्वामी जैसे मन हीं है उसी प्रकार षड्-ऐश्वर्य युक्त भगवान् विष्णु हम सामाजिकों के ईश्वर हैं ॥ ५२ ॥

(सभी का निष्क्रमण)

॥ 'मध्यमव्यायोग' नामक नाटक समाप्त ॥

इस प्रकार पं० रामकुबेर मालवीय (भूतपूर्व साहित्यविभागाध्यक्ष, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय और सम्पूर्णानन्दसंस्कृत विश्व-विद्यालय) के आत्मज डा० सुधाकर मालवीय कृत 'सरला' हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई ॥

—:०:—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

मध्यमव्यायोग के श्लोकों की छन्द-योजना

छन्द का नाम	अक्षर संख्या	श्लोकाङ्क	योग	लक्षण
अनुष्टुप् [श्लोक]	८	२; ७; १२-२३; २८-३१; ३३-४०; ४२-४५; ४७; ४९-५१	३४	श्लोके षष्ठं गुरु ज्ञेयं सर्वत्र लघु पञ्चमम् । द्विचतुष्पादयोर्ह्रस्वं सप्तमं दीर्घमन्ययोः ॥
उपेन्द्रवज्रा	११	५२	१	उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ ।
उपजाति	११	९;४१	२	स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः । उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ । } इत्यनयोरुपजातिः
पुष्पिताग्रा	१२/१३	४; २४; २५	३	अयुजि नयुगरेफतो यकारो युजि च नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा ।
वंशस्थ	१२	१०	१	जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ ।
वसन्ततिलका	१४	१; ३; ८; ११; २७; ४८	६	ज्ञेया वसन्ततिलकातभजा जगौ गः ।
मालिनी	१५	५; ६; ३२; ४६	४	ननमयुतेयं मालिनी भोगिलोकैः ।
स्रग्धरा	२१	२६	१	म्रभ्नैर्यानान्त्रयेण त्रिमुनि यति-युता स्रग्धरा कीर्तितेयम् ।
			५२	

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मध्यमव्यायोग के सुभाषित

	पृष्ठाङ्क
१. आपदं हि पिता प्राप्तो ज्येष्ठपुत्रेण तार्यते	२६
२. जानामि सर्वत्र सदा च नाम द्विजोत्तमा पूज्यतमाः पृथिव्याम्	१३
३. ज्येष्ठो भ्राता पितृसमः	२५
४. ज्येष्ठः श्रेष्ठः कुले लोके पितॄणां च सुसंप्रियः ।	२४
५. निर्वेदप्रत्यर्थिनी खलु प्रार्थना ।	१९
६. पदिमत्तधम्मिणी पदिब्बदत्ति णाम । [पतिमात्रधर्मिणी पतिव्रतेति नाम]	२३
७. बन्धुस्नेहाद्धि महतः कायस्नेहस्तु दुर्लभः ।	२७
८. माता किल मनुष्याणां दैवतानां च दैवतम् ।	४८
९. रुष्टोऽपि कुञ्जरो वन्यो न व्याघ्रं घर्षयेद् वने ।	५६
१०. वनं निवासाभिमतं मनस्विनाम्	१६
११. सर्वाः प्रजाः क्षत्रियाणां पुत्रशब्देनाभिधीयन्ते ।	५२

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्लोकानुक्रमणिका

	श्लोकाङ्काः	पृष्ठाङ्काः
अनुग्रहात्तु	५१	६७
अस्माकं भ्रष्ट	४९	३४
अस्यामाचम्य	३१	१२
अज्ञानात्तु	५०	६५
आक्रम्य राक्षस	४८	६१
आपदं हि पिता	१९	२६
इदं हि शून्यं	१०	१५
कलमदशन	६	१०
काञ्चनस्तम्भ	४२	५४
किं यासि मद्	८	१२
कृतकृत्यं शरीरं	१५	२२
कौरव्यकुल	३८	४९
खगशतविरुते	२५	३३
ग्रहयुगल	५	८
जानामि सर्वत्र	९	१३
ज्येष्ठः श्रेष्ठः कुले	१७	२४
ज्येष्ठो भ्राता	१८	२५
तरुण तरुणता	२४	३१
तरुण रविकर	४	७
त्यक्ताः प्रागेव	४०	५१
धनोऽस्मि यद	२०	२७
नन्वहं भीम	४५	५७
निवृत्त व्यवहारो	३४	४५
पत्न्या चारित्र	१२	२०
परिष्वजस्व गाढं	२२	२९
पायात् स वोऽसुर	१	२
पुत्रनक्षत्र	३३	४४
ब्राह्मणः श्रुत	१३	२१
भोश्शब्दोच्चा	२	४
भ्रातॄणां मम	३५	४६
मध्यमः पञ्च	२९	३९
मध्यमस्त्विति	३०	४०
मध्यमोऽहं	२८	३८
मम प्राणैर्गुरु	१६	२३
माता किल मनुष्याणां	३७	४८
मायापाशेन	४७	५९
मुच्यतामिति	३६	४७
यथा नदीनां	५२	६८
यद्यर्थितो द्विज	१४	२१
यस्त्रिशृङ्गो	२३	३०
युद्धप्रियाश्च	११	१७
रूपं सत्त्वं	३९	५०
वज्रपातो	७	११
विनिमाय गुरु	२१	२८
विश्वकर्ता शिवः	४३	५५
व्रजसि कथमिह	४६	५७
शपामि सत्येन	४१	५३
शैलकूटं	४४	५६
श्रान्तैः सुतै	३	६
सजलजलद	३२	४३
सिंहाकृतिः कनक	२७	३६
सिंहास्यः सिंह	२६	३५

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कृष्णदास संस्कृत सीरीज

९५

महाकविश्रीभासप्रणीतम्

दूतवाक्यम्

'ज्योत्स्ना'-'सरला'-संस्कृत-हिन्दी-व्याख्यासहित-
विस्तृत-भूमिका-परिशिष्टादि-विभूषितम्

सम्पादको व्याख्याकारश्च

डॉ० सुधाकर मालवीयः

एम० ए०, पी० एच्० डी०, साहित्याचार्यः

[संस्कृत विभागः, काशी हिन्दू विश्वविद्यालयः, वाराणसी]

कृष्णदास अकादमी, वाराणसी

१९८७

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रकाशक : कृष्णदास अकादमी, वाराणसी

मुद्रक : चौखम्बा प्रेस, वाराणसी

संस्करण : प्रथम, वि० सं० २०४४

मूल्य : रू० ६-००

© कृष्णदास अकादमी

पो० बा० नं० १११८

चौक, (चित्रा सिनेमा बिल्डिंग), वाराणसी-२२१००१

[भारत]

अपरं च प्राप्तिस्थानम्

चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस

के० ३७/९९, गोपाल मन्दिर लेन

पो० बा० १००८, वाराणसी-२२१००१ (भारत)

फोन : ६३१४५

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

KRISHNADAS SANSKRIT SERIES
95

DŪTAVĀKYA

OF

BHASA

Edited With Sanskrit & Hindi Commentaries; Critical Introduction, Explanatory Notes and Appendices

By

Dr. Sudhakar Malaviya
M. A., Ph. D., Sahityacarya
Department of Sanskrit, Banaras Hindu University

KRISHNADAS Academy
VARANASI-221001

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

© KRISHNADAS ACADEMY

Oriental Publishers and Distributors

Post Box No. 1118

Chowk, (Chitra Cinema Building); Varanasi-221001

(INDIA)

First Edition

1987

Price Rs. 6-00

Also can be had from

Chowkhamba Sanskrit Series Office

K. 37/99, Gopal Mandir Lane

Post Box 1008, Varanasi-221001 (India)

Phone : 63145

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आशीर्वाद

ग्रन्थाध्ययननिर्मग्नो मालवीयः सुधाकरः ।
प्रसिद्धिं प्राप्नुयान्नित्यं ग्रन्थसंस्कारकर्मणि ॥

—विश्वनाथ भट्टाचार्यः

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कर्तव्यो भ्रातृषु स्नेहो विस्मर्तव्या गुणेतराः ।
सम्बन्धो बन्धुभिः श्रेयान् लोकयोरुभयोरपि ॥

—दूतवाक्य २९

दोषों को भूल जाना चाहिए और भाइयों से भ्रातृस्नेह करना चाहिए, क्योंकि भाइयों के साथ सम्बन्ध रखना लोक एवं परलोक दोनों ही में श्रेयस्कर है ॥ २९ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दो शब्द

महाकवि भासकृत दूतवाक्य नामक एकाङ्की नाटक का प्रस्तुत संस्करण विश्वविद्यालय एवं सामान्य विद्यार्थियों की आवश्यकता की पूर्ति के लिए ही मुख्य रूप से तैयार किया गया है। इस संस्करण में पाठभेद सहित मूलपाठ, उसकी संस्कृत व्याख्या, श्लोकों के अन्वय, हिन्दी अनुवाद तथा उपयोगी विस्तृत भूमिका और उसकी समीक्षा भी दी गई है। टिप्पणी में व्याकरण सम्बन्धी प्रकृति-प्रत्यय आदि का स्पष्टीकरण, समासादि का निर्देश, कोश, विसंगतियों का समाधान एवं अलङ्कार तथा छन्दों का उल्लेख किया गया है।

इस एकाङ्की में पाण्डव-पक्ष से दुर्योधन के पास कृष्ण के दूत बनकर जाने और वहाँ उनके द्वारा पाण्डवों के भाग (हिस्सा) माँगने पर दुर्योधन द्वारा कृष्ण को पकड़ने की आज्ञा देने पर भगवान् कृष्ण के विराट् रूप ग्रहण करने की कथा वर्णित है। एकाङ्की बहुत छोटा है। मात्र छप्पन श्लोक ही हैं और कुछ ही घण्टों में मञ्चनीय है।

यद्यपि इस ग्रन्थ के अनेक संस्करण प्राप्त हैं। फिर भी मुझे पं० गणपति शास्त्री एवं प्रो० देवधर के संस्करणों से विशेष सहायता प्राप्त हुई है। इसके लिए मैं उनका कृतज्ञ हूँ।

पूज्य पिता श्री स्व० पं० रामकुबेर मालवीय (साहित्य-विभागाध्यक्ष, का०हि०वि०वि० और वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय) के पुनीत चरणों में बैठकर भास के नाटकों का जो आस्वाद मैं ले पाया था उसे आज साहित्य पथ में देखते हुए मुझे अत्यन्त हर्ष हो रहा है। वस्तुतः इसका श्रेय कृष्णदास अकादमी के निदेशक बन्धुद्वय श्री विट्ठलदास गुप्त एवं श्री ब्रजमोहनदास गुप्त को ही है। उनके औदार्य का मैं अत्यन्त आभारी हूँ जिन्होंने इस कार्य के लिए मुझे प्रोत्साहित किया।

रथयात्रा, १९८७
संस्कृत विभाग
का. हि. वि.वि., वाराणसी

विदुषां वशंवदः
सुधाकर मालवीय

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विषय-सूची

दो शब्द ५

भूमिका १–२६

भास के नाटकों की खोज और उनका एककर्तृत्व ३

भास का काल ८

भास की कृतियाँ और उनके कथा-स्रोत के आधार ११

भास के नाटकों का संक्षिप्त परिचय १२

दूतवाक्य-समीक्षा १५

कथानक की पृष्ठभूमि १५

दूतवाक्य की कथावस्तु १५

कथानक-समालोचन और उसका महाभारतीय परिवेश १९

दूतवाक्य नाम का कारण २१

नाटक में रस, नाटक का प्रकार २१

दूतवाक्य की नाट्यकला २२

चरित्रचित्रण

१. वासुदेव २४

२. दुर्योधन २६

दूतवाक्य (मूल और व्याख्या) १–८०

परिशिष्ट १ :

श्लोकानुक्रमणिका ८१–८२

परिशिष्ट २ :

दूतवाक्य के श्लोकों की छन्दःयोजना ८३

परिशिष्ट ३ :

सुभाषितसंग्रहः ८४

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भूमिका

महाकवि भास संस्कृत साहित्य के नाटककारों में अग्रगण्य हैं। इनकी कृतियाँ इतनी प्रसिद्ध थी कि कालिदास ने भी अपने 'मालविकाग्निमित्र' नामक नाटक में बड़े आदर के साथ इनका स्मरण किया है।[1] बाणभट्ट [७ वीं शती] ने 'हर्षचरित' में इनके नाटकों की विशेषताएँ बतलाते हुए इन्हें सूत्रधार से प्रारम्भ होने वाला बताया है।[2] भामह [७ वीं शती] ने 'प्रतिज्ञा-यौगन्धरायण' की मूल कथा की आलोचना के साथ-साथ इसके एक प्राकृत पद्य को भी संस्कृत रूप में उद्धृत किया है।[3] बालचरित एवं चारुदत्त में उपलब्ध 'लिम्पतीव तमोङ्गानि' के अलङ्कार की दण्डी [७वीं शती] ने पाण्डित्यपूर्ण मीमांसा की है।[4] वाक्पतिराज [८ वीं शती] ने 'गउडवहो' नामक प्राकृत भाषा के महाकाव्य में इनको ज्वलन मित्र [अग्नि का मित्र] कहा है।[5] वामन [९ वीं शती] ने 'काव्यलङ्कार' और उसकी 'सूत्र-वृत्ति'

---

१. प्रथितयशसां भाससौमिल्लकविपुत्रादीनां प्रबन्धानतिक्रम्य वर्तमानकवेः कालिदासस्य क्रियायां कथं परिषदो बहुमानः।

२. सूत्रधारकृतारम्भैर्नाटकैर्बहुभूमिकैः ।
सपताकैर्यशो लेभे भासो देवकुलैरिव ।। हर्षचरित, श्लोक १५

३. हुतोऽनेन मम भ्राता मम पुत्रः पिता मम–' काव्यालङ्कार, अ० ४

४. काव्यादर्श २.२२६

५. भासम्मि जलणमित्ते कुंतीदेवे अ जस्स रघुआरे।
सौबन्धे अ बन्धम्मि हारीयन्द्रे अ आणन्दो ।।
[भासे ज्वलनमित्रे कुन्तीदेव च यस्य रघुकारे।
सौबन्धवे च बन्धे हारीचन्द्रे च आनन्दः ।।] 'गउडवहो'

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

में भास के तीन उद्धरण दिए हैं।[१] राजशेखर [१०वीं शती] ने 'स्वप्नवासवदत्तम्' नाटक को 'काव्यमीमांसा' में उत्तम कोटि का स्वीकार किया है।[२]

अभिनवगुप्त [१० वीं शती] ने अभिनवभारती में 'स्वप्नवासवदत्तम्' का उल्लेख किया है।[३] इसके अतिरिक्त 'ध्वन्यालोकलोचन' में इस नाटक से एक श्लोक भी उद्धृत किया है। किन्तु यह सम्प्रति मुद्रित ग्रन्थ में प्राप्त नहीं है।[४] महाराज भोज [११ वीं शती] ने 'शृङ्गारप्रकाश' में 'स्वप्नवासवदत्तम्' का उल्लेख किया है।[५] रामचन्द्र गुणचन्द्र[१२वीं शती] ने नाट्यदर्पण' में 'स्वप्नवासवदत्तम्' से एक श्लोक उद्धृत किया है।[६] आलङ्कारिक जयदेव

---

१. (क) शरच्छशांकगौरेण वाताविद्धेन भामिनी। काव्यालङ्कारसूत्रवृत्तिः ५.३
काशपुष्पलवेनेदं साश्रुपातं मुखं मम ॥ स्वप्नवासवदत्तम्, अंक ४

(ख) यो भर्तृपिण्डस्य कृते न युध्येत्। प्रतिज्ञायौगन्धरायण ४.२

(ग) यासां बलिर्भवति मद्गृहदेहलीनां,
हंसैश्च सारसगणैश्च विलुप्तपूर्वः। काव्यालंकार १.५
तास्वेव पूर्वबलिरूढयवाङ्कुरासु
बीजाञ्जलिः, पतति कीटमुखावलीढः ॥ चारु० १.२

२. भासनाटचक्रेऽपि छेकैः क्षिप्ते परीक्षितुम्।
स्वप्नवासवदत्तस्य दाहकोऽभून्न पावकः ॥

३. क्वचित् क्रीडा यथा स्वप्नवासवदत्तायाम्। अभिनवभारती १.७४
(स्वप्न० अंक २)

४. सञ्चितपक्षकवाटं नयनद्वारं स्वरूपतडनेन।
उद्घाट्य सा प्रविष्टा हृदयगृहं मे नृपतनूजा ॥

५. स्वप्नवासवदत्ते पद्मावतीमस्वस्थां द्रष्टुं राजा समुद्रगृहकं गतः। पद्मावतीरहितं च तदवलोक्य तस्या एव शयनीये सुष्वाप। वासवदत्ता च स्वप्नवदस्वप्ने ददर्श। स्वप्नायमानश्च वासवदत्तामाबभाषे।
शृङ्गारप्रकाश, स्वप्नवासवदत्तम्, पंचम अंक का संक्षेप।

६. यथा भास कृते स्वप्नवासवदत्ते—
शेफालिकाशिलातलमवलोक्य वत्सराजः—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

[१२ वीं शती] ने 'प्रसन्नराघव' की प्रस्तावना में उन्हें कविता-कामिनी का हास कहा है।[1] इस प्रकार प्राचीन समय में भास का संस्कृत साहित्य में बड़ा गौरवपूर्ण स्थान था।

भास के नाटकों की खोज और उनका एककर्तृत्व

संस्कृत साहित्य के इतने प्रसिद्ध रत्न होने पर भी बहुत दिनों तक विद्वानों को इनका केवल नाम ही मालूम था। इनके काल, जीवन-वृत्त और ग्रन्थों के विषय में कुछ भी ज्ञान न था। सौभाग्यवशात् १९१२ में महामहोपाध्याय श्री टी० गणपति शास्त्री ने 'स्वप्नवासवदत्तम्' आदि तेरह नाटक त्रिवेन्द्रम् से अनन्तशयनं ग्रन्थमाला में प्रकाशित कराए और उन्हें भास की रचना बतलाया।

ये नाटक मध्य संस्कृत नाटकों से कुछ विलक्षण थे। संस्कृत नाटकों के आरम्भ में ग्रन्थकार अपना परिचय देते हैं। कालिदास, भवभूति आदि नाटककार इस शैली का अनुसरण करते हैं। परन्तु इन नाटकों में ग्रन्थकार का नाम नहीं स्मरण किया गया है। जल्हणकृत सूक्तिमुक्तावली में राजशेखर का एक श्लोक उद्धृत है, जिसमें 'स्वप्नवासवदत्तम्' को उत्कृष्ट नाटक बताया गया है। प्रस्तुत तेरह नाटकों में एक 'स्वप्ननाटक' भी है जिसमें वत्सराज उदयन और वासवदत्ता की कथा है। पं० टी. गणपति शास्त्री ने अनुमान किया कि राजशेखर निर्दिष्ट स्वप्न-वासवदत्ता यही है, और क्योंकि स्वप्नवासवदत्ता के कर्त्ता राजशेखर द्वारा भास माने गये हैं अतः प्रस्तुत स्वप्न नाटक के कर्त्ता भी भास ही हैं उन्होंने आगे लिखा कि—१. क्योंकि रचना शैली आदि में ये सब नाटक एक ही प्रकार के हैं; अतः इनके कर्त्ता भास ही होंगे। एतद्देशीय और विदेशीय अनेक विद्वानों ने पं० टी० गणपति शास्त्री द्वारा निकाला गया परिणाम स्वीकार कर लिया। २. परन्तु अनेक ऐसे भी विद्वान् हैं जो ऐसा नहीं मानते। उनके

पदाक्रान्तानि पुष्पाणि सोष्म चेदं शिलातलम्।
नूनं काचिदिहासीना मां दृष्ट्वा सहसा गता॥ (नाट्यदर्पण)

१. भासो हासः कविकुलगुरुः कालिदासो विलासः। (प्रसन्नराघव)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अनुसार ये नाटक भास के नहीं हैं।

३. इन दोनों मतों के अतिरिक्त एक तीसरा मत हैं। उसके मानने वालों का कथन है कि भारत के केरल आदि दक्षिण प्रान्तों में प्राचीन कवियों के अनेक नाटकों का संक्षेप और परिवर्तन जो किया गया उसका यही प्रयोजन था कि ये नाटक रंगमंच पर आसानी से अभिनीत हो सकें। इसी कारण शकुन्तला आदि नाटकों का भी संक्षिप्त एवं परिवर्तित रूप वहाँ मिलता है। इसी प्रकार त्रिवेन्द्रम् से प्रकाशित होने वाले ये स्वप्न-नाटक आदि तेरह ग्रन्थ भी प्राचीन नाटकों का संक्षेप एवं रूपान्तर ही हैं।

यह तीसरा मत कुछ विद्वानों को मान्य है। इसका कारण यह है कि अनेक प्राचीन ग्रन्थकारों ने भास कृत 'स्वप्नवासवदत्तम्' के नाम से कई श्लोक अपने अपने ग्रन्थों में उद्धृत किए हैं। सम्प्रति मुद्रित 'स्वप्न-नाटक' में वे सब श्लोक नहीं प्राप्त होते। अतः विद्वानों का अनुमान है कि प्रस्तुत 'स्वप्न नाटक' में अनेक श्लोक सम्भवतः संक्षेप के कारण लुप्त हो गए। अस्तु इस विवाद के रहते हुए भी इतना तो सुनिश्चित ही है कि भास ने कोई 'स्वप्न वासवदत्तम्' आदि तेरह नाटक रचा था और प्रस्तुत 'स्वप्ननाटक' उसी का रूपान्तर है। इस रूपान्तर का मूल से कितना अन्तर है यह कुछ कहा नहीं जा सकता।

पं० टी. गणपति शास्त्री द्वारा प्रकाशित अन्य बारह नाटकों के अन्त में भी ग्रन्थकार का नाम निर्देश नहीं प्राप्त होता। यही नहीं प्रारम्भ में भी कवि अपने नाम का स्मरण भी नहीं करता। किन्तु रचनाशैली की समानता के कारण पं० टी० गणपति शास्त्री ने यही परिणाम निकला कि यह तेरह नाटक एक ही कवि की कृति हैं और वह कवि भास ही हैं। फिर भी जिन तर्कों के आधार पर विद्वान् भास के कतृत्व का विरोध प्रस्तुत करते हैं वे इस प्रकार है—

१. इन रूपकों में कवि का नाम दिया गया, अतः यह भास की रचनाओं पर आधृत किसी अन्य कवि की कृतियाँ हैं।

२. इनमें सूत्रधार नान्दी के बाद प्रवेश करता है। यह विशेषता इन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तेरह रूपकों की ही नहीं, अपितु सामान्यतः समस्त दक्षिण भारतीय रूपकों की है।

३. इनमें उपलब्ध नाटचकला भास की ही अपनी नहीं, अपितु वैसी नाट्यकला तो दक्षिण भारत के सभी रूपकों में मिलती है।

४. इन रूपकों में भरतमुनि के नाटचशास्त्रीय नियमों का पूर्णतया पालन न होना भी इनकी प्राचीनता का द्योतक नहीं है; क्योंकि निषिद्ध दृश्य तो पश्चकालीन रूपकों में सामान्यतः अधिक प्रभावोत्पादकता की दृष्टि से अपना लिये गये हैं।

५. जहाँ तक भाषा का प्रश्न है उसे भी ठोस आधार नहीं कहा जा सकता; क्योंकि अपाणिनीय प्रयोग तो आर्ष काव्य, पुराण साहित्य और अत्यन्त पश्चवर्ती अनेक ग्रन्थों में बिखरे मिलते हैं। दूसरे; प्राकृत के प्राचीन प्रयोग मलयालम हस्तलेखों की विशेषता है।

इसके अतिरिक्त रूपकों की प्राकृत, हस्तलेखों के लेखन स्थल एवं काल पर निर्भर है, न कि नाट्यकार के काल पर।

६. बाद के लेखकों ने जो पद्य उद्धृत किए हैं, उन्हें उन्होंने भास से संबद्ध नहीं बताया है।

७. सुभाषित ग्रन्थों में उपलब्ध कुछ पद्य त्रिवेन्द्रम् में मिले रूपकों में नहीं मिलते।

८. महामहोपाध्याय के० शास्त्री प्रभृति विद्वानों ने इन्हें 'आश्चर्यचूड़ामणि' 'प्रतिमा' तथा 'अभिषेक' की एकत्र प्राप्ति के आधार पर शक्तिभद्र की रचनाएँ माना है।

९. कुछ विद्वानों ने शूद्रक को भास से अभिन्न सिद्ध करते हुए मृच्छकटिक, बालचरित, अविमारक तथा वत्सराजचरित को शूद्रक की कृतियाँ माना है। कुछ ने 'चारुदत्त' को मृच्छकटिक का अभिनयोचित संक्षिप्त संस्करण माना है।

१०. डा० बार्नेट इन रूपकों को भास का न मान कर पाण्डव राजाओं के सभा कवियों द्वारा लिखित मानते हैं, जब कि अन्य विद्वान् इनके कर्तृत्व का श्रेय पल्लव-नरेशों के सभा कवियों को देते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

११. रामावतार शर्मा के अनुसार कुछ रूपक भास प्रणीत अवश्य हैं किन्तु सब रूपकों को रचना भास ने नहीं की थी।

१२. केरल प्रदेश में ही इनकी उपलब्धि होने से कुछ विद्वान् इन्हें किसी केरल देशीय नाटककार की कृतियाँ मानते हैं। डाक्टर कुन्हन राजा ने इन पर केरल का प्रभाव दर्शाया है तथा 'चारुदत्त' में केरलीय उत्पत्ति के चार शब्दों को प्रस्तुत किया है। डॉ० टामस ने इस मत का विरोध किया है। कुप्पुस्वामी शास्त्री ने 'संबन्ध' शब्द के आधार पर इन रूपकों में मलाबार के 'संबन्ध विवाहों' की ओर संकेत माना है, किन्तु आर० कवि ने इसका विरोध किया है। वस्तुतः ये रूपक केरल के परम्परानुयायी अभिनेता चाक्यारों के भण्डार का एक अंग है। पिशरोति का कथन है कि इन रूपकों के प्रस्तावना भाग बाद में जोड़ दिए गए थे, जब कि मुख्य दृश्यों में मौलिक रूपकों को स्थानीय रङ्गमञ्च की आवश्यकता के अनुकूल ढालकर अथवा संक्षिप्त करके सुरक्षित रखा गया है।

नाटकों का एक-कर्तृत्व—

किन्तु सभी नाटकों का सूक्ष्म विश्लेषण करने पर इनमें कुछ ऐसी समानताएँ प्राप्त होती हैं जिनके साक्ष्य पर विद्वानों को निश्चित रूप से मानना पड़ता है कि ये सभी नाटक किसी एक ही कवि की कृति हैं। अस्तु, विद्वानों के द्वारा जिन तर्कों और समानताओं के आधार पर भास का कृतित्व स्वीकार किया गया है। वे दो प्रकार के हैं—(क) आकृति साम्य और (ख) विषय साम्य।

(क) आकृति साम्य--

१. इन नाटकों में कर्णभार को छोड़कर प्रारम्भिक पूर्वरंग को 'प्रस्तावना' न कहकर स्थापना कहा गया है।

२. इन नाटकों में आदि अन्त प्रायः एक प्रकार का है; जैसे—

(अ) अनेक नाटकों के प्रारम्भ में मुद्रालंकार द्वारा पात्रों की सूचना दे दी गयी है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

(ब) प्राय: सभी नाटक 'नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः' इन्हीं शब्दों से प्रारम्भ होते हैं।

(स) इनमें से अधिकांश नाटकों में 'भरतवाक्य' एक जैसा ही है; जैसे—'इमामपि महीं कृत्स्नां राजसिंहः प्रशास्तु नः।' जहाँ यह नहीं मिलता वहाँ इसी प्रकार का कोई अन्य श्लोक रहता है। इस प्रकार लगभग नाटकों में 'राजसिंहः प्रशास्तु नः' यह अवश्य प्रयुक्त हुआ है।

३. इन नाटकों में भरतप्रतिपादित नाट्यशास्त्र के नियम का पूर्णतया पालन न किया जाना भी यही सूचित करता है कि इनका कर्ता कोई एक ही व्यक्ति है। जैसे युद्ध व मृत्यु आदि रंगमंच पर हीं प्रदर्शित किए गये हैं; तथा अभिषेक, पूजा, शपथ या अश्रु प्रक्षालनार्थ जल रङ्गमञ्च पर ही लिया गया है। इसी प्रकार शयन, क्रीडा एवं दूराह्वान की योजना भी रंगमञ्च पर कर दी गयी है।

४. इन नाटकों में भूमिका बहुत छोटी प्राप्त होती है और प्रारम्भिक संवाद के वाक्य भी प्रायः समान ही हैं, जैसे—'एवमार्यमिश्रान् विज्ञापयामि अये—अङ्ग पश्यामि।'

५. सभी नाटकों के नामों का उल्लेख उन नाटकों के अन्त में ही किया गया है, अन्यत्र नहीं।

(ख) विषय साम्य—

१. इन सभी नाटकों में एक मुख्य समानता यह है कि इनकी भाषा और शैली समान है। कितने ही शब्दों, वाक्यों श्लोकों और पदों को विभिन्न नाटकों में दुहराया गया है। वही उपमा और उत्प्रेक्षा जो नाटक में आ गई हैं दूसरों में भी मिलती है। सूक्थंकर ने ऐसे समान वाक्यों आदि की पूरी सूची दी है। जिनकी संख्या १२७ है।

२. इन रूपकों में अनेक अपाणिनीय प्रयोग में मिलते हैं। जैसे-आप्रच्छ प्रयोग परस्मैपद में है।

३. अनेक नाटकों में नाटकीय व्यङ्ग्य (पताका-स्थानक) का प्रयोग मिलता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

४. कतिपय अप्रचलित छन्दों का प्रयोग इनमें प्राप्त होता है। जैसे—सुवदना, दण्डक आदि। अनुष्टुप् छन्द का प्रयोग बहुत अधिक किया गया है।

५. कुछ नाटक एक दूसरे से सम्बद्ध से जान पड़ते हैं। जैसे—स्वप्नवासवदत्तम्, 'प्रतिज्ञा यौगन्धरायण' का ही उत्तरार्द्ध लगता है। इसी प्रकार प्रतिमा नाटक भी अभिषेक से सम्बद्ध है।

६. इनमें से अनेक नाटको में छोटे पात्रों के नामों में भी समानता है जैसे—'प्रतिज्ञायौगन्ध रायण' व 'दूतवाक्य' में कञ्चुकी का नाम 'बादरायण' है। इसी प्रकार 'स्वप्नवासवदत्तम्' 'प्रतिमा' 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण' और अभिषेक चारों नाटकों में प्रतिहारी का नाम 'विजया' है।

७. प्राय: सभी नाटकों में नाट्यनिर्देशों की न्यूनता समान रूप से मिलती है। जो नाट्यनिर्देश हैं उनमें दो तीन निर्देश साथ-साथ दिये गये हैं, जैसे—'निष्क्रम्य पुन: प्रविश्य' या 'सविस्मयं परिक्रम्यावलोक्य च' आदि।

इस प्रकार सभी नाटकों में समान दृश्यों की अवतारणा, समान भाव और समान शब्दों एवं समान वाक्यों की उपलब्धि से और अन्तत: समान वर्णन पद्धति के आधार पर यही सिद्ध होता है कि इन नाटकों का प्रणेता निश्चित ही कोई एक व्यक्ति है जो राजशेखर और अभिनवगुप्त के साक्ष्य से भास ही हैं।

भास का काल

महाकवि कालिदास द्वारा 'मालविकाग्निमित्र में स्मरण किए जाने से यह निश्चित ही है कि भास कालिदास के पहले प्रथित-यश वाले हो चुके थे। किन्तु कालिदास का काल ही निश्चित नहीं है। कुछ विद्वान् कालिदास का काल ४०० ई० मानते हैं। अत: उनके अनुसार भास ४०० ई० से प्राचीन थे। अन्य विद्वान् कालिदास को प्रथम शती का मानते हैं। अत: उनके अनुसार भास ई० की प्रथम शती के पहले विद्यमान थे। इसी आधार पर पं० टी० गणपति शास्त्री भास को तृतीय ई० पू० मानते हैं। चाणक्य ने अपने अर्थशास्त्र में 'अपीह श्लोकौ भवत:' कहकर जो दो श्लोक उद्धृत किए हैं इनमें दूसरा श्लोक 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण' में मिलता है।' चाणक्य चन्द्रगुप्त के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

मन्त्री थे। उन्होने निश्चित ही यह श्लोक भास से लिया होगा क्योंकि यदि स्मृति से लेते तो अवश्य ही 'इति स्मृतौ' लिखते। जैसा कि इतिहासकारों के अनुसार चन्द्रगुप्त ३२१ ई० पू० राजगद्दी पर आसीन हुए थे, अतः भास का समय उनसे लगभग ५० वर्ष पूर्व मानना ठीक होगा। भास के 'प्रतिमा-नाटक' में बृहस्पतिकृत अर्थशास्त्र में रावण की दक्षता का उल्लेख हुआ है।[२] बार्हस्पत्य अर्थशास्त्र चाणक्य से बहुत पहले का है। यदि भास चाणक्य के बाद होते तो उनके अर्थशास्त्र का उल्लेख अवश्य करते। अतः भास के काल की निम्नतम सीमा ४०० ई० पू० ही सिद्ध होती है।

लोकमान्य तिलक के अनुसार भास कालिदास के पूर्ववर्ती थे, और उनका स्थितिकाल दूसरे या तीसरे शतक के बाद का कदापि नहीं है।[३] वस्तुतः 'भगवद्गीता' के आदि में 'गीता-ध्यान' नाम से नौ श्लोकों की चर्चा करते हुए लोकमान्य का यह भी कथन है कि इन नौ श्लोकों में जो 'भीष्म द्रोणतटां जयद्रथजलाम्' आदि श्लोक उद्धृत है, यह महाकवि भास के 'ऊरुभङ्ग' का आदि श्लोक है।[४] कुछ विद्वान् भास को नारायण काण्व का समकालीन सिद्ध करते हैं।[५] नारायण काण्व का समय ५३–४१ ई० पू० माना गया है। वेलवल्कर के मत से शूद्रक का मृच्छकटिक भास के चारुदत्त से बहुत प्रभावित है अतः भास का समय तीसरी शती ई० पू०

---

१. नवं शरावं सलिलैः सुपूर्णं सुसंस्कृतं दर्भकृतोत्तरीयम्।
तत्तस्य मा भून्नरकं स गच्छेद् यो भर्तृपिण्डस्य कृते न युध्येत्।
(कौटि० अर्थ० १०.३, प्रतिज्ञा० ४.२)।

२. भोः काश्यपगोत्रोऽस्मि, साङ्गवेदमधीये, मानवीयं धर्मशास्त्रं महेश्वरं योगशास्त्रं, बार्हस्पत्यमर्थशास्त्रं प्राचेतसं श्राद्धकल्पञ्च।
(प्रतिमा० अंक ५)

३. लोकमान्यतिलककृत गीता रहस्य, पृ० ५६०।

४. गीता रहस्य, पृ० ५६१।

५. जे० ओ० ए० एस० डी०, बंगाल, जयसवाल, पृ० २५९, १९१३।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

होना चाहिए।[1]

भास की निम्नतम-सीमा पर विचार के बाद उनकी उपरितम सीमा का विचार आवश्यक है। भास के नाटकों में कुछ का सम्बन्ध वत्सराज उदयन से है। भास ने प्रद्योत, दर्शक और उदयन को समकालीन चित्रित किया है। इतिहासकार स्मिथ के अनुसार दर्शक और उनके उत्तराधिकारी का राज्यकाल ४७५ ई० पू० से ४५ ई० पू० के मध्य था।[2] इस प्रकार भास के काल की आदिम सीमा ४५० ई० पूर्व से पहले भी नहीं मानी जा सकती। अतः भास का काल ३०० ई० पू० होना चाहिए।

भास के नाटकों से प्राप्त अनेक आभ्यन्तर प्रमाण भी इसी काल की ओर संकेत करते हैं। इन नाटकों में पाए जाने वाले अपाणिनीय प्रयोगों से यह स्पष्ट है कि पाणिनि के पूर्व भास के नाटकों की रचना हो चुकी थी। भास के प्राकृत कालिदास के प्राकृतों की अपेक्षा प्राचीन मालूम पड़ते हैं। भास के नाटकों से व्यक्त सामाजिक अवस्था मौर्यकाल की सामाजिक अवस्था के समान है। भासकृत नाटकों की रचना-शैली भरत के 'नाट्यशास्त्र' में वर्णित शैली से प्राचीन है। 'मानवीय धर्मशास्त्र' उपलब्ध 'मनुस्मृति' का परामर्श नहीं करता। वह शब्द धर्मसूत्रकार गौतम द्वारा उल्लिखित मानवीय धर्मशास्त्र का बोधक है। गौतम का काल ई० पू० ६०० माना जाता है। महेश्वरकृत 'योगशास्त्र' के समय का ठीक पता नहीं चलता। इसी प्रकार 'प्राचेतस श्राद्धकल्प' का भी पता नहीं चलता। भास के भरतवाक्यों में आए 'राजसिंह' शब्द से ऐसा मालूम पड़ता है कि भास उपर्युक्त तीनों राजाओं में से किसी एक के राजकवि थे। 'स्वप्नवासवदत्तम्' और 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण' से ऐसा प्रतीत होता है कि भास वत्सराज उदयन को अमर बनाना चाहते हैं। इस प्रकार नाटकों के आभ्यन्तर साक्ष्यों के आधार पर भी वह ई० पू० ३०० शती के ही सिद्ध होते हैं।

---

१. वेलवल्कर, एस० के०, ओरि० कान्फ्रे०, १९१९, भाग २, पृ० १८९–२०४।

२. अर्ली हिस्ट्री आफ इण्डिया, पृ० ३८–३९।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

भास की कृतियाँ और उनके कथा-स्रोत के आधार

कथा स्रोतों के आधार पर भास की कृतियों का विभाजन हम पाँच प्रकार से कर सकते हैं—

कथा-स्रोत का आधार

१. प्रतिमानाटक २. अभिषेक	रामायण
३. मध्यमव्यायोग ४. दूतवाक्य ५. दूतघटोत्कच ६. कर्णभार	महाभारत
७. ऊरुभङ्ग ८. पञ्चरात्र	
९. बालचरित	हरिवंश
१०. स्वप्नवासवदत्तम् ११. प्रतिज्ञायौगन्धरायण १२. अविमारक	बृहत्कथा
१३. चारुदत्त	लोकप्रचलित व काल्पनिक

(च) यज्ञफल—

इन उपर्युक्त रचनाओं के अतिरिक्त कुछ विद्वान् 'यज्ञफल' को भी भासकृत मानते हैं। इसे गोण्डल निवासी राजवैद्य जीवराम कालिदास शास्त्री ने १९४१ में प्रकाशित किया। यह रामायण पर आधारित है। इस सम्बन्ध में प्रोफेसर झाला का कथन है कि 'यज्ञफल' भास के अन्य नाटकों की तरह ही प्रारम्भ और समाप्त होता है। किन्तु इसमें बहुत सी नवीन बातें हैं जो भास के समय में नहीं थीं। राम धनुर्भङ्ग से पूर्व प्रेम की दृढ़ता के लिए सीता से उद्यान में मिलते हैं। राम को भी दुष्यन्त के ही समान शंका होती है कि यह कहीं ब्रह्मर्षि की पुत्री तो नहीं हैं। विश्वामित्र नगर एवं ग्राम्यजीवन की तुलना कर ग्राम्य जीवन को श्रेष्ठ बताते हैं, आदि। अतः सम्भव है कि 'यज्ञफल' भास के नाटकों के अनुकरण पर किसी अन्य परवर्ती नाटककार की रचना हो।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भास के नाटकों का संक्षिप्त परिचय

(क) रामायण पर आधृत नाटक—

१. प्रतिमानाटक—इसमें रामवनगमन, सीताहरण आदि से लेकर रावणवधपर्यन्त सम्पूर्ण राम-कथा संक्षेप में वर्णित है। यह सात अंक का है। दशरथ की प्रतिमा को देखकर उनके दिवंगत हो जाने का अनुमान भरत द्वारा नगर के बाहर ही कर लिए जाने से इसका नाम 'प्रतिमानाटक' है।

२. अभिषेक—इसमें किष्किन्धाकाण्ड से राम के राज्याभिषेक तक की कथा संक्षेप में है। यह छः अंक का नाटक है। राज्याभिषेक के कारण ही इसका नाम 'अभिषेक' है।

(ब) महाभारत पर आधृत नाटक—

३. मध्यमव्यायोग—इस एकांकी में मध्यम पाण्डव भीम द्वारा घटोत्कच से ब्राह्मण के मध्यम पुत्र के मुक्ति की कथा है। 'मध्यम' शब्द भीम और उस बालक दोनों का बोधक होने से इसका नाम 'मध्यमव्यायोग' है।

४. दूतवाक्य—इस एकांकी में पाण्डव पक्ष से दुर्योधन के पास कृष्ण के दूत बनकर जाने और वहाँ उनके द्वारा पाण्डवों के भाग (हिस्सा) माँगने पर दुर्योधन द्वारा कृष्ण को पकड़ने की आज्ञा देने पर कृष्ण के विराट् रूप ग्रहण करने की कथा वर्णित है।

५. दूतघटोत्कच—इस एकांकी में अभिमन्यु की मृत्यु के बाद घटोत्कच दूत बनकर कृष्ण का संदेश कौरवों के पास ले जाता है। दुर्योधन और घटोत्कच के बीच गरमा-गरमी हो जाती है जिसे धृतराष्ट्र शान्त करते हैं। घटोत्कच अभिमन्यु के वध का बदला अर्जुन द्वारा लिए जाने की धमकी देकर चला जाता है। इस एकांकी में 'भरतवाक्य' नहीं है।

६. कर्णभार—इस एकांकी में द्रोणाचार्य के निधन पर कौरवों की ओर से कर्ण के सेनापति हो जाने पर युद्ध का सारा भार कर्ण पर आ पड़ता है। यह उनके लिए भारस्वरूप हो जाता है जबकि ब्राह्मणवेषधारी इन्द्र को वे कवच और कुण्डल दान में दे देते हैं।

७. ऊरुभङ्ग—इस एकांकी में द्रौपदी के अपमान के प्रतीकार स्वरूप भीम द्वारा दुर्योधन की जंघा (=ऊरु) को भङ्ग करके उसका वध करने की

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

कथा वर्णित है। संस्कृत-साहित्य में मात्र यही एक दुःखान्त नाटक है।

८. पञ्चरात्र—इसमें दुर्योधन के द्वारा यज्ञ करने और यज्ञ पूर्ण होने पर द्रोण को मुँहमागी दक्षिणा देने के लिए कहता है। द्रोण ने दुर्योधन से दक्षिणा रूप में पाण्डवों को आधा राज्य देने की माँग की। दुर्योधन इस शर्त पर तैयार होता कि पाँच रात्रि के अन्दर यदि पाण्डव मिल जाएँगे तभी ऐसा हो सकेगा। कौरवों ने विराट् की राजधानी पर गायों के लिए आक्रमण किया। राजकुमार उत्तर कौरवों से लड़ते हैं। अज्ञातवास में पाण्डवों की सहायता से उसकी विजय होती है, और पाण्डवों के प्रकाश में आ जाने पर द्रोण द्वारा प्रतिज्ञा की याद दिलायी जाती है। इस पर दुर्योधन आधा राज्य दे देने के लिए मान जाता है।

(ग) हरिवंश पर आधृत नाटक–

९. बालचरित—इसमें भगवान् श्रीकृष्ण की बाल-लीला का वर्णन है। पाँच अङ्कों में श्रीकृष्ण के जन्म से लेकर कंस वध पर्यन्त की कथा वर्णित है।

(घ) बृहत्कथा पर आधृत नाटक–

१०. स्वप्नवासवदत्तम्—इसमें वत्सराज उदयन के वासवदत्ता के साथ स्वप्न में मिलन की कथा है। इसीलिए इसका नाम 'स्वप्नवासवदत्तम्' है। उज्जयिनी के राजा प्रद्योत के महल से वासवदत्ता के हरण के बाद उदयन विलासी हो जाते हैं। इससे शत्रु आरुणि को आक्रमण करने का अवसर प्राप्त हो जाता है। किन्तु उदयन के मन्त्री यौगन्धरायण आरुणि को परास्त करने के लिए मगधराज दर्शक से सहायता लेने के लिए वासवदत्ता को मिलाकर लावाणक में उनके अग्नि में जल मरने की समाचार उड़ा देते है और वासवदत्ता को मगधराज की कुमारी पद्मावती के पास धरोहर रूप में रख देते हैं। बाद में उदयन का विवाह पद्मावती से होता है। एक बार उदयन स्वप्न में वासवदत्ता को देखता है। उसकी स्मृति ताजी हो जाती है। वासवदत्ता प्रकट होती है और उदयन का उनसे मिलन होता हैं। उधर उदयन का सेनापति रुमण्वान् आरुणि को युद्ध में पराजित कर देता है। इस प्रकार छः अंकों का यह सुखान्त नाटक है।

११. प्रतिज्ञायौगन्धरायण—इसमें वत्सराज उदयन द्वारा उज्जयिनी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

के राजा प्रद्योत की कन्या वासवदत्ता के हरण और प्रेम-विवाह का वृत्तान्त है। प्रद्योत द्वारा उदयन के कैद कर लिए जाने पर उदयन के मन्त्री यौगन्धरायण द्वारा उदयन को छुड़ाने और वासवदत्ता के साथ उसका विवाह कराने की प्रतिज्ञा करता है। इसीलिये इसका नाम 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण' है। चार अंक के इस 'ईहामृग' नामक नाटकभेद में यौगन्धरायण को पूर्ण सफल दर्शाया गया है।

१२. अविमारक—इसमें राजा कुन्तिभोज की कुमारी कुरङ्गी और सौवीर राजा के पुत्र विष्णुसेन के प्रेम विवाह की कथा है। विष्णुसेन का ही दूसरा नाम अविमारक है। विष्णुसेन ने किसी समय 'अवि' नामक भेड़-रूपधारी राक्षस को मारा था। इसीलिए इस नाटक का नाम 'अविमारक' है।

(ङ) काल्पनिक–

१३. चारुदत्तम्— इसमें निर्धन किन्तु उदारमना ब्राह्मण चारुदत्त एव गणिका वसन्तसेना के प्रेम सम्बन्ध का वर्णन है। नायक के नाम पर ही नाटक का नाम 'चारुदत्त' रक्खा गया है। यह चार अंक का 'प्रकरण' है।

भास की नाट्यकला और दूतवाक्य

इस प्रकार महाकवि भास ने अपने प्रायः सभी नाटकों की कथावस्तु रामायण एवं महाभारत से ली हैं। कुछ बृहत्कथा पर आधृत हैं और एक काल्पनिक इतिवृत्त है। भास ने जो भी कथाश्रोत तत्तद् ग्रन्थों से ग्रहण किया उसे उन्होंने अपने रुचि के अनुसार बदल दिया है। इसी कारण प्रायः सभी कथानक बड़े ही रोचक हो गए हैं और मञ्चन के योग्य हो गए हैं। इनमें नाट्यनिर्देश बहुत कम हैं जिसे अभिनेता को स्वयं ही करना है। दूतवाक्य में भी इसी प्रकार 'नाट्यनिर्देश' बहुत कम हैं और महाभारत के ही पात्रों को लेकर घटना क्रम वर्णित है। नाटक बहुत बड़ा नहीं है। मात्र कुछ घण्टों का ही दृश्य है जिसमे नाटक पूर्ण हो जाता है। अतः इसका सफलतापूर्वक मञ्चन किया जा सकता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

दूतवाक्य-समीक्षा

कथानक की पृष्ठभूमि—

जब बारह वर्ष के वनवास एवं विराट के यहाँ रहकर एक वर्ष के अज्ञातवास की प्रतिज्ञा पूर्ण करके पाण्डव इन्द्रप्रस्थ लौट आए और प्रतिज्ञा के अनुसार उन्हीं कौरवों से राज्य का आधा भाग माँगा, तब दुर्योधन ने आधा राज्य देने से इन्कार कर दिया। फलतः पाण्डवों ने समझौते के लिए दुर्योधन के पास श्रीकृष्ण को दूत बनाकर भेजा।

दूतवाक्य की कथावस्तु—

दूतवाक्य की कथावस्तु का प्रारम्भ हस्तिनापुर के राजप्रासाद से होता है। सूत्रधार के नान्दीपाठ के अनन्तर कञ्चुकी घोषणा करता है कि महाराज दुर्योधन समागत राजाओं के साथ मन्त्रणा करेंगे। तभी रङ्गमञ्च पर दुर्योधन का आगमन होता है। सभी बड़े लोगों और राजाओं के पहुँचने पर और उनके स्थान ग्रहण कर लेने के बाद दुर्योधन उनसे मन्त्रणा करता है कि कौन कौरवों का सेनापति होगा? शकुनी की मन्त्रणा पर उन सभी सभाजनों ने यह निर्णय लिया कि भीष्म ही सेनापति होंगे। इसी के बाद काञ्चुकीय आता है और कहता है कि पुरुषोत्तम नारायण पाण्डवों के दूत बनकर पधारे हैं। कृष्ण को 'पुरुषोत्तम' सुनकर दुर्योधन खीझ उठता है और कहता है कि मात्र गोपालक को क्या पुरुषोत्तम कहा जाना चाहिए? सभी सभाजनों को वह आज्ञा देता है कि कोई भी केशव के आने पर खड़ा न होवे। केशव का सम्मान मुझे पसन्द नहीं है। मैं तो उन्हें बन्दी बनाने में ही अपना हित समझता हूँ। क्योंकि कृष्ण के बन्दी हो जाने पर पाण्डव स्वयं ही निस्तेज और श्रीहीन हो जायँगे। वे नेत्रहीन हो जायँगे और उनके मतिहीन हो जाने पर मेरे लिए समस्त पृथ्वी शत्रुविहीन हो जायगी।

अतः जो केशव के सम्मान में खड़ा होगा वह बारह स्वर्ण मुद्रा के दण्ड के योग्य होगा। ऐसा कहकर दुर्योधन द्रौपदी के चीरहरण के समय का चित्र मँगाता है। वह उसे देखने में तल्लीन हो जाता है। वह चित्र में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अङ्कित भाव भङ्गिमाओं पर विचार करते हुए भीम एवं अर्जुनादि पर व्यङ्ग्य कसता जाता है। जब कृष्ण उस मन्त्रशाला में प्रवेश करते हैं तो वहाँ का दृश्य देखकर सोंचते हैं कि धर्मराज युधिष्ठिर के कहने पर और अर्जुन की सच्ची मित्रता के कारण मैं आज इस समराभिमानी और दूसरों की बात न मानने वाले सुयोधन के पास अनुचित दूत कार्य के लिए आया हूँ। अर्जुन के बाणरूपी वायु से प्रदीप्त भीम की क्रोधाग्नि से ये कौरव तो मरे हुए ही हैं। फिर सुयोधन तो कटुभाषी, शठ, गुणद्वेषी और अपने स्वजनों के प्रति निर्दय भी हैं। अतः वह किसी भी प्रकार सन्धि न करेगा। जब कृष्ण सभा भवन में प्रविष्ट होते हैं। सभी राजा उठ खड़े होते हैं, किन्तु बड़े ही हड़बड़ाहट में रहते हैं। उस सम्भ्रम की स्थिति देखकर दुर्योधन बारह स्वर्णमुद्रा के दण्ड की याद भी दिलाता है किन्तु वह स्वयं कृष्ण के तेज से सम्भ्रमात् अपने आसन से गिर पड़ता है और सोंचता है कि बड़े ही उत्साह के साथ संकल्प करके मैं सावधान होकर बैठा था। परन्तु केशव के प्रभाव से मैं विचलित हो ही गया। वह केशव को बैठने के लिए कहता है। वासुदेव भी सबको बैठाकर स्वयं भी बेठ जाते हैं और चित्रपट की दर्शनीयता व्यक्त करते हुए द्रौपदी के केश एवं वस्त्राकर्षण की भर्त्सना करते हैं। सुयोधन मूर्खता के कारण अपने बन्धुओं के अपमान को पराक्रम समझता है। नहीं तो इस संसार में कौन ऐसा निर्लज्ज है कि जो अपने दोषों को इस प्रकार सभा के बीच उद्घाटित करेगा ?

कृष्ण के कहने पर चित्रपट हटा दिया जाता है और दुर्योधन युधिष्ठिर आदि पाण्डवों का कुशल पूँछता है। कृष्ण कहते हैं कि वे कुशल से हैं और आपके शरीर एवं राज्य की बाहरी तथा भीतरी कुशलता और आरोग्य पूंछकर युधिष्ठिरादि पाण्डवों ने निवेदन किया है—

'हम लोगों ने बहुत कष्ट झेले हैं। अब उस अज्ञातवास की प्रतिज्ञा की अवधि भी पूर्ण हो चुकी है। अतः हमारा न्यायोचित पैतृक राज्य बाँट दिया जाय।'

दुर्योधन इस पर कहता है कि कैसा पैतृक राज्य ? मेरे चाचा पाण्डु तो मृगया के समय मुनि के शाप से ग्रस्त हो गए थे। तभी से वे तो स्त्रियों

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

के प्रति विरक्त हो गए थे। अतः मैं उन अन्य देवों के सम्बन्ध से उत्पन्न सन्तानों के साथ पितृ सम्बन्ध कैसे बना सकता हूँ ?'

इस बात पर कृष्ण उनके पूर्वजों का इतिहास बताते हुए पूंछते हैं कि 'जब विलासी राजा विचित्रवीर्य राजयक्ष्मा से ग्रस्त हो मृत्यु को प्राप्त हो गए तब व्यास के संयोग से नियोग द्वारा उत्पन्न तुम्हारे पिता धृतराष्ट्र कैसे राज्य प्राप्त कर सकते हैं ?' अतः इस विवाद से क्या लाभ ? आपको क्रोध त्यागकर वही करना चाहिए जो युधिष्ठिर आदि कहते हैं।

दुर्योधन कहता है कि 'हे दूत ! तुम तो राज्य व्यवहार भी नहीं जानते। राज्य का उपभोग तो बल से होता है। यह माँगने की वस्तु नहीं है। यदि उन्हें राज्याकाङ्क्षा है तो वे पौरुष दिखलावें और यदि उन्हें शान्ति चाहिए तो मुनियों के आश्रम में चले जायँ।'

पाण्डवों के प्रति इन कठोर वचनों को न कहने के लिए कृष्ण उसे मना करते हुए कहते हैं कि 'पुण्य कर्मों के संचय से प्राप्त होने वाली राज्यलक्ष्मी को पाकर जो सहृदय बन्धुजनों एवं मित्रों को धोखा देता है वह निश्चय ही व्यर्थ परिश्रम वाला होता है।' दुर्योधन को बान्धवों के प्रति स्नेहालु होने के कृष्ण के इस मन्तव्य पर दुर्योधन कहता है कि आपने अपने पिता के श्यालक कंस पर क्यों नहीं स्नेह दिखाया। इसका उत्तर कृष्ण देते हैं कि कंस तो मेरी माता को कितनी ही बार पुत्र विरह से पीड़ित करके और अपने वृद्ध पिता को वन्दी बनाकर स्वयं ही मृत्यु द्वारा मारा गया। अतः नीतिज्ञों की वीरता तो निःसन्देह देश और काल के अनुसार होती है। अब हमारा परिहास आप यहीं तक रहने दें और भाइयों से भ्रातृ स्नेह करें। इसी से लोक और परलोक दोनों ही में आपका कल्याण है।

अन्ततः दुर्योधन कह देता है कि देवात्मजों और मनुष्यों में बन्धुत्व स्थापित नहीं हो सकता।

दुर्योधन के इस उत्तर पर कृष्ण उसे परुषाक्षरों से क्षुब्ध करते हुए भयभीत करते हैं। वे कहते हैं कि तुम अर्जुन के बल एवं पराक्रम को क्या नहीं जानते ? अर्जुन वही हैं जिसने किरात वेशधारी भगवान् शङ्कर को

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

युद्ध से प्रसन्न किया था। खाण्डव वन को नष्ट करती हुई अग्नि की महावृष्टि को बाणों के जाल से रोक दिया था। इन्द्र को पीड़ित करने वाले निवातकवचों का बध किया और अकेले ही विराट नगर में भीष्म आदि महारथियों को परास्त कर दिया था। इतना ही नही जब चित्रसेन ने तुम्हें बाँध लिया था तो अर्जुन ने तुम्हें भी उसके चंगुल से बचाया था। इस प्रकार यदि तुम पाण्डवों को उनका दाय भाग नहीं दोगे तो वे जबरदस्ती छीन लेंगे।

कृष्ण के वचनों से आहत होकर दुर्योधन कहता है कि मैं किसी भी प्रकार से राज्य क्या उसका तृण भी नहीं दे सकता। कृष्ण ने उसे 'अयशो लुब्ध' 'अपयश के लोभ वाला' कहकर सम्बोधित किया और कहा कि तुम तृण बीच में रखकर ही मुझसे बात करने योग्य हो। इस पर दुर्योधन ने कृष्ण को भला बुरा कहा। कृष्ण ने कहा कि क्या तुम हमारा अपमान करते हो। उसने कहा—हाँ! पहले तो कृष्ण जाने को उद्यत होते हैं। किन्तु बाद में बिना सन्देश कहे नहीं जाना चाहते। सुयोधन बात ही नहीं करना चाहता। अतः कृष्ण कुरुवंश के शाप की बात कहते हैं और जाने को उद्यत होते हैं। तभी केशव को बाँध लेने के लिए दुर्योधन आज्ञा करता है किन्तु कोई भी उद्यत नहीं होता है। जब कोई भी तैयार नहीं होता है तो वह स्वयं बाँधने के लिए उठ खड़ा होता है। जब कृष्ण को यह ज्ञान हो जाता है कि यह तो सचमुच ही पाश लेकर मुझे बाँधने दौड़ पड़ा है तब भगवान् कृष्ण विराट् रूप धारण करते हैं। इतने पर भी जब दुर्योधन शान्त नहीं होता है तो वह कहते हैं कि अच्छा! तो मैं ही पाण्डवों का कार्य करूँगा। भगवान् सभी को जृम्भित कर देते हैं। कृष्ण क्रुद्ध हो जाते हैं और सुदर्शन चक्र का आवाहन करते हैं। सुदर्शन कहते हैं कि आप पृथ्वी का भार उतारने आए हैं। अतः इसे आप आज यदि मार देंगे तो सभी युद्ध से विरत हो जायेंगे और आपका मुख्य कार्य सिद्ध न हो सकेगा। इस मन्त्रणा पर भगवान् कृष्ण शान्त हो जाते हैं। बाद में मञ्च पर अन्य आयुध कौमोदकी गदा, शार्ङ्ग धनुष, पाञ्चजन्य शङ्ख और नन्दन नामक खड्ग भी आते हैं किन्तु सुदर्शन सभी को लौटा देते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गरुड़ के आने पर तो समस्त चराचर जगत् हिल उठता है। कश्यप पुत्र गरुड़ को भी वे आदरपूर्वक लौटने के लिए कहते हैं। बाद में स्वयं भी मेरुगुहा की ओर वे प्रस्थान कर जाते हैं।

भगवान् कृष्ण भी जब पाण्डव शिविर की ओर जाने को उद्यत होते हैं तभी धृतराष्ट्र वहाँ आ जाते हैं और अपने पुत्र के अपराध के लिए क्षमा माँगते हैं। भाँति-भाँति से अनुनय विनय करके वह उनके चरणों पर गिर पड़ते हैं। भगवान् उन्हें उठाते हैं और भरतवाक्य के अनन्तर नाटक समाप्त हो जाता है।

कथानक समालोचन और उसका महाभारतीय परिवेश

दूतवाक्य की कथा उद्योग पर्व के अवान्तर खण्ड भगवद्यान पर्व से ली गई है। दौत्य कर्म की प्रधान कथा को मात्र एक ही अङ्क में यहाँ प्रदर्शित किया गया है। यहाँ दुर्योधन की निकृष्टता पर और भगवान् कृष्ण के दिव्य स्वरूप पर अधिक प्रभाव डाला गया है। (१) महाभारत में कृष्ण को पकड़ने के लिए कोई भी प्रयत्न नहीं किया गया है यद्यपि दुर्योधन शकुनि, कर्ण एवं अन्य लोगों के साथ कृष्ण को पकड़ने के लिए मन्त्रणा करता है। (२) दिव्य अस्त्रों के प्राकटय का दृश्य कवि द्वारा कल्पित है जो मात्र मञ्चन को प्रभावी बनाने मे लिए किया है (३) सम्पूर्ण दूत-वाक्य में कृष्ण ने सदैव दुर्योधन के लिए 'सुयोधन' (सुख से युद्ध करने योग्य) सम्बोधन का ही प्रयोग किया गया है। कवि कृष्ण के सामने दुर्योधन को दुःख से युद्ध करने योग्य बिल्कुल नहीं मानता। महाभारत में इस सम्बोधन पर इतना ध्यान नहीं रक्खा गया है। (४) दुर्योधन के पिता धृतराष्ट्र के लिए व्यास से उनका उत्पत्ति का व्यङ्ग्य कवि की अपनी प्रतिभा है[१]। (५) युधिष्ठिरादि पाण्डु पुत्रों पर अन्य देवों की सन्तान होने का आक्षेप महाभारत में यत्र तत्र सर्वत्र बिखरा हुआ है। किन्तु दुर्योधन पर भी यह आक्षेप हो सकता है। इस प्रकार आक्षेप प्रस्तुत करके कवि ने

---

१. व्यासेन जातः पुनरम्बिकायाम्.....पृ० ३५।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चमत्कार प्रस्तुत किया है।

विराट् रूप के प्रदर्शन को महाभारत में मात्र चार ही लोग देख पाए थे—भीष्मपितामह, धृतराष्ट्र, विदुर और सञ्जय। यहाँ पर 'कथं न दृष्टः केशवः' केशव नहीं दीखते, कहाँ गए 'अयं केशवः'[1] यह केशव है—आदि के द्वारा अपने ढङ्ग से इतिवृत्त को रखकर कवि द्वारा दुर्योधन पक्ष के लोगों में सम्भ्रम पैदा कर दिया गया है। इस प्रकार महाभारत के दूतकर्म की ही घटना को कवि ने यहाँ अपने ढाँचे में ढालकर नवीन रूप में प्रस्तुत किया है। इस नाटक के रस आदि के विषय में पं० गणपति शास्त्री का मत इस प्रकार है—

दूतवाक्यस्य रसः—

अस्य 'दूतवाक्यम्' इति संज्ञाया आनुगुण्यं पाण्डवदूतस्य श्रीकृष्णस्य वाक्यमत्र प्रधानमिति कृत्वा परिस्फुटमेव। अत्र रसस्तु वीरः, साम्नोपच्छन्दने परुषभाषणेन संक्षोभणे वा भगवता कृतेऽपि युद्धोत्साहस्य सुयोधनगतस्य अविचाल्यस्य प्रतीतेः। अथवा—

अत्र रसो धर्मवीरः; अष्टादशाक्षौहिणीबलसमुदयस्य तदधिष्ठातॄणां पौण्डवकौरवाणां च क्षेमस्य परमधर्मभूतस्यार्थे भगवतात्मपरिभवमनादृत्य प्रयत्नस्य करणाद् भगवद्गतस्य धर्मोत्साहस्य स्थायिनः सर्वतः परिस्फूर्तेः।

एतच्च रूपकं ख्यातेतिवृत्ततया सुयोधनरूपख्यातोद्धतनायकाश्रयतया वीराख्यदीप्तरसवत्तया एकाङ्कतया च धनञ्जयोक्तव्यायोगलक्षणबह्वंशयोगाद् व्यायोगव्यपदेशमर्हति—

ख्यातेतिवृत्तो व्यायोगः ख्यातोद्धतनराश्रयः।
हीनो गर्भविमर्शाभ्यां दीप्ताः स्युर्डिमवद् रसाः॥
अस्त्रीनिमित्तसङ्ग्रामो जामदग्न्यजये यथा।
एकाहचरितैकाङ्को व्यायोगो बहुभिर्नरैः॥ (दश० ३)

धर्मवीररसपक्षे नायकस्य श्रीकृष्णस्य धीरोदात्ततया मा भूदयं व्यायोगः, अपितु वीथीसंज्ञो रूपकभेदो वाच्यः। सा हि भरतेन लक्षिता—

---

१. अहो ह्रस्वत्वं केशवस्य.....अहो दीर्घत्वं केशवस्य...पृ० ५६।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'सर्वरसलक्षणाढ्या युक्ता ह्यङ्गैस्त्रयोदशभिः ।
वीथीस्यादेकाङ्का तथैकहार्या द्विहार्या वा ॥
—इति (ना० शा०)

अत्र सर्वरसलक्षणाढ्येति रसविशेषनियमाभावो बोध्यते, न तु एकत्रैव सर्वरसयोगनियमः । द्विहार्येति च प्रधानपात्रद्वयप्रयोज्येत्यर्थः । एवञ्च कथञ्चिद् बीथीलक्षणयोगः स्पष्टः ।

वस्तुतस्तु भासरूपकाणां प्रचरन्नाट्यशास्त्रापेक्षया प्राचीनतायाः प्रतिमानाटकोपोद्घाते स्थापितत्वात् तेष्वर्वाचीनलक्षणान्यनुगमयितुं नातीव संरम्भः शोभत इति तत्त्वम् ॥

'दूतवाक्य' नाम का कारण

भगवान् श्रीकृष्ण पाण्डवों की ओर से दूत बनकर कौरवों के शिविर में जाते हैं और उन्हीं के वचनों की इस नाटक में प्रधानता होने से इस नाटक का नाम 'दूतवाक्य' है। भगवान् कृष्ण के नीतियुक्त वचन (=वाक्य) कभी तो साम अर्थात् सान्त्वना भरे शब्दों से दुर्योधन को शान्त करते हैं और कभी कठोर वचनों से उसे धर्षित करते हैं। सम्पूर्ण नाटक दूतवेषधारी श्रीकृष्ण के वचनों से अनुस्यूत है। अतः नाटक का नाम 'दूतवाक्य' सार्थक है।

नाटक में रस

सम्पूर्ण नाटक वीररस से अनुप्राणित वचनों से व्याप्त है। श्रीकृष्ण द्वारा अपने अस्त्रों का एकाएक आवाहन करना और उनके विराट रूप प्रदर्शन में अद्भुत रस का पुट दिया गया है। 'यह केशव हैं' 'अरे केशव कहाँ हैं' आदि द्वारा सम्भ्रम पैदा कर दिया गया है। कवि द्वारा यहाँ प्रधान रूप से आरभटी वृत्ति का प्रयोग है।

नाटक का प्रकार

नाटकीय दृष्टि से 'दूतवाक्य' 'व्यायोग' की श्रेणी का नाटक है। व्यायोग एकाङ्की होना चाहिए। इसकी घटना ऐतिहासिक होती है। इसका नायक गर्वीला होता है। यह स्त्री से असम्बद्ध होता है और इसमें

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

युद्ध आदि होते हैं। ये सभी लक्षण 'दूतवाक्य' में घटते हैं। व्यायोग की व्युत्पत्ति है 'व्यायुज्यन्ते बहुपुरुषा अस्मिन्निति।' अर्थात् बहुत से पुरुषपात्र जिसमें होते हैं। इसका लक्षण साहित्यदर्पण में इस प्रकार है—

ख्यातेतिवृत्तो व्यायोगः स्वल्पस्त्रीजनसंयुतः।
हीनो गर्भविमर्शाभ्यां नरैरभिराश्रितः॥
एकङ्कश्च भवेदस्त्री निमित्तसमरोदयः।
कैशिकीवृत्तिरहितः प्रख्यातस्तत्र नायकः॥
राजर्षिरथ दिव्यो वा भवेद्धीरोद्धतश्च सः।
हास्यशृङ्गारशान्तेभ्य इतरेऽत्राङ्गिनो रसाः॥

इस प्रकार व्यायोग का नायक राजर्षि, दिव्यपुरुष या धीरोद्धत होना चाहिए। यहाँ भगवान् कृष्ण दिव्य पुरुष हैं और इनका चरित्र भी इतिहास प्रसिद्ध है। अतः 'दूतवाक्य' नाटक के दस प्रकारों में से 'व्यायोग' की कोटि का नाटक है।

दूतवाक्य में नाट्यकला

भास के नाटक 'नाट्यकला' की दृष्टि से नितान्त सुन्दर हैं। अन्य नाटकों की भाँति यहाँ भी दूतवाक्य में भास ने नाटकीय घटनाओं का सन्निवेश अत्यन्त सुसङ्गत रूप से किया है। कथोपकथन में अस्वाभाविकता कहीं भी प्रतीत नहीं होती। छोटे-छोटे वाक्यों में विचित्र भाव भरे पड़े हैं।

'दूतवाक्य' एक 'घटना-प्रधान' रूपक है। इसमें भगवान् श्रीकृष्ण के दूत बनकर दुर्योधन के पास जाने की बहुत छोटी सी घटना को भास ने अपनी प्रतिभा से अनूठा रूप दे दिया है। श्रीकृष्ण के प्रभाव का वर्णन तथा केशापकर्षण चित्र का प्रसङ्ग प्रस्तुत करके दुर्योधन के चरित्र पर अत्यन्त कुशलता से प्रकाश डाला गया है।

प्रवाहपूर्ण भाषा एवं चमत्कारपूर्ण तथा उपयुक्त शब्दावली वाले कथोपकथन का सहारा लेकर भास ने यहाँ श्रीकृष्ण एवं दुर्योधन के वार्त्तालाप में जान डाल दी है, जैसे दुर्योधन की उक्ति है—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

कथं कथं दायाद्यमिति ? भोः --

वने पितृव्यो मृगया प्रसङ्गतः कृतापराधो मुनिशापमाप्तवान् ।
तदा प्रभृत्येव स दारनिस्पृहः परात्मजानां पितृतां कथं व्रजेत् ॥२१॥

'अर्थात् वन में शिकार खेलते समय मेरे कृतापराधी चाचा पाण्डु को जब शाप मिला तभी से वे स्त्री से विरत हो गए। फिर दूसरे के पुत्रों के साथ दायाद्य कैसा ?'

इसका इतना सटीक उत्तर श्रीकृष्ण देते हैं कि कथोपकथन में जान आ जाती है—

पुराविदं भवन्तं पृच्छामि—
विचित्रवीर्यो विषयी विपत्ति क्षयेण प्राप्तः पुनरम्बिकायाम् ।
व्यासेन जातो धृतराष्ट्र एव लभेत राज्यं जनकः कथं ते ? ॥ २२ ॥

अर्थात् विचित्रवीर्य के क्षयरोग से ग्रस्त हो जाने पर पुनः अम्बिका से व्यास द्वारा क्या तुम्हारे पिता धृतराष्ट्र नहीं उत्पन्न हुए थे ?

भास राजनीतिक सिद्धान्त 'वीरभोग्याबसुन्धरा' को ही दुर्योधन की ललकार द्वारा कथोपकथन में प्रस्तुत कर अत्यन्त चमत्कार पैदा कर देते हैं, जैसे—

राज्यं नाम नृपात्मजैः सहृदयैर्जित्वा रिपून् भुज्यते
तल्लोके न तु याच्यते न तु पुनर्दीनाय वा दीयते ।
काङ्क्षा चेन्नृपतित्वमाप्तुमचिरात् कुर्वन्तु ते साहसं
स्वैरं वा प्रविशन्तु शान्तमतिभिर्जुष्टं शमायाश्रमम् ॥ २४ ॥

अर्थात् राज्य न तो माँगा जाता है और न तो उसे दीन दुखिया लोगों को दान में ही दिया जाता है यदि राज्य की इच्छा हो तो पाण्डव लड़कर ले लें। यदि शान्ति की इच्छा हो तो आश्रम में चले जायें।

चरित्रचित्रण

प्रस्तुत नाटक दूतवाक्य में प्रधान रूप से दो ही पात्र वासुदेव और दुर्योधन हैं। वृद्ध धृतराष्ट्र एवं काञ्चुकीय प्रसङ्गात् प्रस्तुत किए गए हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नाटक में युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल सहदेव एवं द्रौपदी तथा कौरव पक्ष के शकुनि, द्रोण और गाङ्गेय-भीष्म की चर्चा आयी है।

वासुदेव

महाकवि भास द्वारा वासुदेव का चित्रण दिव्य पुरुष के रूप में प्रस्तुत किया गया है। भास सम्भवतः वैष्णव थे। इसीलिए उन्होंने वासुदेव को भगवान् नारायण के रूप में प्रस्तुत किया है। सभा भवन में बैठे हुए दुर्योधन के सामने उसका काञ्चुकीय श्रीकृष्ण को 'पुरुषोत्तम' कहता है। भगवान् कृष्ण के प्रताप का प्रभाव कौरवों में बहुत अधिक है क्योंकि दुर्योधन के निषेध कर देने पर भी सभी राजसभासद वासुदेव के आते ही खड़े हो जाते हैं। दुर्योधन स्वयं भी सशंकित है कि वह भी कहीं वासुदेव के आगमन पर खड़ा न हो जाय। इसीलिए वह अपना ध्यान द्रौपदी के वस्त्राप-कर्षण वाले चित्र की ओर लगाता है किन्तु भगवान् वासुदेव का इतना प्रभाव था कि दुर्योधन की अभिलाषा पूर्ण नहीं होती और वह भी स्वयं उठ खड़ा होता है। इतना ही नहीं अपितु श्रीकृष्ण की भर्त्सना पर चित्रपट को भी उनके प्रताप से आहत होकर वापस भेज देता है। भगवान् कृष्ण के चरित्र पर दुर्योधन द्वारा अत्यन्त सबल आक्षेप किये जाते हैं; किन्तु वासुदेव के तर्कयुक्त वचनों से वे शिथिल हो गए।

भगवान् की वाणी को सुनकर आए सुदर्शन के अनुसार वे इस प्रकार के हैं--

अव्यक्तादिरचिन्त्यात्मा लोकसंरक्षणोद्यतः।
एकोऽनेकवपुः श्रीमान् द्विषद्बलनिषूदनः॥ ४३॥

'वे अव्यक्त अर्थात प्रकृति के आदिभूत हैं। वे चिन्तन की सीमा के परे हैं; संसार की रक्षा करने में तत्पर हैं; और शत्रुसेना का संहार करने वाले हैं। शोभा सम्पन्न वह अनेक रूप धारण करने वाले हैं।

धृतराष्ट्र तो उन्हें भगवान् नारायण, विप्रों के प्रिय, शार्ङ्गपाणि तथा त्रिदशाध्यक्ष कहकर सम्बोधित करते हैं।

भगवान् वासुदेव का चरित्र यहाँ दिव्य मानव के रूप में कवि ने प्रस्तुत किया है। वे एक कुशल एवं नीति विशारद दूत हैं। दुर्योधन के ही शब्दों

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

में ये पाण्डवों के मूल शक्ति के रूप में हैं। उनके बिना पाण्डव मरे से हैं। इसीलिए धृतराष्ट्र भी 'पाण्डवश्रेयस्कर' (पृष्ठ ७६) (पाण्डवों का कल्याण करने वाले) शब्द से उन्हें सम्बोधित करते हैं।

वासुदेव मानव के ही समान आवेश में आ जाते हैं। वे दुर्योधन को क्रोध में 'शठ', 'बान्धवनिस्नेह', 'काक', 'केकर', 'पिङ्गल' आदि कठोर शब्दों से सम्बोधित कर डालते हैं। अन्ततः रोष में समुदाचार को भी भूल जाते हैं—वे सुदर्शन से कहते हैं—'रोषात् समुदाचारो नावेक्षितः।' (पृ० ६४)। वे दुर्योधन का कभी भी दुर्योधन करके सम्बोधित नहीं करते हैं। सदैव उसे सुयोधन कहते हैं। उनकी दृष्टि में वह सुख से युद्ध करने योग्य है। इस प्रकार भासकृत भगवान् वासुदेव का चरित्र स्वाभाविकता की पृष्ठभूमि पर चित्रित है।

दुर्योधन

दुर्योधन इस नाटक का धीरोद्धत पात्र है। यहाँ पर उसे भास ने यथावत् खलनायक के रूप में प्रस्तुत किया है। उसका बाह्य व्यक्तित्व तीसरे श्लोक में इस प्रकार है—

'वह श्याम वर्ण का युवक है। वह श्वेत रेशमी उत्तरीय वस्त्र धारण किये हुए है। उसके मस्तक पर सुन्दर छत्र और श्रेष्ठ चँवर शोभायमान है। उसके शरीर पर अङ्गराग लगा है। उसके अङ्ग-प्रत्यङ्ग आभूषणों के मणियों की छटा से इस प्रकार जगमगा रहे हैं जैसे तारों के मध्य में पूर्णिमा का चन्द्र शोभा पा रहा हो॥'

दुर्योधन अत्यन्त अहंकारी है। वह गर्वीला, दुष्टवादी, गुणद्वेषी, हठी, उद्धत, युद्धप्रिय, बन्धुनिस्नेह एवं अशिष्ट है। वह आत्मीयजनों का निरादर करने वाला है। वासुदेव कहते हैं कि—

दुष्टवादी गुणद्वेषी शठः स्वजननिर्दयः।
सुयोधनो हि मां दृष्ट्वा नैव कार्यं करिष्यति॥ १६॥

उसके अहंकार का उदाहरण 'राज्यं नाम नृपात्मजैः सहृदयैर्जित्वा रिपून् भुज्यते' आदि में मिलता है जहाँ वह कहता है कि 'राज्य किसी से

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

माँगा नहीं जाता और न तो दीनों को दान में ही दिया जाता है यह तो युद्ध में जीता जाता है।'

अन्ततः वह कह ही देता है कि चाहे कुछ भी हो जाय किन्तु मैं तृण मात्र भी नहीं दे सकता—

परुषवचनदक्ष ! त्वद्वचोभिर्न दास्ये
तृणमपि पितृभुक्ते वीर्यगुप्ते स्वराज्ये ।। ३५ ।।

श्रीकृष्ण को पकड़ लेने का प्रयास उसके अहंकार की पराकाष्ठा है। इस प्रकार भास ने दुर्योधन का चरित्र अत्यन्त दुष्ट प्रकृति का चित्रित किया है।

दिव्यास्त्र

भगवान् वासुदेव के दिव्यास्त्र भी पात्रों के रूप में यहाँ प्रस्तुत किए गए हैं। इसकी अत्यन्त आवश्यकता थी, क्योंकि सुदर्शन के ही कहने से तो वासुदेव को समुदाचार का ध्यान आता है। भास द्वारा दिव्यास्त्रों का इस प्रकार से प्रस्तुतीकरण नाटक के प्रभाव एवं चमत्कार को और भी बढ़ा देता है। वस्तुतः भगवान् कृष्ण के सभाभवन से बाहर आते ही नाटक का तो सहसा अवसान ही हो जाता है। अतः कार्य को प्रचलित रखने के लिये और भगवान् कृष्ण के रोष का परिचय देने के लिये इस प्रकार का प्रयोग अत्यन्त आवश्यक था।

—सुधाकर मालवीय

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पात्राणि

काञ्चुकीयः	—	दुर्योधनभृत्यः ।
दुर्योधनः	—	धृतराष्ट्रस्य ज्येष्ठः पुत्रः ।
वासुदेवः	—	श्रीकृष्णः ।
सुदर्शनः	—	श्रीकृष्णचक्रायुधाभिमानीदेवः ।
धृतराष्ट्रः	—	पाण्डोर्ज्येष्ठभ्राता ।

——०——

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पुण्यसञ्चयसम्प्राप्तामधिगम्य नृपश्रियम् ।
वञ्चयेद् यः सुहृद्बन्धून् स भवेद्विफलश्रमः ॥

—दूतवाक्य २५

पुण्य कर्मों के सञ्चय से प्राप्त होने वाली राज्यलक्ष्मी को पाकर जो सहृदय बन्धुजनों (अथवा मित्रों) को धोखा देता है उसका सारा परिश्रम व्यर्थ हो जाता है ॥ २५ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भासनाटकचक्रे

दूतवाक्यम्

'ज्योत्स्ना'-'सरला' संस्कृत-हिन्दीव्याख्योपेतम्

—o—

प्रथमोऽङ्कः

(नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः)

---

* ज्योत्स्ना *

यत्कृपालवमात्रेण प्रपूर्यन्ते मनोरथाः ।
वाग्देवीं विघ्नराजं च तौ वन्देऽहं पुनः पुनः ।। १ ।।
मिश्रां गुरुवरां पद्मां नौमि ज्ञानप्रदायिनीम् ।
यस्याः संवित् सुधाम्भोधेः सीकरोऽपि रसार्णवः ।। २ ।।
भासनाटकरत्नस्य रसभावसमन्विता ।
नाट्यस्य दूतवाक्यस्य व्याख्या नव्या विरच्यते ।। ३ ।।
टीकामभिनवां रम्यां 'ज्योत्स्नां' च सरलां तथा ।
करोति बालबोधाय मालवीयः सुधाकरः ।। ४ ।।

अथ कविकुलमूर्धन्यः तत्रभवान् श्रीभासः दूतवाक्याभिधाने रूपके निर्विघ्नपरिसमाप्तिसूचिकायाः पूर्वरङ्गप्रधानाङ्गायाः नान्द्याः समनन्तरं सूत्रधारस्य प्रवेशं सूचयति--नान्द्यन्त इत्यादिना । नान्द्यन्ते=नन्दिरानन्दः; तस्या इयं नान्दी नाम नाटक-प्रयोगारम्भे देवतापरिषदानन्दार्थमभिनयप्रारम्भ-

---

* सरला *

(नान्दीपाठ के अन्त में सूत्रधार का प्रवेश)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सूत्रधारः—

पादः पायादुपेन्द्रस्य सर्वलोकोत्सवः स वः ।
व्याविद्धो नमुचिर्येन तनुताम्रनखेन खे ॥ १ ॥

सूचनार्थं च सम्पाद्यमाना वादित्र क्रियोच्यते ।[1] तस्या नान्द्या अन्ते अवसाने नान्दीसमाप्तनानन्तरमित्यर्थः । ततः=तदनन्तरं, गीतादिक्रियापरिसमाप्त्यव्यवहितोत्तरकाले इत्यर्थः । सूत्रधारः=सूत्रं प्रयोगानुष्ठानं धारयति निर्वाहयतीति सूत्रधारः । प्रविशति रङ्गम् ।

अन्वयः—उपेन्द्रस्य सर्वलोकोत्सवः सः पादः वः पायात्, तनुताम्रनखेन येन खे नमुचिः व्याविद्धः ॥ १ ॥

संस्कृत टीका—उपेन्द्रस्य=इन्द्रानुजस्य, वामनस्य, उपगत इन्द्रम् अनुजत्वात् इति उपेन्द्रः, सर्वलोकोत्सवः=सर्वेषां लोकानां जगताम् उत्सवः हर्षहेतुः, सः=प्रसिद्धः, पादः=चरणः, वः=सामाजिकान्, पायात्=रक्षतात् । तनुताम्रनखेन=अल्परक्तनखेन । तनवः अल्पाकृतयः, ताम्राः अरुणाश्च नखा यस्य, तेन तथाभूतेन । एतेन बाल भावानुत्तीर्णत्वमुक्तम् । येन=पादेन, खे=आकाशे, नमुचिः=तन्नामा बलिबन्धुः असुरः, व्याविद्धः=प्रक्षिप्तः । नमुचिव्यावेधनकथा पुराणेष्वनुसन्धेया । इन्द्रेण तु नमुचिर्नामासुरः समुद्रफेनेन निहतः । अत्र नमुचिव्यावेधनलक्षणस्य चापदानाद्भुतस्य कथनेन परमाद्भुतविश्वरूपप्रदर्शननिमित्तो दुर्योधननिग्रहो भगवत्कृतो ग्रन्थप्रतिपाद्यो द्योतितः । 'सर्वलोकोत्सवः स वः' इत्यत्र छेकानुप्रासः । अनुष्टुप्वृत्तम् ॥ १ ॥

सूत्रधार—भगवान् वामन (विष्णु) का वही सर्वलोकानन्दकारी, कुछ-कुछ अरुण नख वाला चरण आप सामाजिकों की रक्षा करे; जिसने नमुचि दैत्य को आकाश में फेंक दिया था ॥ १ ॥

---

१. नान्दी यथा—आशीर्वचनसंयुक्ता स्तुतिर्यस्मात् प्रयुज्यते ।
देवद्विजनृपादीनां तस्मान्नान्दीति संज्ञिता ॥
(सा० द० ६.२४)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एवमार्यमिश्रान् विज्ञापयामि। अये किं नु खलु मयि विज्ञापनव्यग्रे शब्द इव श्रूयते।। अङ्ग! पयामि।

(नेपथ्ये)

भो भोः प्रतिहाराधिकृताः! महाराजो दुर्योधनः समाज्ञापयति।

सूत्रधारः—भवतु, विज्ञातम्।

एवमार्यमिश्रान् = आर्याः = कुलशीलक्षमाधर्मसत्यादिसद्गुणसम्पन्ना सभ्याः ते च ते मिश्राः=पूज्याः, तान् श्रेष्ठसामाजिकान्, एवम्=अनेन वक्ष्यमाणेन प्रकारेण, विज्ञापयामि=सूचयामि। अये=इत्यव्ययमाश्चर्ये विषादे वा; अये इति विज्ञापनाभङ्गेनोत्पन्नं विषादम्। अकस्माच्छब्दश्रवणेन संजातमाश्चर्यं वा द्योतयति। किन्नु खलु=न इति वितर्के, किं कारणम्? मयि=सूत्रधारे, विज्ञायपनव्यग्रे=विज्ञापनव्यासक्तचित्ते विज्ञाप्यबोधनार्थमुद्यते। शब्द इव=अनिश्चितरूपः शब्दः, श्रूयते=कर्णगोचरीभवति। अङ्ग=इति सम्बोधने सम्भ्रमे वा, पश्यामि=शब्दस्य विशेषाकारं निमित्तं च परीक्ष्य ज्ञास्यामि।

नेपथ्यम्=जबनिकान्तर्भागो नटप्रसाधनस्थलं वा, वक्ष्यमाणाकारः शब्दो नेपथ्ये प्रवृत्त इत्यर्थः। शब्दस्याकारमाह—भो भो इत्यादि।

भवत्विति। भवतु=शब्दस्य भवनं प्राप्तावसरं, लोटः प्राप्तकालार्थत्वात्। प्राप्तावसरत्वोक्त्या च शब्दस्य विज्ञाप्य वस्तुसम्बद्धत्वं प्रत्यायितम्। विज्ञातम्=अवगतम्, शब्दस्य निमित्तम् इति शेषः।

इस प्रकार मैं आप महानुभावों को सूचित करता हूँ। अरे, सूचना देने में व्यस्त मुझको कैसा शब्द-सा सुनाई दे रहा है? अच्छा, देखूँ तो।

(नेपथ्य में)

हे हे द्वारपालाधिकारियो! महाराज दुर्योधन आज्ञा दे रहें हैं—

सूत्रधार—अच्छा, समझा—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उत्पन्ने धार्तराष्ट्राणां विरोधे पाण्डवैः सह ।
मन्त्रशालां रचयति भृत्यो दुर्योधनाज्ञया ॥ २ ॥

(निष्क्रान्तः)

॥ स्थापना ॥

(ततः प्रविशति काञ्चुकीयः)

अन्वयः—धार्तराष्ट्राणां पाण्डवैः सह विरोधे उत्पन्ने (सति) भृत्यः दुर्योधनाज्ञया मन्त्रशालां रचयति ॥ २ ॥

संस्कृत टीका—धृतराष्ट्रस्य अपत्यं पुमान् धार्तराष्ट्रः तेषाम्, धार्तराष्ट्राणां=धृतराष्ट्राणां=धृतराष्ट्रपुत्राणां सुयोधनादीनाम्, पाण्डवैः सह=पाण्डुपुत्रैर्युधिष्ठिरादिभिः सह, विरोधे=वैरे, उत्पन्ने सति=प्रादुर्भूते सति, दुर्योधनाज्ञया=दुःखेन युद्धयत इति दुर्योधनः तस्य आज्ञा, तया, कौरवज्येष्ठदेशेन, भृत्यः=भरतीति भृत्यः दुर्योधनस्य सेवकः, मन्त्रशालां=मन्त्रस्य शाला ताम्, कार्यसम्मन्त्रणार्थां सभाम्, विचारगृहं सभास्थानमिति यावत्, रचयति=योजयति, मन्त्रसभायोगानुकूलमाचरतीत्यर्थः । तच्च मन्त्रसभासमवायार्हपार्थिवाह्वानाय प्रतिहाराधिकृतानां प्रेरणम् । एतन्निमित्तमेव शब्दस्योत्थानमिति तात्पर्यम् । अत्राप्यनुष्टुप् छन्दः ॥ २ ॥

विज्ञाप्य विज्ञापनं नेपथ्योत्थशब्दविवरणभङ्ग्या निर्वृत्तं मन्वानस्य सूत्रधारस्य निष्क्रमणमाह—निष्क्रान्त इति । स्थापनेति । एवं कथावस्त्वंशस्य स्थापनात् स्थापना । क्वचित् प्रस्तावनेति पाठः । स्थापना प्रस्तावनेति पर्यायौ । स्थापनायां कविकाव्यनामानुत्कीर्तनं तदुत्कीर्तनसमुदाचारप्रवृत्तिकालादस्य रूपकस्य प्राचीनत्वं गमयति ।

सूचितस्य भृत्यस्य प्रवेशमाह—तत इत्यादि । भो भो इत्यादि ।

पाण्डवों के साथ धृतराष्ट्र के पुत्रों का विरोध उत्पन्न हो जाने के कारण दुर्योधन की आज्ञा से उनके भृत्य सभागृह की योजना कर रहे हैं ॥ २ ॥

(चला जाता है)

॥ स्थापना ॥

(इसके बाद कञ्चुकी का प्रवेश)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

काञ्चुकीयः—भो भोः प्रतिहाराधिकृताः ! महाराजो दुर्योधनः समाज्ञापयति—अद्य सर्वपार्थिवैः सह मन्त्रयितुमिच्छामि । तदाहूयन्तां सर्वे राजान इति । (परिक्रम्यावलोक्य) अये, अयं महाराजो दुर्योधन इत एवाभिवर्तते । य एषः,

श्यामो युवा सितदुकूलकृतोत्तरीयः
सच्छत्रचामरवरो रचिताङ्गरागः ।
श्रीमान् विभूषणमणिद्युतिरञ्जिताङ्गो
नक्षत्रमध्य इव पर्वगतः शशाङ्कः ॥ ३ ॥

प्रतिहाराधिकृताः=प्रतिहारो द्वारं तस्मिन्नधिकृताः तत्र स्थित्वा राज्ञ आज्ञां ये भृत्याः प्रतिपालयन्ति ते, द्वाररक्षाधिकारिणः सर्वपार्थिवैः सह=सर्वैः पार्थिवैः पृथिव्या ईश्वरैः साकम्; मन्त्रयितुम्=आलोचयितुम्, आलोचनं चैकादशाक्षौहिणीबलसमुदयस्य पाण्डवयुद्धार्थे संगृहीतस्य सेनापतिनिर्धारण-विषयं स्पष्टीभविष्यति । अभिवर्तते=अभिमुखमागच्छति ।

अन्वयः—श्यामो युवा सितदुकूलकृतोत्तरीयः सच्छत्रचामरवरो रचिताङ्गरागो विभूषणमणिद्युतिरञ्जिताङ्गः श्रीमान् नक्षत्रमध्ये पर्वगतः शशाङ्कः इव (विभाति) ॥ ३ ॥

संस्कृत टीका—दूतः दुर्योधनं विशिनष्टि—श्यामो युवा इति । श्यामः=कृष्णवर्णः, युवा=तरुणः, सितदुकूलकृतोत्तरीयः=सितेन धवलेन

काञ्चुकीय—हे प्रतिहारियो ! महाराज दुर्योधन आज्ञा दे रहे हैं कि 'आज मैं अखिल राजमण्डल के साथ मन्त्रणा करना चाहता हूँ । अतः सभी राजाओं को बुलाओ । [घूमकर और देखकर] अरे यह तो महाराज दुर्योधन इधर ही आ रहे हैं, यह जो है—

वह तो वही श्याम वर्ण युवक है—जो श्वेत रेशमी उत्तरीय धारण किए हैं, जिसके मस्तक पर सुन्दर छत्र और श्रेष्ठ चँवर शोभायमान है, तथा जिसके शरीर पर अङ्गराग लगा है एवं जिसके अङ्गप्रत्यङ्ग आभूषणों के मणियों की छटा से ऐसे कान्तिमान् हो रहे हैं जैसे नक्षत्रों [तारों] के मध्य पूर्णिमा का चन्द्र शोभा पा रहा हो ॥ ३ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(ततः प्रविशति यथानिर्दिष्टो दुर्योधनः)

दुर्योधनः—

उद्धूतरोषमिव मे हृदयं सहर्षं
प्राप्तं रणोत्सवमिमं सहसा विचिन्त्य ।
इच्छामि पाण्डवबले वरवारणाना-
मुत्कृत्तदन्तमुसलानि मुखानि कर्तुम् ।। ४ ।।

दुकूलेन क्षौमेण सूक्ष्मवस्त्रेण वा कृतम्=विहितम्, उत्तरीयं=प्रावारः येन सः तथोक्तः, सच्छत्रचामरः=सत् समीचीनं छत्रं चामरवरश्च यस्मिन् सः शोभनच्छत्रव्यजनवरः, रचिताङ्गरागः=रचितः अङ्गरागः अङ्गानुलेपनं येन सः विहिताङ्गानुलेपनः विभूषणमणिद्युतिरञ्जिताङ्गः=विभूषणमणि-द्युतिभिः आभरणरत्नकान्तिभिः रञ्जितानि रूषितानि अङ्गाति यस्य सः, आभरणोत्पलमणिकान्तिशोभितविग्रहः, श्रीमान् श्रीः=अस्ति अस्य श्रीमान् शोभायुक्तः, [य एषः=दुर्योधनः सः] नक्षत्रमध्ये=नक्षत्राणां मध्य तस्मिन्, उडुगणपरिवृत्तः, पर्वगतः=पर्वणि गतः, पूर्णिमां प्राप्तः; शशाङ्कः इव=शशः मृगः अङ्के=क्रीडे यस्य सः, चन्द्र इव, प्रियदर्शनत्वात् शोभते इति शेषः । उपमालङ्कारः । वसन्ततिलकावृत्तम् ।। ३ ।।

टिप्पणी—'दुकूलं तु क्षौमेऽन्ये सूक्ष्मवाससि'-इति केशवस्वामी । 'द्वौ प्रावारोत्तरासङ्गौ समौ बृहतिका तथा । संव्यानमुत्तरीयं चेत्यमरः ।

अन्वयः—उद्धूतरोषमिव मे हृदयं सहर्षम् इमं रणोत्सवं प्राप्तम् इति सहसा विचिन्त्य पाण्डवबले वरवारणानां मुखानि उत्कृत्तदन्तमुसलानि कर्त्तुम् इच्छामि । ४ ।।

संस्कृत टीका—उद्धूतरोषमिव=उद्धूतः निरस्तः रोषः-कोपः

[इसके बाद उपर्युक्त प्रकार की छटा से सम्पन्न दुर्योधन का प्रवेश]

दुर्योधन—इस युद्धोत्सव के एकाएक उपस्थित हो जाने पर विचार करके मेरा हृदय प्रसन्न होकर मानो क्रोधरहित हो गया है। अब मैं पाण्डव-सेना के श्रेष्ठ गजराजों के मूसलाकार दन्तों को उखाड़-फेंकना चाहता हूँ ।। ४ ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

काञ्चुकीयः—जयतु महाराजः। महाराजशासनात् समानीतं सर्वराजमण्डलम्।

दुर्योधनः—सम्यक् कृतम्। प्रविश त्वमवरोधनम्।

काञ्चुकीयः—यदाज्ञापयति महाराजः। (निष्क्रान्तः)

पाण्डवविषयो येन तत्, विनष्टक्रोधमिव, मे=मम, हृदयं=चित्तं, सहर्षं=हर्षयुक्तं भवति। इवेति संभावनायाम्। तेन रोषस्य सतोऽप्युद्भूतवदवभासमानतोक्ता, सा च चित्तवृत्त्यन्तरेणाभिभवादित्याशयः। एवं च रोषन्यक्कारेण हर्ष उदित इति तात्पर्यम्। कथं हर्षोदयस्तत्राह—इमं=वर्तमानं, रणोत्सवं=रणस्य उत्सवः तम्, युद्धमेवानन्दहेतुत्वाद् उत्सवम्, संग्राममहम्, प्राप्तम्=समागतम्, इति सहसा विचिन्त्य=इति द्राक विमृश्य, अतः पाण्डवबले=पाण्डवानां बलं तस्मिन्, पाण्डवानां सैन्ये, वरवारणानां=प्रशस्तगजानाम्, वराश्च ते वारणाः तेषाम्; मुखानिः=आननानि, उत्कृत्तदन्तमुसलानि=उत्कृत्ताः छिन्नाः दन्तमुसलाः, दन्ता मुसला इव येषु तानि तथाभूतानि, उत्पाटितरदानि, कर्तुम्=विधातुम्, इच्छामि=ईहे। एवञ्च इच्छायाः फलप्राप्तिकालः प्रत्यासन्नो युद्धस्यासन्नत्वादिति निश्चयो हर्षोदये कारणमित्युक्तं भवति। 'इच्छा हि' इति क्वचित् पाठः। तथा हि-शब्दो हेतौ, यस्मात् कारणादित्यर्थः। इच्छा=कामः, ममास्तीत्यर्थगम्यम्। अतः अस्मिन् रणे पाण्डवसैनिकगजानां विनाशं करोमीति विवेकः। उपमालङ्कारः। वसन्ततिलकावृत्तम् ॥ ४ ॥

टिप्पणी—हृदयं—'चित्तं तु चेतो हृदयम्' इत्यमरः। उत्सवः-'महस्तूत्सवतेजसोः'—इत्यमरः।

संस्कृत टीका—जयत्विति। समानीतम्=आहूतम्। सम्यगित्यादि।

काञ्चुकीय—महाराज की जय हो। महाराज की आज्ञा से अखिल राजमण्डल को बुला लिया गया है।

दुर्योधन—बहुत अच्छा किया। अब तुम अन्तःपुर में जाओ।

काञ्चुकीय—जैसी महाराज की आज्ञा। (चला जाता है)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दुर्योधनः—आर्यौ वैकर्णवर्षदेवौ ! उच्यताम्—अस्ति ममैकादशाक्षौहिणीसमुदयः। अस्य कः सेनापतिर्भवितुमर्हति ? किं किमाहतुर्भवन्तौ—महान् खल्वयमर्थः। मन्त्रयित्वा वक्तव्यमिति।

सदृशमेतत्। तदागम्यतां मन्त्रशालामेव प्रविशामः। आचार्य ! अभिवादये। प्रविशतु भवान् मन्त्रशालाम्। पितामह ! अभिवादये। प्रविशतु भवान् मन्त्रशालाम्। मातुल ! अभिवादये। प्रविशतु

अवरोधनम्=अन्तःपुरम्। आर्यावित्यादि। वैकर्णवर्षदेवौ=राजविशेषौ, वैकर्तनवर्षदेवाविति क्वचित् पाठः। एकादशाक्षौहिणीबलसमुदयः=एकादश या अक्षौहिण्यः, सेनापरिमाणविशेषाः ता एव बलानि सैन्यानि तेषां समुदयः सङ्घातः।

टिप्पणी—'त्रिहयं पञ्चपादातं यदेकरथकुञ्जरम्।
सैन्यं सा पत्तिरेतस्यास्त्रैगुण्यात् स्युर्यथाक्रमम्॥
सेनामुखं गुल्मगणौ वाहिनी पृतना चमूः।
अनीकिनीत्यनीकिन्यः पुनरक्षौहिणी दश॥"
—इति वैजयन्तीकोशः।

संस्कृत टीका—किमाहतुरित्यादि। एतच्च पृष्टयोः रङ्गमपृष्टयोः प्रतिवचनस्यानुवादभङ्ग्या प्रकाशनम्। इदमाकाशभाषितमित्युच्यते। यदाह दशरूपके—

'किं ब्रवीष्येवमित्यादि विना पात्रं ब्रवीति यत्।
श्रुत्वेवानुक्तमप्येकस्तत् स्यादाकाशभाषितम्॥'

सदृशं=युक्तम्। तदागम्यतमित्यादीनि=आहूतागतान् द्रोणभीष्मादीन्

दुर्योधन—हे आर्य वैकर्ण एवं वर्षदेव ! बतलाइए—जो मेरी ग्यारह अक्षौहिणी सेना है, कौन इसका सेनापति होने योग्य है ? क्या आप लोग कहते हैं ? वस्तुतः यह विषय महत्त्वपूर्ण है। अतः मन्त्रणा करके ही इस सम्बन्ध में वक्तव्य दें।

यह उचित ही है। तो आइए, मन्त्रशाल [सभाभवन] में ही प्रवेश करें। आचार्य ! आपको मैं प्रणाम करता हूँ। आप मन्त्रशाला में प्रवेश

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भवान् मन्त्रशालाम्। आर्यौ वैकर्णवर्षदेवौ! प्रविशतां भवन्तौ। भो भोः सर्वक्षत्रियाः! स्वैरं प्रविशन्तु भवन्तः। वयस्य! कर्ण! प्रविशामस्तावत्।

(प्रविश्य)

आचार्य! एतत् कूर्मासनम, आस्यताम्। पितामह! एतत् सिंहासनम्, आस्यताम्। मातुल! एतच्चर्मासनम्, आस्यताम्। आर्यौ वैकर्णवर्षदेवौ! आसातां भवन्तौ। भो भोः सर्वक्षत्रियाः! स्वैरमासतां भवन्तः। किमिति किमिति महाराजो नास्त इति। अहो सेवाधर्मः। नन्वयमहमासे। वयस्य कर्ण! त्वमप्यास्स्व। (उपविश्य)

प्रति सत्कारवाक्यानि। कूर्मासनम्=कूर्माकाराङ्कितम् आसनम्; स्वैरं=निःशङ्कम्।

किमितीति। किमिति किमिति=कुतः कुतः, असितुं शङ्कमानानिव सर्वक्षत्रियान् पश्यन् पृच्छति। शङ्कन्त इति क्रियाध्याहारः। तैरुक्तं शङ्काहेतुमनुवादभङ्ग्या प्रकाशयति—महाराज इत्यादि। अत्र इतिशब्दानन्तरं 'किं ब्रूथे'ति शेषः। सेवाधर्मः=सेव्यानुरोधसमुदाचारः, अनुपविष्टे सेव्ये अनुपवेशलक्षणः। ननु=इति अनुनये। वयस्य=हे सखे!।

करें। पितामह! मैं आपको प्रणाम करता हूँ। आप मन्त्रशाला मे प्रवेश करें। मामा! आपका अभिवादन करता हूँ। आप मन्त्रशाला में प्रवेश करें। आर्य वैकर्ण और वर्षदेव! आप दोनों भी प्रवेश करें। हे हे समस्त क्षत्रिय राजाओ! आप सब भी स्वेच्छापूर्वक [शनैः शनैः] प्रवेश करें। हे मित्र कर्ण! तब तो हम भी प्रविष्ट होएँ।

(प्रवेश करके)

आचार्य! यह कूर्मासन है इस पर आप बैठें। पितामह! यह सिंहासन है इस पर आप बैठिए। मामा! (यह चर्मासन है इस पर आप बैठिए) आर्य वैकर्ण और वर्षदेव! आप दोनों [यथेच्छ] बैठें। हे हे समस्त क्षत्रियगण! आप भी स्वेच्छापूर्वक बैठ जाइए। यह क्या? यह क्या? महाराज नहीं बैठेंगे अहो सेवाधर्म (धन्य है)। अच्छा मैं भी यहीं बैठ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

आर्यौ वैकर्णवर्षदेवौ ! उच्यताम्—अस्ति ममैकादशाक्षौहिणीबलसमुदयः। अस्य कः सेनापतिर्भवितुमर्हतीति। किमाहतुर्भवन्तौ—अत्रभवान् गान्धारराजो वक्ष्यतीति। भवतु, मातुलेनाभिधीयताम्। किमाह मातुलः—अत्रभवति गाङ्गेये स्थिते कोऽन्यः सेनापतिर्भवितुमर्हतीति। सम्यगाह मातुलः। भवतु भवतु, पितामह एव भवतु। वयमप्येतदभिलषामः।

सेनानिनादपटहस्वनशङ्खनादै-
श्चण्डानिलाहतमहोदधिनादकल्पैः।
गाङ्गेयमूर्ध्नि पतितैरभिषेकतोयैः
सार्धं पतन्तु हृदयानि नराधिपानाम् ॥ ५ ॥

अत्रेत्यादि। अत्रभवान्=पूज्यः, गान्धारराजः=शकुनिः, गान्धाराणां राजा। 'राजाहस्सखिभ्यष्टच्' इति समासान्तः।

अत्रभवतीत्यादि। गाङ्गेये=गङ्गाया अपत्यं पुमान् गाङ्गेयः भीष्मः। तस्मिन्। वयमपीत्यादि स्थाने 'अहमप्येतदभिलषामीति' क्वचित् पाठः।

अन्वयः—चण्डानिलाहतमहोदधिनादकल्पैः सेनानिनादपटहस्वनशंखनादैः (उपलक्षितैः) गाङ्गेयमूर्ध्निपतितैः अभिषेकतोयैः सार्धं नराधिपानां हृदयानि पतन्तु ॥ ५ ॥

जाता हूँ। मित्र कर्ण ! तुम भी यहीं बैठ जाओ।

[बैठकर]

आर्य वैकर्ण और वर्षदेव ! बतलाइए—हमारी ग्यारह अक्षौहिणी सेना है, कौन इसका सेनापति होने योग्य है ? क्या कहा आप लोगों ने—माननीय गान्धार देश के राजा बतलाएँगे ? तो अच्छा मामा ही कहें। क्या कहा मामा ?—श्रीमान् गङ्गा तनय (=भीष्म) के होते हुए और कौन सेनापति होने के योग्य हो सकता है ?

मामा ने ठीक ही कहा। अच्छा, अच्छा, पितामह ही [सेनापति] होवें। हम भी यही चाहते हैं कि—

प्रचण्ड प्रभञ्जन [झंझावात] से विक्षुब्ध महासागर के समान सेना के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitized by eGangotri

(प्रविश्य)

काञ्चुकीयः—जयतु महाराजः। एष खलु पाण्डवस्कन्धावाराद् दौत्येनागतः पुरुषोत्तमो नारायणः।

दुर्योधनः—मा तावद् भो बादरायण ! किं किं कंसभृत्यो दामो-

संस्कृत टीका—दुर्योधनः सर्वाभिमतं गाङ्गेयं सेनापतित्वेन प्रतिष्ठापयति—सेनानीत्यादिना। चण्डानिलाहतमहोदधिनादकल्पैः=प्रचण्डमारुतोल्लोलितसमुद्रध्वनिसदृशैः, चण्डानां-प्रचण्डानां अनिलानाम् आहतस्य महोदधेः नादेन तुल्यैः, सेनानिनादपटहस्वनशङ्खनादैः=सेनानिनादः-सैन्यसिंहनादश्च पटहानां स्वनः-आनक शब्दः शङ्खनादः—शङ्खानां नादः इत्येतैः सेनापत्याभिषेकमङ्गलाङ्गैः, उपलक्षितैरिति शेषः। गाङ्गेयमूर्ध्नि=भीष्मशिरसि, पतितैः=प्रक्षिप्तैः, अभिषेकतोयैः=अभिषेकस्य तोयानि तैः—सेनापतिपदाभिषेकजलैः, सार्धं=साकं, नराधिपानाम्=अधिकं पान्ति-इति अधिपाः नराणामधिपाः, तेषां नृपाणां, हृदयानि=चेतांसि, पतन्तु=पितामहसमीपे आपतन्तु; पतनं च तोयपक्षे—मूर्धाधोदेशप्राप्तिः, हृदयपक्षे-धैर्यच्युतिः। सहोक्तिरलङ्कारः। यथोक्तम्-'सहोक्तिः सहभावश्चेद् भासते जनरञ्जनः' कुवलयानन्दः ॥ ५ ॥

जयत्वित्यादि। पाण्डवस्कन्धावारात्=पाण्डवशिविरात्, पाण्डौ जातः पाण्डवः, तस्य स्कन्धावारः—शिविरः, तस्मात्। दौत्येनागतः=दूतभावेन आयातः, दूतस्य भावं दौत्यं, तेन। पुरुषोत्तमः=पुरुषेषु मध्ये उत्तम मानवश्रेष्ठः, नारायणः=श्रीकृष्णः।

सिंहनाद, नगाड़ों [=पटह] की ध्वनि, एवं शङ्खनाद के साथ गंगापुत्र भीष्म के सिर पर अभिसिंचित किए जाने वाले अभिषेक जलों के साथ ही [शत्रु-सेना के] राजाओं के हृदय भी गिरें [अर्थात् साहसहीन हो जाएँ] ॥ ५ ॥

[प्रवेश करके]

काञ्चुकीय—महाराज की जय हो। पाण्डवों के युद्ध शिविर से भगवान् पुरुषोत्तम नारायण [=कृष्ण] दूत के रूप में पधारे हैं।

दुर्योधन—अरे बादरायण ! ऐसा मत कहो। क्या कंस का सेवक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दरस्तव पुरुषोत्तमः। स गोपालकस्तव पुरुषोत्तमः। बार्हद्रथापहृत-विषयककीर्तिभोगस्तव पुरुषोत्तमः। अहो पार्थिवासन्नमाश्रितस्य भृत्यजनस्य समुदाचारः। सगर्वं खल्वस्य वचनम्। आः अपध्वंस।

काञ्चुकीयः—प्रसीदतु महाराजः। संभ्रमेण समुदाचारो विस्मृतः। (पादयोः पतति)।

श्रीकृष्णस्य पुरुषोत्तमत्वविशेषणं निसर्गद्वेषित्वादसहमान आह—मेत्यादि। मा तावदिति प्रतिषेधोऽनिष्टवचनविषयः। किंशब्द आक्षेपे, कोपाद् द्विरुक्तिः। आक्षेप्यं तु पुरुषोत्तमत्वम्। तच्च विरुद्धधर्मोद्भावनया त्रिः खण्डयति—१. कंसभृत्यः=कंसस्य सेवकः। २. दामोदरः=दाम रज्जुः उदरे यस्य निबद्धं चौर्यनिवारणाय जनन्या सः, तथाभूतः—आभ्यां विशेषणाभ्यां नीचवृत्तित्वम् आबालदुश्शीलत्वं चोक्तम्। तव पुरुषोत्तमः=त्वत्पक्षे पुरुषोत्तमः। नीचवृत्तिं दुश्शीलं च जनं त्वं पुरुषोत्तमं मन्यसे, धिक् त्वमित्यभिप्रायः। ३. गोपालकः=आभीरः। अनेन कुलहीनता सूचिता। बार्हद्रथापहृतविषयकीर्त्तिभोगः=बार्हद्रथेन जरासन्धेन अपहृतः विषयो देशः कीर्त्तिर्भोगश्च यस्य स तथा। एतेन शौर्यहीनतोक्ता। पार्थिवासन्नम् आश्रितस्य=राजान्तिकं सेवमानस्य, समुदाचारः=व्यवहारक्रमः, आः=इति कोपे। अपध्वंस=नष्टो भव, मदन्तिकात् महसापसरेत्यर्थः। अनुदात्तेत्व-लक्षणस्यात्मनेपदस्यानित्यत्वात् परस्मैपदम्।

प्रसीदत्वित्यादि। सम्भ्रमेण=त्वरया।

[रस्सी से बाधा गया] दामोदर ही तुम्हारा पुरुषोत्तम है? वह गौओं का पालक ही तुहारा पुरुषोत्तम है? बृहद्रथ के पुत्र जरासंध ने जिसका राज्य कीर्ति और ऐश्वर्य छीन लिया था क्या वही तुम्हारा पुरुषोत्तम है? आश्चर्य है कि राजाओं के सन्निकट रहने वाले [तुझ] सेवकों का भी ऐसा [अनुचित] आचरण हो सकता है। यह वाणी तो बड़ी गर्वीली है। यहाँ से दूर हटो।

काञ्चुकीय—महाराज प्रसन्न हों, महाराज प्रसन्न हों। हड़बड़ाहट के कारण मैं अपने आचरण को भूल गया था। [चरणों पर गिरता है]

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दुर्योधनः—संभ्रम इति। आः मनुष्याणामस्त्येव संभ्रमः। उत्तिष्ठोत्तिष्ठ।

काञ्चुकीयः—अनुगृहीतोऽस्मि।

दुर्योधनः—इदानीं प्रसन्नोऽस्मि। क एष दूतः प्राप्तः।

काञ्चुकीयः—दूतः प्राप्तः केशवः।

दुर्योधनः—केशव इति। एवमेष्टव्यम्। अयमेव समुदाचारः। भो भो राजान! दौत्येनागतस्य केशवस्य किं युक्तम्। किमाहुर्भवन्तः। अर्घ्यप्रदानेन पूजयितव्यः केशव इति। न मे रोचते। ग्रहणमस्यात्र हितं पश्यामि।

सम्भ्रमेति। आ=इति स्मरणे। अमनुष्याणामिति पाठे मनुष्यभासानामित्यर्थः।

इदानीमित्यादि। क एषः=इति प्रश्नो न्याय्यं समुदाचारं भाषयितुम्।

केशव इति। एवम् एष्टव्यं=निर्विशेषणनामधेयमात्रग्रहणलक्षणः एष प्रकार एषतुमर्हं इत्यर्थः। किं युक्तम्=कीदृशं सम्भावनमनुरूपम्। अर्घ्यदानेन=अर्घाय पूजायै हितम् अर्घ्यम् तस्य प्रदानेन न रोचते=अर्थात् पूजनम्; ग्रहणं=बन्दीकरणम्।

दुर्योधन—सम्भ्रम! आह मनुष्य के आने से इतनी हड़बड़ाहट, उठो, उठो।

काञ्चुकीय—अनुगृहीत हूँ।

दुर्योधन—अब मैं प्रसन्न हूँ। कौन सा दूत आया है?

काञ्चुकीय—केशव नामक दूत आया है।

दुर्योधन—'केशव' यह; हाँ ऐसे कहना चाहिए। यही आचरण ठीक है। हे राजाओ! दूत रूप में आए केशव के प्रति क्या [व्यवहार] उचित है? आप लोगों ने क्या कहा कि अर्घ्यदान आदि से केशव का सम्मान करना चाहिए। यह मुझे पसन्द नहीं है। मैं तो उसे बन्दी बनाने में ही अपना हित समझता हूँ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ग्रहणमुपगते तु वासुभद्रे
हृतनयना इव पाण्डवा भवेयुः ।
गतिमतिरहितेषु पाण्डवेषु
क्षितिरखिलापि भवेन्ममासपत्ना ॥ ६ ॥

अपि च योऽत्र केशवस्य प्रत्युत्थास्यति, स मया द्वादशसुवर्णभारेण

टिप्पणी—एष्टव्यः—इच्छार्थकस्य इष्धातोः तव्यत् प्रत्ययः ।

अन्वयः—ग्रहणमुपगते च वासुभद्रे पाण्डवा हृतनयना इव भवेयुः । पाण्डवेषु गतिमति-रहितेषु अखिलापि क्षितिः असपत्ना मम भवेत् ॥ ६ ॥

संस्कृत टीका—ग्रहणस्य हितत्वमुपपादयति—ग्रहणमिति । ग्रहणमुपगते=ग्रहणं बन्दीकरणम्, उपगते प्राप्ते सति वासुभद्रे=कृष्णे, पाण्डवाः=युधिष्ठिरादयः, हृतनयना इव=नेत्रहीना इव, हृतानि नयनानि येषां ते, विनष्टचक्षुषः इव यथा स्यात् तथा, भवेयुः=स्युः । पाण्डवेषु=पाण्डुपुत्रेषु सत्सु, गतिमतिरहितेषु=गतिश्च मतिश्च तयोः रहिताः, तेषु पथप्रदर्शकबुद्धिदातृरहितेषु, अथवा गत्या शरणेन कृष्णात्मना मत्या कृष्णदीयमानया बुद्ध्या च रहितेषु सत्सु अखिलापि=समस्तापि, क्षितिः=भूमिः, मम=दुर्योधनस्य, असपत्ना=विपक्षरहिता, निश्शत्रुः सती वा, भवेत्=स्यात् । भागार्थिनां शत्रूणामसहायतया युद्धेऽनुद्योगात् प्राणपरित्यागाद् वेति भावः । अथवा, मम भवेत्=ममैव भवेत्, मदेकस्वामिका भवेत् । पुष्पिताग्रावृत्तम् ॥ ६ ॥

टिप्पणी—वासुभद्रे—वासुदेवनामैकदेशस्य वासुशब्दस्य सौम्यार्थकभद्रपदयुक्तस्यायं प्रयोगः, रामभद्रवत् । यद्वा, 'विनापि प्रत्ययं पूर्वोत्तरपदवक्तव्यः' इतिपाणिनिशासनात् वासुपदं वासुदेवपदबोधकमिति विवेकः ।

संस्कृत टीका—प्रत्युत्थानमात्रेणापि कृष्णं सम्भावयितुर्दण्डमा-

---

वासुदेव के बन्दी बन जाने पर पाण्डव नेत्र-हीन से हो जायँगे और उनके [शारीरिक] गति एवं मति से हीन हो जाने पर यह समग्र पृथ्वी मेरे लिए शत्रुहीन हो जायगी ॥ ६ ॥

और भी, जो यहाँ केशव के सम्मान में खड़ा होगा । वह बारह स्वर्ण-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दण्ड्यः। तदप्रमत्ता भवन्तु भवन्तः। को नु खलु ममाप्रत्युत्थानस्योपायः। हन्त दृष्ट उपायः। बादरायण ! आनीयतां स चित्रपटो ननु, यत्र द्रौपदीकेशाम्बरावकर्षणमालिखितम्। (अपवार्य) तस्मिन् दृष्टिविन्यासं कुर्वन् नोत्थास्यामि केशवस्य।

काञ्चुकीयः—यदाज्ञापयति महाराजः। (निष्क्रम्य प्रविश्य) जयतु महाराजः। अयं स चित्रपटः।

दुर्योधनः—ममाग्रतः प्रसारय।

दिशति—अपि चेत्यादि। अत्र=सभामध्ये। प्रत्युथास्यति=प्रत्युत्थानसमुदाचारमनुष्ठास्यति। द्वादशसुवर्णभारेण=सुवर्णः कर्षः द्वादशकर्षात्मको नाणकविशेषो द्वादशसुवर्ण इति व्यपदिष्टः, द्वादशसुवर्णानां भारः पलसहस्रद्वयं द्वादशसुवर्णभारः, तेन, दण्ड्यः=दण्डयितुं योग्यः, दण्डनीय इत्यर्थः। महतो दण्डस्य विधानं प्रत्युत्थानस्य महापराधत्वबोधनार्थम्। प्रत्युत्थातुः परस्य विहितदण्डोऽपि कृष्णसम्मुखदर्शने अप्रत्युत्थानमात्मना कर्तुमशक्यं मन्यमानश्चिन्तयति—कोन्वित्यादि। चित्रपटः=आलेख्यपटः, ननु=इति सम्भ्रमे, तस्मिन्=चित्रपटे, एवञ्च कृष्णदर्शनछद्मना प्रत्युत्थानं परिहरिष्यामीत्यभिप्रायः।

ममेत्यादि। प्रसारय=विस्तारय, अर्थात् चित्रपटम्। अहो इत्यादि। एष=आलिखितः, दुश्शासनः, केशहस्ते=कचकलापे।

टिप्पणी—द्वादशसुवर्ण०—'सुवर्णो ना स्वर्णकर्षे' इति मेदिनी। 'भारः

मुद्रा के दण्ड के योग्य होगा। अतः आप लोग सावधान रहें। [स्वगत] मेरे न उठने का कौन सा उपाय हो सकता है ? ठीक है, एक उपाय सूझा। [प्रकट में] अरे बादरायण ! वह चित्रपट तो ले आओ जिसमें द्रौपदी का चीरहरण चित्रित किया गया है। [हटाकर] उसी पर दृष्टि जमाकर केशव के आने पर भी नहीं उठूँगा।

काञ्चुकीय—महाराज की जो आज्ञा। [निकलकर और फिर पुनः प्रवेश करके] महाराज की जय हो। यह वह चित्रपट है।

दुर्योधन—इसे मेरे समक्ष फैला दो।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

काञ्चुकीयः—यदाज्ञापयति महाराजः। (प्रसारयति)

दुर्योधनः—अहो दर्शनीयोऽयं चित्रपटः। एष दुःशासनो द्रौपदीं केशहस्ते गृहीतवान्। एषा खलु द्रौपदी,—

दुःशासनपरामृष्टा सम्भ्रमोत्फुल्ललोचना।
राहुवक्त्रान्तरगता चन्द्रलेखेव शोभते ॥ ७ ॥

एष दुरात्मा भीमः सर्वराजसमक्षमवमानितां द्रौपदीं दृष्ट्वा प्रवृद्धामर्षः सभास्तम्भं तुलयति। एष युधिष्ठिरः,

---

सहस्रद्वितये पलानां च गरिम्णि च' इति यादवः।

अन्वयः—दुःशासनपरामृष्टा संभ्रमोत्फुल्ललोचना (द्रौपदी) राहुवक्त्रान्तरगता चन्द्रलेखा इव शोभते ॥ ७ ॥

संस्कृत टीका—(एषा द्रौपदी) दुःशासनपरामृष्टा=दुश्शासनकरगता, दुश्शासनेन–दुर्योधनकनिष्ठभ्रात्रा, परामृष्टा=केशाकृष्टा सती, सम्भ्रमोत्फुल्ललोचना=सम्भ्रमेण संवेगेन उत्फुल्ले अति विकसिते लोचने यस्याः सा, सक्षुभितविकसितनेत्रा, राहुवक्त्रान्तरगता=राहोः वक्त्रं तस्य अन्तरगता=राहुवदनमध्यप्राप्ता, चन्द्रलेखा=चन्द्रस्य, लेखा, इन्दुकला, इव=यथा, शोभते=प्रतिभाति ॥ ७ ॥

संस्कृत टीका—एष इत्यादि। भीमः=भीमसेनः, सर्वराजसमक्षं=सर्वराजानां सर्वेषां राज्ञां प्रत्यक्षं यथा भवति तथा। प्रवृद्धामर्षः=संवृद्धकोपः,

---

काञ्चुकीय—जो महाराज की आज्ञा। [फैला देता है]

दुर्योधन—अहा! यह चित्रपट वस्तुतः दर्शनीय है। यह दुःशासन है, जिसने द्रौपदी के केशों को हाथों में पकड़ रक्खा है। यह द्रौपदी है जो—

दुःशासन से अक्रान्त होने पर भय से नेत्र विस्फारित किए हुए इस समय मानों राहु के जबड़े में फंसी हुई चन्द्रकला के समान शोभा पा रही है ॥ ७ ॥

यह दुरात्मा भीम है जो अखिल राजसमूह के सामने अपमानित होती हुई द्रौपदी को देखकर प्रचण्ड क्रोध में भरकर मन्त्रशाला के स्तम्भ को उखाड़ने की चेष्टा में है। यह युधिष्ठिर है जो,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सत्यधर्मघृणायुक्तो द्यूतविभ्रष्टचेतनः ।
करोत्यपाङ्गविक्षेपैः शान्तामर्षं वृकोदरम् ॥ ८ ॥

एष इदानीमर्जुनः,

रोषाकुलाक्षः स्फुरिताधरोष्ठ-
स्तृणाय मत्वा रिपुमण्डलं तत् ।
उत्सादयिष्यन्निव सर्वराज्ञः
शनैः समाकर्षति गाण्डिवज्याम् ॥ ९ ॥

तुलयति = चलयति । यद्वा, उन्मिमीते = उन्मानमिह तारतम्यपरीक्षणं, किमनेन स्तम्भेन शत्रून् प्रहरेयं किममुना स्तम्भेनेति तत्सारफल्गुतां दृष्ट्या पर्यालोचयतीत्यर्थः, युधिष्ठिरः = धर्मसूनुः ।

अन्वयः—सत्यधर्मघृणायुक्तो द्यूतविभ्रष्टकेतनः (युधिष्ठिरः) अपाङ्ग-विक्षेपैः वृकोदरं शान्तामर्षं करोति ॥ ८ ॥

संस्कृत टीका — सत्यधर्मघृणायुक्तः = घृणा अकार्यविषया जुगुप्सा, सत्यश्च धर्मश्च घृणा च ताभिः युक्तः, सत्यधर्मदयासहितः, द्यूतविभ्रष्ट-चेतनः = द्यूतेन अक्षक्रीडया तन्निमित्तपराजयेनेत्यर्थः, विभ्रष्टा = नष्टा, चेतना-संविद् यस्य स, एवंभूतः एषः चित्रपटगतः, युधिष्ठरः, अपाङ्ग विक्षेपैः = सेङ्गितैः कटाक्षावलोकनैः, अपाङ्गानां—कटाक्षाणां विक्षेपाः—प्रक्षेपाः तैः, वृकोदरं = भीमं, वृकः—वृकनामग्निः, उदरे जठरे, यस्य तम्, शान्तामर्षं = शान्तः-उपशमितः, अमर्षः द्वेषः यस्य तम्, शमितकोपं, करोति = विदधाति ॥ ८ ॥

टिप्पणी—घृणा—'घृणा जुगुप्साकृपयोः' इति मेदिनी ॥ ८ ॥

अन्वयः—रोषाकुलाक्षः स्फुरिताधरोष्ठः अर्जुनः तत् रिपुमण्डलं तृणाय मत्वा सर्वराज्ञः उत्सादयन्निव शनैः गाण्डिवज्यां समाकर्षति ॥ ९ ॥

सत्य, धर्म और दया से युक्त होकर भी जूए के खेलने से मतिभ्रष्ट हो, आँखों के इशारे से ही भीम के क्रोध को शान्त कर रहा है ॥ ८ ॥

और, अब यह अर्जुन है, जिसके—

नेत्र क्रोध से व्याकुल हो रहे हैं, अधरोष्ठ (क्रोध के कारण) फड़क रहे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एष युधिष्ठिरोऽर्जुनं निवारयति। एतौ नकुलसहदेवौ,
कृतपरिकरबन्धौ चर्मनिस्त्रिंशहस्तौ
परुषितमुखरागौ स्पष्टदष्टाधरोष्ठौ।

संस्कृत टीका—क्रमशः अर्जुनमपि विशिनष्टि—रोषाकुलेत्यादिना। रोषाकुलाक्षः—रोषेण क्रोधेन आकुले व्याप्ते, अक्षिणी—नेत्रे यस्य सः, स्फुरिताधरोष्ठः=अधरोष्ठः-अधरदन्तच्छद येन सः, एषः अर्जुनः, तत्=तत्कालीनं, रिपुमण्डलं=रिपूणां मण्डलं, शत्रुराजकं, तृणाय मत्वा=अकिञ्चित्करं ज्ञात्वा, तृणमिवानादृत्येत्यर्थः; सर्वराज्ञः=सर्वे च ते राजानः सर्वराजानः, तान्, सर्वान् द्रौपदीपरिभवस्य कर्तॄन् अनुमन्तॄन् द्रष्टॄंश्च नृपान्, उत्सादयन्निव=ध्वंसयिष्यन्निव, शनैः=मन्दं यथा स्यात् तथा, गाण्डिवज्यां=गाण्डिवाख्यस्य चापस्य मौर्वीम्, समाकर्षति=सम्यक् प्रकारेण आकर्षणं करोति ॥ ९ ॥

टिप्पणी—तृणाय—'मन्यकर्मण्यनादरे' इति चतुर्थी। सर्वराज्ञः—'राजाहस्सखिभ्यः' इति समासान्तस्याकरणमनित्यत्वात्। 'सर्वराजान्' इत्येव क्वचित् पाठः। उत्सादयन्निव—उत्+सद्+णिच्+लृट् (शतृ प्रत्ययः), 'लृटः सद्वा' इति लृटः शात्रादेशः प्रकृत्यर्थस्य समाकर्षणक्रियां प्रति फलत्वविवक्षया। (क) अत्र उत्प्रेक्षालङ्कारः। (ख) उपजातिवृत्तम् ॥ ९ ॥

संस्कृत टीका—एष इत्यादि। निवारयति=अर्थात् युद्धोद्यमात्।

अन्वयः—कृतपरिकरबन्धौ चर्मनिस्त्रिंशहस्तौ परुषितमुखरागौ स्पष्ट-

---

हैं, और जो समस्त राजमण्डल को तृणवत् समझ रहा है, उन सब राजाओं को नष्ट भ्रष्ट कर देने की इच्छा से धीरे-धीरे गाण्डीव की डोरी को खींच रहा है ॥ ९ ॥

यह युधिष्ठिर अर्जुन को रोक रहा है। यह दोनों नकुल और सहदेव हैं—

जिन दोनों ने कमर कस ली है और जिन दोनों ने ढाल और तलवार संभाल ली है, जिन दोनों के मुँह कठोर वर्ण अर्थात् रक्त वर्ण के हो रहे हैं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

विगतमरणशङ्कौ सत्वरं भ्रातरं मे
हरिमिव मृगपोतौ तेजसाभिप्रयातौ ॥ १० ॥

एष युधिष्ठिरः कुमारावुपेत्य निवारयति—

दष्टाधरोष्ठौ विगतमरणशङ्कौ सत्वरं मे भ्रातरं मृगपोतौ हरिमिव तेजसा अभिप्रयातौ ॥ १० ॥

संस्कृत टीका—कृतपरिकरबन्धौ=कृतः परिकरबन्धः प्रगाढगात्रबन्धः याभ्यां तौ, चर्मनिस्त्रिंशहस्तौ=चर्मनिस्त्रिंशौ फलकखड्गौ हस्तयोर्ययोस्तौ—फलकखड्गौ पाणौ, परुषितमुखरागौ=परुषितः परुषो रुक्षः कृतः मुखरागो मुखप्रकाशो ययोस्तौ—ताम्राननौ, स्पष्टदष्टाधरोष्ठौ=स्पष्टः दन्तेन दष्टः अधरोष्ठः ययोस्तौ—चर्विताधरोष्ठौ, विगतमरणशङ्कौ=विगता विनष्टा मरणस्य मृत्योः शङ्का सन्देहः ययोस्तौ, सत्वरं, मे=मम दुर्योधनस्य, भ्रातरं=दुश्शासनम्, मृगपोतौ=हरिणडिम्भौ, मृगस्य पोतः तौ, हरिमिव=सिंहमिव, तेजसा=वीर्येण, अभिप्रयातौ=प्रत्यवस्थितौ। अत्र मृगपोतोपमया नकुलसहदेवयोरभियानस्योपहास्यत्वं द्योतितम्। उपमालङ्कारः। मालिनीवृत्तम् ॥ १० ॥

टिप्पणी—तु० 'न व्याघ्रं मृगशिशवः प्रधर्षयन्ति। (प्रतिमा० ५.१८); 'कथं लम्बसटः सिंहो मृगेण विनिपात्यते (अभिषेक० ३.२०)। सत्वरम्—त्वरया सह वर्तते सत्वरम्—शीघ्रमेव। चर्म०—चर्म च निस्त्रिंशं च चर्मनिस्त्रिंशे (द्व० स०) चर्मनिस्त्रिंशे हस्तयोः ययोः तौ (बहु०)। निस्त्रिंश—निर्गतः त्रिंशद्भ्योऽङ्गुलिभ्य इति निस्+त्रिंशद्+डच् ॥ १० ॥

और जो अपने अधरोष्ठ को स्पष्ट रूप से दाँतों से दबाए हुए उसी प्रकार मरण भय की चिन्ता से रहित ये मृगशावक अपने तेज से मेरे भाई पर शीघ्रता से आक्रमण कर रहे हैं जैसे हरिण के बच्चे सिंह पर ॥ १० ॥

यह युधिष्ठिर दोनों कुमारों के पास जाकर उन्हें रोक रहा है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

नीचोऽहमेव विपरीतमतिः कथं वा
रोषं परित्यजतमद्य नयानयज्ञौ ।
द्यूताधिकारमवमानममृष्यमाणाः
सत्त्वाधिकेषु वचनीयपराक्रमाः स्युः ॥ ११ ॥

अन्वयः—विपरीतमतिः, नीचः कथम् अद्य नयानयज्ञौ रोषं परित्यजतम्, द्यूताधिकारम् अवमानम् अमृष्यमाणाः सत्वाधिकेषु वचनीयपराक्रमा स्युः ॥ ११ ॥

संस्कृत टीका—नकुलसहदेवौ निवारयता धर्मजेन सभायां पुरा यदुक्तं वाक्यं, तत प्रकृतानुगुण्यात् स्मरति—नीच इति । विपरीतमतिः=विपरीता आत्मयोगक्षेमप्रतिकूला मतिः द्यूतगोचरा यस्य स तथाभूतः, अहमेव=युधिष्ठिर एव, नीचः=अधमः भवामीति शेषः । वा=अन्यथाशब्दार्थे, नीचत्वाभावे इत्यर्थः, कथं=केन हेतुना, अद्य=इदानीं, द्यूतपराजितसमुदाचारानुष्ठानयोग्येऽस्मिन् समये इत्यर्थः । नयानयज्ञौ=नयम् अनयञ्च जानीतः, द्यूतनीत्यनीतिवेदिनौ, युवां, रोषं=क्रोधं, परित्यजतं=परिजहीतं, द्यूत विजितैर्नामिदृशः परिभवः सोढव्य एव, न तु पराक्रमेण सद्यः प्रतिकर्तुं योग्य इति भावः । पराक्रमेण को दोषस्तत्राह—द्यूताधिकारं=द्यूतस्य-कैतवस्य अधिकारं—क्रीडासामर्थ्यम्, द्यूतेन अधिक्रियते प्रस्तूयत इति द्यूताधिकारः, तं द्यूतनिमित्तकमित्यर्थः, अवमानम्=अपमानम्, अमृष्यमाणाः=असहमानाः, अर्थाद् विक्रमेण प्रतिकर्तुं सद्यो व्यवस्यन्तः पुरुषाः, सत्वाधिकेषु=सत्त्वं पराक्रमः तेनाधिकेषु महापराक्रमशालिषु मध्ये, वचनीयपराक्रमाः=वचनीयः अकालप्रयोगान्निन्द्यः पराक्रमः विक्रमो येषां ते तथोक्ताः; स्युः=(केन प्रकारेण) भवेयुः । वसन्ततिलका छन्दः ॥ ११ ॥

मैं ही नीच हूँ नहीं तो मेरी मति विपरीत कैसे हो जाती । तुम दोनों नीति और अनीति को जानते हो अतः आज रोष को त्याग दो । अन्यथा द्यूतजन्य अपकार को न सहने के कारण हम लोग ही अधिक पराक्रमशील लोगों के द्वारा निन्दनीय पराक्रम वाले माने जायँगे ॥ ११ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इति । एष गान्धारराजः,

अक्षान् क्षिपन् स कितवः प्रहसन् सगर्वं
सङ्कोचयन्निव मुदं द्विषतां स्वकीर्त्या ।
स्वैरासनो द्रुपदराजसुतां रुदन्तीं
काक्षेण पश्यति लिखत्यपि गां नयज्ञः ॥ १२ ॥

अन्वयः—कितवः स अक्षान् क्षिपन् सगर्वं प्रहसन् स्वकीर्त्या द्विषतां मुदं संकोचयन्निव स्वैरासनः (सन्) रुदन्तीं द्रुपदराजसुतां काक्षेण पश्यति नयज्ञः स गामपि लिखति ॥ १२ ॥

संस्कृत टीका— गान्धारराजं विशिनष्टि—अक्षानिति । कितवः= धूर्तः, सः=शकुनिः, अक्षान्=पाशकान्, क्षिपन्=प्रसारयन्, सगर्वं= गर्वेण सहितं सदर्पं, प्रहसन्=हास्यं कुर्वन्, स्वकीर्त्या=स्वस्य कीर्तिः तया, आत्मयशसा अक्षदेवननैपुण्यजन्मना, द्विषतां=शत्रूणां, पाण्डवानां, मुदं=हर्षं, मोदनम् इति मुद् ताम्, संकोचयन्निव=निवारयन्निव, स्वैरासनः=स्वैरं स्वच्छन्दम् आसनम्—उपवेशनस्थानं यस्य स, यद्वा—स्वच्छन्दम् अगणितगुरुजनसान्निध्यम् आसनम् उपवेशप्रकारो यस्य सः, स्वच्छन्दोपविष्टः सन्, रुदन्तीं=अश्रुमुञ्चन्तीम्, द्रुपदराजसुतां=द्रुपदानां राजा, तस्य सुता, ताम्—द्रुपराजकुमारीं द्रौपदीं, काक्षेण=अपाङ्गेन, अक्षिकोणेन, पश्यति=अवलोकयति, नयज्ञः=नीतिज्ञः, सः=मम मातुलः, शकुनिरित्यर्थः, गामपि=(कुत्सितेन पाशकेन) भूमिं, लिखति च=उट्टङ्कयति ॥ १२ ॥

टिप्पणी —काक्षेण— अक्षिकोणेन पश्यति । अत्रगणपतिशास्त्रिणः—

यह गान्धारराज हैं,

जो जुए में तथा कूटनीति में कुशल गर्व के साथ हँसते हुए, पाँसों को फेंकते हुए तथा अपनी कीर्ति से शत्रुओं के हर्ष को संकुचित करते हुए अपने आसन पर बैठे-बैठे रोती हुई द्रौपदी को तिरछी दृष्टि से देखता है और पृथ्वी पर (पाँसे से) रेखा भी खींच रहा है (अथवा अपनी कुत्सित दृष्टि से पृथ्वी पर रेखाएँ खींच रहा है) ॥ १२ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एतावाचार्यपितामहौ तां दृष्ट्वा लज्जायमानौ पटान्तान्तर्हितमुखौ स्थितौ। अहो अस्य वर्णाढ्यता। अहो भावोपपन्नता। अहो युक्त लेखता। सुव्यक्तमालिखितोऽयं चित्रपटः। प्रीतोऽस्मि। कोऽत्र।

काञ्चुकीयः—जयतु महाराजः।

दुर्योधनः—बादरायण! अनीयतां स विहगवाहनमात्रविस्मितो दूतः।

'अक्षम् इन्द्रियं तच्च प्रकृतेऽक्षिरूपम्। ईषदक्षं काक्षम्, 'ईषदर्थे' पा० सू० ६.३.१०५ इति कोः कादेशः।' लिखत्यपि गां—अत्र 'लिखत्यभिखं' इत्येव पाठः। सम्मुखस्थमाकाशमित्यर्थः, आकाशे दृष्टिं स्थाप्य स्वाभिप्रायं निश्चिनोतीवेति भावः। नयज्ञः—'नयो नीतिद्यूतविशेषयोः' इति मेदिनी॥ १२॥

संस्कृत टीका—तां=द्रौपदीमित्यर्थः, लज्जायमानौ=लज्जामनुभवन्तौ। पटान्तान्तर्हितमुखौ=वस्त्राग्रच्छन्नवदनौ, अहो=इति श्लाघायाम्, अस्य=चित्रपटस्य, वर्णाढ्यता=वर्णसम्पन्नता, भावोपपन्नता=भावेन स्वभावेन आलेखनीयवस्तुगतेन, चित्रकाराभिप्रायेण वा उपपन्नता संवादिता युक्तलेखता=युक्तः अन्यूनानतिरिक्तः लेखो लेखनं यस्मिन् स युक्तलेखः, तस्य भावस्तत्ता, लेखौचित्यम्।

बादरायणेत्यादि। विहगवाहनमात्रविस्मितः=विहगः पक्षी गरुडः तद्रूपं वाहनं तन्मात्रेण विस्मितः गर्वितः, दूतः=संन्देशहरः, कृष्ण इति

यह हैं आचार्य और पितामह जो द्रौपदी को देखकर लज्जित होते हुए वस्त्रों में मुँह छुपाये हुए हैं। इस चित्र के रंगों की श्रेष्ठता प्रशंसनीय है, अभिव्यञ्जना और समुचित चित्रकारी (कितनी प्रभावमयी है) कितनी भावों की सुस्पष्टता है इस चित्रपट में! मैं प्रसन्न हो गया हूँ। कोई है यहाँ?

कञ्चुकी—महाराज की जय हो।

दुर्योधन—बादरायण! उस दूत को ले आओ जिनका वाहन पक्षी (गरुड़) है और जो आश्चर्यान्वित हो रहा है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

काञ्चुकीयः—यदाज्ञापयति महाराजः। (निष्क्रान्तः)

दुर्योधनः—वयस्य कर्ण !

प्राप्तः किलाद्य वचनादिह पाण्डवानां
दौत्येन भृत्य इव कृष्णमतिः स कृष्णः।
श्रोतुं सखे ! त्वमपि सज्जय कर्ण ! कर्णौ
नारीमृदूनि वचनानि युधिष्ठिरस्य ॥ १३ ॥

यावत्।

टिप्पणी—पटान्तान्त०—पटस्य वस्त्रस्य अन्तेन अञ्चलेन अन्तर्हिते आच्छादिते मुखे याभ्यां तादृशौ। वर्णाढ्यता—वर्णानां रञ्जकद्रव्याणाम् आढ्यता सम्पन्नता। वर्णस्य आढ्यता (ष० त०)। आढ्यता—अ+ढ्यै+का=आढ्य, तस्य भावः आढ्यता, आढ्य+तल्। भावोपपन्नता—भावेन उपपन्नता (तृ० त०)। उपपन्नः—उप+पद्+क्त, उपपन्नः तस्य भावे तल्। विहग०—विहायसा गच्छतीति विहगः (गम्+ड) स एव वाहनं यस्य विहगवाहनम् (कर्म०), तदेव विहगवाहनमात्रं (नित्य०), तेन विस्मित (तृ० त०)।

अन्वयः—अद्य इह कृष्णमतिः सः कृष्णः पाण्डवानां वचनात् दौत्येन भृत्य इव प्राप्त किल। हे सखे ! कर्ण त्वमपि नारीमृदूनि युधिष्ठिरस्य वचनानि श्रोतुं कर्णौ सज्जय ॥ १३ ॥

संस्कृत टीका—अद्य=सम्प्रति, सः कृष्णमतिः=मलिनबुद्धिः, कृष्णा कलुषिता मतिः बुद्धिः यस्य सः, सः=प्रसिद्धः, कृष्णः=वासुदेवः; पाण्डवानां=पाण्डुपुत्राणां, वचनात्=वचसा, दौत्येन=दूतस्य भावः, तेन

कञ्चुकी—जैसी महाराज की आज्ञा। (प्रस्थान)

दुर्योधन—मित्र कर्ण !

पाण्डवों के कहने पर यह कृष्ण-बुद्धि कृष्ण यहाँ दूत बनकर सेवक के समान आया है। अतः हे कर्ण, तुम भी नारियों के समान कोमल युधिष्ठिर की वाणी को सुनने के लिये अपने कानों को तैयार रखो ॥ १३ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitized by eGangotri

(ततः प्रविशति वासुदेवः काञ्चुकीयश्च ।)

वासुदेवः—अद्य खलु धर्मराजवचनाद् धनञ्जयाकृत्रिममित्रतया चाहवदर्पमनुक्तग्राहिणं सुयोधनं प्रति मयाप्यनुचितदौत्यसमयोऽनुष्ठितः । अद्य च,

---

दूतकार्येण, भृत्यः इव = दासः इव, प्राप्तः, किल = सम्प्राप्तः, अतः हे सखे ! = मित्र ! कर्ण = राधेय, त्वमपि = भवानपि, युधिष्ठिरस्य = पाण्डवज्येष्ठस्य, नारीमृदूनि = स्त्रीवचनविक्लवानि, नारी इव मृदूनि, वचनानि = स्त्रीवत् कोमलानि वचांसि, श्रोतुं = आकर्णयितुं, कर्णौ = निजश्रोत्रे, सञ्जय = प्रसञ्जय । अत्र उपमालङ्कारः । वसन्ततिलकावृत्तम् ॥ १३ ॥

टिप्पणी—कृष्णमतिः—कृष्णा मतिर्यस्य सः (बहु०) । भृत्यः—बिभ्रति इति भृत्यः—भृ + क्यप् + तुक् च । दौत्येन—दूतस्य भावः दौत्यम्—दूत + ष्यञ् । नारीमृदूनि—नार्याः वचनानि इव मृदूनि (मध्यमपद०) ॥ १३ ॥

संस्कृत टीका—धर्मराजवचनात् = धर्मराजस्य युधिष्ठिरस्य वचनात्, धनञ्जयाकृत्रिममित्रतया च = धनञ्जयस्य अर्जुनस्य अकृत्रिमं निरुपाधिकं मित्रं सुहृत् तस्य भावस्तत्ता (स्वाभाविकी मित्रता), तथा च, आहवदर्पम् = आहवे युद्धे दर्पः अहङ्कारो यस्य तम्, अनुक्तग्राहिणम् = उक्तावधीरिणम्, मयापि, अनुचितदौत्यसमयः अनुष्ठितः = अननुष्ठितपूर्वानुचितकर्मणापि कृतः, समयशब्द आचारे सङ्केते वा ।

टिप्पणी — आहवदर्पम्—आहूयन्तेऽरयोऽत्र इति आहवः रणः, आहवस्य दर्पः यस्य तम् (बहु०), आ + ह्वे + अप् (सम्प्रसारणे गुणः), दृप् + घञ् = अच् वा । अनुक्तग्राहिणं—उक्तं न गृह्णाति उक्तं अवधीरयति इति अनुक्तग्राही तम् । सुयोधनम्—सुखेन युध्यतेऽसौ, सुयो-

---

(तब वासुदेव और कञ्चुकी प्रवेश करते हैं)

वासुदेव—धर्मराज युधिष्ठिर के कहने पर और धनंजय (अर्जुन) की सच्ची मित्रता के कारण मैं आज समराभिमानी और दूसरों की बात न मानने वाले दुर्योधन के पास अनुचित दूतकार्य के लिए आया हूँ ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कृष्णापराभवभुवा रिपुवाहिनीभ—
कुम्भस्थलीदलनतीक्ष्णगदाधरस्य ।
भीमस्य कोपशिखिना युधि पार्थपत्त्रि—
चण्डानिलैश्च कुरुवंशवनं विनष्टम् ॥ १४ ॥

धनः—सु + युध् + युच्, तम् । अनुचितदौत्यसमयः—न उचितः अनुचितः दौत्यस्य समयः आचारः, दौत्यसमयः (ष० त०) अनुचितः । अनुष्ठितः—अनु + स्था + क्त ।

अन्वयः—कृष्णापराभवभुवा रिपुवाहिनीभकुम्भस्थलीदलनतीक्ष्णगदाधरस्य भीमस्य कोपशिखिना पार्थपत्रिचण्डानिलैश्च कुरुवंशवनं युधि विनष्टम् ॥ १४ ॥

संस्कृत टीका—कृष्णापराभवभुवा = कृष्णायाः द्रौपद्याः पराभवः तिरस्कारः, तस्मात् भूः उत्पत्तिः तेन, द्रुपदात्मजापमानोत्पन्नेन रिपुवाहिनीभकुम्भस्थलीदलनतीक्ष्णगदाधरस्य = रिपुवाहिनीभानां रिपुवाहिनी, रिपुसैन्यं, तत्रत्यानाम् इभानां शत्रुसेनागजानां कुम्भस्थल्या मस्तकस्थलस्य दलने पाटने तीक्ष्णा निर्दया या गदा आयुधविशेषः तस्या धरस्य धारयितुः भीमस्य = वायुपुत्रस्य, कोपशिखिना = कोपाग्निना, कोप एव शिखी, तेन क्रोधवह्निना, पार्थपत्रिचण्डानिलैश्च = पार्थस्य अर्जुनस्य पत्रिणः बाणाः एव चण्डानिलाः = तीक्ष्णवायवः, तैश्च, अर्जुनबाणरूपैश्चण्डमारुतैश्च, कुरुवंशवनं = कुरूणा वंशः कुलमेव वंशो बहुशाखत्वाद् वेणुः, तस्य वनम्, कौरवारण्यम्, युधि = संग्रामे, महाभारते, विनष्टम् = नाशं प्राप्तम्, पश्यामीति शेषः । भावित्वेनाभिमतस्य विनाशस्य भूतत्ववचनम् अचिरावश्यम्भावद्योतनार्थम् । अत्र साङ्गरूपकालङ्कारः । वसन्ततिलकावृत्तम् ॥ १४ ॥

द्रौपदी के अपमान से उत्पन्न होने वाली, शत्रु की सेना के मतंगजों के गण्डस्थलों को विदीर्ण करने वाली तीक्ष्ण गदा को धारण करने वाले भीम की क्रोधाग्नि से तथा अर्जुन के बाणों की प्रचण्ड वायु के झोंकों से युद्ध में कुरुवंशकानन नष्ट हो जाएगा ॥ १४ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इदं सुयोधनशिविरम्। इह हि,—

आवासाः पार्थिवानां सुरपुरसदृशाः स्वच्छन्दविहिता
विस्तीर्णाः शस्त्रशाला बहुविधकरणैः शस्त्रैरुपचिताः।
हेषन्ते मन्दुरास्थास्तुरगवरघटा बृंहन्ति करिण
ऐश्वर्यं स्फीतमेतत् स्वजनपरिभवादासन्नविलयम् ॥ १५ ॥

टिप्पणी—वाहिनी—वाहः अस्ति अस्या इति, वाह + इनि + ङीप्। कोपशिखिना—शिखा अस्यास्तीति शिखी (शिखा + इनि), कोप एव शिखी अग्निः, कोपशिखी, तेन। पार्थः—पृथायाः अपत्यं पुमान्, पार्थः—पृथा + अण्। पत्रं पक्षः अस्यास्तीति पत्री (पत्र + इनि)। चण्डानिलाः—चण्डाश्च ते अनिलाः चण्डानिलाः ॥ १४ ॥

अन्वयः—सुरपुरसदृशाः स्वच्छन्दविहिताः पार्थिवानां आवासाः बहुविधकरणैः शस्त्रैः उपचिताः विस्तीर्णाः शस्त्रशालाः मन्दुरस्थाः तुरगवरघटाः हेषन्ते करिणः बृंहन्ति एतत् स्फीतं ऐश्वर्यं स्वजनपरिभवात् आसन्नविलयम् दृश्यते ॥ १५ ॥

संस्कृत टीका—सुरपुरसदृशाः=अमरपुरतुल्याः, सुराणां देवानां पुराणि नगराणि तैः सदृशाः तुल्याः, स्वच्छन्दविहिताः=स्वतन्त्रनिर्मिताः, स्वच्छन्देन स्वेच्छया विहिताः निर्मिताः, पार्थिवानां=पृथिव्याः ईश्वराः, तेषां नृपाणाम्, आवासाः=निवासस्थानानि, बहुविधकरणैः=बहुप्रकारसाधनैः, शस्त्रैः=आयुधैः, उपचिताः=वृद्धिङ्गताः, विस्तीर्णाः=विशालाः शस्त्रशालाः=शस्त्राणाम् आयुधानां शाला गृहाणि, आयुधागाराणि, मन्दुरस्थाः=मन्दुरायां वाजिशालायां, अश्वशालास्थाः, तुरगवरघटा=अश्वश्रेष्ठ-

---

यह सुयोधन की छावनी है। यहाँ पर राजाओं के निवास-स्थान अमरावती के समान स्वच्छन्द बने हैं। विशाल शस्त्रशाला अनेक प्रकार के शस्त्रों से संगृहीत है। अश्वशाला में श्रेष्ठ अश्व हिनहिना रहे हैं और गजशाला में गजराज चिंग्घाड़ रहे हैं। यह विशाल वैभव केवल आत्मीयजनों के अनादर करने के कारण ही नष्ट होने के कगार पर है ॥ १५ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भोः !

दुष्टवादी गुणद्वेषी शठः स्वजननिर्दयः ।
सुयोधनो हि मां दृष्ट्वा नैव कार्यं करिष्यति ॥ १६ ॥

समूहाः, हेषन्ते=शब्दायन्ते, ह्लेषन्ते, करिणः=गजाः, बृंहन्ति=गर्जन्ति, एतत्=पुरतो दृश्यमानम्, स्फीतं=प्रवृद्धम्, ऐश्वर्यम्=गृहतुरगादिवैभवमित्यर्थः, स्वजनपरिभवात्=स्वजनानां स्वबन्धूनां परिभवः तिरस्कारः, तस्मात् कुटुम्बानादरात्, आसन्नविलयं=आसन्नो विलयो यस्य तत्, विनाशोन्मुख, दृश्यते इति शेषः। अत्र उपमालङ्कारः। सुवदनावृत्तम्। तल्लक्षणम्—ज्ञेया सप्ताश्वषड्भिमरभनययुता म्लौ गः सुवदना ॥ १५ ॥

टिप्पणी—मन्दुरस्था—'वाजिशाला तु मन्दुरा' इत्यमरः। तुरगवरघटाः—तुरेण वेगेन गच्छतीति तुरगः, तुरगेषु वराः तुरगवराः (स० त०), तेषां घटाः समूहाः। हेषन्ते—'आश्वानां हेषा ह्लेषा तु निःस्वनः' इत्यमरः। बृंहन्ति—बृंहणं करिगर्जितमित्यमरः। स्फीतम्—स्फाय (वृद्धि करना)+क्त, स्फीभावः। इह तृतीयपादान्तलघोर्वैकल्पिकं गुरुत्वं बोद्धव्यम् ॥ १५ ॥

अन्वयः—दुष्टवादी गुणद्वेषी शठः स्वजननिर्दयः सुयोधनः मां दृष्ट्वा हि कार्यं नैव करिष्यति ॥ १६ ॥

संस्कृत टीका—दुष्टवादी=अप्रियवक्ता, दुष्टं कर्णकटु वदति भाषते इति दुष्टवादी, गुणद्वेषी=गुणान् सद्भावान् द्वेष्टि इति गुणद्वेषी, क्षमादिगुणद्वेष्टा, शठः=धूर्तः, स्वजननिर्दयः=स्वजनेषु स्वकीयेषु जनेषु निर्दयः दयारहितः, निष्कृपः, सुयोधनः=दुर्योधनः, माम्=केशवं, दृष्ट्वा=अवलोक्य, हि=इति निश्चये, कार्यं=कौरवपाण्डवसन्धिरूपं प्रयोजनम्, नैव करिष्यति=कथमपि न विधास्यति। अनुष्टुप्छन्दः ॥ १६ ॥

टिप्पणी—दुष्टवादी—दुष्टं वदितुं शीलं यस्य सः (उप० स०)। गुण-

अरे !

यह कटुभाषी, गुणद्वेषी, स्वजनों के प्रति क्रूर दुरात्मा दुर्योधन मुझे देखकर कभी भी कार्य (कर्त्तव्य) नहीं करेगा ॥ १६ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भो बादरायण ! किं प्रवेष्टव्यम् ।

काञ्चुकीयः—अथ किमथ किम् । प्रवेष्टुमर्हति पद्मनाभः ।

वासुदेवः—(प्रविश्य) कथं कथं मां दृष्ट्वा संभ्रान्ताः सर्वक्षत्रियाः । अलमलं संभ्रमेण । स्वैरमासतां भवन्तः ।

दुर्योधनः—कथं कथं केशवं दृष्ट्वा संभ्रान्ताः सर्वक्षत्रियाः । अलमलं संभ्रमेण । स्मरणीयः पूर्वमाश्रावितो दण्डः । नन्वहमाज्ञप्ता ।

वासुदेवः—भोः सुयोधन ! किमास्से ।

दुर्योधनः—(आसनात् पतित्वा आत्मगतम्) सुव्यक्तं प्राप्त एव

द्वेषी—गुणेषु द्वेषो यस्य सः (बहु०) गुणविरोधी । स्वजननिर्दयः—निर्गता दया यस्मात् स ('निरादयः क्रान्ताद्यर्थे पञ्चम्या' इति पञ्चमीसमासः) ।

संस्कृत टीका—भोः=इति विषादसूचनार्थम् । किं मया प्रवेष्टव्यम्, अथ किम् अथ किम्=अङ्गीकारे द्विरुक्तिः सम्भ्रमे वा । पद्मनाभः=पद्मं कमलं नाभौ यस्य (बहु०); क्षीरसागरशयनसमये तस्य नाभेः सकमलात् । सम्भ्रान्ताः=प्रत्युत्थाने व्यग्राः । अहम्=इति स्वाज्ञानुष्ठापननिबन्धित्वं द्योतयति । किमास्से=कुशली वर्तसे किमित्यर्थः । कुशलप्रश्नसमुदाचार ईदृशो भासनाटकेषूपलभ्यते ।

हे बादरायण ! क्या प्रवेश करना चाहिए ?

कञ्चुकी—हाँ अवश्य ! पद्मनाभ प्रवेश करें (प्रवेश करने के योग्य) हैं ।

वासुदेव—(प्रवेश करके) अरे यह क्या ! सभी क्षत्रिय मुझे देखकर क्यों संभ्रान्त हो गये हैं ! अरे आप सम्भ्रम न करें । आप लोग स्वच्छन्द बैठिये ।

दुर्योधन—अरे ! केशव को देखकर क्यों संभ्रान्त हो गये ! संभ्रम न करें । क्या तुम्हें पूर्वघोषित दण्डाज्ञा भूल गयी । निश्चय ही आज्ञा करने वाला मैं हूँ ।

वासुदेव—(पास जाकर) हे दुर्योधन ! आप कैसे बैठे हैं ?

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

केशवः ।

उत्साहेन मतिं कृत्वाप्यासीनोऽस्मि समाहितः ।
केशवस्य प्रभावेण चलितोऽस्म्यासनादहम् ॥ १७ ॥

अहो बहुमायोऽयं दूतः । (प्रकाशम्) भो दूत ! एतदासनमास्यताम् ।

आसनात् पतित्वेति । पतित्वा—अत्र पतनं च ससम्भ्रमं चलनम्, सम्भ्रमे च केशवप्राप्तिज्ञानं निमित्तम् ।

अन्वयः—उत्साहेन मतिं कृत्वा अपि समाहितः (सन्) आसीनोऽस्मि । केशवस्य प्रभावेण अहम् आसनात् चालितोऽस्मि ॥ १६ ॥

संस्कृत टीका—अत्र आसनादचलने प्रयत्नमास्थितस्यापि मम कृष्णप्राप्तिज्ञानमात्रेण ससम्भ्रमं यच्चलतं सञ्जातं तत् कृष्णस्य माहात्म्यादित्याह = उत्साहेनेति । उत्साहेन = उत्साहगुणयुक्तेन, अविशङ्कयेत्यर्थः, मतिम् = बुद्धि, अनुत्थाननिश्चयम्, कृत्वा = विधाय, अपि = च, समाहितः (सन्) = अविक्षिप्तचित्तः, सावधानः सन्, आसीनोऽस्मि = उपविष्टोऽस्मि । (तथापि अहम्) केशवस्य = नारायणस्य, प्रभावेण = माहात्म्येन, तेजोविशेषेणेत्यर्थः, अहम् = दुर्योधनः, आसनात् = निजोपवेशनस्थानात्, सिंहासनादित्यर्थः, चलितोऽस्मि = सम्भ्रमोत्थितोऽस्मि ॥ अनुष्टुप्छन्दः ॥ १७ ॥

टिप्पणी—उत्साहेन—उत् = सह् + घञ् । मतिं—मन् + क्तिन् । समाहितः—सम् + आ + धा + क्त ।

संस्कृत टीका—अहो इत्यादि । बहुमायः = बह्वी बहुप्रकारा माया शाम्बरी यस्य सः ।

दुर्योधन—(आसन से गिरकर, स्वगत ही) स्पष्ट है कि केशव आ गये ।

बड़े उत्साह, के साथ संकल्प करके मैं सावधान होकर बैठा था, परन्तु केशव के प्रभाव से मैं आसन से विचलित हो गया ॥ १७ ॥

अरे ! यह दूत बहुत मायावी (जादूगर) है । (प्रकट में) ओ दूत ! इस आसन पर बैठो ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वासुदेवः—आचार्य ! आस्यताम् । गाङ्गेयप्रमुखा राजानः ! स्वैरमासतां भवन्तः । वयमप्युपविशामः । (उपविश्य) अहो दर्शनीयोऽयं चित्रपटः । मा तावत् । द्रौपदीकेशधर्षणमत्रालिखितम् ।

अहो नु खलु,

सुयोधनोऽयं स्वजनावमानं पराक्रमं पश्यति बालिशत्वात् ।
को नाम लोके स्वयमात्मदोषमुद्घाटयेन्नष्टघृणः सभासु ॥ १८ ॥

प्रत्युत्थानोपचारेणात्मानं सम्भावय द्रोणभीष्मादीन् प्रतिसत्कुर्वन्नाह—आचार्येत्यादि । गाङ्गेयप्रमुखाः=भीष्ममुख्याः मुखं प्रगतः मुख्यः । आपातदर्शनप्रवृत्तं द्रौपदीकेशाकर्षणलिखितचित्रपटप्रेक्षणसंलग्नदुर्योधनं केशवः आक्षिपति—मा तावदिति । अहो नु खलु=इति आश्चर्ये ।

टिप्पणी—बहुमायः—बह्वी माया यस्य (बहु०) । गाङ्गेयप्रमुखाः—गाङ्गेयः भीष्मः प्रमुखो येषां ते ।

अन्वयः—अयं सुयोधनः बलिशत्वात् स्वजनावमानं पराक्रमं पश्यति । लोके को नाम नष्टघृणः सभासु स्वयम् आत्मदोषम् उद्घाटयेत् ॥ १८ ॥

संस्कृत टीका—अयं=एषः, दुष्टमतिः, सुयोधनः=दुर्योधनः, बालिशत्वात्=बालिशः मूर्खः तस्य भावः बालिशत्वं मौर्ख्यम्, तस्मात् मूर्खत्वात्, स्वजनावमानम्=स्वबन्धूनाम् अवमानम् अपमानम्, आत्मीयजनावमानम्, पराक्रमं पश्यति=शौर्यं (मन्यते), अवलोकयति, विचारयतीत्यर्थः, लोके=भुवने, को नाम=बुद्धिमान् कोऽन्यः, नष्टघृणः=नष्टा अपगता घृणा दया यस्य सः, विगतकृपः, निर्जुगुप्सः, सभासु=राजपरिषत्सु, स्वयं=स्वेनै-

---

वासुदेव—आचार्य ! बैठिये । भीष्म प्रभृति राजाओ !

आप सब स्वेच्छा से बैठ जाइये । हम भी बेठ जाते हैं । (बैठकर) अहो ! यह चित्रपट दर्शनीय है । परन्तु रहने दो, इसमें तो द्रौपदी के केशवस्त्राकर्षण का चित्र अंकित है । अहो निस्संदेह !

दुर्योधन मूर्खता के कारण अपने बन्धुओं के अपमान को पराक्रम समझता है । नहीं तो इस संसार में कौन ऐसा निर्लज्ज व्यक्ति है, कि जो अपने दोषों को इस प्रकार सभा के बीच उद्घाटित करेगा ? ॥ १८ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

आः अपनीयतामेष चित्रपटः ।
दुर्योधनः—बादरायण ! अपनीयतां किल चित्रपटः ।
काञ्चुकीयः—यदाज्ञापयति महाराजः । (अपनयति ।)
दुर्योधनः—भो दूत !

धर्मात्मजो वायुसुतश्च भीमो
भ्रातार्जुनो मे त्रिदशेन्द्रसूनुः ।
यमौ च तावश्विसुतौ विनीतौ
सर्वे सभृत्याः कुशलोपपन्नाः ।। १९ ।।

वेत्यर्थः, आत्मादोषं=आत्मनः स्वस्य दोषं पापम्, उद्घाटयेत्=प्रकाशयत् । दुर्योधनं विहाय कोऽन्यः जनः एवंविधं कार्यं कर्त्तुं शक्नोतीति विवेकः ।। १८ ।।

टिप्पणी—बालिशत्वात् — वाड्+इन् वाडि (वृद्धि) श्यति इति बालिशः, बाडि+शो+क—ड—ल । बालिशस्य भावः बालिशत्वम् । आत्मदोषं—आत्मना स्वस्य दोषम्, दुष्+घञ् । उद्घाटयेत्—उद्+घट्+णिच्+विधिलिङ् ।। १८ ।।

अन्वयः—धर्मात्मजः वायुसुतः भीमश्च त्रिदशेन्द्रसूनुः मे भ्राता अर्जुनः च विनीतौ अश्विसुतौ तौ यमौ च सभृत्याः सर्वे कुशलोपपन्नाः (सन्ति) ।। १९ ।।

संस्कृत टीका—दुर्योधनः दूतं कुशलवार्तां पृच्छति–धर्मात्मज इत्यादि । भोः दूत ! धर्मात्मजः=धर्मस्य यमस्य आत्मजः सुतः धर्मपुत्रः, युधिष्ठिरः, वायुसुतः=वायोः पवनस्य सुतः पुत्रः, भीमः च=वृकोदरः, त्रिदशेन्द्रसूनुः=

आह ! दूर करिये इस चित्रपट को ।
दुर्योधन —बादरायण ! इस चित्रपट को हटो दो ।
कञ्चुकी—महाराज की जो आज्ञा ! (ले जाता है) ।
दुर्योधन—हे दूत !

धर्मपुत्र युधिष्ठिर, वायुपुत्र भीम, मेरे भ्राता सुरेन्द्रसुत अर्जुन और अश्विनीकुमार के दोनों विनयशील पुत्र नकुल और सहदेव, सब अपने सेवकों सहित कुशल से तो हैं ? ।। १९ ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वासुदेवः—सदृशमेतद् गान्धारीपुत्रस्य। अथ किमथ किम्। कुशलिनः सर्वे। भवतो राज्ये शरीरे बाह्याभ्यन्तरे च कुशलमनामयं च पृष्ट्वा विज्ञापयन्ति युधिष्ठिरादयः पाण्डवाः—

अनुभूतं महद् दुःखं संपूर्णः समयः स च।
अस्माकमपि धर्म्यं यद् दायाद्यं तद् विभज्यताम् ॥ २० ॥

त्रिदशानामिन्द्रः तस्य सूनुः, देवेन्द्रपुत्रः, मे = मम, भ्राता = बन्धुः; अर्जुनः च, विनीतौ = विनम्रौ, अश्विसुतौ = अश्विनोः सुतौ, अश्विनीकुमारपुत्रौ, तौ च, यमौ = सहजातौ, नकुलसहदेवावित्यर्थः, सभृत्याः = सपरिजनाः, सर्वे = अशेषाः, कुशलोपपन्नाः = कुशलैः कल्याणैः, उपपन्नाः युक्ताः, सकुशलाः सन्ति किमिति शेषः, इह प्रश्नकाकुः = उपजाति वृत्तम् ॥ १९ ॥

टिप्पणी—त्रिदशेन्द्रसूनुः—तिस्रः दशाः अवस्थाः बाल्यकैशोरप्रौढावस्थाः येषां ते त्रिदशाः देवाः, तेषाम् इन्द्रः अधिपतिः, तस्य सूनुः। अश्विसुतौ—अश्विनोः सुतौ (ष० त०)

संस्कृत टीका—सदृशमित्यादि। अथ किम् = इत्यङ्गीकारे। बाह्याभ्यन्तरे = शरीरे च बहिर्भवे आभ्यन्तरभवे देहे च। तत्राभ्यन्तरं शरीरं मनः। अनामयम् = आरोग्यम्।

टिप्पणी—बाह्याभ्यन्तरे—बाह्यश्च आभ्यन्तरं च तयोः समाहारः बाह्याभ्यन्तरम्। अनामयम्—न आमय (नञ् स०)।

अन्वयः—महद् दुःखम् अनुभूतं स च समयः सम्पूर्णः। अस्माकमपि यत् धर्म्यं पदं दायाद्यं (अस्ति) तद् विभज्यताम् ॥ २० ॥

वासुदेव—गान्धारी-पुत्र के लिए ऐसा (व्यवहार) उचित ही है। हाँ अवश्य। वे सब कुशल से हैं। आपके शरीर और राज्य की बाहरी तथा भीतरी कुशलता एवं आरोग्य को पूँछकर युधिष्ठिर प्रभृति पाण्डवों ने निवेदन किया है—

हम लोगों ने बहुत कष्ट उठाये हैं और उस (अज्ञातवास की) प्रतिज्ञा की अवधि समाप्त हो चुकी हैं; इसलिये अब हमारा न्यायोचित पैतृक राज्य बाँट दिया जावे ॥ २० ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इति ।

दुर्योधनः—कथं कथं दायाद्यमिति ।

वने पितृव्यो मृगयाप्रसङ्गतः
कृतापराधो मुनिशापमाप्तवान् ।
तदाप्रभृत्येव स दारनिस्पृहः
परात्मजानां पितृतां कथं व्रजेत् ॥ २१ ॥

संस्कृत टीका—दूतकार्यं कुर्वन् श्रीकृष्णः युधिष्ठिरादीनां वार्ताम् उद्देश्यं च दुर्योधनं प्रति प्रकाशयति—अनुभूतमित्यादि । महत्=अत्यन्तं, दुःखम्=कष्टम्, अनुभूतम्=भुक्तम्, सः च समयः=त्रयोदशवर्षपर्यन्तं वनवासः, पूर्वनिर्धारितः कालः इत्यर्थः; सम्पूर्णः=पूर्णतां गतः, धर्मातीतः । अस्माकमपि=पाण्डवानामपि, यत्, धर्म्यम्=धर्मादनपेतम् धर्म्यं तदनुसारि, दायाद्यम्=दायः कुलधनं तद्रूपम् आद्यन् आदनीयं भोग्यं वस्तु; पितृरिक्थम्, विभज्यताम्=विभागं कृत्वा अस्मभ्यं देहीति विवेकः । अनुष्टुप् छन्दः ॥ २० ॥

टिप्पणी—स च समयः—एकवर्षाज्ञातवाससङ्केतसचिवो द्वादशवर्षवनवाससङ्केतः । धर्म्यम्=धर्मात् अनपेतम्, धर्मेण प्राप्यम्, धर्म=शत् । दायाद्यम्–दायं विभजनीयं धनम्, दायाद्यम्, दाय+आ+दा+क, दायाद+ष्यञ् । 'दायाद्यं=पितृरिक्थम्, दायः कुलधनं दायरूपम् अदनीयं भोग्यं वस्तु दायाद्यमिति व्युत्पत्तिः' इति गणपतिशास्त्रिणः ।

संस्कृत टीका—कथमित्यादि । इति शब्दानन्तरम् उच्यत इति शेषः । एवञ्च पार्थानां दायाद्यमेव नास्तीत्यर्थः ।

अन्वयः—पितृव्य वने मृगया प्रसङ्गतः कृतापराधः (सन्) मुनिशापम् आप्तवान् तदा प्रभृत्येव दारनिस्पृहः सः परात्मजानां पितृतां कथं

दुर्योधन—कैसा ? पैतृक-राज्य कैसा ?

मृगया में तत्पर हमारे चाचा पाण्डु को मुनि के प्रति (हत्या का) अपराध करने पर शाप लगा था । तभी से वे स्त्रियों के प्रति विरक्त हो

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

व्रजेत् ॥ २१ ॥

संस्कृत टीका—अस्माभिर्भुज्यमानं पितृव्यस्य पाण्डोर्धनं पार्थान् प्रति तदा दायाद्यं स्याद्, यदि पाण्डुस्तेषां पिता स्यात्। स तु तान् प्रति पितैव न भवतीत्याह—वन इति। पितृव्यः=पितृभ्राता पाण्डुः, वने=अरण्ये, मृगयाप्रसङ्गतः=आखेटप्रसक्त्या, कृतापराधः=कृतः विहितः अपराधः येन सः मृग्या सह, मृगरूपं धृत्वा क्रीडतः किन्दमाख्यस्य मुनेर्वधरूपः अपराधः (सन्), मुनिशापम्=मुनेः किन्दमऋषेः शापं श्रापम्, अर्थात् 'पत्नीसंसर्गे मरिष्यसी' त्येवमात्मकं मुनेर्निग्रहवचनम्, आप्तवान्=प्राप्तवान्। तदा प्रभृत्येव=तत् समयादारभ्यैव, सः=मम पितृव्यः पाण्डुः, दारनिस्पृहः=दारेभ्यः निर्गता स्पृहा यस्य सः, स्त्रीप्रसङ्ग रहितः संजात इति शेषः। अतः, परात्मजानां=परेषाम् अन्येषां धर्म-वायुशक्राश्विनाम् आत्मजाः पुत्राः परात्मजाः, तेषाम्, परैर्जातानां पुत्राणाम्, पितृतां=जनकभावम्, कथम्=केन प्रकारेण, व्रजेत्=प्राप्नुयात्, नैव व्रजेदित्यर्थः। वंशस्थ वृत्तम् ॥ २१ ॥

टिप्पणी—दारनिस्पृहः—न स्पृहा यस्य निस्पृहः, दारेषु स्त्रीषु निस्पृहः दारनिस्पृहः पितृताम्—पितुः भावः पितृता, पितृ+तल्+टाप्। (क) कृतापराधः—कस्मिंश्चित् समये किन्दमनामा महर्षिः मृगरूपं धृत्वा क्रीडां चकार। तदा आखेटमन्विष्यमाणः नृपतिः पाण्डुः तौ दृष्ट्वा मृगञ्च मत्वा शरैर्जघान। स च महर्षिः मृगरूपं विहाय तस्मै 'त्वमपि यदा स्त्रीप्रसङ्गं करिष्यसि तदा पञ्चत्वं प्राप्स्यसीति' शापं ददौ (द्र० महाभा० आदि० १२३)।

पितृतां—पितृधनभाक्त्वं कथं व्रजेत् अर्थात् ये औरसाः पुत्रा तेषामेव पित्र्यं धनं नान्यजातानामिति दुर्योधनस्याशयः। (ख) एक बार जंगल में मुनि किन्दम मृगरूप में अपनी प्रिया के साथ संभोग में संलग्न थे। राजा

गये थे। अतः वह अन्य (देवादिकों) के पुत्रों के साथ पितृत्व-संबन्ध कैसे बना सकते हैं? ॥ २१ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वासुदेवः—पुराविदं भवन्तं पृच्छामि ।

विचित्रवीर्यो विषयी विपत्ति क्षयेण यातः पुनरम्बिकायाम् ।
व्यासेन जातो धृतराष्ट्र एष लभेत राज्यं जनकः कथं ते ॥ २२ ॥

पाण्डु ने मृगया करते हुए इस मृग का वध कर दिया। मरने से पहले ऋषि ने मृगरूप को त्यागकर उन्हें शाप दे दिया कि 'तुम ज्यों ही स्त्री का आलिङ्गन करोगे, तभी तुम्हारी मृत्यु हो जाएगी।' अतः उन्होंने मृत्यु के भय से स्त्रीप्रसङ्ग का परित्याग कर दिया था। उनकी पत्नी कुन्ती एवं माद्री ने देवताओं से सन्तान प्राप्त की थी।

अतः दुर्योधन का आशय यह है कि तब पाण्डु उनके पिता कैसे बन सकते थे [द्र० महाभा० आदि० १२३]।

संस्कृत टीका—पुरेत्यादि। पुराविदं=पुरावृत्तम्,

टिप्पणी—पुराविदं-पुराणं वेत्ति इपि पुराविद्, यद्वा, पुरा वेत्तीति तं प्राग्वेत्तारम्। पुरा+विद्+क्विप्।

अन्वयः—विषयी विचित्रवीर्यः क्षयेण विपत्ति यातः पुनः व्यासेन अम्बिकायां जातः एषः धृतराष्ट्रः ते जनकः राज्यं कथं लभेत ? ॥ २२ ॥

संस्कृत टीका—विषयी=विषयासक्तः, विचित्रवीर्यः=तव पितामहः, क्षयेण=क्षयरोगेण, विपत्ति=मृत्युं, यातः=प्राप्तः, पुनः=पश्चात्, तत् मरणानन्तरं व्यासेन=महर्षिणा द्वैपायनेन, अम्बिकायां=विचित्रवीर्य-भार्यायाम्, जातः=उत्पन्नः, एषः=अयम्, धृतराष्ट्रः, ते=तव, जनकः=पिता, राज्यम्=मण्डलाधिपत्यम्, अपितुर्विचित्रवीर्यस्य, कथं=केन न्यायेन, कया नीत्येत्यर्थः, लभेत=प्राप्येत; सोऽप्यनधिकारीति भावः ॥ २२ ॥

वासुदेव—पूर्वजों के इतिहास को अच्छी तरह जानने वाले आप से मैं पूँछता हूँ—

विलासी विचित्रवीर्य राजयक्ष्मा से (ग्रस्त हो) मृत्यु को प्राप्त हुआ। तब व्यास के संयोग से उत्पन्न तुम्हारे पिता धृतराष्ट्र कैसे राज्य को प्राप्त कर सकते हैं ? ॥ २२ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मा मा भवान्—

एवं परस्परविरोधविवर्धनेन
शीघ्रं भवेत् कुरुकुल नृप ! नामशेषम् ।
तत् कर्तुमर्हति भवानपकृष्य रोषं
यत् त्वां युधिष्ठिरमुखाः प्रणयाद् ब्रुवन्ति ॥ २३ ॥

टिप्पणी—विषयी—विषयः अस्ति अस्य इति, विषय+इनि। विपत्ति—वि+पद+क्तिन्। कथं लभेत=यदि परात्मजो धृतराष्ट्रो विचित्रवीर्यस्य क्षेत्रजः पुत्र इति कृत्वा 'अपुत्रेण परक्षेत्रे नियोगोत्पादितः सुतः। उभयोरप्यसौ रिक्थी पिण्डदाता च धर्मतः ॥' इति शास्त्रात् क्षेत्रिरिक्थं लभेत, तर्हि पार्था अपि क्षेत्रजाः पाण्डोः क्षेत्रिभूतस्य रिक्थं लभेरन्नेवेति भावः ॥ २२ ॥

संस्कृत टीका—मा मा भवान्=मा मा, कथयत्वित्यर्थगम्यम् ।

अवन्यः—हे नृप ! एवं परस्परविरोधविवर्धनेन शीघ्रं कुरुकुलं नामशेषं भवेत्। भवान् रोषम् अपकृष्य तत्कर्तुम् अर्हति, यत् त्वाम् युधिष्ठिरमुखाः प्रणयात् ब्रुवन्ति ॥ २३ ॥

संस्कृत टीका—कथने दोषमाह—एवं परस्परमिति। हे नृप=हे राजन्, एवम्=इत्थम्, परस्परविरोधविवर्धनेन=परस्परस्य विरोधः वैरभावः, तस्य विवर्धनं, तेन; मिथः वैरभावेन (सर्वं) कुरुकुलम्=कुरूणां कुलं, कौरववंशः, शीघ्रम्=झटिति, नामशेषं=नष्टम्, नाम्ना संज्ञया शेषम् अवशिष्टम्, भवेत्=स्यात्; सर्वस्य विनाशे नाम्नः एवावशिष्टत्वादिति भावः। तत्=तस्मात् कारणाद्, भवान्=दुर्योधनः, रोषम्=

नही, नहीं, ऐसा मत कहो।

हे नृप ! इस प्रकार आपस में विरोध बढ़ाने से इस कुरुवंश का शीघ्र ही नामशेष रह जायगा। इसलिए क्रोध को छोड़कर आपको वही करना उचित है जो युधिष्ठिर आदि पाण्डव प्रेम के कारण आपको करने के लिए कहते हैं ॥ २३ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दुर्योधनः—भो दूत ! न जानाति भवान् राज्यव्यवहारम् ।

राज्यं नाम नृपात्मजैः सहृदयैर्जित्वा रिपून् भुज्यते
तल्लोके न तु याच्यते न तु पुनर्दीनाय वा दीयते ।
काङ्क्षा चेन्नृपतित्वमाप्तुमचिरात् कुर्वन्तु ते साहसं
स्वैरं वा प्रविशन्तु शान्तमतिभिर्जुष्टं शमायाश्रमम् ॥ २४॥

अमर्षम्, अपकृष्य = विहाय नियम्य, तत्कर्तुं = विधातुं, भवान् अर्हति = योग्योऽस्ति । यत् = वाक्यं, त्वां = भवन्तम्, युधिष्ठरमुखाः = युधिष्ठिरः धर्मपुत्रः, युधिष्ठिरः मुखम् आदिः येषां ते, प्रणयात् = स्नेहाद्, प्रेमतः, ब्रुवन्ति = कथयन्ति । वसन्ततिलकावृत्तम् ॥ २३ ॥

टिप्पणी—नृप—नृन् पातीति नृपः भूपालः, तत्सम्बुद्धौ । नामशेषं-नाम एव शेषो यस्य तत् । अपकृष्य—अप + कृष् + ल्यप् ।

संस्कृत टीका—भो दूतेत्यादि । भवानिति अराजकुलप्रसूतत्वं द्योतयति । अत एव राज्यव्यवहारानभिज्ञत्ववाचोयुक्तिरुपपन्नतरा । राजत्वं हि यदुकुलस्य खण्डितं पूर्वपुरुषययातिशापात् ।

अन्वयः—सहृदयैः नृपात्मजैः रिपून् जित्वा राज्यं नाम भुज्यते । लोके तत् न तु याच्यते पुनः न च वा दीनाय दीयते । नृपतित्वम् आप्तुं काङ्क्षा चेत् ते अचिरात् साहसं कुर्वन्तु वा शमाय शान्तमतिभिः जुष्टं आश्रमं स्वैरं प्रविशन्तु ॥ २४ ॥

संस्कृत टीका—सहृदयैः = सचित्तैः, समुन्नतचित्तैरित्यर्थः, नृपात्मजैः = नृपस्य औरसैः पुत्रैः, रिपून् = शत्रून्, जित्वा = अभिभूय, राज्यं नाम =

दुर्योधन—ऐ दूत ! तुम राज्य-व्यवहार भी नहीं जानते ।

सहृदय राजपुत्र शत्रुओं को जीतकर राज्य का उपभोग करते हैं । राज्य संसार में न तो माँगा ही जाता है (क्योंकि माँगने से नहीं मिलता) और न ही दीन याचकों को दिया ही जाता है । यदि उन्हें राजत्व प्राप्त करने की कामना है तो तुरन्त साहस से काम लें अथवा शम के सेवनार्थ वे शान्तबुद्धि मुनियों से सेवित आश्रम में प्रवेश करें (अर्थात् तपस्वी हो जावें) ॥ २४ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वासुदेवः—भोः सुयोधन ! अलं बन्धुजने परुषमभिधातुम् ।

पुण्यसञ्चयसम्प्राप्तामधिगम्य नृपश्रियम् ।
वञ्चयेद् यः सुहृद्बन्धून् स भवेद् विफलश्रमः ।' २५ ॥

विषयो नाम, नाम इति सम्भावनायाम्, भुज्यते = अनुभूयते, यथास्माभिस्तथेत्यर्थम् । लोके = भुवने, तत् = राज्यं, न तु याच्यते = नैव भिक्ष्यते । यथा पार्थैस्तथेत्यर्थम्, वा = अन्यथा, दीनाय = दरिद्राय न तु पुनः दीयते = नैवप्रदीयते । एवं राज्यव्यवहारस्य स्थितौ पार्थैर्यत् कर्त्तव्यं तद् बोधयति—नृपतित्वं = राज्यम्, आप्तुं = लब्धुं, काङ्क्षा = इच्छा, चेत् = अस्ति यदि, ते = पार्था,' अचिरात् = अविलम्बम्, साहसं = युद्धम्, कुर्वन्तु = विदधतु अर्थादस्माभिः सह । वा = पक्षान्तरे, राज्येप्साभावे इत्यर्थः । शमाय = शान्त्यर्थम्, शान्तमतिभिः = निर्मत्सरबुद्धिभिः अर्थाद् मुनिभिः, जुष्टं = सेवितम्, आश्रमं = मुनिगृहं, स्वैरं = स्वच्छन्दम्, प्रविशन्तु = गच्छन्तु । विना युद्धं नाहं किञ्चिदपि दातुमिच्छामीति भावः । शार्दूलविक्रीडित छन्दः ॥ २४ ॥

टिप्पणी—सहृदयैः—हृदयेन सह वर्त्तते इति सहृदयाः, तैः (बहु०) नृपतित्वम्—नृपतेः भावः नृपतित्वम् । नृपति + त्व । शान्तमतयः—शान्ता मतिः येषां ते (बहु०) शान्तमतयः, तैः । जुष्टम्—जुष् + क्त ।

संस्कृत टीका—अलमित्यादि । अलमलम् = न युज्यत इत्यर्थेऽलंशब्दः । द्विरुक्तिर्दार्ढ्याय । परुषम् = निष्ठुरम् ।

अन्वयः—यः पुण्यसञ्चयसम्प्राप्तां नृपश्रियम् अधिगम्य सुहृद्बन्धून् वञ्चयेत्, स विफलश्रमः भवेत् ॥ २५ ॥

वासुदेव—हे सुयोधन ! अपने बान्धवों के प्रति ऐसे कठोर वचन न कहो ।

पुण्य कर्मों के संचय से प्राप्त होने वाली राज्यलक्ष्मी को पाकर जो सहृदय बन्धुजनों (अथवा मित्रों) को धोखा देता है उसका सारा परिश्रम व्यर्थ जाता है ॥ २५ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दुर्योधनः—

स्यालं तव गुरोर्भूपं कंसं प्रति न ते दया।
कथमस्माकमेवं स्यात् तेषु नित्यापकारिषु ॥ २६ ॥

संस्कृत टीका—यः=पुरुषः, पुण्यसञ्चयसम्प्राप्ताम्=सञ्चितपुण्योपनताम्, पुण्यानाम् सुकृतानां सञ्चयः तेन प्राप्ता अधिगता ताम्, नृपश्रियं=नृपस्य राज्ञः श्रीः लक्ष्मीः ताम्, राज्यलक्ष्मीम्; अधिगम्य=सम्प्राप्य, सुहृद्बन्धून्=मित्रज्ञातीन्, वञ्चयेत्=प्रतारयेत्, नृपश्रीसंविभागेन नानुगृह्णीयात्, सः, विफलश्रमः=व्यर्थपरिश्रमः, भवेत्=स्यात्। अर्थात् स्वबन्धुभिः विरोधे कृते तथैव आयासः विफलो भविष्यतीति भावः। अनुष्टुप् छन्दः ॥ २५ ॥

टिप्पणी—विफलश्रमः—विफलः इष्टासिद्ध्या निष्फलः अनिष्टप्राप्त्या विपरीतफलो वा श्रमः वञ्चनविषय आयासो यस्य स तथा, भवेत्, सुहृद्बन्धुविषया वञ्चनया इष्टासिद्धिरनिष्टप्राप्तिश्च भवतीत्यभिप्राप्यः' इति गणपतिशास्त्रिणः ॥ २५ ॥

अन्वयः—तव गुरोः श्यालं भूपं कंसं प्रति ते दया न, एवं नित्यापकारिषु तेषु अस्माकं (दया) कथं स्यात् ? ॥ २६ ॥

संस्कृत टीका—तव गुरोः=ते पितुः वसुदेवस्य, श्यालं=पत्नीभ्रातरम् अर्थात् त्वन्मातुलम्, भूपम्=राजानम्; कंसं प्रति एतन्नामानं मथुराधिपतिम्, प्रति, ते=तव, दया=अनुकम्पा न=नासीत्। स हि निहतस्त्वयेत्यर्थः, एवं=सुहृद्बन्धुमुख्ये स्वमातुलेऽपि तव दया नेत्येवं स्थिते इत्यर्थः। नित्यापकारिषु=नित्यं सततम् अपकारः अपकरणम् अस्ति एषाम् ते, अहितकारिषु, तेषु=पाण्डवेषु विषये, अस्माकं=कौरवाणाम् (दया),

---

दुर्योधन—हे दूत !

अपने पिता के साले कंसराज के प्रति तुम्हें दया न आयी, तो सदा अपकार करने वाले उन लोगों (पाण्डवों) के प्रति हमें कैसे दया आ सकती है ? ॥ २६ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वासुदेवः—अलं तन्मद्दोषतो ज्ञातुम् ।

कृत्वा पुत्रवियोगार्तां बहुशो जननीं मम ।
वृद्धं स्वपितरं बद्ध्वा हतोऽयं मृत्युना स्वयम् ॥ २७ ॥

दुर्योधनः—सर्वथा वञ्चितस्त्वया कंसः । अलमात्मस्तवेन । न

कथं = केन प्रकारेण, स्यात् = भवितुमर्हति । अनुष्टुप् छन्दः ॥ २६ ॥

टिप्पणी—नित्यापकारिषु—नित्यं सदैव अपकुर्वन्ति नित्यापकारिणः, तेषु ॥ २६ ॥

संस्कृत टीका—तत् = कंसहननम् । मद्दोषतः ज्ञातुम् = मद्दोषान्निष्पन्नं मन्तुम्, अलं = न युज्यते ।

अन्वयः—मम जननीं बहुशः पुत्रवियोगार्तां कृत्वा वृद्धं स्वपितरं बद्ध्वा अयं स्वयं मृत्युना हतः ॥ २७ ॥

संस्कृत टीका—कंस आत्मदोषादेव मृत्युवशं गत इत्याह—कृत्वेत्यादि । मम = कृष्णस्य, जननीं = मातरं, बहुशः = बहुप्रकारेण, पुत्रवियोगार्तां = पुत्राणां सुतानां, वियोगेन विरहेण आर्त्ताम्, ताम्, पुत्रविनाशदुःखितां, कृत्वा = विधाय, वृद्धं = जरसाभिभूतम्, स्वपितरम् = उग्रसेनम्, बद्ध्वा = कारागारे निक्षिप्येत्यर्थः, अयं = कंसः, स्वयं = आत्मना, मृत्युना = कालेन, हतः = घातितः । शिशुभूतबहुभागिनेयहननं, निरपराधनिजभगिनी-शोकोत्पादनम्, आत्मपितृबन्धम् इत्येतैः पापाचारैः कंसः स्वयमेव मृत्युवशं गतः, न तु मया हतः—इति श्लोकाभिप्रायः । अनुष्टुप् छन्दः ॥ २७ ॥

टिप्पणी—पुत्रवियोगार्तां—पुत्राणां वियोगः [ष० त०], पुत्रवियोग-स्तेन आर्त्ताम्, ताम् । आर्त्ताम्—आ + ऋ + क्त + + टाप् ॥ २७ ॥

वासुदेव—मुझे दोषी न कहिए ।

मेरी माता को न जाने कितनी बार पुत्रविरह से पीड़ित करके और अपने वृद्ध पिता को भी बाँधकर वह कंस तो स्वयं मृत्यु ही द्वारा मारा गया था ॥ २७ ॥

दुर्योधन—तुमने कंस को सर्वथा धोखा दिया । अपनी बड़ाई मत करो ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शौर्यमेतत् । पश्य,

जामातृनाशव्यसनाभितप्ते रोषाभिभूते मगधेश्वरेऽथ ।
पलायमानस्य भयातुरस्य शौर्यं तदेतत् क्व गतं तवासीत् ॥ २८ ॥

संस्कृत टीका—सर्वथेत्यादि । एतत्=कंसहननम्, न शौर्यं=शूरकर्म न भवति । पश्य=वक्ष्यमाणं जानीहीत्यर्थः ।

टिप्पणी—आत्मस्तवेन—आत्मनः स्तवः, तेन । शौर्यम्—शूरस्य भावः; शूर+ष्यञ् ।

अन्वयः—अथ जामातृनाशव्यसनाभितप्ते मगधेश्वरे रोषाभिभूते (सति) भयातुरस्य पलायमानस्य तव तदेतत् शौर्यं क्व गतम् आसीत् ॥ २८ ॥

संस्कृत टीका—अथ=कंसवधानन्तरम्, जामातृनाशव्यसनाभितप्ते=जामातुः स्वदुहितृभर्तुः कंसस्य नाशेन यद् व्यसनं दुःखं तेनाभितप्तः शोकाकुलः, तस्मिन्, दुहितृपतिमृत्युदुःखदुःखिते, मगधेश्वरे=मगधानाम् ईश्वरः, स्वामी, तस्मिन्, जरासन्धे, रोषाभिभूते (सति)=कोपाविष्टे सति, रोषेण कोपेन अभिभूतः आक्रान्तः, तस्मिन्, भयातुरस्य=भयेन भीत्या आतुरस्य पीडितस्य, भयपीडितस्य, अतएव पलायमानस्य=स्वावासदेशं परित्यज्य, धावतः, तव=भवतः कृष्णस्य, तदेतत्=यद् कंसे प्रयुक्तं तदिदमित्यर्थः, शौर्यं=पराक्रमं, क्व गतं=कुत्र गतमासीत् । तदानीं त्वया पलायनं स्वीकुर्वता कथं नैष पराक्रमः प्रदर्शितः इति विवेकः । उपजातिवृत्तम् ॥ २८ ॥

टिप्पणी—जामातृ०—जामातुः नाशः जामातृनाशः (ष० त०), स एव व्यसनं (कर्म०), तेन अभितप्ते (तृ० त०) । भयातुरस्य—भयेन आतुरः, तस्य (तृ० त०) । पलायमानस्य—परा+अय्+शानच्,

---

यह वीरता नहीं । देखो—

अपने जामाता के निधन-शोक से संतप्त मगधेश्वर जब क्रोधाविष्ट हो गये थे उस समय भयभीत होकर उनके सामने से भागते हुए तुम्हारी यह वीरता कहाँ चली गयी ? ॥ २८ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

वासुदेवः—भोः सुयोधन ! देशकालावस्थापेक्षि खलु शौर्यं नयानुगामिनाम् । इह तिष्ठतु तावदस्मद्गतः परिहासः । स्वकार्यमनुष्ठीयताम् ।

कर्तव्यो भ्रातृषु स्नेहो विस्मर्तव्या गुणेतराः ।
सम्बन्धो बन्धुभिः श्रेयान् लोकयोरुभयोरपि ॥ २९ ॥

रेफस्य लकारः ॥ २८ ॥

संस्कृत टीका—भो इत्यादि । देशकालावस्थापेक्षि=देशं कालम् अवस्थां च अपेक्षितुं शीलमस्येति तथा, अपेक्षितमिति पाठे सञ्जातापेक्षं देशकालावस्थासापेक्षमित्यर्थः । एवं च जरासन्धाभियाने, शौर्यं=पराक्रमं, देशकालाननुगुणत्वान्न प्रयुक्तमित्यभिप्रायः । नयानुगामिनां=नीत्यानुसारिणाम् । अस्मद्गतः=अस्मत्ससंबद्धः ।

अन्वयः—भ्रातृषु स्नेहः कर्त्तव्यः गुणेतराः विस्मर्तव्याः बन्धुभिः सम्बन्धः उभयोरपि लोकयोः श्रेयान् (भवति) ॥ २९ ॥

संस्कृत टीका—भ्रातृषु=बन्धुषु, स्नेहः=अनुरागः, कर्त्तव्यः=गुणेतराः=गुणाः इतरे अन्ये येभ्यस्ते गुणेतराः दोषाः, विस्मर्त्तव्याः=विस्मर्तुं योग्याः, विस्मरणीया इत्यर्थः, बन्धुभिः=भ्रातृभिः, सम्बन्धः=समीचीनो व्यवहारः, उभयोः इह परत्र च, अपि, लोकयोः=स्वर्ग-भूलोकयोरित्यर्थः, द्वयोरपि, श्रेयान्=अतिकल्याणकारी, भवतीति शेषः ॥ २९ ॥

वासुदेव—हे सुयोधन ! नीति का अनुसरण करने वाले (नीतिज्ञों) की वीरता निस्संदेह देश और काल के अनुसार होती है । अब हमारा परिहास यहीं तक रहने दें । अपना कर्त्तव्य करिये ।

दोषों को भूल जाना चाहिए और भाइयों से भातृस्नेह करना चाहिए, क्योंकि भाइयों के साथ सम्बन्ध रखना लोक एवं परलोक दोनों ही में श्रेयस्कर है ॥ २९ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

दुर्योधनः—

देवात्मजैर्मनुष्याणां कथं वा बन्धुता भवेत् ।
पिष्टपेषणमेतावत् पर्याप्तं छिद्यतां कथा ॥ ३० ॥

वासुदेवः—(आत्मगतम्)

प्रसाद्यमानः साम्नायं न स्वभावं विमुञ्चति ।
हन्त संक्षोभयाम्येनं वचोभिः परुषाक्षरैः ॥ ३१ ॥

अन्वयः—देवात्मजैः मनुष्याणां बन्धुता कथं वा भवेत् ? एतावत् पिष्टपेषणं पर्याप्तं कथा छिद्यताम् ॥ ३० ॥

संस्कृत टीका—देवात्मजैः=देवानां यमादीनां पुत्रैः, मनुष्याणां=मर्त्यानां, बन्धुता=बन्धोर्भावः, कथं वा भवेत्=केन प्रकारेण वा स्यात् ? एतावत्=एतावत् पर्यन्तं यदालपनं यातं, पिष्टपेषणं=पिष्टस्य पेषणम्, पिष्टपेषणकल्पं 'राज्यं दीयताम्' इत्यस्यार्थस्योक्तस्यैव पुनः पुनर्वचनम्, पर्याप्तम्=यथेप्सितम्, कथा=राज्यदानप्रस्तावः, छिद्यताम्=विरम्यताम् । अनुष्टुप् छन्दः ॥ ३० ॥

टिप्पणी—देवात्मजैः—देवानां यम-वायु-देवेन्द्राश्विकुमाराणाम् अमराणाम् आत्मजाः सूनवः, तैः (सह) । आत्मजाः—आत्मनो जाता आत्मजाः । कथं वा बन्धुता भवेत्—समानशीलव्यसनेषु सख्यमित्युक्तदिशा देवैः सह मानवानां मैत्री कथमपि सुसङ्गता न भविष्यतीति विवेकः ।

अन्वयः—साम्ना प्रसाद्यमानः अयं स्वभावं न विमुञ्चति । हन्त एनं परुषाक्षरैः वचोभिः संक्षोभयामि ॥ ३१ ॥

दुर्योधन—(यह तो बताइये कि) देवपुत्रों और मनुष्यों में बन्धुता कैसे हो सकती है ? आपका कथन पिष्टपेषण (चर्वितचर्वण) ही है । बहुत हो चुका । इस प्रसंग को अब बन्द करिये ॥ ३० ॥

वासुदेव—(स्वगत)

सामनीति से प्रसन्न किया जाता हुआ यह व्यक्ति अपने स्वभाव को नहीं त्याग रहा है । अतः कठोर वचनों से मैं इसे संक्षुब्ध करूँगा ॥ ३१ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

(प्रकाशम्) भोः सुयोधन ! किं न जानीषेऽर्जुनस्य बलपराक्रमम् ।

दुर्योधनः—न जाने ।

वासुदेवः—भोः ! श्रूयतां,

कैरातं वपुरास्थितः पशुपतिर्युद्धेन संतोषितो
वह्नेः खाण्डवमश्नतः सुमहती वृष्टिः शरैश्छादिता ।
देवेन्द्रार्तिकरा निवातकवचा नीताः क्षयं लीलया
नन्वेकेन तदा विराटनगरे भीष्मादयो निर्जिताः ॥ ३२ ॥

संस्कृत टीका—साम्ना=शान्तिनीत्या, सान्त्वनेन वा, प्रसाद्यमानः=सन्तुष्यमाणः, अयं=एष दुर्योधनः, स्वभावं=स्वकीयां प्रकृतिं, न विमुञ्चति=न त्यजति । हन्त=इति खेदे, एनं=दुर्योधनं, परुषाक्षरैः=परुषाणि कठोराणि अक्षराणि येषु ते, तैः=कर्कशैः, वचोभिः=वचनैः, संक्षोभयामि=व्यथितं करोमि, स्वनिश्चयाद् विचालयामीति भावः । अनुष्टुप् वृत्तम् ॥ ३१ ॥

टिप्पणी—प्रसाद्यमानः—प्र+सद्+णिच्+शानच् । प्रसाद्यते असौ । संक्षोभयामि—सम्+क्षुभ्+णिच्+लट् । सम्यक् प्रकारेण क्षुभितं करोमि ॥ ३१ ॥

संस्कृत टीका—भो इत्यादि । बलपराक्रमम्=बलं शक्तिः तद्युक्तं विक्रमम् ।

अन्वयः—कैरातं वपुः आस्थितः पशुपतिः युद्धेन संतोषितः, वह्नेः खाण्डवं अश्नतः शरैः समुहती वृष्टिः छादिता, देवेन्द्रार्तिकरा निवातकवचाः लीलया क्षयं नीताः, ननु तदा एकेन विराटनगरे भीष्मादयः निर्जिताः ॥ ३२ ॥

(प्रकट में) ऐ सुयोधन ! क्या तुम अर्जुन के बल और पराक्रम को नहीं जानते ?

दुर्योधन—नहीं जानता ।

वासुदेव—तो लो सुनो—

अर्जुन वही है जिसने किरात के रूप को धारण करने वाले शंकर को

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संस्कृत टीका—वासुदेवः अर्जुनस्य पराक्रमं कथयति—हे दुर्योधन ! श्रूयताम् । कैरातं=किरातस्य व्याधस्येदम्; वपुः=शरीरम्, आस्थितः=आश्रितः, पशुपतिः=परमेश्वरः, पशूनां पतिः शिवः, युद्धेन=संग्रामेण, संतोषितः=प्रसादितः । वह्नेः=विभावसोः, खाण्डवं=तदाख्यं वनम्, अश्नतः=दहतः; शरैः=बाणैः, सुमहती=अत्यधिका, वृष्टिः=इन्द्रोत्पादितं मेघवर्षम्; छादिता=निवारिता; देवेन्द्रार्तिकरा=देवानाम् इन्द्रः तस्य आर्तेः कुर्वन्तीति कराः इन्द्रसंपीडकाः, निवातकवचाः=असुरविशेषाः, लीलया=अनायासेनैव, क्षयं=विनाशं, नीताः=प्रापिताः । ननु युष्माभिः यदा गोचारणे विराटनगरं प्राप्ताः तदा, एकेन=असहायेन, अर्जुनेन, विराटनगरे=तदाख्य नगरे, भीष्मादयः=भीष्म आदिर्येषां ते, पितामहादयः, निर्जिताः=पराजिताः । अतः एतादृशं अर्जुनस्य पराक्रमं कार्यं प्रतिपाद्यतामिति विवेकः । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ ३२ ॥

टिप्पणी—कैरातम्—किरातस्य इदं—अण् । पशुपतिः—पशूनां सर्वत्र समदर्शिनां पतिः । अश्नतः—अश्नाति इति अश्नन्, तस्य । सुमहती—सु+महत्+ङीप् । वृष्टिः—वृष्+क्तिन् । छादिता-छद्+णिच्+क्त+टाप् । देवेन्द्रार्तिकरा—देवानाम् इन्द्रः देवेन्द्रः (ष० त०), तस्य आर्त्तिः, (उप० स०) देवेन्द्रार्तिं कुर्वन्ति । अर्त्ति—आ+ऋ+क्तिन् । निर्जिताः—निर्+जि+क्त । (क) १. भगवान् शङ्कर ने किरात का रूप 'धारण किया । तभी इन किरातवपुधारी शिव से अर्जुन का घोर युद्ध हुआ । अर्जुन का युद्ध कौशल देख शम्भु प्रसन्न हो गए और साक्षात् दर्शन देकर अर्जुन को पाशुपत अस्त्र प्रदान किया । २. कुरुक्षेत्र के समीप खाण्डव

युद्ध के द्वारा संतुष्ट किया था, जिसने खाण्डववन को नष्ट करती हुई अग्नि को (बुझाने वाली) महावृष्टि को बाणों के जाल से रोक दिया था, जिसने देवेन्द्र को पीड़ित करने वाले निवातकवच राक्षसों को खेल ही खेल में (अनायास ही) नष्ट कर डाला था और जिसने अकेले ही विराट नगर (के अवरोध) में भीष्म जैसे महारथियों को परास्त कर दिया था ॥ ३२ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अपि च, तवापि प्रत्यक्षमपरं कथयामि ।

ननु त्वं चित्रसेनेन नीयमानो नभस्तलम् ।
विक्रोशन् घोषयात्रायां फाल्गुनेनैव मोक्षितः ।। ३३ ।।

नामक वन था। यह वन इन्द्र के लिए पवित्र भूमि थी। अग्निदेव ने उस वन पर क्रोध कर उसे जलाना चाहा। अर्जुन ने तब इसकी रक्षा की थी। तदर्थ उनसे गाण्डीव धनुष और अनेक बाण पुरस्कार में प्राप्त किए। ३. पाण्डव जब छद्मवेश में थे तब दुर्योधन ने विराट्नगर की गायों का अपहरण कर लिया था। उसी समय विराट्नगर में आश्रय प्राप्त अर्जुन ने भीष्मादि कौरव महारथियों को जीतकर उन गायों की रक्षा की थी ।। ३२ ।।

अन्वयः--ननु चित्रसेनेन नभस्तलं नीयमानः विक्रोशन् त्वं घोषयात्रायां फाल्गुनेनैव मोक्षितः ।। ३३ ।।

संस्कृत टीका—ननु=इति किं न स्मर्यते ? चित्रसेनेन=तन्नाम्ना गन्धर्वेण, नभस्तलं=आकाशतलम्, स्वगन्धर्वपुरम्, नीयमानः=बलात् आकृष्यमाणः, विक्रोशन्=आर्त्तनादं कुर्वन्, त्वं=दुर्योधनः, घोषयात्रायां=घोषाणां गोपानां यात्रायाम्, यद्वा, गोहरणमार्गे, घोषयात्रापर्वे वा (महा० भा० २४३ वन०)। फाल्गुनेनैव=अर्जुनेनैव, न तु त्वत्सुहृत्तमैः कर्णादिभिः, मोक्षितः=मोचितः। अनुष्टुप् छन्दः ।। ३३ ।।

टिप्पणी—नभस्तलम्=नभसः तलम् (ष० त०), विक्रोशन्—वि+क्रुश्+शतृ। (क) चित्रसेन नामक गन्धर्व ने दुर्योधन को पकड़ लिया और आकाशमार्ग से उसे अपने गन्धर्वनगर को ले चला। तभी आर्त्तनाद सुनकर अर्जुन ने उसे बचाया। यह कथा महाभारत के वनपर्व में २४३ अध्याय में है। इसी का अन्तर्विभाग घोषयात्रापर्व है ।। ३३ ।।

फिर एक और तुम्हारी देखी हुई घटना कहता हूँ।

जब तुम घोषयात्रा में चित्रसेन द्वारा आकाश में ले जाये जा रहे थे उस समय चिल्लाते हुए तुमको अर्जुन ने ही छुड़ाया था ।। ३३ ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

किं बहुना,—

दातुमर्हसि मद्वाक्याद् राज्यार्धं धृतराष्ट्रज ! ।
अन्यथा सागरान्तां गां हरिष्यन्ति हि पाण्डवाः ॥ ३४ ॥

दुर्योधनः—कथम् ? कथं हरिष्यन्ति हि पाण्डवाः ।

अन्वयः—हे धृतराष्ट्रज, मद्वाक्यात् राज्यार्धं दातुमर्हसि अन्यथा पाण्डवाः सागरान्तां गां हरिष्यन्ति हि ॥ ३४ ॥

संस्कृत टीका—हे धृतराष्ट्रज !=हे धृतराष्ट्रपुत्र ! मद्वाक्यात्=मम कथनात्, राज्यार्धम्=अर्धं राज्यं राज्यार्धं, दातुमर्हसि=(पाण्डवेभ्यः) अर्पयितुम् योग्योऽसि, अन्यथा=यदि मद्वचनात् न दास्यसि तर्हि, पाण्डवाः=युधिष्ठिरादयः, सागरान्तम्=समुद्रसीमाम्, गां=महीम्, हरिष्यन्ति हि=त्वां पराजित्य, बलाद् ग्रहीष्यन्त्येव । अनुष्टुप् छन्दः ॥ ३४ ॥

टिप्पणी—धृतराष्ट्रज ! =धृतराष्ट्राज्जातः, तत्सम्बुद्धौ, धृतराष्ट्र+जन+ड । राज्यार्धम्—राज्यस्य अर्धः असमो यः, कश्चिदंशो राज्यार्धः तम् । समांशविवक्षायां तु अर्धशब्दस्य क्लीबत्वाद्, 'अर्धं नपुंसकम्' इति समासे अर्धराज्यमिति स्यात् । असमांशदानोक्त्या च—

पञ्च नस्तात दीयन्तां ग्रामा वा नगराणि वा ।
वसेम सहिता येषु मा च नो भरता नशन् ॥ (महा०)

इति महाभारतोक्तः पञ्चग्रामप्रार्थनरूपः अवरपक्षः सूचितः । सागरान्ताम्—सागराः अन्ता यस्याः ताम् (बहु०) । गाम्—स्वर्गेषु पशुवाग्वज्रदिङ्नेत्रघृणिभूजले । लक्ष्यदृष्टचा स्त्रियां पुंसि गौः—इत्यमरः ॥ ३४ ॥

संस्कृत टीका—कथमित्यादि । कथंशब्दो गर्हायाम् । हरिष्यन्तीत्यत्र काकुः ।

अधिक क्या कहा जाय ?

हे धृतराष्ट्र-पुत्र ! मेरा कहना मानकर आप राज्य का आधा भाग दे दीजिये । नहीं तो पाण्डव सागर तक की सारी पृथ्वी को अवश्यमेव छीन लेंगे ॥ ३४ ॥

दुर्योधन—कैसे, पाण्डव कैसे छीन लेंगे ?

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रहरति यदि युद्धे मारुतो भीमरूपी
प्रहरति यदि साक्षात् पार्थरूपेण शक्रः ।
परुषवचनदक्ष ! त्वद्वचोभिर्न दास्ये
तृणमपि पितृभुक्ते वीर्यगुप्ते स्वराज्ये ॥ ३५ ॥

अन्वयः—यदि भीमरूपी मारुतः युद्धे प्रहरति, यदि शक्रः साक्षात् पार्थरूपेण प्रहरति, हे परुषवचनदक्ष ! त्वद्वचोभिः पितृभुक्ते वीर्यगुप्ते स्वराज्ये तृणमपि न दास्ये ॥ ३५ ॥

संस्कृत टीका—यदि=चेत्, भीमरूपी=वृकोदररूपधारी, मारुतः=वायुदेवः, युद्धे=संग्रामे, प्रहरति=प्रहारं करोति, यदि=चेत्, शक्रः=इन्द्रः, साक्षात्=प्रत्यक्षम्, पार्थरूपेण प्रहरति=अर्जुनरूपं धृत्वा अचिरभाविनि रणे प्रहारं करोति, तथापि, हे परुषवचनदक्ष !=परुषवचने कठोरवचनप्रयोगे दक्षः निपुणः, तत्सम्बुद्धौ, हे निष्ठुरभाषणचतुर !, त्वद्वचोभिः=त्वद्वचनानुसारेण, पितृभुक्ते=पित्रा भुक्तं तस्मिन्, मत्पित्रानुभूते, धृतराष्ट्रेण शासिते इत्यर्थः, वीर्यगुप्ते=वीर्येण पराक्रमेण गुप्ते रक्षिते, मद्वीर्यरक्षिते, स्वराज्ये=स्वाराष्ट्रे, तृणमपि=परमाल्पमंशमपीत्यर्थः न दास्ये=न वितरिष्यामि । मालिनीवृत्तम् ॥ ३५ ॥

टिप्पणी—मारुतः प्रहरति यदि—वायुदेवः पुत्रपक्षपातात् प्रहरिष्यति चेदित्यर्थः, वर्तमानसामीप्ये लट् । प्रहरतिरिहाकर्मक आयुधप्रयोगो वर्त्तते । प्रहरत्वित्यध्याहारः, अनुज्ञायां च लोट्, कामं प्रहरणमभ्यनुजानामि न ह्यहं प्रहरणाद् बिभेमीत्यभिप्रायः । पार्थरूपेण—पृथायाः पुत्रः पार्थः, पार्थस्य रूपं (ष० त०) तेन पार्थरूपेण ॥ ३५ ॥

चाहे युद्ध में पवनदेव भीम का रूप धारण कर प्रहार करें, अथवा साक्षात् इन्द्र भी पार्थ (अर्जुन) के रूप में आक्रमण करें, पर हे कटु-भाषण में दक्ष ! तुम्हारे कहने पर मैं उस राज्य का तृण के बराबर भाग भी नहीं दूंगा जिसका उपभोग मेरे पिता ने किया है और जिसकी रक्षा मैंने अपने भुजबल से की है ॥ ३२ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

वासुदेवः—भोः कुरुकुलकलङ्कभूत ! अयशोलुब्ध ! वयं किल तृणान्तराभिभाषकाः ।

दुर्योधनः—भो गोपालक ! तृणान्तराभिभाष्यो भवान् ।

अवध्यां प्रमदां हत्वा हयं गोवृषमेव च ।
मल्लानपि सुनिर्लज्जो वक्तुमिच्छसि साधुभिः ॥ ३६ ॥

संस्कृत टीका—भो इत्यादि । कुरुकुलकलङ्कभूत ?=कुरूणां कुलस्य कलङ्कः भूतः (सुप्सुपा०), अयशोलुब्ध=न यशः अयशः तत्र लुब्ध=अपकीर्तिलोभिन्, तृणान्तराभिभाषकाः=तृणेन अन्तरं व्यवधानं येषाम् अभिभाष्येण सह ते तृणान्तराः; तृणान्तराः सन्तोऽभिभाषकाः तृणान्तराभिभाषकाः, तृणान्तराभिभाष्यः=तृणमन्तरतः कृत्वैव त्वमस्माकमभिभाष्यो न साक्षादित्यभिप्रायः ।

अन्वयः—अवध्यां प्रमदां (हत्वा) हयं गोवृषं च (हत्वा) मल्लानपि हत्वा सुनिर्लज्जः साधुभिः वक्तुम् इच्छसि ॥ ३६ ॥

संस्कृत टीका—अवध्यां=वधानर्हां, प्रमदां=स्त्रियं, पूतनां नाम दानवीम्, हयं=अश्वरूपं केशिनामानमसुरम, गोवृषम्=अरिष्टर्षभं दानवम्; मल्लान् अपि=मुष्टिकचाणूरानपि मल्लजातिभवान्, हत्वा=विनाश्य, सुनिर्लज्जः=सुतरां निर्गता लज्जा यस्मात्, सः=लज्जारहितः, साधुभिः=सद्भिर्मद्विधैः; सह, वक्तुम्=आलपितुम्, इच्छसि=वाञ्छसि । अनुष्टुप् छन्दः ॥ ३६ ॥

वासुदेव—हे कुरुकुल के कलंक ! हे अपयश के लोभी ! तुम बीच में तृण रखकर ही मुझसे बात करने योग्य हो ।

दुर्योधन—हे ग्वाले ! अवश्य तुम बीच में तृण रखकर ही वार्त्तालाप के योग्य हो ।

अवध्य स्त्री, अश्व और गौ (वृषभ) की हत्या करके और मल्लों को भी मारकर लज्जा का अनुभव न करने वाले तुम (हम जैसे) सज्जनों से बात करना चाहते हो ?

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitized by eGangotri

वासुदेवः—भोः सुयोधन ! ननु क्षिपसि माम् ।

[दुर्योधनः—ननु सत्यमेवैतत् ।

वासुदेवः—गच्छामि तावत् ।

दुर्योधनः—गच्छ गच्छ पशुखुरोद्धतरेणुरूषिताङ्गो व्रजमेवम् । विफलीकृतः कालः ।

टिप्पणी—अवध्यां—'अहिंस्यां प्रमदामाहुः सर्वधर्मेषु पार्थिव'—इति भारतोक्तिः । मल्लान्—व्रात्यपूर्वायां क्षत्रियायां क्षत्रियाज्जाता मल्ला उच्यन्ते, ते च मुष्टियुद्धाद्यभ्यासवृत्तयः । सुनिर्लज्जः अबलामृगदुर्बलहननं शिष्टगर्हितं कृतवतो हि लज्जोचिता । साधुभिः—त्वया सह अस्माकं राज्ञामालपनमपि गर्हितमिति विवेकः । (क) १. कृष्ण ने बाल्यावस्था में पूतना नामक राक्षसी का वध किया था । स्त्रियों का वध वर्जित होने से उसी का यहाँ संकेत है । २. केशी एवं अरिष्ट नामक राक्षसों ने क्रमशः घोड़े और बैल का रूप धारण किया था । इनका भी वध कृष्ण ने किया था । घोड़े एवं बैल का वध भी प्रशस्त नहीं है । ॥ ३६ ॥

अवध्यां प्रमदां–'अहिंस्यां प्रमदामाहुः सर्वधर्मेषु पार्थिव'-महाभा० सभा० २३.१५ । तु ५२, ५३ अ० । हयम्, गोवृषम्—

'अथारिष्ट इति ख्यातं दैत्यं वृषभविग्रहम् ।
जघान तरसा कृष्णः पशूनां हितकाम्यया ॥
केशिनामा ततो दैत्यः राजन् तुरगविग्रहः ।'

महाभा०, सभा० ५३.२८-२९ ।

संस्कृत टीका—भो इत्यादि । क्षिपसि = तिरस्करोषि, निन्दसि । गच्छेत्यादि । व्रजमेव = गोष्ठमेव, गोपालकस्य गोष्ठगमनं युक्तम् ।

वासुदेव—हे सुयोधन ! क्या तुम मेरा अपमान करते हो ?

दुर्योधन—यह सत्य है ।

वासुदेव—अच्छा तो मैं जाता हूँ ।

दुर्योधन—जाओ, पशुओं के खुरों से उठी हुई धूलि से अपने अंगों को कलुषित करने वाले तुम व्रज को ही जाओ । तुमने व्यर्थ ही समय नष्ट किया है ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वासुदेवः—एवमेवास्तु। न वयमनुक्तसन्देशा गन्तुमिच्छामः। तदाकर्ण्यतां युधिष्ठिरस्य सन्देशः।][1]

दुर्योधनः—आः, अभाष्यस्त्वम्।

अहमवधृतपाण्डरातवत्रो द्विजवरहस्तधृताम्बुसिक्तमूर्धा।
अवनतनृपमण्डलानुयात्रैः सह कथयामि भवद्विधैर्न भाषे॥ ३७॥

विफलीकृतः=अनभिभाष्याभिभाषणे विनियुक्तत्वात्। अभाष्यः=वाणी-प्रयोगानर्हः।

अन्वयः—अवधृतपाण्डरातपत्रो द्विजवर-हस्तधृताम्बुसिक्तमूर्धा अहं अवनतनृपमण्डलानुयात्रैः भवद्विधैः सह न भाषे इति कथयामि॥ ३७॥

संस्कृत टीका—अवधृतपाण्डरातपत्रः=अवधृतम्, गृहीतं पाण्डरं शुभ्रम् आतपत्रं-छत्रं येन सः, अवधारितश्वेतछत्रः, द्विजवर-हस्तधृताम्बुसिक्तमूर्धा=द्विजवराणां ब्राह्मणश्रेष्ठानां हस्ताभ्यां कराभ्यां धृतं धारितं यदम्बु जलं तेन सिक्तः अभिषिक्त मूर्धा शिरः यस्य सः, तादृशः, वैदिकद्विजकरधृतजलसेचित-मस्तकः, अहम्=दुर्योधनः, अवनतनृपमण्डलानुयात्रैः=अवनतस्य मदधश्-चरस्य नृपमण्डलस्य अनुयात्रैः अनुयायिभिर्भृत्यैरित्यर्थः, भवद्विधैः=त्वत्स-दृशैः। कंसभृत्य इतिवत् क्षेपोऽयम्, सह=साकम्, न भाषे=न ब्रवीमि (इति) कथयामि=प्रतिजाने, कथयतः कथयामीत्युक्तिर्हि विशिष्टे कथने प्रतिज्ञान-रूपे पर्यवस्यति। प्रतिज्ञान विषयश्च भवादृशैः साकम् अभाषणम्। पुष्पिताग्रावृत्तम्॥ ३७॥

वासुदेव—ऐसा ही सही। परन्तु हम बिना सन्देश कहे नहीं जाना चाहते। तो युधिष्ठिर के सन्देश को सुनो।

दुर्योधन—अरे तुम तो बात करने के योग्य ही नहीं हो।

मेरे सिर पर श्वेत राजच्छत्र रखा गया है। श्रेष्ठ ब्राह्मणों ने अपने हाथों से मेरे मस्तक पर अभिषेक-जल सिञ्चित किया है। मैं कहता हूँ कि तुम जैसे व्यक्तियों से मैं बात भी नहीं करता जो मुझसे निम्न श्रेणी के राजाओं के अनुयायी हैं॥ ३७॥

---

१. देवधरसंस्करणे बन्धनीचिह्नाङ्कित पाठोऽयं न लभ्यते।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वासुदेवः—न व्याहरति किल मां सुयोधनः। भोः !
शठ ! बान्धवनिःस्नेह ! काक ! केकर ! पिङ्गल ! ।
त्वदर्थात् कुरुवंशोऽयमचिरान्नाशमेष्यति ॥ ३८ ॥
भो भो राजानः ! गच्छामस्तावत् ।

टिप्पणी—अवधृत०—अवधृतं पाण्डरं आतपत्रं येन सः (बहु०) आतपत्र—आतपात् त्रायते इति आतपत्रम्। द्विजवर०—द्विजेषु वरा द्विजवरा (स० त०), तेषा हस्ताः (ष० त०), तैः धृतम् अम्बु (तृ०त०), तेन सिक्तः मूर्धा यस्य सः (बहु०)। अवनत०—नृपाणां मण्डलं नृपमण्डलम् (ष०त०), अवनतं नृपमण्डलं (कर्म०) तद् अनुयात्रा येषां तैः ॥ ३७ ॥

संस्कृत टीका—व्याहरति=वदति। किल=इति निश्चये।

अन्वयः—शठ ! बान्धवनिःस्नेह ! काक ! केकर ! पिङ्गल ! त्वदर्थात् अयं कुरुवंशः अचिरात् नाशम् एष्यति ॥ ३८ ॥

संस्कृत टीका—शठ=हे धृष्ट, वञ्चक, बान्धवनिःस्नेह=बान्धवेषु निर्गतः स्नेहः यस्य सः तत् सम्बुद्धौ, हे भ्रातृनिष्कृप !, काक=कटुभाषित्वात् हे काक सदृश !; केकर=वलिर, वक्रलोचन, हे विकृताक्ष!, पिङ्गल=हे मर्कट, चपलत्वाद् हे वानरकल्प !, त्वदर्थात्=त्वन्निमित्तात्, अयं=वर्तमानः, कुरुवंशः=कुरूणां वंशः, अचिरात्=शीघ्रम् एव, नाशं=अभावम्, एष्यति=प्राप्स्यति। अनुष्टुप् छन्दः ॥ ३८ ॥

टिप्पणी—केकर—तारकामपाङ्ग आकृष्य वीक्षको हि केकरः। 'काककेकर' इत्येकपदं वा उपमानसमासात्। 'वलिरः केकरे' इत्यमरः ॥ ३८ ॥

संस्कृत टीका—अथ जिगमिषुं भगवन्तं बद्धुं सुयोधनस्य संरम्भः—

वासुदेव—सुयोधन तो मुझसे बात भी नहीं करता।

हे शठ ! बंधु-विरोधी ! काक (कुटिल-स्वभाव), भैंगे, और पिंगल (शाखामृग) तेरे ही कारण यह समग्र कुरुवंश शीघ्र ही नाश को प्राप्त हो जायगा ॥ ३८ ॥

हें ! हे राजाओ, हम अब जाते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दुर्योधनः—कथं यास्यति किल केशवः। दुःशासन! दुर्मर्षण। दुर्मुख! दुर्बुद्धे! दुष्टेश्वर! दूतसमुदाचारमतिक्रान्तः केशवो बध्यताम्। कथमशक्ताः। दुःशासन! न समर्थः खल्वसि।

करितुरगनिहन्ता कंसहन्ता स कृष्णः
पशुपकुलनिवासादानुजीव्यानभिज्ञः।
हृतभुजबलवीर्यः पार्थिवानां समक्षं
स्ववचनकृतदोषो बध्यतामेष शीघ्रम्॥ ३९॥

कथं यास्यतीत्यादिना प्रकाश्यते। दूतसमुदाचारम् अतिक्रान्तः=दूतमर्यादामतिक्रम्य स्थितः, अतोऽपराधी बन्धनार्ह इत्यर्थः। न समर्थः=अर्थात् केशवं बद्धुम्।

अन्वयः—करितुरगनिहन्ता कंसहन्ता पशुपकुलनिवासाद् आनुजीव्यानभिज्ञः हृतभुजबलवीर्यः एष स्ववचनकृतदोषः स कृष्णः पार्थिवानां समक्षं शीघ्रं बध्यताम्॥ ३९॥

संस्कृत टीका—करितुरगनिहन्ता=करिणः उत्पलापीडाख्यस्य गजस्य तुरगस्य अश्वासुरस्य च निहन्ता, कंसहन्ता=कंसस्य हन्ता वधकर्ता। पशुपकुलनिवासात्=गोपालगृहनिवासात्, नीचकुलनिवासादिति भावः, आनुजीव्यानभिज्ञः=आनुजीव्यस्य अनुजीविकर्मणः

दुर्योधन—केशव भला जाने कैसे पायेगा? दुःशासन! दुर्मर्षण! दुर्मुख! दुर्बुद्धि! दुष्टेश्वर। दूतोचित आचरण का अतिक्रमण करने वाले केशव को बाँध लो।

अरे, क्या तुम (इस कार्य के लिए) असमर्थ हो? दुःशासन! क्या तुम भी असमर्थ हो?

यह कृष्ण गज (कुवलयापीड़), अश्व (घोटकासुर) और कंस को को मारने-वाला है। पशु पालने वालों के साथ निवास करने के कारण यह दूत-कर्तव्यों से अनभिज्ञ है। यह भुजबल और शौर्य से रहित है। राजाओं के सामने इसने परुष वचन कहने का अपराध किया है, अतः इसे शीघ्र बाँध लिया जाय॥ ३९॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वासुदेवः—न व्याहरति किल मां सुयोधनः। भोः !
शठ ! बान्धवनिःस्नेह ! काक ! केकर ! पिङ्गल ! ।
त्वदर्थात् कुरुवंशोऽयमचिरान्नाशमेष्यति ॥ ३८ ॥
भो भो राजानः ! गच्छामस्तावत् ।

टिप्पणी—अवधृत०—अवधृतं पाण्डरं आतपत्रं येन सः (बहु०) आतपत्र—आतपात् त्रायते इति आतपत्रम्। द्विजवर०—द्विजेषु वरा द्विजवरा (स० त०), तेषा हस्ताः (ष० त०), तैः धृतम् अम्बु (तृ०त०), तेन सिक्तः मूर्धा यस्य सः (बहु०)। अवनत०—नृपाणां मण्डलं नृपमण्डलम् (ष०त०), अवनतं नृपमण्डलं (कर्म०) तद् अनुयात्रा येषां तैः ॥ ३७ ॥

संस्कृत टीका—व्याहरति=वदति। किल=इति निश्चये।

अन्वयः—शठ ! बान्धवनिःस्नेह ! काक ! केकर ! पिङ्गल ! त्वदर्थात् अयं कुरुवंशः अचिरात् नाशम् एष्यति ॥ ३८ ॥

संस्कृत टीका—शठ=हे धृष्ट, वञ्चक, बान्धवनिःस्नेह=बान्धवेषु निर्गतः स्नेहः यस्य सः तत् सम्बुद्धौ, हे भ्रातृनिष्कृप !, काक=कटु-भाषित्वात् हे काक सदृश !; केकर=वलिर, वक्रलोचन, हे विकृताक्ष!, पिङ्गल=हे मर्कट, चपलत्वाद् हे वानरकल्प !, त्वदर्थात्=त्वन्निमित्तात्, अयं=वर्तमानः, कुरुवंशः=कुरूणां वंशः, अचिरात्=शीघ्रम् एव, नाशं=अभावम्, एष्यति=प्राप्स्यति। अनुष्टुप् छन्दः ॥ ३८ ॥

टिप्पणी—केकर—तारकामपाङ्ग आकृष्य वीक्षको हि केकरः। 'काककेकर' इत्येकपदं वा उपमानसमासात्। 'वलिरः केकरे' इत्यमरः ॥ ३८ ॥

संस्कृत टीका—अथ जिगमिषुं भगवन्तं बद्धुं सुयोधनस्य संरम्भः—

वासुदेव—सुयोधन तो मुझसे बात भी नहीं करता।

हे शठ ! बंधु-विरोधी ! काक (कुटिल-स्वभाव), भैंगे, और पिंगल (शाखामृग) तेरे ही कारण यह समग्र कुरुवंश शीघ्र ही नाश को प्राप्त हो जायगा ॥ ३८ ॥

हें ! हे राजाओ, हम अब जाते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

दुर्योधनः—कथं यास्यति किल केशवः। दुःशासन! दुर्मर्षण। दुर्मुख! दुर्बुद्धे! दुष्टेश्वर! दूतसमुदाचारमतिक्रान्तः केशवो बध्यताम्। कथमशक्ताः। दुःशासन! न समर्थः खल्वसि।

करितुरगनिहन्ता कंसहन्ता स कृष्णः
पशुपकुलनिवासादानुजीव्यानभिज्ञः।
हृतभुजबलवीर्यः पार्थिवानां समक्षं
स्ववचनकृतदोषो बध्यतामेष शीघ्रम्॥ ३९॥

कथं यास्यतीत्यादिना प्रकाश्यते। दूतसमुदाचारम् अतिक्रान्तः=दूतमर्यादामतिक्रम्य स्थितः, अतोऽपराधी बन्धनार्हं इत्यर्थः। न समर्थः=अर्थात् केशवं बद्धुम्।

अन्वयः—करितुरगनिहन्ता कंसहन्ता पशुपकुलनिवासाद् आनुजीव्यानभिज्ञः हृतभुजबलवीर्यः एष स्ववचनकृतदोषः स कृष्णः पार्थिवानां समक्षं शीघ्रं बध्यताम्॥ ३९॥

संस्कृत टीका—करितुरगनिहन्ता=करिणः उत्पलापीडाख्यस्य गजस्य तुरगस्य अश्वासुरस्य च निहन्ता, कंसहन्ता=कंसस्य हन्ता वधकर्ता। पशुपकुलनिवासात्=गोपालगृहनिवासात्, नीचकुलनिवासादिति भावः, आनुजीव्यानभिज्ञः=आनुजीव्यस्य अनुजीविकर्मणः

दुर्योधन—केशव भला जाने कैसे पायेगा? दुःशासन! दुर्मर्षण! दुर्मुख! दुर्बुद्धि! दुष्टेश्वर। दूतोचित आचरण का अतिक्रमण करने वाले केशव को बाँध लो।

अरे, क्या तुम (इस कार्य के लिए) असमर्थ हो? दुःशासन! क्या तुम भी असमर्थ हो?

यह कृष्ण गज (कुवलयापीड़), अश्व (घोटकासुर) और कंस को को मारने-वाला है। पशु पालने वालों के साथ निवास करने के कारण यह दूत-कर्तव्यों से अनभिज्ञ है। यह भुजबल और शौर्य से रहित है। राजाओं के सामने इसने परुष वचन कहने का अपराध किया है, अतः इसे शीघ्र बाँध लिया जाय॥ ३९॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अयमशक्तः। मातुल ! बध्यतामयं केशवः। कथं पराङ्मुखः पतति। भवतु, अहमेव पाशैर्बध्नामि। (उपसर्पति)

वासुदेवः—कथं मवितुकामो मां किल सुयोधनः। भवतु, सुयोधनस्य, सामर्थ्यं पश्यामि। (विश्वरूपमास्थितः)

अनभिज्ञः अपरिचितः, हृतभुजबलवीर्यः=हृतं भुजानां बलवीर्यं येन, नष्टबाहुबलपराक्रमः, एष=कृष्णः, स्ववचनकृतदोषः=स्ववचनेन कृतः दोषः येन, ममावमाननारूपोऽपराधः येन सः, सः=तादृशः, कृष्णः=वासुदेवः, पार्थिवानाम्=राज्ञाम्, समक्षम् = अक्ष्णः समक्षं प्रत्यक्षम् शीघ्रमझटिति बध्यताम्=बद्धः क्रियताम्। मालिनीवृत्तम् ॥ ३९ ॥

टिप्पणी—करितुरग०—करी च हस्ती च तुरगश्च अश्वश्चेति करितुरगौ तयोः निहन्ता विनाशकः (ष० त०), नि+हन्+तृच्। पशुप०-पशून् पालयिन्त इति पशुपाः आभीराः, तेषां कुलं वंशः तस्मिन् निवासः तस्मात्। आनुजीव्या०—आनुजीवन्तीति अनुजीविनः, आनुजीविनः भावः आनुजीव्यम्, तदनभिज्ञः। हृतबल०—बलं च वीर्यं च बलवीर्ये, भुजयोः बलवीर्ये (ष०त०) हृतभुजबलवीर्ये यस्य स (बहु०) ॥ ३९ ॥

संस्कृत टीका—बन्धुं कृतप्रयत्न दुश्शासनस्याशक्तिमुपालंभ्याह—अयमशक्त इति। शकुनिं चोदयति मातुलेत्यादि, कथमित्यादि। पतति=बद्धुं किमपि चेष्टित्वा परिश्रान्तो भुवि पततीत्यर्थः, भवतु= इति निषेधेऽव्ययम्, दुश्शासनादयो मा बध्नन्तु ॥

कथमित्यादि। मवितुकामः=मवितुं बन्धुं काम इच्छा यस्य सः। विश्वरूपम्=विश्वं कृत्स्नं जगत्, तदात्मकं रूपम् अपरिच्छिन्नम् आत्मनः

यह तो असमर्थ है। हे मामा ! इस केशव को बाँध लो। क्या यह तो मुँह के बल गिर पड़े। अच्छा ! मैं ही इसे पाश से बाँधता हूँ ॥

(पाश को उठाकर समीप आता है)

वासुदेव—क्या सुयोधन सचमुच मुझे बाँधने की इच्छा करता है ? अच्छा, सुयोधन की शक्ति को भी देखता हूँ (परीक्षा करता हूँ) (विराट् रूप धारण करते हैं)।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दुर्योधनः—भो दूत !

सृजसि यदि समन्ताद् देवमायाः स्वमायाः
प्रहरसि यदि वा त्वं दुर्निवारैः सुरास्त्रैः ।
हयगजवृषभाणां पातनाज्जातदर्पो
नरपतिगणमध्ये बध्यसे त्वं मयाद्य ॥ ४० ॥

स्वरूपमित्यर्थः । आस्थितः—अङ्गीकृतवान् ।

टिप्पणी—मवितुकामः-मवितुं कामः यस्य (बहु०) । भव बन्धने भ्वादिः ।

अन्वयः— यदि देवमायाः स्वमायाः समन्तात् सृजसि, यदि त्वं दुर्निवारैः सुरास्त्रैः प्रहरसि, मया अद्य नरपतिगणमध्ये हयगजवृषभाणां पातनात् जातदर्पः त्वं बध्यसे ॥ ४० ॥

संस्कृत टीका—भगवतो विश्वरूपप्रदर्शनं मोहादिन्द्रजालप्रयोगं मन्यमान आह—सृजसीत्यादि । यदि=चेत्, देवमायाः=देवानां माया, स्वमायाः=आत्मदृष्टा मायाः, समन्तात्=चतसृषु दिक्षु, सृजसि=विदधासि, यदि, वा=अथवा, त्वम्=कृष्णः, दुर्निवारैः अप्रतिहतैः, सुरास्त्रैः=दिव्यास्त्रैः, मयि देवास्त्रैः, प्रहरसि=प्रहारं करोषि । इह 'सृजसि यदि' इत्यत्र 'सृज' इत्यध्याहारः । अर्थात् यथाकामं मायाः सृज, न मे त्वन्मायासर्गाद् भयमिति भावः । तथा 'प्रहरसि यदि' इत्यत्र 'प्रहर' इत्यध्याहारः, अर्थात् यथाकामं प्रहर; न मे सुरास्त्रप्रहाराद् भयमिति भावः । अद्य=अस्मिन्नहनि, नरपतिगणमध्ये=नरपतीनां गणः तस्य मध्यं तस्मिन्, नृपमण्डलमध्ये=हयगजवृषभाणां=हयाश्च गजाश्च वृषभाश्च हयगजवृषभाः, तेषाम्, करितुरगवृषाणाम् पातनात्=वधात्, जातदर्पः=जातः उत्पन्नः

दुर्योधन—हे दूत !

चाहे तुम चारों ओर अपनी माया या देवमाया का सर्जन करो, चाहे अमोघ दिव्यास्त्रों से प्रहार करो, परन्तु अश्व, गज, वृषभ आदि को मारने पर अहंकार करने वाले तुमको इस नृपमण्डल के बीच में अभी बाँधता हूँ ॥ ४० ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आः तिष्ठेदानीम् । कथं न दृष्टः केशवः । अयं केशवः । अहो ह्रस्वत्वं केशवस्य । आः तिष्ठेदानीम् । कथं न दृष्टः केशवः । अयं केशवः । अहो दीर्घत्वं केशवस्य । कथं न दृष्टः केशवः । अयं केशवः । सर्वत्र मन्त्रशालायां केशवा भवन्ति । किमिदानीं करिष्ये । भवतु, दृष्टम् । भो भो राजानः ! एकेनैकः केशवो बध्यताम् । कथं स्वयमेव पाशैर्बद्धाः पतन्ति राजानः । साधु भो जम्भक ! साधु !

मत्कार्मुकोदरविनिःसृतबाणजालै-
र्विद्धक्षरत्क्षतजरञ्जितसर्वगात्रम् ।

दर्पः गर्वः यस्य सः, त्वम्=वासुदेवः, मया=दुर्योधनेन, बध्यसे=बन्धनं प्राप्स्यसे । मालिनीवृत्तम् ॥ ४० ॥

टिप्पणी—दुर्निवारैः—दुःखेन निवारयितुं शक्यानि, तैः । पातनात्—पत्+णिच्+ल्युट् । हयगज०—हयश्च अश्वश्च (केशिघोटकश्च) गजश्च हस्ती च (कुवलयापीडगजश्च) वृषभश्च वलीवर्दश्च (वृषभासुरश्च) इति हयगजवृषभाः, तेषाम् ॥ ४० ॥

संस्कृत टीका—अथात्यद्भुतभगवद्विश्वरूपदर्शनोद्भ्रान्तस्य भ्रमविलसितवर्णनायोपक्रमः—आस्तिष्ठेत्यादिना । दृष्टस्य भगवतो झटिति तिरोभावादाह—कथमित्यादि । पुनराविर्भावादाह—अयं केशव इति । नृपान् केशवबन्धनार्थमुद्यम्य पाशैरात्मानमेव बद्ध्वा भूमौ पतितान् दृष्ट्वाह—कथं स्वयमेवेत्यादि । जम्भक !=मायाविन् ! ।

अन्वयः—बाष्परुद्धनयनाः परिनिःश्वसन्तः पाण्डुतनयाः मत्कार्मुको-

---

अरे ! अब खड़े रहो । केशव कैसे दिखाई नहीं पड़ता । यह है केशव । अहो आश्चर्यकारी है इसका वामनत्व ! अरे, अब ठहर जा । केशव क्यों दिखलाई नहीं पड़ता । यह है केशव । ओह, केशव की विशालता ! केशव क्यों दिखलाई नहीं पड़ता ? यह है केशव । सब ओर मन्त्रशाला में अनेक केशव हैं । अब मैं क्या करूँ ? अच्छा, समझ गया । हे हे राजाओ ! तुममें से एक एक अलग-अलग करके केशव को पकड़ लो क्या राजा लोग स्वयं पाशों में बँधकर गिर पड़े ? बहुत अच्छा, हे मायावी, बहुत अच्छा !

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पश्यन्तु पाण्डुतनयाः शिबिरोपनीतं
त्वां वाष्परुद्धनयनाः परिनिःश्वसन्तः ॥ ४१ ॥

(निष्क्रान्तः)

दरविनिःसृतबाणजालैः विद्धक्षरत्क्षतजरञ्जितसर्वगात्रं शिबिरोपनीतं त्वां पश्यन्तु ॥ ४१ ॥

संस्कृत टीका—दुर्योधनः स्वनिश्चितां प्रतिकृतिं सूचयन् दूतं स्वकृत-निकारपरिणतिं प्रदर्शयति मदित्यादिना । बाष्परुद्धनयनाः=बाष्पैः अश्रुभिः उपरुद्धानि आवृतानि नयनानि नेत्राणि येषां ते, तादृशाः, परिनिःश्वसन्तः= परितः सर्वतः निःश्वसन्तः (शोकजन्य) उच्छ्वासं गृह्णन्तः, पाण्डुतनयाः= युधिष्ठिरादयः पाण्डोः पुत्राः, मत्कार्मुकोदरविनिःसृतबाणजालैः=मम सुयोधनस्य, कार्मुकम्-धनुः, तस्य उदरात्, विनिःसृताः प्रक्षिप्ताः, बाणजालानि शरसमूहाः तैः, विद्धक्षरत्क्षतजरञ्जितसर्वगात्रम्—विद्धात् वेधयुक्तात् क्षरन्ति प्रस्रवन्ति क्षतजानि रुधिराणि तैः रञ्जितं लोहितीकृतं सर्वगात्रं सर्वशरीरं यस्य सः, तम्, स्रवद्रक्तारुणितसर्वावयवम् । रुधिराप्लावितशरीरमित्यर्थः, शिबिरोपनीतं=शिबिरे सैनिकावासस्थाने उपनीतं प्राप्तम्, त्वाम्=श्रीकृष्णं, पश्यन्तु=अवलोकयन्तु । वसन्ततिलकावृत्तम् ॥ ४१ ॥

टिप्पणी—परिनिःश्वसन्तः—परि+निस्+श्वस्+शतृ—परिनिःश्व-सत् । मत्कार्मुक०—कर्मणे प्रभवतीति कार्मुकम्, कर्म+उकञ्, मत्कार्मुकं तस्य उदरं मत्कार्मुकोदरं, तस्मात् विनिःसृतानि बाणजालानि (कर्म०), विद्धम्—व्यध्+क्त,क्षतात् जायते इति क्षतजं (कर्म०), (जन+ड), रक्तम्, क्षरत्—क्षर्+शत्—क्षरत्क्षतजं [कर्म०], तेन रञ्जितानि (तृ० त०) सर्वाणि च तानि गात्राणि यस्य ॥ ४१ ॥

मेरे धनुष से निकली हुई बाणावली से विद्ध, घावों से प्रवाहित रुधिर से रँगे हुए तुम्हारे शरीर को अपने शिविर के पास आहें भरते हुए और अविरल अश्रु बहाते हुए पाण्डुपुत्र देखें ॥ ४१ ॥

(प्रस्थान)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

वासुदेवः—भवतु, पाण्डवानां कार्यमहमेव साधयामि। भो सुदर्शन ! इतस्तावत्।

(ततः प्रविशति सुदर्शनः)

सुदर्शनः—एष, भो !

श्रुत्वा गिरं भगवतो विपुलप्रसादा-
न्निर्धावितोऽस्मि परिवारिततोयदौघः।
कस्मिन् खलु प्रकुपितः कमलायताक्षः
कस्याद्य मूर्धनि मया प्रविजृम्भितव्यम् ॥ ४२ ॥

संस्कृत टीका—भवत्वित्यादि। दुर्योधननिग्रहाय स्वचक्रराजमाह्वयति—भो इत्यादि। इतस्तावत्, आयाहीति शेषः।

तत इत्यादि। सुदर्शन इति पुंस्त्वं सुदर्शनाभिमानिदेवाभिप्रायम्।

टिप्पणी—सुदर्शनः—सुष्ठु दृश्यते यत्, सु+दृश्+युच् (अन्)।

अन्वयः—विपुलप्रसादात् भगवतः गिरं श्रुत्वा परिवारिततोयदौघः (सन्) निर्धावितोऽस्मि। कमलायताक्षः कस्मिन् प्रकुपितः खलु अद्य मया कस्य मूर्धनि विजृम्भितव्यम् ॥ ४२ ॥

संस्कृत टीका—विपुलप्रसादात्=(हे भगवन् !) विपुलो महांश्चासौ प्रसादः अनुग्रहः, तस्मात्, महाकृपातः, भगवतः=ऐश्वर्यवीर्ययशःश्रीज्ञान-वैराग्याणि भगाः, तद्वतः, श्रीकृष्णस्य, गिरं=वाचं, श्रुत्वा=आकर्ण्य, श्रवणानन्तरं, परिवारिततोयदौघः (सन्)=परिवारितः परितः सर्वतः वारितः अपसारितः तोयदानाम् औघः समूहः येन सः, तादृशः, परितः

वासुदेव—अच्छा ! मैं ही पाण्डवों का कार्य करूगा। हे सुदर्शन ! इधर आओ।

(इसके बाद सुदर्शन का प्रवेश)

सुदर्शन—यह मैं हूँ—

भगवान् की वाणी को सुनकर आपकी अपार कृपा से मैं जलद पटलों को दूर हटाता हुआ भागा आया हूँ। कमलनेत्र किस पर क्रुद्ध हुए हैं, किसके सिर को मुझे ग्रसित करना होगा (काटना होगा) ॥ ४२ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

क्व नु खलु भगवान् नारायणः ?
अव्यक्तादिरचिन्त्यात्मा लोकसंरक्षणोद्यतः ।
एकोऽनेकवपुः श्रीमान् द्विषद्बलनिषूदनः ॥ ४३ ॥

उत्सारितमेघवृन्दः, निर्धावितोऽस्मि = प्रधावितः नितरां शीघ्रमागतो ह्यस्मि । कमलायताक्षः = कमले जलजे इव आयते विशाले अक्षिणी नेत्रे यस्य, तादृशः कृष्णः, कस्मिन् = द्वेष्यजने, प्रकुपितः = क्रोधितः, खलु = निश्चयेन, कस्य = अपकारिणः, मूर्धनि = मस्तके, अद्य मया = सम्प्रति सुदर्शनेन, प्रविजृम्भितव्यम् = प्रविजृम्भितुं पराक्रमितुम् अहम् वसन्ततिलका वृत्तम् ॥ ४२ ॥

टिप्पणी—परिवारित०—तोयं ददाति इति तोयदः, दा + क; तोयदानां ओघः समूहः तोयदौघः (ष० त०) येन, सः परिवारितः—परि + वृ + णिच् + क्त । निर्धावितः—निर् + धाव् + क्त) । प्रविजृम्भितव्यम्—प्र + वि + जृम्भ् + तव्यत् ।

संस्कृत टीका—नारायणः = परमात्मा लोकान्तर्यामीति भावः ।

अन्वयः—अव्यक्तादिः अचिन्त्यात्मा लोकसंरक्षणोद्यतः एकः अनेकवपुः श्रीमान् द्विषद्बलनिषूदनः ॥ ४३ ॥

संस्कृत टीका—अव्यक्तादि—अव्यक्तस्य कारणभूतायाः प्रकृतेः आदिः कारणभूतः, यद्वा न व्यक्तः आदिर्यस्य सः, अनादिः, अचिन्त्यात्मा = अचिन्त्यः न चिन्तितुं योग्यः आत्मा स्वरूपं यस्य सः, अपरिमेयशक्तिः, ईदृक्तादृगित्यप्रतर्क्यस्वरूपः, लोकसंरक्षणोद्यतः = लोकानां भुवनानां संरक्षणं पालनं तस्मिन्, उद्यतः तत्परः, भुवनपालनासक्तः, एकः = अद्वितीयः, ऐकाक्यपि, अनेकवपुः = अनेकानि बहूनि वपूंषि शरीराणि यस्य सः, तादृशः बहुशरीरम्, श्रीमान् = शोभासम्पन्नः, द्विषद्बलनिषूदनः = द्विषतां शत्रूणां बलं शक्तिं निषूदयति विनाशयति, यद्वा शत्रूणां सैन्यस्य विनाशकः, शत्रुबलनाशकः; 'क्व

भगवान् नारायण कहाँ हैं ?

आप अव्यक्त (प्रकृति) के आदि हैं, चिन्तन की सीमा के परे हैं, संसार की रक्षा करने में तत्पर हैं, और शत्रुसेना का संहार करने वाले हैं । शोभासम्पन्न आप एक होते हुए भी अनेक रूप धारण करने वाले हैं ॥ ४३ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

(विलोक्य) अये अयं भगवान् हस्तिनापुरद्वारे दूतसमुदाचारेणोपस्थितः। कुतः खल्वापः, कुतः खल्वापः। भगवति आकाशगङ्गे ! आपस्तावत्। हन्त स्रवति। (आचम्योपसृत्य) जयतु भगवान् नारायणः (प्रणमति)।

वासुदेवः—सुदर्शन ! अप्रतिहतपराक्रमो भव।

सुदर्शनः—अनुगृहीतोऽस्मि।

आस्ते' इति शेषः। अनुष्टुप्छन्दः ॥ ४३ ॥

टिप्पणी—अव्यक्तादिः—न व्यक्तः अव्यक्तः (नञ् त०) अव्यक्तस्य आदिः (ष० त०), वि+अञ्ज्+क्त+। अचिन्त्यात्मा—न चिन्त्यः अचिन्त्यः (नञ् त०) अचिन्त्या आत्मा यस्य सः (बहु०)। तु०—'अणोरणीयान् महतो महीयान्।' लोकसंरक्षणोद्यतः—लोकानां संरक्षणं लोकसंरक्षणम् (ष० त०) तस्मिन्, उद्यतः—तु०'परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्। धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे।' (गीता)। अनेकवपुः—अनेकानि वपूंषि यस्य सः (बहु०), तु० 'अनेकरूपरूपाय।' 'एकोऽहं बहुस्याम्' इति श्रुतिरपि तदेव प्रतिपादयति। श्रीमान्—श्रीः अस्ति अस्य सः (बहु०); श्री+मतुप्। द्विषद्बल०—द्विषतां बलं द्विषद्बलं (ष०त०) तस्य निषूदनः, द्विष्+शतृ, नि+सूद्+ल्युट्। (क) यहाँ व्याजोक्ति अलङ्कार है ॥ ४३ ॥

संस्कृत टीका—अये इत्यादि। कुतः खल्वापः=अभिषेचनार्थम् आपः जलम्, अत्र द्विरुक्तिः संभ्रमात्। स्रवति=शौचार्थमर्थितं जलं स्वर्गङ्गा

(देखकर) अरे हस्तिनापुर के द्वार पर यह दूत के रूप में भगवान् उपस्थित है जल कहाँ से लूँ ? जल कहाँ से लूँ ? हे भगवती आकाशगङ्गे ! जल दीजिये। अहा, यह जल बरस रहा है; (आचमन करके और समीप आकर) भगवान् नारायण की जय हो। (प्रणाम करता है)।

वासुदेव—हे सुदर्शन ! तुम्हारा पराक्रम अजेय हो।

सुदर्शन—मैं कृतज्ञ हुआ, आपने कृपा की।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वासुदेवः—दिष्ट्या भवान् कर्मकाले प्राप्तः। भगवानाज्ञापयतु।

सुदर्शनः—कथं कथं कर्मकाल इति। आज्ञापयतु।

किं मेरुमन्दरकुलं परिवर्तयामि
संक्षोभयामि सकलं मकरालयं वा।
नक्षत्रवंशमखिलं भुवि पातयामि
नाशक्यमस्ति मम देव! तव प्रसादात्॥ ४४॥

स्यन्दयतीत्यर्थः, अप्रतिहतपराक्रमः=अप्रतिहतः दुर्निवारः पराक्रमो यस्य सः, अप्रतिहतबलः, दिष्ट्या=इति हर्षेऽव्ययम्, कर्मकाले=कर्मणः कालः कर्मकालः, (ष० त०) तस्मिन्, क्रियाकाले।

अन्वयः—हे देव! किं मेरुमन्दरकुलं परिवर्त्तयामि वा सकलं मकरालयं संक्षोभयामि वा अखिलं नक्षत्रवशं भुवि पातयामि, तव प्रसादात् अशक्यं न अस्ति॥ ४४॥

संस्कृत टीका—हे देव=हे भगवन्, किं=इति प्रश्ने विनिमये वा, मेरुमन्दरकुलं=मेरुश्च मन्दरश्च मेरुमन्दरौ, एतन्नामकौ पर्वतविशेषौ, मेरुमन्दरयोः पर्वतयोः कुलं राजिम्, परिवर्तयामि=परिवर्तितं करोमि? मेरुकुलस्थाने मन्दरकुलं तत्स्थाने मेरुकुलं च स्थापयामि किमित्यर्थः? वा=अथवा, सकलं=सम्पूर्णं, मकरालयं=मकराणां ग्राहादीनाम् आलयं निवास-स्थानम्, समुद्रमिति यावत् 'संक्षोभयामि=मथ्नामि, वा=अथवा, अखिलं=समग्रम्, नक्षत्रवंशं=नक्षत्राणां वंशं नक्षत्रमण्डलम्, भुवि=पृथिव्यां, पातयामि=पतितं करोमि। वस्तुतस्तु, तव=भवतः, प्रसादात्=

वासुदेव—मैं प्रसन्न हूँ कि आप कार्य करने के समय पर ही आये हो।

सुदर्शन—कौन से कार्य का समय है? भगवान् आज्ञा देवें, आज्ञा करें।

क्या मेरु मन्दरादि पर्वत समूह को उलट दूँ? क्या मकरों के निवास-स्थान महासागर में हलचल मचा दूँ? क्या समग्र नक्षत्र-मंडल को भू पर गिरा दूँ? हे देव, आपकी कृपा से मेरे लिए कुछ भी असम्भव नहीं है॥ ४४॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वासुदेवः—भो सुदर्शन ! इतस्तावत् । भोः सुयोधन !

यदि लवणजलं वा कन्दरं वा गिरीणां
ग्रहगणचरितं वा वायुमार्गं प्रयासि ।
मम भुजबलयोगप्राप्तसंजातवेगं
भवतु चपल ! चक्रं कालचक्रं तवाद्य ॥ ४५ ॥

अनुग्रहात्, अशक्यं=किमपि अकार्यम्, न अस्ति=नहि वर्त्तते । अतः आज्ञापयतु, सर्वं कर्तुं समर्थोऽस्मीति भावः । वसन्ततिलका वृत्तम् ॥ ४४ ॥

टिप्पणी—मेरु०—मेरुश्च मन्दरश्च मेरुमन्दरौ तन्नामापर्वतौ, (द्व०) तयोः कुलं (ष० त०) । परिवर्तयामि—परि+वृत्+णिच्+लट् । मकरालयम्—मकराणाम् आलयः (ष० त०), तम् । संक्षोभयामि—सं+क्षुभ्+णिच्+लट् । प्रसादात्—प्र+सद्+घञ् । अशक्यम्—न शक्यम् (नञ्०), शक्+यत् ॥ ४४ ॥

संस्कृत टीका—भो इत्यादि । इतस्तावत्=पश्येति शेषः, सुयोधनावस्थानदेशप्रदर्शनं चेदम् । अस्मिन् प्रदेशे स्थितः सुयोधनस्तव लक्ष्य इति तात्पर्यम् ।

अन्वयः—यदि त्वं लवणजलं प्रयासि वा गिरीणां कन्दरं (प्रयासि) वा ग्रहगणचरितं वायुमार्गं (प्रयासि) । अद्य मम भुजबलयोगप्राप्तसंजातवेगं हे चपल चक्रं तव कालचक्रं भवतु ॥ ४५ ॥

संस्कृत टीका—यदि चेत्, (त्वम्), लवणजलम्=क्षारसागरम्, प्रयासि=गच्छसि, वा=अथवा, गिरीणां=पर्वतानां, कन्दरम्=गुहां, (प्रयासि), वा=अथवा, ग्रहगणचरितं=ग्रहगणेन चरितं सञ्चारविषयीकृतम्, अन्तरिक्षमिति यावत्, वायुमार्गं=वायोः परिवहाख्यस्य मार्गम्, (प्रयासि=

वासुदेव—हे सुदर्शन ! इधर आओ । हे सुयोधन ? चाहे तुम खारे सागर में घुस जाओ, चाहे पर्वतों की गुफाओं में छिप जाओ और चाहे नक्षत्र मंडल के चलने वाले वायुमार्ग में पहुँच जाओ, मेरे भुजवल के प्रयोग से वेग (तीव्रगति) को प्राप्त करनेवाला यह चंचल चक्र इस समय तुम्हारे लिए कालचक्र का काम करेगा ॥ ४५ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सुदर्शनः—भोः सुयोधनहतक ! (इति पुनर्विचार्य) प्रसीदतु, प्रसीदतु भगवान् नारायणः ।

महीभारापनयनं कर्तुं जातस्य भूतले ।
अस्मिन्नेवं गते देव ! ननु स्याद् विफलः श्रमः ॥ ४६ ॥

यदि गच्छसि चेत्) । प्रयाहीत्यध्याहारः । अद्य=साम्प्रतम्, मम=कृष्णस्य, भुजबलयोगप्राप्तसंजातवेगं=भुजबलयोगप्राप्तं बाहुवीर्यसम्बन्धं प्राप्तं सञ्जातवेगं च; हे चपल=हे चञ्चल (सुयोधन), चक्रम्=सुदर्शन इति यावत्, तव=दुर्योधनस्य, कालचक्रं=यमचक्रम्, मृत्युचक्रम्, भवतु=स्यात् । प्राणपरित्राणार्थं यत्र क्वापि गच्छसि चेद् यथेच्छं गच्छेत्यभिप्रायः । तथापि मदीयं चक्रं त्वामद्यैव हनिष्यतीत्यभिप्रायः । कुत्रापि पलायने न ते मोक्षः । मालिनी छन्दः ॥ ४५ ॥

टिप्पणी—लवणजलम्—लवणं जलं यस्य तम् (बहु०) । ग्रहगण०—ग्रहाणां गणः ग्रहगणः (ष० त०) तैः, चरितम् (तृ० त०) । वायुमार्गम्—वायोः मार्गम् (ष० त०) आकाशम् । भुजबल०—भुजयोः बलं भुजबलं (ष० त०), भुजबलस्य योगः, स एव प्राप्तः भुजबलप्राप्तः, अत एव संजातः वेगः यस्य तम् (बहु०) ।

अन्वयः—हे देव ! महीभारापनयनं कर्तुं भूतले जातस्य (तव) श्रमः अस्मिन् एवं गते (सति) ननु विफलः । (एव) स्यात् ॥ ४६ ॥

संस्कृत टीका—हे देव=हे भगवन्, महीभारापनयनम्=मह्या भूमेः यो भारो दुर्जनातिवृद्धिजनितः, तस्य अपनयनं दुर्जनक्षेपणेन परिहरणम्, कर्त्तुं=भीमार्जुनादिद्वारेण विधातुम्, भूतले=पृथिव्याम्, जातस्य=अव-

---

सुदर्शन—हे अभागे सुयोधन ! ठगेर जा, ठहर जा । (फिर सोचकर) प्रसन्न हों, भगवान् नारायण प्रसन्न हों ।

पृथ्वी के भार को दूर करने के लिए जन्म ग्रहण करने वाले आपका सारा परिश्रम व्यर्थ हो जायगा यदि यह (सुयोधन) इस प्रकार मारा जायगा ॥ ४६ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वासुदेवः—सुदर्शन ! रोषात् समुदाचारो नावेक्षितः। गम्यतां स्वनिलयमेव।

सुदर्शनः—यदाज्ञापयति भगवान् नारायणः। कथं कथं गोपालक इति। त्रिचरणातिक्रान्तत्रिलोको नारायणः खल्वत्रभवान्। शरणं व्रजन्तु भवन्तः। यावद् गच्छामि।

तीर्णस्य अर्थात् तव, श्रमः=मनुष्यरूपेणावतरणयत्नः, अस्मिन्=दुर्योधने, एवं गते (सति)=इमं प्रकारं प्राप्ते; मया निहते सतीत्यर्थः, ननु विफलः स्यात्=निष्फल एव भवेत्। युद्धप्रवर्तकसुयोधनाभावेन युद्धाभावे जनक्षयाभावादिति भावः। अनुष्टुप् छन्दः ॥ ४६ ॥

सुदर्शनेत्यादि। समुदाचारः=तटस्थवृत्तिः, स्वकृत्यं वा। स्वनिलयमेव=स्वस्यालयमुद्दिश्यैव, गम्यताम्=न त्विदानीं सुयोधनो हन्यतामित्यर्थः।

यदित्यादि। कथं कथं गोपालक इति=गोपालक इति बुद्धिर्वो गर्हितेत्यर्थः, कथंशब्दो गर्हायाम्। कस्तर्ह्यं तत्राह—त्रिचरणेत्यादि। त्रिचरणातिक्रान्तत्रिभुवनः=त्रिभिश्चरणैः पदन्यासैः अतिक्रान्तं लङ्घितं त्रिभुवनं लोकत्रयं येन सः तादृशः। त्रिभुवन इत्यस्य स्थाने त्रिलोक इत्यपि पाठः। तदा, त्रिचरणातिक्रान्ताः त्र्यवयवा लोका येन स इति विग्रहः। भवन्तः, शरणं व्रजन्तु=रक्षकं प्रपद्यन्ताम्, अर्थात् भगवन्तम्। यावत् गच्छामि=गमिष्यामि।

अथ भगवदनुज्ञया गच्छतः सुदर्शनस्य क्रमेण शार्ङ्गकौमोदकीपाञ्चजन्यनन्दकगरुडैः पथि समागमम्, भगवदभिप्रायनिवेदनेन तेषां निवृत्तिं च

वासुदेव—हे सुदर्शन ! क्रोध के कारण मैंने यथार्थ कर्त्तव्य की ओर नहीं देखा।

सुदर्शन—भगवान् नारायण की जैसी आज्ञा हो। यह कौन इन्हें ग्वाले के नाम से पुकारता है ? तीन डगों में त्रिभुवन को नापने वाले सचमुच यही नारायण हैं। आप सब इनकी शरण में आ जाओ। अच्छा, मैं जाता हूँ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अये एतद् भगवदायुधवरं शार्ङ्गं प्राप्तम् ।
तनुमृदुललिताङ्गं स्त्रीस्वभावोपपन्नं
हरिकरधृतमध्यं शत्रुसङ्घैककालः ।
कनकखचितपृष्ठं भाति कृष्णस्य पार्श्वे
नवसलिलदपार्श्वे चारुविद्युल्लतेव ॥ ४७ ॥

वक्तुमुपक्रमः—अये एतदित्यादिना । शार्ङ्गं = विष्णुचापम् ।

टिप्पणी—त्रिचरणाति०—त्रयश्च ते चरणः (कर्म०), त्रिचरणाः, तैः अतिक्रान्तं (तृ० त०), त्रिभुवनं (त्रयाणां भुवनानां समाहारः) (द्व०) येन सः । यावद् गच्छामि 'यावत्पुरानिपातयोर्लट्' इति (पा० सू० ३.३.४) लट् ।

अन्वयः—तनुमृदुललिताङ्गं स्त्रीस्वभावोपपन्नं हरिकरधृतमध्यं शत्रुसंघैककालः कनकखचितपृष्ठं (एतत् शार्ङ्गं) कृष्णस्य पार्श्वे नवसलिलदपार्श्वे चारुविद्युल्लता इव भाति ॥ ४७ ॥

संस्कृत टीका—तनुमृदुललिताङ्गं = कृशश्लक्ष्णकोमलावयवम्, अत एव, स्त्रीस्वभावोपपन्नं = स्त्रीस्वभावयुक्तम्, हरिकरधृतमध्यं = व्यापारसमयेषु कृष्णपाणिगृहीतमध्यम्, अर्थात् हरिकरेण विष्णुपाणिना धृतः गृहीतः मध्यः मध्यभागो यस्य तद्, विष्णुमुष्टिस्थितम् । शत्रुसङ्घैककालः = शत्रूणां सङ्घः तेषाम्, एकः प्रधानः कालः यमराजः, शत्रुसमूहस्य मुख्यो मृत्युः, तद्, कनकखचितपृष्ठं = कनकखचितं स्वर्णसंपृक्तं पृष्ठम् उपरिभागो यस्य तत्, एतेन विद्युल्लतासावर्ण्यं ध्वनितम् । (प्रकृतं शार्ङ्गं) कृष्णस्य = वासुदेवस्य,

---

अरे, यह भगवान् का श्रेष्ठ अस्त्र शार्ङ्ग आ पहुँचा ।

(यह अस्त्र) पतला, मृदु और सुन्दर शरीर वाला है । इसके मध्य भाग (कटि प्रदेश) पर भगवान् का हाथ रहता है; (अतः) ललना-सुलभ गुणों से युक्त है तो भी शत्रुदल के लिए यह एकमात्र काल के समान है । स्वर्णजटित पृष्ठ भाग वाला यह अस्त्र श्रीकृष्ण के समीप इस प्रकार शोभा पा रहा है जैसे नूतन जलद के निकट सुन्दर सौदामिनी शोभा पाती है ॥ ४७ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

भोः भोः ! शार्ङ्ग, प्रशान्तरोषो भगवान् नारायणः। गम्यतां स्वनिलयमेव। हन्त निवृत्तः। यावद् गच्छामि। अये इयं कौमोदकी प्राप्ता।

पार्श्वे=सन्निधौ; नवसलिलदपार्श्वे=नूतनमेघोपान्ते, चारु=मनोहरम्, विद्युल्लता इव=विद्युत् तडित् लतेव वल्लीव दीर्घप्रसृतत्वाद् विद्युल्लता (उपमित०); सेव, भाति=कृष्णस्य देहोपान्ते प्रकाशते। मालिनी वृत्तम् ॥ ४७ ।

टिप्पणी—तनुमृदु०—तनूनि सूक्ष्माणि मृदूनि कोमलानि ललितानि सुन्दराणि अङ्गानि अवयवाः यस्य (तत्) तनु च तद् च तद् मृदु (कर्म०) तनुमृदु च तत् ललितं (कर्म०), तनुमृदुललितम् अङ्गं यस्य तत् (बहु०)। स्त्रीस्वभावोपपन्नं—स्त्रीणां स्वभावः स्त्रीस्वभावः (ष० त०), तेन उपपन्नम्। हरिकरधृतमध्यं—हरेः करः [ष० त०], तेन धृतं मध्यं यस्य तत् (बहु०)। कनक०—कनकेन खचितं कनकखचितं (तृ० त०) कनकखचितं पृष्ठं यस्य तत् (बहु०)। शत्रुसङ्घैककालः—शत्रूणां संघः, (ष० त०) शत्रुसंघस्य एककालः [कर्म०] एकश्च असौ कालः एककालः [कर्म०]। नवसलिलद्पार्श्वे—नवः नूतनः सलिलदः [सलिलं ददातीति] जलदः, तस्य पार्श्वम् समीपम्, तस्मिन् ॥ ४७ ॥

संस्कृत टीका—भो भो इत्यादि। निवृत्तः=कृष्णान्तिकगमनोद्यमान्निवृत्त्ययं स्थित इत्यर्थः। पुंस्त्वं शार्ङ्गाभिमानिदेवाभिप्रायम्। 'निवृत्तम्' इति वा पाठः।

टिप्पणी—कौमीदकि—कोः पृथिव्याः पालकत्वात् मोदकः कौमोदकः विष्णुः तस्य इयं कौमोदकी [अण्]।

हे शार्ङ्ग ! भगवान् का क्रोध अब शान्त हो गया है। अतः तुम अपने स्थान को चले जाओ। अहा ! चला गया। अच्छा मै भी जाता हूँ।

अरे यह कौमोदकी आ गयी !

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मणिकनकविचित्रा चित्रमालोत्तरीया
सुररिपुगणगात्रध्वंसने जाततृष्णा
गिरिवरतटरूपा दुर्निवारातिवीर्या
व्रजति नभसि शीघ्रं मेघवृन्दानुयात्रा ॥ ४८ ॥

अन्वयः—मणिकनकविचित्रा चित्रमालोत्तरीया सुररिपुगणगात्रध्वंसने जाततृष्णा गिरिवरतटरूपा दुर्निवारातिवीर्या मेघवृन्दानुयात्रा [कौमोदकी] शीघ्रं नभसि व्रजति ॥ ४८ ॥

संस्कृत टीका—मणिकनकविचित्रा=मणिभिः रत्नैः कनकैः सुवर्णैश्च विचित्रा विभूषिता, रत्नैः स्वर्णैश्च अलङ्कारभूतैश्चित्रवर्णा, चित्रमोलोत्तरीया=चित्रा चित्रवर्णा माला पुष्पस्रग् उत्तरीयम् ऊर्ध्ववस्त्रं यस्याः सा, सुररिपुगणगात्रध्वंसने=सुररिपूणां दानवानां गणानां समूहानां गात्राणां शरीराणां ध्वंसने विनाशने, जाततृष्णा=जाता उत्पन्ना तृष्णा प्रबल अभिलाषो यस्याः सा, गिरिवरतटरूपा=गिरीणां वरः तस्य तटम् शृङ्गः इव रूपम् आकारः यस्याः सा, तथा च गिरिवरतटस्य पर्वतराजोत्सेधस्येव रूपम् आकृतिर्यस्याः सा, तादृशी, दुर्निवारा=अनिर्वतनीया, अतिवीर्या=अति महत् वीर्यं पराक्रमो यस्याः सा, अतिपराक्रमशालिनी, मेघवृन्दानुयात्रा=मेघवृन्दं जलदसमूहः अनुयात्रम् अनुगं यस्याः सा, जलदसमूहानुगा, [इयम्=कौमोदकी गदा], शीघ्रम्=झटिति, नभसि=गगने, व्रजति=गच्छति। मालिनी वृत्तम् ॥ ४८ ॥

टिप्पणी--मणिकनकविचित्रा—मणयश्च कनकं च मणिकनकानि [द्वन्द्व], तैः विचित्रा [तृ०त०]; (चित्रा इति विचित्रा-प्रादि०)। चित्र-

---

वह स्वर्ग और मणिमाणिक्यादि से खचित है। सुन्दर मालाओं का इसका उत्तरीय है। देवताओं के शत्रुदल के शरीरों को नष्टभ्रष्ट करने की तृष्णा इसे रहती है। यह गिरवर तट के समान (दृढ़) है इसके अनन्त बल का सामना करना अति कठिन है। यह आकाश से तेजी के साथ आ रही है—मेघ-माला इसका अनुसरण कर रही है ॥ ४८ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हे कौमोदकि ! प्रशान्तरोषो भगवान् नारायणः । हन्त निवृत्ता । यावद् गच्छामि । अये, अयं पाञ्चजन्यः प्राप्तः ।

पूर्णेन्दुकुन्दकुमुदोदरहारगौरो
नारायणाननसरोजकृतप्रसादः ।
यस्य स्वनं प्रलयसागरघोषतुल्यं
गर्भा निशम्य निपतन्त्यसुराङ्गनानाम् ॥ ४९ ॥

मालोत्तरीया—चित्रा चासौ माला चित्रमाला [कर्म०]; चित्रमाला उत्तरीयं यस्याः सा [बहु०] । सुररिपु०—सुराणां रिपवः सुररिपवः [ष० त०] तेषां गणः समूहः [ष० त०] तस्य गात्रस्य विनाशने । जाततृष्णा—जाता तृष्णा यस्या सा [बहु०] । दुर्निवारा०—दु.खेन निवारयितुं योग्यं दुर्निवारम् । अत एव अति वीर्यं यस्या सा; अप्रतिहतपराक्रमशालिनी ।

संस्कृत टीका—प्रशान्तरोषः=प्रशान्तः रोषो यस्य सः, पाञ्चजन्यः=विष्णुशङ्खः ।

टिप्पणी—पाञ्चजन्यः—पञ्चजने [दैत्यभेदे] भवः पाञ्चजन्यः, पञ्चजन+यञ् । [क] पञ्चजन एक दैत्य था । जिसकी अस्थि से भगवान् कृष्ण का शङ्ख बना था ।

अन्वयः—पूर्णेन्दुकुन्दकुमुदोदरहारगौरो नारायणाननसरोजकृतप्रसादः प्रलयसागरघोषतुल्यं यस्य स्वनं निशम्य असुराङ्गनानां गर्भाः निपतन्ति ॥ ४९ ॥

संस्कृत टीका—पूर्णेन्दुकुन्दकुमुदोदरहारगौरः—पूर्णश्चासौ इन्दुः पूर्णेन्दु-

---

हे कौमोदकि ! भगवान् का क्रोध शान्त हो गया है ।

अहा ! यह चली गयी । अच्छा, मैं भी जाता हूँ ।

अरे ! यह पाञ्चजन्य शंख आ पहुँचा !

पूर्णचन्द्र, कुन्द-कमल-कोष और (मुक्ता) माला के समान शुभ्र यह पाञ्चजन्य है जो भगवान् के मुखकमल के स्पर्श से अनुग्रह प्राप्त है, जिसका शब्द प्रलयसागर के घोर रव के तुल्य है जिसे सुनकर असुर-ललनाओं के गर्भ गिर जाते हैं ॥ ४९ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हे पाञ्चजन्य ! प्रशान्तरोषो भगवान् । गम्यताम् । हन्त निवृत्तः । अये नन्दकासिः प्राप्तः ।

वनिताविग्रहो युद्धे महासुरभयङ्करः ।
प्रयाति गगने शीघ्रं महोल्केव विभात्ययम् ॥ ५० ॥

श्च कुन्दश्च माध्यपुष्पश्च कुमुदोदरश्च कैरवाभ्यन्तरभागश्च हारश्च मुक्तामाला च इव गौरः शुभ्रः, पूर्णचन्द्रमाध्यकैरवोदरमुक्ताहारधवलः, नारायणाननसरोजकृतप्रसादः=नारायणस्य भगवतः विष्णोः आननसरोजेन मुखकमलेन कृतः विहितः प्रसादः अनुग्रहः यस्मिन् सः, श्रीकृष्णमुखपद्माध्मानानुगृहीतः, प्रलयसागरघोषतुल्यं=प्रलये प्रलयकाले सागरः समुद्रः, तस्य घोषः नादः, तेन तुल्यं समानं, यस्य=पाञ्चजन्यस्य, स्वनं=शब्दं, निशम्य=श्रुत्वा, असुराङ्गनानां=असुराणां दानवानां अङ्गनाः तासां दानवस्त्रीणाम्, गर्भाः=भ्रूणाः, निपतन्ति=स्रवन्ति । मालोपमालङ्कारः । वसन्ततिलकावृत्तम् ॥ ४९ ॥

टिप्पणी—पूर्णेन्दुकुन्द०—'माध्यं कुन्दम्' इत्यमरः । 'सिते कुमुदकैरवे' इत्यमरः ।

संस्कृत टीका --नन्दकासि=नन्दकाख्यः खड्गः ।

अन्वयः—युद्धे महासुरभयङ्करः वनिताविग्रहः अयं गगने शीघ्रं प्रयाति महा उल्का इव विभाति ॥ ५० ॥

संस्कृत टीका—युद्धे=संग्रामे, महासुरभयङ्करः=महासुराणां महाराक्षसानां भयं भीतिं करोतीति, तादृशः, महादैत्यभयकारी, वनिताविग्रहः=स्त्रीरूपः, अयं=एष नन्दकासिः, गगने=आकाशे, शीघ्रं=आशु, वेगेनेत्यर्थः,

---

हे पाञ्चजन्य ! भगवान् का क्रोध शान्त हो गया है, अतः अपने स्थान पर जाओ । अहा ! यह लौट गया ।

अरे, यह नन्दक नाम का खड्ग आ गया ।

इसका आकार तो स्त्री के समान है, पर संग्राम में बड़े-बड़े असुरों के लिए भी यह भयंकर है । यह इस समय आकाश में चल रहा है और महान् उल्का के समान मालूम पड़ता है ॥ ५० ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

हे नन्दक ! प्रशान्तरोषो भगवान् । गम्यताम् । हन्त निवृत्तः । यावद् गच्छामि । अये एतानि भगवदायुधवराणि ।

सोऽयं खड्गः खरांशोरपहसिततनुः स्वैः करैर्नन्दकाख्यः
सेयं कौमोदकी या सुररिपुकठिनोरःस्थलक्षोददक्षा ।
सैषा शार्ङ्गाभिधाना प्रलयघनरवज्यारवा चापयष्टिः
सोऽयं गम्भीरघोषः शशिकरविशदः शङ्खराट् पाञ्चजन्यः ॥५१॥

प्रयाति=व्रजति, महोल्केव=महती उल्का प्रज्ज्वलिताग्रं काष्ठम्, तदिव विभाति=शोभते । अनुष्टुप् छन्दः ॥ ५० ॥

टिप्पणी—वनिताविग्रहः—वनितायाः विग्रहः इव विग्रहः यस्य (उप० बहु०) । उल्का–उष्+क्; षस्य ल् ॥ ५० ॥

अन्वयः—स्वैः करैः खरांशोः अपहसिततनुः नन्दकाख्यः सोऽयं खड्गः, या सुररिपुकठिनोरःस्थलक्षोददक्षा सा इयं कौमोदकी प्रलयघनरवज्यारवा सा एषा शार्ङ्गाभिधाना चापयष्टिः । गम्भीरघोषः शशिकरविशदः सोऽयं पाञ्चजन्यः शङ्खराट् अस्ति ॥ ५१ ॥

संस्कृत टीका—एवं निवर्तितानि स्वान्तिके सम्भूय स्थितानि सर्वाणि भगवदायुधान्युद्दिश्याह—सोऽयमित्यादि । स्वैः=स्वकीयैः, करैः=रश्मिभिः, खरांशोः=सूर्यस्य, खराः तीक्ष्णाः अंशवः किरणा यस्य, तस्य, अपहसिततनुः=अपहसिता उपहासं प्रापिता तनुः यस्य सः,

---

हे नन्दक ! भगवान् का क्रोध शान्त हो गया है। अब आप अपने स्थान पर पधारिये । अहा ! यह लौट गया । अब मैं भी जाता हूँ । अरे, ये ही तो भगवान् के श्रेष्ठ आयुध हैं ।

नन्दक नाम का यही वह खड्ग है—जो अपनी किरणों से प्रचण्ड सूर्य की भी विडम्बना करता है । यही कौमोदकी गदा है जो देवताओं के शत्रुओं के कठोर उरस्थलों को विदीर्ण करने में दक्ष है । यही शार्ङ्ग नाम का धनु है—जिसकी डोरी का निर्घोष प्रलय के मेघों की प्रचण्ड गर्जना के समान है और यहीं शंखराज पाञ्चजन्य है जो चन्द्रकला के समान स्वच्छ है और जिसका घोष गंभीर है ॥ ५१ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हे शार्ङ्ग ! कौमोदकि ! पाञ्चजन्य !
दैत्यान्तकृन्नन्दक ! शत्रुवह्ने ! ।

तादृशः, तिरस्कृततैक्ष्ण्यः, नन्दकाख्यः = नन्दकनामा, सः = प्रसिद्धः, अयं = पुरोदृश्यमानः, खड्गः = असिः, या = गदा, सुररिपुकठिनोरःस्थलक्षोददक्षा = सुराणां देवानां रिपवः शत्रवः, तेषां कठिनानां उरःस्थलानां वक्षःस्थलानां क्षोदने भेदने विदारणे वा दक्षा कुशला, दानवपरुषवक्षःस्थलभञ्जनसमर्था, सा = पूर्वविज्ञाता एव, इयं = पुरोवर्तमाना, कौमोदकी = कौमोदकीनाम्नी गदा, प्रलयघनरवज्यारवा = प्रलये प्रलयकाले ये घनाः मेघाः तेषां रवः स्वनः इव ज्यायाः मौर्व्ज्याः रवः टङ्कृतिः यस्याः सा, सा = प्रसिद्धा, एषा = पुरोदृश्यमाना, शार्ङ्गाभिधाना = शार्ङ्गनाम्नी, चापयष्टिः = धनुर्दण्डः; 'चापरेखा' इति वा पाठः, चापेषु रेखा चापरेखा धनुःप्रधानं सा, गम्भीरघोषः = गम्भीरः गभीरः घोषः गर्जनं यस्य सः, शशिकरविशदः = शशिनः चन्द्रस्य कराः किरणाः इव विशदः समुज्ज्वलः, सोऽयं = सर्वजनविदितः एषः, पाञ्चजन्यः = एतन्नामकः शङ्खः, शङ्खराट् = शंखराजः, अस्तीति शेषः । उपमालङ्कारः । स्रग्धरा वृत्तम् ॥ ५१ ॥

टिप्पणी—खरांशोः—खराः अंशवः यस्य स खरांशुः, तस्य (बहु०) । अपहसिततनुः—अपहसिता तनुः येन (बहु०) । सुररिपु०—उरसः स्थलं उरःस्थलम्, कठिनम् उरस्थलं कठिनोरःस्थलम्, सुररिपूणां कठिनोरःस्थलम्, तस्य क्षोदे विनाशे दक्षा । प्रलयघन०—प्रलये घनाः प्रलयघनाः, तेषां, रवः इव ज्यारवः यस्याः सा (बहु०) । शार्ङ्गाभिधाना—शार्ङ्गम् अभिधानं नाम यस्याः सा (बहु०) । चापयष्टिः—चापस्य यष्टिः (ष० त०) । गम्भीरघोषः—गम्भीरः घोषो यस्य स (बहु०) । शशिकरविशदः—शशिनः करः शशिकरः, शशिकर इव विशदः (उप० स०) । शंखराट्—शङ्खानां राड् राजा इति (ष० त०) ॥ ५१ ॥

अन्वयः—हे शार्ङ्ग ! कौमोदकि ! पाञ्चजन्य ! दैत्यान्तकृन्नन्दक !

हे शार्ङ्ग ! हे कौमोदकि ! हे पाञ्चजन्य ! हे दैत्यों का संहार करने वाली अग्नि के समान नन्दक ! भगवान् कृष्ण का क्रोध दूर हो गया है; अतः आप

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रशान्तरोषो भगवान् मुरारिः
स्वस्थानमेवात्र हि गच्छ तावत् ॥ ५२ ॥

हन्त निवृत्ताः। यावद् गच्छामि। अये अत्युद्धूतो वायुः। अतितपत्यादित्यः। पर्वताः चलिताः। क्षुब्धाः सागराः। पतिताः वृक्षाः। भ्रान्ता मेघाः। प्रलीना वासुकिप्रभृतयो भुजङ्गेश्वराः। किन्नु खल्विदम्। अये अयं भगवतो वाहनो गरुडः प्राप्तः।

शत्रुवह्ने! अत्र हि भगवान् मुरारिः शान्तरोषः। स्वस्थानमेव तावद् गच्छ ॥ ५२ ॥

संस्कृत टीका—हे शार्ङ्ग!=हे धनुःश्रेष्ठ, कौमोदकि=विष्णोः गदे, पाञ्चजन्य!=विष्णोः शङ्ख!, दैत्यान्तकृत्=हे असुरनाशकर, नन्दक=नन्दकाख्य खड्ग, शत्रुवह्नेः=शत्रूणां तत्सम्बोधने, हे रिपुदाहक!, अत्र=अस्मिन् समये, भगवान्=षडैश्वर्यसम्पन्नः, मुरारिः=कृष्णः, प्रशान्तरोषः=प्रशान्तः दूरीभूतः रोषः क्रोधः यस्य तादृशः, जातः इति शेषः। तावद्=अतः स्वस्थानम्=स्वनिलयम्, एव=हि, गच्छ=व्रज। उपजाति वृत्तम् ॥ ५२ ॥

टिप्पणी—दैत्यान्तकृत—दितेः अपत्यं पुमान् दैत्यः; दिति+ण्य, दैत्यानां दानवानां अन्तः दैत्यान्तः (ष० त०) दैत्यान्तं करोतीति [उप०] कृत्—कृ+क्विप् ॥ ५२ ॥

संस्कृत टीका—हन्तेत्यादि। हन्त=इति हर्षे। अत्युद्धूतः=अतिशयेन उद्धूतः अत्युत्कम्पितः, अतितपति=अतिशयेन तपति, आदित्यः=सूर्यः। क्षुब्धाः=मर्यादामतिक्रमितुं प्रवृत्ताः। प्रलीनाः=प्रकर्षेण लीनाः, अदर्शनं गताः। इदं वातात्युत्कम्पनसूर्यातितपनादिकम्, किन्नु खल्विदम्=आज्ञातम्,

---

सब अपने-अपने स्थान को जाइये ॥ ५२ ॥

अहा! ये सब लौट गये। अब मैं जाता हूँ। प्रभंजन (वायु) तीव्र वेग से चलने लगा है। सूर्य अत्यन्त तप रहे हैं। पर्वत हिलने लग गये हैं। सागर क्षुब्ध हो उठे हैं। वृक्ष गिर रहे हैं। मेघ अस्त-व्यस्त हो रहे हैं। वासुकि आदि सर्पराज छिप गये हैं। यह भला क्या है? अरे!

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सुरासुराणां परिखेदलब्धं येनामृतं मातृविमोक्षणार्थम् ।
आच्छिन्नमासीद् द्विषतो मुरारेस्त्वामुद्वहामीति वरोऽपि दत्तः ॥५३॥

केन निमित्तेन सम्भूतमिति न ज्ञायत इत्यर्थः, अज्ञातार्थे किंशब्दः । अये = इति स्मरणे, तच्च निमित्तविषयम्, गरुडः = भगवतः वाहनः, प्राप्तः = सन्निहितः । एवञ्च भगवत्कैङ्कर्याय सन्निधास्यतो गरुडस्य सकोपगतिवेगो वाय्वतिकम्पादेर्निमित्तमिति फलितम् ।

टिप्पणी—उद्धूतः—उद् + धू + क्त ।

अन्वयः—येन सुरासुराणां परिखेदलब्धं अमृतं मातृविमोक्षणार्थं द्विषतः आच्छिन्नम् आसीत् त्वां उद्वहामि इति मुरारेः वरोऽपि दत्तः ॥ ५३ ॥

संस्कृत टीका—गरुडस्य प्रभावमाह—सुरेति । येन = गरुडेन, सुरासुराणां = देवदैत्यानाम्, परिखेदलब्धं = परितः खेदः, तेन लब्धम्, अतिपरिश्रमप्राप्तम्, परिखेदेन समुद्रमथनायासेन लब्धमिति भावः । अमृतं = सुधां, मातृविमोक्षणार्थं = मातुः विनतायाः विमोक्षणार्थं सपत्नीमातृकद्रूदास्यान्मोचनाय, द्विषतः = शत्रोरिन्द्रात्, आच्छिन्नम् = बलाद् गृहीतं, स्वायत्तीकृतं तद्धस्तादित्यर्थः, आसीत् = अभूत्, त्वाम् = भवन्तम्, उद्वहामि = वहनं करोमि, इति = इत्थम्, मुरारेः = उपेन्द्रस्य, वरोऽपि = ईप्सितार्थोऽपि, दत्तः = प्रदत्तः, आसीत्, 'त्वां विष्णुम् उद्वहामि' इति एवंरूपः वरः दत्तः, स गरुड इति पूर्वेणान्वयः । उपजातिवृत्तम् ॥ ५३ ॥

टिप्पणी—सुरासुराणां—सुराश्च असुराश्च, तेषाम् । मातृविमोक्षणार्थम्—मातुः विमोक्षणम्, तस्मै इति सुपर्णामुक्त्यर्थम् । परिखेदलब्धम्—परिखेदेन लब्धम् (तृ० त०) । आच्छिन्नम्—आ + छिद् + क्त । (क) अमृतहरणविष्णुवरदानकथा महाभारते आदिपर्वणि त्रयस्त्रिंशाध्यायेऽनुसन्धेया ।

यह भगवान् का वाहन श्रेष्ठ गरुड़ आ गया ।

जिस अमृत को देवासुरों ने बड़े श्रम से प्राप्त किया था उसे ही अपनी माता को छुड़ाने के लिए इन्होंने शत्रु [इन्द्र] से बरबस छीन लिया था । उस समय इन्होंने भगवान् को यह वर दिया था कि 'मैं आपको अपनी पीठ पर उठाया करूँगा' ॥ ५३ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हे काश्यपप्रियसुत ! गरुड ! प्रशान्तरोषो भगवान् देवदेवेशः। गम्यतां स्वनिलयमेव। हन्त निवृत्तः। यावद् गच्छामि।

एते [स्थिता वियति किन्नरयक्षसिद्धाः]
देवाश्च संभ्रमचलन्मुकुटोत्तमाङ्गाः।
रुष्टेऽच्युते विगतकान्तिगुणाः प्रशान्तं
श्रुत्वा श्रयन्ति सदनानि निवृत्ततापाः ॥ ५४ ॥

(ख) नागों एवं सर्पों की माँ कद्रू और गरुड की माँ विनता (सुपर्णा) थी। ये दोनों कश्यप ऋषि की पत्नी थीं। उच्चैःश्रवस् (इन्द्र के घोड़े) की पूँछ सफेद है या काली इस पर उन दोनों में शर्त लगी। अपनी माँ को जिताने के लिए सर्पों ने घोड़ों की पूँछ में लिपटकर उसे काली बना दिया। फलतः सुपर्णा को कद्रू की सेविका होकर रहना पड़ा। अमृत का घड़ा ले आने पर गरुड और उनकी माँ को उसकी दासता से मुक्ति मिल सकती थी। अतः अपनी माता विनता को सेविका के दुःख से मुक्त करने के लिए गरुड़ को अमृत लाने के प्रयत्न करने पड़े। स्वर्ग में अमृतकलश के चारो ओर अरा (पहिया) चल रहा था और दो सर्प उसकी रक्षा में सन्नद्ध थे। गरुड़ उन्हें टुकड़े-टुकड़े करके झपट्टा मारकर बीच से अमृतकलश उठाकर-ले चले। इसी बीच उनका इन्द्र से भी युद्ध हुआ। भगवान् विष्णु इन पर अत्यन्त प्रसन्न हुए क्योंकि उन्होंने उस अमृतकलश से एक बूँद भी अमृत नहीं पिया था। भगवान् ने उन्हें अजर अमर होने का तथा अपनी ध्वजा में रखने का वरदान दिया। गरुड़ ने भी भगवान् विष्णु को वर दिया कि 'मैं आपका वाहन होकर रहूँगा' ॥ ५३ ॥

अन्वयः—अच्युते रुष्टे (सति) विगतकान्तिगुणाः सम्भ्रमचलन्मुकुटोत्त-

---

हे कश्यप के प्रियपुत्र गरुड़ ! देवाधिदेव भगवान् का रोष शान्त हो गया है। इसीलिए आप अपने स्थान को जाइये। अहा ! वह चला गया। अब मैं भी जाता हूँ।

ये किन्नर, यक्ष और सिद्ध और देवगण आकाश में खड़े हैं। संभ्रम के कारण इनके मस्तकों के मुकुट हिल रहे हैं। यह सुनकर कि भगवान्

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

माङ्गाः एते किन्नर-यक्षसिद्धाः देवाश्च वियति स्थिताः (सम्प्रति) प्रशान्तं श्रुत्वा निवृत्ततापाः (सन्तः) सदनानि श्रयन्ति ॥ ५४ ॥

संस्कृत टीका—अच्युते = भगवति कृष्णे, रुष्टे — क्रोधाविष्टे, (सति), विगतकान्तिगुणाः = विगताः दूरीभूताः कान्तीनां छवीनां गुणाः येषां ते भगवद्रोषभयजनितादन्तस्तापान्निष्प्रभाः, सम्भ्रमचलन्मुकुटोत्तमाङ्गाः = सम्भ्रमेण भगवद्रूपदर्शनत्वरया चलन्मुकुटानि चलत्किरीटानि उत्तमाङ्गानि शिरांसि येषां ते, एते = इमे, किन्नरयक्षसिद्धाः = देवयोनिविशेषाः, देवाश्च = अमराः च, वियति = आकाशे, स्थिताः = वर्तमानाः, (सम्प्रति), प्रशान्तं = विगतरोषम्, श्रुत्वा = मद्वाक्यात् शार्ङ्गादीन् प्रति पूर्वं कथिताद् विज्ञायेत्यर्थः, निवृत्ततापाः = निवृत्तः विगतः तापः भीतिः येषां ते, तादृशाः, सुप्रसन्नाः, [सन्तः], सदनानि = स्वावासान्, श्रयन्ति = सेवन्ते । वसन्ततिलका छन्दः ॥ ५४ ॥

टिप्पणी—किन्नर०—किन्नराश्च यक्षाश्च सिद्धाश्च । 'पिशाचो गुह्यकः सिद्धो भूतोऽमी देवयोनयः । विद्याधराप्सरोयक्षरक्षोगन्धर्वकिन्नराः' इत्यमरः । अच्युते—स्वरूपसामार्थ्यात् न च्युतः, च्यवते वा अच्युतः [नञ् त०] । रुष्टे—रुष् + क्त, रुष्टः तस्मिन्, विगतकान्तिगुणाः—कान्तिश्च गुणाश्च कान्तिगुणाः (द्व०) विगताः कान्तिगुणाः येषां ते [बहु०] । सम्भ्रम०—चलन्ति च तानि मुकुटानि, चलन्मुकुटानि (कर्म०) उत्तमानि च तानि अङ्गानि उत्तमाङ्गानि (कर्म०) सम्भ्रमेण चलन्मुकुटानि उत्तमाङ्गानि येषां ते । वियति—वि + यम् + क्विप्—मलोपे तुक् = वियत्, तस्मिन् ॥ "इह प्रथमपादे तृतीयादीनामक्षराणां मातृकयोस्त्रुटितानां द्वादशानां स्थाने 'स्थिता' इत्यादीन्यक्षराण्यर्थानुगुण्यापेक्षयास्माभिः प्रतिनिहितानि"—इति गणपतिशास्त्रिणः ॥ ५४ ॥

क्रोधित हो गये हैं, इनके गुणों और कान्ति का ह्रास हो गया था परन्तु यह सुनकर कि भगवान् प्रशान्त हो गये, ये सब सन्ताप-रहित हो अपने-अपने निवासों को जा रहें हैं ॥ ५४ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यावदहमपि कान्तां मेरुगुहामेव यास्यामि ।

(निष्क्रान्तः)

वासुदेवः—यावदहमपि पाण्डवशिविरमेव यास्यामि ।

(नेपथ्ये)

न खलु न खलु गन्तव्यम् ।

वासुदेवः—अये वृद्धराजस्वर इव । भो राजन् ! एष स्थितोऽस्मि ।

(ततः प्रविशति धृतराष्ट्रः)

धृतराष्ट्रः—क्व नु खलु भगवान् नारायणः । क्व नु खलु भगवान् पाण्डवश्रेयस्करः । क्व नु खलु भगवान् विप्रप्रियः । क्व नु खलु भगवान् देवकीनन्दनः ।

संस्कृत टीका—यावदित्यादि । कान्ताम् = रम्याम् ।

अये इत्यादि । वृद्धराजस्वर इव = वृद्धो राजा धृतराष्ट्रः, तस्य स्वर इव । स्थितः = गमनान्निवृत्तः । 'न खलु' इत्यादिवाक्यं वृद्धराजेन व्याहृतमिति स्वरसंवादात् सम्भावयामिति विवेकः ।

क्व नु खल्वित्यादि । विप्रप्रियः = ब्राह्मणप्रियः, क्व नु, खल्वित्यसकृदुक्त्या भगवत्प्रसादनौत्सुक्यस्य पराकाष्ठा व्यज्यते ।

अब मैं भी अपनी सुन्दर मेरु-गुहा को जाता हूँ ।

(प्रस्थान)

वासुदेव—अब मैं भी पाण्डवों के शिविर को जाऊँगा ।।

(नपथ्य में)

नहीं, नहीं, महाराज आपको जाना नहीं चाहिये ।

वासुदेव—अरे यह तो बूढ़े महाराज का स्वर है । हे राजन् ! यह मैं ठहर गया ।

(इसके बाद धृतराष्ट्र का प्रवेश)

धृतराष्ट्र—भगवान् नारायण कहाँ है ? पाण्डवों का कल्याण करने वाले भगवान् कहाँ हैं ? ब्राह्मण-प्रिय भगवान् कहाँ हैं ? देवकी के सुत भगवान् कृष्ण कहाँ हैं ?

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मम पुत्रापराधात् तु शार्ङ्गपाणे ! तवाधुना ।
एतन्मे त्रिदशाध्यक्ष ! पादयोः पतितं शिरः ॥ ५५ ॥

(पतति)

वासुदेवः—हा धिक् ! पतितोऽत्रभवान् । उत्तिष्ठोत्तिष्ठ ।

धृतराष्ट्रः—अनुगृहीतोऽस्मि । भगवन् ! इदमर्घ्यं पाद्यं च प्रति

अन्वय—शार्ङ्गपाणे ! त्रिदशाध्यक्ष ! अधुना मम पुत्रापराधात् एतत् मे शिरः तव पादयोः पतितम् ॥ ५५ ॥

संस्कृत टीका—धृतराष्ट्रः भगवन्तं नारायणं प्रसादयति—मम पुत्रेत्यादिना । हे शार्ङ्गपाणे ! =शार्ङ्गं पाणौ यस्य स शार्ङ्गपाणिः, सम्बोधने, हे त्रिदशाध्यक्षः=हे देवेश ! अधुना=इदानीं, मम=धृतराष्ट्रस्य, पुत्रापराधात्=बन्धनोद्यमरूपः पुत्रस्यापराधः, तस्मात् दुर्योधनागसः, एतत् मे शिरः=मम मूर्धा, तव पादयोः=भवतः चरणयोः, पतितम्=प्राप्तम् । अत्र बन्धुवृद्धतया कृष्णं प्रति वन्द्यस्यापि धृतराष्ट्रस्य तत्पादयोः पतनं तस्मिन् सर्वलोकेश्वरत्वनिश्चयोदयान्नानुचितमिति विवेकः । अनुष्टुप् वृत्तम् ॥ ५५ ॥

टिप्पणी—त्रिदशाध्यक्ष—तिस्रः दशाः येषां ते त्रिदशाः देवाः । अधिगतः अक्षम् इन्द्रियं व्यवहारं वा [अव्य० स०] अध्यक्षः, त्रिदशानाम् अध्यक्षः त्रिदशाध्यक्ष, सम्बोधने ॥ ५५ ॥

संस्कृत टीका—हेत्यादि । हा धिक्=इति निन्दायाम्, पादपतनं गर्हितमित्यर्थः । बन्धुवृद्धताम्=अभिसमीक्ष्येत्यमुक्तिः ।

अन्वित्यादि । अनुगृहीतः=स्थित्वाभिभाषणेन कृतार्थितः । पाद्यं=

हे शार्ङ्गपाणि ! हे देवाधिदेव ! अपने पुत्र के अपराध के कारण मैं अपना सिर आपके चरणों पर रखता हूँ ॥ ५५ ॥

(गिर जाता है)

वासुदेव—शोक है ! आप (मेरे चरणों पर) गिर पड़े । उठिये, उठिये ।

धृतराष्ट्र—मैं आभारी हूँ । हे भगवान् ! आप इस अर्घ्य और पाद्य

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गृह्यताम् ।

वासुदेवः—सर्वं गृह्णामि । किं ते भूयः प्रियमुपहरामि ।

धृतराष्ट्रः—यदि मे भगवान् प्रसन्नः, किमतः परमिच्छामि ।

वासुदेवः—गच्छतु भवान् पुनर्दर्शनाय ।

धृतराष्ट्रः—यदाज्ञापयति भगवान् नारायणः ।

(निष्क्रान्तः)

पादप्रक्षालनार्थं तोयम् ।

सर्वमित्यादि । भूयः प्रियम्=बहुतरं प्रियम्, उपहरामि=करोमि । गच्छत्वित्यादि । पुनर्दर्शनरूपमीप्सितं फलमुद्दिश्य सम्प्रति गमनमभ्यनुजानामीत्यर्थः ।

यदित्यादि । यद् आज्ञापयति=यत् कर्तव्यत्वेनादिशति । तद् गमनमनुतिष्ठामीत्याशयः ।

टिप्पणी—अर्घ्यम्—अर्घ+देयार्थे यत् । पाद्यम्–पाद+यत् । प्रशस्तिः शुभशंसनम्' इत्युक्तलक्षणां प्रशस्तिं वक्ष्यन् तस्या अनुकार्यवाक्यत्वायोगादाह–भरतेति । भरतवाक्यम्=भरतस्य नटस्यानुकर्तुर्वाक्यं भरतवाक्यम् । प्रशस्तिमाह—इमामिति ।

को स्वीकार करें ।

वासुदेव—मैं सब कुछ स्वीकार करता हूँ । कहिये, मैं आपका क्या हित कर सकता हूँ ।

धृतराष्ट्र—यदि भगवान् मुझ पर प्रसन्न हैं तो इससे बढ़कर मुझे और क्या चाहिये ।

वासुदेव—अब आप पधारिये, फिर दर्शन दीजियेगा ।

धृतराष्ट्र—भगवान् की जैसी आज्ञा ।

(प्रस्थान)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(भरतवाक्यम्)

इमां सागरपर्यन्तां हिमवद्विन्ध्यकुण्डलाम् ।
महीमेकातपत्राङ्कां राजसिंहः प्रशास्तु नः ॥ ५६ ॥

अन्वयः—नः राजसिंह सागरपर्यन्तां हिमवद्विन्ध्यकुण्डलाम् एकातपत्राङ्काम् इमां महीं प्रशास्तु ॥ ५६ ॥

संस्कृत टीका—न=अस्माकं, राजसिंहः=राजा सिंह इव, शौर्यधैर्यादियोगाद् राजसिंहः, सिंहसदृशपराक्रमी राजा, सागरपर्यन्तां=सागराः समुद्राः पर्यन्ताः अन्तिमाः सीमाः यस्याः सा ताम्, हिमवद्विन्ध्यकुण्डलाम्=हिमवान् हिमालयपर्वतः विन्ध्यः विन्ध्याचलश्च इति हिमवद्विन्ध्यौ तौ एव कुण्डले कर्णकुण्डलस्थापन्नौ यस्याः सा ताम्, आर्यावर्तस्य उत्तरदक्षिणसीमभूतौ पर्वतविशेषौ कुण्डले शोभाकरत्वात् कुण्डलस्थानीयौ यस्यास्ताम् । एकातपत्राङ्काम्=एकम् अद्वितीयम् आतपत्रं छत्रम् अङ्कः चिह्नं यस्या सा ताम्, एकः अधिपत्येकत्वाद् एक एव, न त्वनेकः आतपत्राङ्कः श्वेतच्छत्ररूपमधिपतिचिह्नं यस्यास्तां तथाभूताम्, इमाम्=दृश्यमानाम्, महीम्=पृथिवीम्, प्रशास्तु=प्रशासनं करोतु, अधिकरोतु एकाधिपतिविशिष्टत्वाकारेण शासनविषयीकरोतु । अस्माकं राजा समग्राया भारतभुवोऽप्रतिमो भर्ता स्यादिति भावः । अनुष्टुप् छन्दः ॥ ५६ ॥

भावार्थ—इयं पृथ्वी यस्याः पूर्वस्यां पश्चिमायां च दिशि समुद्रो विराजते, तथा यस्याः उत्तरस्यां दिशि हिमालयः, दक्षिणस्यां च दिशि विन्ध्याचलः कर्णकुण्डलरूपेण शोभते—राजाधिराजेन एकच्छत्राधिपेन प्रशासिता भवतु । अस्माकं राजा भूमेरस्याः कृत्स्नायाः सार्वभौमो भूयादिति श्लोकपरमार्थः ॥ ५६ ॥

टिप्पणी—एकातपत्राङ्काम्—आतपात् त्रायते इति आतपत्रम् (पं०

(भरत वाक्य)

हमारे राजसिंह इस सागर-मेखलित पृथ्वी पर शासन करें जो एकच्छत्र राज्य वाली है तथा हिमालय और विन्ध्याचल जिसके कुण्डल हैं ॥ ५६ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(निष्क्रान्ताः सर्वे)

॥ दूतवाक्यं समाप्तम् ॥

——०——

त०), एकम् आतपत्रम् (कर्म०), एकातपत्रम् अङ्कः यस्याः सा, ताम् (बहु०) । राजसिंहः—राजा सिंह इव (उप० समास) । 'सिंहशार्दूलनागाद्याः पुंसि श्रेष्ठार्थं वाचकाः'—इत्यमरः । प्रशास्तु—प्र + शास् + लोट् (आशिषि) ॥ ५६ ॥

नटराजं नमस्कृत्य देवीं च भरतं तथा ।
भागीरथ्यास्तटे काश्यां लंकाक्षेत्रे सुशोभने ॥ १ ॥
श्रीमद्रामकुबेरस्य मालवीयस्य सूनुना ।
सुधाकरेण रचिता व्याख्या ज्योत्स्ना समन्विता ॥ २ ॥

॥ इति डा० सुधाकरमालवीयकृतायां दूतवाक्यस्य 'ज्योत्स्ना' व्याख्यायां प्रथमोऽङ्कः ॥

॥ समाप्तमिदं दूतवाक्य नाम नाटकम् ॥

——*——

(सभी का प्रस्थान)

॥ दूतवाक्य समाप्त ॥

॥ इस प्रकार महाकवि पं० रामकुबेर मालवीय के आत्मज डा० सुधाकर मालवीय कृत दूतवाक्य नाटक की 'सरला' हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई ॥

——०——

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

परिशिष्ट–१

श्लोकानुक्रमणिका

प्रतीकानि	श्लोक संख्या	प्रतिकानि	श्लोक संख्या
अक्षान् क्षिपन्	१२	ननुमृदुल	४७
अनुभूतं महद्	२०	दातुमर्हसि	३४
अवध्यां प्रमदां	३६	दुःशासनपरा	७
अव्यक्तादि	४३	दुष्टवादी गुण०	१६
अहमवधृत	३७	देवात्मजैर्मनुष्याणां	३०
आवासाः पार्थिवानाम्	१५	धर्मात्मजो	१९
इमां सागर०	५६	ननु त्वं चित्र०	३३
उत्पन्ने धार्तराष्ट्राणाम्	२	नीचोऽहमेव	११
उत्साहेन मतिम्	१७	वादः पायात्	१
उद्धूतरोष	४	पुण्यसंचय	१५
एते स्थिता वियति	५४	पूर्णेन्दुकुन्द०	४९
एवं परस्पर०	२३	प्रसाद्यमानः	३१
करितुरगनिहन्ता	३९	प्रहरति यदि	३५
कर्तव्यो भ्रातृषु	२९	प्रातः किलाद्य	१३
किं मेरुमन्दर०	४४	मणिकनक०	४८
कृतपरिकरबन्धो	१०	मत्कात्मुंकोदर०	४१
कृत्वा पुत्रविवोगाद्वां	२७	मम पुत्रापराधाद्	५५
कृष्णापराभव	१४	महीभारापनयनम्	४६
कैरातं वपु	३२	यदि लवणजलम्	४५
ग्रहणमुपगते	६	राज्यं नाम	२४
जमातृनाश	२८	रोषाकुलाक्षः	९

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रतीकानि	श्लोक संख्या	प्रतीकानि	श्लोक संख्या
वनिताविग्रहो	५०	सुयोधनोऽयं	१८
वने पितृव्यो	२१	सुरासुराणां	५३
विचित्रवीर्यो	२२	सृजसि यदि	४०
षठ बान्धव	३८	सेनानिनाद	५
श्यामो युवा	३	सोऽयं खड्गः	५१
श्रुत्वा गिरं	४२	स्यालं तव	२६
सत्यधर्मघृणा	८	हे शार्ङ्ग ! कौमोदकि !	३२

—*—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

दूतवाक्य के श्लोकों की छन्दःयोजना

छन्द का नाम	अक्षर संख्या	श्लोकाङ्क	योग	लक्षण
अनुष्टुप् (श्लोक)	८	१, २, ७, ८, १६, १७, २०, २१-२७; २९-३१, ३३, ३४, ३६, ३८, ४३, ४६, ५०, ५५, ५६,	२२	श्लोके षष्ठं गुरु ज्ञेयं सर्वत्र लघु पञ्चमम् । द्विचतुष्पादयोर्ह्रस्वं सप्तमं दीर्घमन्ययोः ॥
उपजाति	११	९, १८, १९, २२, २८, ५२, ५३	७	स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः । इत्यनयोरुपजातिः उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ ।
पुष्पिताग्रा	१२/१३	६, ३७	२	अयुजि नयुगरेफतो यकारो युजि च नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा ।
वंशस्थ	१२	२१	१	जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ ।
वसन्ततिलका	१४	३-५, ११-१४, २३, ४१, ४२, ४४, ४९, ५४	१३	ज्ञेया वसन्ततिलकातभजा जगौ गः ।
मालिनी	१५	१०, ३५, ३९, ४०, ४५, ४७, ४८	७	ननमयुतेयं मालिनी भोगिलोकैः ।
शार्दूलविक्रीडितम्	१९	२४, ३२	२	सूर्याश्वैर्यदि मः सजौ सततगाः शार्दूलविक्रीडितम् ।
सुवदना	२०	१५	१	ज्ञेया सप्ताश्वषड्भिर्मरभनययुता म्लौ गः सुवदना ।
स्रग्धरा	५१	५१	१	म्रम्नैर्यानान्त्रयेण त्रिमुनि यति युता
			५६	स्रग्धरा कीर्तितेयम् ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

परिशिष्ट–३

सुभाषित–संग्रहः

१—आः ! मनुष्याणामस्त्येव संभ्रमः । [पृ० १३]

२—अलमलं बन्धुजने परुषमभिधातुम् । [पृ० ३०]

३—कर्तव्यो भ्रातृषु स्नेहो विस्मर्तव्या गुणेतराः ।
सम्बन्धो बन्धुभिः श्रेयान् लोकयोरुभयोरपि ॥ २९ ॥

४—को नाम लोके स्वयमात्मदोषमुद्घाटयेन्नष्टघृणः सभासु ॥ १८ ॥

५—देशकालावस्थापेक्षि खलु शौर्यं नयानुगामिनाम् [पृ० ३२]

६—द्यूताधिकारमवमानममृष्यमाणाः ।
सत्त्वाधिकेषु वचनीयपराक्रमाः स्युः ॥ ११ ॥

७—पुण्यसञ्चयसम्प्राप्तामधिगम्य नृपश्रियम् ।
वञ्चयेद् यः सुहृद्बन्धून् स भवेद्विफलश्रमः ॥ २५ ॥

८—राज्यं नाम नृपात्मजैः सहृदयैर्जित्वा रिपून् भुज्यते ।
तल्लोके न हि याच्यते न तु पुनर्दीनाय वा दीयते ॥ २४ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चौखम्बा अमरभारती ग्रन्थमाला

३८

भासनाटकचक्रे

दूतघटोत्कचम्

'कल्याणी' संस्कृत-हिन्दी-व्याख्योपेतम्

व्याख्याकारः—

पण्डित रामनाथत्रिपाठी शास्त्री

चौखम्बा अमरभारती प्रकाशन

वाराणसी

१९७९

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रकाशक : चौखम्बा अमरभारती प्रकाशन, वाराणसी

मुद्रक : चौखम्बा प्रेस, वाराणसी

संस्करण : प्रथम, वि० सं० २०३६

मूल्य : ३-००

© चौखम्बा अमरभारती प्रकाशन

के० ३७/११८, गोपाल मन्दिर लेन

पो० बा० १३८, वाराणसी-२२१००१ (भारत)

अपरं च प्राप्तिस्थानम्

चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस

के० ३७/९९, गोपाल मन्दिर लेन

पो० बा० ८, वाराणसी-२२१००१ (भारत)

फोन : ६३१४५

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

CHAUKHAMBA AMARABHARATI GRANTHAMALA
38

DŪTAGHATOTCACH

OF

MAHĀKAVI BHĀSA

Edited With

'Kalyani' Sanskrit-Hindi Commentaries

BY

Pt. RAMANATH TRIPATHI SHASTRI

Chaukhamba Amarabharati Prakashan

VARANASI–221001
1979

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

© Chaukhamba Amarabharati Prakashan

Oriental Publishers & Book–Sellers

Post Box No. 138

K. 37/118, Gopal Mandir Lane, Varanasi–221001

(INDIA)

First Edition

1979

Price Rs. 3–00

Also can be had from

Chowkhamba Sanskrit Series Office

K. 37/99, Gopal Mandir Lane

Post Box 8, Varanasi–221001 (India)

Phone : 63145

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दो शब्द

महाकवि भास कृत 'दूतघटोत्कच' एकाङ्की नाटक का 'कल्याणी' संस्कृत-हिन्दी व्याख्योपेत अभिनव संस्करण पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करते हुए अपार हर्ष हो रहा है। इस संस्करण की अपनी विशिष्टता है—

(१) आरम्भ में वृहद् भूमिका की योजना कर कवि और उसकी कृति के विषय में सभी ज्ञातव्य बातों पर सरल और सुबोध हिन्दी में विस्तार से प्रकाश डाला गया है। (२) संस्कृत-व्याख्या को ऐसी सरलतम और विशद शैली में प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है जिससे सामान्य पाठक भी सरलता से लाभान्वित होसकें। (३) गद्य-पद्य सभी भागों का अर्थ हिन्दी में भली-भाँति स्पष्ट कर दिया गया है। (४) यथास्थान आवश्यक शब्दों का व्याकरण-सम्बन्धी विवेचन भी कर दिया गया है। (५) प्रसङ्ग-वश आये हुए अलङ्कारों, छन्दों एवम् अन्तर्गत कथाओं पर पूर्ण प्रकाश डाला गया है। (६) अन्त में 'हिन्दी नोट्स', छन्दों, अलंकारों, अपाणिनीय प्रयोगों तथा सुभाषितों एवं पद्यों की वर्णानुक्रम सूची भी 'परिशिष्ट' में प्रस्तुत कर दी गयी है।

इस प्रकार इस संस्करण को सर्वाङ्गपूर्ण बनाने का प्रयास किया गया है। यदि इनसे पाठकों को तनिक भी सन्तोष हुआ, तो वही मुझे कृत-कृत्य करने के लिए पर्याप्त होगा।

उन सभी पूज्य विद्वानों के समक्ष नतमस्तक हो अपना आभार प्रकट करता हूँ जिनकी कृतियों से मुझे अपने लक्ष्य तक पहुँचने में सहायता मिली है। चौखम्बा अमरभारती प्रकाशन संस्थान के कर्मठ संचालक महोदय तथा उनके कर्त्तव्यनिष्ठ सहयोगी जन धन्यवाद के पात्र हैं जिनके प्रशंसनीय सहयोग से यह संस्करण पाठकों के कर-कमलों में पहुँच सका है।

अन्त में अज्ञानवश अथवा प्रमाद-वश हुई त्रुटियों एवं प्रूफ-सम्बन्धी अशुद्धियों के लिए क्षमा-याचना करता हूँ। इति—

दीपावली
वि० संवत् २०३६

विद्वद्विनेयः—
रामनाथ त्रिपाठी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भूमिका

महाकवि भास

महाकवि भास संस्कृत साहित्य के प्रख्यात एवं लब्धप्रतिष्ठ कवियों में से हैं। कविकुलगुरु कालिदास ने 'मालविकाग्निमित्र' नाटक में सूत्रधार के मुख से प्रश्न कराया है कि प्रथितयश वाले भास, सौमिल्ल, कविपुत्र आदि कवियों की कृतियों का अतिक्रमण कर, वर्तमान कवि कालिदास की कृति का इतना अधिक सम्मान क्यों किया जा रहा है ?[1] इस कथन से स्पष्ट प्रतीत होता है कि कालिदास के समय में महाकवि भास अत्यन्त प्रसिद्ध थे और उनके नाटकों को अत्यधिक लोकप्रियता प्राप्त थी। हर्ष के सभा-पण्डित बाणभट्ट ने 'हर्षचरित' में भास के नाटकों की प्रशंसा करते हुए कहा है कि भास ने सूत्रधार से आरम्भ किये गये, बहुत भूमिका वाले तथा पताका (१—नाटकीय व्यंग्य 'पताका स्थान' २—ध्वजा) से युक्त देवकुलों के तुल्य अपने नाटकों से अच्छा यश प्राप्त किया।[2] यहाँ यह अवधेय है कि संस्कृत के नाटक सामान्यतया नान्दी से प्रारम्भ होते हैं किन्तु भास के नाटक सूत्रधार से प्रारम्भ होते हैं और उनमें नान्दी का सर्वथा अभाव रहता है। वाक्पतिराज ने अपने 'गउडवहो' नामक प्राकृत महाकाव्य में भास को 'जलणमित्ते'—ज्वलनमित्र (अग्नि का मित्र) कहा है।[3] भास ने वासवदत्ता के अग्नि में जल जाने की झूठी खबर फैलाकर नाटकीय वस्तु-विकास का उपयुक्त अवसर निकाला है। अतः बहुत सम्भव है इसी से भास को 'ज्वलनमित्र कहा गया है। राजशेखर ने अपनी 'काव्य-

---

१. 'प्रथितयशसां भाससौमिल्लकविपुत्रादीनां प्रबन्धानतिक्रम्य कथं वर्तमानस्य कवेः कालिदासस्य कृतौ बहुमानः।'—मालविकाग्निमित्र

२. सूत्रधारकृतारम्भैर्नाटकैर्बहुभूमिकैः।
सपताकैर्यशोलेभे भासे देवकुलैरिव ॥—हर्षचरित।

३. भासम्मि जलणमित्ते कन्तीदेवे तहावि रहुआरे।
सो बन्धवे अ बन्धम्मि हारि अन्दे अ आणन्दो ॥—गउडवहो।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मीमांसा' में भास के नाटकों की अग्निपरीक्षा तथा 'स्वप्नवासवदत्त' को सर्वोत्कृष्ट स्वीकार किया है।[1] नाटककार जयदेव ने 'प्रसन्नराघव' में भास को कविता कामिनी का हास कहा है।[2] भास के नाटकों में हास्य के उद्धत और सुकुमार दोनों रूपों की सफल संघटना हुई है अतः जयदेव का कथन अमूलक नहीं है।

इस प्रकार हम देखते हैं प्राचीन काल में संस्कृत साहित्य में भास का बड़ा गौरवपूर्ण स्थान था। इधर जब १९१२ ई० में महामहोपाध्याय गणपति शास्त्री द्वारा भास के तेरह नाटक प्रकाशित किये गये तब से भास के विषय में सर्वाङ्गीण गवेषणा का क्रम ही चल पड़ा, तत्परिणामस्वरूप उनके नाटकों की रचना-पद्धति, भाषाशैली एवं रसवत्ता को देखते हुए आधुनिक साहित्य-समीक्षकों और सहृदयों ने बड़े आदर से उनको प्रसिद्ध नाटककार के गौरवपूर्ण पद पर पुनः प्रतिष्ठित कर दिया।

भास का नाटकचक्र

महाकवि भास के रूपकों की संख्या तेरह है। उनके नाम हैं—

१—प्रतिज्ञा यौगन्धरायण, २—अविमारक, ३—स्वप्नवासवदत्त, ४—प्रतिमानाटक, ५ – अभिषेक, ६—मध्यमव्यायोग, ७—पञ्चरात्र, ८—दूतवाक्य ९—दूतघटोत्कच, १०—कर्णभार, ११—ऊरुभङ्ग, १२—बालचरित, १३—चारुदत्त।

भास की उक्त कृतियों को विषय की दृष्टि से पाँच भागों में बाँट सकते हैं—

१—रामायण पर आधारित—प्रतिमानाटक और अभिषेक।

२—महाभारत पर आधारित—मध्यमव्यायोग, पञ्चरात्र, दूतघटोत्कच, कर्णभार, ऊरुभङ्ग और दूतवाक्य।

---

१. भासनाटकचक्रेऽस्मिञ्छेकैः क्षिप्ते परीक्षितुम्।
स्वप्नवासवदत्तस्य दाहकोऽभून्न पावकः॥—काव्यमीमांसा।

२. यस्याश्चोरश्चिकुरनिकरः कर्णपूरो मयूरो
भासो हासः कविकुलगुरुः कालिदासो विलासः।
हर्षो हर्षो हृदयवसतिः पञ्चबाणस्तु बाणः
केषां नैषा भवतु कविताकामिनी कौतुकाय॥—प्रसन्नराघव।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

३—वृहत्कथा पर आधारित—प्रतिज्ञायौगन्धरायण, स्वप्नवासवदत्त और अविमारक।

४—कृष्णकथा पर आधारित—बालचरित।

५—लोकप्रचलित कथा पर आधारित—चारुदत्त।

१९४१ ई० में गोण्डल निवासी राज वैद्य जीवराम कालिदास शास्त्री ने 'यज्ञफल' नामक एक रूपक प्रकाशित किया है जो रायायण पर आधारित है, कुछ लोग उसे भी भासकृत मानते हैं। किन्तु प्रोफेसर झाला का कथन है कि यद्यपि 'यज्ञफल' अन्य भासीय नाटकों की तरह ही प्रारम्भ और समाप्त होता है पर इसमें बहुत सी नवीन बातें हैं जो भास के समय में नहीं थीं। राम धनुर्भङ्ग से पूर्व प्रेमदार्ढ्य के लिए सीता से उद्यान में मिलते हैं, राम को भी दुष्यन्त की तरह शंका होती है कि सीता कहीं ब्रह्मर्षि की पुत्री तो नहीं, विश्वामित्र नगर और ग्राम्य जीवन की तुलना कर ग्राम्य जीवन को श्रेष्ठ बताते हैं आदि। अतः अधिक सम्भव यही होता है कि 'यज्ञफल' भासीय नाटकों के अनुकरण पर किसी अन्य परवर्ती नाटककार की रचना है।

भास नाटक चक्र का एक कर्तृत्व

उपर्युक्त सभी नाटकों का सूक्ष्म विश्लेषण करने पर इनमें हमें कुछ ऐसी आश्चर्यजनक समानताएं प्राप्त होती हैं जिनके बल पर निश्चित रूप से मानना पड़ता है कि ये सभी नाटक किसी एक ही कवि की कृति हैं। जैसे—

१—ये सभी नाटक 'नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः' वाक्य से प्रारम्भ होते हैं।

२—इन नाटकों में कहीं भी उनके रचयिता का नाम तथा परिचय नहीं मिलता है।

३—प्रायः सभी नाटकों में 'प्रस्तावना' के स्थान पर 'स्थापना' शब्द का प्रयोग मिलता है। केवल 'कर्णभार' में 'प्रस्तावना' शब्द का प्रयोग हुआ है।

४—इनमें से अधिकांश नाटकों में एक सा ही 'भरतवाक्य' मिलता है। स्वप्नवासवदत्त, दूत वाक्य और बालचरित में 'इमां सागरपर्यन्तां हिमवद्विन्ध्यकुण्डलाम्। महीमेकातपत्राङ्कां राजसिंहः प्रशास्तु नः ॥'–इस

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रकार का भरत वाक्य है। शेष नाटकों के भरत वाक्य में भी प्रायः 'राजसिंहः प्रशास्तु नः' इस वाक्य का प्रयोग अवश्य मिलता है।

५—इन सभी नाटकों की भाषा तथा शैली में अद्भुत समानता पायी जाती है।

६—इन नाटकों में भरत-प्रतिपादित नाट्यनियमों का कठोरता से पालन नहीं किया गया है। मृत्यु, युद्ध आदि का रंगमञ्च पर प्रदर्शन किया गया है तथा अभिषेक, पूजा, शपथ अथवा अश्रु-प्रक्षालन के लिये जल रङ्गमञ्च पर लाया है। इसी प्रकार शयन, क्रीडा तथा दूराह्वान की भी योजना रंगमंच पर ही की गयी है।

७—इन नाटकों में कुछ शब्दों का प्रयोग उनके प्रचलित अर्थों से भिन्न अर्थ में किया गया है। जैसे—आर्यपुत्र शब्द का प्रयोग अनेकत्र ऐसे अर्थों में हुआ है जिसका विधान नाट्य शास्त्र में नहीं है।

८—इन सभी नाटकों में 'आकाशभाषित' की योजना प्रायः मिलती है।

९—इनमें से कई नाटकों में छोटे-छोटे पात्रों के नामों में अभिन्नता पायी जाती है। जैसे—प्रतिज्ञा यौगन्धरायण और दूतवाक्य इन दोनों नाटकों में कञ्चुकी का नाम बादरायण है। इसी प्रकार स्वप्नवासवदत्त, प्रतिमानाटक, प्रतिज्ञा यौगन्धरायण और अभिषेक इन चारों नाटकों में प्रतिहारी का नाम विजया है।

१०—प्रायः सभी नाटकों में नाट्यनिर्देश की न्यूनता समान रूप से मिलती है। जो नाट्यनिर्देश दिये भी गये हैं उनमें दो- दो, तीन-तीन निर्देश एक साथ हैं। जैसे—'निष्क्रम्य पुनः प्रविश्य'।

११—इन सभी नाटकों के नामों का उल्लेख तत्तन्नाटकों के अन्त में ही किया गया है, अन्यत्र नहीं।

१२—अधिकांश नाटकों में 'पताका स्थान' और 'मुद्रालङ्कार' का एक समान प्रयोग किया गया है।

१३—इन नाटकों में पाणिनीय व्याकरण के नियमों का कड़ाई से पालन नहीं किया गया है, अतः अनेकत्र अपाणिनीय प्रयोग मिलते हैं।

१४—इन सभी नाटकों में समान भावना, समान दृश्यों की अवतारणा,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

समान शब्दों और समान वाक्यों की उपलब्धि एवं समान वर्णन-पद्धति द्रष्टव्य है !

उपर्युक्त समानताओं के आधार पर यह स्पष्ट सिद्ध है कि इन नाटकों का प्रणेता कोई एक ही व्यक्ति था। इन नाटकों में से स्वप्नवासवदत्त की रचना भास द्वारा हुई, इसमें राजशेखर का पूर्वोक्त साक्ष्य उपलब्ध है। इसके अतिरिक्त आचार्य अभिनव गुप्त ने भी 'अभिनव भारती' में स्वप्नवासवदत्त का उल्लेख किया है।[1] फलतः अन्य नाटकों को भी भासकृत माना गया है जो पूर्वोक्त समानताओं के आधार पर नितान्त युक्त है।

भास का समय

कालिदास ने अपने नाटक 'मालविकाग्नि मित्र' में भास को आदर पूर्वक स्मरण किया है, अतः स्पष्ट सिद्ध है कि भास कालिदास से प्राचीन थे। कुछ लोग कालिदास का समय ४०० ई० बताते हैं तदनुसार भास ४०० ई० से पूर्व के सिद्ध होते हैं। कुछ विद्वान् कालिदास का समय ईसा की प्रथम शताब्दी निश्चित करते हैं, उस आधार पर भास ईसा की प्रथम शताब्दी से प्राचीन ठहरते हैं। चाणक्य ने अपने अर्थशास्त्र नामक ग्रन्थ में 'अपीह श्लोकौ भवतः' कह कर दो श्लोक उद्धृत किये हैं, इनमें दूसरा श्लोक 'प्रतिज्ञा यौगन्धरायण' में मिलता है। जो इस प्रकार है—

नवं शरावं सलिलैः सुपूर्णं सुसंस्कृतं दर्भकृतोत्तरीयम्।
तत्तस्य मा भून्नरकं स गच्छेद् यो भर्तृपिण्डस्य कृते न युध्येत्॥

चाणक्य ने उक्त श्लोक को अवश्य ही भास से लिया होगा। यदि किसी स्मृति का होता तो अवश्य ही 'इति स्मृतौ' लिखते। इतिहासकार चाणक्य का समय ई० पू० ४०० मानते हैं अतः भास इससे प्राचीन ठहरते हैं।

भास के प्रतिमानाटक में बृहस्पति कृत अर्थशास्त्र में रावण की दक्षता का उल्लेख हुआ है।[2] बार्हस्पत्य अर्थशास्त्र चाणक्य से बहुत पहले का है। यदि भास चाणक्य के बाद होते तो उसके अर्थशास्त्र का उल्लेख

१. क्वचित्क्रीडा—यथा वासवदत्तायाम्।
२. भोः कश्यप गोत्रोऽस्मि, साङ्गवेदमधीये.....बार्हस्पत्यमर्थशास्त्रं।...

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अवश्य करते। भास के नाटकों में पाये जाने वाले अपाणिनीय प्रयोगों से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि पाणिनि के सर्वमान्य होने से पूर्व ही भास के नाटकों की रचना हो चुकी थी। भास के नाटकों से प्रतिभासित होनेवाली सामाजिक दशा मौर्यकालीन सामाजिक दशा से मिलती-जुलती है। उक्त प्रमाणों के आधार पर भास का समय ई० पू० पाँचवीं शताब्दी निश्चित होता है श्री टी० गणपति शास्त्री जी ने अनेक प्रबल प्रमाणों से यह प्रमाणित किया है कि महाकवि भास ई० पू० चौथी शताब्दी में हुए थे। यही मत प्रायः विद्वानों को मान्य है।

भास का जीवनवृत्त

भास के नाटकों से यह स्पष्ट आभास मिलता हैं कि वे ब्राह्मण थे। भास ने ब्राह्मणों के प्रति जो श्रद्धा दिखायी है[1], समाज-व्यवस्था के प्रति उनका जो आग्रह दिखायी देता है उससे यही प्रतीत होता है कि भास ब्राह्मण और वर्णाश्रमधर्म के पक्षपाती थे। देवता और यज्ञ में उनकी आस्था थी। भास के नाटकों में प्रयुक्त 'इमां सागरपर्यन्तां हिमवद्विन्ध्यकुण्डलाम्। महीमेकातपत्राङ्कां राजसिंहः प्रशास्तु नः॥'—भरतवाक्य बताता है कि भास दक्षिण भारत के नहीं, उत्तर भारत के निवासी थे। उनकी धरती की सीमा उत्तर में हिमालय और दक्षिण में विन्ध्यपर्वत तक है। इसी सीमा के बीच कहीं न कहीं उनका स्थान रहा होगा। इनके नाटकों में उत्तर भारत के देशों का अधिक वर्णन है।

भास किसी राजा के राजपंडित अवश्य रहे होंगे। उन्होंने अपने राजा के लिए राजसिंह शब्द का प्रयोग किया है किन्तु निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि यह शब्द उनके राजा का विशेषण है या उसकी संज्ञा है। भास राजघरानों तथा राजकीय जीवन से सुपरिचित थे। वे संयुक्त परिवारप्रथा के पक्षपाती, हास्यप्रिय किन्तु गुरुजनों का समादर करनेवाले नम्रप्रकृति के

---

१. द्विजोत्तमाः पूज्यतमाः पृथिव्याम्'—(मध्यम व्यायोग १।९)।
'ब्राह्मणवचनमनृतमपि सत्यं पश्यामि'—(बालचरित २।११)।
'ब्राह्मणवचनमिति। न मयातिक्रान्तपूर्वम्।'—(कर्णभार १।२३)।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

व्यक्ति थे। उनका पारिवारिक जीवन सुखशांतिमय था। वे राष्ट्रीय भावना से ओत-प्रोत, स्वतन्त्रता एवं न्याय के पोषक आशावादी व्यक्ति थे। वे परम गोभक्त, वैष्णव धर्मावलम्बी तथा सर्वतोमुखी प्रतिभावाले महाकवि थे।

भास की नाट्यकला

भास के नाटकों की कथावस्तु का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत एवं व्यापक है। इनके नाटकों में पुराण, इतिहास, रामायण, महाभारत, आख्यायिका ग्रन्थ और लोकप्रचलित कथानकों का उपयोग हुआ है, फिर भी पात्रों के चरित्र की प्रोज्ज्वलता प्रदर्शित करने के लिए कवि ने कथानकों में पर्याप्त परिवर्तन कर दिया है। इनकी यह मौलिकता और नाटकों की विविधता इनकी नाट्य-कुशलता का पूरा परिचय देती है। कथावस्तु का विन्यास इतने कौशलपूर्ण ढंग से हुआ है कि प्रेक्षकों अथवा पाठकों की कुतूहल वृत्ति निरन्तर बढ़ती ही रहती है। सच तो यह है कि संस्कृत नाटककारों में भास ही एक ऐसे कलाकार हैं जिनकी सर्वतोमुखी प्रतिभा के कारण दर्शकों को मानव-जीवन के बहुरङ्गी रूपों के पर्यवेक्षण का भरपूर अवसर उपलब्ध होता है। विविध रूपकों के लिए विभिन्न क्षेत्रों से कथानक का संयोजन होने से विभिन्न कोटि के पात्रों का सृजन स्वाभाविक है फिर भी भास की नाट्यकुशलता ने उन विविध कोटि के और बहुसंख्यक पात्रों के आचरण में कृत्रिमता नहीं आने दी है। सभी पात्र हमें हमारी ही परिधि के जीते-जागते प्राणी लगते हैं। इतने अधिक पात्रों के चरित्रों का परिस्थिति-गत विकास पूर्ण स्वाभाविक रूप में करना भास के ही बूते की बात है। प्रत्येक नाटक के नायक के केन्द्रीय महत्त्व का सम्यक् निर्वाह करते हुए भास ने किसी भी पात्र को, चाहे वह कञ्चुकीय, गणिका अथवा सेवक ही क्यों न हो, व्यक्तित्व-विकास से वञ्चित नहीं होने दिया है और न नाटक की कथा तथा उसकी मूल संवेदना ही कहीं उलझने पायी है। इस सफलता का सारा श्रेय भास की सतर्क अद्भुत नाट्यप्रतिभा ही है। कथोप-कथन की दृष्टि से भी भास के रूपक निर्दोष हैं। कहीं भी निरर्थक और अना-वश्यक वार्तालाप को स्थान नहीं दिया गया है। इनके कथोपकथन कथानक को निरन्तर आगे बढ़ाने तथा पात्र की स्वभावगत चारित्रिक विशेषताओं को अभिव्यक्त करने में पूर्ण सफल हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भास के नाटकों की प्रमुख विशेषता उनकी अभिनेयता है। ये सभी नाटक थोड़े हेर-फेर के साथ बड़ी सरलता से रंगमंच पर अभिनीत होने योग्य बने हैं। इनमें न तो वर्णन की प्रचुरता है और न अनावश्यक कथावस्तु का विस्तार ही है अतः इनके अभिनय में किसी तरह के प्रतिरोध की गुञ्जाइश नहीं है।

भास का नैपुण्य चरित्रचित्रण में अद्वितीय है। वे अपने पौराणिक पात्रों को इतनी वास्तविकता, मनोवैज्ञानिकता और मार्मिकता से चित्रित करते हैं कि वे पाठकों अथवा दर्शकों को सर्वथा नवीन लगते हैं। भास ने पद्यों के माध्यम से अपने पात्रों में संवाद कराने का जो ढंग अपनाया है वह भी उनकी नाट्यकला के वैलक्षण्य का द्योतक है। किसी पद्य को कई भागों में विभक्त कर उन्हें वे अपने विभिन्न पात्रों के मुख से कथोपकथन के रूप में प्रस्तुत करवाते हैं जिससे संवादों में भावोत्तेजकता और चुटीलापन पैदा हो जाने से विशेष नाटकीयता आ जाती है। भास के प्रायः सभी पात्र अन्तर्द्वन्द्व युक्त होने के कारण काल्पनिक नहीं लगते अतएव उनके प्रति दर्शकों के हृदय में पूर्ण सहानुभूति उत्पन्न होती है। अपने नाटकों में भास ने इसी उद्देश्य से संघर्षपूर्ण घटनाक्रम की सृष्टि की है।

नाटकों को प्रभावोत्पादक बनाने में भास की कवित्वशक्ति का भी बड़ा हाथ है। इनकी कविता में प्रवाह और प्रसाद है। भास ने प्रसङ्ग वश अपने नाटकों में सन्ध्या, रात्रि, तपोवन, मध्याह्न इत्यादि का जो वर्णन किया है वह बड़ा ही सजीव तथा पूरे दृश्य का बिम्ब ग्रहण कराने में पूर्ण सफल हुआ है। मानवीय तथा बाह्य प्रकृति के चित्रण में भास बेजोड़ हैं। रात के सघन अन्धकार का प्रभावशाली वर्णन देखिए—

लिम्पतीव तमोऽङ्गानि वर्षतीवाञ्जनं नभः।
असत्पुरुषसेवेव दृष्टिर्निष्फलतां गता॥ —बालचरित १।१५

भास के इस पद्य का पूर्वार्द्ध अपने वैशिष्ट्य के कारण अलंकारशास्त्र में उत्प्रेक्षा का प्रसिद्ध उदाहरण माना जाता हैं।

भास के नाटकों में सुन्दर से सुन्दर उपमाएं मिलती हैं—

सूर्य इव गतो रामः, सूर्य दिवस इव लक्ष्मणोऽनुगतः।
सूर्य दिवसावसाने छायेव न दृश्यते सीता॥प्रतिमा २।७

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अयोध्यामटवीभूतां पित्रा भ्रात्रा च वर्जिताम् ।
पिपासार्तोऽनुधावामि क्षीणतोयां नदीमिव ।। प्रतिमा ३।१०

भास ने अनेकत्र पात्रों के मुँह से जो नीतिश्लोक कहलवाये हैं वे भी भर्तृहरि के नीतिश्लोकों के समान ही हृदयावर्जक हैं। इस प्रकार भास के नाटकों में नाटकीय विधान के साथ कवित्व का स्तुत्य सहयोग मिलता है।

भास की शैली

भास के नाटकों की शैली अपनी विशिष्ट महत्ता रखती है। प्रसाद, माधुर्य और ओज इनकी शैली के विशेष गुण हैं। भास को विकट बन्ध, क्लिष्ट कल्पना और लम्बे-लम्बे समस्त पदों से घृणा है क्योंकि नाटक के लिये ये सब सर्वथा अनुपयुक्त हैं। छोटे-छोटे सरल वाक्यों में गम्भीर तथा रसपेशल भावों की व्यंजना भास की शैली की प्रमुख विशेषता है। इनके द्वारा प्रयुक्त, लोकोक्तियों एवं सूक्तियों से अलंकृत छोटे-छोटे वाक्यों की व्यंजकता एवं प्रभावोत्पादकता को देखकर सहज अनुमान होता है कि इनके समय में संस्कृत लोक-व्यवहार की भाषा रही होगी। यद्यपि इनकी शैली प्रायः प्रसाद एवं माधुर्यगुण से ही अधिक सम्पन्न है तथापि प्रसंगानुकूल वीर रस की अभिव्यक्ति में ओज का भी आश्रय लिया है और वीर रस की व्यंजना में भी इन्हें पूरी सफलता मिली है।

भास के नाटकों में उपमा रूपक और उत्प्रेक्षा जैसे सरल भावोत्कर्षक एवं प्रचलित अलंकारों का ही अधिकतर प्रयोग हुआ है। सीमित शब्दों तथा सरल भाषा में हृद्गत भावों को अभिव्यक्त करना भास की अपनी विशेषता है। राम के वन चले जाने पर दशरथ की करुण दशा का चित्र सीधे-सादे शब्दों में देखिए— पतत्युत्थाय चोत्थाय हा हेत्युच्चैर्लपन् मुहुः ।
दिशं पश्यति तामेव यया यातो रघूद्वहः ।।
हा वत्स ! राम ! जगतां नयनाभिराम !
हा वत्स ! लक्ष्मण ! सलक्षणसर्वगात्र !
हा साध्वि ! मैथिलि ! पतिस्थितचित्तवृत्ते !
हा हा गताः किल वनं बत मे तनूजाः ।।—प्रतिमा २।३।४

भास ने दर्शक या पाठक का कौतूहल बढ़ाने के लिए कहीं-कहीं ऐसे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नाटकीय-व्यंग्यों की अवतारणा की है कि वे दर्शक या पाठक के हृदय को सहसा झकझोर देते हैं। जैसे—'प्रतिज्ञा यौगन्धरायण' में जब महासेन और अङ्गारवती परस्पर विचार-विमर्श कर रहे हैं कि वासवदत्ता के लिए कौन राजा उपयुक्त है, उसी समय कञ्चुकी आकर सहसा कहता है—'वत्सराज'। इस प्रकार उनके प्रश्न का आकस्मिक उत्तर मिल जाता है, यद्यपि कञ्चुकी कहने आया था कि वत्सराज बन्दी बना लिया गया, जैसा कि आगे वह स्वयं स्पष्ट करता है। इसी प्रकार 'अभिषेक' नाटक में जब रावण सीता से कहता है कि इन्द्रजित् ने राम और लक्ष्मण को मार डाला। अब तुम्हें कौन मुक्त करेगा? उसी समय एक राक्षस सहसा आकर कहता है 'राम'। यद्यपि वह कहना यह चाहता है कि राम ने इन्द्रजित को मार डाला। भास की यह पद्धति अत्यन्त प्रभावोत्पादक है।

भास अल्प शब्दों के द्वारा भाव-व्यंजना के अतिरिक्त कहीं-कहीं शब्द-प्रयोग के बिना ही, या यों कहिए कि मौन का आश्रय लेकर हृद्गत समस्त भावों की मार्मिक व्यंजना कर देते हैं। जैसे—'अनुक्त्वैव वनं गताः।'—प्रतिमा २।१७। इससे बढ़कर शैली की संक्षिप्तता और क्या हो सकती है? राम-लक्ष्मण-सीता के अकथनीय हृद्गत भावों के मर्मस्पर्शी चित्र भी उपस्थित कर दिये और अपनी ओर से उसके लिए एक भी शब्द का प्रयोग नहीं करना पड़ा। अतः भास की शैली नाटककारों के लिए आदर्श शैली कही जानी चाहिए।

भास के दोष

भास के नाटकों में कुछ त्रुटियाँ भी मिलती हैं। जैसे—(१) 'निष्क्रम्य प्रविशति' आदि द्रुतगतिवाले नाटकीय निर्देशों का आधिक्य इनकी वास्तविकता में सन्देह उत्पन्न कर देता है। (२) इनके नाटकों में कालान्विति का भी अभाव है जिसे स्वप्नवासवदत्त, चारुदत्त, बालचरित, अभिषेक आदि नाटकों में स्पष्ट देखा जा सकता है। (३) कृष्ण के निर्जीव शस्त्रास्त्रों का ('बाल-चरित' में) मानवरूप में रंगमंच पर उपस्थित होना अस्वाभाविकता उत्पन्न कर देता है। (४) नाट्यशास्त्र द्वारा वर्जित दृश्यों (युद्ध, मरणादि) को भी रंगमंच पर दिखाया गया है। (५) अपरिचित पात्रों का सहसा प्रवेश नाट्य-शास्त्र-विरुद्ध है। इससे अस्वाभाविकता भी आ जाती है।

किन्तु ये दोष साधारण हैं। इनसे भास के महत्त्व में कोई कमी नहीं आती। 'एको हि दोषो गुणसन्निपाते निमज्जतीन्दोः किरणेष्विवाङ्कः।'

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दूतघटोत्कच : समीक्षा

कथावस्तु

इस नाटक का कथानक अभिमन्यु के मरण के बाद की घटनाओं से सम्बन्ध रखता है। कौरवों की चाल से अर्जुन को कुरुक्षेत्र छोड़कर संशप्तक राजाओं से लड़ने के लिए दक्षिण प्रदेश में जाना पड़ा। अर्जुन के साथ ही श्रीकृष्ण के भी चले जाने से पाण्डवों को असहाय समझ कौरवों की तरफ से द्रोणाचार्य ने कौशलपूर्ण ढंग से पद्मव्यूह (चक्रव्यूह) बनाकर उसके भेदन में पाण्डवों को अशक्त जान ललकारा।

युधिष्ठिर ने अभिमन्यु को इस व्यूह-भेदन के लिए भेजा और स्वयं चारों पाण्डव उसके पीछे जाने के लिए तैयार हुए। अकेले अभिमन्यु से ही पार न पा सकने से कौरवों ने वरप्राप्त जयद्रथ (दुःशलापति तथा दुर्योधन का बहनोई) के द्वारा पाण्डवों को अवरुद्ध कर भीतर प्रविष्ट नहीं होने दिया। सब कौरवों ने छल-कपट का आश्रय ले एकाकी बालक अभिमन्यु को निहत्था कर मार डाला।

नाटक के प्रारम्भ में नान्दीपाठ के अनन्तर सूत्रधार विष्णु की प्रार्थना कर ज्यों ही नाटक की सूचना देने को तत्पर होता है, उसे कोलाहल सुनाई देता है जिससे वह समझ जाता है कि संशप्तकों से लड़ने के लिए अर्जुन के चले जाने पर, भीष्मवध से चिढ़े हुए धृतराष्ट्र के पुत्रों ने अभिमन्यु को घेर कर मार डाला और उसके बाणों से क्षत-विक्षत राजा लोग अर्जुन की प्रतिहिंसा से डरे हुए अपने-अपने शिविर में प्रवेश कर रहे हैं। इधर अभिमन्यु के मारे जाने का वृत्तान्त सुनाने के लिए भट धृतराष्ट्र के पास जाता है और कहता है कि अपने पिता अर्जुन के समान पराक्रम दिखाने वाले बालक अभिमन्यु को कौरव-वीरों ने मार डाला। इस समाचार से स्तब्ध धृतराष्ट्र से गान्धारी कहती है कि इस बालक के वध से कुलनाश का समय उपस्थित हो गया। धृतराष्ट्र भी कहते हैं कि जब पुत्र-शोक से सन्तप्त अर्जुन क्रुद्ध होकर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

धनुष ग्रहण करेगा तो पूरे विश्व का विनाश हो जायगा। वहीं उनकी पुत्री दुश्शला भी बैठी है। वह कहती है कि जिसने अभिमन्यु की पत्नी उत्तरा को विधवा बनाया उसने अपनी स्त्री को भी वैधव्य दिया है। धृतराष्ट्र के पूछने पर भट (जयत्रात) ने बताया कि अभिमन्यु को बहुत से राजाओं ने मिल कर मारा किन्तु इसके निमित्त थे जयद्रथ। यह सुनकर धृतराष्ट्र ने कहा—यदि जयद्रथ निमित्त थे तो वे मारे गये। दुश्शला भी रोने लगती है। लोग दुश्शला को समझाते हैं किन्तु धृतराष्ट्र कहते हैं कि कृष्ण, बलराम और पाण्डवों के स्नेहभाजन अभिमन्यु को मार कर संसार में कौन है जो जीवित बचेगा? भट के यह बताने पर कि संशप्तकों के साथ युद्ध करने के लिए दूर गये हुए अर्जुन को दिखाने के लिए ही युधिष्ठिर आदि पाण्डव मृतक अभिमन्यु को रोक रखे हैं, धृतराष्ट्र को पक्का विश्वास हो जाता है कि अब कौरवों को विनष्ट होने से कोई बचा नहीं सकता। यहाँ तक तो कथा की पृष्ठभूमि अथवा पूर्वार्द्ध समझना चाहिए। अब आगे दुर्योधन, दुःशासन और शकुनि आदि के प्रवेश के साथ कथा के उत्तरार्द्ध का प्रारम्भ समझना चाहिए। दुर्योधन आदि अभिमन्यु के मारे जाने से बहुत प्रसन्न होते हैं और धृतराष्ट्र का अभिवादन करते हैं किन्तु वे आशीर्वाद देने के स्थान पर मौन धारण किये रहते हैं। कारण पूछने पर धृतराष्ट्र कहते हैं—'कृष्ण और अर्जुन के प्रिय अभिमन्यु को मार कर तुम लोग जीवन से पराङ्मुख हो गये हो अतः आशीर्वाद देना व्यर्थ है। सौ पुत्रों के बीच हुई एक प्रियपुत्री दुःशला भी तुम लोगों की कृपा से वैधव्य को प्राप्त हो गयी।' इस पर दुर्योधन ने कहा कि अकेले जयद्रथ ने नहीं, अभिमन्यु को बहुत से वीरों ने रोक कर मारा। यह सुनकर धृतराष्ट्र ने भर्त्सना करते हुए कहा कि अकेले बालक को मिल कर मारते हुए तुम लोगों की भुजाएँ गिर क्यों नहीं गयीं। दुर्योधन ने इसका सटीक उत्तर यह कह कर दिया कि छलपूर्वक भीष्मपितामह को मारने वाले पाण्डवों की भुजाएँ नहीं गिरीं तो आप हमारी ही भर्त्सना क्यों कर रहे हैं। धृतराष्ट्र ने चेतावनी देते हुए कहा कि जब अकेले बालक अभिमन्यु ने इतना पराक्रम दिखाया तो पुत्र-मरण से शोकार्त अर्जुन कितना पराक्रम दिखायेंगे? अवज्ञापूर्वक दुर्योधन के पूछने पर कि अर्जुन का कैसा पराक्रम है,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

धृतराष्ट्र ने कहा—अर्जुन के पराक्रम के विषय में तुम निवात-कवच दानवों के जीवनरूप उपहार से अर्चित इन्द्र से पूछो, किरात वेष में अर्जुन के अस्त्रों से परितुष्ट हुए शङ्कर से पूछो, खाण्डव वन में सर्पों की आहुति से तृप्त हुए अग्नि से पूछो और पूछो उस चित्राङ्गद नामक गन्धर्व से जो तुम्हें बाँधकर आकाश में ले जा रहा था और उस समय अर्जुन ने ही तुम्हें बचाया था।

धृतराष्ट्र की बात सुनकर दुर्योधन ने कहा—'मेरी सेना में महारथी कर्ण अर्जुन से प्रभाव और पराक्रम में कम नहीं है।' धृतराष्ट्र ने उत्तर दिया—'कर्ण बेचारा तो हास्यास्पद है। इन्द्र ने उसका कवच ले लिया है। वह अर्धरथी और प्रमादी है। कपट द्वारा सीखे गये उसके अस्त्र भी विफल हो गये हैं अतः वह अर्जुन की क्या तुलना कर सकता है ?

इतने में शकुनि कहने लगा—'आप हम लोगों की भर्त्सना करने में समर्थ हैं।'

धृतराष्ट्र ने कहा—अरे शकुनि! द्यूतक्रीडा में दक्ष तू ने जो कर्म किया है, उसी का यह परिणाम है कि कौरव कुल की यह द्वेषाग्नि शिशु की आहुति के पश्चात् भी नहीं शांत हो रही है।

उसी समय शंख, पटह और सिंहनाद मिश्रित घोर शब्द सुनाई पड़ा और दुर्योधन ने उसके कारण का पता लगाने के लिए भट (जयत्रात) को पाण्डवों के शिविर में भेजा। भट ने जाकर और लौट कर बताया कि कृष्ण से वारम्वार प्रेरित होकर अर्जुन ने मृतपुत्र को गोद में लेकर प्रतिज्ञा की है कि जिस कौरव पक्षीय ने मेरे पुत्र का वध किया है और जो राजागण उससे सन्तुष्ट हुए हैं उन सबको मैं कल सूर्यास्त के पूर्व ही मार डालूँगा और यदि ऐसा न कर सका तो चितारोहण कर प्राण दे दूँगा।

यह सुन कर दुर्योधन आदि प्रसन्न हो कहते हैं कि द्रोणाचार्य की मन्त्रणा से ऐसा व्यूह रचा जायेगा कि अर्जुन जयद्रथ का पता न पा सकेंगे और चितारूढ़ हो जायेंगे। उनकी बात सुनकर धृतराष्ट्र कहते हैं कि चाहे तुम लोग पृथ्वी में समा जाओ, चाहे आकाश मण्डल में उड़ जाओ किन्तु कृष्ण द्वारा निर्दिष्ट अर्जुन के बाण तुम लोगों का पीछा सर्वत्र करेंगे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इसी अवसर पर घटोत्कच वहाँ प्रवेश करता है और कहता है—'मैं हिडिम्बा-पुत्र घटोत्कच श्रीकृष्ण की आज्ञा से अपने गुरुजनों को जो अपने ही पाप कर्मों के कारण अब शत्रु हो गये हैं, देखने की इच्छा से आया हूँ। उसकी बात सुन कर दुर्योधन उसे अपने पास बुलाता है और निर्भय होकर श्रीकृष्ण का सन्देश सुनाने के लिए कहता है। पास पहुँच कर घटोत्कच धृतराष्ट्र को देख कर उसका अभिवादन करता है। धृतराष्ट्र उसके प्रति सहानुभूति प्रकट करते हैं। घटोत्कच भगवान् श्रीकृष्ण का सन्देश सुनाता है—'एक पुत्र अभिमन्यु के मरने से अर्जुन को जो इतना सन्ताप हुआ तो सौ पुत्रों के मारे जाने से आपको कितना कष्ट होगा अतः आप सम्पूर्ण सेना युद्ध से विरत कर दें।'

श्रीकृष्ण के इस सन्देश का मजाक उड़ाते हुए दुर्योधन ने कहा कि देवताओं के साथ मन्त्रणा करते-करते कृष्ण को मिथ्या गर्व हो गया है जो केवल अर्जुन के द्वारा सम्पूर्ण क्षत्रियमण्डल को मरा हुआ समझते हैं। इस पर घटोत्कच ने कहा कि आप लोगों को भी श्रीकृष्ण ने सन्देश दिया है, उसे सुन लीजिए। इस पर भर्त्सना करते हुए दुःशासन ने घटोत्कच से कहा—'क्षत्रियावमानिन ! जिस राजा की आज्ञा पृथ्वी के सारे राजा धारण करते हैं उसी के सामने किसी अन्य (अराजा) का सन्देश नहीं सुना जायगा। इस पर घटोत्कच श्रीकृष्ण का पराक्रम वर्णित कर उनका राजाधिराजत्व सिद्ध करते हुए कहता है कि अब निश्चित क्षत्रियों के विनाश से पृथ्वी हल्की हो जायगी। वह शकुनि की भी भर्त्सना करता है। दुर्योधन आवेश में कह बैठता है कि तुम्हें अपने मातृपक्ष के उग्ररूप का दर्प है तो हम भी राक्षसों के समान विकट स्वभाव वाले हैं।

इस पर घटोत्कच व्यङ्ग्यपूर्वक कहता है कि राक्षसों के समान क्या, राक्षसों से भी अधिक कठोर स्वभाव आप लोगों का है। दुर्योधन के साथ घटोत्कच का वाद-विवाद यहाँ तक बढ़ गया कि युद्ध की नौबत आ गयी। घटोत्कच ने उन सबों को युद्ध के लिए ललकारा। किसी तरह धृतराष्ट्र के प्रयत्न से विवाद शान्त हुआ। चलते समय घटोत्कच श्रीकृष्ण का अन्तिम सन्देश सुनाता है—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

धर्म का आचरण करो, अपने बान्धवों का समादर करो, जो कुछ तुम्हारी इच्छा हो सब कुछ इस पृथ्वी पर कर डालो। क्योंकि पाण्डवों के रूप में, हितकारी उपदेश की भाँति यमराज सूर्य की किरणों के साथ तुम्हारे पास आयेंगे।'

नाटक का नामकरण

अभिमन्यु के मरण के उपरान्त श्रीकृष्ण की आज्ञा से हिडिम्बा-पुत्र घटोत्कच श्रीकृष्ण का दूत बनकर कौरव-सभा में जाता है और सन्देश देता है। यद्यपि इस नाटक में घटोत्कच का प्रवेश लगभग आधे नाटक के समाप्त हो जाने पर होता है तथापि इस नाटक की सबसे मुख्य वस्तु दूत घटोत्कच का दौत्य ही है। नाटक का पूर्वार्द्ध इसी मुख्य वस्तु के लिए उचित पृष्ठभूमि तैयार करता है और नाटककार को दूत घटोत्कच का दौत्य प्रदर्शित करना ही अभीष्ट है, अतः नाटक का नामकरण 'दूत घटोत्कच' किया गया है।

मूल से अन्तर—महाभारत में घटोत्कच के दौत्य का निर्देश नहीं है। प्रस्तुत नाटक में घटोत्कच के दौत्य कर्म की कल्पना कवि के अपने मस्तिष्क की उपज है।

रूपक-प्रकार—यह नाटक रूपकों की किस श्रेणी में आता है—इस पर विचार करते हुए डॉ० ए० बी० कीथ का मत है कि यह नाटक 'व्यायोग' है। साहित्यदर्पण के अनुसार व्यायोग का लक्षण है—'ख्यातेतिवृत्तो व्यायोगः स्वल्पस्त्रीजनसंयुक्तः। हीनो गर्भविमर्शाभ्यां नरैर्बहुभिराश्रितः॥ एकाङ्कश्च भवेदस्त्रीनिमित्तसमरोदयः। कैशिकीवृत्तिरहितः प्रख्यातस्तत्र नायकः॥ राजर्षिरथ दिव्यो वा भवेद् धीरोद्धतश्च सः। हास्यशृङ्गारशान्तेभ्य इतरेऽत्राङ्गिनो रसाः॥' यह कहने की आवश्यकता नहीं कि कुछ अंशों में व्यायोग के लक्षण इस नाटक में घटित होते हैं। कीथ अपने मत के समर्थन में इस नाटक में अधिक अंशों में युद्ध की योजना और तत्सम्बन्धित वार्ता को मुख्य मानते हैं। इसके विपरीत पुसालकर महोदय इस नाटक को 'उत्सृष्टिकाङ्क' मानते हैं। साहित्यदर्पण के अनुसार 'उत्सृष्टिकाङ्क' का लक्षण है—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'उत्सृष्टिकाङ्क एकाङ्को नेतारः प्राकृता नराः ॥
रसोऽत्र करुणः स्थायी बहुस्त्रीपरिदेवितम् ।
प्रख्यातमितिवृत्तं च कविर्बुद्ध्या प्रपञ्चयेत् ॥
भाणवत्सन्धिवृत्त्यङ्गान्यस्मिञ्जयपराजयौ ।
युद्धं च वाचा कर्त्तव्यं निर्वेदवचनं बहु ॥'

इस नाटक में बुद्धिप्रपञ्चित प्रख्यातवृत्त, करुणरस, वाग्युद्ध तथा जयपराजय और बहुस्त्री परिदेवन आदि बातें पायी जाती हैं। अतः इसे 'उत्सृष्टिकाङ्क' के अधिक निकट पाकर अधिक विद्वान् 'उत्सृष्टिकाङ्क' मानते हैं। वास्तव में निश्चित रूप से इसे किसी एक कोटि में नहीं रक्खा जा सकता है।

सामान्य विशेषताएँ—डा० गणपति शास्त्री के अनुसार यह नाटक न सुखान्त है न दुःखान्त। इस नाटक में वीर तथा करुण रस का अद्भुत सम्मिलन है। घटोत्कच तथा दुर्योधनादि के कथोपकथन में वीर रस की झलक मिलती है और धृतराष्ट्र, गान्धारी और दुश्शला की उक्तियों से करुण-रस की धारा प्रवाहित होती है। प्रभाव की दृष्टि से करुण रस का प्रकर्ष अधिक है क्योंकि यहाँ वीररस करुण-मूलक ही है। दुःख एवं विषाद की घनी छाया पूरे नाटक में बराबर बनी हुई है।

यह नाटक भरत वाक्य के विना ही सहसा समाप्त हो जाता है अतः कुछ लोग इसे अपूर्ण मानते हैं। संभव है इसमें आगे भी कुछ अंश रहा हो किन्तु जहाँ तक नाटक के उद्देश्य की बात है वह पूर्ण सफल है।

डा० विन्तर नित्स और डा० पुसालकर ने इस नाटक के अन्तिम श्लोक के विषय में जो श्रीकृष्ण के सन्देश के रूप में हैं आशंका व्यक्त की है कि यह श्लोक संदर्भ से बाहर प्रतीत होता है। जो भी हो, श्लोक अपने स्थान पर नितान्त उचित है। यह ज्ञातव्य है कि घटोत्कच श्रीकृष्ण के तीन सन्देश लेकर वहाँ आया हैं—पहला धृतराष्ट्र के लिए, दूसरा दुर्योधन के लिए और तीसरा सब कौरवों के लिए।

भास ने अपने अन्य नाटकों की भाँति इसमें भी नाटकीय व्यङ्ग्य की उपस्थापना की है जो अत्यन्त कारुणिक है। अभिमन्यु के मारे जाने का समाचार सुनकर धृतराष्ट्र और गान्धारी दोनों शोकनिमग्न करुण विलाप

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कर रहे थे। वहीं पास में बैठी दुश्शला के मुख से सहसा अनजान में उसी के पक्ष में भयानक अमाङ्गलिक सत्य बचन निकल पड़ा—'जिसने इस समय बहू उत्तरा को वैधव्य दिया है उसने अपनी युवतियों को भी वैधव्य दिया है।' इसके बाद ही भट सूचित करता है कि अभिमन्यु को अनेक राजाओं ने मिल कर मारा है किन्तु उसका निमित्त जयद्रथ था। यह सुन कर धृतराष्ट्र शोकसन्तप्त होकर कहते हैं—'हन्त जयद्रथो निहतः।' उधर दुश्शला भी वैधव्य प्राप्ति की अनिवार्य संभावना से रो पड़ती है।

इस नाटक में धृतराष्ट्र के विषाद और दुर्योधनादि के हर्ष इन दो विरोधी भावों की सफल अभिव्यंजना हुई है। संवादों का चोटीलापन बढ़ते-बढ़ते उग्र रूप धारण कर लेता है, उसी समय भास कथानक में मोड़ लाकर उस प्रसंग को वहीं आगे बढ़ने से रोक देते हैं। धृतराष्ट्र और दुर्योधन के परुष वार्तालाप से परिस्थिति गम्भीर होते ही घटोत्कच के सहसा प्रवेश ने उसे संभाल लिया, अन्यथा भट के अनुसार आगे की घटना बड़ी ही भयंकर होती—

'क्रूरमेवं नरपतिं नित्यमुद्यतशासनम्।
यः कश्चिदपरो ब्रूयान्न तु जीवेत्स तत्क्षणम्॥ ३२॥

इसी प्रकार धृतराष्ट्र द्वारा शकुनि की भर्त्सना की जाने पर नेपथ्य में भूकम्प के साथ भारी ध्वनि होती है और सब का ध्यान उसी ओर आकृष्ट हो जाता है जिससे शकुनि को धृतराष्ट्र की कटूक्तियों का उत्तर देने का अवसर नहीं मिलता है और परिस्थिति की गम्भीरता वहीं शान्त हो जाती है।

अन्त में भी घटोत्कच और दुर्योधन आदि के बीच वार्तालाप बढ़ते-बढ़ते युद्ध तक की नौबत आ जाती है। क्रुद्ध घटोत्कच युद्ध के लिये चुनौती देने लगता है—

दष्टोष्ठो मुष्टिमुद्यम्य तिष्ठत्येष घटोत्कचः।
उत्तिष्ठतु पुमान् कश्चिद् गन्तुमिच्छेद् यमालयम्॥५०॥

बात बिगड़ती देख कर धृतराष्ट्र 'पौत्र घटोत्कच! मर्षयतु मर्षयतु भवान्। मद्वचनावगन्ता भव।'—अपनी अनुनयात्मक बातों से बात बना लेते हैं। भास की कला की भंगिमाएँ अत्यन्त उत्कृष्ट एवम् अनुपम हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इस नाटक में मानव-हृदय की आशाओं, आकांक्षाओं एवं दुर्बलताओं का सफलतापूर्ण यथार्थ चित्रण देखा जाता है। पात्रों के संवाद मार्मिक, नोक-झोंक के साथ अत्यन्त चुटीले हैं। धृतराष्ट्र दुर्योधन की भर्त्सना करते हुए कहते हैं कि एक निहत्थे बालक पर मिलकर प्रहार करते समय तुम सब के हाथ गिर क्यों नहीं गये। दुर्योधन तुरन्त सटीक उत्तर देता है----'यदि वृद्ध भीष्म को छल से मारते समय उन (पाण्डवों) के हाथ नहीं गिरे तो हमारे ही हाथ क्यों गिरें।' इसी प्रकार जब दुर्योधन घटोत्कच से कहता है----'तू अपने राक्षस स्वभाव पर उतर आया है तो हम सब भी राक्षसों की तरह व्यवहार कर सकते हैं।' घटोत्कच तुरन्त उत्तर देता है---'तुमलोग तो राक्षसों से भी क्रूरतर हो। तुम लोगों ने जैसा व्यवहार किया है वैसा तो राक्षस भी नहीं करते हैं।'

चरित्र-चित्रण

घटोत्कच—कवि ने घटोत्कच का चरित्र जो इस नाटक का प्रधान पात्र है, अत्यन्त उन्नत प्रदर्शित किया है। घटोत्कच के क्रूर राक्षसी स्वभाव की गन्ध भी इस नाटक में नहीं मिलती है। घटोत्कच में शालीनता और शिष्टता का हमें दर्शन होता है। वह धृतराष्ट्र को देखकर उनके ललित एवं गम्भीर व्यक्तित्व से श्रद्धावनत होकर प्रणाम करता है। उसे मर्यादा का भी सदैव ध्यान है, अतः धृतराष्ट्र को प्रणाम करते समय मर्यादा का सहसा ध्यान आ जाने से, पहले युधिष्ठिर आदि पाण्डवों का प्रणाम निवेदित करता है, उसके बाद अपना प्रणाम कहता है। श्रीकृष्ण का सन्देश सुनने के लिये आदर-भाव से आसन से उठते हुए धृतराष्ट्र को देखकर घटोत्कच शालीनता एवं शिष्टता के अनुरोध से कहता है—'न न न ? आसनस्थेनैव भवता श्रोतव्यो जनार्दनस्य सन्देशः।' घटोत्कच में निर्भीकता, स्वाभिमान और शौर्य कूट-कूटकर भरा हुआ है। उसमें वचन-विदग्धता भी है। वह श्रीकृष्ण के सन्देश की हँसी उड़ाने वाले दुर्योधन से निर्भीक होकर कहता है—

'हससि त्वमहं वक्ता प्रेषितश्चक्रपाणिना।
श्रावितं पार्थकर्मेदमहो युक्तं तवैव तु ॥ ३२ ॥'

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रीकृष्ण को 'अराजा' कह कर उनकी अवमानना करने वाले दुश्शासन को भी घटोत्कच मुँह-तोड़ उत्तर देते हुए कहता है—'क्षत्रियों का विनाश अब समाप्त समझो। सौ राजाओं के वध से अब पृथिवी का भार हल्का हो जायगा।'

घटोत्कच शकुनि को भी खूब खरी-खोटी सुनाता है। अन्त में जब दुर्योधन कहता है कि तुम्हीं राक्षस नहीं हो, हम लोग भी राक्षस की तरह व्यवहार कर सकते हैं, उस समय घटोत्कच कहता है—आप लोग तो राक्षसों से भी निकृष्टतर हैं। राक्षस लाक्षागृह में सोये हुए भाइयों को नहीं जलाते हैं। वे अपनी भावज के सिरपर उस तरह हाथ नहीं लगाते। राक्षसों को तो स्मरण भी नहीं होगा कि कभी उन्होंने युद्ध क्षेत्र में अपने पुत्र को मारा हो।

जब दुर्योधन ने कहा—'तुम यहाँ दूत रूप में आये हो, युद्ध करने के लिए नहीं, अतः सन्देश लो और जाओ। हम दूत का वध नहीं करते।' इतना सुनते ही घटोत्कच का स्वाभिमान भड़क गया। उसका वीर-भाव उद्दीप्त हो उठा—मैं प्रत्यञ्चा के कट जाने से दुर्बल अभिमन्यु नहीं हूँ। मैं खड़ा हूँ। जिसे यमपुर जाना हो, आ जाय।' इस प्रकार इस नाटक में घटोत्कच का चरित्र सर्वथा समुज्ज्वल प्रदर्शित किया गया है।

धृतराष्ट्र—धृतराष्ट्र सुन्दर एवं गम्भीर व्यक्तित्व वाले श्रद्धेय पुरुष हैं। वृद्ध होने पर भी झुर्रियों का निशान तक नहीं है। कन्धे मांसल, पुष्ट एवं विशाल हैं।[1] धृतराष्ट्र का हृदय सात्त्विक भावों से ओत-प्रोत तथा छल-छद्म-ईर्ष्याद्वेष से रहित अत्यन्त समुज्ज्वल है। उन्हें गृह-कलह सर्वथा पसन्द नहीं। अभिमन्यु के मारे जाने का समाचार सुनकर धृतराष्ट्र कहते हैं—'ऐसा समाचार सुना कर किसने मेरे कानों को पीडित किया। सुनाने वाला सम्भवतः समझ रहा है कि यह मेरे लिए प्रिय होगा, इसीसे ऐसा अप्रिय समाचार कह रहा है। शिशुवध से हमारा वंश कलंकित हो चुका। यह अभिमन्यु वध की घोषणा नहीं, इस कलंकित वंश के क्षय की घोषणा है।'[2]

धृतराष्ट्र को अर्जुन आदि पाण्डवों की वीरता पर पूर्ण विश्वास है। श्रीकृष्ण के प्रति उनके हृदय में पूर्ण श्रद्धा है। वे उन्हें परमात्मा के रूप में

---

१. द्रष्टव्य श्लोक ३५। २. श्लोक ४।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मानते हैं। अभिमन्युवध से सन्तप्त अर्जुन दुर्योधन आदि का अवश्य विनाश कर डालेगा। इस विनिश्चय से धृतराष्ट्र जलाञ्जलि देने तक की तैयारी करने लगते हैं---

'अद्यैव दास्यामि जलं हतेभ्यः स्वेनापराधेन तवात्मजेभ्यः।'

प्रसन्न दुर्योधन आदि के प्रणाम करने पर धृतराष्ट्र आशीर्वाद नहीं देते। कारण पूछने पर कहते हैं---'कृष्ण और अर्जुन के हृदयरूप सुभद्रानन्दन का वध होने पर तुम लोग जीवन से पराङ्मुख हो गये हो, तुम लोगों को आशीर्वाद क्या दूँ।[1] अरे! सौ पुत्रों के बीच में उनसे भी अधिक प्यारी केवल एक कन्या दुश्शला थी, वह भी तुम भाइयों की कृपा से वैधव्य प्राप्त करेगी।[2]

धृतराष्ट्र तरह-तरह से दुर्योधन आदि की भर्त्सना करते नहीं थकते एक निरस्त्र बालक पर मिलकर प्रहार करते समय तुम लोगों की भुजाएँ गिर क्यों न गयीं?[3] कुछ भी करो, तुम सब चाहे धरणी में प्रविष्ट हो जाओ, चाहे आकाश में उड़ जाओ किन्तु कृष्ण द्वारा निर्दिष्ट अर्जुन के बाण तुम्हें छोड़ेंगे नहीं।[4]

धृतराष्ट्र दरबार में आये घटोत्कच को बड़े स्नेह से बुलाते हैं। वे समवेदना प्रकट करते हुए कहते हैं---'जो भाई की मृत्यु से तुम्हारी आत्मा दुखित है यह केवल तुम्हारे ही शोक का विषय नहीं है, अपितु मेरा भी मन दुखी हैं। तुम इस बात को नहीं समझते हो, मैं अपने पुत्रों के अपराध से कर्दथित किया गया हूँ।[5] श्रीकृष्ण का सन्देश सुनने के लिए धृतराष्ट्र का आदरभाव से आसन छोड़कर उठ खड़ा होना श्रीकृष्ण के प्रति उनकी श्रद्धा एवं सदाशयता का द्योतक है। घटोत्कच के उत्तेजित होने पर शान्तिप्रिय धृतराष्ट्र अपने सूनृत-वचन से शान्त करते हैं।

दुर्योधनादि—

इस नाटक में दुर्योधन, दुःशासन और शकुनि का चरित्र जैसा प्रसिद्ध है वैसा ही दिखाया गया है। ये सब अत्यन्त अभिमानी तथा क्रूर प्रदर्शित किये गये हैं। प्रत्येक प्रसंग में गर्व-पूर्ण वचन ही बोलते हैं। अभिमन्यु के मारे

---

१. श्लोक १५। २. श्लोक १६। ३. श्लोक १७। ४. श्लोक ३१। ५. श्लोक ३६।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जाने पर दुर्योधन प्रसन्न होकर कहता है—'अभिमन्यु के वध से हमारा विरोध दृढ़ हो गया, शत्रुओं की विजय डगमगा गयी, कृष्ण का गर्व विनष्ट हो गया तथा हमें पूर्णरूप से विजय की प्राप्ति के साथ-साथ यश भी प्राप्त हुआ।'[1]

दुःशासन भी अपनी प्रसन्नता व्यक्त करते हुए कहता है—'जयद्रथ की सेना ने शत्रु-सैन्य पर आक्रमण कर पाण्डवों को रोक दिया। सैकड़ों शराघातों से दूसरे अर्जुन-सुभद्रा पुत्र का संहार कर, हम सब ने, पहिले जो भीष्मपितामह की मृत्यु से दुःखी हुए थे, आज युद्ध में इन पाण्डवों के हृदय में पुत्र वध के कारण तीखे शोकरूपी बाण चुभो दिये'[2]

शकुनि भी अपने हृदय का उद्गार व्यक्त करता है—'आज जयद्रथ ने रणक्षेत्र में राजाओं की आशा से अधिक अपना पराक्रम दिखाया जो इन्होंने युद्ध में बलात् पाण्डवों के पुत्र अभिमन्यु के साथ-साथ उनके अप्रतिम यश का हरण किया।'[3] जब धृतराष्ट्र कहते हैं कि एक निहत्थे बालक पर मिल कर प्रहार करते समय तुम लोगों की भुजाएँ गिर क्यों नहीं गयी—उस समय दुर्योधन भीष्म पितामह का वध और अभिमन्यु की हत्या को समान समझता हुआ कहता है—'बूढ़े भीष्म को कपट से मार कर जब उन लोगों की भुजाएँ नहीं गिरीं तो तरुण पुरुष के समान पराक्रम वाले उस बालक को मारने पर हम लोगों की भुजाएँ कैसे गिरेंगी।[4]

दुर्योधन आदि अर्जुन की प्रतिज्ञा सुनकर अपने को प्राप्तकाम समझकर प्रसन्न होते हैं। धृतराष्ट्र द्वारा अर्जुन के पराक्रम का स्मरण कराने तथा बार-बार भर्त्सना करने पर भी उन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। घटोत्कच के जाते समय भी दुर्योधन श्रीकृष्ण के लिये अपने स्वभाव के ही अनुकूल गर्व-मिश्रित ही सन्देश देता है—'व्यर्थ क्यों जल्पना करते हो, हम सब तुम्हारे परुष-वचनों से विजित नहीं होंगे। तुम पाण्डवों के साथ रहना और मैं सैकड़ों क्षत्रियों से युक्त निरन्तर बाण-प्रहार के द्वारा तुम्हारे वचन का उत्तर दे दूँगा।'[5]

—*×*—

---

१. श्लोक ११। २. श्लोक १२। ३. श्लोक १३। ४. श्लोक १८। ५. श्लोक ५१।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पात्र-परिचय

पुरुष पात्र

१. धृतराष्ट्र — दुर्योधन का पिता।

२. भट — जयत्रात नामक समाचार वाहक।

३. दुर्योधन — धृतराष्ट्र का ज्येष्ठ पुत्र, कुरुराज।

४. दुःशासन — दुर्योधन का छोटा भाई।

५. शकुनि — दुर्योधन का मामा।

६. घटोत्कच — हिडिम्बा (राक्षस-कन्या) में भीम से उत्पन्न पुत्र, जो दूत बन कर उपस्थित हुआ है।

स्त्री पात्र

१. गान्धारी — दुर्योधन की माता।

२. दुःशला — दुर्योधन की बहिन, जयद्रथ की पत्नी।

३. प्रतिहारी — द्वारपालिका।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भासनाटकचक्रे

दूतघटोत्कचम्

'कल्याणी' संस्कृत-हिन्दीव्याख्योपेतम्

प्रथमोऽङ्कः

(नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः ।)

---

* कल्याणी *

नीलाम्बुदाभाय मनोहराय परात्मने गो-द्विजपालकाय ।
ब्रह्मादिसेव्याय दयापराय नमोऽस्तु कृष्णाय जनार्दनाय ॥

अथ तत्रभवान् कविताकामिनीहासो महाकविर्भासो नटैः स्वानुष्ठितवाद्य-वादनादिरूपया नान्द्या रङ्गसामाजिकवृन्दे ह्युन्मुखीकृते सति, निर्विघ्नं चिकीर्षितग्रन्थसमाप्तये, तस्य सानन्दाभिनयसम्पत्तये, सामाजिकानामानुषङ्गिक-मङ्गलसिद्धये च शिष्टाचारज्ञापितस्मृतितर्कित-श्रुतिबोधितकर्त्तव्यताकमाशीर्वादा त्मकं स्वरचितं नान्द्यात्मकं मङ्गलं सूत्रधारमुखेन पाठयितुं ततो नाटकीयकथा-वस्तूपक्षेपं कारयितुं च रङ्गमञ्चे सूत्रधारं प्रवेशयन्निर्दिशति—नान्द्यन्त इति । नान्द्यन्ते—नान्दी = आनकः ('दुन्दुभिस्त्वानको भेरी भम्भा नासूश्च नान्द्यपि' इति वैजयन्ती), नान्द्याः, उपलक्षणत्वाद् वाद्यान्तराणामपि अन्ते = अवसाने (भावे सप्तमी) । ततः = तदनन्तरम्, वाद्यनादनादिरूपनान्दीसमापनानन्तर-मेवेत्यर्थः, क्रियान्तरेण कालक्षेपमकृत्वेति भावः । 'ततः' इति पदेन नान्दी-समापनसूत्रधारप्रवेशक्रिययोर्मध्ये क्रियान्तराभावो द्योत्यते, अन्यथा 'नान्द्यन्ते' इति भावे सप्तम्यैव सूत्रधारप्रवेशक्रियाभावावगमात् 'ततः' इति पदस्य वैयर्थ्यं प्रसज्येत । 'नान्दी' इति पदेनात्र वाद्यवादनरूपैव नान्दी ग्राह्या, न तु कवि-रचिता 'आशीर्वचनसंयुक्ता स्तुतिर्यस्मात्प्रयुज्यते । देवद्विजनृपादीनां तस्मान्ना-

---

(वाद्यवदानात्मक : नन्दी के समाप्त होने पर उसके बाद ही सूत्रधार प्रवेश करता है ।)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

सूत्रधारः—

नारायणस्त्रिभुवनैकपरायणो वः
पायादुपायशतयुक्तिकरः सुराणाम् ।

न्दीति संज्ञिता ॥'—इति लक्षणलक्षिता मङ्गलश्लोकपाठात्मिका नान्दी तस्याः सत्काव्यरूपतया रङ्गप्रयोज्यत्वेन सूत्रधारादेः कस्यचित्प्रवेशं विना प्रयोक्तुमशक्यत्वात् । प्रविशति = रङ्गमञ्चे समागच्छति । सूत्रधारः—सूत्रं धारयतीति सूत्रधारः (कर्मण्यण्) प्रधानन्ट. । "वर्णनीयं कथासूत्रं प्रथम येन सूच्यते । रङ्गभूमिं समाक्रम्य सूत्रधारः स उच्यते ॥" इति तल्लक्षणम् । भरतस्त्वाह — "नाट्योपकरणादीनि सूत्रमित्यभिधीयते । सूत्रं धारयतीत्यर्थे सूत्रधारो निगद्यते ॥" इति ॥

नाटकग्रन्थप्रारम्भे कविनिबद्धां मङ्गलपद्यरूपामाशीर्वादात्मिकां नान्दीं सूत्रधारः पठति—नारायण इति । त्रिभुवनैकपरायणः - त्रयाणां भुवनानां समाहारः त्रिभुवनम् [समाहारद्विगुः, 'पात्राद्यन्तस्य न' इति वार्त्तिकेन 'अकारान्तोत्तरपदोद्विगुः स्त्रियामिष्टः' इति प्राप्तस्य स्त्रीत्वस्य निषेधे 'स नपुंसकम्' इति नपुंसकत्वम् ।] त्रिभुवने = त्रैलोक्ये, लक्षणया त्रैलोक्यप्राणिरक्षणे इत्यर्थः एकः = प्रधानः, परायणः = तत्परः । एतेन नारायणस्य विष्णुत्वेन जगत्पालनहेतुत्वं सूचितम् । सुराणाम् = देवानां, विजयायेति भावः । उपायशतयुक्तिकरः- उपायानाम् = कूटोद्योगानाम्, शतानि = शतसङ्ख्यकानि, तेषाम् युक्तिः = योजना, तां करोतीति तथोक्तः, विविधकूटनीतिप्रयोगेणासुरान् संहृत्य देवानां विजयप्रद इत्यर्थः । एतेन नारायणस्य सुरहितकारित्वं सूचितम् । लोकत्रयाविरत०—त्रयोऽवयवा यस्य तत् त्रयम् ['संख्याया अवयवे तयप्' इति तयप् तद्धितप्रत्ययः । 'द्वित्रिभ्यां तयस्यायज्वा' इति तयस्यायजादेशः ।] लोकानां त्रयमिति लोकत्रयम् (षष्ठीसमासः) । त्रयाणां लोकानां समुदाय इति यावत् । लोकत्रयस्य = त्रिभुवनस्य ('लोकस्तु भुवने जने, इत्यमरः ।) अविरतम् = सततम्, अभिनीयमानमिति भावः, यन्नाटकम् तस्य तन्त्रम् = कला, तस्य यद् वस्तु =

सूत्रधार—तीनों लोकों (प्राणियों की रक्षा) में मुख्यतया तत्पर, देवों के (विजयार्थ) सैकड़ों उपायों की योजना करने वाले तथा तीनों लोकों के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

लोकत्रयाविरतनाटकतन्त्रवस्तु-
प्रस्तावनाप्रतिसमापनसूत्रधारः ॥ १ ॥

(परिक्रम्य) एवमार्यमिश्रान्विज्ञापयामि। अये किं नु खलु मयि विज्ञापनव्यग्रे शब्द इव श्रूयते। अङ्ग पश्यामि।

कथावस्तु, तस्य प्रस्तावना = स्थापना, समापनम् = उपसंहारश्च, तस्य सूत्रधारः = प्रधाननटः. जगतामुत्पादकः संहारकश्चेति भावः। एतेन नारायणस्य ब्रह्मरूपत्वेन जगद्विधातृत्वं, रुद्रत्वेन च जगत्संहारकत्वं च सूचितम्। नारायणः— नाराः = आपः, अयनं यस्य स तथोक्तः, विष्णुरित्यर्थः। ["आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः। ता यदस्यायनं पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः ॥" इति मनुस्मृतिः (१।१०)] क्षीरसागरवासीत्यर्थः। वः = युष्मान् (सामाजिकान्)। पायात् = रक्ष्यात् (पा रक्षणे धातोराशिषि लिङ्)। यो नारायणो विष्णुरूपेण त्रैलोक्यं पालयति, ब्रह्मरूपेण जगन्ति सृजति, रुद्ररूपेण च संहरति, यश्च विविधकूटनीतिप्रयोगेण देवैरसुरान् संहार्य तान् विजयिनः कुर्वन्ति, स नारायणो युष्माकं (सामाजिकानान्) सर्वतो रक्षां क्रियात् इति सरलार्थः। वसन्ततिलकं वृत्तम् 'उक्तं वसन्ततिलकं तभजा जगौ गः' इति तल्लक्षणात् ॥ १ ॥

परिक्रम्येति। परिक्रम्य = अभिनयविशेषं कृत्वा, कानिचित् पदानि संचर्येत्यर्थः। एवम् = ईदृशम्। आर्यमिश्रान्—आर्याश्च ते मिश्राः इति आर्यमिश्राः = महानुभावाः, तान्। मिश्राः = आदरणीयाः। आर्यलक्षणं च--"कर्त्तव्यमाचरन् कार्यमकर्तव्यमनाचरन्। तिष्ठति प्रकृताचारे स वा आर्य इति स्मृतः ॥" इति। विज्ञापयामि = सूचयामि। अये = विस्मयद्योतकमव्ययपदम्। मयि = सूत्रधारे इत्यर्थः। विज्ञापनव्यग्रे—विज्ञापनम् = सूचनम्, तत्र व्यग्रः = साभिप्रायं व्यस्तः, तस्मिन् (भावे सप्तमी)। अङ्ग=भो ("सम्बोधनार्थकाः

सतत (अभिनीयमान) नाटक की कला-सम्बन्धी कथा वस्तु की प्रस्तावना एवम् उपसंहार के सूत्रधार नारायण आप लोगों की रक्षा करें ॥ १ ॥

(घूमकर) आप महानुभावों को ऐसा सूचित करता हूँ। अरे! क्या बात है! मेरे सूचना देने में व्यस्त होते ही शब्द-सा सुनाई दे रहा है। अच्छा देखता हूँ (क्या बात है)।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(नेपथ्ये ।)

भो भो निवेद्यतां निवेद्यतां तावत् !

सूत्रधारः—भवतु ! विज्ञातम् । एष खलु संशप्तकानीकनिवाहिते जनार्दनसहाये धनञ्जये तदनन्तरमुपगतभीष्मवधामर्षितैर्धार्तराष्ट्रैः परिवार्य निपातितः कुमारोऽभिमन्युः । तथाहि—

यान्त्यर्जुनप्रत्यभियानभीता यतोऽर्जुनस्तां दिशमीक्षमाणाः ।

स्युः प्याट्पाडङ्ग हे है भोः:" इत्यमरः) । नेपथ्ये = कुशीलवकुटुम्बस्य स्थानं नेपथ्यं तत्र ।

सूत्रधार इति । संशप्तकानीकनिवाहिते—संशप्तकाः = सम्यक् शप्तमङ्गीकारो येषां ते (समासान्तः कप्) । त्रिगर्तराजपुत्राः सुशर्मादयः इत्यर्थः । तेषामनीकैः = सैन्यैः, निवाहिते = सुदूरमपनीते । जनार्दनसहाये = सकृष्णे इत्यर्थः । धनञ्जये = अर्जुने (भावे सप्तमी) । उपगतभीष्मवधामर्षितैः-उपगतः = घटितः यो भीष्मस्य = भीष्मपितामहस्य वधः, तेन अमर्षितैः = संजातक्रोधैः । धार्तराष्ट्रैः—धृतराष्ट्रस्य अपत्यानि पुमांसः धार्तराष्ट्राः = दुर्योधनादयः ('तस्यापत्यम्' इति अपत्यार्थे अण् तद्धितप्रत्ययः ।) तैः परिवार्य = सर्वत आच्छाद्य । निपातितः = हतः । कुमारः = राजकुमारः । अभिमन्युः = तन्नामा अर्जुनपुत्रः ।

यान्तीति । सूत्रधारः कोलाहलहेतुं निरूपयति—यान्तीति । अर्जुनप्रत्यभियानभीताः—अर्जुनस्य प्रत्यभियानम् = वैरशोधनार्थमाक्रमणम्, तस्माद् भीताः= भयाकुलाः । यतः = यया दिशा अर्जुनः (गत इति शेषः) तां दिशम् ईक्षमाणाः = पश्यन्तः, परावर्तत अर्जुनो न वेति विलोकयन्त इति भावः । सौभद्रवाणाङ्कित-

---

(नेपथ्य में)

अजी-अजी, निवेदन किया जाय निवेदन किया जाय ।

सूत्रधार—अच्छा, समझ गया । निश्चय यह संशप्तकों की सेनाओं द्वारा कृष्ण समेत अर्जुन को दूर ले जाये जाने पर, उसके बाद, भीष्मपितामह के हुए वध के कारण कुपित धृतराष्ट्र के पुत्रों के द्वारा अभिमन्यु चारों तरफ से घेरकर मार डाला गया । इसी लिए—

सुभद्रा के पुत्र (अभिमन्यु) के बाणों से क्षत-विक्षत अतएव हतचेतन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

नराधिपाः स्वानि निवेशनानि सौभद्रबाणाङ्कितनष्टसंज्ञाः ॥ २ ॥

(निष्क्रान्तः)

स्थापना ।

(ततः प्रविशति भटः ।)

भटः - भो भो ! निवेद्यतां तावत्पुत्रशतश्लाध्यबान्धवाय विज्ञान-

---

नष्टसंज्ञाः—सौभद्रः—सुभद्राया अपत्यंपुमान् सौभद्रः (अपत्यार्थे अण्, ढक्प्रत्ययोऽपि भवति तदा 'सौभद्रेय' इत्यपि) अभिमन्युः, तस्य बाणैः अङ्किताः = क्षतविक्षता इत्यर्थः, अत एव नष्टा संज्ञा = चेतना येषां तथाभूताः अभिमन्युना बाणैर्दुरवस्थां प्रापिता इति भावः । नराधिपाः—अधिकं पान्ति इति अधिपाः (आतश्चोपसर्गे' इति कः, 'आतोलोप इटि च' इति आकारलोपः) नराणाम् अधिपाः इति नराधिपाः = राजानः । स्वानि = स्वकीयानि । निवेशनानि = शिविराणि (निविशन्तेऽस्मिन्निति निवेशनम्, नि + √विश् + ल्युट्, कृत्यल्युटोबहुलम्) यान्ति=गच्छन्ति । इन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोर्मिश्रणादुपजातिर्वृत्तम् ॥२॥

इति स्थापना (प्रस्तावना)

भट इति । भटः = सैनिकः । पुत्रशतश्लाध्यबान्धवाय—पुत्राणां शतम् इति पुत्रशतम् । पुत्रशतं च श्लाध्याः = सुयोग्याः बान्धवाश्च = सम्बन्धिनो मित्राणि च यस्य तस्मै, शतपुत्रश्लाध्यबान्धवयुक्तायेत्यर्थः । विज्ञानविस्तारित०—विज्ञानेन = प्रज्ञया विस्तारितौ विस्तारं गमितौ विनयाचारौ विनयः सदाचारश्च, तावेव दीर्घे = विशाले, चक्षुषी = नेत्रे यस्य तस्मै । प्रज्ञावर्धितविनयाचाररूपविशालनेत्रसम्पन्नायेत्यर्थः ।

राजा लोग, अर्जुन के पुनः आक्रमण से डरे हुए, जिधर अर्जुन गये हैं, उसी दिशा की ओर देखते हुए, अपने शिविरों को जा रहे हैं ॥ २ ॥

(चला गया)

इस प्रकार स्थापना (प्रस्तावना) समाप्त हुई ।

(तदनन्तर भट प्रवेश करता है ।)

भट - अजी अजी ! सौ पुत्रों तथा प्रशस्य बान्धवों से युक्त, प्रज्ञा से

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विस्तारितविनयाचारदीर्घचक्षुषे महाराजाय धृतराष्ट्राय । एष खलु
योधस्यन्दनवाजिवारणवधैर्विक्षोभ्य राज्ञां बलं
बालेनार्जुनकर्म येन समरे लीलायता दर्शितम् ।
सौभद्रः स रणे नराधिपशतैर्वेगागतः सर्वशः
खे शक्रस्य पितामहस्य सहसैवोत्सङ्गमारोपितः ॥ ३ ॥

भटो धनञ्जयपुत्रस्य शौर्यं वर्णयन् तन्मरणं निवेदयति—योधस्यन्दनेति । योधानाम् = सैनिकानाम्, स्यन्दनवाजिनाम् = रथाश्वानाम्, वारणानां च = गजानां च, वधैः = हननैः । राज्ञाम् = नृपाणाम्, बलम् = सैन्यम्, विक्षोभ्य = विक्षुब्धं कृत्वा, येन बालेन = बाल्यावस्थायुक्तेन अभिमन्युना । लीलायता = क्रीडां कुर्वता । समरे = युद्धे । अर्जुनकर्म–अर्जुनस्य कर्म दर्शितम् = प्रकटीकृतम्, अर्जुनेनेव तेन शत्रुविनाशः कृत इति भावः । रणे = संग्रामे । सः = तादृशो वीरः । सौभद्रः = अभिमन्युः । नराधिपशतैः = असंख्यनृपतिभिः । वेगागतैः— वेगेन = त्वरया, आगतैः = संप्राप्तैः । सर्वशः = सर्वतः । खे = स्वर्गे । पितामहस्य = पितुः = अर्जुनस्य पिता = पितामहः इन्द्रः तस्य । उत्सङ्गम् = अङ्कम् । सहसैव = झटित्येव । आरोपितः = स्थापितः । सहसा सर्वतो विनिपत्यासंख्यनृपैरभिमन्युर्हत इति भावः ।

अर्जुनकर्म दर्शितमित्यत्रार्जुनकर्म सदृशं कर्मेति बोधनादसम्भवद्वस्तुसम्बन्धनिदर्शनाऽलङ्कारः । 'नराधिपशतैरभिमन्युर्हतः" इति गम्यार्थस्यैवोक्तिवैचित्र्यपूर्वकमभिधानात् पर्यायोक्तालङ्कारश्च । द्वयोर्नैरपेक्ष्येण संस्थितेः संसृष्टिः । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम्, तल्लक्षणं च यथा—'सूर्याश्वैर्यदि मः सजौ सततगाः शार्दूलविक्रीडितम्' । इति ॥ ३ ॥

विस्तार को प्राप्त विनय-सदाचार रूप विशाल नेत्रों वाले महाराज धृतराष्ट्र से निवेदन किया जाय । यह—

सैनिकों के रथों के घोड़ों तथा हाथियों के विनाश से जिस बालक ने क्रीडा करते हुए (अनायास) युद्ध में अर्जुन का-सा कर्म प्रदर्शित किया, वह सुभद्रा का पुत्र (अभिमन्यु) युद्ध में चारों ओर से वेगपूर्वक आये हुए सैकड़ों नृपों के द्वारा सहसा ही स्वर्ग में (अपने) पितामह (इन्द्र) की गोद में बैठा दिया गया ॥ ३ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(ततः प्रविशति धृतराष्ट्रो गान्धारी दुःशला प्रतिहारी च ।)

धृतराष्ट्रः—कथं नु भोः !

केनैतच्छ्रुतिपथदूषणं कृतं मे
कोऽयं मे प्रियमिति विप्रियं ब्रवीति !
कःऽस्माकं शिशुवधपातकाङ्कितानां
वंशस्य क्षयमवघोषयत्यभीतः ॥ ४ ॥

तत इति । गान्धारी=तन्नाम्नो धृतराष्ट्रभार्या दुर्योधनजननी च । दुःशला=धृतराष्ट्रपुत्री, दुर्योधनभगिनी जयद्रथपत्नी च । प्रतीहारी = द्वारपालिका ।

अभिमन्युवधं श्रुत्वा धृतराष्ट्रः सशोककोधमाह—केनैतदिति ।

केन = केनजनेनेत्यर्थः । एतत् = सौभद्रो हतः इत्येतद्वचो विश्राव्येतिभावः । मे = मम, धृतराष्ट्रस्येत्यर्थः । श्रुतिपथदूषणम् = श्रुत्योः = कर्णयोः 'पन्थाः इति श्रुतिपथः कर्मविवरमित्यर्थः ('ऋक्पूरब्धूः पथामानक्षे' इति अप्रत्ययः समासान्तः) तस्य दूषणम् = आघातः । कृतम् = विहितम् । सौभद्रो हतः इति वृतान्तं विश्राव्य केन मम कर्णावाहताविति भावः । कोऽयम् = अयं को जनः ? यो मे = मम, प्रियम् = अभीष्टम् इति (मत्वा) विप्रियम् = अनिष्टम् । ब्रवीति = वदति । कः = को जनः इत्यर्थः, शिशुवधपातकाङ्कितानाम्—शिशुः = बालः, अभिमन्युरित्यर्थः, तस्य वध एव पातकः तेन अङ्किताः = लाञ्छिताः, तेषाम्, अस्माकम् = कौरवाणामित्यर्थः, वंशस्य क्षयम् = विनाशम् । अभीतः = निर्भीकः सन् । अवघोषयति = ऊच्चैर्वदति, सर्वत्र प्रसारयतीत्यर्थः । अभिमन्युवधवृत्तान्तं श्रुत्वा मे कर्णकुहरे नितरां पीडिते एतादृशवृत्तान्तश्रवणेन मम कर्णौ ह्यपवित्रावभूताम्, एतच्छ्रवणमपि पापं मन्ये । ममेदं प्रियं भवेदिति मत्वैवायं जन इमं वृत्तान्तम् श्रावयत्, स तु न जानाति यन्नितरामप्रियमेतन्मे । एतद्वृत्तान्तश्रावणेनायं निर्भीको जनोऽस्मान् शिशुवधपापलाञ्छितान्, अस्माकं वंशोच्छेदं चावघोषयति । यद्यभिमन्युर्हतस्तर्हि कौरवानां नाशो विनिश्चित इति धृतराष्ट्रोक्ते-

---

(तदन्तर धृतराष्ट्र, गान्धारी, दुःशला तथा प्रतिहारी का प्रवेश)

धृतराष्ट्र—अजी, (यह) कैसे !

किसने मेरे कर्णपथ को यह दूषित किया ? यह कौन मेरा प्रिय समझ कर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गान्धारीः—महाराअ ! अत्थि उण जाणीअदि केवलं पुत्तसंखअकारओ कुलविग्गहो भविस्सदि त्ति । [महाराज ! अस्ति पुनर्ज्ञायते केवलं पुत्रसंक्षयकारकः कुलविग्रहो भविष्यति ।]

धृतराष्ट्रः—गान्धारि ! ज्ञायते ।

गान्धारी—महाराअ कदा णु खु ! [महाराज कदा नु खलु ।]

धृतराष्ट्रः—गान्धारि ! शृणु—

अद्याभिमन्युनिधनाज्जनितप्रकोपः
सामर्षकृष्णधृतरश्मिगुणप्रतोदः ।

राशयः । प्रहर्षिणी वृत्तम्, तल्लक्षणं यथा— 'आशाभिर्मनजरगाः प्रहर्षिणीयम् ।' इति ॥ ४ ॥

गान्धारीति । केवलम् = फलान्तरशून्यमित्यर्थः । कुलविग्रहः = कौरवपाण्डवयुद्धम् । धृतराष्ट्र इति । ज्ञायते (मयापीति शेषः) अयं कुलविग्रहः पुत्रसंक्षयकारक एव भविष्यति इत्यहमपि जाने इति धृतराष्ट्रोक्तेराशयः ।

गान्धारीति । कदा = कस्मिन् समये । तादृशस्य युद्धस्य सम्भावना कदा ? इति गान्धारीप्रश्नस्याशयः ।

धृतराष्ट्रः । कुलविग्रहस्य स्वरूपं प्रतिपादयति—अद्याभिमन्युनिधनादिति । अद्य = अस्मिन् दिने, अभिमन्युनिधनात् = स्वपुत्रस्याभिमन्योर्विनाशात् । जनितप्रकोपः— जनितः = उत्पादितः, कोपः = क्रोधः यस्य स तथोक्तः, प्रकुपित इत्यर्थः । सामर्षकृष्ण०—सामर्षम् = सकोपं यथा स्यात्तथा, कृष्णेन धृतौ =

अप्रिय कथन कर रहा है ? कौन निर्भय होकर शिशु (अभिमन्यु) के वधरूप पाप से लाञ्छित हमारे वंश के विनाश की घोषणा कर रहा है ? ॥ ४ ॥

गन्धारी—महाराज, तथ्य यह है कि (कौरव और पाण्डव) दो कुलों का विग्रह केवल पुत्रों के विनाश का हेतु होगा, ऐसा मालूम हो रहा है ।

धृतराष्ट्र—गान्धारी ! (मैं भी) समझता हूँ ।

गान्धारी—महाराज कब (ऐसी सम्भावना है) ?

धृतराष्ट्र—गान्धारी ! सुनो,

अब अभिमन्यु के वध से अत्यन्त कुपित, और क्रुद्ध कृष्ण के द्वारा गृहीत रश्मिरज्जु (लगाम) तथा चाबुक वाला अर्जुन अपने उग्र धनुष (गाण्डीव)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पार्थः करिष्यति तदुग्रधनुः सहायः
शान्तिं गमिष्यति विनाशमवाप्य लोकः ॥ ५ ॥

गान्धारी—हा वच्छ अभिमञ्जो ! ईसिसे वि णाम पुरुसखअकारए कुलविग्गहे वत्तमाणे वालभावणिमज्जणं अम्हाणं भग्गकमेण करअंतो कहिं दाणिं पोत्तअ ! गदोसि । [हा वत्स अभिमन्यो ! ईदृशेऽपि नाम पुरुषक्षयकारके कुलविग्रहे वर्तमाने बालभावनिमज्जनमस्माकं भाग्यक्रमेण कुर्वन् कुत्रेदानीं पौत्रक ! गतोऽसि ।]

गृहीतौ, रश्मिगुणः = वल्गा, प्रतोदः = कशा च यस्य सः । उग्रधनुःसहायः—उग्रम् = कठोरम्, धनुः = गाण्डीवम्, सहायः यस्य सः । पार्थः = पृथा = कुन्ती तस्याः पुत्रः, अर्जुन इत्यर्थः । तत् तत् कर्म, करिष्यति (येन) लोकः = समस्तलोकः । विनाशमवाप्य = विनष्टो भूत्वा । शान्तिं गमिष्यति = प्रकृतिस्थो भविष्यति । सर्वाञ्छत्रून् विनाश्य लोके शान्तिं स्थापयिष्यतीत्यर्थः । वसन्ततिलकं वृत्तम् । तल्लक्षणं तु प्रागेवोक्तम् ॥ ५ ॥

गान्धारीति । ईदृशेऽपि = अनर्थकारिणि इत्यर्थः । नामेति निन्दायाम् । पुरुषक्षयकारके—पुरुषाणाम् = वीरजनानामित्यर्थः क्षयम् = विनाशं करोतीति तस्मिन् वर्तमाने = प्रवर्तमाने इत्यर्थः, कुलविग्रहे = कौरवपाण्डवयुद्धे । बालभावनिमज्जनं कुर्वन्—बालभावात् = बाल्याद्धेतोः निमज्जनम्—सम्यक् प्रवेशमित्यर्थः, कुर्वन् । अस्माकं भाग्यक्रमेण = भाग्यदोषेणेत्यर्थः । पौत्रक—पुत्रस्यापत्यं पुमान् पौत्रः (अपत्यार्थेऽण्) अनुकम्पितः पौत्रः इति पौत्रकः, तत्सम्बुद्धौ हे पौत्रक ! ('अनुकम्पायाम्' ५।३।७६ इति सूत्रेण अनुकम्पायुक्तार्थाभिधायिनः पौत्रशब्दात् स्वार्थे कः तद्धितप्रत्ययः ।)

की सहायता से वह (शौर्य) करेगा (जिससे) समस्त लोक विनष्ट होकर शान्ति को प्राप्त होगा ॥ ५ ॥

गान्धारी—हाय वत्स अभिमन्यु ! हमारे भाग्य दोष के कारण, हो रहे नरसंहारक कुल-विग्रह में तुम बाल-भाव के कारण प्रवेश कर, हे प्रिय पौत्र ! अब कहाँ चले गए ?

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दुःशला - जेण दाणिं वहूए उत्तराए वेधव्वं दाइदं, तेण अत्तणो जुवदिजणस्स वेधव्वमादिट्ठं। [येनेदानीं वध्वै उत्तरायै वैधव्यं दत्तं, तेनात्मनो युवतिजनाय वैधव्यमादिष्टम् ।]

धृतराष्ट्रः—अथ केनैष व्यसनार्णवस्य सेतुबन्धः कृतः ।

भटः—महाराज ! मया ।

धृतराष्ट्रः—को भवान् ।

भटः—महाराज ! ननु जयत्रातोऽस्मि ।

धृतराष्ट्रः—जयत्रात !

केनाभिमन्युर्निहतः कस्य जीवितमप्रियम् ।

येन - पुरुषेण । इदानीम् = संप्रति । वध्वै उत्तरायै = अभिमन्युभार्यायै उत्तरायै (संप्रदाने चतुर्थी) । वैधव्यम् = विगतो धवः = पतिर्यस्याः सा विधवा, तस्याः भावः वैधव्यम्, विधवा शब्दात् 'गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च' पा० ५।१।१२४ इति सूत्रेण ष्यञ् तद्धितप्रत्ययः । अभिमन्युं हत्वा तद्भार्यामुत्तरां यो विधवामकार्षीत्, सोऽप्यचिरेणैव हतो भूत्वा स्वपत्नीमवश्यमेव विधवां करिष्यतीति दुःशलोक्तेरभिप्रायः ।

धृतराष्ट्र इति—अथेति प्रश्नारम्भे । व्यसनार्णवस्य—व्यसनम् = विपद्, तदेव अर्णवः = सिन्धुः, तस्य ।

धृतराष्ट्रो जयत्रातनामानं भटं पृच्छति—केनाभिमन्युरिति । जयत्रात ! केन = केन पुरुषेण, अभिमन्युः = तदभिधानोऽर्जुनपुत्रः, निहतः = मारितः ।

दुःशला—जिसने इस समय बहू उत्तरा को वैधव्य दिया है, उसने अपनी स्त्रियों को विधवा होने का आदेश दिया है ।

धृतराष्ट्र—अच्छा, विपत्ति-सिन्धु पर यह किसने पुल बाँधा है ? (अर्थात् यह समाचार किसने सुनाया है ?) ।

भट—महाराज ! मैंने ।

धृतराष्ट्र—तुम कौन हो ?

भट—महाराज ! अरे मैं जयत्रात हूँ ।

धृतराष्ट्र—जयत्रात ! किसने अभिमन्यु को मारा ! किसे (अपना)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पञ्चानां पाण्डवाग्नीनामात्मा केनेन्धनीकृतः ॥ ६ ॥

भट—महाराज ! बहुभिः किल पार्थिवैः समागतैर्निहतः कुमारोऽभिमन्युः । स्यात्तु जयद्रथो निमित्तभूतः ।

धृतराष्ट्रः—हन्त जयद्रथो निमित्तभूतः ।

भटः—महाराज ! अथ किम् ?

धृतराष्ट्रः—हन्त जयद्रथो निहतः ।

(तच्छ्रुत्वा दुःशला रोदिति ।)

धृतराष्ट्रः—कैषा रोदिति ।

कस्य = पुरुषस्य, जीवितम् = जीवनम्, अप्रियम् = अनभिलषितम्, को मृत्युं वाञ्छति येनाभिमन्युर्हतः ? अभिमन्युहननेन तस्य मरणं ध्रुवमिति भावः । केन = पुरुषेण, पञ्चानाम् = पञ्चसंख्याकानाम्, पाण्डवाग्नीनाम्—पाण्डवाः = युधिष्ठिरादय एवाग्नयस्तेषाम्, आत्मा = स्वशरीरम्, इन्धनीकृतः = न इन्धनम् अनिन्धनम्, अनिन्धम् इन्धनत्वेन प्रापितः इन्धनीकृतः (अभूततद्भावे च्विः) । रूपकालङ्कारः । अनुष्टुब्वृत्तम्—तल्लक्षणं यथा—'श्लोके षष्ठं गुरु ज्ञेयं सर्वत्र लघु पञ्चमम् । द्विचतुष्पादयोर्ह्रस्वं सप्तमं दीर्घमन्ययोः ।' इति ॥ ६ ॥

भट इति । किलेति वार्तायाम् । बहुभिः = बहुसंख्याकैः । पार्थिवैः—पृथिव्या ईश्वराः पार्थिवाः = राजानः, तैः (पृथिवीशब्दात् 'तस्येश्वरः' पा० ५।१।४२ इति सूत्रेण अण्) समागतैः = मिलितैरित्यर्थः ।

जीवन अप्रिय हो गया ? पाण्डव रूप पञ्चाग्नि के लिए किसने अपने को इन्धन बना लिया ? ॥ ६ ॥

भट—महाराज ! सुना जाता है—बहुत से राजाओं ने मिल कर कुमार अभिमन्यु को मारा, किन्तु संभवतः उसका निमित्त जयद्रथ था ।

धृतराष्ट्र—खेद का विषय है, क्या जयद्रथ निमित्त हुआ ?

भट—महाराज ! और क्या !

धृतराष्ट्र—शोक है (तब तो) जयद्रथ मारा गया ।

(यह सुन कर दुःशला रोती है ।)

धृतराष्ट्र—यह कौन रो रही है ?

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रतिहारी—महाराअ ! भट्टिदारिआ दुश्शला । [महाराज ! भर्तृदारिका दुःशला ।]

धृतराष्ट्रः—वत्से अलमलं रुदितेन । पश्य,

भर्तुस्ते नूनमत्यन्तमवैधव्यं न रोचते ।
येन गाण्डीविबाणानामात्मा लक्षीकृतः स्वयम् ॥ ७ ॥

दुःशला—तेण हि अणुजाणादु मं तादो, अहं वि गमिस्सं वहूए उत्तराए सआस । [तेन ह्यनुजानातु मां तातः, अहमपि गमिष्यामि वध्वा

धृतराष्ट्र इति । वत्से = पुत्रि, अलमलं रुदितेन अलमलमिति संभ्रमेद्विरुक्तिः । किञ्चित्साध्यं रुदितेन—रुदितेन = रोदनेन (सामान्ये नपुंसके भावे क्तः) रुदितेन किञ्चित्साध्यं नास्तीत्यर्थः । 'गम्यमानापि क्रिया कारकविभक्तौ प्रयोजिका' इति करणत्वात्करणे तृतीया ।

भर्तुस्त इति । धृतराष्ट्रः स्वतनूजां दुःशलां वस्तुस्थितिं विज्ञापयति—भर्तुरिति । ते = तव, दुःशलाया इत्यर्थः, भर्तुः=पत्युः, जयद्रथस्येत्यर्थः, अवैधव्यम् = वैधव्याभावम्, सौभाग्यमिति यावत्, अत्यन्तं न रोचते = अत्यन्तमरुचिकरमिति प्रतीयत इत्यर्थः । भर्तुरित्यत्र 'रुच्यर्थानां प्रीयमाणः' इत्यनेन सूत्रेण प्राप्ताया-श्चतुर्थ्याः स्थाने शेषत्वविवक्षायां षष्ठी । येन = तव पत्या जयद्रथेनेत्यर्थः । स्वयम् = आत्मनैव, नान्यप्रेरितेनेति भावः । गाण्डीविबाणानाम्—गाण्डीवमस्त्यस्येति गाण्डीवी ('अत इनिठनौ' इति मतुबर्थे इनिः) तस्य बाणानाम् = शराणाम्, आत्मा = शरीरम् ('आत्मा यत्नो धृतिर्बुद्धिस्स्वभावो ब्रह्म वर्ष्म च' इत्यमरः) लक्षीकृत- = विषयीकृतः (अभूततद्भा वेच्विः) । अनुष्टुब्वृत्तम् ॥ ७ ॥

दुःशलेति । तातः = पिता, धृतराष्ट्र इत्यर्थः । माम् = दुःशलामित्यर्थः ।

प्रतीहारी—महाराज ! भर्तृदारिका दुःशला (रो रही है) ।

धृतराष्ट्र—पुत्री, मत रोओ । देखो—

तुम्हारे पति (जयद्रथ) को तुम्हारा सौभाग्य अत्यन्त अरुचिकर है, जिसने स्वयं अपने को अर्जुन के बाणों का लक्ष्य बना लिया ॥ ७ ॥

दुःशला—तो पिता जी (आप) मुझे अनुज्ञा दें, मैं भी बहू उत्तरा के पास जाऊँगी ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

उत्तरायाः सकाशम् ।]

धृतराष्ट्रः—वत्से किमभिधास्यसि ।

दुःशला—ताद ! एवं च भणिस्सं–अज्जकालिअं च दे वेसग्गहणं अहं वि उवधारइस्सामि त्ति । [तात ! एवं च भणिष्यामि–अद्यकालिकं च ते वेषग्रहणमहमप्युपधारयिष्यामीति ।]

गान्धारी—पुत्तिए मा खु मा खु अमंगलं भणाहि । जीवदि खु दे भत्ता । [पुत्रिके ! मा खलु, मा खल्वमङ्गलं भण । जीवति खलु ते भर्ता ।]

दुःशला—अम्ब ! कुदो मे एत्तिआणि भाअधेआणि । जो जणद्दणसहाअस्स धणंजअस्स विप्पिअं करिअ कोहि णाम जीविस्सिदि । [अम्ब ! कुतो मे एतावन्ति भागधेयानि । यो जनार्दनसहायस्य धनञ्जयस्य

अनुजानातु = अनुज्ञां ददातु । सकाशम् = पार्श्वम् ।

धृतराष्ट्र इति । वत्से – पुत्री, (उत्तरायाः सकाशं गत्वा ताम्) किम् अभिधास्यसि = वदिष्यसि ।

दुःशलेति । तात = पितः, भणिष्यामि = वदिष्यामि = । अद्यकालिकम् = अद्यतनम् ! ते = तव, उत्तराया इत्यर्थः । अद्य त्वं (उत्तरा) यं वेषं धृतवत्यसि, तमेव वेषमचिरेणैवाहमपि (दुःशला) धारयिष्यामि, त्वमिवाहमपि वैधव्यं यास्यामीति भावः । इति दुःशलोक्तेराशयः । गान्धारीति—अमङ्गलम् = अशुभम् । मा खलु भण = मा वद (संभ्रमेद्विर्वचनम्) जीवति = प्राणान् धारयति । खलु = निश्चयेन । ते = तव । भर्ता = पतिः । जीवद्भर्तृका त्वमेवमङ्गलं मा खलु वदेति भावः ।

दुःशलेति । एतावन्ति = ईदृशानीत्यर्थः । भागधेयानि = भाग्यानि । जनार्दनसहायस्य—जनार्दनः = श्रीकृष्णः सहायः यस्य स तस्य । धनञ्जयस्य =

धृतराष्ट्र—पुत्री (उत्तरा से) क्या कहोगी ?

दुःशला—पिता जी, और मैं (उत्तरा से) ऐसा कहूँगी-आज का तुम्हारा जो वेषग्रहण है, उसे मैं भी (निकट भविष्य में) धारण करूँगी ।

गान्धारी—प्रिय पुत्री ! नहीं, अमङ्गल मत बोलो । तुम्हारा पति जीवित है ।

दुःशला—माँ मेरे ऐसे भाग्य कहाँ ? कौन है जो, कृष्ण सहायक हैं जिसके

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitized by eGangotri

विप्रियं कृत्वा को हि नाम जीविष्यति ।]

धृतराष्ट्रः—सत्यमाह तपस्विनी दुश्शला । कुतः—

कृष्णस्याष्टभुजोपधानरचिते योऽङ्के विवृद्धश्चिरं
यो मत्तस्य हलायुधस्य भवति प्रीत्या द्वितीयो मदः ।
पार्थानां सुरतुल्यविक्रमवतां स्नेहस्य यो भाजनं
तं हत्वा क इहोपलप्स्यति चिरं स्वैर्दुष्कृतैर्जीवितम् ॥८॥

अर्जुनस्य । विप्रियम् = अप्रियम् ।

धृतराष्ट्र इति । तपस्विनी = वराकी ।

धृतराष्ट्रो दुःशलायाः प्रागुक्तिं समर्थयन्नाह—कृष्णस्येति । यः = अभिमन्युः, कृष्णस्य = वासुदेवस्य, अष्टभुजोपधानरचिते—अष्टौ भुजा एव उपधानम् = उपबर्हः, तेन रचिते = विहिते, अङ्के = उत्सङ्गे, चिरम् = बहुकालं यावत्, अद्यावधीति भावः । विवृद्धः = वृद्धिं गतः । यः अभिमन्युः, मत्तस्य = मदान्वितस्य, हलायुधस्य -- हलः = लाङ्गलम्, आयुधम् = अस्त्रं यस्य स हलायुधः = बलरामः, तस्य, प्रीत्या = स्नेहेन द्वितीयः = पूर्वादतिरिक्तः, मदः भवति—मदिरापानजमदाद्व्यतिरिक्तो भागिनेय-स्नेहजमदो भवतीत्याशयः । यः = अभिमन्युः सुरतुल्यविक्रमवताम्—सुरतुल्यः = देवसमानः विक्रमः = पराक्रमः अस्त्येषामिति सुरतुल्यविक्रमवन्तः, तेषाम् (अत्र नित्ययोगेमतुप्, अन्यथा सुरतुल्यो विक्रमो येषां तेषां सुरतुल्यविक्रमाणामिति बहुव्रीहेस्तदर्थं प्रतिपत्तिकरत्वेन मतुपो वैयर्थ्यप्रसक्तिः, 'न कर्मधारयान्मत्वर्थीयो बहुव्रीहिश्चेत्तदर्थप्रतिपत्तिकरः' इति) पार्थानाम् = पृथापुत्राणां युधिष्ठरादीनाम्, स्नेहस्य = वात्सल्यस्य, भाजनम् = पात्रम्, तम् = तादृशम् अभिमन्युं हत्वा = व्यापाद्य, स्वैः = स्वकीयैः, दुष्कृतैः = पापैः, इह = जगति, चिरम् = बहुकालम्, जीवितम् = जीवनम्' उपलप्स्यति =

ऐसे अर्जुन का अप्रिय करके जीवित रहेगा ?

धृतराष्ट्र—बेचारी दुःशला सच कह रही है । क्योंकि—

जो (अभिमन्यु) कृष्ण की आठ भुजाओं की तकिया से युक्त उनकी गोदी में आज तक पल कर बड़ा हुआ, जो मत्त बलराम का, स्नेह के कारण दूसरा मद था और जो देवों के समान पराक्रमशाली पाण्डवों के स्नेह का भाजन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

जयत्रात ! अथ तदवस्थं पुत्रं दृष्ट्वा किं प्रतिपन्नं तेन गाण्डीवधन्वना ।

भटः—महाराज ! किं वार्जुनसमीपे वृत्तमेतत् ।

धृतराष्ट्रः—कथमर्जुनोऽपि नात्रासीत् ।

भटः—महाराज ! अथ किम् ?

धृतराष्ट्रः—कथमिदानीं वृत्तमेतत् ।

भटः—श्रूयतां-संशप्तकानीकनिवाहिते जनार्दनसहाये धनञ्जये स

प्राप्स्यति, न कोऽपीति भावः । लभ्धातोः परस्मैपदत्वं चिन्त्यम् । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ ८ ॥

युधिष्ठिरः पुनः पृच्छति जयत्रातम्—अथेति । अथेति प्रश्नवाक्यारम्भे । तदवस्थम्—सा अवस्था यस्य स तदवस्थः तम्' निहतमिति भावः प्रतिपन्नम् = अनुष्ठितम् । गाण्डीवधन्वना—गाण्डीवं धनुर्यस्य स गाण्डीवधन्वा, तेन गाण्डीवधन्वना अर्जुनेन । समासे गाण्डीवधनुश्शब्दे सकारस्य 'धनुषश्च' (५।४।१३२) इत्यनङ् । ङकार इत् । अकार उच्चारणार्थः । उकारस्य यण् ।

भट इति । अर्जुनसमीपे = अर्जुनस्य विद्यमानतायामित्यर्थः । एतत् = अभिमन्युनिधनम् । वृत्तम् = जातम् ।

कथमिदानीं वृत्तमेतदिति धृतराष्ट्रेण पृष्टो भट आह—श्रूयतामिति । जनार्दनसहाये = कृष्णे इत्यर्थः, धनञ्जये = अर्जुने, संशप्तकानीकनिवाहिते-संशप्तकाः = त्रिगर्तराजपुत्राः सुशर्मादयः, तेषामनीकैः = सैन्यैः निवाहिते =

था, उसको मार कर इस संसार में कौन अपने पापों के कारण चिर जीवन पायेगा ॥ ८ ॥

जयत्रात ! अच्छा, इस अवस्था वाले पुत्र को देख कर उस गाण्डीवधारी अर्जुन ने क्या किया ?

भट—महाराज ! क्या यह (घटना) अर्जुन के रहते हुए हुआ है ?

धृतराष्ट्र—क्यों, अर्जुन भी यहाँ नहीं थे ।

भट—महाराज ! और क्या ?

धृतराष्ट्र—तो सम्प्रति यह कैसे हुआ ?

भट—महाराज, सुनें । संशप्तकों की सेनाओं द्वारा कृष्ण समेत अर्जुन के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

बालभावाददृष्टदोषः संग्राममवतीर्णः कुमारोऽभिमन्युः ।

धृतराष्ट्रः—हन्त युक्तरूपोऽस्य वधः । को हि संनिहितशार्दूलां गुहां धर्षयितुं शक्तः । अथ शेषाः पाण्डवाः किमनुतिष्ठन्ति ।

भटः—महाराज ! श्रूयताम् !

चितां न तावत्स्वयमस्य देहमारोपयन्त्यर्जुनदर्शनार्थम् ।
तेषां च नामान्युपधारयन्ति यैस्तस्य गात्रे प्रहृतं नरेन्द्रैः ॥ ९ ॥

सूदूरमपनीते (भावे सप्तमी) । बालभावात् = बाल्यात्, बालोचितचापल्यवशादिति यावत् । अदृष्टदोषः—न दृष्टः दोषः = हानिर्येन सः, संग्राममवतीर्णः = रणभूमिं प्रविष्टः ।

धृतराष्ट्र इति । हन्तेति खेदे । युक्तरूपोऽस्य वधः—युक्तम् = सुव्यवस्थितम्, रूपम् = रीतिर्यस्य स तादृशः, अस्य = अभिमन्योः, वधः = हननम् । तस्यां स्थितौ सर्वथाऽभिमन्युवधस्य संभावनाऽऽसीदेवेति धृतराष्ट्रोक्तेराशयः । संनिहितशार्दूलाम्—संनिहितः = विद्यमानः, शार्दूलः = सिंहः यस्यां ताम् । धर्षयितुम् = प्रवेष्टुमित्यर्थः । शेषाः = अर्जुनाद् व्यतिरिक्ताः । अनुतिष्ठन्ति = कुर्वन्ति ।

धृतराष्ट्रेण पृष्टो भटः पाण्डवानां क्रियां वर्णयति—चितां नेति । (युधिष्ठिरादयस्ते शेषाः पाण्डवाः) तावत् = प्रथमम् ! अर्जुनदर्शनार्थम्—अर्जुनस्य दर्शनायेदमित्यर्जुनदर्शनार्थम्, आगत्यार्जुनःपुत्रशवं पश्यतु इत्युद्दिश्येति भावः । अस्य = अभिमन्योः, देहम् = शरीरम्, शवमिति यावत् । चिताम्—मृतं दग्धुं सञ्चितकाष्ठराशिम्, स्वयम् = स्वकरैरिति भावः । न आरोपयन्ति = न स्थापयन्ति । यैः नरेन्द्रैः = नृपैः, तस्य = अभिमन्योः, गात्रे = शरीरे, प्रहृतम् = प्रहारः कृतः, तेषाम् = नृपाणाम्, नामानि = अभिधेयानि,

---

बहुत दूर ले जाये जाने पर वह कुमार अभिमन्यु बालक होने के कारण कोई हानि न देख कर संग्राम भूमि में उतर पड़ा ।

धृतराष्ट्र—शोक ! इसके वध का ढंग सुव्यवस्थित था (अर्थात् वध की सर्वथा संभावना थी) । कौन सिंह के रहते गुफा में प्रविष्ट हो सकता है ? अच्छा, बाकी पाण्डव क्या कर रहे हैं ?

भट—महाराज ! सुना जाय—

अर्जुन (भी) देख ले, इसलिए (शेष पाण्डव) इस (अभिमन्यु) के शव

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

धृतराष्ट्रः—गान्धारि ! तदागम्यताम् । गङ्गाकूलमेव यास्यावः ।

गान्धारी—महाराअ ! णं तहिं गाहामो । [महाराज, ननु तत्र गाहावहे ।]

धृतराष्ट्रः—गान्धारि ! शृणु ।

अद्यैव दास्यामि जलं हतेभ्यः स्वेनापराधेन तवात्मजेभ्यः ।
न त्वस्मि शक्तः सलिलप्रदानैः कर्तुं नृपाणां शिबिरोपरोधम् ॥ १० ॥

(ततः प्रविशति दुर्योधनो दुश्शासनः शकुनिश्च ।)

दुर्योधनः—वत्स दुश्शासन !

तान् हन्तुमिति भावः । उपधारयन्ति = संचिन्तयन्ति । उपजातिर्वृत्तम् ॥ ९ ॥

धृतराष्ट्रो गङ्गाकूलगमनहेतुं गान्धारीं विज्ञापयति—अद्यैवेति । गान्धारि ! स्वेन = स्वकीयेन, अपराधेन = अभिमन्युवधात्मकेनेति भावः । हतेभ्यः = हनिष्यमाणेभ्य इति भावः । तव = गान्धार्याः, आत्मजेभ्यः = पुत्रेभ्यः (संप्रदाने चतुर्थी) । अद्यैव अस्मिन्नेव काले । जलम् = जलाञ्जलिं दास्यामि । सलिलप्रदानैः = जलाञ्जलिदानैः । तु = किन्तु, नृपाणाम् = राज्ञाम्' शिविरोपरोधम् = शिविरे उपरोधः = अवरोधः तम्, कर्तुं न शक्तः अस्मि, एते स्वैर्दुष्कृत्यैरवश्यमेव मरिष्यन्ति तदेतानवरोद्धुमसमर्थोऽहं तेभ्यो जलाञ्जलिं दास्यामीति भावः । इन्द्रवज्रावृत्तम् ॥ १० ॥

को स्वयं चिता पर नहीं रख रहे हैं तथा जिन राजाओं ने उसके शरीर पर प्रहार किया है उनके नामों का संचिन्तन कर रहे हैं ॥ ९ ॥

धृतराष्ट्र —गान्धारी ! तो आओ, हम (दोनों) गङ्गातट को ही चलें ।

गान्धारी—महाराज ! हम (दोनों) वहाँ स्नान करेंगे ।

धृतराष्ट्र —गान्धारी ! सुनो—

अपने ही अपराध से मारे जाने वाले तुम्हारे पुत्रों को आज ही मैं जलाञ्जलि दूँगा किन्तु इस जलाञ्जलि-दान के द्वारा मैं राजाओं के शिविर को (युद्ध से) रोक नहीं सकता ॥ १० ॥

(तदनन्तर दुर्योधन, दुःशासन और शकुनि प्रवेश करते हैं ।)

दुर्योधन—वत्स दुःशासन !

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यातोऽभिमन्युनिधनात् स्थिरतां विरोधः
प्राप्तो जयः प्रचलिता रिपवो निरस्ताः ।
उन्मूलितोऽस्य च मदो मधुसूदनस्य
लब्धो मयाऽद्य सममभ्युदयेन शब्दः ॥ ११ ॥

दुश्शासनः—अहो नु खलु,
रुद्धाः पाण्डुसुता जयद्रथबलेनाक्रम्य शत्रोर्बलं
सौभद्रे विनिपातिते शरशतक्षेपैर्द्वितीयेऽर्जुने ।

दुर्योधनोऽभिमन्युवधजनितप्रसन्नतां दुःशासनं प्रति वर्णयति—यात इति । अभिमन्युनिधनात्—अभिमन्योः निधनम् = मरणम्, तस्मात् । विरोधः द्वेषः, स्थिरताम् = सुदृढत्वम्, यातः = गतः । जयः प्राप्तः = लब्धः । निरस्ताः = पराजिताः, रिपवः = शत्रवः, प्रचलिताः = प्रकम्पिताः । अस्य = गर्वितस्येत्यर्थः, मधुसूदनस्य—मधुम् = तन्नामानं दैत्यं सूदयति नाशयतीति मधुसूदनः = श्रीकृष्णः, तस्य । मदः = दर्पः, उन्मूलितः = उत्पाटितः विनाशित इत्यर्थः । मया = दुर्योधनेन, अभ्युदयेन समम् = उत्कर्षेण सह । शब्दः = उपाधिः सम्राडित्येवमिति भावः । अद्य = इदानीम् । लब्धः = प्राप्तः । साम्प्रतं सर्वाण्यभीष्टानि मे लब्धानि, न किंचिदवशिष्यत इति भावः । वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ ११ ॥

दुशासनोऽपि स्वपक्षोत्कर्षं व्यनक्ति—रुद्धा इति । जयद्रथबलेन—जयद्रथस्य बलेन = सैन्येन, शत्रोः = विपक्षस्य, बलम् = सैन्यम् आक्रम्य = पराजित्य, पाण्डुसुताः = अर्जुनाद्व्यतिरिक्ता युधिष्ठिरादयश्चत्वारोऽपि पाण्डवाः, रुद्धाः = चक्रव्यूहप्रवेशान्निवारिताः । द्वितीयेऽर्जुने = अर्जुनतुल्यपराक्रमशालिनि, सौभद्रे =

अभिमन्यु के निधन से (हमारा और पाण्डवों का) विरोध दृढ़ हो गया, (शत्रुओं पर) हमें विजय मिल गयी, पराजित शत्रु काँप उठे हैं (घबरा गये हैं), इस कृष्ण का दर्प विनष्ट हो गया तथा मैंने अभ्युदय के साथ-साथ (सम्राट् की) उपाधि (भी) प्राप्त कर ली ॥ ११ ॥

दुःशासन—अहो ! निश्चय ही ।

जयद्रथ की सेना ने शत्रु सेना को आक्रान्त कर पाण्डवों को (चक्रव्यूह में प्रवेश करने से) रोक दिया तथा (वीरता में) द्वितीय अर्जुन (उस) सुभद्रा-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

प्राप्तैश्च व्यसनानि भीष्मपतनादस्माभिरद्याहवे
तीव्राः शोकशराः कृताः खलु मनस्येषां सुतोत्सादनात् ॥१२॥

शकुनिः—

जयद्रथेनाद्य महत्कृतं रणे नृपैरसंभावितमात्मपौरुषम् ।
प्रसह्य तेषां यदनेन संयुगे समं सुतेनाप्रतिमं हृतं यशः ॥ १३ ॥

सुभद्रापुत्रेऽभिमन्यौ, शरशतक्षेपैः—शराणां शतानि तेषां क्षेपैः=आघातैः संख्यातिगशराघातैरित्यर्थः । विनिपातिते = विनाशिते (भावे सप्तमी) भीष्मपतनात्—भीष्मस्य = पितामहस्य, पतनात् = विनाशात्, व्यसनानि = दुःखानि, प्राप्तैः = गतैः, अस्माभिः = कौरवैः, अद्य = अस्मिन् दिने, आहवे = संग्रामे, खलु = निश्चयेन, सुतोत्सादनात्—सुतस्य = अभिमन्योः, उत्सादनात् = हननात्, एषाम् = पाण्डवानाम्, मनसि = हृदये, तीव्राः, शोकशराः = शोका एव शराः = बाणाः, कृताः = गाढं निखाता इत्यर्थः । यैः पाण्डवैः पूर्वं पितामहं हत्वा वयं शोकाकुलीकृताः, सम्प्रति संग्रामे तत्पुत्रवधात्तेषां हृदये ह्यस्माभिः शोकशल्यानि गाढं निखातानीति कृतार्था वयं जाता इति भावः । 'शोकशराः' इत्यत्र रूपकालङ्कारः । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ १२ ॥

शकुनिरपि जयद्रथं प्रशंसन्नाह—जयद्रथेनेति । अद्य = अस्मिन् दिने, रणे= युद्धे, जयद्रथेन, नृपैः = अन्यैर्नृपतिभिरित्यर्थः, असम्भावितम् = अचिन्तितम्, महत् = विपुलम्, आत्मपौरुषम् = स्वपराक्रमः, कृतम् = प्रदर्शितम्, यत्=यस्मात्, अनेन = जयद्रथेन, संयुगे = रणे, प्रसह्य = बलात्, सुतेन समम् = पुत्रेणाभिमन्युना सह, तेषाम् = पाण्डवानाम्, अप्रतिमम् = नास्ति प्रतिमा यस्य तत्, समन्ताद्विस्तृतमित्यर्थः । यशः = कीर्तिः, हृतम् = विनाशितम् । सहोक्तिरलंकारः ।

पुत्र को सैकड़ों शरों के आघातों से मार दिये जाने पर, (पहले) भीष्मपितामह के मरण से दुःख पाये हुए हम लोगों ने आज संग्राम में इन (पाण्डवों) के पुत्र का वध कर देने से, इनके हृदय में तीखे शोकरूपी बाण धंसा दिये ॥१२॥

शकुनि—आज युद्ध में जयद्रथ ने अपना वह महान् पराक्रम प्रदर्शित किया, राजा लोग जिसकी कल्पना भी नहीं कर सके थे । क्योंकि इन (जयद्रथ)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दुर्योधनः—मातुल ! इतस्तावत् । दुश्शासन ! इतस्तावत् । तत्र-भवन्तं तातमभिवादयिष्यामः ।

शकुनिः—वत्स दुर्योधन ! मा मैवम् ।

कामं न तस्य रुचितः कुलविग्रहोऽय-
मस्मांश्च गर्हयति स प्रियपाण्डवत्वात् ।
युद्धोत्थितैर्जयमवाप्य हि तुल्यरूपं
एवं प्रहृष्टवदनैरभिगन्तुमेनम् ॥ १४ ॥

वंशस्थवृत्तम् । तल्लक्षणं यथा—'जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ ।' इति ॥ १३ ॥

विजयलाभानन्तरं पूज्यं पितरं प्रणन्तुमुद्यतं दुर्योधनं निवारयति शकुनिः—काममिति । यस्य = धृतराष्ट्रस्य, अयम् = प्रवर्तमानः, कुलविग्रहः = वंशवैरम्, कामम् = यथेष्टम्, न रुचितः = न रोचते इत्यर्थः । सः = धृतराष्ट्रः, प्रियपाण्डवत्वात्—प्रियाः पाण्डवाः युधिष्ठिरादयो यस्य भावस्तत्त्वं तस्मात् पाण्डवेषु स्नेहाधिक्यादिति भावः । अस्मान् = दुर्योधनादीन् च, गर्हयति = निन्दति । हि = निश्चयेन, जयम् अवाप्य = लब्ध्वा, एवम् = अनेन प्रकारेण, युद्धोत्थितैः—युद्धात् उत्थितैः = निवृत्तैः, प्रहृष्टवदनैः = प्रसन्नमुखैः, एनम् = धृतराष्ट्रम्, अभिगन्तुम् = प्रणामार्थंगमनम् । तुल्यरूपम् = युक्तम् । वसन्ततिलकं वृत्तम् १४

ने युद्ध में उन (पाण्डवों) के पुत्र के साथ ही उनके अनुपम यश को भी बल पूर्वक छीन लिया ॥ १३ ॥

दुर्योधन—मामा ! इधर (आओ) । दुःशासन ! इधर (आओ) पूज्य पिता जी को हम सब प्रणाम करेंगे ।

शकुनि—वत्स दुर्योधन ! नहीं, ऐसा नहीं ।

उन्हें यह आपस का झगड़ा बिल्कुल पसन्द नहीं है । उन्हें पाण्डव अधिक प्रिय हैं, अतः वे हम लोगों की निन्दा किया करते हैं । इस लिए (युद्ध में) विजय प्राप्तकर, युद्ध से निवृत्त होकर प्रसन्न मुख हम लोगों का इनके पास अभिवादनार्थ जाना युक्त होगा ॥ १४ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दुर्योधनः—मातुल ! मा मैवम् । यथा तथा भवतु । तत्रभवन्तं तातमभिवादयिष्यामः ।

उभौ—बाढम् । (परिक्रामतः ।

दुर्योधनः —तात ! दुर्योधनोऽहमभिवादये ।

दुश्शासनः—तात ! दुश्शासनोऽहमभिवादये ।

शकुनिः —शकुनिरहमभिवादये ।

सर्वे—कथमाशीर्वचनं न प्रयुज्यते ।

धृतराष्ट्रः—पुत्र ! कथमाशीर्वचनमिति ।

सौभद्रे निहते बाले हृदये कृष्णपार्थयोः ।
जीविते निरपेक्षाणां कथमाशीः प्रयुज्यते ॥ १५ ॥

आशीर्वचनमप्रयुञ्जानो धृतराष्ट्रस्तत्र हेतुं प्रतिपादयति—सौभद्र इति । कृष्णपार्थयोः—कृष्णश्च पार्थश्च इति कृष्णपार्थौ तयोः = कृष्णार्जुनयोः, हृदये= हृदयस्वरूपे, परमप्रिये इति भावः, बाले=बालके, सौभद्रे=सुभद्रापुत्रे अभिमन्यौ, निहते = मारिते (भावे सप्तमी) । जीविते = जीवने, निरपेक्षाणाम् = उदासीनानाम् , कथम् =केन प्रकारेण, आशीः प्रयुज्यते = आशीर्वचनं प्रयोक्तुं शक्यते । अनुष्टुब्वृत्तम् ॥ १५ ॥

दुर्योधन—मामा ! नहीं ऐसा नहीं । जो कुछ भी हो । पूज्य पिता जी को हम सब प्रणाम करेंगे ।

दोनों (शकुनि और दुःशासन)—बहुत ठीक । (घूमते हैं) ।

दुर्योधन—पिता जी ! मैं दुर्योधन अभिवादन करता हूँ ।

दुःशासन—पिता जी ! मैं दुःशासन अभिवादन करता हूँ ।

शकुनि—मैं शकुनि अभिवादन करता हूँ ।

सब—क्यों आशीर्वाद नहीं दिया जा रहा है ?

धृतराष्ट्र—पुत्र, आशीर्वाद कैसे दूँ ?

कृष्ण और अर्जुन के हृदयरूप, बालक अभिमन्यु के मारे जाने पर तुम सब जीवन के प्रति उदासीन हो चुके हो, अतः तुम लोगों को कैसे आशीर्वाद दिया जाय ॥ १५ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दुर्योधनः—तात ! किंकृतोऽयं संभ्रमः ।
धृतराष्ट्रः—किंकृतोऽयं संभ्रम इति ।
एका कुलेऽस्मिन् बहुपुत्रनाथे लब्धा सुता पुत्रशताद्विशिष्टा ।
सा बान्धवानां भवतां प्रसादाद् वैधव्यमश्लाध्यमवाप्स्यतीति ॥१६॥
दुर्योधनः—तात ! किं चात्र जयद्रथस्य ।
धृतराष्ट्रः—तेन किल वरविदग्धेन रुद्धाः पाण्डवाः ।

दुर्योधनः इति—किंकृतः—केन कृत इति किंकृतः । संभ्रमः = विक्षोभः । केन कारणेनायं भवतो विक्षोभो जात इति दुर्योधनप्रश्नस्याशयः ।

तदेव कारणं धृतराष्ट्रोऽभिव्यनक्ति—एकेति । बहुपुत्रनाथे—बहवः पुत्राः नाथाः = स्वामिनो यस्मिन् तादृशे अस्मिन् कुले=बहुपुत्रसम्पन्नेऽस्मिन् कौरवकुले इत्यर्थः । पुत्रशताद्विशिष्टा=पुत्रशतादपि प्रियतरेत्यर्थः । एका सुता = पुत्री दुःखलेत्यर्थः । लब्धा=प्राप्ता । सा=पुत्री । बान्धवानाम् = भ्रातॄणाम , भवताम् = युष्माकम् , प्रसादात्=अनुग्रहात्, दुष्कृत्येभ्य इति व्यङ्ग्यार्थः । अश्लाध्यम् = श्लाध्यम् = प्रशस्यम् , न श्लाध्यमिति अश्लाध्यम् = निन्दनीयम् , दुःखदमिति यावत् । वैधव्यम् = विधवाभावम् , अवाप्स्यति = प्राप्स्यति । इदमेव मे संभ्रमकारणमिति भावः । इन्द्रवज्रा वृत्तम् , 'स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः' इति तल्लक्षणात् ॥ १६ ॥

दुर्योधन इति । अत्र = अस्मिन् , जयद्रथस्य किम् —जयद्रथेन किं कृतमित्यर्थः ।

धृतराष्ट्र इति । किलेति वार्तायाम् । वरविदग्धेन—विदग्धश्चासौ

दुर्योधन—तात ! (आप को) यह विक्षोभ कैसे हो गया ?

धृतराष्ट्र—यह विक्षोभ कैसे हो गया (यह पूछते हो) ?

बहु संख्यक पुत्रों से युक्त इस कुल में सौ पुत्रों से भी अधिक प्रिय एक कन्या प्राप्त हुई, वह (भी) तुम लोगों-जैसे भाइयों की कृपा से निन्दनीय (दुःखप्रद) वैधव्य को प्राप्त करेगी ॥ १६ ॥

दुर्योधन—तात ! और इसमें जयद्रथ ने क्या किया ?

धृतराष्ट्र—सुनते हैं-(कन्या के) उस चतुर पति ने पाण्डवों को रोका है ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दुर्योधनः—आः, तेन रुद्धाः । बहुभिः खल्वन्यैः ।

धृतराष्ट्रः—भोः ! कष्टम् ।

बहूनां समवेतानामेकस्मिन्निर्घृणात्मनाम् ।
बाले पुत्रे प्रहरतां कथं न पतिता भुजाः ॥ १७ ॥

दुर्योधनः—तात !

वृद्धं भीष्मं छलैर्हत्वा तेषां न पतिता भुजाः ।
हत्वाऽस्माकं पतिष्यन्ति तमबालपराक्रमम् ॥ १८ ॥

वरश्चेति वरदिग्धः, तेन (मयूरव्यंसकादिसमासः) । मम कन्यायाश्चतुरेण पत्या, जयद्रथेनेति यावत् । रुद्धाः = चक्रव्यूहप्रवेशाद् वारिताः ।

'पाण्डवा बहुभिर्नृपैरुद्धाः' इति दुर्योधनमुखादाकर्ण्य दुःखमभिव्यनक्ति—बहूनामिति निर्घृणात्मनाम्—निर्गता घृणा यस्मात् स निर्घृणः = निर्दयः, निर्घृणः आत्मा येषां तेषाम्, निर्दयचितानामित्यर्थः । समवेतानाम् = सम्मिलितानाम्, बहूनाम् = बहुसंख्यकानाम्, एकस्मिन् = असहाये, बाले = शिशौ, पुत्रे = अभिमन्यौ, प्रहरताम् = प्रहारं कुर्वताम्, भुजाः = बाहवः, कथम् = केन कारणेन, न पतिताः ? रणनीतिं विहाय युद्धकारिणो युष्मान् धिगिति । भावः अनुष्टुब्वृत्तम् ॥ १७ ॥

दुर्योधनो धृतराष्ट्रवचनं निराकरोति—वृद्धमिति । छलैः = कपटैः, शिखण्डिनमग्रे कृत्वेति भावः । वृद्धम् जरठम्, भीष्मम् = पितामहम्, हत्वा = व्यापाद्य, तेषाम् = पाण्डवानाम्, भुजाः = बाहवः, न पतिताः = न भ्रष्टाः, अबालपराक्रमम्—न बालस्येव पराक्रमो यस्य तम्, प्रौढपराक्रममित्यर्थः, तम् = अभिमन्युं हत्वा, अस्माकं (भुजाः) पतिष्यन्ति (किम्) ? अनुष्टुब्वृत्तम् ॥

दुर्योधन—आह, उसने रोका ? अनेक अन्य राजाओं ने (रोका)

धृतराष्ट्र—ओह ! बड़ा कष्ट है ।

शिशु पुत्र पर बहुत से निर्दयों के मिलकर प्रहार करते हुए तुम लोगों की भुजाएँ गिर क्यों नहीं गईं ? ॥ १७ ॥

दुर्योधन—तात ! छल से बूढ़े भीष्म को मारकर उन (पाण्डवों) की

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

धृतराष्ट्रः—वत्स ! किं भीष्मस्य निपातनमभिमन्योश्च वधः समः ।

दुर्योधनः—तात । कथं न समः ।

धृतराष्ट्रः—पुत्र ! श्रूयताम्,

स्वच्छन्दमृत्युर्निहतो हि भीष्मः स्वेनोपदेशेन कृतात्मतुष्टिः ।

अयं तु बालः कुरुवंशनाथश्छिन्नोऽर्जुनस्य प्रथमः प्रवालः ॥ १९ ॥

भीष्मस्य निपातनमभिमन्योश्च वधे न समः इत्युपपादयति धृतराष्ट्रः—स्वच्छन्देति । हि = यतः, भीष्मः = पितामहः, स्वेन = स्वकीयेन, उपदेशेन = प्रवचनेन, कृतात्मतुष्टिः—कृता = विहिता आत्मतुष्टिः = आत्मसन्तोषो येन स तथोक्तः । स्वच्छन्दमृत्युः—स्वच्छन्दः = स्वेच्छाधीनः मृत्युः=मरणं यस्य सः । निहतः घातितः अयं भावः—पितामहेन स्वयं स्वमरणोपायः समुपदिष्टः, येन तस्यात्मतुष्टिरासीत् । अर्जुनस्तमेवोपायमनुसृत्य शिखण्डिनः साहाय्येनाऽऽहतवान् किन्तु स्वपितुः प्रसादेन स्वच्छन्दमृत्युत्वादुत्तरायणं प्रविष्टे सूर्ये स्वेच्छया स स्वप्राणानत्याक्षीत्, तस्मान्न स शोच्यः । इति । तु=किन्तु, अयं बालः = अभिमन्युः, कुरुवंशनाथः = कुरुवंशाधार इत्यर्थः, अर्जुनस्य प्रथमः प्रवालः= अङ्कुरः, छिन्नः कर्तितः तस्मात् पितामहस्याभिमन्योश्च वधो न सम इति भावः उपजातिर्वृत्तम् ॥ १९ ॥

भुजाएँ नहीं गिरीं (तो) प्रौढ़ पुरुष के समान पराक्रम वाले उस बालक को मारने पर हमारी (भुजाएँ क्यों) गिरेंगी ॥ १८ ॥

धृतराष्ट्र—वत्स ! क्या भीष्म का निहनन और अभिमन्यु का वध बराबर है ?

दुर्योधन—तात कैसे समता नहीं हैं ?

धृतराष्ट्र - पुत्र ! सुनो—

भीष्म निहत अवश्य किये गये किन्तु अपने (मृत्युविषयक) उपदेश के कारण उन्होंने आत्मसन्तोष कर लिया था और उनकी मृत्यु तो उनकी इच्छा के अधीन थी [अर्थात् प्रसन्नतापूर्वक अपनी मृत्यु का उपाय उन्होंने स्वयं बताया था और समय आने पर अपने प्राण उन्होंने स्वयं छोड़ा था क्योंकि वे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दुश्शासनः—तात ! बालो न बाल इति । अभिमन्युना—

धृतराष्ट्रः—किं किं दुश्शासनो व्याहरति ।

दुश्शासनः—अथ किम् ।

सर्वेषां नः पश्यतां युध्यतां च व्यायामोष्णं गृह्य चापं करेण ।

सूर्येणेवाभ्यागतैरंशुजालैः सर्वे बाणैरङ्किता भूमिपालाः ॥ २० ॥

धृतराष्ट्र—कष्टं भोः !

दुःशासनो बालस्याप्यभिमन्योस्तत्कर्मणाऽबालत्वमुपपादयति—सर्वेषामिति । युध्यताम् = युद्धं कुर्वताम् (परस्मैपदत्वात् शत्रन्तः, 'अनुदात्तेत्वलक्षणमात्मनेपदमनित्यम्' इति तादृशस्यात्मनेपदस्यानित्यत्वात् ।) नः = अस्माकम्, सर्वेषाम् = समेषाम्, पश्यताम् ('षष्ठी चानादरे' पा० २।३।३८ इति षष्ठी) । व्यायामोष्णम्—व्यायामेन = परिश्रमेण, उष्णम् उष्णतां गतम्, चापम् = धनुः, करेण = हस्तेन, गृह्य = गृहीत्वा ('गृह्य' इत्यपाणिनीयप्रयोगः, 'समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप्' इति सूत्रस्याप्रवृत्तेः ।) अभ्यागतैः = समागतैः, अंशुजालैः = किरणसमूहैः, सूर्येण = भानुना इव, बाणैः = शरैः (अभिमन्युना) सर्वे भूमिपालाः = राजानः, अङ्किताः = लाञ्छिताः, आच्छादिता इत्यर्थः । 'सूर्येणेव' इत्यत्रोपमालङ्कारः । शालिनी वृत्तम् । तल्लक्षणं यथा—'मत्तौ गौ चेच्छालिनी वेदलोकैः' रिति ॥ २० ॥

स्वच्छन्द मृत्यु थे] किन्तु यह बालक अभिमन्यु कुरुवंश का आधार और अर्जुन का प्रथम अंकुर था जिसे तुम लोगों ने विनष्ट कर डाला ॥ १९ ॥

दुःशासन—तात ! बालक, (वास्तव में) बालक नहीं था । अभिमन्यु ने-

धृतराष्ट्र—क्या दुःशासन बोल रहा है ।

दुःशासन—और क्या ?

हम सब के युद्ध करते और देखते हुए, उसने हाथों से श्रम के कारण उष्ण धनुष को ग्रहण कर अपने बाणों से राजाओं को उस प्रकार आच्छादित कर दिया जैसे सूर्य अपनी समीपागत किरणों से आच्छादित कर देता है ॥ २० ॥

धृतराष्ट्र—अरे ! कष्ट है ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बालेनैकेन तावद्भोः ! सौभद्रेणेदृशं कृतम् ।
पुत्रव्यसनसन्तप्तः पार्थो वः किं करिष्यति ॥ २१ ॥

दुर्योधनः—किं करिष्यति ।

धृतराष्ट्रः—तत्करिष्यति, यत्सावशेषायुषो द्रक्ष्यथ ।

दुर्योधनः—तात ! कस्तावदर्जुनो नाम ।

धृतराष्ट्रः—पुत्र ! अर्जुनमपि न जानीषे ।

दुर्योधनः—तात ! न जाने ।

धृतराष्ट्रः—तेन हि अहमपि न जाने । किन्तु, अर्जुनस्य बलवीर्यज्ञाः बहवः सन्ति । तान् पृच्छ ।

दुर्योधनः तात ! केऽर्जुनस्य बलवीर्यज्ञा मया प्रष्टव्याः ।

दुःशासनमुखादभिमन्योः शौर्यमाकर्ण्य स्वचिन्तां व्यनक्ति—बालेनेति । भोः = दुर्योधन ! तावत् = प्रथमम्, एकेन = असहायेन, सौभद्रेण=सुभद्रातनयेन अभिमन्युना, बालेन = बालकेन, ईदृशम् =दुशासनोक्तं वीरकर्म, कृतम् =अनुष्ठितम्, तर्हि, पुत्रव्यसनसन्तप्तः—पुत्रस्य = अभिमन्योः, व्यसनेन = विनाशेन, सन्तप्तः = लब्धसन्तापः, पार्थः = अर्जुनः, वः = युष्माकं, किं करिष्यति = कां दशां विधास्यति इति युष्माभिश्चिन्तनीयमिति भावः । अनुष्टुब्वृत्तम् ॥२१॥

अरे ! एक बालक अभिमन्यु ने इस तरह का कर्म किया तो पुत्र के विनाश से सन्तप्त अर्जुन तुम लोगों का क्या कर डालेगा (कहा नहीं जा सकता) ॥२१॥

दुर्योधन—क्या करेगा ?

धृतराष्ट्र—वह करेगा जिसे तुम लोग जीवित रह गये तो देखोगे !

दुर्योधन—तात ! अर्जुन है कौन ?

धृतराष्ट्र—पुत्र ! अर्जुन को भी नहीं जानते हो ?

दुर्योधन—तात ! नहीं जानता हूँ ।

धृतराष्ट्र—तो मैं भी नहीं जानता हूँ । किन्तु अर्जुन के बल-वीर्य को जानने वाले बहुत-से लोग हैं । उनसे पूछो ।

दुर्योधन—तात ! कौन अर्जुन के बल-वीर्य को जानने वाले हैं, जिनसे मैं पूछूँ ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

धृतराष्ट्रः—पुत्र श्रूयताम् ?

शक्रं पृच्छ पुरा निवातकवचप्राणोपहारार्चितं
पृच्छास्त्रैः परितोषितं बहुविधैः कैरातरूपं हरम् ।
पृच्छाग्निं भुजगाहुतिप्रणयिनं यस्तर्पितः खाण्डवे
विद्यारक्षितमद्य येन च जितस्त्वं पृच्छ चित्राङ्गदम् ॥२२॥

'अर्जुनस्य के बलवीर्यज्ञा मया प्रष्टव्याः' इति दुर्योधनेन पृष्टो धृतराष्ट्रो विज्ञापयति—शक्रं पृच्छेति । पुरा = पूर्वम्, निवातकवचप्राणोपहारार्चितम्—निवातकवचानाम् = तन्नाम्नां दैत्यानां प्राणा एवोपहाराः = उपायनानि (रूपकालङ्कारः) तैः अर्चितः = पूजितः तम् । शक्रम् = इन्द्रम्, पृच्छ । अर्जुनेन इन्द्रशत्रून् निवातकवचान् दैत्यान् हत्वा इन्द्रः प्रसादितः, तस्मात्त्वया (दुर्योधनेन) अर्जुनबलवीर्यज्ञ इन्द्रः प्रष्टव्यः इति भावः । बहुविधैः = नानाप्रकारकैः, अस्त्रैः = आयुधैः, परितोषितम् = प्रसादितम्, कैरातरूपम्—किरातः = पुलिन्दः ('भेदाः किरातशबरपुलिन्दाम्लेच्छजातयः' इत्यमरः) तस्येदं कैरातम् ('तस्येदम्' इत्यण्) तद्रूपं यस्य स तथोक्तम् , पुलिन्दरूपधारिणम् इत्यर्थः) हरम् = शिवम् (पृच्छ) इन्द्रकीलपर्वते पुलिन्दरूपधारिणा हरेण अर्जुनः परीक्षितः, तेन नानाविधास्त्रप्रयोगैर्हरः प्रसादितः, तस्मात्कीदृशोऽयं वीरोऽर्जुन इति हरो जानाति, तत्तमेव पृच्छेति भावः । भुजगाहुतिप्रणयिनम्—भुजगानाम्-सर्पाणाम्, आहुतिः = अग्नौ प्रक्षेपः, तस्याः प्रणयी = अनुरागी तम्, अग्निम् पृच्छ, यः = अग्निः, (अर्जुनेन) खाण्डववने = तन्नामके वने, तर्पितः = तृप्तिं प्रापितः । अर्जुनेन खाण्डववनदाहे सर्पाणामाहुतिभिरग्निः प्रीणितः, तदर्जुनपराक्रमज्ञमग्निं पृच्छ 'कीदृशोवीरोऽर्जुन इति । अद्य = अस्मिन् दिने, विद्यारक्षितम्—विद्यया = संगीतविद्ययेत्यर्थः, रक्षितः = प्राप्तसंरक्षणः, संगीतोपजीवोत्यर्थः, गन्धर्व इति यावत्' तम्, चित्राङ्गदम् पृच्छ, येन = चित्राङ्गदेन, त्वम् जितः किन्त्वर्जुनस्त्वामरक्षदिति भावः । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ २२ ॥

धृतराष्ट्र—पुत्र ! सुनो ? इन्द्र से पूछो जो पहले निवात-कवच नामक दैत्यों के प्राणरूपी उपहार से पूजित हुआ, शङ्कर से पूछो जो किरातरूप में (अर्जुन के) बहुविध अस्त्रों द्वारा परितुष्ट किये गये, अग्नि से पूछो जो खाण्डव वन में सर्पों की आहुति से तृप्त किये गये और आज उस चित्राङ्गद नामक गन्धर्व से पूछो जिससे तुम पराजित हुए और अर्जुन ने तुम्हारी रक्षा की ॥ २२ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दुर्योधनः—यद्येतद्वीर्यमर्जुनस्य किमस्माकं बले न सन्ति प्रतियोद्धारोऽर्जुनस्य।

धृतराष्ट्रः—पुत्र ! के ते।

दुर्योधनः—ननु कर्ण एव तावत्।

धृतराष्ट्रः—अहो हास्यः खलु तपस्वी कर्णः।

दुर्योधनः—केन कारणेन।

धृतराष्ट्रः—श्रूयतां,

शक्रापनीतकवचोऽर्धरथः प्रमादी
व्याजोपलब्धविफलास्त्रबलो घृणावान्।

दुर्योधन इति। वीर्यम् = पराक्रमः। बले = सैन्ये। प्रतियोद्धारः = प्रतिस्पर्धिनो वीराः।

धृतराष्ट्र इति। हास्यः—हसितुं योग्यः ('ऋहलोर्ण्यत्' इति ण्यत्)।

धृतराष्ट्रः कर्णस्य हास्यत्वं प्रतिपादयति—शक्रापनीतेति। शक्रापनीतकवचः—शक्रेण = इन्द्रेण, अपनीतम् = गृहीतम्, कवचम् = वर्म यस्य स तथोक्तः, कवचरहित इत्यर्थः, अर्धरथः = अर्धः रथो यस्य सः, केनचिदन्येन सह रथे समुपविश्य युध्यते, रथिवन्नास्ति कुशल इति भावः। ('रणे रणेऽभिमानी च विमुखश्चापि दृश्यते। घृणी कर्णः प्रमादी च तेन मेऽर्धरथो मतः॥' महा० उद्योगः १९८।९)। प्रमादी-प्रमादः अस्त्यस्येति ('अत इनिठनौ' इति मतुबर्थ

दुर्योधन—यदि अर्जुन का यह पराक्रम है (तो) क्या हमारी सेना में उसके मुकाबिल में आने वाले योद्धा नहीं हैं ?

धृतराष्ट्र—पुत्र ! वे कौन हैं ?

दुर्योधन—अरे, पहिले तो कर्ण ही है।

धृतराष्ट्र—अहा, बेचारा कर्ण तो हास्यास्पद है।

दुर्योधन—किस कारण से ?

धृतराष्ट्र—सुनो—

इन्द्र के द्वारा उसका कवच ग्रहण कर लिया गया है, वह अर्धरथ और प्रमादी है, छल पूर्वक (परशुराम से) प्राप्त किये गये उनके अस्त्रों की शक्ति

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कर्णोऽर्जुनस्य किल यास्यति तुल्यभावं
यद्यस्त्रदानगुरवो दहनेन्द्ररुद्राः ॥ २३ ॥

शकुनिः—प्रभवति भवानस्मानवधीरयितुम् ।

धृतराष्ट्रः—शकुनिरेष व्याहरति । भोः शकुने !

त्वया हि यत्कृतं कर्म सततं द्यूतशालिना ।
तत्कुलस्यास्य वैराग्निर्बालेष्वपि न शाम्यति ॥ २४ ॥

इनिः) अनवधानः इत्यर्थः । व्याजोपलब्ध०—व्याजेन = छलेन, उपलब्धम् = प्राप्तम्, अत एव विफलम् = व्यर्थम्, अस्त्राणां बलम् = शक्तिः प्रभावो वा यस्य स तथोक्तः । घृणावान्—घृणा = दयाऽस्त्यस्येति, दयाशील इत्यर्थः ('घृणा दयानुकम्पा स्यात्' इत्यमरः) । कर्णः, अर्जुनस्य तुल्यभावम् = समानताम्, यास्यति = प्राप्स्यति । यदि, दहनेन्द्ररुद्राः—दहनश्च इन्द्रश्च रुद्रश्चेति दहनेन्द्ररुद्राः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः) अग्नीन्द्रशङ्कराः, अस्त्रदानगुरवः—अस्त्रदाने गुरवः, अस्त्रप्रदातार इत्यर्थः (स्युरिति शेषः) । किलेति संभावनायाम् । वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ २३ ॥

धृतराष्ट्रः शकुनिं निन्दति—त्वया हीति । हि = यतः, द्यूतशालिना—द्यूतेन = द्यूतक्रीडया शालते शोभते इति द्यूतशाली तेन, द्यूतक्रीडाकुशलेनेत्यर्थः । त्वया = शकुनिना, सततम् = निरन्तरम्, यत् कर्म = कार्यम्, कृतम् = विहितम्, तत् = तेन कर्मणेत्यर्थः । अस्य कुलस्य = कौरववंशस्य, वैराग्निः = द्वेषानलः, बालेष्वपि=शिशुषु हुतेष्वपीति भावः । न शाम्यति = शान्तिं न गच्छति । अनुष्टुब्वृत्तम् ॥ २४ ॥

निष्फल है, वह दयालु है, निस्सन्देह कर्ण अर्जुन की समानता को प्राप्त हो सकता है किन्तु यदि इन्द्र, अग्नि और शङ्कर (अर्जुन की तरह) उसके (भी) अस्त्र प्रदान वाले गुरु बनें ॥ २३ ॥

शकुनि—आप हम लोगों की भर्त्सना करने में समर्थ हैं ।

धृतराष्ट्र— (क्या) शकुनि बोल रहा है । हे शकुनि !

तुझ महाजुआरी ने निरन्तर जो कर्म किया कि (तत्परिणामस्वरूप) बालक (अभिमन्यु) की आहुति के पश्चात् भी इस (कौरव) कुल की द्वेषाग्नि शान्त नहीं हो रही है ॥ २४ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

दुर्योधनः—अये,

भूमिकम्पः सशब्दोऽयं कुतो नु सहसोत्थितः ।
उल्काभिश्च पतन्तीभिः प्रज्वालितमिवाम्बरम् ॥ २५ ॥

धृतराष्ट्रः—पुत्र ! एवं मन्ये,

सुव्यक्तं निहितं दृष्ट्वा पौत्रमायस्तचेतसः ।
उल्कारूपाः पतन्त्येते महेन्द्रस्याश्रुबिन्दवः ॥ २६ ॥

दुर्योधनः सहसोत्पातं पश्यन् साश्चर्यं प्राह—भूमिकम्प इति । अयम् = दृश्यमानः, सशब्दः—शब्देन सहितः, भूमिकम्पः = भूकम्पः, सहसा = अकस्मात्, कुतः = कस्मात्, नु इति वितर्के, उत्थितः = प्रादुर्भूतः । पतन्तीभिः = आकाशात् पतनशीलाभिः, उल्काभिः = आकाशस्थैर्दाहकतत्त्वैः, अम्बरम् = आकाशम्, प्रज्वालितम् = प्रज्वलितमिव कृतमित्यर्थः । उत्प्रेक्षाऽलङ्कारः । अनुष्टुब्वृत्तम् ॥ २५ ॥

धृतराष्ट्र उत्प्रेक्षते तदुल्काविषये—सुव्यक्तमिति । पौत्रम् = अभिमन्युम्, सुव्यक्तम् = सुस्पष्टं यथा तथा, निहतम् = मृतमित्यर्थः, दृष्ट्वा = विलोक्य, आयस्तचेतसः—आयस्तम् = दुःखितम्, चेतः हृदयं यस्य तथोक्तस्य, पीडितहृदयस्येत्यर्थः, महेन्द्रस्य = सुराधिपस्येन्द्रस्य, एते = दृश्यमानाः, उल्कारूपाः, अश्रुबिन्दवः, पतन्ति = आकाशाद् भूमिम् आगच्छन्ति । अत्रोल्कापातस्य महेन्द्राश्रुबिन्दुपातत्वेनोत्प्रेक्षणादुत्प्रेक्षाऽलङ्कारः । अनुष्टुब्वृत्तम् ॥२६॥

दुर्योधन —अरे !

यह सहसा (भयानक) शब्द के साथ भूकम्प कैसे हो रहा है ? (आकाश से टूट कर) गिरती हुई उल्काओं से आकाश प्रज्वलित-सा कर दिया गया है ॥ २५ ॥

धृतराष्ट्र—पुत्र ! ऐसा समझता हूँ—

सुस्पष्ट (अपने) पौत्र (अभिमन्यु) को मारा गया देख कर दुःखित-हृदय इन्द्र के ये अश्रुबिन्दु उल्कारूप में गिर रहे हैं ॥ २६ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

दुर्योधनः—जयत्रात ! गच्छ, पाण्डवशिबिरे शङ्खपटहसिंहनादरवोन्मिश्रः किंकृतोऽयं शब्द इति ज्ञायताम् ।

भटः—यदाज्ञापयति । (निष्क्रम्य प्रविश्य ।) जयतु महाराजः । संशप्तकानीकनिवाहितप्रतिनिवृत्तेन धनञ्जयेन निहतं पुत्रमङ्कस्थमश्रुभिः परिषिच्य जनार्दनावभर्त्सितेन प्रतिज्ञातं किलानेन ।

दुर्योधनः—किमिति किमिति !

भटः—

तस्यैव व्यवसायतुष्टहृदयैस्तद्विक्रमोत्साहिभि-

दुर्योधन इति ! शङ्खपटहसिंहनादरवोन्मिश्रः—शङ्खाः, पटहाः = भेर्यः, सिंहनादाः = वीराणां गर्जितानि च, तेषां रवैः = शब्दैः, उन्मिश्रः = सम्मिलितः, प्रवृद्धि गत इत्यर्थः ।

भट इति—संशप्तकानीकनिवाहितप्रतिनिवृत्तेन – संशप्तकानाम् अनीकैः = सैन्यैः (आदौ) निवाहितः=दूरापनीतः (पश्चात्) प्रतिनिवृत्तः, = प्रत्यागतः तेन । धनञ्जयेन=अर्जुनेन । निहतम् = घातितम् । अश्रुभिः परिषिच्य = बाष्पैरार्द्रितं कृत्वा । जनार्दनेन = श्रीकृष्णेन अवभर्त्सितः = निन्दितः तेन जनार्दनावभर्त्सितेन । प्रतिज्ञातम् = प्रतिज्ञा कृता । किलेति वार्तायाम् ।

भटो ज्ञातं भूकम्पादिहेतुं दुर्योधनाय निवेदयति—तस्यैवेति । तस्यैव = अर्जुनस्यैव, व्यवसायतुष्टहृदयैः—व्यवसायेन = उद्योगेन, प्रतिज्ञयेत्यर्थः,

---

दुर्योधन—हे जयत्रात ! जाओ, पाण्डवों के शिविर में शङ्ख, भेरी और सिंहनाद के शब्द से मिश्रित यह शब्द क्यों हो रहा है, मालूम करो ।

भट—जो आज्ञा । (जाकर, प्रवेश कर) महाराज की जय हो । संशप्तकों की सेनाओं द्वारा दूर ले जाये जाने के बाद लौट कर इस अर्जुन ने मारे गये पुत्र को गोद में रख कर, आँसुओं से उसे आर्द्र कर कृष्ण के द्वारा निर्भत्सित (प्रेरित) होकर प्रतिज्ञा की है ।

दुर्योधन—क्या ! क्या !

भट—उस (अर्जुन) की प्रतिज्ञा से सन्तुष्ट हृदय, उसके पराक्रम से उत्साहसम्पन्न, प्रसन्नमुख राजाओं ने अपनी जीत निश्चित समझकर हर्षातिरेक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्तुष्टास्यैर्जितमित्यवेक्ष्य सहसा नादः प्रहर्षात्कृतः।
आक्रान्ता गुरुभिर्धराधरवरैः संक्षोभितैः पार्थिवै-
भूमिश्चागतसंभ्रमेव युवतिस्तस्मिन् क्षणे कम्पिता ॥ २७ ॥

धृतराष्ट्रः—

प्रतिज्ञासारमात्रेण कम्पितेयं वसुन्धरा।

तुष्टानि = प्रसादं गतानि हृदयानि = चेतांसि येषां तादृशैः। तद्विक्रमोत्साहिभिः तस्य = अर्जुनस्य, विक्रमेण = पराक्रमेण, उत्साहिभिः = उत्साहसम्पन्नैः (उत्साहशब्दात् 'अत इनिठनौ' इति मतुबर्थ इनिः)। तुष्टास्यैः = तुष्टानि = प्रसन्नानि आस्यानि = मुखानि येषां ते तुष्टास्यास्तैः। जितम् = अस्माभिः = पराजितं कौरवकुलमिति अवेक्ष्य = दृष्ट्वा, निश्चित्येत्यर्थः, सहसा = झटिति, प्रहर्षात् = आनन्दातिरेकात् नादः कृतः = गर्जितं कृतम्। गुरुभिः = महद्भिः धराधरवरैः = पर्वतश्रेष्ठैः, संक्षोभितैः = संरब्धैः, समुत्तेजितैः, पार्थिवैः = नृपैः, आक्रान्ता = अधिष्ठिता, पक्षे स्वायत्तीकृता, आगतसम्भ्रमा-आगतः = प्राप्तः, सम्भ्रमः = आतङ्कः यस्यास्तादृशी। युवतिरिव = अङ्गनेव। भूमिः = पृथ्वी। तस्मिन् क्षणे = तस्मिन् काले, कम्पिता = संजातकम्पाऽभवत्। महद्भिः पर्वतसदृशैः संक्षुब्धैर्नृपतिभिरधिष्ठिता पृथ्वी स्वायत्तीकृता तरुणीवाकम्पतेत्यर्थः। भूकम्पस्य नादस्यापि चेदमेव कारणमिति भावः। 'आगतसंभ्रमेव युवतिरित्यत्रोपमालङ्कारः। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ २७ ॥

धृतराष्ट्रोऽपि भटोक्तिं निशम्य भविष्यदनर्थं प्रतिपादयति—प्रतिज्ञासारेति। प्रतिज्ञासारमात्रेण--प्रतिज्ञायाः सारः = दार्ढ्यम्, तन्मात्रेण, इयम् वसुन्धरा = पृथिवी। कम्पिता = अकम्पत। धनुषि = गाण्डीवे, स्पृष्टे = गृहीते, त्रैलोक्यम् = त्रिलोकी। विचलिष्यति = कम्पिष्यते। यस्यार्जुनस्य प्रतिज्ञाबलेनैव धरा

से सहसा सिंहनाद किया। महान् पर्वतों के समान उन संक्षुब्ध राजाओं से अधिष्ठित (आक्रान्त) पृथिवी, गृहीत (आक्रान्त) अतएव घबड़ायी हुई युवती के समान काँप उठी ॥ २७ ॥

धृतराष्ट्र—प्रतिज्ञा के प्रताप से ही पृथ्वी काँप उठी। (गाण्डीव) धनुष

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सुव्यक्तं धनुषि स्पृष्टे त्रैलोक्यं विचलिष्यति ॥ २८ ॥

दुर्योधनः – जयत्रात ! किमनेन प्रतिज्ञातम् ।

भटः—

येन मे निहतः पुत्रस्तुष्टिं ये च हते गताः ।
श्वः सूर्येऽस्तमसम्प्राप्ते निहनिष्यामि तानहम् ॥ २९ ॥ इति ।

दुर्योधनः—प्रतिज्ञाव्याघाते किं प्रायश्चित्तम् ।

भटः—चितारोहणं किल गाण्डीवेन सह ।

कम्पिता स यदा गाण्डीवमादाय युद्धोद्यतो भविष्यति तदा तु त्रैलोक्यमेव कम्पिष्यत इति सुस्पष्टं प्रतीयत इति धृतराष्ट्रोक्तेराशयः । अनुष्टुब्वृत्तम् ॥२८॥

भटो दुर्योधनेन पृष्टः सन्नर्जुनस्य प्रतिज्ञां तं विज्ञापयति–येनेति । येन = वीरेण, मे = मम, अर्जुनस्येत्यर्थः, पुत्रः = सुतः, अभिमन्युरित्यर्थः, निहतः = मारितः, ये च = वीराः, (तस्मिन्) हते = मारिते (भावे सप्तमी), तुष्टिम् = प्रसन्नताम्, गताः = याताः । तान् = शत्रून् , श्वः = आगामिनि दिवसे, सूर्येऽस्तमसम्प्राते-सूर्यस्यास्ताचलगमनात्पूर्वमेवेत्यर्थः, अहम् = अर्जुनः निहनिष्यामि = मारयिष्यामि । इत्यर्जुनेन कृत्वा प्रतिज्ञेति भावः । अनुष्टुब्वृत्तम् ॥ २९ ॥

दुर्योधन इति । प्रतिज्ञाव्याघाते–प्रतिज्ञायाम् व्याघातः = विघ्नः, तस्मिन् (भावे सप्तमी) अपूर्णायां प्रतिज्ञायां सत्यामित्यर्थः । प्रायश्चित्तम्–प्रायस्य = पापस्य, चित्तम् = विशोधनं यस्मात्तम् । (निपातनात् सुडागमः) पापनिष्कृतिरित्यर्थः । ('प्रायो नाम तपः प्रोक्तं चित्तं निश्चय उच्यते । तपोनिश्चयसंयोगात् प्रायश्चित्तमितीर्यते' इति हेमाद्रिः) ।

भटः—गण्डीवेन सह–करेण गाण्डीवं धनुर्गृहीत्वेत्यर्थः । (सहयुक्तेऽप्रधाने'

उठाने पर तीनों लोक डगमगा जायेगा—यह सुस्पष्ट है ॥ २८ ॥

दुर्योधन – हे जयत्रात ! इस (अर्जुन) ने क्या प्रतिज्ञा की है ?

भट—जिसने मेरे पुत्र को मारा है और मारे जाने पर जो लोग प्रसन्न हुए हैं, उन सबको मैं कल सूर्यास्त के पूर्व ही मार डालूंगा—ऐसी (प्रतीज्ञा की है) ॥ २९ ॥

दुर्योधन—प्रतिज्ञा पूरी न होने पर कौन सा प्रायश्चित्त करेगा ?

भट—निश्चय गाण्डीव धनुष के साथ चिता पर चढ़ना ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दुर्योधनः—मातुल ! चितारोहणं चितारोहणम् । वत्स दुश्शासन ! चितारोहणं चितारोहणम् । वयमपि तावत्प्रतिज्ञाव्याघाते प्रयत्नमनुतिष्ठामः ।

धृतराष्ट्रः—पुत्र ! किं करिष्यसि ।

दुर्योधनः—ननु सर्वाक्षौहिणीसन्दोहेन च्छादयिष्ये जयद्रथम् ।

अपि च—

द्रोणोपदेशेन यथा तथाहं संयोजये व्यूहमभेद्यरूपम् ।
खिन्नाशयास्ते सगजाः सयोधा अप्राप्तकामा ज्वलनं विशेयुः ॥३०॥

इति तृतीया) चितारोहणम् = चिताप्रवेश इत्यर्थः । किलेति निश्चये ।

दुर्योधन इति—सर्वाक्षौहिणीसन्दोहेन—सर्वासामक्षौहिणीनां सन्दोहः = संघातः, तेन ।

दुर्योधनो जयद्रथत्राणायार्जुनस्य च प्रतिज्ञाविघाताय स्वानुष्ठेयं धृतराष्ट्राय निवेदयति—द्रोणोपदेशेनेति । द्रोणोपदेशेन—द्रोणस्य = द्रोणाचार्यस्य उपदेशेन = आदेशेन, यथा तथा = यथाकथञ्चित्, अभेद्यरूपम् = न भेत्तुं योग्यं रूपं यस्य तत्, केनापि भेत्तुमशक्यमित्यर्थः, व्यूहम्—व्यूहः = सैनिकविन्यासः, तम्, सयोजये= करिष्ये । येन ते पाण्डवाः, खिन्नाशयाः—खिन्नः = भग्न इत्यर्थः, आशयः = इच्छा येषां ते तथोक्ताः, सगजाः = करिभिः सह, सयोधाः = सैनिकैः सह, अप्राप्तकामाः = अप्राप्तः = अपूर्णः, कामः = मनोरथः येषां ते, ज्वलनम् = अग्निम्, विशेयुः = प्रवेशं कुर्युः । इन्द्रवज्रावृत्तम् ॥ ३० ॥

दुर्योधन—मामा ! चितारोहण, चितारोहण । वत्स दुःशासन ! चितारोहण चितारोहण । तो हम भी (उसकी) प्रतिज्ञा को विहत करने की कोशिश करें ।

धृतराष्ट्र—पुत्र ! क्या करोगे ?

दुर्योधन—अरे, सारी अक्षौहिणी सेनाओं के समुदाय से जयद्रथ को ढक दूंगा । और भी—

द्रोणाचार्य के उपदेश से मैं जैसे-तैसे वह अभेद्य सैन्यव्यूह रचूंगा कि वे पाण्डव असफलमनोरथ दुखित हृदय हो हाथियों और सैनिकों समेत अग्नि में प्रवेश करेंगे ॥ ३० ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

धृतराष्ट्रः—

अपि प्रविष्टं धरणीमप्यारूढं नभस्थलम् ।
सर्वत्रानुगमिष्यन्ति शरास्ते कृष्णचक्षुषः ॥ ३१ ॥

भटः—

क्रूरमेवं नरपतिं नित्यमुद्यतशासनम् ।
यः कश्चिदपरो ब्रूयान्न तु जीवेत्स तत्क्षणम् ॥३२॥

(ततः प्रविशति घटोत्कचः ।)

घटोत्कचः—एष भोः !

धृतराष्ट्रो जयद्रथरक्षणस्यासम्भाव्यत्वमुपपादयति—अपि प्रविष्टमिति । धरणीम् = पृथ्वीम्, तदभ्यन्तरमित्यर्थः, प्रविष्टम् = कृतप्रवेशमपि, नभस्थलम् आरूढमपि आकाशगतमपि (जयद्रथम्) सर्वत्र = सर्वेषु, स्थानेषु, कृष्णचक्षुषः—कृष्णः = वासुदेवः एव चक्षुः = नेत्रं येषां ते तथोक्ताः, कृष्णनिर्दिष्टा इति भावः । ते = अर्जुनप्रेरिता इत्यर्थः, शराः = बाणाः, अनुगमिष्यन्ति = अनुसरिष्यन्ति । अनुष्टुब्वृत्तम् ॥ ३१ ॥

धृतराष्ट्रोक्तिं निशम्य भटः प्राह—क्रूरमेवमिति । नित्यम् = सर्वदा, उद्यतशासनम्—उद्यतम् = तत्परम् दण्डे इति भावः, शासनम् = आदेशो यस्य तम्, यथापराधं तत्क्षणमेव दण्डविधायकमित्यर्थः । नरपतिम्—नराणां पतिम्, राजानं दुर्योधनमित्यर्थः । एवम् = ईदृशम्, यथा धृतराष्ट्रोऽवददित्यर्थः । क्रूरम् = कठोरम् (वचः) यः कश्चित् = यः कोऽपि । अन्यः = अपरः धृतराष्ट्रादिति भावः । ब्रूयात् = वदेत्, सः = नरः, तत्क्षणम् = तत्कालमेव, न तु जीवेत् = हतो भवेदित्यर्थः ॥ अनुष्टुब्वृत्तम् ॥ ३२ ॥

धृतराष्ट्र—कृष्ण हैं नेत्र जिनके ऐसे वे (अर्जुन के) बाण, धरणी में भी प्रविष्ट हुए और आकाश में भी चढ़े हुए जयद्रथ का सर्वत्र अनुसरण करेंगे ॥३१॥

भट—सर्वदा उद्यत शासन वाले (अर्थात् यथापराध तुरन्त दण्ड देने वाले) राजा (दुर्योधन) को यदि कोई दूसरा इस प्रकार के कठोर वचन कहता तो वह तत्क्षण जीवित न रहता ॥ ३२ ॥

(तदनन्तर घटोत्कच प्रवेश करता है ।)

घटोत्कच—अरे, यह

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रयामि सौभद्रविनाशचोदितः दिदृक्षुरद्यारिमनार्यचेतसम् ।
विचिन्तयंश्चक्रधरस्य शासनं यथा गजेन्द्रोऽङ्कुशशङ्कितो बलिम् ॥३३॥

(अधो विलोक्य) इदमस्योपस्थानगृहद्वारम् । यावदवतरामि । (अवतीर्य) आत्मनैवात्मानं निवेदयिष्ये । भोः !

घटोत्कचः स्वाऽऽगमनप्रयोजनं कथयति—प्रयामि सौभद्रेति । सौभद्रविनाशचोदितः—सुभद्राया अपत्यं पुमान् सौभद्रः = अभिमन्युः, तस्य विनाशः = निहनम्, तेन चोदितः = प्रेरितः, अहम् = घटोत्कच इत्यर्थः । अद्य = इदानीम्, अनार्यचेतसम्—न आर्यमिति अनार्यम् = निकृष्टम्, चेतः = हृदयं यस्य तम्, दुराशयमित्यर्थः । अरिम् - शत्रुम्, दिदृक्षुः = द्रष्टुमिच्छुः (सन्नन्ताद् दृश्धातोः 'सनाशंसभिक्ष उः' इति कर्तरि उ प्रत्ययः, 'न लोकाव्ययनिष्ठा खलर्थतृनाम्' इति षष्ठी निषेधे 'अरिमि'त्यत्र कर्मणि द्वितीयैव ।) यथा = येन प्रकारेण गजेन्द्रः = हस्तिश्रेष्ठः, अङ्कुशशङ्कितः—अङ्कुशः = भल्ली, तस्मात् शङ्कितः = सशङ्कः, बलिम् = आहारम्, (तथा) चक्रधरस्य—धरतीति धरः, चक्रस्य धरः इति चक्रधरः = श्रीकृष्णः, तस्य शासनम् = आज्ञाम्, विचिन्तयन् = विचारयन्, प्रयामि = गच्छामि । यथा कश्चिद्गजेन्द्रोऽङ्कुशात् सशंकः स्वाहारं ग्रहीतुं प्रयाति तथैवाहमपि श्रीकृष्णाज्ञया शत्रुं द्रष्टुं गच्छामीत्यर्थः । उपमाऽलंकारः । वंशस्थं वृत्तम् । तल्लक्षणं यथा—'जतौ तु वंशस्थमुदिरितं जरौ ।' इति ॥ ३३ ॥

इदमस्येति । इदम् = पुरोवर्ति । अस्य = शत्रोः, दुर्योधनस्य । उपस्थानगृहद्वारम्—उपस्थानगृहम् = सभाभवनम्, तस्य द्वारम् । आत्मनैव = स्वयम्, आत्मानं निवेदयिष्ये=स्वपरिचयं दास्यामि ।

मैं सुभद्रा के पुत्र (अभिमन्यु) के संहार से प्रेरित होकर, चक्रधर कृष्ण की आज्ञा को सोचता हुआ, दुष्टहृदय शत्रु को देखने की इच्छा से जा रहा हूँ, जैसे अङ्कुश से सशङ्क गजराज अपना) दैनिक आहार लेने जाता है ॥ ३३ ॥

(नीचे देखकर) यह सभागृह का द्वार है । तो उतरता हूँ । (उतर कर) स्वयं ही अपना परिचय दूँगा । अजी,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हैडिम्बोऽस्मि घटोत्कचो यदुपतेर्वाक्यं गृहीत्वा गतो
द्रष्टव्योऽत्र मया गुरुः स्वचरितैर्दोषैर्गतः शत्रुताम् ।

दुर्योधनः—

एह्येहि प्रविशस्व शत्रुभवनं कौतूहलं मे महत् ।
धृष्टं श्रावय मां जनार्दनवचो दुर्योधनोऽहं स्थितः ॥३४॥

घटोत्कचः—(प्रविश्य) अये अयमत्रभवान् धृतराष्ट्रः ! अनार्यशत-

घटोत्कचः स्वयमेव स्वपरिचयं ददाति—हैडिम्बोऽस्मीति । यदुपतेः = श्रीकृष्णस्य, वाक्यम् = वचनम्, सन्देशमित्यर्थः, गृहीत्वा, आगतः = सम्प्राप्तः, हैडिम्बः = हिडिम्बा तन्नाम्नी राक्षसकुलोत्पन्ना स्त्री, तस्याः, अपत्यं पुमान् हैडिम्बः (अपत्यार्थेऽण्) = हिडिम्बापुत्रः, घटोत्कचः = तन्नामा, अस्मि । स्वचरितैः—स्वेन आत्मना चरितैः = कृतैः, दोषैः = अपराधैः, शत्रुतां गतः = शत्रुभाव प्राप्तः, गुरुः = श्रेष्ठः, ('गुरुस्तुगीष्पतौ श्रेष्ठे' इत्यमरः) मया = घटोत्कचेन, अत्र, द्रष्टव्यः = दर्शनीयः ।

तच्छ्रुत्वा दुर्योधनः प्राह—एहीति । एहि = आगच्छ । शत्रुभवनम् = रिपुगृहम्, प्रविशस्व = प्रवेशं कुरु (आत्मनेपद—प्रयोगश्चिन्त्यः, पाणिनीय व्याकरणे तादृशविधानाभावात् ।) मे = मम, दुर्योधनस्येत्यर्थः । महत् = परमम्, कौतूहलम् = औत्सुक्यम् (वर्तते) । धृष्टम् = निर्भयं यथा स्मात्तथा, जनार्दनवचः—जनार्दनस्य = श्रीकृष्णस्य वचः = वचनम्, सन्देशमिति यावत् । माम् = दुर्योधनम्, श्रावय = कर्णगोचरीकुरु । अहं दुर्योधनः, स्थितः, श्रोतुमिति भावः । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ ३४ ॥

घटोत्कचो धृतराष्ट्रं पश्यन् साश्चर्यमाह—अये अयमिति । अये = आश्चर्यसूचकमव्ययपदम् । अयम् = पुरतो दृश्यमानः, अत्रभवान् = पूज्यः । अनार्य-

---

श्री कृष्ण के वाक्य (सन्देश) को ग्रहण करके आया हुआ मैं हिडिम्बा का पुत्र घटोत्कच हूँ । मुझे यहाँ अपने ही किये अपराधों के कारण शत्रु बने हुए गुरुजनों से मिलना है !

दुर्योधन—आओ, आओ । शत्रु के गृह में प्रवेश करो, मुझे बड़ी उत्सुकता है, निर्भयतापूर्वक श्रीकृष्ण का वचन (सन्देश) मुझे सुनाओ, मैं दुर्योधन (सुनने को) स्थित हूँ ॥ ३४ ॥

घटोत्कच—(प्रवेश कर) अहो ! यह पूज्य धृतराष्ट्र हैं, सौ अधम पुत्रों

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्योत्पादयिता। अयं ननु ललितगम्भीराकृतिविशेषः। आश्चर्यमाश्चर्यम्।

वृद्धोऽप्यनाततवलीगुरुसंहतांसः
श्रद्धेयरूप इव पुत्रशतस्य धृत्या।
मन्ये सुरैस्त्रिदिवरक्षणजातशङ्कै-
स्त्रासान्निमीलितमुखोऽत्रभवान् हि सृष्टः॥ ३५॥

शतस्य—अनार्याणाम् = दुष्टानां शतम्, शतसङ्ख्याकानां दुर्योधनादिदुष्टानामित्यर्थः। उत्पादयिता = जनकः। नन्विति निश्चये। ललितगम्भीराकृतिविशेषः—ललितः=सुन्दरः, गम्भीरः = संयतः, आकृतिविशेष. यस्य सः।

घटोत्कचो धृतराष्ट्रं वर्णयति—वृद्ध इति। वृद्धः = जरठः, अपि, अनाततवलीगुरुसंहतांसः—न आतता = विस्तारिता, अनुद्भूतेत्यर्थः, वली (सिकुड़न, झुर्री इति भाषायाम्) तया गुरू = मांसलावित्यर्थः, संहतौ = मिलितौ अंसौ= स्कन्धौ यस्य स तथाविधः। पुत्रशतस्य = शतसङ्ख्याकानां पुत्राणामित्यर्थः, धृत्या = धारणेन, श्रद्धेयरूप इव—श्रद्धातुं योग्यं श्रद्धेयं, तादृशं रूपं यस्य स तथोक्तः। त्रिदिवरक्षणजातशङ्कैः—त्रिदिवम् = स्वर्गः, ('स्वरव्ययं स्वर्ग-नाक-त्रिदिव-त्रिदशालयाः' इत्यमरः) तस्य रक्षणे = पालने जाता = उत्पन्ना, शङ्का = सन्देहो येषां तैः, धृतराष्ट्रः कदाचित्स्वर्गं स्वायत्तीकुर्यादिति जातसन्देहैरित्यर्थः, त्रासात् = भयात्, निमीलितमुखः—निमीलितम् = मुद्रितनेत्रयुक्तमित्यर्थः, मुखम् = आननं यस्य स तथाविधः अन्ध इत्यर्थः। हि=निश्चयेन, अत्रभवान् = पूज्यः, धृतराष्ट्रः, सृष्टः = रचितः, इति मन्ये = संभावयामि। कदाचिदयं धृतराष्ट्रः स्वर्गं स्वायत्तीकुर्यादिति भीतेषु देवेषु ब्रह्मणा धृतराष्ट्रोऽन्धः सृष्ट इति भावः। उत्प्रेक्षालङ्कारः। वसन्ततिलकं वृत्तम्॥ ३५॥

के जनक। निश्चय ही इनकी सुन्दर, गम्भीर आकृति बड़ी विशिष्ट है। बड़ा आश्चर्य है।

बूढ़े हैं, फिर भी झुर्रियाँ नहीं पड़ी हैं अतएव इनके कन्धे पर मांसल और सुपुष्ट हैं। सौ पुत्रों के रखने से ये श्रद्धेय रूप हैं। मालूम होता है कि निश्चय ही स्वर्गलोक की रक्षा में देवताओं को शङ्का हो गयी थी, अतएव (ब्रह्मा ने) इन पूज्य (धृतराष्ट्र) को अन्धा ही बनाया॥ ३५॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

(उपसृत्य) पितामह ! अभिवादये घटोत्क--(इत्यर्धोक्ते) न न अयमक्रमः । युधिष्ठिरादयश्च मे गुरवो भवन्तमभिवादयन्ति । पश्चाद्घटोत्कचोऽहमभिवादये ।

धृतराष्ट्रः—एह्येहि पुत्र !

न ते प्रियं दुःखमिदं ममापि
यद् भ्रातृनाशाद् व्यथितस्तवात्मा ।
इत्थं च ते नानुगतोऽयमर्थो
मत्पुत्रदोषात् कृपणीकृतोऽस्मि ॥ ३६ ॥

धृतराष्ट्रो घटोत्कचं सान्त्वयन्नाह—न ते प्रियमिति । यत्, भ्रातृनाशात्—भ्रातुः = अभिमन्योः नाशात् = वधात् । तव = घटोत्कचस्य, आत्मा = हृदयम्, व्यथितः = दुःखितः, ते = तव, इदम् = भ्रातृनाशजनितम्, दुःखम् = सन्तापः, मम = धृतराष्ट्रस्यापि न प्रियम् प्रीतिकरम् त्वमिवाहमपि दुःखमनुभवामीति भावः । इत्थम् = अनेन प्रकारेण च, अयम् = वक्ष्यमाण इत्यर्थः, अर्थः = आशयः, ते = तव (कृद्योगे कर्तरि षष्ठी) न अनुगतः = न ज्ञातः । मत्पुत्रदोषात्—मम = धृतराष्ट्रस्य यः पुत्रः = दुर्योधनः, तस्य दोषात् = तत्कृतापराधात्, कृपणीकृतोऽस्मि—अकृपणः कृपणः कृत इति कृपणीकृतः (अभूततद्भावे च्विः)=कदर्थीकृतोऽस्मि, दयनीयां दशां प्रापितोऽस्मीति भावः । उपजातिर्वृत्तम् ॥ ३६ ॥

(समीप जाकर) पितामह (बाबा जी) ! 'अभिवादन करता हूँ मैं घटोत्क···' (ऐसा आधा वाक्य कहने पर) नहीं नहीं, यह क्रम रहित है । युधिष्ठिर आदि मेरे गुरुजन आपको अभिवादन कर रहे हैं, तत्पश्चात् मैं घटोत्कच अभिवादन करता हूँ ।

धृतराष्ट्र—आओ आओ पुत्र !

जो भाई (अभिमन्यु) के मार जाने से तुम्हारी आत्मा व्यथित है, यह तुम्हारा दुःख मुझे भी प्रिय नहीं है । और इस प्रकार तुम इस बात को नहीं समझते, मैं अपने पुत्रों के अपराध से कदर्थित (दयनीय दशा को प्राप्त) कर दिया गया हूँ ॥ ३६ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

घटोत्कचः—अहो कल्याणः खल्वत्रभवान् । कल्याणानां प्रसूतिं पितामहमाह भगवांश्चक्रायुधः ।

धृतराष्ट्रः (आसनादुत्थाय ।) किमाज्ञापयति भगवांश्चक्रायुधः ।

घटोत्कचः—न न न । आसनस्थेनैव भवता श्रोतव्यो जनार्दनस्य सन्देशः ।

धृतराष्ट्रः—यदाज्ञापयति भगवांश्चक्रायुध (उपविशति ।)

घटोत्कचः—पितामह ! श्रूयताम् । हा वत्स अभिमन्यो ! हा वत्स कुरुकुलप्रदीप । हा वत्स यदुकुलप्रवाल ! तव जननीं मातुलं च मामपि परित्यज्य पितामहं द्रष्टुमाशया स्वर्गमभिगतोऽसि । पितामह ! एकपुत्रविनाशादर्जुनस्य तावदादृशो खल्वस्था, का पुनर्भवता भविष्यति ।

घटोत्कच इति । अहो विस्मयादिबोधकमव्ययपदम् । कल्याणः = सौभाग्यशाली । खलु = निश्चयेन । कल्याणानाम् = शुभानाम् । प्रसूतिम् = जनकम्, उत्पादयितारम् । पितामहम् = पितुः पितरम्, धृतराष्ट्रमित्यर्थः, चक्रायुधः = चक्रम् आयुधं यस्य सः, श्रीकृष्ण इत्यर्थः । आत्मबलाधानम् स्वसैन्य

घटोत्कच—अहा, निश्चय ही आप बड़े सौभाग्यशाली है । कल्याणों के जनक आप पितामह से भगवान् चक्रपाणि (श्रीकृष्ण) ने कहा है ।

धृतराष्ट्र (आसन से उठकर) भगवान् चक्रपाणि की क्या आज्ञा है ?

घटोत्कच—नहीं, नहीं, नहीं । आप आसन पर बैठे ही श्रीकृष्ण का सन्देश सुनें ।

धृतराष्ट्र भगवान् चक्रपाणि की जो आज्ञा ।

घटोत्कच—पितामह ! सुनिए । हाय वत्स अभिमन्यु ! हाय कुरुवंश के दीपक ! हाय वत्स यदुकुल के अङ्कुर ! तुम अपनी माता मामा और मुझ (पिता) को भी छोड़कर पितामह (इन्द्र) के दर्शन की आशा से स्वर्गलोक को चले गये । हे पितामह ! एक पुत्र के विनष्ट हो जाने से तो अर्जुन की यह अवस्था हुई है, फिर (सौ पुत्रों के विनष्ट होने पर) आप की क्या अवस्था होगी (सोचिए) । तो शीघ्र अब आप अपनी सेनाओं को लौटा ले, ताकि पुत्रशोक से उठी आग तुम्हारे प्राण रूप हवि को न जलाये ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

ततः क्षिप्रमिदानीमात्मबलाधानं कुरुष्व। यथा ते पुत्रशोकसमुत्थितोऽग्निर्न दहेत् प्राणमयं हविरिति।

धृतराष्ट्रः—

सक्रोधव्यवसायेन कृष्णेनैतदुदाहृतम्।
पश्यामीव हि गाण्डीवी सर्वक्षत्रवधे धृतः ॥३७॥

सर्वे—अहो हास्यमभिधानम्।

घटोत्कचः—किमेतद्धास्यते।

दुर्योधनः—एतद्धास्यते—

प्रत्यावर्तनम्। पुत्रशोकसमुत्थितः—पुत्रमरणजन्यशोकसमुद्भूतः। प्राणमयम् = प्राणात्मकम्।

श्रीकृष्णसन्देशं श्रुत्वा धृतराष्ट्रो घटोत्कचमाह—सक्रोधेति। सक्रोधव्यवसायेन—क्रोधेन सहितः सक्रोधः, तादृशो व्यवसायः उद्योगो यस्य तेन। कृष्णेन = वासुदेवेन, एतत् = वचः, उदाहृतम् = कथितम्। हि = यतः। गाण्डीवी —गाण्डीवं धनुरस्त्यस्येति गाण्डीवी ('अत इनिठनौ' इति इनिः) = अर्जुनः। सर्वक्षत्रवधे—सर्वेषां क्षत्राणाम् = क्षत्रियाणां वधे = विनाशे, धृतः = नियुक्तः श्रीकृष्णेनेति भावः। इति पश्यामि = अवगच्छामीवेत्यर्थः। उत्प्रेक्षालंकारः। अनुष्टुब्वृत्तम्॥ ३७॥

सर्वे इति। अभिधानम् = कथनम्, श्रीकृष्णस्येति भावः। हास्यम् = हसनीयम्।

धृतराष्ट्र—क्रोध के आवेश में सचेष्ट होकर ऐसा श्रीकृष्ण ने कहा है, मैं तो प्रत्यक्ष देख सा रहा हूँ कि (उनके द्वारा) गाण्डीवधारी अर्जुन समस्त क्षत्रियों के विनाश में नियुक्त कर दिया गया है॥ ३७॥

सब लोग—अहा, कैसा हास्यास्पद सन्देश है!

घटोत्कच—इसमें हँसने की क्या बात है?

दुर्योधन—हँसने की यह बात है—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

देवैर्मन्त्रयते सार्धं स कृष्णो जातमत्सरः ।
पार्थेनैकेन यो वेत्ति निहतं राजमण्डलम् ॥ ३८ ॥

घटोत्कचः—

हससि त्वमहं वक्ता प्रेषितश्चक्रपाणिना ।
श्रावितं पार्थकर्मेदमहो युक्तं तवैव तु ॥ ३९ ॥

अपि च, भवतापि श्रोतव्यो जनार्दनसन्देशः ।

दुश्शासनः—मा तावत् भोः ! क्षत्रियावमानिन् !

दुर्योधनः श्रीकृष्णसन्देशस्य हास्यत्वमुपपादयति—देवैरिति । जातमत्सरः—जातः = उत्पन्नः मत्सरः = ईर्ष्या यस्य स तथोक्तः । सः = प्रसिद्धः, कृष्णः = वासुदेवः, देवैः सार्धम् = सुरैः सह, मन्त्रयते = मन्त्रणां करोति । यः = कृष्णः, एकेन = अद्वितीयेन, पार्थेन = अर्जुनेन, राजमण्डलम् = नृपसंघम्, निहतम् = विनाशितम्, वेत्ति = जानाति। तद्धास्यमेव तत्कथनमिति भावः । अनुष्टुब्वृत्तम् ॥

घटोत्कचो दुर्योधनं निन्दति—हससीति । त्वम् = दुर्योधनः, हससि = हास्यं करोषि, अहम् = घटोत्कचः, वक्ता = सन्देशवाहकः, चक्रपाणिना—चक्रं पाणौ यस्य स चक्रपाणिः श्रीकृष्णः तेन, प्रेषितः = प्रेरितः, पार्थकर्म—पार्थस्य = अर्जुनस्य कर्म = कृत्यम्, श्रावितम् = कर्णगोचरीकृतम्, अहो ! इदम् = एतादृशं कर्म, सन्देशं श्रुत्वा हसनमित्यर्थः । तवैव = तव दुर्योधनस्यैव तु युक्तम् = उचितम् । त्वदतिरिक्तो नान्यः कश्चिदेवं कर्तुं समर्थः, मूढस्त्वं श्रीकृष्ण सन्देशं तिरस्करोषीति भावः । अनुष्टुब्वृत्तम् ॥ ३९ ॥

वह कृष्ण देवताओं के साथ मन्त्रणा किया करता है (अतः देवताओं की सङ्गति से) वह ईर्ष्यालु हो गया है जो केवल एक अर्जुन के द्वारा समस्त राज-समुदाय को मारा गया समझता है ॥ ३८ ॥

घटोत्कच—चक्रपाणि भगवान् कृष्ण के द्वारा भेजा हुआ मैं सन्देश कह रहा हूँ और तुम मखौल कर रहे हो । मैं पार्थ का कर्म सुना चुका । अहो, यह (हँसी उड़ाना) तुम (मूढ) को उचित ही है ॥ ३९ ॥

और भी, आप भी श्रीकृष्ण का सन्देश सुन लें ।

दुःशासन—अजी, ऐसा नहीं । हे क्षत्रियों का अपमान करने वाले !

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पृथिव्यां शासनं यस्य धार्यते सर्वपार्थिवैः।
सन्देशः श्रोष्यतेऽप्यन्यो न राज्ञस्तस्य संनिधौ ॥ ४० ॥

घटोत्कचः—कथं दुश्शासनो व्याहरति अरे दुश्शासन ! अराजा नाम भवतां चक्रायुधः। हुं भोः !

मुक्ता येन यदा पुरा नृपतयः प्रभ्रष्टमानोच्छ्रया
येनार्घ्यं नृपमण्डलस्य मिषतो भीष्माग्रहस्ताद्धृतम्।

दुःशासनो घटोत्कचं निवारयति—पृथिव्यामिति। पृथिव्याम् = भुवि, यस्य = दुर्योधनस्य, शासनम् = आदेशम्, सर्वपार्थिवैः —सर्वे च ते पार्थिवाः तैः, समस्तभूपतिभिः, धार्यते = शिरसा गृह्यते, पाल्यत इत्यर्थः। अपि=फलत इत्यर्थः। तस्य राज्ञः = दुर्योधनस्य, संनिधौ = उपस्थितौ,अन्यः — नृपसन्देशभिन्न इत्यर्थः, सन्देशः, न श्रोष्यते—न कर्णगोचरीकरिष्यते। अनुष्टुब्वृत्तम्।।४०।।

घटोत्कच इति। व्याहरति = ब्रवीति। चक्रायुधः = श्रीकृष्णः। हुमिति क्रोधद्योतकमत्र।

घटोत्कचः स क्रोधं श्रीकृष्णस्य राजश्रेष्ठत्वमुपपादयति—मुक्ता येनेति। पुरा = पूर्वकाले, यदा = यस्मिन् समये, प्रभ्रष्टमानोच्छ्रयाः = प्रभ्रष्टः = विनष्टः, मानस्य = संमानस्य उच्छ्रयः = विकास इत्यर्थः, येषां तादृशाः, नृपतयः = राजानः, जरासन्धकारागारे बद्धा आसन् इति शेषः। (तदा) येन = श्रीकृष्णेन (तदवस्था राजानः) मुक्ताः = मुक्तिं प्रापिताः, नृपमण्डलस्य = राजसमुदयस्य, मिषतः = पश्यतः ('षष्ठी चानादरे' इति षष्ठी) नृपमण्डलमनादृत्येर्थः। येन = श्रीकृष्णेन, भीष्माग्रहस्तात्—भीष्मस्य अग्रहस्तः =

जिस का आदेश पृथिवी पर राजा धारण करते हैं (स्वीकार कर पालन करते हैं) अतएव उस राजा के सम्मुख अन्य (जो राजा का नहीं है) सन्देश नहीं सुना जायगा ॥ ४० ॥

घटोत्कच—क्या दुःशासन बोल रहा है ? अरे दुःशासन ! चक्रपाणि श्री कृष्ण तुम्हारे लिए राजा नहीं हैं क्या ? हुम्, अजी—

पहले जब (जरासन्ध के कारागार में जो बन्द थे) उन राजाओं को जिनका सम्मान नष्ट किया जा चुका था, जिन श्रीकृष्ण ने मुक्त कराया,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रीर्यस्याभिरता नियोगसुमुखी श्रीवक्षशय्यागृहे
श्लाघ्यः पार्थिवपार्थिवस्तव कथं राजा न चक्रायुधः ॥४१॥

दुर्योधनः—दुश्शासन ! अलं विवादेन ।

राजा वा यदि वाऽराजा बलो वा यदि वाऽबली ।
बहुनात्र किमुक्तेन किमाह भवतां प्रभुः ॥ ४२ ॥

घटोत्कचः—अथ किमथ किम् । प्रभुरेव त्रैलोक्यनाथो भगवाश्चक्रायुधः । विशेषतोऽस्माकं प्रभुः । अपि च—

हस्तस्य अग्रभागः तस्मात् । अर्घ्यम् = पूजोपहारः, हृतम् = स्वीकृतम् । यस्य=श्रीकृष्णस्य, श्रीवक्षशय्यागृहे—श्रीवक्षः=सौन्दर्ययुक्तं वक्षः, तदेव शय्यागृहम् तस्मिन्, नियोगसुमुखी—नियोगेन=आदेशेन सुमुखी = सुप्रसन्ना, अभिरता = लब्धाभिरामा । श्लाघ्यः = प्रशंसनीयः, पार्थिवपार्थिवः—पार्थिवानां पार्थिवः, राजराजः, चक्रायुधः = श्रीकृष्णः, तव = दुःशासनस्य, कथम् =केन प्रकारेण, न राजा = न नृपः । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ ४१ ॥

दुर्योधनो दुःशासनं विवादान्निवारयन्नाह—राजा वेति । यदि (कृष्णः) राजा वा = नृपो वा, अराजा वा = नृपभिन्नो वा, बली = बलवान् वा, अबली = निर्बलो वा स्यात्, अत्र = अस्मिन् विषये, बहुना उक्तेन किम् = बहुना कथनेन प्रयोजनं नास्तीत्यर्थः । भवताम् = युष्माकम्, घटोत्कचस्ये-

---

जिन श्रीकृष्ण ने राज-समूह के देखते-देखते भीष्म के हाथ से अर्घ्यदान लिया, जिन श्रीकृष्ण के आदेश पालन से लक्ष्मी को प्रसन्नता होती है और वह उनके श्रीवक्षस्थल रूप शयनागार में आनन्द प्राप्त करती है, वे प्रशस्य, राजाधिराज श्रीकृष्ण क्यों कर तुम्हारे लिए राजा नहीं हैं ॥ ४१ ॥

दुर्योधन—दुःशासन ! अब विवाद बन्द करो ।

श्रीकृष्ण चाहे राजा हों या अराजा, चाहे बली हों या निर्बल, इस विषय में अधिक कहने से क्या (प्रयोजन) ? तुम्हारे स्वामी ने क्या कहा है (वह बताओ) ॥ ४२ ॥

घटोत्कच—और क्या और क्या ? भगवान् श्रीकृष्ण तीनों लोकों के स्वामी प्रभु ही हैं । विशेषतः हमारे स्वामी हैं । और भी—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अवसितमवगच्छ क्षत्रियाणां विनाशं
नृपशतविनिचित्या लाघवं चास्तु भूमेः ।
न हि तनयविनाशादुद्यतोग्रास्त्रमुक्तैः
समरशिरसि कश्चित्फाल्गुनस्यातिभारः ॥ ४३ ॥

शकुनिः—

यदि स्याद्वाक्यमात्रेण निर्जितेयं वसुन्धरा ।

त्यर्थः, प्रभुः = स्वामी, कृष्ण इत्यर्थः, किम् आह = किं वदति, तदुच्यतामिति भावः ॥ अनुष्टुब्वृत्तम् ॥ ४२ ॥

घटोत्कचोऽर्जुनस्य कृत्यं श्रावयति—अवसितमिति । क्षत्रियाणाम् = नृपाणाम्, विनाशम् = निहननम्, अवसितम् = समाप्तम्, अर्जुनेन कृतमिति भावः । अवगच्छ = जानीहि । नृपशतविनिचित्या—नृपाणाम् दुर्योधनादीनां कौरवाणामित्यर्थः, शतम् = शतसङ्ख्याकानां दुर्योधनादीनां नृपविशेषाणां हतानामिति भावः । विनिचितिः = एकत्रावस्थापनं तया, भूमेः = पृथिव्याः, लाघवम् = लघुता, पृथिव्या भारलाघवमिति भावः, अस्तु = भवतु । तनयविनाशात्—तनयस्य = पुत्रस्य अभिमन्योः विनाशः = संहारः तस्मात्, उद्यतोग्रास्त्रमुक्तैः—उद्यतानि = गृहीतानीत्यर्थः, उग्राणि = भीषणानि यानि अस्त्राणिः = आयुधानि तेषां मुक्तानि = प्रहारा इत्यर्थः, (भावे क्तः) तैः, समरशिरसि = रणाग्रे, रणप्राङ्गणे इत्यर्थः । फाल्गुनस्य = अर्जुनस्य, कश्चित् = कोऽपि, अतिभारः=महत्कार्यम्, न हि=मैवास्ति । तथाकरणमर्जुनस्य सुकरमेव, लीलयैव तथा कर्तुं स समर्थ इति भावः । मालिनी वृत्तम् । तल्लक्षणं यथा—ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः ।" इति ॥ ४३ ॥

शकुनिर्घटोत्कचोक्तिमधिक्षिपति—यदि स्यादिति । यदि = चेत्, वाक्यमात्रेण = कथनमात्रेणैव, इयम् = अतिविस्तीर्णा, वसुन्धरा = पृथ्वी, निर्जिता =

क्षत्रियों का विनाश हुआ समझो । सौ (दुर्योधनादि) राजाओं के (शव का) ढेर लग जाने से पृथिवी का भार हलका हो । पुत्र (अभिमन्यु) के वध से उठे हुए भीषण अस्त्रों के प्रहारों से युद्ध में अर्जुन के लिए (यह) कोई बड़ा भारी काम नहीं होगा ॥ ४३ ॥

शकुनि—यदि कहने मात्र से यह पृथिवी जीत ली जाय, यदि बात-बात

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वाक्ये वाक्ये यदि भवेत् सर्वक्षत्रवधः कृतः ॥ ४४ ॥

घटोत्कचः—शकुनिरेष व्याहरति । भोः शकुने !

अक्षान्विमुञ्च शकुने ! कुरु बाणयोग्य-
मष्टापदं समरकर्मणि युक्तरूपम् ।
न ह्यत्र दारहरणं न च राज्यतन्त्रं
प्राणाः पणोऽत्र रतिरुग्रबलैश्च बाणैः ॥ ४५ ॥

स्वायत्तीकृता स्यात् = भवेत्, यदि = चेत् वाक्ये वाक्ये = वचने वचने, कथनमात्रेणैवेत्यर्थः । सर्वक्षत्रवधः = सर्वेषां क्षत्राणाम् = क्षत्रियाणाम्, वधः = विनाशः कृतः = विहितो भवेत्, तर्हि नास्त्यतिभारोऽर्जुनस्येति भावः । अनुष्टुब्वृत्तम् ॥४४॥

घटोत्कचः शकुनिमधिक्षिपति—अक्षान्विमुञ्चेति । अक्षान् = द्यूतोपयोगिनः पाशान्, विमुञ्च = परित्यज । हे शकुने ! समरकर्मणि = युद्धव्यापारे, युक्तं रूपम् = योग्यम्, बाणयोग्यम् = शरानुरूपम्, अष्टापदम्,—फलकम् वस्त्रं वा अष्टकोष्ठकयुक्तं यद् द्यूतक्रीडायां प्रयुज्यते, अष्टाङ्गमित्यप्यभिधीयते । कुरु = विधेहि । अत्र = युद्धभूमावित्यर्थः दारहरणम् = दाराणां हरणम् द्रौपदीचीरहरणम् इत्यर्थः । न हि = नैवास्ति । राज्यतन्त्रम् = राज्यापहरणमित्यर्थः; न च = नैव च वर्तते । अत्र = युद्धभूमौ, प्राणाः पणः = ग्लहः उग्रबलैः = प्रचण्डशक्तिशालिभिः, बाणैः = शरैश्च, रतिः = आनन्दानुभूतिः, क्रीडा त्वं तु नात्र समर्थं इति भावः । वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ ४५ ॥

में सब क्षत्रियों का वध कर दिया जाय (तो अवश्य अर्जुन के लिए कोई बड़ा भार नहीं होगा) ॥ ४४ ॥

घटोत्कच—यह शकुनि बोल रहा है ? हे शकुनि !

पाँसों को छोड़ दो । हे शकुनि अपने क्रीडाफलक को युद्धकर्म के योग्य और बाणों के अनुरूप बना लो । यहाँ स्त्री का चीरहरण नहीं करना है और न राज्यापहरण करना है, यहाँ तो प्राणों को दाँव पर लगाना है और प्रचण्डशक्तिशाली तीखे बाणों से क्रीड़ा करनी है (जो तुम्हारे बस की बात नहीं)।४५।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दुर्योधनः—भो भोः ! प्रकृतिं गतः ।

क्षिपसि वदसि रूक्षं लङ्घयित्वा प्रमाणं
न च गणयसि किञ्चिद्व्याहरन्दीर्घहस्तः ।
यदि खलु तव दर्पो मातृपक्षोग्ररूपो
वयमपि खलु रौद्रा राक्षसोग्रस्वभावाः ॥ ४६ ॥

घटोत्कचः—शान्तं शान्तं पापम् । राक्षसेभ्योऽपि भवन्त एव क्रूरतराः ।

दुर्योधन इति । प्रकृतिम् = स्वभावम् । गतः = प्राप्तः, राक्षसभावमनुसृत्य व्याहरसि त्वमित्याशयः ।

दुर्योधनो घटोत्कचं भर्त्सयति—क्षिपसि वदसीति । प्रमाणम् = मर्यादाम्, लङ्घयित्वा अतिक्रम्य, क्षिपसि = निन्दां करोषि, रूक्षम् = कठोरम् वदसि = ब्रवीषि । दीर्घहस्तः – दीर्घौ = विशालौ, हस्तौ = बाहू यस्य सः (त्वं घटोत्कचः) व्याहरन् = जल्पन्, न च किञ्चित् = न हि किमपि वाच्यमवाच्य वा, गणयसि= विचारयसि । यदि = चेत् खलु = निश्चयेन, मातृपक्षोग्ररूपः—माता = जननी राक्षसकुलोत्पन्ना हिडिम्बा, तस्याः पक्षेन = सम्बन्धेन, उग्रम् = प्रचण्डं रूपं यस्य स तादृशः, दर्पः = गर्वः, भवतः = तव घटोत्कचस्य (अस्ति) तर्हि वयमपि = कौरवा अपि, राक्षसोग्रस्वभावाः राक्षसानामिव उग्रः = उद्धतः स्वभावः= प्रकृतिर्येषां ते तथाविधाः, रौद्राः = भयङ्कराः खलु । तदस्मासु विनयेन वर्त्तस्वेति भावः । मालिनी वृत्तम् ॥ ४६ ॥

दुर्योधन—अजी, अजी तुम (अपने) स्वभाव (राक्षसपन) पर उतर आये ।

तुम मर्यादा का उल्लङ्घन कर (हम सब की) निन्दा करते हो, कठोर वचन बोलते हो, तुम विशाल बाहुओं वाले वाद विवाद करते हुए (वाच्य तथा अवाच्य का) कुछ विचार नहीं करते हो । यदि तुम्हें अपनी माता (हिडिम्बा) के पक्ष वालों (राक्षसों) का प्रचण्ड गर्व है तो हम भी राक्षसों की तरह उद्धत स्वभाववाले भयङ्कर हैं ॥ ४६ ॥

घटोत्कच—पाप शान्त हो । राक्षसों से भी बढ़कर आप लोग ही क्रूर हैं ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कुतः—

न तु जतुगृहे सुप्तान् भ्रातॄन् दहन्ति निशाचराः
शिरसि न तथा भ्रातुः पत्नीं स्पृशन्ति निशाचराः ।
न च सुतवधं संख्ये कर्तुं स्मरन्ति निशाचरा
विकृतवपुषोऽप्युग्राचारा घृणा न तु वर्जिता ॥ ४७ ॥

दुर्योधनः—

दूतः खलु भवान् प्राप्तो न त्वं युद्धार्थमागतः ।

घटोत्कचो दुर्योधनस्य राक्षसेभ्योऽपि क्रूरतरत्वमुपपादयति न तु जतुगृहे इति । निशाचराः = राक्षसाः, जतुगृहे = लाक्षागृहे, सुप्तान् = शयानानित्यर्थः, भ्रातॄन् = बन्धून्, न तु दहन्ति = न भस्मसात्कुर्वन्ति । तथा = तेनैव प्रकारेण, निशाचराः = राक्षसाः, भ्रातुः = बन्धोः, पत्नीम् = भार्याम् शिरसि = मस्तके न स्पृशन्ति = स्पर्शं न कुर्वन्ति । किं च निशाचराः, संख्ये = सङ्ग्रामे, सुतवधम् = पुत्रहननं कर्तुं न स्मरन्ति = पुत्रं हन्तुं मनस्यपि न कुर्वन्तीति भावः । विकृतवपुषः–विकृतम् = विरूपितम्, भीषणमिति यावत्, वपुः = शरीरं येषां ते तथाभूताः, उग्राचाराः–उग्रः = कठोरः, आचारः = व्यवहारो येषां ते तथाभूता अपि, तु = किन्तु (तैः निशाचरैः) घृणा = दया, न वर्जिता = न त्यक्ता । भवद्भिस्तु सर्वथा दयापरित्यक्ता तद्राक्षसेभ्योऽपि भवन्तः क्रूरतरा इति भावः । अत्र प्रागुक्तकौरवक्रूरतरत्वोपपत्तये पादचतुष्टयवाक्यार्थानां हेतुत्वेनोपन्यासात् काव्यलिङ्गमलङ्कारः । हरिणी वृत्तम् । तल्लक्षणं यथा—' न समरसलागः षड्वेदैर्हयैर्हरिणी मता ।' इति ॥ ४७ ॥

दुर्योधनो दौत्येन समागतं घटोत्कचं निर्दिशति—दूतः खलु भवानीति । भवान् = त्वं घटोत्कचः खलु = निश्चयेन, दूतः = सन्देशवाहकः, प्राप्तः = आगतः,

---

क्योंकि—राक्षस तो लाक्षागृह में सो रहे भाइयों को नहीं जलाते हैं । निशाचर तो भौजाई के सिर पर हाथ नहीं लगाते हैं । निशाचर तो युद्ध में पुत्र का वध करने की बात सोच भी नहीं पाते हैं । उनका शरीर भीषण और व्यवहार उग्र भले ही हो, किन्तु उन्होंने दया का परित्याग तो नहीं किया है ॥ ४७ ॥

दुर्योधन—(देखो) तुम दूत बन कर आये हो, युद्ध के लिए नहीं आये हो,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गृहीत्वा गच्छ सन्देशं न वयं दूतघातकाः ॥ ४८ ॥

घटोत्कचः—(सरोषम्) किं दूत इति मां प्रधर्षयसि । मा तावद् भो ! न दूतोऽहम् ।

अलं वो व्यवसायेन प्रहरध्वं समाहृताः ।
ज्याच्छेदाद् दुर्बलो नाहमभिमन्युरिह स्थितः ॥४९ ॥

महानेष कैशोरकोऽयं मे मनोरथः ।
अपि च,

दष्टोष्ठो मुष्टिमुद्यम्य तिष्ठत्येष घटोत्कचः ।

त्वं युद्धार्थम् = युद्धं कर्तुं न आगतः, सन्देशम्, गृहीत्वा = आदाय, गच्छ = याहि, वयं दूतघातका न (स्मः) विवादाद्विरतो भूत्वा सन्देशमादाय गच्छ-स्वस्थानम्, नो चेद्धनिष्यसे इति भावः । अनुष्टुब्वृत्तम् ॥ ४८ ॥

घटोत्कच इति । प्रधर्षयसि = अवमन्यसेः ।

अलमिति । वः=युष्माकम्, व्यवसायेन=व्यापारेण । अलम् = निषेधार्थकम-व्ययपदम् । समाहृताः = सम्मिलिताः । प्रहरध्वम् = (मयि) कुरुत प्रहारम् । ज्याच्छेदात्—ज्यायाः=मौर्व्याः, छेदात्=कर्तनात्, दुर्बलः=विवशः, असहायः, अभिमन्युः, अहम् = घटोत्कचः, इह = अत्र तव सभागृहे, न स्थितः=नास्मीति भावः । अनुष्टुब्वृत्तम् ॥ ४९ ॥

दष्टोष्ठ इति । दष्टः ओष्ठः=अधरोष्ठ इत्यर्थः, येन सः ('ओत्वोष्ठयोः समासे वा' इति वचनेन पररूपमेकादेशः) मुष्टिम्, उद्यम्य=उत्थाप्य, एषः=अयम्, घटोत्कचः, तिष्ठति = वर्तते । कश्चित् पुमान्=कोऽपि पुरुषः, यमालयम् = यमपुरम्,

---

अतः सन्देश लेकर (वापस) जाओ । हम दूतों का वध नहीं करते हैं ॥ ४८ ॥

घटोत्कच—(क्रोध के साथ) क्या दूत मानकर मुझे अवमानित कर रहे हो ? अजी ऐसा नहीं मैं दूत नहीं हूँ ।

तुम लोगों का व्यापार समाप्त हो । तुम सब एक जुट होकर मुझपर प्रहार करो, मैं प्रत्यञ्चा कट जाने से विवश हुआ अभिमन्यु नहीं हूँ । यहाँ खड़ा हूँ । मेरा यह किशोरावस्था का बहुत बड़ा उद्दाम मनोरथ है ।

और भी—

यह घटोत्कच (क्रोध से) ओठ काट कर मुट्ठी तान कर खड़ा है । कोई

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उत्तिष्ठतु पुमान् कश्चिद्गन्तुमिच्छेद्यमालयम् ॥ ५० ॥

(सर्वे उत्तिष्ठन्ति ।)

धृतराष्ट्रः—पौत्र घटोत्कच ! मर्षयतु मर्षयतु भवान् । मद्वचनावगन्ता भव ।

घटोत्कचः—भवतु भवतु। पितामहस्य वचनाद् दूतोऽहमस्ति । तथापि हि न शक्नोमि रोषं धारयितुम् । किमिति विज्ञाप्यः ।

दुर्योधनः—आः कस्य विज्ञाप्यम् । मद्वचनादेवं स वक्तव्यः ।

किं व्यर्थं बहु भाषसे न खलु ते पारुष्यसाध्या वयं

गन्तुम् = यातुम्, इच्छेत्=अभिलषेत्, उत्तिष्ठतु = योद्धुमभिगच्छेत् ॥ अनुष्टुब्वृत्तम् ॥ ५० ॥

धृतराष्ट्र इति । मर्षयतु=क्षमताम् । मद्वचनावगन्ता—अवगच्छति इति अवगन्ता, ममवचनस्यावगन्ता इति तथोक्तः भव—मम वचनं शृणोतु, श्रुत्वा च तदनुसरत्विति भावः ।

दुर्योधनः कृष्णं सन्दिशति—किम = किमर्थम्, बहु=अत्यन्तम्, व्यर्थम्= निरर्थकम्, भाषसे = जल्पसि । वयम् = कौरवाः, खलु=निश्चयेन, ते = तव= कृष्णस्य, पारुष्यसाध्याः—पारुष्येन = अपभाषनेन साध्याः = वश्याः, न

पुरुष यमपुरी जाना चाहता हो तो उठे ॥ ५० ॥

(सब उठते हैं)

धृतराष्ट्र—पौत्र घटोत्कच ! तुम क्षमा करो, क्षमा करो । मेरी बात का ख्याल करो ।

घटोत्कच— अच्छा, अच्छा । पितामह के वचन से मैं दूत हूँ । तथापि मैं क्रोध को रोक नहीं सकता हूँ । (कहिए) क्या प्रार्थना है ?

दुर्योधन—ओह, किसकी प्रार्थना ? मेरे वचन से (कृष्ण से) ऐसा कहना -

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कोपान्नार्हसि किंचिदेव वचनं युद्धं यदा दास्यसि ।
निर्याम्येष निरन्तरे नृपशतच्छत्रावलीभिर्वृत-
स्तिष्ठ त्वं सह पाण्डवैः प्रतिवचो दास्यामि ते सायकैः ॥ ५१ ॥

घटोत्कचः--पितामह ! एष गच्छामि ।

धृतराष्ट्रः--पौत्र ! गच्छ, गच्छ ।

घटोत्कचः--भो भो राजानः श्रूयतां जनार्दनस्य पश्चिमः सन्देशः ।

धर्मं समाचर कुरु स्वजनव्यपेक्षां
यत्कांक्षितं मनसि सर्वमिहानुतिष्ठ ।

(भविष्यामः) । कोपात्=क्रोधात्, किञ्चिदेव = किमपि, वचनम्, नार्हसि=न योग्योऽसि, वक्तुमिति शेषः । यदा = यस्मिन् समये, युद्धं दास्यसि=संग्रामं करिष्यसि, निरन्तरम्=सततम्, नृपशतच्छत्रावलीभिः—नृपाणां शतानि तेषां छत्रावलीभिः वृतः, एषः=अहं दुर्योधनः, निर्यामि=निर्गच्छामि (वर्तमानसामीप्ये लट्) । त्वम्=कृष्णः, पाण्डवैः सह तिष्ठ—पाण्डवानां साहाय्यं कुर्वित्यर्थः । ते=तव कृष्णस्य, प्रतिवचः=प्रत्युत्तरम्, सायकैः = बाणैः, दास्यामि । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ ५१ ॥

घटोत्कच इति । पश्चिमः = अन्तिमः ।

सन्देशं श्रावयति—धर्मं समाचरेति । धर्मं समाचर = धर्माचरणं कुरु । स्वजन-व्यपेक्षां कुरु—स्वजनानां व्यपेक्षा = विशिष्टा अपेक्षा ताम्, अनुरोधम्, समादरमिति यावत्, कुरु = विधेहि । इह = अत्र संसारे, मनसि = हृदये, यत् कांक्षितम् = अभिलषितम्, तत् सर्वम्, अनुतिष्ठ = सम्पादय । जात्योपदेशः—

क्यों व्यर्थ बढ़-बढ़कर बोलते हो ? हम तुम्हारी धमकियों से हार मानने वाले नहीं । क्रोधवश कुछ भी कहना तुम्हें उचित नहीं है । जब युद्ध छेड़ोगे मैं सैकड़ों राजाओं के छत्रों से निरन्तर परिवृत निकलूँगा । तुम पाण्डवों के साथ रहो, तुम्हारे वचन का उत्तर बाणों से दूँगा ॥ ५१ ॥

घटोत्कच—पितामह ! यह मैं जा रहा हूँ ।

धृतराष्ट्र—पौत्र ! जाओ, जाओ ।

घटोत्कच—अजी, अजी राजाओ ! श्रीकृष्ण का अन्तिम सन्देश सुन लो—धर्म का आचरण करो, स्वजनों का सम्मान करो, जो कुछ अभीष्ट हो सब

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जात्योपदेश इव पाण्डवरूपधारी
सूर्यांशुभिः सममुपैष्यति वः कृतान्तः ॥ ५२ ॥ इति ।

(निष्क्रान्ताः सर्वे ।)

दूतघटोत्कचं नामो सृष्टिकाङ्कं समाप्तम् ॥

—०×०—

जातौ भवः जात्यः = सजातिः हित इति यावत्, तस्य उपदेश इव, पाण्डवरूपधारी—पाण्डवः = अर्जुनः, तस्य रूपं धरतीति, अर्जुनस्वरूपं धृत्वा कृतान्तः = यमः, सूर्यांशुभिः समम् = सूर्यकिरणैः सह, सूर्ये समुदिते सत्येवेत्यर्थः । वः = युष्मान् उपैष्यति = आगमिष्यति, स युष्मान् विनाशयिष्यतीति भावः । वसन्ततिलकं वृत्तम् । उपमालंकारः । उपमेये पाण्डवे उपमानस्य कृतान्तस्याभेदारोपाद्रूपकम् 'सूर्यांशुभिः समम् उपैष्यति' इत्यत्र सहोक्तिलङ्कारश्च ॥ ५२ ॥

इति कल्याणीत्याख्यायां संस्कृतव्याख्यायां प्रथमोऽङ्कः

समाप्तं चदूतघटोत्कचं नामोत्सृष्टिकाङ्कम् ॥

—०×०—

इस जगत् में कर लो, पाण्डव (अर्जुन) के रूप में हितोपदेश के समान यमराज सूर्य की किरणों के साथ तुम्हारे पास पहुँचेगा ॥ ५२ ॥

(सब चले जाते हैं)

दूतघटोत्कच उत्सृष्टिकाङ्क समाप्त

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

परिशिष्ट

टिप्पणी : नोट्स

प्रथम अङ्क

पृष्ठ १—नान्द्यन्ते—नान्दी समाप्त होने पर। नान्दी शब्द के दो अर्थ होते हैं :—

(१) नन्दन्ति देवा अस्याम् अथवा नन्दयति देवद्विजनृपादीन् इति नान्दी। भरतमुनि ने नान्दी की परिभाषा की है—

"देवद्विजनृपादीनामाशीर्वादपरायणा।
नन्दन्ति देवता यस्मात्तस्मान्नान्दीति कीर्तिता ॥"

विश्वनाथ कविराज के अनुसार—

"आशीर्वचनसंयुक्ता स्तुतिर्यस्मात् प्रयुज्यते।
देवद्विजनृपादीनां तस्मान्नान्दीति संज्ञिता ॥"

अर्थात् मङ्गलाचरणरूप पद्य जो रूपकग्रन्थ के आरम्भ में कवि द्वारा निबद्ध किया जाता है उसे 'नान्दी' कहते हैं। स्पष्ट है कि ऐसी 'नान्दी' सत्काव्यरूप होती है जिसका प्रयोग सूत्रधार अथवा उसका सहायक रंगमंच पर उपस्थित हुए बिना नहीं कर सकता है। यहाँ अभी कोई ऐसा व्यक्ति तो प्रविष्ट नहीं हुआ है, अतः 'नान्द्यन्ते' में प्रयुक्त नान्दी शब्द आशीर्वचनसंयुक्त देवतादिस्तुतिरूप मङ्गलश्लोकपरक नहीं हो सकता है।

(२) नान्दी शब्द का दूसरा अर्थ है—भेरी या आनक (देशी भाषा में 'नगाड़ा')। यह शब्द अन्य वाद्यों का भी उपलक्षण है। इस नान्दी शब्द का सामान्यरूप से अर्थ होता है—नाटय प्रयोग के पहले, नटों के द्वारा किया गया माङ्गल्य गायनवादनादि।' यहाँ नान्दी शब्द का प्रयोग इसी दूसरे अर्थ में हुआ है। भास के सभी नाटकों में प्रारम्भ में 'नान्द्यन्ते ततः प्रविशति

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

सूत्रधारः' वाक्य पाया जाता है। वहाँ सर्वत्र नान्दी शब्द इसी अर्थ में प्रयुक्त समझना चाहिए। इसी नान्दी के समाप्त होने पर सूत्रधार रंगमंच पर आता है और तब कवि रचित मङ्गलाचरणरूप पद्य (नान्दी) का पाठ करता है।

ततः—'ततः' शब्द से यह सूचित होता है कि गायनवादनादिरूप नान्दी के समाप्त होने पर तुरन्त अविलम्ब (उसके बाद ही) सूत्रधार प्रविष्ट होता है।

सूत्रधारः—सूत्रमभिनेयसूचनं धारयतीति सूत्रधारः। वह प्रधान नट जो सर्वप्रथम रंगमंच पर आकर अभिनेय नाटक की सूचना तथा उसका संक्षिप्त परिचय सामाजिकों को देता है, सूत्रधार कहलाता है—

'वर्णनीयं कथासूत्रं प्रथमं येन सूच्यते।
रङ्गभूमिं समाक्रम्य सूत्रधारः स उच्यते॥'

भरतमुनि के अनुसार—

"नाट्योपकरणादीनि सूत्रमित्यभिधीयते।
सूत्रं धारयतीत्यर्थे सूत्रधारो निगद्यते॥"

अर्थात् नाट्य के उपकरणों को सूत्र कहते हैं, उसे जो सँभालता है वह सूत्रधार कहा जाता है (आधुनिक शब्दावली में 'स्टेज-डाइरेक्टर)।

श्लोक १—इस रूपक ग्रन्थ के आरम्भ में कवि द्वारा निबद्ध मङ्गलाचरणरूप पद्य 'नान्दी' है। इसमें देव नारायण की स्तुति की गयी है और उनसे यह प्रार्थना की गयी है कि वे सामाजिकों का कल्याण करें।

"आशीर्वचनसंयुक्ता स्तुतिर्यस्मात् प्रयुज्यते।
देवद्विजनृपादीनां तस्मान्नान्दीति संज्ञिता॥" (साहित्यदर्पण)

इस कविरचित नान्दी का पाठ सूत्रधार करता है। 'सूत्रधारः पठेन्नान्दीम्' (भरतमुनि)।

भास के नाटकों को छोड़कर अन्य रूपक ग्रन्थों में कविकृत नान्दी के बाद 'नान्द्यन्ते सूत्रधारः' का उल्लेख पाया जाता है। इसके अनुसार कुछ विद्वानों का कहना है कि कवि-निबद्ध नान्दी का पाठ किसी अन्य नट का कर्त्तव्य है। ऐसा ही मानने से वहाँ 'नान्द्यन्ते सूत्रधारः' वाक्य की सङ्गति बैठ सकती

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है। वास्तव में वहाँ भी भरतमुनि के अनुसार सूत्रधार ही नान्दी पाठ करता है। अमङ्गल से बचने के लिए ही नान्दी के पूर्व उसका उल्लेख नहीं किया जाता है। ग्रन्थ का आरम्भ मङ्गलश्लोक से होना चाहिए।

पृष्ठ ३—आर्यमिश्रान्-आर्य और मिश्र ये दोनों शब्द विशेषण हैं। इनका कर्मधारय समास होने पर 'आर्यमिश्र' समस्त पद बनता है। इसका अर्थ होता है—आदरणीय, योग्य, पूज्य सज्जन पुरुष। यहाँ इसका प्रयोग रङ्ग सामाजिकों के लिए हुआ है जिससे उनके प्रति आदर भाव प्रकट किया गया है।

अङ्ग—यह संबोधक अव्यय है जिसका अर्थ है—"अच्छा", "अच्छा, श्रीमान्।"

संशप्तक—सम्यक् शप्तमङ्गीकारो यस्य स संशप्तकः। वह योद्धा जिसने युद्ध से न भागने की शपथ खायी हो। सुशर्मा आदि त्रिगर्तराजपुत्र 'संशप्तक' कहे जाते थे। 'त्रिगर्त' भारत के उत्तर पश्चिम में स्थित एक देश का नाम है जिसे आज 'जालन्धर' कहते हैं।

श्लोक ३—पितामहस्य—पितुः पिता = पितामहः, (पितृ + डामहच्)। आरोपितः—आ + √रुह् + णिच् + क्त (कर्मणि) 'रुहः पोऽन्यतरस्याम्' रुह्धातोः पकारान्तादेशः।

श्लोक ४—श्रुतिपथ—श्रुत्योः पन्था इति श्रुतिपथः। षष्ठी समास होने पर 'ऋक्पूरब्धूः पथामानक्षे' इति समासान्त 'अ' प्रत्यय। 'नस्तद्धिते' सूत्र से टि (इन्) का लोप। दूषणम्—√दूष् + ल्युट् (यु = अन), नकार को णत्व। विप्रियम्—वि + √प्री + क ('इगुपध ज्ञाप्रीकिरः कः') यहाँ 'वि' विलोम अर्थ प्रकट करता है अतः 'विप्रिय' का अर्थ है अप्रिय, अरुचिकर। क्षयम्—√क्षि + अच् = क्षयः (एरच्) द्वितीयान्त क्षयम्। अभीतः—न भीतः, √भी + क्त (अकर्मकत्वात्कर्तरि)।

श्लोक ५—निधन = मरण। जनित—√जन् + णिच्+क्त (कर्मणि)। रश्मि—गुण = लगाम, रास। प्रतोद = (प्र + √तुद् + घञ्) लम्बा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चाबुक। पार्थः—पृथाया अपत्यं पुमान् (पृथा + अण्) = अर्जुन। अवाप्य—अव + √अप् + ल्यप् = प्राप्त होकर।

पृष्ठ १०—वैधव्यम्=विधवापन, विधवाया भावः, विधवा + ष्यञ्। आदिष्टम्+आ + √दिश् + क्त (कर्मणि)।

श्लोक ७—भर्तुः ··· न रोचते—'रुच्यर्थानां प्रीयमाणः' सूत्र से 'भर्तृ' शब्द से चतुर्थी प्राप्त थी किन्तु शेषत्वविवक्षा में षष्ठी की गयी है।

श्लोक ८—मत्तस्य हलायुधस्य ··· द्वितीयो मदः—बलराम जी का अभिमन्यु पर बड़ा स्नेह था, उसे देख कर मदयुक्त बलराम और भी स्नेह-वश मदमत्त हो जाते थे, अतः अभिमन्यु को बलराम का (मदिरा सम्बन्धी मद के अतिरिक्त) दूसरा मद कहा गया है। उपलप्स्यति—लभ् धातु आत्मने पदी है, यहाँ इसका परस्मैपदी के रूप में प्रयोग चिन्त्य है।

पृष्ठ १५—प्रतिपन्नम्—किया। प्रति + √पद् + क्त ('रदाभ्यां निष्ठातो नः पूर्वस्य च दः' सूत्र के अनुसार द् और त दोनों को नकार हो गया।)

गाण्डीवधन्वना—गाण्डीवधन्वन् शब्द से अनुक्त कर्ता में तृतीया (गाण्डीवधन्वना)। 'गाण्डीवं धनुर्यस्य' इस विग्रह में बहुव्रीहि समास होने पर 'धनुषश्च' सूत्र से 'धनुस्' के सकार को अनङ् (अन्) आदेश और उकार को यण् होने से 'गाण्डीवधन्वन्' प्रातिपदिक निष्पन्न होता है।

युक्तरूपः—जिसका रूप (ढंग) युक्त (सुव्यवस्थित) था। यह शब्द 'वधः' का विशेषण है। आशय यह निकलता है कि ऐसी स्थिति में उसका बध सर्वथा संभव था।

श्लोक ९—चिता—(√चि + क्त + टाप्) मुर्दे को जलाने के लिए चुन कर रक्खी हुई लकड़ियों का ढेर। प्रहृतम्—प्र + √हृ + क्त (भावे)।

श्लोक १०—न त्वस्मि शक्तः सलिलप्रदानैरित्यादि—जलाञ्जलिदान के द्वारा मैं प्रत्येक शिविर में जाकर राजाओं को युद्ध से रोक नहीं सकता हूँ। धृतराष्ट्र के कथन का आशय यह है कि राजाओं को रोकना मेरे वश की बात नही है अतः कौरवों का विनाश अवश्यंभावी है। जलाञ्जलि देने में कोई बाधा नहीं है, वह तो मेरे वश में है अतः उतना तो कर लूँ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उपरोध—उप + √रूध् + घञ् ।

श्लोक ११—लब्धो मयाऽद्य सममभ्युदयेन शब्दः—'शब्द' का अर्थ यहाँ उपाधि अथवा प्रख्याति आदि । आशय है कि अभ्युदय के साथ-साथ सम्राट् की उपाधि अथवा संसार में प्रसिद्धि भी मिल गयी, नाम भी कमा लिया । अभ्युदयेन समम्—'सहयुक्तेऽप्रधाने' इति तृतीया । लब्धः—√लभ् + क्त (कर्मणि) ।

श्लोक १२—रुद्धाः—√रुध् + क्त (कर्मणि) रोके गये । आक्रम्य—आ + √क्रम् + ल्यप् । आक्रान्त कर, पराजित कर । द्वितीयेऽर्जुने—अर्जुन अभिमन्यु के समान ही वीर था अतः उसे दूसरा अर्जुन कहा गया । व्यसन = विपद्, दुःख । आहव = युद्ध । आहूयतेऽस्मिन्निति आहवः—आ + √ह्वे + अप् । 'आङि युद्धे' पा० ३।३।७३ सूत्र के अनुसार अप् प्रत्यय और सम्प्रसारण होने से 'आहव' शब्द निष्पन्न होता है ।

श्लोक १३—नृपैः असंभावितम्—राजाओं ने जिसकी कल्पना भी नहीं की थी ।

प्रसह्य—(अव्यय) [प्र + सह् + (क्त्वा) ल्यप्] बलपूर्वक, प्रचंडता के साथ, जबर्दस्ती ।

श्लोक १४—कामम् = यथेष्ट । यह 'अव्यय' शब्द है । गर्हयति = निन्दा करता है । यहाँ चुरादि गणीय 'गर्ह विनिन्दने' धातु का प्रयोग हुआ है ।

श्लोक १६—पुत्रशताद्विशिष्टा—धृतराष्ट्र के दुर्योधन आदि सौ पुत्र थे किन्तु कन्या केवल एक यही दुःशला थी । स्वभावतः वह उसे सौ पुत्रों से अधिक प्रिय थी, अतः उसके विधवा हो जाने की संभावना से धृतराष्ट्र के दुःख का सहज अनुमान लगाया जा सकता है ।

पृष्ठ २२—वरविदग्धेन—बिदग्धश्चासौवरश्चेति वरविदग्धः तेन, मयूर-व्यंसकादि समास । धृतराष्ट्र ने व्यङ्ग्यपूर्वक जयद्रथ के लिए इस शब्द का प्रयोग किया है । व्यङ्ग्यार्थ यह निकलता है कि जयद्रथ ने उसकी कन्या का वर (पति) होकर भी वर (श्रेष्ठ पुरुष) का कार्य नहीं किया जो उसने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पाण्डवों को रोका। विदग्ध (निपुण) होकर भी उसने अविदग्ध (मूर्ख) का-सा आचरण किया।

श्लोक १७—इस अंक में श्लोक १७ से २४ तक धृतराष्ट्र और दुर्योधन आदि के बीच नोंक-झोंक पूर्ण जो बातें हुई हैं, वे पठनीय और मननीय हैं। इनसे महाकवि भास की संवाद-योजना तथा तर्कपूर्ण विवेचन शक्ति पर प्रकाश पड़ता है। धृतराष्ट्र के निष्पक्ष उज्ज्वल हृदय को दर्शकों एवं पाठकों के समक्ष भास ने खोल कर रख दिया है। इसी प्रकार दुर्योधन, दुःशासन और शकुनि के कलुषित हृदय की भी झलक दिखाने में वे सफल हुए हैं। धृतराष्ट्र पाण्डवों के पक्ष का समर्थन करते हैं और दुर्योधन आदि उनका खण्डन करते हुए अपने पक्ष का समर्थन करते हैं।

श्लोक १९—स्वच्छन्दमृत्युः—भीष्म पितामह को अपने पिता से इच्छा मृत्यु का वरदान प्राप्त था। अतः उनकी मृत्यु उनकी इच्छा पर निर्भर थी अतः शरशय्या पर पड़े वे उत्तरायण सूर्य की प्रतीक्षा करते रहे। जब सूर्य ने बसन्त विषुव को पार किया तब कहीं उन्होंने अपने प्राण त्यागे।

स्वेनोपदेशेन कृतात्मतुष्टिः—भीष्म ने पाण्डवों से स्वयम् अपनी मृत्यु का उपाय बताया था। ऐसा करने पर भी उन्हें दुःख नहीं बल्कि प्रसन्नता हुई थी। उन्हीं के उपदेशानुसार ही अर्जुन ने शिखण्डी की सहायता से युद्ध में उन्हें घायल किया था।

श्लोक २०—सर्वषां नः पश्यताम्—यहाँ अनादर अर्थ प्रकट हो रहा है (सर्वानस्माननादृत्येत्यर्थः) अतः 'षष्ठी चानादरे' सूत्र के अनुसार षष्ठी हुई है। सूत्रस्थ चकार के बल से सप्तमी भी होती है।

युध्यताम्—यह शतृप्रत्ययान्त है। किन्तु 'युध्' धातु आत्मने पदी है अतः इसे शानजन्त होना चाहिए। दीक्षित जी के अनुसार 'अनुदात्तोत्त्वलक्षण-मात्मनेपदमनित्यम्' इस परिभाषा के बल से आत्मनेपद की अनित्यता होने से परस्मैपद हुआ और लट् को 'शतृ' आदेश। अथवा युधमिच्छन्ति इति

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

युध्यन्ति–भावकिबन्त युध् शब्द से 'सुप आत्मनः क्यच्' सूत्र से क्यजन्त होने से परस्मैपद हुआ।

गृह्य—√ग्रह् + (क्त्वा) ल्यप्। वस्तुतः यहाँ क्त्वा को ल्यप् नहीं हो सकता है क्योंकि ग्रह् धातु के पूर्व उपसर्ग का प्रयोग नहीं है अतः 'गृहीत्वा' होना चाहिए। 'गृह्य' यह प्रयोग अपाणिनीय है। भास के नाटकों में इस प्रकार के अपाणिनीय प्रयोग बहुधा मिलते हैं।

श्लोक २२—निवातकवच—निवृत्तः वातः यस्मिन् तत् निवातम् = सुदृढम्, अभेद्यमित्यर्थः) निवातं कवचं येषां ते निवातकवचाः। निवातकवच नामक दैत्य थे। सम्भवतः अभेद्य कवच धारण करने के ही कारण वे निवातकवच नाम से प्रसिद्ध थे। वे इन्द्र को अत्यन्त पीडित किया करते थे। इन्द्र के कहने से अर्जुन ने उनका विनाश किया था।

खाण्डव—कुरुक्षेत्र प्रदेश में खाण्डव नामक वन था। वह इन्द्र को बहुत प्रिय था। उसे अग्नि ने कृष्ण और अर्जुन की सहायता से जलाया था। अर्जुन के उद्योग से उसमें रहने वाले सर्प भागने नहीं पाये थे, सब जलकर भस्म हो गये थे।

कैरातरूपम् हरन्—अस्त्रों की प्राप्ति के लिए अर्जुन इन्द्रकील पर्वत पर तप कर रहे थे। वहाँ किरातवेषधारी शिव से अर्जुन का युद्ध हुआ था। अर्जुन के पराक्रम से शङ्कर जी ने प्रसन्न होकर उन्हें 'पाशुपत' अस्त्र प्रदान किया था। चित्राङ्गदम्—एक बार चित्राङ्गद (अथवा चित्रसेन) गन्धर्व ने दुर्योधन को बाँध लिया था। अर्जुन ने ही उसे चित्राङ्गद से छुड़ाया था।

श्लोक २३—शक्रापनीतकवचः—कर्ण के जन्म के साथ ही अभेद्य कवच से उसका शरीर आच्छादित था। देवता और दानव भी हजारों अस्त्रों से उसका भेदन नहीं कर सकते थे। उस कवच के रहते कर्ण पराजित नहीं किया जा सकता था। पाण्डवों का काम बनाने के लिए इन्द्र विप्रवेष में आकर कर्ण से उसका कवच दान में माँग ले गया था।

अर्धरथः—अर्धः रथः यस्य सः। रथ पर बैठ कर युद्ध करने वाले योद्धा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

को रथी कहते हैं। कतिपय दोषों के कारण कर्ण को महाभारत में आधारथी (अर्धरथ) कहा गया है—

'रणे रणेऽभिमानी च विमुखश्चापि दृश्यते।
घृणी कर्णः प्रमादी च तेन मेऽर्धरथो मतः॥' इति।

व्याजोपलब्धविफलास्त्रबलः—परशुराम का नियम था कि वे ब्राह्मणों को ही अस्त्रोपदेश करते थे, क्षत्रियों को नहीं। कर्ण ने अपने को ब्राह्मण बता कर उनसे अस्त्र विद्या प्राप्त की। कर्ण के साथ एक दिन परशुराम समिधा और कुश लाने के लिए वन में गये। थक कर वे कर्ण की जाँघ पर सिर रख कर सो गये। दुर्दैव वश वज्रमुख नामक कीड़ा (महाभारत में अलर्क नामक कीड़ा) कर्ण की जाँघों में काटने लगा। गुरु की निद्रा भङ्ग न हो अतः कर्ण ने उस पीड़ा को सह लिया। रुधिर के स्पर्श से परशुराम जगे और उस सहन-शक्ति से कर्ण को क्षत्रिय समझने में उन्हें देर नहीं लगी। क्रुद्ध परशुराम ने कर्ण को शाप दिया—समय पड़ने पर तेरे शस्त्र काम न आवेंगे।

पृष्ठ ३३—प्रायश्चित्तम्—प्रायस्य पापस्य चित्तं विशोधनं यस्मात्। बहुव्रीहि समास निपातन से सुडागम। पाप से निस्तार पाने के लिए धार्मिक साधना को प्रायश्चित्त कहते हैं।

श्लोक ३०—यथा तथा = जैसे-तैसे। खिन्नाशयाः—आशय का अर्थ हृदय लेने पर अर्थ होगा—खिन्न हृदय वाले। आशय का अर्थ इच्छा भी है, तब अर्थ होगा भग्न इच्छा वाले। ज्वलन = अग्नि।

श्लोक ३१—कृष्णचक्षुषः—कृष्णश्चक्षुर्येषां ते, कृष्ण हैं नेत्र जिनके अर्थात् कृष्ण के द्वारा निर्दिष्ट। नभस्थलम्—'खर्परे शरि वा विसर्गलोपो वक्तव्यः' इति विसर्ग लोप।

श्लोक ३२—नित्यमुद्यतशासनम्—उद्यतम् = तत्परं शासनम् = आदेशः यस्य तम्। भाव यह है कि जो अपराध के अनुसार सदा तुरन्त दण्ड का विधान करता है। क्रूरम् = कठोर (वचन)।

श्लोक ३३—दिदृक्षुः—द्रष्टुमिच्छतीति दिदृक्षति; दिदृक्षतीति दिदृक्षुः, √दृश् + सन् + उ (सनाशंसभिक्ष उः)। बलिम्—बलि शब्द के अनेक अर्थ हैं यहाँ दैनिक आहार से तात्पर्य है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पृष्ठ ३६—उपस्थानगृहम्—सभाभवन ।

श्लोक ३४—स्वचरितैः—स्वेन = आत्मना चरितानि = कृतानि तैः, अपने ही द्वारा किये गये । द्रष्टव्यः—√दृश् + तव्य । गुरुः = श्रेष्ठ, गुरुजन । प्रविशस्व-प्रपूर्वक विश्धातु के आत्मने पद में लोट् मध्यम पुरुष एकवचन का रूप है । पाणिनीय व्याकरण के अनुसार प्र + √विश् के लिए आत्मने पद का विधान नहीं है अतः 'प्रविश' प्रयोग समीचीन है ।

श्लोक ३५—वली - ('वलि' भी लिखा जाता है) [√वल् + इन् + पक्षे ङीष्] चमड़े पर शिकन या झुर्री । गुरु = महान्, विपुल । संहत = सुदृढ़ । अंस = कन्धा, बाहुमूल ।

धृत्या-√धृङ् अवस्थाने + क्तिन् । विद्यमान होना, रहना, जीवित रहना । पुत्रशतस्य धृत्या = सौ पुत्रों की विद्यमानता से, सौ पुत्रों के रहने से । त्रिदिव = स्वर्ग । निमीलितमुखः = अन्धा । सृष्टः = √सृज् + क्त = रचा गया ।

श्लोक ३६—कृपणीकृतः—कृपण + च्वि + √कृ + क्त, कदर्थित- किया गया, दयनीय दशा को प्राप्त कराया गया । अनुगतः—अनु + गम् + √क्त, ज्ञात, समझा हुआ ।

पृष्ठ ४०—कल्याणः = सौभाग्यशाली, आनन्दप्रद । प्रसूति = उत्पन्न करने वाला । पितामह—पिता का पिता, धृतराष्ट्र भीम का चचा था अतएव भीम के पुत्र घटोत्कच ने उसे पितामह कहा है । प्रवाह = अङ्कुर । मातुल = मामा, मातुर्भ्राता मातुलः, मातृ + डुलच् । प्रिवामहं द्रष्टुमाशया- पितामह (इन्द्र) के दर्शन की आशा से । इन्द्र वस्तुतः अर्जुन के जनक थे, अतः इन्द्र को अभिमन्यु का पितामह कहा गया है ।

हास्यते-√हस् + णिच् + कर्मणि लट् । णिजन्त हस् धातु का भी 'उपहास करना अर्थ होता है ।

श्लोक ४१—श्रीवक्षशय्यागृहे—'वक्ष' शब्द साधु नहीं है । शुद्ध शब्द ,वक्षस्' है अतएव विसर्ग के श्रूयमाण होने से 'श्रीवक्षः शय्यागृहे' पाठ होगा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

किन्तु इससे छन्दोभङ्ग की आपत्ति है। यदि 'श्रीवत्सशय्यागृहे' पाठ कर दिया जाय तो अर्थ के साथ साथ छन्दोभङ्ग भी नहीं होगा। श्रीवत्स = विष्णु की छाती पर बालों का घूँघर या चिह्नविशेष।

श्लोक ४२—अराजान राजा इति अराजा ! नञ् तत्पुरुष समास है। 'राजाहः सखिभ्यष्टच्' से टच् समासान्त नहीं हुआ, क्योंकि समासान्त विधि अनित्य है, कहीं नहीं भी होता है।

श्लोक ४३—नृपशतविनिचित्या—(मार कर) दुर्योधन आदि सौ भाइयों का इकट्ठा ढेर लगा देने से। विनिचितिः-(वि + नि √चिञ् (चयने) स्त्रियां भावे क्तिन्) ढेर लगा देना, टाल लगा देना। फाल्गुन = अर्जुन।

श्लोक ४५—अक्ष = जुआ खेलने का पाँसा। अष्टापद—फलक या वस्त्र जिस पर आठ खाने बने होते हैं और जो जुआ खेलने के काम आता है।

पणः = दाँव पर लगाई हुई वस्तु। रतिः-√रम् + स्त्रियां भावे क्तिन्। यह अवधेय है कि रम् धातु अथवा उससे निष्पन्न भाववाचक शब्द का प्रयोग करणकारक और अधिकरण कारक के साथ होता है। यहाँ करण कारक (बाणैः) के साथ प्रयुक्त है। 'लीलापाङ्गैर्यदि न रमसे लोचनैर्वञ्चितोसि- मेघदूत २७ (करण कारक का उदाहरण)। 'व्यजेष्ट षड्वर्गमरंस्त नीतौ भट्टि काव्य १।२ (अधिकरण कारक का उदाहरण)।

श्लोक ४६—क्षिपसि = निन्दा करते हो। प्रमाण = मर्यादा, सीमा। गणयसि = विचारते हो। व्याहरन्— वि + आ + √हृ + शतृ। जल्पना करते हुए। मातृपक्ष—माता (हिडिम्बा) का गुट-राक्षसकुल। रौद्र = भयङ्कर।

श्लोक ४७—भ्रातुः पत्नीं शिरसि न स्पृशन्ति = भाई की भार्या के सिर पर हाथ नहीं लगाते। विकृत = भीषण। उग्र = कठोर, उद्धत। घृणा = दया

श्लोक ४८—दूतघातकाः = घ्नन्तीति घातकाः, (√हन् + ण्वुल्) दूतस्य घातका इति दूतघातकाः। दूत को मारने वाले।

पृष्ठ ४९—प्रधर्षयसि = निन्दा करते हो। प्र + √धृष् (चुरादि) + णिच् + लट्।

श्लोक ४९—व्यवसायेन अलम्—व्यापार बन्द करो, गम्यमानापि क्रिया कारकविभक्तौ प्रयोजिका इति करणत्वात्तृतीया (व्यवसायेन)। प्रहरध्वम् =

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

तुम सब प्रहार करो। समाहृताः = एक जुट। ज्याच्छेदात् + धनुष की डोरी कट जाने से।

श्लोक ५०—दष्टोष्ठः—दष्टः ओष्ठो येन सः दष्ट + ओष्ठः दष्टोष्ठः 'ओत्वोष्ठयोः समासे वा' वार्तिक से वैकल्पिक पररूप। पक्षे 'दष्टौष्ठः' भी। मुष्टिमुद्यम्य = मुट्ठी उठाकर, मुट्ठी तान कर।

मर्षयतु भवान् = तुम क्षमा करो। अवगन्ता = समझने वाला।

श्लोक ५१—पारुष्यसाध्याः—पारुष्य = कठोरता से, साध्याः = पराजित। धमकियों से पराजित होने वाले। प्रतिवचः = उत्तर। सायकैः = बाणों से।

श्लोक ५२—व्यपेक्षा = लिहाज, सम्मान, अनुरोध। कांक्षितम् = अभीष्ट। अनुतिष्ठ = करो। जात्योपदेशः = हितोपदेश। कृतान्तः = यमराज। सूर्यांशुभिः समम् = सूर्य की किरणों के साथ। उपैष्यति = पहुँचेगा।

—०×०—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

दूतघटोत्कचगत-प्रयुक्तछन्दःसूची

अनुष्टुप् (श्लोक)—

श्लोके षष्ठं गुरु ज्ञेयं सर्वत्र लघुपञ्चमम् ।
द्विचतुष्पादयोर्ह्रस्वं सप्तमं दीर्घमन्ययोः ॥

पद्य संख्या—६, ७, १५, १७, १८, २१, २४, २५, २६, २८, २९, ३१, ३२, ३७, ३८, ३९, ४०, ४२, ४४, ४८, ४९, ५० ।

इन्द्रवज्रा—स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः । १०, १६, ३० ।

उपजाति—स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः । उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ (इत्यनयोरुपजातिः) २, ९, १९, ३६ ।

शालिनी—मात्तौ गौ चेच्छालिनी वेदलोकैः । २० ।

वंशस्थ—जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ । १३, ३३ ।

प्रहर्षिणी—त्र्याशाभिर्मनजरगाः प्रहर्षिणीयम् । ४ ।

वसन्ततिलका—उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः । १, ५, ११, १४, २३, ३५, ४५, ५२ ।

मालिनी—न न मयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः । ४३, ४६ ।

हरिणी—न स म र स ला गः षड्वेदैर्हयैर्हरिणी मता । ४७ ।

शार्दूलविक्रीडित—सूर्याश्वैर्यदि मः सजौसततगाः शार्दूलविक्रीडितम् । ३, ८, १२, २२, २७, ३४, ४१, ५१ ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दूतघटोत्कचगत-प्रयुक्तालङ्कारसूची

उपमा—साम्यं वाच्यमवैधर्म्यं वाक्यैक्य उपमा द्वयोः। पद्य संख्या २०, २७, ३३, ५२।

रूपक—रूपकं रूपितारोपाद्विषये निरपह्नवे। ६, १२, २२, ५२।

उत्प्रेक्षा—भवेत् संभावनोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य परात्मना। २५, २६, ३५, ३७।

काव्यलिङ्ग—हेतोर्वाक्यपदार्थत्वे काव्यलिङ्गं निगद्यते। ४७।

सहोक्ति—सहार्थस्य बलादेकं यत्र स्याद्वाचकं द्वयोः।

सा सहोक्तिर्मूलभूतातिशयोक्तिर्यदा भवेत्॥ १३, ५२।

निदर्शना—सम्भवन् वस्तुसम्बन्धोऽसम्भवन् वाऽपि कुत्रचित्।

यत्र बिम्बानुबिम्बत्वं बोधयेत् सा निदर्शना॥ ३॥

पर्यायोक्त—पर्यायोक्तं यदा भङ्ग्या गम्यमेवाभिधीयते। ३।

दूतघटोत्कचगत अपाणिनीय प्रयोग सूची—

(१) तं हत्वा क इहोपलप्स्यति चिरं स्वैर्दूष्कृतैर्जीवितम्। (श्लोक ८)

उप + √लभ् + लृट् = उपलप्स्यते प्रयोग शुद्ध है। भास ने आत्मनेपद के स्थान पर परस्मैपद का प्रयोग किया है।

(२) व्यायामोष्णं गृह्य चापं करेण (श्लोक २०)

√ग्रह् से क्त्वा प्रत्यय के स्थान पर 'ल्यप्' आदेश व्याकरणशास्त्र-विरुद्ध है।

दूतघटोत्कचगत-शुभाषित

को हि सन्निहितशार्दूलां गुहां धर्षयितुं समर्थः॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

श्लोकानुक्रमणिका

	श्लोकाङ्काः		श्लोकाङ्काः
अद्यान्विमुञ्च	४५	पृथिव्यां शासनं	४०
अद्याभिमन्यु	५	प्रतिज्ञासार	२८
अद्यैव दास्यामि	१०	प्रयामि सौभद्र	३३
अपि प्रविष्टं	३१	बहूनां समुपेतानां	१७
अलं वो व्यव	४९	बालेनैकेन	२१
अवसितमवगच्छ	४३	भर्तुस्ते नूनं	७
एका कुलेऽस्मिन्	१६	भूमिकंपः	२५
कामं न तस्य	१४	मुक्ता येन यदा	४१
किं व्यर्थं वह	५१	यदि स्यात् वाक्य	४४
कृष्णस्याष्टभुजो	८	यतोऽभिमन्यु	११
केनाभिमन्यु	६	यान्त्यर्जुन	२
केनैतत्	४	येन में निहितः	२९
क्रूरमेवं नरपतिम्	३२	यौधस्यन्दन	३
क्षिपसि वदसि	४६	राजा वा यदि	४२
चितां न तावत्	९	रुद्धाः पाण्डु	१२
जयद्रथेनाद्य	१३	वृद्धं भीष्मम्	१८
तस्यैव व्यवसाय	२७	वृद्धोऽप्यनातत	३५
त्वया हि यत्	२४	शक्र पृच्छ पुरा	२२
दष्टोष्ठो	५०	शक्रापनीत	२३
दूतः खलु भवान्	४८	सक्रोधव्यव	३७
देवैर्मन्त्रयते	३८	सर्वेषां न पश्यताम्	२०
द्रोणोपदेशेन	३०	सुव्यक्तं निहतम्	२९
धर्मं समाचर	५२	सौभद्रे निहते	१५
न तु जतुगृहे	४७	स्वच्छन्दमृत्यु	१९
न ते प्रियं	३६	हसति त्वमहं	३९
नारायणस्त्रिभुवनै	१	हैडिंबोऽस्मि	३४

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कृष्णदास संस्कृत सीरीज
१७६
****

भासनाटकचक्रे

कर्णभारम्

'इन्दुकला' संस्कृत-हिन्दीव्याख्योपेतम्

व्याख्याकार:
श्री वैद्यनाथ झा

चौखम्बा कृष्णदास अकादमी वाराणसी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रकाशक : चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी
मुद्रक : चौखम्बा प्रेस, वाराणसी
संस्करण : तृतीय, वि०सं० २०६९, सन् २०१२
मूल्य : रू० २२.००

© चौखम्बा कृष्णदास अकादमी
के० ३७/११८, गोपाल मन्दिर लेन
गोलघर (मैदागिन) के पास
पो० बा० नं० १११८, वाराणसी-२२१००१ (भारत)
फोन : (०५४२) २३३५०२०

अपरं च प्राप्तिस्थानम्
चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस
के० ३७/९९, गोपाल मन्दिर लेन
गोलघर (मैदागिन) के पास
पो० बा० नं० १००८, वाराणसी—२२१००१ (भारत)
फोन : (आफिस) (०५४२) २३३३४५८
(आवास) (०५४२) २३३५०२०, २३३४०३२
Fax : 0542 - 2333458
e-mail : cssoffice@sify.com
web-site : www.chowkhambasanskritseries.com

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

KRISHNADAS SANSKRIT SERIES
176
***

KARṆABHĀRAM

OF

BHĀSA

Edited With the
'Indukalā' Sanskrit-Hindi Commentaries

By

Sri Vaidyanath Jha

CHOWKHAMBA KRISHNADAS ACADEMY
VARANASI

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Publisher : Chowkhamba Krishnadas Academy, Varanasi
Printer : Chowkhamba Press, Varanasi

© CHOWKHAMBA KRISHNADAS ACADEMY
Oriental Publishers & Distributors
K. 37/118, Gopal Mandir Lane
Post Box No. 1118, Varanasi- 221001
(INDIA)
Phone : (0542) 2335020

Also can be had from :
CHOWKHAMBA SANSKRIT SERIES OFFICE
Publishers and Oriental and Foreign Book-sellers
K . 37/99, Gopal Mandir Lane
At the North Gate of Gopal Mandir
Near Golghar (Maidagin)
Post Box No. 1008, Varanasi- 221001 (India)
Phone { Office : (0542) 2333458
Resi. : (0542) 2334032, 2335020
Fax : 0542 - 2333458
e-mail : cssoffice@sify.com
web-site : www.chowkhambasanskritseries.com

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कर्णभारम्

प्रस्तावना

काव्यों में नाटक का स्थान

नाटकों को उत्पत्ति के कारणों पर ध्यान देने से स्पष्ट रूप से प्रतीत होता है कि काव्य के सम्पूर्ण अवयवों में नाटक का स्थान अधिक महत्त्वपूर्ण है।

नाटक की उत्पत्ति के सम्बन्ध में एक कथा आती है कि राक्षसों के साथ युद्ध करते-करते जब इन्द्रादि देवता थक गये तब उन्होंने अपने मनो-विनोद के लिये ब्रह्मा से कहा —जैसे—

महेन्द्र - प्रमुखैर्देवैरुक्तः किल पितामहः ।
क्रीडनीयकमिच्छामो दृश्यं श्रव्यञ्च यद्भवेत् ॥

देवताओं के इस आग्रह से प्रभावित होकर ब्रह्मा ने दृश्य और श्रव्य "नाटक" नामक पाँचवें वेद का निर्म्माण करके, "भरत" मुनि को आदेश दिया कि "आप इस अनुपम वेद को पृथ्वी पर लाकर उसका प्रचार करें। जिसमें सम्पूर्ण शास्त्रों का तत्त्व निहित है और जो सभी कलाओं का प्रदर्शक है। कहा भी गया है—

सर्वशास्त्रार्थसम्पन्नं सर्वशास्त्रप्रदर्शकम् ।
नाट्य-संज्ञमिमं वेदं सेतिहास करोम्यहम् ॥

नाटक की सर्वाधिक रमणीयता की पुष्टि कालिदास की इस उक्ति से भी होती है—

"नाट्यं भिन्नरुचेर्जनस्य बहुधाप्येकं समाराधनम्"। तात्पर्य यह है कि संसार में सभी मनुष्यों की रुचि एक सी नहीं होती। किसी को एक वस्तु अच्छी लगती है तो दूसरे को दूसरी वस्तु। कोई गीत और अभिनय कला को ही प्रेम

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

से स्वीकार करता है तो कोई नीति पूर्ण एवं प्रेम पूर्ण कथाओं में ही अपनी उत्कट अभिरुचि प्रदर्शित करते हैं। नाटक में एक साथ ही सभी वस्तुओं का समावेश हो जाता है। नाटक में कहीं तो अतिशय आनन्द दायक कथोपकथन का विन्यास रहता है तो कहीं पर पत्थर की तरह कठोर वस्तु को भी पिघलाने वाला गीत-संलाप। यही नहीं, कहीं-कहीं दर्शकों को हास्य में डुबा देने वाले शारीरिक वाचनिक और मानसिक चेष्टाओं के प्रदर्शन का अवसर भी मिल जाता है। परिणाम-स्वरूप नाटक में एक साथ ही विभिन्नरुचि वाले दर्शकों का मनोरञ्जन हो जाता है। नाटक के अतिरिक्त अन्य किसी काव्याङ्ग में यह विशेषता देखने को नहीं मिल सकती है जो कि एक ही स्थान पर मानव-मात्र को अलौकिक आनन्द प्रदान कर सके।

नाटक के स्वरूप के विषय में भरत मुनि ने जो कहा है उससे भी नाटक का सर्वाधिक महत्त्व और रमणीयता परिलक्षित होती है। जैसे—

नाना-भावोपसम्पन्नं नानावस्थान्तरात्मकम्।
लोकवृत्तानुकरणं नाट्यमेतन्मया कृतम्॥

भावार्थ यह है कि विभिन्न अवस्थाओं में विभिन्न भाव मुद्रायुक्त लोक वृत्त का अनुकरण ही नाटक है। नाटक में आयी हुई घटना प्रत्यक्ष और वास्तविक की तरह मालूम पड़ती है। इस लिये नाटक रस में निमग्न मानव कुछ क्षणों के लिये अपने सभी मनोविकारों से उस समय अलग हो जाता है।

यद्यपि काव्य के अनेक लक्ष्य स्वीकृत किये गये हैं, तथापि उनमें प्रधान लक्ष्य जन-रञ्जन के साथ ही जन-शिक्षण भी है। मनो-रञ्जन के साथ ही जैसा उपदेश दर्शक नाटक से प्राप्त करता है, वैसा किसी अन्य काव्याङ्ग से नहीं प्राप्त कर सकता है।

दुःखार्तानां श्रमार्तानां शोकार्तानां तपस्विनाम्।
विश्रान्तिजननं काले नाट्यमेतत् भविष्यति॥
धर्म्यं यशस्यमायुष्यं हितं बुद्धि – विवर्धनम्।
लोकोपदेश – जननं नाट्यमेतद् भविष्यति॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

काव्य का चरम लक्ष्य "ब्रह्मास्वाद सहोदर रसास्वाद" है। केवल श्रव्यात्मक काव्य से काव्यभावना के द्वारा परिपक्व बुद्धि वाले सहृदय सामाजिक ही रसास्वाद प्राप्त कर सकते है; क्योंकि उसकी विशद अनुभूति के लिये जिस कवितामय वातावरण की आवश्यकता होती है उसका निर्धारण सर्वसाधारण नहीं कर सकता। परन्तु नाटक दृश्य काव्य है, इसमें अभिनय का प्राधान्य होता है, इस लिये अभिनय दर्शन के द्वारा सर्वसाधारण मनुष्य भी रसास्वाद करता है; क्यों कि मानव जिस शक्ति के द्वारा रस निमग्न कर दिया जाता है नाटक में उस शक्ति की अधिकता होती है। यह सर्वसिद्धान्त सिद्ध है कि सुनी हुई वस्तु की अपेक्षा देखी गयी वस्तु में अधिक प्रभावोत्पादकता और आकर्षण होता है। अधिक आकर्षक होने के कारण दृश्य काव्य की रमणीयता निर्विवाद है। इस लिये कहा भी है

"काव्येषु नाटकं रम्यम्"।

महाकवि भासः—

यद्यपि मैंने पहले काव्यों में नाटक का स्थान क्या है इसका विवेचन किया है तदनन्तर मुझे प्रस्तुत नाटक के सम्बन्ध में कुछ लिखना चाहिए, परन्तु किसी कृति के विवेचन के पहले उस कृति के कलाकार के सम्बन्ध में जान लेना अपेक्षित ही नहीं आवश्यक भी होता है तो "कर्णभार" के विवेचन के पहले यदि उक्त नाटक के कलाकार महाकवि "भास" के विषय में कुछ विचार करें तो असंगत न होगा।

कविता कामिनी के हास महाकवि भास संस्कृत नाटकों के विकास परम्परा में देदीप्यमान वह मणि हैं जिनकी कीर्ति-कौमुदी का अजस्र प्रकाश काल के दुर्दम्य प्रभाव से अस्पष्ट रहा और सुदूर दक्षिण से लेकर अनन्त उत्तर तक तथा पूरब से लेकर पश्चिम तक चमकता रहा। नाटक को पञ्चमवेद कहलाने का जो सम्मान प्राप्त हुआ और कालिदास ने जो "नाट्यं भिन्नरुचेर्जनस्य बहुधाप्येकं समाराधनम्" कहा इसकी सम्यक् परिपुष्टि भासकृत नाटकों से होती है। नाटक में तीनों लोकों के भावों का अनुवर्तन होता है। जब हम इस दृष्टि से देखते हैं तो भास का महत्त्व और भी बढ़ जाता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बीसवीं स.दी के आरम्भ तक भास के नाटकों के स्वरूप से लोग बिल्कुल अज्ञात थे. केवल यत्र-तत्र भास के कुछ प्रशस्ति वाक्य ही सुनने को मिलते थे। सर्वप्रथम महामहोपाध्याय श्री टी० गणपति शास्त्री जी ने १९१२ ई० में भास के १३ नाटकों का अत्यन्त प्रामाणिक संस्करण प्रकाशन कराया। हमने पहले लिखा हैं कि भास के नाटक पहले अज्ञात थे किन्तु उनके प्रशस्ति वाक्य सुने जाते थे। उनमें वाणी के वरदपुत्र कालिदास ने अपने नाटक "मालविकाग्निमित्र" में सूत्रधार से प्रश्न करवाया है—

(१) प्रथित-यशसां भास-सौमिल्ल-कविपुत्रादीनां प्रबन्धानतिक्रम्य कथं वर्त्तमानस्य कवेः कालिदासस्य कृतोबहुमानः। इति ॥

(२) हर्ष के सभा-पण्डित "बाण" ने भास के नाटकों की प्रशंसा करते हुए कहा है—

सूत्रधारकृतारम्भैः नाटकैर्बहुभूमिकैः।
सपताकैर्यशो लेभे भासो देवकुलैरिव ॥ (हर्षचरित)

अब यहाँ प्रश्न यह उठाया जा सकता है कि भास कृत नाटक पहले इतने लोकाभिमत थे कि कालिदास, बाण जैसे उत्कृष्ट कवि से उनका उल्लेख किये बिना नहीं रहा गया तो वे कृति फिर लुप्त कैसे हो गये जो "टी० गणपति शास्त्री" ने उसे पुनः प्रकाशित करवाया। सुमिल्ल आदि के नाटक आज भी अलभ्य हैं। अतः इसका समुचित उत्तर नहीं दिया जा सकता। तथापि विद्वानों ने इसका उत्तर देने का प्रयास किया है—

(१) देश में मुसलिम शासन के प्रसार के साथ ही साथ संस्कृत ग्रन्थों पर भी विपत्तियाँ आने लगीं। चूँकि उस समय मुसलमान का बोल-बाला था और भास ने अपने नाटकों मे, "राजसिंह" का, पृथ्वीपालन का आदेश देते थे वर्णन किया अतः वैदिक धर्म के प्रचारक भास के नाटकों पर मुसलमानों की कुदृष्टि पड़ना कोई असम्भव नहीं और सम्भवतः इसी कारण इनके नाटक लुप्त हो गये होगे। कुछ प्रतियाँ बच इसलिये गयीं क्योंकि वे प्रतियाँ मलयालम लिपि में लिखित थीं और वह लिपि मुसलमानों के लिये अबोध्य थी अतः वे इसे विनष्ट नहीं कर पाये होंगे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(२) बाह्य आक्रमण के पुनः पुनः होने से भारत वासी अपने जीवन से निराश हो चुके थे। अतः वीरता पूर्ण नाटकों को देखने की अपेक्षा अब वे धर्म एवं दर्शन की ओर आकृष्ट हो गये थे। अतः भास के ये नाटक प्रचलन से उठ गये।

कुछ भी हो अपने लालित्यपूर्ण नाटकों से संस्कृत वाङ्मय के भण्डार को परिपूर्ण कर भास ने जो स्थान प्राप्त किया है वह सर्वथा महत्त्वास्पद ही है।

भास का समयः—

संस्कृत के अन्य प्राचीन महाकवियों की तरह "भास" ने अपनी रचनाओं में न तो अपने समय की चर्चा की या न अपने स्थिति की। पाश्चात्य और पूर्वीय विद्वानों का मत इनके विषय में वैसे ही परस्पर विरुद्ध हैं जैसे कवि कुल गुरु कालिदास के विषय में। उन मत मतान्तरों को तीन भाग में विभक्त कर उनकी यथार्थता पर विचार यदि किया जाय तो सुविधा रहेगी।

प्रथम मत :—

महामहोपाध्याय टी० गणपति शास्त्री, दीक्षितार आदि के मतानुसार महा कवि भास पाणिनि और कौटिल्य से भी प्रचीन हैं। कौटिल्य ने युद्ध भूमि में सेनाओं के उत्साहवर्द्धन के लिये जिन जिन श्लोकों को प्रस्तुत किया है उनमें—

"नवं शरावं सलिलैः सुपूर्णं सुसंस्कृतं दर्भकृतोत्तरीयम्।
तत्तस्य माभून्नरकं च गच्छेद् यो भर्त्तृपिण्डस्य कृतेन युध्येत्।"

यह श्लोक भास रचित "प्रतिज्ञा यौगन्धरायण" में भी मिलता है। भास विरचित "प्रतिमा-नाटक" में भी पण्डितमूर्धन्य रावण ने "बाहस्पत्यमर्थस्यम्" अधीये" कहकर अपनेको बार्हस्पत्य अर्थशास्त्र का ज्ञाता कहा है। भास का कौटिल्यसे पूर्ववर्तित्व इससे भी सिद्ध होता है क्योंकि भास के समय में कौटिल्य का अर्थ-शास्त्र न बना हो।

भास की रचनाओं में पाणिनि प्रोक्त व्याकरण नियम की अव्यवस्था बहुशः पायी जाती है। यदि भास के समय पाणिनि होते या उनसे पूर्व हो चुके होते तो भास जैसे महाकवि क्या उक्त व्याकरण के नियम का उल्लंघन कर सकते थे। अतः भास का समय पाणिनि से पूर्व मानना कोई अनुचित नहीं होगा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शूद्रक कृत "मृच्छकटिक" नाटक पर भास रचित "दरिद्र-चारुदत्त" का स्पष्ट प्रभाव दिखलाई पड़ता है, एवं विन्सेन्ट स्मिथ के कथनानुसार शूद्रक का शासन १२० से १९७ ई० पू० तक था। अतः भास ने "दरिद्र-चारुदत्त" की रचना यथा संभव ई० पू० चौथी या पाँचवी शताब्दी में की होगी।

यद्यपि डा० टी० गणपति शास्त्री ने भास को बुद्धके पूर्ववर्ती माना है, परन्तु भास के नाटकों में जिन नागवन, वेणुवन, राजगृह और पाटलिपुत्र का वर्णन मिलता है वे सब सम्भव है बुद्ध के समय ही प्रसिद्धि प्राप्त किये होंगे। अतः बुद्ध के पश्चात् ही भास का समय माना जा सकता है।

द्वितीय मत (२-३ ई० पू०) मैंने पहले ही इस बात की चर्चा की है कि कालिदास ने अपने नाटक में भास की प्रशंसा की है। चूँकि कालिदास का समय डा० कीथ के अनुसार चौथी शताब्दी माना गया है, अतः भास का समय ३५० ई० तक माना जा सकता है। अथ च, अश्वघोष के नाटकों में भास की चर्चा बिल्कुल नहीं है अपितु "बुद्ध चरित" के एक श्लोक का स्पष्ट प्रभाव इनके प्रतिज्ञा यौगन्धरायण" में मिलता है। अतः भास को अश्वघोष (द्वितीय शताब्दी) के बाद एवं कालिदास (चतुर्थ या पंचम शताब्दी) के बाद मानना चाहिए।

कुछ लोगोंने स्वप्न-वासवदत्तादि १३ नाटकों के कर्ता भास को न मानकर किसी केरल प्रदेशीय कवि को माना है और उनके मतानुसार उस कवि का समय सातवीं शताब्दी है!

इस प्रकार पाश्चात्य ऐतिहासिक गवेषकों के मतों के अध्ययन कर लेने के पश्चात् हम जिस-किसी भी प्रकार इसी निश्चय पर पहुँच पायेंगे कि "भास" मौर्य काल के पूर्व इस लिये विद्यमान थे कि इन्होंने भी तात्कालिक कवि की तरह अपने नाटकों में अपना नामोल्लेख नहीं किया है। एवञ्च इन्हें कौटिल्य (४ थीं शताब्दी ई० पू०) के पश्चात् नहीं माना जा सकता।

भास के नाटकों का संक्षिप्त परिचय

(१) प्रतिमा

इस नाटक में सात अंक हैं। इसमें राम-वनवास से लेकर रावण-वध पर्यन्त कथा वर्णित हैं। भरत कृत नाट्यशास्त्र नियम के विरुद्ध दशरथ की

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मृत्यु प्रस्तुत नाटक में रंग मंच पर ही अभिनीत की गयी है। अयोध्या के मृत राजाओं की प्रतिमाएँ देवकुल में स्थापित की जाती थी अत: उक्त नाटक का नाम "प्रतिमा" रखा गया।

(२) अभिषेक

छ: अङ्कों के इस नाटक में किष्किन्धा सुन्दर तथा युद्ध काण्ड की रामायण-कथा वर्णित हैं।

(३) अविमारक

इस नाटक में अविमारक तथा राजा कुन्तिभोज की पुत्री कुरङ्गी के प्रेम की कहानी है। अविमारक का संकेत कामसूत्र में मिलता है। इस नाटक में प्रेम का सुन्दर एवं सरस चित्रण है।

(४) बालचरित

इसमें श्री कृष्ण जन्म से लेकर कंसवध तक की कथाएँ वर्णित हैं। इसमें पाँच अङ्क हैं। कृष्णके बाल चरित का बहुत ही सजीव वर्णन प्रस्तुत नाटक में है।

(५) पञ्चरात्र

इस नाटक में कवि ने महाभारत की एक कथा का चित्रण बिल्कुल अपनी कल्पना शक्ति के आधार पर नवीन ढंग से किया है। दुर्योधन यज्ञ के समय आचार्य द्रोण को दान देने की प्रतिज्ञा करता है। उस दान में द्रोण पाण्डवों को आधा राज्य दे दो य. दान माँग लेते हैं। शकुनि की सलाह से दुर्योधन स्वीकृति तो देता है परन्तु उसमें एक शर्त लगा देता है कि यदि पाँच रातों में इस बात की जानकारी पाण्डवों को लग जाए तब हम उन्हें आधा राज्य दे देंगे। जब कि पाण्डव लोग विराट नगर में थे। द्रोणाचार्य के प्रयास से पाण्डवों को इस बात का पता चल जाता है और दुर्योधन उन्हें आधा राज्य दे देता है। यही कथानक इस नाटक में बड़े ही मनोरम ढंग से वर्णित किया गया है।

(६) मध्यमव्यायोग

इस नाटक में मध्यम पाण्डव (भीम) का मध्यम ब्राह्मण पुत्र की रक्षा करना और हिडिम्बा से मिलन यह अन्त में वर्णित है। इसमें पुत्र का पिता

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

को न पहचानते हुए धृष्टता पूर्वक माँ के सम्मुख लाकर उपस्थित करने का वर्णन बड़े ही सरस एवं कौतूहलपूर्ण ढंग से वर्णित है।

(७) दूतवाक्य

इस में महाभारत के युद्ध के पहले श्रीकृष्ण पाण्डवों के दूत बनकर कौरवों के पास जाते हैं यह कथा वर्णित है। कृष्ण और दुर्योधन के कथोपकथन में नाटकीयता का बड़ा ही महत्त्वपूर्ण दिग्दर्शन प्रस्तुत नाटक में किया गया है।

(८) दूतघटोत्कच

इस नाटक में अभिमन्यु से दुःख संतप्त, एवं कुद्ध अर्जुन को प्रतिज्ञा कर लेने के बाद घटोत्कच पाण्डवों के पक्ष मे दूत बनकर दुर्योधन के पास उसके विनाश को सूचना देने जाता है। उद्धत घटोत्कच एवं दुर्योधन के वार्तालाप का चित्रण इसमे बहुत ही कौतूहल पूर्ण है।

(९) कर्णभार

इस एकांकी नाटक में खिन्न मना कर्ण प्रवेश करता हुआ शल्य से अपने अध्ययन काल की बातों को बताता है कि परशुराम से मैंने किस प्रकार छल से शस्त्र विद्या सीखी, एवं 'यह क्षत्रिय है' ऐसा जानकर उन्होंने कैसे भीषण शाप मुझे दे डाला इत्यादि। अन्त में ब्राह्मण वेष में इन्द्र कर्ण से कवच-कुण्डल की याचना करते हैं, शल्य के मना करने पर भी यश को स्थायी बताते हुए कर्ण उन्हें कवच-कुण्डल दे देता है। इसी कथा का अपने ढंग से कवि वर्णन करता है।

(१०) स्वप्नवासवदत्तम्

यह कौशांबी के राजा उदयन की कथा पर आधारित है। इस नाटक में प्रिया में आसक्त राजा उदयन के राज-काज से बिल्कुल विमुख हो जानेपर शत्रुओं द्वारा अधिकृत राज्य भाग के अपहरण हो जाने पर उसका मन्त्री यौगन्धरायण (वासवदत्ता की अनुमति से) वासवदत्ता के लावाणक वन में जल जाने की झूठी खबर प्रसारित करवा कर, वासवदत्ता को गुप्त वेश में मगधराज की लड़की पद्मावती के पास रख देता है। वासवदत्ता को पद्मावती के पास रखने का कारण था कि ज्योतिषियों ने बताया था कि उदयन का दूसरा विवाह

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पद्मावती से होगा। इस प्रकार यौगन्धरायण की चाल से मगध नरेश दर्शक की बहन पद्मावती से उदयन का विवाह हो जाता है। पद्मावती के समुद्र गृह में सोया हुआ उदयन स्वप्न में वासवदत्ता को देखता है उसी समय वहाँ पर वासवदत्ता भी उपस्थित रहती है। वह स्वप्न आगे चलकर यथार्थ हो जाता है। अन्त में यौगन्धरायण सभी खोया हुआ राज्य मिल जाने पर भेद खोल देता है। इस नाटक में शुद्ध प्रेम का बहुत ही मनोरम चित्रण किया गया है।

(११) प्रतिज्ञायौगन्धरायण

इसमें भी उदयन की ही कथा वर्णित है। इसको हम स्वप्नवासवदत्तम् के पहले का नाटक कह सकते हैं। इसमें उदयन बनावटी लोहे के हाथी के छल से महासेन अवन्तिराज के द्वारा बन्दी बना लिया जाता है। वहाँ पर इसी अवस्था में वह अवन्तिराज की पुत्री वासवदत्ता को वीणा की शिक्षा देने लगता है एवं उसी क्रम में उदयन एवं वासवदत्ता का प्रेम हो जाता है, और वह प्रेम इस स्तर तक बढ़ जाता हैं कि उदयन, यौगन्धरायण की सहायता से वासवदत्ता को लेकर उज्जयिनी से भाग निकलता है।

(१२) ऊरु भंग

इसमें भीम और दुर्योधन के गदायुद्ध तथा दुर्योधन के ऊरुभंग की कथा वर्णित है।

(१३) चारुदत्त

इसमें उज्जयिनी के सार्थवाह चारुदत्त और गणिका वसन्त सेना के प्रेम की कथा निबन्धित है। चारुदत्त की कथा का आधार लोक कथा ही जान पड़ती हैं।

ऐसा जान पड़ता है कवि अपनी प्रतिभा से उन सभी क्षेत्र की कथाओं को नाटकीय रूप देना चाहता था जो उस समय लोक कथाके रूपमें हो कि वा ऐतिहासिक। जैसे स्वप्नवासवदत्तम् कर्णभारकी कथा जहां एक तरफ से ऐतिहासिक आधार पर आधारित हैं वही चारुदत्त और अविमारक की कथा बूढ़ी दादी-नानियों के द्वारा बच्चोंके मनोविनोद के लिये कही कथा की तरह प्रतीत होती है। यह कवि की अनुपम प्रतिभा का द्योतक ही तो है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भास का वैशिष्ट्य

संस्कृतके नाटकोंमें काव्यत्व खास गुण है; और ह्रासोन्मुख काल में तो यह काव्यत्व इतना बढ़ गया कि नाटक अपने स्वत्व को भी खो बैठे। संस्कृत नाटकों का मुख्य लक्ष्य रसानुभूति उत्पन्न करना रहा है न कि चरित्र का अन्तर्द्वन्द्व बताना। और यही कारण हैं कि संस्कृत नाटकों में काव्यत्व अधिक पाया जाता है।

आधुनिक जिन नाटककारों पर "इब्सन" अथवा "गाल्सवर्दी" का प्रभाव पड़ा है वे यथार्थ चित्रण के इतने पक्षपाती दिखाई पड़ते हैं कि उनकी पद्धति ही प्राचीन नाटकों की पद्धति से अलग हो गयी है। नाटककार अपनी कृति के माध्यम से सफल तभी माना जायगा जब कि वह "नाटक में काव्यत्व का समावेश करता हुआ भी नाटक के स्वाभाविक गुण, जैसे—निबध्य घटना चक्र की प्रवाहमयता, नाटकीय कौतूहल, दृश्यों का प्राकृतिक विनियोग और दर्शकगत प्रभाव को अक्षुण्ण बनाये रखे। इस माने में कालिदास जैसे खरे उतरते हैं संस्कृत के अन्य कवि नहीं उतरते दिख पड़ते हैं। भवभूति केवल कविता के प्रवाह में बह जाते हैं।

भास का कवित्व सदा नाटकीयता का सहायक बनकर आता है। भास की कविता में ऐसा नहीं जान पड़ता है कि कविने इसे बहुत खींच-तान कर जोड़ा हो। वह ऊपर से जुड़ी नहीं प्रतीत होती। भास के कवित्व पूर्ण पद्य घटनाचक्र को प्रवाहित करते जान पड़ते हैं। भास के नाटकों की प्रभावोत्पादकता उसके सरल भाषा से पूर्ण एवं असमाश्रित या अल्प समाश्रित पात्रों का संवाद और प्रसंगानुकूल भावों से पूर्ण पद्य से स्वभावतः ही अनूठी है।

भास का खास लक्ष्य नाटकीय योजना था। भास की शैली प्रसाद गुण युक्त है, किन्तु वीर रस के वर्णनोंमे वह ओज का भी प्रदर्शन करती है। इस प्रकार कवि की दृष्टि से अश्वघोष की अपेक्षा भास हल्के हैं। इनके नाटकों के अध्ययन के पश्चात् यह समझ में आता है कि रामचरित्र से सम्बद्ध नाटकों में (प्रतिमा) में न वह रसवत्ता ही पायी जाती है या न तो पात्रों का उतना प्रभाव पूर्ण चरित्र चित्रण ही हो पाता है जो एक नाटककार के लिए अपेक्षित है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

महाभारत से सम्बद्ध नाटकों को भी मध्यम श्रेणी का इस लिए माना जाता हैं क्योंकि उनमें वर्णित कथानकों में रचयिता की भावनाएँ उदात्त दिखाई पड़ती हैं एवं घटना-विधान भी रसानुकूल नियोजित किया गया है। उदयन कथा से सम्बद्ध नाटकों को हम कवि की सर्वोत्कृष्ट रचनाएँ कह सकते हैं क्योंकि इन नाटकों में वर्णित कथाओं में प्रदर्शित नाटकीय संविधान के द्वारा कवि पूर्ण रूपेण सफल दिखाई देता है। प्रणय जैसे विस्तृत विषय का अवलम्ब लेकर कविने इन नाटकों में मानव मन का बहुत ही सजीव सरस एवं सत्य चित्रण किया है। भास ने इन नाटकों में सामाजिक एवं पारिवारिक आदर्शों का निर्वाह बड़े मनोरम ढंग से किया है।

नाट्यकला, जिस समय बाल्य अवस्था में पालने में झूल रही थी, भास ने अपनी रचना के माध्यम से उस शिशु को पृथ्वी पर चलाने का बहुत ही साहस एवं महत्त्व पूर्ण प्रयास किया। इस कारण ही उनके नाटकों में "द्रुत गति वाले नाटकीय निर्देश" (निष्क्रम्य प्रविशति) कथानक सूत्रों में यत्र-कुत्र अन्विति का ध्यान न देने जैसे दोष दिखाई पड़ते है।

इन बहुशः त्रुटियों के रहने पर भी भास की कला महान् हैं। उसमें अपेक्षित प्रौढता के न रहने पर भी भाव-गांभीर्य और रमणीयता है।

भास की शैली—

अपनी सम्पूर्ण विशेषताओं से पूर्ण शैली के कारण भास की अभिव्यञ्जना बहुत ही प्रभावोत्पादक है। इनके नाटकों में प्रसाद और ओज के साथ ही माधुर्य की संयोजना इतने सुन्दर ढंग से की गयी है जो सहृदयों को अनायासा ही मुग्ध कर देती है। इनकी शैली अलंकारों पर ही नहीं अपितु भावनाओं क स्पष्ट कर अपने को कृत-कृत्य मानती है। परिणाम स्वरूप कृत्रिमता का स्थान स्वाभाविकता ने ले लिया है। भास ने उन अलंकारों का प्रयोग किया है जो बहुत ही सरलता से समझ में आ जाते हैं, अतः वे स्वाभाविक से लगते हैं और उनसे वस्तु चित्र और भी स्पष्ट हो गये हैं। भास को भाव बोधन को एक अपूर्व सफलता मिली है। इसका कारण उनकी सरल शैली और अद्भुत मनोवैज्ञानिक दृष्टि ही है। इनके नाटकों में दूरारूढ़ कल्पना का अभाव,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

समासाल्पता एवं प्रवाहमयता को देखकर कुछ विद्वानों ने उन पर रामायण का प्रभाव माना है जो उचित भी प्रतीत होता है।

भास ने लोकोक्तियो के माध्यम से गागर में सागर भर दिया है। जैसे—

"आपदं हि पिता प्राप्तो ज्येष्ठपुत्रेण तार्यते (मध्यम व्यायोग)
रुष्टोऽपि कुञ्जरो वन्यो न व्याघ्रं घर्षयेद्वने (मध्यम व्यायोग)
चक्रारपंक्तिरिव गच्छति भाग्य—पङ्क्तिः (स्वप्नवास०)
इत्यादि ॥

कर्णभार का एक समालोचनात्मक अध्ययन

कोई भी कलाकार अपनी रचना के प्रसार के लिए एक छोटा सा आधार पहले ग्रहण करता है; पश्चात् अपनी प्रतिभा; तर्क, और कल्पना के द्वारा उसीका विस्तार करता है। प्रस्तुत नाटक में भी भासने महाभारत की एक छोटी सी कथा का आधार लिया और उसी को अपनी अद्भुत सर्वतोमुखी प्रतिभा के द्वारा नाटक का रूप दिया है।

इस नाटक में निबद्ध कथावस्तु महाभारत में अनेक जगह बिखरी है; नाटककार ने उसे अपनी कल्पना के माध्यम से एक जगह निबन्धित किया जो सहृदयों को सहज ही आनन्दप्रद सिद्ध हुई।

कपट वेश में ब्राह्मण का रूप ग्रहण कर इन्द्र अपने पुत्र अर्जुन के विजय के लिये कर्ण से उसका जन्मजात कवच और कुण्डल माँग लेते हैं। अपने पिता सूर्य के द्वारा स्वप्न में कवच कुण्डल न देने की चेतावनी देने के बाद भी कर्ण अपनी दान देने की सहज प्रवृत्ति या दृढ़ प्रतिज्ञा के कारण इन्द्र को कवच-कुण्डल दे देता है। दान लेकर लज्जित इन्द्र पुनः कर्ण को "विमला" नाम की शक्ति देते हैं परन्तु दानवीर कर्ण कान के बदले कुछ भी नहीं लेने का अपना निश्चय उस देवदूत को सुनाता है, परन्तु पश्चात्ताप से संतप्त इन्द्र अपने मनः संतोष के लिये उसे "ब्राह्मण की आज्ञा है" शक्ति लेने को बाध्य कर देते हैं। महाभारत में यह कथा उस समय वर्णित है जिस समय पाण्डव लोग वन में निवास कर रहे थे परन्तु महाकवि भास ने नाटक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

में उसे युद्ध क्षेत्र में अभिनीत कर अपनी अद्भुत कल्पना शक्ति का परिचय देते हुए दर्शकों को कर्ण के प्रति संवेदना प्रकट करने को बाध्य कर दिया है। जो कर्ण युद्ध क्षेत्र में कुपित यमराज सा लगता था वही आज अपनेको अनुत्साहित पा रहा है, परशुराम के अभिशाप से उसके शस्त्र मूर्छित से लग रहे हैं और ऐसी दशा में सहज कवच-कुण्डल का भी चला जाना दर्शकों के लिए जरूर करुण सिद्ध होगा।

महा कवि भास अपने नाटक के नायक को उस उच्च भूमिका पर उतारना चाहते हैं जो एक वीर के लिये होनी चाहिए। कर्ण यद्यपि विपरीत परिस्थिति; अभिशाप और कवच-कुण्डल के चले जाने से अपने को निःसहाय पाता है; फिर भी शल्य के यह कहने पर कि आप ठगे गये, अर्थात् आप को दान नहीं देना चाहिए था वह उसे फटकारता है। कर्ण कहता है कि संसार में सभी भावात्मक पदार्थ नष्ट हो जाते हैं यहाँ तक कि विद्या भी समय आने पर विस्मृत हो जाती है परन्तु यश नहीं विनष्ट होता, दूसरी बात यदि मैं युद्ध में विजयी हुआ तो राज भोग करूँगा और यदि मारा गया तो स्वर्ग प्राप्त करूँगा एक सच्चा मनस्वी वीर ही कह सकता है। इस तरह नाटकों का जो लक्ष्य विद्वानों को अभिमत है उसमें यह नाटक सहज ही खरा सिद्ध हुआ है।

महाभारत और कर्णभार की कथावस्तु में भेद

(क) महाभारत में ब्राह्मणयाचकके रूप में इन्द्रका कर्ण से कवच-कुण्डल माँगने की कथा उस समय आती है जिस समय पाण्डव वनवास कर रहे थे। परन्तु प्रस्तुत नाटकमें कवि ने इस कथाका संयोजन एक ऐसे समय किया है जो प्रक्षकों के लिए प्रभावोत्पादक, आश्चर्यजनक और कौतूहलपूर्ण है; साथ ही युद्धके ऐन-मौके पर सहज कवच-कुण्डल का चला जाना करुणा-पूर्ण भी है।

(ख) महाभारत में "कल इन्द्र तुम से कवच कुण्डल भिक्षा माँगेगा तुम मत देना" इस बातकी सूचना सूर्य स्वप्न में आकर कर्ण को पहले ही दे देते हैं, परन्तु भास ने इस बात का संकेत अपने नाटक में कहीं नहीं किया। परिणाम स्वरूप नाटक प्रभावशाली एवं कौतुहल-पूर्ण रहा। अन्यथा उस घटना के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

संघटन से हो सकता है दर्शकों को युद्ध के समय अचानक कवच कुण्डल माँग लेने से कर्ण के प्रति जो सहानुभूति उत्पन्न हुई थी समाप्त हो जाती।

(ग) महाभारत में कर्ण कवच-कुण्डल देकर स्वयं इन्द्र से शक्ति की याचना करता है परन्तु इस नाटक में कर्ण निःस्पृह होकर स्वयं उक्त दोनों का दान करता है। देवदूत के द्वारा शक्ति के देने पर भी उसे स्वीकार नहीं करता, फिर ब्राह्मण की आज्ञा है ऐसा कहने पर विवश होकर ग्रहण करता है। प्रस्तुत कल्पना के द्वारा कवि ने कर्ण को जो महत्त्वास्पद स्थान दिया सम्भवतः मूल कथा के आधार पर वह कुछ हीन सा प्रतीत होता।

(घ) महाभारत में शल्य, बार-बार कर्ण को अपनी कटूक्तियों से घर्षित एवं अनुत्साहित करता रहता है, परन्तु प्रस्तुत नाटक का शल्य एक सच्चे सारथी की तरह समयोचित परामर्श कर्ण को देता है एवं संवेदना प्रकट करता है।

(ङ) प्रायः संस्कृत के अन्य सभी नाटकोंमें यह देखनेको मिलता है कि जो पात्र शूद्र, स्त्री, या अशिक्षित हों वही प्राकृत-भाषा में बोलते अभिनीत किये जाते हैं, परन्तु इस नाटक में ब्राह्मण रूपमें इन्द्र प्राकृत भाषा में बोलते दिखाई देते हैं। इत्यादि ॥

नाटक का नामकरण

प्रायः जो शब्द कथानक के पूरे अन्तर्हित अर्थ का प्रकाशन अपने लघु शब्दावलियों से कर दे वही नाटकों का शीर्षक या नाम कहा जाता है। कभी-कभी कथानकों के बीच में घटित घटनाओं के आधार पर भी नाटकों का नामकरण दिया जाता है। प्रस्तुत नाटक में ऐसी कोई घटना नहीं दिखाई पड़ती जो "कर्णभार" शब्द की स्पष्ट व्याख्या कर सके। परन्तु इस विषय में विद्वानों ने जो कुछ व्याख्यायें की हैं उनका उल्लेख कर पश्चात् यथामति मैं भी कुछ विचार करने का प्रयत्न करूँगा।

प्रो० ए० डी० मुसलकर जी का कहना है कि चूँकि वाचनिक रूप दान में पहले से ही दे दिये गये कवच और कुण्डल भार स्वरूप हो गये थे और उन्हीं के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दान को केन्द्र विन्दु मानकर प्रस्तुत नाटक की रचना की गयी है अतः इसका नाम कर्णभार रखा गया। डा० विण्टर मिल्स ने कर्णभार की व्याख्या कर्ण के दुर्धर्षकार्य को केन्द्र विन्दु मानकर किया है। डा० भट्ट कर्णभार की व्याख्या इस प्रकार करते हैं कि कर्ण के ऊपर कौरव सेना का सञ्चालन और उनकी रक्षा का भार सौपा गया था जो उसके लिये चिन्ता का विषय वन गया था और उसीको चरितार्थ करने का प्रयास इस नाटक में किया गया है और चिन्ता कर एक अर्थ भार भी माना जा सकता है अतः इस नाटक का नाम कर्ण भार रखा गया।

यथार्थ रूप में यदि विचार किया जाय तो इस नाटक का कर्णभार नाम कर्ण के मानसिक दुःख, अचानक उसके मन का निरुत्साहिता को ध्यान में रखकर रखा गया है। कर्ण महाभारत का बहुत ही उच्चस्तर का सेनानी है। वह अपने जीवन में बराबर इस बात का स्पष्टी करण संसार के सामने करने का प्रयास करता रहा है कि कर्ण और अर्जुन में कौन बड़ा योद्धा है वह अर्जुन से सर्वदा द्वन्द्व युद्ध का इच्छुक रहा है और आज जब वह युद्ध क्षेत्र में अर्जुन के साथ युद्ध करने का अवसर पाता है अचानक उसका मन भारी सा होने लगता है वह अपने को निरुत्साह पाता है, उसके घोड़े उसे युद्ध से लौट चलने का संकेत सा कर रहे हैं, उसके अस्त्र-शस्त्र वीर्य हीन से उसे प्रतीत होते हैं, यही सब उसके भारस्वरूप हो गये और इसलिये इसका नाम कर्णभार रखा गया।

दो बातें

महा कवि भास की यह कृति कर्णभार जो अपने छोटे कलेवर के द्वारा भी सहृदयों को "ब्रह्मानन्द स्वाद-सहोदर" की अनुभूति कराने में समर्थ है," विद्वानों के समक्ष छात्रों के उपकार की दृष्टि से प्रकाशित होने जा रहा है। आशा है यह नवीन संस्करण अपने लक्ष्य पूर्ति में सफल होगा। यद्यपि इस पुस्तक की अन्य कई टीकाएँ बाजार में उपलब्ध हैं फिर भी इस संस्करण का प्रकाशित होने का कारण यह है कि जहाँ-जहाँ महाकविभास पौराणिक कथाओं का संकेत अपने छोटे से वाक्य के द्वारा करके अग्रसर हो गये, उन स्थलों

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

का स्पष्टीकरण करते हुए कथानक को सरल ढंग से समझाने का प्रयास इस संस्करणमें किया गया है। अब यह अपने लक्ष्य में कहाँ तक ठीक है इसका उत्तर विद्वान्; सहृदय आलोचक या उपकृत छात्र ही दे सकते हैं लेखक नहीं। इसकी भूमिका प्रस्तुत करने में कतिपय इतिहास ग्रन्थों को देखना पड़ा है और उनकी सहायता ली गयी है अतः मैं उनका हार्दिक आभारी हूँ।

कर्णभार की प्रस्तुत व्याख्या मैं क्या कर सकता था जो कुछ भी किया वह पूज्य गुरु चरण श्री पं० कीर्त्यानन्द झा जी का शुभाशीर्वाद एवं मित्रवर श्री राधारमण ठाकुरजी का सहयोग ही है। अतः इन दोनों व्यक्तियों को कृतज्ञता का अनुभव कर मैं अपने को कृतकृत्य मानता हूँ। एवञ्च सबसे बड़ा कृतज्ञ तो अग्रजस्वरूप पं० श्री हरेकान्त जी मिश्र का हूँ जिन्होंने अपनी अंगुली का सहारा देकर इसपथ पर चलना सिखाया। प्रकाशक महोदय ने जो मुझे इस संस्कृत सेवा का अवसर प्रदान किया अतः उन्हें हार्दिक धन्यवाद है।

मेरे परिश्रम की सफलता विद्यार्थियों के लाभ से ही है, अतः यदि छात्र गण इससे कुछ भी लाभान्वित हुए तो मैं अपने को कृतकृत्य समझूँगा।

वाराणसी
वि० सं० २०३४

वैद्यनाथ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

॥ श्रीः ॥

कर्णभारम्

'इन्दुकला' संस्कृत-हिन्दी-व्याख्योपेतम्

प्रथमोऽङ्कः

राधा-पूजित-पाद-पद्म - युगलं कृष्णं प्रणम्याधुना ।
कीर्त्यानन्द-गुरुं प्रणम्य शिरसा छात्रस्तदीयो मुदा ।
टीका "मिन्दुकलां" करोमि सरलां छात्रोपकाराय वै ।
भासाविष्कृत-कर्णभा सुकृतेः काश्यां गुरोः सन्निधौ ॥

(नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः)

सूत्रधारः—

नरमृगपतिवर्ष्मालोकन-भ्रान्तनारी-
नरवनुजसुपर्वव्रातपाताललोकः ।
करजकुलिश-पाली-भिन्नदैत्येन्द्रवक्षाः
सुररिपुबलहन्ता श्रीधरोऽस्तु श्रिये वः ॥ १ ॥

तत्रभवान् सकलकविकुलचूडामणिः, कालिदासादिभिः संकीर्तितगुणगणः, प्रतिज्ञायौगन्धरायणाद्यनेक-नाटक-निर्माता, कविताकामिन्याः हासः महाकविर्भासः

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अभीष्टनाटकनिर्विघ्नसमाप्तये शिष्यशिक्षायै च मङ्गलमाचरति "नरमृगपती त्यादिना—

अन्वयः—नरमृगपतिवर्ष्मालोकनभ्रान्तनारी - नरदनुज-सुपर्व - व्रातपाताल लोकः, करजकुलिशपालीभिन्नदैत्येन्द्रवक्षाः, सुररिपुबलहन्ता, श्रीधरः, वः, श्रिये अस्तु ।। १ ॥

व्याख्याः—नरस्य = मानवस्य, मृगपतेश्च = सिंहस्य, वर्ष्म = देहम् तस्य आलोकनेन = अवलोकनेन भ्रान्तः = भ्रमितः आश्चर्यं प्रापित इत्यर्थः; नारीणां = योषिताम्; नराणाम् = पुरुषाणाम्, दनुजानाम् = असुराणाम्; सुपर्वणाम् = देवतानाम्; व्रातः = समूहः पाताललोकः = अधोलोक विशेषः येन सः नरमृगपतिवर्ष्मालोकनभ्रान्तनारीनरदनुजसुपर्वव्रातपाताललोकः, करयोः जायन्त इति करजाः = नखास्त एव कुलिशानि = वज्राणि तेषां पालिभिः = कोटिभिः, अग्रभागैरितियावत् भिन्नम् = विदीर्णम्; दैत्येन्द्रस्य = हिरण्यकशिपोः वक्षः = उरःस्थलम् येनाऽसौ करजकुलिशपालीभिन्नदैत्येन्द्रवक्षाः; सुराणाम् = सुमनसाम्; रिपवः = शत्रवः; दानवा इत्यर्थः तेषां बलं = सेना तद् हन्तीति सुररिपुबलहन्ता दानवीसेनासंहारकः इत्यर्थः श्रीधरः = लक्ष्मीपतिः (नृसिंहः) वः = युष्माकम्-नाटकप्रेक्षकाणाम्; श्रिये = स्वस्तये अस्तु = भवतु ॥ १ ॥

समासः—नरस्य मृगपतेश्च "यद्" वर्ष्म तस्य आलोकनेन भ्रान्तः नारीणाम्, नराणाम्, दनुजानाम्, सुपर्वणाञ्च, व्रातः पाताललोकश्च येन सः नरमृगपतिवर्ष्मालोकनभ्रान्तनारीनरदनुजसुपर्वव्रातपाताललोकः । करयोः जायन्त इति करजास्त एव कुलिशानि तेषां पालीभिः भिन्नं दैत्येन्द्रस्य वक्षो येनाऽसौ करजकुलिशपाली-भिन्न-दैत्येन्द्र-वक्षाः । सुराणां ये रिपवः तेषां (यद्) बलं तद्हन्तीति सुररिपुबलहन्ता । धरतीति धरः श्रियः धरः श्रीधरः ।

कोशः—स्त्रीयोषिदबलायोषा नारी सीमन्तनी वधूरित्यमरः । मनुष्या-मानुषा मर्त्या मनुजा मानवा नराः । असुरा दैत्यदैतेयदनुजेन्द्रारिदानवाः, इत्यमरः । निकरव्रातसंघातसंचयाः । शरीरं वर्ष्म विग्रह इत्यमरः । सुपर्वाण-स्सुमनसो गीर्वाणाः दानवारयः इत्यमरः । कोणस्तु स्त्रियः पाल्यश्रिकोटयः । ह्रादिनी व्रजमस्त्रीस्यात् कुलिशं भिदुरं पविरित्यमरः ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भावार्थः—यस्य (भगवतो विष्णोः) नृसिंह-शरीर-मवलोक्य नरनारी देवतादनुजपाताललोकश्चाश्चर्यचकितो बभूव येन च स्वकीय-नखाग्रभागैः हरिण्यकशिपोर्वक्षः-स्थलं विस्फारितम् स भगवान् धृतनृसिंहावतारो लक्ष्मीपतिः युष्माकं दर्शकानां कल्याणाय भवतु ॥

हिन्दीः—जिनके नृसिंह शरीर को देखकर स्त्री-पुरुष दैत्य-देवता का समूह एवं पाताल लोक आश्चर्य चकित हो गया, जिन्होंने वज्र के समान अपने नखों के आगे वाले भाग से दैत्यराज हिरण्यकशिपु के वक्षःस्थल को विदीर्ण कर डाला वे दानवी सेना के संहारक लक्ष्मीपति (भगवान् विष्णु) आप दर्शक गणों का कल्याण करें ॥ १ ॥

[विशेषः—पुराणों में एक कथा आती है कि हिरण्यकशिपु ने अपने तपोबल से ब्रह्मा से यह वरदान प्राप्त कर लिया था कि हम न "मनुष्य से मारे जाएं न पशु से ही" आदि और उसके पश्चात् वह भगवान विष्णु से द्वेष कर देवताओं को सताने लगा एवं भगवद्भक्त अपने पुत्र प्रह्लाद को खंभे में बाँधकर मारना ही चाहता रहा कि "भगवान् विष्णु ने ब्रह्मा के द्वारा दिये गये वरदान की सत्यता का पालन करते हुए नृसिंह शरीर धारण कर प्रकट होकर उस दैत्याधि-पति का वहीं मार डाला। जिस शरीर को न मनुष्य कह सकते थे न पशु ही, अतः ऐसे शरीर को देखकर नर-नारी देव दानव सब अचम्भित रह गये।]

एवमार्य-मिश्रान् विज्ञापयामि (परिक्रम्य कर्णं दत्त्वा।) अये किं नु खलु मयि विज्ञापन-व्यग्रे शब्द इव श्रूयते। अङ्ग ! पश्यामि। (नेपथ्ये)

व्याख्याः—एवम् = इत्थम्; आर्यमिश्रान् = पूज्यान् विज्ञापयामि = निवेदयामि; (परिक्रम्य = परिक्रमणं विधाय; कर्णं दत्त्वा = किञ्चिदाकार्य।) अये = इत्याश्चर्यवाचको शब्दः; किं नु = कथम् मयि = सूत्रधारे विज्ञापन-व्यग्रे = सूचन-संलग्ने; शब्द इव = कोलाहल इव; श्रूयते = अनुभूयते। अङ्ग ! = अस्तु पश्यामि = विलोकयामि।

समासः—आर्या एव मिश्रास्ते आर्यमिश्रास्तान् = आर्य-मिश्रान्। विज्ञापने व्यग्रः तस्मिन् = विज्ञापन-व्यग्रे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कोशः—व्यग्रो व्यासक्त आकुले ।

भावार्थः—सूत्रधारः दर्शकान् किञ्चिद् विवक्षति तदैव नेपथ्ये कोलाहल इव शृणोति तदेव कथयति कथमयं कोलाहल इति पश्यामि ।

हिन्दीः—इस प्रकार आप महानुभावों को मैं सूचित करता हूँ कि (घूम कर और नेपथ्य की ओर कान लगाकर) अरे ! जिस समय मैं सूचना देने में संलग्न हूँ कुछ कोलाहल सा सुन रहा हूँ। अच्छा देखूँ तो, क्या है ?

(पर्दे के पीछे)

विशेषः—नाटक में "नेपथ्य" उस स्थान को कहते हैं जहाँ पर नाटक के सभी पात्र वस्त्राभूषण धारण करते हैं, वेशभूषा से सुसज्जित होते हैं। रङ्गमञ्च और प्रेक्षागृह जहां सब पात्र सुसज्जित होते हैं उसके बीच में लगे हुए पर्दे को भी सुविधा के लिये "नेपथ्य" कहा जाता है ।

भो भो ! निवेद्यतां निवेद्यतां महाराजायाङ्गेश्वराय । भवतु विज्ञातम् ।

सूत्रधारः—

संग्रामे तुमुले जाते कर्णाय कलिताञ्जलिः ।
निवेदयति संभ्रान्तो भृत्यो दुर्योधनाज्ञया ॥ २ ॥

(निष्क्रान्तः)

॥ प्रस्तावना ॥

(ततः प्रविशति भटः)

अन्वयः—जाते, तुमुले, संग्रामे, कलिताञ्जलिः, संभ्रान्तः, भृत्यः, दुर्योधनाज्ञया कर्णाय, निवेदयति ॥ २ ॥

व्याख्याः—जाते = संप्राप्ते; तुमुले = भयङ्करे संग्रामे = रणे, कलिताञ्जलिः = कलितः = विहितः अञ्जलिः = हस्तसम्पुटो येनासौ, अञ्जलिं बध्वा इत्यर्थः। संभ्रान्तः = व्यग्रः; भृत्यः = परिचारकः; दुर्योधनाज्ञया = कौरवाग्रादेशेन, कर्णाय = अङ्गेश्वराय, निवेदयति = सूचयति । "श्लोके षष्ठं गुरुज्ञेयं सर्वत्र लघु

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पञ्चमम् । द्विचतुष्पादयोर्ह्रस्वं सप्तमं दीर्घमन्ययोः" ॥ इति लक्षणानुसारमत्र "अनुष्टुप् छन्दः ॥ २ ॥

समासः—कलितः अञ्जलिर्येन सः कलिताञ्जलिः (तृ० तत्०) । दुर्योधनस्य आज्ञया दुर्योधनाज्ञया (ष० तत्पुरुष) ।

कोशः—संप्रहाराभिसंपातकलिसंफोट-संयुगाः ।
अभ्यामर्दसमाघातसंग्रामाभ्यागमाहवाः ॥

तुमुलं रण संकटे इत्यमरः । अववादस्तु निर्देशो निदेशः शासनं च सः । शिष्टिश्च आज्ञा च इत्यमरः । भृत्येदासेरदासेय दासगोप्यकचेटकाः । नियोज्य-किङ्करप्रैष्य भुजिष्यपरिचारकाः इत्यमरः ॥

भावार्थः सूत्रधारः नेपथ्ये किञ्चिच्छ्रुत्वा दर्शकान् कथयति यत् कथमयं कोलाहलो जातः इति ज्ञातं मया घोरे रणसंकटे समागते व्याकुलः दुर्योधनानुचरः तदाज्ञया कर्णाय निवेदयति यत् इदानीं संग्रामोऽभूदिति ॥

हिन्दीः—हे ! हे ! (लोगों) महाराज अङ्गनरेश कर्ण को सूचित करें !

सूत्रधारः—अच्छा जान लिया ।

भयङ्कर युद्ध उपस्थित हो जाने पर घबड़ाया हुआ दुर्योधन का दूत उसकी आज्ञा से हाथ जोड़कर अङ्गदेशाधिपति महाराज कर्ण को युद्ध की सूचना दे रहा है ॥ २ ॥ [सूत्रधार चला जाता]

॥ प्रस्तावना समाप्त ॥

विशेषः—'यदि प्रयोग एकस्मिन् प्रयोगोऽन्यः प्रयुज्यते । तेन पात्र-प्रवेशश्चेत् प्रयोगातिशयस्तदा" ॥ 'साहित्यदर्पण" के इस लक्षण के अनुसार यहाँ पर प्रयोगातिशय नामक तृतीय प्रस्तावना है ।

कथा को आगे बढ़ाने के लिये 'नाटक के आरम्भ में सूत्रधार द्वारा जो भूमिका प्रस्तुत की जाती है उसे प्रस्तावना कहते हैं ।

(ततः प्रविशति भटः)

भटः—भो भो ! निवेद्यतां निवेद्यतां महाराजायाङ्गेश्वराय युद्धकाल उपस्थित इति ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

करितुरगरथस्थैः पार्थकेतोः पुरस्ताद्
मुदितनृपतिसिंहैः सिंहनादः कृतोऽत्र ।
त्वरितमरि-निनादै-र्दुस्सहालोकवीरः
समरमधिगतार्थः प्रस्थितो नागकेतुः ॥ ३ ॥

अन्वयः—पार्थकेतोः, पुरस्ताद्; करितुरगरथस्थैः मुदितनृपतिसिंहैः; अत्र सिंहनादः कृतः । अरिनिनादैः; दुस्सहालोकवीरः अधिगतार्थः; नागकेतुः; त्वरितम्, समरम्; प्रस्थितः ॥ ३ ॥

व्याख्याः—पार्थस्य = अर्जुनस्य केतोः=ध्वजस्य पुरस्ताद् = अग्रतः करिणः= नागाः = वाजिनः, रथाः = स्यन्दनानि तेषु तिष्ठन्ति; तैरिति = करितुरगरथस्थैः नागाश्वस्यन्दनस्थितैः; मुदिताः = प्रसन्नाः नृपतयः = अर्जुनपक्षपातिनः भूपतय एव सिंहाः = नृपतयः तैः मुदितनृपतिसिंहैः = प्रसन्न-राजपञ्चाननैरितियावत्, अत्र = युद्धे; सिंहनादः = सिंहगर्जनं कृतमिति । अतः अरिनिनादैः = शत्रुगर्जनैः; दुस्सहः = वोढुमशक्यः परैरिति यावत्; आलोकः = तेजोविशेषः; यस्य स चासौ वीरश्च = शूरश्चेति दुस्सहालोकवीरः = अपरिमितप्रभाशालीयोद्धा इत्यर्थः; अधिगतार्थः = ज्ञातप्रयोजनः; नागकेतुः = नागः = हस्ती केतौ=ध्वजे यस्य सः नागकेतुः = हस्तिध्वजः; त्वरितम् = शीघ्रम् समरम् = युद्धस्थल "प्रतीति शेषः" प्रस्थितः = प्रचलितः ॥ "ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः" इति लक्षणानुसारमत्र "मालिनी" छन्दः ॥ ३ ॥

समासः = करिणश्च तुरगाश्च रथाश्चेति करितुरगरथम् (द्वन्द्व०) तेषु तिष्ठन्ति ये ते करितुरगथस्थास्तै पूर्वोक्तैः ॥ पृथाया अपत्यं पुमान् पार्थः; पार्थस्य केतुः पार्थकेतुस्तस्य (ष० तत्पुरुष) । मुदिताश्चेतेनृपतयः मुदितनृपतयः तएव सिंहाः तैः पूर्वोक्तैः । दुस्सहः आलोको यस्य स दुस्सहालोकः (बहु०) स चासौ वीरश्च दुस्सहालोकवीरः (द्वन्द्वः) । अधिगतः अर्थो येन स अधिगतार्थः (बहुव्रीहिः) । नाग केतुर्यस्य स नागकेतुः (बहुव्रीहिः) ।

कोशः—दन्ती दन्तावलो हस्ती द्विरदोऽनेकपो द्विपः ।
मतङ्गजो गजो नागः कुञ्जरो वारणः करीत्यमरः ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

घोटके वीतितुरग-तुरङ्गाश्वतुरङ्गमाः। वाजिवाहार्वगन्धर्वहयसैन्धव समयः। इत्यमरः। याने चक्रिणि युद्धार्थे शताङ्गः स्यन्दनो रथः इत्यमरः। ग्रहभेदे ध्वजे केतुः इत्यमरः। राजा राट् पार्थिवक्ष्माभृन्नृपभूपमहीक्षितः। रिपौ वैरि सपत्नारिद्विषद् द्वेषणदुर्हृदः। इत्यमरः॥

भावार्थः—अर्जुनस्य पताका समक्षं हस्त्यश्वरथस्थैः प्रसन्नैः सिंह-सदृशबलशालिभिः नृपैः रणाङ्गणे सिंहनादो विहितः, अत एव शत्रुगर्जनैरमित-तेजोवान् दुर्योधनः शीघ्रमेव युद्धस्थलं प्रति प्रयात इति।

हिन्दीः—(भट प्रवेश करता है)

भटः—ऐ लोगों! महाराज अङ्गनरेश (कर्ण) को निवेदन कर दें कि युद्ध का समय उपस्थित हो गया है।

अर्जुन की ध्वजा के सामने हाथी, घोड़े और रथ पर बैठे हुए, प्रसन्न, सिंह के समान वीर राजाओं ने यहाँ रणभूमि में सिंह गर्जना की; शत्रुगर्जना के कारण जिसके तेजो विशेष को दूसरा सहन नहीं कर सकता एवं जिसके ध्वज में मणिमय हाथी का चिह्न है वे दुर्योधन शीघ्रता से रणभूमि के लिये प्रस्थान कर चुके हैं॥ ३॥

(परिक्रम्य विलोक्य) अये अयमङ्गराजः समरपरिच्छदपरिवृतः शल्यराजेन सह स्वभवनान्निष्क्रम्य इत एवाभिवर्तते। भोः किं न खलु युद्धोत्सव-प्रमुखस्य दृष्टपराक्रमस्या-भूतपूर्वो हृदयपरितापः।

एष हि—

अत्युग्रदीप्तिविशदः समरेऽग्रगण्यः
शौर्ये च संप्रति सशोकमुपैति धीमान्।
प्राप्ते निदाघसमये घनराशिरुद्धः
सूर्यः स्वभावरुचिमानिव भाति कर्णः॥ ४॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यावदपसर्पामि । (निष्क्रान्तः)

व्याख्याः—परिक्रम्येति—परिक्रम्य = परिक्रमां विधाय; विलोक्य = दृष्ट्वा; समरस्य = रणस्य परिच्छदेन—वेशभूषया; साज-सज्जया इत्यर्थः; परिवृतः = युतः; शल्यराजेन = अर्जुनमातुलेन सह = साकम्; स्वभवनात् = निजनिकेतनात्; निष्क्रम्य = निर्गत्य; इत एवाभिवर्तते = इत एवागच्छति । भोः = सम्बोधन-वाचकपदमिदम्; किंनु खलु इति प्रश्ने; युद्धस्य = आहवस्य, उत्सवः = महः तस्मिन् प्रमुखः = प्रधानः तस्य; एवञ्च दृष्टः = विलोकितः, पराक्रमः = वीरता प्रभाव इति यावत् यस्य स दृष्टपराक्रम तस्य, कर्ण येत्यर्थः, अभूतपूर्वः = पूर्वं भूत-इति भूतपूर्वः न भूतपूर्वं इति अभूतपूर्वः = सद्यः नवीनः हृदयस्य = चित्तस्य; परितापः = खेद इति ।

एष हि = अयं हि कर्णः,

अत्युग्रेति—

अन्वयः—अत्युग्रदीप्तिविशदः; समरे; शौर्ये च; अग्रगण्यः धीमान्; संप्रति, सशोकमुपैति । कर्णः, निदाघसमये, प्राप्ते; घनराशिरुद्धः; स्वभावरुचिमान् सूर्य इव, भाति ॥ ४ ॥

व्याख्याः—अत्युग्रया = बहुतीक्ष्णया, दीप्त्या = प्रभया विशदः = उद्योतितः; समरे = युद्धे; शौर्ये च = पराक्रमे तथा; अग्रगण्यः = सर्वप्रथमः; धीमान् = बुद्धिमान्; संप्रति = अधुना सशोकं = दुःखसहितम् उपैति = पार्श्वमागच्छति । कर्णः = राधेयः; निदाघसमये = ग्रीष्मर्तौ, घनराशिना = मेघसमूहेन रुद्धः = पिहितः, स्वभावेन = प्रकृत्या; रुचिमान् = दीप्तिमान्; सूर्य इव = दिनकर यथा भाति = चकास्ते ॥ सामान्येन विशेषस्य अत्र पुष्टिः क्रियत इति; "अर्थान्तर न्यासालङ्कारो वर्तते । "उक्ता वसन्ततिलका तभजाजगौगः" इति लक्षणानुसारमत्र वसन्ततिलका वृत्तम् ॥ ४ ॥

समासः—अत्युग्रा चेयं दीप्तिश्चेति अत्युग्रदीप्तिः (द्वन्द्व) तया अत्युग्रदीप्तया विशदः = अत्युग्रदीप्तिविशदः । शोकेन सहितमिति सशोकम् । निदाघस्य

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

समयः निदाघसमयः (ष० तत्०) तस्मिन्। घनानां राशिः = घनराशिः (ष० तत्पु०) तेन रुद्धः घनराशिरुद्धः (तृ० तत्पुरुषः)।

कोशः—स्युः प्रभारुग्रुचिस्त्विड्भा भाश्छविद्युतिदीप्तयः इत्यमरः। शुक्ल-शुभ्रशुचिश्वेतविशदश्वेतपाण्डुराः इत्यमरः। द्रविणं तरः सहोबल शौर्याणि स्थाम शुष्मं च शक्तिः पराक्रमः प्राणे। मन्युशोकौ तु शुक् स्त्रियामित्यमरः। निदाघ उष्णोपगम उष्ण उष्मागमस्तपः इत्यमरः। घन-जीमूतमुदिर-जलमुग्घूमयोनयः इत्यमरः। सूरसूर्यार्यमादित्यद्वादशात्मादिवाकरः इत्यमरः।

भावार्थः—अयमधुना कर्णः अत्यन्तप्रखरप्रभासंपन्नः, शौर्ये युद्धे चाग्रगण्यः, शोक-संतप्तः तथैव प्रतिभाति, यथा ग्रीष्मर्तौ मेघाच्छन्नः चण्डांशुः प्रतिभाति॥

हिन्दीः—(घूमकर एवं देखकर) ओहो! ये अङ्गदेशाधिपति कर्ण युद्ध की वेश-भूषा से सज्जित होकर अपने सारथी राजा शल्य के साथ अपने महल से निकलकर इधर ही आ रहे हैं। अरे! जो युद्धोत्सव में आगे रहते हैं एवं जिनका पराक्रम लोगों के द्वारा बहुत बार देखा जा चुका है; उस कर्ण के हृदय में यह अभूतपूर्व संताप कैसे?

ये अत्यन्त प्रखर प्रभा से उद्दीप्त; शौर्य एवं युद्ध में आगे रहने वाले; बुद्धिमान् शोकान्वित कर्ण इस समय वैसे ही लगते हैं; जैसा कि ग्रीष्म ऋतु में मेघसमूह से ढँका; स्वाभाविक तीक्ष्ण किरणों वाला सूर्य लगता है॥ ४॥

अब यहाँ से चलूँ (निकल जाता है)

(ततः प्रविशिति यथा निर्दिष्टः कर्णः शल्यश्च)

कर्णः—मा तावन्मम शरमार्ग-लक्ष्य-भूताः
संप्राप्ताः क्षितिपतयः सजीवशेषाः।
कर्तव्यं रणशिरसि प्रियं कुरूणां
द्रष्टव्यो यदि स भवेद्धनञ्जयो मे॥ ५॥

शल्यराज! यत्रासावर्जुनस्तत्रैव चोद्यतां रथः।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शल्यः—बाढम् । (चोदयति)

कर्णः—अहो नु खलु ।

अन्वयः—तावत्; मम, शरमार्ग-लक्ष्यभूताः; क्षितिपतयः; सजीवशेषाः; मा संप्राप्ताः । रणशिरसि; कुरूणां; प्रियं कर्तव्यं (वर्तते) यदि स धनञ्जयो मे द्रष्टव्यो भवेत् ॥ ५ ॥

व्याख्याः—तावत् = अद्यावधि पूर्वेषु युद्धेष्वित्यर्थः; मम = कर्णस्य शराणाम् = बाणानाम्; मार्गे = पथि, लक्ष्यभूताः = लक्ष्यत्वं गताः; क्षितिपतयः = राजानः; सजीवशेषाः = प्राणवन्तः; मा संप्राप्ताः = नाऽभूवन् । सर्वे हता इत्यर्थः (अद्यतने) रणशिरसि = युद्धमध्ये; कुरूणाम् = धार्तराष्ट्राणाम्; प्रियम् = अभीष्टम्; कर्तव्यम् = कार्यम् (वर्तते) यदि = चेत्; सः = अस्मद्प्रतिभटः; धनञ्जयः = अर्जुनः मे = मम द्रष्टव्यः = दृष्टिगोचरः; भवेत् = स्यात् । कौरवाभीप्सितमर्जुनवधं विधाय तेषामभिलाषं पूरयिष्यामि ॥ अत्र प्रहर्षिणी छन्दः । तल्लक्षञ्च "त्र्याशाभिर्मनजरगाः प्रहर्षणायम्" ॥ ५ ॥

समासः—शराणाम् मार्गः = शरमार्गः (ष० तत्०) तस्य लक्ष्यभूताः शरमार्गलक्ष्यभूताः (ष० तत्पु०) । जीवेन सहिता इति सजीवाः त एव शेषाः सजीवशेषाः । रणस्य शिरः रणशिरः तस्मिन् रणशिरसि (ष० तत्पु०)

कोशः—पृषत्कबाणाः विशिखाः अजिह्मगखगाशुगाः ।
कलम्बमार्गणशराः पत्रीरोप इषुर्द्वयोः । इत्यमरः ।
अयनं वर्त्म मार्गाध्वपन्थानः पदवी सृतिरित्यमरः ॥
अभीष्टे अभीप्सितं हृद्य दयितं वल्लभं प्रियमित्यमरः ॥

भावार्थः—कर्णः स्वमनोगतं भावं व्यनक्ति यद्; अद्यावधि पूर्वेषु युद्धेषु मम बाणलक्ष्यीभूताः केऽपि राजानः जीवन्तः सन्तः नागच्छन् । अद्य यदि युद्धे अर्जुने दृष्टिगोचरो भवेत् तर्हि तं निहत्य कौरवाभिलाषं पूरयामीति ॥

हिन्दीः—(भट के चले जाने के बाद पूर्वनिर्दिष्ट कर्ण और शल्य प्रवेश करते हैं ।)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कर्णः—आज तक ऐसा पहले कभी नहीं हुआ कि कोई भी राजा मेरे बाणों के रास्ते मे आकर जीवित चला गया हो। आज इस युद्ध मे; मैं कौरवों का अभिलाषा पूर्ण कर दूँ यदि अर्जुन को देख जाऊं तो ॥ ५ ॥

शल्यराज ! जहाँ पर वह है मेरे रथ को वहीं ले चलो।

शल्यः—अच्छा। (रथ ले जाता है)

कर्णः—ओहो; यह कैसे—

अन्योन्यशस्त्र-विनिपात-निकृत्तगात्र—
योधाश्ववारणरथेषु महाहवेषु।
क्रुद्धान्तकप्रतिमविक्रमिणो ममापि
वैधुर्यमापतति चेतसि युद्धकाले ॥ ६ ॥

भो कष्टम्।

पूर्वं कुन्त्यां समुत्पन्नो राधेय इति विश्रुतः।
युधिष्ठिरादयस्ते मे यवीयांसस्तु पाण्डवाः ॥ ७ ॥

अन्वयः—अन्योन्येति। अन्योन्यशस्त्रविनिपातनिकृत्तगात्रयोधाश्ववारण-रथेषु; महाहवेषु; क्रुद्धान्तकप्रतिमविक्रमिणः; ममापि; चेतसि; युद्धकाले; वैधुर्य-मापतति ॥ ६ ॥

व्याख्याः—अन्योन्यम् = मिथः; शस्त्राणाम् = बाणादीनाम् विनिपातैः = प्रहारैः निकृत्तगात्राः = विक्षतविग्रहाः; योधाः = सैनिकाः; अश्वाः = हयाः; वारणाः = हस्तिनः रथाः = स्यन्दनाः येषु; तेषु महाहवेषु = महारणेषु; क्रुद्धः = कुपितः अन्तकः = यमराजः तत्प्रतिमम् = तादृशः; विक्रमः = पराक्रमो यस्य; (तस्य) ममापि = कर्णस्यापि चेतसि = हृदये; युद्धकाले = रणसमये; वैधुर्यम् — दैन्यम्; आपतति = आगच्छति ॥ ६ ॥ अत्र वसन्त तिलका वृत्तं लक्षणन्तु पूर्वोक्तमेव ॥

समासः—अन्योन्यं शस्त्राणां विनिपातः = अन्योन्यशस्त्रविनिपातः (ष० तत्पु०) निकृत्तानि गात्राणि येषां ते. निकृत्तगात्राः (बहुव्रीहिः) अन्योन्यशस्त्र-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विनिपातेन निकृत्तगात्राः = अन्योन्यं शस्त्रविनिपातेन निकृत्तगात्राः = अन्योन्य-शस्त्रविनिपातनिकृत्तगात्राः (तृ० तत्पु०) ते योधाःअश्वाः वारणाः रथाश्च येषु—अन्योन्यशस्त्रविनिपातनिकृत्तगात्रयोधाश्ववारणरथेषु (बहुव्रीहिः)। महान्तश्च आहवाः महाहवाः तेषु महाहवेषु (कर्मधारय)। क्रुद्धश्चासावन्तकः=क्रुद्धान्तकः (कर्मधारयः) तस्य प्रतिमा इव प्रतिमा यस्य स क्रुद्धान्तक प्रतिमाः एतादृशः यः विक्रमः; स अस्यास्तीति क्रुद्धान्तकप्रतिमविक्रमो तस्य पूर्वोक्तस्य। युधिष्ठिरः आदो येषान्ते युधिष्ठिरादयः ॥ ६ ॥

कोशः—आयुधं तु प्रहारणं शस्त्रमस्त्रमित्यमरः। कलेवरं गात्रं वपुः संहननम् शरीरं वर्ष्म विग्रहः। इत्यमरः। भटायोधाश्च योद्धारः। इत्यमरः॥ ६ ॥

यस्मिन् महासमरे परस्परं शस्त्रप्रहारैः सैनिकानामश्वानां गजानाञ्चाङ्गानि; स्यन्दनानि च क्षतविक्षतानि भवन्ति, तस्मिन् युद्धे येन क्रुद्धकृतान्त इव स्वपराक्रमः प्रदर्शितः तस्य मे कर्णस्य हृदयेऽधुना युद्धसमये कातर्यमापतति ॥ ६ ॥

अन्वयः—पूर्वमिति—कुन्त्यां पूर्वं समुत्पन्नः राधेय इति विश्रुतः। ते युधिष्ठिरादयः पाण्डवास्तु मे यवीयांसः ॥ ७ ॥

व्याख्याः—कुन्त्याम् = पृथायाम्; पूर्वं = प्रथमम्; समुत्पन्नः = प्रादुर्भूतः; राधेयः = कर्ण राधापुत्र इति यावत्; इति = अनेन नाम्ना विश्रुतः = विख्यातः। = लब्धख्याताः यैरद्य मे योद्धव्यं वर्तते; युधिष्ठिरादयः = धर्मराजप्रमुखाः, पाण्डवास्तु = पाण्डुपुत्रास्तु मे = कर्णस्य यवीयांसः = कनिष्ठाः अनुजा इत्यर्थः (वर्तन्ते) ॥ ७ ॥

भावार्थः—येषु महारणेषु पारस्परिकशस्त्रप्रहारैः सैनिकानामश्वानां-हस्तीनामङ्गानि रथाश्च क्षत विक्षताः भवन्ति; तेषु क्रुद्धकालोपमविक्रमस्यापि मे कर्णस्य हृदये इदानीं युद्धकाले कातर्यमापतीत्याश्चर्यम् ॥ ६ ॥

भावार्थः—पूर्वश्लोकोक्ताश्चर्यं समाधत्ते अहो महाकष्टं वर्तते यदधमे अनुजवधः कर्तव्यो वर्तते, यतो हि पूर्वमहं कुन्त्यामुत्पन्नः दैवदुर्विपाकात् राधा-गृहे पाल्यमानत्वात् तत्-पुत्रत्वेन विख्यातः, परन्तु इमे युधिष्ठिरादयो मे कनिष्ठ-भ्रातरः सन्ति ॥ ७ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हिन्दी:—जिन महारणों में पारस्परिक शस्त्र प्रहार से सैनिकों, घोड़ों और हाथियों के अङ्ग क्षत विक्षत हो जाते थे और रथ टूट जाते थे; उन युद्धों में क्रुद्ध काल के समान अपने पराक्रम का प्रदर्शन करने वाले मुझ कर्ण के भी हृदय में आज इस युद्ध के समय कायरता घुस रही है ॥ ६ ॥

बहुत कष्ट की बात है:—

प्रथम तो मैं कुन्ती के गर्भ से उत्पन्न हुआ और पुनः "राधेय" नाम से प्रसिद्ध हुआ। ये युधिष्ठिरादि पाण्डव मेरे छोटे भाई ही तो हैं ॥ ७ ॥

[विशेषः—पुराण में एक कथा आती है कि "एक बार राजा भोज के घर महर्षि दुर्वासा आये। राजा ने अपनी अविवाहित पुत्री कुन्ती को महर्षि की सेवा में लगा दिया। कुन्ती की सेवा से प्रसन्न होकर दुर्वासा ने उसे ऐसा मन्त्र बता दिया जिस मन्त्र के द्वारा आवाहन करने पर कोई भी देवता उसके पास आ सकते थे। कुन्ती ने मन्त्र की परीक्षा के लिए कौतुहल वश एक बार उस मन्त्र से भगवान् सूर्य का आवाहन किया, जब कि वह मासिक दोष से सद्यः शुद्ध हुई थी; परिणाम स्वरूप कर्ण की उत्पत्ति कुन्ती के गर्भ में हो गयी। कुन्ती उस समय कुमारी थी अतः लोक लज्जावश प्रसूत उस नवजात शिशु को काठ की पिटारी में बन्द कर नदी में प्रवाहित कर दी, जिसे संयोगवश एक रथकार दम्पति ने पाया और रथकार की स्त्री राधा ने उस बालक का पालन-पोषण औरस सन्तान की तरह किया इस लिये "कर्ण" को "राधेय" कहते हैं।]

अयं स कालः क्रम-लब्धशोभनो
गुण-प्रकर्षो दिवसोऽयमागतः।
निरर्थमस्त्रं च मया हि शिक्षितं
पुनश्च मातुर्वचनेन वारितः ॥ ८ ॥

भोः शल्यराज; श्रूयतां ममास्त्रस्य वृत्तान्तः।

शल्यः—ममाप्यस्ति कौतूहलमेनं वृत्तान्तं श्रोतुम्।

कर्णः—पूर्वमेवाहं जामदग्न्यस्य सकाशं गतवानस्मि।

शल्यः—ततस्ततः।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अन्वयः—अयमेति। अयं सः क्रमलब्धशोभनः, कालः आगतः अयं गुणप्रकर्षः, दिवसः, आगतः, मया हि, निरर्थम् अस्त्रम्, शिक्षितम्, पुनश्च, मातुर्वचनेन वारितः, अस्मीति शेषः ॥ ८ ॥

व्याख्याः—अयम् = उपस्थितः, सः = बहुसमय-प्रतीक्षितः, क्रमेण = दिवस-क्रमेण लब्धः = प्राप्तः, शोभनः = रमणीयः कालः = समयः आगतः = सम्प्राप्तः, अयम् = एष गुणप्रकर्षः = सद्गुणप्रकृष्टः दिवसः = वासरः आगतः = प्राप्तः, हि = परन्तु, मया = कर्णेन, निरर्थम् = निष्प्रयोजनम्, अस्त्रम् = आयुधम् शिक्षितम् = अभ्यस्तम्, पुनश्च = भूयोऽपि मातुर्वचनेन = कुन्तिवचसा वारितः = निषिद्धोऽस्मी"ति शेषः। पद्येऽस्मिन् 'वंशस्थ" नामकं छन्दः। तल्लक्षणञ्च "जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ" इति ॥ ८ ॥

समासः—क्रमेण लब्धः = क्रमलब्धः (तृ० तत्पु०) क्रमलब्धश्चासौ शोभनः = क्रमलब्धशोभनः (कर्मधारय) गुणानां प्रकर्षोऽयस्मिन्निति, गुणप्रकर्षः (बहुव्री०)

कोशः—कालो दिष्टोऽप्यनेहापि समयः। इत्यमरः। सुन्दरं रुचिरं चारु सुषमं साधु शोभनम्। इत्यमरः। घस्रे दिनाहनी वा तु क्लीबे दिवसवासरौ। इत्यमरः। व्याहार उक्तिर्लपितं भाषितं वचनं वचः। इत्यमरः।

भावार्थः—चिरकालात् प्रतीक्षितोऽयं समयोऽप्यागतः। सद्गुणः युक्तोऽयं वासरोऽप्यागतः "युद्धस्य"। किन्तु मया परशुरामेण व्यर्थमेवास्त्रं शिक्षितम्, एवञ्च मात्रा कुन्त्या "युधिष्ठिरादिके अस्त्रप्रहारो मा कृथाः" इति बहुवारं निषिद्धोऽस्मि ॥ ८ ॥

हिन्दीः—मैं जिसकी प्रतीक्षा बहुत समय से कर रहा था वह युद्ध का समय भी आ गया और आज का दिन भी अनेक सद्गुण से युक्त है (अत एव उपयुक्त है)। परन्तु मैंने शस्त्रों का अभ्यास व्यर्थ ही किया, और माँ कुन्ती ने "युधिष्ठिरादि पर शस्त्रप्रहार न करना" ऐसा कहकर बहुत बार मना भी किया है ॥ ८ ॥

ओ! शल्यराज, मेरे शस्त्रों की कहानी सुन लीजिये।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शल्य—मुझे भी इस कहानी को सुनने का कौतूहल है। (सुनाइये)

कर्ण—पहले एक बार मैं परशुराम के समीप गया था।

शल्य—उसके बाद क्या हुआ ?

विद्युल्लता-कपिलतुङ्ग-जटा-कलाप-
मुद्यत्प्रभावलयिनं परशुं दधानम्।
क्षत्रान्तकं मुनिवरं भृगुवंशकेतुं
गत्वा प्रणम्य निकटे निभृतः स्थितोऽस्मि ॥ ९ ॥

अन्वयः—विद्युल्लताकपिलतुङ्गजटाकलापम्, उद्यत्प्रभावलयिनम्, परशुं दधानम्, क्षत्रान्तकम, मुनिवरम्, भृगुवंशकेतुम्, निकटे, गत्वा, प्रणम्य, निभृतः, स्थितः, अस्मि ॥ ९ ॥

व्याख्याः—विद्युल्लता = सौदामिनीलता, 'इव' कपिलाः = पिशङ्गाः, पिङ्गलवर्णा इत्यर्थः, तुङ्गाः = महान्तः जटाः = सटाः "तासां" कलापः = निचयो यस्य तम, उद्यन्ती = उर्ध्वं गच्छन्ती, या प्रभा = ज्योतिः तस्याः वलयम् = प्रकोष्ठं यस्य तम्; स्फुरत्कान्तिपरिधिमन्तमित्यर्थः; परशुम् = कुठारम 'एतन्नामकास्त्र-विशेषम्' दधानम् = धारयन्तम्, क्षत्रान्तकम् = क्षत्रियाणाम् कालम् मुनि-वरम् = ऋषिश्रेष्ठम्, भृगुवंशकेतुम् = भार्गवकुलकेतुम, निकटे = समीपे गत्वा = उपसृत्य, प्रणम्य = प्रणामं कृत्वा, निभृतः = शब्दरहितः स्थितः = अत्र-स्थितः अस्मि = संवृत्तः। अत्र वसन्ततिलका छन्दः ॥ ९ ॥

समासः—विद्युदेव लता = विद्युल्लता; तद्वत्कपिलाः विद्युल्लताकपिलाः; जटायाः कलापः जटाकलापः; (ष० तत्पु०) तुङ्गाश्च ते जटा कलापाः तुङ्ग-जटाकलापाः; विद्युल्लताकपिलाश्च ते जटाकलापाविद्युल्लता—कपिलजटाकलापा यस्य तम्; उद्यन्तीचैषा प्रभा च उद्यत्प्रभा (कर्मधारयः) उद्यत्प्रभैव वलयं यस्य तम्; उद्यत्प्रभावलयिनम्।

कोशः—तडित्सौदामिनी विद्युच्चञ्चला चपला अपि। इत्यमरः। कडारः कपिलः पिङ्गपिशङ्गौ कद्रुपिङ्गलौ इत्यमरः। स्युः प्रभारुग्रुचिस्त्विड् भाभा-च्छविद्युति दीसयः रोचिशोचिः। व्रतिनस्तु जटा सटा इत्यमरः। निभृतविनीत-प्रश्रिताः समाः। इत्यमरः समीपे निकटासन्नसन्निकृष्टसनीडवत् इत्यमरः।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भावार्थः—विद्युत्प्रभेवकान्तिमन्तं जटाकलापं धारयन्तं क्षत्रियकुलान्तकं कुठारनामकस्त्रविशेषधारिणं परशुराम—नामकं भार्गव—कुलकैरवं समीपं गत्वा तूष्णीं स्थितः आसमिति, कर्णः स्वशस्त्राभ्यास-प्रसंगं कथयति शल्यम् ॥

हिन्दीः—बिजली के समान पीली एवं बड़ी जटा समूह को धारण करने वाले; प्रभामण्डल से परिवेष्टित; "परशु" नामक अस्त्रविशेष धारण करनेवाले; क्षत्रियकुल के लिये काल समान, मुनिश्रेष्ठ, भृगुकुलकेतु (परशुराम) के समीप जाकर प्रणाम करके मैं चुपचाप बैठ गया ॥ ९ ॥

शल्यः—ततस्ततः ।

कर्णः—ततो जामदग्न्येन ममाशीर्वचनं दत्त्वा पृष्टोऽस्मि । को भवान् किमर्थमिहागत इति ।

शल्यः—ततस्ततः ।

कर्णः—ततः भगवन् अखिलान्यस्त्राण्युपशिक्षितुमिच्छामीत्युक्तवानस्मि ।

शल्यः—ततस्ततः ।

कर्णः—ततः उक्तोऽहं भगवता ब्राह्मणेषूपदेशं करिष्यामि न क्षत्रियाणामिति ।

शल्यः—अस्ति खलु भगवतः क्षत्रियदंश्यैः पूर्ववैरम् । ततस्ततः ।

कर्णः—ततो नाहं क्षत्रिय इत्यस्त्रोपदेशं ग्रहीतुमारब्धं मया ।

शल्यः—ततस्ततः ।

कर्णः—ततः कतिपय कालातिक्रमे कदाचित् फलमूलसमित्कुशकुसुमाहरणाय गतवता गुरुणा सहानुगतोऽस्मि ।

शल्यः—ततस्ततः ।

कर्णः—ततः स गुरुर्वन—भ्रमणपरिश्रमान्मदङ्के निद्रावशमुपागतः ।

शल्यः—ततस्ततः ।

हिन्दीः—शल्यः—उसके बाद ?

कर्णः—तब फिर परशुराम ने आशीर्वाद देकर मुझे पूछा कि; आप कौन हैं और यहाँ किस लिये आये हैं ?

शल्यः—उसके बाद ?

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कर्ण—तब भगवन् ! "सम्पूर्ण अस्त्र विद्या सीखना चाहता हूँ" ऐसा मैंने कहा ।

शल्य—तब फिर ?

कर्ण—उसके बाद भगवान (परशुराम) ने मुझसे कहा कि; मैं केवल ब्राह्मणों को ही अस्त्र विद्या सिखलाता हूँ, क्षत्रियों को नहीं ।

शल्य—परशुराम की क्षत्रियों से पुरानी दुश्मनी है । तब फिर ?

कर्ण—"मैं क्षत्रिय नहीं हूँ" ऐसा मैंने कहकर अस्त्र सीखना प्रारम्भ कर दिया ।

शल्य—तब क्या हुआ ?

कर्ण—तब कुछ दिनों के बाद एक बार फलमूल लकड़ी कुशा और फूल इत्यादि लाने के लिये जंगल को जाते हुए गुरु के साथ मैं भी जंगल चला गया ।

शल्य—उसके बाद ?

कर्ण—तब फिर जंगल में भ्रमण करने के कारण थक कर गुरुजी मेरी गोद में सो गये ।

शल्य—उसके बाद क्या हुआ ?

कर्णः—ततः

कृत्ते वज्रमुखेन नाम कृमिणा दैवान्ममोरुद्वये
निद्राच्छेदभयादसह्यतगुरोर्धैर्यात्तदावेदना ।
उत्थाय क्षतजाप्लुतः स सहसा रोषानलोद्दीपितो
बुद्ध्वा मां च शशाप काल-विफलान्यस्त्राणि ते सन्त्विति ॥१०॥

अन्वयः—दैवात्, वज्रमुखेन, नामकृमिणा, ममोरुद्वये, कृत्ते; तदा; गुरोः, निद्राच्छेदभयात्, वेदना; धैर्यात्; असह्यत । सहसा; क्षतजाप्लुतः, सः; उत्थाय; मां च बुद्ध्वा, रोषानलोद्दीपितः; कालविफलानि; ते; अस्त्राणि, सन्तु इति (मां) शशाप ।

व्याख्याः—दैवात् = दुर्भाग्यात्; वज्रेण = कुलिशेन; मुखम् = आस्यं यस्य तेनः एतन्नामकेन कृमिणा = कीटेन मम = कर्णस्य उरुद्वये = जङ्घायुगे; कृत्ते =

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

क्षत्ते; तदा = तस्मिन् समये; गुरोः = जामदग्नस्य निद्राच्छेद-भयात् = निद्राभङ्ग-भयात्; वेदना = दंष्टोपगतकष्टम्; धैर्यात् = साहसात् असह्यत = सोढा। सहसा= अकस्मात्; क्षतजाप्लुतः = रक्तांसञ्चितः, सः = गुरुर्परशुरामः; उत्थाय = निद्रां-विहाय; मां = कर्णं च बुद्ध्वा = एवं विधः साहसः क्षात्रियातिरिक्तेषु न भवतीत्यं क्षत्रिय एवेति ज्ञात्वा; रोषः = मन्युः एव अनलः = वह्निः; तेन उद्दीपितः = प्रज्वलितः "सन्" कालविफलानि = समयासहायकानि; ते = ममोपदिष्टस्य कर्णस्य अस्त्राणि = आयुधानि सन्तु = भवन्तु इति = एवं प्रकारेण (मां) शशाप = शापं दत्तवान् ॥ अत्र शार्दूलवीक्रिडितं नामकं छन्दः ॥ १० ॥

समासः—वज्रवद्मुखं यस्य स वज्रमुखस्तेन। निद्रायाश्छेदः = निद्राच्छेदः; (ष० तत्०) तस्य भयः निद्राच्छेदभयः (ष० तत्०) तस्मात्। क्षतात् जातः = क्षतजः (पञ्चमी तत०) तेन आप्लुतः = क्षतजाप्लुतः (तृ० तत्०)। रोष एव अनलः तेनोद्दीपितः रोषानलोद्दीपितः (तृ० तत्०)। काले विफलानि = कालविफलानि (स० तत्पु०)।

कोशः—दैवं दिष्टं भागधेयम्। इत्यमरः। सक्थिक्लीबे पुमानुरुः। स्यान्निद्रा शयनं स्वापः स्वप्नः संवेश इत्यपि। इत्यमरः। कोपक्रोधामर्षरोषप्रतिघारुटक्रुधो स्त्रियो ॥ इत्यमरः।

भावार्थः—ममाङ्के सुप्ते गुरौ मम दौर्भाग्यात् वज्रमुख-नामकः कश्चन कीट-विशेषः मदुरुयुगले दंष्ट्रवान्; अहं च गुरोर्निद्राभङ्गा मा भूदिति निश्चत्य सेवा-त्रुटिर्नस्यादिति भयेन च तां वेदनामहम् सहितः, क्षतजेन शोणितेनार्द्रः गुरुः सहसोत्थाय एतादृशः साहसे क्षत्रियातिरेषु वर्णेषु नैव भवितुमर्हति क्षत्रिय एवैष इति मां बुद्ध्वा ममोपदिष्टानि तवायुधानि प्रयोजन-समये विफलानि सन्त्विति मां शप्तवान् ॥ १० ॥

हिन्दी—मेरी गोद में जब भगवान् परशुराम (गुरुजी) सो गये तब मेरे दुर्भाग्य वश वज्रमुखनामक एक कीड़े ने मेरे दोनों जाघों में काट लिया; "गुरुजी की निद्रा भङ्ग न हो जाए" इस भय से मैंने उस वेदना को उस समय सह लिया; परन्तु खून के स्पर्श से गुरुजी अचानक जाग पड़े और यह क्षत्रिय ही है (क्योंकि ऐसा साहस अन्य जाति के लोगों में नहीं हो सकता) ऐसा मुझे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जानकर "समय आने पर मेरे सिखलाये तुम्हारे अस्त्र विफल हो जाएँ" ऐसा शाप दे डाला।

शल्यः—अहो कष्टमभिहितं तत्र भवता।

कर्णः—परीक्षामहे तावदस्त्रस्य वृत्तान्तम्। (तथा कृत्वा) एतान्यस्त्राणि निर्वीर्याणीव लक्ष्यन्ते। अपि च

इमे हि दैन्येन निमीलितेक्षणा
मुहुः स्खलन्तो विवशास्तुरङ्गमाः।
गजाश्च सप्तच्छददानगन्धिनो
निवेदयन्तीव रणे निवर्तनम्॥ ११॥

शङ्खदुन्दुभयश्च निःशब्दाः

अन्वयः—इमेति। हि, दैन्येन, निमीलितेक्षणाः, इमे, मुहुः; स्खलन्तः, विवशाः; तुरङ्गमाः; सप्तच्छददानगन्धिनः, गजाश्च रणे, निवर्तनम्, इव; निवेदयन्ति।

व्याख्याः—हि = यतः, दैन्येन = दीनतया, निमीलितानि = मुद्रितानि ईक्षणानि = अक्षीणि येषां ते, इमे = पुरोवर्तिनः, मुहुः = वारम्वारम्; स्खलन्तः = भ्रश्यन्तः; विवशाः = स्वातन्त्र्यहीनाः; तुरङ्गमाः = घोटकाः; सप्तच्छदस्य = सप्तपर्णस्य "एतन्नामकपुष्पविशेषस्येत्यर्थः; दानस्य = दानवारेः इव गन्धः = सुगन्धो, येषां ते गजाश्च = हस्तिनश्च; रणे = युद्धे; निवर्तनम् = परावर्तनम्; इव = यथा निवेदयन्ति = प्रार्थयन्ति इति। अत्र वंशस्थ वृत्तिः। तल्लक्षणञ्च पूर्वोक्तमेव॥

समासः—निमीलितानि ईक्षणानि येषां ते = निमीलितेक्षणाः सप्त संख्याकाराश्छदाः यस्य स सप्तच्छदः (बहु०) तस्य गन्ध इव दानगन्धो येषान्ते सप्तच्छददानगन्धिनः।

कोशः—युद्धमायोधनं जन्यं प्रधनं प्रविदारणम् इत्यमरः।

भावार्थः—इमे मदीया अश्वाः कातर्येण सम्पुटिताक्षणाः सन्तः भूयोभूयः स्खलन्ति; सप्तपर्णस्य गन्धश्च येषां दानवारेः गन्धोऽस्ति ते गजाश्च युद्धे परावर्तन मन्ये निवेदयन्ति॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हिन्दी—शल्य—ओहो ! मुनि ने बहुत ही दुःखद बात कह डाली।

कर्ण—अच्छा; तब तक मैं अपनी अस्त्र-कथा की परीक्षा करता हूँ। (वैसा करके) ये अस्त्र भी निःसत्त्व से लग रहे हैं।

और भी। ये दीन बने; परवश घोड़े आँख बन्द किये हुए बार-बार ठोकर खाकर स्खलित हो रहे हैं; और सप्तपर्ण नामक पुष्प के गन्ध के समान जिनके मद का गन्ध है वे हाथी भी युद्ध मे पीछे लौट जाने का मानो निवेदन सा कर रहे हैं।

शङ्ख, दुन्दुभियाँ भी नहीं बज रही हैं।

शल्यः—भोः कष्टं किं नु खल्विदम्।

कर्णः—शल्यराज ! अलमलं विषादेन।

हतोऽपि लभते स्वर्गं जित्वा तु लभते यशः।
उभे बहुमते लोके नास्ति निष्फलता रणे॥ १२॥

अन्वयः—हतः, अपि; स्वर्गम्; लभते; जित्वा, तु; यशः लभते, लोके, बहुमते; रणे; निष्फला; नास्ति॥

व्याख्याः—शोक-संतप्त शल्यमवलोक्य कर्णस्तं संतोषयति हतोऽपीत्यादिना। हतः = मृतः अपि = "युद्धे" स्वर्गम् = देवलोकम्; लभते = याति; जित्वा = विजयं प्राप्य, यशः = कीर्ति लभते = प्राप्नोति; लोके = संसारे, उभे = स्वर्गकीर्ती; बहुमते = श्लाघ्ये अतः, रणे = युद्धे; निष्फलता = फलराहित्यं "कदापि" नास्ति= न भवति अत्र अनुष्टुप् छन्दः॥ १२॥

कोशः—स्वरव्ययं स्वर्गनाकत्रिदिवत्रिदशालयाः। इत्यमरः। यशः कीर्ति समज्ञा च। इत्यमरः॥

भावार्थः—शल्यं सन्तोषयति कर्णः यत्; हस्त्यश्वानां यद्यपि स्थितिरनुकूला नास्ति तथापि न भेतव्यं यतो हि युद्धे मारितः स्याम तर्हि स्वर्गः प्राप्स्यामि, यदि च विजेष्यामि तर्हि यशः प्राप्स्यामि संसारे द्वावपि श्लाघ्यावेव, अतः युद्धं निष्फलं नैव भवति॥

हिन्दी—शल्य—ओह ! बहुत ही दुःख की बात है। ये सब क्या हो रहे हैं ?

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

कर्णः—शल्य ! अधिक विषाद करना व्यर्थ है ।

युद्धस्थल में योद्धा के मारे जाने पर वह स्वर्ग पाता है और यदि विजयी होता है तो वह यश प्राप्त करता है और संसार में स्वर्ग और यश ये दोनों अभिमत ही हैं । अत एव युद्ध में निष्फलता नही रहती ।

अपि च—

इमे हि युद्धेष्वनिवर्तिताशा
हया सुपर्णेन समानवेगाः ।
श्रीमत्सु काम्बोजकुलेषु जाता
रक्षन्तु मां यद्यपि रक्षितव्यम् ॥ १३ ॥

अक्षयोऽस्तु गोब्राह्मणानाम्; अक्षयोऽस्तु पतिव्रतानाम् । अक्षयोऽस्तु रणेष्व-पराङ्मुखानां योधपुरुषाणाम् । अक्षयोऽस्तु मम प्राप्तकालस्य । एष भोः प्रसन्नो ऽस्मि ।

अन्वयः—हि; युद्धेष्वनिवर्तिताशाः सुपर्णेन समानवेगाः, श्रीमत्सु काम्बोज-कुलेषु जाताः, इमे, हयाः, यद्यपि, रक्षितव्यम्; "तथापि" मां, रक्षन्तु ॥ १३ ॥

व्याख्या—हि = निश्चयम्; युद्धेषु = रणेषु, अनिवर्तिताशा = प्रस्फुरिता-भिलाषाः; सुपर्णेन = वैनतेयेन गरुडेनेत्यर्थः, समानवेगाः = सदृशगतयः; श्रीमत्सु= शोभासम्पन्नेषु काम्बोजकुलेषु = काम्बोजाभिधेयवंशेषु; जाताः = प्राप्तजन्मनः; इमे = मदीयाः पुरोवर्तमानाः, हयाः = अश्वाः; यद्यपि रक्षितव्यम् = युद्धे मया रक्षणीयम्; "तथापि साम्प्रतमननुकूलसमयात् मां = कर्णम् (रक्षकम्) रक्षन्तु = पान्तु ॥ अत्रोपेन्द्रेन्द्रवज्रयोः संगमनादुपजातिश्छन्दः ॥

गोब्राह्मणानाम् = गोविप्राणाम् अक्षयोऽस्तु = कल्याणमस्तु; पतिव्रतानाम् = पातिव्रत्यधर्माचारिणीनाम् स्त्रीणां अक्षयोस्तु = कल्याणं भवेत् । रणेषु = युद्धेषु; अपराङ्मुखानाम् = अनिवर्तितवदनानाम्; योध—पुरुषाणाम् = सैनिकानाम्; अक्षयोऽस्तु = कल्याणमस्तु; प्राप्तकालस्य = प्राप्तावसरस्य, मम = कर्णस्य अक्षयोऽस्तु = कल्याणमस्तु ।

समासः—निवर्तिता आशा येषान्ते निवर्तिताशाः; न निवर्तिताशाः अनि-वर्तिताशाः, (नञ् समास) ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitized by eGangotri

भावार्थः—यद्यपि इमे सफलितमनोरथाः गरुडसमानवेगवन्तः काम्बोजाः घोटकाः युद्धे मया रक्षितव्याः सन्ति तथापि अपशकुन-दर्शनादसमर्थं मामेव ते रक्षन्तु ॥ १३ ॥

हिन्दी—जिन्होंने युद्ध में कभी भी आशाभग्न नहीं किया, जो गरुड़ के समान वेग वाले हैं, शोभासम्पन्न कम्बोजकुलोत्पन्न वे घोड़े यद्यपि मेरे रक्षणीय है (मुझे उनकी रक्षा करनी चाहिए) फिर भी इस समय वे मेरी रक्षा करें ॥ १३ ॥

गौओं और ब्राह्मणों का कल्याण; पातिव्रत्यधर्मावलम्बन करने वाली स्त्रियों का कल्याण हो; युद्धस्थल मे जो कभी भी विमुख नहीं हुए हों, उन योधागण का कल्याण हो; अवसर पाये हुए मेरा भी कल्याण हो। अच्छा; तो अब मैं प्रसन्न हो गया हूँ ॥

समर—मुखमसह्यं पाण्डवानां प्रविश्य
प्रथितगुणगणाढ्यं धर्मराजं च बद्ध्वा।
ममशरवरवेगै—रर्जुनं पातयित्वा
वनमिवहतसिंहं सुप्रवेशं करोमि ॥ १४ ॥

अन्वयः—पाण्डवानाम्; असह्यम्; समरमुखम् प्रविश्य; प्रथितगुणगणाढ्यं धर्मराजं च बद्ध्वा। मम; शरवरवेगैः; अर्जुनम्; पातयित्वा; हतसिंहम् वनम्; इव; सुप्रवेशं करोमि ॥ १४ ॥

व्याख्या—पाण्डवानाम् = पाण्डुसुतानाम्; असह्यम् = दुर्धषम्; समरमुखम् = युद्धस्थलम्; प्रविश्य = अन्तर्गत्वा; प्रथितगुणगणेन = प्रसिद्ध-गुण-समूहेन आढ्यः = श्लाघ्यस्तम्; धर्मराजम् = युधिष्ठिरम्; च = तथा बद्ध्वा = निगडैर्निगृह्य। मम = कर्णस्य, शरवरवेगैः = श्रेष्ठबाणप्रहारैः; अर्जुनम् = धनञ्जयम् "अस्मद् प्रसिद्धप्रतिभटम्"; पातयित्वा = निहत्य; हतसिंहम् = मृतवनपतिम् वनम् = अरण्यम्, इव = यथा; सुप्रवेशम् = सरलतया प्रवेशार्हम् करोमि = विदधामि ॥ मालिनीनामकं छन्दोऽत्र ॥ १४ ॥

समासः—समरस्यमुखं = समरमुखम्। गुणानां गणः = गुणगणः (ष० तत्०) प्रथितश्चासौ गुण-गणः = प्रथितगुणः (कर्म०) तेन आढ्यस्तम् =

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रथितगुणगणाढ्यम् = (तृ० तत्०) शरेषु वरः = शरवराः (सप्त० तत्०) तेषां वेगैः = शरवरवेगैः (ष० तत्०)। हतः सिंहो यत्र तम् = हतसिंहम् (बहु०)।

कोशः—प्रतीते प्रथितख्यात-वित्त-विज्ञात-विश्रुताः । इत्यमरः । समूह निवहव्यूह-संदोह विसरव्रजाः—समुदायः समुदयः समवायश्चयो गणः इत्यमरः । सिंहो मृगेन्द्रः पञ्चास्यो हर्यक्षः केसरी हरिः ॥ इत्यमरः । अटव्यरण्यं विपिनं गहनं काननं वनमित्यमरः ॥

भावार्थः—पाण्डवानां दुर्धर्षं सेनाव्यूहे प्राविश्य धर्मराजं बद्ध्वा प्रमुखयोद्धारमर्जुनं मारयित्वा, एतेषां व्यूहं सरलतया प्रवेशयोग्यं यथा स्यात्तथा करोमि ॥ १४ ॥

हिन्दी—पाण्डवों के दुर्धर्ष सेनाओं के बीच प्रवेश करके; प्रसिद्धगुण समूह से श्लाघ्य धर्मराज को बाँधकर; अपने तीक्ष्ण बाणों के वेग से अर्जुन को गिराकर जिस वन का सिंह मार दिया गया हो और वह वन जैसा सरल तरीके से प्रवेश करने योग्य होता है उसी प्रकार पाण्डव व्यूहको भी बना देता हूँ ॥ १४ ॥

शल्यराज ! यावद्रथमारोहावः ।

शल्यः— बाढम् ।

(उभौ रथारोहणं नाटयतः)

कर्णः—शल्यराज ! यत्रासावर्जुनस्तत्रैव चोद्यतां रथः ।

हिन्दी—शल्यराज ! अच्छा तो अब हम लोग रथपर चढें ।

शल्य—अच्छा

(दोनों रथ पर चढने का अभिनय करते हैं)

कर्ण—शल्यराज ! जहाँ वह प्रसिद्ध अर्जुन है वहीं मेरे रथ को ले चलिए ।

(नेपथ्ये)

भोः कर्ण महत्तरं भिक्षां याचेमि [भोः कर्ण । महत्तरां भिक्षां याचे]

कर्णः [आकर्ण्य] अये वीर्यवान् शब्दः ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रीमानेष न केवलं द्विजवरो यस्मात् प्रभावो महा—
नाकर्ण्य स्वरमस्य धीरनिनदं चित्रार्पिताङ्गा इव।
उत्कर्णस्तिमिताञ्चिताक्ष-वलित-ग्रीवार्पिताग्रानना—
स्तिष्ठन्त्यश्ववशांगयष्टि सहसा यान्तो ममैते हयाः ॥१५॥

अन्वयः—श्रीमानेति-। एष, न, केवलम; द्विजवरः; श्रीमान्, यस्मात्; महान्, प्रभावः; अस्य धीर-निनदम्; स्वरम्; आकर्ण्य; मम, एते, उत्कर्ण स्तिमिताञ्चिताक्षवलित-ग्रीवार्पिताग्राननाः; अश्ववशांगयष्टि; यान्त; हयाः, सहसा, चित्रार्पिताः, इव; तिष्ठन्ति ॥ १५ ॥

व्याख्याः—श्रीमानेति। एष = भिक्षुकः; न=नहि; केवलम् = मात्रम् द्विजवरः = विप्र (अपितु) श्रीमान् = कान्ति—सम्पन्नः; यस्मात् = विप्र वाक्यात्; महान् = श्रेष्ठः, प्रभावः = प्रतापः। अस्य = ब्राह्मणस्य, धीर निनदम् = गम्भीर—घोषम्; स्वरम = वचः; आकर्ण्य = श्रुत्वा; मम = कर्णस्य, एते = रथवाहकाः; उत्कर्णाः = उत्थापितश्रोत्राः "ते च" स्तिमितानि = निमेषरहितानि; अञ्चितानि = हृद्यानि; अक्षीणि = नयनानि; येषां ते च उत्कर्णितस्तिमिताञ्चिताक्षाः। वलितायाम् = परिवृतायाम्; ग्रीवायाम् = शिरोधिषि, अर्पितानि = दत्तानि; अग्राननानि = वदनाग्रभागाः येस्ते वलितग्रीवार्पिताग्राननाः। उत्कर्णितस्तिमिताञ्चिताक्षाश्च वलितग्रीवार्पिताग्रननाश्चेति = उत्कर्णितस्तिमिताञ्चिताक्षवलितग्रीवार्पिताग्राननाः। न स्ववशा = अस्ववशा = पराधीना अंगयष्टिः = अवयवो यस्मिन् कर्मणि; यान्तः = गच्छन्तः, हयाः = अश्वाः; सहसा = अकस्मात्; चित्रार्पिताः = चित्रोल्लिखिताः; इव = यथा, तिष्ठन्ति = अवतिष्ठन्ते ॥ अत्रशार्दूलविक्रिडितं छन्दः ॥ १५ ॥

समासः—धीरो निनदो यस्य सः धीरनिनदस्तम् धीरनिनदम् (बहुव्रीहिः) चित्रे अर्पितानिः चित्रार्पितानि (स० तत्) चित्रार्पितानि अङ्गानि येषां ते चित्रार्पिताङ्गाः (बहुव्रीहिः)। उद्गताः कर्णाः येषां "ते" उत्कर्णाः, स्तिमितानि अञ्चितानि अक्षीणि येषान्ते स्तिमिताञ्चिताक्षाः, वलितायां ग्रीवायामर्पितानि अग्राननानि यैस्ते वलितग्रीवार्पिताग्राननाः, 'उत्कर्णाश्च स्तिमितञ्चिताक्षाश्च वलितग्रीवार्पिताग्राननाश्चेतिः उत्कीर्णस्तिमिताञ्चिताक्षवलितग्रीवार्पिताग्राननाः

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(कर्मधा०)। स्वस्य वशः = स्ववशः; न स्ववशा अस्ववशा (नञ् तत्) अस्ववशा अङ्गयष्टिर्यत्र तत् 'अस्ववशाङ्गयष्टि'।

कोशः—"सप्रतापः प्रभावश्च यत्तेजः कोषदण्डजम्। इत्यमरः। शब्दे निनाद निनद ध्वानध्वानखाः स्वनाः। इत्यमरः। आर्द्रं साद्रं क्लिन्नं तिमितं स्तिमितम् समुन्नतमुन्नतञ्च। अथ ग्रीवायां शिरोधिः कन्धरेत्यपि इत्यमरः। वक्त्रास्य वदन तुण्डमाननं लपनं मुखम् इत्यमरः।

भावार्थः—एष खलु याचकः नास्ति विप्रमात्रम्; अपितु कश्चन ऐश्वर्य सम्पन्न एवास्ति; यतोहि यस्य गम्भीरां वाचं श्रुत्वा तत्प्रभावात् एते गच्छन्तो मदीयाः अश्वाः स्वे स्वे कर्णौ उत्थाय स्वकीयान् कन्धान् वक्रीकृत्य निर्निमेषदृष्ट्या तमेवाभिमुखं पश्यन्तोऽवतिष्ठन्ते, प्रतिभान्ति चेमे यथा पराधीना चित्रलिखिता इव ॥ १५ ॥

हिन्दी— (नेपथ्य में)

ऐ कर्ण ! मैं बहुत बड़ी भिक्षा माँग रहा हूँ।

कर्ण—(सुनकर) अरे ! बड़ा तेजस्वी शब्द है।

यह भिक्षा माँगने वाला कोई सामान्य ब्राह्मण मात्र नहीं है; अपि तु ऐश्वर्यवान् भी है। क्योंकि इसकी गम्भीर वाणी को सुनकर ये मेरे चलते हुए घोड़े, कान खड़ेकर निर्निमेष दृष्टि से अपनी गर्दन टेढ़ी कर उसी की ओर देखते हुए खड़े हो गये हैं; इस तरह ये परवश चित्र में लिखित घोड़े की तरह लग रहे हैं।

आहूयतां स विप्रः। न न। अहमेवाह्वयामि। भगवन्नित इतः।

(ततः प्रविशति ब्राह्मण-रूपेण शक्रः)

शक्रः—भो मेघाः सूर्येणैव निवर्त्य गच्छन्तु भवन्तः। (कर्णमुपगम्य) भो कर्ण ! महत्तरं भिक्खं याचेमि [भोः कर्ण ! महत्तरां भिक्षां याचे]

हिन्दी—उस ब्राह्मण को बुलाओ। नहीं नहीं। मैं ही बुलाता हूँ। भगवन् ! इधर आएँ, इधर।

(उसके बाद ब्राह्मण वेश में इन्द्र प्रवेश करता हैं)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

शक्र—हे मेघ गण ! तुम लोग भी सूर्य के साथ ही चले जाओ। (कर्ण के समीप जाकर) हे कर्ण ! मैं बहुत बड़ी भिक्षा माँग रहा हूँ।

कर्णः—दृढं प्रीतोऽस्मि भगवन्।

यातः कृतार्थगणनामहमद्य लोके
राजेन्द्र मौलिमणिरञ्जितपातपद्मः।
विप्रेन्द्रपादरजसा तु पवित्रमौलिः
कर्णो भवन्तमहमेष नमस्करोमि ॥ १६ ॥

अन्वयः—एष; अहम्; राजेन्द्रमौलिमणिरञ्जितपादपद्मः, अद्य, लोके, कृतार्थ—गणनाम्, यातः, तु विप्रेन्द्रपादरजसा; पवित्रमौलिः, कर्णः भवन्तम् नमस्करोमि ॥ १६ ॥

व्याख्याः—एष = रणे उपस्थितः, अहम् = राधेयः; राजेन्द्रमौलिमणिरञ्जितपादपद्मः—राजेन्द्राणाम् = नृपश्रेष्ठानाम्; मौलिषु: मस्तकेषु: "रञ्जिताः" मणयः = हीरकादयः, तैः रञ्जितम् = रक्तीकृतम् पादपद्म = चरणकमलम् यस्य सः; अद्य = अस्मिन् दिवसे; लोके = संसारे; कृतार्थ—गणनाम् = सम्पादित प्रयोजनसङ्ख्याम्; यातः = प्राप्तः; तु = किन्तु; विप्रेन्द्रस्य = ब्राह्मणश्रेष्ठस्य भवतः पादरजसा = चरणधूलिना, पवित्रमौलिः = पूतमस्तकः; कर्णः = एतन्नामकः, भवन्तम् = याचकत्वेनोपस्थितं विप्रम्; नमस्करोमि = प्रणमामि ॥ वसन्ततिलका नामकम् = छन्दः।

समासः—कृताः अर्थाः यैस्ते कृतार्थाः (बहु०) तेषां गणनाम् = कृतार्थगणनाम् (ष० त०); राज्ञामिन्द्रः राजेन्द्रः (ष० तत्०) तेषां मौलि = राजेन्द्रमौलिः (ष० तत्०) तेषु ये मणयः = राजेन्द्रमौलिमणयः (बहु०) तैः रञ्जितं पादपद्म यस्य स—राजेन्द्रमौलिमणिरञ्जितपादपद्मः (बहु० ब्री०)। विप्रेषु इन्द्रः विप्रेन्द्रः (स० तत्०); तस्य पादः विप्रेन्द्रपादः (ष० तत्) तस्य रजः विप्रेन्द्रपादरजः तेन विप्रेन्द्रपादरजसा (ष० तत्०)

कोशः—लोकस्तु भुवने जने; इत्यमरः। चूडा किरीटं केशाश्च संयता मौलयस्त्रयः; इत्यमरः। रेणुद्वयोः स्त्रियांधूलिः पांशुर्ना न द्वयो रजः; इत्यमरः। पवित्रः प्रयतः पूतः; इत्यमरः ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

भावार्थः—"सर्वेषामभ्यागती गुरुः" इति वाक्यानुसारेण आतिथेयः कर्णः विप्रं नमस्कुर्वन् कृतकृत्यमात्मानं मन्यते इति व्यनक्ति "यस्य मम कर्णस्य पादपद्म नृपश्रेष्ठानां मस्तकस्थितैः मणिभिः रज्यते सोऽहं भवत्पादधूलिपूत–मस्तकः भवन्तं प्रणमामि ॥ १६ ॥

हिन्दी—मैं अत्यन्त खुश हूँ भगवान् । जिसके चरणों को श्रेष्ठ राजागण अपने मस्तकमणि से सुशोभित करते रहते हैं; वह कर्ण आपकी चरणधूलि से पवित्र मस्तक वाला अपने को कृत–कृत्य मानता हुआ आपको प्रणाम करता है ।

शक्रः—(आत्मगतम्) किं नु खलु मया वक्तव्यं यदि दीर्घायुर्भवेति वक्ष्ये दीर्घायुर्भ वक्ष्यति । यदि न वक्ष्ये मूढ इति मां पराभवति । तस्मादुभयं परिहृत्य किं नु खलु वक्ष्यामि । भवतु दृष्टम् । (प्रकाशम्) (भो कण्ण ! सुय्ये विअ चन्दे विअ, हिमवन्ते विअ; सागले विअ, चिट्ठदु दे जसो) । भो कर्ण । सूर्य इव; चन्द्र इव; हिमवानिव, सागर इव तिष्ठतु ते यशः ।

हिन्दी—(अपने मन में ही) इस समय मुझे क्या कहना चाहिए; यदि "दीर्घायु" हो यह कहता हूँ तो दीर्घायु हो जायेगा । यदि कोई आशीर्वाद न दूं तो मुझे मूर्ख समझेगा । इसलिए इन दानों को छोड़कर क्या कहूँ ? अच्छा ! सोच लिया (स्पष्ट रूप में) हे कर्ण सूय के समान; चन्द्रमा के समान; हिमालय के समान और समुद्र के समान आपका यश स्थिर रहे ।

कर्णः—भगवन् किं न वक्तव्यं दीर्घायुर्भवेति । अथवा एतदेव शोभनम् ! कुतः—

धर्मो हि यत्नैः पुरुषेण साध्यो भुजङ्गजिह्वाचपलानृपश्रियः ।
तस्मात्प्रजापालनमात्रबुद्ध्या हतेषु देहेषु गुणा धरन्ते ॥ १७ ॥

अन्वयः—धर्मेति । धर्मः, पुरुषेण, यत्नैः, साध्यः । हिः नृपश्रियः, भुजङ्गजिह्वाचपलाः; तस्मात्; प्रजापालनमात्रबुद्ध्या; हतेषु, देहेषु, गुणाः; धरन्ते ।

व्याख्याः—धर्मः = शास्त्रविहितं कर्म, पुरुषेण = मानवेन; यत्नैः = प्रयासैः; साध्यः = विधातव्यः । हि = यतः, नृपश्रियः = राजविभवाः, भुजङ्गानां = भुजगानाम्; जिह्वा इव = रसना इव चपला = चञ्चला "अस्थिरा"

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इति यावत्, तस्मात् = राजलक्ष्म्या अस्थिरत्वात्; प्रजानाम् = जनानाम् पालनम् = रक्षणम्; मात्रम् = स्वबुद्ध्या = विचारेण "राज्यं करणीयं न तु विलास विचारेण" इति शेषः; "यतो हि" हतेषु = मृतेषु; देहेषु = शरीरेषु गुणाः = यशांसि "एव" धरन्ते = प्राणयन्ति। अत्रोपजातिः वृत्तिः ॥ १७ ॥

समासः–भुजङ्गानां जिह्वा = भुजङ्गजिह्वा (ष० तत्०) नृपानां श्रियः = नृपश्रियः (ष० तत्०) भुजङ्गजिह्वावच्चपलाः नृपश्रियः = भुजङ्गाजिह्वा-चपलानृपश्रियः (मध्यमपदलोपी) प्रजानां पालनं = प्रजापालनं (ष० तत्०) तन्मात्राबुद्ध्या प्रजापालनमात्रबुद्ध्या।

कोशः–स्याद्धर्ममस्त्रियां पुण्यं श्रेयसो सुकृतं वृषः। इत्यमरः। सर्पः पृदाकुर्भुजगो भुजङ्गोऽहिर्भुजङ्गमः॥ इत्यमरः। रसज्ञा रसना जिह्वा। प्रजा स्यात् सन्ततौ जने। इत्यमरः।

भावार्थः—पुरुषेण धर्मः बहुप्रयासैः कर्तव्यः, यतोहि राजैश्वर्यादिकं भुजङ्गरसनावच्चञ्चला भवति। अतः प्रजापालनमात्रविचारेण राज्यङ्कर्तव्यं न भोग-विलासादि-दृष्ट्या यतो हि स्वर्गते मनुष्ये अस्मिन् संसारे तत्कीर्तिरेव तं जीवयति ॥ १७ ॥

हिन्दी—

कर्ण—भगवन्! आपने 'दीर्घायु हो" ऐसा आशीर्वाद क्यों नहीं दिया? अथवा आपने जो कहा वही अच्छा।

क्योंकि—

मनुष्य को प्रयास पूर्वक धर्म का ही पालन करना चाहिए। राज-लक्ष्मी तो सर्प की जीभ की तरह चञ्चल है। अतः प्रजापालन करने की बुद्धि मात्र से (विचार से) राज्य करना चाहिए, क्योंकि मनुष्य के मर जाने पर (इस संसार में) उसका यश (धर्म) ही उसे जीवित रखता है।

भगवन्! किमिच्छसि किमहं ददामि।

शक्र—महत्तरं भिक्खं याचेमि। [महत्तरां भिक्षां याचे।]

कर्ण—महत्तरां भिक्षां भवते प्रदास्ये। श्रूयन्तां-मद्विभवाः।

हिन्दी—भगवन्! आप क्या चाहते हैं। आपको मैं क्या दूँ?

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शक्र—मैं बहुत बड़ी भिक्षा माँग रहा हूँ।
कर्ण—मैं बहुत बड़ी भिक्षा दूँगा (मेरा वैभव सुनिए।)

गुणवदमृत-कल्पक्षीरधाराभिवर्षि
द्विजवर ! रुचि तं ते तृप्तवत्सानुयात्रम्।
तरुणमधिक-मर्थिप्रार्थनीयं पवित्रं
विहितकनक-शृङ्गं गोसहस्रं ददामि ॥ १८ ॥

अन्वयः—हे द्विजवर ! गुणवदमृतकल्पक्षीरधाराभिवर्षि; तृप्तवत्सानुयात्रम्; तरुणम्; अधिकम्, अर्थिप्रार्थनीयम्; पवित्रम् विहितकनक-शृगम्-गोसहस्रं, रुचितं, ते तुभ्यम्, ददामि ॥ १८ ॥

व्याख्याः—हे द्विजवर ! = हे ब्राह्मण-श्रेष्ठ !; गुणवताम् = गुणयुक्ताम्; अमृतकल्पानाम् = सुधोपमेयानाम्; क्षीराणाम् = दुग्धानाम् धाराभिवर्षणम् = अधिकप्रस्रवणं शीलमस्येति तथाभूतम्; तृप्तैः = सन्तुष्टैः, वत्सैः = अर्भकैः, अनुयात्रम् = अनुगच्छन्नम् तरुणम् = युवानम्; अधिक = बहुलम्; अर्थिभिः = याचकैः; प्रार्थनीयम् = याचनीयम्; पवित्रम् = पूतम्; विहित-कनकशृंगम् = रचित-स्वर्ण—विषाणम्; गवां = धेनूनाम् सहस्रम् = दशशत—संख्याकम्; रुचितम् = मनोहारि ते = तुभ्यम्, ददामि = प्रयच्छामि ॥ १८ ॥

समासः—गुणमस्यास्तीति = गुणवान् तेषाम्; अमृतकल्पानाम् क्षीराणाम् (या) धारा (तस्याः) अभिवर्षणं शीलमस्यति गणवदमृतकल्पक्षीरधाराभिवर्षि; तृप्तश्चासौ वत्साश्चेति = तृप्तवत्साः (कर्मधारय) तैरनुयात्रम् = तृप्तवत्सानुयात्रम्, अर्थिभिः प्रार्थनीयम् अर्थिप्रार्थनीयम् (तृ० तत्०) कनकस्य शृङ्गम् = कनकशृङ्गम् (ष० तत्०) विहितं च तत् कनकशृङ्गम् विहितकनकशृङ्गम् (कर्मधारय)। गवां सहस्रम् = गोसहस्रम् (ष० तत्०)।

कोशः—हृष्टे मतस्तृप्तः प्रह्व प्रमुदितः प्रीतः। इत्यमरः। वयस्यतरुणो युवा। इत्यमरः। वनीपको याचनको मार्गणो याचकार्थिनो। इत्यमरः। स्वर्णं कनकं हेम हाटकम्। इत्यमरः।

भावार्थः—हे विप्रवर ! यदि भवते रोचते तर्हि गुणवतां सुधातुल्यानां क्षीराणां या अभिवर्षणं कुर्वते, संतुष्टाः वत्सतराः यासामनुगच्छन्ति; तरुण्यः;

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विशेषाः याचकैश्च याः प्रार्थनीयाः सन्ति, पवित्राणि सन्ति, यासां शृंगाणि स्वर्ण खचितानि सन्ति तथा भूताः दशशत-संख्याकाः गाः तुभ्यं ददामि ॥ १८ ॥

हिन्दी—हे ब्राह्मण श्रेष्ठ यदि आप चाहें तो; अमृत तुल्यदुग्ध देने वाली; संतुष्ट बछड़े जिनके पीछे चलते हों, तरुणियाँ हैं, अधिक हैं; जो याचकों द्वारा माँगने योग्य हैं, जिनकी सींगे सोने से मढ़ दी गयी हैं ऐसी पवित्र हजारों गायें मैं आपको दूँ ॥ १८ ॥

शक्रः—गो सहस्सं ति। मुहुत्तअं खिर पिबामि। णेच्छामि कण्ण! णेच्छामि। (गोसहस्रमिति। मुहुर्त्तकं क्षीरं पिबामि। नेच्छामि कर्ण! नेच्छामि।)

कर्णः—किं नेच्छति भवान्। इदमपि श्रूयताम्।

रवितुरग-समानं साधनं राजलक्ष्म्याः
सकलनृपतिमान्यं मान्यकाम्बोजजातम्।
सुगुणमनिलवेगं युद्धदृष्टापदानं
सपदि बहुसहस्रं वाजिनां तेददामि ॥ १९ ॥

अन्वयः—रवितुरगेति। रवितुरगसामानम्; राजलक्ष्म्याः; साधनम्, सकल-नृपतिमान्यम्, मान्यकाम्बोज-जातम् सुगुणम्; अनिलवेगम्; युद्धदृष्टापदानम्; बहुसहस्रम्; ते सपदि, ददामि ॥ १९ ॥

व्याख्याः—खेः = दिनकरस्य; तुरगाः = घोटकाः; तत्समानम् = तत्तुल्यम्; राजलक्ष्म्याः = नृपश्रियः, साधनम् = हेतुभूतम्; सकलानाम् = सम्पूर्णानाम्; नृपतीनाम् = नृपाणाम्; मान्यम् आदरणीयम्; मान्यानाम् = आदरणीयानाम्; काम्बोजानाम् = कम्बोजदेशोद्भवानाम्; "कुले" जातम् = उत्पन्नम्; सुगुणम् = सुन्दरगुणयुक्तम्; अनिलवेगम् = वायुजवम्; युद्धे = रणे दृष्टम् = प्रदर्शितम्; अपदानम् = अवदानम् "वीरतापूर्णकार्यमित्यर्थः" येन तथाभूतम्; वाजिनाम् = अश्वानाम्; बहुसहस्रम = अपारमित दशशतसंख्याकम्; ते = तुभ्यम्, सपदि – सद्यः ददामि = प्रयच्छामि।

समासः—रवेः तुरगः=रवि तुरगः (ष० तत्०) तत् समानम् रवितुरग-समानम्। सकलानां नृपतीनां मान्यम् सकलनृपतिमान्यम् (बहु०)। मान्या-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इचते काम्बोजाः मान्यकाम्बोजाः (कर्मधारय०) तेषु जातः=मान्यकाम्बोजजातः (स० तत्०)। युद्धेदृष्टानि अपदानि येन तत् युद्धदृष्टापदानम् (बहु०)।

कोशः—सूरसूर्यार्यमादित्य द्वादशात्म दिवाकराः इत्यमरः श्वसनः स्पर्शनो वायुर्मातरिश्वा सदागतिः। पृषदश्वो गन्धवहो गन्धवाहानिलाशुगाः। इत्यमरः।

भावार्थः—यदि तुभ्यं गोसहस्रं न रोचते तर्हि चेदिच्छसि, दिनकराश्व-समानवेगतुल्यान्, नृपश्रियः हेतुभूतान्, निखिलनृपति-प्रशस्यान्, सम्मान्यकम्बोज-देशोत्पन्न-कुलोत्पन्नान्; सद्गुणान्वितान्, वायुसदृशवेगवतः; युद्धे प्रदर्शितपराक्रमान् असंख्यसहस्रान् घोटकान् तुभ्यं ददामि ॥ १९ ॥

हिन्दी—

शक्र—क्या ? हजार गौएं। थोड़े समय तक दूध पीऊँगा ! मुझे यह नहीं चाहिए, कर्ण ! मुझे नहीं चाहिए।

कर्ण—क्या आप गाय नहीं चाहते ? तो यह भी सुनिए। सूर्य के घोड़ों की तरह; राजलक्ष्मी के उपायभूत; सम्पूर्ण राजाओं से प्रशंसनीय कम्बोज देश से होनेवाली काबुली जाति में उत्पन्न, हवा की तरह वेग वाले; जिन्होंने अपना पराक्रम युद्धभूमि में दिखा दिया है, ऐसे हजारों घोड़े मैं आपको तुरत दे रहा हूं ॥ १७ ॥

शक्रः—अस्सत्ति। मुहुत्तअं आलुहामि। णेच्छामि कण्ण। णेच्छामि। [अश्व इति। मुहूर्तकमारोहामि। नेच्छामि कर्ण। नेच्छामि।]

कर्णः—किं नेच्छति भगवन्। अन्यदपि श्रूयताम्।

मदसरितकपोलं षट्पदैः सेव्यमानं
गिरिवर-निचयाभं मेघ-गम्भीरघोषम्।
सितनरवदशनानां वारणानामनेकं
रिपुसमर-विमर्दं वृन्दमेतद्ददामि ॥ २० ॥

अन्वय—मदसरित-कपोलम्, षट्पदैः सेव्यमानम्; गिरिवर-निचयाभम्; मेघगम्भीरघोषम्; रिपुसमर-विमर्दम्; एतत् वारणानामनेकम्; वृन्दम्; ददामि ॥ २० ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

व्याख्या:—मदैः = दानवारिभिः, सरिताः = आप्लाविताः; कपोलाः = गण्डस्थलानि येषां तत्; षट्पदैः = भ्रमरैः, सेव्यानम् = युक्तम्; गिरिवराणाम् = पर्वतश्रेष्ठानाम् निचयः = समूहः; तस्य आभा इव आभा = कान्तिर्यस्य तथा भूतम्; मेघानां = जलदानाम्; यः गम्भीरः = ओज-सम्पन्नः, घोषः = शब्दः तेन युक्तम्; सिताः = श्वेताः; नखा = करजाः; दशनानि = दन्ताः येषां तथाभूतानाम्; रिपुसमर-विमर्दम् = शत्रुरणध्वंसकम्, वारणानाम् = हस्तीनाम्; अनेकम् = अधिकम्; वृन्दम् = समूहम् ददामि = प्रयच्छामि । मालनी नामकमत्र छन्दः ॥२०॥

समासः—मदैः सरितौ कपोलौ यस्य तत् मदसरित् कपोलम् (बहु०) गिरिषु वराः = गिरिवराः (स० तत्०) तेषां निचयः = गिरिवरनिचयः (ष० तत०) तस्य आभा इव आभा यस्य तत् गिरिवरनिचयाभम् । गम्भीरश्चासौ घोषः गम्भीरघोषः (कर्मधारय) मेघस्य गम्भीर-घोषः = मेघ-गम्भीरघोषः (ष० तत्०) तद्वत् गम्भीरघोषो यस्य तत् मेघगम्भीर नखा इव दशनानि चेति = (द्वन्द्व) नखदशनम्; सितानि नखदशनानि येषां तथाभूतानामिति = सितनखदशनानाम् (बहुव्रीहिः) ।

कोशः—मदो दानम् । अथ नदो सरित् । इत्यमरः । मधुव्रतो मधुकरो मधुलिन्मधुपालिनः । द्विरेफ पुष्पलिड्भृङ्गषट्पदभ्रमरालयः । इत्यमरः । अद्रि गोत्र गिरि ग्रावाल शैल-शिलोच्चयाः ॥ इत्यमरः ।

भावार्थः—यदि भवते अश्वं न रोचते तर्हि मद वारिभिः सिक्तकपोलान्, भ्रमररूपेतान्; मेघानां गम्भीरघोषेव गम्भीरशब्दशालिनः; श्वेत नखदशन-शालिनः, अनेक, शत्रुसमर विनाशकन् हस्तीन् तुभ्यं ददामि ॥ २० ॥

हिन्दी—

शक्र—क्या घोड़े ? मुहूर्तभर चढ़ूँगा । नहीं मुझे नहीं चाहिये । नहीं चाहिए ।

कर्ण—क्या नहीं चाहते भगवन् ! अच्छा और भी सुनें । मदजल से जिनके गण्डस्थल भींग गये हैं, जो भ्रमरों से सुशोभित हो रहे हैं, जो ऊँचे पर्वतों के समूह के समान शोभा वाले हैं, मेघ की तरह ओजस्वी शब्द वाले हैं; शत्रुओं के रण को नष्ट करने वाले हैं; उजले नख और दाँत वाले हैं उन हाथियोंके समूह को आपको देता हूँ ॥ २० ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शक्रः—गअत्ति । मुहुत्तअं आलुहामि । णेच्छामि कण्ण ! णेच्छामि [गज इति । मुहूर्त्तकमारोहामि । नेच्छामि । कर्ण ! नेच्छामि ।

कर्णः—किं नेच्छति भवान् । अन्यदपि श्रूयताम् । अपर्याप्तं कनकं ददामि ।

शक्रः—गह्लिअ गच्छामि । (किञ्चिद्गत्वा) णेच्छामि कण्ण । णेच्छामि । (गृहीत्वा गच्छामि । (किञ्चिद् गत्वा) नेच्छामि कर्ण ! नेच्छामि ।)

कर्णः—तेन हि जित्वा पृथिवीं ददामि ।

शक्रः—पुहुवीए किं करिस्सम् । [पृथिव्याः किं करिष्यामि]

कर्णः—तेन ह्यग्निष्टोमफलं ददामि ।

शक्रः—अग्निटोम फलेण किं कज्जम् [अग्निष्टोम-फलेन किं कार्यम् ।

कर्णः—तेन हि मच्छिरो ददामि ।

शक्रः:—अविहा अविहा [अविहा अविहा]

हिन्दीः—क्या हाथी ? कुछ समय तक चढूँगा । मैं नहीं चाहता कर्ण ! नहीं चाहता ।

कर्णः—क्या आप इसे भी नहीं चाहते ! और भी सुनिए । अपरिमित सोना दे दूँ ।

शक्रः—लेकर चला जाऊँगा (थोड़ी दूर जाकर) मुझे नहीं चाहिये कर्ण ! नहीं चाहिये ।

कर्णः—तब जीतकर पृथिवी दे दूं आपको ।

शक्रः—पृथिवी लेकर क्या करूँगा ?

कर्णः—तब "अग्निष्टोम" नामक यज्ञ का फल आपको दूँगा ।

शक्रः—अग्निष्टोम का फल लेकर क्या करूँगा ।

कर्णः—तो अपना मस्तक आपको दूंगा ।

शक्रः—भगवान् रक्षा करे ! रक्षा करे ।

कर्णः—न भेतव्यं न भेतव्यम् । प्रसीदतु भवान् । अन्यदपि श्रूयताम् ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अङ्गैः सहैव जनितं मम देहरक्षा
देवासुरैरपि न भेद्यमिदं सहस्रैः ।
देयं तथापि कवचं सह कुण्डलाभ्यां
प्रीत्या मया भगवते रुचितं यदि स्यात् ॥ २१ ॥

अन्वयः—अङ्गैः; सहैव; जनितम्; सहस्रैः; अपि, देवासुरैः न भेद्यम्; इदं मम देहरक्षा; कुण्डलाभ्यां सह कवचम्, तथापि, यदि, रुचितं स्यात्; भगवते, मया, प्रीत्या देयम् ॥ २१ ॥

व्याख्याः—अङ्गैः = अवयवैः, सहैव = साकमेव, जनितम्; = उत्पन्नम्; सहस्रैः = असंख्यैः; "अपि" न भेद्यम् = अच्छिद्यम्; इदम् = देहसंसक्तम्, मम= मामकीनम्; देहरक्षा (भूतम्) = शरीर-संरक्षकी-भूतम्; कुण्डलाभ्याम् = कर्णमण्डनाभ्याम् सह = सार्धम् कवचम् = वर्म; तथापि = अथापि (भवद्भिर्न-याच्यमस्मद्देहरक्षाभूतत्वात् तथापीति भावः) यदि = चेत् रुचितम् = इच्छितम् स्यात् = भवेत् (तर्हि) भगवते = भवते; मया = कर्णेन, प्रीत्या = प्रसन्नतया, देयम् = दातुं योग्यमस्ति । अत्र वसन्ततिलका वृत्तिः ॥ २११ ॥

समासः—देहस्य रक्षा = देहरक्षा (ष० तत्०) देवाश्च असुराश्चेति = देवासुराः (द्वन्द्व) तैः देवासुरैः ॥

कोशः—अङ्ग प्रतीको ऽवयवो ऽपघनः इत्यमरः । सार्धं तु साकं मत्रा समं सह । इत्यमरः । अथ तनुत्रं वर्म दंशनम् । उच्छदः कङ्कटको जगरः कवचो ऽस्त्रियाम् इत्यमरः ।

भावार्थः—यदि भवद्भ्यो मया प्रदत्तमेतानि वस्तूनि न रोचन्ते तर्हि, मम शरीरेण साकमेवोत्पन्नं देवराक्षसैरपि न खण्डनीयं कुण्डलाभ्यां सहितं कवचं यदि भवद्भ्यो रोचते, तर्हि तमपि (यद्यपि तेन मम देहरक्षा भवति) अस्मद् देह-रक्षाभूतं सप्रसन्नोऽहं तुभ्यं ददामि ॥ २१ ॥

हिन्दी—डरें न । डरें न । आप प्रसन्न हो । और भी सुनें ।

मेरे अङ्गों के साथ ही उत्पन्न; हजारों देवदानवों से भी न भेदन करने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

योग्य, मेरे शरीर के रक्षक भूत यह कुण्डलों के साथ कवच है; फिर भी यदि आप इसे चाहें तो मैं खुशी से आपको दे दूँ ॥ २१ ॥

शक्रः—(सहर्षम्) देदु; देदु (ददातु, ददातु)

कर्णः—(आत्मगतम्) एष एवास्य कामः। किं नु खल्वनेककपट-बुद्धेः कृष्णस्योपायः । सोऽपि भवतु । धिगयुक्तम् नुशोचितुम् । नास्ति संशयः। (प्रकाशम्) गृह्यताम् ।

शल्यः—अङ्गराज ! न दातव्यं न दातव्यम् ।

हिन्दी—शक्र—(हर्ष के साथ) दीजिए । दीजिए ।

कर्णः—(मन में ही) यही इसकी इच्छा थी । अवश्य ही अनेक कपट व्यवहार में जिसकी बुद्धि हमेशा लगी रहती है उस कृष्ण का ही उपाय है। अच्छा वह भी हो । अनुचित सोचना बेकार है (धिक्कार) । कोई शंका नहीं । (स्पष्ट रूप में) लीजिए ।

शल्यः—अङ्गराज ! नहीं देना चाहिए । नहीं देना चाहिए ।

कर्णः—शल्यराज ! अलमलं वारयितुम् । पश्य

शिक्षा क्षयं गच्छति कालपर्ययात्
सुबद्धमूला निपतन्ति पादपाः ।
जलं जलस्थानगतं च शुष्यति
हुतं च दत्तं च तथैव तिष्ठति ॥ २२ ॥

तस्माद् गृह्यताम् (निकृत्य ददाति)

अन्वयः—कालपर्ययात्; शिक्षा; गच्छति, सुबद्धमूलाः, पादपाःनिपतन्ति । जलस्थानगतं च जलं शुष्यति; हुतं च, दत्तं च तथैव; तिष्ठति ॥ २२ ॥

व्याख्याः—कालपर्ययात् = समयपरिवर्तनात्; शिक्षा = विद्या क्षयं = विस्मृतिं गच्छति = याति; सुबद्धमूलाः = सुदृढ़-बुन्ना; पादपाः = वृक्षाः, निपतन्ति = धराशायिताः भवन्ति, जलस्थान-गतम् = तडागप्राप्तम्; च = तथा; जलम् = उदकम्, शुष्यति = शुष्कतां प्राप्नोति; (परन्तु) हुतञ्च = वैदिकमन्त्रेण

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यज्ञेषु हवन-कुण्डेषु प्रक्षिप्तम्; दत्तञ्च = सुपात्रेभ्यो प्रतिपादितम्; तथैव = यथा स्थितमेव तिष्ठति = सुरक्षितं भवति ॥ २२ ॥

समासः—कालस्य पर्ययः—कालपर्ययः (ष० तत्०) तस्मात् । सुष्ठु बद्धानि मूलानि येषान्ते सुबद्धमूला (बहुव्रीहि०) । जलस्य स्थानम्=जलस्थानम् (ष० तत्०) तस्मिन् गतम् = जलस्थानगतम् (सप्त० तत०)

कोशः—कालो दिष्टोऽप्यनेहापि समय इत्यमरः । वृक्षोमहीरुहः शाखी विटपी पादपस्तरुः इत्यमरः । आपःस्त्री भूम्निवार्वारि सलिलं कमलं जलम् । इत्यमरः ।

भावार्थः—सांसारिकानि सर्वाण्यपि वस्तूनि क्षयशीलानीति व्यनक्ति कर्णे । यत् समय-परिवर्तनादभ्यस्ताऽपि विद्या विस्मृता भवति, सुदृढमूला अपि वृक्षाः प्राचीनेषु स्थलेषु पतन्ति, तडागस्था आपोऽपि शुष्यन्ति परन्तु वैदिक-मन्त्रेण याज्ञिक हवनकुण्डेषु प्रक्षिप्तं सत्पात्रेभ्यो दत्तं च वस्तु यथाप्रदत्तमेव तिष्ठति ॥२२॥

हिन्दी—शल्यराज ! मत रोकिए ! देखिए । समय परिवर्तन होनेपर अभ्यास की गई विद्या भी विस्मृत हो जाती है, मजबूत जड़वाले (पुराने) वृक्ष भी धराशायी हो जाते हैं, तालाब का पानी भी (गर्मीमें) सूख जाता है, किन्तु हवनमें आहुत किया हुआ और अच्छे पात्र को दिया गया वस्तु उसी तरह सुरक्षित रहता है ॥२२॥

इसलिए ग्रहण कीजिए । (काटकर देता है)

शक्रः—(गृहीत्वा आत्मगतम् ।) हन्त गृहीते एते । पूर्वमेवार्जुनविजयार्थं सर्वदेवैर्यत् समर्थितं तदिदानीं मयानुष्ठितम् । तस्मादहमप्यैरावतमारुह्यार्जुन-कर्णयोर्द्वन्द्व-युद्धं पश्यामि । (निष्क्रान्तः)

शल्यः—भो अङ्गराज ! वञ्चितः खलु भवान् ।

कर्णः—केन ?

शल्यः—शक्रेण ।

हिन्दी—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शक्रः—(लेकर मनही मन) ओह ये ले लिये गये। पहले ही अर्जुन की विजय के लिये देवताओंने जिसका समर्थन किया था, इस समय उस कार्य को मैंने कर डाला इसलिए ऐरावत पर चढ़कर मैं भी अर्जुन और कर्ण का मल्ल युद्ध देखूंगा। (निकल जाता है।)

शल्य—हे अंगराज ! आपको ठग लिया।

कर्ण—किसने ?

शल्य—इन्द्र ने।

शक्रः—न खलु। शक्रः खलु मया वञ्चितः। कुतः

अनेक – यज्ञाहुति – तर्पितो द्विजैः
किरीटवान् दानवसंघमर्दनः।
सुरद्विपास्फालन — कर्कशाङ्गुलि-
र्मया कृतार्थः खलु पाकशासनः ॥ २३ ॥

अन्वयः—द्विजैः, अनेक-यज्ञाहुति-तर्पितः, किरीटवान्; दानवसंघमर्दनः; सुरद्विपास्फालन—कर्कशाङ्गुलिः पाकशासनः खलु मया कृतार्थः ॥ २३ ॥

व्याख्याः—द्विजैः = ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यैः, अनेकेषु = बहुषु = यज्ञेषु = मखेषु; आहुतिभिः = शाकल्यादिभिः; तर्पितः = संतुष्टः; किरीटवान् = मुकुटमण्डितः; दानवानाम् = दैत्यानाम्; संघः = समूहः, तस्य मर्दनः = ध्वंसकः, दैत्य-समूह विनाशक इत्यर्थः। सुरद्विपस्य = ऐरावतस्य; स्फालनैः = संचालनैः कर्कशाः = परुषाः "रूक्षा इति यावत्; अंगुलयः = करशाखाः यस्य सः, पाकशासनः = इन्द्रः खलु = निश्चयेन, मया = कर्णेन कृतार्थः = संतोषित इति। अत्र "वंशस्थ" नामकं छन्दः ॥ २३ ॥

समासः—न एके = अनेके च ते यज्ञा = अनेकयज्ञाः (कर्मधारय) तेषां आहुतयः = अनेकयज्ञाहुतयः; (ष० तत्०) ताभिः तर्पितः यः सः = अनेक यज्ञाहुतितर्पितः (बहुव्रीहिः)।

दानवानां संघः = दानवसंघः (ष० तत्०) दानवसंघस्य मर्दनः = दानवसंघमर्दनः (ष० तत्०)। सुराणां द्विपः = सुरद्विपः (ष० तत्०) तस्य

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्फालनम् = सुरद्विपास्फालनम् (ष० तत्०) तेन कर्कशाः अंगुलयो यस्य सः = सुरद्विपास्फालन-कर्कशांगुलिः;

कोशः—यज्ञः सवोऽध्वरो भागः सप्ततन्तुर्मखः क्रतुः। इत्यमरः। दन्ती दन्तावलो हस्ती द्विरदोऽनेकपो द्विपः। इत्यमरः। इन्द्रो मरुत्वान् मघवा विडौजा पाकशासनः। इत्यमरः।

भावार्थः—द्विजातिभिः बहुषु आहुतिभिर्संतुष्टः, मुकुटमण्डितः, असुरकुल-विमर्दकः, ऐरावत-संचालनेन यदीयाः अंगुलयो रूक्षाः सञ्जाताः सः, इन्द्रः मया कृत-कृत्यः कृतः अतः इन्द्र एव मया वञ्चित न खलु तेनाहम्। इति भावः ॥२३॥

हिन्दीः—नहीं। मैंने ही इन्द्र को ठग लिया क्योंकि—ब्राह्मणक्षत्रिय, और वैश्यों के द्वारा अनेकयज्ञोंमें दी गयी आहुतियों से संतुष्ट; मुकुटमण्डित; दैत्य-समूह को विनष्ट करनेवाले; ऐरावत हाथीको चलाने के कारण जिनकी अंगुलियाँ कठोर हो गयी उन इन्द्रको मैंने कृतकृत्य कर दिया ॥ २३ ॥

(प्रविश्य ब्राह्मणरूपेण)

देवदूतः—भोः कर्ण! कवचकुण्डलग्रहणाज्जनितपश्चात्तपेन पुरन्दरेणानु-गृहीतोऽसि। पाण्डवेष्वेकपुरुषवधार्थममोघमस्त्रं विमला-नाम शक्तिरियं प्रति-गृह्यताम्।

कर्णः—धिग्; दत्तस्य न प्रतिगृह्णामि।

देवदूतः—ननु ब्राह्मणवचनाद् गृह्यताम्।

कर्णः—ब्राह्मणवचनमिति। न मयातिक्रान्तपूर्वम्। कदा लभेय।

देवदूतः—यदा स्मरसि तदा लभस्व।

कर्णः—बाढम्। अनुगृहीतोऽस्मि। प्रतिनिवर्ततां भवान्।

देवदूतः—बाढम्। (निष्क्रान्तः)

कर्णः—शल्यराज! यावद्रथमारोहावः।

शल्यः—बाढम्। (रथारोहणं नाटयतः)

हिन्दी—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(ब्राह्मण वेश में प्रवेश करके)

देवदूत—हे कर्ण ! कवच और कुण्डल ले लेने के कारण पश्चात्ताप करते हुए इन्द्र के द्वारा तुम अनुगृहीत हो। पाण्डवों में से किसी एक को मारने के लिये यह अमोघ अस्त्र "विमला" नामकी शक्ति स्वीकार करो।

कर्ण—धिक् ! मैं दान का बदला नहीं लेता।

देवदूत—ब्राह्मण के कहने से ले लो।

कर्ण—ब्राह्मण का कथन ! पहले मैंने कभी नहीं टाला है। (अच्छा) मुझे कब मिलेगी (शक्ति)।

देवदूत—जभी उसका स्मरण करोगे तभी मिल जायगी।

कर्ण—अच्छा अनुगृहीत हूं। आप लौट जाएं।

देवदूत—बहुत अच्छा। (निकल जाता है।)

कर्ण—शल्यराज ! तब (तक) हम दोनों रथ पर चढ़ें।

शल्य—अच्छा (दोनों रथ पर चढ़ने का अभिनय करते हैं।)

कर्णः—अये शब्द इव श्रूयते। किं नु खल्विदम्।

शङ्खध्वनिः प्रलय-सागर-घोषतुल्यः
कृष्णस्य वा न तु भवेत् स तु फाल्गुनस्य।
नूनं युधिष्ठिरपराजय-कोपितात्मा
पार्थः करिष्यति यथाबलमद्य युद्धम् ॥ २४ ॥

शल्यराज ! यत्रासावर्जुनस्तत्रैव चोद्यतां मम रथः।

शल्यः—बाढम् !

अन्वयः—शङ्खध्वनीति। प्रलयसागरघोषतुल्यः; शङ्खध्वनिः; कृष्णस्य, वा तु फाल्गुनस्य भवेत्, युधिष्ठिर-पराजयकोपितात्मा, पार्थः नूनम्, अद्य, यथाबलम्; युद्धम् करिष्यति ॥ २४ ॥

व्याख्याः—शङ्खध्वनीति। प्रलयसागरस्य = प्रालेय-समुद्रस्य; घोषः = ध्वनिः, तेन तुल्यः = समानः, शङ्खध्वनिः = कम्बुशब्दः, कृष्णस्य = वासुदेवस्य, वा = अथवा, तु फाल्गुनस्य = अर्जुनस्य, भवेत् = स्यात्; युधिष्ठिरस्य = धर्मराजस्य

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पराजयेन = पराभवेन, कोपितः = क्रुद्धः, आत्मा = हृदयं यस्य सः; पार्थः = अर्जुनः, नूनम् = निश्चयेन, अद्य = अस्मिन् दिवसे; यथाबलम् = स्वशक्त्यनुरूपम्; युद्धम् = रणम्; करिष्यति = विधास्यति ॥ अत्र वसन्ततिलका वृत्तिः ॥ २४ ॥

समासः—शङ्खस्य ध्वनिः = शङ्खध्वनिः (ष० तत्०) । प्रलयस्य सागरः = (ष० तत्०) तस्य घोषः = प्रलयसागरघोषः (ष० तत्०) तेन तुल्यः = प्रलयसागरघोषतुल्यः (तत् पुरुष) । युधिष्ठिरस्य पराजयः = युधिष्ठिरपराजयः (ष० तत्०); कोपितश्चासौ आत्मा = कोपितात्मा (कर्मधा०) युधिष्ठिर-पराजयेन कोपितात्मा यस्य स युधिष्ठिर-पराजय-कोपितात्मा (बहुव्रीहि०) ॥

कोशः—शङ्खः स्यात् कम्बुरस्त्रियौ । संवर्तः प्रलय कल्पक्षयः कल्पान्त इत्यपि । इत्यमरः । समुद्रोऽब्धिर-कूपार पारावारौ सरित्पतिः । उदन्वानुदधिः सिन्धुः सरस्वान् सागरोऽर्णः । इत्यमरः ॥

भावार्थः—प्रलयसामयिक-सागरशब्द-तुल्यः कस्यच्छिङ्खध्वनिः श्रूयते; सध्वनिः कृष्णस्य अथवा अर्जुनस्य भवेत् । स्वाग्रज-पराभवेन क्रुद्धात्मा यावच्छक्तिः निश्चयमेव युद्धं करिष्याति ॥ २४ ॥

हिन्दी—

कर्ण—अरे ! शब्द सा सुनाई दे रहा है । यह क्या है ? यह प्रलयकालीन समुद्र की तरह गम्भीर ध्वनि वाला या तो कृष्ण का शंख है, या अर्जुन का । युधिष्ठिर के पराजय से क्रुद्ध होकर अर्जुन आज अवश्य यथाशक्ति युद्ध मुझसे करेगा ॥ २४ ॥

शल्यराज ! जहाँ अर्जुन है मेरे रथ को वहीं ले चलिये ।

शल्य—बहुत अच्छा ।

(भरत वाक्यम्)

सर्वत्र सम्पदः सन्तु नश्यन्तु विपदः सदा ।
राजा राजगुणोपेतो भूमिमेकः प्रशास्तु नः ॥ २५ ॥

अन्वयः—सर्वत्र, सम्पदः, सन्तु सदा, विपदः नश्यन्तु ।
राजगुणोपेतः, एकः राजा, नः, भूमिम्, प्रशास्तु ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

व्याख्याः—सर्वत्र = सम्पूर्णे संसारे, सम्पदः = वैभवाः, सन्तु = भवन्तु, सदा = सर्वकाले, विपदः = विपत्तयः; नश्यन्तु = नष्टाः भवन्तु; राजगुणोपेतः = नृपगुण-संयुक्तः "दयादाक्षिण्यादिभिर्युक्त इत्यर्थः" एकः = अद्वितीयः; राजा = नृपतिः, नः = अस्माकम्; भूमिम् = वसुन्धराम्; प्रशास्तु = पालयतु ॥

समासः—राज्ञा गुणः = राजगुणः (ष० तत्) तेनोपेतः राजगुणोपेतः (तृ० तत्)।

कोशः—अथ सम्पदि संपत्तिः श्रीश्च लक्ष्मीश्च। इत्यमरः। विपत्तौ विपदापदौ। इत्यमरः।

राजा राट् पार्थिवक्ष्माभृन्नृपभूपमहीक्षितः इत्यमरः ॥

भावार्थः—तत्र खलु भगवान् भासः स्वनाटकावसाने भरत-वाक्यमर्थात् मङ्गलवाक्यं-प्रयुक्ते सर्वत्रेति। तस्यायं भावः अखिले जगति सम्पत्तयोः भवन्तु; विपत्तयो नश्यन्तु सर्वदा; दयादाक्षिण्यादियुक्तः एकाकी सम्राट् एनामस्मद् सम्बन्धिनी पृथ्वीं रक्षतु ॥ इति शम् ॥ २५ ॥

"अलपुरा" ग्राम-निवासिना क्षोपाह्वेन "वैद्यनाथ"।
शर्म्मणा रचिता "इन्दुकला" नाम्नी टीका सम्पूर्णा ॥

हिन्दी—सम्पूर्ण जगत् में सम्पत्तियाँ हों, हमेशा विपत्तियाँ विनष्ट होती रहें; राजा के समस्त गुणों से युक्त कोई एक राजा हमलोगों को इस पृथ्वी का शासन करे ॥ २५ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कृष्णदास संस्कृत सीरीज

८५

महाकविभासविरचितम्

ऊरुभङ्गम्

'प्रभा' संस्कृत-हिन्दीव्याख्योपेतम्

व्याख्याकारः

डॉ० रामप्रभा ओझा

साहित्यविभागाध्यक्षः

श्रीभागवत-महाविद्यालयः, अस्सी, वाराणसी-५

कृष्णदास अकादमी, वाराणसी

१९८६

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रकाशक : कृष्णदास अकादमी, वाराणसी

मुद्रक : चौखम्बा प्रेस, वाराणसी

संस्करण : प्रथम, वि० सं० २०४३

मूल्य : रू० ५-००

© कृष्णदास अकादमी

पो० बा० नं० १११८

चौक, (चित्रा सिनेमा बिल्डिंग), वाराणसी-२२१००१

(भारत)

अपरं च प्राप्ति-स्थानम्

चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस

के० ३७/९९, गोपाल मन्दिर लेन

पो० बा० १००८, वाराणसी-२२१००१ (भारत)

फोन : ६३१४५

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

KRISHNADAS SANSKRIT SERIES
85

ŪRUBHAŃGAM

OF

MAHAKAVI BHASA

Edited With

'Prabha' Sanskrit-Hindi Commentary

By

Dr. RAM PRABHA OJHA
Head, Sahitya Department
Shri Bhagawat Mahavidyalaya, Assi, Varanasi-5

KRISHNADAS Academy
VARANASI-221001
1986

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

© KRISHNADAS ACADEMY

Oriental Publishers and Distributors

Post Box No. 1118

Chowk, (Chitra Cinema Building), Varanasi-221001

(INDIA)

First Edition

1986

Price Rs. 5-00

Also can be had from

Chowkhamba Sanskrit Series Office

K. 37/99, Gopal Mandir Lane

Post Box 1008, Varanasi-221001 (India)

Phone : 63145

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्राक्कथन

संस्कृत नाटकों के महान् लेखक महाकवि भास ने अपनी कल्पना से महाभारत के प्रसङ्ग-विशेष (भीम द्वारा दुर्योधन का ऊरुभङ्ग) को अपने एकांकी नाटक "ऊरुभङ्ग" में अत्यन्त आकर्षक ढंग से प्रस्तुत किया है। वस्तुतः इस नाटक ग्रन्थ का अध्ययन अध्यापन मात्र साहित्य के छात्र तथा अध्यापकों तक ही सीमित नहीं है, अपितु महाभारत की कथा में अभिरुचि रखने वाले सामान्य जन भी इसे पढ़ने की आकांक्षा रखते हैं। इसका हिन्दी अनुवाद अत्यन्त अपेक्षित था तथा छात्रों के हित में इस ग्रन्थ की सरलतम संस्कृत व्याख्या भी आवश्यक थी, जिसे दृष्टि में रखते हुए मैंने ऊरुभङ्ग का सरल हिन्दी अनुवाद तथा 'प्रभा' नाम्नी संस्कृत टीका की रचना कर आपके समक्ष प्रस्तुत किया है। यद्यपि इसकी अन्य टीकायें भी उपलब्ध हैं, तथापि इस टीका को अत्यन्त सरल एवं स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। इस ग्रन्थ के विभिन्न संस्करणों में उपलब्ध पाठ-भेद को फुटनोट द्वारा नीचे दर्शाया गया है तथा आवश्यकतानुसार तत्तत् पाठों की व्याख्या कर प्रसङ्ग के अनुरूप उसकी सङ्गति दिखलाई गई है।

इस कार्य में आदरणीय डॉ० सुधाकर मालवीय जी से निरन्तर प्रोत्साहन उचित निर्देश के साथ-साथ ग्रन्थ की अनुपलब्ध प्रति प्राप्त कराने में विशेष योगदान रहा है। पूज्य गुरुजनों प्रो० रेवाप्रसाद द्विवेदी, प्रो० कैलासपति त्रिपाठी एवं डॉ० श्रीनारायण मिश्र जी द्वारा समय-समय पर महत्त्वपूर्ण निर्देश प्राप्त होता रहा है। अतः इन सभी विद्वानों का मैं हृदय से आभारी हूँ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

इस लघु नाटक की हिन्दी-संस्कृत टीका की रचना मेरा प्रथम प्रयास है, अतः इसमें कुछ त्रुटि हो तो सुधीजन उसे सुधार कर पढ़ें तथा हमें सूचित करें ताकि अग्रिम संस्करणों में उसे संशोधित किया जा सके।

विद्वानों का स्नेही

डॉ० रामप्रभा ओझा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भूमिका

महाकवि भास

संस्कृत साहित्य के नाटककारों में सर्वप्रथम भास का नाम आता है, क्योंकि अन्य नाटककारों के पूर्ववर्ती महाकवि कालिदास ने ससम्मान भास का उल्लेख[1] किया है, जिससे यह स्पष्ट है कि कालिदास की काव्य रचना के समय भास के नाटक अत्यन्त प्रचलित हो चुके थे। महाकवि कालिदास के बाद भी कवियों तथा आलङ्कारिकों ने भास के नाटकों का अत्यन्त सम्मान करते हुए आवश्यकतानुसार अपने ग्रन्थों में उनके श्लोक उद्धृत किये हैं। भास के सम्बन्ध में महाकवि बाणभट्ट ने हर्ष चरित में कहा है "सूत्रधार से आरम्भ किये गये, बहुत भूमिका वाले तथा पताका से सुशोभित मन्दिरों की तरह, अपने नाटकों से भास ने बहुत यश प्राप्त किया[2]। काव्यमीमांसा के रचयिता राजशेखर ने भास के नाटकचक्र का उल्लेख करते हुए उनके नाटकों की अग्निपरीक्षा तथा "स्वप्नवासवदत्तम्" की उत्कृष्टता बतलायी है[3]। आचार्य बलदेव उपाध्याय जी के अनुसार दशम शती के आरम्भ में राजेश्वर द्वारा भास के एक नाटक के नाम का प्रथमतः उल्लेख किया गया है जो बहुत महत्त्वपूर्ण है[4]।

---

१. प्रथितयशसां भाससौमिल्लककविपुत्रादीनां प्रबन्धानतिक्रम्य कथं वर्तमानस्य कवेः कालिदासस्य कृतौ बहुमानः (मालविकाग्निमित्रम्)

२. सूत्रधारकृतारम्भैर्नाटकैर्बहुभूमिकैः ।
सपातकैर्यशो लेभे भासो देवकुलैरिव ॥ (हर्षचरितम्)

३. भासनाटकचक्रेऽपिच्छेकैः क्षिप्ते परीक्षितुम् ।
स्वप्नवासवदत्तस्य दाहकोऽभून्न पावकः ॥

४. संस्कृत साहित्य का इतिहास ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भास के नाटक चक्र का उल्लेख बाद में काल क्रम के अनुसार लुप्त प्रायः हो रहा था, किन्तु १९१२ में महामहोपाध्याय टी० गणपति शास्त्री ने अन्वेषण कर इनके १३ नाटकों को "अनन्तशयन ग्रन्थ माला" में प्रकाशित कर संस्कृत के विद्वानों के समक्ष उपस्थित किया।

भास के नाटकचक्र के सम्बन्ध में अनुसन्धानशील भारतीय तथा विदेशीय संस्कृत के विभिन्न विद्वान् दो विरुद्ध पक्ष उपस्थित करते हैं। एक पक्ष के अनुसार 'स्वप्नवासवदत्तम्' आदि १३ नाटक भास रचित हैं। किन्तु दूसरा पक्ष इसे स्वीकार नहीं करता। दूसरे पक्ष के अनुसार इन रूपकों के कुछ हीं अंश भासकृत हैं, शेष केरलवासी किसी कवि ने पूर्ण किया है। विदेशी विद्वान् डा० वार्नेट, डा० सिल्वन लेवी, डा० बुल्नर तथा भारतीय विद्वान् डा० कुप्पु शास्त्री आदि इस पक्ष के समर्थक हैं। महामहोपाध्याय टी० गणपति शास्त्री के द्वारा प्रकाश में लाये गये भास के 'स्वप्नवासवदत्तम्' आदि १३ नाटकों को उनके नाटकचक्र के रूप में मानने वाले देशी विदेशीय विद्वानों में डा० कीथ, डा० टामस, डा० स्वरूप आदि प्रमुख हैं। इन विद्वानों ने अत्यन्त गवेषणापूर्वक भास के नाटकचक्र के विरोधी युक्तियों के विरुद्ध "स्वप्नवासवदत्तम्" आदि १३ नाटकों के रचयिता भास को ही माना है।

समय निर्धारण

संस्कृत साहित्य के कवियों का समय निर्धारण विद्वानों के बीच बहुत दिनों से एक समस्या बनी हुई है। अतः भास का कोई निश्चित समय निर्धारित करना कोई सामान्य बात नहीं है। तथापि अनुसंधानशील विद्वानों ने भास की कृतियों का अन्तः परीक्षण तथा अन्य विद्वानों द्वारा उद्धृत उनके पद्यों या ग्रन्थ के नाम के आधार पर भिन्न भिन्न समय का अनुमान किया है। अभी तक विद्वानों ने ई० पू० ६०० से १० वीं शताब्दी के बीच भास के होने का अनुमान लगाया है।

महामहोपाध्याय. टी० गणपति शास्त्री एवं म०म० हरप्रसाद शास्त्री आदि कुछ विद्वानों ने भास का समय पाणिनि एवं चाणक्य से प्राचीन ई. पू.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

४०० से ६०० होने की सम्भावना की है।- पं० रामावतार शर्मा एवं श्री काणे आदि विद्वानों की दृष्टि में भास का स्थितिकाल ईसा की नवीं १०वीं शताब्दी होना चाहिए। डाक्टर काशी प्रसाद जायसवाल तथा प्रसिद्ध ध्रुव आदि के अनुसार भास २ री- १ली शताब्दी के पूर्व के है। डाक्टर वार्नेट एवं प्रो० देवधर आदि विद्वानों ने भास का काल ईसा की ६ठी ७वीं शताब्दी माना है। इस प्रकार भास के स्थितिकाल के 'सम्बन्ध में विभिन्न मत हैं।

महाकवि भास के समय निर्धारण में उपर्युक्त ईसा की नवीं दसवीं शताब्दी का होना तो कथमपि सम्भव नहीं है क्योंकि ७वीं शताब्दी के प्रसिद्ध महाकवि बाणभट्ट ने भास के नाटकचक्र का उल्लेख करते हुए उनकी विशेषता बतलाई है। ई. की छठी ७वीं शताब्दी में भास का होना कहा जाय तो भी कुछ उचित नहीं जान पड़ता, क्योंकि ७वीं शताब्दी के पहले ही भास के नाटकों को अधिक ख्याति मिल चुकी होगी तभी महाकवि बाण ने अपने ग्रन्थ में आदर पूर्वक उसका उल्लेख किया। यदि यह मत माना जाय तो समसामायिक होने वाले महाकवि बाण भास के नाटकों से इतने भलिभाँति परिचित न होते कि उनकी प्रशंसा किये विना न रहते।

भास का समय निश्चितरूप से विक्रमकालीन महाकवि कालिदास से प्राचीन होना चाहिए। महाकवि कालिदास ने अपने ग्रन्थ 'मालविकाग्नि मित्रम्' में भास का नाम बहुत आदर पूर्वक उल्लेख किया है। ऐसे भी नाट्य रचना की दृष्टि से भास का समय कालिदास से बहुत प्राचीन होना चाहिए। भास के नाटकों पर भरतमुनि विरचित नाट्यशास्त्र का प्रभाव प्रायः नहीं देखा जाता जबकि महाकवि कालिदास के नाटक नाट्यशास्त्रीय परम्परा का पूर्णतया अनुसरण करते हैं।

पं० टी० गणपतिशास्त्री ने सबल प्रमाणों द्वारा यह सिद्ध किया है कि महाकवि भास का स्थिति काल ई. पू. ४ थी है। इसके अनुसार भास की नाटक रचना पर भगवान् पाणिनि द्वारा निर्दिष्ट "नटसूत्र" के सम्प्रदाय के प्रभाव का अनुमान किया जा सकता है। भास, पाणिनि के पहले हों या बाद में किन्तु पाणिनि कृत 'अष्टाध्यायी' का प्रभाव भास की कृतियों में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नहीं देखा जाता है। यदि भास को नाट्यशास्त्र की रचना के बाद माना जाय तो इनके नाटकों में नाट्यशास्त्रीय परम्परा की छाप अवश्य पड़ती।

भास के कृतियों का अन्तःपरीक्षण किया जाय तो भी भास का समय ईसा के पूर्व ही मानना उचित होगा। भास ने अपने नाटकों में जिस प्रकार की सामाजिक परिस्थिति का चित्रण किया है वह कालिदास द्वारा चित्रित सामाजिक परिस्थितियों से प्राचीन जान पड़ती है। पं० हरप्रसाद शास्त्री का अनुमान है कि भास के 'प्रतिमा नाटक' में प्रतिमागृह की प्राङ्गणभूमि में बालुका (बालू) का छींटना जो वर्णित है उसके अनुसार भास ई. पू. ५वीं शताब्दी पूर्व के होंगे। उनका तर्क है कि ६०० ई० पूर्व आपस्तम्ब में वालुकास्तरण का उल्लेख है, अतः उसका तत्कालीन प्रभाव प्रतिमा के उक्त प्रसङ्ग में पड़ा है। भास के 'अविमारक' में जिस प्रकार के वैवाहिक सम्बन्ध का निर्देश है वह मनुस्मृति काल में अवैध माना गया है। विद्वानों ने मनुस्मृति का काल ई० पू० २री शताब्दी माना है। इसके बाद यदि भास के नाटकों की रचना होती तो मनुस्मृति के वैवाहिक विधान को अवश्य ध्यान में रखा गया होता। अतः भास का काल मनुस्मृति के पूर्व ही मानना पड़ेगा। आचार्य बलदेव उपध्याय जी ने भी भास के कृतियों का अन्तः एवं बाह्य परीक्षण द्वारा महाकवि भास का समय पञ्चम शती या चतुर्थ शती वि० पू० स्वीकार किया है। उपर्युक्त विद्वानों के मत ही भास के समयनिर्धारण में अब तक प्रबल प्रमाण हैं। अतः इन विद्वानों का मत स्वीकारते हुए भास का समय ई० पू० ४थी शती मानना ही उचित है।

भास के ग्रन्थ

महाकवि भास के पं० गणपतिशास्त्री द्वारा उल्लिखित "स्वप्नवासवदत्तम्" आदि १३ नाटक ही ग्रन्थ के रूप में उपलब्ध हैं। भास ने अपने नाटकों के लिए विविध क्षेत्रों से कथावस्तु को संगृहीत किया है। इनके नाटक विषयानुसार पाँच श्रेणी में आते हैं।

(क) महाभारताश्रित—पञ्चरात्र, मध्यमव्यायोग, दूतघटोत्कच, कर्णभार, दूतवाक्य तथा ऊरुभङ्ग।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

(ख) भागवताश्रित—बालचरित।

(ग) रामकथाश्रित—प्रतिमानाटक तथा अभिषेक।

(घ) लोककथाश्रित—दरिद्रचारुदत्त और अविमारक।

(ङ) उदयनकथाश्रित—प्रतिज्ञांयौगन्धरायण एवं स्वप्नवासवदत्ता।

पञ्चरात्र—महाकवि भास ने महाभारत के विराट पर्व की कथा को अपनी कवित्वकल्पना से नवीनरूप में परिवर्तित किया है। द्रोण की आज्ञा से दुर्योधन के द्वारा पाण्डवों को आधा राज्य देना, कौरवों के साथ अभिमन्यु का लड़ाई के लिए आना, अभिमन्यु को बन्दी बनाना आदि कवि द्वारा वर्णित घटनायें महाभारत की कथा से संगत नहीं होने से इसे कविकल्पना प्रसूत कहना उचित जान पड़ता है।

मध्यमव्यायोग—इसमें प्रयुक्त "व्यायोग" शब्द दशरूपकों में आता है। 'मध्यम' शब्द भीम एवं एक ब्राह्मण बालक का वाचक है। भीम के पुत्र घटोत्कच द्वारा ब्राह्मण बालक के वध हेतु उद्यत होने पर भीम उसकी रक्षा के लिए आ जाता है। अनभिज्ञता में पिता पुत्र में युद्ध होता है, घटोत्कच के पराक्रम से प्रभावित होकर भीम उससे परिचय पूछता है। तदनन्तर दोनों हिडिम्बा के पास जाते हैं। कवि अपनी कल्पना से इन तीनों का अद्भुत सम्मिलन करा कर पाठकों के मन में अत्यन्त कौतुहल उत्पन्न कर देता है।

दूतघटोत्कच—इसमें दुर्योधन और घटोत्कच का वीरतापूर्ण सम्वाद नाटकीय दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

कर्णभार—महाकवि भास ने इसमें कर्ण की दानशीलता को अत्यन्त ललित रूप में वर्णित किया है।

दूतवाक्य—इसमें दुर्योधन के मानमर्दनयुक्त भगवान् कृष्ण की वीरतापूर्ण वाणी नाटकीय संवाद की दृष्टि से अत्यन्त हृदयहारिणी है।

ऊरुभङ्ग—ऊरुभङ्ग में दुर्योधन को भीम के द्वारा गदायुद्ध में परास्त कर उसकी जङ्घा चूर्ण करने का विशद वर्णन है।

बालचरित—इसमें भगवान् कृष्ण के बाललीला का ललित वर्णन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अत्यन्त मनोहर है। भागवत के उक्त प्रसङ्ग को कवि ने अपने भाव एवं भाषा से पाठकों के लिए बहुत हृदयस्पर्शी बना दिया है।

प्रतिमानाटक—रामायण के अयोध्याकाण्ड के रामवनवास से लंकाकाण्ड के रावणवध तक की घटनाओं का वर्णन इस नाटक में किया गया है। राम के वन चले जाने पर दशरथ की मृत्यु के अनन्तर अपने ननिहाल से लौटते हुए भरत ने अयोध्या के समीप अपने पिता दशरथ की प्रस्तर प्रतिमा को देखकर उनकी मृत्यु का अनुमान करते हैं, अतः इस प्रसङ्ग के अनुसार इस नाटक का नाम 'प्रतिमानाटक' है।

अभिषेक—इसमें रामायण के किष्किन्धाकाण्ड से लंकाकाण्ड तक के प्रमुख प्रसङ्गों का रोचक वर्णन है। इस नाटक में राम के राज्याभिषेक का वर्णन होने से इसका नाम 'अभिषेक' पड़ा है।

दरिद्र चारुदत्त—धनहीन किन्तु चरित्रवान् ब्राह्मण चारुदत्त एवं वारवनिता वसन्तसेना के आदर्श प्रणय का वर्णन इस नाटक में किया गया है।

अविमारक—इसमें कवि की कल्पना प्रसूत अविमारक एवं राजा कुन्तीभोज की पुत्री के प्रणय का वर्णन बहुत ही सुन्दर तथा सरस ढंग से किया गया है।

प्रतिज्ञायौगन्धरायण—इसमें यौगन्धरायण द्वारा महासेन के यहाँ बन्दी बनाये गये उदयन को छुड़ाने के लिए उदयन के साथ वासवदत्ता का परिणय कराने हेतु जो नीति अपनायी गयी है वह अत्यन्त विस्मयावह है। इस नाटक में मुख्य मन्त्री यौगन्धरायण की दृढ़ प्रतिज्ञा का उचित निर्वाह होने से इसका नाम 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण' है।

स्वप्नवासवदत्ता—राजा उदयन को अपने विरोधी राजाओं पर विजय प्राप्त करने के लिए दर्शक राजा की सहायता अपेक्षित है, अतः मन्त्री यौगन्धरायण द्वारा वासवदत्ता के जलने की झूठी खबर फैलाकर उसे दर्शक के पास रखना तथा दर्शक की भगिनी का विवाह उदयन से कराना आदि का उपस्थापन इसमें अत्यन्त मनमोहक ढंग से किया गया है। महाकवि भास ने इस नाटक की रचना में अत्यधिक सफलता अर्जित की है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

स्वप्नवासवदत्ता की न केवल भासकृत नाटकों में ही उत्तम स्थान है, अपितु संस्कृत के श्रेष्ठ नाटकों में यह अन्यतम ही है।

उपर्युक्त नाटकग्रन्थों में प्रतिमा नाटक, स्वप्नवासवदत्ता एवं प्रतियौगन्धरायण पूर्ण विकसित हैं, तथा मध्यमव्यायोग दूतघटोत्कच आदि एकांकी है। भास के सभी नाटकों को रङ्गमञ्च पर सरलता से दिखाया जा सकता है। इनके नाटकों में पात्रों के सम्वाद का विस्तार नहीं देखा जाता, जिससे दर्शकों के मन अरुचि पैदा हो।

नाट्यकला

महाकवि भास के नाटकों में रङ्गमञ्च पर दिखाये जाने वाले भाव की भाँति ही भाषा का प्रयोग किया गया है। पद्य नाटकीय घटना को गतिशील बनाते हैं। नाटकों में जिस प्रकार पात्रों के सम्वाद अपेक्षित होते हैं तदनुरूप ही कवि ने संयोजित की है। वस्तुतः महाकवि भास का नाट्यरचना की कुशलता लोकोत्तर ही है।

काव्यशैली

महाकवि भास के नाटकों में अत्यन्त सरल प्रसादगुण युक्त नाट्यसौन्दर्य के परिपोषक शब्दों का प्रयोग बहुत सफलतापूर्वक किया गया हैं। इनके पद्यों के श्रवणमात्र से अर्थबोध हो जाता है। वस्तुतः दर्शक या श्रोता काव्य के अर्थबोध में होने वाली कठिनाई को सहन नहीं करते। दृश्यकाव्य की यही उत्तमता है कि पात्रों द्वारा प्रयुक्त भाषा का तत्क्षण अर्थबोध हो जाय। भास के नाटकों में इसी प्रकार के गद्य पद्य देखे जाते हैं।

भास ने अपने नाटकों में पात्रों के चरित के अनुरूप ही भाषा का प्रयोग किया है। भास के नाटक काव्यगत सौन्दर्य से सुशोभित नाटकीयता से परिपूर्ण हैं। नाट्याचार्यों द्वारा प्रतिपादित भारतीवृत्ति को अपने नाटकों में भास ने पूर्णतया अपनाया है। भास को भारतीवृत्ति एवं पात्रों की संवादरचना का अद्वितीय कलाकार कहा जाय तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। भास का शब्दार्थसंयोजन अभिव्यञ्जना से ओतप्रोत है। इस प्रकार रस भाव के अनुकूल एवं देश काल के अनुसार भास की भाषा को देखते हुए

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रसिद्ध आलङ्कारिक जयदेव ने भास को कविताकामिनी का हास (भासो हासः) कहा है।

भास का वैशिष्ट्य

महाकवि भास नाट्यकला में सिद्धहस्त हैं। इनके नाटकों में न केवल मनुष्य ही अपितु देव भी उपस्थित होते हैं। इन्होंने बड़ी कुशलता से मनुष्यों एवं देवों का चरित्रचित्रण किया है। चरितचित्रण नाटकों का महत्त्वपूर्ण अङ्ग है जिसका निर्वाह भास ने इतनी कुशलता से की है कि सहृदय सामाजिक इसे सहजरूप में अपना सकें।

सूक्तियों से परिपूर्ण भास की वाणी सहृदयों के चित्त को आकृष्ट करती है। इनके नाटकों में दुरूह भावों को भी अति सरल एवं प्रभावपूर्ण रीति से प्रकट किया गया है। भास के गद्य में भी विचित्र वैलक्ष्य देखा जाता है। छोटे छोटे वाक्य भी मनोगत भावों को अभिव्यक्त करने में सर्वथा सक्षम हैं।

यद्यपि नाटकों में सरस सुबोध एवं असमस्त पदावली सर्वथा समादरणीय हैं तथापि प्रसङ्गानुसार दीर्घ समासयुक्त पदावली का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। भास ने अपने नाटकों में प्रसङ्गानुरूप समास बहुल पदावली को अपनाया है, पर उनके शब्द इतने सरल और ललित हैं कि अर्थावधारण में पाठकों एवं दर्शकों को किसी प्रकार की कठिनाई नहीं होती है—

चलविलुलितमौलिः क्रोधताम्रायताक्षो
भ्रमरमुखविदष्टां किञ्चिदुत्कृष्यमालाम्।
असिततनुविलम्बिस्रस्तवस्त्रानुकर्षी
क्षितितलमवतीर्णः पारिवेषीव चन्द्रः॥

महाकवि भास पात्रों के मनोगत भाव परखने में परम प्रवीण हैं। भास का प्रकृति वर्णन भी अत्यन्त मनोहारी है। अलङ्कारों में उपमा एवं स्वभावोक्ति की छटा अतीव सुन्दर है। इनके नाटकों में निश्छल एवं शुद्ध प्रणय का वर्णन है। स्वप्नवासवदत्ता के नाटकीय घटना की मनोरम सङ्गति अद्वितीय हैं। इस प्रकार भास के नाटकों में काव्यापेक्षित समस्त वैशिष्ट्य मानो अहमहमिकया भरे पड़े हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उरुभङ्ग का साहित्यिक पर्यालोचन

महाकवि भास रचित ऊरुभङ्ग का उपजीव्य महाभारत के एक घटना-विशेष का संक्षिप्तांश है, भले ही कवि ने पाठकों एवं दर्शकों में उत्कण्ठा जागृत करने के लिए अपनी कल्पना से इसके कथानक को कुछ अन्य ढंग से प्रस्तुत किया हो। यह मात्र एक अङ्क का रूपक है। प्रसङ्गानुसार इसके गद्य पद्य अत्यन्त ओजस्वितापूर्ण समासवहुल हैं तथापि इसकी ललित पदावली में सरल शब्दों का प्रयोग अत्यन्त मनमोहक है।

भास के नाटकों में प्रस्तावना, कवि का नाम आदि नाट्यशास्त्रीय विधान के अनुसार होना चाहिये, जो नहीं देखा जाता। यद्यपि ऊरुभङ्ग में युद्ध का प्रसङ्ग होने से वीर रस का प्राधान्य अपेक्षित है तथापि कवि ने अपनी कल्पना से इसके कथानक को कारुण्यपूर्ण वना दिया है। 'शृङ्गारवीर-शान्तानामेकोऽङ्गी रसमिष्यते' इस नाट्यशास्त्रीय विधान के अनुसार यह नाटक वीररस प्रधान होना उचित था। कवि ने इस नाटक में रङ्गमञ्च पर ही दुर्योधन की मृत्यु दिखलाया है जो नाट्यशास्त्र के सिद्धान्त के प्रतिकूल है।

कथा-सारांश

नान्दी पाठ के अनन्तर सर्वप्रथम सूत्रधार का रङ्गमञ्च पर प्रवेश होता है। वह शिष्ट परम्परा के अनुसार भीष्म, द्रोण आदि अजेय महायोद्धाओं से परिपूर्ण शत्रुरूपी महानदी को अर्जुनरूपी नौका का सञ्चालन करने वाले श्रीकृष्ण आप (सहृदय दर्शकों) को इस संसार-सागर से पार करें, ऐसी मङ्गल कामना कर मान्य सभासदों से कुछ कहना चाहता है, तब तक कुछ शब्द सा सुनाई पड़ा। सूत्रधार आश्चर्यान्वित हो नेपथ्य की तरफ ज्यों ही देखता है, कि सब कुछ समझ जाता है। तदनन्तर पारिपार्श्विक का प्रवेश होता है। वह सूत्रधार से पूछता है कि विभिन्न प्रकार के शस्त्रों से सुसज्जित ये वीर युद्धरूपी यज्ञ में अपनी देह की आहुति देने के लिए अपने प्रतियोद्धाओं का बलपौरुष निरेखते हुए इधर उधर क्यों घूम रहे हैं? इसका उत्तर देते हुए सूत्रधार कहता है—कौरवों के पक्ष में एकमात्र दुर्योधन ही

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

बचा है, पाण्डवों के पक्ष में पाँच पाण्डव तथा कृष्ण शेष रह गये हैं, अतः मृत राजाओं से परिपूर्ण समन्त पञ्चक में भीम और दुर्योधन के गदायुद्ध प्रारम्भ होने पर राजाओं की मृत्यु के एकमात्र गृहस्वरूप इस रणक्षेत्र में सैनिक प्रवेश कर रहे हैं।

स्थापना के अनन्तर तीन योद्धाओं का प्रवेश होता है। ये अपनी कल्पना के अनुसार भीम और दुर्योधन के बीच प्रवृत्त युद्ध एवं युद्धस्थल का वर्णन विभिन्न प्रकार से कर रहे हैं। पहला कहता है—हम ऐसे संग्राम नामक आश्रमस्थल में आये हैं जहाँ प्राणों की आहुति करने के लिए अग्निहोत्र नामक यज्ञ और मृत राजाओं के लिए सूर्यलोक प्राप्ति का साधन है। दूसरा योद्धा युद्धस्थल में मरे पड़े बड़े बड़े हाथियों की उपमा पर्वत से दे रहा है। तीसरा साङ्गरूपक में युद्धस्थल पर यज्ञस्थल का आरोप करता हुआ हस्तियों के शुण्ड दण्ड को यूप, वाणों को कुशा आदि इस प्रकार युद्धस्थल में पड़े हुए वस्तुओं का याज्ञीय पदार्थों के रूप में उल्लेख कर रहा है। इस प्रकार रणभूमि का वर्णन करते हुए योद्धाओं का युद्ध वर्णन करता है।

कुरुकुल एवं यादव वंश के पूजनीय देवों—व्यास, बलराम, कृष्ण तथा विदुर आदि देवताओं के समक्ष भीम और दुर्योधन में परस्पर गदायुद्ध आरम्भ होता है। दुर्योधन की गदाप्रहार से भीम घायल होकर गिर पड़ता है, जिसे देखकर व्यास विस्मित होते हैं। युधिष्ठिर और विदुर दुःखी होते है, अर्जुन गाण्डीव को उठाता है और भगवान श्रीकृष्ण आकाश की ओर देखते हैं। शिष्य दुर्योधन के पराक्रम से प्रसन्न होकर रणदर्शी बलदेवजी हल को घुमा रहे हैं। गिरे हुए भीम को ताना देते हुए दुर्योधन कहता है कि वीर गिरे हुए दीन योद्धा पर प्रहार नहीं करते। इस प्रकार भीम का अपमान देखकर भगवान् श्रीकृष्ण अपने जंघे पर ताड़न करते हुए भीम को कुछ संकेत कर रहे हैं। भीम सम्भलते हुए उठकर अपनी गदा से दुर्योधन की जंघों पर प्रहार करता है, जिससे घायल होकर दुर्योधन गिर पड़ता है। खून से लथपथ दुर्योधन को देखकर व्यास जी आकाश की ओर चले जाते हैं। अपने शिष्य दुर्योधन को कपटपूर्वक मारे जाने से बलदेव जी काफी क्रोधित होते हैं, जिनसे पाण्डवों को भयभीत देख कर श्रीकृष्ण ने अपने हाथ से अव-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लम्बित भीम को अपने हाथों में सुरक्षित कर लिया। रङ्गमञ्च पर बलदेव का प्रवेश सूचित कर तीनों योद्धा चले जाते हैं, इसके साथ विष्कम्भक पूर्ण होता है।

इसके बाद क्रुद्ध बलरामजी राजाओं को सम्बोधित करते हुए रङ्गमञ्च पर आते हैं तथा वञ्चनापूर्वक दुर्योधन की जंघों पर किये प्रहार की निन्दा करते हैं। दुर्योधन को आश्वस्त करते हुए बलदेवजी भीम को मारने की प्रतिज्ञा करते हैं तब नेपथ्य से 'प्रसीदतु 'प्रसीदतु भगवान् हलायुधः' की ध्वनि सुनाई पड़ती हैं। बलदेव जी, जंघे टूटने के कारण अपने शरीर को घसीटते हुए दुर्योधन को अपनी ओर आते देखते हैं।

भुजाओं के बल अपने शरीर को घसीटते हुए दुर्योधन रङ्गमञ्च पर आकर बलरामजी से निवेदन करता है कि कुरुकुल के बीजरूप पाण्डवों का विनाश न करें। बलदेव जी से जब दुर्योधन को ज्ञात होता है, कि मुझे छल से मारा गया तो वह कहता है कि जब आप इसका समर्थन करते हैं तो वस्तुतः पाण्डवों से मैं पराजित नहीं हुआ हूँ। दुर्योधन कहता है, मैं भीम द्वारा छल से नहीं मारा गया, अपितु इसमें कृष्ण की चाल है और उन्होंने भीम की गदा में प्रवेश कर मुझे मारा है। नेपथ्य से लोगों को हटाने की आवाज आती है, तब तक बलराम जी देखते हैं कि शोकाकुल धृतराष्ट्र, गान्धारी, अन्तःपुरीय परिवार दुर्जय द्वारा निर्दिष्ट रङ्गमञ्च की ओर आ रहे हैं।

धृतराष्ट्र, गान्धारी, देवियाँ और दुर्जय का प्रवेश होता है। वञ्चना से मारे गये पुत्र को जानकर धृतराष्ट्र कहते हैं—नैसर्गक अन्धा मैं और अन्धा बना दिया गया। देवियों को रोते देख दुर्योधन कहता है, मेरी स्त्रियाँ आज रो रही हैं। जंघे टूट जाने से माता पिता को अभिवादन न कर सकने के कारण दुर्योधन को काफी कष्ट होता है। उसका कहना है कि युद्ध में पराजित मुझको देखकर मेरा पुत्र क्या सोचेगा? दुर्जय के द्वारा हठ करने पर भी दुर्योधन अपनी गोद में उसे बैठने से मना करता है। धृतराष्ट्र गान्धारी खोजते हुए दुर्योधन के पास जाते हैं। दुर्योधन, धृतराष्ट्र और

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

गान्धारी को धैर्य दिलाता है। दूसरे जन्म में भी तुम ही हमारी जननी होवो, यह सुनकर गान्धारी कहती है मेरे मनोनुकूल ही तुमने कहा है। देवियों को आश्वस्त करते हुए दुर्योधन कहता हैं—क्षत्रिये ! युद्धस्थल में वीर योद्धा से लड़ते हुए मैं मारा गया। इस प्रकार युद्धस्थल में मारे गये वीरों की पत्नियाँ नहीं रोतीं। पाण्डवों और कुन्ती की सेवा का निर्देश करते हुए दुर्जय से दुर्योधन कहता है—तुम शोक को छोड़कर पाण्डवों के साथ मुझे तिलाञ्जलि देना। नेपथ्य से पुनः वीरतापूर्ण वाणी सुनाई पड़ती है।

गर्जना करते हुए क्रुद्ध अश्वत्थामा रङ्गमञ्च पर प्रविष्ट हो कर कहते हैं, कि मुझे पिता की तिलाञ्जलि देने में व्यस्त होने के कारण दुर्योधन को छल से मारा गया, अतः मैं कृष्णसहित पाण्डव कुल का विनाश कर डालूँगा। दुर्योधन के मना करने पर भी रात्रियुद्ध में पाण्डवों को मारने की प्रतिज्ञा करते हैं, दुर्योधन के पुत्र दुर्जय को विना अभिषेक ही विप्रवचनों द्वारा राजा बनाते हैं। इसके बाद दुर्योधन स्वर्गलोक चला जाता है। पुत्र विनाश से शोकाकुल धृतराष्ट्र राज्य को धिक्कारते हुए तपोवन जाने का सङ्कल्प करते हैं। अश्वत्थामा सौप्तिक वध के लिये उद्यत होते हैं। बलराम के द्वारा भरतवाक्य का पाठ किया जाता है, जिसमें पृथ्वी की रक्षा हेतु मङ्गल कामना की गई है।

पात्रों का चरित्रचित्रण

महाकवि भास ने उरुभङ्ग में कथानक के अनुसार ही पात्रों का चरित चित्रित किया है। भट्टनारायण द्वारा वेणीसंहार में दुर्योधन को क्रूर, न्याय तथा शास्त्रविरुद्ध कार्य करने वाला चित्रित किया गया है, किन्तु उरुभङ्ग में उसे अन्यन्त विनम्र, धीर वीर योद्धा के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

दुर्योधन—ऊरुभङ्ग में दुर्योधन प्रमुख पात्र है। इसे "नेता विनीतो मधुरस्त्यागी दक्षः प्रियंवदः" इस शास्त्रीय सिद्धान्त के अनुरूप इस रूपक में चित्रित किया गया है। भीम के साथ गदा युद्ध करते समय दुर्योधन अपनी युद्ध कला का परिचय देता है, जिसके अनुसार कवि को कहना पड़ता है, कि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भीम बलवान् अवश्य हैं, किन्तु दुर्योधन युद्ध कला में निपुण है। गदा प्रहार से घायल होकर गिरा हुआ वह भीम से कहता है उठो भीम गिरे हुए दीन योद्धा पर वीर प्रहार नही करते इस प्रसंग में दुर्योधन अत्यन्त गम्भीरतापूर्वक न्यायोचित कार्य करता है।

श्रीकृष्ण के संकेत से भीम द्वारा वञ्चनापूर्वक किए गए गदा प्रहार से दुर्योधन के जाङ्घे टूट जाती है अतः वह पृथ्वी पर गिर जाता है। इस अन्याय पूर्ण प्रहार से बलराम जी क्रुद्ध होकर पाण्डवों के विनाश की प्रतिज्ञा करते हैं, किन्तु दुर्योधन उन्हें ऐसा करने से मना करता है। वह बलराम जी से कहता है; कि जब आप भीम द्वारा मुझे छलपूर्वक मारा जाना स्वीकार करते हैं तो वस्तुतः मैं पराजित नहीं हुआ हूँ, अतः कुरूकुल को तिलाञ्जलि देने के लिए पाण्डवों को जीवित रहने दीजिए। दुर्योधन की यह उदारता अद्भूत है।

धराशायी दुर्योधन के पास उसका शोकाकुल परिवार जब पहुँचता है तो वह अत्यन्त धैर्यपूर्वक माता पिता और परिवार को समझाते हुए अभिमान भरे शब्दों में कहता है, कि मैं युद्ध में लड़ते हुए वीर योद्धा द्वारा सबके समक्ष मारा गया हूँ। अपनी पत्नियों को क्षात्रधर्म का स्मरण दिलाते हुए दुर्योधन कहता है, कि वीरों की स्त्रियाँ युद्ध में लड़ते हुए पति के मारे जाने पर रोती नहीं हैं। दुर्योधन मातृभक्त पुत्र है, वह अगले जन्म में भी गान्धारी का ही पुत्र होने की कामना करता है। अपने पुत्र दुर्जय को समझाते हुए दुर्योधन का कहना है, कि हमारी तरह ही पाण्डवों की भी सेवा करना तथा अम्बा कुन्ती की आज्ञा का पालन करना, इससे दुर्योधन के अदम्य साहस, धैर्य तथा विशाल हृदय का परिचय मिलता है।

छल से दुर्योधन के मारे जाने के कारण क्रुद्ध अश्वत्थामा के द्वारा पाण्डवों के निशासमर द्वारा मारने की प्रतिज्ञा करने पर दुर्योधन कहता है कि राजाओं का मान ही शरीर होता है, मैंने प्रतिष्ठा के लिए ही युद्ध ठाना था। वस्तुतः द्रौपदी का केशकर्षण, बालक अभिमन्यु का वध तथा पाण्डवों को अक्षव्याज से वन भेजना आदि जो मैंने पाण्डवों के साथ किया है उसकी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अपेक्षा पाण्डवों ने हमारे प्रति जो भी किया वह अत्यन्त अल्प है, इससे दुर्योधन के स्वाभिमान को कवि ने चित्रित किया है।

इस प्रकार ऊरुभङ्ग में दुर्योधन अपने उज्ज्वल चरित्र से धीरोदत्त नायक के रूप में प्रस्तुत किया गया है। रूपक के अन्त में अपने मान के लिए पाण्डवों के साथ किए गए अन्यायपूर्ण कार्यो का उसे स्मरण होता है, अतः अश्वत्थामा द्वारा पूछे जाने पर वह कहता है "फलमपरितोषस्य" इस प्रकार पश्चात्ताप का भाव भी उसमें द्योतित होता है। वस्तुतः दुर्योधन का चरित सर्वथा अनुकरणीय है।

बलदेव—महाकवि भास ने ऊरुभङ्ग में बलदेव को भीम और दुर्योधन में प्रवृत्त गदायुद्ध के दर्शक के रूप रङ्गमञ्च पर प्रस्तुत किया है। भगवान् कृष्ण के संकेत से भीम द्वारा किये गये गदप्रहार की चोट से दुर्योधन की जाङ्घे टूट जाने पर न्याय विरूद्ध कार्य करने वाले भीम पर अत्यन्त क्रुद्ध हो कर बलदेव जी कहते हैं इस भीम ने अपने कुल के विनयसमृद्धि को भी गर्त मे डाल दिया। दुर्योधन को धैर्यावलम्बन कराते हुए शिष्य के प्रति अत्यन्त स्नेह के कारण भीम को मारने के लिए उद्यत होते हैं, किन्तु दुर्योधन के यह कहने पर कि भीम की गदा में प्रविष्ट होकर स्वयं श्रीकृष्ण ने मुझे मारा है भीम का कोई अपराध नहीं है तब बलदेवजी शान्त हो जाते हैं। इस प्रकार बलदेव जी के न्यायप्रियता, धर्मयुद्ध के अधिष्ठाता, तटस्थ किन्तु भगवान् के प्रति आस्था तथा शिष्य के प्रति प्रेम का परिचय मिलता है।

दुर्योधन के शोकाकुल परिवार को देख कर बलदेव जी अत्यन्त दुःखी होते हैं, यहाँ तक कि नित्यस्तमित नेत्रों वाले धृतराष्ट्र को धैर्यावलम्बन कराने में समक्ष नहीं होते है।

अश्वत्थामा—भीम द्वारा किये गये गदा प्रहार से दुर्योधन की जाङ्घे टूट जाने पर क्रुद्धावस्था में अश्वत्थामा का रङ्गमञ्च पर प्रवेश होता है। अश्वत्थामा युद्धप्रिय राजाओं को सम्बोधित करते हुए कहता है छल बल से मारे जाने वाला मैं दुर्योधन नहीं हूँ, न तो कुण्ठित अस्त्रों वाला कर्ण, अपितु महारथी द्रोण का पुत्र हूँ। अपने पिता के तर्पण कृत में व्यस्त रहने के कारण ही दुर्योधन को इस अवस्था में पड़ा देख रहा हूँ। वञ्चना पूर्वक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दुर्योधन के मारे जाने से वह काफी क्षुब्ध है अतः छल प्रयोग का संकेत करने वाले श्रीकृष्ण सहित समस्त पाण्डवों को मार डालने की प्रतिज्ञा करता है। दुर्योधन के मना करने पर अश्वत्थामा का कहना है कि भीम ने तुम्हारी जङ्घों के साथ तुम्हारे अभिमान को भी नष्ट कर डाला। किन्तु मैं सर्वथा कृतप्रतिज्ञ हूँ। इस प्रकार वह निशासमर में पाण्डवों को ध्वस्त करने का हठ कर ही लेता है। वह दुर्योधन के पुत्र दुर्जय को अपने वचनों द्वारा राजा के उत्तराधिकारी के रूप में प्रतिष्ठित करता है।

दुर्योधन के समय स्वयं को वहाँ उपस्थित न रहने में पिततृर्पण को कारण बतलाने से अश्वत्थामा का कौटिल्य द्योतित हो रहा है। दुर्योधन के मना करने पर भी पाण्डवों के विनाश करने की हठ को नहीं छोड़ता है। सौप्तिक वध के लिए उद्यत होने के कारण निर्दयी है। वह दुर्योधन के शोकाकुल परिवार को सहानुभूतिपूर्ण शब्दों द्वारा सान्त्वना नहीं दिलाता है। इस प्रकार उरूभङ्ग में कवि ने अश्वत्थामा को कुटिल निर्दयी हठी तथा आत्मश्लाघी वे रूप में चित्रित किया है।

उपर्युक्त पर्यालोचन से भास के उरूभङ्ग के पात्रों का चरित कथानक के अनुरूप ही देखा जाता है।

—रामप्रभा ओझा

रथयात्रा, वि० सं० २०४३
नगवा, वाराणसी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पात्र-परिचय

पुरुष-पात्र—

सूत्रधार	—	प्रधान नट
पारिपार्श्विक	—	प्रधान नट का सहायक
राजा	—	दुर्योधन
बलदेव	—	युद्धद्रष्टा तथा दुर्योधन के गुरु
अश्वत्थामा	—	द्रोणाचार्य का पुत्र
धृतराष्ट्र	—	दुर्योधन के पिता
दुर्जय	—	दुर्योधन का पुत्र
तीनों भट	—	सैनिक

स्त्री-पात्र—

गान्धारी	—	दुर्योधन की माता
पौरवी	—	दुर्योधन की पत्नी
मालवी	—	दुर्योधन की पत्नी

—*—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

॥ श्रीः ॥

भासनाटकचक्रे

ऊरुभङ्गम्

'प्रभा' संस्कृत-हिन्दी-व्याख्योपेतम्

——*——

प्रथमोऽङ्कः

(नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः)

सूत्रधारः—

भीष्मद्रोणतटां जयद्रथजलां गान्धारराजह्रदां
कर्णद्रौणिकृपोर्मिनक्रमकरां दुर्योधनस्रोतसम् ।

---

* प्रभा *

प्रपद्य परमं देवं प्रपन्नार्तिहरं प्रभुम् ।
ऊरुभङ्गाभिधं काव्यं टीकया तनुते मया ॥

अथ तत्रभवान् महाकविर्भास ऊरुभङ्गाभिधानं रूपककाव्यं चिकीर्षुरादौ भारतीयनाट्यशास्त्रपरम्परानुसारं प्रयुज्यमानां नान्दीं सूचयन् प्रारभते—नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधार" इति ।

नान्दी=रङ्गविघ्नोपशान्तये गीतवाद्यवादनादिरूपा सम्पादिता क्रिया 'नान्दीति' कथ्यते, "दुन्दुभिस्त्वानको भेरी भम्भा नासूश्च नान्द्यपि", इति कोशवचनविचारात् । अथवा नन्दयति=हर्षयति देवादीनिति 'नान्दी' "आशीर्वचनसंयुक्ता, स्तुतिर्यस्मात्प्रयुज्यते । देवद्विजनृपादीनां, तस्मान्नान्दीति संज्ञिता" इति शास्त्रसमर्थनात् । अत्र गीतवाद्यादिप्रयुक्ता क्रियैव 'नान्दी'ति सूचितवान् महाकविर्भासः । तस्याः नान्द्या अन्ते=समाप्तौ, ततः=नान्दी-

---

(नान्दी पाठ के अनन्तर सूत्रधार का प्रवेश)

सूत्रधार—भीष्म तथा द्रोण रूपी तट से युक्त जयद्रथरूपी जल वाले गन्धारराज (शकुनि) रूप गढढ़ा है जिसमें तथा कर्ण, अश्वत्थामा, और

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तीर्णः शत्रुनदीं शरासिसिकतां येन प्लवेनार्जुनः
शत्रूणां तरणेषु वः स भगवानस्तु प्लवः केशवः ॥ १॥

समाप्त्यनन्तरं, प्रविशति=प्रवेशं करोति, सूत्रधारः=नाटकस्य व्यवस्थापकः प्रधाननटः, सूत्रं धारयतीति 'सूत्रधार' इति व्युत्पत्त्याधायकत्वात् । तल्लक्षणञ्च—"नाट्योपकरणादीनि 'सूत्रमित्यभिधीयते ।
सूत्रं धारयतीत्यर्थे सूत्रधारो निगद्यते ॥"

अन्वयः—अर्जुनः येन प्लवेन भीष्मद्रोणतटां जयद्रथजलां गान्धारराजहृदां कर्णद्रौणिकृपोर्मिनक्रमकरां दुर्योधनस्रोतसं शरासिसिकतां शत्रुनदीं तीर्णः, स प्लवः भगवान् केशवः शत्रूणां तरणेषु वः (प्लवः) अस्तु ॥१ ॥

व्याख्या—अर्जुनः=मध्यमपाण्डवः, येन प्लवेन=तरणसाधनविशेषेण नौकया, भीष्मद्रोणतटाम्–भीष्मः=शान्तनुतनयश्च, द्रोणः=द्रोणाचार्यश्चेति भीस्मद्रोणौ, तावेव तटे=तीरे, यस्याः तां जयद्रथजलाम्—जयद्रथः=सिन्धुराज एव जलम्=आपः, यस्यास्तां गान्धारराजहृदाम्—गान्धारराजः=शकुनिः "दुर्योधनमातुलः" एव हृदः=सरोवरः यत्र ताम्, कर्णद्रौणिकृपोर्मिनक्रमकराम्-कर्णः=राधेयः, द्रौणिः=अश्वत्थामा, कृपः=कृपाचार्यः, एते त्रयो यथाक्रमम् उर्मिः=तरङ्गः, नक्रः=ग्राहस्योपजातिविशेषः, मकरः= जलजन्तुविशेषः, यत्र तादृशीं कर्णद्रौणिकृपोर्मिनक्रमकराम्, दुर्योधनस्रोतसम्—दुर्योधनः=कुरुराज एव स्रोतः=प्रवाहः यस्यां ताम्, शरासिसिकताम्—शराः=वाणाः, असयः=खड्गा एव सिकता=वालुका यस्यां ताम्, शत्रुनदी—शत्रवः=कौरवा एव नद्यः यत्र तां शत्रुनदीम्, तीर्णः=पारमभूत् स प्लवः=तरणिविशेषः भगवान्=षड्विधैश्वर्यसम्पन्नः केशवः=श्रीकृष्णः,शत्रूणाम्=अरीणाम्, तरणेषु=सन्तरणेषु वः=युस्माकम्, प्लवोऽस्तु=भवतु,

---

कृपाचार्य ही क्रमशः बड़ी बड़ी लहरें, नक्र तथा मगर हैं दुर्योधन ही महान् स्रोत है, बाण, खड्ग ही बालूकामय राशि हैं, इस प्रकार के शत्रु (कौरव) रूपी नदी को मध्यमपाण्डव अर्जुन ने जिस तरणिरूप भगवान् श्रीकृष्ण के आधार पर पार किया वही भगवान् श्रीकृष्ण शत्रुओं से विजय प्राप्त करने के लिए आपके भी नौका बनें ॥ १ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एवमार्यमिश्रान्विज्ञापयामि । अये ! किन्नु खलु मयि विज्ञापनव्यग्रं शब्द इव श्रूयते ? अङ्ग ! पश्यामि ।

(नेपथ्ये)

एते स्मो भोः ! एते स्मः ।

सूत्रधारः— भवतु, विज्ञातम् ।

(प्रविश्य)

पारिपार्श्विकः—भाव कुतो नु खल्वेते,

"साङ्गमङ्गिनो रूपणात् समस्तवस्तुविषयात्मकं रूपकालङ्कारः" । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तं, "सूर्याश्वैर्मसजस्तताः सगुरवः" इति लक्षणसमन्वयात् ।

एवमिति । एवम्=अनेन प्रकारेण, आर्यमिश्रान्=मान्यसहृदयान्, विज्ञापयामि=निवेदयामि । अये=आश्चर्यसूचकं पदमिदम्, किन्नु खलु=कस्तावद् हेतुः, मयि=सूत्रधारे, विज्ञापनव्यग्रे=निवेदनायोत्सुके सति, शब्द इव अस्पष्टो ध्वनिविशेषः, श्रूयते=श्रुतिगोचरो भवति । अङ्ग=हन्त, पश्यामि=कीदृशोऽयं ध्वनिविशेष इति जानामि ।

(नेपथ्ये) नटानां वेशविन्यासस्थानं नेपथ्यमित्युच्यते । तत्र

एते इति । एते=पुरुषा वयम्, स्मः=स्थिता स्मः ।

प्रविश्य रङ्गभूमिमागत्य । पारिपार्श्विकः=प्रधानपात्रविशेषः ।

भाव इति । भाव=आदरसूचकं सम्बोधनपदम्, तच्च पारिपार्श्वकेन सूत्रधाराय प्रयुज्यते "सूत्रधारं वदेद्भाव इति वै पारिपार्श्वकः" इति निर्देशात् ।

कुतो न इति । कुतो न=कस्माद्धेतो एते=पुरुषविशेष । इत्यग्रिम-

मैं पूज्य सहृदयों से निवेदन करता हूँ । अरे ! निवेदन के लिए व्यग्र होते हुए मुझे शब्द सुनाई दे रहा है, अच्छा, देख रहा हूँ ।

[नेपथ्य में]

अरे ! हम हैं, हम हैं ।

सूत्रधार—अच्छा, मैंने जान लिया ।

[प्रवेश कर]

पारिपार्श्विक—श्रीमान् ! ऐसे क्यो ?

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्वर्गार्थमाहवमुखोद्यतगात्रहोमा
नाराचतोमरशतैर्विषमीकृताङ्गः ।
मत्तद्विपेन्द्रदशनोल्लिखितैः शरीरै-
रन्योन्यवीर्यनिकषाः पुरुषा भ्रमन्ति ॥ २ ॥

सूत्रधारः—मार्ष ! किं नावगच्छसि । तनयशतनयशून्ये[1] दुर्योधना-

---

सम्बन्धोऽपेक्ष्यते ।

अन्वयः—स्वर्गार्थम् आहवमुखोद्यतगात्रहोमा, नाराचतोमरशतैः विषमीकृताङ्गाः, मत्तद्विपेन्द्रदशनोल्लिखितैः शरीरैः अन्योऽन्यवीर्यनिकषाः पुरुषाः भ्रमन्ति ॥ २ ॥

व्याख्या—स्वर्गार्थम् = स्वर्लोकप्राप्तिकामनया, आहवमुखोद्यतगात्रहोमा—आहवस्य = युद्धस्य, मुखे = मध्ये, उद्यतः = प्रयुक्तः, गात्राणाम् होमः = आहुतिर्यैस्ते वीराः नाराचतोमरशतैः—नाराचानाम् = अयोमयः शस्त्रविशेषाणां, तोमराणाम् = तन्नामकशस्त्राणां, शतैः = शतसंख्याभिः, विषमीकृताङ्गाः—विषमीकृतानि = विभिन्नव्रणैः नतोन्नतानि, अङ्गानि = शरीराणि येषां ते, किं वा मत्तद्विपेन्द्रदशनोल्लिखितैः-मत्तानाम् = मदमस्तानाम् द्विपेन्द्राणाम् = गजेन्द्राणाम् यानि दशनानि = दन्तास्तैः उल्लिखितैः = आहतवशाच्चिह्नितैः, शरीरैः = देहैः, परिलक्षिताः सन्तः, अन्योऽन्वीर्यनिकषाः—अन्योऽन्यस्य = परस्परस्य, वीर्यम् = पराक्रम एव निकषाः = परीक्षणपाषाणो येषां ते पुरुषाः = पराक्रमशालिनः राजपुरुषाः, भ्रमन्ति = इतस्ततः युद्धस्थले भ्रमणं कुर्वन्ति ॥ २ ॥

सूत्रधार—मारिष इति—सूत्रधारप्रयुक्तं पारिपार्श्विकाय सम्बोधनम् ।

स्वर्गप्राप्ति की कामना से सङ्ग्राम रूपी अग्नि के बीच अपने देह की आहुति करने वाले नाराच, तोमर आदि सैकड़ों शस्त्रों से जिनके शरीर क्षत विक्षत हो गये हैं, तथा मदमस्त हस्तियों के दातों से कटे हुए शरीर वाले आपस में एक दूसरे की बलपरीक्षा में संलग्न होकर इधर उधर घूम रहें हैं ॥ २ ॥

सूत्रधार—मारिष ! क्या तुम नहीं जानते कि धृतराष्ट्र के पक्ष में

---

१. 'तनयशतनयनशून्ये' इति वा पाठः ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वशेषे धृतराष्ट्रपक्षे, पाण्डवजनार्दनावशेषे युधिष्ठिरपक्षे, राज्ञां शरीर-समाकीर्णे समन्तपञ्चके,

एतद्रणं हतगजाश्वनरेन्द्रयोधं
सङ्कीर्णलेख्यमिव चित्रपटं प्रविद्धम्।
युद्धे वृकोदरसुयोधनयोः प्रवृत्ते
योधा नरेन्द्रनिधनैकगृहं प्रविष्टाः ॥ ३ ॥

किन्नेति—किं नावगच्छसि=कथं न जानासि। तनयानां=आत्मजानां शतमिति तनयशतं तेन प्रयुक्तो यो नयः=सामादिनीतिः तच्छून्ये=निष्फलिते, दुर्योधन एव अवशिष्टः यस्मिन् धृतराष्ट्रस्य पक्षे। धृतराष्ट्रपुत्रै प्रयुक्ता अपि सामादामादयो नीतयः शत्रुशमनेऽसफला जाता, अतो मृतेषु शतभ्रातृषु दुर्योधन एव कौरवपक्षे जीवितोऽस्ति इति भावः। "तनयशतनयन-शून्ये" इति पाठभेदे तु—तनयानाम्=आत्मजनाम् शतम्=शतसंख्याकं तदेव नयने=आक्षिणी, ताभ्यां शून्ये=अभावे धृतराष्ट्रपक्षे इत्येवं योजनीयम्। पाण्डवजनार्दनावशेषे–पाण्डवाः= युधिष्ठिरादयः पञ्च पाण्डुपुत्राः, जनार्दनः=श्रीकृष्ण इमे अवशिष्टा=अवशेषाः, यत्र तस्मिन् युधिष्ठिरपक्षे=पाण्डवानां पक्षे, राज्ञाम्=नृपतीनां "मृतानामिति शेषः तेषां शरीरैः=देहैः, समा-कीर्णे=व्याप्ते सति सामन्तपञ्चके=कुरुक्षेत्राख्ययुद्धस्थले इत्यग्रिमश्लोकेन सम्बद्ध्यते—

अन्वयः—वृकोदरसुधनयोः युद्धे प्रवृत्ते योधा हतगजाश्वनरेन्द्रयोधं नरेन्द्रनिधकैकगृहं प्रविद्धम् सङ्कीर्णलेख्यं चित्रपटम् इव एतत् रणं प्रविष्टाः ॥ ३ ॥

व्याख्या—वृकोदरः=वृकनामाग्निरस्त्युदरे यस्य स भीमसेनः, सुयोधनः=कुरुराजः तयोः युद्धे=सङ्ग्रामे किं वा गदायुद्धे, प्रवृत्ते=

उनके सौ पुत्र मारे गये और एक मात्र दुर्योधन ही जीवित बचा है तथा युधिष्ठिर के पक्ष में पाँचो पाण्डव सहित श्रीकृष्ण के अवशिष्ट रहने पर मृत राजाओं के शरीर से आच्छादित कुरुक्षेत्र में भीम एवं दुर्योधन में परस्पर गदा युद्ध प्रारम्भ होने पर यह युद्धक्षेत्र जो राजाओं की मृत्यु का एकमात्र

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(निष्क्रान्तौ)

स्थापना

—*—

(ततः प्रविशन्ति भटास्त्रयः)

सर्वे—एते स्मो भोः ! एते स्मः ।

प्रथमः—

प्रस्तुते, हताः=शस्त्रैः प्राप्तप्रहाराः, गजाः=हस्तिनः, अश्वाः=वाजिनः, नरेन्द्राः=राजानः, योद्धाः=भटाः यत्र तत् नरेन्द्रनिधनैकगृहम्—नरेन्द्राणां=नृपतीनां निधनस्य,=विलयस्य, एकमात्र गृहम्=स्थानम् यत् तत् प्रविद्धम्=प्रकर्षेण विद्धं प्रस्फोटितं वा, सङ्कीर्णलेख्यम्=परस्परं संलग्नानि लेख्यानि=चित्रितानि यत्तत् चित्रपटम्=आलेख्यस्थानम् इव=सदृशम् एतत्=कुरुक्षेत्रामिधं रणम्=रणक्षेत्रम्, प्रविष्टाः=प्रवेशमकुर्वन् विविध-शलाकाभिश्चित्रितं सच्चित्रं यथा प्रविद्धमवलोक्यते तथा विभिन्नास्त्रैः प्रहृतानि शरीराणि इतस्ततो व्याप्तानि यत्र तद्रणस्थलमपि प्रविद्धमवभासते इत्युपमा । वृत्तम् वसन्तलिका ॥ ३ ॥

स्थापना—वर्णनीयविषयस्य संक्षिप्तप्रस्तुतिः स्थापना कथ्यते, इत्यस्यापर-पर्यायौ प्रस्तावनामुखावपि स्तः ।

स्थापनानन्तरं त्रयो योद्धारः रङ्गस्थलं प्रविशन्ति ।

सर्वे=त्रयो योद्धारः,—एते=भटाः । तत्र प्रथमो योद्धा—

गृह स्वरूप है जहाँ मरे हुए हाथी, घोड़े, राजा तथा सैनिक समूह से आक्रान्त होने के कारण रेखाङ्कित चित्रपट के समान प्रतीत हो रहा है, उस समरभूमि में सैनिकगण प्रवेश कर रहे हैं ॥ ३ ॥

(दोनों चले जाते हैं)

स्थापना

(इसके बाद तीन योद्धा प्रवेश करते हैं)

सभी—अये ! हमलोग यहाँ हैं, यहाँ हैं ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वैरस्यायतनं बलस्य निकषं मानप्रतिष्ठागृहं
युद्धेष्वप्सरसां स्वयंवरसभां शौर्यप्रतिष्ठा नृणाम् ।
राज्ञां पश्चिमकालवीरशयनं प्राणाग्निहोमक्रतुं
सम्प्राप्ता रणसंज्ञमाश्रमपदं राज्ञां नभःसङ्क्रमम् ॥४॥

अन्वयः—(वयम्) वैरस्य आक्वथनम्, बलस्य निकषं, मानप्रतिष्ठां, युद्धेषु अप्सरषां स्वयम्वरसभां नृणाम् शौर्यप्रतिष्ठां, राज्ञां पश्चिमकालवीरशयनं, प्राणिाग्निहोमक्रतु नम.सङ्क्रमं रणसंज्ञम्, आश्रमपदं सम्प्राप्ता ॥ ४ ॥

व्याख्या—वैरस्य=शत्रुतायाः, आयतनम्=गृहम्, पाठान्तरे आक्वत्थनम्=दर्पोक्तिः बलस्य=पराक्रमस्य, निकषम्=परीक्षणप्रस्तरः, मानः=स्वाभिमानः प्रतिष्ठा=अन्येन यत् प्राप्तसम्मानम् तयोः मानप्रतिष्ठयोः, गृहम्=स्थैर्यस्थलम्, युद्धेषु=सङ्ग्रामाङ्गणेषु, अप्सरसां=देवाङ्गनानाम्, स्वयम्वरसभां=स्वयं वरयतीति स्वम्वरस्तदर्थमाहुता या सभा तद्रूपमाश्रमपदमित्यग्रेण सम्बन्धः । नृणाम्=मानवानाम्, शौर्यम्=शूरता च प्रतिष्ठा=सम्मानं च इति शौर्यप्रतिष्ठाम्, राज्ञाम्=भूपतीनाम्, पश्चिमकाले=अन्तकाले, वीरशयनम्=वीरतासूचिकाशय्या, प्राणानाम् अग्निहोमाभिधं क्रतुं=यज्ञम्, नभःसङ्क्रमम्=अत्र नभः इति पदेन सूर्यलोकं सङ्केतयति तेन सङ्क्रमितं रणसंज्ञम्=युद्धनामकम्, आश्रमपदम्=आश्रमस्थलम्, सम्प्राप्ताः=आगताः वयमिति आक्षिप्यते । अत्रैकस्मिन्नेव रणनामनि आश्रमपदे आयतनादीनामनेकधर्माणामारोपदर्शनान्मालारूपकालङ्कारः । शार्दूलविक्रीडितञ्च वृत्तम् ॥ ४ ॥

पहला—हमलोग ऐसे सङ्ग्राम संज्ञक आश्रम स्थल में पहुँच आये हैं, जो शत्रुता के कारण योद्धाओं का परस्पर होने वाले आक्षेप कटाक्ष आदि का स्थान है, शूरता की कसौटी है, मान और प्रतिष्ठा का निकेतन है, समर में अपराङ्मुख योद्धाओं का वरण करने के लिए स्वर्गस्त्रियों की स्वयम्बर सभा है, पुरुषों के वीरता का प्रतिष्ठास्थल है, राजाओं की अन्तकालीन वीरशय्या है, प्राणाहुति के लिए अग्निहोत्र नामक यज्ञ तथा मृत भूपतियों को सूर्यलोक पहुँचने का मानो साधन है ॥ ४ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

द्वितीयः—सम्यग्भवानाह ।

उपलविषमा नागेन्द्राणां शरीरधराधरा
दिशि दिशि कृता गृध्रावासा हतातिरथा रथाः ।
अवनिपतयः स्वर्गं प्राप्ताः क्रियामरणे रणे
प्रतिमुखमिमे तत्तत्कृत्वा चिरं निहताहताः ॥ ५ ॥

अन्वयः—क्रियामरणे रणे नागेन्द्राणां शरीरधराधरा उपलविषमा दिशि दिशि गृध्रावासा कृताः रथाः हतातिरथाः अवनिपतयः स्वर्गं प्राप्ताः, इमे प्रतिमुखम् निहता चिरम् तत् तत् कृत्वा हताः ॥ ५ ॥

व्याख्या—क्रियामरणे=परस्परं शस्त्रप्रहारादिक्रियया मरणम्=मृत्युः यस्मिन् तस्मिन् रणे=सङ्ग्रामे, नागेन्द्राणाम्=करिवराणाम्, शरीरधराधरा—शरीराणि=देहा एव धराधरा=धरा=पृथ्वी तदाधृताः धराः=पर्वताः, उपलविषमाः-उपलैः=पाषाणखण्डैः विषमा=उच्चावचा, अपि च दिशि दिशि=प्रतिदिशम्, गृध्रावासा—गृध्राः= पक्षिविशेषास्तैः कृता आवासा=निवासस्थलानि, रथा=अश्ववाहनानि, हतातिरथाः—हताः=मरणं प्राप्ताः अतिरथाः=महारथिनो योद्धारः, अवनिपतयः=भूपतयः स्वर्गं=देवलोकं, प्राप्ताः=गता, इमे=योद्धारः, प्रतिमुखम्=मुखं मुखं प्रति वर्तत इति प्रतिमुखं आमने-सामने इति लोकभाषायाम्, निहताः=परस्परं कृतप्रहारा चिरं=बहुकालं यावत्=नानास्त्रप्रयोगरूपं व्यापारं कृत्वा हताः=मृता इत्यर्थः । अत्र "धरा-रथा-रणे-हतादीनां पदानामावृत्तित्वेऽपि भिन्नार्थकत्वाद् यमकालङ्कारः । "रसयुगहयैर्न्सौ म्रौ स्लौ गो यदा हरिणी तदा" इति लक्षणसमन्वयाद् 'हरिणी' वृत्तम् ॥ ५ ॥

दूसरा—आपने ठीक कहा है ।

इस समरभूमि में मृत गजेन्द्रों के शरीर, पर्वत की भाँति प्रतीत होते हैं, शव मांस का अशन करने वाले गिद्धों ने प्रत्येक दिशाओं में अपना आवास बना लिया है । महारथी योद्धाओं के मारे जाने के कारण रथ रिक्त पड़े हुए हैं । मरे राजा स्वर्ग सिधार गये हैं तथा योद्धागण एक दूसरे पर परस्पर शस्त्राघात करते हुए गिर कर मरे पड़े हैं ॥ ५ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तृतीयः—एवमेतत् ।

करिवरकरयूपो बाणविन्यस्तदर्भो
हतगजचयनोच्चो वैरवह्निप्रदीप्तः ।
ध्वजविततवि'तानः सिंहनादोच्चमन्त्रः
पतितपशुमनुष्यः संस्थितो युद्धयज्ञः ॥ ६ ॥

अन्वयः—करिवरकरयूपः बाणविन्यस्तदर्भः हतगजचयनोच्चः वैरवह्निप्रदीप्तः ध्वजविततवितानः सिंहनादोच्चमन्त्रः पतितपशुमनुष्यः युद्धयज्ञः संस्थितः ॥ ६ ॥

व्याख्या—करिवराणाम्=गजेन्द्राणाम्, कराः=शुण्डदण्डा एव यूपाः=यज्ञप्रयुक्ता स्तम्भा एव यत्र स करिवरकरयूपः, बाणाः=शराः एव विन्यस्ताः=प्रकीर्णाः, दर्भाः=कुशाः यत्र स बाणविन्यस्तदर्भः, हताः=उपरताः गजाः=हस्तिनः एव चयनानि=पुष्पसमूहस्तै उच्चः=उत्थितः, वैरस्य=शत्रुतायाः, वह्निः=अग्निः यत्र, प्रदीप्तः=प्रज्ज्वलितः, ध्वजाः=पताका एव विततः=विस्तृता विस्तृताः वितानाः पाठान्तरे तु विमानाः=स्वर्गगमनसाधनानि यत्र, यत्रेति युज्यते, सिंहनादाः=वीराणां सिंहवद्गर्जना एव उच्चमन्त्र=उच्चैरुदात्तो मन्त्रो यत्र सः पतितपशुमनुष्यः—पतिता=मृत्वा भूमौ पतिता पशवः=बलिकर्माणि पशुरूपेण-प्रयुक्ता मनुष्याः=परिमानवा यत्र स युद्धयज्ञः=सङ्ग्रामाध्वरः, संस्थितः=इदानीमवरुद्धः । अत्रापि रूपकालङ्कारः । "ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलौकै" रिति लक्षणानुसरणान्मलिनीवृत्तम् ॥ ६ ॥

तीसरा—यह ऐसा ही है ।

जिस युद्धरूपी यज्ञ में बड़े बड़े हाथियों के शुण्डदण्ड ही यूपस्थानीय हैं, इधर-उधर बिखरे हुए बाण ही कुशा हैं, मृत हस्तिसमूह ही मानो पुष्पोंकी ढेर है, शत्रुता ही दहकती हुई अग्नि है, ध्वजा ही फैला चंदोवा है, सैनिक की सिंहनाद के समान गर्जना ही पवित्र मन्त्रोच्चारण है तथा मरे हुए मनुष्य ही पशु रूप बलि हैं, वह अब समाप्त ही होने वाला है ॥ ६ ॥

---

१. "विमानः" इति पाठान्तरम् ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रथमः—इदमपरं पश्येतां भवन्तौ ।

एते परस्परशरैर्हृतजीवितानां
देहै रणाजिरमहीं समुपाश्रितानाम् ।
कुर्वन्ति चात्र पिशितार्द्रमुखा विहङ्गा
राज्ञां शरीरशिथिलानि विभूषणानि ॥ ७ ॥

द्वितीयः —

प्रसक्तनाराचनिपातपातितः समग्रयुद्धोद्यतकल्पितो गजः ।
विशीर्णवर्मा सशरः सकार्मुको नृपायुधागारमिवावसीदति ॥ ८ ॥

अन्वयः—अत्र एते पिशितार्द्रमुखाः विहङ्गाः परस्परशरैः हृतजीवितानां देहैः रणाजिरमहीं समुपाश्रितानाम् राज्ञां विभूषणानि शरीरशिथिलानि कुर्वन्ति ॥ ७ ॥

व्याख्या—अत्र = युद्धभूमौ, एते=अग्रे विद्यमानाः पक्षिणः, पिशितार्द्रमुखाः—पिशितेन=अभिनवमांसखण्डेन, आर्द्रम्=सरसम् मुखम्=चञ्चुपुटाः येषां ते विहङ्गाः=पक्षिणः परस्परशरैः—परस्परस्य=अन्योऽन्यस्य, शरैः=सायकैः, हृतजीवितानाम्—हृतानि=विनष्टानि, जीवितानि=असवो येषां तेषाम्, देहैः=मृतशरीरैः रणाजिरम्=सङ्ग्रामाङ्गणस्थानम्, समुपाश्रितानाम्—समागतानां, राज्ञाम्=नृपतीनां, विभूषणानि=मुकुटकेयूरादीन्याभरणानि, आकृष्य शरीरशिथिलानि—शरीरात्=देहात्, शिथिलानि कुर्वन्ति=प्रतिपादयन्ति ॥ वसन्ततिलका वृत्तम् ।

अन्वयः—प्रसक्तनाराचनिपातपातितः समग्रयुद्धोद्यतकल्पितः, विशीर्णवर्मा सशरैः सकार्मुकः गजः नृपायुधागारम् इव अवसीदति ॥ ८ ॥

व्याख्या—प्रसक्तनाराचनिपातपातितः — प्रसक्तानाम् = प्रतियोद्धारं

पहला—और आप दोनों यह भी देखिये ।

मांस से आर्द्र मुख वाले ये पक्षी परस्पर शस्त्रप्रहार से मृत्यु को प्राप्त सङ्ग्रामाङ्गण में पड़े हुए राजाओं के शरीर से आभूषणों को खींच रहे हैं ॥ ७ ॥

दूसरा—युद्ध के लिए सर्वविध सजाये गये उत्सुक हाथी के शरीर पर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तृतीयः—इदमपरं पश्येतां भवन्तौ ।

माल्यैर्ध्वजाग्रपतितैः कृतमुण्डमालं
लग्नैकसायकवरं रथिनं विपन्नम् ।
जामातरं प्रवहणादिव बन्धुनार्यो
हृष्टाः शिवा रथमुखादवतारयन्ति ॥ ९ ॥

निहन्तुं प्रक्षिप्तानाम्, नाराचानाम्=धनुर्विशेषाणाम्, निपातेन=प्रक्षेपेण, पातितः=भूमौ पातितः, समग्रयुद्धोद्यतकल्पितः—समग्राणां=समस्तानां, युद्धानां कृते उद्यतः=उत्साहान्वितः सन् आत्मनां कल्पितः=सज्जीकृतः; विशीर्णवर्मा—विशीर्णम्=शत्रुणां प्रहारै प्रस्फुटितं वर्म=कवचं तस्य सः, सशरैः=वाणसहितोऽस्ति इति सशरः, सकार्मुकः, गजः=हस्ती, नृपायुधागारम्—नृपाणाम्=राज्ञाम्, अयुधागारम्=शस्त्रास्त्रगृहम् इव=सदृशम्, अवसीदति=विषण्णो भवति । अत्र वंशस्थवृत्तम्–"जतौ तु वंशस्थमुदीरितौ जरौ" इति लक्षणात् ॥ ८ ॥

अन्वयः—हृष्टाः शिवाः ध्वजाग्रपतितैः माल्यैः कृतमुण्डमालं रत्नैकसायकधरं विपन्नम् रथिनं बन्धुनार्यः प्रवहणात् जामातरम् इव रथमुखात् अवतारयन्ति ॥ ९ ॥

व्याख्या— हृष्टाः=प्रफुल्लिताः, शिवाः=शृङ्गालस्त्रियः, ध्वजाग्रपतितैः—ध्वजानाम्=केतूनाम् अग्रतः, पतितैः=स्खलितैः, माल्यैः=पुष्प-

---

निशाना साध कर निरन्तर बाण की वर्षा की गयी है, जिसके फलस्वरूप उसका कवच टूट गया है, उस पर बाण लगे हुए है, तथा धनुष पड़े है, जिससे यह हाथी मानो राजाओं के शस्त्रागार के समान नष्ट भ्रष्ट हो रहा है ॥ ८ ॥

तीसरा—और आप दोनों इसे भी देखें ।

आनन्दमग्न होकर शृङ्गालवधुयें पताका के अग्रभाग से गिरी हुई मालओं से अपने शिर को संजोती तीक्ष्ण बाणों से क्षत शरीर वाले रथी को रथ से खींचती हुई ऐसी प्रतीत हो रही हैं, मानो सम्बन्धियों की स्त्रियाँ जमाता को पालकी से नीचे उतार रहीं हैं ॥ ९ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सर्वे—अहो नु खलु निहतपतितगजतुरगनररुधिरकलिलभूमिप्रदेशस्य विक्षिप्तवर्मचर्मातपत्रचामरतोमरशरकुन्तकवचकबन्धादिपर्याकुलस्य शक्तिप्रासपरशुभिण्डिपालशूलमुसलमुद्गरवराहकर्णकणपकर्पणशङ्कुत्रासिगदादिभिरायुधैरवकीर्णस्य समन्तपञ्चकस्य प्रतिभयता।

स्रजैः, कृतमुण्डमालम् येन, तम्, रत्नैकसायकधरम्–रत्नैः=विभिन्नमणिभिः युक्तः एकः सायकेषु=शरेषुः तस्य वरः=उत्तमः यः तम्, पाठान्तरे तु–सायकस्य=शरस्य, धरः=धारकः इति सायकधरः एकश्चासौ सायकवरश्चेति एकसायकवरः, लग्नः=आविद्धः यस्मिन् स तम्, विपन्नम्=विषण्णं प्राणरहितं वा, रथिनम्=रथारूढं जनं योद्धारं वा, बन्धुनार्यः=सम्बन्धिस्त्रियः, प्रवहणात्=शिविकातः, जामातरम्=पुत्रीपतिम् इव=सदृशं, रथमुखात्=रथस्य अग्रतः, अवतारयन्ति=अधः भूमौ आनयन्तीत्यर्थः। अत्रोपमालङ्कारः वसन्ततिलका वृत्तञ्च ॥ ९ ॥

सर्वे इति। 'अहो' इति विस्मयजनकं विशेषणम्। निहतपतितगजतुरगनररुधिरकलिलभूमिप्रदेशस्य–निहताः=शस्त्रास्त्रैः प्रहृताः अतएव मृताः सन्तः पृथिव्यां पतिताः गजाः=करिणः, तुरगाः=वाजिनः, नराः मनुष्याश्च ये तेषां रुधिरेण=शोणितेन, कलिलः=पङ्किलः, भूमिप्रदेशः=भुभागः यत्र तस्य, विक्षिप्तवर्मचर्मातपत्रचामरतोमरशरकुन्तकवचकबन्धादिपर्याकुलस्य-विक्षिप्तानि=यत्र तत्रावकीर्णानि, वर्माणि=कवचनानि, चर्माणि अस्त्रविशेषः 'ढाल' इति हिन्दी भाषायां कथ्यते, आतपत्राणि=छत्राणि, चामराणि=ग्राहिणी, तोमराणि=लौहनिर्मिता दण्डाः, "शबरी" इति लोके कथ्यते, शराः=बाणाः, कुन्ताः=भल्लकाः कवचा=उराच्छादकाः कबन्धा=छिन्न शिरांसि शरीराणि, आदिपदादन्यानि क्षत-विक्षतान्यङ्गानि यानि तैः

सभी योद्धा—अरे यह कुरुक्षेत्र अत्यधिक भयानक लग रहा है, क्योंकि यहाँ का भूप्रदेश मृत हाथी, घोर मनुष्यों के रक्त से व्याप्त है तथा इधर-उधर बिखरे पड़े कवच, ढाल, तोमर, बाण, भाला कवच आदि अस्त्रों से भरा पड़ा है एवं बरछी, प्रास, परशु, भिण्डिपाल, शूल, मुसल, मुद्गर, वराहकर्ण, शङ्कु, और भयंकर गदा आदि अनेक आयुध यहाँ बिखरे हुए हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रथमः—इह हि,

रुधिरसरितो निस्तीर्यन्ते हतद्विपसङ्क्रमा
नृपतिरहितैः स्रस्तैः सूतैर्वहन्ति रथान् हयाः ।
पतितशिरसः पूर्वाभ्यासाद् द्रवन्ति कबन्धकाः
पुरुषरहिता मत्ता नागा भ्रमन्ति यतस्ततः ॥ १० ॥

पर्याकुलस्य = आच्छादितस्य, शक्तिप्रासहाटकभिण्डिपालशूलमुसलमुग्दरवराहकर्णक पकण शङ्कुत्रासिगदादिभिरायुधैराकीर्णस्य = शक्तिप्रभृति गदां यावद् विभिन्नायुधैः = शस्त्रास्त्रैः, अवकीर्णस्य व्याप्तस्य समन्तपञ्चकस्य = कुरुक्षेत्रस्य, प्रतिभयता = भयकारित्वम् इति ।

अन्वयः—हतद्विपसङ्क्रमाः रुधिरसरितः निस्तीर्यन्ते, नृपरहितैः सूतैः हयाः रथान् वहन्ति, पतितशिरसः कबन्धकाः पूर्वाभ्यासाद् द्रवन्ति, पुरुषरहिता मत्ता नागा यतः ततः भ्रमन्ति ॥ १० ॥

व्याख्या—हताः = उपरताः, द्विपाः = गजाः एव सङ्क्रमाः = स्रोतरूपाः रुधिरसरितः = शोणितनद्यः, निस्तीर्यन्ते पारं गम्यते 'शूरैरि'ति शेषः, नृपरहितैः = नृपतिभिः रहितैः = शून्यैः, अपि च स्रस्तैः = मृतत्वादधोगच्छद्भिः सूतैः = सारथिभिः अभिलक्षिताः हयाः = अश्वाः, रथान् = स्यन्दनान्, वहन्ति = कर्षन्ति नयन्ति वा, पतितशिरसः = शस्त्राणां प्रहारेण छिन्नानि किं वा अधोगतानि शिरांसि येषां ते कबन्धाः = शिरशून्याः देहाः, पूर्वाभ्यासात् = शिरोऽभावात् प्राक् सञ्चरणादिक्रियारूपो योऽभ्यासः तद्वशात्, द्रवन्ति = इतस्ततो धावन्ति, पुरुषरहिता = वाहकपुरुषैः विहीनाः, मत्ताः = मदोमन्ताः, नागाः = हस्तिनः, यतस्ततः = यत्र तत्र, भ्रमन्ति = निरङ्कुशा

पहला—इस रणभूमि में—

मरे हुए हाथियों के शरीर से निकले रक्त प्रवाह वाली नदियाँ बह रही हैं, घोड़े, राजाओं से शून्य एवं सारथियों रहित रथों को खींच रहे हैं। कट कर गिरे हुए शिर वाले क्षत विक्षत शरीर, पूर्वाभ्यास के कारण इधर उधर भाग दौड़ कर रहे हैं। सवारों के अभाव में मदोन्मत हाथी यत्र तत्र भ्रमण कर रहे हैं ॥ १० ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

द्वितीयः—इदमपरं पश्येतां भवन्तौ। एते,

गृध्रा मधूकमुकुलोन्नतपिङ्गलाक्षा
दैत्येन्द्रकुञ्जरनताङ्कुशतीक्ष्णतुण्डाः।
भान्त्यम्बरे विततलम्बविकीर्णपक्षा
मांसैः प्रवालरचिता इव तालवृन्ताः॥ ११॥

भूत्वा गच्छन्तीति। हरिणीछन्दः॥ १०॥

अन्वयः—मधूकमुकुलोन्नतपिङ्गलाक्षाः दैत्येन्द्रकुञ्जरनताङ्कुशतीक्ष्णतुण्डाः विततलम्बविकीर्णपक्षा गृध्राः अम्बरे मांसै प्रवालरचिताः तालवृन्ता इव भान्ति॥ ११॥

व्याख्या—मधूकमुकुलोन्नतपिङ्गलाक्षाः—मधूकस्य=मधुवृक्षस्य 'महुआ' इति लोकप्रसिद्धस्य मुकुलवत्=कुड्मलसदृशः, उन्नतानि=किञ्चिदुच्चत्वमाप्तानि पिङ्गलानि=पीतवर्णानि, अक्षीणि=चक्षूंषि येषां ते, दैत्येन्द्रकुञ्जरनताशङ्कुशतीक्ष्णतुण्डाः दैत्येन्द्रस्य=असुराधिपस्य वलेर्यः कुञ्जरः=गजः तं शासितुं यो नताङ्कुशः नतोऽग्रभागो यस्य तादृशोऽङ्कुशस्तद्वत् तीक्ष्णानि तुण्डानि=मुखानि येषां ते, विततलम्बविकीर्णपक्षाः—विततः=अतिदीर्घाः, अतएव लम्बाः=लम्बायमानाः, विकीर्णाः=प्रसारिताः पक्षाः=हयाः येषां ते, गृध्राः=गृद्धाः, अम्बरे=आकाशे, मांसै=मांसखण्डैर्युक्ताः प्रवालरचिताः=प्रवालैर्विद्रुमणिभिः निष्पादिताः, तालवृन्ताः=तालनाम्नो वृक्षस्य विरचितं वृन्तं=व्यजनम्, इव=सदृशं, भान्ति=शोभन्ते। अत्र 'वसन्ततिलका' वृत्तं वर्तते॥ ११॥

दूसरा—आप दोनों यह भी देखें

ये महुए की कालिका की भाँति बड़े बड़े एवं पीली आँखो वाले दैत्यराज बलि के हाथी को वश में करने के लिए प्रयुक्त अंकुश के समान तीक्ष्ण चोंच वाले तथा फैले हुए लम्बे पंखों वाले गिद्ध अपने मुख में मांस के टुकड़े को लेकर उड़ते हुए प्रवाल मणि से शने ताड़ के पंख के समान प्रतीत हो रहे हैं॥ ११॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तृतीयः—

एषा निरस्तहयनागनरेन्द्रयोधा
व्यक्तीकृता दिनकरोग्रकरैः समन्तात् ।
नाराचकुन्तशरतोमरखड्गकीर्णा
तारागणं पतितमुद्वहतीव भूमिः ॥ १२ ॥

प्रथमः—अहो ईदृश्यामप्यवस्थायामविमुक्तशोभा विराजन्ते क्षत्रियाः । इह हि,

---

अन्वयः—निरस्तहयनागनरेन्द्रयोधाः, दिनकरोग्रकरैः समन्तात् व्यक्तीकृताः, नाराचकुन्तशरतोमरखड्गकीर्णा एषा भूमिः पतितं तारागणम् उद्वहति इव ॥ १२ ॥

व्याख्या—निरस्तहयनागनरेन्द्रयोधाः—निरस्ता = उपरताः हयाः = अश्वाः, नागाः = गजाः, नरेन्द्राः = नृपतयः, योधाः = सैनिकाः यत्र सा, दिनकरोग्रकरैः—दिनकरस्य = सूर्यस्य- उग्रकरैः = प्रचण्डांशुभिः, समन्तात् = परितः, व्यक्तीकृताः = प्रकाशिताः, नाराचकुन्तशरतोमरखड्गै विविधास्त्रैः कीर्णाः = आच्छादिता व्याप्ता वा, एषा भूमिः = पुरोदृश्यमाना युद्धभूमिः, पतितम् = गगनात् स्खलितं, तारागणम् = तारकसङ्घम् उद्वहति = दधाति इव । अत्रोत्प्रेक्षालङ्कारः, वसन्ततिलकावृत्तम् ॥ १२ ॥

प्रथम इति । "अहो" इत्याश्चर्यसूचकं पदम् । ईदृश्यामपि = पञ्चत्वमवाप्तायामपि, अवस्थायाम् = दशायाम्, अविमुक्तशोभाः = अत्यक्तप्रभाः क्षत्रियाः = राजन्यः, विराजन्ते = शोभन्ते । इह हि = यतः—

तीसरा—मारे गये घोड़े, हाथी, राजाओं तथा सैनिकों से व्याप्त सूर्य की तीक्ष्ण किरणों से प्रकाशित चारों तरफ बिखरे हुए नाराच, शर, कुन्त तोमर आदि शस्त्रों वाली यह समरभूमि, मानो आकाश से टूट कर गिरे हुए तारासमूह की शोभा धारण करती हुई दीख रही हैं ॥ १२ ॥

पहला—वाह ! इस अवस्था (मृतावस्था) में भी क्षत्रियों के शरीर में कांति विद्यमान है । क्योंकि—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्रस्ते[1]द्वर्तितनेत्रषट्पदगणा ताम्रोष्ठपत्रोत्करा
भ्रूभेदाञ्चितकेसरा स्वमुकुटव्याविद्धसंवर्तिका ।
वीर्यादित्यविबोधिता रणमुखे नाराचनालोन्नता
निष्कम्पा स्थलपद्मिनीव रचिता राज्ञामभीतैर्मुखैः ॥१३॥

अन्वयः—रणमुखे राज्ञाम् अभीतैः मुखै एषा सत्रो-(त्त्वो) द्वर्त्तितनेत्रषट्पदगणा, ताम्रोष्ठपत्रोत्करा भ्रूभेदाञ्चितकेसरा स्वमुकुटव्यविद्धसंवर्तिका वीर्यादित्यविबोधिता रणमुखे नाराचनालोन्नता निष्कम्पा स्थलपम्निनी इव रचिता ॥ १३ ॥

व्याख्या—रणमुखे=युद्धमध्ये, राज्ञाम्=नृपतीनाम्, अभीतैः=अभयैः मुखैः=वदनैः, एषा=कुरुक्षेत्राभिधा भूमिः, सत्रोद्वर्तितनेत्रषट्पदगणा—सत्रे=रणक्रतौ पाठान्तरे सत्त्वेन=बलेन, सत्र-सत्त्वयोःउद्वर्तितानि=प्रस्फुटितानि, नेत्राणि=अक्षीणि एव षट्पदानाम्=मधुकराणाम्, गणः=समूहः यस्यां सा, "स्रस्ते" इति पाठे तु, स्रस्तानि=शिथिलीभूतानि, उद्वर्तितानि=विपरीतं गतानि "उल्टा" लोकभाषायाम्, नेत्राणि=चक्षूषि एव षट्पदानाम्=भ्रमराणाम् गणः=सङ्घः यत्र सा, ताम्रोष्ठपत्रोत्करा—ताम्राः रक्तवर्णाः ओष्ठा एव पत्रोत्कराः=पल्लवचयाः यत्र सा, भ्रूभेदाञ्चितकेसरा=भ्रूभेदा एव अञ्चिता=प्रकीर्णा केसराः=परागाः यत्र सा, स्वमुकुटव्याविद्धसंवर्तिकाः—स्वमुकुटानि=राज्ञां शिरोभूषणानि एव व्याविद्धाः=न्यूनविकासिताः संवर्तिकाः=अभिनवदलानि यस्यां सा, वीर्यादित्यवबोधिताः—वीर्यमेव=शौर्यमेव, आदित्यः=सूर्यः, तेन अवबोधिताः=प्रबुद्धाः विकासमवाप्ता वा, नाराचनालोन्नता=नाराच=सायका एव नामानि=

युद्ध के समय विस्फारित नेत्ररूप मधुकर से युक्त ताम्र के समान लाल २ ओष्ठरूप पत्रों वाली, भौं रूप केसर वाली यह रणभूमि राजाओं के मुखों से स्थलकमालिनी सी दीख रही है जो राजाओं के मुकुट रूपी कोयलों से सजी हुई, क्षात्रबल रूप सूर्य से विकसित तथा वाणरूपी कमलनाल से उन्नत है ॥ १३ ॥

---

१. "सत्रो (त्त्वो)" इति पाठभेदः

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

द्वितीयः—ईदृशानामपि क्षत्रियाणां मृत्युः प्रभवतीति न शक्यं खलु विषमस्थैः पुरुषै[1]रात्मबलाधानं कर्तुम् ।

तृतीयः—[2]मृत्युरेव प्रभवति क्षत्रियाणामिति ।

प्रथमः—कः संशयः ।

द्वितीयः—मा मा भवानेवम् ।

स्पृष्ट्वा खाण्डवधूमरञ्जितगुणं संशप्तकोत्सादनं
स्वर्गाक्रन्दहरं निवातकवचप्राणोपहारं धनुः ।

कमलदण्डाः, तैः उन्नता=ऊर्ध्वंगता सती निष्कम्पा=स्थिरा भूमिर्वा, स्थलकमलिनी=स्थलनलिनी इव, रचिता=कल्पिता । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ १३ ॥

द्वितीय इति । द्वितीयो भटः साश्चर्यमाह—ईदृशानामिति । ईदृशानाम्=अतिवीर्यवताम्, क्षत्रियाणाम्=राजवंश्यानाम् अपि मृत्युः=कालः, प्रभवति=समर्थो भवति । विषमस्थैः=आपत्तियुक्तैः राजपुरुषैः राज्ञाम्=क्षत्रियाणां बलस्य=पराक्रमस्य आदा (धा) नं सर्वतो विनाशः (साहाय्यं वा) कर्तुं न शक्यम् खलु इति निश्चयः ।

अन्वयः —पार्थेन खाण्डवधूमरञ्जितगुणं संशप्तकोत्सादनं स्वर्गा-

दूसरा—ऐसे वीर क्षत्रियों पर भी मृत्यु अपना प्रभाव दिखा ही देती है, वस्तुतः प्रतिकूल परिस्थिति वाले पुरुष अपना पौरुष दिखाने में सक्षम नहीं हो पाते ।

तीसरा—क्या क्षत्रियों पर भी मृत्यु का प्रभाव पड़ता है ?

पहला—इसमें क्या सन्देह ?

दूसरा—नहीं, नहीं, आप ऐसा न कहें—

आज अर्जुन ने खाण्डव वन में धूम से धूसरित प्रत्यञ्चा वाले, त्रिगर्त देश के संशप्तकों का विनाशक, स्वर्गस्थितों की व्यथा को दूर करने वाले,

---

१. पाठान्तरम्—राजबला (दा-धा) नं ।

२. किं प्रभवति क्षत्रियाणामिति । इति पाठभेदः ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पार्थेना'स्त्रबलान्महेश्वररणक्षेपावशिष्टैः शरै-
र्दर्पोत्सिक्तवशा नृपा रणमुखे मृत्योः प्रतिग्राहिताः ॥ १४ ॥

सर्वे—अये शब्दः !

किं मेघा निनदन्ति वज्रपतनैश्चूर्णीकृताः पर्वता
निर्घातैस्तुमुलस्वनप्रतिभयैः किं दार्यते वा मही ।

क्रन्दहरं निवातकवचप्राणोपहारं धनुः स्पृष्ट्वा महेश्वररणक्षेपावशिष्टैः शरैः दर्पोत्सिक्तवशाः नृपाः रणमुखे अस्त्र बलात् मृत्योः प्रतिग्राहिताः ॥ १४ ॥

व्याख्या — पार्थेन=अर्जुनेन खाण्डवधूमरञ्जितगुणम् - खाण्डवस्य=खाण्डवनामारण्यस्य दाहावसरे उद्धतेन धूमेन रञ्जितः=श्यामलीभूतः गुणः=प्रत्यञ्चा यस्य तत्, संशप्तकोत्सादनम्—संशप्तकानाम्=त्रैगर्तानाम् उत्सादनम्, स्वर्गक्रन्दहरम्—स्वर्गस्य=नाकलोकस्य य आक्रन्दः=उत्पीडनम् तद्-हर्त्तारम्, निवातकवचप्राणोपहारम्—निवातकवचानाम्=कुबेरस्य यद्राजकोषस्तस्य रक्षकाणां यक्षविशेषाणां प्राणाः=असव एव उपहारः=उपायनं यस्य तम्, धनुः=गाण्डीवनामानं कार्मुकं स्पृष्ट्वा=गृहीत्वा, महेश्वररणक्षेपावशिष्टैः—महेश्वरः=शङ्करः किरातवेषधरस्तेन सार्द्धं यो रणः=सङ्ग्रामस्तत्र क्षेपात्=सञ्चालनाद् अवशिष्टैः शरैः=बाणैः दर्पोत्सिक्तवशाः—दर्पस्य=अभिमानस्य यदुत्सिक्तम्=आधिक्यं तद्वशाः=तदायत्ताः नृपाः=राजानः रणमुखे=युद्धस्थले अस्त्र बलात्=शस्त्रबलप्रयोगाद् मृत्योः=यमस्य प्रतिग्राहिताः=यमपुरं प्रेषिता इत्यर्थः । अत्रातिशयोक्तिरलङ्कारः शार्दूलविक्रीडितञ्च वृत्तम् ॥ १४ ॥

अन्वयः — मेघाः निनदन्ति किम्, (किं वा) वज्रपतनैश्चूर्णीकृताः

निवातकवच जातीय राक्षसों का संहारक गाण्डीव धनुष को धारण कर बलपूर्वक किरातवेशधारी भगवान् शङ्कर के साथ किए गये सङ्ग्राम में बचे हुए बाणों द्वारा मदोद्धत राजाओं को इस समराङ्गण में मृत्युलोक पहुँचा दिया है ॥ १४ ॥

सभी—अरे ! यह कैसा शब्द है ?

---

१. "पार्थेनाद्य" इत्यपि पाठः ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

किं मुञ्चत्यनिलावधूतचपलक्षुब्धोर्मिमालाकुलं
शब्दं मन्दरकन्दरोदरदरीः संहत्य वा सागरः ॥ १५ ॥

भवतु, पश्यामस्तावत् । (सर्वे परिक्रामन्ति)

प्रथमः—अये एतत्खलु द्रौपदीकेशघर्षणावमर्षितस्य पाण्डवमध्य-

पर्वताः किं वा तुमुलस्वनप्रतिभयैः मही दार्यते (किं वा) सागरः मन्दर-कन्दरोदरदरीः संहत्य अनिलावधूतचपलक्षुब्धोर्मिमालाकुलं शब्दं मुञ्चति ॥ १५ ॥

व्याख्या—मेघाः = घनाः निनदन्ति = गर्जन्ति किम् ? (किं वा) व्रज-पतनैः—वज्रस्य = अशनेः पतनैः = पातैः चूर्णीकृताः = चूर्णतामवाप्ताः पर्वताः = गिरयः 'निनदन्ति' इति क्रिययान्वयः । किं वा तुमुलस्वनप्रतिभयैः—तुमुलस्य = युद्धसङ्कुलस्य यः स्वनः = कोलाहलः तेन प्रतिभयैः = भयमुत्पादकैः मही = पृथ्वी दीर्यते = विदार्यते अथवा सागरः = समुद्रः मन्दरकन्दरोदरदरीः—मन्दरस्य = मन्दरगिरेः याः कदराः = गुहाः तासामुदरस्य = मध्यस्थलस्य या दरी = कन्दरा तां संहत्य = उद्भिद्य अनिलावधूतचपलक्षुब्धोर्मिमालाकुलम्—अनिलेन = मरुता, अवधूताः = संचालितास्तैः चपलाः = चञ्चलाः क्षुब्धाः = क्षोभमवाप्ताः या ऊर्मयः = लहर्यः तासां मालाभिः = समूहैः आकुलम् = व्याप्तं यथा स्यात्तथा शब्दम् = गर्जनां मुञ्चति = त्यजति यद्वशादयं भयङ्करः शब्दः श्रूयत इति सन्देहमिश्रितत्वात् संशयालङ्कारः शार्दूलविक्रीडितञ्च वृत्तम् ॥ १५ ॥

प्रथमः—अये इति विस्मयसूचकं विषादोत्पादकं वा पदम् । एतत्

क्या मेघ गरज रहे हैं ? अथवा वज्र गिरने से पर्वत चूर-चूर हो रहे हैं, किं वा कठोर शब्दों की टकराहट से यह पृथ्वी फट रही है, या मन्दराचल की गम्भीर गुफा से टकरा कर वायु द्वारा कम्पित होने के कारण चञ्चल एवं क्षुब्ध लहरियों से व्याकुल समुद्र ही गर्जना कर रहा है ॥ १५ ॥

अच्छा, तबतक देखा जाय ।

[सभी घूमते हैं]

पहला—अरे द्रौपदी के केश-कर्षण से क्रुद्ध पाण्डवों का मध्यम भाई

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मस्य भीमसेनस्य भ्रातृशतवधक्रुद्धस्य महाराजदुर्योधनस्य च द्वैपायनहलायुधकृष्णविदुरप्रमुखानां कुरुयदुकुलदैवतानां प्रत्यक्षं प्रवृत्तं गदायुद्धम् ।

द्वितीयः—

भीमस्योरसि चारु[1]काञ्चनशिलापीने प्रतिस्फालिते
भिन्ने वासवहस्तिहस्तकठिने दुर्योधनांसस्थले ।
अन्योऽन्यस्य भुजद्वयान्तरतटेष्वासज्यमानायुधे
यस्मिंश्चण्डगदाभिघातजनितः शब्दः समुत्तिष्ठति ॥ १६ ॥

खल्विति । एतत्=पुरोदृश्यमानम्, खल्विति वाक्यसंयोजनसौन्दर्ये । द्रौपद्याः=पाञ्चाल्याः केशानां=वेणीनां घर्षणेन=बलादाकर्षणेन अवमर्षितस्य=कुपितस्य पाण्डवमध्यमस्य भीमसेनस्य=वृकोदरस्य भ्रातृशतवधक्रुद्धस्य—भ्रातॄणां=दुःशासनादीनां शतसंख्यकानां भ्रातॄणां वधेन=समरे हतेन क्रुद्धस्य=अवमर्षितस्य महाराजदुर्योधनस्य=कौरवाधिपस्य द्वैपायनः=व्यासः हलायुधः=बलरामः कृष्णः=माधवः विदुरश्च एतेषां प्रमुखानां कुरुयदुकुलदैवतानाम्—कुरुयदुकुलयोः=कुरुयदुवंशयोः दैवतानाम्=पूज्यानां प्रत्यक्षम्=समक्षं प्रवृत्तम्=आरब्धं गदायुद्धम् । द्वितीयः—भीमस्येति ।

अन्वयः—चारुकाञ्चनशिलापीने उरसि भीमस्य प्रतिस्फालिते वासवहस्तिहस्तकठिने दुर्योधनांसस्थले भिन्ने अन्योऽन्यस्य भुजद्वयान्तरतटेषु आसज्यमानायुधे यस्मिन् चण्डगदाभिघातजनितः शब्दः समुत्तिष्ठति ॥ १६ ॥

व्याख्या—चारुकाञ्चनशिलापीने—चारु=शोभना 'तप्ता' इति पाठे सति तप्ता=अग्नौ शोधिता काञ्चनशिला=सुवर्णशिला इव पीने=पीवरे

भीमसेन तथा सौ भाईयों के वध से अत्यन्त क्रुद्ध हुए महाराज दुर्योधन के पूज्य जनों व्यास, बलराम, कृष्ण, विदुर, जो यदुकुल तथा कुरुकुल के दैवतरूप हैं, के समक्ष परस्पर गदायुद्ध हो रहा है ।

दूसरा—अग्नि में तपाये गये अत्यन्त उज्ज्वल सुवर्णशिला की भाँति भीमसेन के विशाल वक्षःस्थल पर हुए प्रहार तथा इन्द्र के ऐरावत हाथी के

---

१. 'तप्त' इति पाठान्तरम्

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

तृतीयः—एष महाराजः,

शीर्षोत्कम्पनवल्गमानमुकुटः क्रोधाग्निकाक्षाननः
स्थानाक्रामणवामनीकृततनुः प्रत्यग्रहस्तोच्छ्रयः ।
यस्यैषा रिपुशोणितार्द्रकलिला भात्यग्रहस्ते गदा
कैलासस्य गिरेरिवाग्ररचिता सोल्का महेन्द्राशनिः ॥१७॥

भीमस्य=मध्यमपाण्डवस्य प्रतिस्फालिते=प्रताडिते वासवहस्तिहस्तकठिने—वासवस्य=इन्द्रस्य, हस्तिनः=गजस्यैरावतस्य यः हस्तः=शुण्डादण्डः तद्वत्कठिने दुर्योधनांसस्थले दुर्योधनस्य अंसस्थले=स्कन्धदेशे भिन्ने=भीमगदया प्रताडिते सति अन्योऽन्यस्य=परस्परस्य भुजद्वयान्तरतटेषु—भुजद्वयस्य=बाहुयुगलस्य अन्तरतटेषु=मध्यभागेषु आसज्यमानायुधे—आसज्यमानानि=प्रहृतानि आयुधानि=अस्त्राणि यत्र तस्मिन्, यस्मिन्=गदायुद्धे चण्डगदाभिघातजनितः=प्रचण्डश्चासौ गदाभिघातजनितः=समुद्भूतः शब्दः=घोरशब्दः समुत्तिष्ठति=सर्वा दिशः व्याप्नोतीत्यर्थः ॥ १६ ॥

अन्वयः—यस्य रिपुशोणितार्द्रकलिला एषा गदा अग्रहस्ते कैलासस्य गिरेः अग्ररचिता सोल्का महेन्द्राशनिः इव भाति (सोऽयम्) शीर्षोत्कम्पनवल्गमानमुकुटः क्रोधाग्निकाक्षाननः स्थानाक्रामणवामनीकृततनुः प्रत्यग्रहस्तोच्छ्रयः (अस्तीति) ॥ १७ ॥

व्याख्या—यस्य=राज्ञो दुर्योधनस्य रिपुशोणितार्द्रकलिला—रिपुः=शत्रुः भीमः, तस्य शोणितेन=रक्तेन, आर्द्रकलिला=तरलत्वव्याप्ता एषा=पुरोदृश्यमाना गदा अग्रहस्ते=हस्तस्याग्रभागे कैलासस्य=कैलासाख्यस्य गिरेः=

सूँड़ के समान अति कठोर दुर्योधन के कंधे पर हुए प्रहार के कारण इन दोनों के परस्पर भुजाओं के मध्य प्रचण्ड गदा के आघात से होने वाला शब्द दिशाओं में फैल रहा है ॥ १६ ॥

तीसरा—यह महाराज (दुर्योधन), जिसका मुकुट शिर के कम्पित होने से चञ्चल है, क्रोध के कारण रक्त नेत्र धधकती अग्नि के समान है, युद्ध में शत्रु के प्रहार से बचने के लिए इधर-उधर चलते हुए अपने शरीर को संकुचित करते हैं, तथा भीम के रक्त से रञ्जित गदा को दाहिने हाथ से

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

प्रथमः—एष संप्रहाररुधिरसिक्ताङ्गस्तावद् दृश्यतां पाण्डवः ।
निर्भिन्नाग्रललाटवान्तरुधिरो भग्नांसकूटद्वयः
सान्द्रै[1]र्निर्गलितैः प्रहाररुधिरैरार्द्रीकृतोरःस्थलः ।
भीमो भाति गदाभिघातरुधिरक्लिन्नावगाढव्रणः
शैलो मेरुरिवैष धातुसलिलासारोपदिग्धोपलः ॥ १८ ॥

पर्वतस्य अग्ररचिता सोल्का = उल्कया सहिता महेन्द्राशनिः—महेन्द्रस्य = इन्द्रस्य अशनिः = वज्रः इव भाति = सुशोभते (सः) = (दुर्योधनः) शीर्षोत्कम्पनवल्गमानमुकुटः—शीर्षस्य = मूर्ध्नः कम्पनेन वल्गमानम् = प्रस्खलनमवाप्तम् मुकुटम् = मूर्द्धजः क्रोधाग्निकाक्षाननः—क्रोधाग्निना = कोपवह्निना काक्षाननः = विस्तृतवदनः स्थानाक्रामणवामनीकृततनुः—स्थानाय आक्रमणं तस्मै वामनीकृता = लघुकृता तनुः सन् प्रत्यग्रहस्तोच्छ्रयः प्रत्यग्रे = तत्क्षणे एव हस्तः = बाहुः उच्छ्रयः = ऊर्ध्वीकृतः (अस्तीति) शेषः । शार्दूलविक्रीडितम् वृत्तम् ॥ १७ ॥

प्रथम एष इति । एष सम्प्रहाररुधिरसिक्ताङ्गः—सम्प्रहारेण = शस्त्रप्रहारेण निःसृतरुधिरेण = रक्तेन सिक्ताङ्गः = सिक्तानि आर्द्राणि अङ्गानि यस्य सः एतादृश पाण्डवः = भीमः दृश्यताम = अवलोक्यताम् ।

अन्वयः— निर्भिन्नाग्रललाटवान्तरुधिरः भग्नांसकूटद्वय सान्द्रैः निर्गलितैः प्रहाररुधिरैः आर्द्रीकृतोरः स्थलः गदाभिघातरुधिरक्लिन्नावगाढव्रणः एषः भीमः धातुसलिलासारोपदिग्धोपलः मेरुः शैलःइव भाति ॥ १८ ॥

बार-बार ऊपर उठाता हुआ ऐसा प्रतीत हो रहा है, मानो कैलास पर्वत के अग्रभाग से रचित इन्द्र का चमकता हुआ वज्र ही सुशोभित हो रहा हो ॥ १७ ॥

पहला—गदाप्रहार के कारण खून से लथपथ शरीर वाले मध्यमपाण्डव भीमसेन को देखें—

गदाप्रहार के कारण जिसके फटे मस्तक से रक्त निकल रहा है तथा दोनों स्कन्ध टूट गये हैं, भीषण शस्त्राघात से बहते हुए रुधिर से जिसका वक्षःस्थल आर्द्र हो गया है एवं गदा के प्रचण्ड प्रहार से चलते हुए रुधिर से

---

१. निर्गलितेत्यन्यत्र पाठः

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitized by eGangotri

द्वितीयः—भीमां गदां क्षिपति गर्जति वल्गमानः
शीघ्रं भुजं हरति तस्य कृतं भिनत्ति ।
चारीं गतिं प्रचरति प्रहरत्यभीक्ष्णं
शिक्षा[1]न्वितो नरपतिर्बलवांस्तु भीमः ॥ १९ ॥

व्याख्या—निर्भिन्नाग्रललाटवान्तरुधिरः—निर्भिन्नम् = विदीर्णम् अर्थाद् गदाप्रहारेण प्रस्फुटितम् अग्रम् = पुरोभागो यस्य तादृशं यल्ललाटम् = मस्तकं तस्माद् वान्तम् = उद्गीर्णं रुधिरं यस्य सः, भग्नांसकूटद्वयः = भग्नौ स्कन्धावेव कूटमद्रे रिव यस्य सः, सान्द्रैः = निबिडैः, निर्गलितैः = निःसृतैः, प्रहाररुधिरैः = गदाप्रहारजनितरक्तैः, आर्द्रीकृतम् अथ च शोणमिश्रितं वक्षःस्थलं यस्य सः गदाभिघातरुधिरक्लिन्नावगाढव्रणः—गदाघातेन = गदाप्रहारेण निःसृतेन रुधिरेण = रक्तेन क्लिन्नाः = आर्द्राः अवगाढाः = व्याप्ताः व्रणाः यस्य सः, एषः = युद्धासक्तः पुरोदृश्यमानः भीमः = वृकोदरः धातुसलिलासारोपदिग्धोपलः—धातूनाम् = पर्वतीयधातुगैरिकादीनां, सलिलासारैः = जलप्रवाहैः उपदिग्धाः = समव्याप्ता उपलाः = प्रस्तरा यस्य सः मेरुः = मेरुनामा शैलः = पर्वत इव भाति = सुशोभत इति । अत्र पर्वतवृकोदरयोरुपमानोपमेयदर्शनादुपमालङ्कारः । वृतञ्च शार्दूलविक्रीडितम् ॥ १८ ॥

भीमेति । अन्वयः—नरपतिः भीमां गदां क्षिपति वल्गमानः (सन्) गर्जति शीघ्रं भुजं हरति तस्य कृतं भिनत्ति अभीक्ष्णं प्रहरति चारीं गतिं प्रचरति शिक्षान्वितः भीमः तु बलवान् ॥ १९ ॥

व्याख्या—नरपतिः = राजा दुर्योधनः भीमाम् = भयमुत्पादिकां गदाख्यमस्त्रं क्षिपति = भीमस्योपरि चालयति वल्गमानः = उच्छलन् सन् गर्जति =

जिसका घाव भींगा हुआ है इस अवस्था में भीमसेन गैरिक आदि धातुओं से मिश्रित वहते हुए जलधारा युक्त सुमेरु गिरि के समान सुशोभित हो रहा है ॥ १८ ॥

दूसरा—राजा दुर्योधन भयङ्कर गदा भीम पर चलाता है, छलांग लगाते हुए गरजता है, भीम के द्वारा किये गये गदा प्रहार को काटता हुआ

---

१. "संशिक्षितो" इति पाठान्तरम् ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तृतीयः—एष वृकोदरः,

शिरसि गुरुनिखातस्रस्तरक्तार्द्रगात्रो
धरणिधरनिकाशः संयुगेष्वप्रमेयः ।
प्रविशति गिरिराजो मेदिनीं वज्रदग्धः
शिथिलविसृतधातुर्हेमकूटो यथाद्रिः ॥ २० ॥

गर्जनां करोति शीघ्रम्=झटिति भुजम्=बाहुं हरति=आकर्षति, भीमस्य गदाप्रहारादात्मानं रक्षितुं स्वबाहुमाकर्षति। तस्य=प्रतियोद्धारस्य भीमसेनस्य कृतम्=प्रयासं भिनत्ति=निष्फलं करोति अभीक्ष्णम्=मुहुर्मुहुः प्रहरति=प्रहारं करोति एवं गदायुद्धे कुशलोऽस्ति तथापि भीमः=मध्यमपाण्डवः तु बलवान्=दुर्योधनाद् बलिष्ठोऽस्ति इति ॥ १९ ॥

अन्वयः—शिरसि गुरुनिखातस्रस्तरक्तार्द्रगात्रः धरणिधरनिकाशः संयुगेषु अप्रमेयः शिथिलविसृतधातुः वज्रदग्धः हेमकूटः अद्रिः यथा मेदिनीं प्रविशति ॥ २० ॥

व्याख्या—शिरसि=मस्तके गुरुनिखातस्रस्तरक्तार्द्रगात्रः—गुरुनिखातः=अत्यधिकाघातं स्रस्तेन=निर्गलितेन रक्तेन=शोणितेन, आर्द्राणि=क्लिन्नानि गात्राणि=शरीराणि, यस्य सः, धरणिधरनिकाशः—धरणिधरः=पर्वतः तन्निकाशः=तुल्यः, संयुगेषु=सङ्ग्रामेषु अप्रमेयः=अनुपमपराक्रमयुक्तः भीम इति गद्यांशेन सम्बद्ध्यते। शिथिलविसृतधातुः—शिथिलाः=छिन्नसन्धयः यद्वशाद् विसृताः=प्रकीर्णाः धातवः=गैरिकादयः तथाविधः, वज्रदग्धः—

उससे बचने के लिए अपनी भुजा को खींच लेता है। चारी गति से चलता हुआ बार-बार प्रहार कर रहा है, इस प्रकार महाराज दुर्योधन गदायुद्ध में निपुण तो है, किन्तु भीम अधिक बल वाला है ॥ १९ ॥

तीसरा—यह भीमसेन—

सिर में गम्भीर चोट लगने के कारण बहते हुए रक्त से जिसका शरीर आर्द्र हो गया है, अतुल बल वाला जो पर्वत की भाँति दीख रहा है गैरिकादि धातुशिला से युक्त फटे हुए सुमेरुपर्वत के समान (असह्य आघात) से पृथ्वी पर गिर रहा है ॥ २० ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitized by eGangotri

प्रथमः—एष गाढप्रहारशिथिलीकृताङ्गं निपतन्तं भीमसेनं दृष्ट्वा,
एकाग्राङ्गुलिधारितोन्नतमुखो व्यासः स्थितो विस्मितः

द्वितीयः—
दैन्यं याति युधिष्ठिरोऽत्र विदुरो वाष्पाकुलाक्षः स्थितः ।

तृतीयः—
स्पृष्टं गाण्डिवमर्जुनेन गगन कृष्णः समुद्वीक्षते

वज्रेण=अशनिना दग्धः=प्रज्वलितः हेमकूटः=सुमेरुः अद्रिः=पर्वत इव मेदिनीम्=महीं प्रविशति=निपतति गदाघातेन व्यथातिरेकात् पृथिव्यां पतति भीमसेन इति संभाव्यत इति भावः ॥ २० ॥

प्रथम इति । "एष" इत्यस्य अग्रिमेन "व्यास" इति कर्त्रा सम्बन्धः । गाढप्रहारशिथिलीकृताङ्गम्—गाढप्रहारेण=गुरुणाघातेन शिथिली कृतानि अङ्गानि यस्य तं निपतन्तं=भूमौ पतन्तं भीमसेनं दृष्ट्वा=वीक्ष्य—

अन्वयः—एकाग्राङ्गुलिधारितोन्नतमुखः व्यासः विस्मितः स्थितः ।

व्याख्या—एकाग्राङ्गुलिधारितोन्नतमुखः—एका अग्राङ्गुलिः धारिता=न्यस्ता यत्र तदेकाग्रङ्गुलिधारितं, तच्च तादृशं मुखम्=आस्यं यस्य सः व्यासः=द्वैपायनः विस्मितः=आश्चर्यान्वितः सन् स्थितः=स्तब्धः ।

अन्वयः—अत्र युधिष्ठिरः दैन्यं याति वाष्पाकुलाक्षः विदुरः स्थितः ।

अत्र=समराङ्गणे निपतन्तं भीमसेनं दृष्ट्वेति गद्यांशेन सम्बन्धः, युधिष्ठरः=धर्मपुत्रः दैन्यम्=दीनतां याति=अधिगच्छति, वाष्पाकुलाक्षः=अश्रुपूरितनेत्रः विदुरः स्थितः ॥

अन्वयः—अर्जुनेन गाण्डिवं स्पृष्टम्, कृष्णः गगनं समुद्वीक्ष्यते ।

पहला—भीषण प्रहार की चोट से शिथिल शरीर वाले भीम को गिरते हुए देखकर मुख पर अंगुली रखे हुए भगवान् व्यास अपने सिर को ऊपर उठाये आश्चर्यचकित होकर खड़े हो गये ।

दूसरा—युधिष्ठिर दीन हो रहे हैं तथा अश्रुपूरित नेत्रों वाले विदुर खड़े हैं ।

तीसरा—अर्जुन अपने हाथों से गाण्डीव थाम लिए हैं और श्रीकृष्ण

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

सर्वे—

शिष्यप्रीतितया हलं भ्रमयते रामो रणप्रेक्षकः ॥ २१ ॥

प्रथमः—एष महाराजः,

वीर्यालयो विविधरत्नविचित्रमौलि-
युक्तोऽभिमानविनयद्युतिसाहसैश्च ।
वाक्यं वदत्युपहसन्न तु भीम ! दीनं
वीरो निहन्ति समरेषु भयं त्यजेति ॥ २२ ॥

व्याख्या—अर्जुनेन = गाण्डिवेन, गाण्डिवम् = स्वीयं धनुः, स्पृष्टम् = किञ्चिदुन्नमितम्, कृष्णः = माधवः गगनम् = आकाशं समुद्वीक्षते = पश्यति ।

अन्वयः—रणप्रेक्षकः रामः शिष्यप्रीतितया हलं भ्रमयते ।

व्याख्या—रणप्रेक्षकः = दुर्योधनवृकोदरयोः गदायुद्धस्य द्रष्टा रामः = बलरामः शिष्यप्रीतितया—शिष्यम् = दुर्योधनं प्रति प्रीतितया = स्नेहतया हलम् = स्वकीयमस्त्रं भ्रमयते = घूर्णयत इति ॥ २१ ॥

अन्वयः—वीर्यालयः विविधरत्नविचित्रमौलिः अभिमानविनयद्युतिसाहसैः च युक्तः (एष महाराजः) उपहसन् वाक्यं वदति, भीम ! वीरः समरेषु दीनं न तु निहन्ति (अतः) भयं त्यज ॥ २२ ॥

व्याख्या—वीर्यालयः = महान् पराक्रमी विविधरत्नविचित्रमौलिः—विविधरत्नैः = नानाप्रकारैर्मणिभिः विचित्रः = अलङ्कृतः मौलिः = मुकुटो यस्य तादृशः अभिमानविनयद्युतिसाहसैः—अभिमानः = गर्वः विनयः = विनम्रता

आकाश की ओर देख रहे हैं ॥ २१ ॥

सभी—सङ्ग्रामदर्शक बलराम अपने शिष्य (दुर्योधन) में अत्यधिक स्नेह होने के कारण हल को घुमा रहे हैं ।

पहला—यह महाराज (दुर्योधन)—

महान् बलशाली विविध मणियों से मण्डित मुकुट वाला, स्वाभिमान, विनय, तेज और बल से परिपूर्ण हँसता हुआ भीम से कह रहा है—वीर, समरभूमि में दैन्यभाव प्राप्त योद्धा को नहीं मारते हैं अतः भय छोड़ो और (पुनः लडने के लिए तैयार हो जाओ) ॥ २२ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

द्वितीयः—एष इदानीमुपहास्यमानं भीमसेनं दृष्ट्वा स्वमूरुमभिहत्य कामपि संज्ञां प्रयच्छति जनार्दनः ।

तृतीयः—एष संज्ञया समाश्वासितो मारुतिः,
संहृत्य भ्रुकुटीर्ललाटविवरे स्वेदं करेणाक्षिपन्
बाहुभ्यां परिगृह्य भीमवदनश्चित्राङ्गदां स्वां गदाम् ।

द्युतिः=ओजः साहसम्=दृढत्वम् एतेषां समाहारः अत एतैरभिमानादिभिः युक्तः=भूषितः (एष महाराजः=दुर्योधनः) उपहसन्=उपहासं कुर्वन् वाक्यं वदति=वक्तव्यं कथयति—हे भीम! वीरः=शूरः समरेषु=रणस्थलेषु दीनम्=आपद्ग्रस्तं प्रतियोद्धारं न तु=नैव निहन्ति=मारयति (अतः) भयम्=मत्प्रयुक्तं शस्त्रभीतिं त्यज=जहीहि । सर्वथा निःशङ्कः सन् पुनः सङ्ग्रामाय सन्नद्धो भव इति भावः । वसन्ततिलका ॥ २२ ॥

द्वितीय इति । इदानीम्=साम्प्रतम् उपहास्यमानम्=दुर्योधनेनोपहसितं भीमसेनम्=मध्यमपाण्डवं दृष्ट्वा=अवलोक्य स्वमूरुम्=स्वकीयां जङ्घाम्, अभिहत्य=संताड्य कामपि संज्ञाम्=किञ्चिद्गुह्यं प्रयच्छति=सङ्केतयति जनार्दनः=श्रीकृष्णः ।

तृतीय इति । एष मारुतिः=अयं मरुत्सुतो भीमः संज्ञया=श्रीकृष्णस्य गुह्यसङ्केतेन समाश्वासितः=धैर्यमुत्पादितः ।

अन्वयः—भ्रुकुटीः संहृत्य ललाटविवरे करेण स्वेदम् आक्षिपन् चित्राङ्गदां स्वां गदां बाहुभ्यां परिगृह्य दीनं पुत्रम् उदीक्ष्य सर्वगतिना दत्तं बलं लब्ध्वा इव गर्जन् सिंहवृषेक्षणः भीमवदनः एषः मारुतिः भूयः क्षितितलात्

दूसरा—गदा के आघात से उपहास योग्य हुए भीमसेन को देखकर भगवान् श्रीकृष्ण अपनी जाङ्घ को थपथपाते हुए (दुर्योधन को मारने के लिए) सङ्केत कर रहे हैं ।

तीसरा—इस सङ्केत से भीम आश्वस्त हो गया है । अपनी भृकुटियों को समेट कर, ललाट पर स्थित पसीनों को पोंछ कर, अपनी चित्राङ्गदा नामक गदा को बाहुओं में संभाले दीन पुत्र को देखने वाले मानों पवन,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

पुत्रं दीनमुदीक्ष्य सर्वगातिना लब्ध्वेव दत्तं बलं
गर्जन् सिंहवृषेक्षणः क्षितितलाद् भूयः समुत्तिष्ठति ॥ २३ ॥

प्रथमः—हन्त पुनः प्रवृत्तं गदायुद्धम् । अनेन हि,
भूमौ पाणितले निघृष्य तरसा बाहू प्रमृज्याधिकं
सन्दष्टौष्ठपुटेन विक्रमबलात् क्रोधाधिकं गर्जता ।
त्यक्त्वा धर्मघृणां विहाय समयं कृष्णस्य संज्ञासमं
गान्धारीतनयस्य पाण्डुतनयेनोर्वीविमुक्ता गदा ॥ २४ ॥

समुत्तिष्ठति ॥ २३ ॥

व्याख्या—भ्रुकुटीः संहृत्य=सङ्कोच्य ललाटविवरे=भालस्थले करेण=पाणिना स्वेदम्=घर्मवारिम् आक्षिपन् चित्राङ्गदाम्=चित्रांगदाभिधानां स्वाम्=स्वकीयां गदां बाहुभ्याम्=भुजाभ्यां परिगृह्य=गृहीत्वा दीनम्=दुर्योधनस्य गदाप्रहारेण दैन्यभावमापन्नं पुत्रम्=सुतम्, उद्वीक्ष्य=अवलोक्य सर्वगतिना=मरुता दत्तम्=अर्पितं बलम्=शौर्यं लब्ध्वा इवेत्युत्प्रेक्षणम्, गर्जन्=गर्जनां कुर्वन्, सिंहवृषेक्षणः—सिंहवृषः=सिंहस्य श्रेष्ठस्य ईक्षणे=नेत्रे इव नेत्रे यस्य सः, एवम्भूतः भीमवदनः=भयङ्करमुखः एष मारुतिरिति गद्यांशेन सम्बद्ध्यते भूयः=पुनः क्षितितलात्=भूप्रदेशात् समुत्तिष्ठति=युद्धाय सन्नद्धो भवतीत्यर्थः ॥ २३ ॥

अन्वयः—पाणितले भूमौ निघृष्य तरसा अधिकं बाहू प्रमृज्य धर्मघृणां त्यक्त्वा समयं विहाय कृष्णस्य सञ्ज्ञासमं सन्दष्टौष्ठपुटेन विक्रमबलात् क्रोधाधिकं गर्जता पाण्डुतनयेन गान्धारीतनस्य ऊर्वीः गदा विमुक्ता ॥ २४ ॥

पिता से प्राप्त शक्ति से उत्साहित सिंह के समान विशाल नेत्रों वाला भीमसेन पुनः भूमि से उठ रहा है ॥ २३ ॥

पहला—ओह ! गदायुद्ध पुनः प्रारम्भ हो गया । इस पाण्डु-पुत्र भीम ने—

अपनी दोनों हथेलियों को भूमि पर रगड़कर, शीघ्रता से बाहुओं को थपथपाते हुए भगवान् कृष्ण के सङ्केत को ध्यान में रखते हुए युद्धसम्बन्धी नियमों को छोड़कर अपने ओष्ठ को चबाते हुए क्रोध के कारण अत्यधिक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सर्वे—हा धिक् पतितो महाराजः ।

तृतीयः—एष रुधिरपतनद्योतिताङ्गं निपतन्तं कुरुराजं दृष्ट्वा खमुत्पतितो भगवान् द्वैपायनः । य एषः,

माला[1]संवृतलोचनेन हलिना नेत्रोपरोधः कृतो
दृष्ट्वा क्रोधनिमीलितं हलधरं दुर्योधनापेक्षया ।

व्याख्या—पाणितले=करतले, भूमौ=पृथिव्यां निघृष्य=घर्षयित्वा तरसा=वेगेन अधिकं यथा स्यात्तथा बाहू=भुजे प्रमृज्य=मर्दयित्वा, धर्मघृणाम्=धर्मसम्बन्धिनीं घृणां कारुण्यं करुणां त्यक्त्वा=विहाय समयं=धर्मयुद्धस्य मर्यादां विहाय=त्यक्त्वा कृष्णस्य=वासुदेवस्य संज्ञासमम्=सङ्केतसमकालमेव, सन्दष्टौष्ठपुटेन—संदष्टः=चर्वितः ओष्ठमाधिक्यात् क्रोधाधिकम्=क्रोधाधिक्यं यथा स्यात्तथा गर्जता=गर्जनां कुर्वता पाण्डुतनयेन=मध्यमपाण्डवेन भीमेन गान्धारीतनयस्य=गान्धार्याः पुत्रस्य दुर्योधनस्य उर्वोः=जानुभागयोः विमुक्ता=प्रहृता इति ॥ २४ ॥

तृतीय एषेति । एषः द्वैपायनः=व्यासः रुधिरपतनद्योतिताङ्गम्—रुधिरस्य=रक्तस्य पतनेन=निःसृतेन द्योतितम्=रञ्जितम् अङ्गम्=जानू यस्य तं निपतन्तम्=पृथिव्यां पतन्तं कुरुराजम्=दुर्योधनं दृष्ट्वा=अवलोक्य खम्=आकाशम् उत्पतितः=उड्डिन इति ।

अन्वयः—मालासंवृतलोचनेन हलिना नेत्रोपरोधः कृतः दुर्योधनापेक्षया क्रोधनिमीलितं हलधरं दृष्ट्वा सम्भ्रान्तैः पाण्डवैः द्वैपायनज्ञापितः करपञ्जर-

---

गर्जता हुआ गन्धारीपुत्र (दुर्योधन) की दोनों जङ्घे पर गदा मारा है ॥ २४ ॥

तीसरा—रक्त गिरते हुए अङ्गों वाले दुर्योधन को देखकर भगवान् व्यास आकाश में चले गये । जो यह—

अपमान के कारण अपनी आँखों को बलराम ने बन्द कर लिया है, शिष्य-प्रीति के कारण दुर्योधन के पक्ष से क्रोधित हुए सङ्कुचित नेत्रों वाले बलराम को देखकर भगवान् व्यास के सङ्केत से भयभीत पाण्डवों ने कृष्ण पर

---

१. 'हेला' इति पाठभेदः ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भ्रान्तैः करपञ्जरान्तरगतो द्वैपायनज्ञापितो
भीमः कृष्णभुजावलम्बितगतिर्निर्वाह्यते पाण्डवैः ॥ २५ ॥

प्रथमः—अये अयमप्यमर्षोन्मीलितरभसलोचनो भीमसेनापक्रमणमुद्वीक्षमाणः इत एवाभिवर्तते भगवान् हलायुधः । य एषः,

चल[1]विलुलितमौलिः क्रोधताम्रायताक्षो
भ्रमरमुखविदष्टां किंचिदुत्कृष्य मालाम् ।

गतः कृष्णकरावलम्बितगतिः भीमः निर्वाह्यते ॥ २५ ॥

व्याख्या—मालासंवृतलोचनेन—मालया 'हेला' इति पाठे तु छलेन दुर्योधनस्य हननभूता या हेला=अवज्ञा तया संवृते=आवृते लोचने=नयने यस्य तेन हलिना=हलधरेण बलरामेण नेत्रोपरोधः कृतः=नेत्रसंवरणं विहितम् । दुर्योधनापेक्षया—दुर्योधनस्य=कुरुराजस्य पक्षपातानुरोधेन क्रोधनिमिलितम्–क्रोधेन=कोपेन, निमिलितम्=सङ्कुचितदेहं हलधरम्=बलभद्रं दृष्ट्वा=वीक्ष्य, सम्भ्रान्तैः=सम्भ्रमप्राप्तैः पाण्डवैः=पाण्डुपुत्रैः द्वैपायनज्ञापितः–द्वैपायनेन=भगवता व्यासेन, ज्ञापितः=सङ्केतितः करपञ्जरगतः=हस्तमध्यगतः कृष्णकरावलम्बितगतिः=कृष्णस्य कराभ्याम् अवलम्बिता प्राप्ताश्रया गतिः=दशा यस्य सः भीमः निर्वाह्यते=संरक्ष्यते अर्थात् रक्षितुम् इतस्ततो नीयते ॥ २५ ॥

प्रथमः—अयमपीति । अमर्षेण=क्रोधेन उन्मीलिते=ऊर्ध्वं मीलिते रभसलोचने=उद्विग्ननयने यस्य स भगवान् हलायुधः=बलदेवः भीमसेनापक्रमणम्–भीनसेनस्य अपक्रमणम्=निर्गमनम्, उद्वीक्षमाणः=प्रतीक्षमाणः सन् इत एव अभिवर्तते=प्रत्यावर्तते ।

अन्वयः—चलविलुलितमौलिः क्रोधताम्रायताक्षः भ्रमरमुखविदष्टां

आश्रित स्थिति वाले भीम को अपनी भुजाओ में सुरक्षित रख लिया है ॥२५॥

पहला—अरे ! अत्यधिक क्रोध के कारण सङ्कुचित नेत्रों वाले भगवान् हलायुध भीम के निकलने की प्रतीक्षा में इधर-उधर देखते हुए इधर ही आ रहे हैं । जो —

---

१. 'प्रचललितमौलिरि'त्यपि पाठः ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

असिततनुविलम्बिस्रस्तवस्त्रानुकर्षी
क्षितितलमवतीर्णः पारिवेषीव चन्द्रः ॥ २६ ॥

द्वितीयः--तदागम्यतां वयमपि तावन्महाराजस्य प्रत्यनन्तरीभवामः ।

उभौ—बाढम् । प्रथमः कल्पः ।

मालां किञ्चित् उत्कृष्य असिततनुविलम्बिस्रस्तवर्षानुकर्षी पारिवेषी क्षितितलम् अवतीर्णः चन्द्रः इव ॥ २६ ॥

व्याख्या—चलविलुलितमौलिः —चलः = चञ्चलः विलुलितः = कम्पायमानः मौलिः = मुकुटः प्रचललितमौलिरिति पाठे सति चञ्चलोऽथ च ललितः = सुन्दरो मौलिः = मुकुटो यस्य सः क्रोधताम्रायताक्षः—क्रोधेन = कोपेन ताम्रे = रक्तवर्णे अथ च आयते = विस्फारिते अक्षिणी = नेत्रे यस्य सः, भ्रमरमुखविदष्टाम्–भ्रमणानाम् = मधुकराणां मुखैः = आस्यैः विदष्टाम् = दशनैः खण्डिताम्, मालाम् = स्रजाम्, उत्कृष्य = स्तोकमाकृष्य, असिततनुविलम्बिस्रस्तवस्त्रानुकर्षी–असितम् = नीलमथ च तनुविलम्बि = शरीरे लम्बमानं स्रस्तम् = स्वस्थानात् स्खलितं यद् वस्त्रम् = वासः तस्यानुकर्षी = आकुञ्चनकः परिवेषः = वृत्तपरिधिः स चास्यातीति पारिवेषी = मण्डलसहितः, क्षितितलम् = भूभागम् अवतीर्णः = प्राप्तः चन्द्र इवावलोक्यत इति शेषः । उत्प्रेक्षालङ्कारः मालिनी च वृत्तम् ॥ २६ ॥

द्वितीयः—महाराजस्य = दुर्योधनस्य प्रत्यनन्तरीभवामः = समीपं गच्छाम इति ।

चञ्चल एवं सुन्दर मुकुट वाले, क्रोध से रक्तरञ्जित नेत्रों वाले भ्रमरों से आच्छादित माला को पहने हुए, नील वर्ण एवं शिथिल वस्त्रों को संभालते हुए मानों पृथिवी पर उतरे मण्डलाकार चन्द्रमा के समान प्रतीत हो रहा है ॥ २६ ॥

दूसरा—तब आओ, हमलोग भी महाराज (दुर्योधन) के पास चलें ।

दोनों—अच्छा ! यह तो उचित ही है ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(निष्क्रान्ताः)

विष्कम्भकः

(ततः प्रविशति बलदेवः)

बलदेवः—भो भोः पार्थिवाः ! न युक्तमिदम् ।
मम रिपुबलकालं लाङ्गलं लङ्घयित्वा
रणकृत[2]मतिसन्धिं मां च नावेक्ष्य दर्पात् ।
रणशिरसि गदां तां तेन दुर्योधनोर्वोः
कुलविनयसमृद्ध्या पातितः पातयित्वा ॥ २७ ॥

विष्कम्भकः—शुद्धसंकीर्णात्मकोऽयं द्विविधो विष्कम्भकः । स चातीतानां भाविनां च कथावयवानां ज्ञापकः मध्यमेन मध्यमाभ्यां वा पत्राभ्यां प्रयोजितो विष्कम्भक इत्युक्तं दशरूपके—

"वृत्तवर्तिष्यमाणानां कथांशानां निदर्शकः ।
संक्षेपार्थस्तु विष्कम्भो मध्यपात्रप्रयोजितः ॥ इति ।

बलदेव इति—पार्थिवान् सूचयन् बलदेवः कथयति—

अन्वयः—रिपुबलकालं मम लाङ्गलं लङ्घयित्वा दर्पात् रणकृतम् अतिसन्धिं मां च न अवेक्ष्य तेन रणशिरसि दुर्योधनोर्वोः तां गदां पातयित्वा कुलविनयसमृद्ध्या पातितः ॥ २७ ॥

व्याख्या—रिपुबलकालम्—रिपुणाम्=शत्रूणां बलस्य=शौर्यस्य, कालम्=

(सभी चले जाते हैं)

॥ विष्कम्भक ॥

(इसके बाद बलदेव का प्रवेश)

बलदेव—अरे, रे राजाओं ! यह उचित नहीं है ।

शत्रुबल के कालस्वरूप मेरे हल की उपेक्षा करके दोनों पक्षों में बराबर दृष्टि रखने वाले मुझ (बलदेव) को सङ्ग्राम में अभिमान के कारण कुछ न समझते हुए भीम ने युद्ध के बीच दुर्योधन की जंघों पर वार कर कुरुकुल की विनयसमृद्धि के साथ ही दुर्योधन को गिरा दिया ॥ २७ ॥

---

२. 'रणगतमतिसन्धिमि'ति पाठभेदः ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भो दुर्योधन ! मुहूर्तं तावदात्मा धार्यताम् ।
सौभोच्छिष्टमुखं महासुरपुरप्राकारकूटाङ्कुशं
कालिन्दीजलदेशिकं रिपुबलप्राणोपहारार्चितम् ।
हस्तोत्क्षिप्तहलं करोमि रुधिरस्वेदार्द्रपङ्कोत्तरं[1]
भीमस्योरसि यावदद्य विपुले केदारमार्गाकुलम् ॥ २८ ॥

अन्तकम्, मम=बलरामस्य लाङ्गलम्=हलम् तदेवास्त्रं लङ्घयित्वा=समुपेक्ष्य दर्पात्=अहङ्कारात्, रणकृतमतिसन्धिम्-रणकृतम्=सङ्ग्रामविषयकम् अतिसन्धिं=सन्धिमतिक्रम्य रणगतेत्यादि, पाठेऽपि तदेवार्थःअर्थात् कुरुपाण्डवयोः युद्धे ताटस्थ्येन स्थितं माम्=हलधरं च न अवेक्ष्य=न दृष्ट्वा अगणयित्वा वा तेन=भीमेन रणशिरसि=सङ्ग्रामाङ्गणे दुर्योधनोर्वोः=दुर्योधनस्य जङ्घयोः तां=प्रसिद्धां स्वीयां चित्राङ्गदानाम्नीं गदां पतायित्वा=प्रक्षिप्य कुलविनयसमृद्धया—कुलस्य=कुरुवंशस्य या विनयरूपा=नमनशीला समृद्धिः=ऐश्वर्यं तया सहैव पातितः=दुर्योधनो हत इति ॥ २७ ॥

भो इति—मुहूर्त्तम्=किञ्चित्क्षणम् तावद् आत्मा=आत्मानं धार्यताम्=अवलम्बताम् इति दुर्योधनं सम्बोध्य कथयति बलदेवः ।

अन्वयः—सौभोच्छिष्टमुखं महासुरपुरप्राकारकूटाङ्कुशं कालिन्दीजलदेशिकं रिपुबलप्राणोपहारार्चितं हस्तोत्क्षिप्तहलं भीमस्य विपुले उरसि अद्य यावत् रुधिरस्वेदार्द्रपङ्कोत्तरं केदारमार्गाकुलं करोमि ॥ २८ ॥

व्याख्या—सौभोच्छिष्टमुखम्—सौभस्य=सौभनाम्नो नगरस्य ध्वंसेनो-

अये दुर्योधन ! थोड़ी देर तक धैर्य धारण करो ।

जब तक सौभ नगर के मुख्य द्वार का विध्वंसक, महासुर के नगर के प्राकार प्रदेश को अङ्कुश की तरह छिन्न भिन्न करने वाला, कालिन्दी के जल प्रवाह का अवरोधक, शत्रुओं के प्राणरूपी उपहार से अर्चित हल को मैं भीम के रुधिर तथा स्वेद से आर्द्र विशाल वक्षःस्थल रूपी खेतों में क्यारियाँ बनाने के लिए प्रयुक्त करता हूँ ॥ २८ ॥

---

१. "पाकोत्तरे" इत्यपि पाठो लभ्यते ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(नेपथ्ये)

प्रसीदतु प्रसीदतु भगवान् हलायुधः ।

बलदेवः—अये एवंगतोऽप्यनुगच्छति मां तपस्वी दुर्योधनः ! य एषः,

श्रीमान् संयुगचन्दनेन रुधिरेणार्द्रानुलिप्तच्छवि-
र्भूसंसर्पणरेणुपाटलभुजो बालव्रतं ग्राहितः ।

च्छिष्टम्=अवशिष्टं स्पृष्टं वा मुखं येन तम्, महासुरपुरप्राकारकूटाङ्कुशम्—महासुरः=शाल्वः तस्य पुरस्य=नगरस्य यत् प्राकारकूटम्=वप्रशृङ्खला तस्य अङ्कुशम्, कालिन्दीजलदेशिकम्—कालिन्द्याः=यमुनायाः जलस्य=जलप्रवाहस्य देशिकम्=पथप्रदर्शकम्, रिपुबलप्राणोपहारार्चितम्—रिपूणाम्=अरीणां बलम्=सैन्यशक्तिस्तस्य प्राणाः=असव एवोपहारः=उपायनम् यस्य तेन अर्चितम्=समादृतं हस्तोत्क्षिप्तहलम्—हस्तेन=करेण उत्क्षिप्तम्=उद्धृतम् हलम्=सीरं, भीमस्य=मध्यमपाण्डवस्य विपुले=विशाले उरसि=वक्षःस्थले, अद्य यावत्=साम्प्रतं रुधिरस्वेदार्द्रपङ्कोत्तरम्—रुधिरम्=रक्तम्, स्वेदश्च=स्वेदकणः ताभ्यामार्द्रैः=तरलैः अतएव पङ्कः=पङ्किलः तेनोत्तरं तादृशं हलं पाकोत्तरे इति पाठे रुधिरमेव स्वेदः स एवार्द्रपङ्कः सद्यस्कः कर्दमः तेन उत्तरे तद्युक्ते केदारमार्याकुलम्—केदारमार्गे=क्षेत्रवर्त्मनि आकुलम्=व्याप्तं करोमि=विदधे इति ।। २८ ।।

बलदेव—'अये' इति विस्मयास्पदं सम्बोधनम् । एवङ्गतोऽपि=उरुभग्ने सत्यपि सभाजयितुं माम् अनुगच्छति=अनुसरतीत्यर्थः ।

अन्वयः—संयुगचन्दनेन रुधिरेण आर्द्रानुलिप्तच्छविः श्रीमान् भूसंसर्पणरेणुपाटलभुजः बालव्रतः ग्राहितः अमृतमन्थने निर्वृत्ते सासुरैः क्षितिधरात् मुक्तः

(नेपथ्य में) भगवान् बलदेव प्रसन्न होवें, प्रसन्न हों ।

बलदेव—इस दशा में भी तपस्वी दुर्योधन मेरा अनुसरण करता है । जो यह—

युद्ध में रक्त चन्दन रूप रुधिर से अनुलिप्त आर्द्र अङ्गो वाला, समरभूमि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

निर्वृत्तेऽमृतमन्थने क्षितिधरान्मुक्तः सुरैः सासुरै-
राकर्षन्निव भोगमर्णवजले श्रान्तोज्झितो वासुकिः ॥ २९ ॥

(ततः प्रविशति भग्नोरुयुगलो दुर्योधनः ।)

दुर्योधनः—एष भोः !

श्रान्तोज्झितः आर्णवजले भोगम् आकर्षन् वासुकिः इव ॥ २९ ॥

व्याख्या— संयुगचन्दनेन—संयुगे=समरे, चन्दनेन=मलयजरसेन तद्रूपिणा रक्तेन=शोणितेन, आर्द्रानुलिप्तच्छविः=सद्यः प्रसृतेन शोणितेन तरलेनानुलिप्ता=व्याप्ता छविः=शोभा यस्य सः श्रीमान्=शोभासम्पन्नो दुर्योधनः साम्प्रतम्, भूसंसर्पणरेणुपाटलभुजः—भुवि=पृथिव्यां संसर्पणेन=रिङ्खणेन यो रेणुः=रजःतेन पाटलौ=धूसरितौ भुजौ=बाहू यस्य सः भूसंसर्पणरेणुपाटलभुजः सन् बालव्रतम्—बालानां=शिशूनां व्रतम्=चेष्टां ग्राहितः=सम्प्राप्तः, अतएव अमृतमन्थने=सुधाविलोडने निर्वृते=परिपूर्णे सासुरैः=दैत्यैः सह सुरैः=देवैः क्षितिधरात्=मन्दरगिरेः मुक्तः=विमुक्तः श्रान्तोज्झितः—श्रान्तः=क्लान्तः, अथ च उज्झितः=परित्यक्तः अर्णवजले=समुद्रजले भोगम्=स्वशरीरम् आकर्षन्=आलिखन् वासुकिः=नागराज इव=सदृशं सुशोभत इति भावः ॥ २९ ॥

तत इति—प्रविशति=रङ्गभूमिमागच्छति, भग्नोरुयुगलः—भग्नः=गदाघातेन त्रुटितम् उरुयुगलम्=जङ्घाद्वयं यस्य स दुर्योधनः=कौरवेश्वरः ।

दुर्योधनः—'एष भोः' इति । एषः=दुर्योधनोऽहमित्यस्याग्रिमश्लोकेन "भीमेन भित्त्वे"त्यादिनान्वयः ।

में गिरकर भी चलने के कारण धूलधूसरित भुजाओं वाला पृथ्वी पर रेंगने वाले शिशुओं की भाँति प्रतीत हो रहा है । तथा समुद्र मन्थन के अनन्तर असुरों तथा देवताओं द्वारा मुक्त मन्दराचल से खींचकर जल में अपने परिश्रान्त शरीर को सरकाते हुए सर्पराज वासुकि की तरह सुशोभित हो रहा है ॥ २९ ॥

(इसके बाद भग्न जङ्घों वाला दुर्योधन प्रवेश करता हैं)

दुर्योधन—अरे ! यह मैं—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भीमेन भित्त्वा समयव्यवस्थां गदाभिघात[1]क्षतजर्जरोरुः ।
भूमौ भुजाभ्यां परिकृष्यमाणं स्वं देहमर्धोपरतं वहामि ॥ ३० ॥
प्रसीदतु प्रसीदतु भगवान् हलायुधः ।
त्वत्पादयोर्निपतितं पतितस्य भूमा—
वेतच्छिरः प्रथममद्य विमुञ्च रोषम् ।
जीवन्तु ते कुरुकुलस्य निवापमेघा
वैरं च विग्रहकथाश्च वयं च नष्टाः ॥ ३१ ॥

अन्वयः—भीमेन समयव्यवस्थां भित्त्वा गदाभिघातक्षतजर्जरोरुः भूमौ भुजाभ्यां परिकृष्यमाणं स्वम् अर्धोपरतं देहं वहामि ॥ ३० ॥

व्याख्या—भीमेन=वृकोदरेण समयव्यवस्थाम्=साम्प्रतिकव्यवस्थां—रणनीतिमित्यर्थः भित्त्वा=समुपेक्ष्य गदाभिघातक्षतजर्जरोरुः—गदाया अभिघातेन=प्रहारेण निपातेनेति पाठे निपातेन=प्रक्षेपेणेति समान्येवार्थः जर्जरोरुः जर्जरितः=विनष्टः ऊरुः यस्य सोऽहं दुर्योधनः भुमौ=क्षितौ भुजाभ्याम्=बाहुभ्यां परिकृष्यमाणम्=समाकृष्यमाणं स्वम्=आत्मानम् अर्धोपरतं=अर्धमृतम् देहम्—शरीरं वहामि=धारयामि अन्यत्र वा सञ्चालयामीति ॥ उपजातिवृत्ताम् ॥ ३० ॥

अन्वयः—भूमौ पतितस्य त्वत्पादयोः निपतितम् एतत् शिरः अद्य प्रथमं रोषं विमुञ्च ते कुरुकुलस्य निवापमेघाः जीवन्तु वैरं च विग्रहकथाः च वयं च नष्टाः ॥ ३१ ॥

युद्ध सम्बन्धी नियमों की उपेक्षा कर भीमसेन के द्वारा किये गये गदा-प्रहार से भग्न ऊरु वाला अपनी भुजाओं से भूमि पर घसीटता हुआ अपने अधमरे शरीर को ढ़ो रहा हूँ ॥ ३० ॥

प्रसन्न होवें भगवान् हलायुध ।

समर भूमि में गिरा हुआ मेरा शिर तथा मेरी दोनो भुजायें आपके चरणों पर पड़े हैं, प्रथमतः आप क्रोध का त्याग करें, जिससे कौरवकुल को जलाञ्जलि देने वाले मेघ की भाँति पाण्डव अब जीवित रह सकें आज हम-

---

१. 'निपात' इत्यपि पाठो लभ्यते ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बलदेवः—भोः दुर्योधन ! मुहूर्तं तावदात्मा धार्यताम् ।
दुर्योधनः—किं भवान्करिष्यति ।
बलदेवः—भोः श्रूयताम्.

आक्षिप्तलाङ्गलमुखोल्लिखितैः शरीरै-
निर्दारितांसहृदयान्मुसलप्रहारैः ।
दास्यामि संयुगहतान्सरथाश्वनागान्
स्वर्गानुयात्रपुरुषांस्तव पाण्डुपुत्रान् ॥ ३२ ॥

व्याख्या—भूमौ=पृथिव्यां पतितस्य=गदाप्रहारेण निपतितस्य मम दुर्योधनस्य त्वत्पादयोः=पुरःस्थितस्य त्वदीयाङ्घ्रयोः निपतितम्=नमस्कर्तुं पतितम् एतत् शिरः—इदं मस्तकं (अतएव) अद्य=इदानीं प्रथमम्=आदौ रोषम्=क्रोधं विमुञ्च=त्यज त्वमिति शेषः । ते=पाण्डवाः कुरुकुलस्य=कुरुवंशस्य निवापमेघाः=तर्पणापःप्रदानाय मेघभूताः जीवन्तु=प्राणान् धारयन्तु वस्तुतस्तु साम्प्रतं कुरुपाण्डवयोः वैरं=शत्रुता च विग्रहकथाः=युद्धवार्ताः च किं वा वयम्=शतभ्रातारोऽन्ये रणयोद्धारः, च नष्टाः=समाप्ता इति ॥ ३१ ॥

अन्वयः—आक्षिप्तलाङ्गलमुखोल्लिखितैः शरीरैः मुसलप्रहारैः निर्दारितांसहृदयान् सरथाश्वनागान् संयुगहतान् पाण्डुपुत्रान् स्वर्गानुयात्रपुरुषान् तव दास्यामि ॥ ३२ ॥

व्याख्या—आक्षिप्तलाङ्गलमुखोल्लिखितैः—आक्षिप्तस्य=प्रहर्त्तुं प्रक्षिप्तस्य

दोनों (कौरव पाण्डवों) की शत्रुता तथा युद्धकथा शान्त हो गयी, और हमलोगों (कौरवों) का नाश हो गया ॥ ३१ ॥

बलदेव—अरे दुर्योधन ! थोड़ी देर और प्राण धारण करो ।

दुर्योधन—तब आप क्या करेंगे ।

बलदेव—सुनो—

चलाये गये हल के अग्रभाग से क्षत-विक्षत शरीर वाले, मुसलप्रहार से चूर्णित स्कन्ध तथा वक्षःस्थल पाण्डवों को रथ, घोड़े हाथियों सहित मारकर स्वर्ग में जाते हुए तुम्हारा अनुगामी बना दूँगा ॥ ३२ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दुर्योधनः—मा मा भवानेवम् ।
प्रतिज्ञावसिते भीमे गते भ्रातृशते दिवम् ।
मयि चैवं गते राम ! विग्रहः किं करिष्यति ।। ३३ ।।
बलदेवः—मत्प्रत्यक्षं[1] वञ्चितो भवानित्युत्पन्नो मे रोषः ।

सञ्चालितस्य वा लाङ्गलस्य=हलस्य मुखेन=अग्रभागेन उल्लिखितैः=विदारितैः शरीरैः=देहैः अथ च मुशलप्रहारैः=मुसलाघातैः निर्दारितांस-हृदयान्–निर्दारितम्=विदीर्णम् अंसम्=स्कन्धश्च हृदयश्च येषां तान् सरथा-श्वनागान्=रथाश्वहस्तिभिः सहितान् संयुगहतान्–संयुगे=संग्रामे हतान्=उपरतान् पाण्डुपुत्रान्=पाण्डोस्सुतान् युधिष्ठिरार्जुनादीन् स्वर्गानुयात्र-पुरुषान् –स्वर्गम्=द्युलोकम् अनुयाता=प्रस्थिताः पुरुषाः=सैनिकाः येषां तान् तव=तुभ्यं दास्यामि=अर्पयिष्यामि वसन्ततिलका वृत्तम् ।। ३२ ।।

अन्वयः—राम ! भीमे प्रतिज्ञावासिते भ्रातृशते दिवं गते मयि च एवं गते निग्रहः किं करिष्यति ।। ३३ ।।

व्याख्या—हे राम ! भीमे=भीमसेने प्रतिज्ञावसिते=दुर्योधनोरु गदया संचूर्णयामीति प्रतिज्ञा प्रपूरिते अथ च मम भ्रातृशते दिवम्=स्वर्लोकं गते=प्रस्थिते किं वा मयि च=दुर्योधने च एवङ्गते=भग्नोरौ सति इदानीं विग्रहः=युद्धं किं करिष्यति=परिणमिष्यति ? युद्धेन नोचितः कश्चित् परिणामो भविष्यतीति भावः ।। ३३ ।।

बलदेवः—मत्प्रत्यक्षम्=मम (बलदेवस्य) समक्षं प्रत्यक्षमिति पाठे तु व्यासकृष्णादीनां सर्वेषां समक्षं वञ्चितः=छलितः एतस्मोद्धतोः मे=मम

दुर्योधन—नहीं नहीं आप ऐसा न करें ।

मध्यम पाण्डव भीम की प्रतिज्ञा पूर्ण हो गयी मेरे सौ भाई स्वर्ग सिधार गये तथा मैं इस दशा को प्राप्त कर लिया हूँ । राम ! अब आप क्यों युद्ध करेंगे ।। ३३ ।।

बलदेव—मेरे सामने ही तुमको धोखा दिया गया है, अतः मेरा क्रोध उभड़ रहा है ।

---

१. 'प्रत्यक्षमि'ति पाठान्तरम् ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दुर्योधनः—वञ्चित इति मां भवान् मन्यते ।
बलदेवः—कः संशयः ?
दुर्योधनः—हन्त भोः ! दत्तमूल्या इव मे प्राणाः । कुतः—
आदीप्तानलदारुणाज्जतुगृहाद् बुद्धयात्मनिर्वाहिणा
युद्धे वैश्रवणालयेऽचलशिलावेगप्रतिस्फालिना[1] ।
भीमेनाद्य हिडिम्ब[2]राक्षसपतिप्राणप्रतिग्राहिणा
यद्येवं समवैषि मां छलजितं भो राम ! नाहं जितः ॥ ३४ ॥

रोषः=क्रोधः उत्पन्नः=समुद्भूतः ।

दुर्योधनः—'हन्त' इति हर्षसूचकमव्ययपदम्=छलेनाहं भीमेन जित इति भवता=बलदेवेन स्वीकृते सति मे=मम प्राणाः=जीवाः दत्तमूल्याः=सफला इति ।

अन्वयः—आदीप्तानलदारुणात् जतुगृहात् बुद्धयात्मनिर्वाहिणा वैश्रवणालये अचलशिलावेगप्रतिस्फालिना हिडिम्बराक्षसपतिप्राणप्रतिग्राहिणा भीमेन अद्य युद्धे यदि एवं मां छलजितं समवैषि (तदा) भो राम ! अहं न जितः (इति मन्ये) ॥ ३४ ॥

व्याख्या—आदीप्तानलदारुणात्—आदीप्तेन=प्रज्वलितेन अनलेन=

दुर्योधन—मुझे धोखा दिया गया है, इसे आप स्वीकार करते हैं ?
बलदेव—इसमें क्या सन्देह है ।
दुर्योधन=अहो ! अच्छा तो, मानों प्राणधारण का मूल्य मुझे मिल गया । क्योंकि—

सभी ओर से धधकती अग्नि से युक्त लाक्षागृह से बुद्धिमता से निकलने वाले, कुवेर के रहते हुए युद्ध में शिलाखण्डों की वर्षा करने वाले, तथा महाबली दैत्यराज हिडिम्ब का प्राणहरण करने वाले भीम ने यदि छल से मुझको जीत लिया है (आप स्वीकार करते हैं) तो वस्तुतः मैं पराजित नहीं हुआ हूँ ॥ ३४ ॥

---

१. "(प्रतीसालिना)" प्रतीसारिणा इति पाठभेदः ।
२. "हिडम्बः" इति पाठान्तरम् ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बलदेवः—भीमसेन इदानीं तव युद्धवञ्चनामुत्पाद्य स्थास्यति ।

दुर्योधनः—किं चाहं भीमसेनेन वञ्चितः ।

बलदेवः—अथ केन भवानेवंविधः कृतः ।

दुर्योधनः—श्रूयताम्,

येनेन्द्रस्य स पारिजातकतरुर्मानेन तुल्यं हृतो
दिव्यं वर्षसहस्रमर्णवजले सुप्तश्च यो लीलया ।

वह्निना दारुणात्=भयङ्करात् जतुगृहात्=लाक्षागृहात् बुद्धया=धिया आत्मनिर्वाहिणा=स्वसंरक्षकेण वैश्रवणालये=कुवेरालये अचलशिलावेग-प्रतिस्फालिना—अचलानाम्=पर्वतानां याः शिलाः तासां वेगेन=जवेन प्रति-स्फालिना=प्रतीसारिणा हिडिम्बराक्षसपतिप्राणप्रतिग्राहिणा—हिडिम्ब-राक्षसपतेः=हिडिम्बाभिधस्य राक्षसाधिपस्य प्राणप्रतिग्रहिणा=प्रणापहारिणा भीमेन अद्य=इदानीं सैन्यबन्धूनां च विनाशेपि युद्धे=सङ्ग्रामे यदि एवं माम्=स्वबन्धुविनाशेन दुःखितं दुर्योधनं छलजितम्=कपटेन जितं समवैषि=जानासि (तदा) भो राम अहं न जितः नैव संग्रामे पराजितः ॥ ३४ ॥

बलदेवः—इदानीम्=साम्प्रतं युद्धे छलप्रयोगेन त्वां जित्वा जीविष्यति भीमसेनः इत्याशयः ।

दुर्योधनः—भगवतः कृष्णस्य महात्म्यं वर्णयन् कथयति—

अन्वयः—येन इन्द्रस्य सः पारिजातकतरुः मानेन तुल्यं हृतः यः च दिव्यं वर्षसहस्रम् अर्णवजले लीलया सुप्तः तेन जगतः प्रियेण हरिणा तीव्रां भीमगदां

बलदेव—युद्धस्थल में तुम्हारे, साथ छल करने वाला भीम अब (जीवित) रह सकेगा ? ।

दुर्योधन—क्या भीम के द्वारा मेरी वञ्चना की गयी है ?

बलदेव—और क्या । किसके द्वारा आपकी दशा की गयी है ?

दुर्योधन—सुनिये जिन्होंने सम्मान के साथ ही इन्द्र का पारिजात नामक कल्पवृक्ष का हरण कर लिया था, अपनी लीला से जिन्होंने दिव्य हजारों वर्ष पर्यन्त क्षीरसागर में शयन किया था वही जगत् के अभीष्ट देव छलरहित

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तीव्रां भीमगदां प्रविश्य सहसा निर्व्याजयुद्धप्रिय-
स्तेनाहं जगतः प्रियेण हरिणा मृत्योः प्रतिग्राहितः ॥ ३५ ॥

(नेपथ्ये)

उस्सरह उस्सरह अय्या ! उस्सरह । उत्सरतोत्सरतार्याः ! उत्सरत ।]

बलदेवः—(विलोक्य) अये अयमत्रभवान् धृतराष्ट्रः गान्धारी च दुर्जयेनादेशितमार्गोऽन्तःपुरानुबन्धः शोकाभिभूतहृदयश्चकितगतिरित एवाभितर्तते । य एषः,

---

सहसा प्रविश्य निर्व्याजयुद्धप्रियः अहं मृत्योः प्रतिग्राहितः ॥ ३५ ॥

व्याख्या—येन = भगवता इन्द्रस्य = सुराधीपतेः सः = प्रसिद्धः पारिजातकतरुः = कल्पवृक्षः मानेन = अभिमानेन तुल्यम् = साकं हृतः = बलाद्गृहीतः दिव्यं वर्षसहस्रम् = देवानां वर्षसहस्रं यावद् अर्णवजले = समुद्रजले लीलया = मायया सुप्तः = योगनिद्रां गृहीतः तेन = लोकवेदख्यातेन जगतः प्रियेण = मङ्गलकारिणा हरिणा = श्रीकृष्णेन तीव्रां = तीक्ष्णां भीमगदाम् = भयङ्करंगदां भीमसेनस्य गदां वा सहसा = अकस्मात् प्रविश्य = निविश्य निर्व्याजयुद्धप्रियः = निष्कपटयुद्धप्रेमी धर्मयोद्धा अहं = दुर्योधनः मृत्योः = कालस्य यमस्य वा प्रतिग्राहितः = हस्ते समर्पित इति ॥ ३५ ॥

बलदेवः—अये इत्याश्चर्यसूचकम् । धृतराष्ट्रः = दुर्योधनस्य पिता गान्धार्याः = दुर्योधनस्य जनन्याः दुर्जयेन = दुर्योधनपुत्रेण आदेशितः = प्रदर्शितः मार्गः = पथः अन्तःपुरानुबन्धः = अन्तःपुरीयस्वजनसहितः शोकाभिभूतहृदयः =

युद्धप्रिय भगवान् श्रीकृष्ण ने भीम की गदा में प्रविष्ट होकर मुझे मृत्यु के हाथों समर्पित कर दिया है ।

(नेपथ्य में) हटें हटें आर्यों हटें ।

बलदेव– (देखकर) अरे यह शोक संतप्त होने से स्खलित गति वाले आदरणीय महाराज धृतराष्ट्र तथा गान्धारी, दुर्जय (दुर्योधन पुत्र) द्वारा निर्दिष्ट मार्ग पर अन्तःपुर के परिजनों के साथ इधर ही आ रहे हैं। जो यह—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

वीर्याकरः सुतशतप्रविभक्तचक्षु-
दर्पोद्यतः कनकयूपविलम्बबाहुः।
सृष्टो ध्रुवं त्रिदिवरक्षणजातशङ्कै-
र्देवैररातितिमिराञ्जलिताडिताक्षः ॥ ३६ ॥

(ततः प्रविशति धृतराष्ट्रो गान्धारी देव्यौ दुर्जयश्च ।)

पुत्रविनाशेनाभिसंतप्तहृदय इत एव = दुर्योधनाभिमुखमेव अभिवर्तते = आगच्छति ।

अन्वयः—वीर्याकरः सुतशतप्रविभक्तचक्षुः दर्पोद्यतः कनकयूपविलम्बबाहुः त्रिदिवरक्षणजातशङ्कैः देवैः अरातितिमिराञ्जलिताडिताक्षः ध्रुवं सृष्टः ॥ ३६ ॥

व्याख्या–वीर्याकरः = बलस्य आलयः सुतशतप्रविभक्तचक्षुः–सुतानाम् = पुत्राणां शतम् = शतशख्याकं सुतशतं प्रति प्रविभक्तम् = संलग्नं चक्षुः = नेत्रम् = यस्य सः अर्थात् दुःशासनादीनां शतपुत्राणां विनाशेन शोकाभिभूत इति भावः, दर्पोद्यतः—दर्पे = अभिमाने उद्यतः अहङ्कारयुक्तः कनकयूपविलम्बबाहुः–कनकयूपवत् = स्वर्णमययज्ञस्तम्भवद् विलम्बौ = लम्बायमानौ बाहू = भुजौ यस्य सः त्रिदिवरक्षणजातशङ्कैः–त्रिदिवस्य = स्वर्गलोकस्य रक्षणे = संरक्षणे जाता = समुद्भूता शङ्का = सन्देहो यस्य तैः देवैः = सुरैः अरातितिमिराञ्जलिताडिताक्षः—अरातयः = शत्रव एव तिमिराञ्जलिः = घोरान्धकारः तेन ताडिते = हते अक्षिणी = नयने यस्य सः तद्रूपं ध्रुवं = निश्चियेन सृष्टः = संरचित इति मन्ये । अत्रोत्प्रेक्षालङ्कारः ॥ ३६ ॥

अत्यन्त पराक्रमी हैं जिनकी दृष्टि (ज्ञानशक्ति) सौ पुत्रों में बँटी हुई है अर्थात् मरे हुए पुत्रों के शोक से अस्थिर चित्त है । दर्प से भरी हुई जिनकी लम्बी भुजायें स्वर्ण निर्मित यज्ञ-स्तम्भ की भाँति प्रतीत होते हैं । निश्चित ही स्वर्ग की रक्षा के लिए उत्पन्न शङ्का वाले देवताओं ने शत्रुता रूपी अन्धकार से जिन्हें मानों नेत्रहीन कर दिया गया हो ॥ ३६ ॥

(इसके बाद धृतराष्ट्र, गान्धारी, दो रानियाँ तथा दुर्जय प्रवेश करते हैं)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

धृतराष्ट्रः--पुत्र ! क्वासि ?

गान्धारी—पुत्तअ ! कहिं सि ? [पुत्रक ! क्वासि ?]

देव्यौ—महाराज ! कहिं सि ? [महाराज ! क्वासि ?]

धृतराष्ट्रः—भोः ! कष्टम् ।

वञ्चनानिहतं श्रुत्वा सुतमद्याहवे मम ।
मुखमन्तर्गतास्राक्षमन्धमन्धतरं कृतम् ॥ ३७ ॥

गान्धारि ! किं धरसे ?

गान्धारी—जीवाविदह्मि मन्दभाआ । [जीवितास्मि मन्दभागा ।]

देव्यौ—महाराअ ! महाराअ ! [महाराज ! महाराज !]

अन्वयः—अद्य आहवे वञ्चनानिहतं सुतं श्रुत्वा मम अन्धं मुखम् अन्तर्गतास्राक्षम् अन्धतरं कृतम् ॥ ३७ ॥

व्याख्या—अद्य आहवे=रणक्षेत्रे वञ्चनानिहतम्—वञ्चनया=छलेन कपटेन वा निहतम्=मारितं सुतम्=अत्मनः पुत्रं श्रुत्वा=संश्रुत्य अन्धम्=नेत्रहीनमपि मम=धृतराष्ट्रस्य मुखम्=आस्यम् अन्तर्गतास्राक्षम्—अन्तर्गतानि=अन्तर्विलीनानि अस्राणि=अश्रूणि अक्षिणी=चक्षुषी यस्य तद् अन्धतरम्=अधिकतरमन्धं कृतम्=विहितम् ॥ ३७ ॥

धृतराष्ट्र—पुत्र ! कहाँ हो ?

गान्धारी—पुत्र ! कहाँ हो ?

रानियाँ—महाराज ! कहाँ हैं ?

धृतराष्ट्र—ओह ! बहुत कष्ट है ।

गदायुद्ध में शत्रुओं द्वारा छल पूर्वक मारे गये पुत्र को सुनकर पहले से ही अँधा मैं शोकातिरक के कारण अश्रुपूरित नेत्रों से अधिक अन्धा बना दिया गया हूँ ॥ ३७ ॥

गान्धारी ! क्या तुम हो ?

गान्धारी—हाँ मन्दभागिनी मैं अभी तक जीवित हूँ ।

दोनों रानियाँ—महाराज ! महाराज !

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राजा—भोः ! कष्टम् । यन्ममापि स्त्रियो रुदन्ति ।

पूर्वं न जानामि गदाभिघातरुजामिदानीं तु समर्थयामि ।
यन्मे प्रकाशीकृतमूर्धजानि रणं प्रविष्टान्यवरोधनानि ॥ ३८ ॥

धृतराष्ट्रः—गान्धारि ! किं दृश्यते दुर्योधननामधेयः कुलमानी ।

गान्धारी—महाराज ! ण दिस्सदि । [महाराज ! न दृश्यते ।]

धृतराष्ट्रः—कथं न दृश्यते । हन्त भो ! अद्यास्म्यहमन्धो योऽहमन्वेष्टव्ये काले पुत्रं न पश्यामि । भो कृतान्तहतक !

अन्वयः—पूर्वं गदाभिघातरुजां न जानामि तु इदानीं समर्थयामि यत् प्रकाशीकृतमूर्धजानि मे अवरोधनानि रणप्रविष्टानि ॥ ३८ ॥

व्याख्या-प्रथमम्=प्राक् गदाभिघातरुजाम्=गदाप्रहारोद्भवां रुजाम्=पीडां न जानामि=नानुभूतवान् तु=परम् इदानीम्=साम्प्रतम् समर्थयामि=गदाघातजनितां पीडाम् अनुभवामि यत्=यतः प्रकाशीकृतमूर्धजानि—प्रकृशीकृतानि=वेणीरहितानि कृतानि मूर्धजानि=स्वात्मनः केशाः यैस्तानि मे=मम अवरोधनानि=अन्तःपुराणि अन्तपुरीयाः स्त्रियः रणम्=सङ्ग्रामभूमिं प्रविष्टानि=समागतानि ॥ ३८ ॥

राजा—ओह ! अत्यधिक खेद है, कि आज मेरी भी पत्नियाँ रो रहीं हैं ।

पहले मैं गदा के प्रहार से हुए पीड़ा का अनुभव नहीं किया था, किन्तु अपने अन्तःपुर की मुक्तवेणी रानियों को रणस्थल पर देखकर अब मुझे पीड़ा की अनूभूति हो रही है ॥ ३८ ॥

धृतराष्ट्र—कौरवकुल का मानी दुर्योधन दीख रहा है ।

गान्धारी—महाराज ! वह नही दिखाई पड रहा है ।

धृतराष्ट्र—क्या नहीं दीख रहा है ? ओह ! वस्तुतः आज मैं अन्धा हूँ, जो कि इस खोजने के समय में पुत्र को नहीं देख रहा है । अये ! पापी यमराज । —

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रिपुसमरविमर्दं मानवीर्यप्रदीप्तं
सुतशतमतिधीरं वीरमुत्पाद्य मानम् ।
धरणितलविकीर्णं किं स योग्यो न भोक्तुं
सकृदपि धृतराष्ट्रः पुत्रदत्तं निवापम् ॥ ३९ ॥

गान्धारी—जाद सुयोधण ! देहि मे पडिवअणं । पुत्तसदविणास-दुत्थिदं समस्सासेहि महाराज । [जात सुयोधन ! देहि मे प्रतिवचनम् । पुत्रशतविनाशदुःस्थितं समाश्वासय महाराजम् ।]

बलदेवः—अये ! इयमत्रभवती गान्धारी ।

या पुत्रपौत्रवदनेष्वकुतूहलाक्षी
दुर्योधनास्तमितशोकनिपीतधैर्या ।

अन्वयः—रिपुसमरविमर्दम् अतिधीरं मानवीर्यप्रदीप्तं धरणितलविकीर्णं मान वीरं सुतशतम् उत्पाद्य धृतराष्ट्रः पुत्रदत्तं निवापं सकृत् अपि किं भोक्तुं न योग्यः ॥ ३९ ॥

व्याख्या—रिपुसमरविमर्दम्–रिपुणाम्=अरीणां समरे=रणे विमर्दम्=विध्वंस अतिधीरम्=धैर्यवन्तम् मानवीर्यप्रदीप्तम्—मानेन=प्रतिष्ठया अपि च वीर्येण=शौर्येण प्रदीप्तम्=प्रसिद्धिमवाप्तम् धरणितलविकीर्णम्–धरणितले=भूमण्डले विकीर्णम्=परित्यक्तं मानं=मानयुक्त सुतशतम्=शतसंख्याकान् पुत्रान् उत्पाद्य=जनित्वा, धृतराष्ट्रः पुत्रदत्तम्=पुत्रैः पुत्रेण वा समर्पित निवापम्=तर्पणार्थं तिलोदकम् सकृत्=एकवारम् अपि किं भोक्तुम्=ग्रहीतुं न योग्यः=न शक्तः ? ॥ ३९ ॥

अन्वयः—या पुत्रपौत्रवदनेषु अकुतूहलाक्षी दुर्योधनास्तमितशोकनिपीत-

---

युद्ध में शत्रुओं का मर्दन करने वाला सम्मान और पराक्रम से देदीप्यमान अत्यन्त वीर अभीमानी सौ पुत्रों को उत्पन्न करने वाला धृतराष्ट्र अपने एक भी पुत्र द्वारा इस पृथ्वी पर दिये गये तर्पण जल का एक वक्त भी ग्रहण करने के योग्य नहीं है ॥ ३९ ॥

गान्धारी—पुत्र सुयोधन ! मुझे उत्तर दो । सौ पुत्रों की मृत्यु से दुःखी इस अभागे महाराज को धैर्यावलम्बन दो ।

बलदेव—अरे ! यह आदरणीया गान्धारी हैं ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अस्रैरजस्रमधुना पतिधर्मचिह्न-
मार्द्रीकृतं नयनबन्धमिदं दधाति ॥ ४० ॥

धृतराष्ट्रः—पुत्र दुर्योधन ! अष्टादशाक्षौहिणीमहाराज ! क्वासि ।

राजा—अद्यास्मि महाराजः ।

धृतराष्ट्रः—एहि पुत्रशतज्येष्ठ ! देहि मे प्रतिवचनम् ।

राजा—ददामि खलु प्रतिवचनम् । अनेन वृत्तान्तेन व्रीडितोऽस्मि ।

धृतराष्ट्रः—एहि पुत्र ! अभिवादयस्व माम् ।

धैर्या अधुना अजस्रम् पतिधर्मचिह्नम् अस्रैः आर्द्रीकृतम् इदं नयनबन्धं दधाति ॥ ४० ॥

व्याख्या—या=दुर्योधनमाता गान्धारी पुत्रपौत्रवदनेषु=पुत्रपौत्राणाम् आस्येषु अकुतूहलाक्षी=द्रष्टुमनुत्सुका दुर्योधनास्तमितशोकनिपीतधैर्या—दुर्योधनास्तमितेन=दुर्योधनस्य अस्तमयेन=पराजितेन आसन्नमृत्युना वा समुत्पन्नः यः शोकः=क्लेशः तेन निपीतम्=विनष्टं धैर्यम्=धीरतां यस्याः सा अधुना=इदानीम् अजस्रम्=अनवरतं पतिधर्मचिह्नम्—पतिधर्मस्य=पातिव्रत्यस्य चिह्नम्=लक्षणम् अस्रैः=अश्रुप्रवाहैः आर्द्रीकृतम्=तरलितम् इदं नयनबन्धम्=नेत्रपट्टिकां दधाति=धारयतीत्यर्थः ॥ ४० ॥

जो अपने पुत्र तथा पौत्रों का मुख देखने के लिए उत्कण्ठित नहीं हुई, किन्तु युद्ध में पराजित दुर्योधन की भावि मृत्यु की शोक से जिसका धैर्य समाप्त हो गया है, सम्प्रति अश्रुधारा के अनवरत प्रवाहित होने से आर्द्र नेत्रों वाली गान्धारी मानो पतिव्रतधर्म के चिह्नरूप नेत्रों पर बँधी पट्टी को धारण कर रही है ॥ ४० ॥

धृतराष्ट्र—पुत्र दुर्योधन ! अठारह अक्षौहिणी सेनाओं के अधिपति तुम कहाँ हो ।

राजा—क्या आज भी मैं महाराज हूँ ?

धृतराष्ट्र—सौ पुत्रों में ज्येष्ठ ! मुझे उत्तर दो ।

राजा—मैं उत्तर दे रहा हूँ, किन्तु प्रकृत वृत्तान्त से लज्जित हूँ ।

धृतराष्ट्र—आओ पुत्र ! मुझे अभिवादन करो ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राजा—अयमयमागच्छामि। (उत्थानं रूपयित्वा पतति) हा धिक् ! अयं मे द्वितीयः प्रहारः। कष्टं भोः।

हृतं मे भीमसेनेन गदापातकचग्रहे।
सममूरुद्वयेनाद्य गुरोः पादाभिवन्दनम् ॥ ४१ ॥

गान्धारी—एत्थ जादा ! [अत्र जाते।]

देव्यौ—अय्ये ! इमा म्ह। [आर्ये ! इमे स्वः।]

गान्धारी—अण्णेसह भत्तारं। [अन्वेषेथां भर्तारम्।]

देव्यौ—गच्छाम मन्दभाआ [गच्छावः मन्दभागे।]

धृतराष्ट्रः—क एष भो ! मम वस्त्रान्तरमाकर्षन् मार्गमादेशयति।

अन्वयः—अद्य भीमसेनेन गदापातकचग्रहे मे ऊरुद्वयेन समं गुरोः पादभिवन्दनम् हृतम् ॥ ४१ ॥

व्याख्या—अद्य भीमसेनेन=मध्यमपाण्डवेन गदापातकचग्रहे—गदाप्रहारपूर्वकं केशग्रहे सति मे=मम दुर्योधनस्य ऊरुद्वयेन=जङ्घयुगलेन समम्=सह गुरोः=पित्रोः गुरोः बलदेवस्य वा पादाभिवन्दनम्=चरणयोर्नमस्करणं हृतम्=विनष्टम् ॥ ४१ ॥

राजा—अच्छा, यह मैं आया (उठने का अभिनय करता हुआ गिरता है) ओह ! बहुत खेद है। मानो यह मेरे ऊपर दूसरा प्रहार है। कष्ट है कष्ट।

मेरे बालों को पकड़ा हुआ भीमसेन ने गदा के प्रहार से मेरी दोनों जङ्घों के साथ ही गुरुजनों के चरणों की वन्दना से भी मुझे वञ्चित कर दिया ॥ ४१ ॥

गान्धारी—पुत्रियों। इधर आओ।

देवियाँ—आर्ये ! हमदोनों यहाँ हैं।

गान्धारी—अपने स्वामी को ढूंढ़ो।

देवियाँ—हमदोनों मन्दभागिनी जाती हैं।

धृतराष्ट्र—अरे ! यह कौन है जो मेरे वस्त्रों को खीचता हुआ मुझे राह दिख रहा है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दुर्जयः—ताद ! अहं दुज्जओ । [तात ! अहं दुर्जयः ।]

धृतराष्ट्रः—पौत्र दुर्जय ! पितरमन्विच्छ ।

दुर्जयः—ताद ! परिस्संतो खु अहं । [तात ! परिश्रान्तः खल्वहम् ।]

धृतराष्ट्रः—गच्छ, पितुरङ्के विश्रमस्य ।

दुर्जयः—ताद ! अहं गच्छामि । (उपसृत्य) ताद ! कहिं सि ? [तात ! अहं गच्छामि । तात क्वासि ?)

राजा—अयमप्यागतः । भोः ! सर्वावस्थायां हृदयसंनिहितः पुत्र-स्नेहो मां दहति कुतः,

दुःखानामनभिज्ञो यो ममाङ्कशयनोचितः ।
निर्जितं दुर्जयो दृष्टवा किन्नु मामभिधास्यति ॥ ४२ ॥

अन्वयः—दुःखानाम् अनभिज्ञः यः मम अङ्कशयनोचितः दुर्जयः (सः) मां निर्जितं दृष्ट्वा किं नु अभिधास्यति ? ॥ ४२ ॥

व्याख्या—दुःखानाम्=कष्टानाम् अनभिज्ञः=अज्ञातः यः दुर्जयः=दुर्जयनामा मम अङ्कशयनोचितः—अङ्के=क्रोडे शयनम्=अवस्थानं तस्योचितः=अर्हः पुत्रः स इति शेषः माम्=दुर्योधनं निर्जितम्=पराभूतं दृष्ट्वा=अवलोक्य किं नु अभिधाष्यति=वदिष्यति ॥ ४२ ॥

दुर्जय—दादा जी ! मैं दुर्जय हूँ ।

धृतराष्ट्र—पौत्र दुर्जय ! अपने पिता का अन्वेषण करो ।

दुर्जय—दादाजी ! मैं थका हुआ हूँ ।

धृतराष्ट्र—जाओ, पिता की गोद में तुम आराम करो ।

दुर्जय—दादा जी ! मैं जा रहा हूँ (समीप जाकर) पिताजी आप कहाँ है ? ।

राजा—यह भी आ गया । ओह ! सभी अवस्था में हृदयस्थित पुत्रप्रेम मुझे जला रहा है क्योंकि—

जो दुःखों को नहीं जानता है, जिसका मेरे (पिता के) गोद में अभी शयन करने का उचित समय है वह मेरा पुत्र दुर्जय मुझको (रण में) पराजित देखकर क्या कहेगा ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दुर्जयः—अअं महाराओ भूमीए उवविट्ठो [अयं महाराजो भूम्यामुपविष्टः ।]

राजा—पुत्र किमर्थमिहागतः !

दुर्जयः—तुवं चिरायसि त्ति । [त्वं चिरासीति ।]

राजा—अहो अस्यामवस्थायामपि पुत्रस्नेहो हृदयं दहति ।

दुर्जयः—अहं पि खुदे अङ्के उवविसामि । (अङ्कमारोहति) [अहमपि खलु ते अङ्के उपविशामि ।]

राजा—(निवार्य) दुर्जय ! दुर्जय भोः ! कष्टम् ।

हृदयप्रीतिजननो यो मे नेत्रोत्सवः स्वयम् ।
सोऽयं कालविपर्यासाच्चन्द्रो वह्नित्वमागतः ॥ ४३ ॥

अन्वयः—यः मे हृदयप्रीतिजननः स्वयं नेत्रोत्सवः सः अयं चन्द्रः कालविपर्यासात् वह्नित्वम् आगतः ॥ ४३ ॥

व्याख्या—यः=दुर्जयः मे=मम हृदयप्रीतिजननः—हृदये=अन्तःकरणे प्रीतेः=प्रेम्णः स्नेहस्य वा जननः=जनकः स्वयम्=स्वभावतः नेत्रोत्सवः=नयनान्दकरः सोऽयम्=पुत्रः चन्द्रवदाह्लादकरः (इदानीम्) कालविपर्यासात्=कालवैपरीत्याद् वह्नित्वम्=वह्नेः स्वभावं दाहकत्वम् आगतः=सम्प्राप्तः ॥ ४३ ॥

दुर्जय—यह महाराज भूमि पर बैठे हैं ।

राजा—बेटा ! तुम यहाँ क्यों आये हो ।

दुर्जय—आप देर कर रहे हैं ।

राजा—अहो ! इस दशा में भी पुत्र-प्रेम मेरे हृदय को जला रहा है ।

दुर्जय—मैं भी आपकी गोद में बैठूगा । (गोद में बैठता है)

राजा—(हटा कर) दुर्जय ! दुर्जय ! बहुत कष्ट है ।

जो मेरे हृदय में आनन्द उत्पन्न करने वाला तथा नेत्रों के लिए उत्सव की भाँति था वही पुत्ररूपी चन्दमा (दुर्जय) समय की प्रतिकूलता से अग्नि के समान सन्ताप दे रहा है ॥ ४३ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दुर्जयः—अङ्के उपवेसं किण्णिमित्तं तुवं वारेसि। [अङ्के उपवेशं किन्निमित्तं त्वं वारयसि।]

राजा—

त्यक्त्वा परिचितं पुत्र ! यत्र तत्र त्वयास्यताम्।
अद्य प्रभृति नास्तीदं पूर्वभुक्तं तवासनम् ॥ ४४ ॥

दुर्जयः—कहिं णु हु महाराओ गमिस्सदि। [कुत्र नुखलु महाराजो गमिष्यति।]

राजा—भ्रातृशतमनुगच्छामि।

दुर्जयः—मं पि तहिं णेहि। [मामपि तत्र नय।]

राजा—गच्छ पुत्र ! एवं वृकोदरं ब्रूहि।

दुर्जयः—एहि महाराअ ! अण्णेसीअसि। [एहि महाराज ! अन्विष्यसे।]

अन्वयः—पुत्र ! परचितं त्यक्त्वा त्वया यत्र तत्र आस्यताम् अद्य प्रभृति पूर्वभुक्तम् इदम् तव आसनं नास्ति ॥ ४४ ॥

व्याख्या—पुत्र ! परिचितम्=प्रागनुभूतम् (मदङ्कम्) त्यक्त्वा=परित्यज्य त्वया यत्र तत्र=यस्मिन् कस्मिश्चिदपि स्थाने आस्यताम्=समुपविश्यताम् अद्य प्रभृति=अद्य यावत् पूर्वभुक्तम्=पूर्वानुभूतम् इदम्=मत्क्रोडम् तव=भवतः आसनम्=स्थातुं योग्यं नास्ति=न विद्यते ॥ ४४ ॥

दुर्जय—आप गोद में बैठने से मुझे क्यों रोक रहें हैं।

राजा—बेटा ! तुमने पहले जिस (मेरे गोद रूपी) आसन का उपयोग किया, उस पूर्वपरिचित आसन को छोड़ कर अब जहाँ चाहो बैठो, आज से यह तुम्हारे योग्य नहीं है।

दुर्जय—तो अब महाराज कहाँ जायेंगे ?

राजा—अपने सौ भाइयों का अनुगमन करता हूँ।

दुर्जय—मुझे भी वहाँ ले चलिए।

राजा—बेटा ! जाओ भीम से कहो।

दुर्जय—आइये, महाराज ! आप खोजे जा रहे हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राजा—पुत्र केन।

दुर्जयः—अय्याए, अय्येण, सव्वेण अतन्उरेण अ। [आर्ययार्येण सर्वेणान्तःपुरेण च।]

राजा—गच्छ पुत्र ! नाहमागन्तुं समर्थः।

दुर्जयः—अहं तुमं णइस्सं। [अहं त्वां नेष्यामि]

राजा—बालस्तावदसि पुत्र !

दुर्जयः—(परिक्रम्य) अय्या ! अयं महाराओ। [आर्याः ! अयं महाराजः।]

देव्यौ—हा हा ! महाराओ ! [हा हा ! महाराजः।]

धृतराष्ट्रः—क्वासौ महाराजः।

गान्धारी—कहिं मे पुत्तओ। (कुत्र मे पुत्रकः।)

दुर्जयः—अअं महाराओ भूमीऐ उवविट्ठो। (अयं महाराजो भूम्यामुपविष्टः।)

धृतराष्ट्रः—हन्त भोः ! किमयं महाराजः।

राजा—किसके द्वारा ?

दुर्जय—पूज्य पितामही पूज्य पितामह, तथा अन्तःपुर के सभी लोगों द्वारा।

राजा—पुत्र ! जाओ, मैं आने में असमर्थ हूँ।

दुर्जय—मैं आपको ले चलूँगा।

राजा—बेटा ! तू अभी बालक हो।

दुर्जय—माताओं ! यह महाराज हैं।

देवियाँ—हाय ! हाय ! महाराज।

धृतराष्ट्र—महाराज कहाँ हैं।

गान्धारी—मेरा पुत्र कहाँ है।

दुर्जय—यह महाराज भूमि पर बैठे हुए हैं।

धृतराष्ट्र—ओह ! यह महाराज हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यः काञ्चनस्तम्भसमप्रमाणो लोके किलैको वसुधाधिपेन्द्रः ।
कृतः स मे भूमिगतस्तपस्वी द्वारेन्द्रकीलार्धसमप्रमाणः ॥ ४५ ॥

गान्धारी—जाद सुयोधण ! परिस्संतोसि । [जात सुयोधन ! परिश्रान्तोऽसि ।]

राजा—भवत्याः खल्वहं पुत्रः ।

धृतराष्ट्रः—केयं भोः !

गान्धारी—महाराअ ! अहमभीदपुत्तप्पसविणी । [महाराज ! अहमभीतपुत्रप्रसविनी ।]

अन्वयः—यः लोके काञ्चनस्तम्भसमप्रमाणः एकः वसुधाधिपेन्द्रः स मे तपस्वी भूमिगतः द्वारेन्द्रकीलार्धसमप्रमाणः कृतः ॥ ४५ ॥

व्याख्या—यः=दुर्योधनः लोके=पृथिव्याम् काञ्चनस्तम्भसमप्रमाणः—काञ्चनम्=स्वर्णम् तस्य स्तम्भसमम्=स्थूणसदृशम् प्रमाणम् यस्य सः किल=वस्तुतः एकः=अद्वितीयः वसुधाधिपेन्द्रः—वसुधायाम्=पृथिव्याम् ये खलु अधिपाः=राजानः तेषां तेषु वा इन्द्रः=श्रेष्ठः चक्रवर्त्ती (आसीत्) सः मे=मम धृतराष्ट्रस्य पुत्रः, तपस्वी=वराकः भूमिगतः=गदाघातेन भूमौ पतितः द्वारेन्द्रकीलार्धसमप्रमाणः—द्वारेन्द्रः=गृहस्य प्रमुखं द्वारं तस्य यः कीलः=अर्गला तस्य अर्धम्=अर्धभागः तेन तुल्यम् प्रमाणम्=परिमाणं यस्य सः तथा कृतः=जातः ॥ ४५ ॥

जो सोने के खम्भे की भाँति सुदृढ़ शरीर वाला इस पृथ्वी पर सभी राजाओं में श्रेष्ठ था उस मेरे तपस्वी पुत्र को भूमि पर पड़े हुए दरवाजे के टूकड़े की भाँति बना दिया गया है ॥ ४५ ॥

गान्धारी—बेटा सुयोधन ! क्या तुम थके हो ।

राजा—मैं, आपका पुत्र हूँ । (अर्थात् वीर प्रसविनी जननी का पुत्र कैसे थक सकता हूँ ?)

धृतराष्ट्र—यह कौन है ?

गान्धारी—मैं निर्भय पुत्र की जननी (गान्धारी) हूँ ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राजा—अद्योत्पन्नमिवात्मानमवगच्छामि। भोस्तात किमिदानीं व्यलव्येन।

धृतराष्ट्र—:पुत्र कथमविक्लवो भविष्यामि।

यस्य वीर्यबलोत्सिक्तं संयुगाध्वरदीक्षितम्।
पूर्वं भ्रातृशतं नष्टं त्वय्येकस्मिन्हते हतम्॥ ४६॥

[पतति]

राजा—हा धिक्! पतितोऽत्रभवान्। तात! समाश्वासयात्रभवतीम्।

धृतराष्ट्रः—पुत्र! किमिति समाश्वासयामि।

राजा—अपराङ्मुखो युधि हत इति। भोस्तात शोकनिग्रहेण

अन्वयः—यस्य वीर्यबलोत्सिक्तम् संयुगाध्वरदीक्षितम् भ्रातृशतम् पूर्वम् नष्टम् त्वयि एकस्मिन् हते हतम्॥

व्याख्या—यस्य=तव दुर्योधनस्य, वीर्यबलोत्सिक्तम्=उद्धतम् संयुगाध्वरदीक्षितम्—संयुगः=समर एवाध्वरः=यज्ञः तस्मिन् दीक्षितम्=निपुणम् भ्रातृशतम् पूर्वम्=प्रागेव युद्धे नष्टम्=दिवङ्गतम् (इदानीम्) त्वयि एकस्मिन्=एकमात्रावशिष्टे मत्पुत्रे हते=मृते हतम्=सर्वं समाप्तमिति॥ ४६॥

राजा—मैं अपने को आज ही उत्पन्न हुआ समझ रहा हूँ। पिताजी! अब पश्चात्ताप करने से क्या होगा।

धृतराष्ट्र—पुत्र! कैसे शोकरहित हो सकूँ।

युद्ध रूपी यज्ञ में दीक्षित बल तथा पराक्रम से परिपूर्ण जिसके सौ भाई मृत्यु के मुख में चले गये हैं इस प्रकार तुम्हारे एक की ही मृत्यु से मैं भी मारा गया॥ ४६॥ (गिर जाता है)

राजा—हाय! बहुत कष्ट है। आप गिर गये। पिताजी! माता जी को सान्त्वना दिलायें।

धृतराष्ट्र—बेटा! कैसे सान्त्वना दिलाऊँ।

राजा—मैं युद्ध में शत्रु का सामना करते हुए मारा गया हूँ। हे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

क्रियतां ममानुग्रहः ।

त्वत्पादमात्रप्रणताग्रमौलिर्ज्वलन्तमप्यग्निमचिन्तयित्वा ।
येनैव मानेन समं प्रसूतस्तेनैव मानेन दिवं प्रयामि ॥ ४७ ॥

धृतराष्ट्रः—

वृद्धस्य मे जीवितनिःस्पृहस्य निसर्गसम्मीलितलोचनस्य ।
धृतिं निगृह्यात्मनिसंप्रवृत्तस्तीव्रस्समाक्रामति पुत्रशोकः ॥ ४८ ॥

अन्वयः—त्वत्पादमात्रप्रणताग्रमौलिः येन एव मानेन समम् प्रसूतः तेन एव मानेन ज्वलन्तम् अग्निम् अपि अचिन्तयित्वा दिवम् प्रयामि ॥ ४७ ॥

व्याख्या — त्वत्पादमात्रप्रणताग्रमौलिः—त्वत्पादमात्रे = भवच्चरणमात्रे प्रणतः = नतः अग्रमौलिः = शिरः यस्य सः (अहम्) येनैव मानेन = प्रतिष्ठया समम् = सह प्रसूतः = अजाये तेनैव मानेन = सम्मानेन (सह) ज्वलन्तम् = प्रज्वलितम् अग्निम् = वह्निम् अपि अचिन्तयित्वा = अविचार्य दिवम् = स्वर्गम् प्रयामि = गच्छामि ॥ ४७ ॥

अन्वयः—जीवितनिःस्पृहस्य निसर्गसम्मीलितलोचनस्य वृद्धस्य मे धृतिम् निगृह्य आत्मनि सम्प्रवृत्तः तीव्रः पुत्रशोकः समाक्रामति ॥ ४८ ॥

व्याख्या—जीवितनिःस्पृहस्य—जीविते = प्राणधारणे निःस्पृहस्य = अभिलाषरहितस्य निसर्गसम्मीलितलोचनस्य निसर्गेण = जन्मनैव सम्मीलिते = सङ्कुचिते लोचने = अक्षिणी यस्य वृद्धस्य = जरातुस्य मे = मम धृतराष्ट्रस्य धृतिम् = धैर्यम् निगृह्य = अपवृत्य आत्मानि = हृदि सम्प्रवृत्तः = समुत्पन्नः

पिताजी ! इसे जान कर निःशोक होकर मेरे ऊपर कृपा करें ।

आपके चरणों में नतमस्तक रहने वाला मैं जिस अभिमान के साथ उत्पन्न हुआ उसी सम्मान के सहित जलती हुई अग्नि की चिन्ता न करता हुआ स्वर्लोक जा रहा हूँ ॥ ४७ ॥

धृतराष्ट्र—अपने जीवन के प्रति निराश मुझ जन्मान्ध का पुत्रविनाश जनित शोक, धैर्य को रोक कर अति तीव्र गति से मुझे आक्रान्त कर रहा है ॥ ४८ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बलदेवः—भोः ! कष्टम् ।

दुर्योधननिराशस्य नित्यास्तमितचक्षुषः ।
न शक्नोम्यत्रभवतः कर्तुमात्मनिवेदनम् ॥ ४९ ॥

राजा—विज्ञापयाम्यत्रभवतीम् ।

गान्धारी—भणाहि जाद ! [भण जात !]

राजा—नमस्कृत्य वदामि त्वां यदि पुण्यं मया कृतम् ।
अन्यस्यामपि जात्यां मे त्वमेव जननी भव ॥ ५० ॥

तीव्रः=असह्यः पुत्रशोकः=पुत्रविनाशजनितशोकः समाक्रामति—समन्ततः आक्रमति=आक्रमणं करोतीत्यर्थः ॥ ४८ ॥

अन्वयः—दुर्योधननिराशस्य नित्यास्तमितचक्षुषः अत्र भवतः आत्मनिवेदनं कर्तुं न शक्नोमि ॥ ४९ ॥

व्याख्या—दुर्योधननिराशस्य=दुर्योधनस्य जीवनं प्रति नैराश्यमवाप्तस्य नित्यास्तमितचक्षुषः–नित्यम्=सर्वदैव अस्तमिते=सङ्कुचिते चक्षुषी=अक्षिणी यस्य सः तस्य अत्रभवतः=मान्यस्य (शोकाकुलस्य) समक्षम् आत्मनिवेदनम्=धैर्यावलम्बनाय किञ्चिद्वक्तुं न शक्नोमि=समर्थोऽस्मि ॥ ४९ ॥

अन्वयः—(हे मातः !) त्वां नमस्कृत्य (अहम्) वदामि यदि मया पुण्यं कृतम् (तदा) मे अन्यस्याम् अपि जात्यां त्वम् एव जननी भव ॥ ५० ॥

व्याख्या—मातरं गान्धारीं प्रति दुर्योधनः कथयति त्वाम्=भवतीम्

बलदेव—ओह ! खेद है ।

दुर्योधन के जीवन के प्रति हताश नित्य निमीलित नेत्रों वाले आप (धृतराष्ट्र) के समक्ष मैं अपनी कुछ भी बातें कहने में असमर्थ हूँ ॥ ४९ ॥

राजा—माँ ! मैं आपसे कुछ निवेदन करना चाहता हूँ ।

गान्धारी—कहो बेटा ।

राजा—मैं अभिवादन करके आपसे कहता हूँ कि यदि मैंने कुछ पुण्य किया है तो दूसरे जन्म में भी आप ही मेरी माता होवें ॥ ५० ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

गान्धारी—मम मणोहरो खु तुए भणिदो। [मम मनोरथः खलु त्वया भणितः।]

राजा—मालवि ! त्वमपि शृणु।

भिन्ना मे भ्रुकुटी गदानिपतितैर्व्यायुद्धकालोत्थितै-
र्वक्षस्युत्पतितैः प्रहाररुधिरैर्हारावकाशो हृतः।
पश्येमौ व्रणकाञ्चनाङ्गदधरौ पर्याप्तशोभौ भुजौ
भर्ता ते न पराङ्मुखो युधि हतः किं क्षत्रिये ! रोदिषि ॥५१॥

नमस्कृत्य=प्रणम्य वदामि=वच्मि यदि मया=दुर्योधनेन पुण्यम्=सकृतम् कृतम्=सम्पादितम् (तदा) अन्यस्याम्=परस्मिन् अपि जात्याम्=जन्मनि त्वमेव=भवती एव जननी=माता भव ॥ ५० ॥

अन्वयः—व्यायुद्धकालोत्थितैः गदानिपतितैः मे भ्रुकुटी भिन्ना वक्षसि उत्पतितैः प्रहाररुधिरैः हारावकाशः हृतः व्रणकाञ्चनाङ्गदधरौ पर्याप्तशोभौ भुजौ पश्य ते भर्ता युधि पराङ्मुखः न हतः क्षत्रिये किम् रोदिषि ॥ ५१ ॥

व्याख्या—व्यायुद्धकालोत्थितैः=सङ्ग्रामसमयोत्पन्नैः, गदानिपतितैः=गदाप्रहारैः, मे=मम, भ्रुकुटी=भ्रूकुटिः, भिन्ना=स्फुटिता, वक्षसि=हृदि उत्पतितैः=समुद्भवैः, प्रहाररुधिरैः=आघातजनितरक्तैः हारावकाशः=मुक्ताहारस्य स्थानं हृतः=दूरीकृतः। व्रणकाञ्चनाङ्गदधरौ—व्रणः=क्षतमेव, काञ्चनाङ्गदम्=स्वर्णिमः भुजभूषणः तस्य धरौ=धारकौ तद्वशात् पर्याप्तशोभौ—पर्याप्ता=परिपूर्णा, शोभा=सौन्दर्यं ययोस्तौ भुजौ=बाहू, पश्य=अवलोकय। ते=तव, भर्ता=पतिः, युधि=समरे पराङ्मुखः सन्

गान्धारी—मेरे मन में जो है, उसे ही तुमने कहा।

राजा—मालवि ! तुम भी सुनो।

सङ्ग्राम के समय गदा प्रहार से मेरी भौंहें टूट गयी हैं, वक्षःस्थल पर हुए आघात से रुधिर निकलने के कारण हार के लिए स्थान नही है, किन्तु स्वर्णाभूषण से सुसज्जित इन भुजाओं को देखो। तुम्हारा पति युद्धस्थल में पीठ दिखाकर नहीं अपितु (शत्रु से लड़ते हुए) मारा गया है तथापि हे क्षत्रिये ! तुम क्यों रो रही है ॥ ५१ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

देवी—बाला एषा सहधर्मचारिणी रोदामि। [बाला एषा सहधर्मचारिणी रोदिमि।]

राजा—पौरवि ! त्वमपि शृणु !

वेदोक्तैर्विविधैर्मखैरभिमतैरिष्टं धृता बान्धवाः
शत्रूणामुपरिस्थितं प्रियशतं न व्यंसिताः संश्रिताः।
युद्धेऽष्टादशवाहिनीनृपतयः संतापिता निग्रहे
मानं मानिनि ! वीक्ष्य मे न हि रुदन्त्येवंविधानां स्त्रियः॥ ५२॥

न हतः=घातितः। अतः क्षत्रिये !=क्षत्रियकुलजाते, कथम्=किमर्थं रोदिसि=विलपसि। क्षत्रियकुलोत्पन्नयास्ते हर्षस्थाने शोकाकुलत्वं नोचितम्॥ ५१॥

अन्वयः—वेदोक्तैः अभिमतैः विविधैः मखैः इष्टम्, बान्धवाः धृताः प्रियशतं शत्रूणाम् ऊपरि स्थितम् संश्रिताः न व्यंसिताः युद्धे अष्टादशवाहिनीनृतपयः निग्रहे संतापिताः मानिनि ! एवं विधानां मानं वीक्ष्य मे स्त्रियः न हि रुदन्ति॥ ५२॥

व्याख्या—वेदोक्तैः=वेदप्रतिपादितैः अभिमतैः=अनुकूलैः विविधैः=नानाप्रकारैः मखैः=यज्ञैः इष्टम्=देवार्चनं विहितम्। बान्धवाः=सम्बन्धिनः सगोत्रा वा धृताः=पोषिताः प्रियशतम्—प्रियाणाम्=दुःशासनादीनां भ्रातॄणां शतमथ च शत्रूणाम् उपरि=भ्रातॄणां श्रेष्ठत्वेन शत्रूंश्चाधिकृत्य स्थितम्। संश्रिताः=मदाश्रयप्राप्ताः न व्यंसिताः=परित्यक्ताः। युद्धे=

देवी—आपकी सहधर्मचारिणी मैं अबोधबाला हूँ, अतः रो रही हूँ।

राजा—पौरवि ! तुम भी सुनो।

मैंने वेदविहित विविध प्रकार के यज्ञों द्वारा देवताओं की पूजा की है, सम्बन्धियों का पोषण किया, शत्रुओं पर सदा आक्रमण कर उन्हें अपने अधीन रखा अपने आश्रितों को सन्तुष्ट किया है, युद्ध में अट्ठारह अक्षौहिणी सेना वाले राजाओं को विविध प्रकार के बल प्रयोग द्वारा अपना बन्दी बनाया। शतः हे गौरवशालिनि ऐसी प्रतिष्ठा प्राप्त पराक्रमी पुरुषों की पत्नियाँ नहीं रोती है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पौरवी—एक्ककिदपप्पवेसणिच्चआ ण रोदामि। [एककृतप्रवेश-निश्चया न रोदिमि।]

राजा—दुर्जय ! त्वमपि शृणु।

धृतराष्ट्रः—गान्धारि ! किं नु खलु वक्ष्यति।

गान्धारी—अहं पि तं एव्व चिन्तेमि। [अहमपि तदेव चिन्तयामि।]

राजा—अहमिव पाण्डवाः शुश्रूषयितव्याः तत्रभवत्याश्चाम्बायाः कुन्त्या निदेशो वर्तयितव्यः। अभिमन्योर्जनती[1] द्रौपदी चोभे मातृवत्पूजयितव्ये। पश्य पुत्र !

समरे अष्टादशवाहिनीनृपतयः—अष्टादशानां वाहिनीनाम्=सैन्यानां नृपतयः=राजनः सञ्चालकाः वा निग्रहे=शस्त्रादिना रोधे संतापिताः=पीडिताः (अतः) हे मानिनि=मानरक्षिके ! मत्प्रिये ! एवंविधानाम्=मादृशां पराक्रमशालिनां मानम्=सम्मानम् अभिमानं वा वीक्ष्य=दृष्ट्वा मे=मम स्त्रियः=नार्य्यः न हि=नैव रुदन्ति=विलपन्ति अपितु स्वपत्युः पराक्रमं स्मृत्वा हृष्टा एव भवन्तीति भावः ॥ ५२ ॥

एक कृतेति। एकः=तुल्य कृतः प्रवेशनिश्चयः=सतीधर्ममाश्रित्य वह्नौ प्रवेशनिश्चयः यया साऽहं न रोदिमि=विलपामीति।

राजा—पाण्डवाः=युधिष्ठिरादयः शुश्रूषयितव्याः=सेवनीयाः। निर्देशः=आदेशः वर्तयितव्यः=परिपालनीयः।

पौरवी—(आपके साथ) मैंने भी चिता में प्रविष्ट होने का निश्चय कर लिया है, इसलिए मैं रोती है।

राजा—दुर्जय ! तुम भी सुनो।

धृतराष्ट्र—यह दुर्जय से क्या कहेगा।

गान्धारी—मैं भी यही सोच रही हूँ।

मेरे समान ही तुम पाण्डवों की सेवा करना, पूजनीया माँ (कुन्ती) की आज्ञा का पालन करना, अभिमन्यु की माता सुभद्रा तथा द्रोपदी दोनों को अपनी माँ की तरह सम्मान देना। देखो बेटा !

---

१. ...जननी'तीत्यन्यत्र पाठः।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्लाघ्यश्रीरभिमानदीप्तहृदयो दुर्योधनो मे पिता
तुल्येनाभिमुखं रणे हत इति त्वं शोकमेवं त्यज ।
स्पृष्ट्वा चैव युधिष्ठिरस्य विपुलं क्षौमापसव्यं भुजं
देयं पाण्डुसुतैस्त्वया मम समं नामावसाने जलम् ॥ ५३ ॥

बलदेवः—अहो वैरं पश्चात्तापः संवृत्तः । अये शब्द इव ।

अन्वयः— श्लाघ्यश्रीः अभिमानदीप्तहृदयः मे पिता दुर्योधनः रणे तुल्येन अभिमुखं हतः इति त्वम् एवं शोकं त्यज युधिष्ठिरस्य विपुलं क्षौमापसव्यं भुजं स्पृष्ट्वा त्वया पाण्डुसुतैः समं मम नामावसाने जलं देयम् ॥ ५३ ॥

व्याख्या—शलाघ्यश्रीः—प्रशंसनीया श्रीः=शरीरशोभा राष्ट्रसमृद्धिर्वा यस्य सः, अभिमानदीप्तहृदयः—अभिमानेन=स्वाभिमानेन दीप्तम्=प्रज्वलितं हृदयं यस्य सः (एवंविधः) मे=मम पिता=जनकः 'दुर्योधन' नामा रणे=सङ्ग्रामाङ्गणे तुल्येन=समबलेन भीमेन अभिमुखम्=सम्मुखं हतः=घातितः इति=अस्माद्धेतोः त्वम् एवं=मत्पराक्रमं संस्मृत्य शोकम्=चिन्तां त्यज=दूरी कुरु । अपि च युधिष्ठिरस्य=धर्मात्मजस्य विपुलम्=विशालं क्षौमापसव्यम्—क्षौमेन=दुकूलेनाच्छादितम् अपसव्यम्=शरीरस्य दक्षिणभागम् एतादृशं भुजम्=बाहुं स्पष्ट्वा त्वया पाण्डुसुतैः=पाण्डुतनयैः समम्=सार्द्धं मम=स्वपितुः नामावसाने=प्राणत्यागे सति जलम्=तिलाञ्जलिरूपं तर्पणवारि देयम्=अर्पणीयम् । पाण्डवैः सह मिलित्वैव ममान्तिमः संस्कारः कर्तव्य इत्याशयः ॥ ५३ ॥

उत्तम ऐश्वर्य सम्पन्न, स्वाभिमान से देदीप्यमान हृदय वाला मेरा पिता दुर्योधन, समान बलशाली (भीम) के द्वारा युद्ध में मारा गया, (यह सोचकर) तुम शोक न करो अपितु युधिष्ठिर के रेशमी वस्त्रों से आच्छादित विशाल दाहिनी भुजा का स्पर्श कर पाण्डुपुत्रों के साथ तुझे भी मेरे मरने के अनन्तर मेरे नाम से जल देना होगा ॥ ५३ ॥

बलदेव—वाह ! शत्रुता पश्चात्ताप में परिवर्तित हो गयी । अरे ! शब्द की भाँति कुछ सुनाई पड़ रहा है ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सन्नाहदुन्दुभिनिनादवियोगमूके
विक्षिप्तबाणकवचव्यजनातपत्रे ।
कस्यैष कार्मुकरवो हतसूतयोधे
विभ्रान्तवायसगणं गगनं करोति ॥ ५४ ॥

(नेपथ्ये)

दुर्योधनेनाततकार्मुकेण यो युद्धयज्ञः सहितः प्रविष्टः ।
तमेव भूयः प्रविशामि [1]शून्यमध्वर्युणा वृत्तमिवाश्वमेधम् ॥ ५५ ॥

अन्वयः—सन्नाहदुन्दुभिनिनदवियोगमूके विक्षिप्तबाणकवचव्यजनातपत्रे हतसूतयोधे कस्य एषः कार्मुकरवः गगनं विभ्रान्तवायसगणं करोति ॥ ५४ ॥

व्याख्या— सन्नाहदुन्दुभिनिनादवियोगमूके—सन्नाहानाम्=सङ्ग्रामे ताडितानां दुन्दुभीनां निनादस्य=शब्दस्य यो वियोगः=अभावः तेन मूके=शब्दरहिते तथा विक्षिप्तबाणकवचव्यजनातपत्रे—विक्षिप्तानि=प्रकीर्णानि बाणकवचव्यजनातपत्राणि यत्र तस्मिन् हतसूतयोधे—हताः=मृताः सूताः=सारथयः योधाश्च यस्मिन् तत्र कस्य=महायोधस्य एषः=श्रूयमाणः कार्मुकरवः=धनुर्ध्वनिः गगनम्=आकाशं विभ्रान्तवायसगणम्—विभ्रान्ताः=त्रस्ताः वायसानाम्=काकानां गणाः=समूहाः यत्र तादृशं करोति=विधत्त इति वसन्ततिलका वृत्तम् ॥ ५४ ॥

अन्वयः—आततकार्मुकेण दुर्योधनेन यः युद्धयज्ञः सहितः प्रविष्टः तम् एव शून्यं भूयः अध्वर्युणा वृत्तम् अश्वमेधं प्रविशामि ॥ ५५ ॥

दुन्दुभि आदि युद्ध में प्रयुक्त वाद्यों की ध्वनि का जहाँ अभाव है, जहाँ बाण, कवच, छत्र चामर आदि यत्र तत्र बिखरे हुए हैं सारथि और योद्धा युद्ध में मारे गये हैं, इस दशा में किस (वीर) के धनुष की टंकार आकाश में व्याप्त कर कौरवों को भयभीत कर रही है ।

(नेपथ्य में) धनुष पर प्रत्यञ्चा चढ़ा कर (युद्ध के लिए उत्सुक) जिस दुर्योधन के साथ मैं युद्ध रूपी यज्ञ में प्रवेश किया था उसी यज्ञ में पुनः

---

१. "अशून्यमि"त्यपि पाठो लभ्यते ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बलदेवः—अये अयं गुरुपुत्रोऽश्वत्थामेत एवाभिवर्तते। य एषः,

स्फुटितकमलपत्रस्पष्टविस्तीर्णदृष्टी
रुचिरकनकयूपव्यायतालम्बबाहुः।
सरभसमयमुग्रं कार्मुकं कर्षमाणः
सदहन इव मेरुः शृङ्गलग्नेन्द्रचापः ॥ ५६ ॥

व्याख्या—आततकार्मुकेण–आततम्=प्रत्यञ्चायामारोपितं कार्मुकम्=धनुर्येन तेन दुर्योधनेन=कौरवेश्वरेण यः युद्धयज्ञः=युद्धमेव यज्ञः अर्थात् सङ्ग्रामयज्ञः सहितः=सहैव प्रविष्टः=आरब्धः तमेव=युद्धयज्ञं शून्यं भूयः=पुनः अध्वर्युणा=पुरोहितेन वृत्तम्=समाप्तम् अश्वमेधम्=अश्वमेधनामानं यज्ञं प्रविशामि=प्रविष्टो भवामि ॥ ५५ ॥

अन्वयः—स्फुटितकमलपत्रस्पष्टविस्तीर्णदृष्टिः रुचिरकनकयूपव्यायतालम्बबाहुः उग्रं कार्मुकं सरभसं कर्षमाणः अयं सदहनः शृङ्गलग्नेन्द्रचापः मेरुः इव ॥ ५६ ॥

व्याख्या—स्फुटितकमलपत्रस्पष्टविस्तीर्णदृष्टिः—स्फुटितानि=विकसितानि कमलपत्राणि—पद्मदलानि तद्वत् स्पष्टे=उत्फुल्लिते विस्तीर्णे=विस्तृते दृष्टी=नेत्रे यस्य सः, तथा रुचिरकनकयूपव्यायतालम्बबाहुः—रुचिरौ कनकयूपवत्=सुवर्णमययज्ञस्तम्भवद् व्यायतौ=विशालौ आलम्बौ=दीर्घौ बाहू=भुजौ यस्य सः, उग्रम्=भयङ्करं कार्मुकम्=धनुः सरभसम्=शीघ्रं यथा स्यात्तथा कर्षमाणः=आकृष्यमाणः अयम्=पुरोदृश्यमानः

आज प्रविष्ट हो रहा हूँ जैसे अध्वर्यु द्वारा परिपूर्ण यज्ञ में कोई प्रवेश करता हो।

बलदेवः—अरे! यह गुरु (द्रोणाचार्य) का पुत्र अश्वत्थामा इधर ही आ रहा है। जो यह—

कमल की प्रस्फुटित पंखुड़ियों की भाँति विस्तृत नेत्रों वाला, चमकते हुए स्वर्ण के खम्भे की तरह बड़ी बड़ी बाहुओं वाला अपने भयंकर धनुष को शीघ्रतापूर्वक खींचता हुआ मानो शिखर पर स्थित इन्द्रधनुष से युक्त प्रज्वलित मेरु पर्वत की शोभा को धारण कर रहा हो ॥ ५६ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(ततः प्रविशत्यश्वत्थामा)

अश्वत्थमा—(पूर्वोक्तमेव पठित्वा) भो भोः ! समरसंरम्भोभयबल-जलधिसङ्गमसमयसमुत्थितशस्त्रनक्रकृत्तविग्रहाः स्तोकावशेषश्वासानुबद्धमन्दप्राणाः समरश्लाघिनो रजानः शृण्वन्तु भवन्तः ।

छलबलदलितोरुः कौरवेन्द्रो न चाहं
शिथिलविफलशस्त्रः सूतपुत्रो न चाहम् ।
इह तु विजयभूमौ द्रष्टुमद्योद्यतास्त्रः
सरभसमहमेको द्रोणपुत्रः स्थितोऽस्मि ॥ ५७ ॥

(अश्वत्थामा) सदहनः=प्रज्वल्यमाणः शृङ्गलग्नेन्द्रचापः—शृङ्गे=शिखरे लग्न इन्द्रचापः=इन्द्रधनुः यस्य सः मेरुः=सुमेरुपर्वत इव=सदृशः "दृश्यते" इति शेषः ॥ ५६ ॥

अश्वत्थामा — समरसंरम्भोभयबलजलधिसङ्गमसमयसमुत्थितशस्त्रनक्रकृत्तविग्रहाः —समराय=युद्धाय संरम्भः=उद्योगविशेषः ययोस्ते उभयबले=एव जलधी=समुद्रौ तयोः सङ्गमसमये=संमिश्रणकाले समुत्थितानि=समुत्क्षिप्तानि यानि शस्त्राणि तान्येव नक्राः=जलजन्तुविशेषाः तैः कृत्ताः=छिन्नाः विग्रहाः=देहाः येषां ते स्तोकावशेषाः=किञ्चिदवशिष्टाःश्वासानुबद्धमन्दाः प्राणाः—श्वासेन अनुबद्धाः=संलग्नाः मन्दप्राणाः=अल्पजीवाः समरश्लाघिनः समरे=युद्धे श्लाघिनः=प्रशंसनीयाः राजानः=भूपतयः अन्यत्स्पष्टम् ।

अन्वयः—अह छलबलदलितोरुः कौरवेन्द्रः न, अहं शिथिलविफलशस्त्रः सूतपुत्रः य अद्य इह विजयभूमौ उद्यतास्त्रः सरभसं द्रोणपुत्रः द्रष्टुम् अहम् एकः स्थितः अस्मि ॥ ५७ ॥

व्याख्या—अहं छलबलदलितोरुः—छलबलेन=कपटयुद्धेन दलितौ=

(इसके बाद अश्वत्थामा का प्रवेश होता है)

अश्वत्थामा—(पूर्वोक्त "दुर्योधनेनायत" इत्यादि श्लोक को ही पढ़ कर) अरे रे ! सङ्ग्राम के लिए उत्कण्ठित दोनों (कौरव-पाण्डव) दल के सङ्गमकाल में ऊपर की ओर जाते हुए शस्त्र रूपी मगरों के द्वारा क्षत शरीर वाले, अल्प अवशिष्ट श्वास के कारण मन्दप्राण राजाओं आप सुनें ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

किमनया ममाप्यप्रतिलाभविजयश्लाघया समरश्रिया। (परिक्रम्य) मा तावत्। मयि गुरुनिवपनव्यग्रे वञ्चितः किल कुरुकुलतिलकभूतः कुरुराजः। क एतच्छ्रद्धास्यति। कुतः,

उद्यत्प्राञ्जलयो रथद्विपगताश्चापद्वितीयैः करै-
र्यस्यैकादशवाहिनीनृपतयस्तिष्ठन्ति वाक्योन्मुखाः।

त्रोटितौ ऊरू=जङ्घौ यस्य सः कौरवेन्द्रः=कौरवेश्वरो दुर्योधनः न=नास्मि (अपि) चाहं शिथिलविफलशस्त्रः—शिथिलानि=कुण्ठितानि (तथा) विफलानि=शत्रुशमनेऽसमर्थानि शस्त्राणि=अस्त्राणि यस्य सः सूतपुत्रः=कर्णः न=नास्मि, तु=किन्तु अद्य इह=अस्मिन् विजयभूमौ=समराङ्गणे उद्यतास्त्रः=उत्थापितास्त्रः सन् सरभसम्=शीघ्रतया द्रोणपुत्रः=अश्वत्थामा द्रष्टुम्,=कमप्यन्वेष्टुम् अहमेकः=अहमेकाकी एव स्थितः=उपस्थितः अस्मि ॥ ५७ ॥

कौरवाणां पराजयं ज्ञात्वा स्वाहङ्कारं शिथिलयन् कथयति किमनयेति। ममाप्यप्रतिलाभविजयश्लाघया ममापि=अश्वत्थाम्नोऽपि अप्रतिलाभः=लाभरहितयाऽनया विजयश्लाघया=विजयप्रशंसया समरश्रिया। गुरुनिवपनव्यग्रे गुरोः=पितुः निवपने=तिलाञ्जलिप्रदाने व्यग्रे=व्यस्ते वञ्चितः=छलितः कुरुकुलतिलकभूतः=कौरवाणां शिरोभूषणः कुरुराजः=दुर्योधनः।

अन्वयः—रथद्विपगताः चापद्वितीयैः करैः उद्यत्प्राञ्जलयः एकादशवाहिनीनृपतयः यस्य वाक्योन्मुखाः तिष्ठन्ति (स्म) रामशरावलीढकवचः

छल रूपी बल से जिसकी जांघें चूर्ण की गयी हैं वह दुर्योधन मैं नहीं हूँ संग्राम स्थल में कुण्ठित और विपुल शस्त्रों वाला कर्ण भी नहीं हूँ, अपितु इस रणभूमि में युद्धवीर को देखने के लिए उत्सुक मैं द्रोण का पुत्र, शस्त्रों से सुसज्जित अकेले ही खड़ा हूँ ॥ ५७ ॥

विजय रूप लाभ के अभाव में प्रशंसित मेरी इस समर लक्ष्मी का क्या फल है (घूम कर) ऐसा नहीं है। मेरे द्वारा स्वर्गस्थित पिताजी को तिलाञ्जलि देते समय कौरव कुल के भूषण राजा दुर्योधन को छला गया किन्तु इस पर कौन विश्वास करेगा। क्योंकि;

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भीष्मो रामशरावलीढकवचस्तातश्च योद्धा रणे
व्यक्तं निर्जित एव सोऽप्यतिरथः कालेन दुर्योधनः ॥ ५८ ॥

तत् क्व नु खलु गतो गान्धारीपुत्रः। (परिक्रम्यावलोक्य) अये अयमभिहतगजतुरगनररथप्राकारामध्यगतः समरपयोधिपारगः कुरुराजः। य एषः,

---

भीष्मः तातश्च रणे सः योद्धा अपि अतिरथः दुर्योधनः कालेन व्यक्तम् एव निर्जितः ॥ ५८ ॥

व्याख्या—रथद्विपगताः=रथारुढाश्च चापद्वितीयैः—चापः=धनुरेव द्वितीयः=सहायो येषां तादृशैः करैः=हस्तैः उद्यत्प्राञ्जलयः—उद्यताः=उत्थापिताः प्राञ्जलयः=पाणिपुटाः यैः तादृशाः एकादशवाहिनीनृपतयः—एकदशसंख्यकानां वाहिनीनाम्=सेनानां नृपतयः=अधीश्वराः यस्य=दुर्योधनस्य वाक्योन्मुखाः=आज्ञापालकाः तिष्ठन्ति 'स्मे' ति शेषः। किञ्च रामशरावलीढकवचः—रामस्य=परशुरामस्य शरैः=सायकैः अवलीढः=विद्धो कवचः यस्य सः भीष्मः=शान्तनुतनुः तातः=पिता च रणे=सङ्ग्रामे योद्धा='सेनापतिः' यस्य सोऽपि अतिरथः=रथिनमतिक्रम्य वर्तत इति महारथी दुर्योधनः कालेन=कालवैपरीत्येन व्यक्तमेव=निश्चितमेव निर्जितः पराजित इति ॥ ५८ ॥

तदिति। गान्धारीपुत्रः=दुर्योधनः, अये इत्याश्चर्यम्, अयमभिहतगजतुरगनररथप्राकारमध्यगतः—अयम्=कौरवाधिपः, अभिहताः=मृताः ये गजाः=

रथ और हाथियों पर सवार, विभिन्न शस्त्रों से सुसज्जित जिनकी आज्ञा को शिरोधार्य करने के लिए ग्यारह अक्षौहिणी सेना वाले राजा भी हाथ जोड़े खड़े रहते थे, परशुराम के वाणों से आच्छादित कवच वाले भीष्म और मेरे पिता जी (द्रोणाचार्य) जैसे पराक्रमी जिस दुर्योधन के योद्धा थे वह वीर (दुर्योधन) भी काल की प्रतिकूलता से पराजित हो गया ॥ ५८॥

तो गान्धारी का पुत्र (दुर्योधन) कहाँ चला गया। (घूम कर और देख कर) अरे! मरे हुए हाथी, घोड़े, मनुष्य और रथरूपी प्राचीर के मध्य समरयुद्ध को पार करने वाला दुर्योधन पड़ा हुआ हैं। जो यह—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मौलीनिपातचलकेशमयूखजालै-
गात्रैर्गदानिपतनक्षतशोणिताद्रैः ।
[1]भात्यस्तमस्तकशिलातलसंन्निविष्टः
सन्ध्यावगाढ इव पश्चिमकालसूर्यः ॥ ५९ ॥

(उपसृत्य) भोः कुरुराज ! किमिदम् ।

हस्तिनः तुरगाः=अश्वाः नराः=मनुष्याः रथाश्च तेषां यत्प्राकारः तन्मध्य गतः=तदन्तः प्रविष्टः, समरपयोधिपारगः-समरः=युद्धस्थलमेव पयोधिः=समुद्रः तस्य पारगः=पारं गच्छतीत्यर्थः ।

अन्वयः—मौलीनिपातचलकेशमयूखजालैः गदानिपतनक्षतशोणिताद्रैः गात्रैः अस्तमस्तकशिलातलसन्निविष्टः सन्ध्यावगाढः पश्चिमकालसूर्य इव भाति ॥ ५९ ॥

व्याख्या-मौलिनिपातचलकेशमयूखजालैः-मौल्याः=मुकुटस्य निपातेन=प्रपतनेन चलाः=चञ्चलाः केशाः=शिरोवाला एव मयूखजालानि=किरण-समूहाः तैः तथा गदानिपतनक्षतशोणिताद्रैः—गदायाः निपतनेन=प्रहारेण यानि क्षतानि=व्रणस्थानानि तेभ्यः निस्सृतेन शोणितेन=रक्तेन आद्रैः=क्लिन्नैः गात्रैः=शरीरावयवैः अस्तमस्तकशिलातलसन्निविष्टः-अस्तमस्तकस्य=अस्ताचलशिखरस्य शिलातलेषु=प्रस्तरखण्डेषु सन्निविष्टः=संलग्नः सन्ध्यावगाढः—संध्याकालीनरागेण अवगाढः=अवलिप्तः पश्चिम-कालसूर्यः=दिवावसानकालीनभास्कर इव=सदृशः- भाति=सुशोभत इति ॥ ५९ ॥

मुकुट गिर जाने के कारण केश जिसके सूर्य की किरणों की भाँति हैं, गदा के प्रहार से हुए व्रण से निकलने के कारण जिसका रक्तरञ्जित शरीर आर्द्र होने से अस्ताचल के शिखर में डूबते हुए सूर्य की तरह अस्त होता जान पड़ता है ॥ ५९ ॥

(समीप जाकर) अहो कुरुराज ! यह क्या हुआ ?

---

१. "यात्यस्ते"त्यादि पाठान्तरम् ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राजा—गुरुपुत्र ! फलमपरितोषस्य !

अश्वत्थामा—भोः कुरुराज ! सत्कारमूलमावर्जयिष्यामि ।

राजा—किं भवान् करिष्यति ।

अश्वत्थामा—श्रूयताम् ।

युद्धोद्यतं गरुडपृष्ठनिविष्टदेह—
मष्टार्द्धभीमभुजमुद्यतशार्ङ्गचक्रम् ।
कृष्णं सपाण्डुतनयं युधि शस्त्रजालैः
सङ्कीर्णलेख्यमिव चित्रपटं क्षिपामि ॥ ६० ॥

राजा—फलमपरितोषस्य—फलम्=परिणामः, अपरितोषस्य=सन्तोषरहितस्य ।

अश्वत्थामा—सत्कारमूलमावर्जयिष्यामि—सत्कारपूर्वकं यथा स्यात्तथा आवर्जयिष्यामि=तवाऽनुरूपं करिष्यामि ।

अन्वयः—युद्धोद्यतं गरुडपृष्ठनिविष्टदेहम् अष्टार्द्धभीमभुजम् उद्यतशार्ङ्गचक्रं सपाण्डुतनयं कृष्णं युधि शस्त्रजालैः सङ्कीर्णलेख्यं चित्रपटम् इव क्षिपामि ॥ ६० ॥

व्याख्या—किं भवान् करिष्यतीति दुर्योधनेन पृष्टे सत्यश्वत्थामा कथयति—युद्धोद्यतम्—युद्धाय=संग्रामाय उद्यतम्=उत्साहान्वितं तथा गरुडपृष्ठनिविष्टदेहम् गरुडस्य=वैनतेयस्य पृष्ठे=पृष्ठभागे निविष्टः=सन्निविष्टो देहः=शरीरं यस्य तम्, अष्टार्द्धभीमभुजम्—अष्टार्द्धः=चत्वारः

राजा—गुरुपुत्र, मेरे अत्यधिक लोभ का फल है ।

अश्वत्थामा—हे कुरुराज ! आपका (अभीष्ट सिद्ध कर) सत्कार करना चाहता हूँ ।

राजा—आप क्या करेंगे ।

अश्वत्थामा—युद्ध के लिए उत्साहित गरुड़ की पीठ पर बैठे हुए भयंकर चार भुजाओं वाले शार्ङ्ग नामक धनुष और चक्र धारण किए हुए कृष्ण को पाण्डवों के सहित, युद्ध में शस्त्रसमूह के द्वारा चित्रित चित्रपट की भाँति नष्ट कर फेंक दूँगा ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राजा—मा मा भवानेवम् ।

गतं धात्र्युत्संगे सकलमभिषिक्तं नृपकुलं
गतः कर्णः स्वर्गं निपतिततनुः शान्तनुसुतः ।
[1]गतं भ्रातॄणां मे शतमभिमुखं संयुगमुखे
वयं चैवंभूता गुरुसुत ! धनुर्मुञ्चतु भवान् ॥ ६१ ॥

भीमाः=भयोत्पादकाः भुजाः=बाहवो यस्य तम् उद्यतशार्ङ्गचक्रम्—उद्यते=सुसज्जिते शार्ङ्गम् च=धनुश्च चक्रम् च=सुदर्शनश्च इति उद्यतशार्ङ्गचक्रे यस्य तं, सपाण्डुतनयः=पञ्चपाडवसहितं कृष्णम्=वासुदेवं युधि=समरे शस्त्रजालैः=शस्त्रसमूहैः सङ्कीर्णलेख्यम् सङ्कीर्णाः=परस्परं साङ्कर्यं प्राप्ताः लेख्याः=मूर्त्तयः यत्र तादृशं यच्चित्रपटम् तमिव क्षिपामि=उत्लक्ष्यामि हनिष्यामीति भावः ॥ ६० ॥

अन्वयः—अभिषिक्तं सकलं नृपकुलं धात्र्युत्सङ्गे गतम्, कर्णः स्वर्गं गतः, शान्तनुसुतः निपतिततनुः मे भ्रातॄणां शतमभिमुखं संयुगमुखे गतम्; वयं च एवंभूताः (अतः) हे गुरुसुत भवान् धनुः मुञ्चतु ॥ ६१ ॥

व्याख्या—अभिषिक्तम्=युवराजपदाधिष्ठितं सकलम्=समग्रं नृपकुलम्=राजवंशः, धात्र्युत्सङ्गे-धात्र्याः=पृथिव्याः उत्सङ्गे=क्रोडे गतम्=प्रविष्टम्, कर्णः=राधेयः स्वर्गम्=नाकलोकं गतः शान्तनुसुतः=भीष्मः निपतिततनुः=पतितदेहोऽभवदिति शेषः । मे=मम भ्रातॄणाम्=सोदराणां शतम्=शतसंख्याकम् अभिमुखम्=समक्षमेव संयुगमुखे=युद्धमध्ये गतम्=विनष्टम् वयञ्च एवंभूता=एवंविधाः जाताः (अतः) हे गुरुसुत=गुरुपुत्र भवान् धनुः=शस्त्रं मुञ्चतु । शिखरिणी वृत्तम् ॥ ६१ ॥

राजा—नहीं, आप ऐसा न कहिये ।

समस्त अभिषिक्त राजवंश पृथिवी की गोद में सो गया, कर्ण स्वर्ग चला गया, शान्तनु-पुत्र (भीष्म पितामह) भी मारे गये, मेरे सौ भाई भी रणक्षेत्र में स्वर्ग सिधार गये, और मैं उनलोगों का अनुगमन कर रहा हूँ, इस लिए हे आचार्य पुत्र ! आप धनुष को त्याग दें ।

---

१. "शतं भ्रातॄणां मे हतमभिमुखं संयुगमुखे" इत्येवमपि पाठो लभ्यते ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अश्वत्थामा—भोः कुरुराज !

संयुगे पाण्डुपुत्रेण गदापातकचग्रहे ।
सममूरुद्वयेनाद्य दर्पोऽपि भवतो हृतः ॥ ६२ ॥

राजा—मा मैवम् । मानशरीरा राजानः । मानार्थमेव मया निग्रहो गृहीतः । पश्य गुरुपुत्र !

यत्कृष्टा करनिग्रहाञ्चितकचा द्यूते तदा द्रौपदी
यद्बालोऽपि हतस्तदा रणमुखे पुत्रोऽभिन्युः पुनः ।
अक्षव्याजजिता वनं वनमृगैर्यत्पाण्डवाः संश्रिता
नन्वल्पं मयि तैः कृतं विमृश भो दर्पाहृतं दीक्षितैः ॥६३॥

अन्वयः—गदापातकचग्रहे संयुगे अद्य पाण्डुपुत्रेण ऊरुद्वयेन समम् एव भवतः दर्पः अपि हृतः ॥ ६२ ॥

व्याख्या—गदापातकचग्रहे—गदायाः पातः=आघातः कचानाम्=शिरोरुहाणां ग्रहः=आकर्षणं यत्र तादृशे संयुगे=संग्रामे अद्य पाण्डुपुत्रेण=भीमेन ऊरुद्वयेन=जङ्घायुगलेन समम्=सहैव भवतः=तव दर्पः=स्वाभिमानः अपि हृतः=नष्टः ॥ ६२ ॥

राजा—मानशरीराः—मानम्=प्रतिष्ठा एव शरीराः=देहाः यस्य त एव राजानः । निग्रहः=युद्धम् गृहीतः=संरचितः ।

अन्वयः—यत् करनिग्रहाञ्चितकचाः द्रौपदी द्यूते कृष्टा पुनः पुत्रः अभिमन्युः तदा रणमुखे बालः अपि यत् हतः अक्षव्याजजिता पाण्डवाः वनमृगैः यत् वनं संश्रिताः भोः दीक्षितैः तैः मयि दर्पाहृतं कृतं ननु अल्पम् (इति) विमृश ॥ ६३ ॥

अश्वत्थामा—हे कुरुराज ! पाण्डुपुत्र भीम के द्वारा युद्ध में केश पकड़ कर गदा प्रहार किये जाने के कारण तुम्हारी दोनों जङ्घाओं के साथ ही तुम्हारा अभिमान भी नष्ट कर दिया गया है ॥ ६२ ॥

राजा—नहीं, नहीं अभिमान ही राजाओं का शरीर है । मान के लिए ही मैंने युद्ध किया है । आचार्यपुत्र देखें—

मैंने द्युतसभा में हाथों से जो द्रोपदी का केश खींचा, सङ्ग्रामाङ्गण में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अश्वत्थामा—सर्वथा कृतप्रतिज्ञोऽस्मि ।

भवता चात्मना चैव वीरलोकैः शपाम्यहम् ।
निशासमरमुत्पाद्य रणे धक्ष्यामि पाण्डवान् ॥ ६४ ॥

व्याख्या—यत् करनिग्रहाञ्चितकचाः—कराभ्याम्=हस्ताभ्यां निग्रहेण=हठादाकर्षणेन अञ्चिताः=धृताः कचाः=अलका यस्याः सा द्रौपदी=याज्ञसेनी द्यूते=द्यूतक्रीडाप्रसङ्गे कृष्टा=अपमानिता पुनः पुत्रः=तनयः अभिमन्युः=उत्तरा सुतः तदा=तस्मिन् काले रणमुखे=युद्धमध्ये बालः=अल्पवयः अपि यद् हतः=घातितः किं वा अक्षव्याजजिता—अक्षव्याजेन=द्यूतछलेन जिताः पाण्डवाः=पाण्डुसुताः युधिष्ठिरादयः वनमृगैः=वन्यजीवैः वनम्=काननं संश्रिताः=सेविताः । एवं तेषां बह्वपकारे कृतेऽपि भो ! गुरुसुत ? दीक्षितैः=रणदीक्षां गृहीतैः तैः=पाण्डवैः मयि=दुर्योधने यद् दर्पाहृतम्=अभिमानापहरणं कृतम्=विहितम् तद् नूनम्=निश्चयेन, अल्पम्—स्तोकम् (इति) त्वम् विमृश=चिन्तय ॥ ६३ ॥

अन्वयः—भवता आत्मना वा वीरलोकैः च अहं शपामि, निशासमरम् उत्पाद्य रणे पाण्डवान् धक्ष्यामि ॥ ६४ ॥

व्याख्या—भवता=त्वया आत्मना=स्वकीयेन वा=अथवा वीरलोकैः=महावीरैः च अहम् शपथम्=प्रतिज्ञां करोमि (यत्) निशासमरम्=रात्रियुद्धम् उत्पाद्य=विधाय रणे=युद्धस्थले पाण्डवान्=युधिष्ठिरादीन् तत्पक्षीयांश्च धक्ष्यामि=ज्वलयिष्यामि ॥ ६४ ॥

अल्पवयस्क पुत्र अभिमन्यु का वध किया और अक्ष के व्याज से जिते हुए पाण्डवों को जंगलीजानवरों का सहचर बनाया । इस तरह विभिन्न प्रकार से सताये गये पाण्डवों द्वारा किया गया मेरा मान मर्दन अपेक्षाकृत थोड़ा ही है । इसे आप स्वयं सोचें ॥ ६३ ॥

अश्वत्थामा—मैं निश्चितरूप से प्रतिज्ञा कर चुका हूँ ।

मैं आपकी, अपनी तथा वीर पुरुषों की शपथ लेकर कहता हूँ कि रात्रि में युद्ध करके रणभूमि में पाण्डवों का विनाश कर दूँगा ॥ ६४ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बलदेवः—एतद्भविष्यत्युदाहृतं गुरुपुत्रेण ।
अश्वत्थामा—हलायुधोऽत्रभवान् ।
धृतराष्ट्रः—हन्त ! साक्षिमती खलु वञ्चना ।
अश्वत्थामा—दुर्जय ! इतस्तावत् ।

पितृविक्रमदायाद्ये राज्ये भुजबलार्जिते ।
विनाभिषेकं राजा त्वं विप्रोक्तैर्वचनैर्भव ॥ ६५ ॥

राजा—हन्त ! कृतं मे हृदयानुज्ञातम् । परित्यजन्तीव मे प्राणाः । इमेऽत्रभवन्तः शान्तनुप्रभृतयो मे पितृपितामहाः । एतत्कर्णमग्रतः कृत्वा समुत्थितं भ्रातृशतम् । अयमप्यैरावतशिरोविषक्तः काकपक्षधरो महेन्द्रकरतलमवलम्ब्य क्रुद्धोऽभिभाषते मामभिमन्युः । (इमाः)

अन्वयः—पितृविक्रमदायाद्ये भुजबलार्जिते राज्ये अभिषेकं विना विप्रोक्तैः वचनैः त्वं राजा भव ॥ ६५ ॥

व्याख्या—पितृविक्रमदायाद्ये—पितुः=दुर्योधनस्य विक्रमस्य=पराक्रमस्य दायाद्ये=दायांशे, भुजबलार्जिते—भुजबलेन अर्जिते=प्राप्ते राज्ये अभिषेकम्=राज्यसिंहासनप्रतिनिधिं विना (एव) विप्रोक्तवचनैः—विप्रोक्तैः=द्विजोक्तैः वचनैः=वाक्यैः राजा भव ॥ ६५ ॥

राजा—हृदयानुज्ञातम्=मनसा चिन्तितम् । ऐरावतस्य=इन्द्रहस्तिनः शिरसि=मस्तके विषक्तः=संलग्नः काकपक्षधरः=शिरोवाली महेन्द्रकर-

---

बलदेव—गुरुपुत्र द्वारा कहा गया अवश्य होगा ।
अश्वत्थामा—आप बलदेव हैं ।
धृतराष्ट्र—ओह छल भी साक्षियों के समक्ष हुआ ।
अश्वत्थामा—दुर्जय ! इधर आओ ।

पिता के भुज पराक्रम से अर्जित राज्य पर उत्तराधिकार के रूप में विना अभिषिक्त किए ही (मुझ) ब्राह्मण के वचनों द्वारा राजा बनो ।

राजा—वाह ! मेरा अभीष्ट प्राप्त हुआ । मानो प्राण मुझको छोड़ रहे हैं । ये आदरणीय शन्तनु आदि मेरे पिता पितामह हैं । कर्ण को आगे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उर्वश्यादयोऽप्सरसो मामभिगताः। इमे महार्णवा मूर्तिमन्तः। एता गङ्गाप्रभृतयो महानद्यः। एष सहस्रहंसप्रयुक्तो मा नेतुं वीरवाही विमानः कालेन प्रेषितः अयमयमागच्छामि। (स्वर्गं गतः।)

(यवनिकास्तरणं करोति।)

धृतराष्ट्रः—

याम्येष सज्जनधनानि तपोवनानि
पुत्रप्राणाशविफलं हि धिगस्तु राज्यम्।

अश्वत्थामा—

यातोऽद्य सौप्तिकवधोद्यतबाणपाणिः

(भरतवाक्यम्)

बलदेवः— गां पातु नो नरपतिः शमितारिपक्षः॥ ६६॥

तलम् महेन्द्रस्य = इन्द्रस्य करतलम् = हस्ततलम् = अवलम्ब्य = धृत्वा; महार्णवाः = महासागरः सहस्रहंसप्रयुक्तः = सहस्रैः हंसैः प्रयुक्तः = युक्तः वीरवाही = वीरवहनयोग्यः कालेन = यमराजेन। अन्यत्स्पष्टम्।

अन्वयः—एषः सज्जनधनानि तपोवनानि यामि हि पुत्रप्रणाशविफलं राज्यं धिक् अस्तु।

अद्य सौप्तिकवधोद्यतवाणपाणिः यातः शमितारिपक्षः नरपति वः गां पातु॥ ६६॥

किये हुए ये मेरे सौ भाई खड़े हैं। यह ऐरावत पर बैठा हुआ काकपक्षधारी क्रुद्ध अभिमन्यु इन्द्र का सहारा लिए मुझसे कुछ कह रहा है। उर्वशी आदि अप्सरायें मुझे घेर रही हैं। ये सागर मूर्तिमान देखे जा रहे हैं। ये गङ्गा आदि नदियाँ हैं। यह हजारों हंसों द्वारा ढोया जाने वाला विमान यथासमय मुझको लेने के लिए आ रहा है। यह मैं आ रहा हूँ। (स्वर्ग को सिधार गया।)

(पर्दा गिरता है)

धृतराष्ट्र—अब मैं सज्जन द्वारा सेवित तपोवन जा रहा हूँ। क्योंकि पुत्रों के अभाव में निष्फल राज्य को धिक्कार है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(निष्क्रान्ताः सर्वे)

ऊरुभङ्गं नाम नाटकं समाप्तम् ॥

——०——

व्याख्या—एषः (अहम्) सज्जनधनानि—सज्जनानाम्=साधूनां तपसां वा धनानि=प्रियाणि तपोवनानि=तपःस्थलानि यामि=गच्छामि हि=यतः पुत्रप्रणाशविफलम्=पुत्राणां प्रणाशेन=मृत्युना विफलम्=निष्फलं राज्यं धिगस्तु=गर्हणीयं स्यात् ।

अद्य=साम्प्रतम् सौप्तिकवधोद्यतवाणपाणिः—सौप्तिकानाम्=सुप्तानां पाण्डवानां वधार्थम् उद्यतः वाणपाणिः=वाणेन=शरेण युक्तः पाणिः=हस्तो यस्य सोऽश्वत्थामाऽपि यातः=प्रस्थितः ।

शमितारिपक्षः—शमिताः=हताः अरिपक्षः=शत्रुबलाः यस्य सः नरपतिः=राजा (युधिष्ठिरः) गां=पृथ्वीं पातु=रक्षतु शामयतु वा ॥ ६६ ॥

॥ डा० रामप्रभा ओझाकृतटीका समाप्ता ॥

——०——

अश्वत्थामा—सोये हुए पाण्डवों के वध के लिए तत्पर बाणों को हाथ में लिया हूँ ।

(भरतवाक्य)

बलदेव—शान्त कर दिया गया है शत्रुपक्ष जिसका इस प्रकार का राजा हमारी पृथ्वी की रक्षा करे ।

(सभी चले जाते हैं ।)

॥ ऊरुभङ्ग नामक नाटक समाप्त हुआ ॥

——०——

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्लोकानुक्रमणिका

	श्लो. सं.		श्लो. सं
आक्षिप्तलाङ्गल	३२	पूर्वं न जानामि	३८
आदीप्तानल	३४	प्रतिज्ञावसिते	३३
उद्यत्प्राञ्जलयः	५८	प्रसक्तनाराच	८
उपलविषमा	५	भवता चात्मना	६४
एकाग्रांगुलि	२१	भिन्ना मे भृकुटी	५१
एतद्रणाहत	३	भीमस्योरसि	१६
एते परस्पर	७	भीमां गदां	१९
एषा निरस्त	१२	भीमेन भीत्वा	३०
करिवरक	६	भीष्मद्रोणतटां	१
किं मेघा निनदन्ति	१५	भूमौ पाणितले	२४
गतं धाम्युत्सङ्गे	६१	मम रिपुबल	२७
गृध्रा मधूक	११	मालासंवृत	२५
चलविलुलित	२६	माल्यैर्ध्वजाग्र	९
छलबलदलितो	५७	मौलिनिपात	५९
त्यक्त्वा परिचित	४४	यः काञ्चन	४५
त्वत्पादमात्र	४७	यत्कृष्टाकर	६३
त्वत्पादयोः	३१	यस्य वीर्यबलो	४६
दुःखानां	४२	या पुत्रपौत्र	४०
दुर्योधन	४९	याम्येष सज्जन,	६६
दुर्योधने	५५	युद्धोद्यतं गरुड	६०
नमस्कृत्य वदामि	५०	येनेन्द्रस्य	३५
निर्भिन्नाम	१८	रिपुसमरविमर्द	३९
पितृविक्रम	६५	रुधिरसरितो	१०

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

	श्लो. सं.		श्लो. सं.
वञ्चनानिहतं	३७	संयुगे पाण्डु	६२
वीर्याकरः सुत	६६	संहृत्य भ्रुकुटी	२३
वीर्यालयो विविध	२२	सन्नाहदुंदुभि	५४
वृद्धस्य मे	४८	सौभोच्छिष्ट	२८
वेदोक्तैर्विविधैः	५२	स्पृष्ट्वा खाण्डव	१४
वैरस्यायतनं	४	स्फुटितकमल	५६
शिरसि गुरु	२०	स्रस्तोद्वर्तित	१३
शिष्टोत्कंपन	१७	स्वर्गार्थमाहव	२
श्रीमान् संयुग	२९	हृतं मे भीम	४१
श्लाघ्यश्रीः	५३	हृदयप्रीति	४३

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कृष्णदास संस्कृत सीरीज
२०१
****

भासनाटकचक्रे

पञ्चरात्रम्

सपरिशिष्ट 'विमला' संस्कृतहिन्दीव्याख्योपेतम्

व्याख्याकारः
डॉ. जगदीशचन्द्र मिश्रः
साहित्याचार्यः, व्या. शा., बी. ए. (आनर्स), एम. ए. (द्वितयः)
पी. एच-डी., डिप्-इन-एड

चौखम्बा कृष्णदास अकादमी
वाराणसी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रकाशक : चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी
मुद्रक : चौखम्बा प्रेस, वाराणसी
संस्करण : द्वितीय, वि०सं० २०७१, सन् २०१५
मूल्य : रू० ७५.००

© चौखम्बा कृष्णदास अकादमी
के० ३७/११८, गोपाल मन्दिर लेन
गोलघर (मैदागिन) के पास
पो० बा० नं० १११८, वाराणसी–२२१००१ (भारत)
फोन : (०५४२) २३३५०२०

अपरं च प्राप्तिस्थानम्
चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस
के० ३७/९९, गोपाल मन्दिर लेन
गोलघर (मैदागिन) के पास
पो० बा० नं० १००८, वाराणसी—२२१००१ (भारत)
फोन : (आफिस) (०५४२) २३३३४५८
(आवास) (०५४२) २३३५०२०, २३३४०३२
Fax : 0542 - 2333458
e-mail : cssoffice01@gmail.com
web-site : www.chowkhambasanskritseries.com

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

KRISHNADAS SANSKRIT SERIES
201
***

PAÑCARĀTRAM

OF

MAHAKAVI BHĀSA

Edited With

The 'Vimalā' Sanskrit, Hindi Commentaries and Notes.

By

Dr. J. C. MISHRA

B. A. (Hon.) M. A. (Double), Ph-D. Dip-in-Ed.
Sahityacharya and Vyakaran Shastri

CHOWKHAMBA KRISHNADAS ACADEMY
VARANASI

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Publisher : Chowkhamba Krishnadas Academy, Varanasi
Printer : Chowkhamba Press, Varanasi

© CHOWKHAMBA KRISHNADAS ACADEMY
Oriental Publishers & Distributors
K. 37/118, Gopal Mandir Lane
Post Box No. 1118, Varanasi- 221001
(INDIA)
Phone : (0542) 2335020

Also can be had from :
CHOWKHAMBA SANSKRIT SERIES OFFICE
Publishers and Oriental and Foreign Book-sellers
K . 37/99, Gopal Mandir Lane
At the North Gate of Gopal Mandir
Near Golghar (Maidagin)
Post Box No. 1008, Varanasi- 221001 (India)
Phone { Office : (0542) 2333458
Resi. : (0542) 2334032, 2335020
Fax : 0542 - 2333458
e-mail : cssoffice01@gmail.com
web-site : www.chowkhambasanskritseries.com

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मिथिलासंस्कृतिसंरक्षणार्थाय संस्कृतसाहित्यसमुन्नत्यै च नानाविधानि असह्यानि कष्टानि यैः सहर्षं सोढानि तेषां दरभंगामण्डलान्तर्गत-
'तरौनी'ग्रामवासिनां 'काशीमिथिलाग्रन्थमाला' सम्पादकाचार्याणां

श्री प० रामचन्द्रझा महोदयानां

करकमलयोः सादरमुपायनीकृतेयं कृतिः

तदीयेन

डॉ० जगदीशचन्द्रमिश्रेण

विमलाकृता

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विषय-प्रवेशः

		पृ०
विमला-विमर्श	...	७
भूमिका—		
पञ्चरात्र : एक परिचय	...	१०
पञ्चरात्र की कथावस्तु—		
प्रथम अङ्क	...	१५
द्वितीय ,,	...	१६
तृतीय ,,	...	१७
कथावस्तु पर एक दृष्टि	...	१९
पात्रपरिचय	...	२४
ग्रन्थारम्भ—		
प्रथम अङ्क	...	१
द्वितीय ,,	...	५८
तृतीय ,,	...	१२८
परिशिष्ट : टिप्पणी : नोट्स—		
प्रथम अङ्क	...	१४७
द्वितीय ,,	...	१६२
तृतीय ,,	...	१७२
पञ्चरात्र में प्रयुक्त छन्दों का विवरण	...	१७७
पञ्चरात्र में प्रयुक्त सुभाषित	...	१७९
पञ्चरात्रगत नाटकीय विषय	...	१८०
नाटकगत शब्दार्थ परिचय	...	१८१
श्लोकानुक्रमणिका	...	१८६

—: ० :—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विमला विमर्श

'विमला' पञ्चरात्र की व्याख्या है। अनुवाद एवं विचारविमर्श की दृष्टि से यह व्याख्या कहाँ तक उपयुक्त है। यह मैं अपने कृपालु सुधी समीक्षकों पर छोड़ता हूँ। किन्तु, इस सृष्टि-संरचना में जिन से मेरा सम्पर्क हुआ है, उनके सम्बन्ध में कुछ अवश्य कहना चाहूँगा।

प्रत्येक देश और काल में देशान्तर या कालान्तर की भावनाओं एवं विचारों की अभिव्यक्ति के माध्यम में अन्तर रहा है। यह अन्तर तत्संबन्धी परिवेश एवं परिचरण के अन्तर के कारण ही रहा है। युगविशेष अथवा देश-विशेष का कोई भी कवि या विचारक जो कुछ सोचता विचारता है, उसे अपनी भाषा में लिपिबद्ध कर देता है। अपने ही देश में कालान्तर में जब उस भाषा को जानने वालों की कमी हो जाती है तब वह विचारराशि जन सामान्य के लिए दुर्लभ एवं अग्राह्य प्रतीत होने लगता है। उन्हें तथाकथित उक्त भाषा के माध्यम से उन विचारों का बोध ही नहीं हो पाता है। यह अबोधता की दीवार भाषा के कारण उत्पन्न होती है। भाषाजन्य इस व्यवधान को दूर करना ही विमला का मुख्य उद्देश्य है।

एक ही देश की दूर दूर सीमाओं में विभक्त मानवजाति, एक दूसरे के भावों और विचारों को निकट लाने के लिए एक दूसरे की भाषा के भावों और विचारों को अपनी भाषा के भावों या विचारों में लाना चाहती है। एक ही क्षेत्र में युगों से बसी मानवजाति भी अपने पूर्वजों के भावों और विचारों को समझने या जानने के लिए स्पष्टतया इसे अपनी वर्त्तमान भाषा में लाने को इच्छुक रहती है। यह प्रक्रिया सफल होती है केवल एक ही माध्यम से जिसे हम अनुवाद या भाषान्तर की व्याख्या कहते हैं। वस्तुतः अनुवाद भावाभि-व्यक्ति को एक भाषा से दूसरी भाषा में रूपान्तरित करने की एक विशिष्ट कला हैं। पञ्चरात्र की परिनिष्ठित संस्कृत भाषा को सरल संस्कृत, हिन्दी में रूपान्त-रित करने की विमला की क्षमता किस हद तक सफल हुई है, विचारणीय है।

'विमला' का कार्य भारत के पुरातन और वर्त्तमान के बीच सम्बन्ध स्थापित करने की एक कड़ी की तरह है। 'पञ्चरात्र' में निहित भास के महाभारतीय भावों या विचारों के अतिरिक्त इसके आक्षितिज भारतीय संस्कृति के प्रसार तथा समृद्धि के लिए भी विमला की उपयोगिता स्पष्ट है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

किसी भी देश का रचनात्मक कृतित्व उस देश की सांस्कृतिक प्रक्रिया के सर्वाधिक संवेदनशील और सर्जनात्मक रूप को उजागर करता है। अतः यह स्वाभाविक है कि छात्रों के अतिरिक्त अन्य बौद्धिक वर्ग के लोग भी इस स्थिति को जानने के लिए उत्सुक हों। भारत जैसे देश के लिए जो अनेक प्रान्तों में बटा हुआ है और जहाँ प्रान्तविशेष की अपनी अपनी स्थानीय भाषाएँ हैं, वहाँ पञ्चरात्र की संस्कृत हिन्दी व्याख्या के साथ ही अंग्रेजी अनुवाद की भी बड़ी आवश्यकता है।

'विमला' व्याख्या की कुछ निजी समस्याएँ भी हैं। किन्हीं दो भाषाओं के वातावरण समान नहीं होते। एक भाषा से दूसरी भाषा में अनुवाद करते समय अविकल पर्यायों का अभाव उन शब्दों को लेकर बहुत खटकता है जो संस्कृत, वेशभूषा, खानपान, धर्म-दर्शन, फलफूल आदि के वाचक होते हैं। जैसे 'पञ्चरात्र' में प्रयुक्त यज्ञ, होम, प्राग्वंश, तपस्या, पूजा-पाठ, दान-धर्म, श्रद्धा-भक्ति, दर्भ, कृष्णाजिन, राजर्षि, आचार्य, तपोनिष्ठ, पाटल, घी, स्रुवा, भाण्ड, भर्त्ता, सुश्रुषा, वनराजि प्रभृतिशब्द जिन अर्थों के वाचक होते हैं, उनके बोधक शब्द अंग्रेजी में तो नहीं ही हिन्दी में भी प्रयत्नसाध्य होते हैं। इसकी व्याख्या लिखते समय हिन्दी की प्रगति को ध्यान में रखकर विमला को कठिनाइयों का सामना करना पड़ा है।

इस नाटक की व्याख्या लिखते समय वाक्य-रचना को लेकर भी कई समस्यायें सामने आई हैं! कई स्थानों पर मूल भाषा में परस्पर किसी भाव के लिए प्रयुक्त प्रतीकात्मक शब्द के लिए हिन्दी, संस्कृत या अंग्रेजी भाषा में समानार्थी शब्दों की अनुपलब्धि के सम्बन्ध में जब कभी समस्या उठी है तब वहाँ विमला ने स्वेच्छाचारिता बरती है। प्रायः यह समस्या अधिकांशतः व्यावहारिक शब्दों के प्रयोग में ही आई हैं। इस समस्या या इस तरह की समस्याओं को दूर करने के लिए या तो मूल भाषा के अपरिचित शब्द सव्याख्या भाषान्तर में ग्रहण कर लिए गये हैं, या फिर उसे ज्यों के त्यों ही ग्रहण कर लिया गया है।

'पञ्चरात्र' में प्रयुक्त संस्कृत मुहाविरे या सुभाषितों को लेकर भी यह

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

समस्या उत्पन्न हुई है। इसके साथ ही इस नाटक में ध्वनि, छन्द, लय, बिम्ब, अलंकार आदि की व्याख्या में भी असाधारण पार्थक्य हुआ है। इस नाटक में प्रयुक्त कतिपय शब्द भारतीय विशेषता से संकुल हैं। इसलिए सर्वत्र इनके लिए समानार्थी शब्द या वाक्यांश पाना संभव नहीं रहा है। यदा कदा कुछ अंशों में ऐसे शब्दों के कुछ समानार्थी शब्द मिल भी गये हैं तो अनुवाद में अर्थान्तर दोष से बचने के लिए व्याख्यात्मक वाक्य रचना में स्वतंत्रता का सहारा लेकर अर्थ स्पष्ट करना पड़ा है। फिर भी, भास की भाषा की जो भंगिमायें हैं, ध्वनि, लय आदि की जो नैसर्गिक और सहज गति हैं उसे भाषान्तर में रूपान्तरित कर पाना कठिन हो गया है।

विमला की एक प्रमुख समस्या यह भी रही है कि 'पञ्चरात्र' में प्रयुक्त शैली का संरक्षण भाषान्तर में असम्भव हो उठा है। 'पञ्चरात्र' की शैली संस्कृत की है। संस्कृतेतर भाषाओं में उसका अनुवाद करते समय नाटक का वैशिष्ट्य तिरोहित हो गया है। इस नाटक का सम्बन्ध केवल भाव से ही नहीं है, अपितु कहीं-कहीं अभिव्यञ्जना से भी है। इस अभिव्यञ्जनात्मक शैली का संरक्षण करने में 'विमला' रास्ते में भटक गई हैं। यह मूल से कहीं ऊपर चली गई हैं अथवा कहीं संकीर्ण मार्ग का अवलम्बन किया है। यद्यपि व्याख्याता का यह भरसक प्रयास रहा है कि 'विमला' की गति मूल के समानान्तर ही रहे। कुछ अंशों को छोड़कर 'विमला' समानान्तर रही भी है।

इस संदर्भ में मैं अपने ज्येष्ठ पुत्र श्री अवधेश कुमार मिश्र बी० एस-सी० को धन्यवाद देता हूँ जिसने बैंक आफिसर पद के व्यस्त क्षणों में भी इस पुस्तक की भूमिका लेखन सामग्री जुटाने में हाथ बंटाया है। उसके बाद चि० कुमार अमरेश (ललन), बी० एस-सी० (आनर्स) के छात्र को हृदय से आशीर्वाद देता हूँ जिसने पाण्डुलिपि तैयार करने में हाथ थकने पर सदा ही हाथ बटाता रहा है। पुलिस पदाधिकारी अपने ही पुत्र चि० रमेश को भी इस संदर्भ में नहीं भूल सकता, जिसने समय असमय पाण्डुलिपि तैयार करने में मदद की है। 'विमला' ने जिन मनीषियों की पुस्तक से सहायता प्राप्त की है, उनके प्रति मैं विशेष रूप से कृतज्ञ हूँ।

डॉ० जगदीशचन्द्र

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भूमिका

पञ्चरात्र : एक परिचय

नाटक का नामकरण उन पाँच रातों की घटना से संबद्ध है, जिनमें द्रोण को दुर्योधन की शर्त के अनुसार गुप्तवासी पाण्डवों का पता पाँच रातों के भीतर ही लगा लेना है। तभी पाण्डव शर्त के अनुसार राज्यार्ध के अधिकारी हो सकते हैं। 'पञ्चरात्र' की कथावस्तु महाभारत के चतुर्थ खण्ड अर्थात् 'विराट् पर्व' पर आधारित है। इस कथावस्तु का सारांश पर्वसंग्रह पर्व के निम्नलिखित श्लोकों में मिलता है—

अतः परं निबोधेदं वैराटं पर्वविस्तरम्।
विराटनगरे गत्वा श्मशाने विपुलां शमीम् ॥ २०६ ॥
दृष्ट्वा सन्निदधुस्तत्र पाण्डवा ह्यायुधान्युत।
यत्र प्रविश्य नगरं छद्मना न्यवसंस्तु ते ॥ २०७ ॥
पाञ्चाली प्रार्थयानस्य कामोपहतचेतसः।
दुष्टात्मनो वधो यत्र कीचकस्य वृकोदरात् ॥ २०८ ॥
पाण्डवान्वेषणार्थं च राज्ञो दुर्योधनस्य च।
चाराः प्रस्थापिताश्चात्र निपुणाः सर्वतो दिशम् ॥ २०९ ॥
न च प्रवृत्तिस्तैर्लब्धा पाण्डवानां महात्मनाम्।
गोग्रहश्च विराटस्य त्रिगर्तैः प्रथमं कृतः ॥ २१० ॥
यत्रास्य युद्धं सुमहत्तैरासील्लोमहर्षणम्।
ह्रियमाणश्च यत्रासौ भीमसेनेन मोक्षितः ॥ २११ ॥
गोधनं च विराटस्य मोक्षितं यत्र पाण्डवैः।
अनन्तरं च कुरुभिस्तस्य गोग्रहणं कृतम् ॥ २१२ ॥
समस्ता यत्र पार्थेन निर्जिताः कुरवो युधि।
प्रत्याहृतं गोधनं च विक्रमेण किरीटिना ॥ २१३ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विराटेनोत्तरा दत्ता स्नुषा यत्र किरीटिनः।
अभिमन्युं समुद्दिश्य सौभद्रमरिघातिनम् ॥ २१४ ॥
चतुर्थमेतद्विपुलं वैराटं पर्व वर्णितम्।

बारह साल के बनवास की अवधि समाप्त कर पाण्डवों ने एक साल के गुप्तवास की अवधि में प्रवेश किया। उन्होंने अपने सारे अस्त्रों को एक विशाल शमीवृक्ष के कोटर में छिपा दिया तथा भेष बदलकर मत्स्यों के सम्राट विराट की राजधानी में प्रवेश किया। युधिष्ठिर ने पासा फेंकने में निपुण ब्राह्मण कङ्क का रूप ग्रहण किया। भीम ने मुक्केबाज बल्लभ के रूप में रसोई घर का कार्यभार ग्रहण किया। अर्जुन ने नृत्य-संगीत विशारद किन्तु नपुंसक बृहन्नला का रूप ग्रहण किया। नकुल विराट के घोड़ों के संरक्षक के रूप में नियुक्त हुए और सहदेव को राजा की हजारों गायों के रक्षकों का प्रधान बनाया गया। बिचारी द्रौपदी ने सैरन्ध्री का रूप ग्रहण किया। उसे पटरानी के बाल सजाने वाली महिला का काम सौंपा गया।

विराट की सेना का शक्तिशाली प्रधान सेनापति महारानी का भाई कीचक था। उसने द्रौपदी के रूप-सौंदर्य को देखा। पहली ही दृष्टि में वह द्रौपदी के प्रति आसक्त एवं अभिभूत हो उठा। उसने गम्यागम्य का विचार छोड़ द्रौपदी का पीछा करना शुरू कर दिया। द्रौपदी ने उसे बहुत समझाया उन्होंने कहा—मेरा पति एक गंधर्व है जो अदृश्य रहकर भी मेरी रक्षा में सतत संलग्न रहता है। यदि उसे तुम्हारे इस अवैध प्रेम-व्यवहार का थोड़ा भी पता चल गया तो किसी भी स्थिति में वह तुम्हें जिन्दा न छोड़ेगा। किन्तु, कीचक कुछ भी सुनने को तैयार न था। अन्ततः हारकर द्रौपदी ने उसे नृत्यशाला में आने को कहा। अवसर आते ही कीचक वहाँ आ धमका। द्रौपदी के अपमान का बदला लेने के लिए भीम पहले से ही वहाँ उपस्थित थे। गला दबाकर उन्होंने तत्क्षण कीचक की हत्या कर डाली। उसके मृत शरीर को क्षतविक्षत कर डाला। उसका शव इस तरह विकृत था कि उसे पहचान पाना कठिन हो रहा था। काम समाप्त कर भीम वहाँ से चलते बने। द्रौपदी ने नृत्यशाला के रक्षकों को बुलाया तथा उन्हें किसी पराई स्त्री के प्रति मोह रखने के कारण

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

इस दुर्दान्त मृत्यु का सामना करना पड़ा, यह कहते परिचय दिया। उन्होंने यह भी बताया कि इसकी हत्या उसके गंधर्व पति ने ही की है। यह सुनकर कीचक के संबंधियों ने कीचक के शव के साथ ही द्रौपदी को भी जला देने का निर्णय लिया। विवश द्रौपदी को जब वे लोग खींचकर श्मशान की ओर ले जा रहे थे, तब रास्ते में ही भीम ने एक पेड़ उखाड़ कर उसकी चोट से उन्हें मार डाला। नागरिकों ने जब यह दृश्य देखा तो भयाक्रान्त होकर भाग खड़े हुए। राजा ने जब यह सुना तो तत्क्षण द्रौपदी को देशनिकाला का आदेश दे दिया। किन्तु, उसके विशेष अनुरोध पर उसे अगले तेरह दिनों के लिए राजभवन में टिकने की अनुमति दे दी।

कौरवों ने इस बीच लाख प्रयास किया पर, छद्म-वेशी पाण्डवों का कुछ भी पता न चला। इसी बीच उन्हें कीचक की विचित्र हत्या की खबर भी मिली। इस अवसर का उन्होंने लाभ उठाना चाहा। त्रिगर्त के राजा की सलाह पर मत्स्यों के सम्राट विराट पर उन्होंने आक्रमण करने का निर्णय लिया। इस निर्णय के अनुसार त्रिगर्त की सेना ही अग्रसर होगी तथा वह दक्षिण-पूर्व भाग से पहले आक्रमण करेगी। मौका पाकर कौरवों की सेना विराट नगर पर पश्चिमोत्तर की ओर से आक्रमण करेगी।

पाण्डवों के गुप्तवास की अवधि भी समाप्तप्राय हो चुकी थी। इधर त्रिगर्तों के राजा सुशर्मन ने विराट के हजारों पशुओं को रोक लिया। विराट को एक गोपाल ने इस गोग्रहण की सूचना दी। तत्क्षण विराट ने चार पाण्डवों के साथ अपनी सेना लेकर आक्रमकों का सामना करने के लिए प्रस्थान किया। त्रिगर्त और मत्स्य की सेनाओं के बीच जमकर लड़ाई हुई। यह युद्ध सारे दिन और चाँदनी रात में भी चलता रहा। अन्ततः विराट की हार हुई। त्रिगर्त के राजा ने विराट को बंदी बना लिया। वह विराट को अपने रथ में डालकर पीछे की ओर तेजी से लौट पड़ा। इस दृश्य को जब भीम ने देखा तो दुःसाहस-पूर्वक सेनाओं को चीरते हुए आगे बढ़कर हाथों से ही सुशर्मन का बाल पकड़कर घसीट लिया। उसे जमीन पर पटककर विराट को बचा लिया। इस दृश्य को देखकर उसकी सारी सेना भयाक्रान्त होकर भाग निकली। चारों ओर हाहाकार मच गया। अचेतावस्था में ही सुशर्मन को भी भीम ने उठा लिया। उसका

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हाथ पैर कस दिया और विराट के साथ उसे भी युधिष्ठिर के सामने लाकर पटक दिया। दयालु युधिष्ठिर ने उसे जीवन-दान देते हुए बंधनमुक्त कर दिया।

इसी बीच कौरवों ने उत्तर दिशा से आक्रमण कर दिया। पशुओं का घेराव प्रारंभ हो गया। भयाक्रान्त प्रधान गोपाल शहर की ओर भाग निकला। दरबार में उपस्थित होकर उसने कुमार उत्तर को सारी घटना सुना दी। घटना सुनते ही दुश्मनों का सामना करने के लिए कुमार प्रस्तुत हो गया। पर उसकी लाचारी यह थी कि कोई सुदक्ष रथवाहक उसके पास नहीं था। सुयोग्य सारथी की खोज शुरू हो गई। सैरन्ध्री ने स्त्रैण नृत्य-शिक्षक बृहन्नला का नाम प्रस्तावित किया। राजकुमार ने बृहन्नला को ही अपना सारथी स्वीकार कर लिया। दोनों रथारूढ होकर रणाङ्गण की ओर प्रस्थान किए। किन्तु, कौरवों की अपार सेना को देखते ही युवा राजकुमार चेतनाशून्य होकर गिर पड़ा। चेतना लौटते ही राजकुमार रथ से कूद कर भाग निकला। बृहन्नला के जूड़े और जेवरात उसे पकड़ने के क्रम में हवा में लहराने लगे। यह दृश्य देखकर कौरवों की सेना जोरजोर से हंसने लगी। पर, कौरवों को यह समझते देर न लगी कि यह स्त्रैण और कोई नहीं सारथी के रूप में स्वयं अर्जुन है। बृहन्नला ने घोड़े की लगाम राजकुमार के हाथ में दी और युद्ध की जिम्मेदारी स्वयं अपने ऊपर ले ली। शमी वृक्ष के कोटर से अपना गाण्डीव उतार लिया। रणाङ्गण में प्रवेश करते ही उन्होंने अपना शंख बजाया। शंख ध्वनि सुनते ही कौरवों के दिल दहल उठे। दुर्योधन ने भीष्म, द्रोण और कृपाचार्य से कहा—अभी भी गुप्तवास की अवधि पूरी नहीं हुई है। अगर यह सचमुच अर्जुन ही हैं तो निश्चय ही पाण्डवों को अपनी कृतप्रतिज्ञा के अनुसार बारह वर्षों तक वनवासी बनना पड़ेगा। इसका उत्तर देते हुए पितामह भीष्म ने कहा पाण्डुपुत्रों ने अपनी की हुई प्रतिज्ञा का पूर्णतः निर्वाह किया है।

भीष्म ने युद्ध की अब इस भयंकर स्थिति से दुर्योधन को अवगत कराया तथा उन्हें इसके अनुरूप तैयारी करने की सलाह दी। चुराई गई गायें तथा एक टुकड़ी सेना के साथ उन्हें शीघ्र ही हस्तिनापुर लौट जाने को कहा। अब घनघोर युद्ध प्रारम्भ हुआ। युद्ध क्षेत्र में अर्जुन ने अपनी वीरता का परिचय देते हुए विराट का गोधन लौटा लिया। उसके भयंकर आक्रमण से आक्रांत

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कुरु सेना शीघ्र ही पीछे की ओर भाग खड़ी हुई। अर्जुन ने युद्ध विजय के बाद अपने सारे हथियार उसी शमी वृक्ष के कोटर में छुपा दिये और उत्तर को इस युद्ध का पूरा श्रेय दिया। यहाँ उन्होंने अपने आप को पूर्णतः गौण रखा। उत्तर को भी अपना रहस्य छिपाने के लिए अनुकूल बना लिया। विजय की खबर जब सम्राट् विराट को मिली तब उन्होंने कुमार उत्तर के स्वागत की भव्य तैयारी की। वे स्वयं कंक के साथ पासा खेलने बैठ गये। कंक ने इस युद्ध का श्रेय बृहन्नला को दिया। यह सुनते ही विराट भड़क उठे। आवेश में उन्होंने पासा फेंक कर कंक पर प्रहार किया। पासा की चोट से कंक के नाक से खून की धारा बहने लगी। बगल में खड़ी सैरन्ध्री ने जब यह दृश्य देखा तो झट से एक बरतन में उस खून को समेट लिया उसी समय बृहन्नला के साथ उत्तर दरबार में उपस्थित हुआ। लेकिन, युधिष्ठिर ने चुपचाप दरवान से कहा केवल उत्तर को ही दरबार में उपस्थित करो। क्योंकि, उन्हें भय था कि कहीं बृहन्नला के रूप में छिपा अर्जुन अगर उनके नाक से बहते खून को देख लिया तो अनर्थ हो जायेगा। कुमार उत्तर ने बृहन्नला को छोड़कर ही दरबार में प्रवेश किया। युद्ध की सारी घटनाओं का उसने सही-सही चित्रण उपस्थित किया। अर्जुन के परिचय को छिपाकर इनकी जगह किसी देवपुत्र की लक्ष्यता का उल्लेख किया।

इस युद्ध-विजय के बाद तीसरे दिन पाण्डवों ने अपनी राजसी पोशाक में विराट की सभा में प्रवेश किया। सभा में उन्होंने अपना-अपना स्थान उन गद्दियों पर ग्रहण किया जो मात्र राजाओं के लिए आरक्षित थे। विराट ने जब यह दृश्य देखा तो क्रोध से काँपने लगे। किन्तु उसी क्षण अर्जुन ने उठकर युधिष्ठिर एवं अपने अन्य भाईयों का परिचय विराट के सामने दिया। कुमार उत्तर ने इसका समर्थन किया तथा अर्जुन की शक्ति की उसने भूरि-भूरि प्रशंसा की। मत्स्य सम्राट विराट ने अपने को दोषी घोषित किया तथा इस अपराध के लिए अपनी सुपुत्री कुमारी उत्तरा को भेंट स्वरूप उनके सामने अर्पित किया। अर्जुन ने अपनी पुत्रवधू के रूप में कुमारी उत्तरा को ग्रहण किया। पुनः उसी नगर में पाण्डवों ने अपने आवास स्थान पर धूम-धाम के साथ उत्तरा का विवाह अभिमन्यु के साथ सम्पन्न किया।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पञ्चरात्र की कथावस्तु

प्रथम अङ्क

कुरु सम्राट् महाराज दुर्योधन ने एक विशाल यज्ञ प्रारम्भ किया। उस यज्ञ में कुछ लड़कों ने उपद्रव खड़ा किया। उन्होंने यज्ञ मण्डप में आग लगा दी। ऋत्विजों ने किसी तरह आग पर नियंत्रण प्राप्त किया। यज्ञ सम्पादन के बाद देश-देशान्तर के आये हुए ब्राह्मणों, सभासदों एवं सामन्तों ने दुर्योधन का साधुवाद किया। अन्त में दुर्योधन ने अपने आचार्य द्रोण से यज्ञान्त की दक्षिणा स्वीकार करने की प्रार्थना की। पहले तो द्रोण ने कहा—मेरी दक्षिणा सुरक्षित रखो, समय पर माँग लूँगा। किन्तु, प्रतिज्ञात दुर्योधन के अत्यधिक आग्रह पर उन्होंने कहा—पाण्डवों को उनका आधा राज्य दे दो, यही हमारी यज्ञ-दक्षिणा होगी। शकुनि ने इसे आचार्य की धर्म-वञ्चना कहा। उसके इस कथन से द्रोण क्रुद्ध हो गये। उन्होंने कहा—पाण्डवों का राज्यार्ध उन्हें लौटा दो, अन्यथा वे बल पूर्वक अपना हिस्सा तुमसे ले ही लेंगे। अब तुम्हीं सोच लो कि मेरी प्रार्थना अच्छी है अथवा उनका बल प्रयोग। क्रुद्ध आचार्य को पितामह भीष्म और कर्ण ने समझा बुझा कर शांत किया।

दुर्योधन ने इस संबंध में अपने मामा शकुनि से परामर्श लिया और अन्त में उसने घोषणा की—यदि पाँच रात के अन्दर पाण्डवों का पता लगा दिया जाय तो पाण्डवों को राज्य का आधा हिस्सा दिया जा सकता है। भीष्म के अनुरोध पर द्रोणाचार्य ने दुर्योधन की यह शर्त्त मान ली।

इसी बीच दुर्योधन के दरबार में यह खबर मिली कि विराट के साले सौ कीचकों का बध किसी ने बिना अस्त्र प्रयोग के ही कर दिया है। भीष्म ने निश्चय किया कि यह कर्म भीम के सिवा और कोई कर ही नहीं सकता है। अतः उन्होंने द्रोणाचार्य को बता दिया कि पाण्डव विराट के नगर में ही हैं। भीष्म ने दुर्योधन को बतलाया कि विराट के साथ हमारी पुरानी शत्रुता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इस यज्ञ में भी विराट नहीं आया। अतः उसके ऊपर आक्रमण करना चाहिए। उसका गोधन अपहृत कर लेना चाहिए। पितामह की यह चाल समयानुकूल थी। यह आक्रमण पाण्डवों का पता लगाने का एक साधन था। उनका यह विश्वास था कि विराट पर जब यह आक्रमण होगा तब पाण्डव चुपचाप नहीं बैठेंगे क्योंकि उनमें कृतज्ञता के भाव हैं। अतः ऐसी स्थिति में उनका पता आसानी से चल जायेगा।

द्वितीय अङ्क

उस दिन विराट का जन्मदिन था। इस जन्मदिन के उपलक्ष्य में राजधानी सजाई गई थी। कण-कण में उल्लास फैला था। गोधन भी सजाये गये थे। सभी गोपाल उत्सव मना रहे थे। इसी बीच दुर्योधन ने अपनी सेना के साथ उनपर आक्रमण किया। गायें हरी जाने लगी। गोपाल घबड़ाकर भाग खड़े हुए। इस अप्रत्याशित आक्रमण की खबर गोपालों ने राजा को दी। उन्होंने कहा—कौरवों ने गोधन पर आक्रमण किया है। उनकी सेना में पितामह भीष्म और आचार्य गुरु द्रोण भी हैं। उनका सामना करने के लिए कुमार उत्तर बृहन्नला को सारथी बनाकर जा चुके हैं। विराट सूचना पाते ही अपने पुत्र की मदद के लिए तत्पर हो उठे किन्तु इसी बीच उन्हें दूसरी सूचना मिलि—युद्ध क्षेत्र से भीष्म एवं दुर्योधनादि राजगण हार कर भाग चुके हैं। युद्ध में केवल अभिमन्यु लड़ रहा है। कुछ ही देर बाद दूत ने फिर खबर दी कि युद्ध समाप्त हो चुका है। कुमार विजयी रहा। राजा ने अपने पुत्र को देखने की उत्कट अभिलाषा प्रकट की। किन्तु, कुमार उत्तर युद्ध में बहादुरी दिखलाने वाले वीरों का नाम उस समय अङ्कित कर रहा था। विराट ने बृहन्नला को ही बुलाकर युद्ध का विवरण जानना चाहा। इसी बीच एक दूत ने आकर प्रसन्नता पूर्वक खबर दी कि युद्ध में अभिमन्यु पकड़ा गया। अभिमन्यु को पकड़ने वाला वही बीर है। जिसे पाकशाला में नियुक्त किया गया था राजा का दिल प्रसन्नता से नाँच उठा। उन्होंने ससम्मान अभिमन्यु को उपस्थित करने का आदेश दिया।

अभिमन्यु तथा भीम से भेंट होने पर बृहन्नला अभिमन्यु के माता पिता की कुशलता का समाचार पूछती है। भीम और बृहन्नला दोनों मिलकर उसे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चिढ़ाते और उत्तेजित कर देते हैं। इसके पश्चात् बृहन्नला अभिमन्यु को विराट् के पास ले जाती है। वहाँ भी वह किए गये प्रश्नों का उत्तर अत्यंत उत्तेजना के साथ देता हैं। इसी बीच कुमार उत्तर वहाँ आकर बृहन्नला की ओर संकेत करते हुए घोषणा करता है कि ये अर्जुन हैं। इन्होंने ही श्मशान स्थित शमी वृक्ष पर ढँगे अपने धनुष बाण को लाकर आज के युद्ध में कौरवों को पराजित किया अतः आज के युद्ध के विजयी वीर यही हैं। मैं नहीं हूँ। इतने ही में भगवान् युधिष्ठिर पाण्डवों के अज्ञात वास की अवधि समाप्त होने की घोषणा करते हैं। इन सारी घटनाओं को देख सुनकर अभिमन्यु पुलकित हो जाता है। वह अपने पितृजनों से मिलकर अत्यंत परितृप्ति का अनुभव करता है। राजा विराट् भी पाण्डवों का परिचय पाकर प्रसन्न हो जाते और अपने को गौरवान्वित समझने लगते हैं। वे इस विजय के उपलक्ष्य में अपनी पुत्री उत्तरा को अर्जुन के लिए समर्पण करने की घोषणा करते हैं। जिसे अर्जुन अपनी पुत्र-वधू के रूप में ग्रहण करने की स्वीकृति देते हैं।

तृतीय अङ्क

कौरव पक्ष में अभिमन्यु के अपहरण का समाचार फैलते ही सभी लोग चकित हो उठते हैं। एक पदाति ने अकेले ही शस्त्रों से सुसज्जित और सेना से रक्षित अभिमन्यु को कैसे अपहृत किया। भीष्म ने लोगों का समाधान करते हुए कहा कि अभिमन्यु का अपहर्त्ता भीम के अतिरिक्त और कोई नहीं हो सकता। शकुनि को यह कथन बहुत ही अप्रिय प्रतीत हुआ और उसने कहा कि तब तो आप हम लोगों को पराजित करने वाले कुमार उत्तर को भी अर्जुन ही समझ रहे होंगे।

द्रोणाचार्य और भीष्म दोनों ने शकुनि की कही हुई बात को सत्य प्रतिपादित करते हुए कहा कि युद्ध की बाणवृष्टि तो यही संकेत कर रही है कि वह अर्जुन की ही युद्धकला थी। बाण-वर्षण में इतनी त्वरा और लघुहस्तता है ही किसमें, जो क्षण भर में ही आकाश को बाणों से आच्छन्न करके सूर्यास्त का दृश्य उपस्थित कर दे। भीष्म के रथ की ध्वजा में लगा हुआ एक बाण लाया गया। शकुनि ने उसमें अंकित अर्जुन के नाम को पढ़कर लज्जित होकर उसे फेंक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दिया तथा झुँझलाते हुए द्रोणाचार्य से कहा कि आप के यह कहने में कोई भी तथ्य नहीं है कि हम लोगों को अर्जुन ने पराजित कर दिया है। आप लोग तो हर समय पांडवों का ही सपना देखते रहते हैं। क्या दूसरा कोई अर्जुन नाम का वीर नहीं हो सकता है ? क्या ये बाण उसके नहीं हो सकते हैं ? दुर्योधन ने भी शकुनि के इस तर्क का ही समर्थन किया।

इसी समय कुमार उत्तर दुर्योधन की सभा में उपस्थित होकर युधिष्ठिर की ओर से उत्तरा और अभिमन्यु के विवाह में भीष्म आदि गुरुजनों की अनुमति पाने के लिए प्रार्थना करते हैं। इससे यह बात स्पष्ट हो गई कि सम्प्रति पांडव विराट् के यहाँ वर्तमान हैं। इसके पश्चात् भीष्म के संकेत पर द्रोणाचार्यने कहा कि अभी पञ्चरात्र की अवधि शेष है। अतः यदि दुर्योधन अपनी प्रतिज्ञा पूरी करें तो बड़ी ही प्रसन्नता होगी। विवश होकर दुर्योधन को भी पाण्डवों को आधा राज्य देने की घोषणा करनी पड़ी। दुर्योधन की इस घोषणा से प्रसन्न होकर द्रोण ने कहा कि इन दोनों कुलों के इसप्रकार निर्विग्रह हो जाने से आज हम सभी लोग अत्यंत संतुष्टि का अनुभव कर रहे हैं। अब ये दोनों शान्ति के साथ पृथ्वी का पालन करें।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कथावस्तु पर एक दृष्टि

'पञ्चरात्र' लिखते समय महाभारत की स्पष्ट एवं प्रसिद्ध कथा में भास ने अपरिमित स्वतन्त्रता का उपयोग किया है। महाभारत में दुर्योधन कहता है—'सूच्यग्रं न दास्यामि विना युद्धेन केशव'। किन्तु, महाभारत के इस मूल आधार की पूर्णतः उपेक्षाकर भास ने इस रूपक में द्रोण के अनुरोध पर अपनी दानप्रतिज्ञा को पूरा करने के लिए दुर्योधन के द्वारा पाण्डवों को आधा राज्य स्वेच्छा से दिलवाया है। महाभारत में वर्णित युद्ध के सारे कारणों को भास ने छोड़ दिया है, जो महाभारत के मूल विन्दु हैं, और ऐसा करने में वे स्वयं महाभारत के कई प्रसिद्ध कथन के विरोध में चले गये हैं। इतना ही नहीं, कहीं-कहीं तो व्यास के सम्बन्ध की सामान्य परिकल्पना से भी ये दूर हट गये हैं। डॉ० विन्टरनिज की दृष्टि में राज्यार्ध का यह त्याग वैसा ही परिकल्पित है। जैसा अभिमन्यु का बन्दी बनाना। फिर भी यह ध्यान में रखना होगा कि घोष-यात्रा पूर्व में राजसूय यज्ञ से भी विशिष्ट वैष्णव यज्ञ का वर्णन है। कर्ण ने दुर्योधन के लिए जब सम्पूर्ण पृथ्वी पर विजय प्राप्त की थी तब इस प्रसन्नता के उपलक्ष्य में दुर्योधन ने वैष्णवयज्ञ किया था—'घोष यात्रा पर्व' खण्ड १३ अध्याय २५६, २५७।

कुमार अभिमन्यु का चित्रण भी इस नाटक में विचित्र ढंग से किया गया है। दुर्योधन के यज्ञ में भाग लेने के लिए-कृष्ण के प्रतिनिधि के रूप में उसे उपस्थित किया गया है। इतना ही नहीं, विराट के गोग्रहण में अपने पिता के विरूद्ध कौरवों की ओर से उसे युद्ध में सम्मिलित कराया गया है। त्रिगर्तों के आक्रमण को बिल्कुल हटा ही दिया गया है ताकि उत्तर की क्रिया के मूलकारण को हटाया जा सके। कुमार उत्तर अपने पिता के रथ से राजकीय सारथी के बदले बृहन्नला को सारथी बनाकर रणांगण में उपस्थित हुआ। भला इसे हास्यास्पद नहीं तो क्या कहा जायगा।—२।१७

विराट अपना जन्मदिन का महोत्सव मना रहा था। उसे अपने ही

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राजभवन में इस गोग्रहण का समाचार मिला। यह भी महाभारत-कथा के विपरीत चित्रण है। लगता है, मुख्य कथा के वर्वर भागों को चिकना बनाने के लिए ही भास ने ऐसा किया है। यथा—कीचक का द्रौपदी के प्रति पाशविक आसक्ति, भीम का भयानक बदला, कीचक के साथ उनके अन्य अनुयायियों की हत्या का बिल्कुल उल्लेख नहीं किया गया है। केवल हत्या के संबंध में संकेत भर है। ठीक इसी प्रकार युधिष्ठिर के नाक से रक्तस्राव की घटना को भी दबा दिया गया है। दुर्योधन के चरित्र को कुछ अधिक ही पक्षपात पूर्ण ढंग से प्रस्तुत किया गया है। लेकिन, उसका उदार स्वरूप पाण्डवों के प्रति अपनी सारी शोभा तब खो देता है जब शकुनि से सुनने के बाद वह सोचता है कि उसने उतावली में काम किया है। और सिर्फ वाक्छल से अपने समझौता से छुटकारा पाकर प्रसन्न हो जाता है। महाभारत की मूलकथा के अनुसार यहाँ भी शकुनि दुर्योधन की दुष्ट प्रतिभा का प्रतीक है। जब कि कर्ण जो महाभारत में घमण्डी, धृष्ट और विपक्षी है, यहाँ वह मित्र और शान्ति के प्रति झुका हुआ चित्रित किया गया है।

महाभारत में युद्ध विजय के बाद पाण्डवों ने तीन-चार दिनों के बाद अपना छद्मवेश परित्याग किया है। जबकि यहाँ उसी दिन पाण्डव अपने रूप में आ जाते हैं! डॉ० विण्टरनिज् की दृष्टि में विराट् का पुत्र उत्तर एक योद्धा की अपेक्षा हँसोड़ अधिक है। जो युद्धभूमि से भागकर जब विराट को युद्धभूमि का सुना हुआ इतिवृत्त सुनाता है तो विराट समझता है कि उसका पुत्र किसी प्रशंसनीय कार्य में व्यस्त था। संभवतः इस हँसोड़ भाव का उपयोग इसलिए किया गया है कि उत्तर को इस मजमा से अलग रखा जा सके। अन्यथा, सारी सचाई को वह मजाक बना देता। उस समय भी उसे अलग रखा गया जब अभिमन्यु स्वयं अपने पिता को पहचानने में असमर्थ हो रहा था।

इस नाटक में विराट अपने रनिवास में पूरे एक साल तक बृहन्नला (छद्मवेशी अर्जुन) के रहने पर विशेष चिंतित प्रतीत होता है चिन्ता का कारण संभावित अफवाह है जो इसकी आसन्न यौवना पुत्री उत्तरा और अर्जुन के एकान्तवास का कारण बन सकती है। इसलिए विराट स्वेच्छा से उत्तरा को अर्जुन के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हाथों में सौंप देता है। इस नाटक में अर्जुन स्वयं अपने चरित्र के प्रति सतर्क है और विराट से प्राप्त उपहार स्वरूप उत्तरा को प्राप्त कर उसे अपनी पुत्रवधू के रूप में स्वीकार कर अपने चरित्र की उज्ज्वलता को प्रमाणित कर देता है।

पशु आक्रमण की चर्चा महाभारत में भी है। किन्तु, भास ने इसे द्रोण को समय से पूर्व ही पाण्डवों का पता लग जाने के लिए प्रेरित किया है। भीष्म ने विराट के साथ अपने निजी बैर को स्वीकार किया है। और उन्होंने कौरवों को समझाया कि यज्ञ में विराट की अनुपस्थिति को गोग्रहण का वहाना वनाया जाय। महाभारत में ये त्रिगर्तों के राजा के एक विवाह संधि की सलाह पर चिंतित हैं जो कीचक की मृत्यु के वाद विराट के सेनापति द्वारा किये गये सारे अपमानों के वदले उसके दर्प को चूर कर डालना चाहता है।

इस प्रकार महाभारत की प्रसिद्ध एवं विस्तृत कथा को विशेष रूप से गोग्रहण एवं अभिमन्यु के पाणिग्रहण की पृष्ठभूमि में कवि ने काफी स्वेच्छाचारिता दिखायी है। इसका एक मात्र कारण है, इस नाटक को वीररस प्रधान सुखान्त नाटक बनाने की दिशा देना। इस नाटक में कोई स्त्री पात्र नहीं है। बृहन्नला के रूप में अर्जुन ही एक नारी पात्र है। द्वितीय अंक के मध्य में रङ्गमञ्च पर गाय के चरवाहों की भीड़ अनावश्यक लगती है।

म० म० गणपति शास्त्री और प्रो० कीथ इस नाटक को समवकार मानते हैं। किन्तु 'दशरूपक' में दी गई समवकार की परिभाष (iii, ६२–६७) के अनुसार यह ठीक ढंग से बैठ नहीं पाता है। क्योंकि, यह रूपक न तो ईश्वर से सम्वन्ध रखता है और न दानवों से ही सम्वन्धित है। शृंगार रस की तो इसमें लेशमात्र भी चर्चा नहीं है। ऐसा कहा गया है कि समवकार के नायक (वीर) संख्या में बारह होने चाहिए। उत्सुकतावश नाटक के मांगलिक श्लोक में कवि ने बारह चरित्रों की सूची अवश्य प्रस्तुत कर दी है। पर, कवि की मेधा युद्ध का परोक्ष चित्रण करने की बुद्धि में स्थिर है। यह नाटक व्यंग्यात्मक स्थिति में जो पाठकों या दर्शकों के आनन्द का मुख्य स्रोत है, छद्मवेश से देखा जा सकता है।

सम्पूर्ण नाटक में धर्म-परायणता एवं विनीत भाव का ही वातावरण है किन्तु, सारे चरित्र कठोर ब्राह्मण धर्म से जकड़े प्रतीत होते हैं। डॉ० विण्टर-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

निज् ने दुर्योधन के महान यज्ञ को स्पष्ट रूप से ब्राह्मणों के विशाल धार्मिक अनुष्ठानों का जुलूस माना है। इसके वर्णन में कवि की प्रतिभा को मनगढ़ंत और असत्य कहा है। कवि के वर्णन और उदाहरण भी कुछ ऐसे हैं जिससे अनुशासित एवं नियंत्रित ब्राह्मण धर्म की कठोरता अभिव्यक्त होती है—'होम की पवित्र आग अपने बगल में सामन्य आग को ठीक उसी प्रकार सहन नहीं कर पा रही है, जैसे कोई द्विज अपने बगल में शूद्र को।

एषा भो! दीप्तयूपा कनकमयभुजेवाभाति वसुधा
चैत्याग्निर्लौकिकाग्नि द्विज इव वृषलं पार्श्वे न सहते।
नात्यर्थं प्लुष्टपृष्ठा हरितकुशतया वेदी परिवृता
प्राग्वंशं चैष धूमो गज इव नलिनीं फुल्लां प्रविशति ॥

पञ्च० ॥ १–६ ॥

इसी तरह एक अन्य श्लोक में लगता है जैसे ब्राह्मणधर्म का पूर्ण प्रचार किया जा रहा है—'क्षत्रियों की सम्पत्ति उनके बाणों पर निर्भर है जो क्षत्रीय अपने पुत्र के लिए धन जोड़ता है वह ठगा जाता है, राजा को तो सारा धन ब्राह्मणों को देकर पुत्रों के लिए चापमात्र रख छोड़ना चाहिए।

बाणाधीना क्षत्रियाणां समृद्धिः पुत्रपेक्षी बध्यते सन्निधाता।
विप्रोत्सङ्गे वित्तमावज्यं सर्वं राज्ञा देयं चापमात्रं सुतेभ्यः ॥

पञ्च० ॥ १–२४ ॥

कुछ आलोचकों का कहना है कि इस नाटक में केवल तीन ही पाण्डवों का वर्णन है आलोचकों का यह कथन युक्तिसंगत नहीं है। क्योंकि द्वितीय अंक के श्लोक संख्या—७० में हमें पाँचो भाई पाण्डव का संकेत मिलता है—

योधिष्ठिरं धैर्यमवाप्नुहि त्वं भैमं बलं नैपुणमर्जुनस्य।
माद्रीजयोः कान्तिमथाभिरूप्यं कीर्त्तिं च कृष्णस्य जगत्प्रियस्य ॥ ७० ॥

इसी तरह २–५४ से भी इस बात की पुष्टि होती है–'शेषाणां यदपि च रोचते चतुर्णाम् ॥ २–५४ ॥'

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

डॉ० पुशलकर का कहना है कि यह नाटक संभवतः किसी यज्ञ के अवसर पर खेलने के लिए लिखा गया था। इसलिए यह यज्ञ संस्था को चमकाता है। जब कि प्रो० बुलनर का मत है कि नाटक किसी राजकीय बैर की समाप्ति के विशेष अवसर पर लिखा गया होगा। किन्तु, ये सारी बातें अनुमान पर ही आधारित हैं। अतः इस संबंध में निश्चयपूर्वक कुछ कहना संभव नहीं है। नाटकीय विधान की दृष्टि से इसका महत्त्व अक्षुण्ण है। भास रूपककारों के बीच अद्वितीय हैं। उनके संबंध में यह कथन अक्षरशः सत्य है।

"सुविभक्तमुखाद्यङ्गैर्व्यक्तलक्षणवृत्तिभिः ।
परतोऽपि स्थितो भासः शरीरैरिव नाटकैः ॥"

विदुषामनुचरः
डॉ० जगदीशचन्द्र मिश्रः

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पात्र-परिचय

१. दुर्योधन	...	कुरुदेश का राजा
२. भीष्म	...	कौरवों तथा पाण्डवों के पितामह
३. द्रोण	...	अस्त्रविद्याचार्य
४. कर्ण	...	अङ्गदेशाधीश तथा दुर्योधन के मित्र
५. शकुनि	...	दुर्योधन के मामा तथा गान्धारराज
६. वृद्धगोपालक	...	विराट के घोषपाल
७. गोमित्रक	...	चरवाहा
८. भगवान्	...	अज्ञातवासी युधिष्ठिर
९. भीमसेन	...	विराट के पाकाध्यक्ष
१०. बृहन्नला	...	नपुंसकरूप में अर्जुन
११. राजा	...	विराट, मत्स्यदेशाधीश
१२. उत्तर	...	विराट के पुत्र
१३. अभिमन्यु	...	अर्जुन के पुत्र
१४. सूत	...	सारथि
१५. काञ्चुकीय	...	विराट के कञ्चुकी
१६. भट	...	राजभृत्य

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

॥ श्रीः ॥

पञ्चरात्रम्

'विमला' संस्कृत-हिन्दी-व्याख्योपेतम्

प्रथमोऽङ्कः

(नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः)

सूत्रधारः—

द्रोणः पृथिव्यर्जुनभीमदूतो यः कर्णधारः शकुनीश्वरस्य ।

कर्णतालपवनैरलीन् यथा वारयन्निखिलविघ्नडम्बरम् ।
तन्निराकृतिगजास्यविग्रहं चिन्तये किमपि मञ्जुलमहः ॥
यत्कृपातरणिमात्रसंश्रयात् गोष्पदी भवति वाङ्मयाम्बुधिः ।
सा समस्तसुरवृन्दवन्दिता भारती भवतु भूरिभूतये ॥
पञ्चरात्ररचना समुज्ज्वला भासवर्णितगुणा यथामति ।
व्याख्यया विमलया मयाञ्चिता मोददास्तु भ्सततं शुभात्मनाम् ॥

अथ सुप्रथितयशास्तत्रभवान् कविताकामिनीहासो महाकविर्भासः पञ्चरात्राभिधानं समवकारसंज्ञया रूपकविशेषं चिकीर्षुः तदारम्भे प्रयोगसम्यङ्निष्पत्तिपरिपन्थिदुरितप्रशमीपायिकं पूर्वरङ्गप्रधानाङ्गमङ्गलश्लोकपाठम् उपक्रम्यमाणप्रयोगस्य कथावस्त्वंशस्य निवेदनं च प्रयोगनिर्वाहपूर्वहेण सूत्रधारेण रङ्गे

(नान्दी के बाद सूत्रधार का प्रवेश)

सूत्रधार—जो सघन सतेज भीषण गर्जनयुत श्यामवर्ण मेघ के सदृश हैं, जिन्होंने राज्य प्राप्त कराने के निमित्त भीम तथा अर्जुन का दूतत्व स्वीकार किया

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दुर्योधनो भीष्मयुधिष्ठिरः स पायाद विराडुत्तरगोऽभिमन्युः ॥१॥

(परिक्रम्य) एवमार्यमिश्रान् विज्ञापयामि । अये ! किन्नु खलु मयि

प्रथमसमाचरणीयम् । पश्यंस्तस्य प्रवेशं तावदाह—नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः' इति । नान्दी आनकः । सा च उपलक्षणं वाद्यान्तराणामपि तस्याऽन्ते प्रयोगपूर्वाङ्गभूते आनकादि वाद्यवादनेऽवसित इत्यर्थः । अथवा—नन्दिरानन्दः, इयं नान्दी गीतवाद्यवादनक्रिया तस्या अन्ते सा हि प्रयोगारम्भे देवतापरिषदानन्दार्थानुष्ठानुष्ठीयते । ततः तदनन्तरं नान्दीपरिसमाप्तिः अव्यवहितोत्तरकाल-इत्यर्थः । 'नान्द्यन्ते प्रविशति सूत्रधारः' इत्युक्तौ नान्द्यवसानसूत्रधारप्रवेश-क्रिययोः पौर्वापर्यमात्रं प्रतीयते, न तु क्रियान्तराव्यवधानमपि, तयोः क्रियान्तर-व्यवधानेऽपि पौर्वापर्यव्यवहारा हानात् । तेन नान्द्यवसानक्रियानन्तरमेव प्रविष्टः सूत्रधारो मङ्गलमाचरति—**द्रोण** इति ।

द्रोणः मेघस्तत्सदृशकृष्णवर्णः, पृथिव्यर्जुनभीमदूतः पृथिव्यै स्वांशभूतायै भुवे अर्जुनभीमयोः पाण्डुनन्दनदूतः प्रेष्यभावं गतः शकुनीश्वरस्य विहगराजस्य विनतासुतस्य यः कर्णधारः नियन्त्रकः, दुर्योधनः दुःखेन योध्यत इति दुःखं दुःख-करं येन तादृशो वाऽतिबलतया पराजेतुमशक्य इत्यर्थः । भीष्मयुधिष्ठिरः भीष्मो अरिभयानकः युद्धे रणे स्थिरश्च उत्तरगः प्रशस्तपथगामी अनिन्द्याचारः अभिमन्युः मन्युम् यज्ञम् अभिगतः आराधनीय इति यावत् एतादृशः विराट् आदिपुरुषो भगवान् श्रीकृष्णः पायात् प्रेक्षकान् प्रयोक्तॄंश्च मङ्गलेन योज-त्वित्यर्थः । अथ चात्र द्रोण-अर्जुन-भीम-कर्ण-शकुनी-दुर्योधन-भीष्म-युधिष्ठिर-विराट्-उत्तराः-अभिमन्वाख्यातानि नाटकीयानि पात्राणि मुद्रालङ्कारभङ्ग्या सूचितानि । नान्दी मङ्गलसाधारणं द्वादशपदत्वमप्यत्र बोधव्यम् ॥ १ ॥

(परिक्रम्य भ्रमणं कृत्वा) एवम् वक्ष्यमाणप्रकारेण, आर्यमिश्रान् समा-दरणीयान् विज्ञापयामि निवेदयामि, अये, इति अव्ययम्, खलु निश्चयेन मयि

जिनका पक्षिराज गरुड़ पर नियन्त्र है तथा जो युद्धभूमि में कठोर योद्धा है, जो निश्चय के धनी और भयङ्कर हैं, हमेशा जिनका कृत्य उत्कृष्ट है तथा त्याग के लिए जो सदैव प्रस्तुत हैं, ऐसे आदि पुरुष श्रीकृष्ण हम सबों की रक्षा करें॥१॥

(घूमकर) इस तरह मान्य आर्यों से निवेदन करता हूँ । अरे निवेदित

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विज्ञापनव्यग्रे शब्द इव श्रूयते । अङ्ग ! पश्यामि ।

(नेपथ्ये)

अहो कुरुराजस्य यज्ञसमृद्धिः !

सूत्रधारः—भवतु, विज्ञातम् ।

सर्वैरन्तःपुरैः सार्धं प्रीत्या प्राप्तेषु राजसु ।
यज्ञो दुर्योधनस्यैव कुरुराजस्य वर्तते ॥ २ ॥

सूत्रधारे, विज्ञापनव्यग्रे = स्वाभिमतबोधनाय प्रयुञ्जाने शब्दः ध्वनिः, इव यथा श्रूयते कर्णगोचरीभवति । अङ्ग = इति सम्बोधकमव्ययम्, पश्यामि अवलोकयामि ।

(नेपथ्ये रङ्गस्य पृष्ठ देशे)

अहो आश्चर्यम्, कुरुराजस्य धृतराष्ट्रसुतस्य, यज्ञसमृद्धिः यागसम्पन्नता,

सूत्रधारः—भवतु = यातु, विज्ञातम् = अवधारितम् ।

सर्वैरिति—एषः दृश्यमानविभवः, कुरुराजस्य दुर्योधनस्य धृतराष्ट्रसुतस्य यज्ञः मखः वर्त्तते जायते, यत्र यज्ञप्रेम्णा दुर्योधनप्रेम्णा वा, सर्वैः सकलैः अन्तःपुरैः नृपवधूजनैः, सार्धम् सह राजसु सकलेषु भूपतिषु, प्रीत्या आनन्देन, प्राप्तेषु आगतेषु सत्सु । अयं हि कुरुराजस्य दुर्योधनस्य यज्ञो वर्तते इति मया शब्द कारणं ज्ञातमिति भावः । अस्मिन् श्लोके अनुष्टुप् छन्दः ॥ २ ॥

करने के लिए मेरे प्रस्तुत होते ही, यह शब्द कैसे सुनाई पड़ रहे हैं ? अच्छा, देखता हूँ ।

(नेपथ्य में)

आश्चर्य, महाराज दुर्योधन का यज्ञ वैभव भी विलक्षण है ।

सूत्रधार—अच्छा, मैं समझ गया ।

यह महाराज दुर्योधन का यज्ञ जो हो रहा है, इसमें स्नेहवश अनेक राजन्य महाराज के प्रति अपना सम्मान प्रकट करने हेतु अपने रनिवास के साथ एकत्र हुए हैं ॥ २ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(निष्क्रान्तः)

स्थापना ।

(ततः प्रविशन्ति ब्राह्मणास्त्रयः)

सर्वे—अहो कुरुराजस्य यज्ञसमृद्धिः !

(निष्क्रान्तः = बहिर्गतः)

स्थापना—प्रस्तावना स्थाप्यते उपस्थाप्यते कथावस्तु अनयेति व्युत्पत्तिः । भासकृतनाटकेषु स्थापनाशब्दप्रयोग एव सर्वत्रैतदर्थकृतः । कालिदासादिरचित-नाटकेषु इयमेव प्रस्तावना आमुखमित्यादिनाम्ना व्यवह्रियते । स्थापनाशब्दप्रयोगो हि भासस्य प्राक्तनतां सूचयति । तल्लक्षणं हि 'सूत्रधारो नटीं ब्रूते मारिषं वा विदूषकम् । स्वकार्यं प्रस्तुताक्षेपि चित्रोक्त्या यत्तदामुखम् ।' प्रस्तावना इति च प्रस्तावनाभेदेषु चेह प्रयोगातिशयो नामभेदः । 'यदि प्रयोग एकस्मिन् प्रयोगेऽन्यः प्रयुज्यते, तेन पात्रप्रवेशश्चेत् प्रयोगातिशयस्तदा ।' इति वचनात् । अत्र सूत्रधार-मुखेन पात्रप्रवेशात् प्रयोगातिशयः । यद्यपि नाटकनियमानुसारं स्थापनायां कवि-नाटकयोः नामकीर्त्तनमावश्यकम्—'प्रसाद्य रङ्गं विधिवत् कवेर्नाम च कीर्त्तयेत् । प्रस्तावना ततः कुर्याद् काव्यप्रख्यापनाश्रयाम् । (ना० शा० ६) इत्यभियुक्तोक्तेः, तथापि महाकविना नियम एष उपेक्षितः । अत्रोच्यते—प्रस्तावनायां कविकाव्य-कीर्त्तनसमुदाचारस्तद्विदस्य पुराणमहाकवेः कालेनावर्त्तत । पश्चात् कालेन कवीनामुपजातं कविकाव्यकीर्त्तनसमुदाचारप्रणयं लक्ष्येषु भूयिष्ठमुपलभ्य तदनु-सारिलक्षणं लक्षणकारैः प्रणीतमित्यदोष इति ।

(ततः = तत्पश्चात्, प्रविशन्ति रङ्गभूमिमागच्छन्ति, ब्राह्मणास्त्रयः त्रिसंख्यकाः विप्राः)

सर्वे—अहो आश्चर्यम्, कुरुराजस्य दुर्योधनस्य, यज्ञसमृद्धिः मखवैभवम् ।

(प्रस्थान)

(उसके बाद तीन ब्राह्मणों का प्रवेश)

सभी—अहा ! कितना सुन्दर है महाराज का यागवैभव ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रथमः—इह हि,

द्विजोच्छिष्टैरन्नैः प्रकुसुमितकाशा इव दिशो
हविर्धूमैः सर्वे हृतकुसुमगन्धास्तरुगणाः।
मृगैस्तुल्या व्याघ्रा वधनिभृतसिंहाश्च गिरयो
नृपे दीक्षां प्राप्ते जगदपि समं दीक्षितमिव ॥ ३ ॥

द्वितीयः—सम्यग् भवानाह।

प्रथमः—इह अस्मिन् स्थाने, हि यतः—

द्विजोच्छिष्टैरिति— द्विजोच्छिष्टैः द्वाभ्याम् जन्म-संस्काराभ्याम् जायतेति द्विजस्तेषामुच्छिष्टैः भुक्तावशिष्टैः, अन्नैः = तण्डुलादिभिः, दिशः दिशति ददात्यवकाशमिति दिश् + क्विप्, आशाः प्रकुसुमितकाशाः विकसितकाशकुसुमाः, इव यथा, हविर्धूमैः हूयमानजनितधूमैः, सर्वे सकलाः, तरुगणाः पादपाः, हृतकुसुमगन्धाः अपहृतसुमनगन्धा इव जाता इति शेषः। व्याघ्राः शार्दूलाः, मृगैस्तुल्याः हरिणवत् अहिंसकस्वभावा जाता इत्यर्थः, गिरयः पर्वताश्च, वधनिभृतसिंहाः अहिंसककेसरिणः जाता इति शेषः। नृपे भूपे, दीक्षां प्राप्ते यज्ञावसरे तेन समम् सहैव जगदपि निखिलविश्वोऽपि, दीक्षितम् यज्ञार्थकृतसंकल्पमिव जातम्। अस्मिन् श्लोके हेतूत्प्रेक्षा अलङ्कारः, शिखरिणीवृत्तञ्च, तल्लक्षणं यथा— "रसैरीशैश्छिन्ना यमनसभलागः शिखरिणी इति ॥ ३ ॥

द्वितीयः— सम्यक् युक्तम्, आह कथयति, भवान् त्वम् इति।

पहला— इसमें, ब्राह्मणों द्वारा खाकर छोड़े गये बिखरे अवशेषों के कारण ऐसा लगता है मानो सभी ओर काश के फूल खिल उठे हों, अनेक पेड़ यज्ञ के धुँआ से धुमिल होकर अपने फूलों की सुगन्ध खो बैठे हैं, बाघ हरिण की तरह (पालतू) हो गये हैं, पर्वत की कन्दराओं में रहने वाले सिंहों ने हत्या करना बन्द कर दिया है, ऐसा लगता है कि महाराज के साथ सारा संसार ही यज्ञदीक्षित हो रहा है ॥ ३ ॥

दूसरा— आपने ठीक ही कहा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तृप्तोऽग्निर्हविषाऽमरोत्तममुखं तृप्ता द्विजेन्द्रा धनै-
स्तृप्ताः पक्षिगणाश्च गोगणयुतास्ते ते नराः सर्वशः।
हृष्टं सम्प्रति सर्वतो जगदिदं गर्जन्नृपे सद्गुणै-
रेवं लोकमुदारुरोह सकलं देवालयं तद् गुणैः ॥ ४ ॥

तृतीयः—इमेऽत्रभवन्तो द्विजातयः,

राज्ञां वेष्टनपट्टघृष्टचरणाः श्लाघ्यप्रभूतश्रवा
वार्द्धक्येऽप्यभिवर्धमाननियमाः स्वाध्यायशूरैर्मुखैः।

तृप्तोग्निरिति—अमराणाम् सुराणाम् उत्तमाः श्रेष्ठाः अमरोत्तमास्तेषाम् मुखम् आननम् अग्निः पावकः, हविषा हव्यद्रव्यगणेन तृप्तः संतुष्टः, द्विजेन्द्राः विप्राः, धनैः अर्थैः, तृप्ताः सन्तुष्टाः, गोगणयुताः गोभिः सहिताः ते ते पक्षिगणाः खगाः, यथाभिलषिताहारलाभेन सर्वशः सर्वात्मना तृप्ताः सन्तुष्टाः, ते ते सर्वे सकला नराः लोकाः अपि कल्याणकामनया तृप्ताः, सद्गुणैः प्रशस्तगुणसमूहैः नृपे राजनि, गर्जत् तारस्वरेण प्रतिपादयत्, इदम् एष, जगत् भुवनम् सम्प्रति अधुना, सर्वतः सर्वतोभावेन हृष्टम् प्रसन्नम्, तत् देवालयम् स्वर्गम्, लोकम् मर्त्य-लोकम्, सकलम् सम्पूर्णम्, एवम् अनेन प्रकारेण, उदारुरोह अतिक्रान्तवत्। शार्दूलविक्रीडितम् वृत्तम् तल्लक्षणम् यथा—'सूर्याश्वैर्मसजास्ततः स गुरवः शार्दूलविक्रीडितम्' ॥ इति ॥ ४ ॥

तृतीयः—इमे सन्मुखे उपस्थिताः, अत्रभवन्तः श्लाघनीयाः, द्विजातयः विप्राः—

राज्ञामिति—राज्ञाम् भूभृताम्, वेष्टनपट्टेन शिरस्केण घृष्टचरणाः प्रणाम-परिपाटीभिः स्पृष्टपादाः, श्लाघ्यः पूज्यः प्रभूतः पर्याप्तः श्रवः शास्त्रश्रवणम् येषां

हवि से देवताओं के मुख अग्निदेव संतुष्ट हो गये हैं, उत्कृष्ट ब्राह्मण सम्पत्ति से संतुष्ट हैं। पशुसमूह के साथ पक्षिगण भी प्रसन्न हो रहे हैं, सभी मानव भी प्रसन्न हैं इस प्रकार यह समस्त विश्व प्रसन्न दीख रहा है, महाराज के सद्गुणों से यह मर्त्यलोक स्वर्ग का भी अतिक्रमण कर रहा है।

तीसरा ये हैं वे पूजनीय ब्राह्मण।

जिनके चरण नृपतियों की पगड़ी के अनवरत स्पर्श से घिस गये हैं, जिनके

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

विप्रा यान्ति वयःप्रकर्षशिथिला यष्टित्रिपादक्रमाः
शिष्यस्कन्धनिवेशितान्वितकरा जीर्णा गजेन्द्रा इव ॥ ५ ॥

सर्वे—भो भो माणवकाः ! भो भो माणवकाः !! अनवसितेऽवभृथस्नाने न खलु तावदग्निरुत्सृष्टव्यो भवद्भिः ।

प्रथमः—हा धिग्, दर्शितमेव तावद् बटुचापलम् ।

ते तथोक्ताः, वार्धक्येऽपि वृद्धावस्थायामपि, अभिवर्धमाननियमाः रात्रिन्दिवमुपचीयमानव्रतादिविषयाः, स्वाध्यायशूरैः शास्त्राध्ययनतत्परैः मुखैः आननैः, वयःप्रकर्षशिथिलाः वृद्धत्वात् श्लथशरीराः, यष्टित्रिपादक्रमाः दण्डावलम्बनेन पादत्रयशालिनः, शिष्यस्य अन्तेवासिनः स्कन्धे अंसदेशे, निवेशितः आरोपितः अन्वितः समादृतः निजकरः हस्तः, यैः तादृशाः, जीर्णाः अतिवृद्धाः, गजेन्द्राः करिणः, इव यथा, विप्राः ब्राह्मणाः, यान्ति गच्छन्ति । अस्मिन् श्लोके उपमालङ्कारः, शार्दूलविक्रीडितं छन्दः ॥ ५ ॥

सर्वे—भो भो माणवकाः हे हे बटवः, अनवसिते असमाप्ते, अवभृथस्नाने यज्ञान्तबोधके सांस्कारिकमार्जने, न नहि, खलु निश्चयेन, तावदित्यवधारणे, अग्निः होमकुण्डस्थ वह्निः, उत्सृष्टव्यः इतस्ततः क्षेप्तव्यः, भवद्भिः श्रीमद्भिरिति भावः ।

प्रथमः—हा धिगिति कुत्सायाम्, दर्शितम् प्रकटीकृतम्, बटुचापलम् शिशुसुलभचाञ्चल्यम् ।

ज्ञान विस्तृत और प्रशंसनीय हैं, बुढ़ापे में भी जिनके व्रतादिनियम कम होने की अपेक्षा बढ़ ही रहे हैं, जिनके होठों पर सदैव वैदिक मंत्रों का ही उच्चारण होता रहता हैं, जिनके शरीर वृद्धावस्था के कारण शिथिल हैं और जो दण्ड के सहारे अपने शिष्यों के कंधों पर हाथ रखकर वृद्ध गजेन्द्र की तरह धीरे-धीरे जा रहे हैं ॥ ५ ॥

सभी ब्राह्मण—हे ब्रह्मचारि बालकगण, यज्ञान्तस्नान के समाप्त न होने तक आप लोग यज्ञशाला से अग्नि को बाहर न निकालें ।

पहला—छिः छिः इन लोगों ने अन्ततः लड़कपन कर ही डाला ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एषा भो ! दीप्तयूपा कनकमयभुजेवाभाति वसुधा
चैत्याग्निर्लौकिकाग्निं द्विज इव वृषलं पार्श्वे न सहते ।
नात्यर्थं प्लुष्टपृष्ठा हरितकुशतया वेदी परिवृता
प्राग्वंशं चैष धूमो गज इव नलिनीं फुल्लां प्रविशति ॥ ६ ॥

द्वितीयः—एवमेतद्,
अग्निरग्निभयादेष भीतैर्निर्वास्यते द्विजैः ।

व्याख्या—दीप्तयूपा दीप्तः प्रज्वलितः यूपः यज्ञदारुः यस्यां सा तादृशी वसुधा धरणी, कनकमयभुजा काञ्चननिर्मितभुजशालिनी, इव यथा, आभासि शोभते, यूपानां अग्निसम्पर्कवशात् प्रज्ज्वलतां बाहुवत् कनकवर्णतया चेयमुत्प्रेक्षा। चैत्याग्निः यज्ञवेदीगतो वह्निः, लौकिकाग्निम् सामान्यजनैः प्रज्ज्वालितं संस्काराभावात् लौकिकाग्निम्, द्विजः विप्रः, वृषलम् शूद्रम्, इव यथा, पार्श्वे निकटे, न नहि, सहते मृष्यति, हरितकुशतया अधः उत्पादितदर्भसमूहेन, परिवृता आच्छादिता, वेदी यज्ञभूमिः, नात्यर्थम् नाधिकम्, प्लुष्टपृष्ठा दग्धतलभूमिः, यथा च फुल्लां प्रस्फुटिताम्, नलिनीम् कमलिनीम्, गजः हस्ती विशति तथैव एषः पुरोवर्तमानः, धूमः, प्राग्वंशम् बहिर्वेदीम्, प्रविशति प्रवेशं करोतीत्यर्थः। अस्मिन् श्लोके उपमालङ्कारः सुवदनाछन्दश्च तद्यथा—सुवदना भ्रौ भ्नौ य्मौ लगावृषिस्वरतंवः ।

द्वितीयः—एवम् भवदुक्तम्, एवम् सत्यान्नापैति,

व्याख्या—एषः पुरोवर्त्तिनोऽयम्, अग्निः होमवह्निः, अग्निभयात्, सामान्यवह्निप्रकोपभयात्, भीतैः संत्रस्तैः, द्विजैः विप्रैः, निर्वास्यते दूरमपसार्यते,

---

यज्ञ मण्डप के खम्भों के जल उठने से ऐसा प्रतीत होता है कि मानो धरती की सुनहली बाँहे बाहर निकल आई हैं, यज्ञ कुण्ड की आग सामान्य आग को अपने पास उसी तरह फटकने नहीं दे रही है जैसे ब्राह्मण शूद्र को पास नहीं आने देते। हरे कुशों से आच्छादित होने के कारण यद्यपि यज्ञ की वेदी अधिक नहीं जल सकी है, फिर भी ये धूँए यज्ञशाला में उसी प्रकार प्रवेश कर रहे हैं जैसे कोई हाथी विकसित कमलवाले सरोवर, में प्रवेश कर रहा हो ॥६॥

दूसरा—ऐसा ही है।

डरे हुए ब्राह्मण सामान्य आग के डर से यज्ञाग्नि को उसी प्रकार यज्ञ-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कुले व्युत्क्रान्तचारित्रे ज्ञातिर्ज्ञातिभयादिव ॥ ७ ॥

तृतीयः—इदमपरं पश्यतां भवन्तौ,

शकटी च घृतापूर्णा सिच्यमानापि वारिणा।
नारीवोपरतापत्या बालस्नेहेन दह्यते ॥ ८ ॥

प्रथमः—सम्यग् भवानाह,

तत्र दृष्टान्तमाह व्युत्क्रान्तचारित्रे उल्लङ्घितसदाचारे, कुले वंशे, ज्ञातिभयात् दुष्टदायादत्रासात्, ज्ञातिः बान्धवः इव यथेति। यथा स्वजनेषु दुष्टभावं गतेषु तत्सम्पर्कपरिहारेच्छया ज्ञातिविशेषोऽन्यत्र निर्वास्यते तथैवायं होमाग्निलौकिकाग्निदौर्जन्यसम्पर्कापनिनीषया बहिर्नीयत इत्यर्थः। अस्मिन् श्लोके उपमालङ्कारः, अनुष्टुप् छन्दश्चेति ॥ ७ ॥

तृतीयः—इयम् एषा, अपरम् अन्यत्, पश्यताम् दृश्यताम्, भवन्तौ श्रीमन्ताविति।

व्याख्या—घृतापूर्णा आज्येन भृता, शकटी शकटिका यानम् वा, उपरतापत्या मृतवत्सा, नारी स्त्री, इव यथा वारिणा सलिलेन, सिच्यमानाऽपि सेचनक्रियासम्पन्नापि, बालस्नेहेन उपरतापत्यप्रेम्णा, दह्यते ज्वलति ॥ ८ ॥

प्रथमः—सम्यक् सत्यम्, भवान् त्वम्, आह।

शाला से हटा रहे हैं जैसे एक चरित्रहीन या दुराचारी के भय से कोई अपने आत्मीय को अलग हटा लेते हैं ॥ ७ ॥

तीसरा—और आप लोग यह दूसरा भी तो देखिए—

पानी का छिड़काव होने के बावजूद यज्ञार्थ घी ढोने वाली यह गाड़ी कुछ अवशिष्ट घी के कारण अभी भी उसी प्रकार जल रही है जैसे कोई मृतवत्सा नारी आँसू से तर आँखों के रहने पर भी भीतर ही भीतर मृतबालक के स्नेह से जलती रहती है ॥ ८ ॥

पहला—आपने ठीक ही कहा—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एतां चक्रधरस्य धर्मशकटीं दग्धुं समभ्युद्यतो
दर्भे शुष्यति नीलशाद्वलतया वह्निः शनैर्वामनः।
वातेनाकुलितः शिखापरिगतश्चक्रं क्रमेणागतो
नेमीमण्डलमण्डलीकृतवपुः सूर्यायते पावकः ॥ ९ ॥

द्वितीयः—इदमपरं पश्यतां भवन्तौ,

वल्मीकमूलाद् दहनेन भीतास्तत्कोटरैः पञ्च समं भुजङ्गाः।

व्याख्या—वह्निः अग्निः, नीलः श्यामवर्णः, शाद्वलः शादाः सन्त्यत्र, वलच्, तृणयुक्तः तदाश्रयतया, वामनः खर्वः, दर्भे कुशे, शनैः मन्दं मन्दं शुष्यति शुष्को भवति, चक्रधरस्य नृपदुर्योधनस्य, एताम्, पुरोदृश्यमानाम्, धर्मशकटीम् हव्यवाहकम् यानम्, दग्धुम् होतुम्, समभ्युद्यतः उद्यतः सन्, वातेन तात्कालिक-वायुना, आकुलितः आन्दोलितः, शिखापरिगतः सर्वतोभावेन ज्वालाजालव्याप्तः, क्रमेण क्रमशः, चक्रम् यानाङ्गम् चक्रभूतमरसंज्ञकम्, आगतः प्राप्तः सन्, पावकः ज्वलनः, नेमीमण्डलमण्डलीकृतवपुः नेमीमण्डले मण्डलीकृतशरीरः चक्राकारेण व्याप्नुवन् पावकः अग्निः, सूर्यायते सूर्यः दिवाकरः तद्वत् आचरति अर्थात् गोल-वपुर्भवतीति शेषः। अस्मिन्श्लोके उपमालङ्कारः शार्दूलविक्रीडितम् वृत्तम् ॥९॥

द्वितीयः—एवम् एतत्, अपरम् अन्यत्, पश्यताम्, भवन्तौ श्रीमन्तौ—

व्याख्या—पञ्च=वाणसंज्ञकाः, भुजङ्गाः सर्पाः, दहनेन अग्निप्रकोपोत्पन्न-दाहेन हेतुना, भीताः = संत्रस्ताः सन्तः, बल्मीकमूलात् = वल्मीकाधोभागात्, तत्कोटरैः, तस्य वृक्षस्य कोटरैः, समम् निर्गताः बहिरागताः, यथा विपन्नस्य मृतस्य

यह आग पहले हरित दूबों से आच्छादित भूमि पर वामन रूप में थी, किन्तु जैसे-जैसे घास सूखती जाती है यह आग भी फैलती जा रही है। बढ़ते-बढ़ते अब यह महाराज की हव्यवाही गाड़ी तक पहुँच चुकी है। तीव्र वायु की प्रेरणा से अब यह पहिये को छू रही है। रथचक्र के किनारे-किनारे आग पकड़ लेने के कारण इसकी आकृति अब सूर्य की तरह गोल हो रही है ॥ ९ ॥

दूसरा—आप इधर भी तो देखें—

सामने पेड़ के तने के खोखले भाग के नीचे बाँबी से आग में जलजाने के डर से पाँच साँप ठीक उसी तरह एक साथ निकल रहे हैं जैसे मृतमानव की

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

समं विपन्नस्य नरस्य देहाद् विनिःसृताः पञ्च यथेन्द्रियाणि ॥१०॥

तृतीयः—इदमपरं पश्यतां भवन्तौ,

दह्यमानस्य वृक्षस्य सानिलेन मखाग्निना ।
कोटरान्तरदेहस्थाः खगाः प्राणा इवोद्गताः ॥ ११ ॥

प्रथमः—एवमेतत्,

शुष्केणैकेन वृक्षेण वनं पुष्पितपादपम् ।
कुलं चारित्रहीनेन पुरुषेणेव दह्यते ॥ १२ ॥

नरस्य पुरुषस्य, देहात् शरीरात्, विनिःसृताः बहिर्निगताः, पञ्चेन्द्रियाणि प्राणादि-पञ्चवायवः, यथा इव, प्रतीयन्ते । अस्मिन् श्लोके उपमालङ्कारः ॥ १० ॥

तृतीयः—इदम् पुरोदृश्यमानम्, अपरम् अन्यत्, भवन्तौ युवाम्, पश्यताम्

व्याख्या—सानिलेन पवनयुतेन, मखाग्निना यज्ञवह्निना; दह्यमानस्य, ज्वलितस्य, वृक्षस्य तरोः, कोटरान्तरदेहस्थाः, कोटरान्तरभिन्नदेहस्थाः शरीरस्थाः, खगाः पक्षिणः, प्राणाः प्राणवायवः, इव यथा उद्गताः बहिर्निगताः ॥ ११ ॥

प्रथमः—एवम् इत्थम्, एतत् अयम्,

व्याख्या—पुष्पितपादपम् विकसितसकलकुसुमतरुवनम् अरण्यम् उद्यानम्वा, एकेन अद्वितीयेन, शुष्केण, रसरहितेन, वृक्षेण पादपेन, चरित्रहीनेन दुश्चरित्रेण, पुरुषेण व्यक्तिविशेषेण, कुलम्, सकलं वंशम्, इव यथा, दह्यते । उपमालङ्कारः ॥ १२ ॥

देह से प्राणादिक पञ्चेन्द्रियाँ एक साथ निकल जाती है ॥ १० ॥

तीसरा—आप लोग यह भी देखें—

वायुप्रेरित यज्ञाग्नि से जलने वाले तरुकोटरों से चिड़ियाँ निकलकर उसी प्रकार उड़ रही हैं, जैसे मृत्यु के समय मनुष्य की देह से प्राण निकल रहे हों ॥ ११ ॥

पहला—ठीक है,

जैसे एक चरित्रहीन व्यक्ति अपने कुकृत्य से सम्पूर्ण कुल को कलंकित-कर देता है, उसी प्रकार जंगल का एक सूखावृक्ष फल फूल से भरे इस हरे भरे जंगल को जला रहा है ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

द्वितीयः—

एते वातोद्धता वंशा दह्यमाना मखाग्निना ।
भाग्यानीव मनुष्याणामुन्नमन्ति नमन्ति च ॥ १३ ॥

तृतीयः—सम्यग् भवानाह,

लतया सक्तया स्कन्धे शुष्कया वेष्टितस्तरुः ।
निविष्टो दुष्कुले साधुः स्त्रीदोषेणेव दह्यते ॥ १४ ॥

प्रथमः—इदमपरं पश्यतां भवन्तौ,

व्याख्या—वातोद्धता वायुना प्रचालिताः, मखाग्निना मखवह्निना, एते पुरोवस्थिताः, दह्यमाना ज्वल्यमानाः, वंशाः वेणवः, मनुष्याणाम् नराणाम्, भाग्यानि अदृष्टानि, इव यथा, नमन्ति अधो गच्छन्ति, च पुनः, उन्नमन्ति ऊर्ध्वं गच्छन्तीति । उपमालङ्कारः ।

तृतीयः—सम्यक् सुष्ठु भवान् त्वम् आह ।

व्याख्या—स्कन्धे तरुशाखामूले, सक्तया संलग्नेन, शुष्कया रसरहितया, लतया वल्लया, वेष्टितः परिवृत्तः, तरुः वृक्षः, दुष्कुले चरित्रहीनवंशे, निविष्टः = वर्त्तमानः, साधुः सुपुरुषः, स्त्रीदोषेण नारीकृतेनापराधेन, इव यथा, दह्यते भस्मीभवति विनष्टो भवति वेति । यथा कोऽपि सुपुरुषः स्वयं गुणिनोऽपि दुष्टवनिता संसर्गेण दुरवस्थां याति तथैवायं वृक्षः स्वकीयसरसत्वेऽपि शुष्कलतासम्पर्कतः एव दाहाय जायते । अस्मिन् श्लोके उपमालङ्कारः ॥ १४ ॥

प्रथमः—इदम् एतत्, अपरम्, पश्यताम् अवलोकयताम् भवन्तौ ताविति,

दूसरा—यज्ञ की आग से जलते हुए ये बाँस हवा की झोंक में मनुष्य के भाग्य की तरह कभी नीचे और कभी ऊँचे उठ रहे हैं ॥ १३ ॥

तीसरा—आपने ठीक ही कहा है ।

दुराचारी वंश में प्रविष्ट जैसे कोई भला आदमी किसी नारी के सम्पर्कजन्य दोष से दूषित हो जाता है ठीक उसी प्रकार यह वृक्ष अपनी डालों से लिपटी लताओं के दोष से जल रहा है ॥ १४ ॥

पहला—और आप यह भी देखें ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वनं सवृक्षक्षुपगुल्ममेतत् प्रकाममाहारमिवोपभुज्य ।
कुशानुसारेण हुताशनोऽसौ नदीमुपस्प्रष्टुमिवावतीर्णः ॥ १५ ॥

द्वितीयः – एष एषः,

गतो वृक्षाद् वृक्षं विततकुशचीरेण दहनः
कदल्या विप्लुष्टं पतति परिणामादिव फलम् ।
असौ चाग्रे तालो मधुपटलचक्रेण महता
चिरं मूले दग्धः परशुरिव रुद्रस्य पतति ॥ १६ ॥

व्याख्या—असौ एषः, हुताशनः वह्निः, सवृक्षक्षुपगुल्मम्, वृक्षैः पादपैः, क्षुपैः कण्टकाकीर्णलघुपादपैः, गुल्मैः स्तम्बैश्च सहितम्, एतत् इदम्, वनम् अरण्यम्, प्रकामम् यथेच्छम्, आहारम् भोजनम्, इव यथा, उपभुज्य भक्षयित्वा, कुशानुसारेण सरितातटोत्पन्नदर्भमार्गाश्रयेण, नदीम् सरितम्, उपस्प्रष्टुम् आचमनम् कर्त्तुमिव, अवतीर्णः नदीमतरति । अस्मिन् श्लोके उपस्प्रष्टुमिवेति हेतूत्प्रेक्षाऽलङ्कारः, उपेन्द्रवज्रा वृत्तम् ॥ १५ ॥

द्वितीयः—एष एषः = असौ वह्निः—

व्याख्या—असौ एषः, अग्रे सन्मुखे, दहनः पावकः, वृक्षात् एकस्मात्पादपात्, वृक्षम्, पादपान्तरम् विततकुशचीरेण आस्तीर्णदर्भवस्त्राद्विद्वारा, गतः यातः कदल्याः रम्भायाः, फलम् कदलीवृक्षस्य फलम्, विप्लुष्टम् दग्धम् सत् परिणामात् फलपरिपाकात्, इव यथा पतति अधोगच्छति, चिरम् दीर्घसमयात् मूलो वृक्षस्यारम्भभागे दग्धः सन् महता विस्तृतेन, मधुपटलचक्रेण मधुच्छत्रेणयुक्तः, तालः तालनामकपादपविशेषः, रुद्रस्य भगवतः शङ्करस्य परशुः कुठारः

यह आग इस वन के पेड़ पौधे झाड़ी और लताओं को जलाकर तटवर्ती कुश के सहारे नदी में उतर रहा है, मानो कोई यथेच्छ भोजन करने के बाद आचमन करने के लिए नदी के कछार में उतर रहा हो ॥ १५ ॥

और यह भी,

फैली हुई यह आग कुश और चीरों के सहारे एक पेड़ से दूसरे पेड़ तक पहुँच रही है। केले के ये फल झुलस कर पके फल की तरह धरती पर गिर रहे है। मधु के छत्ते वाले ये ताड़के पेड़ जिनकी जड़ में बहुत देर से आग लगी है–

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तृतीयः—हन्त सत्पुरुषरोष इव प्रशान्तो भगवान् हुताशनः ।
एतदग्नेर्बलं नष्टमिन्धनानां परिक्षयात् ।
दानशक्तिरिवार्यस्य विभवानां परिक्षयात् ॥ १७ ॥

प्रथमः—
स्रुग्भाण्डमरणीं दर्भानुपभुङ्क्ते हुताशनः ।
व्यसनित्वान्नरः क्षीणः परिच्छदमिवात्मनः ॥ १८ ॥

इव यथा पतति धरण्यामापतति । परशुरिवेत्युपमालङ्कार, शिखरिणी वृत्तञ्चेति ॥ १६ ॥

तृतीयः—हन्त, इति हर्षे, सत्पुरुषरोषः सुपुरुषस्यक्रोधः इव यथा, प्रशान्तः क्षीणज्वालोऽभूत्, भगवान्, श्रीमान्, हुताशनः वह्निः इति ।

व्याख्या—अग्नेः याज्ञिकहुताशनस्य, एतत् पुरोवर्त्तिनम्, बलम् सामर्थ्यम्, इन्धनानाम्, दहनाय समर्पितकाष्ठखण्डानाम्, परिक्षयात् समाप्तेः, आर्यस्य श्रेष्ठजनस्य, विभवानाम् ऐश्वर्यानाम् परिक्षयात् विनष्टात्, दानशक्तिः दानसामर्थ्यम्, इव यथा, नष्टम् विनष्टमिव । यथा कस्यापि सुपुरुषस्य दानशक्ति विनष्टेषु विभवेषु समाप्तिं गच्छति, तेनैव प्रकारेणाग्नेः दाहसामर्थ्यरूपविभवपरिक्षयात् अवसितम् जातमित्यर्थः । उपमालङ्कारः ॥ १७ ॥

व्याख्या—व्यसनित्वात् आसवपानाक्षक्रीडादिषु प्रवृत्तत्वात् क्षीणः शक्तिहीनः, नरः जनः, आत्मनः स्वस्य, परिच्छदम् वस्त्राभूषणम् इव यथा, हुताशनः यज्ञाग्निः अल्पज्वालः सन्, स्रुक् दारुनिर्मितहोमसाधनम्, भाण्डम् घृतपात्रम्, अरणीम् मन्थनकाष्ठम् च सकलमपि होमपरिकरं दर्भान् कुशान् च उपभुंक्ते भक्षण-

---

शिव के परशु की तरह गिर रहे हैं ॥ १६ ॥

तीसरा— अहा, भद्र पुरुष के क्रोध की तरह अग्निदेव शान्त हो गये ।

सम्पत्ति नष्ट हो जाने पर जैसे किसी दानी की दानशक्ति नष्ट हो जाती है, उसी प्रकार यज्ञीय सामग्रियों के जल जाने पर अग्नि देव का भी बल समाप्त हो रहा है ॥ १७ ॥

पहला— जैसे कोई जुआरी अपने दुर्व्यसन के कारण निर्धन होकर अपना वस्त्राभूषण भी बेचकर खा जाता है, उसी तरह अग्निदेव को भी जब जलाने के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

द्वितीयः—

अवनतविटपो नदीपलाशः पवनवशाच्चलितैकपर्णहस्तः ।
दवदहनविपन्नजीवितानामुदकमिवैष करोति पादपानाम् ॥ १९ ॥

तृतीयः—तदागम्यताम् । वयमपि तावदुपस्पृशामः ।

उभौ—बाढम् ।

(सर्वे उपस्पृश्य)

प्रथमः—अये ! अयमत्रभवता कुरुराजो दुर्योधनो भीष्मद्रोणपुरःसरसर्वराज-

---

ङ्करोतीत्यर्थः । यथादुर्व्यसनी पुरुषः समाप्तविभवः सन् निजवस्त्राभूषणादिकमपि उपभुंक्ते तद्वदेवायम् होमवह्निः स्रुग्भाण्डारणिदर्भादीन् होमसाधनान्युपभुंक्ते ॥ उपमालङ्कारः, अनुष्टुप् छन्दश्च ॥ १८ ॥

व्याख्या—अवनतविटपः अधोनतवृक्षः, पवनवशात् वायुवेगात् चलितैकपर्णहस्तः चञ्चलीभूतैकपत्ररूपकरः, एषः असौ, नदीपलाशः सरित्तटगतपलाशः, दवदहनविपन्नजीवितानाम् वनाग्निगतासूनाम् पादपानाम् वृक्षाणाम् उदकम् प्रेतोदकदानम् इव यथा करोति विदधाति ॥ १९ ॥

तृतीयः—तदा तर्हि, आगम्यताम् इहागच्छ । वयमपि तावदित्यवधारणे, उपस्पृशामः आचमनं कुर्मः ।

उभौ—बाढम्, स्वीकृतम्, तव कथनमित्याशयः ।

(सर्वे सकलाः जनाः उपस्पृश्य आचम्य)

प्रथमः—अये इति हर्षे, अयम् एषः, अत्रभवता श्रीमता, कुरुराजः कुरुदेशविशेषस्य सम्राट्, दुर्योधनः धृतराष्ट्रसुतः, भीष्मद्रोणपुरःसरसर्वराजमण्डलेन

लिए कुछ शेष नहीं बचा तो स्रुक्, अरणी और कुशों को ही जला रहे हैं ।

दूसरा—नदी के किनारे पर खड़े पलाश पेड़ की झुकी डाली वायु वेग से पानी में हिल रही है, इसे देखने से लगता है मानो आग में झुलसकर मरने वाले अपने वृक्ष बन्धुओं को यह पत्ररूपी हाथ से जलाञ्जलि दे रही हो ॥ १९ ॥

तीसरा—तो फिर आइए हमलोग भी आचमन कर लें ।

दोनों—हाँ, ठीक ही तो है ।

(सभी आचमन करके)

पहला—वाह, सम्राट् दुर्योधन पितामह भीष्म, आचार्य द्रोण एवं सम्पूर्ण

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मण्डलेनाऽनुगम्यमान इत एवाभिवर्तते । इमे हि,

यज्ञेन भोजय, महीं जय विक्रमेण,
रोषं परित्यज, भव स्वजने दयावान् ।
इत्येवमागतकथामधुरं ब्रुवन्तः
कुर्वन्ति पाण्डवपरिग्रहमेव पौराः ॥ २० ॥

तदागम्यताम् । वयमपि तावत् कुरुराजं सम्भावयामः ।

उभौ—बाढम् ।

आचार्यपितामहप्रभृतिराजन्यकेन, अनुगम्यमानः अनुसृतः, इत एव अस्मिन्नेव स्थाने अभिवर्त्तते समागच्छति । इमे हि एते जनाः—

व्याख्या—यज्ञेन मखेन, भोजय जनान् तर्पय, विक्रमेण पराक्रमेण, महीम्, सकलां पृथिवीम्, जय विजयंकुरु, रोषम् कोपम्, परित्यज जहिहि स्वजने आत्मीयजने, दयावान्, कृपायुक्तो भव, इत्येवम् इत्थंरूपेण, आगतकथा-मधुरम् स्वागतवचनरूपं प्रियकथनम्, ब्रुवन्तः कथयन्तः, पौराः पुरवासिनः जनाः, पाण्डवपरिग्रहम् युधिष्ठिरादिपाण्डवपक्षपातम्, एवेति निश्चयेन कुर्वन्ति । वसन्ततिलकावृत्तम् ॥ २० ॥

तत् तस्मात्, आगम्यताम्, समागच्छ, वयम् दर्शकाः, अपि, तावदित्यव-धारणे, कुरुराजम् दुर्योधनम्, सम्भावयामः समुचितसत्कारेणाप्रियामहे ।

उभौ—बाढम् स्वीकृतम् ।

राजमण्डल के साथ इधर ही तो आ रहे हैं । ये लोग—

यज्ञ के माध्यम से भोजन देकर प्राणियों को सन्तुष्ट करो, क्रोध छोड़ो स्वजनों पर कृपा करो, अपने पराक्रम से सम्पूर्ण धरती को जीतो–इस तरह समयानुकूल श्रुतिसुखद बातें लोग कह रहे हैं, जिससे पाण्डवों के प्रति उनका सम्मान अर्थात् पक्षपात ही प्रकट हो रहा है ॥ २० ॥

अतः आइये, हमलोग भी महराज दुर्योधन के प्रति अपना सम्मान प्रकट करें ।

दोनों—बहुत अच्छा ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सर्वे—जयतु भवान् जयतु ।

(निष्क्रान्ताः सर्वे)

विष्कम्भकः ।

(ततः प्रविशतो भीष्मद्रोणौ)

द्रोणः—धर्ममालम्बमानेन दुर्योधनेनाऽहमेवानुगृहीतो नाम । कुतः,

अतीत्य बन्धूनवलङ्घ्य मित्राण्याचार्यमागच्छति शिष्यदोषः ।
बालं ह्यपत्यं गुरवे प्रदातुर्नैवापराधोऽस्ति पितुर्न मातुः ॥२१॥

सर्वे—जयतु भवान् जयतु सर्वतोभावेन श्रीमान् विजयताम् ।

(निष्क्रान्ताः बहिरागताः, सर्वे सकलाजनाः)

विष्कम्भकः—तल्लक्षणं दशरूपके—'वृत्तवर्तिष्यमाणानां कथांशानां निदर्शकः । संक्षिप्तार्थस्तु विष्कम्भो मध्यपात्रप्रयोजित इति ।'

(ततः तत्पश्चात् प्रविशतः प्रवेशं कुरुतः, भीष्मद्रोणौ पितामहाचार्यौ)

द्रोणः—धर्ममालम्बमानेन धर्मस्याचरणं क्रियमाणेन, दुर्योधनेन कुरुसम्राजा, अहम् आचार्यद्रोणः, अनुगृहीतः कृपान्वितः, नाम इत्यव्यये । कुतः कस्माद्धेतोः—

व्याख्या—शिष्यदोषः उपदेश्यजने उपस्थिते पापाचरणादिरूपोऽपराधः बन्धून् स्वजनान्, अतीत्य अतिक्रम्य, मित्राणि सुहृदश्च, अवलङ्घ्य उल्लङ्घनम् कृत्वा, आचार्यम् गुरुम् आगच्छति निदधाति । शिष्यदोषेण गुरोरेव निन्दा भवति । बालम् शिशुम्, अपत्यम्, सन्तन्तिम् गुरवे आचार्याय, प्रदातुः समर्पयतः, पितुः जनकस्य, मातुः जनन्याश्च, अपराधः दोषः; न नहि, अस्ति भवति । यतोहि

सभी—महाराज की जय हो ।

(सबका प्रस्थान)

विष्कम्भक

(भीष्म तथा द्रोण का प्रवेश)

द्रोण—इस धर्म कार्य का अनुष्ठान करके वस्तुतः दुर्योधन ने मेरा ही सम्मान बढ़ाया है । क्योंकि—

शिष्यों के द्वारा किये गये अपराध गुरु के गले ही मढ़ा जाता है । इस दोष का हकदार न कोई बन्धुबांधव होता है और न मित्र-मण्डल ही । माँ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भीष्मः—एष दुर्योधनः,

अवाप्य रूप्यग्रहणात् समुच्छ्रयं रणप्रियत्वादयशो निपीतवान्।
निषेव्य धर्मं सुकृतस्य भाजनं स एव रूपेण चिरस्य शोभते ॥२२॥

(ततः प्रविशति दुर्योधनः कर्णः शकुनिश्च)

दुर्योधनः—कृतश्रद्धो ह्यात्मा वहति परितोषं गुरुजनो
जगद् विश्वस्तं मे निवसति गुणो नष्टमयशः।

शिष्याणाम् कृते गुरुः प्राणदाशक्तिरिवविद्यते। यथा नेत्रघ्राणाद्यङ्गानि प्राणशक्त्युपलब्धिमन्तरेण न स्वस्वक्रियायां व्यापृतानि भवितुम् प्रभवन्ति तथैव गुरुं विना लोके न स्वविकासं कर्तुमर्हति शिष्यः कदापि। अस्मिन् श्लोके उपजातिवृत्तम् ॥ २१ ॥

भीष्मः—एषः अयम्; दुर्योधनः कुरुनृपतिः।

व्याख्या—रूप्यग्रहणात् राजभ्यः कररूपस्य धनस्य संग्रहणात्, समुच्छ्रयम् सौभाग्यम्, अवाप्य प्राप्य, रणप्रियत्वात् संग्ररस्नेहात्, अयशः अपकीर्त्तिम्, निपीतवान् निःशेषं पानं कृतवान्, धर्मम् यज्ञादिकम् शुभकर्म; निषेव्य अनुष्ठानं कृत्वा, सुकृतस्य=पुण्यस्य, भाजनम् पात्रम् सन्, रूपेण वेषेण, सः असौ एव दुर्योधनः चिरस्य चिरकालपर्यन्तस्य, शोभते प्रकाशते। अस्मिन् श्लोके वंशस्थवृत्तम्।

(ततः तत्पश्चात्, प्रविशति प्रवेशं करोति, दुर्योधनः कुरुनृपतिः, कर्णः कुन्तीसुतः, शकुनिदुर्योधनस्य मातुलश्च)

व्याख्या—आत्मा मदीयात्मा, कृतश्रद्धः विहितयागानुष्ठानः, गुरुजनः पूज्यवर्गः, परितोषम् सन्तोषम्, वहति धारयन्ति, जगत् अखिलविश्वम्, विश्वस्तम् आश्वस्तम्, मे मम, गुणः दयादाक्षिण्यादिः, निवसति निवासं करोति, अयशः

बाप तो बाल्यावस्था में ही सन्तति को गुरु के हाथ सौंपकर अपने दायित्व से मुक्त हो जाते हैं ॥ २१ ॥

भीष्म—यह दुर्योधन अधीनस्थ राजाओं से कर ग्रहण कर सम्पन्न बना हुआ है, रणप्रिय होकर कलङ्कित होने पर भी यागादि धार्मिक अनुष्ठान करने के कारण चिरकाल से बहुत भला लग रहा है ॥ २२ ॥

(इसके बाद दुर्योधन, कर्ण और शकुनी का प्रवेश)

दुर्योध—आज मेरी आत्मा श्रद्धावनत हो रही है, गुरुजनों का मैं कृपाभाजन बन गया हूँ, संसार मुझपर विश्वास कर रहा है, दयादाक्षिण्यादि गुणों

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मृतैः प्राप्यः स्वर्गो यदिह कथयत्येतदनृतं
परोक्षो न स्वर्गो बहुगुणमिहैवैष फलति ॥ २३ ॥

कर्णः—गान्धारीमातः ! न्यायेनागतमर्थमतिसृजता न्याय्यमेव भवतः कृतम् । कुतः,

बाणाधीना क्षत्रियाणां समृद्धिः पुत्रापेक्षी वञ्च्यते सन्निधाता ।
विप्रोत्सङ्गे वित्तमावर्ज्य सर्वं राज्ञा देयं चापमात्रं सुतेभ्यः ॥ २४ ॥

अपकीर्त्तिः, नष्टम् समाप्तम्, स्वर्गः नाकः, मृतैः मरणानन्तरम्, प्राप्यः लभ्यः इति, यदिह संसारे जनः कथयति वदति, एतत् लोककथनम् अनृतम् असत्यम्, एषः अमरलोकः, परोक्षः अक्ष्णः परमिति, बहुगुणम् बहुप्रकारकसुखम्, इहैव अस्मिन्नेव संसारे, फलति फलदायको भवति। शिखरिणी छन्दः ॥ २३ ॥

कर्णः—गान्धारीमातः गान्धारी माता यस्य स तत्सम्बोधने, हे दुर्योधन, न्यायेन नीतिसंगतेन आगतम् उपार्जितम्, अर्थम् धनम्, अतिसृजता अतिशयेन विशेषरूपेण सृजता नियोजयता, भवतः श्रीमतः, न्याय्यमेव समुचितमेव, कृतम् विहितम् । कुतः कस्मात् कारणात्—

व्याख्या— क्षत्रियाणाम् राजपुत्राणाम्, समृद्धिः सम्पत्तिः बाणाधीना बाणेन प्राप्ता अर्थात् राजानः युद्धार्जितधनाः भवन्ति, पुत्रापेक्षी पुत्राणाङ्कृते, सन्निधाता धनसंचयिता, वञ्च्यते अनुचितम् करोति, विप्रोत्संगे द्विजक्रोड़े, आवर्ज्य धनप्रदानम् कृत्वा, राज्ञा नृपेण, सुतेभ्यः पुत्रेभ्यः केवलम्, चापमात्रम् केवलं धनुरेव, देयमिति दातुंयोग्यम् इत्याशयः । नृपेण सकलं धनम् ब्राह्मणेभ्यः देयम् पुत्रार्थे न

के निवास होने के कारण मेरे सारे कलङ्क धुल से गये हैं, 'स्वर्ग मरने पर मिलता है' लोगों का यह कथन असत्य सा लगता है, क्योंकि जीते जी ही मुझे बहुविध स्वर्गसुख उपलब्ध है ॥ २३ ॥

हे दुर्योधन, न्यायोपार्जित सम्पत्ति का आपने दानकर ठीक ही किया है। क्योंकि—

क्षत्रियों की सम्पत्ति उसके बाहुबल पर निर्भर करती है जो क्षत्रिय पुत्र के लिए सम्पत्ति संचित करता है वह ठगा ही जाता है। उसके लिए उचित तो

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शकुनिः—सम्यगाह गङ्गोपस्पर्शनाद् धौतकल्मषाङ्गोऽङ्गराजः ।

कर्णः—

इक्ष्वाकु-शर्य्याति-ययाति-राम-मान्धातृ-नाभाग-नृगाऽम्बरीषाः ।
एते सकोशाः पुरुषाः सराष्ट्रा नष्टाः शरीरैः क्रतुभिर्धरन्ते ॥ २५ ॥

किञ्चित् संयोज्यम् प्रत्युत् तमर्थे केवलम् चापम् देयम् । यतो हि राजपुत्राः स्वबाहुबलेन धनिनो भविष्यन्ति अस्मिन् श्लोके शालिनीवृत्तम् ॥ २४ ॥

शकुनिः—सम्यक् युक्तिसंगतम्, आह कथयति, गङ्गोपस्पर्शनात् गंगायां कृतस्नानात्, धौतकल्मषः प्रक्षालितपापः, अङ्गः शरीरम्, अङ्गराजः अङ्गदेशाधिपतिः कर्णः,

व्याख्या—इक्ष्वाकु-शर्याति-ययाति-राम-मान्धातृ-नाभाग-नृगाम्बरीषाः, एते उल्लिखिता इक्ष्वाकुप्रभृतयः अष्टसंख्यकाः नृपतयः, सकोशाः धनागरैः सहिताः, सराष्ट्राः आत्माधीनेन राज्येन सहिताः, पुरुषाः जनाः, शरीरैः स्वदेहैः, नष्टाः विनाशम् गताः, क्रतुभिः यज्ञैः, तु इत्यवधारणे, धरन्ते जीवन्तीति शेषः । अयमाशयः-जीवाः स्वकीये जीवने यादृशं कर्ममाचरन्ति ते भाविनि काले तादृशमेव जीवनमपि लप्स्यन्ते । सन्ति कर्माण्येव जीवनघटकानि । जीवनं ह्युत्तमं सर्वविधतया समुन्नतञ्च कर्तुं सततं शुभान्येव कर्माणि कर्त्तव्यानि । यज्ञात् ऋते न यशः शरीरम् तस्माद्यज्ञो यत्नेन करणीयः । यज्ञकर्त्ता जीवो विनश्वरे शरीरे नष्टे सति कीर्तिस्वरूपम् सच्छरीरमश्नुते । इक्ष्वाकुप्रभृतीनाम् कोशम् देशम् शरीरञ्च कालातिपाताद् गतमेव । केवलम् तेषां यशःकायेनास्तिमरणभयमिति । इन्द्रवज्रावृत्तम् ॥ २५ ॥

यह है कि वह सारा धन ब्राह्मणों को दानकर पुत्र के लिए चापमात्र छोड़ जाय ॥ २४ ॥

शकुनि—गङ्गा में स्नान करने के कारण प्रक्षालित पापवाले अङ्गराज कर्ण ने ठीक ही कहा है ।

कर्ण—महाराज इक्ष्वाकु, शर्याति, ययाति, भगवान् राम, मान्धाता, नाभाग, नृग, तथा अम्बरीष प्रभृति सारे नृपतियों के धनागार एवं राज्य इनकी देह के साथ ही विनष्ट हो गये, केवल कीर्त्तिशरीर से वे अब भी जीवित हैं ॥२५॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सर्वे—गान्धारीमात ! यज्ञसमाप्त्या दिष्ट्या भवान् वर्धते ।

दुर्योधनः—अनुगृहीतोऽस्मि । भो आचार्य ! अभिवादये ।

द्रोणः—एह्येहि पुत्र ! अयमक्रमः ।

दुर्योधनः—अथ कः क्रमः ?

द्रोणः—किं न पश्यति भवान् ?

दैवतं मानुषीभूतमेष तावन्नमस्यताम् ।

सर्वे—गान्धारीमातः, हे दुर्योधन, यज्ञसमाप्त्या यज्ञानुष्ठानम् प्रशस्यम् तव यातम्, दिष्ट्या सौभाग्येन, भवान् त्वम्, वर्धसे सौभाग्यभाजनं भवसि ।

दुर्योधनः—अनुगृहीतः कृपान्वितः अस्मि भवामि, भो आचार्य हे गुरुदेव, अभिवादये ।

द्रोणः—एह्येहि समागम्यताम् द्विरुक्तिरत्रादरव्यञ्जनाय । अयम् एषः, प्रणामः नतिः अक्रमः न क्रमप्राप्तः । यतो हि मदपेक्षया प्रथमं भीष्मः प्रणम्यस्ततोऽहमित्याशयः ।

दुर्योधनः—अथ इति प्रश्नारम्भे, कः क्रमः प्रणामस्योचितः क्रमः किमिति दुर्योधनस्याशयः ।

द्रोणः—किमिति प्रश्ने, भवान् दुर्योधनः, न नहि, पश्यति अवलोकयति ?

व्याख्या—एषः असौ भीष्मपितामहः, मानुषीभूतम् मनुष्यरूपेणावतीर्णम्, दैवतम् देवमूर्त्तिम्, तावत् प्रथमम् नमस्यताम् प्रणम्यताम्, भीष्मम्

सभी—हे दुर्योधन, सौभाग्य से आप का यज्ञ सम्पन्न हो गया और आप अभ्युदय के भाजन बन रहे हैं ।

दुर्योधन—आप की कृपा है गुरुदेव, मैं आपको प्रणाम करता हूँ ।

द्रोण—आओ आओ वत्स, प्रणाम करने का यह ढंग तो ठीक नहीं है ।

दुर्योधन—तो फिर उचित क्रम क्या होगा ?

द्रोण—क्या तुम देखते नहीं ?

मनुष्य रूप में अवतीर्ण देवतुल्य अपने पितामह भीष्म को सर्वप्रथम प्रणाम करो । इन्हें छोड़कर तुमने जो पहले मुझे प्रणाम किया है तुम्हारे इस

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अहं नाचरणं मन्ये भीष्ममुत्क्रम्य वन्दितुम् ॥ २६ ॥

भीष्मः—मा मा भवानेवम् । बहुभिः कारणैरपकृष्टोऽहं भवतः । कुतः,

अहं हि मात्रा जनितो भवान् स्वयं ममायुधं वृत्तिरपह्नवस्तव ।
द्विजो भवान् क्षत्रियवंशजा वयं गुरुर्भवान् शिष्यमहत्तरा वयम् ॥ २७ ॥

श्रेष्ठजनम्, गंगापुत्रम् उत्क्रम्य परित्यज्य, वन्दितुम् अभिवादयितुम्, न नहि अहम् द्रोणः, आचरणम् उचितव्यवहारम्, मन्ये जानामि युक्तमिति॥२६॥

भीष्मः—मा मा नहि नहि, भवान् त्वम् एवम् इत्थम्, वक्तुमुचितम् । यतो हि बहुभिः अनेकैः कारणैः हेतुभिः, अहम् भीष्मः भवतः श्रीमतः, अपदृष्टः हीनः अस्मि, कुतः कस्माद्धेतोः

व्याख्या—अहम् भीष्मः, हि यतः, मात्रा जनन्या, जनितः उत्पादितः, भवान् त्वम् द्रोणाचार्यः, स्वयम् अर्थात् अयोनिजः, भरद्वाजमुनेः कलशादुत्पन्नतया तस्यायोनिजत्वम् । मम भीष्मस्य, आयुधम् अस्त्रशस्त्रम्, वृत्तिः जीवनचर्या तव भवतस्तु, अपह्नवः सकलजन्तुस्नेहः, भवान् त्वम्, द्विजः ब्राह्मणः, वयम् क्षत्रियवंशजाः राजकुलोत्पन्नाः, भवान् द्रोणः, गुरुः ब्राह्मणत्वेन जनानाम् गुरुः, वयम् तु । शिष्यमहत्तराः शिष्येषु ब्राह्मणानुशासनीयेषु क्षत्रियवैश्यशूद्रेषु श्रेष्ठा इत्यर्थः । वंशस्थं वृत्तम् ॥ २७ ॥

अस्मिन् श्लोके भारतीयसंस्कृतेः निदर्शनमस्ति । अस्यां संस्कृतौ समाजस्य मंगलाय वर्णव्यवस्था कल्पितास्ति । यस्मिन् जनवर्गे सात्विकं तत्त्वं प्रधानतया दृश्यते स इह संस्कृतौ श्रेष्ठत्वेन 'ब्राह्मण' इति, यत्र-सात्विकतान्वितम् राजसं तत्त्वं प्रमुखं स 'क्षत्रिय' इति, यत्र रजोगुणविशिष्टस्य तमोगुणस्य उन्मेषो वीक्ष्यते

आचरण को मैं धर्म सम्मत नहीं मानता ॥ २६ ॥

भीष्म—नहीं नहीं, आप ऐसा न कहें, कई कारणों से मैं आपकी तुलना में अपने को हीन मानता हूँ । क्योंकि—

मुझे माता ने जन्म दिया है, आप अयोनिज होने के कारण स्वयंभू हैं । मैं हथियारों के बल पर जीता हूँ और आप जीवों के प्रति सहानुभूति बाँटकर स्नेह के बल पर जीते हैं । आप जन्मना ब्राह्मण है और मैं जन्मजात क्षत्रिय हूँ, आप वर्णों के गुरु हैं और मैं शिष्यों में आप का श्रेष्ठ शिष्य हूँ ॥ २७ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

द्रोणः—नोत्सहन्ते महात्मानो ह्यात्मानमुपस्तोतुम्। एहि पुत्र! अभिवादयस्व माम्।

दुर्योधनः—आचार्य! अभिवादये।

द्रोणः—एह्येहि पुत्र! एवमेवावभृथस्नानेषु खेदमवाप्नुहि।

स "वैश्य' इति, यत्र च तमो गुण एव विद्यते मुख्यतया स 'शूद्र' इति निगद्यते। यतोहि जीवो द्विविधः—उद्बुद्धः, अनुबद्धश्च, तत्रोद्बुद्धस्त्रिविधः ज्ञानप्रधानः, क्रियाप्रधानः, इच्छाप्रधानश्च। ये मस्तिष्केण समाजं सेवन्ते ते सात्त्विकाः जीवाः ज्ञानप्रधानत्वात् 'द्रोणाचार्यवत्' 'ब्राह्मणा' इति कथ्यन्ते। ये बाहुबलेन समाजमाराधयितुमनसस्ते राजसजीवाः क्रियाप्रधानत्वात् देवः सन्नपि मनुष्यरूपेणावतीर्णः भीष्मवत् 'क्षत्रियाः' इति भाष्यन्ते, भौतिकदृष्टिमन्तस्तमःप्रधाना राजसजीवाः 'वैश्या' इति उच्यन्ते, अनुद्बुद्धाः प्राणिनः तमोगुणप्रधानाः 'शूद्रा इति शस्यन्ते। मनुष्येषु ज्ञानं, क्रिया, इच्छा इत्येते भावाः प्राप्यन्ते। इमान् एव भावान् आधृत्य-जन्मशुद्धि-कर्मशुद्धि जातिशुद्धिभिर्भवान् मदपेक्षया श्रेष्ठ इति भवतो मद्विषयं प्राक् प्रणम्यत्वाभिधानम् न युक्तमिति भीष्मकथनस्याशय इति।

द्रोणः—महात्मानः उत्तमजनाः, हि इति निश्चये, आत्मानम्, स्वम्, उपस्तोतुम् प्रशंसितुम्, न नहि उत्सहन्ते अभिलषन्ति। अतः पुत्र हे वत्स, एहि समागम्यताम्, अभिवादयस्व भीष्मानुरोधादेव प्रथमम् द्रोणम् प्रणम्यताम्।

दुर्योधनः—आचार्य हे गुरुदेव, सर्वप्रथमं त्वामेव अभिवादये प्रणमामि।

द्रोणः—पुत्र हे वत्स, एह्येहि समागम्यताम्, एवमेव सततम् इत्थमेव अवभृथस्नानेषु यज्ञान्तस्नानविधिषु, खेदम् परिश्रमम्, आप्नुहि प्रापय अर्थात् सर्वदा एवमेव यज्ञं कुरु।

द्रोण—उच्चकोटि के लोग अपनी प्रशंसा नहीं सुनना चाहते हैं। आओ बेटा, पहले मुझे ही प्रणाम करो।

दुर्योधन—गुरुदेव, मैं आप को प्रणाम करता हूँ।

द्रोण—आओ बेटा, इसी प्रकार सदा यज्ञ करते रहो और यज्ञान्तस्नान से सदा श्लथ बने रहो।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दुर्योधनः—अनुगृहीतोऽस्मि । पितामह ! अभिवादये ।

भीष्मः—एह्येहि पौत्र ! एवमेव ते बुद्धिप्रशमनं भवतु ।

दुर्योधनः—अनुगृहीतोऽस्मि । मातुल ! अभिवादये ।

शकुनिः—वत्स !

एवमेव क्रतून् सर्वान् समानीयाप्तदक्षिणान् ।
राजसूये नृपाञ्जित्वा जरासन्ध इवानय ॥ २८ ॥

दुर्योधनः—अनुगृहीतोऽस्मि कृपान्वितोऽहम्, पितामह हे पितामह भीष्म, त्वाम् अभिवादये तव चरणे दुर्योधनोऽहम् प्रणमामि ।

भीष्मः—एह्येहि समागम्यताम्, पौत्र पुत्रस्यापत्यम्, पुत्रशब्दोऽत्र सन्ततिपरक उपलक्षणम्, एवमेव इत्थमेव, ते तव, बुद्धिप्रशमनम् संबोधशमनम्, भवतु यातु, मनसो रागादिप्रवृत्तेः निवृत्तिर्जायताम् इत्याशीर्वचनम् ।

दुर्योधनः—अनुगृहीतोऽस्मि कृपान्वितोऽहम् । मातुल हे माम, अभिवादये प्रणमामि ।

शकुनिः—वत्स हे पुत्र,

व्याख्या—एवमेव, इत्थमेव आप्तः, उपलब्धः दक्षिणान् यज्ञमुपलक्ष्य ब्राह्मणान् प्रदत्तोपहारान्, सर्वान् सकलान्, क्रतून् यज्ञान्, समानीय सम्पाद्य, राजसूये राजसूयनामके मखविशेषे, जरासन्ध इव यथा नृपान् भूभृतः, जित्वा विजित्य, आनय समानीयताम् । यथा मगधाधिपतिः जरासन्धः स्वकृते राजसूये यज्ञे सर्वान् नृपान् समाहूय कारागारे निक्षिप्तवान् तथैव त्वमपि कुरु इति ।

दुर्योधन—मैं अनुगृहीत हुआ । पितामह, मैं आपको प्रणाम करता हूँ ।

भीष्म—आओ पौत्र, इसी तरह तुम्हारी बुद्धि विलक्षण बनी रहे ।

दुर्योधन—धन्य हुआ । मामा, आपको प्रणाम करता हूँ ।

शकुनि—वत्स, इसी तरह यज्ञ करते रहो, यज्ञान्त में लम्बी-लम्बी दक्षिणा भी देते रहो और अन्त में महाराज जरासन्ध की तरह सभी राजाओं को राजसूय यज्ञ में बुलाकर वन्दी बना डालो ॥ २८ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

द्रोणः— अहो ! आशीर्वचनेऽपि शकुनिरुद्योगं जनयति । अहो ! प्रियविरोधः खल्वयं क्षत्रियकुमारः ।

दुर्योधनः—वयस्य ! कर्ण ! गुरुजनप्रणामावसाने प्राप्तक्रममुपभुज्यतां वयस्य-विस्रम्भः ।

कर्णः—गान्धारीमातः !

क्रतुव्रतैस्ते तनु गात्रमेतत् सोढुं बलं शक्ष्यसि पीडयानि ।
अन्तस्त्वनामन्त्र्य न घर्षयामि राजर्षिघीराद् वचनात् भयं मे ॥२९॥

द्रोणः—अहो आश्चर्यम्, आशीर्वचनेऽपि शुभाशंसितवाक्येऽपि, शकुनिरुद्योगम्, दुर्योधनमातुलः उद्योगम्—युद्धार्थप्रयत्नम्, जनयति प्रेरयतीति भावः । अहो आश्चर्यम्, प्रियविरोधः वैररसिकः खलु निश्चयेन, अयम् एषः, क्षत्रियकुमारः शकुनिनामकोदुर्योधनमातुल इति ।

दुर्योधनः—वयस्य मित्र, कर्ण अङ्गराज, गुरुजनप्रणामावसाने श्रेष्ठजनप्रणामान्ते, प्राप्तक्रमम् उचितावसरम्, उपभुज्यताम् उपभोगः क्रियताम्, वयस्यविस्रम्भः मित्रप्रेमालिङ्गनम् ।

कर्णः—गान्धारीमातः हे दुर्योधन—

व्याख्या—एतत् इदम्, ते तव, गात्रम् शरीरम्, क्रतुव्रतैः मखे कृतोपवासादिनियमैः, तनु क्षीणम्, बलम् शक्तिम्, सोढुम् सह्यं कर्त्तुम् शक्ष्यसि समर्थोऽसि तर्हि पीडयानि बलवदालिङ्गानि तव शरीरमिति, अन्तः चित्तम्, तु किन्तु, अनामन्त्र्य अनाभाष्य न नहि, घर्षयामि आलिङ्गनम् नाचरामि, राजर्षि-

---

द्रोण आश्चर्य है, आशीर्वाद में भी इसने युद्ध की प्रेरणा दी है। यह क्षत्रिय कुमार कितना विरोध प्रेमी है।

दुर्योधन—मित्र कर्ण, गुरुजनों को प्रणाम करने के बाद अब मित्रों से मिलने की वारी आई है, आओ, हम एक दूसरे के गले लगे।

हे दुर्योधन, यज्ञ में व्रतादि के कारण तुम्हारी देहअ ति कृश हो गई है, यदि तु मेरे आलिङ्गन को सह सको तो मैं अवश्य तुम्हारा आलिङ्गन करूं अन्यथा नहीं। मैं प्रेमभाषण के अतिरिक्त तुम्हें कोई अन्य कष्ट नहीं देना

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दुर्योधनः—एवमेव ते बुद्धिरस्तु ।

द्रोणः—पुत्र ! दुर्योधन ! एष महेन्द्रप्रियसखो भीष्मको नाम भवन्तं सभाजयति ।

दुर्योधनः—स्वागतमार्याय । अभिवादये ।

भीष्मः—पौत्र ! दुर्योधन ! एष दक्षिणापथपरिघभूतो भूरिश्रवा नाम भवन्तं सभाजयिष्यति ।

दुर्योधनः—स्वागतमार्याय ।

धीरात् मुनिश्रेष्ठकथनवदतिगंभीरात् ते तव, कथनात्, मे मम भयम् भीतिम्, जायते ॥ २९ ॥ उपजातिश्छन्दः ॥

दुर्योधनः—एवमेव इत्थमेव, ते तव, बुद्धिः प्रज्ञा, अस्तु भवत्विति ।

द्रोणः—पुत्र हे वत्स, दुर्योधन गान्धारीमात एषः पुरोवर्त्तिनः महेन्द्रप्रियसखः देवराजस्य इन्द्रस्य मित्रम्, भीष्मकः एतन्नामकः नृपतिः, भवन्तम् त्वाम्, सभाजयति सत्कारविशेषेण योजयति ।

दुर्योधनः—स्वागतम् साधुवादनम्, आचार्यं श्रीमते, अभिवादये प्रणमामि।

भीष्मः—पौत्र दुर्योधन एषः असौ, दक्षिणापथपरिघभूतः विन्ध्यप्रदेशस्यार्गलस्वरूपः रक्षकः, भूरिश्रवा नाम एतन्नामकः नृपः, भवन्तम् दुर्योधनम् सभाजयिष्यति साधुवादेनाभिनन्दयिष्यति समुदाचारानुरोधादिति ।

दुर्योधनः—स्वागतमार्याय श्रीमते साधुवादम् ।

चाहता हूँ, सच पूछो तो मैं तुम्हारे इन महर्षियों के गम्भीर वचनों से बड़ा डरता हूँ ॥ २९ ॥

दुर्योधन—तुम्हारी बुद्धि ऐसी ही बनी रहे ।

द्रोण—बेटा दुर्योधन, भीष्मक देवराज इन्द्र के प्रिय मित्र है । ये तुम्हें बधाई देते हैं ।

दुर्योधन—आपका स्वागत है, मैं आपको प्रणाम करता हूँ ।

भीष्म—पौत्र दुर्योधन, दक्षिण देश के संरक्षक महाराज भूरिश्रवा तुम्हें बधाई दे रहे हैं ।

दुर्योधन—आपका स्वागत है ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

द्रोणः—पुत्र ! दुर्योधन ! भवतो यज्ञं सभाजयता वासुभद्रेण प्रेषितोऽभिमन्युर्भवन्तं सभाजयति ।

शकुनिः—वत्स ! दुर्योधन ! एष जरासन्धपुत्रः सहदेवो भवन्तमभिवादयति ।

दुर्योधनः—एह्येहि वत्स ! पितृसदृशपराक्रमो भव ।

सर्वे—एतत् सर्वं राजमण्डलं भवन्तं सभाजयति ।

दुर्योधनः—अनुगृहीतोऽस्मि ! भोः ! किन्तु खलु समागते सर्वराजमण्डले विराटो नागच्छति ।

द्रोणः पुत्र दुर्योधन; हे गान्धारीसुत, भवतः तव, यज्ञम् मखम्, सभाजयता बहुमानयता, वासुभद्रेण श्रीकृष्णेन, प्रेरितः, अभिमन्युः अर्जुनसुतः, भवन्तम्, सभाजयति प्रणामम् करोति ।

शकुनिः—वत्स दुर्योधन, एष असौ, जरासन्धपुत्रः मगधराजजरासन्धस्य सुतः, सहदेवः भवन्तम् त्वाम्, अभिवादयति प्रणामम् करोति ।

दुर्योधनः—एह्येहि समागम्यताम्, वत्स हे पुत्र, पितृसदृशपराक्रमः जनकतुल्यबलः भव ।

सर्वे—एतत् पुरोदृश्यमानम्, सर्वम् सकलम्, राजमण्डलम् नृपसमूहम् भवन्तम् त्वाम् सभाजयति ।

दुर्योधनः—अनुगृहीतोऽस्मि कृपान्वितोऽहम्, भोः इह सम्बोधने, किन्तु कथन्नहि, खलु इति निश्चये, समागते सम्यक् प्रकारेणागते सति, सर्वराजमण्डले सकलनृपसमूहे, विराटः विराटो नाम राजा, न हि आगच्छति आयाति ।

द्रोण—पुत्र दुर्योधन, ये हैं कुमार अभिमन्यु, इन्हें बधाई देने के लिए तुम्हारे पास श्रीकृष्ण ने भेजा है ।

शकुनि—बेटा दुर्योधन, ये हैं, जरासन्ध के पुत्र सहदेव । ये तुम्हें प्रणाम करते हैं ।

दुर्योधन—आओ; आओ बेटा, पिता की तरह ही पराक्रमी बनो ।

सभी—यह समस्त राजमण्डल आपको बधाई देता है ।

दुर्योधन—अनुगृहीत हुआ । पर हाँ, सभी राजाओं के आ जाने पर भी अबतक महाराज विराट क्यों नहीं आये ?

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शकुनिः—प्रेषितोऽस्य मया दूतः । शङ्के पथि वर्तते इति ।

दुर्योधनः—भो आचार्य ! धर्मे धनुषि चाचार्य ! प्रतिगृह्यतां दक्षिणा ।

द्रोणः—दक्षिणेति । भवतु भवतु । व्यपश्रयिष्ये तावद् भवन्तम् ।

दुर्योधनः—कथमाचार्योऽपि व्यपश्रयिष्यते ।

भीष्मः—भोः ! किन्नु खलु प्रयोजनं, यदा—

पीतः सोमो बाल्यदत्तो नियोगा-

शकुनिः—अस्य विराटस्य, मया शकुनिना, दूतः संवादवाहकः प्रेषितः निदेशितः, शङ्के सम्भावयामि पथि मार्गे, वर्त्तते अस्तीति शेषः ।

दुर्योधनः—भो आचार्य हे गुरुदेव, धर्मे धार्मिककृत्ये, च पुनः धनुषि धनुर्विद्यायाम्, त्वम् आचार्यः उपदेशकः असि, अतः प्रतिगृह्यताम् स्वीक्रियताम्, दक्षिणा यज्ञे कृतस्याचार्यत्वस्य यथोचितमुपहारम् ।

द्रोणः—दक्षिणेति, भवतु भवतु, दक्षिणा, इति शब्दं श्रुत्वा द्रोणः कथयति तिष्ठतु तावत्तव दक्षिणा, व्यपश्रयिष्ये समये समागते सति याचिष्ये, तावदित्यवधारणे भवन्तंत्वामितिशेषः । अत्राशयः—मदीया दक्षिणा तवैवपार्श्वे तिष्ठतु समागते अवसरे याचिष्ये ।

दुर्योधनः—कथम् केन प्रकारेण, आचार्योऽपि राजगुरुरपि, व्यपश्रयिष्ये याचिष्ये ।

भीष्मः—भोः, किन्तु किम्बा, खलु निश्चयेन, प्रयोजनम् दक्षिणायाः आवश्यकता अस्ति, यदा—

व्याख्या—बाल्यदत्तः शैशवावस्थयादत्तः, सोमः सोमनामकलताया रसः,

शकुनि—मैंने उनके पास दूत भेजा था, संभव है वे रास्ते में हों ।

दुर्योधन—हे गुरुदेव, आप मेरे धर्म तथा धनुष के उपदेष्टा हैं, कृपया अपनी दक्षिणा स्वीकार करें ।

द्रोण—दक्षिणा, रहने दो इसे, जरूरत पड़ने पर मैं स्वयं माँग लूँगा ।

दुर्योधन—राजगुरु होकर भला आप माँगने क्यों जाँय ?

भीष्म—दक्षिणा की जरूरत ही क्या है इन्हें—

इन्होंने किशोरावस्था में ही विधिवत सोमरस का पान किया है, तुम्हारे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

छत्रच्छाया सेव्यते ख्यातिरस्ति ।
किं तद् द्रव्यं किं फलं को विशेषः
क्षत्राचार्यो यत्र विप्रो दरिद्रः ॥ ३० ॥

दुर्योधनः—आज्ञापयतु भवान्, किमिच्छति । किमनुतिष्ठामि ।

द्रोणः—पुत्र ! दुर्योधन ! कथयामि ।

दुर्योधनः—किमिदानीं भवता विचार्यते ।

नियोगात् विधिवत् शास्त्रोक्तरीतिमनुसृत्य, पीतः पानंकृतः, छत्रच्छाया नृपाश्रयः, सेव्यते उपभुज्यते, ख्यातिः प्रसिद्धिः अस्ति, क्षत्राचार्यः राजगुरुरयं द्रोणाचार्यः, यत्र यस्मिन्विषये, दरिद्रः धनहीनः स्यात्, तादृशम् किं द्रव्यम्, किं वा फलम्, को वा विशेषः अस्ति ? न कोऽपीत्यर्थः ॥ अनेन द्रोणेनबाल्यावस्थायामेव सोमरसः पीतः, भवादृशस्यनृपस्याश्रयः प्राप्तः, कीर्त्तिरर्जिता, तदयं कस्मिन्नपि विषयेनास्ति हीनो यदर्थं दक्षिणाग्रहणानुरोध उपयुज्येतेत्यर्थः ॥ भारतीयनाट्यकाराणाम् सः प्रयत्नः सदाभवति येन नायकस्य चरित्रं पवित्रं सन्तिष्ठेत न कालुष्यस्य लेशोऽपि तन्मनागपि संस्पृशेत् । नायकचरित्रस्य रक्षार्थमिह सदेव प्रयत्नः कृतोऽभूत् । एवंविधस्यप्रयत्नस्य दिशिसंकेतः साधुतयाऽस्मिन् श्लोके भवति । शालिनीवृत्तम् ॥ ३० ॥

दुर्योधनः—आज्ञापयतु आदिशतु, भवान् त्वम्, किमिच्छति किवाञ्छा किमस्ति किमनुतिष्ठामि किमाचरामि भवदर्थे ।

द्रोणः— पुत्र हेवत्स, दुर्योधन, गान्धारीसुत, कथयामि वच्मि ।

दुर्योधनः—इदानीम् अधुना मयि दक्षिणांदातुं प्रवृत्तेसति, भवता त्वया किं विचार्यते विचारो व्यर्थं इति ।

जैसे शक्तिशाली राजा की छत्रच्छाया में निवास करते हैं, इतना ही नहीं इन्होंने पर्याप्त यश भी अर्जित कर लिया है, फिर वह कौन सी वस्तु, फल या अनन्य-लाभ है, जिसे तुम्हारे आचार्य ने प्राप्त नहीं किया है ॥ ३० ॥

दुर्योधन—आचार्य, आदेश दीजिए, आपकी क्या इच्छा है ? मैं आपकी क्या सेवा करूँ ?

द्रोण—बेटा दुर्योधन, कहता हूँ ।

दुर्योधन—आप सोच क्या रहे हैं गुरुदेव ?

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्राणाधिकोऽस्मि भवता च कृतोपदेशः
शूरेषु यामि गणनां कृतसाहसोऽस्मि ।
स्वच्छन्दतो वद किमिच्छसि किं ददानि
हस्ते स्थिता मम गदा भवतश्च सर्वम् ॥ ३१ ॥

द्रोणः—पुत्र ! ब्रवीमि खलु तावत् । बाष्पवेगस्तु मां बाधते ।
सर्वे—कथमाचार्योऽपि बाष्पमुत्सृजति ।
भीष्मः—पौत्र ! दुर्योधन ! अफलस्ते परिश्रमः ।

व्याख्या—प्राणाधिकः प्राणेभ्योप्यधिकः तव प्रियः अस्मीति भावः, भवता त्वया च, कृतोपदेशः, अनुशासितः, शूरेषु वीरेषु, गणनां यामि भवामि, कृतसाहसः कृतः विहितः साहसो येनासौ मयि दक्षिणादातुं समुद्यते सति स्वच्छन्दतः स्वेच्छया, वद कथय, किम् इच्छसि अभिलषसि, किंददामि कथय दक्षिणारूपेण त्वाम् किं अर्पयामि, हस्ते करे, स्थिता मम दुर्योधनस्य, गदा मुद्गरः एव पर्याप्ता, च पुनः सर्वम् सकलम् विभवम् भवतः त्वदधीनाम् एवेति ॥

द्रोणः—पुत्र वत्स, ब्रवीमि कथयामि, खलु निश्चयेन, तावदित्यवधारणे, बाष्पवेगः आनन्दाश्रुगतिः तु किन्तु, माम् गुरुद्रोणम्, बाधते वक्तुं प्रतिषेधति ।

सर्वे—कथम् केन प्रकारेण, आचार्योपि गुरुरपि, बाष्पम् अश्रुम्, उत्सृजति जहाति ।

भीष्मः—पौत्र दुर्योधन, ते तव, परिश्रमः आयासः, अफलः, निष्फलो यातः ।

मैं आपका प्राणाधिक प्रिय शिष्य हूँ, आपने ही मुझे शिक्षा दी है, मैं वीरों में अग्रगण्य हूँ, युद्ध में मैंने साहस किया है, आप अपना अभिलषित तो बतलाएँ, मुझे केवल हाथ में गदा चाहिए, शेष सारा वैभव तो आपका ही है ॥ ३१ ॥

द्रोण—बेटा, अभी बतलाता हूँ किन्तु देखो न ये आँखों के पानी बलात् रोक रहे हैं मुझे कुछ कहने से—

सभी—क्यों आचार्य भी रो रहे हैं ?

भीष्म—पौत्र दुर्योधन, तुम्हारा सारा श्रम बेकार है ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

दुर्योधनः—कोऽत्र ।

(प्रविश्य)

भटः—जयतु महाराजः ।

दुर्योधनः—आपस्तावत् ।

भटः—यदाज्ञापयति महाराजः । (निष्क्रम्य प्रविश्य) जयतु महाराजः । इमा आपः ।

दुर्योधनः—आनय । (कलशं गृहीत्वदा) भो आचार्य ! अश्रुपातोच्छिष्टस्य मुखस्य क्रियतां शौचम् ।

दुर्योधनः—कोऽत्र कः पुरुषविशेषः, अनु अस्मिन् स्थाने अस्ति, इति जिज्ञास्यते,

(प्रविश्य प्रवेशंकृत्वा)

भटः—जयतु महाराजः सर्वतोभावेन विजयताम् श्रीमान् ।

दुर्योधनः—आपः जलम्, तावदित्यवधारणे ।

भटः—यदाज्ञापयति यथादिशति, महाराजः नृपदुर्योधनः (निष्क्रम्य बहिर्गत्वा; प्रविश्य) जयतु महाराजः विजयताम् श्रीमान्, इमा आपः जलानीति शेषः ।

दुर्योधनः—आनय देहि, (कलशम् घटम्, गृहीत्वानीत्वा) भो आचार्य हे गुरुदेव, अश्रुपातोच्छिष्टस्य बाष्पपातनोपहतस्य, मुखस्य आननस्य, क्रियताम् विधीयताम्, शौचम् ।

दुर्योधन—कोई यहाँ है ?

(प्रवेश करके)

भट—महाराज की जय हो ।

दुर्योधन—भट थोड़ा पानी तो लाओ ।

भट—महाराज की जो आज्ञा (बाहर जाकर फिर लौटकर) जय हो महाराज की ये रहा पानी ।

दुर्योधन—लाओ (कलश लेकर) आचार्य, आँसुओं से पवित्र मुख का प्रक्षालन तो कर लें ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

द्रोणः—भवतु भवतु । मम कार्यक्रियैव मुखोदकमस्तु ।

दुर्योधनः—हा धिक्,

यदि विमृशसि पूर्वजिह्मतां मे यदि च समर्थयसे न दास्यतीति ।
शरशतकठिनं प्रयच्छ हस्तं सलिलमिदं करणं प्रतिग्रहाणाम् ॥ ३२ ॥

द्रोणः—हन्त ! लब्धो मे हृदयविश्वासः । पुत्र ! श्रूयतां ।

येषां गतिः क्वापि निराश्रयाणां संवत्सरैर्द्वादशभिर्न दृष्टा ।

द्रोणः—भवतु भवतु, तिष्ठतु तावत्, मम द्रोणस्य, कार्यक्रियैव कर्मसिद्धिरेव, मुखोदकम् आननजलमस्तु ।

दुर्योधनः—हा धिक् इति खेदे ।

व्याख्या—यदि चेत्, मे मम, पूर्वजिह्मताम् पुराकृतकुटिलकर्मत्वम्, विमृशसि विचारयसि, यदि चेत्, न नहि, दास्यति यच्छति, इति इत्थम्, समर्थयसे समर्थनं करोषि तदा शरशतकठिनम् सततबाणाभ्यासेन कठोरम्, हस्तम् करम्, प्रयच्छ देहि, प्रतिग्रहाणाम् उपहारस्वीकरणानाम्, करणम् साधनम्, इदम् एतत्, सलिलम्, जलं, उत्सृज्यते । अस्मिन् श्लोके, पुष्पिताग्रावृत्तम् ॥ ३२ ॥

द्रोणः—हन्त इति हर्षे, लब्धः प्राप्तः, मे मम, हृदयविश्वास चित्तप्रत्ययः, यतो हि अयं दुर्योधनः सर्वेषां भूपतीनाम् समक्षं दक्षिणादानस्य कृतां प्रतिज्ञामन्यथा न करिष्यतीति भावः । पुत्र वत्स श्रूयताम् अवधार्यताम् ....

व्याख्या—येषाम् जनानाम्, निराश्रयाणाम् आश्रयरहितानाम्, यत्र तत्र भ्रमताम् पाण्डवानाम् युधिष्ठिरादीनाम्, द्वादशभिः द्वादशसंख्याभिः, संवत्सरैः हायनैः, कुत्रापि गतिः गमनम्, न नहि, दृष्टा अवलोकिता अर्थात् युधिष्ठिरादि-

---

द्रोण—छोड़ो, मेरी सफलता ही मेरा मुखोदक बनेगी ।

दुर्योधन—आह, मुझे धिक्कार है ।

मेरी पूर्वकृत कुटिलता पर यदि आप ध्यान देते हैं, और यदि आपको यह भय है कि मैं आपकी इच्छा पूरी नहीं करूँगा तो लाइए बाणप्रक्षेपणाभ्यास से बना कठोर अपना हाथ, रख दूँ उस पर अभी ही संकल्प जल ॥ ३२ ॥

द्रोण—प्रसन्न हूँ बेटा, अब मैं पूर्ण आश्वस्त हूँ । सुनो—

बारह साल से जिनका कोई पता नहीं है, जो आश्रयविहीन होकर दर-दर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

त्वं पाण्डवानां कुरु संविभागमेषा च भिक्षा मम दक्षिणा च ॥ ३३ ॥

शकुनिः—(सोद्वेगम्) मा तावद् भोः !

उपन्यस्तस्य शिष्यस्य विश्वस्तस्य च गौरवे ।
यज्ञप्रस्तुतमुत्पाद्य युक्तेयं धर्मवञ्चना ? ॥ ३४ ॥

द्रोणः—कथं धर्मवञ्चनेति । तावद् भो गान्धारविषयविस्मित ! शकुने ! त्वदनार्यभावात् सर्वलोकमनार्यमिति मन्यसे । हन्त भोः !

पञ्चपाण्डवानां द्वादशभिर्वर्षैः कुत्रापि स्थितिः, नोपलब्धा, त्वम् भवान्, तेषाम् पाण्डवानाम्, संविभागम् सम्यक्प्रकारेणविभाजनम्, कुरु विधीयताम् अर्थात् राज्यार्धम् प्रदीयताम्, एषां पाण्डवानां कृते अंशदानस्य घोषणा एव मम आचार्य-द्रोणस्य भिक्षायाचना च पुनः दक्षिणा यज्ञेकृतस्याचार्यत्वस्य यथोचितम् वेतनम् भविष्यतीति । इन्द्रवज्रावृत्तम् ॥ ३३ ॥

शकुनिः—(सोद्वेगं आवेगसहितम्) मा तावत् द्रोणवाक्यविश्वासं मा कुरु ।

व्याख्या—उपन्यस्तस्य दक्षिणांदातुम् प्रस्तुतजनस्य, गौरवे भवता महत्वे, विश्वस्तस्य विश्रब्धस्य, शिष्यस्य अन्तेवासिनः, यज्ञप्रस्तुतम् मखरूपप्रस्तावम्, उत्पाद्य उत्पन्नं कृत्वा इयम् एषा, धर्मवञ्चना धर्माचरणव्याजेन छलम्, युक्ता उचिता ? मखव्याजेनस्वशिष्यस्य त्वया वञ्चनम् इति न युक्तम् ॥

द्रोणः—कथम्, केन प्रकारेण, धर्मवञ्चना धर्माचणरव्यपदेशेनकपटमिति, गान्धारविषयविस्मितं गान्धारदेशविशेषम् राज्यत्वेन प्राप्य गर्वोद्धशकुने, त्वत् भवतः, अनार्यभावात् कुटिलविचारात्, सर्वलोकम् सकलजनम् अनार्यम् दुष्टम्, मन्यसे, हन्त भोकष्टम् भोः—

की ठोकरें खा रहे हैं उन पाण्डवों को उनका आधा राज्य लौटा दो, यही मेरी भीख है, यही मेरी दक्षिणा भी ॥ ३३ ॥

शकुनि—(घबड़ाकर) नहीं नहीं,

जिसने तुम्हारे गुरुत्व पर विश्वास किया, जिसने तुम्हारी इच्छानुकूल दक्षिणा देने का संकल्प लिया उस शिष्य के लिए यह धार्मिक वञ्चना क्या उचित है ?

द्रोण—धर्मवञ्चना कैसी ? ओ गर्वीले गान्धार नरेश, तुम स्वयं अनार्य हो इसलिए सारा संसार तुम्हें अनार्य प्रतीत होता है ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भ्रातॄणां पैतृकं राज्यं दीयतामिति वञ्चना ।
किं परं याचितैर्दत्तं बलात्कारेण तैर्हृतम् ॥ ३५ ॥

सर्वे—कथं बलात्कारेण नाम ।

भीष्मः—पौत्र ! दुर्योधन ! अवभृथस्नानमात्रमेव खलु तावत् । मित्रमुखस्य शत्रोः शकुनेर्वचनं न श्रोतव्यम् । पश्य पौत्र !

यत् पाण्डवा द्रुपदराजसुतासहायाः

व्याख्या—भ्रातॄणाम् बान्धवानाम्, पैतृकम् वंशक्रमागतम्, राज्यम् ऐश्वर्यम्, दीयताम् समर्प्यताम्, इति इत्थम्, वञ्चना छलम् ? नेदं कपटव्यवहारम् औचित्यमेवार्धराज्यदानमिति, याचितैः प्रार्थितैर्मया भवद्भिर्दत्तम् प्रदानम् कृतम्, बलात्कारेण बलप्रयोगेण वा तैः युधिष्ठारादिभिः, हृतम् अधिकृतम्, किम् कतमम्, परम्, उत्कृष्टम्, मत्प्रार्थनया दीयते, युध्यमानैर्वा पाण्डवैरपह्रियते, किमनयोः श्रेष्ठं स्यादिति विचारणीयम् ॥ ३५ ॥

सर्वे—कथम् केन प्रकारेण पाण्डवा राज्यार्धं हरिष्यन्ति, बलात्कारेण बलपूर्वकेन नाम इति प्रश्नाशयः

भीष्मः—पौत्र दुर्योधन, अवभृथस्नानमात्रमेव इदम् केवलम् मखसमाप्तिमुपलक्ष्यविहितम् स्नानम् न द्यूतम् अतः अस्मिन्कार्ये गुरुद्रोणस्यैव वचनं ग्राह्यम् न शकुनेर्वचनम् ग्राह्यम् मित्रमुखस्य शत्रोः कपटाचारी सुहृदः शकुनेः वचनम् कथनम्, न नहि श्रोतव्यम् आचरितव्यम् अर्थात् मातुलस्य वचनम् परित्यज्याचार्यकथनमादरणीयमिति । पश्य पौत्र अवलोक्य —

व्याख्या—यत् संबन्धबोधकसर्वनाम, द्रुपदराजसुतासहायः द्रौपद्या सह,

---

'अपने चचेरे भाईयों को उनका पैतृक राज्य लौटा दो, यह कथन कपटपूर्ण कैसे है ? मेरे मांगने से उनका राज्य लौटा दो यह अच्छा होगा अथवा वे बल पूर्वक तुमसे अपना हक छीन लेगें यह अच्छा होगा (सोच लो) ॥ ३५ ॥

सब—बल पूर्वक क्यों ?

भीष्म—बेटा दुर्योधन, तुमने अभी ही यज्ञान्त स्नान किया है, कपटी मित्र शकुनि का तुम विश्वास मत करो । देखो पौत्र,—जङ्गल में धूलिधूसरितगात

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कान्तारेरेणुपरुषाः पृथिवीं भ्रमन्ति ।
यत्त्वं च तेषु विमुखस्त्वयि ते च वामा-
स्तत् सर्वमेव शकुनेः परुषावलेपः ॥ ३६ ॥

दुर्योधनः—भवतु, एवं तावदाचार्य ! पृच्छामि ।

द्रोणः—पुत्र ! कथय ।

दुर्योधनः—

यत् पुरा ते सभामध्ये राज्ये माने च घर्षिताः ।

पांण्डवाः पाण्डुपञ्चपुत्राः, कान्तारेरेणुपरुषाः वनधूलिधूसराः, पृथिवीम् धरित्रीम्, भ्रमन्ति पर्यटनं कुर्वन्ति, यत् च पुनः, त्वम्, भवान्, तेषु पाण्डवादिषु, विमुखः प्रतिकूलः, च पुनः, ते पाण्डवाः, त्वयि दुर्योधने, वामाः विपरीताः, तत्, सर्वम्, सकलम्, एव शकुनेः तव मातुलस्य, परुषः कठोरः, अवलेपः गर्वः । जगति एवंविधः कः प्राणी यः सुखानि उपभोक्तुं नाभिलषते । पाण्डवानामप्यन्तःकरणे एषैवेच्छोत्कटा भूत्वा जरीजृम्भते यत् तेषां सविधे जगतः सकलसुखसाधनानि स्युः । समग्रस्यापि भूमण्डलस्य प्रभुत्वम् स्वायत्तं विधाय ते सानन्दं विहरेयुः । किञ्च शकुनेर्गर्ववशादेव तव पारुष्यं पाण्डवानां चेयम् हीना दशा जाता, अतः शकुनेः कथनम् विहाय पाण्डवेषु पवित्रहृदयो भवेति भावः ॥ ३६ ॥

दुर्योधनः—भवतु यातु, एवम् इत्थम्, तावदित्यवधारणे, आचार्य हे गुरुदेव, पृच्छामि भवतः एव ज्ञातुमिच्छामि ।

द्रोणः—पुत्र तनय, कथय वद—

व्याख्या—यत्पुरा द्यूतक्रीडासमये, ते पाण्डवाः, सभामध्ये अक्षक्रीड़ा-

---

पत्नी के साथ पाण्डवगण दर-दर की ठोकरें खाते फिर रहे हैं। वे आज तुमसे विमुख हैं या तुम उनके विपरीत हो, इन सारे उपद्रवों की जड़ शकुनि का अभिमान है ॥ ३६ ॥

दुर्योधन—अच्छा गुरुदेव, मैं आप से ही पूछता हूँ ।

द्रोण—पूछो बेटा,

दुर्योधन—यदि पाण्डव इतने बली हैं तो जिस समय सभा में उनके राज्य

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बलात्कारसमर्थैस्तैः किं रोषो धारितस्तदा ॥ ३७ ॥

द्रोणः—अत्रेदानीं धर्मच्छलेन वञ्चितो द्यूताश्रयवृत्तिर्युधिष्ठिरः प्रष्टव्यः,

येन भीमः सभास्तम्भं तोलयन्नेव वारितः।
यद्येकस्मिन् विमुक्तः स्यान्नास्माञ्छकुनिराक्षिपेत् ॥ ३८ ॥

भीष्मः—अन्यत् प्रस्तुतमन्यदापतितम् । भो आचार्य ! कार्यमत्र गुरुतरं, न कलहः ।

सभायामेव, राज्ये राज्यापहारे, माने पितामहादिश्रेष्ठजनसमक्षद्रौपद्याः केशवस्त्राकर्षणादिना प्रतिष्ठायां च धर्षिताः अपमानिताः, तदा तस्मिन्नेवकाले, बलात्कारसमर्थैः बलप्रयोगसमर्थैः, तैः पाण्डवैः, रोषः क्रोधः किं किमर्थं धारितः ॥

द्रोणः—अत्र अस्मिन् विषये, इदानीम् अधुना, धर्मव्याजेन, वञ्चितः प्रचारितः, द्यूताश्रयवृत्तिः अक्षक्रीडाप्रेमी, युधिष्ठिरः पाण्डवाग्रजः, प्रष्टव्यः जिज्ञासितव्यः ।

व्याख्या—येन युधिष्ठिरेण, भीमः पाण्डवद्वितीयः, सभास्तम्भम् सभाकक्षस्तम्भम्, तोलयन् परीक्षमाणः, एव यथास्यात्तथा, वारितः अवरोधितः यदि स्यात्, एकस्मिन् द्यूतसभासंरभे, युधिष्ठिरेण विमुक्तः स्वेच्छया व्यवहर्तुमाज्ञप्तः स्यात् तदा शकुनिः अधुना अस्मान् द्रोणादीन्, न नहि, आक्षिपेत् अधिक्षिपेत् ॥३८॥

भीष्मः—अन्यत् अपरम्, प्रस्तुतम्, अन्यत् अपरम्, आपतितम् जातम्, भो आचार्य हे उपाध्याय, कार्यम् करणीयम्, अत्र अस्मिन् विषये गुरुतरः श्रेष्ठतरः न नहि, कलहः शिष्यविरोधः उचितमिति भावः ।

तथा मान का अपहरण कर उन्हें अपमानित किया गया था, उस समय उन्होंने अपना रोष क्यों छिपा लिया था ? क्यों नहीं अपना बल प्रदर्शित किया था ? ॥३७॥

द्रोण—इस सम्बन्ध में धर्म के नाम पर ठगे गये द्यूतव्यसनी युधिष्ठिर से ही पूछ लो—

सभा भवन के स्तम्भों को उखाड़कर जब भीम इस अन्याय के विरुद्ध तुम सभों पर प्रहार करना चाह ही रहा था कि इसी युधिष्ठिर ने इशारे से उसे रोक दिया। केवल यदि उसी काम के लिए भीम को वह नहीं रोकता तो शायद आज इस तरह हम पर आक्षेप करने के लिए शकुनी बचे नहीं रहते ॥ ३८ ॥

भीष्म—कहाँ की बात कहाँ आ पड़ी ? आचार्य, काम की बात करें, झगड़ना तो बाद में भी होगा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

द्रोणः—माऽत्र कर्दनं कार्यं, कलह एव भवतु ।
भीष्मः—प्रसीदत्वाचार्यः । पश्य पौत्र !

ये दुर्बलाश्च कृपणाश्च निराश्रयाश्च
त्वत्तश्च साम मृगयन्ति न गर्वयन्ति ।
ज्येष्ठो भवान् प्रणयिनस्त्वयि ते कुटुम्बे
तान् धारयिष्यसि मृगैः सह वर्तयन्तु ॥ ३९ ॥

द्रोणः—मा इति निषेधे, अत्र अस्मिन् विषये, कर्दनम् दैन्यपूर्वकम् राज्ययाञ्चा, कार्यम् करणीयम्, कलह एव भवतु क्रोधसूचिका द्रोणस्येयमुक्तिः अर्थात् न्याययुद्धमेव जायतामिति ।

भीष्मः—प्रसीदतु प्रसन्नो भवतु आचार्यो गुरुद्रोणः, पश्य अवलोकय च पौत्र दुर्योधन ।

व्याख्या—ये पाण्डवाः, दुर्बलाः शक्तिहीनाः, च पुनः कृपणाः दैन्या, निराश्रयाः असहायाः, च पुनः, त्वत्तः त्वत्समीपात्, साम सान्त्वना मृगयन्ति अभिलषन्ति याचयन्ति वा, न च नहि गर्वयन्ति गर्वम् कुर्वन्ति, भवान् त्वम् तेभ्यः ज्येष्ठः वयसाऽधिकः, च पुनः ते पाण्डवाः, त्वयि दुर्योधने, प्रणयिनः अनुरक्ताः, अतस्त्वम तान् पाण्डवान्, कुटुम्बे स्वकीयपरिवारे, धारयिष्यसि स्थानं दास्यसि, अथवा वा, ते पाण्डवाः, मृगैः हरिणैः, सह सार्धम्, वर्त्तयन्तु तिष्ठन्तु । वसन्ततिलकावृत्तम् ॥

विचार्यताम् इदं जगत्, इमे सम्बन्धिनः, इमे पुत्रकलत्रादयः, इमा सम्पदः, इदम् भवनम्, इयम् धरा, इदं सकलं साम्राज्यं, एषा च प्रभुता सर्वम् विहाय एकस्मिन्नहनि गन्तव्यमापतति । अतो विचार्यताम् ये युधिष्ठिरादयः शक्तिहीनाः सन् त्वया सान्त्वनम् याचयन्ति तेभ्यः जीविकासाधनस्वरूपम् राज्यार्द्धम् प्रदानमुचितमथवा तदुपेक्षणम् युक्तिमिति भावः ॥

द्रोण—यहाँ कायरता दिखलाना ठीक नहीं, कलह करना ही ठीक है ।

भीष्म—माफ करो आचार्य, पौत्र देखो—

अभी पाण्डव शक्तिहीन हैं, दुःखी हैं, आश्रयरहित हैं, तुम्हारे प्रति प्रेम रखते हैं, तुमसे शान्ति की याचना करते हैं, छोटे हैं तुम्हारे सामने कभी गर्व नहीं करते, ऐसी स्थिति में तुम्हीं बतलाओ उन्हें अपने परिवार में शरण दोगे या यो हीं जङ्गली हिरणों के साथ घूमने के लिए छोड़ दोगे ॥ ३९ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शकुनिः—वर्तयन्तु वर्तयन्तु ।

कर्णः—भो आचार्य ! अलममर्षेण । दुर्योधनो हि नाम,

हितमपि परुषार्थं रुष्यति श्राव्यमाणो
वरपुरुषविशेषं नेच्छति स्तूयमानम् ।
गतमिदमवसानं रक्ष्यतां शिष्यकार्यं
गज इव बहुदोषो मार्दवेनैव वाह्यः ॥ ४० ॥

शकुनिः—वर्त्तयन्तु वनेतिष्ठन्तु, वर्तयन्तु वन्यजन्तुभिः सह सदा वने एव तिष्ठन्तु ।

कर्णः—भो आचार्य, हे गुरुदेव, अलम् व्यर्थम्, अमर्षेण क्रोधेन, दुर्योधनो हि नाम—

व्याख्या—परुषार्थम् अवभाषितम्, श्राव्यमाणः उच्यमानः सन् हितमपि परिणामसुखकरमपि, रुष्यति कोपं करोति, परपुरुषविशेषम् गुणातिशयशालिनं श्रेष्ठजनम्, स्तूयमानम् प्रशस्यमानम् न नहि, इच्छति अभिलषति, इदम् एतद्विषयम्, अवसानम् समाप्तप्रायम्, गतम् जातम्, शिष्यकार्यम् दुर्योधनकृते यागसम्पादनरूपम् कृत्यम्, रक्ष्यताम् विधीयताम्, अयं हि दुर्योधनः बहुदोषः बहुदोषयुक्तः, गजः द्विपः, इव यथा, मार्दवेनैव मृदुतायुक्तेनैव, ग्राह्यः ग्रहणीयः पाठान्तरे वाह्यः वहनीयेति भावः । स्वभावेन दुर्योधनः असहिष्णुरस्ति अतस्त्वमेव शान्तिमवलम्ब्य यज्ञान्ते दीयमानदक्षिणाग्रहणञ्च करोतु । अस्मिन् श्लोके उपमालंकारः मालिनी वृत्तञ्च ॥ ४० ॥

शकुनि—जङ्गल में हिरणों के साथ ही वे रहें ।

कर्ण—हे गुरुदेव, आप क्रोध न करें । दुर्योधन—

दुर्योधन कठोर शब्दों में कही गई हित की बातों को सुनकर भी क्रुद्ध हो जाता है । यह अत्यन्त स्वाभिमानी व्यक्ति है । दूसरों की प्रशंसा सुनकर भड़क उठता है अब यह बात समाप्त हो चुकी है, अपने शिष्य का हित साधन करें, मतवाले हाथी को फुसला कर ही वश में किया जा सकता है, दुर्योधन को भी मृदुता से ही मनाइए, झगड़ने से भला क्या लाभ आचार्य ! ॥ ४० ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

द्रोणः—वत्स ! कर्ण ! तेजस्वि ब्राह्मण्यम् । काले सम्बोधितोऽस्मि । एषोऽहं भवच्छन्दमनुवर्ते । पुत्र ! दुर्योधन ! अहं तव प्रभावी ननु ।

भीष्मः—एष इदानीं मार्गेणारब्धः । सान्त्वं हि नाम दुर्विनीतानामौषधम् ।

दुर्योधनः—न ममैव, कुलस्यापि मे भवान् प्रभुः ।

द्रोणः—एतत् तवैव युक्तम् । तत् पुत्र !

त्वं वञ्च्यसे यदि मया न तवाऽत्र दोष-

द्रोणः—वत्स पुत्र, कर्ण अङ्गाधिपते, तेजस्वि उग्रस्वभावम्, ब्राह्मण्यम् द्विजत्वम्, तेन मया तथोक्तमिति । काले यथोचिते समये, सम्बोधितः प्रबोधितः, अस्मि भवामि । एषः एतत्, भवच्छन्दम् भवदीयाशयम्, अनुवर्ते अनुसरामि पुत्र हे सुत, दुर्योधन गान्धारीतनय, अहम् द्रोणः, तव भवतः, प्रभावी ननु तव कथनं युक्तितरम् मन्ये इति भावः ।

भीष्मः—एषः इदानीम् अधुना, मार्गेण उचितरीत्या, आरब्धः सम्यक् रूपेण समारम्भितः, सान्त्वम् मार्दवम् हि यतः, ननु निश्चयार्थकमव्ययम् । दुर्विनीतानाम् दुष्टानाम् औषधम् शमनमिति ।

दुर्योधनः—न नहि, ममैव दुर्योधनस्यैव, कुलस्यापि सम्पूर्णवंशस्यापि, भवान् त्वम्, मे मम, प्रभुः शास्तेति—

द्रोणः—एतत् इदम् वचनम्, तव भवतः एव युक्तम् उचितम्, तत् तस्मात्, पुत्र वत्स ।

व्याख्या—यदि चेत्, त्वम् दुर्योधनः, मया द्रोणेन वञ्चसे प्रतार्यसे तर्हि, अत्र अस्मिन्विषये, तव भवतः, दोषः अपराधः, न नहि, यदि चेत् वाऽथवात्वाम् दुर्योधनं

द्रोण—बेटा कर्ण, ब्राह्मण प्रकृत्या तेजस्वी होते हैं, तुमने समय पर ही याद दिलाई है, मैं तुम्हारी इच्छा के अनुसार ही करूँगा । बेटा दुर्योधन, क्या मेरा तुम पर कुछ अधिकार है या नहीं ।

भीष्म—अब ये रास्ते पर चल रहे हैं । दुष्टों की दवा कोमलता ही है ।

दुर्योधन—अकेले मुझ पर ही नहीं, हमारे सम्पूर्ण वंश पर आपका अधिकार है आचार्य ।

द्रोण—ये बातें तुम्हारे ही अनुकूल है बेटा—

ऐसी स्थिति में यदि मैं तुम्हें ठगता हूँ तो लोग मुझे ही दोष देंगे अथवा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्त्वां पीडयामि यदि वास्तु तवैष लाभः ।
भेदाः परस्परगता हि महाकुलानां
धर्माधिकारवचनेषु शमीभवन्ति ॥ ४१ ॥

दुर्योधनः—तेन हि समर्थयितुमिच्छामि ।

द्रोणः—पुत्र ! केन समर्थयितुमिच्छसि ?

भीष्मेन कर्णेन कृपेण केन किं सिन्धुराजेन जयद्रथेन ।
किं द्रौणिनाऽऽहो विदुरेण सार्धं पित्रा स्वमात्रा वद पुत्र ! केन ॥४२॥

पीडयामि दक्षिणारूपेण राज्यार्द्धं पाण्डवेभ्यो दापयामि तदा एषः एतत्, लाभः उपलब्धिः, तव भवतः एव, अस्तु भवतु, महाकुलानाम् उच्चकुलोत्पन्नानाम् भवादृशानाम् जनानाम् परस्परगताः अन्योन्यप्राप्ताः हि यतः, भेदाः वैमनस्याः, धर्माधिकारवचनेषु आप्तकथनेषु, शमीभवन्ति प्रशमनम् यान्ति । त्वादृशानाम् महाकुलसम्भूतानाम् जनानाम् मङ्गलाय सुखशान्तिपूर्वकम् तेषाम् जीवनम् जगति व्यतीयात्, बन्धुविग्रहोऽपि प्रशमनं यातु इत्येतत् प्रयोजनेन गुरुजनोपदेशो भवति । तेनैवोपदेशेन पारस्परिकविरोधाः प्रशमनम् यान्तीति भावः । अस्मिन् श्लोके वसन्ततिलकावृत्तम् ॥ ४१ ॥

दुर्योधनः—तेन कारणेन, हि इति निश्चयेन, समर्थयितुम् अनुमोदनं प्राप्तुम् वाञ्छामि ।

द्रोणः—पुत्र हेवत्स, केन पुरुषविशेषेण, समर्थयितुम् सम्मतिं प्राप्तुम्, इच्छसि अभिलषसि—

व्याख्या—भीष्मेण गङ्गापुत्रेण, कर्णेन अङ्गाधिराजेन कृपेण कृपाचार्येण, सिन्धुराजेन सिन्धुदेशाधिपतिना जयद्रथेन, किम् किम्वा, द्रौणिना अश्वत्थाम्ना, आहो इति

यदि तुम्हें पीड़ा पहुँचाता हूँ तो उससे भी तुम्हें ही लाभ होगा । क्योंकि उच्चकुलोत्पन्न महापुरुषों का पारस्परिक कलह गुरुजनों के आप्त वचनों से ही शान्त होता है ॥ ४१ ॥

दुर्योधन—मैं इसका समर्थन चाहता हूँ ।

द्रोण—बेटा, किसकी सम्मति लेना चाहते हो ?

पितामह भीष्म का, कर्ण, कृपाचार्य, सिन्धुराज जयद्रथ, अश्वत्थामा, विदुर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दुर्योधनः—नहि नहि, मातुलेन ।

द्रोणः—किं शकुनिना ? (स्वगतम्) हन्त ! विपन्नं कार्यम् ।

दुर्योधनः—मातुल ! इतस्तावत् । वयस्य ! कर्ण ! इतस्तावत् ।

द्रोणः—(आत्मगतम्) भवतु, एवं तावत् करिष्ये । (प्रकाशम्) वत्स ! गान्धारराज ! इतस्तावत् ।

शकुनिः—अयमस्मि ।

विकल्पे, विदुरेण पाण्डवानां कनिष्ठभ्रात्रा सार्धम् सह, वा पित्रा जनकेन, स्वमात्रा निजजनन्या सह, तदेतेषाम् केन सहानुमोदयितुमिच्छसि तद्वद कथय ॥ ४२ ॥

दुर्योधनः—नहि नहि मा मैवम्, मातुलेन शकुनिना ।

द्रोणः— किम् इति प्रश्ने, शकुनिना मातुर्भ्रात्रा मातुलेन, (स्वगतम् आत्मगतम्) हन्त इति खेदे, विपन्नम् कठिनम्, कार्यम् ।

दुर्योधनः—मातुल हे माम, इतस्तावत् इतः समागम्यताम्, वयस्यकर्ण मित्र अङ्गराज, त्वमपि इतस्तावत् इतः समागम्यताम् ।

द्रोणः—(आत्मगतम् स्वगतम्) भवतु जातु, एवम् इत्थम् तावत् इत्यवधारणे, करिष्ये (प्रकाशम्) वत्स पुत्र, गान्धारराज गान्धारदेशस्याधिपते, इतस्तावत् अत्रागम्यताम् ।

शकुनिः—अयमस्मि अत्रैवाहं स्थितोऽस्मि ।

या अपने माता पिता का अथवा किसी अन्य का बोलो बेटा किसका समर्थन तुम्हें चाहिए ॥ ४२ ॥

दुर्योधन—नहीं नहीं, इनमें से किसी का नहीं, मैं अपने मामा का समर्थन चाहता हूँ ।

द्रोण—क्या कहा ? शकुनि की सम्मति चाहते हो (अपने आप) हाय हाय सारा गुड़ गोबर हुआ ।

दुर्योधन—मामा, जरा इधर तो आना, मित्र कर्ण तुम भी ।

द्रोण—(अपने आप) जो हो तबतक ऐसा करता हूँ (सुनकर) बेटा गान्धार नृपति सुनो तो ।

शकुनि—आया आचार्य,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

द्रोणः—वत्स !

क्रोधप्रायं वयो जीर्णं क्षन्तव्यं बटुचापलम् ।
अस्य रूक्षस्य वचसः परिष्वङ्गः शमीक्रिया ॥ ४३ ॥

भीष्मः—(आत्मगतम्)

एष शिष्यस्य वात्सल्याच्छकुनिं याचते गुरुः ।
एवं सान्त्वीकृतोऽप्येष नैव मुञ्चति जिह्मताम् ॥ ४४ ॥

शकुनिः—(आत्मगतम्) अहो शठः खल्वाचार्यः, स्वकार्यलोभान्मां सान्त्वयति ।

द्रोणः—वत्स पुत्र ।

व्याख्या—जीर्णम् जराग्रस्तमतिशीर्णम्, वयः आयुः, क्रोधप्रायम् कोपाविष्टम्, तत् बटुचापलम् शिशुजनोचितम् चाञ्चल्यम् कटुवचनप्रयुक्तात्मकम् क्षन्तव्यम् मर्षितव्यम् अस्य पूर्वकथितस्य द्रोणस्य रूक्षस्याप्रियस्य कठोरस्य वचसः कथनस्य परिष्वङ्गः आश्लेषः, एव शमीक्रिया शान्तिसाधनम् भवतीतिशेषः ॥ ४३ ॥

भीष्मः—(आत्मगतम् स्वगतम्)

व्याख्या—एषः, असौ, गुरुः, आचार्यः, शिष्यस्य, अन्तेवासिनः, वात्सल्यात्, वत्सलभावात् हेतोः शकुनिम्, दुर्योधनमातुलम्, याचते प्रार्थ्यते, किन्तु, एवम् इत्थम्, सान्त्वीकृतः कृपापूर्वं केनानुनीतोऽपि एषः शकुनिः, जिह्मताम् निजकुटिलताम्, नैव मुञ्चति जहातीत्यर्थः ॥ ४४ ॥

शकुनिः—(आत्मगतम् स्वगतम्) अहो इत्याश्चर्यम्, शठः धूर्तः, खलु

द्रोण—बेटा,

बुढ़ौती में लोगों को क्रोध जल्दी ही आजाता है। इसलिए क्रोधावेश में मैंने तुमसे जो कुछ भी कटुवचन कहा है उसे भूल जाओ। आओ, उस गलती के लिए तुम्हें गले लगाता हूँ ॥ ४३ ॥

भीष्म—(स्वगत)

हाय, शिष्य के प्रति स्नेह होने के कारण ही आचार्य शकुनि को इस तरह मना रहे हैं किन्तु, यह दुष्ट इस तरह मनाये जाने पर भी अपनी कुटिलता नहीं छोड़ता है ॥ ४४ ॥

शकुनि (अपने आप) अरे, आचार्य तो प्रपंची है, अपने काम की सिद्धि के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(सर्वे परिक्रम्योपविशन्ति)

दुर्योधनः—मातुल ! पाण्डवानां राज्यार्धं प्रति को निश्चयः ?

शकुनिः—न दातव्यमिति मे निश्चयः ।

दुर्योधनः—दातव्यमिति वक्तुमर्हति मातुलः ।

शकुनिः—यदि दातव्ये राज्ये किमस्माभिः सह मन्त्रयसे । ननु सर्वमेव प्रदीयताम् ।

दुर्योधनः—वयस्य ! अङ्गराज ! भवानिदानीं न किञ्चिदाह ।

निश्चयेन, आचार्यः द्रोणः, स्वकार्यलोभात् निजकार्यसाधनव्यग्रत्वात्, माम् शकुनिम्, सान्त्वयति मृदुवचनैः सम्बोधयति ।

सर्वे सकलजनाः, परिक्रम्य भ्रमणं कृत्वा, उपविशन्ति तिष्ठन्ति

दुर्योधनः—मातुल मम, पाण्डवानां पाण्डुपुत्राणाम्, राज्यार्धम् राज्यस्यार्धभागम्, प्रतिदातुम्प्रति, को निश्चयः तव कः निर्णयः ?

शकुनिः—न नहि, दातव्यम् देयम्, इति इत्थम्, मे शकुनेः, निश्चयः निर्णयः ।

दुर्योधनः—दातव्यम् दातुम् योग्यः, इति इत्थम्, वक्तुम् कथयितुम्, अर्हति शक्नोति, मातुलः मातुः भ्राता,

शकुनिः—यदि चेत्, दातव्यं त्वया दातुम् निश्चितम् राज्ये राज्यार्धभागम्, किम् कथम्, अस्माभिः शकुन्यादिभिः, सह सार्धम्, मन्त्रयसे विचारं करोषि नन्विति प्रश्ने, सर्वमेव सकलराज्यमेव, प्रदीयताम् तस्मै दीयताम् ।

दुर्योधनः—वयस्य मित्र, अङ्गराजकर्ण, भवान् त्वम्, इदानीम् अधुना, न नहि, किञ्चित् किमपि, आह कथन्न वदसि ?

लिए मुझे इस तरह मना रहे है ।

(सभी घूमकर बैठ जाते हैं)

दुर्योधन—मामाजी, पाण्डवों को राज्यार्द्ध देने के सम्बन्ध में आपकी क्या राय है ?

शकुनि—मेरा अन्तिम निर्णय है कि उन्हें कुछ नहीं देना चाहिए ।

दुर्योधन—मामाजी, आपको तो कहना चाहिए कि उन्हें देना उचित है ।

शकुनि—यदि देना ही है तो फिर हमसे विचार क्यों पूछते हो ? सारा राज्य ही दे डालो ।

दुर्योधन—मित्र कर्ण, तुम अपना अभिमत क्यों नहीं व्यक्त करते ?

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कर्णः—इदानीं किमभिधास्यामि,

रामेण भुक्तां परिपालितां च सुभ्रातृतां न प्रतिषेधयामि।
क्षमाक्षमत्वे तु भवान् प्रमाणं सङ्ग्रामकालेषु वयं सहायाः ॥ ४५ ॥

दुर्योधनः—मातुल ! बलत्प्रत्यमित्रोऽनुपजीव्यश्च कश्चित् कुदेशश्चिन्त्यताम्। तत्र वसेयुः पाण्डवः।

शकुनिः—हन्त भोः !

कर्णः—इदानीम् अधुना, किम् अभिधास्यामि वक्ष्यामि।

व्याख्या—रामेण दाशरथिना, भुक्ताम् अनुभूताम्, सुभ्रातृताम् सुष्टुरूपेण भ्रातृभावम्, परिपालिताम् सर्वतोभावेन रक्षिताम्, न नहि, प्रतिषेधयामि निषेधयामि, क्षमाक्षमत्वे राज्यस्यार्धभागं देयमदेयम् वेति निर्णये, भवान् त्वम् स्वयमेव प्रमाणम् निर्णायकः, वयम् तु कर्णादिकास्तु, सग्रामकालेतु यदा संगरो भविष्यति तदातस्मिन् काले, सहायाः सहायकरूपेण उपस्थिताः भवामः ॥ ४५ ॥

दुर्योधनः—मातुल हे माम, बलवत्प्रत्यमित्रः सशक्तशत्रुभिर्युक्तः अनुपजीव्यः जीविकाप्रदानेऽक्षमः कश्चित् कोऽपि, कुदेशः कुत्सितप्रदेशः, चिन्त्यताम् विचार्यताम्, तत्र तस्मिन्नेव स्थाने वसेयुः निवासं कुर्युः, पाण्डवः पाण्डोः पञ्चपुत्राः।

शकुनिः—हन्त भोः इति खेदे,

कर्ण—भला इस पर मैं तुम्हें क्या कहूँ ?

भगवान् राम की तरह अगर तुम भातृत्व के सुख का उपभोग करना चाहो तो मैं भला उसका निषेध क्यों करूँ ? जहाँ तक राज्य देने या न देने का प्रश्न है इनमें तुम पूर्ण स्वतंत्र हो, हाँ, युद्ध छिड़ जाने पर मैं तुम्हारा साथ दूँगा, यह निश्चित है ॥ ४५ ॥

दुर्योधन—शक्तिशाली शत्रुओं से घिरा कोई कुदेश जो जीविका देने में असमर्थ हो वहाँ पाण्डव निवास करें।

शकुनि—खेद है—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

शून्यमित्यभिधास्यामि कः पार्थाद् बलवत्तरः ?
ऊषरेष्वपि सस्यं स्याद् यत्र राजा युधिष्ठिरः ॥ ४६ ॥

दुर्योधनः—अथेदानीं,

गुरुकरतलमध्ये तोयमार्वाजितं मे
श्रुतमिह कुलवृद्धैर्यत् प्रमाणं पृथिव्याम् ।
तदिदमपनयो वा वञ्चना वा यथा वा
भवतु नृप ! जलं तत् सत्यमिच्छामि कर्तुम् ॥ ४७ ॥

व्याख्या—शून्यम् नकारात्मकम् उत्तरम्, अभिधास्यामि, दास्यामि यतः पार्थात् अर्जुनात्, कः पुरुषविशेषः, बलवत्तरः समधिकबलः ? ऊषरेष्वपि अनूर्वरेष्वपि सस्यसमृद्धिम्, स्यात् भवेत्, यत्र यस्मिन् देशे, राजा नृपतिः, युधिष्ठिरः धर्मराजः, अस्तीति । त्वया कुदेशः, चिन्त्यताम् इति कृतस्यानुरोधस्योत्तरे शून्यमित्यभिधास्यामि । जीवाः स्वकीये जीवने यादृशं कर्म आचरन्ति तादृशमेव फलमपि लप्स्यन्ते, सन्ति कर्माण्येव जीवनघटकानि । पाण्डवाः सततं जीवनं ह्युत्तमं सर्वविधं तथा समुन्नतं च कर्तुं शुभान्येव कर्माणि कुर्वन्ति । अतः धर्ममूर्त्तेर्युधिष्ठिरस्य स्वामित्वमात्रेण कुदेशस्यापि उर्वरत्वं भवति । अर्जुनापेक्षया न कोऽपि बलवत्तरः अतः कस्मिंश्चिदपि देशे दीयमाने तेषां प्रभावातिशयात्स्यादेवोन्नतिः ॥ ४६ ॥

दुर्योधनः—अथ अनन्तरम्, इदानीम् अधुना—

व्याख्या—गुरुकरतलमध्ये आचार्यद्रोणस्य हस्ते, तोयम् सलिलम्, आर्वाजितम्, इह अस्मिन्विषये, मे मम, कुलवृद्धैः भीष्मप्रभृतिपुरुषैः, श्रुतम् अवगतम् यत् जलदानम् पृथिव्याम् भुवि, प्रमाणम् प्रसिद्धम्, तत् तस्मात्, इदम् एतत्, अपनयः दुर्नीतिः, वा अथवा वञ्चना प्रतारणा, यथा येन प्रकारेण वा भवतु जातु, नृप हे राजन्, तत् तस्मात्, जलम् सलिलम्, सत्यम् प्रमाणितम्

ऐसा कोई देश नहीं जहाँ अर्जुन से अधिक बलशाली उसका शत्रु हो या जहाँ युधिष्ठिर का साम्राज्य हो वहाँ की भूमि उपजाउ बन जाय ॥ ४६ ॥

दुर्योधन—अच्छा तो अब

हे राजन् मैंने गुरुदेव के हाथों में दान का जल छोड़ दिया है । इसे आप अनीति कहें या ठगी । मैंने कुल वृद्धों से सुना है, शास्त्रों से जाना है कि यह जल

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

शकुनिः—अनृतवचनान्मोचयितव्यो भवान् ननु ?

दुर्योधनः—अथ किम् ।

शकुनिः—तेन हीतस्तावत् (उपसृत्य) भो आचार्य ! इहात्रभवान् कुरुराजो भवन्तं विज्ञापयति ।

द्रोणः—वत्स ! गान्धारराज !! अभिधीयताम् ।

शकुनिः—यदि पञ्चरात्रेण पाण्डवानां प्रवृत्तिरुपनेतव्या, राज्यार्धं प्रदास्यति । किल । समानयतु भवानिदानीम् ।

कर्त्तुम् विधातुम् इच्छामि अभिलषामि, येन केन प्रकारेण आचार्यहस्ते प्रदत्तस्य जलस्य सत्यतां प्रमाणीकर्त्तुमिच्छता मया राज्यं विभज्य देयमिति भावः । मालिनीवृत्तम् ॥ ४७ ॥

शकुनिः—अनृतवचनात् मिथ्याभाषणात्; मोचयितव्यः मुक्तो विधातव्यः, भवान् त्वम् ननु इति प्रश्ने ?

दुर्योधनः—अथ किम् कथन्न हि,

शकुनिः—तेन कारणविशेषेण, हि, इतस्तावत् अस्मिन्नेव स्थाने (उपसृत्य समीपं गत्वा) भो आचार्य हे गुरुदेव, इह अस्मिन् स्थाने, अत्र भवान् पूज्यः श्रीमान् कुरुराजः कुरुदेशविशेषस्य नृपतिः, भवन्तम् श्रीमन्तम्, विज्ञापयति निवेदयति ।

द्रोणः—वत्स पुत्र, गान्धारराज गान्धारनृपते, अभिधीयताम् कथ्यताम् ।

शकुनिः—यदि चेत्, पञ्चरात्रेण. रात्रिपञ्चकेन, पाण्डवानाम् युधिष्ठिरादीनाम्, प्रवृत्तिः प्रगतिः उपनेतव्या समानीय दातव्या, राज्यस्यार्धम् अर्धराज्यम्,

---

ही दान का प्रमाण है । मैं भी इस दान जल को प्रमाणित करना चाहता हूँ ॥४७॥

शकुनि—अच्छा तो आप असत्य से मुक्ति चाहते हैं ?

दुर्योधन—और क्या ?

शकुनि—अच्छा तो इधर आइए (द्रोण के पास जाकर) आचार्य, कुरुराज आप से कुछ निवेदन करता है ।

द्रोण—कहो बेटा गान्धारराज,

शकुनि—यदि आप पाँच रात के भीतर पाँचो पाण्डव का पता लगायें

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitized by eGangotri

द्रोणः—मा तावद् भोः !

ये कर्तुकामैश्छलनं भवद्भिः संवत्सरैर्द्वादशाभिर्न दृष्टाः ।
ते पञ्चरात्रेण मयोपनेया वरं ह्यदत्तं विशदाक्षरेण ॥ ४८ ॥

भीष्मः—पौत्र ! दुर्योधन ! अच्छलो धर्मः वयमपि तावदस्मिन्नर्थे प्रीताः स्मः । पश्य पौत्र !

प्रदास्यति अङ्गीकरोमीति, किल निश्चयेन, समानयतु अनायतु, भवान् त्वम्, इदानीम् अधुना ।

द्रोणः—मातावत् भो नैवम् भवितुमर्हति—

व्याख्या—ये पाण्डवाः, छलनम् कपटम्, कर्तुकामैः विधातुम् समीहमानैः, भवद्भिः शकुनिदुर्योधनादिभिः सर्वैरपि मिलित्वा, संवत्सरैर्द्वादशभिः द्वादशसंख्यकैः वर्षैः, न नहि, दृष्टा, अवलोकिताः, ते युधिष्ठिरादयः, मया द्रोणाचार्येण, पञ्चरात्रेण स्वल्पकालेन, उपनेयाः अन्विष्यानेतव्याः । एतेन भवता हि विशदाक्षरेण स्पष्टशब्देन, अदत्तम् न दातव्यमिति कथनीयं वरमुचितम् । उपजातिवृत्तम् ॥ ४८ ॥

भीष्मः—पौत्र हे पौत्र, दुर्योधन गान्धारीतनय, अच्छलो धर्मः धर्मे कपटाचारमनुचितम्, वयमपि भीष्मादिगुरुजना अपि तावत् इत्यवधारणे अस्मिन्नर्थे एतस्मिन् विषये, प्रीताः प्रसन्नाः स्मः भवामः । पश्य अवलोकय पौत्र ।

तो दुर्योधन निश्चय ही उन्हें आधा राज्य दे देगा । अब आप इसका पता करें ।

द्रोणः—नहीं, कदापि नहीं,

जिनकी खोज बारह बर्षों तक-आपने की, फिर भी आपका कपट प्रबन्ध सफल न हो सका, उन्हें मैं पाँचरात के भीतर खोज निकालूँ यह कैसे संभव हो सकता है ? अच्छा होता साफ शब्दों में आप कह देते दक्षिणा नहीं देनी है ॥४८॥

भीष्म—बेटा दुर्योधन, धर्म कार्य में कपट को जगह देना अच्छा नहीं लगता । हमलोग भी तो इससे प्रसन्न ही हैं । देखो—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वर्षेण वा वर्षशतेन तेषां त्वं पाण्डवानां कुरु संविभागम्।
तस्मात् प्रतिज्ञां कुरु वीर! सत्यां सत्या प्रतिज्ञा हि सदा कुरूणाम्॥४९॥

दुर्योधनः—एष एव मे निश्चयः।

द्रोणः—(आत्मगतम्)

अद्य मे कार्यलोभेन हनूमत्त्वं गता स्पृहा।
लङ्घयित्वार्णवं येन नष्टा सीता निवेदिता॥ ५०॥

व्याख्या—वर्षेण मात्र अज्ञातवासज्यन्येन एकेनाब्देन, वा अथवा वर्षशतेन हायनशतेन, त्वम् दुर्योधनः, तेषाम् पाण्डवानाम्, युधिष्ठिरादीनामस्वभ्रातॄणाम्, संविभागम् राज्यार्धदानम्, कुरु विधेहि, समयाधिक्येन मदीयाग्रहः किञ्च त्वया प्रतिज्ञापालने प्रयतनीयमिति भावः। तस्मात् अतः वीर हे वीर, पुरुषश्रेष्ठ, प्रतिज्ञाम् स्वसत्यसंकल्पम्, सत्यम् अनृतरहितम्, कुरु विधेहि, अयम् हि तव-कुलाचारोऽस्ति तेन कुरूणाम् कुरुवंशोद्भवानाम्, प्रतिज्ञा संकल्पः, सदा सर्वदा, सत्या अवश्यंभाविनी दशा भवतीति भावः॥ इन्द्रवज्रावृत्तम्॥ ४९॥

दुर्योधनः—एष एव एतदेव, मे मम दुर्योधनस्य, निश्चयः प्रतिज्ञा। अतो विगतचिन्तैर्भूयताम् भवद्भिरिति।

द्रोणः—(आत्मगतम् स्वगतम्)

व्याख्या—अद्य अस्मिन्नेवदिने, मे मम द्रोणस्य, स्पृहा अभिलाषः, कार्य-लोभेन युधिष्ठिरादीनाम् शीघ्रान्वेषणे स्पृहोदयेन, हनूमत्वम् पवनतनयस्याभिलाष इवाति विस्तीर्णा गताः जाताः, येन अभिलाषेण हनूमता अर्णवम् जलधिम्, लङ्घयित्वा विलंघ्य, नष्टा विलुप्ता, सीता जनकतनया, निवेदिता अन्विष्य रामाय निवेदितेति भावः॥ ५०॥

एक साल में हो या सौ साल में, तुम पाण्डवों को उनका हिस्सा राज्य में दे दो और अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर दिखलाओ, क्योंकि कुरूवंशीयों की प्रतिज्ञा सदा सत्य होती है॥ ४९॥

दुर्योधन—मेरी भी तो यही राय है।

द्रोण—आज काम की सफलता के लिए मेरी इच्छा हनूमान बनने की हो रही है जिन्होंने शीघ्र ही सागर पारकर खोई हुई सीता का राम को पता बता दिया॥ ५०॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तत् कुतो न खलु पाण्डवानां प्रवृत्तिरुपनेतव्या ।

(प्रविश्य)

भटः—जयतु महाराजः । विराटनगराद् दूतः प्राप्तः ।

सर्वे—शीघ्रं प्रवेश्यताम् ।

भटः—यदाज्ञापयथ । (निष्क्रान्तः ।)

(प्रविश्य)

दूतः—जयतु महाराजः ।

सर्वे—किमागतो विराटेश्वरः ?

तत् तस्मात्, कुतो न कुत्रतः, खलुनिश्चयेन, पाण्डवानाम् कुन्तीसुतानाम्, प्रवृत्तिः गतिविधिः उपनेतव्या ज्ञातव्या भवतीति भावः ।

(प्रविश्य प्रवेशम् कृत्वा)

भटः—जयतु सर्वतोभावेन विजयताम् महाराजः नृपदुर्योधनः, विराट्-नगरात् इतः संवादवाहकः प्राप्तः समागतः ॥

सर्वे—शीघ्रम् सत्वरम्, प्रवेश्यताम् आनीयताम् ।

भटः—यत् यथा, आज्ञापयथ आदिशथ । (निष्क्रान्तः बहिर्गतः)

(प्रविश्य (प्रवेशं कृत्वा)

दूतः—जयतु सर्वतोभावेन विजयताम्, महाराजः नृपदुर्योधनः ।

सर्व—किम् इति प्रश्ने, आगतः समागतः, विराटेश्वरः विराट्देशस्याधिपतिः ।

तो अब इन पाण्डवों का पता कैसे लगाऊँ ?

(प्रवेश करके)

भट—महाराज की जय हो, विराट् नगर से एक दूत आया है ।

सभी—उन्हें शीघ्र ही भीतर बुलाओ

भट—श्रीमान् की जैसी आज्ञा (जाता है)

(भीतर आकर)

भट—महाराज की विजय हो ।

सभी—क्या विराट् नरेश आ गये ?

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

दूतः—विषादेनावृतो नोपगच्छति ।

सर्वे—कस्तस्य विषादः ?

दूतः—श्रोतुमर्हति महाराजः । यत् तत्सम्बन्धि सन्निकृष्टं कीचकानां भ्रातृशतं,

रात्रौ छन्नेन केनापि बाहुभ्यामेव हिंसितम् ।
दृश्यते हि शरीराणामशस्त्रजनितो वधः ॥ ५१ ॥

सर्वे—कथमशस्त्रजनितो वध इति ।

दूतः—विषादेन कष्टेन पीडया वा आवृतः पीडितः, न नहि, उपगच्छति आयातीति भावः ।

सर्वे—कः कुतः , तस्य विराट्नृपतेः, विषादः कष्टम् ?

दूतः—श्रोतुम् आकर्णितुम्, अर्हति शक्नोति, महाराजः नृपतिः । यत् तत्सम्बन्धि विराट् नृपतेः आत्मीयजनः, सन्निकृष्टम् अत्याप्तजनम्, कीचकानाम् भ्रातृशतम् शतसंख्यकाः कीचकाः ।

व्याख्या—रात्रौ निशीथे, छन्नेन गुप्तरूपेण, बाहुभ्यामेव करमुष्ट्यादिभ्यामेव केनापि अपरिचितेन जनेनापि, हिंसितम् मारितम्। केवलमुष्ट्याघातेनैव शतसंख्यकाः विराट्श्यालाः कीचकबन्धवः केनापि हताः। मुष्ट्याघातहनने प्रमाणमाह—दृश्यत इति । शरीराणाम्मृतकीचकदेहानां अशस्त्रजनितः शस्त्राघातरहितः, वधः मारणम्, दृश्यते अवलोक्यते । तेषां मृतशरीरे शस्त्राघातजनितचिह्नानामनुपलब्धिः । तेन बाहुभ्यामेव हिंसित इति भावः ॥ ५१ ॥

सर्वे—कथम् केन प्रकारेण, अशस्त्रजनितः शस्त्राघातरहितः, वधः हिंसा इति ।

दूत—नहीं श्रीमान् वे अभी कुछ कष्ट में पड़े हैं ।

सभी—उन्हें क्या तकलीफ है दूत !

दूत—तो सुने महाराज, उनके निकट सम्बन्धी सौ भाई कीचकों का—किसी ने रात में ही हाथों से बध कर डाला है । क्योंकि मृतकों के शरीर पर किसी तरह के शस्त्राघात के कोई चिह्न नहीं हैं ॥ ५१ ॥

सभी—क्या कहा, विना हथियार के ही उन सबों की हत्या कर दी गई ?

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitized by eGangotri

भीष्मः—कथमशस्त्रेणेति । (अपवार्य) भो आचार्य! अभ्युपगम्यतां पञ्चरात्रम् ।
द्रोणः—(अपवार्य) किमर्थम् ?
भीष्मः—

भीमसेनस्य लीलैषा सुव्यक्तं बाहुशालिनः ।
योऽस्मिन् भ्रातृशते रोषः स तस्मिन् फलितः गते ॥ ५२ ॥

द्रोणः—कथं भवान् जानाति ?
भीष्मः—

कथं पण्डित! कूलेषु भ्रान्तानां बालचापलम् ।

भीष्मः—कथम् इति प्रश्ने, अशस्त्रेणेति शस्त्रप्रयोगं विनैव मारिताः कीचकाः इति आश्चर्यस्य विषयः । (अपवार्य) भो आचार्य हे द्रोण, अभ्युपगम्यताम् स्वीक्रियताम्, पञ्चरात्रम् पञ्चरात्रेणैवान्विष्योपलब्धव्याः पाण्डवाः इति ।

द्रोणः—अपवार्य—अन्ये न शृणुयुरिति बुद्ध्यभिपताककरेणावृत्यमुखमिति बोध्यम् । किमर्थम् एतस्य कथनस्य किमाशयः ।

व्याख्या—एषा श्रूयमाणा, लीला क्रीड़ा, बाहुशालिनः अतिशक्तिशालिनः, भीमसेनस्य पाण्डवद्वितीयस्य, सुव्यक्तम् स्पष्टं प्रतिभाति, अस्मिन् कौरवे, भ्रातृशते शतसंख्यकेषु भ्रातृषु यः रोषः क्रोधविशेषः, सः असौ तस्मिन् शते कीचकादौ कृतार्थताम् गतः । भीमादतिरिक्तः न कोप्यन्यः एवं कर्त्तुम् समर्थः इति ॥५२॥

द्रोणः—कथम् केन प्रकारेण, भवान् श्रीमान्, जानाति अवगतोऽसि ?

व्याख्या—पण्डित हे बुद्धिमन् द्रोण, छलेषु, कपटेषु, भ्रान्तानाम् भ्रमन्ताम्, वत्सानाम्, बालवृषभानाम्, बालचापलम् शैशवजन्यचाञ्चल्यम्, शृङ्गस्था-

---

भीष्म—क्यों विना हथियार के ही (एक ओर मुँह करके) आचार्य, अब आप पाँच रात के भीतर पाण्डवों का पता लगाने वाली शर्त स्वीकार कर लें ।

द्रोण—(एक ओर मुँह करके) क्यों ?

भीष्म—निश्चय ही अनन्य पराक्रमी भीम के हाथों का यह खेल है । सौ भाई कौरवों पर जो उसका क्रोध था उसे उसने उन सौ भाई कीचकों पर ही उतारा ॥ ५२ ॥

द्रोण—यह आप कैसे जानते हैं ?

भीष्म—जानता हूँ आचार्य, किनारे पर दौड़ लगाने वाले बछड़े की

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

नाभिजानन्ति वत्सानां शृङ्गस्थानानि गोवृषाः ॥ ५३ ॥

द्रोणः—गोवृषा इति। हन्त! सिद्धं कार्यम्। (प्रकाशम्) पुत्र! दुर्योधन! अस्तु पञ्चरात्रम्।

दुर्योधनः—अथ किम्। अस्तु पञ्चरात्रम्।

द्रोणः—भो भो यज्ञमनुभवितुमागता राजानः! शृण्वन्तु शृण्वन्तु भवन्तः। इहात्रभवान् कुरुराजो दुर्योधनः, न, न, न; मातुलसहितः, यदि पाण्डवानां

नानि शृङ्गेण खननस्थानानि, गोवृषाः वलीवर्दाः, कथम् केन कारणेन, न नहि, अभिजानन्ति अवगच्छन्ति ॥ अप्रस्तुतप्रशंसालङ्कारः ॥ ५३ ॥

द्रोणः—गोवृषा इति वृषराज इति, हन्त इति प्रसन्नतायाम्, सिद्धम् सफलम्, कार्यम् मनोरथम् (प्रकाशम् यथा स्यात् प्रकटम्) पुत्र हे सुत, दुर्योधन गान्धारीसुत, अस्तु स्वीकृतम् तव पञ्चरात्रम् मया पञ्चरात्रेणैव पाण्डवाः अन्विष्योपलब्धव्याः।

दुर्योधनः—अथ किम् किमन्यत्, अस्तु भवतु पञ्चरात्रम् स्वीकार्यताम् मदीयकथनम्।

द्रोणः—भो भो इति सम्बोधने, यज्ञम् मखम्, अनुभवितुम् द्रष्टुम्, आगताः सम्प्राप्ताः सम्मिलिता वा राजानः नृपतयः, शृण्वन्तु शृण्वन्तु सर्वे राजानः आकर्णयन्तु, भवन्तः श्रीमन्तः, इह अस्मिन्विषये, अत्रभवान् श्रीमान्, कुरुराजः कुरुदेशस्य नृपतिः, दुर्योधनः कौरवानामग्रजः, न न न नहि नहि, मातुलसहितः मातुः भ्रात्रा सहितः, यदि चेत्, पाण्डवानाम् पाण्डुपुत्राणाम् प्रवृत्तिरुपनेतव्या

चंचलता और उसकी सींगों के उत्खनन स्थान को भला वृषराज कैसे नहीं जानेगा? ॥ ५३ ॥

द्रोण—वृषराज, तब तो काम बन गया (प्रकट) दुर्योधन, तुम्हारी पाँच रातवाली शर्त मुझे मंजूर है।

दुर्योधन—अच्छी बात है तो रही पाँच रात की बात।

द्रोण—इस यज्ञ में भाग लेने वाले नृपतिगण आप लोग कान खोलकर सुनें, समादरणीय कुरुराज, नहीं-नहीं अपने मामा के साथ महाराज दुर्योधन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रवृत्तिरुपनेतव्या, राज्यस्यार्धं प्रदास्यति किल, ननु पुत्र !

दुर्योधनः—अथ किम् ।

द्रोणः—एतद् द्विस्त्रिः सम्प्रधार्यताम् ।

शकुनिः—काले ज्ञास्यामि ।

द्रोणः—ननु गाङ्गेय !

भीष्मः—(आत्मगतम्)

आचार्यस्य यदा हर्षो धैर्यमुत्क्रम्य सूचितः ।
शङ्के दुर्योधनेनैष वञ्च्यमानेन वञ्चितः ॥ ५४ ॥

समाचारः प्राप्यते, राज्यस्यार्धम् अधिकृतराष्ट्रविशेषस्यार्धभागम्, प्रदास्यति प्रदानं करिष्यति, किल निश्चयेन, नन्विति प्रश्ने, पुत्र हे सुत !

दुर्योधनः—अथ किम् कथन्नहि ? सत्यमिदम् कथनम् ।

द्रोणः—एतत् वार्ता, द्विः द्विवारम्, त्रिः त्रिवारम् वा, सम्प्रधार्यताम् सम्यक् प्रकारेण धारणम् क्रियताम् ।

शकुनिः—काले समायाते समये, ज्ञास्यामि विचारम् करिष्यामि ।

द्रोणः—नन्विति प्रश्नार्थे, गाङ्गेय हे गङ्गापुत्र भीष्म ।

भीष्मः—(आत्मगतम् स्वगतम्)

व्याख्या—यदा यदि, आचार्यस्य गुरुद्रोणस्य, हर्षः प्रसन्नता, धैर्यम् गाम्भीर्यम् उत्क्रम्य अतिक्रमणम् कृत्वा, सूचितः प्रकटीकृतस्तेन शङ्के सम्भावयामि, एषः गुरुद्रोणः, वञ्च्यमानेन राज्यार्धविभाजने वाध्यमानेन दुर्योधनेन,

---

ने स्वीकार किया है यदि पाँच रात के भीतर पाण्डवों का पता लग जाय तो उन्हे राज्य का आधा भाग दे दिया जायेगा । क्यों बेटे ठीक है न ?

दुर्योधन—हाँ तो और क्या ?

द्रोण—इस बात पर दो-तीन बार बिचार लो ।

शकुनि—समय आने पर सोच लूँगा ।

द्रोण—क्यों गाङ्गेय,

भीष्म—(स्वगत) आचार्य की प्रसन्नता सीमा पार कर गई है । अतः मुझे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(प्रकाशम्) पौत्र ! दुर्योधन ! अस्ति मम विराटेनाप्रकाशं वैरम्; अथ भवतो यज्ञमनुभवितुमनागता इति । तस्मात् क्रियतां तस्य गोग्रहणम् ।

द्रोणः—(अपवार्य) भो गाङ्गेय ! प्रियशिष्यः खलु मे तत्रभवान् विराटेश्वरः । किमर्थं तस्य गोग्रहणम् ।

भीष्मः—(अपवार्य) ब्राह्मणार्जवबुद्धे !

धर्षिता रथशब्देन रोषमेष्यन्ति पाण्डवाः ।

कुरुदेशाधिपतिना, वञ्चितः प्रतारितः। द्रोणस्यास्मिन्विषये प्रदर्शितातिहर्षः कदाचित् खेदे परिणतो भविष्यतीति भीष्मस्याशङ्का ॥ ५४ ॥

(प्रकाशम् स्पष्टम्) पौत्र दुर्योधन, मम भीष्मस्य विराटेन विराटदेशाधिपतिना सह अप्रकाशम् आन्तरिकम् वैरम् विरोधः अस्ति, अथ अनन्तरम्, भवतः श्रीमतः,यज्ञम् मखम्; अनुभवितुम् द्रष्टुम्, अनागता न सम्मिलिता; तस्मात् कारणेन, तस्य विराटनृपतेः, गोग्रहणम् गवामपहरणम्, क्रियताम् निधीयतामिति ।

द्रोणः—(अपवार्य आच्छाद्य) भो गाङ्गेय हे भीष्म, प्रियशिष्यः प्रियोऽन्तेवासी, खलु निश्चयेन, मे मम, तत्रभवान् विराटेश्वरः विराटनृपतिः, किमर्थम् केन कारणेन तस्य विराटनृपतेः, गोग्रहणम् गोधनहरणमिति ।

भीष्मः—(अपवार्य जनान्तिकम्) ब्राह्मणार्जवबुद्धे कपटानभिज्ञसरलमते,

व्याख्या—रथशब्देन स्यन्दनस्य घोषेण, धर्षिताः आकृष्टकर्णाः, पाण्डवाः पाण्डुपुत्राः, रोषम्, क्रोधम्, एष्यन्ति भजिष्यन्ते, तेषाम् युधिष्ठिरादीनाम्,

---

सन्देह है कि ठगे जाने वाले दुर्योधन से कहीं आचार्य स्वयं न ठगे जायँ ॥५४॥

(प्रकट) पौत्र दुर्योधन, विराट नरेश से हमारा आन्तरिक विरोध तो है ही, इस यज्ञ में उसने भाग नहीं लिया है तो क्यों न उसका गोधन अपहृत किया जाय ।

द्रोण—(एक ओर मुँह फेर कर) अजी पितामह भीष्म, विराट नरेश तो मेरे प्रिय शिष्यों में एक है तो फिर उसका गोधन क्यों अपहृत करते हो ?

भीष्म—(मुँह फेर कर) अरे ओ निश्छल ब्राह्मण देवता,

दुर्योधन के रथ की घरघराहट सुनकर ही पाण्डव भड़क उठेंगे, उनमें

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अस्ति तेषां कृतज्ञत्वमिष्टं गोग्रहणे स्थितम् ॥ ५५ ॥

भटः—जयतु महाराजः । सज्जाः खलु रथा नगरप्रवेशाभिमुखाय ।

दुर्योधनः—

एभिरेव रथैः शीघ्रं क्रियतां तस्य गोग्रहः ।
गदा यज्ञप्रशान्ता च पुनर्मे करमेष्यति ॥ ५६ ॥

द्रोणः—तस्मान्मे रथमानयन्तु पुरुषाः,—

कृतज्ञत्वम् उपकारज्ञत्वम्, अस्ति, गोग्रहणे गोधनहरणे, इष्टम् अभिलषितम्, उपस्थितमस्ति । अर्थात् विराटेनोपकृताः पाण्डवाः तस्य गवामपहरणे तुष्णीं भूत्वा स्थातुम् न शक्नुवन्ति, तत्प्रत्युपकारार्थं ते समराङ्गणे उपस्थिताः भविष्यन्ति । अतः अनेन गोग्रहणेन नः संमीहितसिद्धिः संभविष्यतीति भावः ॥ ५५ ॥

भटः—जयतु विजयताम्, महाराजः नृपः दुर्योधनः, सज्जा सुनियोजिता, खलु निश्चयेन, रथाः स्यन्दनाः नगरप्रवेशाभिमुखाय हस्तिनापुरं प्रवेष्टुमानीतः स्यन्दनः ।

व्याख्या—एभिः सन्मुखे स्थितैः रथैः, स्यन्दनैः, एव शीघ्रम् त्वरितम् तस्य विराटनृपतेः, गोग्रहः गोधनापहरणम्, क्रियताम् विधीयताम्, च पुनः, यज्ञप्रशान्ता मखावसरे प्रशान्ता परित्यक्तनिजव्यापारा, इयम् गदा मुद्गरम्, पुनः, मे मम, करम् हस्तम् एष्यति, अर्थात् पुनरप्यहम् हस्ते गदां नीत्वा युद्धाय समुद्यतो भवामि ॥ ५६ ॥

द्रोणः—तस्मात्, मे मम, रथम् स्यन्दनम्, आनयन्तु आहरन्तु पुरुषाः राजभृत्याः ।

कृतज्ञता तो है ही, वे सामने आजायेंगे और आपका काम अपने आप बन जायेगा समझे देवता ॥ ५५ ॥

भट—महाराज की विजय हो, नगर में प्रवेशार्थ रथ तैयार है श्रीमन् ।

दुर्योधन—बस, इसी रथ से विराट के गोधन का अपहरण किया जाय । यज्ञ के कारण शान्त बनी मेरी यह गदा फिर से मेरे हाथ में चमके ॥ ५६ ॥

द्रोण—मेरा रथ लाओ ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शकुनिः— —हस्ती ममानीयतां,
कर्णः— भारार्थं भृशमुद्यतैरिह हयैर्युक्तो रथः स्थाप्यताम् ।
भीष्मः— बुद्धिर्मे त्वरते विराटनगरं गन्तुं धनुस्त्वर्यतां
सर्वे—
मुक्त्वा चापमिहैव तिष्ठतु भवानाज्ञाविधेया वयम् ॥ ५७ ॥
द्रोणः—पुत्र ! दुर्योधन ! आवां तव युद्धे पराक्रमं द्रष्टुमिच्छावः ।

शकुनिः—मम गान्धारनृपतेः, हस्तीगजः, समानीयताम् आनय ।

कर्णः—भारार्थम् भारम् वोढुम्, भृशम् अत्यर्थम्, उद्यतैः तत्परैः, इह अस्मिन् स्थाने, हयैर्युक्तः अश्वैः संयोजितः, रथः स्यन्दनः, स्थाप्यताम् आनीयताम् ।

भीष्मः—मे मम भीष्मस्य, बुद्धिः प्रज्ञा, विराटनगरम् विराटनृपतेः राजधानीम्, गन्तुम् चलितुम् त्वरते शीघ्रताम् करोति, मम धनुः चापम् त्वर्यताम् शीघ्रमेव समानीयताम् ।

सर्वे—भवान् श्रीमान् चापम् धनुः, मुक्त्वा परित्यज्य, इहैव अत्रैव, तिष्ठतु स्थीयताम् वयम् सर्वे जनाः, आज्ञाविधेया श्रीमदाज्ञानुवर्त्तिनः । अस्मिन् कार्ये वयमेव पर्याप्ताः अस्मासु सत्सु श्रीमतः तत्र गमनमनुपयुक्तम् तस्मादत्रैव तिष्ठन्तु भवन्त इत्याशयः । शार्दूलविक्रीडितम् वृत्तम् ॥ ५७ ॥

द्रोणः—पुत्र हे सुत, दुर्योधन गान्धारीसुत, आवाम् अहम् भीष्मश्च, तव भवतः, युद्धे रणे, पराक्रमं विक्रमम् पुरुषार्थम् वा, द्रष्टुम् अवलोकितुम्, इच्छावः अभिलषावः ।

शकुनि—मेरा हाथी सजाया जाय ।

कर्ण—भार ढोने में समर्थ मजबूत घोड़ों वाला रथ मेरे लिए लाया जाय ।

भीष्म—विराट नगर जाने के लिए मेरा मन चंचल हो उठा है, शीघ्र मेरा धनुष लाओ ।

सभी—आप अपना धनुष रख दें, वहाँ जाने के लिए आप के वशवर्त्ती हम लोग ही पर्याप्त हैं ॥ ५७ ॥

द्रोण—बेटा दुर्योधन, हम लोग; रणाङ्गण में तुम्हारा पुरुषार्थ देखना चाहते हैं ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दुर्योधनः—यदभिरुचितं भवते ।

द्रोणः—वत्स ! गान्धारराज ! अस्मिन् गोग्रहणे तव खलु प्रथमरथः ।

शकुनिः—बाढम् । प्रथमः कल्पः ।

(निष्क्रान्ताः सर्वे)

इति प्रथमोऽङ्कः ।

दुर्योधनः—यत् यथा, अभिलषितम्, भवते गुरवे ।

द्रोणः—वत्स सुत, गान्धारराज शकुनि, अस्मिन् एतस्मिन्, गोग्रहणे गोधन-हरणे, तव भवतः, खलु निश्चयेन, प्रथमरथः सर्वतोऽग्रे श्रीमतः रथ एव गच्छतु ।

शकुनिः—बाढम् स्वीकृतम्, प्रथमः कल्पः मुख्यो विषयः ममेवेति प्रथमम् तावदिदम् कर्त्तव्यमिति । इति निष्क्रान्ताः सर्वे इति अङ्कसमाप्तिम् सूचयति । तदुक्तं साहित्यदर्पणेऽङ्कलक्षणनिरूपणे—

प्रत्यक्षनेतृचरितो रसभावसमुज्ज्वलः ।
भवेदगूढशब्दार्थः क्षुद्रचूर्णकसंयुतः ॥
विच्छिन्नावन्तरै..... ।
प्रत्यक्षचित्रचरितैर्युक्तोभावरसोद्भवैः ।
अन्तनिष्क्रान्तनिखिलः पात्रोङ्क इति कीर्त्तितः, इति ॥

इति विमलाव्याख्यायां प्रथमोऽङ्कः ।

दुर्योधन—आप का जो आदेश ।

द्रोण—वत्स गान्धार नरेश, गोग्रहण में तुम्हारा रथ पहला होगा ।

शकुनि—अच्छी बात है, ठीक है ।

(सभी जाते हैं)

प्रथम अङ्क समाप्त

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अथ द्वितीयोऽङ्कः

(ततः प्रविशति वृद्धगोपालकः)

वृद्धगोपालकः—गावो मेऽहीनवत्सा भवन्तु। अविधवाश्च गोपयुवतयः
(गावो मे अहीणवच्छा होन्तु। अविहवा अ गोवजुवदीओ)
भवन्तु। अस्माकं राजा विराट एकच्छत्रपृथिवीपतिर्भवतु। महा-
(होन्तु। णो लाआ विलाडो एक्कच्छत्तपुहुवीपदो होदु। महा-)
राजस्य विराटस्य वर्षवर्धनगोप्रदाननिमित्तमस्यां नगरोपवनवीथ्या-
(लाअष्ष विलाडष्ष वष्षवड्ढणगोप्पदाणणिमित्तं इमष्णि णअलोववणवीहीए)
मागन्तुं गोधनं सर्वे च कृतमङ्गलामोदा गोपदारका दारिकाश्च

अथ प्रथमाङ्कसूचितां विराटस्य गोधनग्रहणे गदां धृत्वा युद्धोद्यतस्य दुर्योधनस्यातिविकलां दशां विवर्णयिषन् तत्प्रवेशाय वृद्धगोपालकस्य प्रवेशं तावदाह—ततः प्रविशति वृद्धगोपालकः।

वृद्धगोपालः—गावः धेनवः, मे मम, अहीनवत्सा जावद्वत्सा, भवन्तु सन्तु, अविधवाः वैधव्यरहिताः गोपयुवतयः ग्वालवध्वः, भवन्तु यांतु, अस्माकम् प्रजानाम्, राजा नृपतिः, विराट एकच्छत्रपृथिवीपतिः सकलाया भुवो भर्त्ता भवतु अस्तु, महाराजस्य विराटनृपतेः, वर्षवर्धेन गोप्रदाननिमित्तम् वर्षारम्भे गोदानाय अर्थात् स्वजन्मदिनमभिलक्ष्य प्रतिवर्षे स्वमङ्गलायायुषे च लोकः गोदानादिकम् कर्तुम् चेष्टते, अत एव विराटोऽपि स्वजन्मदिनमभिलक्ष्य तस्मिन्दिने गोदानादिकम् कर्त्तुम् यतते। अस्यां पुरोवर्तिन्याम्, नगरोपवीथ्याम्, नगरोद्यानस्यैकदेशे, आगन्तुम् एतम् गोधनम् गोरूपसम्पदम्, सर्वे सकलाः, च पुनः, कृत

वृद्ध गोपाल—मेरी गायें सदा सवत्सा रहें। यादव तरुणियाँ सदा सधवा रहें। धरती की सार्वभौम सत्ता हमारे महाराज विराट के हाथों में हो। आज महाराज विराट का जन्म दिन है। इस शुभावसर पर दान करने के निमित्त नगर के उपवन की राह पर गायें सजाई गई हैं। गोपबाल और बालाएँ सजधजकर इस मङ्गलोत्सव में भाग लेने के लिए तत्पर हैं। इनमें सबसे बड़ा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(आअन्तुं गोधणं षव्वे अ किदमङ्गलामोदा गोवदालआ दालिआ अ)
तावत्। एषु ज्यैष्ठ्यं गत्वानुभविष्यामि। (विलोक्य) किं नु खल्वेष वायसः
(दाव। एषु ज्येष्ठं गच्छिअ अणुभविष्षम्। (विलोक्य) किण्णुहु एषो वाअषो)
शुष्कवृक्षमारुह्य शुष्कशाखानिघट्टिततुण्डमादित्याभिमुखं विस्वरं
(षुक्खलुक्खं आलुहिअ षुक्खषाखाणिघट्टिअतुण्डं आदिच्चाहिमुहं विष्षलं)
विलपति। शान्तिर्भवतु शान्तिर्भवतु अस्माकं गोधनस्य च। याव-
(विलवदि। षन्ती होदु षन्ती होदु अह्माणं गोधणष्ष अ। जाव)
देषु ज्यैष्ठ्यं गत्वा गोपदारकाणां दारिकाणां व्याहरामि। (परिक्रम्य)
(एषु ज्येष्ठं गच्छिअ गोवदालआणं दालिआणं वाहलामि)। (परिक्रम्य)
अरे गोमित्रक! गोमित्रक!
(अले गोमित्तअ! गोमित्तअ!)

मङ्गलामोदा विहिताः कल्याणहर्षाः, गोपदारका गोपबालकाः, दारिकाः गोप-
बालाश्च, तावदित्यवधारणे, एषु जनेषु मध्ये, ज्यैष्ठ्यम् वयसा श्रेष्ठत्वेन प्राप्त-
सत्कारम् गत्वा, अनुभविष्यामि अनुभवम् करिष्यामि, (विलोक्य दृष्ट्वा) किं
नु खलु इति सम्भावनायाम्, एषः पुरोवर्ती वायसः काकः, शुष्कवृक्षम्
नीरसतरुम् आरुह्य आरोहणम् कृत्वा, शुष्कशाखानिघट्टिततुण्डम् रसहीनशाखायां
निजचञ्चुम् घर्षयन्निति। आदित्याभिमुखम्, सूर्यसन्मुखम् कृत्वा, विस्वरम्
विकृतरवेण, विलपति रोदनम् करोति। शान्तिर्भवतु प्रशमनम् यातु, शान्तिर्भवतु
विघ्नोपशमनं यातु। अस्माकम् गोपजनानाम्, गोधनस्य गोरूपसम्पदः, च पुनः।
यावदित्यवधारणे, एषु जनेषु मध्ये ज्यैष्ठ्यम् ज्येष्ठभावम् गत्वा अर्थात् वयोधि-
कत्वकृतम् सम्मानमासाद्य, गोपदारकाणाम् यादववालानाम्, दारिकाणाम् बालि-
कानाम्, व्याहरामि आह्वानम् करोमि (परिक्रम्य भ्रमणम् कृत्वा) अरे गोमित्र—

होने का सम्मान मैं प्राप्त करूँगा। (देखकर) यह अपशकुन कैसा? यह काला
कौआ सूखे पेड़ की सूखी डाल पर बैठकर अपनी चोंच घिस रहा है। इतना ही
नहीं सूरज की ओर मुँह करके अपनी कर्कश आवाज में काँव-काँव कर वातावरण
को बोझिल बना रहा है। ईश्वर हम सबों की रक्षा कर हमारी गायों की रक्षा
करें। अब मैं इनके बीच एक बूढ़े के रूप में गोप बालक और बालिकाओं को
बुलाऊँगा। (घूमकर) अरे गोमित्रक, अरे ओ गोमित्रक।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(प्रविश्य)

गोमित्रकः—मातुल ! वन्दे ।

(मादुल ! वन्दामि ।)

वृद्धगोपालकः—शान्तिर्भवतु शान्तिर्भवतु अस्माकं गोधनस्य च ।

(षन्ती होदु षन्ती होदु अह्माणं गोधणष्ष अ ।)

अरे गोमित्रक ! महाराजस्य विराटस्य वर्षवर्धनगोप्रदाननिमित्त-
(अले गोमित्तअ ! महालाजष्ष विलाडश्श वष्षवड्ढणगोप्यदाणणिमित्तं)
यस्यां नगरोपवनवीथ्यामागन्तुं गोधनं सर्वे च कृतमङ्गलामोदा गोप-
(इमष्षि णअलोववणवीहीए आअन्तुं गोधणं षव्वे च किदमङ्गलामोदआ गोव-)
दारका दारिकाश्च । अरे गोमित्रक ! गोपदारकाणां दारिकाणां
(दालआ दालिआ अ । अले गोमित्तअ ! गोवदालआणं दालिआणं)
व्याहर ।

(वाहल ।)

(प्रविश्य प्रवेशं कृत्वा)

गोमित्रक—मातुल हे माम वन्दे, नमस्करोमि ।

वृद्धगोपालकः—शान्तिर्भवतु शमम् यात्, शान्तिर्भवतु विघ्नः विनश्यतु अस्माकम् गोपजनस्य गोधनस्य गोरूपसम्पदः । अरे गोमित्रक, महाराजस्यविराटस्य विराटनृपतेः, वर्षवर्धनगोप्रदाननिमित्तम् नवीनवर्षारम्भे करिष्यमाणस्य गोदानस्य सिद्धये, अस्यां एतस्याम्, नगरोपवनवीथ्याम् नगरोद्यानस्यैकभागे, आगन्तुम् ममानेतुम्; गोधनम् धेनुसम्पदम्, सर्वे सकलाः च, कृतमंगलामोदाः कृतमंगलहर्षाः, गोपदारकाः गोपबालकाः च पुनः गोपदारिकाः गोपबालिकाश्च । अरे गोमित्रक गोपदारकाणाम् यादवपुत्राणाम्, दारिकाणाम् गोपस्त्रीणाम् व्याहर आह्वय ।

(गोमित्रक का प्रवेश)

गोमित्रक—मामाजी प्रणाम ।

वृद्धगोपाल—कल्याण हो, हमारा और हमारी गायों का कल्याण हो । अरे गोमित्रक ! आज महाराज का जन्म दिन है । इस अवसर पर गायों का दान होगा । इसके लिए नगर के मुख्य उपवन की राह पर लाने के लिए गायें सजाई गई हैं । इस मङ्गलोत्सव में ग्वालों के युवक युवतियाँ आकण्ठ मग्न हैं । अरे गोमित्रक, गोप बालक बालिकाओं को जरा इधर तो बुलाओ ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गोमित्रकः—यन्मातुल आज्ञापयति । गोरक्षिणिके ! घृतपिण्ड !
(जं मादुलो आणवेदि । गोलक्खिणिए ! घिदपिण्ड !)
स्वामिनि ! वृषभदत्त ! कुम्भदत्त ! महिषदत्त ! आगच्छतागच्छत
(षामिणि ! वषभदत्त ! कुम्भदत्त ! महिषदत्त ! आअच्छह आअच्छह)
शीघ्रम् ।
(सिग्घं ।)

(ततः प्रविशन्ति सर्वे)

सर्वे—मातुल ! वन्दामहे ।
(मादुल ! वन्दामो ।)
वृद्धगोपालकः—शान्तिर्भवतु शान्तिर्भवतु अस्माकं गोधनस्य च गोप-
(षन्ती होदु षन्ती होदु अह्माणं गोधणष्ष अ गोव-)
दारकाणां दारिकाणां च । महाराजस्य विराटस्य वर्षवर्धनगोप्रदान-
(दालआणं दालिआणं अ । महालाअष्ष विलाडष्ष वष्षवड्ढणगोप्पदाण-)
निमित्तमस्यां नगरोपवनवीथ्यामागन्तुं गोधनम् । तावतीं वेलां

गोमित्रक, यत् यथा, मातुल, माम, आज्ञापयति आदिशति । गोरक्षिणिके, घृतपिण्ड, स्वामि (ततः तत्पश्चात्, सर्वे गोपालकाः प्रविशन्ति प्रवेशं कुर्वन्ति)

सर्वे—मातुल हे माम, वन्दामहे वयम् प्रणमामः ।

वृद्धगोपालकः—शान्तिर्भवतु अस्माकम् नः, गोधनस्य गोरूपधनस्य च पुनः गोपदारकाणां दारिकाणाञ्च गोपालानाम्, गोपदारिकाणाम् गोपयुवतीनां महाराजस्य विराटस्य विराटनृपतेः, वर्षवर्धनगोप्रदाननिमितम् वर्षारम्भे गोदानाय, अस्यां नगरोपवीथ्याम् नगरोद्यानैकदेशे, आगन्तुम् गोधनम् धेनुसम्पदम्, तावतीं

गोमित्रक—मामाजी की जैसी आज्ञा अरे गोरक्षिणिके, घृतपिण्ड, स्वामिनि, वृषभदत्त, कुम्भदत्त, महिषदत्त आओ भाई जल्दी करो ।

(इसके बाद सबों का प्रवेश)

सभी—मामाजी, हम सबों का प्रणाम स्वीकार करें ।

बूढ़े गोपाल—हमारे गोधन, गोप बालक और गोप बालिकाओं का कल्याण हों । महाराज विराट के जन्मदिन के उपलक्ष्य में इस नगर के उद्यान

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(णिमित्तं इमर्ष्णि णअलोववणवीहीए आअन्तुं गोधणं । तत्तअं वेलं) गायन्तो नृत्यन्तो भवामः ।

(गाअन्तो णच्चन्तो होम ,)

सर्वे—यन्मातुल आज्ञापयति ।

(जं मांदुलो आणवेदि । (सर्वे नृत्यन्ति))

वृद्धगोपालकः—हीही सुष्ठु नर्तितं, सुष्ठु गीतम् । यावदहमपि

(हीही षुट्ठु णच्चिदम्, षुट्ठु गाइदं । जाव अहं पि)

नृत्यामि । (नृत्यति)

(णच्चेमि ।)

सर्वे—हाहा मातुल ! अतिमहान् रेणुरुत्पतितः ।

(हाहा मादुल ! अदिमहन्तं लेणुं उप्पदिदो ।)

बेलाम् यावत् धेनुसम्पदमायाति तावन्तं कालमित्यर्थः । गायन्तो नृत्यन्तो भवामः नृत्यगानाभ्यां तावन्तं समयं यापयामः ।

सर्वे— यत् यथा, मातुल माम, आज्ञापयति आदिशति । (सर्वे सकलाः, नृत्यन्ति गात्रविक्षेपादिकं कुर्वन्ति)

वृद्धगोपालकः—हीही इति हर्षे, सुष्ठु सम्यक् प्रकारेण नर्तितम् नृत्यम् कृतमिति । सुष्ठु गीतम् सम्यक्प्रकारेण गायनमपि कृतम् यावदहमपि वृद्धगोपालोऽपि नृत्यामि नृत्यं करोमि (नृत्यति)

सर्वे—हाहा इत्याश्चर्ये, मातुल हे माम, अतिमहान् अत्यधिकम्, रेणुः धूलिः, उत्पतिता उत्थिता ।

मार्ग पर दान करने लिए जब तक सजी सजाई गायें आयेगी तब तक हम लोग नाचें गावें ।

सभी—मामा जी आप का आदेश सर आँखों पर (सभी नाचते हैं) ।

बूढ़े गोपाल—क्या खूब । सबों ने मिलकर खूब गाया, खूब नाचा, अब मैं भी नाचता हूँ (नाचता है) ।

सभी—अरे ओमामा, देखो तो बड़ी धूल उड़ रही है ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

वृद्धगोपालकः—न खलु रेणुरेव, शङ्खदुन्दुभिघोष उत्पतितः !
(ण हु लेणुं एव्व, षक्खुदुन्दुभिघोषं उप्पदिदो।)
सर्वे—हाहा मातुल ! दिवाचन्द्रप्रभापाण्डुरजोवगुण्ठितमण्डलः
(हाहा मादुल ! दिवाचन्दप्पभापण्डुलजोवगुण्ठिदमण्डलुं)
सूर्योऽस्ति च नास्ति च ।
(पुय्यो अत्थि अ णत्थि अ ।)
गोमित्रकः—हाहा मातुल ! एते केऽपि मनुष्या दधिपिण्डपाण्डरै-
(हाहा मादुल ! एदे के वि मणुष्षा दहिपिण्डपण्डरेहिं)
श्छत्रैर्घोटकशकटिकामारुह्य सर्वे घोषं विद्रवन्ति चोराः ।
(छत्तेहि घोडअषअडिअं आलुहिअ षव्वं घोषुं विद्दवन्ति चोला ।)

वृद्धगोपालकः—न खलु रेणुरेव न केवलं रजकणमुत्थितम्, शङ्खदुन्दुभिघोषः, शंखदुन्दुभिरवोऽपि उत्थितः ।

सर्वे—हा हा इति खेदे, मातुल हे माम, दिवाचन्द्रप्रभापाण्डुररजोवगुण्ठितमण्डलः दिवाचन्द्रस्य यथा दिने चन्द्रस्य सुधाकरस्य प्रभा कान्तिरिव कान्तिः, पाण्डुरम् पीतवर्णम् यद्रजः धूलिस्तेजावगुण्ठितम् आच्छन्नम् मण्डलम् बिम्बम् यस्य तादृशोयं रविरिति अस्ति वा नास्ति अर्थात् आकृत्या एव उपस्थितः न पुनः प्रभयेति ।

गोमित्रकः—हा हा इत्याश्चर्ये, मातुल हे माम, एते सन्मुखे उपस्थिताः केपि मनुष्याः अपरिचितजनाः दधिपिण्डपाण्डुरैः दधिपिण्डवत् श्वेतवर्णैः, छत्रैः आतपत्रैः, घोटकशकटिकाम् अश्वयानमर्थात् रथे आरुह्य आरोहणं कृत्वा, सर्वे सकलाः, घोषम् गोष्ठम्, विद्रुवन्ति आक्रामन्ति, चोराः चौर्यकार्यरतजनाः ।

बूढ़े गोपाल—अरे केवल धूल ही नहीं उड़ रही है; शङ्ख और नगाड़े की आवाज भी आ रही है ।

सभी—अरे ओ मामा, दिन के चाँद की तरह फीका यह सूरज धूल से इस तरह ढँक गया है कि इसका रहना न रहना बराबर हो रहा है।

गोमित्रक—अरे ओ मामाजी, ये तो लुटेरे हैं । वे दही की तरह सफेद छाते लगाये हैं । रथ पर सवार होकर ये तो गायों को घेर रहे हैं ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वृद्धगोपालकः—हीही शरसंपाता उत्थिताः । दारकाः ! दारिकाः !
(हीही षरषंपादा उठ्ठिदा । दःरआ ! दालिआ !)
शीघ्रं पक्कणं प्रविशत ।
(षिग्घं पक्कणं षविषह ।)
सर्वे—यन्मातुल आज्ञापयति ।
(जं मादुली आणवेदि ।)
(निष्क्रान्ताः)
वृद्धगोपालकः—हाहा तिष्ठत तिष्ठत । प्रहरत प्रहरत । गृह्णीत गृह्णीत ।
(हाहा चिट्ठह चिट्ठह । पहरह पहरह । गह्णह गह्णह ।)
इमं वृत्तान्तं महाराजविराटाय निवेदयिष्यामः ।
(इमं वृत्तन्तं महालाअविलाडश्श णिवेदइष्षागो ।)
(निष्क्रान्तः)

वृद्धगोपालकः—हीही इति खेदे, शरसंपाताः बाणवृष्टयः, उत्थिताः उत्पतिताः, दारकाः बालकाः, दारिकाः बालिकाः, शीघ्रम् त्वरितम् पक्कणम् सदनमालयम्वेति प्रविशत प्रवेशम् कुरुत ।

सर्वे—यत् यथा, मातुल माम, आज्ञापयति आदिशति । (निष्क्रान्ताः बहिर्गताः)

वृद्धगोपालकः—हा हा, तिष्ठत आगच्छत, प्रहरत प्रहारं कुरुत, गृह्णीत जयत इमम् वृत्तान्तम् आक्रमणरूपं समाचारम्, महःराजविराटाय विराट-नृपाय निवेदयिष्यामः निवेदनंकरिष्यामः (निष्क्रान्ताः बहिर्गताः सर्वे)

बूढ़े गोपाल—अरे ओ छोकरे ओ छोकरियों, तीर चलाये जा रहे हैं, जल्दी घरों में घुस जाओ ।

सभी—मामाजी, आप जैसा कहें ।

(सभी निकल गये)

बूढ़े गोपाल—ठहरो-ठहरो, मारो-मारो, पकड़ो-पकड़ो, इसकी सूचना महाराज को देदें ।

(जाते हैं)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रवेशकः

(ततः प्रविशति भटः)

भटः—भो भो निवेद्यतां निवेद्यतां महाराजाय—एता हि दस्युकर्मप्रच्छन्नविक्रमैर्धार्तराष्ट्रैर्ह्रियन्ते गाव इति । तत्र हि,

द्रुतैश्च वत्सैर्व्यथितैश्च गोगणैर्निरीक्षणत्रस्तमुखैश्च गोवृषैः ।
कृतार्तनादाकुलितं समन्ततो गवां कुलं शोच्यमिहाकुलाकुलम् ॥१॥ इति ।

प्रवेशकः—विष्कम्भकवत् संक्षिप्तार्थो भाविवृत्तसूचकः नीचपात्रप्रयोजितोऽङ्कद्वयमध्ये सन्निवेशितः । यथोक्तम् ।

दशरूपके—देवानुदातोक्त्या नीचपात्रप्रयोजितः । प्रवेशोऽङ्कद्वयस्यान्ते शेषार्थस्योपसूचकः । इति प्रवेशकः ।

घोषे केषाञ्चिदाक्रमणरूपं समाचारम् महाराजाय निवेदयितुम् भटस्य प्रवेशमाह ततः प्रविशति भटः ।

भटः—भो भो इति संबोधने, निवेद्यताम् निवेद्यताम् त्वरायाम् द्वित्वम् कथ्यताभिति भावः, महाराजाय विराटनृपाय, एताः उपस्थिताः, हि इति निश्चये दस्युकर्मप्रच्छन्नविक्रमैः दस्युकर्मणि चौरकृत्ये, प्रच्छन्नः, तिरोहितः विक्रमः पराक्रमो येषां तैस्तथाभूतैः युद्धे वीरत्वम् विहाय चौरकर्मणि निरतैः, धार्तराष्ट्रैः धृतराष्ट्रसुतैः, ह्रियन्ते अपहरणम् क्रियन्ते, गावः धेनवः इति, तत्र तस्मिन् स्थाने हि यतः—

व्याख्या—वत्सैः गोवत्सैः, द्रुतैः पलायनतत्परैः, गोगणैः धेनुससूहैः व्यथितैः दुःखितैः, गोवृषैः बलीवर्दैः, निरीक्षणत्रस्तमुखैः निरीक्षणम् चौराणामवलोकनेनैव त्रस्तमुखैः भयेनाक्रान्ताननैः, इह अत्र, आकुलाकुलम् अतिव्यग्रम्, कृतार्तनादा-

---

(प्रवेशक)

(भटका प्रवेश)

भट—अरे ओ गोपालक, महाराज की सेवा में शीघ्र निवेदन करो-ये धृतराष्ट्र के बेटे, युद्ध में पराक्रम दिखलाने की अपेक्षा चोर बनकर हमारी गायों को चुरा रहे हैं । वहाँ ये —

छोटे बछड़े भाग रहे हैं, गायें रँभा रही हैं, लुटेरों की ओर देखकर बैलों

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(नेपथ्ये)

किं धार्तराष्ट्रैरिति ?

भटः—आर्य ! अथ किम् ।

(प्रविश्य)

काञ्चुकीयः—सदृशमेतद् भ्रातृजनेष्वपि द्रोहिणाम् । एते हि,

कुलिताम् कृतेन विहितेनार्त्तनादेन भीतस्वरेणाकुलितम् पीडितम्, गवाम् धेनूनाम् कुलम् समूहः, समन्ततः सर्वतः, शोच्यम् चिन्तनीयम् जायते ॥ १ ॥

चौरकृतेनोपद्रवेण संत्रस्ता वत्साः पलायन्ते, धेनुसमूहाः, पीडामनुभवन्ति, दस्यूनाम् दर्शनमात्रेण गोवृषाः त्रस्तानना जायन्ते, धेनूनामार्त्तनादः सर्वतो विजृम्भते, सम्पूर्णगोकुलं चिन्त्यदशाम् प्राप्तम् ॥ वंशस्थं वृत्तम् ॥ १ ॥

नेपथ्ये रङ्गस्थलातिरिक्तम् यवनिकान्तरितम् नटानां वेषरचनादिस्थलम् नेपथ्यं तु प्रसाधने । रङ्गभूमौ वेषभेदे, इति । कुशीलवकुटुम्बस्य स्थलं नेपथ्यमुच्यते इति च । वेशरचनागृहे ।

किम् कथम्, धार्तराष्ट्रैः धृतराष्ट्रपुत्रैः दुर्योधनादिभिः कृतमुपद्रवमिति ।

नटः—आर्य देव, अथ किम् अस्त्वेवमिति भावः (प्रविश्य प्रवेशम् कृत्वा)

काञ्चुकीयः—एतत् इदम्, सदृशम् युक्तम्, भ्रातृजनेषु पाण्डवेषु द्रोहिणाम् द्रोहम् कुर्वताम् ये धृतराष्ट्रसुताः स्वपितृव्याः पुत्रेषु द्रोहं कुर्वन्ति ते भिन्नविराटस्य गोधनं हरेयुरिति युक्तितरमिति । एते हि—

के मुँह सूख रहे हैं, चारों ओर हाहाकार मचा है, गोवंश की दशा अति चिन्तनीय हो रही है ॥ १ ॥

(नेपथ्य में)

क्या कहा ? कौरवों ने उपद्रव मचा रखा है ?

भट, हाँ आर्य, और क्या ?

(मंच पर उपस्थित होकर)

काञ्चुकीय—अपने भाईयों के प्रति जलन एवं इर्ष्या रखने वाले कौरवों के लिए यह उचित ही है। ये कौरव—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सज्जैश्चापैर्वद्धगोधाङ्गुलित्रा वर्मच्छन्नाः कल्पितस्यन्दनस्थाः ।
वीर्योत्सिक्ता युद्धसज्जाः कृतास्त्रा राज्ञो वैरं गोषु निर्यातयन्ति ॥ २ ॥

जयसेन ! जन्मनक्षत्रक्रियाव्यापृतस्य महाराजस्य तावदकालनिवेदनं मन्युमुत्पादयति । तस्मात् पुण्याहावसाने निवेदयिष्ये ।

भटः—आर्य अतिपाति कार्यमिदं,, शीघ्रं निवेद्यताम् ।

व्याख्या—सज्जैः युद्धाय तत्परैः चापैः धनुभिः, वद्धगोधा ज्याघातवारणम् अंगुलित्रम् अंगुलित्राणम् च यैस्ते तथोक्ताः धृतगोधाङ्गुलित्राः वर्मच्छन्ना धृतकवचाः कवचेनावृतशरीराः, कल्पितस्यन्दनस्थाः सुसज्जितरथे उपस्थिताः, वीर्योत्सिक्ताः, पराक्रमगर्वोद्धताः, युद्धसज्जाः संग्रामार्थं समुत्सुकाः अत एव च कृतास्त्राः गृहीतप्रहरणाः एते अकृतज्ञाः राज्ञो विराटस्य वैरम् शत्रुताम्, गोषु धेनुषु निर्यातयन्ति, प्रतिशोधयन्तीति भावः शालिनी वृत्तम् ॥ २ ॥

जन्मनक्षत्रक्रियाव्यापृतस्य जन्मदिनकृत्ये लग्नस्य, महाराजस्य नृपतेः, तावद्, अकालनिवेदनम् असमये सूचनाप्राप्तम् । मन्युमुत्पाद्यति अनवसरे प्राप्तसूचना कोपं जनयति । तस्मात् कारणात्, पुण्याहावसाने धार्मिके कृत्यसमाप्तौ निवेदयिष्ये कथयिष्ये ।

भटः—आर्य देव, अतिपाति शीघ्रं कथनीयम्, इदम् एतत्, कार्यम् कर्म, शीघ्रम् त्वरितम्, निवेद्यताम् कथ्यताम् ।

सजे सजाये रथों पर सवार हैं । शरीर पर कवच लगाये हैं, अंगुलियों में अंगुलित्राण लगाये धनुष ताने हैं । अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित ये गर्वीले कौरव युद्ध के लिए उद्यत हैं । महाराज के साथ दुश्मनी का वदला गायों से चुका रहे हैं ॥ २ ॥

जयसेन ! महाराज तो इस समय जन्मदिन मनाने में लगे हैं । असमय सूचना से तो कुपित होगें । अतः इस धार्मिक कृत्य की समाप्ति पर ही उन्हें सूचित किया जायेगा ।

भट—आर्य, यह काम तो जल्दी का है । उन्हें शीघ्र स्थिति से अवगत कराया जाय ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

काञ्चुकीयः—इदं निवेद्यते ।

(ततः प्रविशति राजा)

राजा—

मा तावद् व्यथितविकीर्णबालवत्सा गावो मे रथरवशङ्कया ह्रियन्ते ।
पीनांसश्चलवलयः सचन्दनार्द्रो निर्लज्जो मम च करः कराणि भुङ्क्ते ॥३॥

जयसेन ! जयसेन !

(प्रविश्य)

भटः—जयतु जयतु महाराजः ।

काञ्चुकीयः—इदम् एष, निवेद्यते कथ्यते । (ततः तदनन्तरम्, प्रविशति प्रवेशं करोति राजा नृपः ।

व्याख्या—रथरवशंकया स्यन्दनशब्दसन्देहेन, व्यथितविकीर्णबालवत्साः, व्यथिताः दुःखिताः अत एव च विकीर्णाः यत्र तत्र प्रचलिताः, बालवत्साः नव जातवत्साः यासां तास्तथोक्ता मे मम, गावः, धेनवः, ह्रियन्ते बलान्नीयन्ते, मातावदिति कुत्सायाम्, पीवांसः, स्थूलस्कन्धः, चलवलयः चपलकटः, सचन्दनार्द्रः चन्दनेन लिप्तः, मे मम करः हस्तः, च पुनः कराणि भोज्यद्रव्याणि, निर्लज्जः लज्जारहितः सन् भुङ्क्ते भोजनग्रहणम् करोति प्रहर्षिणी वृत्तम् ॥ ३ ॥

जयतु विजयतामिति, जयतु इति द्विरुक्ताभ्याम् शब्दाभ्यां आदरातिशयो द्योतते । महाराजः नृपः ।

काञ्चुकीय—अभी सूचित करता हूँ ।

(राजा का प्रवेश)

राजा—मुझे धिक्कार है, बछड़े डर कर इधर-उधर भाग रहे हैं । गायें लुट रही हैं और मेरा यह मोटा कंधा चन्दन चर्चित हो रहा है और मेरे निर्लज्ज हाथ भोजन चख रहे हैं ॥ ३ ॥

ओ जयसेन, जयसेन—

(प्रवेशकर)

भट—महाराज की विजय हो, जय हो श्रीमान् की ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

राजा—अलं महाराजशब्देन ! अवधूतं मे क्षत्रियत्वम् । उच्यतां रणविस्तरः ।
भटः—महाराज ! न विस्तरार्हाणि विप्रियाणि । एष समासः,

एकवर्णेषु गात्रेषु गवां स्यन्दनरेणुना ।
कशापातेषु दृश्यन्ते नानावर्णविभक्तयः ॥ ४ ॥

राजा—तेन हि,

धनुरुपनय शीघ्रं कल्प्यतां स्यन्दनो मे

राजा—अलम् व्यर्थम्, महाराजशब्देन, मदर्थे महाराजशब्दस्य प्रयोग इति । अवधूतम् विनष्टम्, मे मम विराटस्य, क्षत्रियत्वम् क्षात्रधर्मम्, अपगतम् मम क्षत्रियत्वम् यन्मयि जीविते मम धेनवः धार्तराष्ट्रैरपह्रियन्ते । उच्यताम् अभिधीयताम्, रणविस्तरः विस्तरेण युद्धविवरणम् ।

भटः—महाराज हे नृप, न नहि, विस्तरार्हाणि विशेषरूपेण निवेदयितुमुचितम्, विप्रियाणि विगतानि प्रियकथनानि, एषः एतत् समासः संक्षिप्तरूपेण श्रूयताम्—

व्याख्या—स्यन्दनरेणुना रथधूलिभिः, गवाम् धेनूनाम्, गात्रेषु शरीरेषु, एकवर्णेषु समानरूपेषु गतेषु, कशाघातेषु चौरकृतकशाताडनेषु क्रियमाणेषु, नानावर्णविभक्तयः अनेकरूपप्रविभागाः, दृश्यन्ते स्फुटीभवन्तीति । तद्गुणालङ्कारः ॥ ४ ॥

राजा—तेन कारणेन, हि—

व्याख्या—मे मम, धनुः चापम्, शीघ्रम् त्वरितम्, उपनय आहर, स्यन्दनः रथः, कल्प्यताम् सज्जीक्रियताम्, यस्य पुरुषविशेषस्य गवि भक्तिः प्रीतिरस्ति

राजा—मेरे लिए महाराज शब्द का प्रयोग बेकार है भट, मेरा क्षत्रियत्व खण्डित हो चुका है, युद्धक्षेत्र का समाचार विस्तार से कहो ।

भट—महाराज, अप्रियप्रसंग का सविस्तार वर्णन उचित नहीं प्रतीत होता । अतः श्रीमान् संक्षेप में ही सुनें—

रथ के चक्के के घर्षण से उठी हुई धूलियों के पड़ने से सभी गायों का रंग एक जैसा हो गया फिर, उन पर जो कोड़े बरसाये गये उनसे उनकी देहों पर अनेक आकृतियाँ बन गई हैं ॥ ४ ॥

राजा—तब तो शीघ्र ही मेरा धनुष लाओ, रथ तैयार करो, जिनके

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मम गतिमनुयातुच्छन्दतो यस्य भक्तिः ।
रणशिरसि गवार्थे नास्ति मोघः प्रयत्नो
निधनमपि यशः स्यान्मोक्षयित्वा तु धर्मः ॥ ५ ॥

भटः—यदाज्ञापयति महाराजः । (निष्क्रान्तः)

राजा—भोः ! किन्नु खलु दुर्योधनस्य मामन्तरेण वैरम् । आ यज्ञमनुभवितुमनागत इति । कथमनुभवामि । कीचकानां विनाशेन वयमुन्नीतसन्तापाः संवृत्ताः । अथवा परोक्षमपि पाण्डवानां स्निग्ध

सः जनः छन्दतः स्वेच्छया, मम विराटस्य, गतिम् युद्धाय गमनम्, अनुयातु अनुकरणम् करोतु, गवार्थे गोकृते, रणशिरसि समराङ्गणे, प्रयत्नः युद्धप्रयासः, मोघः व्यर्थः नास्ति न भवति निधनं रणे मरणम्, अपि यशःकीर्तिकरम्, मोक्षयित्वा यदि दस्युहस्तात् गाः मोचयित्वा तु धर्मः स्यात् मालिनी वृत्तम् ॥५॥

भटः—यत् यथा, आज्ञापयति आदिशति महाराजः नृपविराटेश्वरः । (निष्क्रान्तः बहिर्गतः)

राजा—भोः इति संबुद्धौ, किमिति प्रश्ने, नु शब्दः खलु शब्दस्य वितर्के, यद्वा खल्विति वाक्यालङ्कारे दुर्योधनस्य धार्तराष्ट्रस्य, मामन्तरेण माम्उद्दिश्य, वैरम् शत्रुताम्, आ इति स्मृतम्, यज्ञम् मखम् अनुभवितुम् द्रष्टुम्, अनागतः न समायात इति । कथम् केन प्रकारेण अनुभवामि अनुभवितम् समर्थो जातः । कीचकानाम् मम श्यालकानाम्, विनाशेन मरणेन वयम् विराटादयः उन्नीत-सन्तापाः समानीतपरितापाः, संवृत्ताः संजाताः । अथवा किम्बा, परोक्षमपि प्रच्छन्नभावेनापि, पाण्डवानाम् युधिष्ठिरादीनाम्, स्निग्ध इति प्रीतिशाली

हृदय में गायों के प्रति भक्ति है वे अपनी इच्छा से मेरे साथ चलें, गायों के लिए युद्ध क्षेत्र में किया गया प्रयास व्यर्थ नहीं होगा, यदि लड़ाई में मारे गये तो यश मिलेगा, यदि गायों को छुड़ा लाये तो धर्म होगा ॥ ५ ॥

भट—महाराज की जैसी आज्ञा ।

(जाता है)

राजा—भला दुर्योधन की दुश्मनी मेरे साथ क्यों होगी ? हाँ, अब समझा, उसके यज्ञ में हमने भाग नहीं लिया, लेता भी कैसे ? कीचकों के बध से तो हम स्वयं दुखी थे । अथवा पाण्डवों के प्रति मेरा स्नेह भी अपरोक्ष कारण हो

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इति । सर्वथा योद्धव्यम् । हस्तिनपुरनिवासाच्छीलज्ञो भगवान् दुर्योधनस्य । अथवा,

कामं दुर्योधनस्यैव न दोषमभिधास्यति ।
अर्थित्वादपरिश्रान्तः पृच्छत्येव हि कार्यवान् ॥ ६ ॥

कोऽत्र ?

(प्रविश्य)

भटः—जयतु महाराजः !

अस्मीत्यभिधाय शत्रुताम् गतः । सर्वथा आक्रमणकारणम् यद्भवतु तद्भवतु प्रतिकारबुद्धया तेन सह अवश्यम् योद्धव्यम् । युद्धं कर्त्तव्यम्, हस्तिनापुरनिवासात् पूर्वं हस्तिनापुरे कृतनिवासत्वात्, शीलज्ञः स्वभावेन परिचितः, भगवान् युधिष्ठिरः अत्रतः सर्वत्र भगवान शब्देन युधिष्ठिर एव बोधव्यः । विराटसदनेऽनेनैव नाम्ना स प्रसिद्धः इति दुर्योधनस्य धार्त्तराष्ट्रस्येति । अथवा—

व्याख्या—एष भगवान्, कामम् निश्चयेन, दुर्योधनस्य धार्तराष्ट्रस्य दोषम् तस्य पराजयस्य साधनभूतम् किमपि छिद्रम्, न नहि, अभिधास्य वक्ष्यति, हि यतः, कार्यवान् प्रयोजनापेक्षी जनः, अर्थित्वात् कार्यवशीत्वात्, अपरिश्रान्तः अखिन्नः सन्, पृच्छत्येव प्रश्नम् करोत्येव, वैफल्यनिश्चयेऽपि कार्यार्थी जनः पृच्छत्येवेति भावः ॥ ६ ॥

कोऽत्र अस्मिन् स्थाने कः अस्तीति विराटस्य जिज्ञासा ।

भट.—जयतु महाराजः सर्वतोभावेन विजयताम् श्रीमान् विराटेश्वर इति ।

सकता है । जो हो, युद्ध तो करना ही होगा । हस्तिनापुर में रहने के कारण भगवान् तो दुर्योधन के स्वभाव से परिचित होगें ही, अथवा–भले ही भगवान दुर्योधन का दोष कहना न चाहें पर, मैं तो उनसे पूछूँगा ही क्योंकि कार्यार्थी प्रार्थना करने से तो थकेगा नहीं, पूछेगा ही ॥ ६ ॥

कौन यहाँ है ?

(भीतर आकर)

भट—महाराज की विजय हो ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राजा—भगवांस्तावदाहूयताम् ।

भटः—यदाज्ञापयति महाराजः ।

(निष्क्रान्तः)

(ततः प्रविशति भगवान्)

भगवान्—(सर्वतो विलोक्य) भोः ! किन्नु खल्विदम् ।

गजेन्द्राः कल्प्यन्ते तुरगपतयो वर्मरचिता
रथाः सानूकर्षाः कृतपरिकरा योधपुरुषाः ।

राजा—भगवन्तं युधिष्ठिरम् तावदित्यवधारणे आहूयताम् समानीयतामिति।

भटः—यत् यथा, आज्ञापयति आदिशति, महाराजः नृप विराटेश्वरः। (निष्क्रान्तः बहिर्गतः)

(ततः तदनन्तरम्, प्रविशति प्रवेशं करोति भगवान् युधिष्ठिरः)

भगवान्—(सर्वतः चतुर्दिक् विलोक्य दृष्ट्वा) किंनु खलु एतेषां शब्दानाम् प्रयोगोऽत्र वितर्के, इदम् एतत्—

व्याख्या—गजेन्द्राः रणोन्मत्तद्विपाः, कल्प्यन्ते युद्धाय सुसज्जिता विधीयन्ते, तुरगपतयः श्रेष्ठघोटकाः, वर्मरचिताः कवचेनावृत्ताः, रथाः स्यन्दनाः, सानूकर्षाः अधोधरकाष्ठयुक्ताः क्रियन्त इति, योधपुरुषाः योद्धारः, कृतपरिकराः समुद्यताः, समुद्योगम् युद्धार्थमुद्योगम् दृष्ट्वा अवलोक्य अननुभूतम् न अनुभूतम् अननुभूतम् अभूतपूर्वम्, भयम् भीतिम्, माम् युधिष्ठिरम्, स्पृशति स्पर्शं करोति, मदीयम्

राजा—भगवान को बुला लाओ ।

भट—जैसी आज्ञा श्रीमान की ।

(बाहर निकल गया)

(इसके बाद भगवान का प्रवेश)

भगवान—(चारो ओर देखकर) अरे यह क्या हो रहा है ?

हाथी सजाये जा रहे हैं, घोड़ों को कवच पहनाये जा चुके हैं, रथों में जुए लगा दिये गये हैं, योद्धागण रणाङ्गण में प्रस्तुत होने के लिए तत्पर हो रहे हैं,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

समुद्योगं दृष्ट्वा भयमननुभूतं स्पृशति मां
न खल्वात्मन्यस्तं कृतमतिरहं ते तु चपलाः ॥ ७ ॥

(उपगम्य) जयतु भवान् जयतु ।

राजा—विराटो भगवन् ! अभिवादये ।

भगवान्—स्वस्ति ।

राजा—अनुगृहीतोऽस्मि । भगवन् ! एतदासनम् । आस्यताम् ।

भगवान्—बाढम् । (उपविश्य) भो राजन् !

भयम् केवलं भ्रातृविषयकमस्ति यतो हि ते अतिचञ्चलाः सन्ति अत आह न नहि खलु इति निश्चये, आत्मन्यस्तम् स्वनिष्ठम् भयम् नास्ति यतोऽहम् कृतमतिः दृढनिश्चयः किञ्च ते–मम भ्रातरः, तु चपलाः अतिचञ्चलाः कदाचित् समुपस्थिते संगरे स्वात्मानम् प्रकाश्याज्ञातवासं विघटयुरिति भयस्यावकाश इति ॥ ७ ॥

(उपगम्य समीपं गत्वा) जयतु महाराजः सर्वतोभावेन विजयताम् नृप-विराटेश्वरः जयतु ।

राजा—भगवन् हे युधिष्ठिर, विराटः विराटनामकः नृपतिः, अभिवादये अभिवादनम् करोमि ।

भगवान्—स्वस्ति कल्याणम् भवतु ।

राजा—अनुगृहीतोऽस्मि कृपान्वितो भवामि, भगवन् हे युधिष्ठिर, एतत् इदम् आसनम् उपवेशनम् आस्यताम् उपविश्यताम् ।

भगवान्—बाढम् इदमङ्गीकारार्थकः शब्दः, त्वं यदात्थ तत्तथैवेत्यर्थः (उपविश्य, आसनं गृहीत्वा) भो राजन् हे नृपते ।

इस युद्ध की तैयारी देखकर तो मुझे अननुभूत भय सता रहा है, ये भय अपने लिए मुझे नहीं है प्रत्युत उन भाइयों के लिए हैं जो चञ्चल हैं ॥ ७ ॥

(पास आकर)

आपकी विजय हो ।

राजा—भगवान आपको विराट प्रणाम कर रहा है ।

भगवान्—आपका कल्याण हो ।

राजा—अनुगृहीत हुआ, श्रीमान् आसन ग्रहण करें ।

भगवान्—ठीक है (बैठकर) हे राजन्,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उद्योगः प्रस्तुतः कस्माच्छ्रीनं सन्तोषमिच्छति ।
पीडयिष्यति सोत्सेकान् पीडितान् मोक्षयिष्यति ॥ ८ ॥

राजा—भगवन् ! गोग्रहणादवमानितोऽस्मि ।

भगवान् – केन ?

राजा—धार्तराष्ट्रैः ।

भगवान्—धार्तराष्ट्रैरिति । (आत्मगतम्) भोः ! कष्टम्,

व्याख्या—कस्मात् केन हेतुना, उद्योगः युद्धाय कृतपरिश्रमः, प्रस्तुतः सज्जीकृतः, किमितिप्रश्ने—श्रीः सम्पत्तिः, सन्तोषम् तृप्तिम्, न नहि, इच्छति वाञ्छति, प्राप्तादधिकम् धनमीहमानः परानाक्रमितुमभिलषतीति भावः । रणोद्योगे द्वयीविधा क्वचित् गर्वोद्धतपुरुषस्य गर्वहरणमुद्देश्यम् क्वचिच्च पीडितानाम् पीडाहरणमुद्देश्यम्भवतीति भावः । उभययुद्धे भवान् किमुद्देश्यम् पृच्छति—सोत्सेकान् गर्वोद्धतपुरुषान्, पीडयिष्यति गर्वम् हरिष्यति अथवा पीडितान् दुःखितान् मोक्षयिष्यति आपदस्त्राणं कारयिष्यति भवान् इति भावः ॥ ८ ॥

राजा—भगवन् इति सम्बुद्धौ, गोग्रहणात् गोधनापहरणात्, अवमानितोऽस्मि अपमानितोऽहम् ।

भगवान्—केन केन पुरुषविशेषेणापमानितोऽसि भवान् इत्याशयः ।

राजा—धार्त्तराष्ट्रैः धृतराष्ट्रसुतैः अपमानितोऽस्मि (आत्मगतम् स्वगतम्) भोः इति सम्बोधने कष्टम्—खेदम् ।

यह युद्ध की तैयारी कैसी है ? क्या इतना बड़ा साम्राज्य पाकर भी आपको सम्पत्ति से संतोष नहीं है ? अथवा किसी गर्वीले का गर्व भङ्ग कीजियेगा या किसी पीड़ित को पीड़ा से त्राण दिलाइयेगा ॥ ८ ॥

राजा—भगवन्, मेरी गायों का अपहरणकर मुझे अपमानित किया है ।

भगवान्—किसने ?

राजा—कौरवों ने ।

भगवान्—धृतराष्ट्र के बेटों ने ? (अपने आप) हाँ गजब हो गया ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एकोदकत्वं खलु नाम लोके मनस्विनां कम्पयते मनांसि ।
वैरप्रियैस्तैर्हि कृतेऽपराधे यत्सत्यमस्माभिरिवापराद्धम् ॥ ९ ॥

राजा—भगवन् ! किमिदानीं विचार्यते ।

भगवान्—न खलु किञ्चित् । तेषामुत्सुकः ।

व्याख्या—लोके अस्मिन् संसारे, एकोदकत्वम् एकस्मिन्नेव कुले जन्मग्रहणत्वम्, खलु नाम अत्र खलुशब्दः नामशब्दश्च निश्चयार्थम्, मनस्विनाम् बुद्धिमताम्, मनांसि चेतांसि, कम्पयते खेदयति, हि यतः, तैः धृतराष्ट्रसुतैः, वैरप्रियैः कलहरसिकैः, कृते विहिते अपराधे धेनूनामपहरणरूपेऽकार्ये अनुष्ठिते, यत् यथा, सत्यम् यथार्थतः, अस्माभिः पाण्डवादिभिः इव यथा, अपराद्धम् स्वकृतापराधमिव भावयामः । युधिष्ठिरस्येयं चिन्ता—अनासक्तिविभाविता पुरुषार्थलसिता वरिवस्या, समन्वयकारिणी च सगोत्रीयमनीषाभवति, दुर्योधनादिभिर्यस्तु वैररसिकत्वेन यत् गोग्रहणपोऽयमपराधः कृतः तेन स्वकुलोत्पन्नत्वेन मम मानसगतिम् विविधपरिस्थितिवदीचीवक्षसि मामुद्वेलयति, यतो हि स्वकृतम् इवापराधं भावयामः, तत्कारणं केवलम् समानोदकत्वमेव, सगोत्रजलेन सत्यपि विरोधे सम्बन्धो न निवर्त्तते तेन हि समानोदकत्वसम्बन्धो मनस्विनां दुखदायक इति भावः । उपजाति वृत्तम् ॥ ९ ॥

राजा—भगवन् हे युधिष्ठिर, किम् कं विषयमवलम्ब्य, इदानीम् अधुना, विचार्यते, विचारम् करोषि ।

भगवान्—न नहि, खलु निश्चयेन, किञ्चित् किमपि, तेषां दुर्योधनादीनाम् कृते उत्सुकः चिन्तितः ।

स्ववंशज विचार विवेकी हृदय को कँपा देता है यद्यपि विरोधप्रेमी कौरवों ने अपराध किया है फिर भी स्ववंशीय होने के कारण मुझे लगता है जैसे कसूर हमने ही किया है ॥ ९ ॥

राजा—भगवन् आप भला क्या सोच रहे हैं ?

भगवान्—कुछ नहीं, मैं उन कौरवों के लिए ही तो दुखी हूँ ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राजा—अद्यप्रभृति निभृता भविष्यन्ति। यदि शक्तोऽपि युधिष्ठिरो मर्षयति, अहं न मर्षयामि।

भगवान्—एवमेतत्। (आत्मगतम्)

अद्येदानीं पर्णशय्या च भूमौ राज्यभ्रंशो द्रौपदीघर्षणं वा।
वेषान्यत्वं संश्रितानां निवासः सर्वं श्लाघ्यं यत् क्षमा ज्ञायते मे ॥१०॥

राजा—अद्यप्रभृति अधुनातः, निभृताः निश्चिन्ताः भविष्यन्ति यास्यन्ति, यदि चेत्, शक्तोऽपि समर्थोऽपि युधिष्ठिरः पाण्डवाग्रजः, मर्षयति क्षमते, अहम् विराटः, न नहि, मर्षयामि क्षमिष्ये—वर्तमानसामीप्ये वर्त्तमानवद्वा इति नियमेन।

भगवान्—एतत् एषः एवम् इत्थमिति—(आत्मगतम् स्वगतम्)

व्याख्या—अद्य अस्मिन्नेव दिने, इदानीम् अधुना, भूमौ पृथिव्याम्, पर्णशय्या तरुदलनिर्मितशयनीयम्, च पुनः, राज्यभ्रंशः नृपपदात्पतनम्, वा अथवा, द्रौपदीघर्षणम् द्रुपदसुतायाः केशाकर्षणादिरूपात्मकमपमानम्, वेषान्यत्वम् रूपान्तरग्रहणम्। संश्रितानाम् आश्रितानाम्, निवासः कृताधिवासः, सर्वम् सकलम्, श्लाघ्यम् स्तुत्यम्, यत् मे मम, क्षमा तितिक्षा, ज्ञायते बध्यते। मानवस्य मानसं कदापि धर्मः, कदापि च अर्थम् आवर्जयति, धर्मेणाकृष्टो भूत्वा किं किं न दुःखमावहति, एवमेव अर्थेन वा कामेन आकृष्टो भूत्वा कानि कानि च गर्हणीयानि कृत्यानि अनुष्ठातुम् आत्मानम् नियोजयति! महात्मनो युधिष्ठिरस्यात्म-नियंत्रणम् दृष्ट्वा विराटादयः विवेकशालिनः नृपतयस्तस्य सकलमपि विपत्तिजातम्

राजा—आज और अभी से ही वे ठीक हो जायेंगे, क्योंकि प्रतिकार करने में सक्षम रहते हुए भी महाराज युधिष्ठिर ही उन्हें माँफ कर सकते हैं, मैं तो उन्हें छोड़ूँगा ही नहीं।

भगवान्—यह तो ठीक है (अपने आप)—

आज मैं समझता हूँ जमीन पर पत्ते बिछाकर मेरा सोना, अपना राज्य गवाँकर दर-दर की ठोकरें खाना, भरी सभा में द्रौपदी का अपमानित होना भेष बदलकर दूसरों का आश्रित बनकर जीवन व्यतीत करना, सब प्रशंसनीय

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(प्रविश्य)

भटः—जयतु महाराजः ।

राजा—अथ किं चेष्टते दुर्योधनः ?

भटः—न खलु दुर्योधन एव, पृथिव्यां राजानः सर्वे प्राप्ताः ।

द्रोणश्च भीष्मश्च जयद्रथश्च शल्योऽङ्गराजः शकुनिः कृपश्च।
तेषां रथोत्कम्पचलत्पताकैर्भग्ना ध्वजैरेव वयं न बाणैः ॥११॥

तदीयां क्षमां वदन्ति । इदमेव युधिष्ठिरस्य सन्तोषस्य कारणमस्ति । शालिनी वृत्तम् ॥ १० ॥

(प्रविश्य प्रवेशम् कृत्वा)

भटः—जयतु सर्वतोभावेन विजयताम् महाराजः नृपतिः ।

राजा—अथ अनन्तरम्, दुर्योधनः धृतराष्ट्रसुतः, किं चेष्टते गवामपहरणे किं किं प्रयत्नं करोति ।

भटः—न नहि, खलु 'निश्चयेन, दुर्योधन एव मात्रधृतराष्ट्रसुतः अपितु पृथिव्याम् भुवि, सर्वे सकलाः राजानः नृपतयः प्राप्ताः अस्मिन् गोग्रहणे समायताः।

व्याख्या—द्रोणः आचार्यः, भीष्मः पितामहः, जयद्रथः, सिन्धुराजः, शल्यः, अङ्गराजः, कर्णः, शकुनिः दुर्योधनमातुलः गान्धार नृपतिः, कृपाचार्यः इमे सर्वेऽपि धुरन्धराः अस्मिन् गोग्रहणे समायाताः इति पूर्वोक्तेनान्वयः, तेषां समागतानां

हो रहा है. क्योंकि विराट जैसे मनस्वी सम्राट ने भी उसे मेरी सहिष्णुता ही मानी है ॥ १० ॥

(भीतर जाकर)

भट—महाराज की विजय हो ।

राजा—रणाङ्गण में दुर्योधन क्या कर रहा है ?

भट—दुर्योधन के सम्बन्ध में क्या पूछ रहे हैं ? धरती के प्रायः सभी पराक्रमी लोग जुटे हैं ।

आचार्य द्रोण, पितामह भीष्म, योद्धा जयद्रथ, शल्य, अङ्गाधिपति कर्ण, शकुनि और कृपाचार्य, सभी आये हैं । लड़ने की बात तो दूर रही उनके रथ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राजा—(उत्थाय कृताञ्जलिः) कथं तत्रभवान् गाङ्गेयोऽपि प्राप्तः ।

भगवान्—(आत्मगतम्) साधु धर्षितेनापि नातिक्रान्तः समुदाचारः । भोः !

किमर्थं खलु सम्प्राप्तः कुरूणां गुरुरुत्तमः ।
शङ्के तीर्णा प्रतिज्ञेति स्मारणं क्रियते मम ॥ १२ ॥

राजा—कोऽत्र ।

सर्वेषाम् महापुरुषाणाम् रथोत्कम्पचलत्पताकैः स्यन्दनसंचारणे कम्पमानध्वजदण्डैरेव वयम् विराटपरिजनाः पराजिताः न तु बाणैः शरैरिति इन्द्रवज्रावृत्तम् ।

राजा—(उत्थाय कृताञ्जलिरिति भीष्मं प्रत्यादरप्रकाशाय श्रद्धाञ्जलिभूत्वा) कथम् इत्याश्चर्ये, तत्रभवान् गंगापुत्रत्वेन माननीयः गाङ्गेयोऽपि पितामहभीष्मोऽपि, प्राप्तः अस्मिन् युद्धे समागतः ।

भगवान्—(आत्मगतम् स्वगतम्) साधु सुष्ठु, धर्षितेनापि अपमानितः सन्नपि, अतिक्रान्तः नोल्लङ्घितः, समुदाचारः सम्यक् आचरणम्, भोः इति सम्बुद्धौ ।

व्याख्या—कुरूणाम् कुरुवंशोद्भवानाम्, उत्तमः श्रेष्ठः, गुरुः पितामहभीष्मः किमर्थम् केन हेतुना, सम्प्राप्तः अस्मिन् युद्धे समागताः, शङ्के तर्कयामि, प्रतिज्ञा अज्ञातवास रूप प्रतिज्ञा तीर्णा समुत्तीर्णा अर्थात् सुष्ठुरूपेण समापिता, इति उक्तम्, मम पाण्डवानाम्, स्मारणम् स्मरणस्य भावः स्मारणम् क्रियते बोध्यते युष्माभिः सम्यक् प्रकारेणाज्ञातवासः निगूढाः इति अस्माकम् स्मारयितुमेव पितामहोऽत्र समागतोभवेदिति मदीया शङ्केति ॥ १२ ॥

राजा—कोऽत्र अस्मिन् स्थाने कः परिजनः वर्त्तत इति भावः ।

चालन से कम्पित ध्वजदण्डों को देखकर ही हम पराजित हो गये हैं ॥ ११ ॥

राजा—(उठकर और हाथ जोड़कर) क्या कहा समादरणीय पितामह भीष्म भी आये हैं ? भगवान् (अपने आप) ठीक है, अपमानित होकर भी महाराज विराट ने अपने औचित्य का परित्याग नहीं किया है ।

भला कौरवों के पितामह भीष्म यहाँ क्यों आये हैं ? लगता है अज्ञातवास की मेरी अवधि समाप्त हो गई है, इसी की याद दिलाने वे आये हैं ॥ १२ ॥

राजा— कोई यहाँ है ?

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

(प्रविश्य)

भटः—जयतु महाराजः ।
राजा—सूतस्तावदाहूयताम् ।
भटः—यदाज्ञापयति महाराजः ।

(निष्क्रान्तः)

(प्रविश्य)

सूतः—जयत्वायुष्मान् ।
राजा—

रथमानय शीघ्रं मे श्लाघ्यः प्राप्तो रणातिथिः ।
तोषयिष्ये शरैर्भीष्मं जेष्यामीत्यमनोरथः ॥ १३ ॥

(प्रविश्य मंचे उपस्थितो भूत्वा)

भटः—जयतु महाराजः जयत्वित्यादि आचारः स्वोपस्थितिम् सूचयति ।

राजा—सूतः स्यन्दनसंचालकः, तावदित्यवधारणे, आहूयताम् आकार्यताम् ।

भटः—यदाज्ञापयति यथादिशति महाराजः विराटेश्वर इति । (निष्क्रान्तः प्रस्थातुमारब्धः)

(प्रविश्य ततः सूतस्य प्रवेशमाह)

सूतः—जयत्वायुष्मान् सर्वोत्कर्षेण विजयताम् श्रीमान् ।

व्याख्या—शीघ्रम् त्वरितम्, मे मम विराटस्य, रथम् स्यन्दनम् आनय नीयताम् अद्यश्लाघ्यः परमपूज्यः, रणातिथिः समराङ्गणेऽतिथिः प्राप्तः समायातः शरैः बाणैः भीष्मम् तमतिथिम् तोषयिष्ये युद्धेन प्रसादयिष्यामि, रणेभीष्मम्

(प्रवेश करके)

भट—जय हो महाराज की ।
राजा—सारथी को बुलाओ ।
भट—महाराज की जैसी आज्ञा (जाता है)

(प्रवेश करके)

सारथी—जय हो महाराज की ।
मेरा रथ जल्दी लाओ, भीष्म पितामह रण के मुख्य अतिथि हैं, उन्हें जीत

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सूतः—यदाज्ञापयत्यायुष्मान् । आयुष्मन् !

रिपूणां सैन्यभेदेषु यस्ते परिचितो रथः ।
रथचर्यां बहिष्कर्तुं तमास्थायोत्तरो गतः ॥ १४ ॥

राजा—कथं निर्यातः कुमारः ।

भगवान्—भो राजन् ! संवार्यतां संवार्यतां कुमारः ।

अगणितगुणदोषो युद्धतीक्ष्णश्च बाल्या-

पराजेष्ये इति तु अमनोरथः नास्ति मदीयाभिलाषा यतो हि भीष्मस्यापराजयत्वादिति ॥ १३ ॥

सूतः—यदाज्ञापयति यथा भवतादिष्टं तथा करोमि, आयुष्मान् इति विराटसम्बोधनम् सारथेः वयोज्येष्ठतां गमयति ।

व्याख्या—यः स्यन्दनविशेषः, रिपूणाम् शत्रूणाम्, सैन्यभेदेषु सैन्यसंहारेषु, परिचितः अभ्यस्तः, रथः, स्यन्दनः, तम्, रथविशेषम्, उत्तरः एतदाख्यकुमारः, आस्थाय आरुह्य, रथचर्याम् युद्धकौशलम्, बहिष्कर्त्तुम् प्रदर्शितुम्, गतः अव्रजदिति ॥ १४ ॥

राजा—कथमिति प्रश्ने, निर्यातः निर्गतः, कुमारः विराटसुतः ?

भगवान्—भो राजन् हे नृप, संवार्यताम् निषिध्यताम्, संवार्यताम् युद्धे-गमनान्निरुध्यताम्, कुमारः ।

व्याख्या—अगणितगुणदोषः अगणितौ गणनारहितौ गुणदोषौ लाभहानी यस्य तादृशः अगणितगुणदोषः अथवा अनिर्णीतापराधभावः, युद्धतीक्ष्णः

पाऊँगा यह कहना तो अनुचित होगा पर मैं उन्हें अपने बाणों से संतुष्ट अवश्य कर दूँगा ॥ १३ ॥

सारथि—आयुष्मान् आपकी जैसी आज्ञा ।

सैन्य संहार में पूर्ण अभ्यस्त आप का जो रथ था उसे लेकर कुमार उत्तर युद्ध के मैदान में अपना कौशल दिखाने चले गये ॥ १४ ॥

राजा—क्या ? कुमार चले गये ?

भगवान्—महाराज रोकिए कुमार को युद्ध में जाने से उन्हें रोकें ।

कुमार युद्ध के गुण दोषों से अपरिचित हैं, बचपन के कारण युद्ध में वे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

न च दहति न कश्चित् सन्निकृष्टो रणाग्निः।
अथ च परिहरन्ते धार्त्तराष्ट्रा न किञ्चि-
न्न खलु परिभवात् ते युद्धदोषान् ब्रवीमि ॥ १५ ॥

राजा—तेन हि शीघ्रमन्यो रथः कल्प्यताम्।

सूतः—यदाज्ञापयत्यायुष्मान्।

राजा—अथवा एहि तावत्।

सूतः—आयुष्मन्! अयमस्मि।

राजा— त्वमिदानीं कुमारस्य किं न वाहितवान् रथम्।

रणभयङ्करः, बाल्यात् बालभावात्, सन्निकृष्टः सन्निहितः, रणाग्निः युद्धरूपो वह्निः कश्चित् कश्चन, अर्थात् कमपि पुरुषविशेषम् बाल्यात् न दहति अर्थात् न दहत्येवेति निश्चितः, अथ अनन्तरम् च पुनः धार्तराष्ट्राः कौरवाः, किञ्चित् किमपि न नहि, परिहरन्ते उपेक्षन्ते, खलु निश्चयेन, परिभवात् तव पुत्रस्यापमानमुद्दिश्य ते तुभ्यम्, युद्धदोषान् रणानर्थान्, ब्रवीमि वच्मि ॥ १५ ॥

राजा—तेन कारणेन, हि यतः, शीघ्रम् त्वरितम्, अन्यः, अपरः, रथः स्यन्दनः, कल्प्यताम् आनीयताम्।

सूतः—यत् यथा, आज्ञापयति आदिशति, आयुष्मान् चिरञ्जीवी।

राजा—अथवा वा, एहि समागम्यताम्, तावदित्यवधारणे।

सूतः—आयुष्मन् चिरञ्जीविन्, अयमस्मि अत्रैवोपस्थितोऽस्मि।

व्याख्या—इदानीम् अधुना, त्वम् भवान्, कुमारस्य राजकुमारस्योत्तरस्य,

---

बड़ी तेजी दिखलाते हैं, पर याद रक्खे युद्ध की आग बालभाव को विना समझे जो सामने आयेगा उसे जला ही डालेगी। उधर दुर्योधन सामने आये किसी शत्रु को छोड़ता नहीं है, यह बात मैं कुमार की निन्दा करने के उद्देश्य से नहीं कहता प्रत्युत आप के प्रति प्रेम के कारण ही कह रहा हूँ ॥ १५ ॥

राजा—तो हमारे लिए शीघ्र ही दूसरा रथ तैयार करो।

सारथी—श्रीमान् की जैसी आज्ञा।

राजा—अथवा यहाँ आओ।

सारथी—सामने ही तो उपस्थित हूँ श्रीमन्

राजा—आज तुमने राजकुमार का रथ संचालन क्यों नहीं किया? तुम

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अनुज्ञातोऽसि किं तेन न राज्ञां सारथिर्भवान् ॥ १६ ॥

सूतः—प्रसीदत्वायुष्मान्। रथं सङ्कल्पयित्वा तु सूतसमुदाचारेणोपस्थितः खल्वहम्। कुमारेण,

किन्नु तत् परिहासार्थं किन्नु तत्रास्ति कौशलम्।
मामतिक्रम्य सारथ्ये विनियुक्ता बृहन्नला ॥ १७ ॥

राजा कथं बृहन्नलेति।

भगवान्—राजन्! अलमलं सम्भ्रमेण।

रथम् स्यन्दनम्, किम् कुतः, न नहि, वाहितवान्, भवान् त्वम्, राज्ञाम् नृपतीनाम्, सारथिः रथवाहकः, असि, भवसि तेन राजकुमारेण, किम् कथम् त्वाम् न नहि अनुज्ञातः आज्ञापितः युद्धं गन्तुम् ॥ १६ ॥

सूतः—प्रसीदतु प्रसन्नो भवतु, आयुष्मन् चिरञ्जीविन्, रथम् स्यन्दनम्, सङ्कल्पयित्वा सज्जीकृत्य तु, सूतसमुदाचारेण सारथिपदेनाहम् तत्र उपस्थितो बभूव तु किन्तु, कुमारेणोत्तरेण—

व्याख्या—माम् सारथिम्, अतिक्रम्य परित्यज्य बृहन्नलानाम विराटकन्याचास्तौर्यचित्रकाचार्या, सारथ्ये रथवाहकपदे, विनियुक्ता अध्यारोपिता, तन्न जाने तत् परिहासार्थम् बृहन्नलायाः उपहासाय तत्पदं प्रदत्तमथवा बृहन्नलायाम् सत्यमेव तत्र तस्मिन् किमपि कौशलम् चातुर्यमस्ति ॥ १७ ॥

राजा—कथं बृहन्नलेति वदतो विराटस्याश्चर्यं व्यक्तं भवति बृहन्नलायाः स्त्रीत्वेन सूतकर्मणि अनुपयुक्तत्वात्।

भगवान्—राजन् हे नृप, अलमलम् निरर्थकम्, ससम्भ्रमेणावेगेनेति।

तो अनुभवी राजाओं के सारथी हो। फिर तुम्हें राजकुमार ने रथ-संचालन की अनुमति क्यों नहीं दी? ॥ १६ ॥

सारथी—क्षमा करें श्रीमान् रथ सजाकर मैं सारथी के रूप में उनके सामने उपस्थित हुआ किन्तु पता नहीं कुमार ने मेरे परिहास के लिए अथवा बृहन्नला को किसी खास विशेषता के कारण मुझे छोड़कर उसे सारथी पद पर नियुक्त किया ॥ १७ ॥

राजा—क्यों बृहन्नला को सारथी बनाया गया?

भगवान्—महाराज, घबड़ाने की कोई बात नहीं है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

यदि स्वचक्रोद्धतरेणुदुर्दिनं रथं समास्थाय गता बृहन्नला।
परान् क्षणेनेमिरवैर्निवारयन् विनापि बाणान् रथ एव जेष्यति ॥ १८ ॥

राजा—तेन हि शीघ्रमन्यो रथः कल्प्यताम्।

सूतः—यदाज्ञापयत्यायुष्मान्। (निष्क्रान्तः)।

(प्रविश्य)

भटः—भग्नः खलु कुमारस्य रथः।

व्याख्या—यदि चेत्, स्वचक्रोद्धतरेणुदुर्दिनम् निजरथचक्रोत्थापितधूलिवर्षाकरम्, रथम् स्यन्दनम्, समास्थाय समुचितरूपेणारुह्य, बृहन्नला नपुंसकभावापन्नोऽज्ञातवासस्थोऽर्जुनः, गता प्रस्थिता, तदा तर्हि, क्षणैः क्षणमात्रेणैव, नेमिरवैः चक्रपरिधिशब्दैः, परान् अरीन्, निवारयन् निषेधयन्, रथ एव स्यन्दन एव बाणान् शरपातान् विनापि, जेष्यति विजयमाप्स्यति। वंशस्थं वृत्तम् ॥१८॥

राजा—तेन कारणविशेषेण, हि यतः, शीघ्रम्, अन्यः अपरः, रथः स्यन्दनः, कल्प्यताम् सज्जीक्रियताम्।

सूतः—यदाज्ञापयत्यायुष्मान् यथा भवतादिष्टं तथा करोमीत्यर्थः (निष्क्रान्तः रङ्गशालातः निर्गतः सूतः)

(प्रविश्य रङ्गशालायामुपस्थितो भूत्वा)

भटः—भग्नः कुमारस्य उत्तरस्य, स्यन्दनः खलु निश्चयेनेति।

यदि सचमुच बृहन्नला ही सारथी बन कर गई है तो निश्चय ही उसके रथ के पहिये से उठी हुई धूलि आकाश में मेघमाला की संरचना करेगी। इतना ही नहीं उसका रथ, चक्के की आवाज से ही दुश्मनों को जीतकर क्षण भर में ही लौट आयेगा। कुमार को बाण चलाने की भी आवश्यकता नहीं होगी ॥ १८ ॥

राजा—तो फिर शीघ्र ही दूसरा रथ तैयार करो न।

सूत—आयुष्मान् की जैसी आज्ञा। (जाता है)

(मंचपर आकर)

भट—कुमार का रथ पराजित हो गया।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राजा—कथं भग्नो नाम ।

भगवान्—कथमिदानीं भग्नो नाम ।

भटः—श्रोतुमर्हति महाराजः ।

बहुभिः समराभिज्ञैराच्छन्नाश्वपथः परैः ।
भग्नो गहनलोभेन श्मशानाभिमुखो रथः ॥ १९ ॥

भगवान्—(आत्मगतम्) आ अत्र खलु गाण्डीवम् । (प्रकाशम्) भो राजन् !
निमित्तं किञ्चिदुत्पन्नं श्मशानाभिमुखे रथे ।

राजा—कथमित्याश्चर्ये, भग्नः पराजितः नाम ।

भगवान्—कथम् कुमारस्य पराजयत्वमसंभाव्यं भवतः जिज्ञासेति, इदानीम् अधुना भग्नो नामेति प्रश्नः ।

भटः—श्रोतुम् आकर्णितुम् अर्हति शक्नोति महाराजः नृपविराटः ।

व्याख्या—बहुभिः अनेकैः, समराभिज्ञैः रणकुशलैः, परैः अरिभिः, आच्छन्नाश्वपथः आच्छन्नः आवृतः अश्वपथः रथगमनमार्गः, निरुद्धमार्गमवलोक्य कुमारस्य रथः स्यन्दनः, गहनलोभेन आत्मसंरक्षणहेतुना, श्मशानाभिमुखः श्मशानमभिलक्ष्य तस्यामेव दिशायाम् भग्नः प्रतिनिवृत्तो यातः ॥ १९ ॥

भगवान्—(आत्मगतम् स्वगतम्) आः स्मृतम्, अत्र अस्मिन् स्थाने, खलु निश्चयेन, गाण्डीवः गाण्डीवनामकः धनुः, अस्ति, (प्रकाशम् सर्वश्राव्यम्) भो राजन् हे नृप—

व्याख्या—रथे स्यन्दने, श्मशानाभिमुखे श्मशानमभिलक्ष्य चलिते सति किञ्चित् किमपि, निमित्तम् शुभकारणम्, उत्पन्नम् जातम्, तत्तु यत्र यस्मिन्

राजा—क्या कहा ? कुमार का रथ पराजित हो गया ?

भगवान्—वाह, इस समय कैसे पराजित हो गया ?

भट—सुनिए श्रीमान्,

युद्ध कला में प्रवीण योद्धाओं ने सहसा रथ का मार्ग रोक लिया, फिर आत्मरक्षार्थ सारथी ने रथ लेकर श्मशान की ओर प्रस्थान किया ॥ १९ ॥

भगवान्—(अपने आप) हाँ, अब बात समझ में आई । श्मशान में ही तो अर्जुन का गाण्डीव रक्खा है । (सुनाकर) महाराज, मुझे तो लगता है

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

धार्तराष्ट्राः स्थिता यत्र श्मशानं तद् भविष्यति ॥ २० ॥

राजा—भगवन् ! अकाले स्वस्थवाक्यं मन्युमुत्पादयति ।

भगवान्—अलं मन्युना । कदाचिदनृतं नोक्तपूर्वम् ।

राजा—आ अस्त्येतत् । गच्छ भूयो ज्ञायतां वृत्तान्तः ।

भटः—यदाज्ञापयति महाराजः । (निष्क्रान्तः)

राजा— को नु खल्वेष सहसा कम्पयन्निव मेदिनीम् ।

स्थाने स्थिताः उपस्थिताः, धार्त्तराष्ट्राः धृतराष्ट्रसुताः तत् स्थानम् निश्चयेन श्मशानम् अन्तिमसंस्कारभूमिः भविष्यति यास्यति ॥ २० ॥

राजा—भगवन् हे युधिष्ठिर, अकाले असमये, स्वस्थवाक्यम् सुवचनम्, मन्युम् क्रोधम्, उत्पादयति उत्पन्नं करोतीति ।

भगवान्—अलम् व्यर्थम्, मन्युना कोपेन, कदाचित् कदापि, अनृतम् असत्यम्, न नहि, उक्तम् कथितम्, पूर्वम् अतीते ।

राजा—आः इत्याश्चर्ये, अस्ति भवति, एतत् तव कथनम् सत्यम्, गच्छ याहि, भूयः पुनरपि, ज्ञायताम् बुध्यताम्, वृत्तान्तः रणसमाचारः ।

भटः—यदाज्ञापयति यथादिशति, महाराजः सम्राट् (निष्क्रान्तः रङ्गशालातः निर्गतः)

व्याख्या—को नु खलु एषः शब्दः सहसा हठात्, मेदिनीम् धरित्रीम्, कम्पयन् चालयन् इव यथा आविद्धः वक्रीभूतः, नदीस्रोतः सरित्प्रवाह

कि जब रथ श्मशान की ओर गया है तो रणभूमि श्मशान ही बनकर रहेगी ॥ २० ॥

राजा—भगवन्, असमय में कहे गये शुभ सूचक स्वस्थवाक्य भी क्रोध उत्पन्न करता है ।

भगवान्—क्रोध की आवश्यकता नहीं है, इससे पहले तक मेरी कोई बात झूठ नहीं हुई है महाराज ।

राजा—हाँ यह तो है । फिर भी भट, तुम जाकर वहीं का पता करो ।

भट—जैसी आज्ञा (जाता है) ।

राजा—सहसा धरती को कँपा देने वाली यह आवाज कहाँ से आ रही है ?

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नदीस्रोत इवाविद्धः क्षणात् संवर्तते ध्वनिः ॥ २१ ॥

ज्ञायतां शब्दः ।

(प्रविश्य)

भटः—जयतु महाराजः । श्मशानान्मुहूर्तंविश्रान्ततुरगेण कुमारेण तु,

भगवान्—एष मामनृतवादिनं न कुर्यात् ।

राजा—किं कृतं कुमारेण ?

भटः—

कृता नीला नागाः शरशतनिपातेन कपिला

इव यथा, ध्वनिः रवः, क्षणात् निमिषात् संवर्तते प्रादुर्भवतीतिभावः ॥ २१ ॥

ज्ञायताम् परिचीयताम् शब्दः इतः ।

(प्रविश्य समरवृत्तान्तं ज्ञात्वा दुर्योधनस्य दुरवस्थां च विलोक्य भटः प्रविश्याह)

भटः—जयतु सर्वोत्कर्षेण विजयताम् महाराजः, विराटराजः । श्मशानात् शवदाहस्थानात् मुहूर्त्तम् क्षणम्, विश्रान्ततुरगेण स्वरथेभ्यो विश्रामावसरं प्रदाय, कुमारेण तु ।

भगवान्—एष पुरोवर्त्ती संवाददाता, माम् युधिष्ठिरम्, अमृतवादिनम् मिथ्यावादिनम् न कुर्यात् साधयेदिति ।

राजा—किं कृतम् युद्धे किं विधत्तम्, कुमारेणेति ?

व्याख्या—शरशतनिपातेन अगणितबाणवर्षणेन, नीलाः कृष्णवर्णाः, नागाः

लगता है नदी की धारा उलट गई हो ॥ २१ ॥

देखो, यह आवाज कैसी है ?

(प्रवेश करके)

भट—महाराज की जय हो । श्मशान में कुछ पल अपने घोड़ों को विश्राम देकर कुमारने,

भगवान्—शायद यह मुझे मिथ्यावादी न सिद्ध कर दे ।

राजा—कुमार ने क्या किया ?

भट—सैकड़ों बाणों के प्रहार से उनके मदमत्त काले हाथियों को लाल

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हयो वा योधो वा न वहति न कश्चिच्छरशतम्।
शरैः स्तम्भीभूताः शरपरिकराः स्यन्दनवराः
शरैश्छन्ना मार्गाः स्रवति धनुरुग्रां शरनदीम् ॥ २२ ॥

भगवान्—(आत्मगतम्)

एतदक्षयतूणित्वं येन शक्रस्य खाण्डवे।
यावत्यः पतिता धारास्तावन्तः प्रेषिताः शराः ॥ २३ ॥

राजा—अथ परेष्विदानीं को वृत्तान्तः।

गजाः, कपिलाः रक्तवर्णाः कृताः निर्मिताः, हयः अश्वः वा योधाः शूरवीराः, वा न कश्चित् न कोऽपि, शरशतम् शतसंख्यकैः बाणैः क्षतानि, न वहति न धारयत्येवेति, शरपरिकराः बाणेनावृत्ताः स्यन्दनवराः रथश्रेष्ठाः शरैः कुमार-विसृष्टबाणैः, स्तम्भीभूताः स्थिरत्वम् याताः निश्चलीकृता इत्यर्थः, मार्गाः रणभूमि-पथाः, शरैःश्छन्नाः बाणैः व्याप्ताः, धनुः कुमारस्य चापः, उग्राम् अतिभीषणाम्, शरनदीम् बाणानाम् सरितम् स्रवति प्रवाहयति। शिखरिणी वृत्तम् ॥ २२ ॥

भगवान्—(आत्मगतम् स्वगतम्)

व्याख्या—एतत् अविरलशरवर्षित्वम् धनुषः, अक्षयतूणीत्वम् शरक्षय-रहिततूणीरभावः, येन गाण्डीवेन, खाण्डवे खाण्डवनामकारण्ये, यावत्यः यत्संख्याकाः, शक्रस्य देवराजेन्द्रस्य, धाराः जलवृष्टयः पतिताः स्रविताः तावत्-कालपर्यन्तम् शराः बाणाः, प्रेषिताः ॥ २३ ॥

राजा—अथ अनन्तरम्, परेषु अरिषु, इदानीम् सम्प्रति, कः किम्, वृत्तान्तः अर्थात् कीदृशः समाचार इति जिज्ञासा।

बना डाला है। ऐसा एक भी घोड़ा या योद्धा नहीं बचा जिसे बाण से बिध न दिया गया हो। शरों के बीच घिर कर सारे रथ गतिहीन होकर खड़े हैं। लगता है धनुष से शररूपी नदी की धारा प्रवाहित हो रही है।

भगवान्—(अपने आप) यह प्रभाव तो उन अक्षय तूणीरों का है जिन्होंने इन्द्र के प्रिय खाण्डव वन को जलाने के समय इन्द्र की जल धारा की तरह बाणों की ही वर्षा की थी ॥ २३ ॥

राजा—अब दुश्मनों की स्थिति क्या है?

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भटः—अप्रत्यक्षं हि तत्र मे । प्रवृत्तिपुरुषाः कथयन्ति—

धनुर्घोषं द्रोणस्तदिदमिति बुद्ध्वा प्रतिगतो
ध्वजे बाणं दृष्ट्वा कृतमिति न भीष्मः प्रहरति ।
शरैर्भग्नः कर्णः किमिदमिति चान्ये नृपतयो
भयेऽप्येको बाल्यान्न भयमभिमन्युर्गणयति ॥ २४ ॥

भगवान्—कथमभिमन्युः प्राप्तः । भो राजन् !

भटः—अप्रत्यक्षम् प्रत्यक्षरहितम्, हीति निश्चयेन, तत्र रणाङ्गणे, मे मम, प्रवृत्तिपुरुषाः वार्त्ताहराः दूताः कथयन्ति—

व्याख्या—धनुर्घोषम् चापटङ्कारम्, तत् इदम् इति तस्यामुकस्य चापस्यायं टङ्कार इति बुद्ध्वा ज्ञात्वा, द्रोणः गुरुद्रोणः, प्रतिगतः युद्धात् परावृत्तः, ध्वजे स्वकेतौ, बाणम् शरम्, प्रहृतम् दृष्ट्वा अवलोक्य, भीष्मः गांगेयः, कृतमिति व्यर्थमेव युद्धमिति बुद्ध्वा न प्रहरति बाणप्रक्षेपं न करोतीति, कर्णः राधेयः, शरैः बाणप्रहारैः, भग्नः पराजितो जातः, अन्ये च ते बहवः नृपतयः किमिदमित्याश्चर्यान्विता अजायन्त । भयेऽपि भयङ्करस्थितावपि, बाल्यात् शिशुचपलतया, एकः केवलम्, अभिमन्युः अर्जुनसुतः, भयम् भीतिम्, न गणयति निर्भीकभावेन युद्ध्यते ॥ २४ ॥

भगवान्— कथमित्याश्चर्ये, अभिमन्युः सौभद्रेयः, प्राप्तः समागतः, भो राजन् हे नृप,—

भट—महाराज, इस सम्बन्ध में मेरी प्रत्यक्ष तो कोई जानकारी नहीं है, पर संवाददाताओं का कहना है कि—

द्रोण ने धनुष को आवाज को पहचान कर ही युद्ध बन्द कर दिया है। अपने रथ के ध्वजों में लगे बाणों को देखकर ही लड़ना बन्दकर दिया है। कर्ण बाणों से बिंध गया है, अन्य राजे लगातार प्रहारों से चकरा गये हैं। भय के कारण सामने देखकर भी केवल अभिमन्यु लड़ रहा है ॥ २४ ॥

भगवान्—क्या अभिमन्यु भी आया है ? हे राजन्,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

युध्यते यदि सौभद्रस्तेजोग्निर्वंशयोर्द्वयोः।
सारथिः प्रेष्यतामन्यो विक्लवात्र बृहन्नला ॥ २५ ॥

राजा—मा मा भवानेवम्।

भीष्मं रामशरैरभिन्नकवचं द्रोणं च मन्त्रायुधं
कृत्वा कर्णजयद्रथौ च विमुखौ शेषांश्च तांस्तान् नृपान्।
सौभद्रं स्वशरैर्न धर्षयति किं भीतः पितुः प्रत्ययात्
संसृष्टोऽपि वयस्यभावसदृशं तुल्यं वयो रक्षति ॥ २६ ॥

व्याख्या—यदि चेत्, द्वयोः वंशयोः मातृपितृकुलयोः, तेजोऽग्निः प्रतापवह्निः, सौभद्रः सुभद्रासुतः अभिमन्युः, युद्ध्यते युद्धम् करोति तदान्यः अपरः, सारथिः सूतः, प्रेष्यताम्, अत्र अस्मिन् महायुद्धे, बृहन्नला विक्लवा भयविह्वला स्यात्॥२५॥

राजा—मा मा नहि नहि, भवान् त्वम् एवम् इत्थम् वदतु—

व्याख्या—रामशरैः परशुरामबाणैः, अभिन्नकवचम् अक्षतवर्माणम्, भीष्मम् गांगेयम्, च पुनः, ममायुधम् मम प्रहरणम्, द्रोणम् द्रोणाचार्यम्, कर्णजयद्रथौ अङ्गराजसिन्धुराजौ च विमुखौ कृत्वा युद्धे पराभूय, तांस्तान् शेषान् नृपान् राज्ञः, विमुखान् कृत्वा कुमार उत्तरः किं स्वशरैः बाणैः, सौभद्रम् सुभद्रा-पुत्रम्, न धर्षयति पराजेतुं न शक्यते किम्? पितुः प्रत्ययात् अर्जुनस्य ख्यातेः, भीतः शङ्कितः सन्, संसृष्टोऽपि कृतमैत्रिकोऽपि, तुल्यम् समानम्, वयः अवस्थाम् वयसो भावः समानवयसोर्हितयोर्मैत्रीभावः रक्षतीति। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ २६ ॥

यादव और पाण्डवों का सम्मिलित तेज अभिमन्यु यदि लड़ रहा है तो आप कुमार के रथ पर किसी अन्य सारथी को भेजे क्योंकि वहाँ आपकी बृहन्नला विवश है ॥ २५ ॥

राजा- नहीं-नहीं आप ऐसा मत कहें।

जिनके कवच परशुराम के बाणों से भी नहीं बिंधे ऐसे भीष्म को, मंत्रायुध द्रोण को, कर्ण तथा जयद्रथ को एवं अन्यान्य वीरों को युद्ध में पराजित करने वाला कुमार उत्तर क्या अभिमन्यु को अपने बाणों से पराजित नहीं कर सकेगा? संभव है अर्जुन की ख्याति के ख्याल से अभिमन्यु से दोस्ती करले, यह भी आयु एवं वंश के विचार से उचित ही होगा ॥ २६ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भटः—एष खलु कुमारस्य रथः,

आलम्बितो भ्रमति धावति तेन मुक्तो
न प्राप्य धर्षयति नेच्छति विप्रकर्तुम् ।
आसन्नभूमिचपलः परिवर्तमानो
योग्योपदेशमिव तस्य रथः करोति ॥ २७ ॥

राजा—गच्छ । भूयो ज्ञायतां वृत्तान्तः ।

भटः—यदाज्ञापयति महाराजः (निष्क्रम्य प्रविश्य) जयतु महाराजः । जयतु विराटेश्वरः । प्रियं निवेदये महाराजाय । अवजितं गोग्रहणम्, अपयाता

भटः—एषः एतत् खलु निश्चयेन, कुमारस्य, रथः स्यन्दनः ।

व्याख्या—तेन सारथिना, आलम्बितः अवरोधितः सन्, भ्रमति नृत्यति मुक्तः त्यक्तप्रग्रहः सन्, धावति पलायति, प्राप्य अवसरम् लब्ध्वापि, न धर्षयति आक्रमणं न करोति, विप्रकर्त्तुम् पराजेतुम्, नेच्छति नाभिलषति, आसन्नभूमिचपलः प्रतिरथसमीपभूमौ अस्थिरः, परिवर्त्तमानः समन्ततः चरन्, रथः कुमारस्य स्यन्दनः, तस्य कुमारस्य, योग्योपदेशम् रथसंचालनस्योचिताभ्यासं करोति॥२७॥

राजा—गच्छ याहि, भूयः अतिशयम्, वृत्तान्तः संवादः, ज्ञायताम् विद्धि ।

भटः—यदाज्ञापयति महाराजः यथा भवतादिष्टं तथा करोति, (निष्क्रम्य वहिर्गत्वा, प्रविश्य पुनरागत्य) जयतु महाराजः सर्वोत्कर्षेण विजयताम् नृपतिः महाराजाय राज्ञे, प्रियं सुखकरम् निवेदये निवेदनं करिष्ये, अवजितम् परा-

---

भट—और, यह कुमार का रथ —

सारथी जब उसे रोक लेता है तो वह चारों ओर घूमने लगता है । और जब घोड़े की लगाम छोड़ देता है तो वे तेजी से आगे की ओर दौड़ने लगता है, दुश्मनों के रथ के पास पहुँच कर भी उस पर आक्रमण करने की अपेक्षा उसके चारों ओर चक्कर काटने लगता है, देखने पर ऐसा प्रतीत होता है जैसे अपने प्रतिद्वन्द्वी को रणाङ्गण में रथ-संचालन का अभ्यास करा रहा हो ॥२७॥

राजा—जाओ, और अधिक संवाद लाओ ।

भट—श्रीमान् की जैसी आज्ञा, (बाहर निकलकर पुनः प्रवेश करके) महाराज की जय हो, जय हो विराटेश्वर की । श्रीमान् को खुशखबरी सुनाता हूँ,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

धार्तराष्ट्राः ।
भगवान्—दिष्ट्या भवान् वर्धते ।
राजा—न न । भगवतो वृद्धिरेषा । अथ कुमार इदानीं क्व ?
भटः—दृष्टपरिस्पन्दानां योधपुरुषाणां कर्माणि पुस्तकमारोपयति कुमारः ।
राजा—अहो श्लाघनीयव्यापारः खल्वयं कुमारः ।

ताडितस्य हि योधस्य श्लाघनीयेन कर्मणा ।
अकालान्तरिता पूजा नाशयत्येव वेदनाम् ॥ २८ ॥

जितं गोग्रहणम् गवामपहरणम्, अपयाताः पलायिताः, धार्तराष्ट्राः कौरवाः ।

भगवान्—दिष्ट्या प्रसन्नतासूचकमव्ययम्, भवान् त्वम्, वर्धते अभ्युदयं याति ।

राजा—न न नहि नहि, भगवतः श्रीमतः, वृद्धिः समुन्नतिः, एषा । अथ अनन्तरम्, इदानीम् सम्प्रति, कुमारः उत्तरः, क्व कुत्रास्ति ?

भटः—दृष्टपरिस्पन्दानाम् कृतपरिश्रमाणाम्, योधपुरुषाणाम् वीरेषु अग्रसराणाम्, कर्माणि युद्धस्थलस्य कृत्यानि, पुस्तकम् आरोपयति पुस्तके लिखति, कुमारः कुमार उत्तरः ।

राजा—अहो इत्याश्चर्ये, श्लाघनीयव्यापारः प्रशंसनीयकार्यकरः खलु निश्चयेन, अयम् एषः, कुमारः उत्तरः ।

व्याख्या—श्लाघनीयेन प्रशंसनीयेन, कर्मणा कृत्येन, ताडितस्य आहतस्य, योधस्य सैनिकस्य, अकालान्तरिता सद्यः कृता, पूजा सम्मानविशेषः, वेदनाम् पीड़ाम्, नाशयत्येव ताडनव्यथाम् विनश्यत्येवेति भावः ॥ २८ ॥

गोहरण में कुमार की जीत हुई, दुश्मन जान लेकर भाग गये ।

भगवान्—महाराज, सौभाग्य से आप की बिजय हुई ।

राजा—नहीं नहीं, यह तो आप का ही श्रेय है । अच्छा, अभी कुमार कहाँ है ?

भट—कुमार रणाङ्गण में अपना कौशल दिखलाने वाले वीरों का काम पुस्तक में अंकित कर रहे हैं ।

राजा—अरे कुमार का यह काम तो प्रशंसनीय है ।

युद्ध में आहत वीरों के प्रशंसनीय कार्यों के लिए यदि तत्काल उनका सम्मान किया जाय तो निश्चय ही वे लड़ाई के सारे कष्टों को भूल जाते हैं ॥२८॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अथ बृहन्नलेदानीं क्व ?

भटः—प्रियनिवेदनार्थमभ्यन्तरं प्रविष्टा ।

राजा—बृहन्नला तावदाहूयताम् ।

भटः—यदाज्ञापयति महाराजः । (निष्क्रान्तः)

(ततः प्रविशति बृहन्नला)

बृहन्नला—(निरूप्य सविमर्शम्)

गाण्डीवेन मुहूर्तमाततगुणेनासीत् प्रतिस्पर्धितं
बाणानां परिवर्तनेष्वविशदा मुष्टिर्न मे संहता ।

अथ अनन्तरम्, बृहन्नला, इदानीम् सम्प्रति, क्व कुत्रास्ति ?

भटः—प्रियनिवेदनार्थम् समरविजयरूपाभीष्टम् सूचयितुम्, अभ्यन्तरम् अन्तःपुरम्, प्रविष्टा गता ।

राजा—बृहन्नला तौर्यत्रिकाचार्या, तावदित्यवधारणे, आहूयताम् आह्वानं कुरु ।

भटः—यत् यथा, आज्ञापयति आदिशति, महाराजः नृपो विराटेश्वर इति ।

(निष्क्रान्तः रङ्गभूमिं परित्यज्य बहिर्गतः)

(ततः तत्पश्चात्, प्रविशति प्रवेशम् करोति बृहन्नलेति)

बृहन्नला—(निरूप्य दृष्ट्वा, सविमर्शम् विचारपूर्वकम्)

व्याख्या—आततगुणेन बद्धमौर्वीकेण, गाण्डीवेन गाण्डीवनामकधनुषा, मुहूर्त्तम् क्षणम्, प्रतिस्पर्धितम् प्रतिस्पर्धाकृतमासीत्, अविशदा परित्यक्ताभ्यासा, मे मम, मुष्टिः मुष्टिका, बाणानां शराणाम्, परिवर्त्तनेषु मोक्षणग्रहणक्रियासु, न नहि,

---

और, बृहन्नला इस समय कहाँ है ?

भट—खुश खबरी सुनाने के लिए भीतर गई है ।

राजा—बृहन्नला को शीघ्र बुलाओ ।

भट—आप की जैसी आज्ञा महाराज ।

(सभी बाहर चले गये)

(उसके बाद बृहन्नला का प्रवेश)

बहन्नला—(विचार पूर्वक देखकर)

पहले गाण्डीव पर मौर्वी चढ़ाने में मुझे कुछ देर हुई, क्षण-भर बाण

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गोधास्थानगता न चास्ति पटुता स्थाने हृतं सौष्ठवं
स्त्रीभावाच्छिथिलीकृतः परिचयादात्मा तु पश्चात् स्मृतः ॥२९॥

मया हि,

अनेन वेषेण नरेन्द्रमध्ये लज्जायमानेन धनुर्विकृष्टम् ।
यात्रा तु तावच्छरदुर्दिनेषु शीघ्रं निमग्नः कलुषश्च रेणुः ॥ ३० ॥

भोः,

संहता संयोजिता आसीत् । गोधा, स्थानगता, गोधा गुध्यते वेष्टयते बाहुरनयाज्या-घातवारणस्थानगामिनीम् च पुनः, पटुता बाणप्रक्षेपणे कुशलता, नास्ति नैवसमुत्पन्ना स्थाने धानुष्कजनसाध्ये कस्मिन्चित् कर्मणि, सौष्ठवम् कुशलताम्, हृतम्, अपनीतम्, स्त्रीभावात् नपुंसकभावापन्नात् शिथिलीकृतः शैथिल्यम् जातः, आत्मा मदीयात्मा, परिचयात् बहुकालपर्यन्तकृताभ्यासात्, पश्चात् किञ्चित् कालं व्यतीत्य स्मृतः मया सकलम् स्मृतः ॥ शार्दूलविक्रीडितम् वृत्तम् ॥ २९ ॥

मया पार्थेन हि यतः—

व्याख्या—नरेन्द्रमध्ये युद्धार्थसमागतराजानां मध्ये, अनेन वेषेण एतेन स्त्रीरूपेण, लज्जायमाने त्रपामनुभवता मया धनुर्विकृष्टम् धनुः संचारितम्, येन यात्रा युद्धयात्रा तु किन्तु शरदुर्दिनेषु बाणवर्षकेषु, आसीत्, कलुषः कलुषवर्णश्च, रेणुः धूलिः, शीघ्रम् त्वरितमेव, निमग्नः निमज्जितोऽभूत् उपजाति वृत्तम् ॥३०॥

भोः—इत्यनिर्दिष्टपरिजनाह्वाने अत्र कः कः परिजन इति—

पकड़ने और छोड़ने में भी कठिनाई हुई, कुछ देर तक गोधा संस्थापन में भी भ्रम होता रहा, कुछ देर तक तो धनुष चलाने में भी कठिनाई होती रही, बहुत दिनों तक स्त्रीवेष में रहने के कारण ये सारी चीजें नई सी लगती थीं पर थोड़ी ही देर में मेरा पुरुष स्वभाव प्रकृतिस्थ हो गया ॥ २९ ॥

मैंने ही—स्त्री भेष में लज्जा का अनुभव करते हुए भी राजाओं के सामने धनुष तान दिया, जिससे शत्रुओं की रणयात्रा बाण वर्षा के बीच प्रारम्भ हुई, उनके घावों से निकली लहू की धारा और देह में लगी धूल जल्दी-जल्दी धरती पर लोटने लगी ॥ ३० ॥

अरे,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जित्वापि गां विजयमप्युपलभ्य राज्ञो
नैवास्ति मे जयगतो मनसि प्रहर्षः ।
दुःशासनं समरमूर्धनि सन्निगृह्य
बद्ध्वा यदद्य न विराटपुरं प्रविष्टः ॥ ३१ ॥

उत्तराप्रीतिदत्तालङ्कारेणालङ्कृतो व्रीडित इवास्मि राजानं द्रष्टुम् । तस्माद् विराटेश्वरं पश्यामि । (परिक्रम्यावलोक्य) अये अयमार्यो युधिष्ठिरः,

सयौवनः श्रेष्ठतपोवने रतो नरेश्वरो ब्राह्मणवृत्तिमाश्रितः ।

व्याख्या—गाम् गोधनम्, जित्वा अरिहस्तात् विजित्य, अपि, राज्ञः विराटनृपतेः, विजयम् जयम्, उपलभ्य प्राप्य, अपि, मे मम, मनसि चित्ते, जयगतः उत्कर्षसंभवः, प्रहर्षः प्रसन्नता, नैवास्ति न सम्भूत एव, तत्कारणमाह—दुःशासनम् दुर्योधनानुजं, यत् यस्मात्, समरमूर्ध्नि समराङ्गणे, सन्निगृह्य गृहीत्वा, बद्ध्वा निगडयित्वा, अद्य अस्मिन्नेव दिने, विराटपुरम् विराटनृपतेः नगरम् न प्रविष्टः प्रत्यागतः ॥ ३१ ॥

उत्तरा प्रीतिदत्तालङ्कारेण विराटकन्यया प्रीत्या प्रदत्ताभूषणेन, अलङ्कृतः सुशोभितः व्रीडितः लज्जित इव अस्मि भवामि, राजानम् नृपम्, प्रष्टुम् अवलोकयितुम्, तस्मात् तेन कारणेन विराटेश्वरम् विराटनृपतिम् पश्यामि अवलोकयामि, (परिक्रम्य भ्रमित्वा, अवलोक्य दृष्ट्वा) अये आश्चर्यम्, अयम् एषः, आर्यः मान्यः युधिष्ठिरः पाण्डवाग्रजः—

व्याख्या—सयौवनः युवावस्थायामेव, अपि, श्रेष्ठतपोवने उत्तम आश्रमे, रतः निरतः, नरेश्वरः नृपो भूत्वापि, ब्राह्मणवृत्तिमाश्रितः ब्राह्मणस्य विप्रस्य वृत्तिः

मैने ही गायों को दुश्मनों के हाथों से छुड़ालिया, युद्ध में विजय श्री प्राप्त की किन्तु मेरे मन में जीत की कोई खुशी नहीं हुई क्योंकि मेरे मन में अभी कसक है कि मैने दुःशासन को युद्ध भूमि से बाँधकर विराट नगर में नहीं प्रवेश किया ॥ ३१ ॥

हाय, उत्तराने प्रेमोपहार के रूप में जो आभूषण दिया है, उसे धारण कर राजा के सम्मुख जाने में संकोच होता है । अच्छा तो महाराज विराट के पास जाऊँ (देखकर) अरे, यही तो आर्य युधिष्ठिर हैं—

इन्होंने भरी जवानी में कठोर तप किया है, राजा होकर भी ब्राह्मणवृत्ति

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

विमुक्तराज्योऽप्यभिवर्धितः श्रिया त्रिदण्डधारी न च दण्डधारकः ॥३२॥

भगवन् ! वन्दे ।

(उपगम्य) (भअवं ! वन्दामि ।)

भगवान्—स्वस्ति ।

बृहन्नला—जयतु भर्ता ।

(जेदु भट्टा ।)

राजा—

अकारणं रूपमकारणं कुलं महत्सु नीचेषु च कर्म शोभते ।

आजीविकाम् आश्रितः अवलम्बितः, विमुक्तराज्यः परित्यक्तं निजसाम्राज्यम्, अपि, श्रिया कान्त्या, अभिवर्धितः सम्पन्नः, त्रिदण्डधारी त्रिदण्डधारणे कृते सत्यपि न दण्डधारकः न दण्डाधिकारसम्पन्नः। विरोधाभासालङ्कारः, वंशस्थं वृत्तम् ॥ ३२ ॥

(उपगम्य समीपम् गत्वा) भगवन्, श्रीमन् वन्दे अभिवादये।

भगवान्—स्वस्ति कल्याणम् भवतु ।

बृहन्नला—जयतु भर्त्ता सर्वोत्कर्षेण विजयताम् स्वामी ।

व्याख्या—रूपम् स्वरूपम् शारीरिकं सौन्दर्यम्, अकारणम् आदरातिशयस्य कारणम् नास्ति, कुलम् वंशमपि अकारणम् सम्मानहेतुर्भवति, महत्सु स्वरूप-वंशाधिकेषु नीचेषु निम्नकोटिजनेषु कर्म आचरणम्, शोभते सम्मानजनकं

अपनाया है, राज्य छोड़ देने पर भी श्रीसम्पन्न हैं, त्रिदण्डधारी होकर भी दण्डाधिकारी नहीं रह गये हैं ॥ ३२ ॥

(समीप आकर) भगवन्, मैं आपको प्रणाम करती हूँ ।

भगवान्—तुम्हारा कल्याण हो ।

बृहन्नला—महाराज की जय हो ।

राजा—व्यक्ति चाहे ऊँच हो या नीच उसके सम्मान का कारण न तो उसका रूप होता है और न वंश गौरव ही, अपने कर्म से, ही कोई व्यक्ति

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इदं हि रूपं परिभूतपूर्वकं तदेव भूयो बहुमानमागतम् ॥ ३३ ॥

बृहन्नले ! परिश्रान्तामपि भवतीं भूयः परिश्रमयिष्ये । उच्यतां रणविस्तरः ।

बृहन्नला—शृणोतु भर्ता ।

(सुणादु भट्टा ।)

राजा—ऊर्जितं कर्म । संस्कृतमभिधीयताम् ।

बृहन्नला—श्रोतुमर्हति महाराजः ।

(प्रविश्य)

भवति, इदम् एतत्, हि यतः, रूपम् स्त्रैणम्, परिभूतपूर्वकम् अनादरस्य कारणभूतम्, तदेव तदेव रूपम् कर्मप्रकर्षात् भूयः अतिशयः, बहुमानमागतम् अत्यादृतमजनि ॥ अर्थान्तरन्यासोऽलङ्कारः, वंशस्थवृत्तम् ॥ ३३ ॥

बृहन्नले, परिश्रान्तामपि कृतश्रमामपि, भवतीम् त्वाम्, भूयः पुनः परिश्रामयिष्ये श्रमं कारयिष्यामि । उच्यताम् कथ्यताम्, रणविस्तरः विस्तरेण रणसंवादः।

बृहन्नला—शृणोतु आकर्ण्यताम्, भर्त्ता स्वामी ।

राजा—अर्जितम् ओजस्वि, कर्म कृत्यम्, संस्कृतमभिधीयताम् देववाण्यामेव कथ्यताम् ।

बृहन्नला—श्रोतुम् आकर्णितुम्, अर्हति शक्नोति महाराजः नृपतिः ।

(प्रविश्य प्रवेशम् कृत्वा)

प्रशंसनीय होता है। इस बृहन्नला का यह वही रूप है जिसे कलतक लोग अपमानित करते थे—आज वही आदर सम्मान का पात्र बना है ॥ ३३ ॥

बृहन्नले, मैं समझता हूँ तुम पूरी थकी हो फिर भी मैं तुम्हें कुछ कष्ट देना चाहूँगा। लड़ाई के मैदान का विस्तृत समाचार सुनाओ।

बृहन्नला—सुनिये महाराज।

राजा—संस्कृत भाषा में ही वहाँ की घटनाओं का वर्णन करो। क्योंकि, ये सारी घटनायें तेजस्वी हैं।

बृहन्नला—सुनिए महाराज

(प्रवेश करके)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भटः—जयतु महाराजः ।

राजा—

अपूर्व इव ते हर्षो ब्रूहि केनासि विस्मितः ।

भटः—

अश्रद्धेयं प्रियं प्राप्तं सौभद्रो ग्रहणं गतः ॥ ३४ ॥

बृहन्नला—कथं गृहीतः । (आत्मगतम्)

तुलितबलमिदं मयाद्य सैन्यं परिगणितं च रणेऽद्य मे स दृष्टः ।
सदृश इह तु तेन नास्ति कश्चित् क इह भवेन्निहतेषु कीचकेषु ॥ ३५ ॥

भटः—जयतु महाराजः सर्वोत्कर्षेण विजयताम् महाराजः ।

राजा—ते तव, हर्षः प्रसन्नता, अपूर्व इव विलक्षण इव, केन कारणेन, विस्मितः आश्चर्यचकितः असि ब्रूहि कथय ।

भटः—सौभद्रो अर्जुनसुतः ग्रहणं गतः, वन्दीभूत इति, अश्रद्धेयमपि अविश्वसनीयमपि प्रियं सुखकरम् प्राप्तम् जातमिति ॥ ३४ ॥

बृहन्नला—कथम् इत्याश्चर्ये, गृहीतः वन्दीकृतः (आत्मगतम् स्वगतम्)

व्याख्या—अद्य अस्मिन्नेव दिने, मया अर्जुनेन, इदम् एतत् सैन्यम् विराटस्य सैनिकम्, तुलितबलम् पूर्णरूपेण परीक्षितशक्तिकम्, परिगणितम् गणनापिकृतञ्च, सः असौ अभिमन्युः मया दृष्टः रणे साक्षात्कृतः, इह अस्मिन् युद्धे, कीचकेषु शतसंख्यकविराटश्यालेषु, निहितेषु मृतेषु कः जनः, तेन अभिमन्युना सदृशः तुल्यः कश्चित् कोपि नास्तीति ॥ ३५ ॥

भट—महाराज की जय हो !

राजा—तुम्हारी खुशी की तो आज सीमा ही नहीं दीखती । इसका क्या कारण है ?

भट—महाराज, अविश्वसनीय प्रिय प्राप्त हुआ है । अभिमन्यु युद्ध में वन्दी बना लिया गया है ॥ ३४ ॥

बृहन्नला—क्या कहा पकड़ लिया गया ! (अपने आप)

विराट की सेना की ताकत तो आज मैंने तौल ही ली थी । उसकी गणना भी की थी । रणकुशल अभिमन्यु को पराजित करने वाला तो उसमें एक भी नहीं था । कीचकों की मृत्यु के बाद भला उससे लड़ ही कौन सकता है ॥ ३५ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भगवान्—बृहन्नले ! किमेतत् ।

बृहन्नला—भगवन् !

न जाने तस्य जेतारं बलवाञ्छिक्षितस्तु सः ।
पितॄणां भाग्यदोषेण प्राप्नुयादपि धर्षणम् ॥ ३६ ॥

राजा—कथमिदानीं गृहीतः ।

भटः—

रथमासाद्य निःशङ्कं बाहुभ्यामवतारितः ।

राजा—केन ?

भगवान्—बृहन्नले, एतत् किम् ?

बृहन्नला—भगवन्—

व्याख्या—तस्य अभिमन्योः जेतारम् विजेतारम् न जाने अहम् नावगच्छामि, सः असौ, बलवान् शक्तिशाली, शिक्षितः रणकुशलः अस्ति, पितॄणाम् पाण्डवानाम्, भाग्यदोषेण विपरीतभाग्येन कदाचित् धर्षणम् पराजयम्, प्राप्नुयात् लभेत ॥ ३६ ॥

राजा—इदानीम् अधुना, कथम् केन प्रकारेण, गृहीतः अभिमन्युर्बन्दीकृतः !

भटः—रथम् स्यन्दनम्, आसाद्य प्राप्य, निःशङ्कम् असंदिग्धभावेन, बाहुभ्याम् कराभ्यामेव, अवतारितः स्यन्दनादधोनीतः ।

राजा—केन पुरुषविशेषेणावतारित इति जिज्ञासा नृपस्य ।

भगवान्—बृहन्नले, क्या बात है ?

बृहन्नला—भगवन्, मुझे पता नहीं कि अभिमन्यु को किसने पराजित किया है ? अभिमन्यु बलवान और रणकुशल है । संम्भवतः वह अपने पिता के भाग्य दोष से ही पराजित हुआ है ॥ ३६ ॥

राजा—अब वह कैसे पकड़ लिया गया है ?

भट—बिल्कुल आसानी से रथपर चढ़कर हाथों से उतार लिया गया ।

राजा—किसने उतार लिया ?

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भटः—

यः किलैष नरेन्द्रेण विनियुक्तो महानसे ॥ ३७ ॥

बृहन्नला—(अपवार्य) एवम् आर्यभीमेन परिष्वक्तः, न गृहीतः ।

दूरस्था दर्शनादेव वयं सन्तोषमागताः ।
पुत्रस्नेहस्तु निर्विष्टस्तेन सुव्यक्तकारिणा ॥ ३८ ॥

राजा—तेन हि सत्कृत्य प्रवेश्यतामभिमन्युः ।

भटः—यः पुरुषः किल एषः नरेन्द्रेण विराटेन महानसे पाकशालायाम् विनियुक्तः पाचकरूपेण विनियोजितः तेनैव ॥ ३७ ॥

बृहन्नला—(अपवार्य परावर्तनेन सर्वमश्रावयित्वा) तदुक्तम् सामन्तः महापात्रेण—

"……तद्भेदपवारितम् । रहस्यन्तु यदन्यस्य परावृत्य प्रकाश्यते । इति । एवम् इत्थम्, आर्यभीमेनमध्मभ्रात्राभीमेनाभिमन्युः परिष्वक्तः आलिङ्गितः न तु गृहीतः बन्दीकृतः ।

व्याख्या—वयम् सर्वे पाण्डवाः, दूरस्थाः दूरे स्थिताः एव, दर्शनात् अवलोकनात् सन्तोषम् तृप्तिम्, आगता प्राप्ताः तु किन्तु तेन भीमेन, सुव्यक्तकारिणा सर्वजनसन्मुखे एव पुत्रमभिमन्युम् स्यन्दनादवतार्य, पुत्रस्नेहः पुत्रजन्यप्रीतिः, निविष्टः स्थितः अर्थात् अपत्यालिङ्गनजन्यसुखं लब्धमिति ॥ ३८ ॥

राजा—तेन कारणेन, हि यतः, सत्कृत्य ससम्मान्य, अभिमन्युम् अर्जुनसुतम्, प्रवेश्यताम् मदीयसंमुखे समानीयताम् ।

भट—वही जिसे महाराज द्वारा रसोई घर की सेवा में नियुक्त किया गया है ॥ ३७ ॥

बृहन्नला—(एक ओर को) अब बात समझ में आई, इस प्रकार आर्य भीम ने उसका आलिङ्गन किया है, पकड़ा नहीं ।

हमलोगों ने दूर से ही बेटा अभिमन्यु को देखकर संतोष प्राप्त कर लिया किन्तु, आर्य भीम ने सबों के सामने ही अपने पुत्र प्रेम को सार्थक कर दिखलाया ॥ ३८ ॥

राजा—ठीक है, ससम्मान अभिमन्यु को यहाँ बुला लाओ ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भगवान्—भो राजन्! वृष्णिपाण्डवनाथस्याभिमन्योः पूजां भयादिति लोको ज्ञास्यति। तदवधीरणमस्य न्याय्यम्।

राजा—नावधीरणमर्हति यादवीपुत्रः।

कुतः—

पुत्रो ह्येष युधिष्ठिरस्य तु वयस्तुल्यं हि नः सूनुना
सम्बन्धो द्रुपदेन नः कुलगतो नप्ता हि तस्माद् भवेत्।
जामातृत्वमदूरतोऽपि च भवेत् कन्यापितृत्वं हि नः

भगवान्—भो राजन्, हे नृप, वृष्णिपाण्डवनाथस्य वृष्णयः यादवाः पाण्डवाश्च नाथा यस्य तादृशस्य अभिमन्योः अर्जुनसुतस्य, भयात् आतंकात् नृपविराटेन सम्मानः प्रदर्शित इति लोकः जनः, ज्ञास्यति। तत् तस्मात्, अस्य अभिमन्योः, अवधीरणम् अनादरमेव, न्याय्यम् उचितम्।

राजा—यादवीपुत्रः सुभद्रासुतः, अवधीरणम्, अनादरम्, न नहि, अर्हसि युज्यते।

कुतः कस्मात्—

व्याख्या—एषः अभिमन्युः, युधिष्ठिरस्य पुत्रः धर्मराजसुतः, तु पादपूत्यर्थे वयसः अवस्थाक्रमेण, नः अस्माकम् सूनुना पुत्रेण, तुल्यम् समम्, नः अस्माकम्, द्रुपदेन नृपेण, कुलगतः परम्परयावंशानुगतः, सम्बन्धः सख्यभावः तस्मात् कारणात् हि यतः नप्ता द्रौहित्रः अपि चेत् भवेत स्यात्। कन्यापितृत्वम् जायाजनकत्वम् हि यतः नः अस्माकं अदूरतोऽपि शीघ्रमेव जामातृत्वं पुत्रीपतित्वम् चापि भवेत् जायेत्, अतिथिः आगन्तुकश्च, पूजार्हः श्लाघ्यो भवेत्, च पुनः

भगवान्—राजन्, यदि आप यादव एवं पाण्डवों से सुरक्षित अभिमन्यु का इस तरह सम्मान करेंगे तो लोग कहेंगे कि विराट ने डरकर उसका सम्मान किया है। इसलिए उसकी अवहेलना ही उचित है।

राजा—नहीं, सुभद्रा का बेटा अनादरणीय नहीं है। क्योंकि,

क्या वह युधिष्ठिर का बेटा नहीं है? मेरे कुमार का समवयस्क नहीं है। द्रुपद के साथ दूर का वांशिक सम्बन्ध होने के कारण वह मेरा नाती भी तो है। मैं बेटी का बोप हूँ, हो सकता है निकट भविष्य में वह हमारा जामाता हो,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पूजार्होऽप्यतिथिर्भवेत् स्वविभवैरिष्टा हि नः पाण्डवाः ॥ ३९ ॥

भगवान्—एवमेतत् । वक्तव्यं परिहर्तव्यं च ।

राजा—अथ केनायं प्रवेशयितव्यः ?

भगवान्—बृहन्नलया प्रवेशयितव्यः ।

पाण्डवा युधिष्ठिरादयः, स्वविभवैः आत्मसम्पदैः, इष्टाः अभिष्टाः । अस्मदीया विद्रोहिणी भावाः प्रचण्डभ्रमोत्थापनकारिणो भवन्ति, भासेनास्मिन् नाटकेऽनुशयतापतप्ताश्रुधाराभिर्विद्रोहिभावभीषणानलज्वालाः निर्वापयितुम् कृतोऽस्ति प्रयासः । परं न स तदव्याधेः सत्तां द्रष्टुमभिलषते । तस्य वैद्युदाभाधारिणो लीलां क्षणम् सन्दर्श्य स तिरोधातुम् तम्, सत्वरं पटक्षेपमपि विदधाति । अभिमन्योः सम्मानस्यानेकानि कारणानि सन्ति तत्र प्रथममसौ यादवपाण्डववंशयोः प्रतापाग्निरूपोऽभिमन्युरस्ति, ततो मम सुतेन वयसा । तुल्यः सखाऽस्ति, ममानुवांशिकसुपदसंबन्धेन दौहित्रः, भावी जामाता, मान्योऽतिथिश्च पाण्डवानां पुत्रश्चेति सकलैरेभिः कारणैः व्यस्तैरप्यभिमन्युरादरमर्हति अस्मात्कारणात् ससम्मानम् तम् प्रवेश्यताम् । शार्दूलविक्रीडितम् वृत्तम् ॥ ३९ ॥

भगवान्—एवमेव उचितमेव तव कथनम् । वक्तव्यम् मम कथनम्, परिहर्तव्यम् अमान्यमपिभवितुमर्हति ।

राजा—अथ अनन्तरम्, केन पुरुषेण, अयम् एषः अभिमन्युः, प्रवेशयितव्यः आनेतव्यो भवेत् ।

भगवान्—बृहन्नला नपुंसकभावापन्नोऽज्ञातवासस्थोऽर्जुनः, प्रवेशयितव्यः आनेतव्य इति ।

अतिथि का सत्कार तो होना ही चाहिए उस पर भी अपनी समृद्धि के कारण पाण्डव तो हमारे मित्र भी है ॥ ३९ ॥

भगवान्—आप का कथन ठीक है, इस सम्बन्ध में हमारा कहना नहीं भी माना जा सकता है ।

राजा—अच्छा तो अभिमन्यु को बुलायेगा कौन ?

भगवान्—बृहन्नला को ही भेजा जाय ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राजा—बृहन्नले ! प्रवेश्यतामभिमन्युः ।

बृहन्नला—यदाज्ञापयति महाराजः । (आत्मगतम्) चिरस्य खल्वाकाङ्क्षितोऽयं नियोगो लब्धः । (निष्क्रान्ता) ।

भगवान्—(आत्मगतम्)

अद्येदानीं यातु सन्दर्शनं वा शून्ये दृष्ट्वा गाढमालिङ्गनं वा ।
स्वैरं तावद् यातु मुद्बाष्पतां वा मत्प्रत्यक्षं लज्जते ह्येष पुत्रम् ॥४०॥

राजा—पश्यतु भवान् कुमारस्य कर्म ।

राजा—बृहन्नले, प्रवेश्यताम् आनीयताम्, अभिमन्युः सुभद्रासुत इति ।

बृहन्नला—यत यथा, आज्ञापयति आदिशति, महाराजः विराटेश्वरः (आत्मगतम् स्वगतम्) चिरस्य बहुकालस्य खलु निश्चयेन, आकांक्षितः अभिलषितः, अयम् एषः, नियोगः आदेशः, लब्धः प्राप्तः (निष्क्रान्ता बहिर्गता)

भगवान्—(आत्मगतम् स्वगतम्)

व्याख्या—अद्य अस्मिन्नेवदिने, इदानीम् अधुना, सन्दर्शनम् पुत्रसाक्षात्कारम् यातु भवतु, शून्ये जनशून्ये दृष्ट्वा अभिमन्युमवलोक्य, गाढमालिङ्गनम् गंम्भीराश्लेषम् वा यातु । वा अथवा—तावत् तावत्कालपर्यन्तम्, स्वैरम् यथेच्छम्, मुद्बाष्पताम् प्रसन्नताजन्यनयनवारि वा यातु, एष हि अर्जुनः मत्प्रत्यक्षम् मम युधिष्ठिरस्य सम्मुखे पुत्रम् सुतमभिमन्युम् आलिङ्गयितुम् लज्जते संकुच ॥४०॥

राजा—पश्यतु अवलोकयतु, भवान् श्रीमान् कुमारस्य उत्तरस्य, कर्म रणकौशलम् ।

राजा—बृहन्नले, अभिमन्यु को बुलालाओ ।

बृहन्नला—श्रीमान् की जैसी आज्ञा (अपने आप) बहुत दिनों के बाद इच्छित आदेश मिला है (जाती है)

भगवान्—(अपने आप) अब अर्जुन को अकेले में बेटे से मिलने का मौका मिला है, अथवा एकान्त में उसे गले लगाने का अवसर मिला है, संभव है अकेले में बेटे को पाकर हर्षातिरेक में वह पर्याप्त आँसू बहाये क्योंकि मेरे सामने वह पुत्र को गले लगाने में संकोच का अनुभव करता है ॥ ४० ॥

राजा—आप अब कुमार का काम देख—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नृपा भीष्मादयो भग्नाः सौभद्रो ग्रहणं गतः।
उत्तरेणाद्य संक्षेपादर्थतः पृथिवी जिता ॥ ४१ ॥

(ततः प्रविशति भीमसेनः)

भीमसेनः—

आदीपिते जतुगृहे स्वभुजावसक्ता मद्भ्रातरश्च जननी च मयोपनीताः।
सौभद्रमेकमवतार्य रथात्तु बालं तं च श्रमं प्रथममद्य समं हि मन्ये ॥४२॥

इत इतः कुमारः।

व्याख्या—भीष्मादयः भीष्मद्रोणादयः, नृपाः राजानः, भग्नाः पराजिताः, सौभद्रः अभिमन्युः ग्रहणम् गतः बन्दीकृतः, अद्य अस्मिन्नेव दिने उत्तरेण कुमारेण, संक्षेपात् समासात् अर्थतः वस्तुतः, पृथिवीम् धरित्रीम्, जिता अधिकृतेति ॥ ४१ ॥

(ततः तत्पश्चात्, प्रविशति प्रवेशम् करोति भीमसेनः)

व्याख्या—जतुगृहे लाक्षागृहे, आदीपिते प्रज्वलिते सति, स्वभुजावसक्ता स्वस्य आत्मनः, भुजयोः करयोः अवसक्ताः स्थापिताः, मत् मम भीमस्य, भ्रातरः जननी माता च, मया भीमेन उपनीता स्थानान्तरं प्रापिताः, अद्य तु एकम् केवलम्, सौभद्रम् अभिमन्युम्, रथात् स्यन्दनात्, अवतार्य अवरोप्य, तम् च अद्यतनम् प्राक्तनम् च श्रमम् परिश्रमम् हि इति निश्चये अद्य समम् तुल्यम् मन्ये अवैमि। वसन्ततिलकावृत्तम् ॥ ४२ ॥

इत इतः अस्यामेव दिशि समागम्यताम् कुमारः।

आज उसने धरती के सर्वाधिक शक्तिशाली भीष्मादि राजाओं को पराजित कर अभिमन्यु को बन्दी क्या बना लिया मानो सारी पृथ्वी को ही जीत लिया है ॥ ४१ ॥

(भीमसेन का प्रवेश)

भीमसेन—लाक्षागृह में जब आग लगी थी तब हमने अपने हाथों से सभी भाइयों और माँ को उठाकर अलग किया था और आज अकेले अभिमन्यु को रथ से उठाता हूँ। पर मेरी दृष्टि में दोनों ही श्रम समान हैं ॥ ४२ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(ततः प्रविशत्यभिमन्युर्बृहन्नला च)

अभिमन्युः—भोः ! को नु खल्वेषः,

विशालवक्षास्तनिमार्जितोदरः स्थिरोन्नतांसोरुमहान् कटीकृशः ।
इहाहृतो येन भुजैकयन्त्रितो बलाधिकेनापि न चास्मि पीडितः ॥ ४३ ॥

बृहन्नला—इत इतः कुमारः ।

अभिमन्युः—अये अयमपरः कः,

अयुज्यमानैः प्रमदाविभूषणैः करेणुशोभाभिरिवार्पितो गजः ।

(ततः तत्पश्चात् प्रविशति प्रवेशम् करोति अभिमन्युः बृहन्नला च)

अभिमन्युः— भो को नु खलु पुरुष विशेषः एषः असौ,

व्याख्या—विशालवक्षाः विपुलोरस्कः, तनिमार्जितोदरः कृशत्वेनातिसुन्दरोदरः स्थिरोन्नतांसः सुदृढोन्नतस्कन्धः, च पुनः, उरूमहान् विशालबाहुः कटी कटीप्रदेशः कृशः दुर्बलः अर्थात् मध्ये क्षीणः, येन पुरुषविशेषेण, भुजैकयन्त्रितः एकनैव हस्तेन धृत्वा, इह अत्र आहृतः समानीतोऽस्मि बलाधिकेनापि । अत्यधिकशक्तिशालिनाऽपि, पीडितः अतिक्रान्तः नास्मि ॥ ४३ ॥

बृहन्नला—इत इतः कुमारः अस्मिन्नेव मार्गेण समागम्यताम् ।

अभिमन्युः—अये आश्चर्यम्, अयम् पुरोवर्त्तिनः, अपरः अन्यः, कः पुरुषविशेषः ।

व्याख्या—अयुज्यमानैः अयुक्तिकरैः, प्रमदाविभूषणैः वनितालङ्कारैः करेणुशोभाभिः हस्तिनीप्रभाभिः, अर्पितैः सुसज्जितैः, गजः करी, इव यथा अयम्

(अभिमन्यु और बृहन्नला का प्रवेश)

अभिमन्यु—अरे यह कौन है ?

चौड़ी छाती, कृश उदर, उन्नत स्कन्ध, तथा लम्बी बाहें हैं, हाथ से ही जिसने मुझे यहाँ तक उठा लाया है, अधिक बलशाली होने पर भी इसने मुझे अतिक्रान्त नहीं किया ॥ ४३ ॥

बहन्नला—इधर से इधर से कुमार चलें ।

अभिमन्यु—अरे, यह दूसरा कौन है ?

यह औरत के वेष में ऐसा लगता है जैसे हथिनी की शोभा से युक्त कोई

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लघुश्च वेषेण महानिवौजसा विभात्युमावेषमिवाश्रितो हरः ॥ ४४ ॥

बृहन्नला—(अपवार्य) इममिहानयता किमिदानीमार्येण कृतम् ।

अवजित इति तावद् दूषितः पूर्वयुद्धे
दयितसुतवियुक्ता शोचनीया सुभद्रा ।
जित इति पुनरेनं रुष्यते वासुभद्रो
भवतु बहु किमुक्त्वा दूषितो हस्तसारः ॥ ४५ ॥

पुरुषः वेषेण वस्त्राभूषणेन, लघुः सामान्यः च ओजसा तेजसा, महान् अतिश्रेष्ठः, इव यथा, उमावेषम् गौरीरूपम्, आश्रितः धृतः हरः शिव इव विभाति शोभां धारयति ॥ ४४ ॥

बृहन्नला—(अपवार्य अभिमन्युमश्रावयित्वा) इमम् अभिमन्युकुमारम्; इह विराटसदने, आर्येण पूज्येन इदानीम् अधुना, आनय वा कुमारमानयनम्, किं कृतम् उचितं न कृतमासीत् ।

व्याख्या—पूर्वयुद्धे प्रथमे सङ्गरे, अवजितः पराभूतः, इति इत्थम्, तावत् इति वाच्यालङ्कारे, दूषितः कलङ्कितोजातः, सुभद्रा अभिमन्युजननी, दयितसुतवियुक्ता दयितेन पत्या सुतेन पुत्रेण च वियुक्ता वंचिता, शोचनीया चिन्तनीया, मता, पुनः, एनम् अभिमन्युम्, जितः प्रथमे समरे पराजित इति हेतोः वा सुभद्रः श्रीकृष्णः, रूष्यते कुप्यति, बहुकिमुक्त्वा अत्यधिककथनेन किम् ? भवताऽभिमन्युं गृहीत्वा, बाहुसारम् निजभुजबलम्, दूषितः कलुषितः ! भवतु दूरे तिष्ठतु इत्येकार्थम् ॥ ४५ ॥

मत्तगजराज हो, वेष से यह जितना सामान्य है पराक्रम से उतना ही महान् प्रतीत होता है। लगता है शङ्कर ने उमा का वेष धारण किया है ॥ ४४ ॥

बृहन्नला—(एक ओर को) अभिमन्यु को यहाँ लाकर आपने क्या किया? पहले ही युद्ध में इसे पराजित होने का कलंक लगाया, पति और पुत्र से विहीन सुभद्रा को शोचनीय दशा में पहुँचाया। इसकी हार की खबर से कृष्ण अलग क्रुद्ध होंगे। अधिक क्या ? आपने अपने बाहुबल को कलंकित किया है ॥ ४५ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भीमसेनः—अर्जुन !

बृहन्नला—अथ किम्, अथ किम्, अर्जुनपुत्रोऽयम् ।

भीमसेनः—(अपवार्य)

जानाम्येतान् निग्रहादस्य दोषान् को वा पुत्रं मर्षयेच्छत्रुहस्ते ।
इष्टापत्त्या किन्तु दुःखे हि मग्ना पश्यत्वेनं द्रौपदीत्याहृतोऽयम् ॥४६॥

बृहन्नला—(अपवार्य) आर्य अभिभाषणकौतूहलं मे महत् । वाचालयत्वेनमार्यः ।

भीमसेनः—(अपवार्य) बाढम् ! अभिमन्यो !

भीमसेनः—अर्जुन भो पार्थ ।

बृहन्नला—अथ किम्, अथ किम्—किमन्यत् यदुक्तं तत्तदेवेत्यर्थः, अङ्गीकारेऽपि चाथ किम् इति अथ किमेत्येकमव्यम् । अर्जुनपुत्रोऽयम् अर्जुनस्यैवायं सुतः इत्यनेनाभिमन्योः पराभवं प्रतिरोषो व्यञ्जितः ।

भीमसेनः—(अपवार्य) अर्जुनमश्राव्य—

व्याख्या—अस्याभिमन्योः, निग्रहात् अवग्रहात् अवरोधात्, एतान् पूर्वोक्तान्, दोषान् पूर्वोक्तदोषत्रयान्, जानामि अवगतोऽस्मि, कः पुरुषविशेषः, वा पुत्रम् स्वसुतम्, शत्रुहस्ते अरिकरे, मर्षयेत् क्षिपेत्, इष्टापत्त्या मन्ये सर्वं ज्ञात्वैवेदम् कृतम् तत्कारणमाह—दुःखे कष्टे, मग्ना निमग्ना, द्रौपदी द्रुपदसुता, इमम् अभिमन्युम्, पश्यतु अवलोकयतु, इति हेतोः, मया अयम् अभिमन्युः आहृतः आनीतः इत्याशयः ॥ ४६ ॥

भीमसेनः—(अपवार्य अश्राव्य) बाढम् स्वीकृतम्, अभिमन्यो ।

भीमसेन—अर्जुन ।

बृहन्नला—हाँ हाँ, यह अर्जुन का बेटा है ।

भीमसेन—(एक ओर)-अभिमन्यु की हार से उत्पन्न इन दोषों से अवगत हूँ । भला ऐसा कौन होगा जो अपने बेटे को शत्रु के हाथ में जाना पसंद करे । फिर भी ऐसा इसलिए किया कि दुःखी द्रौपदी को इसे देखकर सान्त्वना मिले ॥ ४६ ॥

बृहन्नला—(एक ओर) आर्य, इससे बात करने की मेरी बड़ी उत्कण्ठा है. आप इसे बोलने को कहें ।

भीमसेन—(एक ओर) ठीक है, अभिमन्यु ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अभिमन्युः—अभिमन्युर्नाम ।

भीमसेनः— रुष्यत्येष मया । त्वमेवैनमभिभाषय ।

बृहन्नला—अभिमन्यो !

अभिमन्युः—कथं कथम् । अभिमन्युर्नामाहम् । भोः—

नीचैरप्यभिभाष्यन्ते नामभिः क्षत्रियान्वयाः ।
इहायं समुदाचारो ग्रहणं परिभूयते ॥ ४७ ॥

बृहन्नला—अभिमन्यो ! सुखमास्ते ते जननी ।

अभिमन्यु—अभिमन्युर्नाम—स्वनाम श्रुत्वा साश्चर्यं वदत्यभिमन्युर्नामेति ।

भीमसेनः—मया भीमेन, एषः अभिमन्युः, रुष्यति कुप्यति । त्वमेव बृहन्नलेव, एनम् अभिमन्युम् अभिभाषय भाषणं कुरु ।

बृहन्नला—तम् सम्बोधयति—अभिमन्यो !

अभिमन्युः—कथमित्याश्चर्ये, अभिमन्यु इति नाम्ना आह्वयति । भो इति आह्वाने—

व्याख्या—नीचैः निम्नकार्येषु संलग्नैः सेवकैः, क्षत्रियान्वयाः क्षत्रियवंशोद्भवाः, नामभिः नामैव, अभिभाष्यन्ते सम्बोध्यन्ते, इह अस्मिन् नगरे, अयम् एतादृशः, समुदाचारः व्यवहारः ? अथवा ग्रहणम् अहम् शत्रुवशंगतः तेन परिभूयते अवमन्यते ॥ ४७ ॥

बृहन्नला—हे अभिमन्यो, ते तव, जननी माता, सुखमास्ते कुशलिनीविद्यते ।

अभिमन्यु—अभिमन्यु ।

भीमसेन—मुझसे तो यह चिढ़ता है, तुम्हीं इससे बात करो ।

बृहन्नला—अभिमन्यु ।

अभिमन्यु—क्यों मेरा नाम लेकर पुकारते हो । क्या क्षत्रिय कुमार को यहां के सेवक नाम लेकर ही पुकारते हैं । यहाँ का यही व्यवहार है ? अथवा बन्दी होने के कारण मुझे अपमानित किया जा रहा है ॥ ४७ ॥

बृहन्नला—अभिमन्यु, तुम्हारी माँ तो अच्छी हैं ?

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अभिमन्युः—कथं कथम् ! जननी नाम ।

किं भवान् धर्मराजो मे भीमसेनो धनञ्जयः ।
यन्मां पितृवदाक्रम्य स्त्रीगतां पृच्छसे कथाम् ॥ ४८ ॥

बृहन्नला—अभिमन्यो ! अपि कुशली देवकीपुत्रः केशवः ?

अभिमन्युः—कथं तत्रभवन्तमपि नाम्ना । अथ किम्, अथ किम् । कुशली भवतः संसृष्टः ।

(उभौ परस्परमवलोकयतः)

अभिमन्यु—कथम् कथम् जननीनाम् मम मातुः कुशलं पृच्छति क्रोधाभिव्यक्तिः ।

व्याख्या—यत् यस्माद्धेतोः, मामभिमन्युम्, पितृवत् जनकसदृशः, आक्रम्य अधिकृत्य, स्त्रीगताम् स्त्रीविषयाम्, कथाम् वार्त्ताम्, पृच्छसे जिज्ञाससि, तत् किम् भवान् त्वम्, मे ममाभिमन्योः, धर्मराजः युधिष्ठिरः, भीमसेनः वृकोदरः अथवा धनञ्जयः अर्जुनः, त एव एतान् प्रश्नान् कर्त्तुम् अधिकुर्वते न च त्वादृशाः नीचसेवका इति ॥ ४८ ॥

बृहन्नला—अभिमन्यो, देवकीपुत्रः देवकीसुतः, केशवः श्रीकृष्णः, अपि कुशली सकुशलमस्तीति भावः ।

अभिमन्युः—कथम् केन कारणेन, तत्र भवन्तम् श्रीमन्तम् श्रीकृष्णमपि, नाम्ना नामग्रहणेनैव व्याहरति । अथ किम् इदमेकमव्ययमङ्गीकार्यम्, त्वम् यदाह्य तत्तथैवेत्यर्थः । कुशली सकुशलम्, भवतः त्वदीयः संसृष्टः सम्बन्धे ।

(उभौ द्वौ, परस्परम् अन्योन्यम्, अवलोकयतः)

अभिमन्यु—क्या ? क्या ? मेरी माँ के बारे में पूछता है—

क्यों आप धर्मराज युधिष्ठिर, भीम अथवा अर्जुन हैं जो मुझे अधिकृतकर मुझसे मेरी माँ के बारे में पूछ रहे हैं ? ॥ ४८ ॥

बृहन्नला—क्यों अभिमन्यु, देवकी पुत्र कृष्ण तो सकुशल हैं ?

अभिमन्यु—क्यों भगवान को भी नाम लेकर ही । और क्या आपके सम्बन्धी सकुशल हैं ।

(दोनों एक दूसरे को देखते हुए)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अभिमन्युः—कथमिदानीं सावज्ञमिव मां हस्यते ।
बृहन्नला—न खलु किञ्चित् ।

पार्थं पितरमुद्दिश्य मातुलं च जनार्दनम् ।
तरुणस्य कृतास्त्रस्य युक्तो युद्धपराजयः ॥ ४९ ॥

अभिमन्युः—अलं स्वच्छन्दप्रलापेन ।

अलमात्मस्तवं कर्तुं नास्माकमुचितं कुले ।
हतेषु हि शरान् पश्य नाम नान्यद् भविष्यति ॥ ५० ॥

अभिमन्युः—कथम् केन कारणेन, इदानीम् अधुना, सावज्ञम् अवहेलनापूर्वकम्, माम् अभिन्युम् हस्यते उपहसति,

बृहन्नला—न खलु किञ्चित् नास्ति किमपि ।

व्याख्या—पितरम् जनकम्, पार्थम् अर्जुनम्, उद्दिश्य अभिलक्ष्य च पुनः मातुलम् मातुः भ्रातरम्, जनार्दनम् श्रीकृष्णम् अभिलक्ष्य ज्ञात्वा वा, तरुणस्य नवयुवकस्य, कृतास्त्रस्याधीतधनुर्विद्यस्य, युद्धपराजयः समरे पराभवः युक्तम् किमुचितमिति नास्त्येवेति भावः ॥ ४९ ॥

अभिमन्युः—अलम् व्यर्थम्, स्वच्छन्दप्रलापेन यथेच्छया वार्त्तालापेन,

व्याख्या—आत्मस्तवम् निजप्रशंसाम्, कर्त्तुम् कृत्वा, अलम् व्यर्थम् अस्माकम् नः, कुले वंशे, उचितम् युक्तम्, न नहि, हतेषु मृतेषु, शरान् बाणान्, पश्य अवलोकय; अन्यत् परस्य, नाम संज्ञा, न नहि भविष्यतीति मयैव युद्धे सैनिकाः मारिताः ॥ ५० ॥

अभिमन्यु—क्यों अब तो ये मेरा ओर अवहेलना पूर्वक देखकर हँस

बृहन्नला—कुछ नहीं,—अपने पिता पार्थ, तथा मामा कृष्ण को यादकर इस भरी जवानी में युद्ध विशारद होकर भी क्या आपको युद्ध में इस तरह चाहिए था ॥ ४९ ॥

अभिमन्यु—बस-बस, यथेच्छ अंट संट बकना बन्द करो ।

अपने वंश की मर्यादा के अनुसार मैं अपनी प्रशंसा अपने मुख से नहीं करना चाहता, इस सन्दर्भ में इतना ही कहूँगा—मृतसैनिकों की देह को जाकर देखो बाणों पर किसी दूसरे का नाम नहीं मिलेगा ॥ ५० ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बृहन्नला—(आत्मगतम्) सम्यगाह कुमारः ।
सरथतुरगदृप्तनागयोधे शरनिपुणेन न कश्चिदप्यविद्धः ।
अहमपि च परिक्षतो भवेयं यदि न मया परिवर्तितो रथः स्यात् ॥ ५१ ॥
(प्रकाशम्) एवं वाक्यशौण्डीर्यम् । किमर्थं तेन पदातिना गृहीतः !
अभिमन्युः—

अशस्त्रो मामभिगतस्ततोऽस्मि ग्रहणं गतः ।
न्यस्तशस्त्रं हि को हन्यादर्जुनं पितरं स्मरन् ॥ ५२ ॥

बृहन्नला—(आत्मगतम् स्वगतम्) सम्यक् सुष्ठु, आह कथितः, कुमारः अभिमन्यु ।

व्याख्या—रथाः स्यन्दनानि, तुरगाः घोटकाः दृप्ताः प्रमत्ताः, नागाः गजेन्द्राः, योधाः सैनिकाश्च तैः सहिते, सरथतुरगदृप्तनागयोधे सैन्यसमूहे, शरनिपुणेन वाणसंचालनचतुरेण न कश्चिदपि न कोऽपीत्यर्थः, अविद्धः अक्षतः, अहमपि अर्जुनोऽपि, परिक्षतः विद्धः, भवेयं जायेयं, यदि स्यात्, मया अर्जुनेन रथः स्यन्दनः परिवर्त्तितः अन्याभिमुखः, न स्यात् न कृत इति ॥ ५१ ॥

(प्रकाशम् श्रावयित्वा) एवम् इत्थम्, वाक्यशौण्डीर्यम् वाचिकवीरत्वम्, किमर्थम् किं हेतुकम्, तेन कारणेन पदातिना पदचारिणा भीमेन गृहीतः रथावतारितः ।

व्याख्या—अशस्त्रः शस्त्रविहीनः, माम् अभिमन्युम्, अभिगतः पार्श्वे समागतः, ततः तस्मात् अहम् ग्रहणम् बन्धनम्, गतोऽस्मि प्राप्तोऽस्मि, अर्जुनम् पार्थम्, पितरम् जनकम्, स्मरन् स्मरणम् कुर्वन्, न्यस्तशस्त्रं त्यक्तायुधं कः न कोऽपि हन्यात् प्रहर्त्तुमिच्छति ॥ ५२ ॥

बृहन्नला—(अपने आप) कुमार ने ठीक ही कहा है । रथवाही घोड़े, मदमस्त हाथी, तथा दिल दहलाने वाले वीरों से भरी इस सेना में एक भी ऐसा नहीं बचा जिसे उस वीर ने अपने बाणों से छलनी नहीं कर दिया, यदि मैं अपना रथ घुमा नहीं लेता तो अन्ततः यह मुझे भी घायल कर ही देता ॥५१॥

(सुनाकर) बोलने में तो बहादुर हो । अगर इतनी ताकत थी तो पैदल चलकर इन्होंने तुम्हें, कैसे पकड़ लिया ।

अभिमन्यु—निहत्थे होकर ये मेरे सामने गये थे । इसीलिए मैं पकड़ा गया था । पिता पार्थको यादकर निहत्थे पर कौन प्रहार करता ॥ ५२ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भीमसेनः—(आत्मगतम्)

धन्यः खल्वर्जुनो येन प्रत्यक्षमुभयं श्रुतम् ।
पुत्रस्य च पितुः श्लाघ्यं संग्रामेषु पराक्रमः ॥ ५३ ॥

राजा—त्वर्यतां त्वर्यतामभिमन्युः ।

बृहन्नला—इत इतः कुमारः । एष महाराजः । उपसर्पतु कुमारः ।

अभिमन्युः—आः कस्य महाराजः ।

बृहन्नला—न, न, ब्राह्मणेन सहास्ते ।

भीमसेनः—(आत्मगतम् स्वगतम्)

व्याख्या—येन पार्थेन, पुत्रस्य सुतस्य, संग्रामेषु युद्धेषु, पराक्रमः विक्रमः, पितुः जनकस्य, च पुनः, उभयम् द्वयम्, श्लाघ्यम् प्रशंसनीयम्, प्रत्यक्षम् स्वकर्णेनैव, श्रुतम् आकर्षितम्, सः अर्जुनः धन्यः ॥

राजा—त्वर्यताम् शीघ्रतां कुरु, त्वर्यतामभिमन्युः शीघ्रमेव नृपसमीपनानीयताम् ।

बहन्नला—इत इतः अनेनैव मार्गेण, कुमारः । एष पुरोवर्ती, महाराजः नृपविराटः । उपसर्पतु समीपम् गच्छतु कुमारः कुमाराभिमन्युः ।

अभिमन्युः—आः इति क्रोधाभिव्यञ्जकमव्ययम् । कस्य महाराजः, इत्यनेन स्वस्य तदधीनताविरहत्वं व्यञ्जितम् ।

बहन्नला—न न नहि नहि, ब्राह्मणेन विप्रेण सह साकम् आस्ते वर्त्तते ।

भीमसेन—(स्वगत) अर्जुन धन्य है जिसने पिता पुत्र दोनों के युद्ध कौशल के प्रशंसावचन प्रत्यक्ष सुनलिया ॥ ५३ ॥

राजा—अभिमन्यु को शीघ्र ही बुला लिया जाय ।

बहन्नला—कुमार इधर से इधर । यही महाराज हैं । आप उनके पास चलें ।

अभिमन्यु—आह, किसके महाराज ।

बृहन्नला—नहीं नहीं, वे ब्राह्मण के साथ हैं ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अभिमन्युः—ब्राह्मणेनेति । (उपगम्य) भगवन् ! अभिवादये ।

भगवान्—एह्येहि वत्स !

शौण्डीर्यं धृतिविनयं दयां स्वपक्षे माधुर्यं धनुषि जयं पराक्रमं च ।
एकस्मिन् पितरि गुणानवाप्नुहि त्वं शेषाणां यदपि च रोचते चतुर्णाम् ।।५४।।

अभिमन्युः—अनुगृहीतोऽस्मि ।

राजा—एह्येहि पुत्र ! कथं न मामभिवादयसि । अहो उत्सिक्तः खल्वयं क्षत्रियकुमारः । अहमस्य दर्पप्रशमनं करोमि । अथ केनायं गृहीतः ।

अभिमन्युः—ब्राह्मणेन विप्रेण इति (उपगम्य समीपम् गत्वा) भगवन् हे देव, अभिवादये प्रणमामि ।

भगवान्—एह्येहि समागम्यताम् , वत्स पुत्र ।

व्याख्या—शौण्डीर्यम् शूरत्वम् , धृतिविनयम् धैर्यविनम्रतयोः समाहारः स्वपक्षे स्वजने, दयाम् कृपाम् , माधुर्यम् मधुरवचनम् , च, धनुषि चापे, जयम् विजयम् , पराक्रमम् साहसञ्च, इति एकस्मिन् जनकानाम् च गुणेषु यत्ते रोचते तदप्यधिगच्छ । पितृतुल्यगुणी भव । प्रहर्षिणीवृत्तम् ॥ ५४ ॥

अभिमन्युः—अनुगृहीतोऽस्मि—कृपान्वितोऽस्मि ।

राजा—एह्येहि समागम्यताम्, पुत्र हे वत्स ।. कथन्न हि माम् विराटम् अभिवादयसि प्रणमसि, अहो इत्याश्चर्ये, उत्सिक्तः गर्वोद्धृतः, खलु शब्दश्च वितर्के, अयम् एषः, क्षत्रियकुमारः अभिमन्युः । अहम् विराटः, अस्य अभिमन्योः,

---

अभिमन्यु—ब्राह्मण के साथ (पास जाकर) भगवन् मैं आपको प्रणाम करता हूँ ।

भगवान्—आओ बेटे, तुम्हारे एकपिता धनञ्जय में जो वीरता, धीरता, विनम्रता, दयालुता, मिष्टभाषिता प्रभृति गुण हैं, उन्हें तथा अन्य पिताओं के वर्त्तमान गुणों में से जो तुम्हें जँचे उसे ग्रहण करो ॥ ५४ ॥

अभिमन्यु—अनुग्रहीत हुआ ।

राजा—आओ बेटा आओ, तुम मुझे प्रणाम क्यों नहीं करते ? अहो, यह

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भीमसेनः—महाराज ! मया ।

अभिमन्युः—अशस्त्रेणेत्यभिधीयताम् ।

भीमसेनः—शान्तं शान्तं पापम् ।

सहजौ मे प्रहरणं भुजौ पीनांसकोमलौ ।
तावाश्रित्य प्रयुध्येयं दुर्बलैर्गृह्यते धनुः ॥ ५५ ॥

अभिमन्युः—मा तावद् भोः,

बाहुरक्षौहिणी यस्य निर्व्याजो यस्य विक्रमः ।

दर्पप्रशमनम् मिष्टभाषितैः सान्त्वनम्, करोमि विदधामि, अथ इदमेकमव्ययम्, केन पुरुषेण, अयम् एषः, गृहीतः बन्दीकृतः ।

भीमसेनः—महाराज हे नृप, मया भीमेन,

अभिमन्युः—अशस्त्रेण शस्त्रविहीनेन इति इत्थम्, अभिधीयताम् कथ्यताम् ।

भीमसेनः—शान्तम् शान्तम् पापम् पापप्रशमनं भवतु इत्यनेन विरोधम् दर्शयति–अहो, इत्थम् भवितुम् नार्हतीति भावः ।

व्याख्या—पीनांसकोमलौ स्थूलस्कन्धकोमलौ, भुजौ करौ एव मे भीमस्य, सहजौ स्वाभाविकौ प्रहरणम् शस्त्रम्, तौ भुजावेवाश्रित्यावलम्बनम् कृत्वा, प्रयुध्येयम् युद्धम् कुर्याम्, धनुः चापस्तु दुर्बलैः बलहीनैः गृह्यते ग्रहणं कृत्वा युद्ध्यते ॥ ५५ ॥

अभिमन्युः– मा तावत् भोः एवं मा वद—

व्याख्या—यस्य भीमस्य, बाहुः एव भुजा एव, अक्षौहिणी अपरिमितसेना,

---

क्षत्रिय कुमार तो बड़ा घमण्डी है, पहले इसके घमण्ड को दूर करता हूँ। अच्छा तो इसे किसने पकड़ा ?

भीमसेन—महाराज मैंने ।

अभिमन्यु—'निहत्थे होकर पकड़ा' ऐसा कहिए ।

भीमसेन—नहीं ऐसा नहीं हो सकता—ये मोटी मांसल बाँहें ही मेरे हथियार हैं। धनुष तो दुर्बलों के अस्त्र हैं ॥ ५५ ॥

अभिमन्यु—नहीं, जिनकी भुजा ही अक्षौहिणी सेना के बराबर हैं, जिनका

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

किं भवान् मध्यमस्तातस्तस्यैतत् सदृशं वचः ॥ ५६ ॥

भगवान्—पुत्र ! कोऽयं मध्यमो नाम ।

अभिमन्युः—श्रूयताम् । अथवा, नन्वनुत्तरा वयं ब्राह्मणेषु, साध्वन्यो ब्रूयात् ।

राजा—भवतु भवतु । मद्वचनात् पुत्र ! कोऽयं मध्यमो नाम ?

अभिमन्युः—श्रूयताम् । येन,

योक्त्रयित्वा जरासन्धं कण्ठश्लिष्टेन बाहुना ।

विक्रमः पराक्रमस्तु, निर्व्याजः कपटशून्यः, एतादृशः किं भवान् मध्यमस्तातः भीमसेनः ? एतद्वचः पूर्वोक्तम् वचनम् तस्यैव सदृशम् युक्तम् न तु भवतः ॥५६॥

भगवान्—पुत्र हे सुत, कोऽयम् कः असौ मध्यमो नाम ?

अभिमन्युः—श्रूयताम् आकर्ण्यताम् अथवा, नन्विति वितर्के, अनुत्तरा अप्रतिवचनाः, वयम् ब्राह्मणेषु विप्रेषु साधु सुष्ठु भवति, यदि अन्यः अपरः ब्रूयात् कथयेत् ।

राजा—भवतु भवतु यद्भवतु तद्भवतु पुत्र मद्वचनात् मदीयप्रश्नात् ब्रूहि कोऽयं मध्यमो नाम ?

अभिमन्युः—श्रूयताम् आकर्ण्यताम्, येन पुरुषविशेषेण—

व्याख्या—कण्ठाश्लिष्टेन तत्कण्ठासक्तेन, बाहुना स्वभुजेन जरासन्धम् मगधाधिपतिं बृहद्रथपुत्रम् योक्त्रयित्वा बद्धम् विधाय, असह्यम् असाध्यम् तत् पूर्वोक्तम्, कर्म कृत्यम्, कृत्वा विधाय कृष्णः वासुदेवः अतदर्हताम् तादृश-

---

पराक्रम निष्कपट हैं, ऐसे हमारे मध्यम तात को ही ऐसे कथन शोभते हैं ॥५६॥

भगवान—बेटा, तुम्हारे ये मध्यम तात कौन हैं ?

अभिमन्यु—सुनिए, अथवा—हमलोग ब्राह्मणों के साथ सवाल-जवाब नहीं करते हैं। अच्छा होता कोई दूसरा ही पूछता ।

राजा—अच्छी बात है, बेटा, मेरे ही प्रश्न का उत्तर दो। तुम्हारे ये मध्यम तात कौन हैं ?

अभिमन्यु—सुनिये—जिसने अपने हाथों से जरासन्ध के कण्ठ को बाँधकर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

असह्यं कर्म तत् कृत्वा नीतः कृष्णोऽतदर्हताम् ॥ ५७ ॥

राजा—

न ते क्षेपेण रुष्यामि रुष्यता भवता रमे।
किमुक्त्वा नापराद्धोऽहं कथं तिष्ठति यात्विति ॥ ५८ ॥

अभिमन्युः—यद्यहमनुग्राह्यः,

पादयोः समुदाचारः क्रियतां निग्रहोचितः।
बाहुभ्यामाहृतं भीमो बाहुभ्यामेव नेष्यति ॥ ५९ ॥

कार्याक्षिमताम् नीतः प्रापितः। यः कृष्णेनापि न हतस्तमप्यवधीदित्यर्थः ॥ ५७ ॥

व्याख्या—ते तव, क्षेपेण निन्दावचनेन, न नहि, रुष्यामि क्रुद्धो भवामि, रुष्यता कुप्यता त्वया भवता, रमे प्रसन्नो भवामि, किमुक्त्वा किं कथयित्वा, कथम्वा तिष्ठति यातु गच्छतु वा, अहम् विराटः न नहि, अपराद्धः अपराधी स्याम ? कथम् तिष्ठसि अथवा यथेष्टं गच्छ इत्युक्त्वाहमपराधी भवेयमिति भावः ॥ ५८ ॥

अभिमन्युः—यदि चेत्, अहम् अभिमन्युः, अनुग्राह्यः मयि कृपा करणीया तर्हि—

व्याख्या—पादयोः मम चरणयोः, निग्रहोचितः बन्दीजनोपयुक्तः समुदाचारः उचिताचरणः, क्रियताम् विधीयताम्, इत्थम्भूते व्यतिकरे, बाहुभ्याम् भुजाभ्याम् आहृतम् आनीतम्, बाहुभ्यामेव भुजाभ्यामेव भीमः मम मध्यमतातः, नेष्यसि नीत्वा गमिष्यति ॥ ५९ ॥

उस असह्य कर्म को पूरा किया जिसे भगवान कृष्ण भी पूरा नहीं कर सके ॥५७॥

राजा—तुम्हारी निन्दा करने से मुझे कष्ट नहीं होता है पर, तुम्हे चिढ़ाने में आनन्द आता है। तुम क्यों खड़े हो अथवा यहाँ से तुम अब जाओ, ऐसा अगर कहूँ तो तुम्हारे प्रति मेरा यह अपराध नहीं होगा क्या ॥ ५८ ॥

अभिमन्यु—यदि मुझ पर कृपा करना चाहते हो तो—

मेरे पैरों में बन्दी जनोचित बेड़ी डाल दीजिए। मुझे कोई हाथों से पकड़ कर लाया, मेरे मध्यम पिता भीम मुझे हाथों से छुड़ाकर ले जायेंगे ॥ ५९ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(ततः प्रविशत्युत्तरः)

उत्तरः—

मिथ्याप्रशंसा खलु नाम कष्टा येषां तु मिथ्यावचनेषु भक्तिः ।
अहं हि युद्धाश्रममुच्यमानो वाचानुवर्ती हृदयेन लज्जे ॥ ६० ॥

(उपसृत्य) भगवन् ! अभिवादये ।

भगवान्—स्वस्ति ।

उत्तरः—तात ! अभिवादये ।

राजा—एह्येहि पुत्र ! आयुष्मान् भव । पुत्र ! पूजिताः कृतकर्माणो

(ततः तदनन्तरम् प्रविशति प्रवेशङ्करोति कुमार उत्तरः)

व्याख्या—येषाम् बन्दीचारणादिजनानाम्, मिथ्यावचनेषु असत्यकथनेषु, भक्तिः प्रीतिः तेषाम्, मिथ्याप्रशंसा असत्यस्तुतिः, खलु निश्चयेन, कष्टा कष्टप्रदा नाम, अहम् उत्तरः हि यतः, युद्धाश्रयम्, युद्धविजयम्, उच्यमानः अभिधीयमानः, सन्, वाचानुवर्त्ती मुखशब्देन तान्नभिनन्दन्नपि, हृदयेन चित्तेन, लज्जे जिह्रेमि ॥६०॥

(उपसृत्य समीपं गत्वा) भगवन्, अभिवादये प्रणमामि ।

भगवान्—स्वस्ति कल्याणं भवतु ।

उत्तरः—तात हे पितः, अभिवादये प्रणमामि ।

राजा—एह्येहि आगच्छ, पुत्र हे सुत ! आयुष्मान् भव चिरञ्जीव, पुत्र,

---

(उत्तर का प्रवेश)

उत्तर—झूठी प्रशंसा दुःखदायिनी होती है । चारण और भाटों को तो मिथ्या स्तुति का अभ्यास ही बना रहता है । ये इस युद्ध के सम्बन्ध में मेरी प्रशंसा करते हैं और मैं भी वचन से उनकी प्रशंसा करता हूँ । पर हृदय से लज्जित हो रहा हूँ ॥ ६० ॥

(पास आकर) भगवन् ! मैं प्रणाम करता हूँ ।

भगवान्—तुम्हारा कल्याण हो ।

उत्तर—पिताजी, प्रणाम करता हूँ ।

राजा—आओ बेटे आओ । चिरजीवी बनो, बेटा, युद्ध में काम आने वाले

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

योधपुरुषाः ?
उत्तरः—पूजिताः । पूज्यतमस्य क्रियतां पूजाम् ।
राजा—पुत्र ! कस्मै ?
उत्तरः—इहात्रभवते धनञ्जयाय ।
राजा—कथं धनञ्जयायेति ।
उत्तरः—अथ किम् । अत्रभवता,

श्मशानाद्धनुरादाय तूणी चाक्षयसायके ।
नृपा भीष्मादयो भग्ना वयं च परिरक्षिताः ॥ ६१ ॥

पूजिताः अर्चिताः, कृतकर्माणः समरे प्रदर्शितपुरुषकाराः, योधपुरुषाः युद्धवीराः ।

उत्तरः—पूजिताः अर्चिता, पूज्यतमस्य श्लाघनीयस्य, पूजाम् अर्चाम्, क्रियताम् विधीयताम् ।

राजा—पुत्र हे सुत ! कस्मै कस्य पूजाम् करिष्यामि ?

उत्तरः—इह अस्मिन् स्थाने अत्र भवते श्रीमते धनञ्जयाय अर्जुनाय ।

राजा—कथम् केन प्रकारेण धनञ्जयाय अर्जुनाय इति ।

उत्तर.—अथ किम् इदमेकमव्ययमङ्गीकारार्थमिदम् त्वं यदात्थ तत्तथैवेत्यर्थः । अत्र भवता पूज्येन धनञ्जयेन ।

व्याख्या—श्मशानात् श्मशानप्रदेशात्, धनुः गाण्डीवम्, आदाय नीत्वा, अक्षयसायके अक्षीणबाणे तूणीम् तुणीरम् च नीत्वा, भीष्मादयः भीष्मादिप्रमुखाः, नृपाः राजानः भग्नाः, पराजिताः च पुनः वयम्, रक्षिताः याताः । अतः पूजामर्हति धनञ्जय इति भावः ॥ ६१ ॥

बहादुरों का सत्कार सम्पन्न हो गया क्या ?

उत्तर—सम्पन्न हो गया । अब सर्वाधिक पूज्य की पूजा कीजिए ।

राजा—किसकी पूजा करने को कहते हो बेटा !

उत्तर—बस, इस पूजनीय धनञ्जय की ।

राजा—क्या धनञ्जय की ?

उत्तर—और क्या ? इस धनञ्जय ने श्मशान से अपना गांडीव एवं अक्षय तूणीर लाकर भीष्मादि प्रमुख राजाओं को युद्ध में परास्त किया और हमारी रक्षा की है ॥ ६१ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राजा—एवमेतत् ।

बृहन्नला—प्रसीदतु प्रसीदतु महाराजः ।

अयं बाल्यात्तु सम्भ्रान्तो न वेत्ति प्रहरन्नपि ।
कृत्स्नं कर्म स्वयं कृत्वा परस्येत्यवगच्छति ॥ ६२ ॥

उत्तरः—व्यपनयतु भवाञ्छङ्काम् । इदमाख्यास्यते,

प्रकोष्ठान्तरसंगूढं गाण्डीवज्याहतं किणम् ।

राजा—एवम् इत्थम्, एतदिति धनञ्जयेन यदि वयम् परिरक्षिता तर्हि अवश्यमेवायम् पूजामर्हतीति भावः ।

बृहन्नला—प्रसीदतु प्रसन्नो भव, प्रसीदतु कृपां कुरु, महाराज हे नृप ।

व्याख्या—अयम् उत्तरः, बाल्यात् शिशुभावात्, संभ्रान्तः, भ्रमितः सन् प्रहरन्नपि अरिषु प्रहारं कुर्वन् अपि, न नहि, वेत्ति जानाति । कृत्स्नं सम्पूर्णसंगरे, कर्म समरविजयम्, कृत्वा विधाय, परस्य अन्यस्य, इत्यवगच्छति जानाति । स्वयं समरे शत्रून् विजित्यान्यकृतकर्म इत्यवस्यति तदयं कुमारस्य बाल्यभावकृतः संभ्रम एव केवल इति ॥ ६२ ॥

व्याख्या—प्रकोष्ठान्तरसङ्गूढम् मणिवन्धमध्ये समुत्पन्नम्, गाण्डीवज्याहतम्, गाण्डीवस्य एतन्नामकचापकस्य ज्या मौर्व्याहतम् आघातेन समुत्पन्नम्, किणम् व्रणम् यत् दृश्यते, तद् द्वादशवर्षान्ते द्व्याधिकदशवत्सरापगमेऽपि, सवर्णताम् समरूपताम् नैव याति न भवति । अर्जुनस्य प्रकोष्ठान्तरं पश्य वहुकालान्तरेऽपि

राजा—क्या ऐसी बात है ?

बृहन्नला—क्षमा करें महाराज क्षमा करें ।

अल्प वयस्क होने के कारण कुमार बुरी तरह घवड़ा गये हैं, शत्रुओं पर स्वयं इन्होंने प्रहार किया, सारी लड़ाईयाँ इन्होंने स्वयं लड़ी पर, इन्हें लगता हैं, कोई दूसरा लड़ता रहा है ॥ ६२ ॥

उत्तर—आप अपना सन्देह दूर करले । यह आपको बलता रहा है—

कलाई का घाव जो गाण्डीव की प्रत्यञ्चा की रगड़ से उत्पन्न हुआ है वे ये धनञ्जय है घाव के इस चिह्न ने वारह साल बीत जाने पर भी अपना रङ्ग नहीं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यत्तद् द्वादशवर्षान्ते नैव याति सवर्णताम् ॥ ६३ ॥

बृहन्नला—

एतन्मे परिहार्याणां व्यावर्तनकृतं किणम् ।
सन्निरोधविवर्णत्वाद् गोधास्थानमिहागतम् ॥ ६४ ॥

राजा—पश्यामस्तावत् ।

बृहन्नला—

रुद्रबाणावलीढाङ्गो यद्यहं भारतोऽर्जुनः ।
सुव्यक्तं भीमसेनोऽयमयं राजा युधिष्ठिरः ॥ ६५ ॥

तस्य गाण्डीवज्याहतम् चिह्नम् सुरक्षितमस्ति स अयमर्जुन एवेति ॥ ६३ ॥

व्याख्या—एतत् एषः, मे मम, परिहार्याणाम् बलयानाम्, सन्निरोध-विवर्णत्वात् सुष्ठुप्रतिबन्धनकृतवर्णभेदात्, गोधास्थानम् मौर्व्याघातनिवारण स्थलम् प्रकोष्ठदेशमागतम्, व्यावर्त्तनम् अनेकपरिवर्त्तनजन्यचिह्नम्, कृतम् निर्मितम् । नायं गाण्डीवचालनचिह्नम् प्रत्युत वलयविवर्त्तनजन्यचिह्नमस्ति । अतोनाहं धनञ्जयः व्यर्थमेवाऽशङ्काऽस्ति ॥ ६४ ॥

राजा—तावदित्यवधारणे, पश्यामः निरूपयामः, अर्थात् सूक्ष्मतया निरीक्ष्य निर्णयङ्करोमि ।

व्याख्या—यदिचेत्, अहम् बृहन्नला, रुद्रबाणावलीढाङ्गः शङ्करशरक्षत-गात्रः, भारतः भरतवंशीयः, अर्जुनः पार्थः अस्मि तर्हि अयम् एष तव पाचकः, भीमसेनः वृकोदरः अस्ति तथा चायम् भगवान् राजा नृपः, युधिष्ठिरः धर्मराजः, सुव्यक्तम् सुस्पष्टमस्ति ॥ ६५ ॥

बदला है ॥ ६३ ॥

बृहन्नला--यह तो मेरे कंगने की रगड़ से चिह्न बन गये हैं, ये छल्ले बार-बार हिलते हैं जिससे मणिबंध छिल गया है ॥ ६४ ॥

राजा—हम देखें तो,

बृहन्नला—शंकर के शरों से क्षताङ्ग यदि मैं भरतवंशीय अर्जुन हूँ तो निश्चय आर्य भीम है वे महाराज युधिष्ठिर हैं ॥ ६५ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राजा—भो धर्मराज ! वृकोदर ! धनञ्जय ! कथं न मां विश्वसिथ । भवतु भवतु प्राप्तकाले । बृहन्नले ! प्रविश त्वमभ्यन्तरम् ।

बृहन्नला—यदाज्ञापयति महाराजः ।

भगवान्—अर्जुन ! न खलु न खलु प्रवेष्टव्यम् । तीर्णप्रतिज्ञा वयम् ।

अर्जुन—यदाज्ञापयत्यार्यः ।

राजा—

शूराणां सत्यसन्धानां प्रतिज्ञां परिरक्षताम् ।

राजा—भो धर्मराज, हे युधिष्ठिर, वृकोदर भीमसेन, धनञ्जय पार्थ, कथन्न माम् विराटम् विश्वसिथ अर्थात् आत्मगोपनं कृत्वा मयि कथं अविश्वासं प्रकटयथ, भवतु भवतु यद्भवतु तद्भवतु, प्राप्तकाले समागते समये बृहन्नले त्वम् भवती, अभ्यन्तरम् अन्तःपुरम्, प्रविश गच्छ ।

बृहन्नला—यत् यथा, आज्ञापयति आदिशति महाराजः नृपविराटेश्वरः ।

भगवान्—अर्जुन पार्थ, न खलु न खलु प्रवेष्टव्यम् कदापि अन्तःपुरम् न गन्तव्यम् यतो हि वयम् पाण्डवाः उत्तीर्णप्रतिज्ञाः समाप्ताज्ञातवासकालाः ।

अर्जुन—आर्यः मान्यः यत् यथा, आज्ञापयति आदिशति तथैव करोमि ।

व्याख्या—शूराणाम् शक्तिशालिनाम्, सत्यसन्धानाम् सत्यवादिनाम्, प्रतिज्ञाम् प्रतिज्ञावचनम्, परिरक्षताम् पालयताम्, पाण्डवानाम् पाण्डुपुत्राणाम्,

---

राजा—अरे ओ महाराज युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन, भला आपलोग मुझपर विश्वास क्यों नहीं करते, अच्छी बात है, समय हो गया, बृहन्नले अब तुम भीतर जाओ ।

बृहन्नला—महाराज की जो आज्ञा ।

भगवान्—अर्जुन अब भीतर मत जाओ । हमलोग अज्ञातवास पूराकर चुके हैं ।

अर्जुन—आपकी जैसी आज्ञा ।

(प्रवेश करके रङ्गमंच पर आकर)

राजा—वीर, सत्यनिष्ठ, प्रतिज्ञा पालन में तत्पर पाण्डवों के यहाँ निवास

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पाण्डवानां निवासेन कुलं मे नष्टकल्मषम् ॥ ६६ ॥

अभिमन्युः—इहात्रभवन्तो मे पितरः। तेन खलु,

न रुष्यन्ति मया क्षिप्ता हसन्तश्च क्षिपन्ति माम्।
दिष्ट्या गोग्रहणं स्वन्तं पितरो येन दर्शिताः ॥ ६७ ॥

(भीमसेनमुद्दिश्य) भोस्तात !

अज्ञानात्तु मया पूर्वं यद् भवान् नाभिवादितः।

निवासेन, मे मम, कुलम् वंशम्, नष्टकल्मषम् विगतपापम् अर्थात् पवित्रम् जातम्। अनुष्टुप् छन्दः ॥ ६६ ॥

अभिमन्युः—इह अस्मिन् स्थाने, अत्रभवन्तः श्रीमन्तः, मे मम, पितरः जनकाः, तेन खलु तेन कारणेन, खलु वितर्के,

व्याख्या—मया अभिमन्युना, क्षिप्ताः आक्षिप्यमाणाः अपि, न नहि, रुष्यन्ति कुप्यन्ति, हसन्तः उपहसन्तश्च माम् अभिमन्युम्, क्षिपन्ति निन्दां कुर्वन्ति, दृष्ट्या भाग्येन, मे मम, गोग्रहणम् गवामपहरणम्, स्वन्तम् सुखदान्तम् येन कारणेन पितरः जनकाः, दर्शिताः प्रत्यक्षं प्रापिताः। इदं गोग्रहणं मम पुण्योदयेन शुभावसरम् जातम् येन तातपादानां दर्शनावसरो दत्त इति ॥ ६७ ॥

(भीमसेनम् वृकोदरम्, उदिश्य अभिलक्ष्य) भोस्तात हे पितः,

व्याख्या— मया अभिमन्युना, भगवान् वृकोदरः, यत् अज्ञानात् परिचयाभावात्, न नहि, अभिवादितः अभिवादनम् कृतः, पूर्वम् प्राक् तत् तस्य पुत्रा-

---

से मेरे कुल का पाप धुल गया ॥ ६६ ॥

अभिमन्यु—ये तो हमारे पूज्य पितृ गण हैं, इसीलिए—

मेरे आक्षेपों से ये क्रुद्ध नहीं होते हैं और हँसते हुए मुझे चिढ़ाते हैं। मेरे ही भाग्य से इस गोग्रहण का अन्त सुखद हुआ जिससे मुझे इनके दर्शन मिल गये ॥ ६७ ॥

(भीमसेन को लक्ष्य करके)

हे पिता जी।

अपनी अज्ञानता के कारण मैंने आपको पहले प्रणाम नहीं किया। अपने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तस्य पुत्रापराधस्य प्रसादं कर्तुमर्हसि ॥ ६८ ॥

(इति प्रणमति)

भीमसेनः—एह्येहि पुत्र ! पितृसदृशपराक्रमो भव ।

अभिमन्युः—अनुगृहीतोऽस्मि ।

भीमसेनः—पुत्र ! अभिवादयस्व पितरम् ।

अभिमन्युः—भोस्तात ! अभिवादये ।

अर्जुनः—एह्येहि वत्स ! (आलिङ्ग्य)

अयं स हृदयाह्लादी पुत्रगात्रसमागमः ।

पराधस्यात्मनहतागसः, प्रसादं अनुग्रहम्, कर्त्तुम् विधातुम् अर्हसि योग्योसि॥६८॥

(इति प्रणमति अभिवादयति)

भीससेनः—एह्येहि पुत्र आगच्छ सुत, पितृसदृशपराक्रमः निजजनकतुल्य-शक्तिशाली भव ।

अभिमन्युः—अनुगृहीतोऽस्मि कृपान्वितो जातः ।

भीमसेनः—पुत्र हे सुत, पितरम् जनकम्, अभिवादयस्व प्रणम्यताम् ।

अभिमन्युः—भो तात हे पितः, अभिवादये प्रणमामि ।

अर्जुनः—एह्येहि समागच्छ वत्स पुत्र (आलिङ्ग्य गाढालिङ्गनं कृत्वा)

व्याख्या—अयम् एषः, सः पूर्वमनुभूतः, हृदयाह्लादी चित्तानन्दकरः पुत्र-गात्रसमागमः आत्मजस्पर्शः यः पुत्रः, प्रोषितः दूरं गतः, त्रयोदशवर्षान्ते त्रयोधिक-

---

बेटे के इस अपराध को आप क्षमा करें ॥ ६८ ॥

(प्रणाम करता है)

भीमसेन—आओ बेटे आओ । अपने पिता की तरह ही पराक्रमी बनो ।

अभिमन्यु—अनुगृहीत हुआ ।

भीमसेन—बेटा ! अपने बाप को तो प्रणाम करो ।

अभिमन्यु—पिता जी, प्रणाम करता हूँ ।

अर्जुन—आओ बेटे आओ । (गले लगाकर)

हृदय को आनन्दित करने वाले पुत्र के शरीर का यह वही स्पर्श है जो

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यस्त्रयोदशवर्षान्ते प्रोषितः पुनरागतः ॥ ६९ ॥

पुत्र ! अभिवाद्यतां विराटेश्वरः ।

अभिमन्युः—अभिवादये ।

राजा—एह्येहि वत्स !

यौधिष्ठिरं धैर्यमवाप्नुहि त्वं भैमं बलं नैपुणमर्जुनस्य ।
माद्रीजयोः कान्तिमथाभिरूप्यं कीर्त्तिं च कृष्णस्य जगत्प्रियस्य ॥७०॥

(आत्मगतम्) उत्तरासन्निकर्षस्तु मां बाधते । किमिदानीं करिष्ये । भवतु,

---

दशाब्दावसाने पुनरागतः पुनः प्राप्तवानिति भावः ॥ ६९ ॥

पुत्र हे सुतः, अभिवाद्यताम् विराटेश्वरः विराटनृपतिः ।

अभिमन्यु—अभिवादये प्रणमामि ।

राजा—एह्येहि समागम्यताम् वत्स हे पुत्र,

व्याख्या—त्वम् भवान्, यौधिष्ठिरम् धर्मराजस्य, धैर्यम् धीरता भैमम् भीमस्य, बलम्, शक्तिम्, अर्जुनस्य धनञ्जयस्य नैपुणम् निपुणताम्, माद्रीजयोः नकुलसहदेवयोः कान्तिम् सौन्दर्यम्, आभिरूप्यम् बुद्धिमत्वञ्च, जगत्प्रियस्य संसाराह्लादजनकस्य कृष्णस्य देवकीसुतस्य कीर्त्तिम् यशश्च, आप्नुहि प्राप्नुहि । धर्मराज इव धीरो भीम इव शक्तिशाली, पार्थ इव युद्धकुशलः, नकुल इव प्रियदर्शनः सहदेव इव विद्वान्, कृष्ण इव यशस्वी च जायस्वेति भावः ॥ ७० ॥

(आत्मगतम् स्वगतम्) उत्तरासन्निकर्षस्तु उत्तरया सह अर्जुनस्य सम्बन्धः, माम् विराटम् बाधते, इदानीम् अधुना, किं करिष्ये किं कर्त्तुम् शक्नोमि भवतु

तेरह वर्षों तक अलग रहने के बाद आज फिर मिला है ॥ ६९ ॥

बेटा, विराटेश्वर को प्रणाम करो ।

अभिमन्यु—प्रणाम करता हूँ ।

राजा—आओ बेटे । तुम युधिष्ठिर का धैर्य, भीम का बल, अर्जुन की रणकुशलता नकुल की सुन्दरता, सहदेव की बुद्धिमत्ता तथा जगत प्रिय भगवान् कृष्ण की कीर्ति प्राप्त करो ॥ ७० ॥

(अपने आप) उत्तरा के साथ अर्जुन का संबंध मुझे खलता है । ऐसी स्थिति

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दृष्टम् । कोऽत्र ।

(प्रविश्य)

भटः—जयतु महाराजः ।

राजा—आपस्तावत् ।

भटः—यदाज्ञापयति महाराजः । (निष्क्रम्य प्रविश्य) इमा आपः ।

राजा—(प्रतिगृह्य) अर्जुन ! गोग्रहणविजयशुल्कार्थं प्रतिगृह्यतामुत्तरा ।

युधिष्ठिरः—एतदवनतं शिरः ।

अस्तु, दृष्टम् निश्चितम्, कोऽत्र कः परिजनोऽत्रास्ति ।

(प्रविश्य रङ्गमंचे समागत्य)

भटः—जयतु सर्वोत्कर्षेण विजयताम् महाराजः,

राजा—आपः जलमानय तावदित्यवधारणे,

भटः—यत् यथा, आदिशति नृपः किराटेश्वरः (निष्क्रम्य बहिर्गत्वा प्रविश्य प्रवेशङ्कृत्वा च) इमा आपः जलमिति ।

राजा—(प्रतिगृह्य नीत्वा) अर्जुन हे पार्थ, गोग्रहणविजयशुल्कार्थम् गवामपहरणे प्राप्तेन विजयेन क्रीता किमपि दीयते तत् प्रतिगृह्यताम् स्वीक्रियताम् मद्दत्तोपहारस्वरूपेयम् उत्तरा ।

युधिष्ठिरः—एतत् कन्यादानकथनम् अवनतम् अधोभूतम् शिरः अनेन

में मैं क्या कर सकता हूँ । अच्छी बात है निर्णय कर लिया । कोई है ?

(प्रवेश करके)

भट – जय हो महाराज की ।

राजा—पानी ले आओ ।

भट—महाराज की जैसी आज्ञा (बाहर आकर पुनः प्रवेश करके) य रहा जल श्रीमान् ।

राजा—(हाथ में जल लेकर) हे पार्थ, गोहरण विजय के बदले आप मेरी उत्तरा को स्वीकार करें ।

युधिष्ठिर—यह तो शिर झुक गया ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

अर्जुनः—(आत्मगतम्) कथं चारित्रं मे तुलयति। (प्रकाशम्) भो राजन् !

इष्टमन्तःपुरं सर्वं मातृवत् पूजितं मया।
उत्तरैषा त्वया दत्ता पुत्रार्थे प्रतिगृह्यते ॥ ७१ ॥

युधिष्ठिरः—एतदुन्नतं शिरः।

राजा—

इदानीं युद्धशूराणां चारित्रेषु व्यवस्थितः।

कन्यादानप्रसंगेन लोको हि उत्तरायामर्जुनस्यासक्तिं संभावयिष्यति अनया-घोषणयाऽस्य चरित्रं दूषितम् भवति।

अर्जुनः—(आत्मगतम् स्वगतम्) कथम् चरित्रम् मे मम तुलयति कन्या-ग्रहण प्रार्थनया परीक्षां करोति (प्रकाशम् सर्वश्राव्यम्) भो राजन् हे नृप !

व्याख्या—इष्टम् प्रियतरम्, सर्वम सकलम्, अन्तःपुरम् नारीवर्गः, मया अर्जुनेन, मातृवत् स्वजननी इव, पूजितम् आराधिता, त्वया भवता, दत्ता अर्पिता एषा पुरोवर्तिनी, उत्तरा तवतनया मया पुत्रार्थे अभिमन्युकृते, प्रति-ग्रह्यते स्वीक्रियते ॥ ७० ॥

युधिष्ठिरः—एतत् कथनम् उन्नतम् चारित्रोत्कर्षकमूलतया ऊर्ध्वं नीतं मे शिरः।

व्याख्या—इदानीम् अधुना, युद्धशूराणाम् समरयोद्धानाम्, चारित्रेषु

अर्जुन—(स्वगत) क्यों ये हमारे चरित्र की परीक्षा ले रहे हैं।

(सबों को सुनाकर)

राजन्, मैंने प्रिय अन्तःपुर को अपनी माँ की तरह पूज्य माना है, अतः आप के द्वारा दी गई उत्तरा को अपनी पुत्र वधू के रूप में अभिमन्यु के लिए स्वीकार करता हूँ ॥ ७१ ॥

युधिष्ठिर—मेरा शिर इस कथन से अब ऊँचा उठ गया।

राजा—युद्ध वीरों के चरित्र में प्रख्यात इस अर्जुन ने अपने अनुरूप

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अन्तःपुरनिवासस्य सदृशीं कृतवान् क्रियाम् ॥ ७२ ॥

अद्यैव खलु गुणवन्नक्षत्रम् । अद्यैव विवाहोऽस्य प्रवर्तताम् ।

युधिष्ठिरः—भवतु भवतु । पितामहसकाशमुत्तरं प्रेषयामः ।

राजा—यदभिरुचितं भवद्भ्यः । धर्मराज-वृकोदर-धनञ्जयाः ! इत इतो भवन्तः ।

अनेनैव प्रहर्षेणाभ्यन्तरं प्रविशामः ।

आचरणेषु व्यवस्थितः स्थिरः, अन्तःपुरनिवासस्यावरोधस्थितेः, सदृशीम् अनुरूपाम्, क्रियाम् व्यवहारम् कृतवान् सम्पादितमिति ॥ ७२ ॥

अद्यैव अस्मिन्नेव दिने, खलु निश्चयेन, गुणवन्नक्षत्रम् प्रशस्तगुणयुक्तम् नक्षत्रम् अतः अद्यैव अस्य अभिमन्योः विवाहः पाणिग्रहणसंस्कारः प्रवर्तताम् विधीयताम् ।

युधिष्ठिरः—भवतु भवतु स्वीकृतम् मया । पितामहसकाशम् भीष्मस्य समीपम्, उत्तरम् कुमारम् प्रेषयामः कुलश्रेष्ठं गांगेयम् निमंत्रयितुम् विराटपुत्रं प्रेषयाम इत्यर्थः ।

राजा—यत् यथा, अभिरुचितम् अभिलषितम्, भवद्भ्यः श्रीमद्भ्यः । धर्मराज हे युधिष्ठिर वृकोदर हे भीम, धनञ्जय हे अर्जुन, इत इतो भवन्तः अस्यामेव दिशि समागम्यन्ताम् भवन्तः अनेनैव प्रहर्षेण आनन्देन प्रविशामः अन्तःपुरं गच्छामः ।

अन्तःपुर निवास के योग्य काम किया है ॥ ७२ ॥

आज सर्वगुण सम्पन्न नक्षत्र है, आज ही इनका विवाह सम्पन्न करें ।

युधिष्ठिर—अच्छी बात है, भीष्मपितामह के पास कुमार उत्तर को निमंत्रण लेकर भेजते हैं ।

राजा—जैसी आप की इच्छा । हे धर्मराज, वृकोदर और धनञ्जय आपलोग

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

सर्वे—बाढम् ।

(निष्क्रान्ताः सर्वे)

इति द्वितीयोऽङ्कः ।

सर्वे—बाढम् स्वीकृतम् । (निष्क्रान्ताः सर्वे इत्येवंरूपेण, सर्वे-अभिनेतारः, निष्क्रान्ताः रङ्गभूमितः इति ।

इति द्वितीयः अपरः अङ्क नाटकस्यपरिच्छेदः समाप्तिगत इति शेषः ।

अङ्कस्थानेऽन्तिके मन्त्री रूपकोत्संगलक्ष्मसु, नाटकादिपरिच्छेदे चित्र युक्ते च भूषणे । इति विश्व ।

इति विमला व्याख्या द्वितीयोऽङ्कः ।

आइये । इसी आनन्द के साथ हमलोग भीतर चलें ।

(सबका प्रस्थान)

द्वितीय अङ्क समाप्त ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अथ तृतीयोऽङ्कः

(ततः प्रविशति सूतः)

सूतः—भो भोः ! निवेद्यतां निवेद्यतां सर्वक्षत्राचार्यपुरोगाणां क्षत्रियाणाम् । एष हि,

अपास्य नारायणचक्रजं भयं चिरप्रनष्टान् परिभूय पाण्डवान् ।
धनुस्सहायैः कुरुभिर्न रक्षितो हृतोऽभिमन्युः क्रियतां व्यपत्रपा ॥१॥
इति ।

(ततः प्रविशतो भीष्मद्रोणौ)

(ततः—अथ पूर्वोत्तरवस्तुवृत्तसंघटनायविष्कम्भकरचनामुखेन कथामारभते तत इति) पूर्ववृतान्तमित्यर्थः ।

सूतः—भोः भोः इत्यनिर्दिष्टजनस्य सम्बोधने, निवेद्यताम् कथ्यताम्, सर्वक्षत्राचार्यपुरोगाणाम् – सर्वेषाम् सकलानाम् क्षत्राणाम् क्षत्रियाणाम्, आचार्यः गुरुः पुरोगः अग्रगण्यः येषां तेषाम् द्रोणप्रमुखानामिति, एषः असौ अभिमन्युः ।

व्याख्या—नारायणचक्रजम् नारायणस्य श्रीकृष्णस्य चक्रात् चक्रनामकास्त्रात्, समुत्पन्नम्, भयम् त्रासम्, उपास्य विहाय, चिरप्रनष्टाम् चिरकालात् अज्ञातवृत्तान्, पाण्डवान् पाण्डुपुत्रान्, परिभूय अनादरम् कृत्वा, अभिमन्युः सुभद्रासुतः, हृतः अपहृतः, धनुःसहायैः धनुर्धारिभिः, कुरुभिः कौरवैः, न नहि, रक्षितः संरक्षितुं न समर्थाः, व्यपत्रपालज्जा क्रियताम् ॥ १ ॥

(ततः तत्पश्चात् प्रविशतः भीष्मद्रोणौ पितामहाचार्यौ)

(सूत का प्रवेश)

सूत—अरे खबर कर दो, सकलक्षत्राचार्यप्रधानक्षत्रियों को, यह–नारायण के चक्र का भय छोड़कर, बहुत दिनों से खोये पाण्डवों का तिरस्कार कर, शत्रुओं ने अभिमन्यु का अपहरण कर लिया है, कौरव उसे बचा नहीं सके, लज्जा करनी चाहिए ॥ १ ॥

(भीष्म और द्रोण का प्रवेश)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

द्रोणः—सूत ! कथय कथय ।

रणपटुरपनीतः केन मे शिष्यपुत्रः
क इह मम शरैस्तैर्देवतैर्योद्धुकामः ।
कथय पुरुषसारं यावदस्त्रं बलं वा
बलवत इषुदूतांस्तत्र सम्प्रेषयामि ॥ २ ॥

भीष्मः—सूत ! कथय कथय ।

भग्नापयानेष्वनभिज्ञदोषस्तारुण्यभावेन विलम्बमानः ।

द्रोणः—सूत सारथे, कथय वद, कथय किं वृत्तान्तम् ?

व्याख्या—रणपटुः युद्धकुशलः, मे मम, शिष्यपुत्रः अभिमन्युः, केन शत्रुणा, अपनीतः अपहृतः, तैः जनैः, मम द्रोणस्य, देवतैः दिव्यैः, शरैः बाणैः, इह अस्मिन् संसारे, कः पुरुषविशेषः योद्धुकामः युद्धाभिलाषी वर्त्तते, यावत् यावत्कालपर्यन्तम्, अस्त्रम् प्रहरणम्, बलम् शारीरिकं सामर्थ्यम्, वा अथवा, पुरुषसारम् पौरुषम् सारम् यस्यासौ पुरुषसारस्तं कथय आख्याहि, तस्मिन् अभिमन्युहर्त्तरि रिपौ बलवतः अतिशयबलशालिनः, इषुदूतान् बाणरूपीदूतान् प्रेषयामि प्रेरयामि ॥ २ ॥

भीष्मः—सूत सारथे, कथय कथय वद मे—

व्याख्या— भग्नानाम् पराजितानाम्, अपयानेषु पलायनप्रवृत्तेषु, अनभिज्ञदोषः पलायनानभिज्ञत्वरूपदूषणवान्, तारुण्यभावेन यौवनदर्पेण, विलम्बमानः,

---

द्रोण—सारथी, कहो, कहो,

मेरे शिष्य अर्जुन का पुत्र रणप्रवीण अभिमन्यु का किसने अपहरण किया है ? मेरे दिव्यबाणों से कौन लड़ना चाह रहा है, ललकार दो उसके पौरुष को, कह दो उसके हथियारों को, मैं अभी अपने बलवान् बाण रूपी दूतों को उसके पास भेजता हूँ ॥ २ ॥

भीष्म—सूत कहो, कहो,

हारकर भी युद्ध से जो भागना नहीं जानता, यही जिसमें दोष है, हारने पर भी जवानी के जोश में जो रणाङ्गण में अड़ा रहा, उस अभिमन्युरूपगज

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

केनैष हस्तिग्रहणोद्यतेन यूथेऽपयाते कलभो गृहीतः ॥ ३ ॥

(ततः प्रविशति दुर्योधनः कर्णः शकुनिश्च)

दुर्योधनः—सूत ! कथय कथय । केनापनीतोऽभिमन्युः । अहमेवैनं मोक्षयामि ! कुतः,

मम हि पितृभिरस्य प्रस्तुतो ज्ञातिभेद-
स्तदिह मयि तु दोषो वक्तृभिः पातनीयः ।
अथ च मम स पुत्रः पाण्डवानां तु पश्चात्

रणाङ्गणे स्थिरीभूतः, एषः असौ, कलभः गजशावकोऽभिमन्युः, हस्तिग्रहणोद्यतेन गजग्रहणप्रयत्नशीलेन, यूथे गजसमूहे, अपयाते निर्गते सति, कलभः गजशिशुः गृहीतः । इन्द्रवज्रा वृत्तम् N ३ N

(अथ पूर्वोत्तरवार्तां संघटयितुम् पूर्ववर्णितयोः कर्ण-दुर्योधनयोः शकुनिना सह प्रवेशमाह—तत इति)

दुर्योधनः—सूत हे सारथे, कथय वद, केन पुरुषेण, अपनीतः अपहृतः, अभिमन्युः सुभद्राकुमारः अहमेव दुर्योधन एव, एनम् अभिमन्युम्, मोक्षयामि ग्रहणान्मोचयामीति—

व्याख्या—अस्य अभिमन्योः, पितृभिः धर्मराजादिपाण्डवैः सह, मम दुर्योधनस्य, ज्ञातिभेदः दायादभावकृतं वैरम्, प्रस्तुतः उपस्थितः अस्ति, तत् तस्मात्कारणात्, इह अस्मिन् प्रसंगे वक्तृभिः लोकैः, मयि दुर्योधने, दोषः कलङ्कः, पातनीयः अर्पणीयः, अथ च अन्यच्च, सः अभिमन्युः, मम दुर्योधनस्य पुत्रः स्नेहशीलतया सजन्यसुत इव, तु पाण्डवानाम्, पाण्डपुत्राणाम् पश्चात् अर्थात् अभिमन्युः पाण्डवापेक्षया मयि अधिकस्नेहशील इत्यर्थः, च पुनः, कुलविरोधे

बालक को यूथपतियों के भाग जाने पर किसने पकड़ लिया है N ३ N

(कर्ण, दुर्योधन एवं शकुनि का प्रवेश)

दुर्योधन—सारथे, कहो, कहो, किसने अभिमन्यु का अपहरण किया है, मैं ही उसे छुड़ाऊँगा, क्योंकि—

मेरा उसके पिताओं से विरोध चल रहा है, इस आनुवंशिक विरोध के कारण उसे पकड़े जाने पर लोग मुझे ही दोषी ठहरायेंगे । इसके अतिरिक्त

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

सति च कुलविरोधे नापराध्यन्ति बालाः ॥ ४ ॥

कर्णः—अतिस्निग्धमनुरूपं चाभिहितं भवता । गान्धारीमातः !

मा तावत् स्वजनभयात् तु बालभावाद्
व्यापन्नः समरमुखे तव प्रियार्थम् ।
अस्माभिर्न च परिरक्षितोऽभिमन्यु-
र्गृह्यन्तां धनुरपनीय वल्कलानि ॥ ५ ॥

शकुनिः—बहुनाथः खलु सौभद्रः । मुक्त एवेति सम्प्रधार्यताम् । कुतः,

---

सति सत्यपि दायादभावकृतविरोधे, बालाः शिशवः न नहि, अपराध्यन्ति स्नेहाच्च्यवन्ते । मालिनी वृत्तम् ॥ ४ ॥

कर्णः—अतिस्निग्धम् परमप्रीतिकरम्, अनुरूपम् स्वसदृशम्, अभिहितम् कथितम्, भवता त्वया दुर्योधनेन, गान्धारीमातः हे दुर्योधन,

व्याख्या—बालभावात् अतारुण्यभावात्, वा स्वजनभयात् आत्मीयजन-कृतनिन्दावचनभीतेः तावन्मा नाभिमन्युर्मोच्यताम् तु अपितु, तव प्रियार्थम् तव दुर्योधनस्य प्रियार्थम् हितसाधनाय व्यापन्नः ग्रहणमागतः, च पुनः, अभिमन्युः सुभद्रासुतः, अस्माभिः कर्णशकुनिदुर्योधनादिभिः, न नहि परिरक्षितः संरक्षितः, समरमुखे समराङ्गणे, तेन च धनुः चापः, अपनीय, परित्यज्य, वल्कलानि वृक्षत्वचः गृह्यन्ताम् धार्यन्ताम् । प्रहर्षिणीवृत्तम् ॥ ५ ॥

शकुनिः—बहुनाथः अनेकरक्षकैः संरक्षितः, खलु निश्चयेन, सौभद्रः अभिमन्युः, मुक्तः बन्धनरहितः एव सम्प्रधार्यताम् निश्चीयताम् । कुत इति—

पहले वह मेरा लड़का है बाद में पाण्डवों का, वांशिक विरोध रहने पर भी भला उस बच्चे का कसूर क्या है ? ॥ ४ ॥

कर्ण—हे दुर्योधन, तुमने अति प्रेम पूर्ण एवं अपने अनुरूप बातें कही है—

दर असल लोकनिन्दा के भय से नहीं, अपने प्यार के कारण भी नहीं, उसे छुड़ाना तो इसलिए है कि वह रणाङ्गण में आपका हितसाधन करते हुए ही पकड़ा गया है । और हम धनुर्धारियों से उसकी रक्षा नहीं हो सकी । ऐसी स्थिति में हमें धनुष छोड़कर बल्कल धारण कर लेना चाहिए ॥ ५ ॥

शकुनि—अभिमन्यु को छुड़ाने वाले बहुत लोग हैं, उसे छूटा ही समझें । क्योंकि—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizaqtion by eGangotri

मुञ्चेदर्जुनपुत्र इत्यवगतो राजा विराटः स्वयं
स्मृत्वा चाद्य रणाजिरादवजितं मुञ्चेत् स दामोदरम् ।
क्रोधोद्धूतहलात् प्रलम्बमथनाद् भीतेन मुच्येत वा
भीमस्त्वेनमिहानयेद् बलमहान् हत्वा रिपूनर्जितान् ॥ ६ ॥

द्रोणः—सूत ! कथय कथय । कथमिदानीं गृहीतः ।

पर्यस्तोऽस्य रथो हया नु चपलाश्चक्राक्षमा मेदिनी

व्याख्या— अर्जुनपुत्रः अयमभिमन्युः पार्थस्य सुतः इति इत्थम्, अवगतः प्रतीतः सन्, राजा नृपः, विराटः स्वयम् आत्मन एव, अभिमन्युम् मुञ्चेत् बन्धनात् मुक्तः कुर्यात्, अद्य अस्मिन्नेवदिने रणाजिरात् समराङ्गणात्, अवजितम् पराजित्य गृहीतमभिमन्युम् सः विराटेश्वरः, दोमोदरम् श्रीकृष्णम्, स्मृत्वा स्मरणं कृत्वा, मुञ्चेत् बन्धनात् मुक्तः कुर्यात् वा अथवा, क्रोधोद्धूतहलात् क्रोधेन कोपेन उद्धूतः कम्पितः हलात् हलरूपप्रहरणात्, प्रलम्बमथनात् श्रीकृष्णाग्रजात् बलदेवात्, भीतेन भयेन, मुञ्चेत् त्यजेत्, वा अथवा, बलमहान् अतिशक्तिशाली, भीमः द्वितीयः पाण्डवः, ऊर्जितान् दर्पितान्, रिपून् शत्रून्, हत्वा मारित्वा, एनम् अभिमन्युम्, इह अस्मिन् स्थाने आनयेत् नीत्वा आगच्छेत् । शार्दूलविक्रीडितम् ॥ ६ ॥

द्रोणः—सूत हे सारथे कथय कथय, कथम् केन प्रकारेण, इदानीम् अधुना, गृहीतः बन्धनगतोऽभिमन्युः ?

व्याख्या—अस्य अभिमन्योः, रथः स्यन्दनः, पर्यस्तः पतितः, हया अश्वाः, चञ्चलाः जाताः, नु वितर्के, मेदिनी धरित्री, चक्राक्षमा निम्नोन्नता तेन हि रथ-

---

विराट को जब यह पता चलेगा कि वह अर्जुन का बेटा है तो वह स्वयं उसे छोड़ देगा, श्रीकृष्ण का यह भानजा है यह याद आते ही युद्ध में हराकर लाने पर भी वह उसे उसीक्षण मुक्त कर देगा अथवा क्रोध से हलहिलाने वाले बलराम के डर से ही विराट उसे छोड़ देगा या महाबली भीम दुश्मनों का गर्व दर्पित कर उसे स्वयं छुड़ाकर यहाँ ले आयेगा ॥ ६ ॥

द्रोण—सूत कहो कहो, वह कैसे पकड़ा गया ?
क्या रथ उलट गया ? घोड़े भड़क गये ? रणभूमि रथसंचार के योग्य

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तूणी क्षीणशरे त्वमस्य विगुणो ज्याच्छेदवन्ध्यं धनुः ।
एता दैवकृता भवन्ति रथिनां युद्धाश्रया व्यापदो
बाणैरप्यवकृष्यते खलु परैः स्वाधीनशिक्षस्तु सः ॥ ७ ॥

सूतः—आयुष्मन् ! पुरुषमयो धनुर्वेदः । किमायुष्मता न ज्ञायते ।
न चापि दोषा भवताभिभाषिताः स चापि बाणौघमयो महारथः ।
अलातचक्रप्रतिमस्तु मे रथो गृहीत एवापतता पदातिना ॥ ८ ॥

चक्रभ्रमणानर्हा नु किम् ? तूणौ तूणीरे, क्षीणशरे बाणक्षये, नु जाते किम् ? अस्य अभिमन्योः, त्वम् सूतः, विगुणः गुणरहितः अयोग्यो जातः किम् ? धनुः चापः, ज्याच्छेदवन्ध्यम् मौर्वीत्रुटनात् विफलो जातः ? एताः पूर्वोक्ताः, युद्धाश्रयाः रणाङ्गणे उपस्थिताः रथिनाम् योधानाम्, दैवकृता भाग्यदोषेण प्राप्ताः व्यापदः विपत्तयः, भवन्ति जायन्ते, स्वाधीनशिक्षः यथेच्छाचरणक्षमयुद्धाभ्यासशाली सः असौ, खलु निश्चयेन, परैः अरिभिः, बाणैः शरैः, अपि, अपकृष्यते गृह्यते ॥ ७ ॥

सूतः—आयुष्मन् चिरञ्जीविन्, पुरुषमयो धनुर्वेदः पुरुषरूपेण साक्षात् धनुर्वेदश्चासौ, आयुष्मता अभिमन्युना किं न ज्ञायते किं न जानासि ।

व्याख्या—भवता आचार्यद्रोणेन अभिभाषिताः कथिताः, दोषाः दुर्गुणाः न नहि, सः अभिमन्युः अपि महारथः युद्धवीरः, बाणौघमयः शरसमूहवर्षी आसीदिति, मे मम, रथः स्यन्दनः, अलातचक्रप्रतिमः भ्रमदुल्मुकतुल्यः सर्वतोभावेन सर्वत्र नृत्यन् एव, आपतता तस्मिन्नेव काले सम्मुखे समागता केनाप्यपरिचितेन

नहीं थी ? तरकस के बाण चूक गये, या तुमने प्रतिकूलता दिखलाई ? अथवा धनुष की प्रत्यञ्चा टूट गई; लड़ाई के मैदान में बीरों की हार के यह दैवी कारण हैं, हाँ कभी कभी शत्रु बाणों से भी प्रतिद्वन्द्वी को खींच लेते हैं किन्तु, अभिमन्यु तो रण कुशल था ॥ ७ ॥

सूत—आयुष्मान, आपका पता नहीं है कि कुमार अभिमन्यु धनुर्वेद के पुरुषावतार ही है ।

ऊपर आपने जिन खामियों की चर्चा की है, उनमें एक भी नहीं थी, रथ पर सवार होकर कुमार अभिमन्यु शत्रुदल पर बाण बरसा रहे थे, मेरा रथ भी अलातचक्र की तरह नाच ही रहा था कि इसी बीच किसी अपरिचित

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सर्वे—कथं पदातिनेति ?

द्रोणः—अथ कीदृशः पदातिः ?

सूतः—किमभिधास्यामि रूपं वा पराक्रमं वा ?

भीष्मः—रूपेण स्त्रियः कथ्यन्ते। पराक्रमेण तु पुरुषाः। तत् पराक्रमोऽस्याभिधीयताम्।

सूतः—आयुष्मन् !

दुर्योधनः— किमर्थं स्तूयते कोऽपि भवता गर्विताक्षरैः।

पदातिना पदचारिणा गृहीत एवः अभिमन्युः ग्रहणमागत एवेति। वंशस्थं वृत्तम् ॥ ८॥

सर्वे—कथं पदातिनः पदचारिणा एव केन प्रकारेण गृहीतोऽभिमन्युरिति आश्चर्यम् प्रकाशते।

द्रोणः—अथेति प्रश्ने कीदृशः पदातिः पदचारीति प्रश्नः ?

सूतः—किमभिधास्यामि किं कथयामि तस्य पदातेः रूपम् आकृतिः वा पराक्रमः शौर्यम् इति प्रष्टुराशयः ?

भीष्मः—रूपेण आकृत्या, स्त्रियः नार्यः, कथ्यन्ते, पराक्रमेण शौर्येणतु पुरुषाः नराः कथ्यन्ते। तत् तस्मात् पराक्रमः साहसम् तस्य पुरुषविशेषस्य, अभिधीयताम् कथ्यताम्।

सूतः आयुष्मन्-चिरञ्जीविन्,

व्याख्या—भवता सूतेन, गर्विताक्षरैः साभिमानशब्दैः, किमर्थम् केन हेतुना; कोपि पुरुषविशेष, स्तूयते प्रशस्यते, मे मम, त्रासः भयम्, नास्ति न

बीरने पैदल ही आगे बढ़कर रथ को थाम लिया ॥ ८॥

सभी—क्या कहा किसी पदाति ने ?

द्रोण—अच्छा तो वह पदाति कैसा था ?

सूत—मैं उसका रूप बताऊँ या पराक्रम ?

भीष्म—औरतों का रूपबर्णन किया जाता है मर्दों का तो पराक्रम ही कहा जाता है, पराक्रम ही बतलाओ सूत,

सूत—आयुष्मन्,

दुर्योधन—क्योंकि किसी स्तुति साभिमान शब्दों में आप कर रहे हैं,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कथ्यतां नास्ति मे त्रासो यद्येष पवनो जवे ॥ ९ ॥

सूतः—श्रोतुमर्हति महाराजः । तेन खलु,

लङ्घयित्वा जवेनाश्वान् न्यस्तश्चापस्करे करः ।
प्रसारितहयग्रीवो निष्कम्पश्च रथः स्थितः ॥ १० ॥

भीष्मः—तेन हि न्यस्यन्तामायुधानि ।

सर्वे—किमर्थम् ?

विद्यते, अतः निःसंकोचभावेन कथ्यताम् उच्यताम्, यदि चेत्, एषः भवता वर्ण्यमानः पुरुषः, जवे पवनः वायुरपि स्यात् भवेत् तथापि मम भयं न भवतीति भावः ॥ ९ ॥

सूतः—श्रोतुम् आकर्णितुम्, अर्हति योग्योऽस्ति भवान् इति । तेन हेतुना, खलु—

व्याख्या—जवेन वेगेन, अश्वान् हयान्, रथ्यान्, लङ्घयित्वा अतिक्रमणं कृत्वा, अपस्करे रथस्याग्रिमभागे, करः हस्तः, न्यस्तः स्थापितः, प्रसारितहयग्रीवः रथग्रहीतभारेण हयानां ग्रीवाभागान् प्रसारयन् च रथः स्यन्दनः, निष्कम्पः अचलभावेन स्थितः स्थिरोभूत् ॥ १० ॥

भीष्मः—तेन कारणेन, हि इति निश्चयार्थे, न्यस्यन्ताम् मुच्यन्ताम्, आयुधानि अस्त्राणि ।

सर्वे—किमर्थम् केन हेतुना त्यक्तव्यानि अस्त्राणि ।

आप साफ शब्दों में बतलायें वह पवन की तरह वेगवान शत्रु क्यों न हो—मैं किसी से नहीं डरता हूँ ॥ ९ ॥

सूत—सुनिए महाराज । उस पदाति ने—

रथाश्वों के वेग को अतिक्रमितकर एक ही हाथ से रथ के अगले भाग को थाम लिया, घोड़ोंने पूराजोर लगाया उनकी गर्दनें लम्बी हो गईं, फिर भी रथ टस से मस नहीं हुआ ॥ १० ॥

भीष्म—तो फिर हथियार डाल दिए जाँय ।

सभी—क्यों ?

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भीष्मः—

हृतप्रवेगो यदि बाहुना रथो वृकोदरस्याङ्कगतः स चिन्त्यताम्।
पुरा हि तेन द्रुपदात्मजां हरन् पदातिनैवावजितो जयद्रथः॥ ११।

द्रोणः—सम्यगाह गाङ्गेयः। बाल्योपदेशात् प्रभृत्यहं तस्य जवमवगच्छामि।

इष्वस्त्रशालायां हि,

कर्णायते तेन शरे विमुक्ते विकम्पितं तस्य शिरो मयोक्तम्।
गत्वा तदा तेन च बाणतुल्यमप्राप्तलक्षः स शरो गृहीतः॥ १२॥

व्याख्या—यदिचेत्, बाहुना एकेनैव, हस्तेन, रथः स्यन्दनः, हृतप्रवेगः निरुद्धवेगः कृतः तर्हि सः अभिमन्युः, वृकोदरस्य भीमस्य, अङ्के क्रोडे, गतः स्थितः इति चिन्त्यताम् विभाव्यताम्, पुरा पूर्वस्मिन् काले, द्रुपदात्मजाम् द्रौपदीम्, हरन् स्वस्यन्दनेऽवस्थाप्य गच्छन्, तेन भीमेन, पदातिनैव पदचारणेनैव जयद्रथः एतदाख्यनृपः, अवजितः पराजितः। अर्थात् रथादवतार्य द्रौपदीमानीत इति भावः॥ ११॥

द्रोणः—सम्यगाह गांगेयः भीष्मः सुष्ठु भणति। बाल्योपदेशात् प्रभृति शैशवादारभ्य क्रियमाणशिक्षणात्, अहम् द्रोणः तस्य भीमस्य, जवम् वेगम्, अवगच्छामि जानामि। इष्वस्त्रशालायां हि अस्त्रशिक्षणविद्यालये हि—

व्याख्या—तेन भीमेन, कर्णायते कर्णपर्यन्ताकृष्टे, शरे बाणे विमुक्ते त्यक्ते सति, मया द्रोणेन तस्य भीमस्य, शिरः उत्तमाङ्गं विकम्पितं विधूतम् उक्तम्, कथितम्, तदा तर्हि, तेन भीमेन, बाणतुल्यम् शरसदृशम्, गत्वा धावन् यात्वा,

---

भीष्म—यदि एक ही हाथ की पकड़ से रथ की गति रोक दी गई तो निश्चय ही अभिमन्यु भीम की गोद में गया है, क्योंकि पहले द्रौपदी हरण के समय भीम ने पैदल ही चलकर जयद्रथ को पराजित कर उसके रथ से सैरन्ध्री को इसी तरह उतार लिया था॥ ११॥

द्रोण—गांगेय का कहना बिल्कुल ठीक है। उसकी इस तीव्रगति से उसके बचपन से ही मैं परिचित हूँ। अस्त्रप्रशिक्षण विद्यालय में—

एक बार भीमने कान तक खींचकर बाण छोड़ा, मैंने कहा बाण छोड़ने में तुम्हारा शिर हिल गया, यह एक दोष है। फिर क्या था जिधर बाण फेंका

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शकुनिः—अहो हास्यमभिधानम् । भोः ! पृच्छामि तावद् भवन्तम् ।

नास्त्यन्यो बलवाँल्लोके सर्वमिष्टेषु कथ्यते ।
जगद्व्याप्तान् भवन्तः किं सर्वे पश्यन्ति पाण्डवान् ॥ १३ ॥

भीष्मः—गान्धारराज ! सर्वमनुमानात् कथ्यते ।

वयं व्यपाश्रित्य रणं प्रयामः शस्त्राणि चापानि रथाधिरूढाः ।
द्वावेव दोर्भ्यां समरे प्रयातो हलायुधश्चैव वृकोदरश्च ॥ १४ ॥

अप्राप्तलक्षः लक्ष्यदेशम् अप्राप्त एव, स असौ, शरः बाणः गृहीतः धृतः ॥

शकुनिः—अहो इत्याश्चर्ये, हास्यम् हसितुं योग्यमर्थात् उपहासास्पदम् अभिधानम् कथनम्, भोः इति सम्बोधने, पृच्छानि तावद् भवन्तम् त्वम् ।

व्याख्या—लोके संसारे, अन्यः अपरः कोपि पाण्डवेभ्यः बलवान् शक्तिशाली नास्ति न विद्यते । इष्टेषु आत्मीयजनेषु, सर्वम् सकलम्, कथ्यते प्रयुज्यते प्रशंसावचनम्, किम् कथम् सर्वे भवन्तः भीष्मद्रोणप्रभृतयः पाण्डवान् पाण्डुपुत्रान्, जगद्व्याप्तान् सर्वत्रोपस्थितान्, पश्यन्ति संभावन्ति इति ॥ १३ ॥

भीष्म—गान्धारराज, देशकुले, सर्वम् सकलम् अनुमानात् अनुमानप्रमाणात् कथ्यते प्रोच्यते ।

व्याख्या—वयम् भवन्तश्च सर्वे, रथाधिरूढाः स्यन्दने आरोहणम् कृत्वा, चापानि धनूंषि, शस्त्राणि आयुधानि च व्यपाश्रित्य अवलम्ब्य, रणम् समरभूमिम्, प्रयामः प्रस्थानं कुर्मः, हलायुधः बलभद्रः, वृकोदरश्च भीमश्च, द्वावेव उभावेव, दोर्भ्याम् बाहुभ्याम्, समरे युद्धे, प्रयातः गच्छतः । अस्मिन् संसारे-

---

गया था उधर ही दौड़कर बाण को लक्ष्य तक पहुंचने के पहले ही उसे पकड़ लिया ॥ १२ ॥

शकुनि—मूर्ख, कितनी उपहासास्पद बात है ? मैं आप से ही पूछता हूँ—क्या इस संसार में कोई दूसरा वीर नहीं है ? अपने आत्मीय जनों के लिए सब कुछ कहा जाता है । क्या आप लोग पाण्डवों को जगद्व्यापी मानते हैं ॥ १३ ॥

भीष्म—हे गान्धारनरेश, सब कुछ अनुमान से ही कहा जाता है ।

हमलोग हथियार के साथ रथ पर सवार होकर ही युद्ध यात्रा करते हैं ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शकुनिः—

एकेनैव वयं भग्नाः सहसा साहसप्रियाः ।
उत्तरं च तमप्येके कथयिष्यन्ति फल्गुनम् ॥ १५ ॥

द्रोणः—भो गान्धारराज ! अत्रापि तावद् भवतः सन्देहः ।

किमुत्तरेणापि रणे विकृष्यते निसृष्टशुष्काशनिगर्जितं धनुः ।
किमुत्तरस्यापि शरैर्हृतातपः कृतो मुहूर्तास्तमितो दिवाकरः ॥१६॥

केवलं द्वावेव पुरुषौ स्तः यौ बाहुप्रहरणौ समराङ्गणे गच्छतस्तेन शक्यतेऽनुमातुमिदम् यद्भीमेनैवाभिमन्युर्गृहीत इति ॥ १४ ॥

व्याख्या—एकेनाद्वितीयेन, एव, साहसप्रियाः बलवन्तः वयम् भीष्मद्रोणादयः, सहसा हठात्, भग्नाः पराजिताः, तमुत्तरम् विराटपुत्रम् अपि एके त्वादृशाः केचन, फल्गुनमर्जुनम् कथयिष्यन्ति ॥ १५ ॥

द्रोणः—भो गान्धारराज हे दुर्योधनमातुल, अत्रापि अस्माकं पराजेतुमर्जुनत्वेऽपि, तावत् भवतः तव, सन्देहः आशंका ?

व्याख्या—उत्तरेण विराटपुत्रेण, अपि, रणे समरे, निसृष्टशुष्काशनिगर्जितम् कृतशुष्कवज्रध्वनिः, धनुः चापम्, विकृष्यते आकृष्यते किमिति प्रश्ने ? उत्तरस्यापि विराटपुत्रस्यापि, शरैः बाणैः, हृतातपः वारितातपः, मुहूर्तास्तमितः क्षणं कालपर्यन्तमस्तंगत इव यथा, दिवाकरः रविः कृतः इति विश्वास्यः किमु ॥१६॥

किन्तु संसार में बलराम और भीम दो ही ऐसे व्यक्ति हैं जो केवल बाहुबल के सहारे रणाङ्गण में उतरते हैं ॥ ॥ १४ ॥

शकुनि—हम लोगों जैसे दुर्धर्ष साहसी वीरों को हठात् अकेले ही जिस उत्तर कुमार ने युद्ध में पराजित कर दिया, उसे भी कुछ लोग अर्जुन ही तो कहेंगे ॥ १५ ॥

द्रोण—बेशक, इसमें भी आपको संदेह है क्या ?

क्या कुमार उत्तर भी सूखे वज्र की तरह गरजने वाला धनुष खींचना जानता है ? क्या उत्तर के भी बाणों से भी सूरज ढँक जाता है या दिन में ही अस्तंगत सूर्य दीखने लगता है हैं ॥ १६ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भीष्मः—गान्धारीमातः ! विस्पष्टं खलु कथ्यते। ननु जानीते भवान्।

बाणपुङ्खाक्षरैर्वाक्यैर्ज्याजिह्वापरिवर्तिभिः।
विकृष्टं खलु पार्थेन न च श्रोत्रं प्रयच्छति ॥ १७ ॥

(प्रविश्य)

सूतः—जयत्वायुष्मान्। शान्तिकर्मानुष्ठीयताम्।

भीष्मः—किमर्थम् ?

सूतः—

उंचितं ते पुरा कर्तुं ध्वजे बाणप्रधर्षिते।

भीष्मः—गान्धारीमातः हे दुर्योधन, विस्पष्टम् सुस्पष्टम्, खलु निश्चयेन, कथ्यते। नन्विति वितर्के, जानीते भवान् त्वमिति—

व्याख्या—बाणपुङ्खाक्षरैः शरमूलेऽङ्कितनामाक्षरैः, ज्या मौर्वी, जिह्वा परिवर्तिभिः रसनापरिवर्तिभिः, वाक्यैः धनुर्ध्वनिभिः, खलु निश्चयेन, विकृष्टम्, आकृष्टम्, पार्थेन अर्जुनेन, न च श्रोत्रं प्रयच्छति किं तत्र भवान् कर्णं न दत्तवान्, अर्जुनेनैवेदम् धनुराकृष्यत इति स्पष्टमाख्यातम् ॥ १७ ॥

(प्रविश्य प्रवेशं कृत्वा)

सूतः—जयतु सर्वोत्कर्षेण विजयं लभस्व आयुष्मन् चिरञ्जीवित्, शान्तिकर्म शमनकार्यम्, अनुष्ठीयताम् क्रियताम्।

भीष्मः—किमर्थम् कस्मै निमित्ताय ?

व्याख्या—ध्वजे स्यन्दनकेतौ, बाणप्रधर्षिते अन्यबाणप्रविद्धे सति, पुरा-

---

भीष्म—हे दुर्योधन, मैं स्पष्ट कहूँगा, आप जानते हैं,

बाणपुंख पर लिखे शब्द को ज्यारूपरसना से दुहराने वाले धनुष के शब्द ने स्पष्ट कह दिया कि पार्थ ही धनुष खींचते हैं। क्या आपने उधर कान नहीं दिया ?

(प्रवेश करके)

सूत—जय हो महाराज की, शान्ति कर्म कीजिए।

भीष्म—क्यों ?

सूत—आपकी ध्वजा दूसरे के बाण से जिस समय विद्ध हुई, उसके लिए

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अयं हि बाणः कस्यापि पुङ्खे नामाभिधीयते ॥ १८ ॥

भीष्मः—आनय ।

(सूत उपनयति)

भीष्मः—(गृहीत्वा निरीक्ष्य) वत्स ! गान्धारराज ! ! जराशिथिलं मे चक्षुः । वाच्यतामयं शरः ।

शकुनिः—(गृहीत्वानुवाच्य च) अर्जुनस्य । (इति क्षिपति । द्रोणस्य पादयोः पतति ।)

द्रोणः—(शरं गृहीत्वा) एह्येहि वत्स !

पूर्वमेव ते तव भीष्मस्य, कर्तुमुचितम् शान्तिकर्म विधातुमुचितम्, अयं हि असौ बाणः शरः, येन बाणेन ध्वजः केतुः, प्रधर्षितः विद्धः, अस्य शरस्य पुङ्खे मूले, कस्यापि पुरुषविशेषस्य नाम संज्ञा, अभिधीयते उच्यते ॥ १८ ॥

भीष्मः—आनय समानीयताम् ।

(सूतः सारथिः उपनयति आनयति)

भीष्मः—(गृहीत्वा नीत्वा, निरीक्ष्य दृष्ट्वा) वत्स हे पुत्र, गान्धारराज, जराशिथिलम् वृद्धत्वेन शिथिलम् मे मम, चक्षुः नेत्रम्, वाच्यताम् पश्यताम् अयम् एषः, शरः बाणः ।

शकुनिः—(गृहीत्वा नीत्वा अनुवाच्य पठित्वा च) अर्जुनस्य धनञ्जयस्य (इति क्षिपति प्रक्षिप्तबाणः द्रोणस्याचार्यस्य पदयोः चरणयोः पतति)

द्रोण—(शरम् बाणम्, गृहीत्वा नीत्वा) एह्येहि समागम्यताम् वत्स हे सुत ।

शान्ति कर्म और भी पहले करना चाहिए था । जिस बाण ने आपकी ध्वजा को वेधा है उस बाण पर नाम किसका लिखा है ? ॥ १८ ॥

भीष्म—लाओ बाण । (सारथी लाता है ।)

भीष्म—लेकर और देखकर) बेटा गान्धारराज, वृद्धावस्था के कारण मेरी आँख काम नहीं कर रही है । जरा पढ़ो तो इस पर किसका नाम लिखा है ?

शकुनि—(लेकर और पढ़कर) अर्जुन का यह बाण है । (फेंकता है, बाण द्रोण के पैरों पर गिरता है) ।

द्रोण (बाण लेकर) बेटा, अर्जुन ने इस बाण को भीष्म को प्रणाम

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एष शिष्येण मे क्षिप्तो गाङ्गेयं वन्दितुं शरः ।
पादयोः पतितो भूमौ मां क्रमेणाभिवन्दितुम् ॥ १९ ॥

शकुनिः—मा तावद् भोः ! शरप्रत्यय इदानीं श्रद्धातव्यम् ।
यौधः स्यादर्जुनो नाम तेनायं चोज्झितः शरः ।
लिखितं चोत्तरेणापि प्रकाशमुपनीयताम् ॥ २० ॥

दुर्योधनः—
तेषां राज्यप्रदानार्थमनृतं कथ्यते यदि ।
राज्यस्यार्धं प्रदास्यामि यावद् दृष्टे युधिष्ठिरे ॥ २१ ॥

व्याख्या—एषः असौ, मे मम, शिष्येण पार्थेन, गाङ्गेयम् भीष्मम् वन्दितुम् प्रणमितुम्, क्षिप्तः प्रेषितः, शरः बाणः, क्रमेण क्रमशः, माम् गुरुद्रोणम्, अभिवन्दितुम् प्रणामम् कर्त्तुम् पादयोः चरणयोः पतितः भूमौ पृथिव्यामिति भावः ॥

शकुनिः—मा तावद् भो एवम् मा वद, शरप्रत्यये बाणानुमानविश्वासे, इदानीम् अधुना, श्रद्धातव्यम् विश्वासः कार्यः ।

व्याख्या—यौधः कश्चिदन्यः पुरुषविशेषवीरः अर्जुनः धनञ्जयः स्यात् भवेत् तेन कारणेन अयम् पुरो दृश्यमानः शरः बाणः उज्झितः विसृष्टः स्यात् भवेत् उत्तरेण विराटपुत्रेण, लिखितम् अङ्कितम्, प्रकाशमुपनीयताम् स्पष्टतः प्रकाश्यताम् ॥ २० ॥

व्याख्या—तेषाम् पाण्डवानाम्, राज्यप्रदानार्थं राज्यं प्रदापयितुम् यदि चेत्, अनृतम् मिथ्या, कथ्यते रुच्यते तदा, राज्यस्यार्धम् साम्राजस्यार्द्धभागम्

करने के लिए ही भेजा था। और, अब यह बाण क्रमशः मुझे प्रणाम करने के लिए मेरे पैरों पर गिरा है ॥ १९ ॥

शकुनि—नहीं जी नहीं। बाणों पर लिखे नाम पर भरोसा नहीं करना चाहिए।

अर्जुन नाम का कोई दूसरा योद्धा भी तो हो सकता है। वह भी तो बाण चला सकता है। यह अर्जुन पाण्डव है, इसके लिए कुमार उत्तर द्वारा लिखित प्रमाण प्रस्तुत करना होगा ॥ २० ॥

दुर्योधन—और यदि उत्तर ने भी पाण्डवों को आधा राज्य दिलाने के लिए झूठ का सहारा लिया तो अपनी आँख से युधिष्ठिर को देखकर ही आधा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(प्रविश्य)

भटः—जयतु महाराजः । विराटनगराद् दूतः प्राप्तः ।

दुर्योधनः—प्रवेश्यताम् ।

भटः—यदाज्ञापयति महाराजः । (निष्क्रान्तः)

(ततः प्रविशत्युत्तरः)

उत्तरः—

अध्वानमल्पमतिमुक्तजवैस्तुरङ्गै-
रागच्छता पथि रथेन विलम्बितं मे ।
कौन्तेयबाणनिहतैर्द्विरदैः समन्ताद्
दुःखेन यान्ति तुरगा विषमा हि भूमिः ॥ २२ ॥

युधिष्ठिरे धर्मराजस्य साक्षात् दृष्टे दर्शने सति प्रदास्यामि ॥ २१ ॥

(प्रविश्य प्रवेशङ्कृत्वा)

भटः—जयतु सर्वोत्कर्षेण विजयताम्, महाराजः नृपतिः विराटनगरात् विराटेश्वरस्य पार्श्वात्, दूतः सम्वादवाह्यः प्राप्तः समागतः ।

दुर्योधनः—प्रवेश्यताम् मत्समीपसमानीयताम् ।

(ततः तत्पश्चात् प्रविशति उत्तरः विराटनृपतेः पुत्रः)

व्याख्या—अतिमुक्तजवैः अतितीव्रवेगैः, अश्वैः, तुरङ्गैः घोटकैः, अल्पम् अध्वानम् पन्थानं आगच्छतः समायातस्य, मे मम उत्तरस्य, रथेन स्यन्दनेन, पथि मार्गे, विलम्बितम् अवरोधितम् तत्कारणमाह, समन्तात् सर्वतः कौन्तेय-

---

राज्य दूँगा ॥ २१ ॥

(प्रवेश करके)

भट—महाराज की जय हो । विराट नगर से दूत आया है ।

दुर्योधन—भीतर बुला लाओ ।

भट—जैसी महाराज की आज्ञा । (निकल जाता है) ।

(इसके बाद उत्तर का प्रवेश)

उत्तर—राह लम्बी नहीं थी, घोड़ों को भी तेज हाँका गया । फिर भी, आने में देर हो ही गई । क्या करता अर्जुन के द्वारा युद्ध में मारे गये हाथियों

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(प्रविश्य कृताञ्जलिः) भो भोः ! आचार्यपितामहपुरोगं सर्वराजमभिवादये ।

सर्वे—आयुष्मान् भव ।

द्रोणः—किमाह तत्रभवान् विराटेश्वरः ?

उत्तरः—नाहं तत्रभवता प्रेषितः ।

द्रोणः—अथ केन त्वं प्रेषितः ?

उत्तरः—तत्रभवता युधिष्ठिरेण ।

बाणनिहितैः अर्जुनशरहतैः, द्विरदैः गजैः भूमिः धरित्री विषमा पदघातिनी जाता तेन तुरगाः अश्वाः दुःखेन कष्टेन यान्ति अग्रेसरन्ति ॥ २२ ॥

(प्रविश्य प्रवेशं कृत्वा, कृताञ्जलिः) भोः भोः आचार्यपितामहपुरोगमद्रोण-भीष्मप्रधानम्, सर्वराजम् सकलराजन्यवर्गम्, अभिवादये प्रणमामि ।

सर्वे—आयुष्मान् भव चिरञ्जीव ।

द्रोणः—किमाहं किं कथितः, तत्रभवान् मान्यः, विराटेश्वरः विराटनृपतिः?

उत्तरः—नाहम् तत्रभवता पूज्यविराटेन, प्रेषितः प्रहितः ।

द्रोणः—अथ इति प्रश्ने, केन पुरुषेण, त्वम् भवान्, प्रेषितोऽसि ?

उत्तरः—तत्रभवता श्रीमता, युधिष्ठिरेण धर्मराजेन ।

के शवों से रास्ते की भूमि विषम हो गई, जिससे रथ को आगे बढ़ने में कठिनाई होती रही ॥ २२ ॥

(प्रवेशकर बद्धाञ्जलि होकर) हे आचार्यप्रभृतिराजन्य मैं उत्तर आप सबों को प्रणाम करता हूँ ।

सभी—आयुष्मान् होओ ।

द्रोण—विराटेश्वर ने क्या कहा है ?

उत्तर—उन्होंने मुझे नहीं भेजा है ।

द्रोण—तब किसने तुम्हें यहाँ भेजा है ?

उत्तर—मान्य युधिष्ठिर ने ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

द्रोणः—किमाह धर्मराजः ?

उत्तरः—श्रूयताम्,

उत्तरा मे स्नुषा लब्धा प्रतीक्षे राजमण्डलम्।
तत्रैव किमिहैवास्तु विवाहः क्व प्रवर्तताम्॥ २३॥

शकुनिः—तत्रैव तत्रैव।

द्रोणः—

इत्यर्थं वयमानीताः पञ्चरात्रोऽपि वर्तते।

द्रोणः—किमाह किं कथितः, धर्मराजः युधिष्ठिरः ?

उत्तरः—श्रूयताम् अवधार्यताम्।

व्याख्या—मे मम युधिष्ठिरस्य, स्नुषा पुत्रवधूः, उत्तरा एतन्नामिका विराट सुता लब्धा प्राप्ता, राजमण्डलम् राजन्यवर्गम्, प्रतीक्षे तद्विवाहोत्सवार्थम् प्रतीक्षां करोमि, तत्रैव हस्तिनापुरे एव अथवा इहैव विरटनगरे एव, विवाहः पाणिग्रहणोत्सवः क्व कुत्र, प्रवर्तताम् जायताम् इति निश्चीयताम्।

शकुनिः—तत्रैव तत्रैव विराटनगरे एव भवतु।

व्याख्या—इति इत्थम्, वयम् भीष्मद्रोणादयः, सर्वेऽपि, अर्थम् पाण्डवोपलब्धिरूपम्, आनीता सम्यक् प्रकारेण समानीता, पञ्चरात्रोऽपि पञ्चरात्र्यात्मकः

द्रोण—क्या कहा है धर्मराज ने ?

उत्तर—सुनिये—

विराट पुत्री कुमारी उत्तरा मुझे पुत्रवधू के रूप में मिली है। मैं आप सबों के आदेश की प्रतीक्षा कर रहा हूँ। विवाहोत्सव हस्तिनापुर में हो या विराट नगर में, इसका निर्णय आपलोग करें॥ २३॥

शकुनि—वहाँ ही हो, वहीं।

द्रोण—हमने पाँच दिनों के भीतर पाण्डवों का पता कर लिया है। अभी पाँच रात नहीं बीती है। इसलिए धर्मपूर्वक आधा राज्य देने को स्वीकार की

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

धर्मेणार्जिता भिक्षा धर्मेणैव प्रदीयताम् ॥ २४ ॥

दुर्योधनः—

बाढं दत्तं मया राज्यं पाण्डवेभ्यो यथापुरम् ।
मृतेऽपि हि नराः सर्वे सत्ये तिष्ठन्ति तिष्ठति ॥ २५ ॥

द्रोणः—

हन्त सर्वे प्रसन्नाः स्मः प्रवृद्धकुलसंग्रहाः ।

अवधित्वेन नियतः कालोऽपि वर्त्तते, धर्मेण स्वकृतप्रतिज्ञा पालनपूर्वकेण, आर्जिता स्वीकृता, भिक्षा मया याचिता गुरुदक्षिणा, धर्मेणैव प्रतिज्ञापूर्वकेनैव, प्रदीयताम् ॥ २४ ॥

व्याख्या—बाढम् स्वीकृतम्, मया दुर्योधनेन, यथापुरम् पूर्वमिव, राज्यम्, पाण्डवेभ्यः युधिष्ठिरादिभ्यः, दत्तम् प्रदत्तम्, नराः जनाः, मृतेऽपि मरणान्तरेऽपि, सत्ये ऋते, तिष्ठन्ति, असते सति तिष्ठन्ति यशःकायेन तिष्ठन्तीति भावः ॥ २५ ॥

द्रोणः—हन्त इति हर्षे, प्रवृद्धकुलसंग्रहाः विशालवंशद्वयस्य संगमाः अर्थात् पारस्परिकविरोधप्रशमनेन राज्यार्द्धविभागेन च कौरव-पाण्डवयोः कुलयोः

गई गुरुदक्षिणा धर्मपूर्वक ही मिल जानी चाहिए ॥ २४ ॥

दुर्योधन—मुझे स्वीकार है। मैंने पाण्डवों को अपना आधा राज्य पहले की ही तरह दिया। यदि सत्य निर्पाय रहता है तो लोग मरने के बाद भी यश रूपी शरीर से जिन्दा रहते हैं ॥ २५ ॥

द्रोण—आज ये दोनों ही विशाल वंश पारस्परिक द्वेष के प्रशमन हो जाने से उन्नत हो रहे हैं, इससे हम सभी प्रसन्न हैं, सम्पूर्ण धरती का प्रशासन सूत्र

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इमामपि महीं कृत्स्नां राजसिंहः प्रशास्तु नः ॥ २६ ॥

(निष्क्रान्ताः सर्वे)

इति तृतीयोऽङ्कः

सङ्गमे सति, वयम् सर्वे जनाः प्रसन्नाःस्म मोदामहे, इमाम् पुरोवर्त्तिनीम्, कृत्स्नाम् अखण्डाम्, महीम् पृथिवीम् च नः अस्माकम् राजसिंहो नामा नृपतिः प्रशास्तु प्रशासनम् करोतु ॥ २६ ॥

(सर्वे सकलजनाः, निष्क्रान्ताः रङ्गभूमितः प्रस्थिताः)

इति 'विमला' संस्कृतव्याख्यायां तृतीयोऽङ्कः ।

हमारे राजसिंह संभालें ॥ २६ ॥

(सबों का प्रस्थान)

ततीय अङ्क समाप्त

इति 'वेगूसराय' मण्डलान्तर्गतगङ्गादक्षिणतटोपवर्त्ति 'अकबरपुर' ग्रामाभिजनेन यशोवशेषश्रीमद्दैवज्ञरत्न 'कीर्तिनाथशर्म्म' तनुजुषा 'डाक्टरेट' उपाधिधारिणा एम. एम. द्वय. व्याकरणशास्त्रि-साहित्याचार्येण श्रीजगदीशचन्द्रमिश्रेण विरचित-विमलाख्य संस्कृत-हिन्दीव्याख्याद्वययुतं पञ्चरात्रं समाप्तम् ।

सम्पूर्ण पञ्चरात्रम्

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

परिशिष्ट

नोट्स (टिप्पणी)

प्रथम अङ्क

नाटक के नाम की अन्वर्थकता—दार्शनिक दृष्टि से किसी नाम की अन्वर्थकता का अभाव चाहे जो कुछ हो साहित्यिक दृष्टि नाम की सार्थकता तो मानती ही है। नामकरण के औचित्य के संबंध में क्षेमेन्द्र का दृष्टिकोण स्पष्ट है—**नाम्ना कर्मानुरूपेण जायते गुणदोषयोः'**।

ऐसी दशा में किसी भी नाटक के प्रकृत अर्थ के अनुकूल नाम चुनने में कवि की कला परिलक्षित होती है। इसी अन्वर्थकता एवं सूपयुक्तता के कारण भास ने 'पञ्चरात्र' शब्द को अर्थगौरव की दृष्टि से शीर्षक के रूप में ग्रहण किया है। इस नाटक की सारी घटनायें पाँच रात के भीतर ही घटित हुई हैं। 'पञ्चरात्र' पद यहाँ रूपक परक है।

'पञ्चरात्रमस्ति विषयत्वेन अस्येति पञ्चरात्रम्, अर्श आदित्वादच्।'

सामासिक व्युत्पत्ति की दृष्टि से इसका एक दूसरा भी विग्रह है—

'पञ्चानां रात्रीणां समाहारः पञ्चरात्रम्।' यहाँ संख्यावाचक शब्द पूर्ण में रहने के कारण द्विगु समास हुआ है।

श्लो० १—द्रोणः—इस नाटक के मङ्गलश्लोक में द्रोण आदि नाटक के प्रमुख पात्रों का नामोल्लेख एक साथ मुद्रालंकार के रूप में किया गया है। नामोल्लेख की यह विधि भास के 'स्वप्नवासवदत्तम्' 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण' एवं 'प्रतिमानाटक' में भी देखी जा सकती है। पात्रों के नामों का उल्लेख श्लिष्ट रूप में है। 'द्रोण' काले काक और मेघ को भी कहते हैं। द्रोण द्रोणाचार्य का भी नाम था। यहाँ कुछ टीकाकारों ने द्रोण का अर्थ विशेषण के रूप में कृष्ण के लिए काला कौआ का रङ्ग लिया है। लेकिन मेरी दृष्टि में कृष्ण का रङ्ग सघन बादल की तरह श्यामवर्ण था, न कि कौए की तरह। अतः हमने द्रोण

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

का अर्थ 'मेघ' ही लिया है, 'काक' नहीं। 'कृष्णवर्णसादृश्यात्' द्रोण का अर्थ काला कौआ भी होता है। अतः कुछ लोगों ने लक्षणा के द्वारा इसका अर्थ 'द्रोणसदृशः अर्थात् 'कृष्णकाकसदृशः' लगाया है। मैं समझता हूँ, द्रोण का अर्थ बादल लगाना ही उचित है, जिसकी उपमा परब्रह्म श्रीकृष्ण को दी जाती है। cf 'अनावृष्टिहते सस्ये द्रोणमेघ इवोदितः'। मृच्छ०१०–२६।

पायाद् विराट्—यह भी एक विचारणीय शब्द है। 'विराट प्राचीन पुरुष का प्रतीक है जो हमारे संरक्षक हैं। विराट इस नाटक का एक पात्र भी है जो 'शब्दैकदेशलक्षणाविराज्' के रूप में भगवान के साथ पहचाना जाता है जो इस सृष्टि का पुरातन तत्व है और बाद में चलकर विष्णु के रूप में सर्वमान्य है। अतः इसका प्रयोग इस श्लोक में दो अर्थों में निहित है–एक तो कृष्ण का निरूपण करता है, दूसरा 'विराट' नृपति का।

पृथिव्यर्जुनभीमदूतः—इसके भी दो अर्थ हैं–चमक और आश्चर्य का दूत पृथ्वी पर–पृथिव्यां अर्जुनस्य भीमानां च (कर्मणां) दूतः। यह अर्जुन और भीम के दूत का भी अर्थ बोध कराता है जो कौरव के न्यायालय में धरती पर अपने हिस्से की माँग में उपस्थित हुआ है। एक और बात, 'भ्रातुर्ज्यायसः' के के अनुसार पहले भीम का नामोल्लेख होना चाहिए तब अर्जुन का। किन्तु, अर्थच्छवि की दृष्टि से ऐसा प्रयोग किया गया है।

शकुनीश्वरस्य कर्णधारः—शकुनीश्वरस्य, गरूडस्यनियन्ता। शकुनि इस नाटक का एक पात्र है। दुर्योधन का मामा तथा गान्धार देश का राजा।

दुर्योधनः—दुष्करं शत्रुभिः योधने यस्य। एक कठोर प्रहारक या अद्वितीय योद्धा। 'दुष्कर' शब्द का 'कर' 'प्रादिभ्यो धातुजस्य' वार्त्तिक से लोप कर दिया गया है। दुर्योधन की तरह युधिष्ठिर भी यौगिकार्थ सम्पन्न शब्द है युधि स्थिरः।

उत्तरगः—उत्तर भी युधिष्ठिर की तरह इस नाटक का एक पात्र है तथा शब्दगत इसका अर्थ आश्चर्य जनक कार्य करता हुआ है। उत्तरं प्रशस्तं कार्यं गच्छति आचरति। उपर्युदीच्यश्रेष्ठेष्वत्युत्तरः इति अमरः।

स्थापना—'प्रस्तावना' और 'आमुख' के सदृश ही 'स्थापना' है। अच्छे-अच्छे नाटकों में 'प्रस्तावना' एवं 'आमुख' का ही प्रयोग मिलता है, 'स्थापना' का नहीं। 'दशरूपक' में भी 'आमुख' और स्थापना की चर्चा तो है पर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'स्थापना' की कोई चर्चा नहीं है। भास ने अपने सभी नाटकों में 'स्थापना' का ही प्रयोग किया है। जब कि सूत्रधार पूर्वरंग-विधान के बाद मञ्च से उतर जाता है तो सूत्राधार एक समकक्ष नट, जिसे स्थापक कहा जाता है, रंगमंच पर आकर नाटक प्रयोग की 'स्थापना' करता है। 'स्थापक' के द्वारा नाटक प्रयोग की यह उपक्रमणिका ही 'स्थापना' कहलाती है।

श्लो० ३—अन्नैः—इस शब्द का अर्थ सामान्यतः पका हुआ भोजन होता है। लेकिन यहाँ इसका प्रयोग विशेष रूप में हुआ है। कुछ लोगों ने इस शब्द का प्रयोग श्वेत पुष्प की तुलना में किया है और कुछ खीर के अर्थ में।

प्रकुसुमितकाशा इव दिशः—यहाँ दिशाओं की तुलना काश के फूल से की गई है, जो अत्यधिक श्वेत होता है। OF शरच्छशांकगौरेण वाताविद्धेन भामिनि, काशपुष्पलवेनेदम् साश्रुपातं मुखं मम। N. F. मृगैस्तुल्या इत्यादि। यह संस्कृत कवियों के वर्णन की विशेषता है कि वे तपोवन का चित्र ऐसा खींचते हैं जहाँ चैतन्य मानव की बात तो दूर रही, पालतू जानवर भी अपना विकाश भयरहित शांतिपूर्ण वातावरण में कर पाते हैं।

वधनिभृतसिंहाः—वधे निभृताः सिंहा येषु—जहाँ सिंह मारे जाने के भय से आक्रांत रहते हैं और इसका अर्थ गणपति शास्त्री के शब्द में 'वधे ताडनेऽपि परकृते निभृताः निर्विकाराः अकोपनाः सिंहाः येषु' है। सिंह भी शांति एवं तेजस्वी जीवन यहाँ उत्साह के साथ बिताते हैं, यहाँ तक कि कोई उसे तंग भी कर देता हो तो उसे वे क्षमा कर देते हैं। सम्पूर्ण विश्व जैसे यज्ञ की दीक्षा लेने को कसम-सा खा लिया हो। काम—क्रोध आदि का त्याग तपोवन के अणु-अणु में व्याप्त हो उठा है। इस वर्णन को अत्यधिक उत्प्रेक्षा का उदाहरण कहा जा सकता है।

श्लो० ४—तृप्तोऽग्निर्हविषाऽमरोत्तममुखम्—अग्नि और अमरोत्तम मुख एक दूसरे का विराधाभास है। अग्नि देवताओं के मुख को माना गया है—'अग्निमुखा वै देवाः' इति श्रुतिः। गर्जन्नृपे सद्गुणैः—इसका स्थान 'नृपे विद्यमानैः के लिए दीर्घवृत्तीय है। व्याख्या—नृपे (विद्यमानैः इति शेषः) सद्गुणैः सर्वतो गर्जत् इदं जगत् सम्प्रति हृष्टम्। सारा संसार राजा की प्रशंसा प्रसन्न हृदय से करता है। उदारुरोह=अतिशिश्ये--ऊपर उठ गया।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दृप्ताः पक्षिगणाश्च—यहाँ संयोजक 'च' का प्रयोग प्रत्येक शब्द के बाद या संयुक्त शब्द के अन्त में ही होना चाहिए। अतः इसकी व्याख्या 'ते ते नराः' के साथ होनी चाहिए न कि 'पक्षिगणाः' के साथ। ऐसा करने से एक साहित्यिक मुहावरे की भी संपुष्टि होती है।

सर्वशः—'बह्वल्पार्थात् शस् कारकात् अन्यतरस्याम्। पा. ५।४।४२ के अनुसार 'सर्व+शस्' से हुआ है।

अत्र भवन्त—पूज्याः। इतराभ्योऽपि दृश्यन्ते। (पा. ५।३।१४) इति प्रथमान्ताद् भवच्छब्द योगे त्रल्। यहाँ 'त्र (ल्) का संयोग सर्वनाम 'इदम्' के लिए कर्त्ताकारक के रूप में प्रयुक्त है। जब यह 'भवत्' के साथ संयुक्त होता है।

श्लो० ५—श्लाघ्यप्रभूतश्रवाः—श्लाघ्यः प्रभूतः श्रवः (ख्यातिः शास्त्र-श्रवणं वा) येषां ते। जिसकी ख्याति एवं ज्ञान प्रशंसनीय एवं विस्तृत है।

स्वाध्यायशूरैः मुखैः—उपलक्षिताः। उपलक्षणार्थे तृतीया। जिसके होठ बहादुर हों। जिसकी व्याख्या सीमा रहित हो। स्वाध्यायः' 'वेदाध्ययनम्' है। शिष्यस्कन्ध० इत्यादि 'अञ्चित्' का अर्थपूजित हो—उनका प्रशंसनीय हाथ।

भो भो माणवकाः—'बालः स्यान्माणवकः' इत्यमरः। 'अपत्ये कुत्सिते गूढे मनोरौत्सर्गिकः स्मृतः। नकारस्य च मूर्धन्यस्तेन सिध्यति माणवः।' स्वार्थेकन् माणवकः।

अनवसिते.....उत्सृष्टव्यः—जैसा कि व्याख्याकार की दृष्टि पड़ी है। यज्ञ समाप्ति के बाद यज्ञमण्डप में रूढ़िगत अग्नि की स्थापना की गई हैं।

श्लो० ६—एषा....कनकमयभुजेव—यहाँ यज्ञवेदी के स्तूप को स्वर्ण-निर्मितबाहु की संज्ञा दी गई है। (कनकयूपविलम्बबाहुः और रुचिरकनकयूप-व्यायतालम्बबाहुः।) चैत्याग्निर्लौकिकाग्नि इत्यादि। चैत्यं यज्ञस्थानं तद्गतोऽग्निः चैत्याग्निः। यज्ञवेदी पर की आग तीन तरह की होती है—गार्हपत्य, आहवनीय और दक्षिण। जिस आग को लड़कों ने जलाई उसे लौकिकाग्नि कहा जाता है। यह आग यज्ञवेदी की अग्नि से भिन्न तरह की आग मानी गई है। महाकवि भास ने इन दोनों (यज्ञाग्नि और लौकिकाग्नि) की तुलना ब्राह्मण और शूद्र के रूप में की है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्राग्वंशम्—यज्ञशालाविशेषः। 'प्राग्वंशं प्राग् हविर्गेहात्'। यह यज्ञशाला का वह भाग है जिसमें हवन की सारी सामग्रियाँ सुरक्षित रक्खी जाती हैं। अथवा—यह वह स्थान है जहाँ याज्ञिक लोग यज्ञकाल में निवास करते हैं। क्षीरस्वामी के शब्दों में—'पत्नीशालाख्यः अग्निशालायाः प्राक् यो भागः।

श्लो० ७—अग्निरग्निभयादेषः—यहाँ प्रथम अग्नि शब्द का प्रयोग पवित्र गार्हपत्याग्नि के रूप में हुआ है तथा द्वितीय अग्नि का प्रयोग सामान्य आग के रूप में। यज्ञवेदी की गार्हपत्याग्नि को यज्ञान्त में ऋत्विजों ने हटाकर प्राग्वंश में रक्खा था। आग लगने पर लौकिकाग्नि से कहीं यह दूषित न हो जाय इस भय से लोग इसे अलग हटा रहे हैं।

श्लो० ८—शकटी—शकट शब्द का यह स्त्रीप्रत्ययान्त रूप है। मृच्छकटिक में सुवर्णशकटिका, मृत्तिकाशकटिका आदि शब्दों का प्रयोग हुआ है। 'शकटी च घृता पूर्णा'—का आशय यह है—'यथा घृतापूर्णाशकटी वारिणा सिच्यमानापि वालस्नेहेन अल्पघृतेन दह्यते तथोपरतापत्या नारीबाष्पवारिणा सिच्यमानाऽपि वालस्नेहेन अपत्यप्रेम्णा दह्यते इति ऊर्ध्वदेशे महाशयाः।

बालस्नेहेन—यह शब्द परम्परित श्लेष के रूप में व्यवहृत है। इसका एक अर्थ है 'वालक के प्रति स्नेह की भावना' और दूसरा अर्थ है अल्पस्नेह जिसकी उपमा अवशिष्ट अल्प घी के साथ है।

श्लो० ९—चक्रधरस्य—सर्वश्रेष्ठ परमात्मा का—सुयोधन, शुष्यति दर्भे धर्मशकटीं दग्धुं प्रवृत्तः। यज्ञीय सामग्री ढोने में प्रवृत्त गाड़ी जहाँ घासों से आवृत्त होने के कारण आग धीरे-धीरे बढ़ रही थी, वहाँ अब तेज आग हो गई और उस गाड़ी को जलाने में जब तत्पर हुई तो क्रमशः फैलती हुई आग को बुझाने के लिए वह आगे की ओर बढ़ गया।

नीलशाद्वलतया वह्निः शनैर्वामनः—घासों से हरित होने के कारण यह कम जलता है। पावक शब्द का प्रयोग वह्नि के रूप में पंक्ति दो में हुआ है।

सूर्यायते—सूर्य इव आचरति। मण्डलाकारतया सूर्य इव भाति। सूर्य शब्दात् आचारे क्यङ्। कर्तुः क्यङ् सलोपश्च। पा. ३।१।११।

श्लो० १०—दहनेन भीताः—अनियमित है और इसका रूप 'दहनाद् भीताः' होता है—भीत्रार्थानां भयहेतुः। पा० १।४।२५।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्लो० ११—कोटरान्तरदेहस्थाः—कोटरं एव अन्तरदेहः देहाभ्यन्तरं तत्र तिष्ठन्ति। आत्मा जो शरीर के अन्दर की वस्तु है, उसकी उपमा किसी पेड़ की गुफा में प्रविष्ट किसी पक्षी से की गई है।

श्लो० १२—शुष्केणैकेन—इसके लिए Cf. एकेनापि कुवृक्षेण कोटरस्थेन वह्निना। दह्यते तद्वनं सर्वं कुपुत्रेण कुलं यथा॥ चाणक्यशतकम् से उद्धृत है। (इसके बाद दो श्लोक गणपति शास्त्री के द्वारा संग्रहीत पुस्तक में दिया गया है। पर, त्रिवेन्द्रम् साहित्य के मूल पुस्तक में इन दोनों श्लोकों का अस्तित्व नहीं है।

श्लो० १४—निविष्टो दुष्कुले साधुः—व्याख्या—दुष्कुले स्त्रीदोषेण निविष्टः साधुः इव दह्यते। 'निविष्टः' का अर्थ यहाँ 'संसृष्टः' है। कोई सत्पुरुष यदि किसी गलत परिवार की दुष्ट महिला के सम्पर्क में आता है, तो उसका नाश भी निश्चित होता है।—दुष्टस्त्रीसंसर्गः सत्पुरुषस्य दोषाय भवति।

श्लो० १५—सवृक्षक्षुपगुल्मम्—वृक्षैः क्षुपैः गुल्मैश्च सह वर्त्तमानम् 'वनम्' संपुष्ट करता है। क्षुप एक छोटी झाड़ी है। इसका प्रयोग 'अविमारक' में भी हुआ है। V–६–नभोमार्गरूढ़क्षुपाः नीलाम्बुदाः।

श्लो० १६—मधुपटल चक्रेण महता—तृतीया उपलक्षणार्थ में है। लम्बा ताड़ का पेड़ अपने मधुकोष के साथ बड़ा भयावह दीखता है। इसकी तुलना रुद्र की कुल्हाड़ी से की गई है जो बड़ा ही सटीक है।

श्लो० १८—स्रुग्भाण्डमरणो—स्रुग का अर्थ कलछुल और भाण्डम् का अर्थ काठ का कटोरा होता है। 'स्रुक् हवनी संज्ञं जुहूपमृदादिभेदभिन्नं दारुमयं होमसाधनं–तद्रूपं भाण्डं पात्रम्। उपभुङ्क्ते–अग्नि के साथ जलने का बोध कराता है। जहाँ उपमान के साथ इसका अर्थ 'खा जाना' होता है। विक्रीय जीवति–बेचकर खाता है।

श्लो० १९—चलितैकपर्णहस्तः—चलितः एकं पर्णं एव हस्तो यस्य स तथाभूतः यहाँ पेड़ की टहनियाँ नदी के ऊपर झूल रही हैं और जैसे-जैसे हवा उन्हें झुलाती हैं, वह पानी पर अब डूब रही हैं। मानो वह आग में जलकर मरे हुए अपने वृक्षबंधुओं को जलांजलि दे रही है। कवि की यही कल्पना है।

श्लो० २०—आगतकथा मधुरं—आगतस्य प्रसक्तस्य यज्ञस्य कथया प्रस्तावेन मधुरं यथा भवति तथा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पाण्डवपरिग्रहं कुर्वन्ति—शत्रुतामूलक क्रोधका परित्याग कर अपने स्वजनों पर दया करने का अनुरोध किया है। शब्दान्तर में पाण्डवों के ऊपर सहृदयता दिखाने का स्पष्ट आग्रह है।

विष्कम्भकः—विष्कम्भक तथा प्रवेशक में भी विष्कंभक प्रधान है। प्रवेशक विष्कम्भक का ही दूसरा रूप कहा जा सकता है। जहाँ नीच पात्र होते हैं तथा उसका प्रयोग प्रथम अंक के प्रारम्भ में नहीं होता। विष्कम्भक के द्वारा भूत काल की या भविष्यत काल में होने वाली घटना का संकेत किया जाता है। यज्ञ को कार्य समाप्त हो चुका था। इस विष्कम्भक के माध्यम से नाटक की कथा वस्तु को समझा नहीं जा सकता। कवि ने अग्नि का विस्तृत वर्णन किया है। इस क्रम में उन्होंने यज्ञ मण्डप जलने का तथा यज्ञीय सामग्रियों को भी जला डालने का रोचक वर्णन किया है।

श्लो० २२–रूप्यग्रहणात्—यहाँ यह पाण्डवों की सम्पत्ति को जूए में जीतने के तात्पर्य को संपुष्ट करता है। 'रूप्य' का अर्थ मुहरयुक्त स्वर्णमुद्रा या कांसा जैसे धातुओं के सिक्के से है। रूपादाहतप्रशसयोर्यप्। पा. ५।२।१२०। रूप्यः आहृतस्वर्णरजते।

अयशो निपीतवान्—अयश को भी जिसने पी लिया है—नितरां अनुभूतवान्।

श्लो० २३–मे निवसति गुणो—मुझमें दयादि गुणों का निवास हो रहा है। यहाँ निवसति का अर्थ नितरांवसति हैं। मयि स्थिरवासं करोति 'मे' शब्द का प्रयोग इस श्लोक में उपयुक्त नहीं है–जगद विश्वस्तं मे। फिर भी, यहाँ 'मयि' का प्रयोग संस्कृत भाषा के अनुसार होना चाहिए। फिर भी, इसे हम गुण के साथ ग्रहण कर सकते हैं। मे मम गुणः निवसति।

यदिह कथयति–यहाँ 'लोकः' या 'आगमः' विषय प्रयोग उपयुक्त होगा।

व्याख्या—मृतै प्राप्यः स्वर्गः (इति) यदिह (लोकः) कथयति एतद् अनृतम्। VL यदिह कथयन्त्येतदनृतम् अच्छा होगा।

गान्धारीमातः—इस तरह का प्रयोग भास ने बहुत किया है–सुमित्रा-मातः, कौशल्यामातः, कैकेयीमातः; (प्रतिमा)। शौरसेनीमातः, यादवीमातः (बालचरित में)। काणेलीमातः (चारूदत्त में)।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इस तरह के प्रयोग में पाणिनि के नियम की उपेक्षा की गई है, पाणिनि के अनुसार नद्यृतश्च, से कप् होना चाहिए।

समासान्तविधि की अनित्यता मानकर इसको शुद्ध कर लिया जाता है।

धौतकल्मषाङ्गः अङ्गराजः—अनुप्रास का यह एक सायास प्रयोग है। धौतं कल्मषं यस्मात् तद् धौतकल्मषम्। धौतकल्मषं अङ्गं यस्य सः। अर्थात् कायविशुद्धः।

श्लो. २५–इक्ष्वाकुशर्याति—ये सारे सूर्यवंशी राजा अपनी महानता और दयालुता के लिए प्रसिद्ध थे। नष्टाः शरीरैः ऋतुभिर्धरन्ते। Cf हतेषु देहेषु गणा धरन्ते–कर्णभार १७–धरन्ते किन्तु यहाँ आत्मने पद का प्रयोग असामान्य है। सामान्यतः म्रियन्ते (अर्थात् जीवन्ति) रूप आता है।

अयमक्रमः—मास को क्रम के प्रति एक आस्था है। इस तरह का प्रश्न उन्होंने प्रतिमा में भी उठाया है। Cf राजा रामो लक्ष्मणो वैदेही व्ययमक्रमः सुमन्त्रः— अथ कः क्रमः। प्रतिज्ञा ii १४२०।

श्लो० २६–दैवतं मानुषीभूतम्—महाभारत I–१०६ में भीष्म को 'देवता' का अवतार आना गया है। ये आठ 'वसुओं में से एक हैं। शापवस इन्हें मनुष्य योनि में आना पड़ा है। अतः इन्हें मनुष्य के रूप में देवता कहा गया है। दूसरी पंक्ति की छंद रचना जटिल है। व्याख्या—भीष्ममुत्क्रम्य वन्दितुं आचरणं अहं न मन्ये। वन्दितुम्—'तुमुन्' क्रियार्थ है। क्रियोपपद–वन्दितुम् आचरणं वन्दितुं चेष्टितं अहं न मन्ये नानुजानामि। भीष्म की उपेक्षा कर तुमने जो प्रथम मुझे प्रणाम किया है, उससे मैं संतुष्ट नहीं हूँ। या हम वन्दितुं की व्याख्या अन्य तरह से भी कर सकते हैं –जहाँ 'तुमुन्' मात्र धात्वर्थ के लिए ही प्रयुक्त है अर्थात् वन्दनं, आचरणं अर्थात् शिष्टाचारं न मन्ये। भीष्म की उपेक्षाकर इस प्रणाम को मैं शिष्टाचार नहीं मानता।

नमस्यताम्—'नमस्यति' का कर्मवाच्य आज्ञा सूचक अन्य पुरुष एक वचन है। नाम धातु –नमस्+क्यच्। 'नमोवरिवश्चित्रङः' के अनुसार पा० ३।१।१९।

श्लो० २७–भवान् स्वयम्—भीष्म का यह कथन है। उन्होंने द्रोण की श्रेष्ठता सिद्ध करने के लिए यह कहा है कि मुझे माता ने जन्म दिया है और

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आप स्वयम् अयोनिज हैं। महाभारत आदि पर्व के खण्ड–१३० में द्रोण के जन्म की कथा वर्णित है। उनका जन्म भरद्वाज मुनि के कलश में हुआ था। अतः वे स्वयंभू हैं।

अपह्नव—शब्द यहाँ एक विशेष अर्थ में प्रयुक्त है। वस्तुतः अपह्नव का अर्थ क्षमा होता है। किन्तु, म. म. गणपति शास्त्री ने इस शब्द की व्याख्या करते हुए 'स्नेह' अर्थ लिखा है—अपह्नवः स्नेहः यद्भावितचित्तस्य रागद्वेषौ न स्तः सा। भूतमैत्रीत्यर्थः। अपनी इस व्याख्या की संपुष्टि में उन्होंने वैजयन्ती का उद्धरण दिया है 'अपह्नवौ ह्युतिस्नेहौ'।

शिष्यमहत्तराः—प्रमुख शिष्य। 'महीयस्' की तरह 'महत्' की तुलना 'महत्तर' के साथ है।

नोत्सहन्ते महात्मानः—यह वाक्य अन्तर्निहित प्रश्नवाचक है। क्या महात्मा लोग अपनी प्रशंसा करने में तत्पर होते हैं?

बुद्धिप्रशमनम्—बुद्धेः महसः प्रशमनं रागद्वेषादि कलुषतानिवृत्तिः। तुम्हारी बुद्धि प्रशांत हुआ करे।

श्लो० २८—समानीय—अनुष्ठाय। **आप्तदक्षिणान्**—आप्ता पर्याप्ता दक्षिणा येषु तान्। यहाँ क्रतुः शब्द यज्ञार्थपरक है। यहाँ ब्राह्मणों को उदारता पूर्वक दान दिया जाता है। Cf. क्रतुभिश्चाप्तदक्षिणैः। द्रोणपर्व १८-२५।

उद्योगं जनयति—यहाँ 'उद्योगं जनयति' का अर्थ हुआ 'युद्ध के लिए प्रेरित करता है। यह अभिव्यक्ति प्रतिमा I-१९ में आता है। अस्मद्राज्य-भ्रंशो भवत उद्योगं जनयति। **प्राप्तक्रमं**–'प्राप्तपर्यायं यथा भवति तथा'।

श्लो० २९–अन्तस्त्वनमान्त्र्य—म. म. गणपतिशास्त्री के शब्दों में—प्रीतिपूर्वकमनाभाष्य—इसकी व्याख्या करते हुए आचार्य रामचन्द्रमिश्र ने लिखा है—"यज्ञानुष्ठाननियमादिना कृशकायस्त्वम् मदालिङ्गनजं बलं यदि सोढुं शक्ष्यसि तदाहं त्वां दृढमालिङ्ग्य सुखयिष्यामि, परं त्वदीयं हृदयाभिप्रायमज्ञात्वा नाहं प्रवर्त्तिष्ये तवालिङ्गने इति भावः।"

सभाजयति—बधाई देता है। "सभाज प्रीतिसेवनयोः" चुरादिः। स्नेहात् सभाजयितुमेत्य दिनान्यमूनि। उत्तररामचरि० १,३।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वासुभद्रेण—वासुदेवेन। वासु का यहाँ अर्थ है वासुदेव, सम्पूर्ण वासुदेव शब्द के लिए यहाँ उसके एक देश 'वासु' का प्रयोग किया गया है। वासुश्चासौ भद्रश्च। वलभद्र या रामभद्र की तरह यहाँ श्रीकृष्ण के लिए वासुभद्र का प्रयोग किया गया है। क्षीर स्वामी ने इसकी व्याख्या की है—'जगत्यां सर्वहृदये वसतीति वासुः।' महाभारत की कथा के अनुसार अभिमन्यु ने गोग्रहण में भाग नहीं लिया था। उत्तरा के साथ इसकी शादी निश्चित हो जाने पर ही बाद में इसे मत्स्यपुर अर्थात् विराट नगरी में बुला लिया गया।

व्यपश्रयिष्ये—मैं प्रार्थना कर लूँगा (कालान्तर में माँग लूँगा) (वि+अप्+श्रि) इसी अभिव्यक्ति का उपयोग 'मध्यमव्यायोग' में भी एक जगह किया गया है—"वृद्धा—हन्त, निराशाः स्मः। भवतु, पुत्र व्यपश्रयिष्ये तावदेनाम्। स्वप्नवासवादत्ता में इस की व्याख्या है—व्यपाश्रयणा=प्रार्थना। आचार्य रामचन्द्रमिश्र ने लिखा है—"व्यश्रयिष्यते—साधारणो हि याचको दातारं समयान्तरे याचते, आचार्यस्तु न भवति सामान्ययाचकोऽतो नोचितम् तस्य व्यपश्रयणमिति।

श्लो० ३०—पीतः सोमो बाल्यदत्तः—आचार्य ने युवावस्था में ही सोमरस का नियोगात् अर्थात् विधिवत् पानकर लिया है। (बाल्यदत्तः—बाल्ये तरुणे वयसि अभिषुतः) यन्न दरिद्रः यस्मिन् दरिद्रः।

आपस्तावत्—पानी लाओ। जल की यह माँग कई नाटकों में विभिन्न-परिस्थितियों में देखी जाती है। यथा—अभिषेक—१–२६[७], प्रतिमा २–२०[६], मध्यम १–४७[४], दूतवाक्य १–४३[२], प्रतिज्ञा १–१५[१९]।

अश्रुपातोच्छिष्टस्य—वाष्पासारदूषितस्य अर्थात् आंसुओं से अपवित्र

श्लो० ३२–करणम् प्रतिग्रहाणाम्–प्रतिग्रहाणाम् दामनस्वीकरणानाम् करणम् साधनम्-यहाँ करणशब्द अत्यधिक प्रभावकारी साधन या प्रमाण है। करण का यही अर्थ है एक बन्धपत्र, अनुबन्ध या प्रमाणपत्र। उदाहरण—मनु० Nu. ५१,५२।

श्लो० ३३–येषां गतिः क्वापि–येषां निराश्रयाणाम् कुत्राप्याश्वस्तमाश्रयमलभमानानां कुत्रापि गतिः नोपलब्धाः—जिन्हें कोई आश्रय नहीं है। महाभारत के अनुसार कौरवों को यह पता नहीं था कि बारहवर्षों तक पाण्डव

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दर दर की ठोकर खाने के बाद यह तेरहवाँ वर्ष अज्ञात वास के रूप में कहाँ व्यतीत कर रहे हैं। प्रथम पंक्ति में उल्लिखित सर्वनाम येषाम् की तरह द्वितीय पंक्ति में पाण्डवानां के साथ तेषाम् है।

श्लो० ३४--उपन्यस्तस्य—दक्षिणादानोपन्यासम्, दक्षिणा देने के प्रस्ताव को उपस्थित करने वाले प्रतिगृह्यताम् दक्षिणा इति उपन्यासं कुर्वाणस्य। उपन्यस्तस्य = उपन्यस्यवतः कर्त्तरि क्तः। और इसका एक अर्थ समर्पित (तुम्हारी देखरेख) में भी हो सकता है। गौरवे-गुरुत्वे तुम्हें आध्यात्मिक पथ प्रदर्शक मान कर जिसने तुम पर विश्वास किया।

यज्ञप्रस्तुतम्—यज्ञे प्रस्तुतम्, यज्ञ के लिए आवश्यक बनाना अर्थात् यज्ञ की आवश्यकताओं से लाभ उठाना यथा इप्सितदान प्रभृति, धर्मवञ्चना-धर्मेण हेतुना वञ्चना धर्म के नाम पर छल।

गान्धारविषयविस्मित विस्मितः गर्वितः। विस्मित शब्द का प्रयोग अन्यनाटकों में भी इसी अर्थ में हुआ है-यथा-विहगवाहनमात्रविस्मितः दूतवाक्य। १-१२[६]

सर्वलोकमनार्यमितिमन्यसे—यहवाक्य रचना अनियमित है। इसे होना चाहिए था। सर्वः लोकः अनार्यः इति मन्यसे। यहाँ इति शब्द को छोड़ा भी जा सकता है। चूँकि 'मन्यसे' सर्वलोकमनार्यम्' में द्वितीया विभक्ति का प्रयोग है। इति का ऐसा प्रयोग गीता में भी उपलब्ध है "यंसंन्यासमितिप्राहुः।"६-२।

श्लो० ३५—किं पर याचितैर्दत्तं बलात्कारेण तैर्हृतम्—ऐसा ही प्रयोग भास ने श्रीकृष्ण के मुख से दूतवाक्य में किया है—

दातुर्महति मद्वाक्यात् राज्यार्धं धृतराष्ट्रज।
अन्यथा सागरान्तां गां हरिष्यन्ति हि पाण्डवाः॥

याचितैः—याचनाभिः। भावेक्तः।

अवभृथस्नानमात्रमेव खलु—इदं यज्ञान्तस्नानम्। यहाँ 'इदानीम् वर्त्तते का प्रयोग होना चाहिए। तुम इस समय यज्ञान्त स्नानकर चुके हो। इस पवित्रतम स्थिति में तुम्हें शकुनि की बात नहीं सुननी चाहिए क्योंकि शकुनि मित्रमुखः मित्रं मुखम्-वाक्यस्य अर्थात् वाङ्मात्रमित्रम्।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

धर्मच्छलेन—धर्मः इति छलं तेन। धर्मच्छलेन सत्यवचनपालनाग्रहेण। धर्म शब्द के नाटकीय व्याज से। द्यूताश्रयवृत्तिः—द्यूतव्यसनी, जुए का शौकीन।

श्लो० ३८–तोलयन्नेव—जब वह ऊर्ध्वोन्मुख हो ही रहा था। म० म० गणपतिशास्त्री ने इसकी व्याख्या की है–उन्मिमान एव। उन्मानमिह तारतम्य-परीक्षणम्। किमनेन स्तम्भेन धर्षयितृन् प्रहरेयं किममुना स्तम्भेनेति तत्सारफल्गुताम्–दृष्ट्या पर्यालोचयन् सन्। यथा–एष दुरात्मा भीमः सर्वराजसमक्षमवमानितां द्रौपदीं दृष्ट्वा प्रवृद्धामर्षः सभास्तम्भं तुलयति। दूतवाक्य–१–७।

यद्येकस्मिन् विमुक्तः—किसी एक व्यक्ति पर आक्षेप किया गया है। यद्यपि स्पष्टतः किसी का नामोल्लेख नहीं है फिर भी स्पष्टतः शकुनिकी ओर संकेत है।

कर्दनम्—कुत्सितः शब्दः। एषा च भिक्षा मम दक्षिणा च "इत्येवं रूप याच्चादैन्यपरः शब्दः। म० म० गणपतिशास्त्री ने इसका अर्थ 'खुशामद' लिखा है। अर्थात् खुशामद मत करो।

कर्दनम् का अर्थ है 'कुत्सितम् याचनम्।'

श्लो० १–३९—ज्येष्ठो भवान्—इस कथन से स्पष्टतः यह पता चलता है कि उम्र की दृष्टि से दुर्योधन पाण्डवों से बड़ा था। किन्तु, महाभारत, आदि पर्व के अनुसार युधिष्ठिर तो कौरवों से बड़े थे ही। कदाचित् भीम भी दुर्योधन से बड़े थे। क्योंकि दुर्योधनका भी जन्म उसी दिन हुआ था जिस दिन भीम ने जन्म लिया था—

'यस्मिन्नहनि भीमस्तु जज्ञे भारतसत्तम,
दुर्योधनोऽपि तत्रैव प्रजज्ञे वसुधाधिप।'–महाभारत, आदिपर्व.

इसी श्लोक के अन्तिम पंक्ति में प्रश्नार्थक दो विकल्प उपस्थित किये गये है–कुटुम्बे तान् धारयिष्यसि ? अथवा–'पण्डवाः मृगैः सह वर्त्तयन्तु। तान् पाण्डवान् कुटुम्बे परिवारे धारयिष्यसि अन्तर्भाव्यपरिपालयसि ? अथवा–पाण्डवाः मृगैः सह वर्तयन्तु = देहयात्रां कुर्वन्तु। यहाँ वृत् धातु का प्रेरणार्थ रूप (वर्त्तयति) है जिसका अर्थ सदा कार्य रत रहना है।

श्लो० ४०—गतमितमवसानम्—इदम् अवसानम् गतम्, अब यह बात समाप्त हो चुकी है। रक्ष्यताम् शिष्यकार्यम्—शिष्यकार्यम् से कौरव और पाण्डव दोनों ही शिष्यों का हितसाधन कीजिए। 'पाण्डवों को 'राज्यांशप्राप्ति

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

रूप' अर्थात् आधा राज्य दिलवाकर हित साधन करें और कौरवों को 'गुरु-दक्षिणादान प्रतिज्ञा' की आपूर्ति करें।

श्लो० ४१—धर्माधिकारवचनेषु शमीभवन्तु—धर्माधिकाराः धर्मोपदेशाधिकारिणः गुरुजनाः, तेषां वचनेषु अर्थात् भवादृशानां महाकुलानां बान्धव-विग्रहोगुरुजनोपदेशैरेव शाम्यन्तीति भावः। इसी तरह का अन्य प्रयोग 'परिष्वङ्गः शमीक्रिया' और नष्टानि कार्याणि शमीकरोति। अविमारक ६–१६ पृष्ठक।

समर्थयितुम्—अनुमोदनम् कारयितुम्, स्वसहायानां सम्मतिं प्राप्तमित्यर्थः।

हन्त विपन्नम् कार्यम्—यह वाक्य 'बालचरित १–१९ में प्राप्त है। यह एकस्वगत भाषण है और हम इसमें मंच प्रदर्शन की आशा करते है। 'आत्मगतम्' सन्दर्भगत है।

यदि दातव्ये राज्ये—राज्ये यदि दातव्ये, जिसका अर्थ है 'राज्यं दातव्यम् चेत्, यहाँ निर्देशन की अस्पष्टता के कारण 'यदि' का प्रयोग आवश्यक नहीं है।

श्लो० ४५—क्षमाक्षत्वे तु भवान् प्रमाणम—राज्यार्द्धदानस्य क्षमा-क्षमत्वे युक्तायुक्तत्वे—तुम्हें अकेले ही इस बात का निर्णय लेना है कि राज्य आधा हिस्सा जो तुम पाण्डवों को दोगे, वह उचित है अथवा अनुचित।

सुभ्रातृताम्—वन्दिते भ्रातुः। पा० ५।४।१५६ इति कपः प्रतिषेधः। शोभनः भ्राता यस्य असौ सुभ्राता, तस्य भावः सुभ्रातृता। भास ने 'सौभ्रात्रम्' शब्द का प्रयोग प्रतिमा १–३० अभिषेक ३–२५ में किया है।

श्लो० ४६—शून्यमित्यभिधास्यामि—ऐसा कोई देश नहीं है जहाँ पार्थ से अधिक शक्तिशाली कोई अन्य वीर हो अथवा–जहाँ राजा युधिष्ठिर राज्य करेंगे वहाँ ऊसर भी ऊपजाऊ हो जायेगा इस तरह की बात महाभारत में भी कही गई है—

> सदा च तत्र पर्जन्यः सम्यग् वर्षी न संशयः
> सम्पन्नसस्या च मही निरातङ्का भविष्यति
> न भयं त्वां विशेत्तत्र यत्र राजा युधिष्ठिरः। महाभारतविराटपर्व २८

श्लो० ४७—श्रुतमिह कुलवृद्धैः—यहाँ तृतीया का प्रयोग कुलवृद्धेभ्यः के लिए प्रयुक्त है। यदिह पृथिव्याम् प्रमाणम् कुलवृद्धमुखात् श्रुतम् अवगतम्। मैंने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

गुरुदेव के हाथ में जल छोड़ दिया है। यह इस दान का प्रमाण है, ऐसा कुल-वृद्धोंने शास्त्रों से जाना है। 'अपनय' तस्मात् जलदानादिकर्म अपनय—अनीति-र्वावञ्चना द्रोणकृतास्मदप्रतारणा यथा वा अन्य एव वा कोप्यनर्थो भवतु जायताम्, नृप—शकुनि के लिए प्रयुक्त है।

श्लो० ४८—**सम्वत्सरद्वादशभिर्न दृष्टाः**—म. म. गणपति शास्त्री ने इसकी व्याख्या की है—द्वादशवर्षभिः करणभूतैः—यहाँ तक की उनकी व्याख्या का तात्पर्य यह है कि—

प्रतिज्ञा यह थी कि बारह वर्षों के वनवास के बाद पाण्डवों को एक वर्ष गुप्तवास में रहना पड़ेगा। इस गुप्तवास की अवधि में यदि वह किसी की पहचान में आ गया तो पुनः बारह वर्षों का वनवास भोगना पड़ेगा। किन्तु कठोर श्रम के बाद भी कौरवों को गुप्तवास की अवधि में पाण्डवों का पता नहीं चल सका। किन्तु, भास महाभारत की इस प्रचलित कथा से पूर्णतः अन-भिज्ञ प्रतीत होते हैं। क्योंकि, इससे पूर्व के पद्य में उन्होंने लिखा है कि 'बारह वर्षों से जिनका पता नहीं चला है—

येषां गतिः क्वापि निराश्रयाणां संवत्सरैर्द्वादशभिर्न दृष्टाः

—पञ्चरात्रम् १, ३३

अच्छलोधर्मः—अच्छलं भिन्नत्वं नाम। अविमारक ४–१२–३३ अच्छलो हि स्नेहो नाम अविमारक ५–४.

श्लो० ५०—**हनूमत्वं गता स्पृहा**—स्पृहा अभिलाषः, हनूमत्वं गता मम इच्छा हनूमत इच्छेवातिविशाला जातेत्यर्थः। हनूमान को भी सीता के निवास स्थान का कुछ भी पता नहीं था 'फिर भी उन्हें जानकी का पता लगाने में सफलता मिली। दूसरी पंक्ति में प्रयुक्त 'येन' शब्द हनुमत् शब्द का ही बोध कराता है। प्रथम पंक्ति में यद्यपि जो शब्द अप्राप्य है फिर भी हनूमत्व के तद्धित रूप में वह प्राप्य है।

कुतो न खलु पाण्डवानां प्रवृत्तिरूपानेतव्या—तो फिर कहाँ से पाण्डवों का पता चले? द्रोण के इस स्वगत प्रश्न का उत्तर भट के शब्दों में मिलता है—'विराटनगरात्' यद्यपि इसने यह उत्तर अन्य उद्धरणों के रूप में दिया है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

यह नाटकीय 'व्याजोक्ति' की एक पृष्ठ भूमि है। नाटकीय तकनीक की दृष्टि से इसे ही 'पताका स्थानक' कहा जाता है।

श्लो० ५३—बालचापलम् शृङ्गस्थानानि वा—बालचापलम् पुच्छ-चालनादिकम्, शृंगस्थानानि शृंगकृतमृत्तिकाखननस्थानानि। 'वा' शब्द अन्तर्निहितमस्ति। यथा वृषभपतयः कूलेषु भ्रान्तानां वत्सानां पुच्छचापलं शृङ्गखातभूमिश्च ज्ञास्यन्ति तथैवाहमपि भीमस्याचरितं कर्म निश्चितं जानामि।

काले ज्ञास्यामि—काले पञ्चरात्रावसाने। उन्हें विश्वास नहीं है कि संवाद-वाहक पाण्डवों का समाचार पाँच रात के भीतर ला सकता है।

ब्राह्मणार्जवबुद्धे—सरलमते, ब्राह्मणतया सरलस्वभाव कपटान-भिज्ञ। द्रोण के इस सम्बोधन के पूर्व हम इस वाक्य को देखें—द्रोणः—(अप-वार्य) भो गाङ्गेय, प्रियशिष्यः खलु मे तत्रभवान् विराटेश्वरः, किमर्थम् तस्य गोग्रहणम्। इसके उत्तर में उक्त वाक्य कहा गया है जिससे इस कथन की उप-युक्तता सिद्ध हो जाती है।

श्लो० ५५—इष्ट-गोग्रहणे स्थितम्—तेषां पाण्डवानां कृतज्ञत्वमस्ति, विराटेनोपकृताः पाण्डवाः विराटे आक्रम्यमाणे कथमितरस्थाः स्थातुं न शक्नु-वन्ति, तत्प्रत्युपकारप्रवृत्तेर्दुर्दमत्वादिति भावः। एवम् हि अस्माकं इष्टम् पाण्डव-वार्त्तोपलब्धि रूपम् अत्र गोग्रहणे स्थितम्, अनेन गोग्रहणेन नः समीहितसिद्धि-सम्भावना सन्निकृष्यत इति।

सज्जाः खलु रथा नगरप्रवेशाभिमुखाय—सज्जाः योजिताश्वाः, नगर-प्रवेशाभिमुखाय—हस्तिनापुरप्रवेष्टुमानीतो रथः, राजा यज्ञे नगरात् बहिः, तन्ने रथ आगत इति।

वत्सगान्धारराज—अस्मिन् गोग्रहणे तव खलु प्रथमः रथः इस कथन का अर्थ है गुरु द्रोण शकुनि से कह रहे हैं कि हे गान्धारी नृपति गोग्रहण में आपका सारथी अग्रसर हो। अर्थात् शकुनि रथ से प्रस्थान कर रहा है। किन्तु, इसी अंक के श्लोक संख्या ५० में शकुनि ने स्वयं कहा है कि मेरे लिए हाथी लाओ—'हस्ती ममानीयताम्'। इन दोनों कथनों में विरोध है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

द्वितीय अङ्क

गोपालों के इस दृश्य की तुलना 'बालचरित' के तृतीय अंक के प्रारंभिक दृश्य के साथ की जा सकती है।

अहीनवत्साः—न हीना अहीनाः, अहीना वत्सा यासां ताः अहीनवत्साः। अहीनवत्साः की दूसरी व्याख्या 'स्वस्तिमन्तः' अथवा—'अनपेतः' भी की जा सकती है।

आ अन्तु—इसे 'आ अन्तु' आयान्तु होना चाहिए। म० म० गणपति शास्त्री ने इसकी व्याख्या—आअन्तुं आगन्तुं सज्जीकृतम्' के रूप में की है।

किदमङ्गलमोदआ—इससे सुन्दर 'किदमङ्गलामोदा' प्रयोग है। कृतं मङ्गलम् आमोदश्च यैस्ते। यहाँ 'मङ्गल' का अर्थ नवीन वस्त्र एवं आभूषण से है जिससे वे सजे सजाये हैं, और 'आमोद' का अर्थ उसके माला और सुगन्धि से है। अथवा हम यों कह सकते हैं कि 'मंगल' का अर्थ शुभ होता है और आमोद का अर्थ 'प्रीति' खुशी या प्रसन्नता 'कृतः मङ्गलः आमोदः यैस्ते—आमोद यहाँ खुशी और प्रसन्नता के लिए प्रयुक्त है। यथा—'विवाहामोदसंकुले राजकुले। स्वप्नवासवदत्ता, ३–३।

एषो वा अषो पुक्खलुक्खं इत्यादि—इस अपशकुन की सूचना के लिए द्रष्टव्य—

रूक्षस्वरं वाशति वायसोऽयम् एवं शुष्कवृक्षस्थितोध्वांक्ष आदित्यमुखस्तथा—मृच्छकटिक ९–१०–११.

एषु ज्येष्ठं गच्छिअ—यहाँ ज्येष्ठम् का प्रयोग ज्यैष्ठयम् के अर्थ में हुआ है। अर्थात् वयोधिकत्वकृतं सत्कारमासाद्य व्याहरामि। मैं उनमें सबसे बड़े का अभिनय करूँगा।

दिवाचन्द्रप्पभापण्डुल इत्यादि—पण्डुलजोवगुण्ठिदमण्डलुं—पाण्डुरजोवगुण्ठितमण्डलः—दिवसनिशाकरस्य कान्तिरिव धवलपीतवर्णयद्रजस्तेनावगुण्ठितं व्याप्तम् छन्नं मण्डलं यस्य तादृशोयं सूर्यः। अस्ति च नास्ति च, आकारमात्रेण विद्यते प्रभया पुनर्नास्ति, सन्नपि न प्रकाशते इत्यर्थः। तात्पर्य यह है कि गोपबाल भयाक्रान्त होने के कारण अपनी आशंका में सूर्य के शतशतभयावह आँखों को आकाश में देखता है जो धूल रूपी बादल की घूँघट से झांक रही हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

पक्कणं—अमरकोष के अनुसार—पक्कण का अर्थ शवरालय है। किन्तु, यहाँ इस शब्द का प्रयोग गोपालक की कुटिया के अर्थ में हैं। गोपालक अवर जाति होने के कारण निम्न कोटि में हैं अतः उनकें लिए 'पक्कण' शब्द का प्रयोग यहाँ कवि को अभीष्ट है। डॉ० पुलस्कर ने 'पक्कण' को चाण्डाल का निवास स्थान माना है और इसकी व्याख्या करते हुए लिखा है कि ये गोपालक अपने कुटीर से बाहर उत्सव मनाने के लिए ज्यों ही निकले कौरव की सेना से आक्रान्त गायों को देखकर बुरी तरह घबड़ा कर चिल्लाने लगे। कुछ ही दूर पर स्थित 'पक्कण' निवासी चाण्डालों को आत्मरक्षा के क्रम में पुकारने लगे।

दस्युकर्मप्रच्छन्नविक्रमैः—पराक्रममप्रदर्श्यदस्युभावमवलम्ब्यलुण्ठनकृत्ये-प्रवृत्तास्तै। अपने पराक्रम को छिपाकर लुटेरों को तरह लूटकर्म में निरत होकर लोगों को आतङ्कित कर रहे थे।

श्लो० १—द्रुतैश्च वत्सैः—दस्युकृतेनोपद्रवेण पीडिताः वत्साः द्रवन्ति, गोगणाः व्यथामनुभवन्ति, वलीवर्दाश्च दस्यूनां दर्शनमात्रेण त्रस्तानना जायन्ते। 'आकुलाकुलम्' मे नित्यवीप्सयोः पा० सू० ६।१।४ से नित्य द्वित्व हुआ है।

श्लो० २—गोधा—इसकी व्याख्या 'ज्याघातवारणम्' के रूप में की गई है। वस्तुतः गोधा चमड़े की उस पट्टी का नाम है जो प्रत्यञ्चा के झटके लगने से होने वाली पीड़ा से बचने के लिए बायीं कलाई पर लगाई जाती है।

कल्पितस्यन्दस्था—यहाँ कल्पित का अर्थ पूर्ण सुसज्जित है।

जन्मनक्षत्रक्रिया—यहाँ क्रिया का तात्पर्य पूजा के ढंग से है।

पुण्याहावसाने—धार्मिक कृत्य की समाप्ति को पुण्याहवाचन या स्वस्तिवाचन कहा जाता है। यह शुभ अनुष्ठान का एक अन्तिम चरण है। यज्ञसमाप्ति के बाद पुरोहित शुभाशीर्वाद का जो प्रयोग करते हैं वह भी पुण्याहवाचन के अन्तर्गत ही है।

अतिपाति कार्यम्—विलम्बासहिष्णुकार्यम्,। इसी तरह इस शब्द का प्रयोग अभिषेक नाटक के तृतीय अङ्क में दर्शनीय है।

श्लो० ३—मा तावत्—इति गर्हायाम्—लज्जा के रूप में इस समूह के नाटकों में यह शब्द प्रयुक्त हुआ है। 'कराणि' का प्रयोग यहाँ 'अन्नविशेषान्' अर्थात् यथेच्छ भोजन के रूप में हुआ है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रविश्य—मञ्च निर्देशन के लिए प्रयुक्त यह शब्द यहाँ अनावश्यक है, जबकि भट पहले से ही मञ्च पर उपस्थित है।

एष समासः—इस शब्द का प्रयोग कवि ने इसी प्रकार अपने कई नाटकों में किया है। यथा—अविमारक २–९[५], प्रतिज्ञा २–९[१]।

श्लो० ५–रणशिरसिगवार्थे—इसी तरह का श्लोक भास ने 'कर्णभार' में भी लिखा है—

हतोऽपि लभते स्वर्गं जित्वा तु लभते यशः।
उभे बहुमते लोके नास्ति निष्फलता रणे॥

ऐसे वर्णन के लिए कवि का मूल स्रोत श्रीमद्भगवद्गीता है—

हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्
तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चयः।

मोक्षयित्वा—अर्थात् गाः। यहाँ गाः कर्म के रूप में प्रयुक्त है।

उन्नीतसंतापाः—प्राप्तदुःखाः अर्थात् हमलोग पर्याप्त कष्ट में थे। उन्नीतः उपचितः सन्तापः येषां ते तथाभूताः। यहाँ म० म० गणपति शास्त्री का कहना है कि—वयमुपनीतसंतापाः संवृत्ताः। परोक्षमपि—अप्रत्यक्षम्। क्योंकि हमें पाण्डवों के प्रति अप्रत्यक्ष सहानुभूति है फिर भी प्रत्यक्ष रूप में हम कौरवों के साथ हैं।

श्लो० –अर्थित्वादपरिश्रान्तः—भगवतः युधिष्ठिरस्य परदोषानभिधायकत्वस्य निश्चये तत्सकाशे जिज्ञासा प्रकाशनमनुचितमिति चेत्तत्राह—अर्थित्वात् प्रयोजनशालित्वात् अपरिश्रान्तः-अपने स्वभाव से भगवान किसी का दोष बतायेंगे नहीं, फिर भी मुझे जानकारी प्राप्त करनी है, अतः मैं तो उनसे पूछूँगा ही।

श्लो० ६–सानूकर्षाः—अधोधरकाष्ठयुक्ताः क्रियन्त। रथों पर जुए डाल दिये जाँय। अनुकर्ष शब्द महाभारत में अनेकशः प्रयुक्त है। अनुकर्ष शब्द की व्याख्या की गई है अनुकर्षः युद्धविमर्दे यस्यंकस्यचित् रथावयस्य नष्टस्य प्रतिसमाधानार्थम् यद्रथस्य अधोदारुवध्यते तत्। अनुकर्षोरथाधस्यदारूणीति—मेदिनी। इसका अर्थ रथ की धुरी है। 'रथ की धुरी कस दी जाय।' सानुकर्षाः—उपसर्गस्य पा० ६।३।१२२, सूत्र से दीर्घ विधान किया गया। यथा—सानूकर्षाः सतूनीराः सवरूथाः सतोमराः। महाभारत, उद्योगपर्व १५५.३।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

न खलु आत्मन्यस्तम्—मुझे अपने लिए कोई भय नहीं है। मैं अपने चपल भाईयों के लिए डरता हूँ, ऐसे अवसरों पर वे अपने आप को छिपा न सकेंगे और गुप्तवास का रहस्योद्घाटन अनायास हो जायेगा।

श्लो० ९-एकोदकत्वम्—समानोदकत्वसम्बन्धः-एकम् उदकं निवापोदकं येषां ते एकोदकाः, तेषां भावः एकोदकत्वम्। दाह क्रिया के अवसर पर जो समान रूप से तिलाञ्जलि देने के हकदार हैं तथा पवित्र श्राद्ध के अवसर पर सपिण्ड के अधिकारी हैं ऐसे लोग सभी समनोदक हैं।

तेषामुत्सुकः—उत्सुकः का प्रयोग यहाँ विचारणीय है। मैं उनके लिए बहुत दुःखी हूँ। तेषु विषये दुखितोऽहम्। दुश्चेष्टमानेषु विषीदामि।

आत्मगतम्—यह शब्द वाक्य के प्रारम्भ में प्रयुक्त होना चाहिए। साधुर्धपितेनापि के क्रम में इसीलिए म० म० गणपति शास्त्री के पाठ में 'प्रकाशम्' को हटा दिया गया है।

श्लो० १३—रणातिथिः—इस तरह का प्रयोग अभिषेक नाटक ४-२२ में भी द्रष्टव्य है—

आगतोऽहं न पश्यामि द्रष्टुकामोरणातिथिः।

श्लो० १४—रिपूणामित्यादि—महाभारत के अनुसार गोग्रहण के समय महाराज अपनी राजधानी में उपस्थित नहीं थे। वे त्रिगर्तों को समाप्त करने में लगे थे। फिर पता नहीं भास ने किस उद्देश्य से विराट को इस राजधानी में उपस्थित दिखलाया है।

श्लो० १८—स्वचक्रोद्धतः इत्यादि—स्वचक्रैः उद्धतं रेणूनां दुर्दिनं येन तम् क्षणैः।

श्लो० १९—भग्नो गहनलोभेन—इसकी जगह त्रिवेन्द्रम् संस्करण में 'वाहनलोभेन' है। किन्तु यह संस्करण कहीं उपलब्ध नहीं है।

श्लो० २१—नदीस्रोत इवाविद्धः—इसी तरह इस शब्द का प्रयोग विक्रमोर्वशीय ४,२८ में है। यथा-'यथाविद्ध यातिस्खलितमभिसंधाय बहुशः।'

श्लो० २२-स्रवति—इसका प्रयोग प्रेरणार्थक क्रिया के रूप में यहाँ है। 'बहने की प्रक्रिया', अन्तर्भावितण्यन्तार्थत्वादिति।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्लो० २३—अक्षयतूणित्वम्—अक्षये तूण्यौ यस्य सः अक्षयतूणिस्तस्य भावः तत्त्वम्। यह अर्जुन या उसके धनुष की ओर संकेत करता है जिसका तरकस कभी खाली नहीं होता है। यह अक्षय तूणीकत्व का संक्षिप्त रूप है। अन्त में इस सामासिक शब्द के स्वरतूणिः के संयोग के कारण ही कप् प्रत्यय का 'क' लुप्त है।

श्लो० २४—किमिदमिति—इस शब्द में चिन्तयन्ति का समावेशकर हम अर्थ कर सकते हैं—यह क्या हो रहा है ऐसा सोचकर चकरा गये हैं।

श्लो० २६—सौभद्र स्वशरैः—उत्तरः कुमारः किं स्वशरैः सौभद्रं न घर्षयति, अवश्यं जयतीति भावः। पितुः प्रत्ययात् अर्थात् अर्जुनस्य जगदेकवीरताख्यातेः भीतः शङ्कितः सन् संसृष्टोऽपि अभिमन्युना सहकृतमैत्रीकोऽपि सौभद्रवयसा समानं वयः रक्षति। समानवयसोर्हि, तयोर्मैत्रीभावो जायमानो वयः कारणक एव संभवतीति भावः। यो राजकुमार उत्तरः परशुरामेण सह युद्धेऽपि अप्राप्तक्षतं भीष्मं तथा मन्त्रायुधम् द्रोणाचार्यमेवं कर्णं जयद्रथम् तथाऽन्यान् बहून् नृपतीन् पराभूतवान् तस्यैव कुमारस्याभिमन्युना सह जायमानं सख्यं तयोस्तुल्यवयसोर्युक्तमेव, समवयसोर्हि सख्यस्य स्वाभाविकत्वम्। अतएव च सख्यादभिमन्युं नाभिभवति कुमार इति पं० रामचन्द्र मिश्रः।

भीष्मं रामशरैः—महाभारत उद्योगपर्व १७९–१८६ में वर्णन है कि एक बार भीष्म का युद्ध परशुराम के साथ हुआ था जिसमें परशुराम ने अपनी हार स्वीकार की थी। यहाँ इसी कथा की ओर संकेत है।

श्लो० २७—आलम्बितो भ्रमति—यहाँ सारथी अर्जुन (बृहन्नला) की असमर्थता का वर्णन है। सारथी रथ को आगे पीछे इस तरह घुमा रहा है जैसे वह आक्रमण का एकमात्र बहाना कर रहा है, वस्तुतः उसे किसी पर आक्रमण करना है ही नहीं। अतः अभिमन्यु की मार से अपने को बचाते हुए रथ को नचा रहा है।

योग्योपदेशमिव—योग्यायाःउपदेशम्। योग्या का यहाँ अर्थ 'अभ्यास' से है। अभ्यास का तात्पर्य रथचर्या से है।

अवजितम् गोग्रहणम्—गायों को लूटने वाले लुटेरे पराजित हो गये हैं, यह अभिव्यक्ति अनूठी है। यह भी संभव है कि अवसितम् की जगह अवजितम्

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पाठ हो गया हो। अवसितम् कहने पर अर्थ परिवर्त्तित होकर ध्वनित होता है। 'अब गोग्रहण का युद्ध समाप्त हो गया।

दृष्टपरिस्पन्दानाम्—परिस्पन्दः नायकत्व का बोधक है। यथा चारुदत्त २–२०४ योगपुरुषाणां..... पुस्तकमारोपयति। इसी तरह अभिषेक ४–१८ क्रमान्निवेश्यमानासु सेनासु वृन्दपरिग्रहेषु परीक्ष्यमाणेषु पुस्तकप्रामाण्यात् कुतश्चिदपि अविज्ञायमानौ द्वौ वनौकसौ गृहीतौ।

श्लो० २८—श्लाघनीयेन कर्मणा—इसकी तृतीया विभक्ति 'हेतौ तृतीया' के कारण ही है। 'अप्रतिम साहस के कारण घायल। इसका अर्थ है 'श्लाघनीये कर्मणि ताडितस्य'।

श्लो० २९—गाण्डीवेन—.....प्रतिस्पर्धितमासीत्—आततगुणेन (भवता) गाण्डीव धनुष पर मौर्वी चढ़ाने में मुझे कुछ देर तक कष्ट हुआ। बाण को पकड़ने और छोड़ने में दृढ़ता नहीं रही, कुछ देर तक धानुष्क की स्थिति में पटुता का अभाव रहा। स्त्री वेश में रहने के कारण मुझे ये सारी वस्तुएँ अभिनव प्रतीत होती रही। पर शीघ्र ही मेरा पुरुष स्वभाव मुझे स्मरण हो आया।

श्लो० ३०—लज्जायमानेन—लज्जा से 'सुखादिभ्यः क्यङ् कर्तृवेदनायाम्' पा. ३।१।१८ से क्यङ् करने पर लज्जायमान रूप बना—अनेन स्त्रीवेषेण हेतुना लज्जामनुभवतेति।

यात्रा तु तावत्—यहाँ यात्रा का अर्थ संचार है। अर्थात् शत्रुओं की यात्रा बाण वर्षा में होने लगी। कलुषः—लहूलुहान।

श्लो० ३१—जित्वापि गाम्—यहाँ गाम् = गाः—जातावेकवचनम्। ये विराट के सभी गायों को लौटा लाये।

श्लो० ३२—त्रिदण्डधारी—त्रयाणाम् दण्डानां समाहारः त्रिदण्डम्, पात्राद्यन्तस्य न' इत्यनेन स्त्रीत्वनिषेधः। त्रिदण्डत्वेन—

वाग्दण्डोऽथ मनोदण्डः कायदण्डस्तथैव च।
यस्यैते निहिता बुद्धौ त्रिदण्डी स निगद्यते॥ मनु० १२।१०।

श्लो० ३३—परिभूतपूर्वकम्—पूर्वं परिभूतं परिभूतपूर्वम्। कुत्सायां कन्—परिभूतपूर्वकम्। पूर्वतिरष्कृत।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संस्कृतमभिधीयताम्—बृहन्नला स्त्री पात्र होने के कारण प्राकृत में बोल रही थी, किन्तु, रणरूप ओजस्वीकर्म होने के कारण उसके वर्णन में संस्कृत भाषा में बोलने को कहा गया। इस सम्बन्ध में दर्शनीय हैं—

कार्यतश्चोत्तमादीनां कार्यो भाषाव्यतिक्रमः। दशरूपकम् तथा—कालावस्थान्तरकृतं योज्यं पाठ्यं तु संस्कृतम्—भरतमुनि।

वृष्णिपाण्डवनाथस्य—वृष्णयः पाण्डवाश्च नाथा यस्य तस्य। लोग ऐसा सोच सकते हैं कि अभिमन्यु श्रीकृष्ण एवं पाण्डवों द्वारा संरक्षित है। अतः इन दोनों के भय से विराट ने कैदी अभिमन्यु का इतन सम्मान किया।

यादवीपुत्रः—अभिमन्युः। यादवी सुभद्रा के लिए प्रयुक्त हुआ है।

श्लो० ३९—स्वविभवैः—यहाँ 'स्व' का अर्थ विवादास्पद है। स्व शब्द का प्रयोग पाण्डवों के लिए भी हो सकता है और 'हमारे लिए' भी हो सकता है। यदि इसे पाण्डवों के लिए प्रयुक्त मानें तब अर्थ होगा 'पाण्डव अपनी श्रेष्ठता के कारण हमारे मित्र है।' यदि स्वशब्द का प्रयोग 'नः' के लिए हुआ है तब अर्थ होगा—सम्पूर्ण सम्पदा के साथ हमारे लिए वे अतिथि के रूप में पूज्य हैं।

श्लो० ४०—लज्जते ह्येष पुत्रम्—पुत्रमुद्दिश्य लज्जते। मेरे सामने पुत्र से मिलने में वह लज्जा का अनुभव करता है। यहाँ 'लज्ज्' धातु का सकर्मक प्रयोग अनियमित है।

श्लो० ४२—तं च श्रमं प्रथमम्—यहाँ श्रम शब्द का प्रयोग 'तं श्रमं' और 'प्रथमं श्रमम्' के रूप में हुआ है। प्रथम के अनुसार पाँच व्यक्तियों को अपने कंधे पर भार लेने के अर्थ में है तथा यहाँ इसका प्रयोग किसी एक व्यक्ति को रथ से उतारने के अर्थ में है।

श्लो० ४३—तनिमार्जितोदरः—तनिम्ना अर्जितम् उदरं यस्य। यहाँ अर्जितम् का अर्थ संस्कृतम् है यथा 'सम्पादितसौष्ठवम्।' 'अर्ज अतियत्ने' चुरादिः। स्थिरोन्नतांसोरुमहान्—स्थिरोन्नतांसश्च ऊरुमहान् ऊर्वोर्महांश्च। विशेषणोभयपद कर्मधारयः। यह एक अनियमित यौगिक है।

भुजैकयन्त्रितः—एकभुजयन्त्रितः। यहाँ एक का परनिपात अनियमित है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्लो० ४४—करेणुशोभाभिरिवार्पितो गजः—यहाँ 'शोभा' का अर्थ है आभूषण। अर्पित का अर्थ है संयोजितः। ऋ धातु का णिजर्थक भूतकालिक क्रिया है।

श्लो० ४५—पूर्वयुद्धे—इदम् प्रथमे युद्धे अर्थात् 'अपने प्रथम युद्ध में हार' को बात जानकर एवमुद्दिश्य वासुदेवः रुष्यते। यहाँ रुष्यते का आत्मनेपद अनियमित है।

भीमसेन ने व्याकुल होकर 'अर्जुन' का नाम लेकर ही उन्हें सम्बोधित किया। आवेश में वे इस बात को भूल गये कि वे छद्मरूप में अज्ञातवास कर रहे हैं। अर्जुन ने भीम के इस आवेश को ठीक से समझा और भीम द्वारा की गई गलती को सुधारते हुए भीम की बात को बीच में काट कर कहा हाँ हाँ यह अर्जुन पुत्र ही है। इस तरह बीच में ही भीम की बात को काटते हुए अर्जुन ने उन्हें याद दिलाना चाहा। इसतरह परिचय दिलाना समय से पूर्व घातक सिद्ध हो सकता है।

श्लो० ४६—इष्टापत्त्या—द्रौपदी के साथ सम्बन्धित है। इष्टापत्त्या में 'अनचिच' पा० ८।४।४६ के अनुसार तकार को द्वित्व हुआ है। यहाँ 'इष्टापत्ति' शब्द दोनों ही स्थिति से सम्बद्ध है। पुत्र का शत्रु के हाथ में सौपना अनुचित है, पर इसे केवल इसलिए यहाँ ले आया हूँ, कि इसे देखकर दुःखिनी द्रौपदी को सान्त्वना मिले।

श्लो० ४७—इहायं समदाचारो ग्रहणं परिभूयते—यह दुहरे प्रश्नों से सम्बन्धित वाक्य है क्या यहाँ यही शिष्टाचार है? क्या मैं बन्दी होने के कारण अनादरित हो रहा हूँ? अथवा—क्या मैं इस केद में हूँ, इसीलिए तुम मुझे अपमानित करोगे?

श्लो० ४८—पितृवदाक्रम्य—तुम मुझसे इस तरह बातें कर रहे हो जैसे मेरे पिता हो मेरे साथ तुम्हारा व्यवहार या वार्त्तालाप ऐसा हो रहा है जैसे कोई पिता अपने पुत्र से बातें कर रहा हो।

संसृष्टः—सम्बन्धी—'तुम्हारे स्वजन' यह अभिमन्यु की व्यङ्ग्योक्ति है। क्योंकि वे इस बात को बिल्कुल पसंद नहीं कर रहे थे कि श्रीकृष्ण जैसे महापुरुष और सुभद्रा जैसी उसकी माँ के सम्बन्ध में नाम लेकर या सम्बन्धी की

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तरह कोई अदना आदमी इस तरह प्रश्न पूछे। अतः वे जलभुनकर कहते हैं हाँ, हाँ वे तुम्हारे सम्बन्धी सकुशल हैं।

हस्यते—इसका 'भावे प्रयोगः' होना चाहिए। भवद्भिः हस्यते मां (उद्दिश्य इति शेषः)।

श्लो० ५०—अलमात्मस्तवं कर्त्तुम्—यहाँ कर्त्तुम् का प्रयोग नकारात्मक अव्यय अलं के साथ अनियमित है। इसे 'अलंकृत्वा' होना चाहिए।

श्लो० ५१—सरथतुरगदृप्तनागयोधे—रथैः तुरगैः दृप्तनागैः योधैश्च सहिते गच्छति 'सैन्ये' या युद्धरङ्गे अन्तर्निहित है। इन नाटकों में 'योध' की जगह बहुधा 'योध' शब्द प्रयुक्त हुए हैं।

श्लो० ५५ सहजौ मे प्रहरणम्—यह विचार अनेक नाटकों में प्राप्त है यथा—अयं तु दक्षिणो बाहुः आयुधं सदृशम् मम। मध्यम व्यायोग १.४२. और वयमपि च भुजायुधप्रधानाः। अविमारक २–११ गिरीतटं कठिनांसावेव बाहू ममैतौ प्रहरणमपरं तु त्वादृशां दुर्बलानाम् ३–१२, इसी प्रकार मृच्छकटिक ३–१६ भीमस्यानुकरिष्यामि शस्त्रं बाहुर्भविष्यति।

तस्यैतत्सदृशं वचः—यथा इदमुपपन्न पितुर्मे भीमसेनस्य मध्यमव्यायोग १–४२ मध्यमस्तातः—यह शब्द एक प्रकार की उत्सुकता प्रदान करता है। महाभारत के अनुसार भीम युधिष्ठिर के बाद जन्म लिए थे। फिर भी उन्हें मध्यमतात अभिमन्यु ने क्यों कहा। मध्यम तो पाँचो पाण्डवों के बीच अर्जुन ही थे। फिर भीम के लिए मध्यम शब्द का प्रयोग चौंकाने वाला है।

अनन्तरा वयं ब्राह्मणेषु—यद्यपि इसका उत्तर उनके लक्ष्यों पर था, फिर भी वे एक ब्राह्मण के साथ उलझना नहीं चाहते थे। इस नाटक में ब्राह्मणों को अत्यधिक प्रतिष्ठा दी गई है।

श्लो० ५७—योक्त्रयित्वा—बद्धं विधाय योक्त्रवन्तं कृत्वा। योक्त्र उस डोरी का नाम है जिससे गाड़ी के जुओं पर बैल को बाँधा जाता है। योक्त्रयित्वा अर्थात् योक्त्रवन्तं कृत्वा यथा—योक्त्रयामास बाहुभ्यां पशुं रशनया यथा। महाभारत तृ० पर्व २२–६१ तुलयित्वा हल्के पन के साथ।

असहयं कर्म—असहनीय दृश्य, भयावह कर्म। नीतः कृष्णः तदर्हताम्। श्रीकृष्ण ने कंस का बध कर दिया अत्याचारी कंस जरासंध का जामाता था।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उसने कृष्ण से बदला लेने की प्रतिज्ञा की। उसने सम्पूर्ण यादव वंश का विनाश करने का शपथ लिया था। अपने इस नीच उद्देश्य की पूर्त्ति के लिए उसने १८ बार श्रीकृष्ण को मथुरा में घेरा था। अन्ततः श्रीकृष्ण उससे बचकर मथुरा छोड़कर द्वारिका भाग आये थे। उससे बदला लेने की बात श्रीकृष्ण सोच ही रहे थे कि भीम ने उसकी हत्या कर दी। अतः उसी दिन से अतदर्ह= जरासन्धवधानर्ह, बनाये गये।

श्लो० ५८—न ते क्षेपेण रूष्यामि—इस श्लोक के अपराद्ध का विश्लेषण करने से—'अहम् कथं तिष्ठति यातु इति उक्त्वा किं नापराद्धः (भवेयम्) क्या मै क्रोद्ध न करूँगा यदि कहूँ 'वह कैसे खड़ा है ? (मेरी उपस्थिति में) उसके साथ अलग हट जाओ। इसी की व्याख्या दूसरी तरह से भी की जा सकती है "क्या" कहते हुए, क्या मैंने तुम्हें क्रुद्ध नहीं किया ? 'किमुक्त्वा नापराद्धोऽहम्' अथवा—यह मैं कैसे कह सकता हूँ—'तुम जा सकते हो' यहाँ तक कि जब तुम स्वयं यहाँ खड़े हो। तिष्ठति (त्वयि) कथं यातु इति (ब्रवीमि) लेकिन यह एक विचित्र प्रयोग है। इसी तरह प्रतिमा नाटक के चतुर्थ अङ्क के श्लोक ५ में हम देखते हैं—भक्तिमान् आगतः कश्चित् कथं तिष्ठतु यात्विति। प्रत्युत यहाँ तिष्ठतु की जगह तिष्ठति का प्रयोग होना चाहिए। 'कथं तिष्ठतु यातु इति किमुक्त्वा नापराद्धोऽहम्। क्या मैं कह सकता हूँ 'खड़े रहो' या मैं कह सकता हूँ 'चले जाओ' क्या ऐसा कहकर मैं तुम्हारे विषय में अपराधी नहीं साबित होऊँगा ?

श्लो० ६०—मिथ्याप्रशंसा इत्यादि। इस श्लोक की प्रथम पंक्ति की व्याख्या करें—येषां तु मिथ्यावचनेषु भक्तिः (तेषां अन्तर्निहित है) मिथ्या प्रशंसा खलुनाम कष्टा। यहाँ उन बन्दियों चारणों या भाटों की ओर संकेत है जो मिथ्यास्तुति के अभ्यस्त हैं। वाचानुवर्त्ती—वाङ्मात्रेण तद्वचनमङ्गीकुर्वन् मैं भी मुख से उनकी प्रशंसा करता हूँ पर, हृदय से लज्जित हो रहा हूँ।

इदमाख्यास्यते—आख्यास्यते, की व्याख्या आगे के श्लोक में 'किणम्' के साथ है। 'तुम्हारे असली परिचय का रहस्योद्घाटन इस हाथ पर के चिह्न से हो जायेगा। 'किण' शब्द पुंलिंग है। पर, यहाँ इसका प्रयोग नपुंसक लिंग की तरह हुआ है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्लो० ६४–सन्निरोधविवर्णत्वात्—'दबाव के द्वारा रङ्गहीन करना।' ठीक तीर की जगह। गोधास्थानम् अर्थात् मणिबन्ध पर।

श्लो० ६९–यस्त्रयोदशवर्षान्ते—यत्तद् द्वादशवर्षान्ते, यह वर्णन प्रथम अङ्क के श्लोक ४८ एवं द्वितीय अङ्क के श्लोक ६३ के अनुरूप है।

उत्तरा सन्निकर्षस्तु मां बाधते—उत्तरा के साथ यह घनिष्ठता मेरे लिए कष्टप्रद है। यह सोचकर विराट हृदय से दुःखी थे कि अन्तःपुर में अर्जुन ने उत्तरा की एकान्त घनिष्ठता प्राप्त की है। साथ ही उत्तरा के चरित्र के सम्बन्ध में भी वे संदिग्ध हो उठे।

गोग्रहणविजयशुल्कार्थम्–गोग्रहण विजय एवं शुल्कं तस्मै। गोहरण युद्ध में अर्जुन ने विजय प्राप्त की थी। इसके उपलक्ष्य में विराट ने अपनी पुत्री उत्तरा को बधू के रूप में उन्हें समर्पित किया। यह उत्तरा गोग्रहणविजयशुल्क के रूप में समर्पित की गई।

एतदवनतं शिरः—युधिष्ठिर ने बड़ी गहराई से विराट के कथन पर चिन्तन किया। अर्जुन के चरित्र पर भी कोई संदेह कर सकता है, यह सोचकर ही उन्होंने कहा मेरा शिर झुक गया।' पाण्डव अपने चरित्र के लिए सब दिन 'उच्चैः शिरस' रहे हैं। वे अपने शिर सदा ही ऊँचा रक्खे हैं। लेकिन, यह काम मेरे लिए उचित नहीं कहा जा सकता है। युधिष्ठिर ने एक सामान्य बात पर बड़ी गहराई से चिन्तन किया है।

तृतीयोऽङ्कः

श्लो० १—परिभूय पाण्डवान्—अन्यत्र–परिभूयबान्धवान्। कुरुभिर्न रक्षितः। गणपतिशास्त्री 'न रक्षितः' को एक यौगिक शब्द मानते हैं। नञर्थस्य न शब्दस्य सुप्सुपेतिसमासः। क्रियतां व्यपत्रपा—गणपतिशास्त्री ने इसकी व्याख्या की है—व्यपत्रपा लज्जा क्रियताम् अनुभूयताम् अर्थात् कुरुभिः।

श्लो० २–रणपटुरपनीतः–पाठान्तर, रणभुव उपनीतः। देवतैः शरैः—देवतासंबन्धिभिः शरैः दैवी बाणैः।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

पुरुषसारम्—पुरुषश्रेष्ठम्। मजबूत आदमी। मनुष्यों में सर्वोच्च। यावदस्त्रं बलं वा। वाक्य बड़ा ही जटिल है। यावत् अस्त्रं और बलं को संपुष्ट करता है और इसका अर्थ लगाया जाता है कितना और क्या? अतः कथय क्रिया के तीन कर्म हैं—पुरुषसारम्, यावदस्त्रम्, और बलम् च। मुझसे कहो, यह शक्ति कौन है? और इसका अर्थ क्या है? इस श्लोक की अन्तिम पंक्ति का अर्थ है—'उसको ललकारने के लिए बलवान् दूत को उसके पास भेजता हूँ।' लेकिन, संवाद-वाहक का बलवान् होना क्यों आवश्यक है? और संवादवाहक को ही क्यों भेजा जाय? क्यों न शत्रु पर सीधे आक्रमण ही कर दिया जाय। अतः महामहोपाध्याय गणपतिशास्त्री का कथन है कि 'बलवत् इषुदूतान्' मूल अर्थ के रूप में मैं तेजस्वी बाण को शत्रु के पास भेजूँगा जो वहाँ मेरा संवादवाहक का काम करेगा।

श्लो० ३—**भग्नापयानेष्वनभिज्ञदोषः**—भग्न का अर्थ यहाँ 'पराजय' लिया गया है। इस अर्थ में भग्न शब्द का इस नाटक में अनेकशः प्रयोग हुआ है। यथा—नृपाः भीष्मादयो भग्नाः २–४१ अतः अभिव्यक्ति का अर्थ पराजित व्यक्तियों के अपमान से है। अनभिज्ञदोषः दोषानभिज्ञः, खतरे से लापरवाह। फिर भी गणपतिशास्त्री ने इसकी व्याख्या की है—अनभिज्ञः इति एवं रूपो दोषो यस्य सः अथवा—अनभिज्ञत्वं अनिपुणत्वं दोषो यस्य सः इति।

मोक्षयामि—मोचयामि के अर्थ में मोक्षयामि का यहाँ प्रयोग है। यथा—अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः। भगवद्गीता।

श्लो० ४—**ज्ञातिभेदः**—दायादवैरम्। गृहविरोध। वक्तृभिः—विद्वद्भिः बुद्धिमान् अथवा दूषकैः—मेरानिन्दक। मयि तु दोषः—मयि एव अथवा तु का अर्थ विशेषण माना जा सकता है—मयि विशेषेण—खाकसर मेरे ऊपर है।

श्लो० ५—**मा तावत् स्वजनभयात्**—मा तावत् की व्याख्या 'स मोक्षयितव्यः' के रूप में होनी चाहिए। उसे दुर्योधन को ही मुक्त कराना चाहिए। न केवल स्वजनों के भय से अथवा उसके शिशु त्व के कारण प्रत्युत वह तुम्हारे (दुर्योधन) के लिए ही इतनी बड़ी विपत्ति से गुजरा है। और, हम लोग उसे बचाने में असमर्थ रहे। अपनी प्रतिष्ठा को कायम रखने के लिए भी उसे मुक्त कराना आवश्यक होगा।

श्लो० ६—**अवगतः**—अवगतिः ज्ञानम्।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

रणाजिरात् अवजितम्—यहाँ अपादानकारक प्रसंग का अनुसरण नहीं कर पाता है। रणाजिरात् की जगह इसे रणाजिरे होना चाहिए। रणाजिरात् 'अपगतम्' का प्रयोग दामोदर के साथ होना चाहिए। पर, ध्यान रखना चाहिए कि दामोदर युद्ध के मैदान से बहुत दूर थे। बलमहान्—एक विशेष कथन है—बले अर्थात् बलविषये महान्—शक्तियुक्त। वाणैरप्यवकृष्यते—योद्धा भी पकड़े जा सकते हैं और उन्हें अपने दुश्मनों के द्वारा उनके बाणों से कैद किया जा सकता है। अवकृष्यते = अवजित्य गृह्यते।

श्लो० ९—गर्वितांक्षरैः—प्रौढैः वाक्यैः साभिमान् शब्दों के द्वारा।

श्लो० १०—न्यस्तचापस्करे—इस श्लोक में दो चकार दो दृश्यों के द्योतक हैं। अतिक्रम्य अपस्करे योधासनस्थाने रथावयवे करः निजहस्तो न्यस्तः स्थापितः। आपस्कर की जगह अपस्कर का प्रयोग दर्शनीय है। स्यादरथाङ्गमपस्करः इत्यमरः।

श्लो० ११—पदातिनैवावजितो जयद्रथः—यह कथन युक्तिसंगत नहीं है। महाभारत वनपर्व २६० के अनुसार पहले जयद्रथ और भीम दोनों ही रथ पर सवार थे। बाद में दोनों ही रथ से उतर कर, तब तक युद्ध करते रहे जब तक जयद्रथ ने अपनी हार स्वीकार नहीं कर ली।

अहोहास्यमभिधानम्—यही अभिव्यक्ति प्रतिज्ञा में भी दो दो बार आई है—अंक चार श्लोक १९ की तीसरी पंक्ति एवं उसी अंक के दशम श्लोक की चतुर्थ पंक्ति एवं दूतघटोत्कच प्रथम अंक ३७ वें श्लोक के बाद की प्रथम पंक्ति।

श्लो० १४—वयं व्यपाश्रित्य—इस श्लोक की प्रथम पंक्ति में 'प्रयामः' है जब कि दूसरी पंक्ति में 'प्रयातौ' का प्रयोग है। इन दोनों रूपों को देखते हुए निश्चय ही वर्त्तमानकालिक रूप में दोनों क्रिया की सार्थकता सिद्ध हो सकती है।

श्लो० १६—निसृष्टशुष्काशनिगर्जितंघनः—निसृष्टं (जनितम्) शुष्काशनिगर्जितम् येन तत् जो वर्षाविहीन बादल की गर्जना—तर्जना है।

ननु जानीते भवान्—इसकी व्याख्या इससे पूर्व के श्लोक की प्रथम पंक्ति के साथ की जाती है। 'न च श्रोत्रं प्रयच्छति भवान्' क्या आपने इसे सुना नहीं ? क्या आपने इस पर अपना ध्यान नहीं दिया ?

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

श्लो० २०—यौधः स्यादर्जुनो नाम—यौधः योधः के लिए प्रयुक्त है। इस नाटक में इसके अनेकशः प्रयोग द्रष्टव्य हैं। प्रज्ञादित्वात् स्वार्थेऽण् प्रत्ययः।

श्लो० २१—यावद्दृष्टेयुधिष्ठिरे—यावत् का प्रयोग एव के अर्थ में हुआ है। एव यहाँ अवधारणार्थक है। युधिष्ठिरे दृष्टे एव।

श्लो० २५—यथापुरम्—यथापूर्वम्—पुरा अनतिक्रम्य यथापुरम्।

मृतेऽपि—मरणेऽपि के अर्थ में।

महारथ—

एकादशसहस्राणि योधयेयस्तुधन्विनाम्।
शस्त्रशास्त्रप्रवीणश्च विज्ञेयः स महारथः॥

फाल्गुनः—अर्जुन का ही फाल्गुन दूसरा नाम है—अर्जुन का यह नामकरण क्यों हुआ इसका उत्तर महाभारत के शब्दों में—

उत्तराभ्यां फाल्गुनीभ्यां नक्षत्राभ्यामहंदिवा
जातो हिमवतः पृष्ठे तेने मां फाल्गुनः विदुः।

श्लो० २६—प्रवृद्धकुलसंग्रहाः—प्रवृद्धः (प्रकर्षेण वृद्धि प्राप्तः) कुलस्य (कुरुवंशस्य) संग्रहः उच्छ्रायः येषाम्। संग्रह का यहाँ प्रयोग उच्छ्राय के अर्थ में है। उच्छ्राय अर्थात् महानता। यथा—संग्रहाः पुनः। स्वीकारोच्छ्राय संक्षेपाः। इति केशवः।

राजसिंहः—भास ने अपने अनेक नाटकों यथा अविकारक, अभिषेक, प्रतिमा और पञ्चरात्रम् के भरतवाक्य में राजसिंह का उल्लेख किया है। किन्तु राजसिंह के सम्बन्ध में इतिहास कुछ नहीं कहता है। पता नहीं ये राजसिंह (भास के आश्रयदाता) कहाँ के राजा थे?

पञ्चरात्र में वर्णित स्थानों का परिचय

१. अङ्ग—आधुनिक बिहार के भागलपुर जिले का दक्षिणी क्षेत्र प्राचीन काल में अङ्गदेश के नाम से प्रख्यात था। इस देश का राजा कुन्तीपुत्र कर्ण था। अंग देश की तात्कालिक राजधानी अङ्गपुरी या चम्पानगरी थी। प्रतापी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

एवं दानी कर्ण इस क्षेत्र का प्रशासक था, इसके प्रमाणस्वरूप मुंगेर की कर्ण-चण्डी, मीरकासिम के किले में अवस्थित कर्णचौरा एवं भागलपुर की पार्श्व-भूमि में स्थित कर्णगढ़ आज भी साक्ष्यभूत है। बिहार विधान सभा के भूतपूर्व अध्यक्ष डॉ० सुधांशु ने बिहार की मैथिली, मगही और भोजपुरी की तरह इस क्षेत्र की बोली को 'अंगिका' के नाम से प्रतिस्थापित करने की सफल चेष्टा की थी।

२. कुरु—गीता का कुरुक्षेत्र ही 'कुरु' देश के नाम से प्राचीनकाल में प्रसिद्ध था। कौरवों के पूर्वज कुरु नृपति के नाम पर ही इस देश का नामकरण किया गया था। आधुनिक दिल्ली का उत्तराञ्चल ही प्राचीन 'कुरु' है।

३. गान्धार—आधुनिक 'कान्धार' प्रदेश ही प्राचीनकाल में गान्धारदेश के नाम से ख्यात था। इसकी आधुनिक भौगोलिक सीमा भारत और पर्सिया के बीच में है। यह आधुनिक 'इन्डस' का पश्चिमी भाग है।

४. खाण्डव—कुरुक्षेत्र प्रदेश में विद्यमान देवराज इन्द्र का एक प्रियवन था जिसे अर्जुनने श्रीकृष्ण की सहायता से कभी आग में जला दिया था। यह वन यमुना नदी के उत्तरीय तट पर अवस्थित था।

५. दक्षिणापथ—आधुनिक 'डेकान' का प्राचीन नाम दक्षिणापथ था।

६. विराट—आधुनिक धौलपुर का ही प्राचीननाम विराट था। यही विराट नगर मत्स्यदेश के नाम से प्रसिद्ध था। यह धौलपुर के पश्चिम जयपुर से लगभग ४० मील उत्तर में विराटा नाम से प्रसिद्ध है। संभवतः यही विराटा उस समय विराट की राजधानी रही हो।

७. सिन्धु—प्राचीन भारत के इतिहास में इसका महत्वपूर्ण स्थान था। इसी के नाम पर 'हिन्दू' नामकरण हुआ है। यहाँ ही भारतीय संस्कृति फूली फली। एक समय महाभारत का प्रसिद्ध वीर जयद्रथ यहाँ राज्य करता था। यह आधुनिक इन्डस के आसपास की भूमि है। मालवा होकर बहने वाली सिन्धुनदी की तटवर्ती भूमि भी सिन्धु देश के नाम से ख्यात है।

८. हस्तिनापुर—यहाँ ही भरत की राजधानी थी। भारत के प्रशासन सूत्र का यही से बीजारोपण हुआ था। यह भारत की वर्त्तमान राजधानी दिल्ली से लगभग ५६ मील पश्चिमोत्तर में बसी थी। कौरवों की यही राजधानी थी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

पञ्चरात्र में प्रयुक्त छन्दों का विवरण

अक्षर.सं०	प्रयुक्त छन्दों का नाम	कहाँ प्रयोग किया गया	श्लोकों की कुल संख्या	छन्दों की परिभाषाएँ
८	(१) अनुष्टुप्	प्र० अं० २,७,८,११,१२,१३,१४ १७,१८,२६,२८,३४,३५,३७, ३८,४३,४४,४६,५०–५६ द्वि अं० ४,६,८,१२–१४,१६, १७,१९–२१,२३,२५,२८,३४, ३६-३८,४१,४७–५०,५२,५३, ५५–५९,६१–६९,७१,७२ तृ० अं० ९,१०,१३,१५,१७-२१, २३–२६	७९	(१) पञ्चमं लघुसर्वत्र सप्तमं द्विचतुर्थयोः । गुरुषष्ठं च पादानां चतुर्णां स्यादनुष्टुभिः ।
११	(२) इन्द्रवज्रा	प्र० अङ्क १,२५,३३,४२,४९, द्वि० अं० ११,७०, तृ० अङ्क ३.	८	(२) स्यादिन्द्रवज्रा यदितौ जगौ गः
,,	(३) उपेन्द्रवज्रा	प्र० अङ्क १५.	१	(३) उपेन्द्रवज्राजतजास्ततोगौ ।
,,	(४) उपजातिः	प्र० अं० १०,२१,२९,४५,४८द्वि. अं० ९,३०,६० तृ० अं०१२,१४	१०	(४) अनन्तरोदीरितिलक्ष्म भाजौ पादौ यदीयावुपजातयस्ताः
,,	(५) शालिनी	प्र० अं० २४,३०, द्वि० अं० २, १०,४०.४६.	६	(५) मात्तौ गौ चेच्छालिनी वेदलोकैः ।

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

१२/१३	(६) पुष्पिताग्रा	प्र० अं० १९,३२ द्वि० अं०३५,५१	४	(६) अयुजि न युगरे फतो यकारो युजि च नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा ।
१२	(७) वंशस्थ	प्र० अं० २२,२७ द्वि० अं० १, १८,३२,३३,४३,४४, तृ० अं० १,८,११,१६,	१२	(७) जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ ।
१३	(८) प्रहर्षिणी	द्वि० अं० ३,५४, तृ० अं० ५	३	(८) त्र्याशाभिर्मनजरगाः प्रहर्षिणीयम् ।
१४	(९) वसन्तति०	प्र० अं० २०,३१,३६,३९,४१, द्वि० अं० २७,३१,४२, तृ० अं० २२,	९	(९) ज्ञेया वसन्ततिलका तभजा जगौ गः ।
१५	(१०) मालिनी	प्र० अं० ४०,४७, द्वि० अं० ५, १५,४५ तृ० अ० २,४,	७	(१०) ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः ।
१७	(११) शिखरिणी	प्र० अं० ३,१६,२३, द्वि० अं० ७,२२,२४,	६	(११) रसैरुद्रैश्छिन्ना यमनसभलागः शिखरिणी ।
१९	(१२) शार्दूलवि०	प्र० अं० ४,५,९,५७ द्वि० अं० २६,२९,३९ तृ० अ०—६,७,	९	(१२) सूर्याश्वैर्यदिमः सजौ सततगाः शार्दूलविक्रीडितम् ।
२०	(१३) सुवदना—	प्र० अं०—६	१	(१३) ज्ञेयासप्ताश्वषड्भिर्मरभनयुताम्लौ गः सुवदना ।
			१५५	

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पञ्चरात्र में प्रयुक्त सुभाषित

अकारणं रूपमकारणं कुलं महत्सु नीचेषु च कर्म शोभते । २/३३

अकाले स्वस्थवाक्यं मन्युमुत्पादयति । २/२०-१

अच्छलो धर्मः । १/४८-१

अतीत्य बन्धून् अवलङ्घ्य मित्राण्याचार्यमागच्छति शिष्यदोषः । १/२३

अर्थित्वादपरिश्रान्तः पृच्छत्येव हि कार्यवान् । २/६

एकोदकत्वं खलु नामलोके मनस्विनां कम्पयते मनांसि २/९

को वा पुत्रं मर्षयेच्छत्रुहस्ते ? २/४६

ताडितस्य हि योधस्य श्लाघनीयेन कर्मणा,
अकालान्तरिता पूजा नाशयत्येव वेदनाम् ॥ २/२८

न च दहति न कश्चित् सन्निकृष्टो रणाग्निः । २/१५

न विस्तार्हाणि विप्रियाणि २/३-६

नोत्सहन्ते महात्मानो आत्मानमपस्तोतुम् । १/२७-१

न्यस्तशस्त्रं हि को हन्यात् । २/५२

परोक्षे न स्वर्गो बहुगुणमिहैवेष फलति । १/२३

भेदाः परस्परगताः हि महाकुलानां धर्माधिकारवचनेषु शमीभवन्ति १/४१

मिथ्या प्रशंसा खलु नाम कष्टा । २/६०

मृतेऽपि हि नरा सर्वे सत्ये तिष्ठन्ति तिष्ठति । ३/२५

रूपेण स्त्रियः कथ्यन्ते पराक्रमेण तु पुरुषाः । ३/–८-३

श्रीर्न संतोषमिच्छति । २/८

सति च कुलविरोधे नापराध्यन्ति बालाः ३/४

सर्वमिष्टेषु कथ्यते । ३/१३

सान्त्वं हि नाम दुर्विनीतानामौषधम् । १।४०-४

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पञ्चरात्रगत नाटकीय विषय

१. समवकारः—

वृत्तंसमवकारे तु ख्यातं देवासुराश्रयम्,सन्धयो निर्विमर्शोस्तु त्रयोङ्कास्तत्र चादिमे ॥ सन्धी द्वावन्त्ययोस्तद्वदेक एको भवेत्पुनः,नायका द्वादशोदात्ताः प्रख्याता देवमानवाः ॥ फलं पृथक् पृथक्तेषां वीरमुख्योऽखिलो रसः, वृत्तयो मन्दकैशिक्यो नात्रबिन्दुप्रवेशकौ ॥ वीथ्यङ्गानि च तत्र स्युर्यथालाभं त्रयोदश, गायत्र्युष्णिङ्मुखान्यत्रच्छन्दांसि विविधानि च ॥ त्रिशृंगारस्त्रिकपटः कार्यश्चायं त्रिविद्रवः, वस्तु द्वादशनालीभिर्निष्पाद्यं प्रथमाङ्ककम् ॥ द्वितीयेङ्के चतसृभिर्द्वाभ्यामङ्के तृतीयके ॥ (सा. द.)

२. पूर्वरङ्गः— यन्नाट्यवस्तुनः पूर्वं रङ्गविघ्नोपशान्तये ।
कुशीलवाः प्रकुर्वन्ति पूर्वरङ्गः स उच्यते ॥

३. नान्दी— आशीर्वचनसंयुक्ता स्तुतिर्यस्मात् प्रयुज्यते ।
देवद्विजनृपादीनां तस्मान्नान्दीति संज्ञिता ॥

४. सूत्रधारः— आसूत्रयन् गुणान् नेतुः कवेरपि च वस्तुनः ।
रङ्गप्रसाधनः प्रौढः सूत्रधार इहोदितः ॥

५. नेपथ्यम्— कुशीलवकुटुम्बस्य स्थलं नेपथ्यमुच्यते ।

६. स्थापना— सूत्रधारो नटीम्ब्रूते मारिषं वा विदूषकम् ।
स्वकार्यं प्रस्तुताक्षेपि चित्रोक्त्या यत्तदामुखम् ॥
प्रस्तावना स्थापना वा .....।

७. विष्कम्भकः—वृत्तवर्त्तिष्यमाणानां कथांशानां निदर्शकः ।
संक्षेपार्थस्तु विष्कम्भो मध्यपात्रप्रयोजितः ॥

८. प्रवेशकः—प्रवेशकोऽनुदात्तोक्त्या नीचपात्रप्रयोजितः ।

९. प्रकाशम्—सर्वश्राव्यं प्रकाशम् ।

१०. स्वगतम्—अश्राव्यं स्वगतं मतम्

११. अपवारितम्—रहस्यं कथ्यतेऽन्यस्य परावृत्यापवारितम् ।

१२. काञ्चुकीयः—ये नित्यं सत्यसम्पन्नाः कामदोषविवर्जिताः ।
ज्ञानविज्ञानकुशलाः काञ्चुकीयास्तु ते स्मृताः ॥

१३. वीररसः—विभावैरनुभावैश्च स्वोचितैर्व्यभिचारिभिः ।
नीतः सदस्यरस्यत्वमुत्साहो वीर उच्यते ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नाटकगत शब्दार्थपरिचय

अक्षौहिणी—सेना का परिमाण जिसमें २१८७० रथ तथा हाथी, ६५१० घोड़े, एवं १०९३५० पैदल चलने वाले सैनिक होते हैं।

अङ्ग—देश, (जिसका कर्ण राजा था)।

अङ्गुलित्र—अंगुलि की रक्षार्थ पहना जानेवाला कवच।

अतदर्ह—उसके योग्य नहीं।

अतिपाति—जिसका अवसर बीत रहा हो।

अतीत्य—अतिक्रमण करके।

अत्यर्थ—बहुत।

अनभिज्ञ—अज्ञानी।

अनवसित—असमाप्त।

अनार्यभाव—क्षुद्रता।

अनिल—हवा।

अनुपजीव्य—आश्रयरहित।

अनुकर्ष—रथ का ऊपरी हिस्सा।

अन्वय—वंश।

अपकृष्ट—न्यून।

अपत्य—सन्तति।

अपनय—दुर्नीति।

अपनीत—पृथक् किया गया।

अपह्नव—गुप्त रखना।

अपयात—भागा हुआ।

अपराध—दोष।

अपराद्ध—अपराधी।

अपास्य—हटाकर।

अभिधा—कथन।

अभिन्नकवच—अटूट कवच।

अभिवर्धमान—बढ़न शील।

अभिवादय—प्रणाम करो, हाथ जोड़ो।

अभ्यन्तर—भीतरी भाग।

अभ्युपगम—मंजूर करना।

अमर—देवता, नहीं मरने वाले।

अमर्ष—गुस्सा।

अरणि—एक यज्ञीय काष्ठ जिसके मन्थन से आग पैदा होती है।

अर्ज—उपार्जन करना।

अर्जुन—पाण्डवों में तृतीय।

अर्णव—रत्नाकर।

अर्थतः—वास्तव में।

अर्थित्व—मांगना।

अवगुण्ठित—झंपा हुआ, आवृत।

अवजित—पराजित।

अवधीरण—तिरस्कार।

अवभृथ—यज्ञान्त स्नान।

अवलेप—अहंकार।

अवसान—अन्त, समाप्ति।

अविद्ध—अच्छेद्य।

अश्रद्धेय—श्रद्धा के पात्र नहीं।

अस्त्र—शस्त्र, आयुध।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आकुलाकुल—अधिक व्यग्र ।
आचरण—व्यवहार ।
आचार्य—अध्यापक, गुरु ।
आज्ञाविधेय—आज्ञापालक ।
आदीपित—प्रज्वलित, दग्धावशेष ।
आभिरूप्यं—मनोरमता ।
आयुध—अस्त्र, शस्त्र ।
आर्जव—सरलता, मृदुता ।
आर्त्त—पीड़ित, खिन्न ।
आर्य—पूज्य, श्रेष्ठ ।
आलम्बमान—आश्रित, निर्भर ।
आवर्जित—केन्द्रित ।
आवृत—झंपा हुआ ।
आसक्त—आकृष्ट ।
आसन्न—निकटवर्ती ।
आसाद्य—पाकर ।
इन्धन—लकड़ी, जलावन ।
उग्र—भयङ्कर, उत्तेजित ।
उच्छिष्ट—भोजनावशेष, जूठा ।
उत्सङ्ग—गोद, क्रोड़ ।
उदकक्रिया—मृतक-जलदान ।
उद्बाष्प—आँसू, अश्रु ।
उद्यत—प्रस्तुत ।
उन्नत—ऊपर उठा हुआ ।
उपन्यस्त—प्रस्तुत हुआ ।
उपरत—मरा हुआ ।
उपरतापत्या—मृतवत्सा ।
उपस्पर्श—आचमन ।
ओजस्—आन्तरिक बल ।
कपिल—श्वेत ।
करण—कर्मसाधन ।
करेणु—हस्तिनी ।
कर्णधार—नौका खेनेवाला ।
कर्दन—नीचवाचक शब्द ।
कलभ—हाथी का बच्चा ।
कल्प—प्रकार ।
कल्मष—पाप, अघ ।
कशा—चाबुक ।
काश—पवित्र तृण ।
किण—घाव का चिह्न, मांस ग्रंथि ।
कुलविरोध—वंशागत विद्रोह ।
कूल—किनारा, तट ।
कृतकर्मा—सफल मनोरथ, कृतकृत्य ।
कृत्स्न—सकल ।
कृपण—मक्खीचूस, कंजूस ।
कृश—दुर्बल, खिन्न ।
कोश—खजाना ।
क्रतु—यज्ञ ।
क्रम—क्रमिक, सिलसिलेवार ।
क्षुप—छोटे पौधे, उद्यान की झाड़ी ।
खग—पक्षी ।
खाण्डव—वन का नाम ।
खेद—कष्ट, दुःख, सन्ताप ।
गहन—सघन, भयङ्कर ।
गाङ्गेय—भीष्मपितामह ।
गुल्म—वनप्रदेश की झाड़ी ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गोधा—चमड़े का दस्ताना।
घृष्ट—पिसा हुआ।
घोष—गोष्ठ, बथान।
चापल—चपलता।
चिरस्य—अधिक दिनों के लिये।
चीर—वल्कल-वस्त्र।
चैत्य—चिता-मन्दिर, चिता पर के वृक्ष।
छन्द—इच्छा।
छन्न—आवृत, झंपा हुआ।
छलन—धोखा देना।
जतुगृह—लाह निर्मित घर।
जिह्मता—दुष्टता।
जीर्ण—पुराना, बेकाम।
ज्यैष्ठ्यम्—बूढ़ापन।
ज्ञाति—दायाद, बन्धु, बान्धव।
तनिमा—कृशता, खिन्नता।
तीर्ण—तैरना।
तुण्ड—मुँह।
तूणी—तरकस।
दयित—प्रेमी, स्नेही।
दर्भ—कुशा।
दव—वन।
दस्यु—लुटेरा, डकैत।
दहन—जलन।
दिष्ट्या—भाग्यवशात्।
दीक्षा—उपदेश, सङ्कल्प।
दीक्षित—कृतसङ्कल्प।
दुन्दुभि—वाद्यविशेष।
दुर्दिन—मेघाच्छन्न दिन।
दुर्विनीत—नम्रता-शून्य
द्यूत—जुआ (दाव का खेल)।
द्रोण—मेघ, काक, द्रोणाचार्य।
धर्मशकटी—यज्ञीय वस्तुओं को ढोने वाली गाड़ी।
धर्माधिकार—न्यायाधिकार।
धौत—धुला हुआ वस्त्र।
धर्षण—आक्रमण।
धारा—जल स्रोत, प्रवाह।
धृति—धैर्य, उत्साह।
नाग—हाथी।
निग्रह—परास्त, पराजय।
निधन—मृत्यु।
निभृत—चुपचाप, शान्तिपूर्वक।
निमग्न—चिंता में डूबा हुआ।
निराश्रय—सहायरहित।
निर्यात—चला जाना।
निर्वासय—बाहर कर दो।
निर्व्याज—निःप्रपंच, सचाई से।
नेमि—रथ की धुरी।
न्यस्तशस्त्र—शस्त्र को रख देने वाला।
न्याय्य—उचित।
पक्कण—झोपड़ी, शवरालय।
पट्ट—रेशमी वस्त्र।
परशु—फरसा (शस्त्र विशेष)।
परिकर—तैयारी, आरंभ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

परिग्रह—लेना।
परिघ—घेरा।
परिच्छन्द—झांपने वाला।
परिष्वङ्ग—आलिङ्गन।
परिस्पन्द—रोमांच, कंपन।
परुष—कठोर, क्लिष्ट।
पाण्डु—पाण्डुर वर्ण, पाण्डु राजा।
पाण्डुर—श्वेत-पीत वर्ण।
पादप—वृक्ष सामान्य।
पारिहार्य—भूषण, वलय, कंठहार।
पावक—आग।
पार्श्व—बगल, समीप।
पीन—स्थूल, मोटा।
पुण्याह—पवित्रदिन, उत्सव समारोह।
पुरोग—अग्रगामी, आगे चलनेवाला।
पैतृक—बपौती, पूर्वजों की।
प्रकुसुमित—प्रफुल्लित।
प्रकोष्ठ—केहुनी के नीचे वाले भाग।
प्रतिग्रह—दान लेना।
प्रतिषेध—अस्वीकार, ग्रहण-निषेध।
प्रत्यमित्र—शत्रु, दुश्मन।
प्रभावी—प्रभावशाली, पराक्रमी।
प्रमाण—मापक।
प्रवृत्ति—समाचार, कथोपकथन।
प्रवृत्तिपुरुष—गुप्तचर, सी. आई. डी.
प्रसाद—अनुग्रह, कृपा।
प्रहरण—अस्त्र, शस्त्र।
प्राग्वंश—यज्ञ शाला के पूर्वभाग में रचित वंशगृह।
बटु—बालक, माणवक।
प्रोषित—घरसे पृथक्, परदेश में स्थित।
बहुनाथ—अनेकों से रक्षित।
बाढम्—अच्छी बात, स्वीकार।
भग्न—नष्ट, पराजित।
भृशं—अतिशय, अत्यन्त।
भ्रान्त—भ्रमित, धोखे में।
मण्डल—गोलाकार।
मधुपटलचक्र—मधुमक्खी का छत्ता।
मन्यु—क्रोध।
महानस—रसोई घर।
माणवक—ब्रह्मचारी, बटुक।
माद्रीज—माद्री के सुत, नकुल-सहदेव।
मानुषीभूत—मनुष्य के रूप में।
मार्दव—कोमलता, मृदुता।
मिश्र—आदरणीय, उपासनीय।
मोघ—व्यर्थ वृथा।
यन्त्रित—नियमित, परीक्षित।
यादवी—यदुवंश में उत्पन्न सुभद्रा।
यूथ—समुदाय, दल, सेना।
यूप—यज्ञस्तम्भ, यज्ञीय दारु।
योग्या—अभ्यास।
योध—लड़ाकू योद्धा।
रणविस्तर—युद्ध-विस्तार।
रव—युद्ध-नाद, शब्द।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रूक्ष--कठोर, नीरस ।
रूप्य--चांदी ।
रेणु--धूल, गर्द ।
वक्षस्--छाती ।
वञ्चना--ठगना, धोखा देना ।
वयस्य--मित्र, सखा ।
वर्म--कवच ।
वलय--हस्त-कंगन ।
वाम--विरोधी, वामपन्थी ।
वामन--बौना, नाटा ।
वारित--निषिद्ध, त्याज्य ।
बाह्य--बाहर कर देने योग्य, त्याज्य।
विकीर्ण--बिखरा हुआ ।
विक्लव--दुखी, सीदित ।
विपन्न--आपत्तिग्रस्त, विपत्ति का मारा ।
विप्रकृत--आक्रान्त ।
विभक्तः--विभाग, पृथक् ।
विमृशति--विचार करना, शोचना ।
विशदाक्षर--सुस्पष्ट शब्द में ।
विस्तर--विस्तार, फैला हुआ ।
विस्रम्भ--विश्वास, एकान्त, निर्जन ।
वृषल--शूद्र जाति ।
वृष्णि--यादव, अहीर ।
वेदी--यज्ञमंडप का अग्निस्थान ।
वेष्टन--वेठन ।
व्यापन्न--विपत्ति में पड़ा हुआ ।
व्यापृत--कार्य में संलग्न ।
व्यावर्त्तन--घूमना, भ्रमण करना ।
व्युत्क्रान्त--प्रचलित ।
व्रीडित--लज्जित ।
शकटी--छोटी गाड़ी ।
शकुनीश्वर--पक्षियों का राजा गरुड़ ।
शक्र--देवेन्द्र ।
शुल्क--दाम, मूल्य ।
शौण्डीर्य--वीरता शौर्य ।
श्रव--वेद-प्रसिद्धि ।
संगूढ--अतिगुप्त, प्रच्छन्न ।
सज्ज--सज-धज कर तैयार ।
सन्धा--शर्त, प्रतिज्ञा ।
सन्निधाता--आगे लाने वाला ।
समुच्छ्रय--तरक्की, पदोन्नति ।
संपात--वृष्टि ।
संभ्रान्त--चकित ।
सस्य--अन्न, अनाज ।
सहज--स्वाभाविक, प्राकृतिक ।
सुकृत--सुन्दर कृति, पुण्य ।
सोत्सेक--गर्वयुक्त, सगर्व ।
संसृष्ट--मिलित, भाई ।
स्यन्दन--रथ ।
स्रुग्भाण्ड--हवनीय यज्ञीय पात्र ।
स्वन्त--सुन्दर परिणाम ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

श्लोकानुक्रमणिका

	सर्ग.	श्लो.
अकारणं रूपम्	२	३३
अगणितगुण	२	१५
अग्निरग्निभया	१	७
अज्ञानात्तुभया	२	६८
अतीत्य बन्धु	१	२१
अद्य मे कार्यलोभेन	१	५०
अद्येदानीम्	२	१०
अध्वानमल्पमतिं	३	२८
अनेन वेषेण	२	३०
अपास्य नारायण	३	२२
अपूर्व इव ते	२	३४
अयं बाल्यात्तु	२	६२
अयं स हृदया	२	६९
अयुज्यमानैः	२	४४
अलमात्मस्तवं	२	५०
अवजित इति	२	४५
अवनत विट	१	१९
अवाप्यरूप्यग्र	१	२२
अशस्त्रो मामभि	२	५२
अहं हि मात्रा	१	२७
आचार्यस्य वदा	१	५४
आदीपिते जतुगृहे	२	४२
आलम्बितो	२	२७
इक्ष्वाकुशर्याति	१	२४
इत्यर्थं वयमा	३	२४
इदानीं युद्ध	२	७२
इष्टमन्तःपुरं	२	७१
उचितं ते पुरा	३	१८
उत्तरा मे स्नुषा	३	२३
उद्योगः प्रस्तुतः	२	८
उपन्यस्तस्य	१	३४
एकवर्णेषु	२	४
एकेनैव वयं	३	१५
एकोदकत्वं	२	९
एतदक्षयतूणी	२	२३
एतदग्नेर्बलं	१	१७
एतन्मे पारिहा	२	६४
एतां चक्रधरस्य	१	९
एते वातोद्धता	१	१३
एभिरेव रथै	१	५६
एवमेव क्रतून्	१	२८
एष शिष्यस्य	१	४४
एष शिष्यस्य मे	३	१९
एषामोदीप्त	१	६
कथं पण्डित	१	५३
कर्णायते तेन	३	१८
कामं दुर्योधन	२	६
किं भवान् धर्म	२	४८
किन्नु तत्परिहा	२	१७
किमर्थं खलु स	२	१२

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

	सर्ग.	श्लो.
किमर्थं स्तूयते	३	९
किमुत्तरेणापि	३	१६
कृतश्रद्धो ह्यात्मा	१	२३
कृता नीला नागाः	२	२२
कोनु खल्वेष	२	२१
क्रतुव्रतैस्ते	१	२९
क्रोधप्रायं वयो	१	४३
गजेन्द्राः कल्प्यन्ते	२	७
गतो वृक्षाद्	१	१६
गाण्डीवेन मुहूर्त्तं	२	२९
गुरुकरतल	१	४७
जानाम्येतान्	२	४६
जित्वापि गां	२	३१
तस्मान्मे रथ	१५	७
ताडितस्य हि यो	२	२८
तुलितबलमि	२	३५
तृप्तोऽग्निर्इविषा	१	४
तेषां राज्यप्रदा	३	२७
त्वं वञ्च्यसे यदि	१	४१
त्वमिदानीं कुमार	२	१६
दह्यमानस्य	१	११
दूरस्था दर्शना	२	३८
दैवतं मानुषी	१	२६
द्रुतैश्च वत्सै	२	१
द्रोणः पृथि	१	१
द्रोणश्च भीष्मश्च	२	११

	सर्ग.	श्लो.
द्विजोच्छिष्टैरन्नै	१	३
धनुरुपनय	२	५
धनुर्धोषं द्रोण	२	२४
धन्यः खल्वर्जुनो	२	५३
धर्षिता रथ	१	५५
न चापि दोषा	३	८
न जाने तस्य	२	३६
न ते क्षेपेण	२	५८
न रुध्यन्ति मया	२	६७
नास्त्यन्यो बल	३	१३
निमित्तं किञ्चि	२	२०
नीचैरप्यभिभाष्य	२	४७
नृपा भीष्मादयो	२	४१
पर्यस्तोऽस्य रथो	३	७
पादयोः समुदा	२	५९
पार्थं पितर	२	४९
पीतः सोमो बाल्य	१	३०
पुत्रो ह्येष युधि	२	३९
प्रकोष्ठान्तर	२	६३
प्राणाधिकोऽस्मि	१	३१
बहुभिः समराभि	२	१९
बाढं दत्तं मया	३	२५
बाणपुङ्खाक्षरै	३	१७
बाणाधीना	१	२४
बाहुरक्षौहिणी	२	५६
भग्नापयानेष्व	३	३

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

	सर्ग.	श्लो.
भीमसेनस्य	१	५२
भीष्मेण कर्णेन	१	४२
भीष्मं रामशरै	२	२६
भ्रातॄणां पैतृकं	१	३५
मम हि पितृभि	३	४
मा तावद् व्यथित	२	३
मा तावत् स्वजन	३	५
मिथ्या प्रशंसा	२	६०
मुञ्चेदर्जुनपुत्र	३	६
यज्ञेन भोजय	१	२०
यत् पाण्डवा	१	३६
यत् पुरा ते सभा	१	३७
यदि विमृशसि	१	३२
यदि स्वचक्रो	२	१८
युध्यते यदि	२	२५
ये दुर्बलाश्च	१	३९
येन भीमः सभा	१	३८
येषां गतिः क्वापि	१	३३
ये कर्त्तुकामैश्छलनं	१	४८
योक्त्रयित्वा जरा	२	५७
यौधिष्ठिरं	२	७०
यौधः स्यादर्जुन	३	२०
रणपटुरपनीतः	३	२
रथमानय	२	१३
रथमासाद्य निः	२	३७
राज्ञां वेष्टनपट्ट	१	५
रात्रौ छन्नेन	१	५१
रामेण भुक्तां	१	४५
रिपूणां सैन्य	२	१४
रुद्रबाणावली	२	६५
लङ्घयित्वा	३	१०
लतया सक्तया	१	१४
वनं सवृक्षक्षुप	१	१५
वयं व्यपाश्रित्य	३	१४
वर्षेण वा वर्षशतेन	१	४९
वल्मीकमूलात्	१	१०
विशालवक्षा	२	४३
शकटी च धृता	१	८
शुष्केणैकेन	१	१२
शून्यमित्यभिधास्यामि	१	४६
शूराणां सत्यसन्धानां	२	६६
शौण्डीर्यं धृति	२	५४
श्मशानाद्धनु	२	६१
सज्जैश्चामैर्वद्ध	२	२
स यौवनः श्रेष्ठ	२	३२
सरथतुरग	२	५१
सर्वैरन्तःपुरैः	१	२
सहजौ मे प्रहरणं	२	५५
स्रुग्भाण्डमरणीं	१	१८
हन्त सर्वे प्रसन्नाः	३	२६
हितमपि परुष	१	४०
हृतप्रवेगो यदि	३	११

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

हरिदास संस्कृत ग्रन्थमाला

२०८

महाकवि-भासप्रणीतं

प्रतिमा-नाटकम्

'प्रकाश' संस्कृत-हिन्दीव्याख्योपेतम्

व्याख्याकारः

आचार्यः श्रीरामचन्द्रमिश्रः

मुजफ्फरपुरस्थधर्मसमाजसंस्कृतमहाविद्यालयप्राध्यापकः

प्रस्तावनालेखकः

डॉ० सत्यव्रत सिंहः

(प्राध्यापक : लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ)

चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रकाशक : चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी
मुद्रक : चौखम्बा प्रेस, वाराणसी
संस्करण : एकादश, वि० सम्वत् २०७०, सन् २०१३
मूल्य : रू० ७०.००

ISBN : 978-81-7080-031-5

© चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस

के० ३७/९९, गोपाल मन्दिर लेन
गोलघर (मैदागिन) के पास
पो० बा० नं० १००८, वाराणसी—२२१००१ (भारत)
फोन : (आफिस) (०५४२) २३३३४५८
(आवास) (०५४२) २३३५०२०, २३३४०३२
Fax : 0542 - 2333458
e-mail : cssoffice@sify.com
web-site : www.chowkhambasanskritseries.com

अपरं च प्राप्तिस्थानम्
चौखम्बा कृष्णदास अकादमी
के० ३७/११८, गोपाल मन्दिर लेन
गोलघर (मैदागिन) के पास
पो० बा० नं० १११८, वाराणसी–२२१००१ (भारत)
फोन : (०५४२) २३३५०२०

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

HARIDAS SANSKRIT SERIES

208

PRATĪMĀNĀTAKAM

of

MAHĀKAVI BHĀSA

With 'Prakāśa' - Sanskrit-Hindi Commentaries

By

Acharya Sri Ramchandra Mishra

Professor, Dharmasamaj Sanskrit College, Muzaffarpur

&

Introduction By

Dr. Satyavrata Singh

Professor, Lucknow University, Lucknow

CHOWKHAMBA SANSKRIT SERIES OFFICE

VARANASI

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

Publisher : Chowkhamba Sanskrit Series Office, Varanasi.
Printer : Chowkhamba Press, Varanasi.

ISBN : 978-81-7080-031-5

©CHOWKHAMBA SANSKRIT SERIES OFFICE

Publishers and Oriental and Foreign Book-sellers
K. 37/99, Gopal Mandir Lane
At the North Gate of Gopal Mandir
Near Golghar (Maidagin)
Post Box No. 1008, Varanasi- 221001 (India)
Phone { Office : (0542) 2333458
Resi. : (0542) 2334032, 2335020
Fax : 0542-2333458
e-mail : cssoffice@sify.com
web-site : www.chowkhambasanskritseries.com

Also can be had from :

CHOWKHAMBA KRISHNADAS ACADEMY
Oriental Publishers & Distributors
K. 37/118, Gopal Mandir Lane
Post Box No. 1118, Varanasi- 221001
(INDIA)
Phone : (0542) 2335020

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रस्तावना

भास–नाटक–चक्र

महाकवि भास के 'नाटक–चक्र' का संकेत सर्वप्रथम छठी-सातवीं शताब्दी के महाकवि बाण ने किया है :—

'सूत्रधारकृतारम्भैर्नाटकैर्बहुभूमिकैः । सपताकैर्यशो लेभे भासो देवकुलैरिव ॥'

(हर्षचरित)

इस संकेत से इतना तो अवश्य स्पष्ट है कि भास की नाटक-कृति एक नहीं अपितु अनेक थीं ।

महाकवि भास के नाम के साथ उनके रचित 'नाटक-चक्र' का सम्बन्ध कालान्तर में भी संस्कृत के विषयों और लेखकों की स्मृति में सुरक्षित रहा क्योंकि 'सूक्तिमुक्तावली' के रचयिता कवि राजशेखर ने भी भास और उनकी नाटक–कृतियों का स्मरण किया था :—

'भासनाटकचक्रेऽपि च्छेकैः क्षिप्ते परीक्षितुम् ।
स्वप्नवासवदत्तस्य दाहकोऽभून्न पावकः ॥'

१२ वीं शताब्दी के कवि कल्हण ने अपनी 'सूक्तिमुक्तावली' में राजशेखर की 'सूक्तिमुक्तावली' की इसी उपर्युक्त सूक्ति का पुनरुल्लेख कर भास के 'नाटक–चक्र' की प्राचीन स्मृति को जागृत रखा है ।

किन्तु समय के हेर-फेर से भास का 'नाटक-चक्र' लुप्तप्राय हो गया । भास के 'नाटक–चक्र' की खोज १९०९ में हुई और महामहोपाध्याय टी० गणपति शास्त्री ने भास के १३ नाटकों को संस्कृत के विद्वज्जगत् के सामने उपस्थित किया । संस्कृत के अनुसंधानशील भारतीय और विदेशीय विद्वान् भास के इस 'नाटक–चक्र' के सम्बन्ध में दो विरुद्ध पक्षों में विभक्त हो गये । एक पक्ष ने दक्षिण भारत में उपलब्ध 'स्वप्नवासवदत्तम्' आदि १३ नाटकों को भास के 'नाटक–चक्र' के रूप में माना, किन्तु दूसरे पक्ष ने इन्हें सन्देह की दृष्टि से देखा । महामहोपाध्याय टी० गणपति शास्त्री के द्वारा प्रकाश में लाये गये 'स्वप्नवासवदत्तम्' आदि १३ नाटकों को भास के 'नाटक–चक्र' के रूप में मानने वाले विद्वानों में डाक्टर कीथ, डाक्टर टामस, डाक्टर स्वरूप आदि रहे और इन्हें सन्देह की दृष्टि से देखने वाले विद्वानों में डाक्टर बार्नेट, डाक्टर सिल्वन लेवी, डाक्टर बुल्नर, म० म० कुप्पू स्वामी शास्त्री आदि थे ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

अस्तु, महामहोपाध्याय गणपति शास्त्री की खोज में मिले 'नाटक-चक्र' में ये १३ नाटक हैं :—

१. स्वप्नवासवदत्तम्
२. प्रतिज्ञायौगन्धरायणम्
३. अविमारकम्
४. चारुदत्तम्
५. प्रतिमानाटकम्
६. अभिषेकनाटकम्
७. पञ्चरात्रम्
८. मध्यमव्यायोगः
९. दूतवाक्यम्
१०. दूतघटोत्कचम्
११. कर्णभारम्
१२. ऊरुभङ्गम्
१३. बालचरितम्

प्रतिमानाटक : नामसार्थक्य

उपर्युक्त भास-नाटक-चक्र में 'प्रतिमानाटक' एक मुख्य नाटक है। 'प्रतिमा-नाटक' का नाम कुछ लोग इसलिये सङ्गत मानते हैं कि इसमें प्रतिमा-गृह अथवा मूर्तिगृह की घटना का महत्त्व ही नाटक की इतिवृत्त रचना की विशेषता है। प्रोफेसर ध्रुव के अनुसार इस नाटक का पूरा नाम 'प्रतिमा-दशरथ' रहा होगा जिसे संक्षिप्त रूप में 'प्रतिमा' कर दिया गया। भास का एक नाटक 'प्रतिज्ञा-यौगन्धरायण' भी है जिसे संक्षेप में 'प्रतिज्ञा' नाटक कहा जा सकता है। भास के 'स्वप्नवासवदत्तम्' की कुछ प्राचीन हस्तलिखित प्रतियों में केवल 'स्वप्न-नाटक' ही लिखा मिलता है।

प्रतिमा का इतिवृत्त

भास ने 'प्रतिमा नाटक' का मूलवृत्त रामायण से लिया है। वाल्मीकि-रामायण के अयोध्याकाण्ड और अरण्यकाण्ड में वर्णित वृत्त ही वस्तुतः इस नाटक का आधार-वृत्त है। किन्तु इस आधारवृत्त की रचना जो नाटक के इतिवृत्त रूप में है वह महाकवि भास की अपनी नाटकीय कल्पना है। 'प्रतिमा' के सात अङ्कों में भास की इतिवृत्त-कल्पना जिस नाटकीय घटना-चक्र की सृष्टि करती है उसका रूप निम्न है :—

प्रथम अंक
(दृश्य प्रथम)

महाराज दशरथ के राजप्रासाद में राम के राज्याभिषेक की तैयारी हो रही है। महाराज दशरथ ने राज्याभिषेक की सामग्री की तैयारी के सम्बन्ध में आज्ञा दे दी है और उनकी प्रतीहार-रक्षी उनकी आज्ञा के पालन के सम्बन्ध में कञ्चुकी से सब समाचार जानना चाहती है। कञ्चुकी के द्वारा प्रतीहार-रक्षी को और प्रतीहार-रक्षी के द्वारा महाराज दशरथ को भी पता

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

चलता है कि राज-छत्र, राजसिंहासन, मङ्गलकलश आदि सभी सामग्रियाँ तैयार हैं और महर्षि वशिष्ठ राज्याभिषेक-संस्कार प्रारम्भ करने के लिये महाराज की प्रतीक्षा कर रहे हैं।

(दृश्य—द्वितीय)

सीताजी अपने हर्म्य-कक्ष में अपनी चेटियों के साथ हास-परिहास में लगी हैं। इतने में उनकी एक चेटी आती है और अपने साथ एक बल्कल-वस्त्र लाती है जिसे उसने राजप्रासाद की नाट्य-शाला से, नाट्यशाला की संरक्षिका को बिना बताये, ले लिया है। सीताजी इस चेटी को कुछ भला-बुरा कहती हैं और वल्कल को नाट्यशाला में लौटाने की आज्ञा देती हैं। चेटी वल्कल लौटाने ही जा रही है कि सीताजी उसकी सुन्दरता से आकृष्ट होकर कौतुकवश उसे पहन लेती हैं। इतने में एक दूसरी चेटी आती है और सीताजी को राम के राज्याभिषेक की सूचना देती है। अभिषेक-समारोह के मङ्गलवाद्य बजते-बजते अकस्मात् बन्द हो जाते हैं और सीता के पास राम आ पहुँचते हैं। राम प्रसन्न हैं क्योंकि उनका राज्याभिषेक होते-होते रुक गया है। राम अपने राज्याभिषेक के रुकने का कारण बताते हैं और सीता प्रसन्न होती हैं। अकस्मात् राम का ध्यान सीता के वल्कल-परिधान पर जाता है और स्वयं भी उन्हें वल्कल पहनने की इच्छा होने लगती है। इतने में अन्तःपुर का करुण-क्रन्दन सुन पड़ता है और महाराज दशरथ के शोक-मूर्च्छित होने का समाचार फैल जाता है। क्रोध में लक्ष्मण सीता के हर्म्यकक्ष में पहुँच जाते हैं और कैकेयी से बदला लेने के लिये स्त्रीजाति के संहार की प्रतिज्ञा करते हैं। राम समझा-बुझा कर लक्ष्मण को शान्त करते हैं और राम के साथ सीता और लक्ष्मण बन-गमन के लिये तैयार हो जाते हैं।

द्वितीय अङ्क

राम, सीता और लक्ष्मण को वन-गमन से रोकने में असमर्थ महाराज दशरथ शोकोन्मत्त हैं और अपने अन्तःपुर में मूर्च्छित पड़े हैं। कौसल्या महाराज दशरथ को शान्त करने में लगी हैं। इतने में राम के साथ सीता और लक्ष्मण को अयोध्या की सीमा के पार पहुँचा कर लौटे हुये सुमन्त्र आते हैं। सुमन्त्र से राम के वन-गमन का समाचार जान महाराज दशरथ मूर्च्छित और निष्प्राण हो जाते हैं।

तृतीय अङ्क

दिवंगत रघुवंशी राजाओं का प्रतिमागृह सजाया जा रहा है और मृत महाराज दशरथ की प्रतिमा के स्थापन-संस्कार के लिये कौसल्या आदि रानियों के आगमन की प्रतीक्षा हो रही है। महाराज दशरथ के अस्वास्थ्य का समाचार सुन भरत अपने मातुलगृह (केकय देश) से चले आ रहे हैं और अयोध्या की सीमा पर निर्मित 'प्रतिमागृह' की सजावट देख वहाँ रुक जाते हैं। अयोध्या

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

से बहुत समय बाहर रहने के कारण भरत को यह प्रतिमा-गृह अपने पूर्वजों का स्मारक नहीं अपितु देवमन्दिर-सा लगता है। इतने में भरत के स्वागतार्थ शत्रुघ्न का सैनिक सेवक आता है और उन्हें अयोध्या-प्रवेश के लिए शुभमुहूर्त्त की प्रतीक्षा करने के लिये कहता है। अयोध्या-प्रवेश के शुभ मुहूर्त्त की प्रतीक्षा में भरत प्रतिमागृह के दर्शन के लिये चल पड़ते हैं और देवकुलिक (प्रतिमागृह के पूजनाधिकारी) के द्वारा क्रमशः दिलीप, रघु और अज की प्रतिमाओं का परिचय प्राप्त करते हैं। महाराज दशरथ की प्रतिमा दिखाये जाने पर और यह बताये जाने पर कि प्रतिमागृह दिवंगत रघुवंशी राजाओं का स्मारकभवन है, भरत मूर्च्छित हो जाते हैं। मूर्च्छा से उठने पर भरत को राम और दशरथ का पूरा वृत्तान्त बताया जाता है और भरत पुनः मूर्च्छित हो जाते हैं। इतनेमें कौसल्या आदि रानियाँ प्रतिमागृह में पहुँचती हैं। भरत मूर्छा से उठते हैं और सुमन्त्र के साथ आये अपने मातृवर्ग से मिलते हैं। कैकेयी पर भरत क्षुब्ध होते हैं और अपने राज्याभिषेक के बदले राम के साथ बनवास करने का दृढ़ निश्चय प्रकट करते हैं।

चतुर्थ अङ्क

राम, सीता और लक्ष्मण के साथ वन में रहने लगे हैं। सुमन्त्र के साथ भरत राम की पर्णकुटी पर जा पहुँचते हैं भरत के स्वर से उन्हें पहचान कर राम उनसे मिलने को उत्सुक हो जाते हैं। भ्रातृमिलन के बाद भरत राम के प्रतिनिधिरूप से अयोध्या का राज्य चलाने पर किसी प्रकार तैयार होते हैं और राम, सीता और लक्ष्मण से विदा लेते हैं।

पञ्चम अङ्क

रावण कपट-परिव्राजक बनकर वन में पहुँचता है और राम का आतिथ्य ग्रहण करता है बातचीत में महाराज दशरथ के श्राद्ध के लिये रावण राम को सुवर्णमृग के निवाप का उपदेश देता है। राम सुवर्णमृग के पीछे चल पड़ते हैं और लक्ष्मण एक महर्षि के स्वागतार्थ चले जाते हैं। सीता रावण का आतिथ्य करने रुक जाती है। रावण सीता को अपना वास्तविक परिचय देता है और डरा-धमकाकर बलात् उनका अपहरण करता है। सीता का करुण-क्रन्दन जटायु को सुन पड़ता है और जटायु रावण के मार्ग में यथाशक्ति विघ्न उपस्थित करता है।

षष्ठ अङ्क

(दृश्य—प्रथम)

रावण सीता को आकाश-मार्ग से भगाये ले जा रहा है और जटायु रावण से लड़ता-भिड़ता उड़ रहा है। अन्त में जटायु की मृत्यु हो जाती है। 'जनस्थान' वन के दो ऋषिकुमार सीतापहरण तथा जटायुवध की घटना अवगत कराने के लिये राम को ढूँढ़ने निकल पड़ते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(दृश्य–द्वितीय)

'जनस्थान'–वन से लौटे सुमन्त्र अयोध्या के राजप्रासाद में भरत से मिलते हैं और सीतापहरण का दुखद समाचार छिपाने की यथाशक्ति चेष्टा करते हैं। रावण के द्वारा सीतापहरण का समाचार मिलते ही भरत कैकेयी पर अपना क्रोध निकालने लगते हैं। कैकेयी क्षमा माँगती हैं और यह निवेदन करती हैं कि उनके मुँह से 'चौदह दिन' के वनवास के बदले 'चौदह वर्ष' का बनवास निकल पड़ा। भरत कैकेयी की बात पर सुमन्त्र के कहने से विश्वास कर लेते हैं और रावण पर आक्रमण करने के लिये उत्कण्ठित हो उठते हैं।

सप्तम अंक

रावण विजय के बाद लङ्का से लौटे राम जनस्थान में पहुँच आये हैं। उनके साथ सीता और लक्ष्मण हैं। जनस्थान की प्राचीन सुखद स्मृति में तीनों एक दूसरे से वार्तालाप कर रहे हैं। इतने में उन्हें भरत और उनकी सेनाओं के वहाँ पहुँचने का समाचार मिलता है। भरत के साथ सुमन्त्र और कैकेयी आदि हैं। सबकी उपस्थिति में भरत अपने अग्रज राम के चरणों में राज्य-भार समर्पण कर देते हैं और कैकेयी की आज्ञा से राम अपना राज्याभिषेक स्वीकार करते हैं।

'प्रतिमा' के इतिवृत्त का रामायण के मूल वृत्त से भेद

सात अङ्कों में अङ्कित प्रतिमानाटक का इतिवृत्त रामायण के मूलवृत्त का नवीन कविकल्पना-प्रसूत रूपान्तर है। नाट्यविद्या की प्राचीन परम्परा के अनुसार नाटककार को जो यह अधिकार प्राप्त है कि वह अपने रस-भाव की दृष्टि से प्राचीन मूलवृत्त में यथासम्भव परिवर्त्तन कर सकता है, उसका पूरा उपयोग प्रतिमानाटक में किया गया है। प्रतिमानाटक में महाकवि भास ने जो घटना-चक्र रचा है वह रामायण के कथानक से इन-इन अंशों में नवीन है :—

(१) प्रथम अङ्क की वल्कल की घटना रामायण में नहीं है। नाटक कवि की यह अपनी कल्पना है, जिसका उद्देश्य सीता और राम के मधुर गार्हस्थ्य का प्रकाशन है। रामायण में राम के राज्याभिषेक में भरत के साथ शत्रुघ्न को भी अनुपस्थित दिखाया गया है किन्तु 'प्रतिमा' में केवल भरत अनुपस्थित रखे गये हैं और शत्रुघ्न को राज्याभिषेक के समय अयोध्या में उपस्थित बताया गया है।

(२) द्वितीय अङ्क में मृत्यु-शय्या पर पड़े दशरथ के सामने उनके स्वर्ग से आये पूर्वजों का जो दृश्य है वह नाटककार की कल्पना है क्योंकि रामायण में इसका कोई निर्देश नहीं है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitized by eGangotri

(३) तृतीय अङ्क की घटना नाटककार की एक मात्र नाटकीय कल्पना है। रामायण में 'प्रतिमागृह' की कोई भी चर्चा नहीं है। वस्तुतः तृतीय अङ्क की प्रतिमागृह-सम्बन्धी कल्पना ही प्रतिमानाटक की जन्मभूमि है।

(४) पञ्चम अङ्क में राम और रावण का जैसा मिलन वर्णित है उसका रामायण में कोई भी निर्देश नहीं। यहाँ मारीचरूपी मायामृग के बदले 'काञ्चनपार्श्व' मृग की कल्पना है और दिवंगत दशरथ के श्राद्ध के लिये इस मृग के अन्वेषण में राम को सीता के पास से जो हटाया गया है वह भी सर्वथा एक नयी कल्पना है।

(५) षष्ठ अङ्क में सुमन्त्र का पुनः दण्डकारण्य में जाना और रावण के द्वारा सीतापहरण की घटना से परचित होना नाटककार की कल्पना है। रामायण में इस प्रकार का कोई वर्णन नहीं है। साथ ही साथ सुमन्त्र द्वारा वर्णित सीता-पहरण के वृत्तान्त से दुखित भरत का अपनी माता कैकेयी को कोसना और कैकेयी का यह कहना कि चौदह दिन के वनवास के बदले चौदह वर्ष का वनवास सम्भ्रमवश उसके मुँह से निकल पड़ा आदि बातें प्रतिमानाटक की इतिवृत्त रचना की विशेषता है क्योंकि रामायण में इस प्रकार का कोई संकेत नहीं। रावणविजय के लिये भरत का सेना-समुद्योग भी नाटककार की ही कल्पना है जिसका रामायण में कोई उल्लेख नहीं है।

(६) सप्तम अङ्क में राम के राज्याभिषेक का जनस्थान में होना, अयोध्या के नरनारियों का इस राज्याभिषेकोत्सव में सम्मिलित होना, विभीषण, सुग्रीव आदि का भी वहाँ विराजमान रहना और पुनः धूमधाम से राज्याभिषेक के लिए सबका अयोध्या जाना आदि नाटककार की इतिवृत्त-कल्पना से सम्बद्ध है। इसका भी रामायण में कोई निर्देश नहीं है।

'प्रतिमा' में चरितचित्रण : रामायण की चरितवर्णना से भिन्न

नाटककार भास ने 'प्रतिमा' में जैसा चरितचित्रण किया है उसी के अनुसार इतिवृत्त-रचना की है। 'प्रतिमा' का चरितचित्रण 'प्रतिमा' के रस-भाव का अनुसरण करता है। जहाँ 'प्रतिमा' में जो मुख्य रस-भाव विवक्षित है वह करुण-रस है और इसी के विविध प्रकार के परिपोष में प्रत्येक चरित विविधरूप में विकसित होते हैं।

राम का चरितचित्रण

'प्रतिमा' के राम रामायण के राम नहीं। रामायण के राम अपने पिता महाराज दशरथ के सम्बन्ध में वह कोमल भाव नहीं रखते जो 'प्रतिमा' के राम में स्पष्ट झलकता है। 'प्रतिमा' के राम अपने राज्याभिषेक के होते-होते रुक जाने और अपने वनवास के सम्बन्ध में प्रसन्न होकर यह कहते हैं—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

'वनगमननिवृत्तिः पार्थिवस्यैव तावत्, मम पितृपरवेत्ता बालभावः स एव।
नवनृपतिविमर्शे नास्ति शङ्का प्रजानामथ च न परिभोगैर्वञ्चिता भ्रातरो मे॥
(पृ० ३१)

वहाँ रामायण के राम का इस अवसर पर कुछ दूसरा ही रूप है :—

'गुरुश्च राजा च पिता च वृद्धः क्रोधात् प्रहर्षादथ वापि कामात्।
यद् व्यादिशेत् कार्यमवेक्ष्य धर्मं कस्तन्न कुर्यादनृशंसवृत्तिः॥
(अयोध्याकाण्ड २१. ५६)

रामायण में राम को कैकेयी पर कुछ क्रोध और क्षोभ भी प्रकट करते वर्णित किया गया है :—

मम प्रव्रजनादद्य कृतकृत्या नृपात्मजा।
सुतं भरतमव्यग्रमभिषेचयतां ततः॥
मयि चीराजिनधरे जटामण्डलधारिणि।
गतेऽरण्यं च कैकेय्या भविष्यति मनःसुखम्॥
(अयोध्याकाण्ड २२, १२. १३)

किन्तु, 'प्रतिमा' (पृ० २८–२९) में राम को कैकेयी के प्रति क्रोध-क्षोभ-रहित दिखाया गया है :—

रामः—...अथ कुत उत्पन्नोऽयं दोषः!
काञ्चुकीयः—स्वजनात्।
रामः—स्वजनादिति। हन्त, नास्ति प्रतीकारः!

शरीरेऽरिः प्रहरति हृदये स्वजनस्तथा।
कस्य स्वजनशब्दो मे लज्जामुत्पादयिष्यति॥

काञ्चुकीयः—तत्र भवत्याः कैकेय्याः।
रामः—किमम्बायाः? तेन हि उदर्केण गुणेनात्र भवितव्यम्।
काञ्चुकीयः—कथमिव?
रामः—श्रूयताम्—

यस्याः शक्रसमो भर्ता मया पुत्रवती च या।
फले कस्मिन् स्पृहा तस्या येनाकार्यं करिष्यति॥

रामायण के कवि ने राम को सीता के स्पृहा-विनोदन के लिए माया-मृग मारीच के प्रति भेजा है :—

आर्यपुत्राभिरामोऽसौ मृगो हरति मे मनः।
आनयैनं महाबाहो क्रीडार्थं नो भविष्यति॥
(अरण्यकाण्ड ४३, ६)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

यावद् गच्छामि सौमित्रे ! मृगमानयितुं द्रुतम् ।
पश्य लक्ष्मण ! वैदेहीं मृगत्वचि गतस्पृहाम् ॥
(अरण्यकाण्ड ४३, ४८)

किन्तु 'प्रतिमा' के नाटककार ने राम को काञ्चन-पार्श्व मृग का पीछा करते चित्रित करते हुए पितृभक्त पुत्र के रूप में प्रस्तुत किया है (पृ० १३९-४०) :—

रावणः—कौसल्यामातः ! अलमतिमनोरथेन । न ते (काञ्चनपार्श्वाः मृगाः) मानुषैर्दृश्यन्ते ।

रामः—भगवन् ! किं हिमवति प्रतिवसन्ति ?

रावणः—अथ किम् ।

रामः—तेन हि पश्यतु भवान्—

सौवर्णान् वा मृगांस्तान् मे हिमवान् दर्शयिष्यति ।
भिन्नो मद्बाणवेगेन क्रौञ्चत्वं वा गमिष्यति ॥

रावणः—(स्वगतम्) अहो असह्यः खल्वस्यावलेपः । (प्रकाशम्) अये विद्युत्-संपात इव दृश्यते । कौसल्यामातः ! इहस्थमेव भवन्तं पूजयति हिमवान् । एष काञ्चनपार्श्वः ।

रामः—भगवतो वृद्धिरेषा ।

सीता—दिष्ट्या आर्यपुत्रो वर्धते ।

रामः—न न—

तातस्यैतानि भाग्यानि यदि स्वयमिहागतः ।
अर्हत्येष हि पूजायां लक्ष्मणं ब्रूहि मैथिलि ! ॥

सीता का चरित-चित्रण

'प्रतिमा' की सीता वही नहीं जो 'रामायण' की सीता है । रामायण की सीता तो महाराज दशरथ की वनवास की आज्ञा के पालन में राम को कुछ खरी-खोटी भी सुनाती है :—

'शान्त्वमाना तु रामेण मैथिली जनकात्मजा ।
वनवासनिमित्तार्थं भर्तारमिदमब्रवीत् ॥
सा तमुत्तमसंविग्ना सीता विपुलवक्षसम् ।
प्रणयाच्चाभिमानाच्च परिचिक्षेप राघवम् ॥
किं त्वामन्यत वैदेहः पिता मे मिथिलाधिपः ।
रामं जामातरं प्राप्य स्त्रियं पुरुषविग्रहम् ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

स्वयं तु भार्यां कौमारीं चिरमध्युषितां सतीम् ।
शैलूप इव मां राम परेभ्यो दातुमिच्छसि ॥
(अयोध्याकाण्ड ३०.१.७)

किन्तु 'प्रतिमा' की सीता राम के राज्याभिषेक में न तो प्रसन्न है और न वनगमन में खिन्न। राम से सीता इतना ही कहती है :—

'प्रियं मे । महाराज एव महाराजः । आर्यपुत्र एवार्यपुत्रः ।' (पृ० २३)

रामायण की सीता मायामृग के आखेट के लिए निकले राम के पीछे लक्ष्मण को न जाते देख लक्ष्मण पर क्रुद्ध होती है :—

'तमुवाच ततस्तत्र क्षुभिता जलकात्मजा ।
सौमित्रे मित्ररूपेण भ्रातस्त्वमसि शत्रुवत् ॥
यस्त्वमस्यामवस्थायां भ्रातरं नाभिपद्यसे ।
इच्छसि त्वं विनश्यन्तं रामं लक्ष्मण मत्कृते ॥
लोभात्तु मत्कृते नूनं नानुगच्छसि राघवम् ।
व्यसनं ते प्रियंमन्ये स्नेहो भ्रातरि नास्ति ते ॥
(अरण्यकाण्ड ४५-५-७)

किन्तु 'प्रतिमा' नाटक के कवि ने सीता के इस व्यक्तित्व का चित्रण करना अनुचित समझकर मायामृग की घटना में लक्ष्मण को ही अनुपस्थित निर्दिष्ट कर दिया है।

कौसल्या का चरित-चित्रण

रामायण में तो कौसल्या को कैकेयी के दुर्व्यवहार पर क्षुब्ध चित्रित किया गया है और भरत पर भी रुष्ट बताया गया है :—

तथैव क्रोशतस्तस्य भरतस्य महात्मनः ।
कौसल्या शब्दमाज्ञाय सुमित्रां चेदमब्रवीत् ॥
आगतः क्रूरकार्यायाः कैकेय्या भरतः सुतः ।
तमहं द्रष्टुमिच्छामि भरतं दीर्घदर्शिनम् ॥
भरतं प्रत्युवाचेदं कौसल्या भृशदुःखिता ।
इदं ते राज्यकामस्य राज्यं प्राप्तमकण्टकम् ।
सम्प्राप्तं वत कैकेय्या शीघ्रं क्रूरेण कर्मणा ॥
प्रस्थाप्य चीरवसनं पुत्रं मे वनवासिनम् ।
कैकेयी कं गुणं तत्र पश्यति क्रूरदर्शिनी ॥
(अयोध्याकाण्ड ७५.५-१२)

किन्तु 'प्रतिमा' में कौसल्या का जो चरित है उसमें कहीं भी उसे रुष्ट अथवा क्षुब्ध नहीं देखा जा सकता।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कैकेयी का चरित-चित्रण

'प्रतिमा' में कैकेयी का जो चरित्र चित्रित है वह एक उदात्त चरित्र है। 'प्रतिमा' (पृ० १६३-६६) में कैकेयी राम के वनवास का वर इसलिये माँगती है कि महाराज दशरथ को दिया गया ऋषि-शाप उसे इसके लिये प्रेरित करता है :—

भरतः—हन्त भोः ! सत्त्वयुक्तानामिक्ष्वाकूणां मनस्विनाम् ।
वधूप्रधर्षणं प्राप्तं प्राप्यात्रभवतीं वधूम् ॥

कैकेयी—(आत्मगतम्) भवतु । इदानीं कालः कथयितुम् । (प्रकाशम्) जात ! त्वं न जानासि महाराजस्य शापम् ।

भरतः—किं शप्तो महाराजः ?

कैकेयी—सुमन्त्र ! आचक्ष्व विस्तरेण ।

सुमन्त्रः—यदाज्ञापयति भवती । कुमार ! श्रूयताम्—पुरा मृगयां गतेन महाराजेन कस्मिंश्चित्सरसि कलशं पूरयमाणो वनगजबृंहितानुकारिशब्दसमुत्पन्नवनगजशङ्कया शब्दवेधिना शरेण विपन्नचक्षुषो महर्षेश्चक्षुर्भूतो मुनितनयो हिंसितः ।

भरतः—हिंसित इति । शान्तं शान्तं पापम् । ततस्ततः ।

सुमन्त्रः—ततस्तमेवं गतं दृष्ट्वा—

तेनोक्तं रुदितस्यान्ते मुनिना सत्यभाषिणा ।
यथाऽहं भोस्त्वमत्येवं पुत्रशोकाद् विपत्स्यसे ॥ इति ।

भरतः—नन्विदं कष्टं नाम ।

कैकेयी—जात ! एतन्निमित्तमपराधे मां निक्षिप्य पुत्रको रामो वनं प्रेषितः । न खलु राज्यलोभेन । कुपरिहरणीयो महर्षिशापः पुत्रविप्रवासं विना न भवति ।

भरतः—अथ तुल्ये पुत्रविप्रवासे कथमहमरण्यं न प्रेषितः ।

कैकेयी—जात ! मातुलकुले वर्त्तमानस्य प्रकृतीभूतस्ते विप्रवासः ।

भरतः—अथ चतुर्दशवर्षाणि किं कारणमवेक्षितानि ।

कैकेयी—जात ! चतुर्दश दिवसा इति वक्तुकामया पर्याकुलहृदयया चतुर्दश वर्षाणि इत्युक्तम् ।

भरतः—अस्ति पाण्डित्यं सम्यग् विचारयितुम् । अथ विदितमेतद् गुरुजनस्य ?

सुमन्त्रः—कुमार ! वसिष्ठवामदेवप्रभृतीनामनुमतं विदितञ्च ।

किन्तु रामायण के कवि ने कैकेयी पर सन्देह दृष्टि रखी है और उसे ही सभी अनर्थ का कारण बताया है :—

कुलस्य त्वमभावाय कालरात्रिरिवागता ।
अङ्गारमुपगुह्य स्म पिता मे नावबुद्धवान् ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मृत्युमापादितो राजा त्वया मे पापदर्शिनी।
मुखं परिहृतं मोहात्कुलेऽस्मिन् कुलपांसनि॥
(अयोध्याकाण्ड ७३, ४–५)

सुमन्त्र का चरित्र-चित्रण

रामायण में सुमन्त्र का जो चरित्र है उससे 'प्रतिमा' के सुमन्त्र का चरित्र सर्वथा भिन्न है। रामायण का सुमन्त्र कैकेयी पर क्रुद्ध होकर उसे मर्मान्तक वाक्य-बाणों से मारता है :—

ततो निधूय सहसा शिरो निःश्वस्य चासकृत्।
पाणिं पाणौ विनिष्पिष्य दन्तान् कटकटाय्य च॥
लोचने कोपसंरक्तं वर्णं पूर्वोचितं जहत्। कोपाभिभूतः सहसा संतापमशुभं गतः॥
मनः समीक्षमाणश्च सूतो दशरथस्य च।
कम्पयन्निव कैकेय्या हृदयं वाक्शरैः शितैः॥
वाक्यवज्रैरनुपमैर्निर्भिन्दन्निव चाशुभैः। कैकेय्याः सर्वमर्माणि सुमन्त्रः प्रत्यभाषत॥
न ह्यकार्यतमं किञ्चित्तव देवीह विद्यते।
पतिघ्नीं त्वामहं मन्ये कुलघ्नीमपि चान्ततः॥
आश्चर्यमिव पश्यामि यस्यास्ते वृत्तमीदृशम्।
आचरन्त्या न विदृता सद्यो भवति मेदिनी॥
(अयोध्याकाण्ड ३५, १–६, १४)

किन्तु 'प्रतिमा' का सुमन्त्र सौम्यस्वभाव और शान्त व्यक्ति है जो दैवदुर्विपाक पर भले ही क्रुद्ध हो, कैकेयी पर नहीं।

'प्रतिमा' का रस

'प्रतिमा' रूपक का वह भेद है जिसे नाटक कहा जाता है। नाटक में रस-भाव की ही दृष्टि से चरित्र-चित्रण और इतिवृत्त-निर्माण दोनों हुआ करते हैं। 'प्रतिमा' के 'रस' के सम्बन्ध में भासनाटक के विचारशील विद्वानों में मतभेद है। महामहोपाध्याय डाक्टर गणपति शास्त्री के अनुसार 'प्रतिमा' का मुख्य रस वीररस है जिसे 'धर्मवीर रस' कहना चाहिये और 'प्रतिमा' में जो करुणरस की अभिव्यक्ति है, वह इसी 'धर्मवीर' की अभिव्यक्ति का अङ्ग है। किन्तु प्रोफेसर ध्रुव की दृष्टि में 'प्रतिमा' का मुख्य अथवा अङ्गी रस करुण है।

वस्तुतः रसाभिव्यक्ति की दृष्टि से करुण रस ही 'प्रतिमा' का मुख्य रस है। प्रथम अङ्क (पृ० २४) में सीता और राम का वल्कल के साथ मनोविनोद—

आदर्शे वल्कलानीव किमेते सूर्यरश्मयः। हसितेन परिज्ञातं क्रीडेयं नियमस्पृहा॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

और साथ ही साथ लक्ष्मण का क्रोध (पृ० ३४)—

'यदि न सहसे राज्ञो मोहं धनुः स्पृश मा दया
स्वजननिभृतः सर्वोऽप्येवं मृदुः परिभूयते ।
अथ न रुचितं मुञ्च त्वं मामहं कृतनिश्चयो
युवतिरहितं कर्तुं यतश्छलिता वयम् ॥

करुण रस का ही प्रादुर्भाव परिपोष का उपाय मात्र है ।

द्वितीय अङ्क तो करुण रस से ओतप्रोत है ही ।

तृतीय अङ्क (पृ० ७२) में भरत की स्वजन-दर्शन की यह उत्सुकता—

पतितमिव शिरः पितुः पादयोः स्निह्यतेवास्मि राज्ञा समुत्थापितः
त्वरितमुपगता इव भ्रातरः क्लेदयन्तीव मामश्रुभिर्मातरः ।
सदृश इति महानिति व्यायतश्चेति भृत्यैरिवाहं स्तुतः सेवया
परिहसितमिवात्मनस्तत्र पश्यामि वेषं च भाषां च सौमित्रिणा ॥

सहृदय सामाजिक में जिस विचित्रता से करुण रस का सञ्चार करती है वह अन्यत्र सुलभ नहीं । 'प्रतिमागृह' में भरत का प्रतिमा-दर्शन और कलाविनोद करुण रस की एक नयी ही उद्भावना है । चतुर्थ अङ्क में जो करुण का विराम है और पञ्चम अङ्क में जो रावण के चरित्र में विस्मय-भाव का प्रकाशन है वह सब सीतापहार की दुखद घटना में पर्यवसित होकर करुण का ही परिपोषक बना दिखाई देता है ।

उत्तररामचरित का करुण काव्यव्यङ्ग्य करुण रस है किन्तु 'प्रतिमा' का करुण नाट्यव्यङ्ग्य करुण रस है । वैसे तो भवभूति ने भी 'उत्तररामचरित' को नाटक-रूप में ही रचा है किन्तु वहाँ जो करुण की अवतारणा है वह कविता का कार्य है । 'प्रतिमा' में करुण रस कविता द्वारा नहीं अपितु नाटक द्वारा अभिव्यक्त किया गया है । नाटक की मुख्य घटना 'प्रतिमागृह' और प्रतिमा-दर्शन में भरत की उत्सुकता—जिसकी स्मृति नाटक के नामकरण में सुरक्षित रखी गयी है—बिना काव्यमय करुण सन्दर्भों के ही करुण रस की उद्गमभूमि बनी प्रतीत हुआ करती है ।

'प्रतिमा' का नायक

प्रतिमा नाटक के आलोचक विद्वानों की दृष्टि में 'राम' प्रतिमानाटक के नायक हैं । डाक्टर गणपति शास्त्री का कहना है :—

'In the Pratima, however, the central Rasa that runs through it, is the Dharmavira mingled with Karuna Rasa–the Dharmavira manifesting itself in the enthusiasm displayed by the hero (Bama) in cherishing the single thought of carrying out the Dharma i, e, fulfilling the mandates of his royal father'–Pratima: Introduction,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

जिसका अभिप्राय यही है कि राम को नायक मान कर नाटककवि ने अपने नाटक में धर्मवीर रस की पूर्ण रूप से अभिव्यक्ति की है। किन्तु ऐसा लगता है कि नाटककार को वहाँ करुणरस की ही अभिव्यक्ति अभिप्रेत है और इस दृष्टि से भरत ही इस नाटक के नायक रूप में चित्रित है।

रामायण में भरत का जो उदात्त चरित्र है उसकी छाप 'प्रतिमा' पर सर्वत्र पड़ी दिखाई देती है। यद्यपि इस नाटक के प्रथम अङ्क (पृ० ३७) में 'भरत' का दर्शन नहीं होता किन्तु राम की इस उक्ति अर्थात्—

'ताते धनुर्न मयि सत्यमवेक्षमाणे मुञ्चानि-मातरि शरं स्वधनं हरन्त्याम्।
दोषेषु ब्राह्मनुजं भरतं हनानि किं रोषणाय रुचिरं त्रिषु पातकेषु॥'

में भरत के व्यक्तित्व का धुँधला चित्र सहृदय सामाजिकों की अन्तर्दृष्टि के आगे अवश्य उपस्थित किया गया है। दूसरे अङ्क (पृ० ६४) में भी भरत को सहृदय सामाजिक नहीं देखते किन्तु राजा दशरथ की इस उक्ति अर्थात्—

'गतो रामः प्रियं तेऽस्तु त्यक्तोऽहमपि जीवितैः।
क्षिप्रमानीयतां पुत्रः पापं सफलमस्त्विति॥'

में वे भरत की प्रतीक्षा में उत्सुक अवश्य हो उठते हैं। सहृदय सामाजिकों की उत्सुकता तीसरे अङ्क में भरत को देखकर शान्त हो जाती है। तीसरे अङ्क (पृ० ७०) में भरत का जो करुण चित्र सहृदय सामाजिक के सामने आता है वही अन्त तक नये-नये दृष्टिकोणों से दीखता चला करता है। सुमन्त्र के साथ भरत की जो उक्ति-प्रयुक्ति है :—

भरतः—पितुर्मे को व्याधिः।
सूतः—हृदयपरितापः खलु महान्।
भरतः—किमाहुस्तं वैद्याः।
सूतः—न खलु भिषजस्तत्र निपुणाः।
भरतः—किमाहारं भुङ्क्ते शयनमपि।
सूतः—भूमौ निरशनः।
भरतः—किमाशा स्यात्।
सूतः—दैवं।
भरत—स्फुरति हृदयं वाहय रथम्।

इसमें भरत का पिता के प्रति स्नेह शोक की एक तीव्र व्यथा से लिपटा प्रतीत हो रहा है। भरत का व्यक्तित्व एक शोकाकुल महापुरुष का व्यक्तित्व है और इस व्यक्तित्व में तन्मय सामाजिक को इस नाटक के अन्य चरितों का व्यक्तित्व भी करुण-व्यक्तित्व ही लगा करता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

सुमन्त्र की यह उक्ति (पृ० ८७)—

सुमन्त्रः—इत इतो भवत्यः—

इदं गृहं तत् प्रतिमानृपस्य नः समुच्छ्रयो यस्य स हर्म्यदुर्लभः ।
अयन्त्रितैरप्रतिहारिकागतैर्विना प्रणामं पथिकैरुपास्यते ॥

(प्रविश्यावलोक्य)

भवत्यः ! न खलु न खलु प्रवेष्टव्यम्–अयं हि पतितः कोऽपि वयस्स्थ इव पार्थिवः ।
देवकुलिकः—परशङ्कामलं कर्तुं गृह्यतां भरतो ह्ययम् ॥

राजा दशरथ को प्रतिमा–दशरथ सिद्ध करने के लिए नहीं अपितु भरत को करुण रस की प्रतिमा सिद्ध करने के लिए है। भरत का कैकेयी के प्रति यह क्षोभ (पृ० ९५)—

अयशसि यदि लोभः कीर्तयित्वा किमस्मान्, किमु नृपफलतर्षः किं नरेन्द्रो न दद्यात् ।
अथ तु नृपतिमातेत्येष शब्दस्तवेष्टो, वदतु भवति ! सत्यं किं तवार्यो न पुत्रः ॥

वस्तुतः भरत के शोक का ही एक प्रकाशन प्रकार है।

चतुर्थ अङ्क (पृ० १०४) में भरत का व्यक्तित्व भरत के शब्दों में स्वयं प्रकाशित है :—

'निर्घृणश्च कृतघ्नश्च प्राकृतः प्रियसाहसः ।
भक्तिमानागतः कश्चित् कथं तिष्ठतु यात्विति ॥'

छठे अङ्क (पृ० १५५) मे भरत की यह उक्ति—

भरतः—तात ! अपि दृष्टस्त्वया लोकाविष्कृतपितृस्नेहः । अपि दृष्टं द्विधाभूत-
मरुन्धतीचारित्रम् । अपि दृष्टं त्वया निष्कारणावहितवनवासं सौभ्रात्रम् ।

भरत के करुण महान् व्यक्तित्व को और भी स्पष्टतया प्रकट कर देती है। भरत का कैकेयी से यह कहना (पृ० १६६)—

भरतः—अनुगृहीतोऽस्मि । आपृच्छाम्यत्रभवतीम् । अद्यैवाहमार्यस्य साहा-
य्यार्थं कृत्स्नं राजमण्डलमुद्योजयामि । अयमिदानीं—
वेलामिमां मत्तगजान्धकारां करोमि सैन्यौघनिवेशनद्धाम् ।
बलैस्तरङ्गैश्च नयामि तुल्यं रत्नानि समुद्रं सह रावणेन ॥

जो रामायण में असम्भव है, भरत की कर्त्तव्यनिष्ठा की तो सूचना देता ही है किन्तु साथ ही साथ भरत के करुण व्यक्तित्व को भी झलका जाता है।

सप्तम अङ्क (पृ० १७७) में सहृदय सामाजिक भरत को अवश्य प्रसन्न देखते हैं–

भरतः—आर्य ! अभिवादये भरतोऽहमस्मि ।

रामः—एह्येहि वत्स ! इक्ष्वाकुकुमार ! स्वस्ति, आयुष्मान् भव ।
वक्षः प्रसारय कवाटपुटप्रमाणमालिङ्ग मां सुविपुलेन भुजद्वयेन ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

उन्नामयाननमिदं शरदिन्दुकल्पं प्रह्लादय व्यसनदग्धमिदं शरीरम् ॥
भरतः—अनुगृहीतोऽस्मि । आर्ये ! अभिवादये, भरतोऽहमस्मि ।
सीता—आर्यपुत्रेण चिरसञ्चारी भव ।
भरतः—अनुगृहीतोऽस्मि । आर्य ! अभिवादये ।
लक्ष्मणः—एह्येहि वत्स ! दीर्घायुर्भव । परिष्वजस्व गाढम् ।
भरतः—अनुगृहीतोऽस्मि । आर्य ! प्रतिगृह्यतां राज्यभारः ।

किन्तु भरत की यह प्रसन्नता करुणा की ही प्रसन्नता है । नाटक को सुखान्त होना चाहिये । भरत की करुणा यद्यपि हँस रही है तथापि वह करुणा ही है ।

'प्रतिमा' और अभिज्ञानशाकुन्तल

भासकृत 'प्रतिमा' की मधुर कल्पना ने महाकवि कालिदास को कम प्रभावित नहीं किया । 'प्रतिमा' के प्रथम अङ्क में वल्कलावृता सीता के सम्बन्ध में अवदातिका की जो उक्ति है :—

'भट्टिनि ! सर्वशोभनीयं सुरूपं नाम' (पृ० १२)

उसी की भावना अभिज्ञानशाकुन्तल में कालिदास की इस स्मरणीय उक्ति की प्रेरणा है:—

"सरसिजमनुविद्धं शैवलेनापि रम्यं, मलिनमपि हिमांशोर्लक्ष्म लक्ष्मीं तनोति ।
इयमधिकमनोज्ञा वल्कलेनापि तन्वी, किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम् ॥
(अभिज्ञानशाकुन्तल १. १७)

'प्रतिमा' के पञ्चम अङ्क (पृ० १२७) में पेड़-पौधों को पानी से पटाती सीता का जो सुन्दर चित्र है—

'योऽस्याः करः श्राम्यति दर्पणेऽपि स नैति खेदं कलशं वहन्त्याः ।
कष्टं वनं स्त्रीजनसौकुमार्यं समं लताभिः कठिनीकरोति ॥'

उसी के आधार पर सम्भवतः महाकवि कालिदास ने शकुन्तला का यह चित्र खींचा है :—

'इदं किलाव्याजमनोहरं वपुः तपःक्षमं साधयितुं य इच्छति ।
ध्रुवं स नीलोत्पलपत्रधारया समीलतां छेत्तुमृषिर्व्यवस्यति ॥'
(अभिज्ञानशाकुन्तल १. १७)

'प्रतिमा' के पञ्चम अङ्क (पृ० १३८) की यह मधुर कल्पना—

'आपृच्छ पुत्रकृतकान् हरिणान् द्रुमांश्च, विन्ध्यं वनं तव सखीर्दयिता लताश्च ।'

अभिज्ञानशाकुन्तल की इस कल्पना में अपने पूर्ण माधुर्य में उभर उठी है—

'पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलं युष्मास्वपीतेषु या
नादत्ते प्रियमण्डनापि भवतां स्नेहेन या पल्लवम् ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitized by eGangotri

आद्ये वः कुसुमप्रसूतिसमये यस्या भवत्युत्सवः
सेयं याति शकुन्तला पतिगृहं सर्वैरनुज्ञायताम् ॥
(अभिज्ञानशाकुन्तल ४. ८)

'प्रतिमा' के सप्तम अङ्क (पृ० १७३) में राम की सीता के प्रति यह उक्तिः—

'अप्युपलभ्यतेऽस्य सप्तपर्णस्याधस्तात् शुक्लवाससं भरतं दृष्ट्वा परित्रस्तं मृगयूथमासीत्।'

अभिज्ञानशाकुन्तल के पञ्चम अङ्क में शकुन्तला की दुष्यन्त के प्रति इस उक्ति में झलक रही है :—

'नन्वेकस्मिन् दिवसे नवमालिकामण्डपे नलिनीपत्रभाजनगतमुदकं तव हस्ते सन्निहितमासीत्।...तत्क्षणे स मे पुत्रकृतको दीर्घापाङ्गो नाम मृगपोतक उपस्थितः। त्वयाऽयं तावत् प्रथमं पिबत्वित्यनुकम्पितोपच्छन्दित उदकेन। न पुनस्तेऽपरिचयाद्धस्ताभ्यामुपगतः। पश्चात्तस्मिन्नेव मया गृहीते सलिलेऽनेन कृतः प्रणयः। तदा त्वमित्थं प्रहसितोऽसि सर्वः सगन्धेषु विश्वसिति। द्वावप्यारण्यकाविति।'

ऐसा लगता है कि भास की रेखा-रचना को कालिदास की कविप्रतिभा ऐसा उन्मीलित कर देती है कि देखने वाले चित्र देखने में ही मुग्ध हो जाते हैं और उसके पूर्वरूप को देखना नहीं चाहते।

प्रतिमा और उत्तररामचरित

'प्रतिमा' की 'प्रतिमा-कल्पना' ने उत्तररामचरित की 'चित्र-वीथी' की कल्पना को भी प्रभावित किया है। यद्यपि उत्तररामचरित की 'चित्रवीथी'-कल्पना संस्कृत काव्यसाहित्य में एक अद्भुत कल्पना है और ऐसी कल्पना है जो चित्र और काव्यकला दोनों के गठबन्धन की एक अभूतपूर्व कल्पना है किन्तु इसकी सृष्टि भास की 'प्रतिमा'-कल्पना के कारण ही संभवतः हुई है। यद्यपि उत्तररामचरित की 'चित्रवीथी' की यह सुन्दरता :—

'अयं तावद्बाष्पस्त्रुटित इव मुक्तामणिसरो, विसर्पन्धाराभिर्लुठति धरणीं जर्जरकणः।
निरुद्धोऽप्यावेगः स्फुरदधरनासापुटतया, परेषामुन्नेयो भवति चिरमाध्मातहृदयः॥
(उत्तररामचरित १. २६)

'प्रतिमा' में कहीं नहीं, और हो भी नहीं सकती, क्योंकि आँसू का अंकन संगीत और चित्र तथा काव्य की कलायें ही कर सकती हैं—मूर्तिकला नहीं, किन्तु तब भी 'प्रतिमा' की 'प्रतिमा-कल्पना' उत्तररामचरित की 'चित्रकल्पना' की एक प्रबल प्रेरणा अवश्य है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

'प्रतिमा' में अलङ्कार-योजना

'प्रतिमा' में अलङ्कार-योजना की वही विशेषता है जो भास के 'स्वप्नवासवदत्तम्' किंवा 'अविमारक' आदि में दिखाई देती है। भास का परमप्रिय अलङ्कार 'उपमा' अलङ्कार है। कालिदास तो उपमा के प्रयोग और उपयोग में सिद्धहस्त प्रसिद्ध ही हैं, किन्तु भास की 'उपमा' भी अपनी स्वाभाविकता और प्रभावमयता का प्रदर्शन किया ही करती है। 'प्रतिमा' के प्रथम अङ्क (पृ० ४१) में लक्ष्मण की यह उक्तिः—

'अनुचरति शशाङ्कं राहुदोषेऽपि तारा, पतति च वनवृक्षे याति भूमिं लता च।
त्यजति न च करेणुः पङ्कलग्नं गजेन्द्रं, व्रजतु चरतु धर्मं भर्तृनाथा हि नार्यः॥

'अर्थान्तरन्यास' के सदुपयोग का एक दृष्टान्त अवश्य है, किन्तु इसमें भी 'उपमानोपमेयभाव' का ही सौन्दर्य छिपा झलक रहा है। यह 'अर्थान्तरन्यास' नीरस नहीं अपितु सरस है।

'प्रतिमा' के तृतीय अङ्क (पृ. ८४) में भरत की इस उक्तिः—

'अयोध्यामटवीभूतां पित्रा भ्रात्रा च वर्जिताम्।
पिपासार्त्तोऽनुधावामि क्षीणतोयां नदीमिव॥'

में 'उपमा' की जो योजना है उसमें भरत की विकल मनःस्थिति का दर्शन स्पष्ट हो रहा है।

भास की 'उत्प्रेक्षा' भी 'प्रतिमा' में बड़ी प्रभावपूर्ण बन पड़ी है। द्वितीय अङ्क (पृ. ४७) में महाराज दशरथ के इस वर्णन :—

'मेरुश्चलन्निव युगक्षयसन्निकर्षे शोषं व्रजन्निव महोदधिरप्रमेयः।
सूर्यः पतन्निव च मण्डलमात्रलक्ष्यः शोकाद् भृशं शिथिलदेहमतिर्नरेन्द्रः॥'

में जो 'उत्प्रेक्षा' है, उसमें महाराज दशरथ और उनके पुत्रशोक—दोनों की महानता और गम्भीरता का स्पष्ट अङ्कन प्रतीत हो रहा है।

'प्रतिमा' के प्रथम अङ्क (पृ. ४३) में भास ने 'वल्कल' पर यह रूपक-रचना की है :—

'तपःसंग्रामकवचं नियमद्विरदाङ्कुशः। खलीनमिन्द्रियाश्वानां गृह्यतां धर्मसारथिः॥

किन्तु इसकी सुन्दरता इसलिये आकर्षक है कि इसके पहले (पृ. २४ में) भास ने 'वल्कल' को 'ससन्देह' अलङ्कार से अलङ्कृत कर दिया है :—

'आदर्शे वल्कलानीव किमेते सूर्यरश्मयः। हसितेन परिज्ञातं क्रीडेयं नियमस्पृहा।

राम के लिये 'वल्कल' पहले तो मनोविनोद का साधन बना और बाद में ही 'तपः संग्रामकवच' आदि रूप में निखरा। अलङ्कार चरित-चित्रण में भी साधन हैं—यह यहाँ स्पष्ट प्रतीत हो रहा है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

महाकवि भास

काल-निर्णय

भारत के साहित्यिक इतिहास की सबसे बड़ी कठिनाई कवियों और काव्य-प्रकृतियों का काल-निर्णय है। महाकवि कालिदास भारत के कविसम्राट् हैं किन्तु अभी तक इनके भी युग के सम्बन्ध में मतभेद चल ही रहे हैं। महाकवि कालिदास ने 'भास' का आदरपूर्वक स्मरण किया है। कालिदास के पहले भास की नाटक-कृतियों का बोलबाला अवश्य रहा होगा। अन्यथा कालिदास को भास की स्मृति क्योंकर हो पाती। किन्तु तब भी भास के काल-निरूपण में एक का मत दूसरे से नहीं मिलता।

भास का समय भिन्न-भिन्न विद्वान् भिन्न-भिन्न मानते आ रहे हैं—म० म० गणपति शास्त्री, म० म० हरप्रसाद शास्त्री आदि विद्वानों की दृष्टि से भास का समय यदि ६००–४०० ई० पूर्व का होना चाहिये तो म० म० डाक्टर काणे, म० म० रामावतार शर्मा आदि विद्वानों के मत में ईसा की ६ वीं १० वीं शताब्दी। डाक्टर काशीप्रसाद जायसवाल, प्रिंसिपल ध्रुव आदि ऐतिह्यविद् भास को यदि २ री–१ ली शताब्दी पूर्व का सिद्ध करना चाहते हैं तो डाक्टर बार्नेट, प्रोफेसर देवधर आदि विद्वान् ईसा की ७ वीं शताब्दी का। भास को ईसा की २ री, ३ री, ४ थी, ५ वीं और छठी शताब्दी में स्थान देने वालों का भी अपना-अपना मत और अपना-अपना दल है। तात्पर्य यही है कि भास के युग के अनिर्णय में जितना संदेह नहीं उतना निर्णय में है।

भास का काल-निर्णय तभी संभव है जब कौटिल्य, शूद्रक, कालिदास और अश्वघोष का काल-निर्णय निःसन्दिग्ध हो जाय। ६ ठी–७ वीं शताब्दी के बाद तो भास को रखा ही नहीं जा सकता, क्योंकि महाकवि बाण के द्वारा भास और भास नाटक, भास-नाटक की विशेषता आदि के निर्देश एक समस्या बन जायेंगे। कालिदास के पहले भास का होना अनिवार्यरूप से आवश्यक है, क्योंकि कालिदास ने भास का नामोल्लेख किया है जिसका कारण है कालिदास के पूर्व भास की नाट्यकृतियों की प्रसिद्धि।

नाट्य-रचना की दृष्टि से भास का समय कालिदास से बहुत पहले का होना चाहिये। भास की नाटक-कृतियों पर भरतकृत नाट्यशास्त्र का प्रभाव नहीं दिखाई देता किन्तु कालिदास की नाटक-कृतियाँ भरतमुनि की नाट्य-परम्परा में आ जाती हैं। म०म० गणपति शास्त्री ने भासकी नाटक-रचना पर भगवान् पाणिनि द्वारा निर्दिष्ट 'नटसूत्र' के सम्प्रदाय के प्रभाव का अनुमान किया है। भास यदि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

पाणिनि के पूर्ववर्त्ती न भी हों, क्योंकि अष्टाध्यायी पर भासकृत प्रयोगों की कोई छाप नहीं दिखाई देती, तब भी इतना तो माना जा सकता है कि भास के नाटक भरतमुनिकृत नाट्यशास्त्र की मर्यादा से पहले की नाट्य मर्यादा का अनुसरण करते हैं।

भास को भगवान् बुद्ध का पूर्ववर्ती मानना, जैसा कि म० म० गणपति शास्त्री का कहना है, ठीक नहीं जँचता, क्योंकि भास के नाटकों में 'शाक्य-श्रमणक', 'नग्ना श्रमणिका' आदि-आदि प्रयोग बहुधा आये हैं।

भास के नाटकों में जिस सामाजिक परिस्थिति का चित्रण है वह कालिदास के नाटकों में चित्रित सामाजिक परिस्थिति से पर्याप्त रूप से प्राचीन है। 'प्रतिमा' नाटक में प्रतिमागृह की प्राङ्गणभूमि में 'वालुका' (बालू) का छींटना जो वर्णित है उसके आधार पर म० म० हरप्रसाद शास्त्री का अनुमान है कि भास ५ वीं शताब्दी ई० पूर्व के रहे होंगे क्योंकि आपस्तम्ब (६०० ई० पूर्व) ने ही 'बालूकास्तरण' का उल्लेख किया है और किसी गृह्यसूत्रकार ने नहीं। भास के 'अविमारक' में जिस प्रकार के वैवाहिक सम्बन्ध का निर्देश है उसे मनुस्मृति युग में अवैध माना गया है। इसके आधार पर भी भास का युग मनुस्मृति (२ री शताब्दी ई० पूर्व) का पूर्ववर्ती सिद्ध किया जाता है।

भास के नाटकों में बौद्ध और जैन धर्म के प्रति कोई सद्भावना का भाव नहीं दिखाई देता, प्रत्युत जो भी धार्मिक आदर्श प्रस्तुत किया गया है वह वैदिक धर्म का ही आदर्श है—भास की प्राचीनता में यह भी एक प्रमाण है।

भास के नाटकों में प्रतिबिम्बित सामाजिक जीवन कौटिलीय अर्थशास्त्र की राजनीति की पृष्ठभूमि-सा लगता है। अर्थशास्त्र में मदिरा-गृह और उसके राजकीय संरक्षण का उल्लेख भास के प्रतिज्ञा-यौगन्धरायण (अङ्क ४ प्रवेशक) की इन पंक्तियों में स्पष्टतया निर्दिष्ट है :—

गात्रसेवक—क इदानीमेषोऽत्र राजमार्गे गात्रसेवक! गात्रसेवक! इति मां शब्दापयति? पानागाराच्चिप्क्रान्तो दृष्टोऽस्मि मम श्वशुरेण सुरापटेन। दृष्ट-मल्लकेन घृतमरिचलवणरूपितो मांसखण्डो मुखे प्रक्षिप्तश्च। स्नुषा रज्यति पीता यदि। श्वश्रुर्नेनु दण्डोद्यता भवति।

धन्याः सुराभिर्मत्ता धन्याः सुराभिरनुलिप्ताः।
धन्याः सुराभिः स्नाता धन्याः सुराभिः संज्ञापिताः॥

अर्थशास्त्र में, बड़े-बड़े नगरों में किन्हीं विशेष अवसरों पर नागरिकों के रात्रि-भ्रमण के प्रतिबन्ध (कर्फ्यू) का जो सङ्केत है और उसके लिए तूर्यवादन के द्वारा सबको सूचित करने का जो विधान है उसका चित्र भास के नाटक 'चारुदत्त' में स्पष्ट चित्रित है :—

विदूषक—भो वयस्य! कः कालः कृतपरिघोषणतया निःसम्पाता राजमार्गाः।

कौटिल्य अर्थशास्त्र और भासनाटक-चक्र में समसामयिक जीवन का जो चित्र है उसके आधार पर भास को ईस्वी पूर्व का ही महाकवि मानना अनिवार्य

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

हो जाता है। कालिदास के पूर्ववर्ती भास को आज-कल उपलब्ध नाटकचक्र की कृति से सम्बद्ध अथवा असम्बद्ध सिद्ध करने के भी अनेकानेक प्रयत्न किये जा चुके हैं। किन्तु इतना निश्चित है कि आलङ्कारिकों द्वारा नामग्रहण के साथ उद्धृत 'स्वप्नवासवदत्त' यदि भासकृत है तो अन्य उपलब्ध १२ नाटक भी भासकृत ही होने चाहिये। भास की कृति के रूप में प्रसिद्ध 'स्वप्नवासवदत्त' आदि तेरहों नाटक एक प्रतिभाशाली नाटक कवि की रचनायें हैं न कि किसी प्राचीन नाटक-मण्डली के द्वारा अभिनय के लिये संगृहीत रूपक-वस्तुयें। डाक्टर विंटरनिट्ज का इसीलिये कहना है :—

'Plays like ऊरुभङ्ग, पाञ्चरात्र *and* बालचरित, *to say nothing of such works as the* स्वप्नवासवदत्त *and* प्रतिज्ञायौगन्धरायण *or* अविमारक *are original works and cannot by any stretch of the term be designated as Compilations.'*

भास की शैली

भास की शैली संस्कृत नाटक की आदर्शशैली कहना चाहिये। नाट्याचार्यों ने जिसे 'भारती वृत्ति' कहा है उसमें आधुनिक नाट्य-मर्यादा का *Dialogue* (कथनोपकथन अथवा संवाद) अन्तर्भूत प्रतीत होता है। भास के नाटकों की जो 'भारती वृत्ति' है वह दूसरे संस्कृत नाटकों में दुर्लभ है। म० म० गणपति शास्त्री का कहना है :—

'The superior excellence of sentences which are not subject to the restrictions of verification is everywhere to be observed in these Rupakas. It really surpasses in grandeur, the style of other works and is incomparable, अर्थात् भास के नाटक-चक्र में वाक्य-योजना की जो विशेषतायें हैं उनका अनुकरण नहीं हो सकता और न उन्हें अन्यत्र पाया ही जाता है।

भास की भाषा बोलचाल की संस्कृत भाषा है। भास की भाषा की स्वाभाविकता कालिदास की भाषा में नहीं। भास की भाषा पहाड़ी निर्झरिणी-सी स्वच्छन्द होते हुए सरल है किन्तु कालिदास की भाषा गङ्गा की धारा-सी संयत और सुन्दर है।

भास ने अपने नाटकों में चरितों के अनुकूल भाषा का प्रयोग किया है। कालिदास के नाटकों में काव्यात्मकता की सुन्दरता स्थान-स्थान पर मिलती है किन्तु भास के नाटक नाटकीयता से पूर्ण हैं। भास को भारती वृत्ति—संवाद-रचना—का अद्वितीय कलाकार कहना कोई अत्युक्ति नहीं होगी। भास की शैली के सम्बन्ध में यह उक्ति :—

'He is terse and sparse in his expression. He tells us more by the things he does not say than by the things he says. He is the master

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

of silence.. अर्थात् 'भास की शब्दार्थ-योजना अभिव्यञ्जना से ओतप्रोत है' सर्वथा युक्तियुक्त है प्रत्येक रस-भाव के अनुकूल, देश और काल के अनुसार भास की भाषा का प्रवाह देखते ही बनता है।

भास की रस-योजना

अलङ्कारशास्त्र में 'रस' को नाट्य और काव्य की आत्मा कहा गया है। भास की नाटक कृतियों में रसरूपी आत्मतत्त्व सर्वत्र झलकता है। भास की रचना एक रसाविष्टहृदय कवि की रचना है और इसीलिये उसमें शब्द-ग्राम, अर्थ-सार्थ उक्तिवैखरी, कल्पना-वैचित्र्य सभी के सभी स्वभावतः खिंचे चले आये हैं। भास को वीर, वात्सल्य, हास्य, अद्भुत, रौद्र और करुणरस पर अधिकार है। भास की शृङ्गार रस की भी नाट्य-कृतियाँ हैं, जिनमें रति अथवा प्रेम का भाव अत्यन्त उत्कृष्ट रूप का अभिव्यक्त हुआ है।

भास की रस योजना में अलङ्कार कहीं भी बाधक नहीं प्रतीत होते। उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक और अर्थान्तरन्यास—इन कतिपय अलङ्कारों की योजना भास की रससिद्ध रचनाओं की एक सुन्दरता है। कालिदास ने भास की नाटक-कृतियों की शाला में अलङ्कार-योजना का अध्ययन किया है। कालिदास की अलङ्कार-योजना की सुन्दरता का बहुत कुछ श्रेय इस दिशा में भास के मार्ग-प्रदर्शन को है। डाक्टर ए० बी० कीथ की यह उक्ति :—

His practical appreciation of the merits of the dramatist (Bhasa) with whose established fame his (Kalidasa's) nascent genius had to contend. अर्थात् 'कालिदास ने भास की विशेषताओं का अपने में आधान किया है क्योंकि कालिदास की उदीयमान कवि-प्रतिभा को भास की चमकती प्रतिभा का सामना करना पड़ा है' कोई अत्युक्ति नहीं।

भास का प्रकृतिवर्णन

भास का प्रकृति-निरीक्षण सूक्ष्म और व्यापक दोनों है। सूक्ष्म इसलिये है कि प्रत्येक दृश्य केवल रेखानिवेश के रूप में नहीं अपितु पूर्ण चित्र के रूप में अङ्कित हुए हैं और व्यापक इसलिये कि भास की नाटक कृतियों में प्रकृति के अनेक दृश्य एक के बाद एक आया-जाया करते हैं। 'स्वप्नवासवदत्त' (१. १६) में सायंकाल का यह चित्रण :—

'खगा वासोपेताः सलिलमवगाढो मुनिजनः
प्रदीप्तोऽग्निर्भाति प्रविचरति धूमो मुनिवनम्।
परिभ्रष्टो दूराद्रविरपि च संक्षिप्तकिरणो
रथं व्यावर्त्यासौ प्रविशति शनैरस्तशिखरम्॥'

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जितना स्वाभाविक है उतना ही सुन्दर और सरस भी है।

कालिदास की कृतियों में प्रकृति और मानव का जो घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित दिखायी देता है और प्रकृति के दृश्य मानव-हृदय के प्रति सान्त्वना और सम-वेदना के भावों से जो ओत-प्रोत लगते हैं उन सब का पूर्वरङ्ग भास की नाट्य-कृतियाँ हैं। भास ने अपने नाटक में अविमारक के वियोग-दुःख में निदाघ को संतप्त चित्रित किया है :—

'अत्युष्णा ज्वरितेव भास्करकरैरापीतसारा मही
यक्ष्मार्त्ता इव पादपाः प्रमुषितच्छाया दवाग्न्याश्रयात्।
विक्रोशन्त्यवशादिवोच्छ्रितगुहाव्यात्तानना पर्वता
लोकोऽयं रविपाकनष्टहृदयः संयाति मूर्च्छामिव ॥' (अविमारक ४.४)

इसी प्रकार 'अविमारक' की प्रसन्नता में प्रकृति भी प्रसन्नता से फूली नहीं समाती :—

'व्याघृष्टसूर्यतिलको विततोडुमालो नष्टातपो मृदुमनोहरशीतवातः।
संलीनकामुकजनः प्रविकीर्णशूरो वेषान्तरं रचयतीव मनुष्यलोकः ॥'
(अविमारक २. १३)

कालिदास ने आकाशमार्ग से इन्द्र-रथ पर चलते हुए महाराज दुष्यन्त के द्वारा देखे गये भूलोक के दृश्य का जो सच्चा और स्वाभाविक चित्र उपस्थित किया है :—

'शैलानामवरोहतीव शिखरादुन्मज्जतां मेदिनी
पर्णाभ्यन्तरलीनतां विजहति स्कन्धोदयात् पादपाः।
संतानैस्तनुभावनष्टसलिला व्यक्तिं भजन्त्यापगाः
केनाप्युत्क्षिपतेव पश्य भुवनं मत्पार्श्वमानीयते ॥' (शाकुन्तल ७. ८)

उसकी रेखा भास के अविमारक (४. ११) में ही बन चुकी है :—

'शैलेन्द्राः कलभोपमा जलधयः क्रीडातटाकोपमा
वृक्षाः शैवलसन्निभाः क्षितितलं प्रच्छन्ननिम्नस्थलम्।
सीमन्ता इव निम्नगाः सुविपुलाः सौधाश्च बिन्दूपमा
दृष्टं वक्रमिवावभाति सकलं संक्षिप्तरूपं जगत् ॥'

महाकवि कालिदास के अभिज्ञानशाकुन्तल (१.९) में द्रुतगतिगामी रथ पर आरूढ़ दुष्यन्त के द्वारा देखे गये प्राकृतिक दृश्यों का यह वर्णन :—

'यदालोके सूक्ष्मं व्रजति सहसा तद्विपुलतां
यदर्धे विच्छिन्नं भवति कृतसंधानमिव तत्।
प्रकृत्या यद्वक्रं तदपि समरेखं नयनयो
र्न मे दूरे किञ्चित् क्षणमपि न पार्श्वे रथजवात् ॥'

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

अपनी स्वाभाविकता में जितना सुन्दर है उतना ही भास के प्रतिमानाटक (पृ. ७१) में तीव्रगामी रथ पर आरूढ़ भरत के द्वारा देखे गये प्राकृतिक दृश्यों का यह वर्णन भी स्वभावमनोहर है :—

'द्रुमा धावन्तीव द्रुतरथगतिक्षीणविषया नदीवोद्वृत्ताम्बुर्निपतति मही नेमिविवरे।
अरव्यक्तिर्नष्टा स्थितमिव जवाच्चक्रवलयं रजश्चाश्वोद्धूतं पतति पुरतो नानुपतति॥'

भासकृत रात्रि-वर्णन और संतमस-वर्णन वास्तविकता और कलात्मकता का बड़ा सुंदर संमिश्रण है। भास ने 'अविमारक' (२. १२) में 'सांध्यवेला' का जो चित्र खींचा है :—

'पूर्वा तु काष्ठा तिमिरानुलिप्ता सन्ध्यारुणा भाति च पश्चिमाशा।
द्विधा विभक्तान्तरमन्तरिक्षं यात्यर्धनारीश्वररूपशोभाम्॥

वह संस्कृत काव्य-साहित्य में अपनी स्वभावोक्ति और वक्रोक्ति में अनुपम है।

भास की प्रमुख विशेषता

भास का अधिकार नाट्य-कला पर है। नाट्य-कला का चरितचित्रण-कला अत्यन्त आवश्यक अङ्ग है। यह चरितचित्रण-कला भास की सबसे बड़ी विशेषता है। भास के नाटकों में क्या देव और क्या मनुष्य सभी उपस्थित हैं। सबका चित्रण भास ने किया है और इस ढङ्ग से किया है जिसमें सहृदय सामाजिक उन्हें अनायास अपना सकें।

भास का चरित-चित्रण मनोवैज्ञानिक है। मानवहृदय के अन्तर्द्वन्द्व के चित्रण में भास सिद्धहस्त हैं। भास ने प्रायः २३० चरित अपनी नाट्य कृतियों में चित्रित किये हैं।

महाकवि बाण को भास की 'अनेक चरित-चित्रण-कला' का स्मरण है :—

'सूत्रधारकृतारम्भैर्नाटकैर्बहुभूमिकैः। सपताकैर्यशो लेभे भासो देवकुलैरिव॥'

भास की कल्पना द्वारा उद्भावित प्रत्येक चरित का अपना-अपना व्यक्तित्व है। क्या छोटे और क्या बड़े सभी प्रकार के चरित इस प्रकार चित्रित हैं कि उन्हें पृथक्-पृथक् देखना सरल है।

भास का 'प्रतिमानाटक' भास की चरितचित्रणकला का एक प्रमुख निदर्शन है। 'प्रतिमा' में चित्रित राम और सीता आदि के चित्र में सहृदय सामाजिक अनायास तन्मय हो सकता है। कालिदास और बाण द्वारा उद्भावित चरितों की कल्पनाशक्ति, भवभूति द्वारा चित्रित चरितों की भावुकता और शूद्रक की प्रतिभा से प्रसूत चरितों की स्वाभाविकता—इन सबकी विशेषतायें भास के चरित-चित्रण में घुली-मिली हैं किन्तु तब भी भास का चरित-चित्रण भास का ही चरित-चित्रण है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भास के नाटक-चक्र की कुछ विशेषतायें

भास की कृति के रूप में प्रसिद्ध नाटक-चक्र में कई एक ऐसी विशेषताएँ देखी गई हैं जो अन्य नाटककारों की कृतियों में नहीं के बराबर हैं और जिनके आधार पर यह भी प्रमाणित होता है कि नाटक-चक्र एक नाटककार की रचना है। विशेषताओं में कतिपय मुख्य विशेषतायें निम्न हैं :—

(क) नाट्य-रचना सम्बन्धी समानता

भास के नाटक-चक्र में प्रत्येक नाटक 'नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः' इस निर्देश से प्रारम्भ होता है जब कि कालिदास आदि के नाटकों में सूत्रधार के नान्दीपाठ के बाद 'नान्द्यन्ते'—यह निर्देश रहा करता है।

भास अपने नाटकों के प्रारम्भ का 'स्थापना' इस पारिभाषिक शब्द से सूचित किया करते हैं जब कि अन्य नाटककार अपने नाटकों के प्रारम्भ को 'प्रस्तावना' कहा करते हैं। भास के नाटकों की 'स्थापना' में नाटक अथवा नाटककार का नाम नहीं दिया गया है जब कि और नाटकों में नाटक और नाटककार का नाम-निर्देश 'प्रस्तावना' के आवश्यक अङ्ग रूप से किया गया है। भास के नाटकों की 'प्रशस्ति' (अन्तर्मङ्गल) प्रायः यही उक्ति है :—

'इमां सागरपर्यन्तां हिमवद्विन्ध्यकुण्डलाम्।
महीमेकातपत्राङ्कां राजसिंहः प्रशास्तु नः॥'

जब कि अन्य संस्कृत नाटकों में एक ही नाटककार अपने भिन्न-भिन्न नाटकों के लिए भिन्न-भिन्न 'प्रशस्ति' का नियम रखता रहा है। भास के नाटकों की 'स्थापना' में यह संकेत प्रायः सर्वत्र दिखाई देता है :—'एवमार्यमिश्रान् विज्ञापयामि। अये किं नु मयि विज्ञापनव्यग्रे शब्द इव श्रूयते। अङ्ग पश्यामि।'

(ख) भरतनाट्यशास्त्रभिन्न नाट्य-परम्परा

भास की नाट्य-परम्परा वह नहीं है जो कालिदास आदि की है। भास की नाट्य-परम्परा के सम्बन्ध में डाक्टर विंटरनिट्ज की इसीलिए यह उक्ति है :—

'(The plays of Bhasa) disregard the rules of the Natya shastr In bringing scenes of tho stage which will never occur in classica dramas.' जिसका तात्पर्य यह है कि नाट्य के ये नियम जो संस्कृत नाटकों में पाले गये दिखाई देते हैं, भासकृत नाटकों में नहीं दिखाई देते। भास के नाटक तो नाट्यशास्त्र की मर्यादा से भिन्न नाट्य-मर्यादा का अनुसरण किया करते हैं। प्रतिमानाटक (२य अंक) में रङ्गमञ्च पर दशरथ की मृत्यु 'ऊरुभङ्ग' (२य अंक) में दुर्योधन की रङ्गमञ्च पर मृत्यु, 'स्वप्नवासवदत्त' (५म अंक) में रङ्गमञ्च पर निद्रा आदि-आदि बातें ऐसी हैं जो भरतनाट्य-शास्त्र की अभिनव-परम्परा के सर्वथा प्रतिकूल हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नाट्यशास्त्र के अनुसार 'आर्यपुत्र'–यह सम्बोधन सेवक का स्वामी के प्रति नहीं अपितु पत्नी का पति के प्रति किया जाना अभिप्रेत है किन्तु भास के नाटकों में जैसे कि स्वप्नवासवदत्त में ही सेवक भी स्वामी को 'आर्यपुत्र' कहकर सम्बोधित करता है।

भास के नाटकों में किसी प्रमुख नाटक पुरुष का आगमन प्रायः इन शब्दों से सूचित किया गया है :—'उत्सरत उत्सरत आर्या उत्सरत' जो कि अन्य संस्कृत नाटकों में नहीं है।

भास के नाटकों में सामाजिकों को घटना का सम्बन्ध 'काञ्चुकीय' की प्रायः इसी प्रकार की उक्ति से बताया गया है :—'क इह भोः! काञ्चन (रत्न) तोरणद्वारमयशून्यं कुरुते।' जो कि अन्य संस्कृत नाटकों में नहीं है।

(ग) विचारों की समानता

नाटकचक्र में विचारसाम्य सर्वत्र दिखायी देता है जिसके आधार पर यह विश्वास स्वभावतः हो जाता है कि नाटक-चक्र एक कलाकार की कृति है।

नाटक-चक्र के कई एक नाटकों में 'बाहुदण्ड' को प्रकृतिसिद्ध अस्त्र कहा गया है :—

(१) बालचरित (३, ११)—

'गिरितटकठिनांसावेव बाहू ममैतौ, प्रहरणमपरं तु त्वादृशां दुर्बलानाम्॥

(२) पञ्चरात्र (२, ५५)

'सहजौ मे प्रहरणं भुजौ पीनांसकोमलौ।
तावाश्रित्य प्रयुध्येयं दुर्बलैर्गृह्यते धनुः॥

(३) अविमारक (२, ११)—

'वयमपि च भुजायुधप्रधानाः, किमिह सखे! भवतापि शङ्कनीयाः॥'

(४) मध्यमव्यायोग (१, ४२)—

'काञ्चनस्तम्भसदृशो रिपूणां निग्रहे रतः।
अयं तु दक्षिणे बाहुरायुधं सहजं मम॥'

नाटकचक्र में कई एक नाटकों में 'श्री' (लक्ष्मी) को 'साहस' के साथ प्रसन्न रहने वाली कहा गया है :—

(१) चारुदत्त–'साहसे खलुश्रीर्वसति'। (२) पञ्चरात्रम्–'श्रीर्न सन्तोषमिच्छति।'

(३) स्वप्नवासवदत्त—'प्रायेण हि नरेन्द्रश्रीः सोत्साहैरेव भुज्यते।'

नाटकचक्र के कतिपय नाटकों में पेड़-पौधों के सींचे गये होने के कारण नगर का अनुमान वर्णित किया हुआ है :—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(२) प्रतिमानाटक–'सोपस्नेहतया वृक्षाणामभितः खल्वयोध्यया भवितव्यम्।
(३) अभिषेकनाटक—'सोपस्नेहतया वनान्तरस्याभितः खलु किष्किन्धया भवितव्यम्।

(घ) नाट्यात्मक परिस्थितियों का साम्य

नाटकचक्र के प्रायः सभी नाटकों में 'पताकास्थानक' रखा गया है जिसे पाश्चात्य नाट्य की परिभाषा में Dramatic Irony' कहा जाता है।

(ङ) कल्पना साम्य

नाटक–चक्र के नाटकों में कल्पना–साम्य प्रायः सर्वत्र दिखायी देता है। नाटककार की कुछ कल्पनायें तो सर्वथा मौलिक हैं—

(१) अभिषेकनाटक (३. २०) 'कथं लम्बसटः सिंहो मृगेण विनिपात्यते।'
(२) प्रतिमा (५. १८) 'न व्याघ्रं मृगशिशवः प्रधर्षयन्ति।'
(३) मध्यमव्यायोग 'व्याघ्रानुसारचकितो वृषभः सधेनुः।'
(४) चारुदत्त (१. ६) 'व्याघ्रानुसारचकिता हरिणी।'

(च) प्रयोग-साम्य

नाटकचक्र में प्रयोग-साम्य प्रायः सर्वत्र प्रतीत होता है :—

(१) अहो हास्यमभिधानम् (प्रतिज्ञायौगन्धरायण, पञ्चरात्र, दूतघटोत्कच)
(२) अलमिदानीं भवानतिमात्रंसंतप्य(स्वप्नवासवदत्त,अविमारक,चारुदत्त)
(३) सङ्कचारिणोऽनर्थाः (प्रतिज्ञायौगन्धरायण, अविमारक)
(४) श्रूयतां मम पराक्रमः (अभिषेक, प्रतिमा, बालचरित)

(छ) पद्य–पद्यार्थ–साम्य

नाटकचक्र में जहाँ-तहाँ पद्य अथवा पद्यार्थ साम्य भी एक कलाकार का अनुमान करवाया करते हैं :—

(१) किं वक्ष्यतीति हृदयं परिशङ्कितं मे (स्वप्नवासवदत्त ६. १५, अभिषेकनाटक ४. ७)
(२) धर्मस्नेहान्तरे न्यस्ता (प्रतिज्ञायौगन्धरायण २.७ अभिषेकनाटक ६.२३)
(३) लिम्पतीव तमोऽङ्गानि वर्षतीवाञ्जनं नभः)।
असत्पुरुषसेवेव दृष्टिर्निष्फलतां गता॥ (बालचरित ६.१५, चारुदत्त १.१६)
(४) यदि तेऽस्ति धनुःश्लाघा (प्रतिमानाटक १. २०, अभिषेकनाटक ३.२३)

इसी प्रकार सामाजिक परिस्थितियों का साम्य, छन्दोयोजना का साम्य, आर्षप्रयोग का साम्य आदि-आदि अनेक और भी बातें हैं जो नाटक-चक्र को एक कलाकार की कृति के रूप में सिद्ध करती हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भास का संस्कृत-नाटककारों पर प्रभाव

भास के नाटक संस्कृत नाटकों को प्रेरणा प्रदान करते आये हैं। भास ने कालिदास को प्रभावित किया है किन्तु कालिदास की प्रतिभा भास के प्रभाव को आत्मसात् करती अपने ही रूप में अपने आपको प्रकाशित किया करती है। 'प्रतिमा' और 'स्वप्नवासवदत्त' का प्रभाव कालिदास पर स्पष्ट है। भास के 'अविमारक' से भवभूति को प्रेरणा मिली है और वह प्रेरणा मिली है 'मालती-माधव' की रचना में। भास के 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण' ने विशाखदत्त के 'मुद्राराक्षस' को कम प्रभावित नहीं किया है। मुद्राराक्षस के 'चाणक्य' और प्रतिज्ञायौगन्धरायण के 'यौगन्धरायण' में 'चरित्र-चित्रण-साम्य बहुत कुछ पाया जाता है। भास के स्वप्नवासवदत्त और प्रतिज्ञायौगन्धरायण से प्रियदर्शिका, रत्नावली और नागानन्द नाटक पर्याप्त रूप से प्रभावित हैं। भास के नाटक-चक्र में 'स्वप्नवासवदत्त' का संस्कृत नाटकों पर जो प्रभाव पड़ा है वह अमिट है। 'स्वप्नवासवदत्त' के सम्बन्ध में यह उक्ति—

'भासनाटकचक्रेऽपि च्छेकैः क्षिप्ते परीक्षितुम्।
स्वप्नवासवदत्तस्य दाहकोऽभून्न पावकः॥'

वस्तुतः संस्कृत नाट्यसाहित्य पर 'स्वप्नवासवदत्त' की कृति के प्रभाव की सूचना दिया करती है। भास को संस्कृत कविता-सरस्वती का 'हास' कहा गया है। जैसे किसी सुन्दरी की हँसी किसी को भी आकृष्ट कर सकती है वैसे ही भास की नाटककृति भी सामाजिकमात्र को आकृष्ट किया करती है। भास की यह विशेषता अन्यत्र कहीं नहीं पायी जाती।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पात्र-परिचय

पुरुष पात्र

१ सूत्रधार—नाटक का स्थापक।
२ राजा—अयोध्याधिपति महाराज दशरथ।
३ राम—महाराज दशरथ के ज्येष्ठ पुत्र, नाटक के नायक, कौशल्यानन्दन।
४ लक्ष्मण—महाराज दशरथ के पुत्र, सुमित्रातनय।
५ भरत—महाराज दशरथ के पुत्र, कैकेयीतनय।
६ शत्रुघ्न—लक्ष्मण के सोदर भाई।
७ सुमन्त्र—महाराज दशरथ के मन्त्री।
८ सूत—भरत के सारथी।
९ रावण—नाटक का प्रतिनायक लङ्काधिपति।
१० वृद्धतापसद्वय—रावण और जटायु के युद्ध को देखने वाले।
११ देवकुलिक—प्रतिमा-गृह का पुजारी।
१२ तापस—दण्डकारण्य के तपस्वी।
१३ नन्दिलक—तपस्वी के परिजन।
१४ भट—राजपुरुष।
१५ सुधाकार—प्रतिमा-गृह में सुधा का लेप करने वाला।
१६ कांचुकीय—अन्तःपुर का वृद्धसेवक।

स्त्री पात्र

१ नटी—सूत्रधार की स्त्री।
२ कौसल्या—महाराज दशरथ की प्रथम पत्नी, राम की माता।
३ कैकेयी—महाराज दशरथ की द्वितीय पत्नी, भरत की माता।
४ सुमित्रा—महाराज दशरथ की तृतीय पत्नी, लक्ष्मण की माता।
५ सीता—मिथिलेश महाराज जनक की कन्या, राम की पत्नी।
६ अवदातिका—सीता की सखी।
७ प्रतिहारी=अन्तःपुर की द्वारपालिका।
८ विजया—कैकेयी के अन्तःपुर की प्रतिहारी।
९ नन्दिनिका—कैकेयी की परिचारिका।
१० तापसी—दण्डकारण्य की तपस्विनी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

॥ श्रीः ॥

प्रतिमानाटकम्

'प्रकाश' संस्कृत-हिन्दीव्याख्योपेतम्

अथ प्रथमोऽङ्कः

(नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः ।)

यदिङ्गितं चक्रमदृष्टसाह्यं विनैव मृद्दण्डपटैकदेशान् ।
ब्रह्माण्डभाण्डानि सृजत्यखेदं तं कुम्भकारं प्रणतः प्रपद्ये ॥ १ ॥
यो गुरुर्मम विकास्य शैमुषीं कल्पनामपि न जातु जग्मुषीम् ।
सिद्धिमानयत मां दयामये तस्य पादसरसीरुहे श्रये ॥ २ ॥
ध्यात्वा नतेन शिरसा 'जयमणि'-'मधुसूदनौ' पितरौ ।
प्रतिमा 'प्रकाश'विधये प्रयते श्रीरामचन्द्रोऽहम् ॥ ३ ॥
सन्तो गुणेन तुष्यन्ति स नैकान्तेन दुर्लभः ।
दोषाविलेऽपि तेनात्र दृक्पातः क्रियतां बुधैः ॥ ४ ॥

नाटकप्रणयनमाचार्यत्वेनाधुनावधि संस्तुतः प्रधानकविर्भासोऽभिनययोग्यं प्रतिमाऽभिधानं नाटकं निर्मित्सुः प्रारम्भे तस्य निर्विघ्नाभिनयसम्पत्तिं विद्वत्समुदय-प्रतिपत्तिपरिपन्थिदुरितक्षयसाधनं पूर्वरङ्गप्रधानाङ्गं मङ्गलश्लोकपाठं तद्भङ्गेव कथांशनिर्देशं प्रयोगनिपुणेन सूत्रधारेण प्रथमाचरणीयं विभावयंस्तस्य तावत् प्रवेश-माह—'नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधार' इति । नान्द्या अन्ते इति समासः । नान्दी-आनकः, 'दुन्दुभिस्त्वानको भेरी भम्भा नासूश्च नान्द्यपि' इति वैजयन्ती । सा चात्र वाद्यान्तराण्यप्युपलक्षयति । तथा चाभिनेयनाटकीयकथारम्भपूर्वाङ्गभूते

(नान्दी के अन्त में सूत्रधार का प्रवेश)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitized by eGangotri

सूत्रधारः—

सीताभवः पातु सुमन्त्रतुष्टः सुग्रीवरामः सहलक्ष्मणश्च ।
यो रावणार्यप्रतिमश्च देव्या विभीषणात्मा भरतोऽनुसर्गम् ॥ १ ॥

आनकादिवाद्यवादने समाप्त इत्यर्थः पर्यवस्यति । यद्वा—नन्दिरानन्दस्तस्या इयं नान्दी–गीतवाद्यवादनादिक्रिया, तस्या अन्ते-उपरमे इत्यर्थः, तदनुष्ठानं च देवता-परिषदादिप्रसादनाय क्रियते । ततः तदुत्तरकालम्, नान्दीसमाप्त्यव्यवहितोत्तर-काल इति तु नार्थः, मध्ये वाद्यादिस्थापनादौ व्यापारान्तरेऽनुष्ठीयमानेऽपि पौर्वा-पर्याव्याघातात्, अव्यवधानांशस्याविवक्षितत्वात्, तत्त्वेऽप्यधिकचमत्काराऽनाधा-नात् । नान्दीलक्षणं साहित्यदर्पणे यथा–'आशीर्वचनसंयुक्ता स्तुतिर्यस्मात् प्रयुज्यते । देवद्विजनृपादीनां तस्मान्नान्दीति शब्दिता' ॥ इति ॥

प्रविश्य सूत्रधारः कर्त्तव्यस्य कर्मणो निर्विघ्नसम्पूर्त्तये मङ्गलं विधत्ते-**सीताभव** इति । सीतायाः स्वनामख्याताया जनकदुहितुर्भवः क्षेमः तत्कारणमित्यर्थः, कार्यका-रणयोरभेदोपचारकृत ईदृक्प्रयोगः । सुमन्त्रतुष्टः शोभनेन मन्त्रेण मुदितः । सह-लक्ष्मणः-लक्ष्मणसहितः, अथवा भ्रातुरर्थे वनवासतत्परिचरणस्वप्रेयसीवियोगादि-क्लेशानां सोढा लक्ष्मणस्तदभिधानो भ्राता यस्येत्यर्थः । विशेषणद्वयमपीदं रामस्य । सुग्रीवरामः—शोभनकण्ठश्चासौ राम इति कर्मधारयः । कर्तृपदमिदम् अनुसर्गम्–सर्गे सर्गे जन्मनि जन्मनि प्रतिप्रादुर्भावमित्यर्थः, वीप्सायामव्ययीभावः । पातु-रक्षतु अस्मान् युष्मांश्चेति शेषः, तत्रास्मानिति पक्षे प्रयोगसाफल्यप्रदानमत्र पालनेना-भिप्रेतम्, युष्मानिति पक्षे च यथाभवदभीष्टं फलं दद्यादिति ।

उत्तरार्धेन पुनरपि रामं विशिनष्टि—**यो रावणार्यप्रतिम** इति । रावणारिः-रावणशत्रुः, न विद्यते प्रतिमा सादृश्यं यस्यासौ अप्रतिमः निरुपम इत्यर्थः । प्रतिमा शब्दस्य प्रसिद्धं मूर्त्तिवाचकत्वं तथापि-'सरोरुहं तस्य दृशैव निर्जितं जिताः स्मितेनैव विधोरपि श्रियः ! अतद्द्वयीजित्वरसुन्दरान्तरे न तन्मुखस्य प्रतिमा चराचरे' इति नैषधीये सादृश्यपरत्वमपि प्रतीतमिति बोध्यम् । देव्या-सीतया, सहित इति शेषः। विभीषणः रावणानुजः, तस्मिन् आत्माभे स्वसदृशे स्वसमसुखदुःख इति तात्पर्यम् ।

सूत्रधार—सीता के आनन्ददाता, अच्छे मन्त्र के पक्षपाती, सुन्दर कण्ठशाली (अथवा सुग्रीव के मित्र), लक्ष्मण के सहचर, सीताहरण द्वारा कृतापराध रावण के निहन्ता, विभीषणाभिन्नहृदय (अथवा शत्रुभयङ्कर) भगवान् राम जन्म-जन्म में हमारी तुम्हारी रक्षा करें ॥ १ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(नेपथ्याभिमुखमवलोक्य)

आर्ये ! इतस्तावत् ।

(प्रविश्य)

नटी—आर्य ! इयमस्मि ।

अय्य ! इअम्हि ।

सूत्रधारः—आर्ये ! इममेवेदानीं शरत्कालमधिकृत्य गीयतां तावत् ।

नटी—आर्य ! तथा ।

अय्य ! तह । (गायति)

रतः अनुरक्तः च अस्तीति पदमध्याहार्यम् । अथ चात्र-सीता राम-सुमन्त्र-सुग्रीव-लक्ष्मण-रावण-विभीषण-भरताभिधानानि नाटकीयानि प्रमुखपात्राणि मुद्रालङ्कारद्वारोपनिबद्धानि । अप्रतिमघटकः प्रतिमशब्दश्चैकदेशविकृतन्यायमहिम्ना 'प्रतिमा' शब्दं स्मारयन् नाटकस्य नामधेयं प्रतिमानाटकपदव्यपदेश्यताबीजभूतं दशरथप्रतिमावृत्तं चावेदयति। इयं च द्वादशपदा नान्दी मङ्गलसाधारण्यत्र बोध्या । तदुक्तमभियुक्तैः—'पदैर्युक्ता द्वादशभिरष्टाभिर्वा पदैरुत' इति। अत्र पदपदं श्लोकपादं सुबन्ततिङन्तत्वरूपपदत्वभाजं च सङ्गृह्णाति । अत्र यद्यपि 'समाप्य पुनरादानात् समाप्तपुनरात्तते'ति लक्षितं समाप्तपुनरात्तत्वं प्रतिभासते, तथापि पालनस्य रावणारि-त्वविभीषणात्मत्वादिपदप्रत्याय्याशासनार्थत्वेनोत्थिताकाङ्क्षत्वं प्रतिपद्यपरिहरणीयं तदिति बोध्यम् । अत्रेन्द्रवज्रावृत्तम्, तल्लक्षणं यथा—'स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः' ।

इतस्तावदिति—आगम्यतामिति चेष्टाव्यङ्ग्यम् ।

इममिति—अचिरप्रवृत्तम् । तावदितीह प्रथममित्यर्थे । गीयताम्—गानमारभ्य-तामित्यर्थः ।

'अय्य तह' इति—तथेति तदुक्तिः स्वीकृता, गायामीत्यर्थः ।

(नेपथ्य की ओर देखकर)

आर्ये, इधर तो आना ।

(नटी का प्रवेश)

नटी—आर्य, आई तो ।

सूत्रधार—इसी शरद् ऋतु के सम्बन्ध में इस समय कुछ गाओ ।

नटी—अच्छी बात, गाती हूँ । (गाती है)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सूत्रधारः—अस्मिन् हि काले,

चरति पुलिनेषु हंसी काशांशुकवासिनी सुसंहृष्टा ।

(नेपथ्ये)

आर्य ! आर्य !
अय्य ! अय्य !

(आकर्ण्य)

सूत्रधारः—भवतु, विज्ञातम् ।

मुदिता नरेन्द्रभवने त्वरिता प्रतिहाररक्षीव ॥ २ ॥

अस्मिन्निति—इदं चरतीत्यादिना पद्येन सम्बध्यते ।

चरतीति । अस्मिन् काले शरत्समये काशांशुः काशपुष्पप्रकाशा, कवासिनी जलनिवासिनी च । सुसंहृष्टा अतिमुदिता सती हंसी वरटा पुलिनेषु नदीसैकतस्थलीषु चरति-यथेच्छमितस्ततो भ्रमति । हंसी धवला, शरदि काशविकासादत्यच्छप्रभेत्यर्थः । एतावतो भागस्य श्रवणात् प्रवृत्तोऽभिनय इत्यस्माभिरपि सन्नद्धैर्भाव्यमिति नेपथ्यगतानां पात्राणामितस्ततः सम्भ्रमं सम्भवन्तमुत्प्रेक्ष्याह—नेपथ्ये इति । प्रतीहार्याः प्रवेशाय कृतभूमिकाधारणायाः सम्भ्रमकृता द्विरुक्तिः—'आर्य आर्य' इति ।

विज्ञातम्—कस्य पात्रस्य वचनमिदमिति मया विदितमित्यर्थः । तस्यैव विदितोक्तेः पात्रविशेषस्य प्रवेशमनुजानान इव सूत्रधारः प्रतीहारीपदगर्भमार्योत्तरार्द्धं पूर्वार्द्धोपात्तहंस्युपादानमुखेनाह—

मुदितेति । हंसी अस्मिन् काले चरतीति पूर्वत्र पादेऽभिहितमिदानीं केव कस्मिन्निति वक्तव्यं तदाह—नरेन्द्रभवने दशरथाख्यनरपत्यन्तःपुरे प्रतीहाररक्षी प्रतीहारीद्वाराधिकृतेव। सा कथम्भूतेत्यपेक्षायामाह-मुदिता प्रसन्नान्तरङ्गा, त्वरिता कार्या-

---

सूत्रधार—इस शरत्समय में—

काश के फूलों से धवल प्रकाशवाली, (अथवा अतिस्वच्छ काशकुसुमों से आच्छादित नदी तीर में रहनेवाली) हंसी प्रसन्न-चित्त होकर नदीतट पर इस तरह पदसञ्चार कर रही है·····।

(नेपथ्य में)

आर्य, आर्य,

सूत्रधार—अच्छा समझ गया ।

जिस तरह (काशपुष्प-सदृश श्वेत सुदुलवस्त्र पहने) प्रसन्नहृदया द्वारपालिका शीघ्रतापूर्वक महाराज दशरथ के अन्तःपुर में (परिभ्रमण करती है) ॥ २ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

(निष्क्रान्तौ)
स्थापना ।
(प्रविश्य)

प्रतीहारी—आर्य ! क इह काञ्चुकीयानां सन्निहितः ।
अय्य ! को इह कञ्चुईआण सण्णिहिदो ।

धिकृतत्वेन सञ्जातत्वरा । किञ्चात्रोपमानभूतप्रतीहार्यामपि काशांशुकवासिनीति विशेषणं काशवदंशुकं वस्ते इति विगृह्य योजनीयम् । काशकुसुमवसनयोश्च सूक्ष्मत्व-धवलत्वादिकृतं सादृश्यम् । अन्यत् स्पष्टम् ॥ २ ॥

निष्क्रान्ताविति-कथावस्त्वंशस्य स्थापनात् स्थापना*; प्रस्तावनेति पर्यायेणा-पीयमभिधीयते ।

अय्येति—प्रतीहारी कञ्चुकिनं कञ्चिदाह्वयति, कञ्चुकिनां मध्ये कोऽत्र सन्नि-हितः ? सन्निहितः—समीपस्थितः । यस्तथा तेनागन्तव्यमिति तदाशयः ।

(दोनों का प्रस्थान)
[प्रतीहारी का प्रवेश]

प्रतीहारी—आर्य, कौन कञ्चुकी यहाँ उपस्थित है ?

+अत्र गणपतिशास्त्रिणः—

'प्रसाद्य रङ्गं त्रिविधवत् कवेर्नाम च कीर्तयेत् ।
प्रस्तावनां ततः कुर्यात् काव्यप्रख्यापनाश्रयाम् ॥' (नाट्यशा० ६)
'वाञ्छाकलापस्तु कवेरभीष्टार्थप्रकाशनम् ।
स्वाभिधेयगतत्वेन सा द्विधा परिपठ्यते ।
स्वगतं तु स्वगोत्रादिस्वीयकीर्तिप्रशंसनम् ।
अभिधेयगतं यत् तत् काव्यनाम्ना प्रकाशनम् ॥' (भावप्र०)

इत्यादिलक्षणशास्त्रविहिता कविकाव्यकीर्त्तना कालिदासादिनिखिलकविग्रामाचरि-ताऽत्र स्थापनाप्रकरणे कर्त्तव्या सती कस्माच्च कृता ? उच्यते—प्रस्तावनायां कवि-काव्यकीर्त्तनसमुदाचारस्तावदस्य पुराणमहाकवेः काले नावर्त्तत, पश्चात् कालेन कवीनामुपजातं कविकाव्यकीर्त्तनसमुदाचारप्रणयं भूयिष्ठमुपलभ्य तदनुसारिलक्षणं लक्षणकारैः प्रणीतमित्यदोषः । अस्य तु नाटकस्य मातृकाग्रन्थान्तदृष्टपाठानुसारात् प्रतिमानाटकमिति संज्ञा । श्रीरामे वनाय प्रस्थिते दशरथस्य या दशासाप्रतिमागृहे तत्प्रतिमां दृष्टवता भरतेनावगतेति प्रतिमाप्रधानत्वादस्यतथा व्यपदेशः । एतत्कवेश्च 'भास' इति नामधेयमनुमितम् । यथा च तदनुमितिसिद्धिस्तत् स्वप्नवासवदत्तो-पोद्घाते निरूपितं तत एवावगन्तव्यम् इति ।

१ प्र० ना०

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(प्रविश्य)

काञ्चुकीयः—भवति ! अयमस्मि । किं क्रियताम् ?

प्रतीहारी—आर्य ! महाराजो देवासुरसङ्ग्रामेष्वप्रतिहतमहारथो दशरथ आज्ञापयति—शीघ्रं भर्तृदारकस्य रामस्य राज्यप्रभावसंयोगकारका अभिषेकसम्भारा आनीयन्तामिति ।

अय्य ! महाराओ देवासुरसंगामेसु अप्पडिहदमहारहो दसरहो आणवेदि—सिग्घं भट्टिदारअस्स रामस्स रज्जपहावसञ्जोअकारआ अहिसेअसम्भारा आणीअन्तु त्ति ।

काञ्चुकीयः—भवति ! यदाज्ञप्तं महाराजेन, तत् सर्वं सङ्कल्पितम् । पश्य—

किं क्रियताम् इति—अवसरप्राप्तं कार्यमादिश्यतामिति तत्तात्पर्यम् ।

अय्य महाराओ इति—आर्य, इति कञ्चुकिसम्बोधने, महाराजः—दशरथ इति विशेष्यमनतिदूरे देवासुरसंग्रामेषु देवदानवयुद्धेषु अप्रतिहतमनोरथः—अबाधप्रसारः महारथो रथमुख्यो यस्य स तथाभूतो दशरथः आज्ञापयति आदिशति । किमिति जिज्ञासायामाह—शीघ्रमिति । शीघ्रम्-अविलम्बम्, भर्तृदारकस्य—राजकुमारस्य रामस्य राज्यप्रभावसंयोगकारकाः राज्ञः कर्म राज्यं, प्रभावः=कोशदण्डजं तेजः, ताभ्यां संयोगः सम्बन्धस्तस्य कारकाः सम्पादयितारः अभिषेकसम्भाराः=अभिषेकोपकरणानि आनीयन्ताम्=सज्जीक्रियन्ताम् । अस्मिन् आदेशे राज्यप्रभावसंयोगकारिका इत्यंशस्यायमाशयः, इदानीं रामो यौवराज्येऽभिषेक्तव्यः, तस्मिंस्तत्पदमाश्रितवति तस्य राज्यकर्माधिकृतत्वेन स्वत एव राजकार्यभारः समापन्नो भवति; तेन यौवराज्याभिषेक एव राज्यप्रभावसंयोगकारक इति ।

सङ्कल्पितम् इति—सज्जीकृतमित्यर्थः । सज्जीकृतानि यौवराज्याभिषेकोपकरणानि गणयितुं तानि नामग्राहमाह—

(कञ्चुकी का प्रवेश)

कञ्चुकी—आर्य, मैं हूँ, आज्ञा दें, क्या कार्य है ?

प्रतीहारी—आर्य, देवासुरयुद्ध में समरविजयी महाराज दशरथ का आदेश है कि शीघ्रातिशीघ्र राजकुमार राम के राजोचितप्रभुत्व के परिचायक राज्याभिषेक की सारी सामग्रियाँ प्रस्तुत की जायँ ।

कञ्चुकी—आर्य, महाराज की आज्ञा के अनुकूल सब कुछ तैयार है । देखिये—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

छत्रं सव्यजनं सनन्दिपटहं भद्रासनं कल्पितं
न्यस्ता हेममयाः सदर्भकुसुमास्तीर्थाम्बुपूर्णा घटाः ।
युक्तः पुष्यरथश्च मन्त्रिसहिताः पौराः समभ्यागताः
सर्वस्यास्य हि मङ्गलं स भगवान् वेद्यां वसिष्ठः स्थितः ॥३॥

प्रतीहारी—यद्येवं, शोभनं कृतम् ।
जइ एव्वं, सोहण किदं ।

छत्रमिति—छत्रं राजधारणीयं श्वेतातपत्रं सव्यजनं बीजनसाधनान्वितं चामरसहितमित्यर्थः । कल्पितमिति शेषः । सनन्दिपटहं—नन्दिरानन्दः तस्य तत्कालोपयुक्तः पटहो—वाद्यविशेषस्तेन सहितं भद्रासनं मङ्गलमयमासनम्, अत्रापि कल्पितमित्यन्वितम् । सदर्भकुसुमाः—दर्भैः कुशैः कुसुमैः पुष्पैश्च सहिताः (तथा) तीर्थस्य गङ्गादितीर्थविशेषस्य तोयं जलं तेन पूर्णाः भृतान्तराः हेममयाः सौवर्णा घटाः कलशाश्च न्यस्ताः समुपस्थापिताः । राजपुत्राणां यौवराज्याभिषेकावसरे तत्तत्तीर्थोपहृतानाञ्जलानामुपयोग इति तत्सम्प्रदायसिद्धम् । पुष्यरथः क्रीडाविहारप्रयोजनो रथविशेषश्च युक्तः योजिताश्वः कृतः, मन्त्रिभिस्तत्तत्कार्याधिकृतैः प्रधानराज्यकर्मचारिभिः सहिताः पौराः पुरवासिनः समभ्यागताः । अभिषेकदर्शनेन निजाक्षीणि सफलयितुमुपस्थिता इति भावः । नैतावद्भिरुपकरणैरेव सर्वं सम्पाद्यमन्तरेण तत्त्वावधानदक्षपुरोहितोपस्थितिमित्याशयमन्तर्निधायाह—सर्वस्येति । अस्य पुरोदीरितस्य सर्वस्य वस्तुसमुदायस्य मङ्गलोपकरणकत्वेन प्रसिद्धावपि वसिष्ठसन्निधानेनैव तेषां तत्त्वम् इति भावः । अस्य छत्रादेः सर्वस्य मङ्गलोपकरणस्य मङ्गलं कुशलकारणम् भावप्रधाननिर्देशेन कुशलत्वहेतुरित्यर्थः । वसिष्ठः—तदाख्यया प्रसिद्धः ऋषिः वेद्याम् अनुष्ठानस्थाने स्थितः कर्मोपदेष्टृत्वेन वर्त्तमान इति भावः । अत्र काञ्चुकीयोक्तौ साधनसम्पत्तिसमुपस्थितिसूचनेन कार्यावसरः समर्थ्यते । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् । तल्लक्षणं यथा—'सूर्याश्वैर्मसजास्ततः सगुरवः शार्दूलविक्रीडितम्' इति ॥ ३ ॥

जइ इति—मवदुक्तकार्ये कृते पूरिता आवश्यकतेत्यर्थः ।

ये छत्र और चंवर हैं, ये माङ्गलिक बाजे और सिंहासन हैं, यहाँ कुश, पुष्प और मङ्गलप्रद तीर्थजलों से पूर्ण कलश रखे गये हैं, क्रीडारथ जोता खड़ा है, राज मन्त्रियों के साथ सकल पुरजन आ गये हैं, इस समूची आनन्दमयी सृष्टि के प्रवर्त्तक वे भगवान् वसिष्ठ भी वेदी पर विराजमान हैं ॥ ३ ॥

प्रतीहारी—यदि ऐसी बात है तो अति उत्तम ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitized by eGangotri

काञ्चुकीयः--हन्त भोः !

इदानीं भूमिपालेन कृतकृत्याः कृताः प्रजाः ।
रामाभिधानं मेदिन्यां शशाङ्कमभिषिञ्चता ॥ ४ ॥

प्रतीहारी—त्वरतां त्वरतामिदानीमार्यः ।
तुरवदु तुरवदु दाणिं अय्यो ।

काञ्चुकीयः—भवति ! इदं त्वर्यते । (निष्क्रान्तः)

प्रतीहारी--(परिक्रम्यावलोक्य) आर्य ! सम्भवक ! सम्भवक ! गच्छ,
अय्य ! संभवअ ! संभवअ ! गच्छ,

त्वमपि महाराजवचनेनार्यपुरोहितं यथोपचारेण त्वरय ।
तुवं पि महाराअवअणेण अय्यपुरोहिदं जहोपआरेण तुवरेहि ।

(अन्यतो गत्वा) सारसिके ! सारसिके ! सङ्गीतशालां गत्वा
सारसिए ! सारसिए ! सङ्गीदसालं गच्छिअ

हन्त भोः इति--निपातसमुदयोऽयमानन्दव्यञ्जक इति ।

इदानीमिति—इदानीमधुना रामाभिधानं रामनामकं शशाङ्कं शीतलशीलता-प्रियदर्शनत्वादिना चन्द्रमसं मेदिन्यां पृथिव्यां धराभारधारणे यौवराज्येऽभिषिञ्चता स्थापयता भूमिपालेन राज्ञा दशरथेन प्रजाः अस्मदादयः प्रकृतयः कृतकृत्याः कृतार्थाः कृता विहिताः । रामयौवराज्याभिषेको हि जनतामनोरथसिद्धिरित्यर्थः । अत्राभिषिञ्चतेत्यत्र-वर्तमानसामीप्ये लट् तत्स्थाने शतृ । तेन चानुपदमेव भवन्नभि-षेकः समर्थितः ॥

'तुवरदु' इति--अतः परं करणीयानामनुष्ठाने क्षिप्रताऽऽदिश्यते ।

यथोपचारेण यथोचितसम्मानपूर्वकम् । त्वरय-आगन्तुमनुरुध्यस्व । नाट-

---

कञ्चुकी—अहो ! बड़े हर्ष की बात है—

पृथिवी पर के चन्द्र श्रीराम का राज्याभिषेक करके अब महाराज दशरथ ने सचमुच प्रजा को कृतकृत्य कर दिया है ॥ ४ ॥

प्रतीहारी—आर्य, शीघ्रता कीजिये, शीघ्रता ।

कञ्चुकी—आर्ये, यह शीघ्रता कर रहा हूँ ।

प्रतीहारी—(घूमकर और देखकर) आर्य सम्भवक, सम्भवक, जाओ, तुम भी महाराज के आदेशानुसार मान्य पुरोहितमहोदय को यथोचित आदर के साथ शीघ्र बुला लाओ (दूसरी ओर जाकर) ओ सारसिके, सारसिके, संगीतशाला में जाकर अभिनय करनेवालों से कहो कि वे आज एक सामयिक अभिनय दिखाने को तैयार

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नाटकीयेभ्यो विज्ञापय—कालसंवादिना नाटकेन सज्जा भवतेति।
नाडईआणं विण्णवेहि—कालसंवादिणा णाडएण सज्जा होह त्ति।
यावदहमपि सर्वं कृतमिति महाराजाय निवेदयामि।
जाव अहं वि सव्वं किदं त्ति महाराअस्य णिवेदेमि।

(निष्क्रान्ता।)

(ततः प्रविशत्यवदातिका वल्कलं गृहीत्वा)

अवदातिका—अहो अत्याहितम्। परिहासेनापीमं वल्कलमुपनयन्त्या
अहो ! अच्चाहिदं। परिहासेण वि इमं वक्कलं उवणअन्तीए
ममैतावद् भयमासीत्, किं पुनर्लोभेन परधनं हरतः। हसितु-
मम एत्तिअं भअं आसीं, किं पुण लोभेण परधणं हरन्तस्स। हसिदु
मिवेच्छामि। न खल्वेकाकिन्या हसितव्यम्।
विअ इच्छामि। ण खु एआइणीए हसिदव्वं।

कीयेभ्यो नाटकप्रयोगाधिकृतेभ्यः कुशीलवेभ्य इत्यर्थः। अत्र कर्मणि षष्ठी चिन्त्या। सज्जाः-प्रयोगाय कृतसन्नाहाः। निवेदयामि यावत् निवेदयिष्यामि सूचयिष्यामीत्यर्थः। 'यावत्पुरानिपातयोर्लट्' इति भविष्यति लट्।

अहो-कष्टम्—अत्याहितम् महद्भयमुपस्थितम्। किन्तदिति विवृणोति-'परिहासेण' इति—अन्यदीयाम्-इतरस्वामिकाम्, अल्पमूल्याम्-अनधिकमूल्याम्, वृक्षत्वचं तरुवल्कलं, परिहासेन विनोदपरिहासार्थम्, उपनयन्त्याः-गृह्णन्त्याः अपि मम एतावत् स्वानुभवैकगोचरप्रमाणं भयं साध्वसं जातं प्रादुर्भूतं चेत्, लोभेन परधनं-परकीयां सम्पदं हरतश्चोरयतः कीदृग् भयं जायेतेत्यर्थः। एतेन कैकेयीकर्तृकरामराज्यापहारकथेङ्गितेन सूचिता। हसितव्यमिति स्निग्धजनसंविभक्तं हि सुखमधिकं स्वदत इति द्वितीयान्वेषणोचित्यम्।

रहे, मैं तब तक 'सब कुछ तैयार है' ऐसी सूचना महाराज को देती हूँ।

(प्रस्थान)

(वल्कल लिए अवदातिका का प्रवेश)

अवदातिका—ओह ! बड़ा बुरा हुआ। विनोद में भी इन वल्कलों को उठा लाने से जब मैं इतना डर गयी हूँ, तो बुरी नीयत से परकीय धन को हरने वालों की क्या दशा होती होगी ? हँसने की इच्छा-सी हो रही है, परन्तु एकाकी हंसना तो भला न लगेगा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(ततः प्रविशति सीता सपरिवारा)

सीता-हञ्जे ! अवदातिका परिशङ्कितवर्णेव दृश्यते । किन्तु खल्विवैतत् ?
हञ्जे ! ओदादिआ परिसङ्किदवण्णा विअ दिस्सइ । किं णु हु विअ एदं ।

चेटी—भट्टिनि ! सुलभापराधः परिजनो नाम । अपराद्धा भविष्यति ।
भट्टिणि ! सुलहावराहो परिअणो णाम । अवरज्झा भविस्सदि ।

सीता—नहि नहि, हसितुमिवेच्छति ।
णहि णहि, असिदुं विअ इच्छदि ।

अवदातिका—(उपसृत्य) जयतु भट्टिनी । भट्टिनि ! न खल्वहमपराद्धा ।
जेदु भट्टिणी । भट्टिणि ! ण खु अहं अवरज्झा ।

सीता—का त्वां पृच्छति । अवदातिके ! किमेतद् वामहस्तपरिगृहीतम् ।
का तुमं पुच्छदि । ओदादिए ! ओदादिए ! किं एदं वामहत्थपरिगहिदं

हञ्जे इति—पराकारपरिचयचतुरा हि सीता तन्मुखदर्शनमात्रेण तदाशङ्का-मनुमायेत्यमाह-हंजे इति । वयोऽवस्थादिना नीचानां चेटीनां सम्बोधनपदम् । तथा चोक्तम्—'हण्डे हंजे हलाह्वाने नीचां चेटीं सखीं प्रति' इति । परिशङ्कितवर्णेव-परिशङ्किताया: मानसिकशङ्काकुलाया: वर्णो लक्षणमाकार इव वर्णो यस्यास्तथा भूतेव ।

अवरज्झा इति—कृतापराधा भविष्यामीति भाव:, एवञ्च कृतापराधस्य शङ्काकुलत्वमतिसम्भावितमिति त्वदूह: समूल इति तदाशय: ।

ण इति—एवमुक्तवत्याश्चेट्या मुखमीक्षित्वा हासलक्षणं च तत्रावेक्ष्य स्वयं पूर्वोक्तिकारणं भ्रमं मार्जयत्यनेन कथनेन सीतेति बोध्यम् ।

का तुमं इति—त्वदपराधविषये न मया सन्दिग्धं न वा तथा जिज्ञासितमपि

[सपरिवार सीता का प्रवेश]

सीता—अरी सखि, अवदातिका की मुखाकृति कुछ भयाकुल-सी दीख रही है, क्या बात है ?

चेटी—महारानी, अनुचरों से कुछ न कुछ अपराध हो ही जाता है । इससे भी कुछ अपराध हो गया होगा ।

सीता—नहीं, नहीं, वह तो हँसना चाह रही है ।

अवदातिका—(पास आकर) जय हो महारानीजी की । महारानी, मुझसे किसी प्रकार का अपराध नहीं हुआ है ।

सीता—तुमसे पूछती कौन है ? अवदातिका, अरी, यह तुम्हारे बायें हाथ में क्या है ?

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

अवदातिका—भट्टिनि ! इदं वल्कलम् ।
भट्टिणि ! इदं वक्कलं ।

सीता—वल्कलं कस्मादानीतम् ।
वल्कलं किस्स आणीदं ।

अवदातिका—शृणोतु भट्टिनी । नेपथ्यपालिन्यार्यरेवा निर्वृत्तरङ्गप्रयो-
सुणादु भट्टिणी । णेवच्छपालिणी अय्यरेवा णिव्वुत्तरङ्गप्पओ-
जनमशोकवृक्षस्यैकं किसलयमस्माभिर्याचितासीत् । न च तया
अणं असोअरुक्खस्स एक्कं किसलअं अम्हेहि जाइदा आसि । ण अ ताए
दत्तम् । ततोऽर्हत्यपराध इतीदं गृहीतम् ।
दिण्णं । तदो अरिहदि अवराहो त्ति इदं गहिदं ।

सीता—पापकं कृतम् । गच्छ, निर्यातय ।
पावअं किदं । गच्छ, णिय्यादेहि ।

अवदातिका—भट्टिनि ! परिहासनिमित्तं खलु मयैतदानीतम् ।
भट्टिणि ! परिहासणिमित्तं खु मए एदं आणीदं ।

अथापि—त्वमित्थमभिदधासीति त्वयि शङ्कायाः सम्भाव्यते समुदय इति ।

नेपथ्यपालनी—रङ्गालङ्काररक्षाधिकृता सा हि पात्रैरुपयुज्य स्थापितानि तैरु-पयोक्ष्यमाणानि वा वस्त्राभरणादीनि तत्रावहिता पालयितुं नियुज्यते । निर्वृत्तरङ्ग-प्रयोजनम्—अभिनयावसरे कृतोपयोगम् । किसलम्—पल्लवम् । अत्र याचेर्द्विकर्म-कतया द्वितीया, द्वितीयं कर्म 'आर्यरेवा' इति । अत्रैव कर्मत्वस्योक्तेः अर्हति—औचित्यमावहति ।

निर्यातय—परावर्त्तय । परकीयवस्तु हि तदननुज्ञया गृह्यमाणं ग्रहीतारं दोष-भाजं करोति ।

परिहासनिमित्तम्—परिहासार्थम् ।

अवदातिका—महारानीजी, यह वल्कल है ।

सीता—तू वल्कल कहाँ से उठा लाई ?

अवदातिका—महारानीजी, सुनिये, नेपथ्यरक्षिका आर्या रेवा है, उससे मैंने कहा कि यह अशोकपत्र जो नाटक में उपयुक्त हो चुका है, हमें दे, किन्तु उसने नहीं दिया । इसलिये उसके स्थान से यह वल्कल ही उठा लाई हूँ ।

सीता—यह तो बुरा किया । जा, लौटा दे ।

अवदातिका—महारानी, मैं तो इसे हँसी में ले आई हूँ ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सीता—उन्मत्तिके ! एवं दोषो वर्धते । गच्छ, निर्यातय, निर्यातय ।
उन्मत्तिए ! एव्वं दोसो वड्ढइ । गच्छ, णिय्यादेहि, णिय्यादेहि ।

अवदातिका—यद् भट्टिन्याज्ञापयति । (प्रस्थातुमिच्छति)
जं भट्टिणी आणवेदि ।

सीता—हला एहि तावत् ।
हला एहि दाव ।

अवदातिका—भट्टिणि ! इयमस्मि ।
भट्टिणि ! इअम्हि ।

सीता—हला ! किन्नु खलु ममापि तावत् शोभते ।
हला ! किणु हु मम वि दाव सोहदि ।

अवदातिका—भट्टिनि ! सर्वशोभनीयं सुरूपं नाम । अलङ्करोतु भट्टिनी ।
भट्टिणि ! सव्वसोहणीअं सुरूवं णाम । अलङ्करोदु भट्टिणी

उन्मत्तिके—उन्मादिनि, भ्रान्तचित्ते परिहासार्थमन्यदीयवस्त्वादानं न साधु तच्च साधु मत्वाऽनुतिष्ठन्ती भ्रान्तमतित्वमात्मनः सूचयतीति पथा सम्बोधिता । परिहासचोर्यमपि लोभमुपचयन् परमार्थचौर्ये प्रवर्त्तकत्वमुपयातीति भावः, निर्यातय—परावर्त्तय, अत्र द्विरुक्तिः सम्भ्रमसूचनार्था, सम्भ्रमश्च तस्य कार्यस्य त्वरयानुष्ठानं व्यञ्जयितुम् ।

मम वि इति—मया धार्यमाणमिदं वल्कलं श्रियमादधाति न वेति तत्प्रश्नाशयः । रूव्व इति—सुरूपं सुभगं स्वभावरमणीयं वपुः शरीरं, सर्वशोभनीयम्—सर्वैः सुन्दरताऽऽधानसमर्थैः अतथाविधैर्वा पदार्थैः शोभनीयं शोभयितुमलङ्कर्त्तुं समर्थम् । सुन्दरी आकृतिः केनापि पदार्थेन भूषयितुं सुशकेति तात्पर्यम् । अनुमोदितश्चायमर्थः कालिदासेनापि—'किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम्' इति ।

सीता—पगली, इसी प्रकार बुराई बढ़ती है । जा, लौटा दे, लौटा दे ।

अवदातिका—जो आज्ञा । (जाना चाहती है)

सीता—अरी जरा इधर तो आ ।

अवदातिका—महारानी, आई ।

सीता—अरी, क्या यह वल्कल मुझे भी भला लगेगा ?

अवदातिका—महारानीजी, सुन्दर रूप पर सभी चीजें अच्छी लगती हैं । आप पहन कर देखें ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

सीता—आनय तावत्। (गृहीत्वालङ्कृत्य) हला! पश्य, किमिदानीं
आणेहि दाव। हला! पेक्ख, किं दाणिं

शोभते?
सोहदि?

अवदातिका—तव खलु शोभते नाम। सौवर्णिकमिव वल्कलं संवृत्तम्।
तव खु सोहदि णाम। सोवण्णिअं विअ वक्कलं संवुत्तम्।

सीता—हञ्जे! त्वं किञ्चिन्न भणसि।
हंजे! तुवं किञ्चि ण भणासि।

चेटी—नास्ति वाचा प्रयोजनम्। इमानि प्रहर्षितानि तनूरुहाणि
णत्थि वाआए पओअणं। इमें पहरिसिदा तणूरुहा

आणेहि दावेत्यादि—इदानीं वल्कलधारणानन्तरम्, शोभते-भासते मम वपुरित्यर्थः। धृतेनानेन वल्कलेन मदीयशरीरकान्तिरधिकीकृता न वेति तदाशयः। अथवा धारितेनानेन वल्कलेन मदीयशरीरमलङ्क्रियते स्वशोभा वा मत्कायसम्पर्कवशादतिशय्यते इति प्रश्नाशयः। अत्रार्थे सीताया रूपगर्वितत्वं प्रतीयते, तद्वर्णनञ्च तादृश्यां नायिकायां नोपयुज्यत इति प्रथमार्थ एवादरः। तस्मिञ्चाश्रीयमाणे 'किन्नु खलु ममापि तावच्छोभते' इति पूर्वोक्तेन सम पुनरुक्तिरित्युभयतः पाशारज्जुरियम्।

सौवर्णिकम् इति—सुवर्णनिर्मितमिव। त्वत्कायसम्पर्कमहिम्ना तरुवल्कलमिदं सुवर्णनिर्मितमिवावभासत इत्यर्थः।

'ण भणसि' इति—त्वं किञ्चिन्न भणसि, अत्र प्रसङ्गे तवाभिप्रायो नाभिव्यज्यते, तत्र हेतुं न विद्म इति सीताऽभिप्रायः।

'णत्थि' इति—वाचा प्रयोजनम्—वचनस्यावश्यकता 'निमित्तपर्यायप्रयोगे सर्वासां प्रायदर्शनम्' इत्यनुशासनात् निमित्तार्थकप्रयोजनशब्दयोगे वाचेत्यत्र तृतीया। नन्वेवं वाचोऽप्रयोजनत्वेऽनुमापकप्रमाणाभाव इत्यपेक्षायामाह-इमानीति।

सीता—अच्छा ला। (लेकर तथा पहन कर) अरी, देख तो अब अच्छा लगता है?

अवदातिका—आपको तो अच्छा लगता है। यह वल्कल तो अब सुवर्णनिर्मित सा प्रतीत होता है।

सीता—सखि, तुम कुछ नहीं बोलती।

चेटी—वाणी का प्रयोजन नहीं। ये हमारे रोंगटे सब कहे दे रहे हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitized by eGangotri

मन्त्रयन्ते। (पुलकं दर्शयति)
मन्तेन्ति।

सीता—हञ्जे ! आदर्शं तावदानय।
हंजे ! आदंसअं दाव आणेहि।

चेटी—यद् भट्टिन्याज्ञापयति। (निष्क्रम्य प्रविश्य) भट्टिनि ! अयमादर्शः।
जं भट्टिणी आणवेदि। भट्टिणि ! अअं आदंसओ।

सीता—(चेटीमुखं विलोक्य) तिष्ठतु तावदादर्शः। त्वं किमपि वक्तुकामेव।
चिठ्ठदु दाव आदंसओ। तुवं किं वि वत्तुकामो विअ।

चेटी—भट्टिनि ! एवं मया श्रुतम्। आर्यबालाकिः कञ्चुकी भणति—
भट्टिणि ! एवं मए सुदं। अय्यबालाई कंचुई भणादि—
अभिषेकोऽभिषेक इति।
अहिसेओ अहिसेओ त्ति।

सीता—कोऽपि भर्ता राज्ये भविष्यति।
को वि भट्टा रज्जे भविस्सदि।

तनूरुहाणि लोमानि प्रहर्षितानि-उद्गतानि। पुलकितानां रोम्णामेव मदन्तर्गतामन्दानन्दाभिव्यंजकत्वशालित्वे तदभिप्राया वागावश्यकतारहितेति भावः। रोमोद्गमो ह्यानन्दप्रभवः, आनन्दश्चात्र वल्कलाहितत्वत्कायशोभातिशयदर्शनजन्मैवेति मम वचनं भूतार्थव्याहृतिमात्रतामुपगच्छेदिति कृत्वैवाहमवचना स्थितास्मीति चेत्याशयः।

'चिट्ठदु' इति—आनीतस्य दर्पणस्योपयोगस्तावन्मा कारि, किमपि त्वं विवक्षसि, तदाकर्ण्यैव परतः किमपि तदाधारेण निर्धारणीयमिति सीताया आशयः।

को वि इति—दशरथस्य जीवनदशायामत्र राज्ये कस्यापि परिवर्त्तनस्यानावश्यकत्वेनाशङ्कनीयतया कुत्रापि राज्ये कोऽपि कुमारः अभिषेक्ष्यते तदस्माकमत्र ना-

---

(रोमाञ्च दिखाती है)

सीता—सखि, जरा शीशा तो ला।

चेटी—जो आज्ञा। (जाकर तथा आकर) महारानीजी लीजिये यह दर्पण।

सीता—(सखी के मुँह पर दृष्टि देकर) दर्पण रहने दे। अच्छा पहले यह तो बता—क्या तू कुछ कहना चाहती है ?

चेटी—महारानी, हमने ऐसा सुना है। आर्य बालाकि कञ्चुकी कह रहे थे—राजतिलक है, राजतिलक है।

सीता—हाँ, होगा किसी का राजतिलक।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

चेटी—भट्टिनि ! प्रियाख्यानिकं प्रियाख्यानिकम् ।
भट्टिणि ! पिअक्खाणिअं पिअक्खाणिअं ।

सीता—किं किं प्रतीष्य मन्त्रयसे ।
किं किं पडिच्छिअ मन्तेसि ।

चेटी—भर्तृदारकः किलाभिषिच्यते ।
भट्टिदारओ किल अहिसिञ्चीअदि ।

सीता—अपि तातः कुशली ?
अवि तादो कुसली ।

चेटी—महाराजेनैवाभिषिच्यते ।
महाराएण एव्व अहिसिञ्चीअदि ।

सीता—यद्येवं, द्वितीयं मे प्रियं श्रुतम् । विशालतरमुत्सङ्गं कुरु ।
जइ एव्वं, दुदीअं मे पिअं सुदं । विसालदरं उच्छङ्गं करेहि ।

स्येति सीतया औदासीन्याभिव्यंजिका वाचो भङ्गिः ।

प्रियाख्यानिकम् इति—प्रियाख्यानमस्मिन्नस्तीति प्रियाख्यानिकं कर्म शुभ-संवाद इत्यर्थः ।

किम् इति—प्रतीष्य उपलभ्य, किमाधारीकृत्य त्वदीया शुभसंवादश्रावण-प्रवृत्तिरिति भावः ।

भर्तृदारक इति—भर्तुः स्वामिनः दारकः पुत्रः, राजकुमारि इत्यर्थः, तेन चात्र रामो विवक्षितः ।

अवि तादो इति—रामाभिषेकं, पितरि जीवत्यसम्भवं मत्वा तत्कुशलप्रश्नो रामाभिषेकसंवादश्रवणेन दत्तावसर इति बोध्यम् ।

दुदीअं इति—दशरथेन रामो राज्येऽभिषिच्यत इत्यनेन दशरथः कुशली,

[दूसरी चेटी का प्रवेश]

चेटी—महारानीजी, शुभ संवाद है ! शुभ संवाद है !!

सीता—क्या मन में रख कर बोल रही है ?

चेटि—सुना है राजकुमार का अभिषेक हो रहा है ।

सीता—पिताजी सकुशल तो हैं ?

चेटी—महाराज ही तो अभिषेक करा रहे हैं ।

सीता—यदि ऐसी बात है तो मैंने दुहरी खुशखबरी सुनी । अपना अंचल फैला ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

चेटी—भट्टिनि ! तथा । (तथा करोति)

भट्टिणि । तह ।

सीता—(आभरणान्यवमुच्य ददाति)

चेटी—भट्टिनि ! पटहशब्द इव ।

भट्टिणि ! पटहसद्दो विअ ।

सीता—स एव ।

सो एव्व ।

चेटी—एकपदे अवघट्टिततूष्णीकः पटहशब्दः संवृत्तः ।

एक्कपदे ओघट्टिओ तुल्लीओ पटहसद्दो संवुत्तो ।

सीता—को नु खलूद्घातोऽभिषेकस्य । अथवा बहुवृत्तान्तानि राजकुलानि नाम ।

को णु खु उग्घादो अहिसेअस्य । अहव बहुवुत्तान्ताणि राअकुलाणि णाम ।

रामस्य चाभिषेक इति द्वयमति शुभम् । मे प्रियम्, मया श्रुतमिति व्याख्येयम् । उत्सङ्गम्, अञ्चलपटम्, विशालतरम्—परिणाहिनम्, शुभसंवादश्रवणावसरलभ्यपारितोषिकग्रहणायाञ्चलप्रसारणं करणीयं शुभद्वयसंवादश्रावणावसरेतु पारितोषिकद्वैगुण्यमुत्प्रेक्ष्य विशालीकरणायादेशः ।

सो एव्व इति—पटहशब्द एवेत्यर्थः । अभिषेकमङ्गलाङ्गभूतः पटहप्रणादः श्रूयत इत्याशयः ।

एक्कपदे इति—एकपदे-सद्यः अवघट्टिततूष्णीकः—आरब्ध-विरतः पटहशब्दः श्रूयत इति । बहुवृत्तान्तानि—नानाविधकथानि । राजान्तःपुरं हि कतिपयसद्यः परिवर्त्तनाकर इति भावः ।

चेटी—जो आज्ञा । (अंचल फैलाती है)

सीता—(गहने उतार कर देती है)

चेटी—महारानीजी, बाजे की आवाज-सी सुन रही हूँ ।

सीता—हाँ, बाजे ही बज रहे हैं ।

चेटी—बाजे बजते ही बन्द किये गये ।

सीता—अभिषेक में कौन-सा विघ्न आ पड़ा ? अथवा राजकुल की कथा अनन्त होती है ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चेटी—भट्टिनि ! एवं मया श्रुतं—भर्तृदारकमभिषिच्य महाराजो वनं
भट्टिणि ! एवं मए सुदं—भट्टिदारअं अहिसिच्चिअ महाराओ वणं
गमिष्यतीति ।
गमिस्सदि त्ति ।

सीता—यद्येवं, न तदभिषेकोदकं, मुखोदकं नाम !
जइ एव्वं, ण सो अहिसेओदओ, मुहोदअं णाम ।

(ततः प्रविशति रामः)

रामः—हन्त भोः !

आरब्धे पटहे स्थिते गुरुजने भद्रासने लङ्घिते
स्कन्धोच्चारणनम्यमानवदनप्रच्योतितोये घटे ।

भट्टिनि ! एवमिति—एवञ्च रामाभिषेकावसरप्रवृत्तस्य पटहप्रणादस्य झटिति विरतौ दशरथवनगमननिश्चयाकर्णनं कारणं कदाचिदुत्प्रेक्ष्येतेति भावः ।

मुखोदकमिति—राजवनगमनश्रवणप्रवृत्तबाष्पप्रक्षालनार्थमुदकमत्र मुखोदकपदेन विवक्षितमित्यर्थः ।

ततः प्रविशति राम इति—निश्चितप्रतिबद्धराज्याभिषेकस्य वनवासाय राज्ञादिष्टस्य च रामस्य प्रवेशमाहानेन ।

हन्त भोः ! इति—हर्षोऽस्य निपातसमुदायस्यार्थः । स च रामस्य पितृनिर्देशपालनावसरलाभजन्योऽत्र ।

आरब्ध इति । पटहे वाद्यभेदे आरब्धे प्रारब्धवादने, गुरुजने वसिष्ठादिगुरुजने स्थिते अभिषेकमंगलावलोकनोत्सुकतया स्थित इत्यर्थः । भद्रासने सिंहासने लङ्घिते आरूढे मयेति शेषः । घटे तीर्थाहृतजलपूर्णकुम्भे स्कन्धोच्चारणनम्यमानवदनप्रच्योतितोये स्कन्धोच्चारणेन शिरसि आवर्जने सुकरतासम्पादनाय स्कन्धोर्ध्व-

---

चेटी—महारानी जी, मैंने ऐसा सुना है—राजकुमार को अभिषिक्त कराके महाराज वन चले जायेंगे ।

सीता—यदि ऐसी बात हुई तब तो वह अभिषेक-जल आँसू धोने का पानी होगा, अभिषेकजल नहीं ।

(राम का प्रवेश)

राम—ओह !

बाजे बजने लग गये, गुरुवर्ग चले आये, मैं सिंहासन पर बैठा दिया गया, मन्त्रमय तीर्थजलों से पूर्ण घटों को उठा-उठाकर उनके द्वारा मैं नहलाया जाने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

राज्ञाहूय विसर्जिते मयि जनो धैर्येण मे विस्मितः
स्वः पुत्रः कुरुते पितुर्यदि वचः कस्तत्र भो! विस्मयः? ॥५॥

'विश्रम्यतामिदानीं पुत्रे'ति स्वयं राज्ञा विसर्जितस्यापनीतभारोच्छ्वसितमिव मे मनः। दिष्ट्या स एवास्मि रामः, महाराज एव महाराजः। यावदिदानीं मैथिलीं पश्यामि।

अवदातिका--भट्टिनि! भर्तृदारकः खल्वागच्छति। नापनीतं वल्कलम्?
भट्टिणि! भट्टिदारओ खु आगच्छइ। णावणीदं वक्कलं?

देशनयनेन नम्यमानं नम्रीक्रियमाणं यद्वदनं मुखं गलविवरः तस्मात् प्रच्योतितोये पातोन्मुखसलिले सतीत्यर्थः, मयि मल्लक्षणे जने राज्ञा महाराजेन आहूय विसर्जिते भद्रासनादवतार्य गच्छेत्यादिष्टे मे मम (अभिषेकार्थमुपस्थापितस्य विना कमपि दोषमेवाकस्मात्तया विसृष्टस्यापीत्यर्थः) धैर्येण पित्रादेशानुष्ठानप्रावीण्यलक्षणेन गाम्भीर्येण जनो विस्मितः आश्चर्याख्यं भावमावहन्। न चैतदुचितं तत्र विस्मयकारणीभूतालौकिककार्याभावात्, तदेवाह--स्व इति। यदि स्वः औरसः पुत्रः पितुर्वचः वचनं कुरुते प्रतिपालयति तत्र पुत्रकर्तृकपित्राज्ञापालने को विस्मयः? न कोपीत्यर्थः तस्य न्यायप्राप्तत्वेन सततमाशास्यमानत्वादिति भावः। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥५॥

विश्रम्यतामिति--विरम्यताम्--अभिषेकादिति भावः। विसर्जितस्य विसृष्टस्य स्वच्छन्दीकृतस्येति भावः। अपनीतभारोच्छ्वसितम्--अपनीतो दूरीकृतो यो भारो राज्य रक्षणावेक्षणादिकृतस्तेन उच्छ्वसितम्--साश्वासमिव जातमिति योजनीयम्। भारापहारकारणमाह--राम इत्यादिना। अहं पूर्ववद्राम एव केवलं राम एव, न तु महाराजपदाभिलप्यः, महाराजः शासनाधिकृतः (पूर्ववत्) महाराज एवेति (स्ववनवासभरताभिषेकयाचनास्वरूपमजानतो रामस्येदृगुक्तिः सम्भाविनी)।

नापनीतमिति--सुन्दरतमसूक्ष्मक्षौमयोग्याया भवत्या वल्कलपरिधानमालोक्य

लगा, इतना हो जाने पर भी राजा ने मुझे बुलाकर विदा दी। इस स्थिति में मेरी दृढ़ता पर लोग आश्चर्यित रह गये। किन्तु अपना पुत्र यदि पिता की आज्ञा पालता है तो इसमें आश्चर्य की क्या बात है? ॥ ५ ॥

'पुत्र! इस समय राज्याभिषेक रहने दो' इस प्रकार खुद महाराज से विदा प्राप्त कर अपने भार को उतरा समझ कर मेरा मन छुटकारे की सांस ले रहा है। परमात्मा ने बड़ी कृपा की, जो मैं वही राम बना रहा और महाराज महाराज ही बने रहे। अच्छा, तबतक चलकर सीता से भेंट करूँ।

अवदातिका—महारानीजी, राजकुमार आ रहे हैं। आपने अभीतक वल्कल

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

रामः—मैथिलि ! किमास्यते ?

सीता—हम् आर्यपुत्रः । जयत्वार्यपुत्रः ।
हं अय्यउत्तो जेदु अय्यउत्तो ।

रामः—मैथिलि ! आस्यताम् । (उपविशति)

सीता—यद् आर्यपुत्र आज्ञापयति । (उपविशति)
जं अय्यउत्तो आणवेदि ।

अवदातिका—भट्टिनि ! स एव भर्तृदारकस्य वेषः । अलीकमिवैतद् भवेत् ।
भट्टिणि ! सो एव्व भट्टिदारअस्स वेसो । अलिअं विअ एदं भवे ।

सीता—तादृशो जनोऽलीकं न मन्त्रयते । अथवा बहुवृत्तान्तानि राजकुलानि नाम ।
तादिसो जणो अलिअं ण मन्तेदि । अहव बहुवुत्तन्ताणि राअउलाणि णाम ।

रामः कदाचिन्मानमन्यं वा कञ्चन भावमुत्प्रक्षेत, ततोऽनुचितं स्यादिति तदाशयः ।

आस्यतामिति—आगतमात्रस्य रामस्य 'मैथिलि किमास्यते' इति प्रश्नः पुनश्चात्र 'आस्यताम्' इत्यादेशं विचारयतः 'सीता रामागमने प्रत्युत्थानाय स्वासनं विहाय स्थिते'ति स्पष्टमवभासते, तदयं सीतायाश्चारित्र्यविशेष उपनिबद्धो वेदितव्यः।

अलीकमिति—अलीकम् अनुतम् रामाभिषेकवृत्तमसत्यम्, रामवेषस्यापरिवर्त्तनात् इति तदाशयः ।

तादृश इति—विश्वासपात्रतया राजकुले समाद्रियमाणः ।

नहीं उतारा ?

राम—मैथिली, बैठी क्या हो ?

सीता—ऐं, आर्यपुत्र हैं ? जय हो आर्यपुत्र की ।

राम—मैथिली, बैठो । (बैठते हैं)

सीता—जो आज्ञा । (बैठती है)

अवदातिका—महारानी, राजकुमार का वेश तो अभी भी वही है । वह बात झूठी-सी मालूम पड़ती है ।

सीता—वैसे आदमी झूठी खबर नहीं फैलाते । अथवा राजकुल में बहुत-सी घटनायें होती रहती हैं ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

रामः—मैथिलि ! किमिदं कथ्यते ।

सीता—न खलु किञ्चित् । इयं दारिका भणति—अभिषेकोऽभिषेक इति ।
ण खु किञ्चि । इयं दारिआ भणदि—अहिसेओ अहिसेओ त्ति ।

रामः—अवगच्छामि ते कौतूहलम् । अस्त्यभिषेकः । श्रूयताम् । अद्यास्मि महाराजेनोपाध्यायामात्यप्रकृतिजनसमक्षमेकप्रकारसङ्क्षिप्तं कोसलराज्यं कृत्वा बाल्याभ्यस्तमङ्कमारोप्य मातृगोत्रं स्निग्धमाभाष्य 'पुत्र ! राम ! प्रतिगृह्यतां राज्यम्' इत्युक्तः ।

सीता—तदानीमार्यपुत्रेण किं भणितम् ?
तदाणिं अय्यउत्तेण किं भणिदं ?

रामः—मैथिलि ! त्वं तावत् किं तर्कयसि ?

सीता—तर्कयाम्यार्यपुत्रेणाभणित्वा किञ्चिद् दीर्घं निःश्वस्य महाराजस्य
तक्केमि अय्यउत्तेण अभणिअ किञ्चि दिग्घं णिस्ससिअ महाराअस्स

अवगच्छामीति—कौतूहलम् अभिषेकवृत्तान्तश्रवणोत्कण्ठाम् । उपाध्यायाः वसिष्ठादयो विद्यायशस्विनः, अमात्याः सुमन्त्रादयो मन्त्रिणः, प्रकृतयः-प्रजामुख्याः पौराश्च, तेषां समक्षं तेषु शृण्वत्सु, एकप्रकारसंक्षिप्तम्—एकेन प्रकारेण संक्षिप्तं मेलितम्, सकलार्थक्रोडीकरणेऽपि शब्दलाघवकृत संक्षिप्तत्वमत्र बोध्यम् । कोसलराज्यम्-स्वाधिकारवर्ति समग्रं राज्यम्, न तु कमपि भागमेकम्, मातृगोत्रम्-जननीनाम, आभाष्य उच्चार्य कौसल्यानन्दनेत्यदीर्येति भावः ।

तर्कयसीति—अनासादितराज्यभारो यथेच्छं पितृचरणपरिचर्यामाचरामि तन्मां

राम—मैथिली, यह क्या कहती है ?

सीता—कुछ नहीं । यह लड़की अभिषेक-अभिषेक कह रही थी ।

राम—तुम्हारी उत्सुकता समझता हूँ । हाँ सचमुच आज अभिषेक था । सुनो ।

आज पिताजी ने आचार्य, मन्त्री, मित्र, पुरोहित, पुरवासीगण—सभी की उपस्थिति में एक प्रकार से छोटा-सा दरबार बुलाकर मुझे बाल्यकाल से परिचित अपने अङ्क में बैठाकर बड़ी ममता से 'कौसल्यानन्दन' नाम से पुचकारकर कहा—बेटा, यह राज्यभार स्वीकार करो ।

सीता—इस पर आपने क्या उत्तर दिया ?

राम—मैथिली, तुम्हीं बताओ, तुम क्या अनुमान करती हो ?

सीता—मेरा तो यही अनुमान है कि उस समय आर्यपुत्र कुछ भी मुँह से कहे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

पादमूलयोः पतितमिति ।

पादमूलेसु पडिअं त्ति ।

रामः—सुष्ठु तर्कितम् । अल्पं तुल्यशीलानि द्वन्द्वानि सृज्यन्ते ।

तत्र हि पादयोरस्मि पतितः ।

समं बाष्पेण पतता तस्योपरि ममाप्यधः ।

पितुर्मे क्लेदितौ पादौ ममापि क्लेदितं शिरः ॥ ६ ॥

सीता—ततस्ततः ।

तदो तदो ।

मा ततोऽपसार्य नानाप्रपञ्चचपले प्रकृतिपालने नियोजयेति भावमन्तर्निधाय मूकीभावेनैव रामस्य पितृपादपतनं सीतयोहितम् ।

सुष्ठु इति त्वया तर्कितं तथैव मयाऽऽचरितमिति त्वत्तर्कस्य स्वविषयाविसंवादः सुष्ठुभावः । ईदृशश्च सीतायास्तर्को रामसमानशीलताकृत इति स्वसमानशीलपत्नीलाभप्रमुदितस्य रामस्य सन्तोषनिर्भरेयमुक्तिः—तुल्यशीलानीत्यादि । सौभाग्यादेव तेष्वहमपीति तदाशयः । तुल्यशीलानि—सदृशस्वभावानि, द्वन्द्वानि स्त्रीपुंसमिथुनानि ।

कथाप्रसङ्गेन रामकर्तृकपादपतनावसरे वृत्तमन्यदपि रामः प्राह—समिति । समम्—तुल्यकालम् उपरि ऊर्ध्वदेशावच्छेदे पतता प्रवहमानेन तस्य मम पितुर्महाराजस्य बाष्पेण वात्सल्यजाश्रुणा मम पादपतितस्य रामस्य शिरः मस्तकं क्लेदितम् आर्द्रतां गमितम् अधः (नम्रीभूततया नीचैः शिरस्कत्वेन) पतता मे मम बाष्पेण भावनिर्गतेन पितुः महाराजस्य पादौ चरणौ क्लेदितौ प्रक्षालितौ । युगपदेवावां तत्कालप्रवृद्धवात्सल्यभावावेशेन गलद्बाष्पनयनौ सजाताविति भावः ॥ ६ ॥

तदो इति—शेषवृत्तान्तश्रवणोत्कण्ठाद्योतनार्था द्विरुक्तिः ।

बिना ही लम्बी साँस लेकर महाराज के चरणों में झुक गये होंगे ।

राम—ठीक समझा । समान शील वाले जोड़े विरले ही हैं । सचमुच वहाँ मैं महाराज के चरणों पर जा गिरा ।

उस समय हमारे और पिताजी—दोनों के नेत्र साश्रु हो गये, उनके अश्रुजल से हमारा शिर और हमारे अश्रुजल से उनके चरणकमल भींग गये ॥ ६ ॥

सीता—तब फिर ?

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

रामः—ततोऽप्रतिगृह्यमाणेष्वनुनयेषु आपन्नजरादोषैः स्वैः प्राणैरस्मि शापितः।

सीता—ततस्ततः।

तदो तदो।

रामः—ततस्तदानीं,

शत्रुघ्नलक्ष्मणगृहीतघटेऽभिषेके
छत्रे स्वयं नृपतिना रुदता गृहीते।
सम्भ्रान्तया किमपि मन्थरया च कर्णे
राज्ञः शनैरभिहितं च न चास्मि राजा ॥ ७ ॥

तत इति—ततः बाष्पराबिलनयनयोरावयोर्जातयोरनुनयेषु राज्यं ग्राहयितुं महाराजेन विहितेष्वनुरोधेषु मया अप्रतिगृह्यमाणेषु अनभ्युपगम्यमानेषु सत्सु आपन्नजरादोषैः आसादितवार्द्धक्यैः स्वैः प्राणैः शापितः उपालब्धः अस्मि, महाराजेनेति शेषः। यदि जरसाभ्युपेतस्य पितुर्मम प्राणान् रिरक्षिषसि तर्हि राज्यं गृहाणेत्यागृहीतोऽहं महाराजेनेति भावः।

तदानीमिति—अप्रतिपत्तिमूढतादशायामेवावयोरित्यर्थः।

शत्रुघ्नेति—शत्रुघ्नो लक्ष्मणकनिष्ठः लक्ष्मणश्च ताभ्यां गृहीतः करधृतः घटः तीर्थाहृतजलकलशो यस्य तस्मिंस्तथाभूते (अभिषेके) छत्रे श्वेतातपत्ररूपे राजचिह्ने रुदता आनन्दाश्रुविमुञ्चता नृपतिना स्वयम् आत्मना गृहीते सति, प्रवृत्तेऽभिषेककर्मणि इति भावः। सम्भ्रान्ततया त्वरया समुपसर्पन्त्या मन्थरया तदाख्यया कैकेयीपरिचारिकया राज्ञो महाराजदशरथस्य कर्णे किमपि जनान्तरेणाश्राव्यं यथा भवति तथा शनैरभिहितं निवेदितं च अहं राजा नास्मि न भवामि च। तदभिधानमात्रप्रतिबद्धराजभावोऽभूवमन्यथा सर्वाऽपि मदभिषेकसामग्री प्रस्तुता प्रवृत्तोपयोगा चासीदिति भावः। चकारद्वयेन मन्थरोक्तिमद्राजभावयोः प्रतिबन्ध्यप्रतिबन्धकभावः सम्बन्धो व्यक्तमुक्तः। वसन्ततिलका वृत्तम्—'उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः' इति तल्लक्षणम् ॥ ७ ॥

राम—इसके बाद जब मैंने प्रत्येक अनुनय को अस्वीकार कर दिया, तब उन्होंने अपने जीर्ण-शीर्ण प्राणों की शपथ दी।

सीता—तब फिर ?

राम—तब—

शत्रुघ्न और लक्ष्मणने तीर्थजल के घड़े को थामा, रोते हुए महाराज ने स्वतः छत्र संभाला (और इस प्रकार अभिषेक का कार्यारम्भ हुआ)। इतने में ही हाँफती हुई मंथरा ने आकर राजाके कानोंमें धीरेसे कुछ कहा और मैं राजा नहीं हुआ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

सीता—प्रियं मे। महाराज एव महाराजः, आर्यपुत्र एवार्यपुत्रः।
पिअं मे। महाराओ एव्व महाराओ, अय्यउत्तो एव्व अय्यउत्तो।

रामः—मैथिलि! किमर्थं विमुक्तालङ्कारासि?

सीता—न खलु तावदाबध्नामि।
ण खु दाव आवज्झामि।

रामः—न खलु। प्रत्यग्रावतारितैर्भूषणैर्भवितव्यम्। तथा हि—

कर्णौ त्वरापहृतभूषणभुग्नपाशौ
संस्रंसिताभरणगौरतलौ च हस्तौ।
एतानि चाभरणभारनतानि गात्रे
स्थानानि नैव समतामुपयान्ति तावत्॥ ८॥

पिअं मे इति—महाराज एव महाराजः, न तु महाराजत्वादपेत इति, आर्यपुत्र आर्यपुत्र एव, न तु राजत्वसम्बन्धादन्यादृशत्वेन तस्य कियदंशेनापि स्नेहन्यूनीभावाशङ्केति भावः।

विमुक्तालङ्करणा—अवतारिताभरणा।

आबध्नामि—न विमुञ्चामि, सार्वदिको नायमलङ्कारत्यागो मम, किन्तु कियत्कालव्यापीति तदाशयः।

प्रत्यग्रावतारितैः—अचिरपरित्यक्तैः, द्वित्रिक्षणपूर्वमेव भूषणानां परित्यागस्त्वया विहितोऽतः किमपि कारणमत्र स्यादिति रामस्याशयः।

भूषणानामचिरपरित्यक्तत्वसूचकप्रमाणानि प्रतिपादयति—कर्णौ त्वरेत्यादिना कर्णौ त्वरापहृतभूषणभुग्नपाशौ त्वरया शीघ्रतया अपहृतभूषणौ अपसारितालङ्कारावत एव भुग्नौ वक्रतां गतः पाशः ग्रन्थिसमानो भूषणधारणाधारभागो ययोस्तादृशौ, शीघ्रमपनीतभूषणे श्रवणे तदपगमकृतं भुग्नत्वमधुनाऽप्युन्नीयत इति तदपगमकार्यस्यानतिचिरनिर्वृत्ततां विभावयामः। हस्तौ बाहू च संस्रंसिताभरणगौरतलौ संस्रंसिताभरणौ

सीता—अच्छा हुआ, महाराज, महाराज ही रहे और आर्यपुत्र आर्यपुत्र ही रहे।

राम—सीते, गहने क्यों उतार डाले?

सीता—नहीं, नहीं, पहना करती हूँ।

राम—नहीं तो, पहनती तो हो, गहने अभी के उतारे जान पड़ते हैं, क्योंकि—शीघ्रता में आभूषण उतारने के कारण कानों के छेद अभी भी कुछ नीचे की ओर झुके हुए हैं, हस्ताभरण उतारने के कारण दबाव पड़ने से हथेलियों का वर्ण

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitized by eGangotri

सीता—पारयत्यार्यपुत्रोऽलीकमपि सत्यमिव मन्त्रयितुम् ।

पारेदि अय्यउत्तो अलिअं पि सच्चं विअ मन्तेदुं ।

रामः—तेन हि अलङ्क्रियताम् । अहमादर्शं धारयिष्ये । (तथा कृत्वा निर्वर्ण्य) तिष्ठ ।

आदर्शे वल्कलानीव किमेते सूर्यरश्मयः ।
हसितेन परिज्ञातं क्रीडेयं नियमस्पृहा ? ॥ ९ ॥

दूरीकृतालङ्करणो अत एव गौरतलौ कटकादिभूषणस्रंसनसम्भवं बाहुभागगौरत्वमधुनापि विद्यमानं भूषणापगमस्यानतिचिरनिर्वृत्ततां प्रत्याययति । गात्रे वपुषि आभरणभारनतानि भूषणधारणभारनिम्नीभूतानि स्थानानि समताम् आगन्तुकनतत्वपरिहारेण स्वभावावस्थिति भूषणावतारणोत्तरकालशीघ्रलभ्यां नैव उपयान्ति नैव प्राप्नुवन्ति, त्वं भूषणानि नातिपूर्वमपसारितवत्यसि यतस्तव भूषणभारनम्रीभूततत्स्थानसमताप्राप्तिपर्याप्तोऽपि कालो न व्यतीत इति स्वभावोक्तिः । पूर्वोक्तमेव । वृत्तम् ॥ ८ ॥

पारेदि इति—आर्यपुत्रोऽसत्यमपि वस्तु सत्यमिव वर्णयितुं शक्तः, सत्यभूतस्य वस्तुनो यथावद् वर्णनं तु तवातीव सुखेन साध्यमिति सीताया आशयः ।

तिष्ठ—आदर्शाभिमुखी सती निश्चला तिष्ठेति भावः ।

आदर्शे इति । आदर्शे दर्पणे वल्कलानीव वल्कलानि त्वया धृतानीव प्रतिभावन्त इत्यर्थः, प्रतिभानसाम्यादाशङ्कते—एते सूर्यरश्मयः भास्करकिरणानि किम् ? विशेषदर्शनेन निर्णयमधिगम्याह—तव हसितेन हासेन परिज्ञातम् अवगतम्, सूर्यरश्मितया सन्दिह्यमानं वस्तु वल्कलत्वेन निश्चितमित्यर्थः । वल्कलनिर्णयेनैव पृच्छति—क्रीडेयं नियमस्पृहेति । इयं प्रत्यक्षदृश्या तव नियमस्पृहा नियमिजनधार्यवल्कलधारणाभिलाषः तव क्रीडा अथवा वास्तविकनियमस्पृहेति प्रश्नकाकुः ॥ ९ ॥

अभी भी पूर्वानुरूप नहीं हो पाया है और आभूषण के भार से अवनत तुम्हारे अवयव अभी तक स्वाभाविक दशा को नहीं प्राप्त कर सके हैं ॥ ८ ॥

सीता—आप असत्य को सत्य साबित कर सकते हैं ।

राम—जाने दो, तुम गहने पहनो, मैं दर्पण दिखाता हूँ (दर्पण हाथ में लेकर) ठहरो ।

दर्पण में यह कुछ वल्कल-सा मालूम पड़ता है । कहीं ये सूर्य की किरणें तो नहीं हैं । अच्छा, तुम्हारी हँसी ने सारा रहस्य बता दिया । ठीक-ठीक कहो, तपस्विजनोचित यह वल्कल क्या तुमने केवल हँसी-खेल में पहने हैं, अथवा साधना करने का ही विचार है ? ॥ ९ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अवदातिके ! किमेतत् ?

अवदातिका—भर्तः ! 'किन्नु खलु शोभते न शोभते' इति कौतूहलेना-
भट्टा ! किण्णु हु सोहदि ण सोहदि त्ति कोदहलेण
बद्धानि ।
आवज्झा ।

रामः—मैथिलि ! किमिदम् ? इक्ष्वाकूणां वृद्धालङ्कारस्त्वया धार्यते ।
अस्त्यस्माकं प्रीतिः । आनय ।

सीता—मा खलु मा खल्वार्यपुत्रोऽमङ्गलं भणतु ।
मा खु मा खु अय्यउत्तो अमङ्गलं भणादु ।

सीतामुदासीनवदासीनमनुत्तरयन्तीमालोक्य तत्सखीमवदातिकामनुयुङ्क्ते—किमेतदिति । एतत्सीताकर्तृकवल्कलधारणं किम् किंहेतुकमिति प्रश्नः ।

भर्त्तः इति—नेयं सीताया नियमस्पृहा, किन्तु शोभते न वा शोभते इति परीक्षामात्रप्रयोजनेयं वल्कलधारणेति तदाशयः ।

किमिदमिति त्वया क्रियमाणमिदं वल्कलधारणमयुक्तमित्यर्थः । अयुक्तत्वे कारणमाह—इक्ष्वाकूणामिति । इक्ष्वाकूणामिक्ष्वाकुवंश्यानां वृद्धालङ्कारो वार्धक्यधार्याऽलङ्कारो वल्कलं त्वया धार्यते, इक्ष्वाकवो हि वृद्धाः सन्तः पुत्रसंक्रान्तलक्ष्मीका वानप्रस्थे कृतमतयो वल्कलं परिणह्यन्ति । इक्ष्वाकुपदं रामवंशे पुरा प्रादुर्भूतस्य राज्ञो वाचकम्, तत्संबन्धादेव तद्वंशवाचि, तथा च प्रयुक्तं कालिदासेन—'इक्ष्वाकुवंशप्रभवः कथं त्वाम्' इति, अन्यत्रापि—'पुत्रसंक्रान्तलक्ष्मीकैर्यद्वृद्धेक्ष्वाकुभिः कृतम्' इति । प्रीतिः वल्कलधारणाभिलाषः, आनय वल्कलं मह्यं देहीत्यर्थः ।

'मा खलु' इति—भवत्कृतो वल्कलनयनानुरोधो नितरामयुक्तः अमङ्गलापहतत्वादिति सीताऽऽशयः ।

अवदातिके, क्या बात है ?

अवदातिका—'भले लगते हैं या नहीं ?' यही देखने के लिये केवल विनोद में यह वल्कल पहना गया है ।

राम—मैथिलि, क्या बात है ? तुम इक्ष्वाकुओं के वृद्धावस्था के अलङ्कार वल्कल इसी उम्र में पहने हुई हो । मैं भी पहनना चाहता हूँ । लाओ तो ।

सीता—नहीं, आप ऐसा अमङ्गल मुँह से न निकालें ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

रामः--मैथिलि ! किमर्थं वारयसि ?

सीता—उज्झिताभिषेकस्यार्यपुत्रस्यामङ्गलमिव मे प्रतिभाति !

उज्झिदाहिसेअस्स अय्यउत्तस्स अमङ्गलं विअ मे पडिहादि ।

रामः--मा स्वयं मन्युमुत्पाद्य परिहासे विशेषतः ।
शरीरार्धेन मे पूर्वमाबद्धा हि यदा त्वया ॥ १० ॥

(नेपथ्ये)

हा हा महाराजः ।

वारयसि वल्कलानयनप्रार्थनां प्रतिषेधसि ।

उज्झितराज्याभिषेकस्य--परित्यक्त राज्याभिषेकस्य। अयमाशयः--आरब्धाभिषेकपरित्याग एव तावदेकममङ्गलं, वनवासिजनोपयुक्तं वल्कलयाचनमिदं क्रियमाणं 'वनवासपरिक्लेशोऽपि ते भावी'ति सूचयदिव मे द्वितीयामङ्गलभावेन भासत इत्यर्थः ।

मा स्वयमिति--मम परिहासे त्वदुपभुक्तवल्कलयाचनात्मके विशेषतो विशेषेण स्वयम् आत्मनैव मन्युं दुःखं मा उत्पाद्य अलं विधाय । विनोदवत्सि मया भवत्या परिहितस्य वल्कलस्य याचने विधीयमाने ततो भाविनोऽमङ्गलस्याशङ्कया मा व्यथिष्ठा इत्यर्थः । खेदाभावे कारणमुपन्यस्यति--शरीरार्द्धेनेति । यदा त्वया मे मम रामस्य शरीरार्धेन देहार्धभागभूतेन जायालक्षणेन अर्धाङ्गेनेत्यर्थः, पूर्वं मद्याचनावसरतः प्रागेवं वल्कला आबद्धाः शरीरशोभार्थमुपयुक्ताः । 'अर्धो वा एष आत्मनो यत् पत्नी' इति हि श्रूयते । त्वं च वल्कलं वसाना सती ममापि वल्कलवसनत्वं विहितवत्येवासि, तदधुना मया धृतेऽपि वल्कले न किमपि हीयते इति वृथैव ते खेद इति भावः । अत्र 'मा उत्पाद्ये'ति क्त्वा चिन्त्यः ॥ १० ॥

हा हा इति--हा इति खेदे । सम्भ्रमे द्विरुक्तिः । हा महाराजः खेदविषयो दशरथः, शोच्यां दशामनुप्रपन्न इति यावत् ।

राम—मैथिलि, किस लिये रोक रही हो ?

सीता—अभी-अभी आपका अभिषेक होते-होते रुक गया है । इससे आपका वल्कलधारण मुझे अमङ्गल-सा लगता है ।

राम—खुद अमङ्गलकी आशङ्का मत करो, विशेषतः विनोदमें। जब मेरी अर्धाङ्गिनी होकर तुमने पहले ही वल्कल पहन लिये, तो समझो मैंने भी पहन लिये॥१०॥

(नेपथ्य में)

हाय ! हाय ! महाराज !!!

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सीता—आर्यपुत्र ! किमेतत् ?
अय्यउत ! किं एदं ?

रामः—(आकर्ण्य)

नारीणां पुरुषाणां च निर्मर्यादो यदा ध्वनिः ।
सुव्यक्तं प्रभवामीति मूले दैवेन ताडितम् ॥ ११ ॥

तूर्णं ज्ञायतां शब्दः ।

(प्रविश्य)

काञ्चुकीयः—परित्रायतां परित्रायतां कुमारः ।

रामः—आर्य ! कः परित्रातव्यः ?

काञ्चुकीयः—महाराजः ।

किमेतदिति—किमिदं महाराजशोकसूचकसमये समापतितमिति सीतायाः व्याकुलोक्तिः ।

नारीणामिति—यदा नारीणां वनितानां पुरुषाणां च निर्मर्यादः सीमानमतिक्रान्तः ध्वनिः खेदप्रकाशकः समयः शब्दः, (तदा) सुव्यक्तं सुखानुमेयं कारणमस्य कलकलस्येति भावः । सुखानुमेयं कारणमेवोपन्यसितुमाह—प्रभवामीति । दैवेन भागधेयेन प्रभवामीति—'सर्वसामर्थ्यशाली मत्प्रभावः' इति द्योतयितुं मूले प्रधानस्थाने महाराजरूपे ताडितं प्रहृतम्, न तु शाखायां स्कन्धे वा कृतः प्रहार इति । दैवी ह्यपुरुषिकामात्रकृता प्रधानभूतमहाराजविपत्तिरियं न कारणान्तरजनितेति तदाशयः । एतेन महाराजविपत्तिसम्भावनया रामस्य खेदः प्रकटीकृतः ॥ ११ ॥

महाराजः दशरथः परित्रातव्य इति शेषः ।

सीता—आर्यपुत्र, यह क्या हुआ ?

राम—(सुनकर) जो यह नर नारियों का जोरों से कोलाहल सुनाई पड़ रहा है, इससे ज्ञात होता है कि काल ने अपनी सर्वसामर्थ्यशालिता के बल पर मूल में प्रहार किया है ॥ ११ ॥

शीघ्र कोलाहल के कारण का पता लगाओ ।

(प्रवेश कर)

कञ्चुकी—कुमार, रक्षा करें ।

राम—किसकी रक्षा ?

कञ्चुकी—महाराज की ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

रामः—महाराज इति । आर्य ! ननु वक्तव्यम् एकशरीरसंक्षिप्ता पृथिवी रक्षितव्येति । अथ कुत उत्पन्नोऽयं दोषः ।

काञ्चुकीयः—स्वजनात् ।

रामः—स्वजनादिति । हन्त ! नास्ति प्रतिकारः ।

शरीरेऽरिः प्रहरति हृदये स्वजनस्तथा ।
कस्य स्वजनशब्दो मे लज्जामुत्पादयिष्यति ? ॥ १२ ॥

नन्विति—महाराजः परित्रातव्य इत्यभिधानेन महाराजस्य विपद्ग्रस्तताऽनुमीयते, तथा च सकलाया धरण्या रक्षणाय क्षममाणस्य महाराजस्य विपद्ग्रस्तत्वे तत्परिपालितायाः पृथिव्या अपि विपदुपनिपातकृताऽव्यवस्थाग्रासत्वे तत्पालनायापि प्रयत्नः करणीय इति रामस्याशयः । एकशरीरसंक्षिप्ता–एकस्मिन् शरीरे महाराजरूपे संक्षिप्ता तत्पाल्यतया तदन्तर्भूतत्वेन स्थिता पृथिवी धरणी भूमिः रक्षितव्येति । अयं दोषः महाराजस्य विपत्प्राप्तिरूपो दोषः ।

स्वजनात्—आत्मीयात्, परिजनात् इत्यर्थः । आत्मीयजनेनैव जनितोऽयं दोष इत्यर्थः ।

स्वजनादितीति—आत्मीयजनाचरिते दोषे कोऽपि प्रतिकारो नास्ति, परेणापकृते तन्मारणेन तद्वारणेन वा प्रतिक्रियते, स्वजने तु न तेऽभ्युपायाः तेषां दमने आत्मीयदमनेन पुनः खेदावसरोपनिपातात् ।

शरीरे इति—अरिः शत्रुः शरीरे काये प्रहरति ताडयति, स्वजनः हृदये अन्तर्मर्मणि प्रहरति इति । शरीरप्रहाराच्च हृदयप्रहारो दुःसहतर इति हार्दिकमात्मीयकृतमाघातं सोढुमक्षमस्य महाराजदशरथस्य विपत्प्राप्तिरतीव सम्भाविनीति भावः। येन महाराजस्येयं विपत्प्राप्तिरुपपादिता, कतमोऽसौ परिजनः ? तं परिजनेषु गणयितुं बाध्यस्य मम लज्जावनतं शिरो भवेत्, जघन्यकार्यविधानदुर्ललितस्य सम्पर्को हि साधुजनं ह्रपयतीति भावनयेत्थमुक्तिः । स्वजनशब्दाभिधेयेषु बहुषु कतमोऽसौ यस्य

राम—महाराज की ? तब यही न कहिये कि एक शरीर में संक्षेप में वर्त्तमान समूची पृथ्वी का पालन करना है । अच्छा, यह विपत्ति कहाँ से फट पड़ी ?

कञ्चुकी—आत्मीय जन से ही ।

राम—क्या आत्मीय जन से? तब तो इसका प्रतीकार भी नहीं किया जासकता। बाहरी शत्रु केवल देह पर आघात करता है, किन्तु स्वजन मर्मस्थान पर ही आघात करते हैं । न जाने इस विपत्तिमें कौन स्वजन निमित्तहुए हैं? जिनकी याद

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

काञ्चुकीयः--तत्रभवत्याः कैकेय्याः ।
रामः--किमम्बायाः ? तेन हि उदर्केण गुणेनात्र भवितव्यम् ।
काञ्चुकीयः--कथमिव ?
रामः--श्रूयताम् ,

यस्याः शक्रसमो भर्ता मया पुत्रवती च या ।
फले कस्मिन् स्पृहा तस्या येनाकार्यं करिष्यति ॥१३॥

'स्वजनः' इत्ययं शब्दो मम लज्जां ह्रियम् उत्पादयिष्यति ॥ १२ ॥

किमम्बाया इति--किमत्र स्वजनशब्दः अम्बां मातरं कैकेयीं विषयीकरोति ? इति प्रश्नाशयः । यद्येवं तर्हि नासौ दोषः तस्याः, एतादृशाचरणप्रवृत्तेरलीकत्वात् । केनापि कारणविशेषेण तथाऽनुष्ठानेऽपि संप्रति दोषत्वेन प्रतीयमानस्यास्य विपदुपनिपातस्य परिणामसुखप्रदत्वादिति तात्पर्यम् । उदर्केण उत्तरफलेन, गुणेन हितकरेण ।

कथमिति--सम्प्रति श्वतत्वेन, प्रतीतस्य कालान्तरेऽपि यथा बिना कमपि यत्नं तथा भावेनैवोपलब्धेराशा, तथाऽम्बया विहितस्य दोषस्यापि सदा दोषत्वमेव लभ्यं न गुणत्वमिति त्वयोच्यमानमुदर्के गुणत्वं केन प्रकारेण शक्योपपादनमिति पृच्छति 'कथमिति' ।

पूर्वोक्तां शङ्कां परिहरति--श्रूयतामिति । यथोक्तो कारणमाकर्ण्यतामिति भावः । यस्या इति--यस्याः कैकेय्या भर्त्ता स्वामी शक्रसमः इन्द्रतुल्यः, परमैश्वर्यशालित्वेन मानुषसामर्थ्यासाध्यमपि साधयितुमलमित्यर्थः न केवलमेतावदेव, किन्तु सा सुपुत्रापि, तदाह--या च मया पुत्रवती सेत्यर्थः । मया पुत्रवतीत्यत्र 'प्रकृत्यादिभ्य उपसंख्यानम्' इति वार्त्तिकेनाभेदे तृतीया धान्येन धनवानित्यत्र यथा । तस्याः इन्द्रसमस्वामिना सनाथायाः मया च पुत्रवत्याः कस्मिन् फले स्पृहा अभिलाषः, येन लब्धुमिष्यमाणेन फलेन हेतुभूतेन अकार्यम्--दशरथव्यसनापादनरूपम्

मेरे लिये लज्जाकर होगी ॥ १२ ॥

कञ्चुकी—महारानी कैकेयी की ।

राम—क्या क्या ? मेरी माताजी की । तब तो अवश्य ही इसका परिणाम भला होगा ।

राम—सुनिये—

जिसके पतिदेव इन्द्र के समान हों और मैं जिसका पुत्र होऊँ, भला उसे क्या

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

काञ्चुकीयः—कुमार ! अलमुपहतासु स्त्रीबुद्धिषु स्वमार्जवमुपनिक्षेप्तुम् । तस्या एव खलु वचनाद् भवदभिषेको निवृत्तः ।

रामः—आर्य ! गुणाः खल्वत्र ।

काञ्चुकीयः—कथमिव ?

रामः—श्रूयताम् ,

वनगमननिवृत्तिः पार्थिवस्यैव तावन्मम पितृपरवत्ता बालभावः स एव ।

अकर्त्तव्यं करिष्यति विधास्यति । तदेव तु फलं न विभावयामि, यद्राजाऽहं वा तदनुरोधेन साधयितुं न क्षमेय, चात्र केनापि महता कारणेन भवितव्यमिति भावः । तथा चास्य दोषस्य परिणामे गुणत्वं पूर्वोक्तं पुष्यति ॥ १३ ॥

उपेति—उपहतासु नष्टासुस्वभावकुटिलासु इत्यर्थः, स्त्रीबुद्धिषु वनिताजनमतिषु स्वबुद्धिगतं निजमतिसम्बन्धि, उपनिक्षेप्तुम् आरोपयितुम्, अलं नोपयुज्यत इत्यर्थः । यथा तव मतिरतिसरला तथा स्त्रीबुद्धिरपि मा मंस्था इत्याशयः । कैकेयीबुद्धेः कुटिलत्वं निर्धारयितुमाह—तस्या एवेति । एतेन च स्त्रीसामान्यबुद्धेरसरलता प्रतिज्ञा स्थापिता । अत्रोपनिक्षेप्तुमलम्, इत्यत्र तुमुन्प्रत्ययोपपत्तिरपाणिनीया, एतादृशस्थले क्त्वाप्रत्ययस्यौचित्यात् 'अलं खल्वोः प्रतिषेधयोः प्राचां क्त्वा' इत्यनुशासनादिति ।

गुणान् गणयति—वनगमनेति । तावत् प्रथमं पार्थिवस्य महाराजस्य एव वनगमनात् मद्राज्याभिषेकात् परतः कर्त्तव्यत्वेनापतितात् अध्यवसितादित्यर्थः, निवृत्तिरित्येको गुणः, मम रामस्य पितृपरवत्ता पितृपारतन्त्र्यलक्षणमस्वास्थ्यं सर्वथाऽभिलषितमिति स एव चरानुवृत्तः बालभावः शिशुभाव इति चेति द्वितीयतृतीयौ द्वौ गुणौ । प्रजानां नवनृपतिविमर्शे नूतनराजकर्तृके राज्यभारनिर्वहणे विषये शङ्काविचिकित्सा नास्तीति च चतुर्थो गुणः । अथ च किञ्च मे मम भ्रातरो भरतादयः

कामना हो सकती है ? जिसके लिये वे ऐसा बुरा कार्य करेंगी ॥ १३ ॥

कञ्चुकी—कुमार, स्वभावतः मारी गई नारीबुद्धि पर अपने सीधेपन का आरोप न करें । उसीके रोकने से तो आपका अभिषेक होते-होते रुक गया ।

राम—आर्य, इसमें अवश्य बहुत-सी भलाइयाँ हैं ।

कञ्चुकी—सो कैसे ?

महाराजका वन जाना रुक गया, मैं पिता की छत्र-छाया में बाल की तरह रह

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

नवनृपतिविमर्शे नास्ति शङ्का प्रजाना-
मथ च न परिभोगैर्वञ्चिता भ्रातरो मे ॥ १४ ॥

काञ्चुकीयः—अथ च तयाऽनाहूतोपसृतया भरतोऽभिषिच्यतां राज्य इत्युक्तम्। अत्राप्यलोभः ?

रामः—आर्य ! भवान् खल्वस्मत्पक्षपातादेव नार्थमवेक्षते। कुतः,

परिभोगैः राजकुमारतादशालभ्यैर्भोग्यानुभवैः वञ्चिता रहिता न भवन्तीति पञ्चमो गुणः। अयमाशयः—राज्याभिषेके प्रतिबध्यमाने आपाततोऽध्यवसितविघातलक्षणो दोषोऽवसीयते, परं यद्यहं राजा न क्रियेय, महाराज एव यथापूर्वं राज्यधुरां दधीत, अस्यामवस्थायां पञ्च गुणाः—राजा वनगमनक्लेशान्निवारितो भवति इत्येकः, मम पितृपादकल्पतरुच्छायावाससुखसौलभ्यमिति द्वितीयः, राज्यभारानधिगत्या यथासुखस्थितिस्वास्थ्यावाप्तिश्च ममेति तृतीयः, प्रजानां नवनिर्वाचितोऽयं राजाऽसाधु साधु वा स्वं कर्त्तव्यं पालयेदिति कातरभावेन चिन्तनान्मुक्तिरिति चतुर्थः, पितृपादेषु शासनाधिकृतेषु तत्पुत्रतया समेऽपि राजकुमारा असाधारणसुखभाजः, भ्रातरि मयि तथाभूतं तु स्वभागमात्राधिकारशालिनस्ते स्युरिति पञ्चमो गुणः। तदेवं मध्यमाम्बाऽध्यवसायो गुणगुम्फित इति। गणपतिशास्त्रिणस्तु चरमचरणस्य 'भ्रातरो भरतादयः परिभागैर्महाजभावमात्रलभ्यैर्भोग्यानुभवैः वञ्चिता अकृतसंविभागा न भवन्तीति। मे मया तृतीयार्थेऽव्ययमिदम्' इत्यर्थमाहुः। मालिनीवृत्तम्—'ननमयययुक्तेयं मालिनी भोगिलोकैः' इति तल्लक्षणम् ॥ १४ ॥

न केवलमेतावदेव तयोपद्रुतं, यत्त्वं राज्यान्निवर्त्तितः, इत्थं हि सति कदाचित्त्वदुक्तदिशा तदलोभताऽपि समर्थिता सति चेतसि पदमादध्यात्, किन्तु लोभाकृष्टचेतस्कतया भरताभिषेकमपि याचितो महाराज इत्याह—अथ चेति।

अस्मत्पक्षपातात् अस्मासु स्नेहातिशयात्। अर्थं वस्तुतत्त्वं, नावेक्षते न गणयति स्वोक्तार्थेऽश्रद्दधानस्य काञ्चुकीयस्य रामपक्षपातादेव वस्तुतत्त्वानवबोधो रामाशयः।

गया, प्रजाओंका 'नया राजा कैसा होगा ? इस आशङ्का से पिण्ड छूटा और मेरे भाई भी राज्यसुखोपभोग से वञ्चित नहीं हुए ॥ १४ ॥

कञ्चुकी—इस पर भी उसने विना बुलाए ही महाराज के पास जाकर 'भरत को राजतिलक हो, ऐसा कहा, क्या इसमें भी उसका लोभ नहीं झलकता ?

राम—आर्य, हमारी ओर अधिक झुकाव होने के कारण आप वास्तविकता की ओर नहीं देखते। क्योंकि,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शुल्के विपणितं राज्यं पुत्रार्थे यदि याच्यते।
तस्य लोभोऽत्र नास्माकं भ्रातृराज्यापहारिणाम् ॥ १५ ॥

काञ्चुकीयः—अथ।

रामः—अतः परं न मातुः परिवादं श्रोतुमिच्छामि। महाराजस्य वृत्तान्तस्तावदभिधीयताम्।

काञ्चुकीयः—ततस्तदानीम्,

शोकादवचनाद् राज्ञा हस्तेनैव विसर्जितः।

कैकेय्या अलोभतामेव समर्थयति—शुल्के इति। शुल्के विवाहसमये कन्यादेये विपणितं विशेषेण पणीकृतं सम्भावितं राज्यं पुत्रार्थे यस्याः पाणिग्रहणावसर एव 'योऽस्याः पुत्रो भवेत् स एव राज्यमधिकुर्यादि' ति पणः कृतस्तदौरसपुत्रकृते यदि राज्यं याच्यते प्रार्थ्यते, अत्र पूर्वपणीकृतराज्ययाचने तस्या मध्यमाम्बाया लोभः अविवेककारित्वम्, भ्रातृराज्यापहारिणां भ्रातुर्भरतस्य राज्यं पित्रा पणीकृत्य दातुं प्रतिज्ञात ततश्चैव स्वभूतं हर्त्तुं स्वायत्तीकर्त्तुं शीलं येषां तेषां परराज्यगृध्नूनां नः अस्माकं लोभो न समर्थ्यते प्रतिपाद्यत इति आर्यस्य पक्षपातमेवास्मासु विजृम्भमाणमुत्प्रेक्षामहे कारणमिति भावः ॥ १५ ॥

कैकेय्या दोषान्तरमभिधातुमुपक्रमते—अथेति।

अतः परमिति—दोषान्तराभिधानाय यतमानं काञ्चुकीयं निवारयितुमिच्छामि न श्रोतुमिच्छामीति। गुरुजनपरिवादश्रवणस्याधर्मजनकत्वस्य स्मृत्युक्तत्वादिति।

तत इति—ततो भरताभिषेकप्रार्थनानन्तरम्, तदानीम् इत्युत्तरान्वयि।

शोकादिति—राज्ञा महाराजदशरथेन शोकात् कैकेयीयाचनजनिताद् विषादात् अवचनात् वचनं विनैव किमप्यनुक्त्वैवेत्यर्थः। तत्र कारणं च शोकाभिभूतत्वम्।

विवाहावसर में प्रतिज्ञात राज्य यदि पुत्र के लिये माँगा जाता है तो इसमें उसका लोभ है, और भाई के राज्याधिकार के हरण करने वाले हम लोगों की निर्लोभता ही रही ॥ १५ ॥

कञ्चुकी—और—

राम—इससे अधिक और माँ की निन्दा नहीं सुनना चाहता हूँ। पहले महाराज का समाचार बताइए।

कञ्चुकी—तब उसी समय—

शोक के कारण महाराज ने मौन हो हाथ के इशारे से ही मुझे कैकेयीके विचार

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

किमप्यभिमतं मन्ये मोहं च नृपतिर्गतः ॥ १६ ॥

रामः—कथं मोहमुपगतः ?

(नेपथ्ये)

कथं कथं मोहमुपगत इति ?

यदि न सहसे राज्ञो मोहं धनुः स्पृश मा दया

रामः—(आकर्ण्य पुरतो विलोक्य)

अक्षोभ्यः क्षोभितः केन लक्ष्मणो धैर्यसागरः।

हस्तेन गद्गदकण्ठतया विसंज्ञप्रायतया च करचेष्टयैव (अहम्) विसर्जितः, गच्छ कैकेयीचरितं रामभद्राय आख्याहीति गन्तुमनुज्ञातः। न केवलं वाक्शक्तिविरह एव राज्ञः, किन्तु सर्वेन्द्रियलोपप्रभुर्मोहोऽपीत्याह—**किमपीति**। नृपतिः महाराजः किमप्यभिमतम् अमोहदशाया अपेक्षया किञ्चिदिष्टत्वेन मन्यमानं मोहं सर्वेन्द्रिय-संज्ञालोपं च गतः। अयमर्थः—एतादृशाप्रियोपनिपाते ससंज्ञस्य हृदयं शतधा दीर्येत, विसंज्ञभावेन स्थितस्य तु न तदवसर इति ज्ञानावस्थापेक्षया मोहावस्थाया मनागि-ष्टत्वमवसेयम्, तथा च प्रयुक्तं कालिदासेन—'सा मुक्तसंज्ञा न विवेद दुःखं प्रत्यागतासुः समतप्यतान्तः। तस्याः सुमित्रात्मजयत्नलब्धो मोहादभूत् कष्टतरः प्रबोधः' इति ॥

कथमिति—कथं मोहमुपगतः केन कारणेन विसंज्ञोऽभवत्। मदभिषेकप्रति-घातस्य तं मोहयितुमसामर्थ्यात्, 'न हि तापयितुं शक्यं सागराम्भस्तृणोल्कया' इति न्यायात्। अतिधीरत्वाभिमानकृतेत्थमुक्तिः।

अक्षोभ्य इति—धैर्यसागरः गाम्भीर्यपयोनिधिः (कोपयितुमशक्यः) लक्ष्मणः सौमित्रिः केन कारणीभूतेन वस्तुना जनेन वा क्षोभितः रोषमुपगमितः। येन लक्ष्मणेन रुष्टेन कुपितेन तिष्ठता अग्रतः पुरःप्रदेशम्, शताकीर्णम्; जनशतपरीतमिव

से आपको अवगत कराने के लिये भेजा और स्वयं मूर्छित हो गये। इस दारुण दुःख की अवस्था में होश से रहने की अपेक्षा मूर्छित हो जाना ही उन्होंने भला समझा॥

सीता—क्यों मूर्छित हो गये ?

(नेपथ्य में)

यह क्यों—क्यों मूर्छित हो गये ?

यदि राजा की मूर्छितावस्था असह्य है तो धनुष धारण कीजिये, दया का समय नहीं है।

राम—(सुनकर और सामने देखकर) अतिप्रशान्त धैर्यसागर इस लक्ष्मण को

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitized by eGangotri

येन रुष्टेन पश्यामि शताकीर्णमिवाग्रतः ॥ १७ ॥

(ततः प्रविशति धनुर्बाणपाणिर्लक्ष्मणः)

लक्ष्मणः—(सक्रोधम्) कथं कथं मोहमुपगत इति ।

यदि न सहसे राज्ञो मोहं धनुः स्पृश मा दया
स्वजननिभृतः सर्वोऽप्येवं मृदुः परिभूयते ।
अथ न रुचितं मुञ्च त्वं मामहं कृतनिश्चयो
युवतिरहितं लोकं कर्तुं यतश्छलिता वयम् ॥ १८ ॥

पश्यामि एकोऽपि क्षुभितो लक्ष्मणः कोपकुटिलभ्रुकुटिः शतजनसम्बाधमिवाग्रतः प्रदेशं करोतीत्यर्थः ॥ १७ ॥

यदि न सहसे इति—यदि राज्ञः तातस्य महाराजस्य मोहं विसंज्ञभावेनावस्थानम्, न सहसे न मर्षयसि, प्रतिचिकिर्षसि चेत्, धनुः स्पृश चापमास्फालय, मोहहेतुजने चापं व्यापारयेत्यर्थः । दया, तितिक्षा मा न कर्त्तव्येत्यर्थः । तत्र कारणमाह—स्वजनेति। स्वजने (अपकारपरायणेऽपि) निजे परिजने निभृतः क्षमाशीलः मृदुः शीतलस्वभावः सर्वोऽपि (भवद्विधोऽखिलोऽपि जनः) परिभूयते सर्वेषां तिरस्कारस्य पात्रत्वमुपयातीति भावः । अथ न रुचितं स्वजनविषये स्वयं धनुरादानं नेच्छसि चेत् (अलं तथा कृत्वा, त्वयि धनुरास्फालयति साध्यस्य कार्यस्य मयापि साध्यत्वादिति मनसिकृत्याह) माम् लक्ष्मणं मुञ्च स्वविचारमनुसृत्य व्यवहर्तुं स्वतन्त्रं कुरुष्वेत्यर्थः । अनुज्ञातस्य स्वस्य कर्त्तव्यमाह—अहमिति । अहं लोकं संसारम्, युवतिरहितंयुवतिजात्या विरहितं कर्तुं कृतनिश्चयः निष्ठापितमतिः कृतप्रतिज्ञ इत्यर्थः। युवतिविषयकस्य स्वप्रद्वेषस्य कारणमभिधातुमाह—यत इति । यतः यस्मात् कारणात् वयं छलिताः वञ्चिताः राज्याद् भ्रंशिता इत्यर्थः । युवत्या हि कैकेय्या स्वयौवनेन राजानं प्रलोभ्य स्वहावभावादिभिराकृष्य च वयं राज्याद् भ्रंशिताः,अतोयुवति-

---

किसने उभाड़ दिया ? इस अकेले लक्ष्मण के क्रोधित होने से मैं अपने आगे जन-समूह-सा देख रहा हूँ ॥ १७ ॥

(हाथ में धनुष बाण लिये लक्ष्मण का प्रवेश)

लक्ष्मण—(क्रोध से) यह 'क्यों क्यों मूर्छित हो गये' ।

यदि महाराज की मूर्च्छितावस्था सह्य न हो धनुष बाण संभालो । यह दया का अवसर नहीं है । स्वजन के लिये शान्तिप्रवीण जनों का इसी भाँति अनादर हुआ करता है । यदि स्वजनों के ऊपर धनुष उठाने का आपका विचार न हो तो मुझे तो

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सीता—आर्यपुत्र ! रोदितव्ये काले सौमित्रिणा धनुर्गृहीतम् । अपूर्वः
अय्यउत्त ! रोदिदव्वे काले सोमित्तिणा धणू गहीदं । अपूव्वो
खल्वस्यायासः ।
वस्तु से आआसो ।

रामः—सुमित्रामातः ! किमिदम् ?

लक्ष्मणः—कथं कथं किमिदम् ?

क्रमप्राप्ते हृते राज्ये भुवि शोच्यासने नृपे ।

जातिरेवास्मास्वपराधिनीति तद्विध्वंसोपाये प्रवर्तितुमिच्छामि, केवलं त्वदादेशमात्रं प्रतीक्ष इति तदाशयः । कृतापकारे दण्डविधया क्रियमाणस्यापकारस्यानिषिद्धत्वादियमनुज्ञायाचना । हरिणीवृत्तम्, तल्लक्षणं यथा—'नसमरसला गः षड्वेदैर्हयैर्हरिणी मता' इति ॥ १८ ॥

अय्यउत्त इति—रोदितव्ये रोदनायोपस्थिते । 'रुदन्त्यस्मिन्निति रोदितव्यः' इत्यधिकरणे तव्यद् बाहुलकात् । अय लक्ष्मणस्य, आयासः खेदः, अपूर्वः अदृष्टपूर्वप्रकारकः, शोकप्रकाशनावसरे कोपाविष्कारस्यायुक्तत्वेनेत्थमुक्तिः ।

सुमित्रामातरिति—सुमित्रा माता यस्य तत्सम्बुद्धौ तथा । मातृगुणवत्तया गुणवत्त्वमाशंसमानाया इदं सम्बोधनम् । यद्यप्यत्र 'नद्यृतश्चे'ति कप् प्राप्नोति, तथापि 'मातरमातृकमातृषु' इत्यत्र मातृशब्दे परतो बहुव्रीहौ ष्यङः सम्प्रसारणविकल्पविधायके मातृशब्ददर्शनात् कपो वैकल्पिकत्वं कल्पयित्वेदं निर्वाह्यम् । किमिदम् अकाण्डे संरम्भस्य किमुपस्थितं कारणमिति ।

कथं कथमिति अधुनाऽपि किमिदमिति प्रश्नस्यावसरमसहमानः लक्ष्मणस्तथाह ।

क्रमप्राप्ते इति—क्रमप्राप्ते न्यायतस्त्वदासाद्यभावेनोपस्थिते राज्ये हृते बला-

---

छोड़ दें, (यह सहने के योग्य बात नहीं है कि) एक युवती—स्वामी को मुट्ठी में करके हम सभी को छल से परास्त कर दे, अतः मैंने सम्पूर्ण विश्व को युवति शून्य कर देने का निश्चय कर लिया है ॥ १८ ॥

सीता—आर्यपुत्र, लक्ष्मण ने रोने के अवसर पर धनुष उठाया है । इनका इतना क्षोभ तो कभी नहीं देखा गया ।

राम—सुमित्रानन्दन, यह क्या ?

लक्ष्मण—क्यों, क्या अब भी पूछ रहे हैं कि यह क्या ?

वंशपरम्परा से प्राप्त राज्य छिन गया, महाराज मूर्च्छित दशा में भूमि पर लोटते

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitized by eGangotri

इदानीमपि सन्देहः किं क्षमा निर्मनस्विता ? ॥ १९ ॥

रामः—सुमित्रामातः ! अस्मद्राज्यभ्रंशो भवत उद्योगं जनयति । आः, अपण्डितः खलु भवान् ।

भरतो वा भवेद् राजा वयं वा ननु तत् समम् ।
यदि तेऽस्ति धनुःश्लाघा स राजा परिपाल्यताम् ॥ २० ॥

लक्ष्मणः—न शक्नोमि रोषं धारयितुम् । भवतु भवतु । गच्छामस्तावत् । (प्रस्थितः)

दपहृते सति नृपे महाराजदशरथे च भुवि धरित्र्याम् । (न तु पर्यङ्के) शोच्यासने दुःखासिकायाम् (न तु सुखशयनीये) सति इदानीमपि अस्यामपि स्थितो तदपकारितायां प्रकटं प्रतीतायामपीत्यर्थः, सन्देहः—प्रतिक्रियाविधाननिश्चयाभावः (किमिदमित्यादिवचनेनोह्यमानः) तव किं क्षमा सहनशीलता, निर्मनस्विता मनस्विताविरहो वेति (न जाने इति भावः) एतादृश्यमपि तस्या अपकारितायां प्रकटं प्रतीतायामपि तव कर्त्तव्यानवधारणस्वरूपः सन्देहः क्षमाया गौरवभावनाशून्यतया वा प्रसूत इति न निर्णेतुं शक्नोमीति तात्पर्यम् ॥ १९ ॥

उद्योगम्—युद्धसन्नाहम्, अपण्डितः विवेकविधुरः, मयि राज्यासनात् पातिते त्वं युद्धाय सन्नद्ध इति तवाविवेक एवेत्यर्थः ।

भरतो वेति—भरतो वा राजा भवेत् वयं वा राजानो भवेम, तदन्यतराभिषेचनं ननु समं तव विषये तुल्यम् औदासीन्येनावस्थानस्यैव प्रवर्त्तकमिति भावः । यदि ते धनुःश्लाघा धनुर्धरत्वगर्वः (अस्ति) तदा सः नवाभिषिक्तः राजा भरतः परिपाल्यतां सहायकत्वमासाद्यान्तरेभ्यो बाह्येभ्यश्च विघ्नेभ्यो रक्ष्यताम् । अत्र मद्विषये दोषे त्वया चिन्ता मा कारीत्युक्त्वा रामस्यात्मनिर्भरता व्यक्ता । अन्यत्स्पष्टम् ॥ २० ॥

रोषमिति—रोषं कोपवेगं धारयितुं नियन्तुं न शक्नोमि न क्षमे, तदत्रस्थित्वा-

---

हैं, क्यों, अब भी आपको संदेह है ? क्षमा आत्मगौरवशून्यता को तो नहीं कहते॥

राम—सुमित्रानन्दन, हमारी राज्यच्युति तुम्हें इतना उत्तेजित कर रही है, खेद ! तुम इतने अधीर हो ।

चाहे भरत को राज्य मिले या राम को तुम्हारे लिए तो दोनों बातें एक सी हैं। हाँ, यदि तुम्हें अपने धनुषपर अभिमान है तो जाओ, राजा भरतकी सहायताकरो।

लक्ष्मण—मैं रोष को रोक नहीं सकता, अच्छा जाता हूँ। (प्रस्थान)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

रामः— त्रैलोक्यं दग्धुकामेव ललाटपुटसंस्थिता ।
भ्रुकुटिर्लक्ष्मणस्यैषा वियतीव व्यवस्थिता ॥ २१ ॥
सुमित्रामातः ! इतस्तावत् ।

लक्ष्मणः—आर्य ! अयमस्मि ।

रामः—भवतः स्थैर्यमुत्पादयता । मयैवमभिहितम् ।
तातं धनुर्न मयि सत्यमवेक्षमाणे
मुञ्चानि मातरि शरं स्वधनं हरन्त्याम् ।

ऽलम्, अन्यथा तदावेशवशात् कदाचिदवाच्यमुच्येत अकार्यं वा क्रियेत, वरमत इतः स्थानादन्यत्र गन्तुमिति प्रकरणार्थः ।

त्रैलोक्यमिति—त्रयो लोका एव त्रैलोक्यम् चातुर्वर्ण्यादित्वात् स्वार्थे ष्यञ् । तत् भुवनत्रयम् दग्धुं कामो यस्याः सा दग्धुकामा दिधक्षन्तीव ललाट-पुटसंस्थिता कपालदेशेऽवस्थापिता एषा प्रत्यक्षदृश्या लक्ष्मणस्य भ्रुकुटिः वक्रीभूता कोपव्यञ्जिका भ्रूलता वियति व्योमनि इव व्यवस्थिता । कोपातिरेकेण लक्ष्मण-स्योर्ध्वंवद्धवक्रभ्रुकुटितया दृग्भङ्गेराकाशावस्थितमुत्प्रेक्षते । 'नियतीव' इति पाठे नियतिः भाग्यरेखेवेत्यर्थः । अतः पाठेऽर्थसामञ्जस्येऽपि ङीप्सिद्धये क्तिजन्तत्वादि-कमनुसरणीयम् । तच्चागतिकगतिभूतमिति सुधियो विभावयन्तु ॥ २१ ॥

स्थैर्यम्—चित्तविक्रियोपरमम् उत्पादयता जनयता त्वां शान्तयतेत्यर्थः । उच्यताम् इदानीं शान्तचित्तेन भवता मत्प्रश्नोत्तरमभिधीयताम् ।

तात इति । मयि स्वविधेये मल्लक्षणे जने मामवलम्ब्येत्यर्थः । सत्यं स्वप्रति-श्रुतभरताभिषेकान्यथाभावम् अवेक्षमाणे प्रतीक्षमाणे तातं धनुर्न चापावसर एव नास्ति । किञ्च स्वधनं विवाहावसरप्रतिश्रुतं लभ्यतया निश्चितं स्वधनं राज्यरूपं

राम—त्रिभुवन को भस्म करने के लिए उद्यत लक्ष्मण की भ्रुकुटि विधाता की इच्छा की तरह अटल मालूम पड़ रही है ॥ २१ ॥

सुमित्रानन्दन जरा इधर तो आना ।

लक्ष्मण—आर्य, यह आया ।

राम—तुम्हें शान्त करने के उद्देश्य से ही मैंने वैसा कहा है, अब तुम्हीं बताओ-क्यों पिता पर धनुष उठाया जाय जो अपनी प्रतिज्ञा का पालन कर रहे हैं, या माता पर प्रहार किया जाय जो पूर्व-प्रतिज्ञात अपना विवाह-शुल्क माँग रही है,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

दोषेषु बाह्यमनुजं भरतं हनानि
किं रोषणाय रुचिरं त्रिषु पातकेषु ॥ २२ ॥

लक्ष्मणः—(सबाष्पम्) हा धिक् ! अस्मान् अविज्ञायोपालभसे ।

यत्कृते महति क्लेशे राज्ये मे न मनोरथः ।
वर्षाणि किल वस्तव्यं चतुर्दश वने त्वया ॥ २३ ॥

हरन्त्यां मातरि कैकेय्यां शरं मुञ्चानि चालयानि ? नैतदप्युपयुज्यते । दोषेषु एषु मद्राज्यप्राप्तिप्रतिबन्धकीभूतव्यापारकलापेषु बाह्यं पृथग्भूतं हनानि मारयाणि, नैतदपि युक्तं, तस्य सर्वथा दोषरहितत्वात् । अस्यां स्थितौ एषु त्रिषु पातकेषु पितृ-मातृभ्रातृवधाख्येषु महापापेषु रोषणाय कोपकलुषाय तुभ्यं किं कतमत् पातकं रुचिरं रुचिप्रदं रोचत इत्यर्थः । स्वजनोऽप्यपकुर्वन् हन्तव्य इति हि त्वदभिप्रायः । न चात्र गर्हितकर्मणि कस्यापि स्वजनस्यापराधं निर्णेतुमीशे, तातस्य स्ववचोरक्षा-व्रतपरायणत्वात्, मातुर्मध्यमायाः स्वधनप्राप्तिप्रवृत्तत्वात्, मम भ्रातुर्भरतस्यैभिर्व्या-पारकलुषपङ्कैरलिप्तत्वादतोऽत्र निरपराधप्रियपरिजनत्रयमध्ये कस्य वधो मया क्रियमाणस्त्वयाऽभिप्रेयत इति रामाशयः । वसन्ततिलकं वृत्तम्, लक्षणं पूर्वमुक्तम् ॥

हा धिगिति—कष्टमित्यर्थः, अविज्ञाय ज्ञातव्यमर्थमविज्ञाय । उपालभसे तिरस्करोषि । ज्ञाते वृत्तान्ते तथापि ममेव व्यग्रा चित्तवृत्तिर्भवेदित्यर्थः ।

तद्वस्तुतत्त्वमेवाह—यत्कृत इति । यत्कृते येनार्थेन जनिते महति दुरन्ते क्लेशे खेदे, मनसाऽध्यायमान इति शेषः । मे मम राज्ये राजपदे मनोरथः अभिलाषो न । तमेव क्लेशमविज्ञाय त्वं मामुपालभस इत्यर्थः । क्लेशमाह—वर्षा-णीति । त्वया रामेण चतुर्दशवर्षाणि वने वस्तव्यं स्थातव्यम्, इति । चतुर्दशव-र्षाणीत्यत्रात्यन्तसंयोगे द्वितीया । न हि केवलं दुराशयया कैकेय्या भरताभिषेक-मात्रेण तृप्तं, किन्तु तव वनवासोऽपि तया वृत इति भावः । चरमश्चायं वरो मर्मवेधी येनाहं पूर्वप्रकारेण वक्तुं बाधित इति सरलार्थः ॥ २३ ॥

अथवा अत्यन्त निर्दोष भरत को मारा जाय ? पितृवध, मातृवध और बन्धुवध; इन तीनों पातकों में कौन-सा पातक तुम्हारे रोष को अभिमत है ? ॥ २२ ॥

लक्ष्मण—(रोकर) खेद है, आप बिना जाने हमें उलाहना दे रहे हैं ।

मुझे राज्य की अभिलाषा नहीं है, किन्तु जिस बात पर मुझे इतना खेद हुआ वह यह है कि—आपको चौदह वर्ष तक वन में रहना होगा ॥ २३ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

रामः—अत्र मोहमुपगतस्तत्रभवान् ? हन्त ! निवेदितमप्रभुत्वम् ।
मैथिलि !
मङ्गलार्थेऽनया दत्तान् वल्कलांस्तावदानय ।
करोम्यन्यैर्नृपैर्धर्मं नवाप्तं नोपपादितम् ॥ २४ ॥

सीता—गृह्णात्वार्यपुत्रः ।
गह्णादु अय्यउत्तो ।

रामः—मैथिलि ! किं व्यवसितम् ?

सीता—ननु सहधर्मचारिणी खल्वहम् ।
णं सहधम्मआरिणी क्खु अहं ।

तत्र भवान् पूज्यस्तातः । अत्र मद्वनवासलक्षणे विषये । हन्त खेदे, अप्रभुत्वम् विपदुपनिपातसहनासामर्थ्यम् । निवेदितं प्रकटीकृतम् । मया सुखं साधयितुं योग्ये कार्ये तातस्य तादृशी दशा तत्पक्षे नितरामयुक्तेति भावः ।

अवसरप्राप्तं कर्त्तव्यमादिशति—मङ्गलार्थे इति । अनया अवदातिकाभिधानया तव चेटया दत्तान् वल्कलान् तरुत्वक्कल्पितानि वसनानि मङ्गलार्थं मङ्गलमय-पित्राज्ञापालनात्मकवनवासोपयोगिवस्त्रार्थम् आनय मह्यमर्पय । वनवासस्य मङ्गल-मयतामेवोपपादयति परार्द्धेन—करोमीति । अन्यैः मद्भिन्नैः नृपैः राजभिः नैव आप्तं बाल्यभावे कर्त्तव्यत्वेनाधिगतं नोपपादितम् नानुष्ठितं च । राजानो हि बार्द्धके पुत्रसमर्पितराज्यभाराः सन्त एत वनवासावसरमलभन्त तथाऽऽचरंश्च, प्रथमोऽयमवसरो यदहं बाल एव वनवासाय लब्धावसरस्तया कर्तुं यत इति मङ्गलमयभावोऽस्य कर्मणस्तदाशूपनय मम वल्कलानीति रामस्याशयः ॥ २४ ॥

व्यवसितम्—इष्टं मयि वनाय चलिते त्वया किं चिकीर्षितमिति भावः ।
सहधर्मचारिणी—सहधर्मानुष्ठानशीला । एतेन मयापि गन्तव्यमिति व्यञ्जितम् ।

राम—क्या इसी बात पर महाराज मूर्च्छित हो गये ? अफसोस ! उन्होंने अपनी अधीरता व्यक्त की । मैथिलि,

इस समय उपस्थित इस मङ्गलमय कार्य के लिए मुझे अवदातिका द्वारा लाये गये वल्कल दो । उन्हें पहन कर मुझे ऐसा धर्म-कार्य करना है, जिसे किन्हीं राजाओं ने नहीं किया ॥ २४ ॥

सीता—लीजिये आर्यपुत्र !

राम—मैथिलि, तुम्हारी क्या राय है ?

सीता—मैं तो आपकी सहधर्मचारिणी ठहरी ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

रामः—मयैकाकिना किल गन्तव्यम् ।

सीता—अतो न खल्वनुगच्छामि ?

अदो णु क्खु अणुगच्छामि ।

रामः—वने खलु वस्तव्यम् ।

सीता—तत् खलु मे प्रासादः ।

तं क्खु मे पासादो ।

रामः—श्वश्रूश्वशुरशुश्रूषापि च ते निर्वर्तयितव्या ?

सीता—एनामुद्दिश्य देवतानां प्रणामः क्रियते ।

णं उद्दिसअ देवदानं पणामो करीअदि ।

रामः—लक्ष्मण ! वार्यतामियम् ।

लक्ष्मणः—आर्य ! नोत्सहे श्लाघनीये काले वारयितुमत्रभवतीम् ।

कुतः—

एकाकिना सहायान्तररहितेन गुर्वाज्ञाया अक्षरशोऽर्थतोऽनुवृत्तौ मम सहायकान्तररक्षणं धर्मच्युतिरतस्त्वया तथाऽऽग्रहो न कर्त्तव्य इति रामाभिसन्धिः ।

अतो नु खल्विति । असहायेन भवता गम्यतेऽत एव तु मया विशिष्य गन्तुं काम्यते, त्वत्सहायतायाः मद्धर्मत्वादिति ।

एनां गुरुशुश्रूषाम्, गुरुशुश्रूषास्थाने वनदेवताः प्रणम्य चेतः सान्त्वयिष्यामि । अथवा मया पतिसहानुवृत्तिपरतन्त्रतया गृहेऽवस्थाय गुरुशुश्रूषा विधातुं नाशकोति विवशायाः स्वस्याः अपराधमिमं मर्षयितुं देवताः प्रणंस्यामीति तदाशयः ।

काले सीतायास्त्वदनुगमनाऽध्यवसायसमये ।

राम—मुझे तो अकेले बन जाना है ।

सीता—इसी से तो आपके साथ जाना है ।

राम—वहाँ तो वन में रहना होगा ।

सीता—वह वन मेरे लिये प्रासाद होगा ।

राम—सास-ससुर की सेवा भी तो तेरा कर्त्तव्य है ।

सीता—इसके लिये मैं (सर्वसाक्षी) देवों को प्रणाम करती हूँ (कि वे हमारी लाचारी देखें) ।

राम—लक्ष्मण, इसे वन जाने से रोको ।

लक्ष्मण—आर्य, ऐसे प्रशंसनीय अवसर में आर्या को रोकने का साहस नहीं हो रहा है, क्योंकि—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

अनुचरति शशाङ्कं राहुदोषेऽपि तारा
पतति च वनवृक्षे याति भूमिं लता च।
त्यजति न च करेणुः पङ्कलग्नं गजेन्द्रं
व्रजतु चरतु धर्मं भर्तृनाथा हि नार्यः ॥२५॥

(प्रविश्य)

चेटी—जयतु भट्टिनी। नेपथ्यपालिन्यार्यरेवा प्रणम्य विज्ञापयति—

जेदु भट्टिणी। णेवच्छपालिणी अय्यरेवा पणमिअ विण्णवेदि—

अवदातिकया सङ्गीतशाला आच्छिद्य वल्कला आनीता।

ओदादिआये सङ्गीयसालादो आच्छिन्दिअ वक्कला आणीदा।

अनुचरतीति। तारा चन्द्रमसो भार्या शशाङ्कं चन्द्रं राहुकृतोपरागेऽपि राहुग्रसनदशायामपीत्यर्थः, अनुचरति अनुगच्छति न तु स्वामिनं विपदुपनिपतितं त्यजति। किञ्च वनवृक्षे वन्ये तरौ पतति (सति) लता वल्लरी च भूमिं याति-अधोदेशसंयोगवती भवतीत्यर्थः। किञ्च करेणुः हस्तिनी पङ्कलग्नं कर्दममग्नम्, गजेन्द्रं न त्यजति अनुयात्येव। एवं देवभावमारभ्य तर्यादिभावपर्यन्तं स्त्रीणां स्वनाथानुसरणस्य लक्ष्येषु भूयिष्ठ दृश्यमानत्वेन सीताया अपि त्वदनुवर्त्तनाध्यवसायान्निवर्त्तनं न योग्यमित्यर्थः। सीतायाः कर्त्तव्यनिर्णयमेव समर्थयति—व्रजतु त्वामनुवर्त्तताम् धर्मं पत्यनुवृत्तिलक्षणं सतीसमुदाचारं चरतु अनुतिष्ठतु। तमिममर्थमर्थान्तरन्यासेन पोषयति—भर्तृनाथा हि नार्य इति। नार्यः स्त्रियो भर्तृनाथाः स्वामिपरतन्त्राः, अतस्तासां तदनुवृत्तिस्तत्समसुखदुःखता च सदोचितेति भावः। अत्र सामान्येन विशेषसमर्थनरूपोऽर्थान्तरन्यासभेदः। हिशब्दोऽस्यार्थस्य प्रसिद्धतां द्योतयति, शेषं सुगमम् ॥ २५ ॥

विज्ञापयति सूचयति। आच्छिद्य बलादपहृत्य। अननुभूताः अभिनवाः अनुप-

---

राहुग्रहण के अवसर पर भी रोहिणी चन्द्रमा का साथ देती है, वृक्ष के धराशायी होने पर भी उसकी लतायें उससे लिपटी ही रहती हैं, गजराज के पङ्कपतित होने पर भी हथिनियाँ साथ नहीं छोड़तीं (इसलिए) उन्हें भी वन जाने दो, अपना धर्म निभाने दो। स्त्रियों के तो पति ही अवलम्ब होते हैं ॥२५॥

(चेटी का प्रवेश)

चेटी—जय हो महारानीजी की। नेपथ्यपालिका आर्या रेवा प्रणामपूर्वक निवेदन करती है कि अवदातिका सङ्गीतशाला से कुछ वल्कल स्वयं ही ले आयी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इमेऽपरा अननुभूता वल्कलाः। निर्वर्त्यतां तावत् किल
इमा अवरा अणणुहूदा वक्कला। णिव्वत्तीअदु दाव किल
प्रयोजनमिति।
पओअणं त्ति।

रामः—भद्रे! आनय, सन्तुष्टैषा। वयमर्थिनः।

चेटी—गृह्णातु भर्ता। (तथा कृत्वा निष्क्रान्ता)
गह्णादु भट्टा।

(रामो गृहीत्वा परिधत्ते)

लक्ष्मणः—प्रसीदत्वार्यः।

निर्योगाद् भूषणान्माल्यात् सर्वेभ्योऽर्धं प्रदाय मे।
चिरमेकाकिना बद्धं चीरे खल्वसि मत्सरी॥ २६॥

मुक्ताः। प्रयोजनम् उपयोगः। अनुष्ठीयतां सम्पाद्यताम्, यथेच्छमुपयुज्यतामित्यर्थः।

सन्तुष्टा पूर्वत एव वल्कलपरिधानेन तृप्ता। एषा सीता। अर्थिनः वल्कलस्य कृते याचकाः, तथा मह्यं पात्राण्यर्पयेति रामाशयः।

रामेण वल्कले धार्यमाणे लक्ष्मणः स्वस्य रामानुगमनाभिलाषं व्यञ्जयन्नाह—प्रसीदत्वार्य इति।

निर्योगादिति। निर्योगात् वस्त्रकञ्चुकादेराच्छादनोपयोगिवसनात्, भूषणात् कटककुण्डलादेरलङ्कारात्, माल्यात् पुष्पादिस्रजः सर्वेभ्यो मे मह्यम् अर्धम् समांशं प्रदाय दत्त्वा चीरं वल्कलम् (त्वया) एकाकिना मह्यमप्रदायैव बद्धं परिहितम्। बहुमूल्यवसनाभरणस्रगादीनां संविभागकरणे गतस्वार्थता दृष्टपूर्वा, चीरस्य तु अतिहीनमूल्यस्य संविभागे तव स्वार्थवृद्धिरुदितेत्याश्चर्यम्, इत्याह-**चीरे खल्वसि मत्सरीति**। इदमपि मह्यं प्रदाय मामपि सह नयेति तदाशयः॥२६॥

है। (हो सकता है वे अच्छे नहीं हों) ये नये वल्कल हैं, इनसे अपना प्रयोजन पूरा कीजिये।

राम—भद्रे, इधर लाना, इनका तो काम चल गया है, मुझको जरूरत है।

चेटी—स्वामी ग्रहण करें। (वल्कल देकर प्रस्थान)

(राम लेकर पहनते हैं)

लक्ष्मण—आर्य, प्रसन्न हों। आज तक सभी तरह के वस्त्र, भूषण, माल्य-सभी प्रकार की भोग्य वस्तुओं में आप मुझे आधा देते आये हैं, फिर इस वल्कल में इतना लोभ क्यों है कि इसे अकेले पहन रहे हैं? ॥ २६॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रामः—मैथिलि ! वार्यतामयम् ।

सीता—सौमित्रे ! निवर्त्यतां किल ।

सौमित्रे ! णिवत्तीअदु किल ।

लक्ष्मणः—आर्ये !

गुरोर्मे पादशुश्रूषां त्वमेका कर्तुमिच्छसि ? ।
तवैव दक्षिणः पादो मम सव्यो भविष्यति ॥ २७ ॥

सीता—दयतां खल्वार्यपुत्रः । संतप्यते सौमित्रिः ।

दीअदु क्खु अय्यउत्तो । सन्तप्पदि सौमित्ती ।

रामः—सौमित्रे ! श्रूयताम् । वल्कलानि नाम—

तपः सङ्ग्रामकवचं नियमद्विरदाङ्कुशः ।

निवर्त्यतां वनगमनाध्यवसायादिति शेषः ।

गुरोर्मे इति । मे मम गुरोः पूजनीयस्य ज्येष्ठभ्रातुः पादशुश्रूषाम् चरण-संवाहनादिपरिचर्याम् त्वम् एका सहायान्तरनिरपेक्षा कर्तुं विधातुम् इच्छसि ? स्वयमेकाकिनी मम पूज्यस्य चरणौ सेवितुकामा त्वं माम् उक्तकार्यावसरलाभतो वञ्चयसीति तव नोचितमित्यर्थः । अथ तव महानत्राग्रहस्तर्हि तदीयं दक्षिणं पादं परिचार, मम कृते सव्यमेव तदीयं पादं विसृज । एवमपि मया तत्पादपरिचर्या-वसरो गौणभावेनापि लब्धो भवेदित्यर्थः ॥ २७ ॥

तपःसङ्ग्रामेति । वल्कलानि नाम तप एव संग्रामः युद्धम् तत्र कवचं वर्म युद्धे धर्त्तव्यतया प्रसिद्धम् । (तान्येव वल्कलानि) नियमो व्रतमेव द्विरदो गजः तस्य

राम—मैथिलि, इसे मना करो ।

सीता—लक्ष्मण, रहने दो ।

लक्ष्मण—आर्ये,

मेरे पूज्य राम की चरणशुश्रूषा तुम अकेले करना चाहती हो ? । अच्छा दक्षिण चरण पर तुम्हारा ही एकाधिपत्य रहेगा, मैं बाम चरण की ही सेवा करके अपना जीवन सार्थक समझ लूंगा ॥ २७ ॥

सीता—आर्यपुत्र आप दया करें, लक्ष्मण को (रोकने से) कष्ट होता है ।

राम—लक्ष्मण, यह वल्कल—

तपस्यारूप संग्राम में कवच, संयमरूप हाथी के वशीकरण में अंकुश, इन्द्रिय-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

खलीनमिन्द्रियाश्वानां गृह्यतां धर्मसारथिः ॥ २८ ॥

लक्ष्मणः—अनुगृहीतोऽस्मि । (गृहीत्वा परिधत्ते)

रामः—श्रुतवृत्तान्तैः पौरैः सन्निरुद्धो राजमार्गः । उत्सार्यतामुत्सार्यतां तावत् ।

लक्ष्मणः—आर्य ! अहमग्रतो यास्यामि । उत्सार्यतामुत्सार्यताम् ।

रामः—मैथिलि ! अपनीयतामवगुण्ठनम् ।

सीता—यदार्यपुत्र आज्ञापयति । (अपनयति)
जं अय्यउत्तो आणवेदि ।

रामः—भो भोः पौराः ! शृण्वन्तु शृण्वन्तु भवन्तः—
स्वैरं हि पश्यन्तु कलत्रमेतद् बाष्पाकुलाक्षैर्वदनैर्भवन्तः ।

अङ्कुशः वशीकरणसाधनम् । इन्द्रियाणि अश्वा इव तेषां खलीनं नियन्त्रणप्रग्रहः, धर्मसारथिः धर्मस्य रथस्य सारथिः चारकः । एवं महिमा वल्कलपट इति रामस्याशयः । अत्र तपसः सङ्ग्रामत्वाभिधानेन युद्धवन्निरन्तरसावधानताऽपेक्षितेति, नियमानां द्विरदत्वरूपणेन तेषां नितान्तस्वाच्छन्द्यकृता दुरुपास्यतेति, इन्द्रियाणामश्वत्वाभिधानेन नितान्तचञ्चलता, वल्कलानां तत्खलीनत्वोक्त्या च तन्नियमनसमर्थतेति धर्मस्य रथत्वोक्त्या परलोकप्रापकतेति चावेद्यते ॥ २८ ॥

अवेति-अवगुण्ठनं परदर्शनपरिहारार्थं शिरोमुखाच्छादकवस्त्रम् ।

स्वैरं हीति । भवन्तः पुरवासिनः मम रामस्य भार्यां सीतां स्वैरं यथेच्छं निःशङ्कं बाष्पाकुलाक्षैः बाष्पपरिप्लुतनयनैः वदनैः मुखैरुपलक्षिता भवन्त इति पौरेष्वन्वेतव्यम्, पश्यन्तु विलोकयन्तु । असूर्यम्पश्यानामपि राजवनितानां जन-

---

रूप अश्वों के निग्रह में लगाम का काम करते हैं, अतः इन्हें ग्रहण करो ॥ २८ ॥

लक्ष्मण—मैं अनुगृहीत हुआ । (लेकर धारण करता है)

राम—यह समाचार सुनकर नागरिकों से राजमार्ग बिलकुल घिर गया है, इन्हें (समझा कर) हटा दीजिये ।

लक्ष्मण—आर्य मैं आगे चलता हूँ । हट जाइये । हट जाइये ।

राम—मैथिलि, घूँघट हटा लो ।

सीता—जो आज्ञा (घूँघट हटाती है) ।

राम—हे नगरवासिजन, आप लोग सुनिये सुनिये—
आपलोग निःशङ्क होकर साश्रुनयन से सीता को देख लें । यज्ञ, विवाह, संकट

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

निर्दोषदृश्या हि भवन्ति नार्यो यज्ञे विवाहे व्यसने वने च ॥२९॥

(प्रविश्य)

कञ्चुकीयः—कुमार ! न खलु गन्तव्यम् । एष हि महाराजः,

श्रुत्वा ते वनगमनं वधूसहायं
सौभ्रात्रव्यवसितलक्ष्मणानुयात्रम् ।
उत्थाय क्षितितलरेणुरूषिताङ्गः
कान्तारद्विरद इवोपयाति जीर्णः ॥ ३० ॥

लक्ष्मणः—आर्य !

सामान्यदर्शनविषयत्वस्यौचित्यमुपपादयति—निर्दोषेति । नार्यो वनिता हि यज्ञेऽश्वमेधादौ विवाहे पाणिग्रहणावसरे व्यसने विपदि श्मशानाद्युपगमावसरे वने च निर्दोषदृश्याः, निर्दोषाः दृश्याश्चेति विग्रहः, दृश्यत्वेऽपि दर्शननिमित्तकदोषरहिता इत्यर्थः । अत्र वनप्रस्थानोन्मुखानां दर्शनं वने दर्शनमित्यभिमानः ॥ २९ ॥

श्रुत्वा त इति—वधूः सीता सहाया द्वितीया यस्मिन् कर्मणि तत्तथा, सौभ्रात्रेण भ्रातृस्नेहमहिम्ना अध्यवसिता सङ्कल्पिता लक्ष्मणानुयात्रा लक्ष्मणानुगमनं यत्र कर्मणि तथाभूतम्, ते तव रामस्य वनगमनं वनाय प्रस्थानं श्रुत्वा निशम्य उत्थाय स्थण्डिलशयनं परित्यज्य क्षितितलरेणुभिः धरातलधूलिभिः रूषिताङ्गः धूसरशरीरावयवः जीर्णः जरसा ग्रस्तः कान्तारद्विरद इव वन्यकरीव राजा उपयाति इव आगच्छति अतस्तमुपेक्ष्य गमनमनुचितमिति तदाशयः । सौभ्रात्रव्यवसितेति लक्ष्मणस्यामायता, वधूसहायमिति रामवनगमनस्यात्यन्तदुःसहता, निशम्य उत्थायेति क्रिययोरव्यवहितपौर्वापर्येण तद्वृत्तान्तश्रवणानन्तरमेव राज्ञो भृशास्थिरता, रेणुरूषिताङ्गतोक्त्या राज्ञो दीनावस्थता, कान्तारद्विरदोपमया च तस्य नितान्तकष्टमयजीवनता चावेद्यते ॥३०॥

और वन में स्त्रियों का देखना निर्दोष है ॥ २९ ॥

(कञ्चुकी का प्रवेश)

कञ्चुकी—कुमार, मत जाइए । मत जाइए । यह देखिये, वृद्ध महाराज—

सीतासहित आपका वनगमन तथा लक्ष्मण का अनुगमन सुनकर सहसा उठकर पृथ्वी की धूलि से धूसराङ्ग बने राजा वन्य गजराज की भाँति कांपती चाल से आप लोगों को देखने के लिये इधर ही आ रहे हैं ॥ ३० ॥

लक्ष्मण—आर्य,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitized by eGangotri

चीरमात्रोत्तरीयाणां किं दृश्यं वनवासिनाम् ?

रामः—

गतेष्वस्मासु राजा नः शिरःस्थानानि पश्यतु ॥ ३१ ॥

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे)

॥ इति प्रथमोऽङ्कः ॥

द्वितीयोऽङ्कः

(ततः प्रविशति कञ्चुकीयः)

कञ्चुकीयः—भो भोः प्रतिहारव्यापृताः ! स्वेषु स्वेषु स्थानेष्वप्रमत्ता भवन्तु भवन्तः ।

(प्रविश्य)

चीरमात्रेति—चीरमात्रमुत्तरीयं येषान्ते चीरमात्रोत्तरीया वल्कलमात्रोत्तरीयवसनाः (न तु पीताम्बरपरिधाना) तेषां वनवासिनां किं दृश्यं न किमपीत्यर्थः । तेन च राज्ञः आगमनस्य तत्प्रतीक्षार्थमवस्थानस्य चानावश्यकत्वमुक्तम् । अस्मासु गतेषु अप्रतीक्ष्यैव राजानं वनं प्रस्थितेषु राजा दशरथः नोऽस्माकं शिरःस्थानानि प्रधानवासस्थानानि विलोकयतु । अस्मदभ्युषितानि स्थानानि विलोक्यात्मानं सान्त्वयत्वित्यर्थः ॥ ३१ ॥

इति मैथिलपण्डित-श्रीरामचन्द्रमिश्रकृते प्रतिमानाटक-प्रकाशे प्रथमोऽङ्कः ।

प्रतीति—प्रतीहारव्यापृताः प्रतीहारे द्वारदेशे व्यापृताः नियुक्ताः, अप्रमत्ताः सावधानाः ।

चीरमात्रपरिधान हम वनवासियों को देख कर क्या करेंगे ? ।

राम—हमारे चले जाने पर महाराज हमारे प्रधान निवासस्थानों को देखा करेंगे ॥ ३१ ॥

(सब का प्रस्थान)

प्रथम अङ्क समाप्त ।

(कञ्चुकी का प्रवेश)

कञ्चुकी—ऐ द्वारपालों, आप अपने स्थानों पर सावधान रहें ।

(प्रतिहारी का प्रवेश)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

प्रतीहारी—आर्य ! किमेतत् ?
अय्य ! किं एदं ?

कञ्चुकीयः—एष हि महाराजः सत्यवचनरक्षणपरो राममरण्यं गच्छन्तमुपावर्तयितुमशक्तः पुत्रविरहशोकाग्निना दग्धहृदय उन्मत्त इव बहु प्रलपन् समुद्रगृहके शयानः—

मेरुश्चलन्निव युगक्षयसन्निकर्षे
शोषं व्रजन्निव महोदधिरप्रमेयः।
सूर्यः पतन्निव च मण्डलमात्रलक्ष्यः
शोकाद् भृशं शिथिलदेहमतिर्नरेन्द्रः ॥ १ ॥

किं एदं इति—अवधानोपदेशने प्रयोजनं किमिति प्रश्नाशयः।

सत्यवचनरक्षणपरः सत्यवाक्पालनतत्परः, उपावर्त्तयितुं स्वाध्यवसायान्निवर्तयितुम्। शोकाग्निना खेदवह्निना तस्य च वह्नित्वमत्यन्तसन्तापकत्वेनोपचरितम्। प्रलपन् निरर्थकं भाषणं कुर्वन्। समुद्रगृहके कृतकस्य समुद्रस्य समीपवर्तिनि गृहे तद्वति वा गृहे। कृतकसमुद्रनिर्माणं हि क्रीडाशैलादिनिर्माणवद् भोगार्थम्।

मेरुरिति—युगस्य क्षयो युगान्तस्तस्य सन्निकर्षे सामीप्योपसृतौ, मेरुः सुमेरुश्चलन्निव कम्पायमान इव, अप्रमेयः परिच्छेत्तुमशक्यः, महोदधिः सागरः शोषं व्रजन् शुष्यन् इव। मण्डलमात्रलक्ष्यम् उपसंहृतप्रभाजालतया मण्डलमात्रेण लक्ष्यः प्रशान्तदीधितिरित्यर्थः। सूर्यो रविः पतन्निव स्रंसमान इव शोकाद् अतिप्रियपुत्रविरहकृतात् खेदात् शिथिलदेहमतिः अवसन्नकायबुद्धिः अस्तीति शेषः। युगक्षये हि विनाशस्यासत्तौ प्रलयपवनेन मेरुश्चलति, प्रशान्तः सागरः शुष्यति, आसन्नपतनश्च रविर्निष्प्रभतया मण्डलमात्रेणोपलक्षितो भवति; तद्वदधुना राजापि शिथिलकायः शिथिलबुद्धिश्च दृश्यत इति भावः। अत्र त्रिभिरप्युपमानभूतैर्मेरुमहोदधिभास्करैः राज्ञो मरणस्यासन्नत्वमुक्तम्। वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ १ ॥

प्रतीहारी—आर्य, यह क्या ?

कञ्चुकी—क्या कहूँ, प्रतिज्ञापालक महाराज राम को वन जाने से लौटा नहीं सके, और अब पुत्रवियोग की ज्वाला से सन्तप्त हृदय हो पागल की भाँति प्रलाप करते समुद्रगृह में लेटे हुए—

महाराज युगान्त समीप आने पर डगमगाते हुए सुमेरु के समान अथवा सूखते हुए सागर के समान अथवा मण्डलमात्रलक्ष्य सूर्य के समान अपार शोकसागर में निमग्न दुर्बलकाय तथा हीनचेतन होते जा रहे हैं ॥ १ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रतीहारी—हा हा एवंगतो महाराजः ?
हा हा एव्वंगओ महाराओ ?

कञ्चुकीयः—भवति ! गच्छ ।

प्रतीहारी—आर्य ! तथा ।
अय्य ! तहा । (निष्क्रान्ता)

कञ्चुकीयः—(सर्वतो विलोक्य) अहो नु खलु रामनिर्गमनादिनादारभ्य शून्यैवेयमयोध्या संलक्ष्यते कुतः—

नागेन्द्रा यवसाभिलाषविमुखाः सास्रेक्षणा वाजिनो
ह्रेषाशून्यमुखाः सवृद्धवनिताबालाश्च पौरा जनाः ।
त्यक्ताहारकथाः सुदीनवदनाः क्रन्दन्त उच्चैर्दिशा
रामो याति यया सदारसहजस्तामेव पश्यन्त्यमी ॥ २ ॥

एवमिति एवंगतः ईदृग्दशत्वमुपगतः ।

अहो इति—'अहो नु खलु' पदसमुदायोऽयं खेदमाह ।

शून्यत्वमेवोपपादयति-नागेन्द्रा इति । नागेन्द्राः गजमुख्याः यवसाभिलाषविमुखाः घासग्रासग्रहणपराङ्मुखाः, वाजिनः अश्वाः सास्रेक्षणाः सास्रे सबाष्पे ईक्षणे येषां ते तथोक्ताः, वाजिनः न केवलं सास्रेक्षणाः किन्तु ह्रेषाशून्यमुखाः मूकाः ह्रेषा अश्वशब्दस्तद्रहिता इत्यर्थः । सवृद्धवनिताबालाः वृद्धैर्वनिताभिर्बालैश्च सहिता पौरा जनाः पूरवासिनः त्यक्तहरकथाः विसृष्टभोजनवार्ताः सुदीनवदनाः अतिदीनमुखाः क्रन्दन्तश्च । सर्वेऽपीमे गजेन्द्रवाजिपौरजना अमी तामेव दिशं पश्यन्ति यया दिशा सदारसहजः सीतालक्ष्मणाभ्यामनुयातो रामो याति एतेन तेषां तं प्रति गाढानुराग-

---

प्रतीहारी—हाय, महाराज की ऐसी दशा ?

कञ्चुकी—श्रीमती जी, आप जायँ ।

प्रतीहारी—जाता हूँ ।

कञ्चुकी—(चारों ओर देखकर) जब से राम गये, तब से यह समूची अयोध्या सूनी दीख रही है ? क्योंकि—

गजराजों ने चारा खाना छोड़ दिया है, साश्रुनयन घोड़ों ने हिनहिनाना बन्द कर दिया है, नगरवासी बूढ़े, स्त्रियाँ, बच्चे, जवान—सबने भोजन की बात भुला दी है और जोर से रोने से उनका चेहरा उतर गया है । राम, सीता और लक्ष्मण जिधर गये हैं; सबकी आँखें टकटक उसी ओर लगी हैं ॥ २ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

यावदहमपि महाराजस्य समीपवर्ती भविष्यामि। (परिक्रम्यावलोक्य) अये! अयं महाराजो महादेव्या सुमित्रया च सुदुःसहमपि पुत्रविरह-समुद्भवं शोकं निगृह्यात्मानमेव संस्थापयन्तीभ्यामन्वास्यमानस्तिष्ठति। कष्टा खल्ववस्था वर्तते। एष एष महाराजः—

पतत्युत्थाय चोत्थाय हा हेत्युच्चैर्लपन् मुहुः।
दिशं पश्यति तामेव यया यातो रघूद्वहः॥ ३॥

(निष्क्रान्तः)

मिश्रविष्कम्भकः।

वत्ताऽभिहिता। आहारकथात्यागाभिधानेन पौराणां विमनायमानतोक्ता। स्पष्टमन्यत्। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम्, पूर्वमुक्तञ्च तल्लक्षणम्॥ २॥

महादेव्येति—महादेव्या कौसल्यया। सुदुःसहम् अत्यन्तासह्यम्। संस्थापयन्तीभ्याम् आश्वासनादिना धारयन्तीभ्याम्।

पततीति—हा हा इति मुहुः उच्चैर्लपन् उच्चारयन् उत्थायोत्थाय पतति उत्तिष्ठति पुनश्च भूमौ पततीत्यर्थः। तामेव दिशं च पश्यति, यया दिशा रघूद्वहः रघुवंशश्रेष्ठो यात इत्यर्थः॥ ३॥

मिश्रविष्कम्भक इति—तल्लक्षणमुक्तं यथा—

'वृत्तवर्त्तिष्यमाणानां कथांशानां निदर्शकः।
संक्षेपार्थस्तु विष्कम्भो मध्यपात्रप्रयोजितः॥

अच्छा अब मैं भी महाराज के पास चलूं, (घूमकर और देखकर) ऐं ये ही तो महाराज हैं, कौशल्या और सुमित्रा अत्यन्त असहनीय पुत्रशोक को भी किसी भाँति सहकर महाराज को आश्वासन देती हुई उनकी सेवा में लगी हैं। कैसी दर्दनाक दशा है। यह महाराज—

उठते हैं, गिरते हैं, फिर उठते हैं, हाय हाय की रट लगाये हुये हैं, फिर लड़खड़ाते हैं और उसी ओर एकटक निहार रहे हैं, जिधर से राम लक्ष्मण वन को गये हैं॥ ३॥

(प्रस्थान)

(मिश्रविष्कम्भक)

(वर्णित रूप में राजा और देवियों का प्रवेश)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(ततः प्रविशति यथानिर्दिष्टो राजा देव्यौ च)

राजा—हा वत्स ! राम ! जगतां नयनाभिराम !
हा वत्स ! लक्ष्मण ! सलक्षणसर्वगात्र ! ।
हा साध्वि ! मैथिलि ! पतिस्थितचित्तवृत्ते !
हा हा गताः किल वनं बत मे तनूजाः ॥ ४ ॥

चित्रमिदं भोः, यद् भ्रातृस्नेहात् पितरि विमुक्तस्नेहमपि तावल्लक्ष्मणं द्रष्टुमिच्छामि । वधु ! वैदेहि !

रामेणापि परित्यक्तो लक्ष्मणेन च गर्हितः ।
अयशोभाजनं लोके परित्यक्तस्त्वयाप्यहम् ॥ ५ ॥

हा वत्सेति । जगतां लोकानां नयनाभिराम लोचनरोचन, सलक्षणानि सामुद्रिकोक्तशुभलक्षणशालीनि सर्वाणि अशेषाणि गात्राणि अवयवा यस्य सः, सामुद्रिकोक्तशुभलक्षणोपेतसकलावयवस्तत्संबुद्धौ रूपम् । पत्यौ स्वामिनि स्थिता अविचलभावेन वर्त्तमाना (स्थितिप्रतिपादनं निष्ठाद्योतनार्थम्) चित्तवृत्तिर्यस्यास्तत्संबोधनम् । बतेति कष्टद्योतकम् । मे मम हतभाग्यस्य तनूजाः पुत्रा एते रामलक्ष्मणसीताः गता एव ममोपेक्षां कृत्वा वनं प्रस्थिता इति भावः । एतेन दशरथस्य वनगतान् तान् प्रति वात्सल्यातिशयः उक्तः । स्पष्टमन्यत् । वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥४॥

द्रष्टुमिच्छामि इति—आश्चर्यमिदं यत् पितुरपेक्षया भ्रातर्येवाधिकं स्निह्यतोऽपि लक्ष्मणस्य दर्शनाय मम हृदयं सोत्कण्ठमिति । औचित्यं तु न तथा तादृशस्याप्रीतिपात्रत्वादिति ।

रामेणापीति—रामेण तदभिधानेन, अपिशब्दात् पुत्रान्तरातिशायिनिरुपमपितृभक्तिशालितयाऽसम्भावितपितृपरित्यागव्यसनित्वं द्योत्यते । गर्हितः निन्दितः तिरस्कृत इति यावत् । तिरस्कारश्च आसन्नमरणं पितरमुपेक्ष्य भ्रातुरनुवृत्त्या सूचितः । अयशोभाजनम् अकीर्त्तिपात्रम् तत्त्वञ्चात्र रामोपमपुत्रविषये तादृशव्यवहारपरायणत्वरूपम् । त्वया वैदेह्या, अपिशब्देन वैदेह्याः श्वसुरेऽसाधारणभक्तियुक्तत्वेन तत्कर्तृक-

---

राजा—हा जननयनाभिराम राम, हा सर्वसुलक्षण लक्ष्मण, हा, स्वामिभक्ते सुविमलचरित्रे मैथिलि, शोक ! मेरे प्रिय बच्चे सचमुच बन को चले गये ॥ ४ ॥

ओह ! यह कैसा आश्चर्य है कि लक्ष्मण ने भ्रातृस्नेह के आगे पितृस्नेह की तिलाञ्जलि देदी, फिरभी उसे देखनेके लिए मेरा हृदय लालायित हो रहा है । हे वैदेहि !

राम ने मुझे तज दिया, लक्ष्मण ने भी तिरस्कृत कर दिया, संसार में मैं अयशोभागी बना तो क्या तुमने भी मेरा त्याग ही कर दिया ? ॥ ५ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

पुत्र राम ! वत्स लक्ष्मण ! वधु वैदेहि ! प्रयच्छत मे प्रतिवचनं पुत्रकाः ! शून्यमिदं भोः ! न मे कश्चित् प्रतिवचनं प्रयच्छति। कौसल्यामातः ! क्वासि ?

सत्यसन्ध ! जितक्रोध ! विमत्सर ! जगत्प्रिय ! ।
गुरुशुश्रूषणे युक्त ! प्रतिवाक्यं प्रयच्छ मे ॥ ३ ॥

हा क्वासौ सर्वजनहृदयनयनाभिरामो रामः ? क्वासौ मयि गुर्वनुवृत्तिः ? क्वासौ शोकार्तेष्वनुकम्पा ? क्वासौ तृणवदगणितराज्यैश्वर्यः ? पुत्र ! राम ! वृद्धं पितरं मां परित्यज्य किमसम्बद्धेन धर्मेण ते कृत्यम् ? हा धिक् । कष्टं भोः ?

परित्यागस्य खेदावहत्वमुच्यते ॥ ५ ॥

पुत्रेति—पुत्रकाः रामसीतालक्ष्मणाः, पुत्री च पुत्रौ चेति विग्रहे पुमेकशेषः। अनुकम्पायां कन्। तेन चानुकम्पा चात्र पुत्रपुत्रवधूविरहस्यासह्यतोक्ता।

सत्यसन्धेति—ध्यानसन्निधापितरामसम्बोधनानि सत्यसन्धेत्यादिना। सत्या अर्थादनपेता सन्धा प्रतिज्ञा यस्य तत्सम्बुद्धौ। जितक्रोध आत्मवशीकृतकोपवेग, वनवासहेतुभूतायां कैकेय्यामुचितस्यापि कोपस्य परित्यागसमभिधानान्माहात्म्यं रामस्य प्रकाश्यते। विगतो मत्सरोऽन्यशुभद्वेषो यस्य तत्सम्बोधने तथा। (अत एव) जगतां प्रिय प्रेमास्पद, गुरूणां पूजनीयानां पित्रादीनां शुश्रूषणे सेवायां युक्त तत्पर, मे मह्यम्, प्रतिवाक्यं प्रतिवचनम् प्रयच्छ देहि। अत्र जितक्रोध-विमत्सर-जगत्प्रियत्वादिप्रतिपादनेन प्रतिवचनस्यावश्यप्रदेयतोक्ता, गुरुशुश्रूषणे युक्तस्य गुर्वनुरोधानुध्यानस्यावश्यसम्पाद्यत्वं च ध्वनितम्। विशेषणसाभिप्रायत्वकृतः परिकरालंकारः। अनुष्टुबेव वृत्तम् ॥ ६ ॥

बेटा राम, वत्स लक्ष्मण, बहू वैदेहि, मेरे प्यारे लाडलो, वचनों का उत्तर तो दो। उफ, यहाँ तो सुनसान है, मेरे वचनों का कोई उत्तर ही नहीं देता। कौसल्यानन्दन, तुम कहाँ हो।

हे सत्यप्रतिज्ञ, ऐ जितक्रोध, ऐ मात्सर्यशून्य, ऐ जगत्प्रिय, ऐ गुरुभक्त, मुझे प्रतिवचन तो दो ॥ ६ ॥

हाय, कहाँ है वह सर्वप्रिय राम ?, जो सबकी आँखों का सितारा था, कहाँ है वह मुझमें भक्ति ? कहाँ है वह शोकपीड़ितों पर दया दिखाने वाला ? कहाँ है वह राज्याधिकार को तिनका समझनेवाला ? बेटा राम, मुझ वृद्ध पिता को छोड़कर इस धर्मनिष्ठा को तुमने क्यों अपनाया ? हा धिक्, कैसा दारुण दुःख है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitized by eGangotri

सूर्य इव गतो रामः सूर्य दिवस इव लक्ष्मणोऽनुगतः।
सूर्यदिवसावसाने छायेव न दृश्यते सीता ॥ ७ ॥

(ऊर्ध्वमवलोक्य) भोः कृतान्तहतक !

अनपत्या वयं रामः पुत्रोऽन्यस्य महीपतेः।

सूर्य इवेति—रामः सूर्य इव गतः दृष्टिवर्त्मबहिर्भूतः एतेन यस्य सूर्यस्येव पुनरुदयसम्भावनोक्ता (तादृशमस्तगतम्) सूर्यमिव रामं दिवस इव लक्ष्मणोऽनुगतः, यथास्तमितं भास्वन्तं दिवसोऽनुगच्छति तथा वनं गतं रामं लक्ष्मणोऽनुसूतवानिति विवक्षितोऽर्थः। सूर्यश्च दिवसश्चेति सूर्यदिवसौ तयोरवसानेऽन्तर्धाने छायेव सीता न दृश्यते। अयमाशयः—यथा सूर्येऽस्तमिते दिवसोऽपसरति, तत्र चापसृते छायाऽनुविनश्यति, तथैव रामे प्रस्थिते लक्ष्मणस्तमनुगतः, तयोश्च प्रस्थाने छायेव सीता पृथक्पथमतीत्य स्थिताऽभूदिति। अत्रोपमात्रयम्, सूर्य इव राम इति प्रथमा, दिवस इव लक्ष्मण इति द्वितीया, छायेव सीतेति तृतीया। तत्र रामस्य सूर्योपमया प्रकाशातिशयेन प्रतापवत्ताऽऽधिक्यम्, तददर्शनस्य मोहसमयत्वम्, सकलकार्यविरामश्चेत्यादयोऽर्था व्यक्ताः। लक्ष्मणस्य च दिवसोपमया रामेण समं प्रयाणस्य स्वभावसिद्धत्वमावेदितम्, सीतायाश्छायोपमया च तस्या अतिशयितपत्यनुवृत्तिलक्षणं चारित्रं प्रकटीकृतम्। किञ्च सूर्यस्यास्तमितस्यापि यथा पुनरुदयस्तत्सम्बन्धेन च दिवसश्रियो यथा पुनरनुवृत्तिश्छायायाश्च पुनर्यथा गृहाङ्गणालङ्करणभावस्तथा तेषामपि पुनरावृत्तिरिति च सर्वत्र प्रतिपाद्यमिति ॥ ७ ॥

कृतेति—कृतान्तहतक कालहतक, हतकपदं निन्दाद्योतनार्थम्।

कृतान्तहतक इत्युक्तं तत्र तस्य हतकत्वमकार्यकारित्वादिति, तदाह—**अनपत्या इति**। त्वया एतत् त्रयं किं कुतो न कृतम्, अवश्यकरणीयमिदं त्रयं कुतः परित्यक्तं यतश्च परित्यक्तं ततस्त्वं निन्द्य इति। तदेव त्रयं विवरीतुमाह—अनपत्या इति। वयमहमित्यर्थः, अनपत्याः सन्तानरहिताः रामस्तदाख्यः, अन्यस्य परस्य महीपतेः

सूर्य की भाँति राम चला गया, सूर्य के पीछे दिन की तरह लक्ष्मण भी चला गया। सूर्य और दिन के चले जाने पर छाया की तरह सीता भी नहीं दीख पड़ती ॥ ७ ॥

(ऊपर की ओर देखकर) अरे दुर्दैव—

(इससे अच्छा तो यही होता कि) तुम मुझे निस्सन्तान, राम को किसी दूसरे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

वने व्याघ्री च कैकेयी त्वया किं न कृतं त्रयम् ? ॥ ८ ॥

कौसल्या—(सरुदितम्) अलमिदानीं महाराजोऽतिमात्रं सन्तप्य परवशमात्मानं कर्तुम् । ननु सा तौ च कुमारौ महाराजस्य समयावसाने प्रेक्षितव्या भविष्यन्ति ।

अलं दाणिं महाराओ अदिमत्तं सन्तप्पिअ परवसं अत्ताणं कादुं । णं सा ते अ कुमारा महाराअस्स समआवसाणे पेक्खिदव्वा भविस्सन्ति ।

राजा—का त्वं भो ?

कौसल्या—अस्निग्धपुत्रप्रसविनी खल्वहम् ।

असिणिद्धपुत्तप्पसविणी खु अहं ।

राज्ञः पुत्रः सुत इति, तथा कैकेयी तदाख्या मम मध्यमा भार्या, वने अरण्ये व्याघ्री व्याघ्रयोनिजाता; इति त्रयं कुतो न कृतमिति पूर्वेणान्वयः । अयमाशयः—यदि वयमनपत्याः कृता अभविष्याम तर्हि गुणवत्तमपुत्रपरित्यागावसरलाभेन नातप्स्यामेति, रामस्य चान्यनृपतिकुमारत्वे पुत्रोचितलालनस्थाने वनवासकष्टं नापतिष्यत् कैकेय्याश्चेदृशक्रूरसत्त्वायाः काननव्याघ्रीभाव एवोचित इति त्रयमप्याशंसनमुपपन्नमेव । स्पष्टमन्यत् ॥ ८ ॥

समयावसाने समयस्य चतुर्दशवर्षात्मकस्य वनवासावधेरवसाने समाप्तौ, प्रेक्षितव्याः आलोकनीयाः ।

का त्वमिति—ज्वरसोपहतदृष्टितया रामादिविरहजनिताश्रुपूर्णलोचनतया वा राज्ञः समीपस्थेऽपि जने तथा प्रश्नः ।

अस्निग्धेति—अस्निग्धः स्नेहशून्यः, तत्त्वञ्च वृद्धौ जननीजनकौ परित्यज्य वनगमनादुपपद्यते । अथवा राज्ञा वनवासाज्ञाप्रदानात्तदप्रीतिपात्रत्वेनास्निग्धत्वमभिप्रेतम् ।

राजा का पुत्र और कैकेयी को वनव्याघ्री बनाते । फिर तुमने ये तीनों कार्य क्यों न किये ? ॥ ८ ॥

कौसल्या—(रोती हुई) महाराज, अब अधिक खेद न करें, बहुत विलाप करके अपना धीरज न खोवें । चौदह वर्षों के बीत जाने पर तो आप सीता और राम-लक्ष्मण को देखेंगे ही ।

राजा—तुम कौन हो ?

कौसल्या—मैं उसी अप्रिय पुत्र की जननी हूँ ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitized by eGangotri

राजा—किं किं सर्वजनहृदयनयनाभिरामस्य रामस्य जननी त्वमसि कौसल्या ?

कौसल्या—महाराज ! सैव मन्दभागिनी खल्वहम् ।

महाराअ ! सा एव मन्दभाइणी खु अहं ।

राजा—कौसल्ये ! सारवती खल्वसि । त्वया हि खलु रामो गर्भे धृतः ।

अहं हि दुःखमत्यन्तमसह्यं ज्वलनोपमम् ।
नैव सोढुं न संहर्तुं शक्नोमि मुषितेन्द्रियः ॥ ९ ॥

(सुमित्रां विलोक्य) इयमपरा का ?

कौसल्या—महाराज ! वत्सलक्ष्मण—(इत्यर्धोक्ते)

महाराअ ! वच्छलक्खण—

राजा—(सहसोत्थाय) कासौ कासौ लक्ष्मणः ? न दृश्यते । भोः कष्टम् ।

(देव्यौ ससंभ्रममुत्थाय राजानमवलम्बेते)

मन्दभागिनीति-मन्दभागिनी हतभाग्या, तत्त्वं च पुत्रप्रवासक्लेशोपनिपातात् । सारवतीति—सारवती सारं प्रशस्तं वस्तु रामनामकं तद्वती मतुबर्थः सम्बन्धः, स चात्र जन्यजनकभावलक्षणो वेदितव्यः ।

अहमिति—अहं नितान्तमसह्यं सोढुमशक्यम्, ज्वलनोपमम् अग्नितुल्यं तत्तुलना च सन्तापप्रदानात् । दुःखं प्रियतमपुत्रप्रवासात् समुत्पन्नं क्लेशम् नैव सोढुं मर्षयितुम् शक्नोमि; न संहर्तुं प्रतिक्रिययाऽपनेतुं शक्नोमि, तत्र कारणमाह—मुषितेन्द्रिय इति । मुषितानि; उपहतसामर्थ्यानि इन्द्रियाणि ज्ञानकर्मोभयेन्द्रियाणि यस्य तथाभूतः । इन्द्रियोपहतौ परिच्छेदाभावेन सहनप्रतिकारयोरुभयोरशक्यसम्पादनत्वादिति भावः ॥ ९ ॥

राजा—क्या कहा ? तुम सर्वनयनाभिराम राम की माता कौसल्या हो ?

कौसल्या—हाँ महाराज, मैं वही अभागिन हूँ ।

राजा—कौसल्या, नहीं तुम धन्य हो । तुमने तो राम को गर्भ में धारण किया । अभागा तो मैं हूँ, जो अग्नि के समान अत्यसह्य इस दुःख को न सह सकता हूँ और न दूर कर सकता हूँ । मेरे इन्द्रियगण शून्य हो गये हैं ॥ ९ ॥

(सुमित्रा की ओर देखकर) यह दूसरी कौन है ?

कौसल्या—महाराज, वत्स लक्ष्मण—

राजा—(सहसा उठकर) कहाँ है ? कहाँ है वह लक्ष्मण ? नहीं दीखता है । बड़ी तकलीफ है ।

(दोनों रानियाँ हड़बड़ाकर उठती और राजा को संभालती हैं)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कौसल्या—महाराज ! वत्सलक्ष्मणस्य जननी सुमित्रेति वक्तुं मयो-
महाराअ ! वच्छलक्खणस्स जणणी सुमित्तत्ति वत्तुं मए
प्रक्रान्तम् ।
उवक्कन्दं ।

राजा—अयि सुमित्रे !

तथैव पुत्रः सत्पुत्रो येन नक्तन्दिवं वने ।
रामो रघुकुलश्रेष्ठश्छाययेवानुगम्यते ॥ १० ॥

(प्रविश्य)

काञ्चुकीयः—जयतु महाराजः । एष खलु तत्रभवान् सुमन्त्रः प्राप्तः ।

राजा—(सहसोत्थाय सहर्षम्) अपि रामेण ?

तवैवेति--तव सुमित्रायाः पुत्रो लक्ष्मण एव सत्पुत्रः प्रशसाभाजनं तनयः । तस्य प्रशंसायां कारणमाह—येनेति । येन लक्ष्मणेन वने रघुकुलश्रेष्ठः रघुवंशावतंसो रामः नक्तंदिवं दिवानिशम्, छाययेवानुगम्यते । अत्र लक्ष्मणस्य छायोपमायां लिङ्ग-भेदेन 'सुधेव विमलश्चन्द्रः' इत्यत्रेवालङ्कारदोषो नोद्भाव्यः, तत्र सामान्यधर्मस्य पुंल्लिङ्गविमलपदप्रतिपाद्यत्वेन तेन रूपेणोपमानोपमेययोरुभयोरन्वेतुमयोग्यतया दोष-स्वीकारेऽपि पक्षेऽस्मिन्ननुगम्यत इति क्रियायाः सामान्यधर्मत्वेनोभयत्रान्वययोग्यत्वात् तया दोषानुपनिपातात् । उक्तञ्च—'न लिङ्गवचने भिन्ने न न्यूनाधिकते तथा । उप-मादूषणायालं यत्रोद्वेगो न धीमताम् ॥' इति । दृश्यते लिङ्गभेदेऽपि सादृश्येनोपनिबन्धो बाणेन कृतः, तद्यथा--'आयतनयननदीसीमान्तसेतुबन्धेन'.....इति ॥ १० ॥

अपि रामेणेति—अत्र रामेण सह प्राप्त इति विवक्षा, सहार्थशब्दयोगाभावेऽपि तृतीया 'वृद्धो यूने'त्यादाविव तदध्याहारसाध्या ।

कौसल्या—महाराज, मैं तो यह कह रही थी कि यह वत्स लक्ष्मण की माता सुमित्रा है ।

राजा—सुमित्रे,

तेरा ही पुत्र सत्पुत्र है, जो छाया की भाँति रात-दिन वन में रघुकुलश्रेष्ठ राम के पीछे-पीछे चलता है ॥ १० ॥

(कञ्चुकी का प्रवेश)

कञ्चुकी—जय हो महाराज की । यह आर्य सुमन्त्र आ गये ।

राजा—(झट उठकर हर्ष से) क्या राम के साथ ?

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

काञ्चुकीयः--न खलु, रथेन ।

राजा--कथं कथं रथेन केवलेन ? (इति मूर्च्छितः पतति)

देव्यौ--महाराज ! समाश्वसिहि समाश्वसिहि । (गात्राणि परामृशतः)
महाराज ! समस्ससिहि समस्ससिहि ।

काञ्चुकीयः--भोः ! कष्टम् । ईदृग्विधाः पुरुषविशेषा ईदृशीमापदं प्राप्नुवन्तीति विधिरनतिक्रमणीयः महाराज ! समाश्वसिहि समाश्वसिहि !

राजा--(किञ्चित् समाश्वस्य) बालाके ! सुमन्त्र एक एव ननु प्राप्तः ?

काञ्चुकीयः--महाराज ! अथ किम् ।

राजा--कष्टं भो !

शून्यः प्राप्तो यदि रथो भग्नो मम मनोरथः ।
नूनं दशरथं नेतुं कालेन प्रेषितो रथः ॥ ११ ॥

मूर्च्छितः असंज्ञः, तथाभावश्च रामशून्यरथागमनश्रवणेन रामपरावृत्त्याशातन्तुच्छेदाद् बोध्यः ।

ईदृग्विधाः ईदृशाः, लोकोत्तरत्वं मनसिकृत्येत्थमुक्तम् । विधिः भवितव्यता, अनतिक्रमणीयः अनुल्लङ्घनीयः ।

शून्य इति-शून्यः जनानधिष्ठितः, रथः यदि प्राप्त आयातस्तर्हि मम मनोरथो रामपरावृत्तिलक्षणो भग्नस्त्रुटितः। एतन्मनोरथभङ्गस्य च मन्मृत्युनिदानत्वमित्याह-नूनमिति । दशरथं नेतुं कालेन यमेन रथः प्रेषितो नूनम् । नूनं पदमुत्प्रेक्षायाम् ।

कञ्चुकी – नहीं, खाली रथ लेकर ?

राजा—क्या कहा ? खाली रथ लेकर ? (मूर्च्छित होकर गिर पड़ता है)

दोनों रानियाँ—महाराज,धीरज धरें,धीरज धरें। (महाराजकी देह सहलाती हैं)

कञ्चुकी—हाय, कैसा दारुण दुःख है ? ऐसे महापुरुष को भी इस प्रकार की आपत्ति सहनी पड़ती है। सचमुच, भवितव्यता किसी से नहीं टाली जा सकती।

राजा—(कुछ सँभलकर) बालाकि, क्या सुमन्त्र अकेले ही आये हैं ?

कञ्चुकी—जी हाँ।

राजा—हा शोक !

रथ का खाली लौटना मेरे मनोरथ का टूटना है। जान पड़ता है कि—काल ने दशरथ को बुला लाने के लिये ही यह रथ भेजा है ॥ ११ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

तेन हि शीघ्रं प्रवेश्यताम् ।

काञ्चुकीयः—यदाज्ञापयति महाराजः । (निष्क्रान्तः)

राजा—धन्याः खलु वने वातास्तटाकपरिवर्तिनः ।
विचरन्तं वने रामं ये स्पृशन्ति यथासुखम् ॥ १२ ॥

(ततः प्रविशति सुमन्त्रः)

सुमन्त्रः—(सर्वतो विलोक्य सशोकम्)

एते भृत्याः स्वानि कर्माणि हित्वा स्नेहाद् रामे जातबाष्पाकुलाक्षाः ।
चिन्तादीनाः शोकसन्दग्धदेहा विक्रोशन्तं पार्थिवं गर्हयन्ति ॥१३॥

ततश्च शून्यरथप्रेषणस्यानयनार्थितया यमकृतं शून्यरथप्रेषण दशरथानयनार्थमेवेति गम्यते ॥ ११ ॥

धन्या इति-तटाकपरिवर्तिनः पद्माकरपरिवर्त्तनशीलाः वने वाताः कानन-मारुताः धन्याः खलु । धन्यत्वमेव समर्थयितुमुपन्यस्यति—विचरन्तमिति । ये वाताः वने विचरन्तं विहरन्तं राम यथासुखं यथेच्छं स्पृशन्ति आलिंगन्ति, रामदेह-स्पर्श एव वातान् धन्यान् करोतीत्युक्त्या तद्विरहितस्य स्वस्याधन्यत्वमुक्तम्। स्मरामि चात्र पद्ये दृष्टे—'धन्याः खलु वने वाताः कह्लारस्पर्शशीतलाः । राममिन्दीवर-श्यामं ये स्पृशन्त्यनिवारिताः ॥' इति ॥ १२ ॥

एते भृत्या इति—एते भृत्याः स्वानि कर्माणि स्वनियोगान् हित्वा परित्यज्य रामे विषये स्नेहात् भावबन्धात् जातबाष्पाकुलाक्षाः सञ्जातबाष्पकलुषनेत्राः, चिन्तादीनाः चिन्तया मलिनाः, शोकसन्दग्धदेहाः रामविरहजनितखेदाग्निज्वलित-वपुषः विक्रोशन्तं बहु विलपन्तं पार्थिवं गर्हयन्ति निन्दन्ति ॥ १३ ॥

अच्छा तो शीघ्र ही अन्दर बुलाओ।

कञ्चुकी—जो महाराज की आज्ञा। (प्रस्थान)

राजा—सरोवरों से होकर गुजरनेवाली वन की हवायें ही धन्य हैं, जो वन में विचरते हुए राम को स्वेच्छा से आलिङ्गन करती हैं ॥ १२ ॥

(सुमन्त्र का प्रवेश)

सुमन्त्र—(चारों ओर देखकर शोक से)

राम के स्नेह से उदश्रु, चिन्ता से म्लानमुख, शोक के मारे दग्धहृदय ये नौकर चाकर भी अपने-अपने कार्यों को छोड़ 'राम राम' की रट लगाते हुए महाराज को धिक्कार रहे हैं ॥ १३ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitized by eGangotri

(उपेत्य) जयतु महाराजः ।

राजा—भ्रातः ! सुमन्त्र !

क्व मे ज्येष्ठो रामः—

न हि न हि युक्तमभिहितं मया ।

क्व ते ज्येष्ठो रामः प्रियसुत ! सुतः सा क्व दुहिता
विदेहानां भर्तुर्निरतिशयभक्तिर्गुरुजने ।
क्व वा सौमित्रिर्मां हतपितृकमासन्नमरणं
किमप्याहुः किं ते सकलजनशोकार्णवकरम् ॥ १४ ॥

क्व मे ज्येष्ठ इति—हे प्रियसुत, सुमन्त्र मे ज्येष्ठः सुतः रामः क्व ? इति प्रष्टुमुपक्रान्तम्, मध्ये मन्दभाग्यस्य स्वस्य रामेण सह सम्बन्धं परिजिहीर्षन्निवाह—क्व ते ज्येष्ठ इति । ते तव (वनगमनकालेऽनुवृत्त्या प्रियसुतत्वं व्यञ्जितवतस्तव, न तु वनवासाज्ञाप्रदानेन निर्घृणस्य मम) ज्येष्ठः प्रथमः पुत्रो रामः क्व ? कुत्रोद्देशे वर्त्तत इति जिज्ञासा । गुरुजने श्वशुरादौ निरतिशयभक्तिः सर्वातिशायिभक्तिसंवलिता विदेहानां मिथिलामहीमहेन्द्राणां शासने स्थितानां देशविशेषाणां भर्त्तुर्जनकस्य दुहिता सुता सीता च क्व ? सुमित्राया अपत्यं पुमान् सौमित्रिः लक्ष्मणः वा क्व ? किं ते रामलक्ष्मणसीताख्यास्त्रयोऽपि जनाः सकलजनशोकार्णवकरम् अखिललोकखेदसमुद्रोत्पादकम् (तत्त्वं च रामवनवासाज्ञाप्रदानात्खेदावसरसमर्पणाद्युज्यते) आसन्नं सन्निहितं मरणं यस्य तं मुमूर्षुमित्यर्थः । हतपितृकम् अभाग्यभाजनं निजं जनकं मां ते किमप्याहुः किमपि सन्दिदिशुः ? अथ तथा त्वरितमभिधीयतामिति तदाऽशयः । शिखरिणीवृत्तम्, तल्लक्षणं यथा—'रसै रुद्रैश्छिन्ना यमनसभला गः शिखरिणी' इति ॥ १४ ॥

(पास आकर) जय हो महाराज की ।

राजा—भाई सुमन्त्र,

कहाँ है मेरा बेटा राम ?

नहीं नहीं, मैंने ठीक नहीं कहा,

कहाँ है तुम्हारा बेटा राम ? ऐ राम को प्यार करनेवाले, कहाँ है वह गुरुजनों पर निरतिशय श्रद्धा रखनेवाली सीता ? कहाँ है वह सुमित्रा की आँखों का तारा ? क्या उन्होंने सबके लिए शोकप्रद, आसन्नमृत्यु मुझ अभागे पिता को कुछ संवाद कहा ? ॥ १४ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सुमन्त्रः—महाराज ! मा मैवममङ्गलवचनानि भाषिष्ठाः। अचिरादेव तान् द्रक्ष्यसि।

राजा—सत्यमयुक्तमभिहितं मया। नायं तपस्विनामुचितः प्रश्नः। तत् कथ्यताम्। अपि तपस्विनां तपो वर्धते ? अप्यरण्यानि स्वाधीनानि विचरन्ती वैदेही न परिखिद्यते ?

सुमित्रा—सुमन्त्र ! बहुवल्कलालङ्कृतशरीरा बालाऽप्यबालचारित्रा सुमन्त ! बहुवक्कलालङ्किदसरीरा बालादि अबालचरित्ता भर्तुः सहधर्मचारिणी अस्मान् महाराजं च किञ्चिन्नालपति ?

भत्तुणो सहधम्मआरिणी अम्हे महाराअं च किञ्चि णालवादि।

सुमन्त्रः—सर्वं एव महाराजम्—

राजा—न न। श्रोत्ररसायनैर्मम हृदयातुरौषधैस्तेषां नामधेयैरेव श्रावय।

अमङ्गलवचनानि अशुभसूचकवाक्यानि। तत्त्वञ्च राजोक्तौ आसन्नमरणत्वाद्यभिधानेन बोध्यम्।

तपस्विनां नागरभोगजिहासया तापसत्व परिगृहीतवतां रामादीनां त्रयाणाम्। तपो बर्द्धते नियमादिकं निर्विघ्नमनुष्ठीयते। स्वाधीनानि स्वभर्तृभुजवीर्यगुप्तिवशाद् आत्मवशे स्थितानि, अकुतोभयसञ्चाराणीति यावत्।

बहुवल्कलालङ्कृतशरीरा अधिकसङ्ख्यकवल्कलवासिनी, एतेन सीतायाः शरीरबन्धनव्यञ्जकेन कार्यतत्परतोक्तिमुखेन प्रौढिरुक्ता। बाला अल्पवयस्का, अबालचारित्रा प्रौढव्यवहारा।

न नेति निषेधश्चैष संवादप्रेषकपुत्रप्रेमपराधीनस्य राज्ञः तेषां सर्वनाम्ना निर्देशस्या-

---

सुमन्त्र—महाराज, आप ऐसे अमङ्गल वचन अपने मुख से न निकालें। आप उन्हें शीघ्र देखेंगे।

राजा—सचमुच मैंने ठीक नहीं कहा। तपस्वियों के विषय में ऐसे प्रश्न ठीक नहीं। अच्छा बताओ—तपस्वियों का तप तो निर्विघ्न है ? वन में निश्शङ्क विचरती हुई वैदेही थकती तो नहीं ?

सुमित्रा—सुमन्त्र, बहुत वल्कलों से भूषितशरीरा बाला होकर भी आदर्शचरित्रा, पतिसहचारिणी वह पतिव्रता सीता हमलोगों तथा महाराज को कुछ कह तो न रही थी ?

सुमन्त्र—सबने महाराज को.....

राजा—नहीं नहीं, कर्णरसायन तथा आतुर हृदय के लिये जीवनौषधिस्वरूप

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitized by eGangotri

सुमन्त्रः—यदाज्ञापयति महाराजः। आयुष्मान् रामः।

राजा—राम इति। अयं रामः। तन्नामश्रवणात् स्पष्ट इव मे प्रतिभाति। ततस्ततः।

सुमन्त्रः—आयुष्मान् लक्ष्मणः।

राजा—अयं लक्ष्मणः। ततस्ततः।

सुमन्त्रः—आयुष्मती सीता जनकराजपुत्री।

राजा—इयं वैदेही। रामो लक्ष्मणो वैदेहीत्ययमक्रमः।

सुमन्त्रः—अथ कः क्रमः?

राजा—रामो, वैदेही लक्ष्मण इत्यभिधीयताम्।
रामलक्ष्मणयोर्मध्ये तिष्ठत्वत्रापि मैथिली।

सह्यताव्यञ्जकतयाव्यग्रताव्यञ्जकः। श्रोत्ररसायनैः,श्रुतिप्रियैः हृदयातुरोषधैःमानसिक। व्यथाप्रशमनपटुभिः। एष चार्थ आतुरदस्य भावप्रधानस्याश्रयणेन लभ्य इति बोध्यम्

अक्रमः अनुपयुक्तः क्रमः, सीताया मध्यनिर्देशस्येष्यमाणत्वेनैवमुक्तम्।

रामलक्ष्मणयोरिति—'रामो लक्ष्मणः सीता' इत्यस्याभिधानस्याक्रमत्वं ब्रुवाणेन राज्ञा 'रामः सीता लक्ष्मणः' इत्ययं क्रमो निजाभिलषितो व्यक्तीकृतः,तदुपपत्तिमत्राह—अत्रापीति। मैथिली सीता अत्र नामधेयनिर्देशावसरेऽपि रामलक्ष्मणयोर्मध्ये तिष्ठतु, एकतो रामस्य नामान्यतश्च लक्ष्मणस्य नामाभिधीयमानं सीताया मध्येऽभिधीयमानं नामावृणोत्वित्यर्थः। अत्रापीत्यपिना नामधेयनिर्देशेऽपि मध्यगत्वेनाभिप्रेतायाः सीताया वनवासावस्थायां सर्वदैव रामलक्ष्मणान्तरालवर्तित्वमभिप्रेत-

---

प्रत्येक का नाम लेकर उनके संवाद सुनाओ।

सुमन्त्र—चिरंजीवी राम।

राजा—अच्छा राम, यह राम, राम का नाम सुन लेने से ऐसा जान पड़ता है मानो हमने उसे छाती से लगा लिया हो। हाँ फिर?

सुमन्त्र—चिरञ्जीवी लक्ष्मण।

राजा—चिरंजीवी लक्ष्मण। अच्छा आगे।

सुमन्त्र—आयुष्मती जनकनन्दिनी सीता।

राजा—यह सीता! 'राम, लक्ष्मण, सीता' यह क्रम तो ठीक नहीं।

सुमन्त्र—तो फिर कौन-सा क्रम ठीक होगा?

राजा—राम, सीता, लक्ष्मण ऐसा कहिये।

यहाँ नामोच्चारण में भी मैथिली राम और लक्ष्मण दोनों के बीच में ही रहे,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

बहुदोषाण्यरण्यानि सनाथैषा भविष्यति ॥ १५ ॥

सुमन्त्रः—यदाज्ञापयति महाराजः । आयुष्मान् रामः ।

राजा—अयं रामः ।

सुमन्त्रः—आयुष्मती जनकराजपुत्री ।

राजा—इयं वैदेही ।

सुमन्त्रः—आयुष्मान् लक्ष्मणः ।

राजा—अयं लक्ष्मणः । राम ! वैदेही ! लक्ष्मण ! परिष्वजध्वं मां पुत्रकाः ।

सकृत् स्पृशामि वा रामं, सकृत् पश्यामि वा पुनः ।
गतायुरमृतेनेव जीवामीति मतिर्मम ॥ १६ ॥

मभिव्यज्यते । तत्र कारणमाह—बहुदोषाणीति । अरण्यानि वनानि बहुदोषाणि नानाविधभयानि, अत एव पालकसापेक्षनिवासानीति एवं स्थिता, चैषा सनाथा उभयदिगवस्थितरामलक्ष्मणरूपपतिदेवरपालितत्वेन निर्भयावस्थाना । एतत्सर्वं दशरथस्य मनोदशां विवृण्वत् वात्सल्यातिशयं पोषयति ॥ ५ ॥

परिष्वजध्वम् आलिङ्गत ।

स्वोक्तेरावश्यकत्वं व्यञ्जयितुमाह—सकृदिति । सकृत् एकवारं रामं स्पृशामि वा पुनः सकृत् तं पश्यामि; (रामदर्शनस्पर्शनयोरभिप्रेयमाणताप्रतिपादनेन वात्सल्यपोषः) तत्फलमाह—गतायुरिति । गतायुः मुमूर्षुः यथा अमृतेनासादितेन जीवति तथा रामस्य दर्शनेन स्पर्शनेन वा मया जीवितव्यम् । इति मम मे मतिर्निश्चयात्मिका बुद्धिः उपमया स्वस्यावश्यम्भाविमरणमुच्यते स्पष्टमन्यत् ॥ १३ ॥

क्योंकि वन में बहुत से भय हुआ करते हैं, दोनों के बीच में रहने से वह निरापद रहेगी ॥ १५ ॥

सुमन्त्र—जो महाराज की आज्ञा । चिरंजीवी राम ।

राजा—यह राम ।

सुमन्त्र—आयुष्मती जनकनन्दिनी सीता ।

राजा—यह सीता ।

सुमन्त्र—चिरंजीवी लक्ष्मण ?

राजा—यह लक्ष्मण । राम, सीता, लक्ष्मण, आओ मुझसे लिपट जाओ, मेरे प्यारे बच्चों ।

मैं फिर कभी न कभी रामसे मिलूंगा, उसे देखकर आँखें शीतल करूँगा, इस सम्भावनासे मैं उसी प्रकार जी रहा हूँ, जैसे आसन्नमरण जीव अमृत की बूंदोंसे ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitized by eGangotri

सुमन्त्रः--शृङ्गवेरपुरे रथादवतीर्यायोध्याभिमुखाः स्थित्वा सर्व एव महाराजं शिरसा प्रणम्य विज्ञापयितुमारब्धाः।

कमप्यर्थं चिरं ध्यात्वा वक्तुं प्रस्फुरिताधराः।
बाष्पस्तम्भितकण्ठत्वादनुक्त्वैव वनं गताः ॥ १७ ॥

राजा--कथमनुक्त्वैव वनं गताः ? (इति द्विगुणं मोहमुपगतः)

सुमन्त्रः--(ससम्भ्रमम्) बालाके! उच्यताममात्येभ्यः--अप्रतीकारायां दशायां वर्तते महाराज इति।

विज्ञापयितुम्--सन्देष्टुम्, आरब्धाः आरब्धवन्तः अत्र कर्त्तरि क्तस्य मूलं मृग्यम्। कमपीति। कमपि पितरि श्रद्धां धारयद्भिः पुत्रैस्तथाविधायां स्थितौ पितुराज्ञासनायोपयुज्यमानं संदेशनीयम् अर्थं (वनवासस्य तातवचनपालनावसरप्रदायित्वेन नानानदनदीकाननसुखविहारावसरसमर्पकत्वेन चास्माकं कृते प्रमोदावहत्वमेवेत्थं रूपः, अयोध्यावासावस्थायां भवच्चरणशुश्रूषणावसरोऽस्माभिरनुदिनं लभ्यते स्म, इदानीं स विच्छिद्यमानोऽपि पुनर्नालभ्य इति कियन्ति हायनानि भवता स्वीयो वृद्धो देहो न विषद्य विषादनीयः इत्येवंविधो वान्यादृशो वात्र सन्देशार्थः) चिरं बहुकालं ध्यात्वा वक्तुं प्रस्फुरिताधराः प्रचलितौष्ठपुटाः अधरस्फुरणानुमितवचनप्रयत्ना अपीति यावत्, बाष्पस्तम्भितकण्ठत्वात् सद्यः प्रियपितृपरिजनादिवियोगप्रभवेन स्तम्भितो निरुद्धव्यापारः कण्ठो यस्य तस्य भावस्तत्त्वं तस्मात् अनुक्त्वा चिन्तितमपि असन्दिश्यैव वनं गताः। एतेन तेषामवचनस्य शोकवेगपराहतचित्ततासूतत्वेन कारणान्तरजन्यता निरस्ता, दशरथादीन् प्रति तेषां भावातिशयश्च व्यञ्जितः॥१७॥

अनुक्त्वैवेति—मया जनितस्य वनवासात्मकखेदस्यातिभूमिप्राप्तिरेव वचनप्रतिबन्धकरीति कथमहमेव तथा भावे निदानमिति राज्ञो भावः, अत एव च द्विगुणमोहोपगतिसङ्गतिः।

सुमन्त्र--शृङ्गवेरपुर में रथ से उतर कर अयोध्या की ओर मुख करके सब ने महाराज को सन्देश कहने का उपक्रम किया।

न जाने कौन-सी बात बड़ी देर तक सोचते रहे, कुछ कहने के लिये उनके ओठ फड़के, किन्तु अश्रुवेग से कण्ठावरोध हो जाने के कारण बिना कुछ कहे ही वे वन चले गये ॥ १७ ॥

राजा—क्या, बिना कुछ कहे वन चले गये ? (यह कहकर घोर मूर्च्छा में पड़ जाता है)

सुमन्त्र—(हड़बड़ाहट के साथ) बालाकि, मन्त्रियों से जाकर कहो कि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

काञ्चुकीयः—तथा। (निष्क्रान्तः)

देव्यौ—महाराज ! समाश्वसिहि समाश्वसिहि।

महाराअ ! समस्ससिहि समस्ससिहि।

राजा—(किञ्चित् समाश्वस्य)

अङ्गं मे स्पृश कौसल्ये ! न त्वां पश्यामि चक्षुषा।
रामं प्रति गता बुद्धिरद्यापि न निवर्तते ॥ १८ ॥

पुत्र ! राम ! यत् खलु मया सन्ततं चिन्तितम्—

राज्ये त्वामभिषिच्य सन्नरपतेर्लाभात् कृतार्थाः प्रजाः
कृत्वा, त्वत्सहजान् समानविभवान् कुर्वात्मनः सन्ततम्।
इत्यादिश्य च ते, तपोवनमितो गन्तव्यमित्येतया

अंगमिति। कौसल्ये, मे मम अंगं शरीरं स्पृश (येन त्वां सन्निहितां प्रतीत्य किंचिदाश्वासितहृदयत्वेन युज्येय) त्वां चक्षुषा उपहतदर्शनसामर्थ्येन नेत्रेण न पश्यामि (अथानेन विपदुपनिपातेन यदि मदीया दर्शनशक्तिर्नालोप्स्यत तदा तु दर्शनेनैव तव सान्निध्यं ज्ञात्वाङ्गस्पर्शनेन त्वां स्वसान्निध्यसूचनाय नाक्लेशयिष्यमिति भावः) रामं प्रति तद्विषये गता (न तु प्रेषिता, एतेन राज्ञो विवशत्वमुक्तम्) अद्यापि अधुनाऽपि न निवर्त्तते न परावर्त्तते। एवञ्च बुद्धिविरहितस्य ममाकार्यकारित्वव्यावृत्तयेऽपि तवात्रावस्थानं प्राप्तावस्थानमिति भावः ॥

राज्ये त्वामिति। त्वां राज्ये नृपाधिकारेऽभिषिच्य व्यवस्थाप्य सन्नरपतेः प्रशंसास्पदस्य त्वद्रूपस्य राज्ञो लाभात् प्रजाः प्रकृतिजनान् कृतार्थाः कृतकृत्याः कृत्वा विधाय त्वत्सहजान् तव सहजनुषो भरतादीन् भ्रातॄन् समानविभवान् स्वतुल्यभोग्यार्थसम्पदधिकारिणः कुर्विति च ते तुभ्यमादिश्य व्याहृत्य इतोऽयोध्यायाः तपोवनं

महाराज की दशा असाध्य हो चुकी है।

कञ्चुकी—जो आज्ञा। (जाता है)

दोनों रानियाँ—महाराज, धीरज धरें, धीरज धरें।

राजा—(कुछ सँभलकर)

कौसल्या, मेरे अङ्गों पर हाथ फेरो, मुझे तुम नहीं दीखती हो। राम की ओर गया हुआ मेरा हृदय अभी नहीं लौट रहा है ॥ १८ ॥

बेटा राम, मैं सदा सोचता आ रहा था कि—

तुम्हें राजगद्दी पर बैठाकर, प्रजावर्ग को उत्तमराजा के लाभ से कृतार्थ कर और तुम्हें यह कहकर कि 'अपने भाइयों को सदा स्वसदृश ऐश्वर्यशाली बनाये रखना'

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitized by eGangotri

कैकेय्या हि तदन्यथा कृतमहो निःशेषमेकक्षणे ॥ १९ ॥
सुमन्त्र ! उच्यतां कैकेय्याः—
गतो रामः, प्रियं तऽस्तु, त्यक्तोऽहमपि जीवितैः ।
क्षिप्रमानीयतां पुत्रः, पापं सफलमस्त्विति ॥ २० ॥

सुमन्त्रः—यदाज्ञापयति महाराजः ।

राजा—(ऊर्ध्वमवलोक्य) अये ! रामकथाश्रवणसन्दग्धहृदयं मामाश्वासयितुमागताः पितरः । कोऽत्र ?

(प्रविश्य)

तपसे समुपयुज्यमानं किमपि काननं गन्तव्यमिति (यन्मया सन्ततं चिन्तितम्) तत् चिन्तितं वस्तु निश्शेषम् अखिलम् कैकेय्या अहो एकक्षणे क्षणमात्रेण अन्यथाकृतम् विपरीततां गमितम् । अहो कष्टम् ! पुत्रसंक्रान्तलक्ष्मीकस्य स्वस्य वनगमने चिन्त्यमाने पुत्रस्यैव वनगमनं विपरीत सद्वयर्थकमिति भावः । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ।

गत इति । रामः गतः, वनमिति योजनीयम् । ते प्रियमस्तु त्वं तद्वनगमनश्रवणेन प्रीता भव । पुत्रः भरतः क्षिप्रमानीयताम् अविलम्बमाकार्यताम्, पापं रामनिर्वासनस्वरूपम्, सफलं भरताभिषेकेण फलेन सहितं यथा तथा अस्तु जायताम्, रामो वनं गतो भरताय राज्यं देहीति राज्ञः सोल्लुण्ठवचनम् ॥ २० ॥

श्रवणसन्दग्धेति—श्रवणस्य च रामस्मरणद्वारा सन्नायकत्वादित्यमुक्तिः । पितरः पितृभूताः, पितृपितामहादयः पूर्वजाः, तद्दर्शनस्य सन्निहितमरणसूचकत्वम् । एतच्च नियतमरणख्यापकं लिंगमरिष्टम् । तदुक्तम्—

'श्वकाककङ्कगृध्राणां प्रेतानां यक्षरक्षसाम् । पिशाचोरगनागानां भूतानां विकृतामपि ॥
यो वा मयूरकण्ठाभं विधूमं वह्निमीक्षते ।
आतुरस्य भवेन्मृत्युः स्वस्थो व्याधिमनाप्नुयात् ॥' (सु. सू. अ. ३०)

मैं छुटकारा प्राप्त कर, इस वृद्धावस्था को तपोवन में व्यतीत करूँगा। परन्तु हाय, इन बातों को कैकेयी ने क्षणभर में पलट डाला ॥ १९ ॥

सुमन्त्र, जाओ, कैकेयी से कह दो—

राम वन चले गये, तुम अपना मनोरथ पूर्ण कर लो, मुझे भी मेरे प्राण छोड़ चले । अब तुम अपने बेटे को बुलवा लो, तुम्हारा पापाध्याय पूरा हो जावे ॥२०॥

सुमन्त्र—जो आज्ञा ।

राजा—(ऊपर की ओर देखकर) ओ, राम की इस विपद्गाथा से दग्ध हृदय मुझको सान्त्वना देने के लिए पितृगण आ गये हैं । कोई है यहाँ ?

(कञ्चुकी का प्रवेश)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

काञ्चुकीयः—जयतु महाराजः ।

राजा—आपस्तावत् ।

काञ्चुकीयः—यदाज्ञापयति महाराजः । (निष्क्रम्य) जयतु महाराजः । इमा आपः ।

राजा—(आचम्यावलोक्य) ।

अयममरपतेः सखा दिलीपो, रघुरयमत्रभवानजः पिता मे ।
किमभिगमनकारणं, भवद्भिः सह वसने समयो ममापि तत्र ॥२१॥

राम ! वैदेहि ! लक्ष्मण ! अहमितः पितॄणां सकाशं गच्छामि ।

हे पितरः ! अयमहमागच्छामि । (मूर्च्छया परामृष्टः)

(काञ्चुकीयो यवनिकास्तरणं करोति)

अयमिति—अयम् अमराणां देवानां पत्युरिन्द्रस्य सखा दिलीपः तदाख्यया प्रथितः अस्मत्प्रपितामहः, अयम् रघुः दिलीपपुत्रः अस्मत्पितामहः, अयम् अत्रभवान् पूज्यः अजः नाम मे मम दशरथस्य पिता जनकः अभिगमनकारणं भवतामत्र मर्त्यभुवि समागमनस्य प्रयोजनम् किम् ? न कोऽपि हेतुरत्र भवतामागमनस्येत्यर्थः, भवता सह सहवास एवात्र पितॄणामस्माकमत्रागमनकारणमिति चेत्तथापि माऽऽगमि, स्वयं ममैव भवदीयलोकोपसरणसमयस्य समुपस्थितस्यानुपेक्ष्यत्वात् । तदाह—सहेति । ममापि तत्र भवदध्युषिते लोके सह वसने भवद्भिः सह निवासे समयः आगत इति । अहमचिरेणैव शरीरमिदं जहामीत्याशयः । पुष्पिताग्रावृत्तम्, लक्षणं

कञ्चुकी—जय हो महाराज की ।

राजा—जल लाओ ।

कञ्चुकी—जो आज्ञा (बाहर से जल ले आकर) जय हो महाराज की । यह जल है ।

राजा—(आचमन करके और देखकर)

ये हैं देवराज इन्द्र के सखा महाराज दिलीप, ये हैं महाराज रघु, ये हैं माननीय मेरे पूज्य पिताजी अज, आप लोगों के यहाँ आने का क्या कारण हो गया। अब तो मेरे लिए भी आप के साथ रहने का समय आ पहुँचा ॥ २१ ॥

राम, जानकी, लक्ष्मण, अब मैं पितृलोक चला। पितरों, मैं यह आया ? (मूर्च्छित होते हैं)

(कञ्चुकी पर्दा गिराता है)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitized by eGangotri

सर्वे—हा हा महाराजः हा हा महाराजः ।
हा हा महाराओ । हा हा महाराओ ।
(निष्क्रान्ताः सर्वे)
द्वितीयोऽङ्कः ।

अथ तृतीयोऽङ्कः

(ततः प्रविशति सुधाकारः)

सुधाकारः—(सम्मार्जनादीनि कृत्वा) भवतु, इदानीं कृतमत्र कार्यमार्य-
भोदु, दाणि किदं एत्थ कय्यं अय्य-
सम्भवकस्याज्ञप्तम् । यावन्मुहूर्तं स्वप्स्यामि । (स्वपिति)
सम्भवअस्स आणत्तं । जाव मुहुत्तं सुविस्सं ।
(प्रविश्य)
भटः—(चेटमुपगम्य ताडयित्वा) अङ्घो दास्याःपुत्र ! किमिदानी कर्म
अङ्घो दासीएपुत्त ! किं दाणि कम्मं

यथा—'अयुजि नयुगरेफतो यकारो युजि च नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा' इति ॥२१॥

इति मैथिलपण्डितश्रीरामचन्द्रमिश्रकृते प्रतिमानटक–प्रकाशे द्वितीयोऽङ्कः ।

सुधाकार इति–सुधा चूर्णम्, तां करोतीति विग्रहेण भवनभित्तिधवलीकरणाय सुधालेपनाधिकृतः सुधाकार इत्युच्यते । स चात्र दशरथप्रतिमागृहपरिमार्जनेऽधिकृतो वेदितव्यः ।

आर्येति—आर्यसंभवकस्य पूज्यस्य संभवकाख्यस्य काञ्चुकीयस्य, आज्ञप्तम् आदेशः । सम्बन्धसामान्ये षष्ठी ।

अङ्घो इति—निपातोऽयं सकोपामन्त्रणार्थः । दास्याःपुत्रेति निन्दार्थम्, अदासी-

---

सर्वे—हा महाराज, हा महाराज ! (सबका प्रस्थान)
द्वितीय अङ्क समाप्त ॥ २ ॥

(सुधाकार का प्रवेश)

सुधाकार—(झाड़ू लगाकर) अच्छा, आर्य संभवक द्वारा आदिष्ट सब कार्य तो कर लिए, अब थोड़ी देर सो लूँ । (सोता है)

(भट का प्रवेश)

भट—(चेट के पास जाकर तथा उसे पीट कर) अरे दासीपुत्र, अब काम क्यों

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

न करोषि ? (ताडयति)

ण करेसि ?

सुधाकारः—(बुद्ध्वा) ताडय मां ताडय माम् !

तालेहि मं तालेहि मं ।

भटः—ताडिते त्वं किं करिष्यसि ?

ताडिदे तुवं किं करिस्ससि ?

सुधाकारः—अधन्यस्य मम कार्तवीर्यस्येव बाहुसहस्रं नास्ति ।

अनण्णस्स मम कत्तवीअस्स विअ बाहुसहस्सं णत्थि ।

भटः—बाहुसहस्रेण किं कार्यम् ?

बाहुसहस्सेण किं कय्यं ?

सुधाकारः—त्वां हनिष्यामि ।

तुवं हणिस्सं ।

पुत्रस्यैव तथा सम्बोध्यमानत्वात् । 'षष्ठ्या आक्रोशे' इति षष्ठ्या अलुक् । कर्म स्वनियोगम्, कर्त्तव्यत्वेनादिष्टं व्यापारम् ।

ताडयेति—स्वकर्त्तव्यस्य समापितत्वेन गर्वितस्य तस्येत्थमुक्तिर्निरपराधताडनस्य बलवदनर्थानुबन्धित्वमावेदयति ।

ताडिते इति—'त्वयि' इति विशेष्यमध्याहार्यम्, अथवा भावे क्तः, तथा च सति ताडने कृतेऽपि त्वं किं करिष्यसीति स्वाभिमानः ।

कार्त्तवीर्यस्य तदाख्यस्य, तथा हि स्मर्यते—'कार्त्तवीर्यार्जुनो नाम राजा बाहुसहस्रभृत् । योऽस्य सङ्कीर्त्तयेन्नाम कल्यमुत्थाय मानवः ॥ न तस्य वित्तनाशः स्यान्नष्टं च लभते ध्रुवम् ॥' इति ।

नहीं करता ? (पीटता ही है)

सुधाकार—(जागकर) मार लो, मुझे मार लो ।

भट—मारूँगा ही तो तुम क्या करोगे ?

सुधाकार—मैं अभागा सहस्रबाहु की तरह हजार हाथ नहीं पाया ।

भट—हजार हाथ होने पर क्या करते ?

सुधाकार—तुमको मार डालते ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भटः--एहि दास्याःपुत्र ! मृते मोक्ष्यामि । (पुनरपि ताडयति)
एहि दासिएपुत्त ! मुदे मुञ्चिस्सं ।

सुधाकारः--(रुदित्वा) शक्यमिदानीं भर्त ! मेऽपराधं ज्ञातुम् ।
शक्कं दाणिं भट्टा ? मे अवराहं जाणिदुम् ।

भटः—नास्ति किलापराधो नास्ति । ननु मया सन्दिष्टो भर्तृदारकस्य
णत्थि किल अवराहो णत्थि । ण मए सन्दिट्ठो भट्टिदारअस्स
रामस्य राज्यविभ्रष्टकृतसन्तापेन स्वर्गं गतस्य भर्तुर्दशरथस्य
रामस्य रज्जविब्भट्ठकिदसन्दावेण सग्गं गदस्स भट्टिजो दसरहस्स
प्रतिमागेहं द्रष्टुमद्य कौसल्यापुरोगैः सर्वैरन्तःपुरैरिहागन्त-
पडिमागेहं देट्ठुं अज्ज कौसल्लापुरोएहि सव्वेहि अन्तेउरेहि इह आअन्त-
व्यमिति । अत्रेदानीं त्वया किं कृतम् ?
व्वं त्ति । एत्थ दाणिं तुए किं किदं ?

सुधाकारः--पश्यतु भर्ता अपनीतकपोतसन्दानकं तावद् गर्भगृहम् ।
पेक्खुदु भट्टा अवणीदकवोदसन्दाणअं दाव गब्भगिहं ।

मृत इति—त्वयि मृत एव त्वां त्यक्ष्यामीति भावः । जीवन्तं त्वां न परित्यजामीति हृदयम् ।

अपराधमिति—जानातेरिदं कर्म, शक्यमित्यत्र भावे प्रत्ययः, जानातेः कर्त्तरि तुमुन्, तेन कर्मणि द्वितीया । एतादृशस्थले एवमेव व्यवस्थापनीयम् ।

नास्तीति—काकार्यविपर्ययः अस्त्येव तवापराध इति भावः विभ्रष्टं विभ्रंशः । सन्दिष्टः आज्ञप्तः, त्वमिति शेषः । प्रतिमागेहं मृतानां राज्ञां स्मृतिचिह्नभूताः प्रतिमा यत्र स्थाप्यन्ते तद् गृहम् ।

अपनीतेति—सुधाकारस्य स्वकृतकार्यताप्रदर्शनार्थेयमुक्तिः । अपनीतं दूरीकृतं

भट—आः, अरे दासीपुत्र, अब तो खतम करके ही छोड़ूंगा । (फिर पीटता है)

सुधाकार—(रोते हुए) तो क्या इस समय आप हमारा अपराध बता सकते हैं;

भट—कुछ अपराध नहीं, सचमुच कुछ अपराध नहीं । भला मैंने जो तुमको आज्ञा दी थी कि—राजकुमार राम राज्यच्युत होकर वन चले गये उनके शोक में महाराज ने प्राण दे दिये, उनकी प्रतिमा का दर्शन करने के लिये उनका समस्त अन्तःपुर प्रतिमागृह जाने वाला है । बता, तूने यहाँ क्या काम किया है ?

सुधाकार—देख लीजिये, प्रतिमागृह के अपरिमार्जन से पक्षियों ने घोसले बना

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

सौधवर्णकदत्तचन्दनपञ्चाङ्गुला भित्तयः। अवसक्तमाल्य-
सोहवण्णअदत्तचन्दणपञ्चाङ्गुला भित्तीओ। ओसत्तमल्ल-
दामशोभीनि द्वाराणि। प्रकीर्णा बालुकाः। अत्रेदानीं
दामसोहीणि दुवाराणि। पइण्णा बालुआ। एत्थ दाणि
मया किं न कृतम्?
मए किं ण किदं?

भटः—यद्येवं विश्वस्तो गच्छ। यावदहमपि सर्वं कृतमित्यमात्याय
जइ एवं विस्सत्थो गच्छ। जाव अहं वि सव्वं किदं त्ति अमच्चस्स
निवेदयामि।
णिवेदेमि।

(निष्क्रान्तौ)
(प्रवेशकः)
(ततः प्रविशति भरतो रथेन सूतश्च)

कपोतसन्दानकं कपोतनीडं यस्मात् तत्। चित्रपरिमार्जितेषु हि गृहेषु कपोतास्त्यो नीडानावघ्नन्ति। सौधे सुधामये वर्णके आलेपे दत्तं निवेशितं चन्दनपञ्चाङ्गुलं चन्दनमयपञ्चाङ्गुलन्यासो यासु ताः। अवसक्तैः संयोजितैः माल्यदामभिः पुष्पस्रग्भिः शोभितुं शीलमेषामिति तथाभूतानि। बालुकाः सूक्ष्मसिकताः पादस्पर्शसुखार्थं ता न्यस्यन्ते। विश्वस्तः कृतस्वकर्त्तव्यतया ताडनभयरहित इत्यर्थः।

प्रवेशक इति—प्रवेश एव प्रवेशकः। तल्लक्षणं यथा—

वृत्तवर्त्तिष्यमाणानां कथांशानां निदर्शकः। संक्षेपार्थस्तु विष्कम्भो मध्यपात्रप्रयोजितः।
एकानेकगतः शुद्धः सङ्कीर्णो नीचमध्ययोः। तद्वदेवानुदात्तोक्त्या नीचपात्रप्रयोजितः॥

'क्षिप्रमानीयतां पुत्रः' इति मुमूर्षुराजोक्तो भरतस्यागमनं सूचितम्, सम्प्रति

लिये थे, वे हटा दिये गये हैं, दीवारें पुतवा दी गयी हैं, उन पर पञ्चाङ्गुलि का आकार बना दिया गया है, दरवाजे पुष्पमालाओं से सजा दिये गये हैं, सजावट के लिये चारों ओर रेत बिछा दी गई है। आप ही कहिये—यहाँ मैंने क्या नहीं किया!

भट—यदि ऐसी बात है तो इतमीनान से जाओ, मैं भी मन्त्रीजी को तैयारी की सूचना देता हूँ।

(दोनों का प्रस्थान)
(प्रवेशक)
(रथ में बैठे भरत और सारथि का प्रवेश)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

भरतः—(सावेगम्) सूत ! चिरं मातुलपरिचयादविज्ञातवृत्तान्तोऽस्मि । श्रुतं मया दृढमकल्यशरीरो महाराज इति । तदुच्यताम्—

पितुर्मे को व्याधिः

सूतः— हृदयपरितापः खलु महान्

भरतः—किमाहुस्तं वैद्याः

सूतः— न खलु भिषजस्तत्र निपुणाः ।

भरतः—किमाहारं भुङ्क्ते शयनमपि

सूतः— भूमौ निरशनः

भरतः—किमाशा स्याद्

सूतः— दैवं

भरतः— स्फुरति हृदयं वाहय रथम् ॥ १ ॥

तत्प्रवेशमाह–तत इति ।

मातुलेति—मातुलपरिचयात् मातुलस्य युधाजितः परिचयात् , तद्गृहे-भृशनिवासात् । अविज्ञातवृत्तान्तः अविदितराजसमाचारः । दृढं नितान्तम् । अकल्यशरीरः अस्वस्थदेहः । उच्यतां राज्ञोऽस्वस्थतायाः सामान्यतो ज्ञातत्वेनोदिताया विशेषजिज्ञासायाः शान्तये विविच्य प्रतिपाद्यतामित्यर्थः ।

भरतस्य प्रश्नान् सूतेन दत्तान्युत्तराणि चैकपद्येनैवाह–पितिरिति । निपुणाः दक्षाः, हृदयपरितापस्य निदानापगममात्रसाध्यतायाः सर्वविदतत्वेन वैद्यानां तत्राप्रसरादिति ।

दैवं भाग्यम्, तदेवात्र राजजीवने आशामुज्जीवयितुमीश इतिभावः । स्फुरतिहृदयं

भरत—(चिन्तापूर्वक) सारथि, चिरकाल तक मामाजी के यहाँ रहने से मुझे घर की कुछ खबर नहीं मिली, मैंने सुना था महाराज अधिक रुग्ण हैं, तुम तो कहो—मेरे पिता को कौन व्याधि है ?

सूत—दारुण मानसिक सन्ताप ।

भरत=वैद्यों ने क्या कहा ?

सूत—उन्हें कुछ पता नहीं चला ।

भरत—खाने और सोने की क्या व्यवस्था है ?

सूत—भूमि पर निराहार पड़े रहते हैं ।

भरत—क्या उनके जीने की आशा है ?

सूत—दैव जाने ।

भरत—मेरा हृदय धड़क रहा है, रथ चलाओ ॥ १ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

सूतः—यदाज्ञापयत्यायुष्मान्। (रथं वाहयति)
भरतः—(रथवेगं निरूप्य) अहो नु खलु रथवेगः। एते ते,

द्रुमा धावन्तीव द्रुतरथगतिर्क्षीणविषया
नदीवोद्वृत्ताम्बुर्निपतति मही नेमिविवरे।
अरव्यक्तिर्नष्टा स्थितमिव जवाच्चक्रवलयं
रथश्चाश्वोद्धूतं पतति पुरतो नानुपतति ॥ २ ॥

सोत्कण्ठतया त्वरया स्पन्दत इत्यर्थः। जीवत्पितृचरणदिदृक्षादुःस्थस्य मम शान्तये रथमाश्वाशु चालयेति भावः। संवादपद्यमिति न विशिष्यव्याख्यामर्हति ॥ १ ॥

अहो न खल्विति—आश्चर्यकरस्तव रथस्य वेग इत्यर्थः।

द्रुमा इति—द्रुतया शीघ्रया रथगत्या रथचलनेन क्षीणविषयाः अल्पीभूतदृष्टिविषयपातिद्रुमभागाः द्रुमा वृक्षाः धावन्तीव धावन्त इव प्रतीयन्ते। रथवेगमहिम्ना त्वरया दृश्यमाना अपि द्रुमावयवा दूरमुपसर्पन्तो दृग्गोचरतां जहतीति तेषां धावनमुत्प्रेक्षते। उद्वृत्ताम्बुः उद्भ्रान्तजला मही भूमिः नदीव नेमिविवरे प्रधिरन्ध्रे निपतति निपतन्तीव ज्ञायते। भूभागविशेषे विद्यमाना जलाशया रथवेगेन रथस्थानां दृष्टौ चलज्जला इति तत्सहिताया भुवो नदीभावेन नेमिप्रवेश उत्प्रेक्ष्यते। अराणां नेमिनाभिमध्यवर्त्तिदण्डाकारावयवानां व्यक्तिः स्फुटावभासता पार्थक्येन प्रतीयमानता नष्टा तिरोहिता, जवात् रथवेगात् चक्रवलयं चक्रमण्डलं स्थितमिव गतिरहितमिव अतित्वरितगामिनो रथचक्रस्य त्वरितभ्रमणं नोपलक्ष्यत इति स्थितत्वप्रतिभासः। अश्वोद्धूतं वाजिखुराघातोत्क्षिप्तं रजश्च पुरतः अग्रे पतति उद्गच्छति, न अनुपतति न रथमनुगच्छति, निमेषमात्रेण रजोऽनुपतनगोचरदेशातिक्रमणादित्यर्थः उत्प्रेक्षासहकृता स्वभावोक्तिरलङ्कारः। शिखरिणीवृत्तम् ॥ २ ॥

सूत—जो आज्ञा। (रथ चलाता है)

भरत—(रथ के वेग को देखकर) वाह,

रथ किस तीव्रता से भागा जा रहा है? ये वृक्ष रथ की द्रुतगामिता में क्षण भर में ही आँखों से ओझल हो गये, भँवर से युक्त जलवाली नदी की भाँति पृथ्वी धुरी के छिद्र में गिर रही है, बड़ी तेजी से घूमने के कारण चक्र के आरे दीख नहीं पड़ रहे हैं और धूलि घोड़ों की टापों से उड़कर सामने ही गिरती है, पीछे नहीं ॥ २ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitized by eGangotri

सूत—आयुष्मन् ! सोपस्नेहतया वृक्षाणामभितः खल्वयोध्यया भवितव्यम् ।

भरतः—अहो न खलु स्वजनदर्शनोत्सुकस्य त्वरता मे मनसः सम्प्रति हि,

पतितमिव शिरः पितुः पादयोः स्निह्यतेवास्मि राज्ञा समुत्थापितस्त्वरितमुपगता इव भ्रातरः क्लेदयन्तीव मामश्रुभिर्मातरः। सदृश इति महानिति व्यायतश्चेति भृत्यैरिवाहं स्तुतः सेवया परिहसितमिवात्मनस्तत्र पश्यामि वेषं च भाषां च सौमित्रिणा॥३॥

सोपस्नेहतया-वृक्षबाहुल्यनिमित्तकोपक्लेदवत्तया। त्वरता उत्कण्ठितता, स्वजनदर्शनानन्तरमाविस्वाभीष्टकल्पनव्यग्रतेत्यर्थः, अत्र सत्वरतेति त्वरितेति वा साधुबोध्यम्।

पतितमिवेति—पितुः पादयोश्चरणयोः शिरः मम मस्तकं पतितमिव, किञ्चित्कालानन्तरं राजानं प्रणंस्यामीति सोत्कण्ठतयाऽधुनैव शिरः पितृपादयोः पतितं प्रत्येमीति भावः। स्निह्यता सुतवात्सल्यद्रुतान्तरङ्गेणेव राज्ञा दशरथेन समुत्थापितः पादप्रदेशादाकृष्य स्वाङ्कमारोपित इवास्मि । भ्रातरः रामादयः त्वरितं मदागमनानाकर्णनोत्तरकालमविलम्बेनैव उपगताः मातुलकुलादुपागतं मां परिवार्य स्थिता इत्यर्थः। मातरः माम् अश्रुभिः पुत्रागमनप्रसूतानन्दाश्रुभिः क्लेदयन्तीव आर्द्रयन्तीव, सदृश इति। यस्यामेव कायिकस्थितावितो मातुलकुलं गतस्तदवस्थ एव परावृत्त इति, महानिति यावदाकारो गतस्तत उपचितावयवः सन् परावृत्त इति, व्यायतः परिशीलितव्यायामश्चेति भृत्यैः सेवया चरणसंवाहनादिना स्तुत इवाहम् । भृत्या हि चिरादुपेतं स्वामिपुत्रमुपलभ्य चरणसेवनादिकुर्वाणास्तत्प्ररोचनार्थं यथास्वबुद्धिपुरोदीरितमिवाभिदधतीति स्थितिः। आत्मनः वेषं केकयदेशोचितपरिधानीयनिवेशं भाषां तद्देशवासाव-

---

सूत—वृक्षों की सघनता तथा शीतलता से जान पड़ता है कि अयोध्या समीप में ही है।

भरत—अहो, आत्मीय जनों के दर्शनार्थ मेरा मन कितना उतावला हो रहा है। क्योंकि, इस समय—

ऐसा जान पड़ रहा है कि मैं पिताजी के चरणों में नत हूँ और उन्होंने वात्सल्य से मुझे गोद में उठा-सा लिया है। भाई शीघ्रता से आकर मुझे घेर-से रहे हैं और माताओं की आँखें आनन्दाश्रु बरसा रही हैं, जिससे मैं भी भींगता-सा जा रहा हूँ। भरत जैसे जाने के समय थे, अब भी वैसे ही हैं, एक ने कहा,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सूतः--(आत्मगतम्) भोः ! कष्टम्, यदयमविज्ञाय महाराजविनाश-
मुदर्के निष्फलामाशां परिवहन्नयोध्यां प्रवेक्ष्यति कुमारः।
जानद्भिरप्यस्माभिर्न निवेद्यते। कुतः,
पितुः प्राणपरित्यागं मातुरैश्वर्यलुब्धताम्।
ज्येष्ठभ्रातुः प्रवासं च त्रीन् दोषान् कोऽभिधास्यति?॥४॥
(प्रविश्य)

स्थापरिशीलसात्म्यभावेनापि बलान्मुखान्निर्गच्छन्ती सरस्वती च सौमित्रिणा लक्ष्मणेन परिहसितमिव पश्यामि। लक्ष्मणो मम भाषां वेषं च भेदेन प्रतियन् परिहसिष्यतीति तदुपनतमित्रावगच्छामीति भरतस्योत्कण्ठाकृता प्रतीतिः। स्वभावोक्तिरलङ्कारः। संस्कृतिच्छन्दो वृत्तभेदः॥ ३॥

उदर्के उत्तरकाले निष्फलाम् स्थितिपरिवर्त्तनेन फलयोगं नानुभविष्यन्तीम्। आशां पितृप्रणामसखिस्नेहमातृवात्सल्यभृत्यसेवादिप्राप्तिविषयं मनोरथम्। जानद्भिरिति। सर्ववृत्तान्तज्ञोऽपि नाहं किमपि भरताय निवेदयामीति।

तत्र कारणमाह--**पितुरिति**-पितुः प्राणपरित्यागं मृत्युम्, मातुः जनन्या ऐश्वर्यलुब्धताम् धनलोलुपताम्, ज्येष्ठभ्रातुः रामचन्द्रस्य प्रवासं वनगमनलक्षणं देशान्तरगमनं च (एतान्) त्रीन् दोषान् कः कतरः अभिधास्यति? भरताय निवेदयिष्यति? नाहं क्षम इति भावः। पितृमरणजनन्यपवादभ्रातृवनवासानां त्रयाणामेकैकस्य मर्मव्यथकत्वेन संहतानां तेषां मत्कर्तृकं भरताय निवेदनमसुकरमिति तात्पर्यम्॥ ४॥

दूसरे ने कहा-नहीं, कुछ बड़े और पुष्ट भी हो गये हैं। इस तरह भृत्यगण मेरी स्तुति प्रीति से करते हैं और लक्ष्मण मेरी भिन्न प्रकार की वेशभूषा तथा भाषा पर परिहास कर रहा है॥ ३॥

सूत—(स्वगत) ओह? कितने शोक की बात है कि महाराज की मृत्यु से अनवगत होने के कारण भरत मिथ्या आशा लिये अयोध्या में प्रवेश करेंगे और सकलवृत्तान्ताभिज्ञ होने पर भी मैं इन्हें कुछ भी नहीं बता रहा हूँ। बताऊँ भी कैसे?

पिता का स्वर्गवास, माता का राज्यैश्वर्यलोभ, बड़े भाई का वनवास, एक एक से बढ़कर इन तीनों दोषों को कहने के लिए कौन जीभ हिलाएगा?॥ ४॥

(भट का प्रवेश)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भटः--जयतु कुमारः ।

भरतः--भद्र, किं शत्रुघ्नो माममिगतः ?

भटः--अभिगतः खलु वर्तते कुमारः । उपाध्यायास्तु भवन्तमाहुः ।

भरतः--किमिति किमिति ?

भटः--एकनाडिकावशेषः कृत्तिकाविषयः । तस्मात् प्रतिपन्नायामेव रोहिण्यामयोध्यां प्रवेक्ष्यति कुमारः ।

भरतः--बाढमेवम् । न मया गुरुवचनमतिक्रान्तपूर्वम् । गच्छ त्वम् ।

भटः--यदाज्ञापयति कुमारः । (निष्क्रान्तः) ।

भरतः--अथ कस्मिन् प्रदेशे विश्रमिष्ये । भवतु, दृष्टम् । एतस्मिन् वृक्षान्तराविष्कृते देवकुले मुहूर्त्तं विश्रमिष्ये । तदुभयं भवि-

---

उपेति--उपाध्यायाः वसिष्ठवामदेवादयः ।

एकेति--एकनाडिकावशेषः एका नाडिका दण्डोऽवशेषो यस्य तथा ।

कृत्तिकेति--कृत्तिकाविषयः कृत्तिकानक्षत्रयुक्तः कालः ।

बाढम्--अङ्गीकारे । एवं गुर्वादिष्टेन प्रकारेणानुतिष्ठामीति भावः । नातिक्रान्तपूर्वं न लङ्घितपूर्वम् ।

विश्रेति--विश्रमिष्ये दीर्घाध्वलङ्घनश्रममपाकरिष्यामि ! आत्मनेपदमपाणिनीयमिति गणपतिशास्त्रिणः ।

वृक्षेति--वृक्षान्तरालाविष्कृते वृक्षावकाशलक्षिते । उभयं श्रमनिवृत्तिः देवसम्भावना च, उपोपविश्य उपकण्ठे क्षणमुपविश्य । सत्समुदाचारः शिष्टाचारः । एतेन श्रमा-

---

भट—जय हो राजकुमार की ।

भरत—भद्र, क्या शत्रुघ्न आये हैं ।

भट—कुमार तो आ ही रहे हैं, किन्तु उपाध्यायों ने आप को कहा है !

भरत—क्या कहा है ।

भट—कृत्तिका एक दण्ड रह गया है, उसके बीत जाने पर रोहिणी में कुमार अयोध्या में प्रवेश करें ।

भरत—बहुत अच्छा । मैंने कभी गुरुजनों के वचन नहीं टाले । तुम जाओ ।

भट—जो आज्ञा । (जाता है)

भरत—किस जगह तबतक विश्राम करूँ । अच्छा, देख लिया । वृक्षों के अन्तराल से होकर एक मन्दिर देख रहा हूँ, वहीं चलकर कुछ देर विश्राम करूँ, इस

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

ष्यति–दैवतपूजा विश्रमश्च । अथ च उपोपविश्य प्रवेष्टव्यानि नगराणीति सत्समुदाचारः । तस्मात् स्थाप्यतां रथः ।

सूतः—यदाज्ञापयत्यायुष्मान् । (रथं स्थापयति)

भरतः—(रथादवतीर्य) सूत ! एकान्ते विश्रामयाश्वान् ।

सूतः—यदाज्ञापयत्यायुष्मान् । (निष्क्रान्तः)

भरतः—(किञ्चित् गत्वावलोक्य) साधुमुक्तपुष्पलाजाविष्कृता बलयः, दत्तचन्दनपञ्चाङ्गुला भित्तयः, अवसक्तमाल्यदामशोभीनि द्वाराणि, प्रकीर्णा बालुकाः । किन्नु खलु पार्वणोऽयं विशेषः ? अथवा आह्निकमास्तिक्यम् ? कस्य नु खलु दैवतस्य स्थानं भविष्यति ? नेह किञ्चित् प्रहरणं ध्वजो वा बहिश्चिह्नं

पाकरणदेववन्दनसदाचारपालनात्मकं प्रयोजनत्रयमत्र वृक्षावकाशे समुपवेशनेन साध्यत इत्यहो सौकर्यमिति भावः ॥

साध्वित्यादि—साधुमुक्तपुष्पलाजाविष्कृताः साधुना दान्तस्वान्तेन देवादिपूजा-रसिकेन मुक्तैः अवकीर्णैः पुष्पैः लाजैश्च आविष्कृताः प्राकाश्यं गमिताः पार्वणः पर्वणि तिथिविशेषे भवः । अयं बल्यादिकृतः । आह्निकम् अहन्यहन्यनुष्ठीयमानम् । आस्तिक्यम् अस्ति दिष्टमिति मतिर्येषां ते आस्तिकाः तेषां भावः कर्म वा आस्तिक्यम् । दैवतस्य स्कन्दाद्यन्यतमस्य । प्रहरणम् आयुधम् (शक्त्यादि) ध्वजः

तरह देवदर्शन और विश्राम, एक पन्थ दो काज होंगे । एक बात और—नगरों के समीप थोड़ा बैठकर नगर में प्रवेश करना चाहिए, इस चिरागत शिष्टाचार का भी पालन हो जायगा । अतः रथ रोको ।

सूत—जो आज्ञा ! (रथ रोकता है)

भरत—(रथ से उतर कर) सूत, एक ओर ले जाकर घोड़ों को विश्राम दो ।

सूत—जो आज्ञा ! (प्रस्थान)

भरत—(कुछ चलकर और देखकर) यहाँ तो विधिवत् फूल और खील के नैवेद्य दिये गये हैं, दीवारों की पुताई के ऊपर चन्दन से पाँचों अङ्गुलियों की पाँच छापें लगाई गई हैं, दरवाजों पर फूलों की मालाएँ लटक रही हैं, बाहर चारों ओर रेत बिछी हुई है । क्या कोई त्योहार है ? जिसकी यह विशेषता है, अथवा प्रतिदिन का नियमपालन है ? अच्छा, भीतर जाकर पता लगाता हूँ । (भीतर जाकर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, Gangotri

दृश्यते। भवतु, प्रविश्य ज्ञास्ये (प्रविश्यावलोक्य) अहो क्रियामाधुर्यं पाषाणानाम्। अहो भावगतिराकृतीनाम्। दैवतोद्दिष्टानामपि मानुषविश्वासतासां प्रतिमानाम्। किन्तु खलु चतुर्दैवतोऽयं स्तोमः! अथवा यानि तानि भवन्तु। अस्ति तावन्मे मनसि प्रहर्षः।

कामं दैवतमित्येव युक्तं नमयितुं शिरः।
वार्षलस्तु प्रणामः स्यादमन्त्रार्चितदैवतः॥ ५॥

(प्रविश्य)

कुक्कुटादिः बहिश्चिह्नं बाह्यं दैवतविशेषलक्ष्म। पाषाणमयीनां प्रतिमानां दर्शनेनाह्लादितचित्तस्य भरतस्योक्तिः—

अहो इति—पाषाणानां शिलाशकलानाम्, क्रियामाधुर्यम् शिल्पचातुर्यम्। आकृतीनाम् आकाराणां भावव्यक्तिः अहो। आसां प्रतिमानां दैवतोद्दिष्टानामपि दैवप्रतिमात्वेन सङ्कल्पितानामपि मानुषविश्वासता मनुष्यप्रतिमाविश्वासयोग्यता। प्रतिमानां गणनां कृत्वाऽऽह—किन्तु खल्विति। चतुर्दैवः चत्वारि दैवतानि अवयवा यस्य तादृशः स्तोमः सङ्घः। अथवेति—चतुर्दैवततोमत्वशङ्कां प्रतिक्षिप्याह—यानीति। यानि तानि भवन्तु दैवतानि वा भवन्तु अन्यथा वा भवन्तु, मे मम मनसि प्रहर्षः प्रतिमानामादरभाजनताविषया तृप्तिरस्त्येवेति भावः।

काममिति—दैवतमित्येव देवताबुद्ध्यैव शिरो नमयितुं कामं युक्तम्। तु किन्तु प्रणामः न मन्त्रैरर्चितं पूजितं दैवतं यत्र तथाभूतः अत एव वार्षलः शूद्रकृत इव स्यात्। सम्भावनायां लिङ्। शूद्रो हि मन्त्रपाठं विनैव पूजयेदिति धर्मशास्त्रविधिः, मन्त्रपाठस्य निषेधात्। शिरोनामने न कोऽपि दोषः, दैवतविशेषनिश्चयाभावात् मन्त्रपाठस्तु किंदेवतकः क्रियेतेति स परित्यज्यत इति भावः॥ ५॥

और देखकर) अहा, पत्थर की कारीगरी कितनी अच्छी बनी है? मूर्तियाँ भावव्यञ्जना में सजीव प्रतीत होती हैं। देवमूर्तियाँ होकर भी मनुष्यमूर्तियाँ जान पड़ती हैं। देव तो चार ही नहीं। जो हो, मुझे तो इन्हें देखकर अपार आनन्द हो रहा है।

ये देवमूर्तियाँ हैं, ऐसा समझकर प्रणाम करना उचित है, परन्तु विशेष परिचय नहीं होने से बिना मन्त्र पढ़े ही प्रणाम करना होगा और वह परिपाटी शूद्रों की सी होगी॥ ५॥

(पुजारी का प्रवेश)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

देवकुलिकः—भोः ! नैत्यिकावसाने प्राणिधर्ममनुतिष्ठति मयि को नु खल्वयमासां प्रतिमानामल्पान्तराकृतिरिव प्रतिमागृहं प्रविष्टः ? भवतु, प्रविश्य ज्ञास्ये । (प्रविशति)

भरतः—नमोऽस्तु !

देवकुलिकः—न खलु न खलु प्रणामः कार्यः ।

भरतः—मा तावद् भोः !

वक्तव्यं किञ्चिदस्मासु विशिष्टः प्रतिपाल्यते ।
किंकृतः प्रतिषेधोऽयं नियमप्रभविष्णुता ॥ ६ ॥

देवकुलिकः देवगृहरक्षकः । नैत्यिकावसाने नित्यकर्मणां देवपूजास्वरूपस्य, अवसाने समाप्तौ, प्राणिधर्मं भोजनम् । अल्पान्तराकृतिः स्वल्पभेदाऽऽकृतिः समानाकृतिरित्यर्थः । यादृशी प्रतिमानामाकृतिस्तत्तुल्याऽऽकृतिरित्यर्थः ।

प्रणामनिषेधे स्वापमानमुत्प्रेक्ष्य निषेधन्तं देवकुलिकं प्रति तदीयैतदाचरणस्यानौचित्यं प्रतिपादयिषन्नाह—मा तावद्भोरिति ।

वक्तव्यमिति—किमपि अस्मासु मल्लक्षणेषु जनेषु वक्तव्यं वाच्यम्, दूषणम्, (येनाहं प्रणामकरणायोग्यो गण्येय । अथवा) विशिष्टः मदपेक्षयोत्कृष्टः मदपेक्षया श्रेष्ठः प्रणामाधिकारी प्रतिपाल्यते प्रतीक्ष्यते (मदपेक्षयोत्कृष्टः एवं प्रणामं कर्तुमर्हति?)। अयम् भवता विधीयमानः प्रतिषेधः 'न खलु न खलु प्रणामः कार्यः' इत्येतादृशशब्दप्रयोगरूपः प्रतिषेधः किंकृतः ? अस्मद्दूषणास्मदुत्कृष्टप्रतिपालनयोः कारणयोर्मध्ये केन कारणेन कृतः ? तृतीयं कारणमुत्प्रेक्षते—नियमप्रभविष्णुतेति । भवतः नियमेषु तपोऽनुष्ठानेषु प्रभविष्णुता प्रौढिः (एवात्र कारणमिति प्रश्नः) । अयमाशयः—नाहं दुष्यामि, न वा मदुत्कृष्ट एव प्रणामेऽधिक्रियते, इत्येतत्कारणद्वयनिरासे स्वतपसि प्रौढिभाजो भवतः स्वतपोविघ्नाशङ्काकृत एवायं निषेधो भवितुमर्हतीति । अथवा नियमे

देवकुलिक—अरे नित्य नियत पूजापाठ कर लेने के बाद मेरे भोजनादि के अवसर पर इन मूर्तियों से मिलती आकृतिवाला कौन इस प्रतिमागृह में पैठा है ? अच्छा, भीतर जाकर पता लगाता हूँ । (भीतर जाता है)

भरत—नमस्कार ।

देवकुलिक—नहीं नहीं, प्रणाम मत करो ।

भरत—क्यों, क्या बात है ?

क्या हममें कोई दोष है ? या हमारी अपेक्षा किसी अच्छे प्रणामाधिकारी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

देवकुलिकः—न खल्वेतैः कारणैः प्रतिषेधयामि भवन्तम् । किन्तु दैवतशङ्कया ब्राह्मणजनस्य प्रणामं परिहरामि । क्षत्रिया ह्यत्रभवन्तः ।

भरतः—एवम् । क्षत्रिया ह्यत्रभवन्तः । अथ के नामात्रभवन्तः ?

देवकुलिकः—इक्ष्वाकवः ।

भरतः—(सहर्षम्) इक्ष्वाकव इति । एते तेऽयोध्याभर्तारः ।

एते ते देवतानामसुरपुरवधे गच्छन्त्यभिसरी-
मेते ते शक्रलोके सपुरजनपदा यान्ति स्वसुकृतैः ।

नियोगे प्रभविष्णुता स्वातन्त्र्यमेवात्र निषेधे हेतुः ? भवतोऽत्र प्रतिमागृहेऽधिकृतत्वे नैकच्छत्रं राज्यमुज्जृम्भते इति वस्तुतोऽधिकारिणोऽपि मम प्रणमनक्रियां वारयतस्तवेयं स्वेच्छामात्रानुवर्त्तनेति भावः ॥ ६ ॥

एतैः दोषकलुषितत्व-प्रणामायोग्यत्व स्वेच्छाचारित्वैः । परिहरामि भवन्तो ब्राह्मणाः दैवतभ्रमेण प्रतिमा एता मा प्रणंसुरिति निषेधामि । अत्रभवन्तः पूज्याः मूर्त्तिषु चित्रिताः ।

एते त इति—अतिप्रसिद्धा इमे इक्ष्वाकवः दैवतानां देवानाम् असुरपुरवधे । राक्षसैः समं युद्धे तद्वधे अभिसरीं साहाय्यार्थमभिगमनं गच्छति । देवसाहाय्यार्थं राक्षसान् हन्तुं स्वर्गं गच्छन्तीति । एतेन इक्ष्वाकूणां देवासाध्यराक्षसवधसमर्थत्वप्रतिपादनेन तदपेक्षयाऽधिकपराक्रमशालित्वं व्यञ्जितम् । एते ते इक्ष्वाकवः स्वसुकृतैः स्वाचरितैः पुण्यैः सपुरजनपदाः सनगरप्रजाः शक्रलोके स्वर्गे यान्ति एतेनैषां पुण्य-

---

की प्रतीक्षा कर रहे हो ? यह प्रणाम करने का निषेध क्यों कर रहे हो ? क्या यह तुम्हारा अधिकारमद तो नहीं है ? ॥ ६ ॥

देवकुलिक—नहीं, इन कारणों से नहीं रोक रहा हूँ, किन्तु इसलिये रोक रहा हूँ कि कहीं तुम ब्राह्मण होकर देवमूर्त्ति के भ्रम से इन राजमूर्तियों को प्रणाम न कर लो । ये क्षत्रियों की मूर्तियाँ हैं देवप्रतिमायें नहीं हैं ।

भरत—अच्छा, क्या ये क्षत्रिय महानुभाव हैं, तो फिर ये कौन महानुभाव हैं ?

देवकुलिक—ये इक्ष्वाकुवंशीय हैं ।

भरत—इक्ष्वाकुवंशीय ! यही अयोध्या के राजा ?

ये वे ही लोग हैं, जो असुरपुर के विनाश में देवों की सहायताके लिये जाते थे । क्या ये वे ही हैं, जो अपने पुण्यप्रताप से अपने नगर तथा प्रजाजन के साथ स्वर्ग

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एते ते प्राप्नुवन्तः स्वभुजबलजितां कृत्स्नां वसुमती-
मेते ते, मृत्युना, ये चिरमनवसिताश्छन्दं मृगयता ॥ ७ ॥

भोः ! यदृच्छया खलु मया महत् फलमासादितम् ! अभिधीयतां कस्तावदत्रभवान् ?

देवकुलिकः—अयं खलु तावत् सन्निहितसर्वरत्नस्य विश्वजितो यज्ञस्य प्रवर्तयिता प्रज्वलितधर्मप्रदीपो दिलीपः ।

भरतः—नमोऽस्तु धर्मपरायणाय । अभिधीयतां कस्तावदत्रभवान् ?

प्रकर्षः प्रत्याय्यते । एते ते स्वभुजबलजितां निजबाहुपराक्रमायत्तीकृतां कृत्स्नां समग्राम्, महीं पृथ्वीम्, प्राप्नुवन्तः सन्तीति शेषः । एते ते छन्दं मृगयता इच्छामनुवर्त्तमानेन मृत्युना कालेन चिरं बहुकालम् अनवसिताः अभक्षिताः । 'मृतिर्नो जायताम्' एवमिच्छतामेवेक्ष्वाकूणां प्राणहरणे प्रभवता मृत्युना तत्प्राणहरणे तदिच्छानुवर्त्तनमेवोपाय इति मृत्युजयप्रभुत्वरूपः प्रकर्षः । अन्यत् स्पष्टम् । सुवदनावृत्तम्, तल्लक्षणं यथा—'सुवदना भ्रौ भ्नौ य्मौ ल्गावृषिस्वरर्त्तवः' ॥ ७ ॥

महदिति—महत् फलम् महापुरुषप्रतिमावलोकनरूपम् ।

सन्निहितसर्वरत्नस्य सन्निहितानि विश्वविजयोपाहृतानि सर्वरत्नानि सकलविधानि अनर्घ्यवस्तूनि यस्य तस्य । विश्वजितः तदाख्यस्य यज्ञविशेषस्य । प्रवर्त्तयिता आहर्त्ता । प्रज्वलितधर्मप्रदीपः प्रज्वलितः सततप्रदीप्तः धर्म एव प्रदीपो यस्य स तादृशः । धर्मस्य प्रदीपत्वञ्चान्धतमसावृतोत्तरलोकमार्गप्रदर्शकत्वाद् बोध्यम् । धर्मैकपरायणाय धर्म एकः परमयनं गतिर्यस्य तादृशः, धर्मैकनिरत इत्यर्थः । तस्मै धर्मनिष्ठाय ।

जाते थे? क्या ये वे ही हैं जो अपने बाहुबल से सम्पूर्ण भूमण्डलको जीतकर अपने अधिकार में करते थे ! और जिनकी मृत्यु अपनी इच्छा पर निर्भर करती थी ॥७॥

अहा ! अकस्मात् मुझे महान् फल मिल गया । अच्छा, बताइये ये कौन महानुभाव हैं ?

देवकुलिक—ये हैं महाराज दिलीप, जिन्होंने सभी रत्नों को इकट्ठा कर विश्वजित् यज्ञ पूर्ण कर धर्म प्रदीप को प्रकाशित किया था ।

भरत—धर्मप्राण को नमस्कार । (प्रणाम करता है) आगे कहिये, ये कौन हैं?

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

देवकुलिकः—अयं खलु तावत् संवेशनोत्थापनयोरनेकब्राह्मणजन-सहस्रप्रयुक्तपुण्याहशब्दरवो रघुः।

भरतः—अहो बलवान् मृत्युरेतामपि रक्षामतिक्रान्तः। नमोऽस्तु ब्राह्मणजनावेदितराज्यफलाय। अभिधीयतां कस्तावदत्रभवान्?

देवकुलिकः—अयं खलु तावत्। प्रियावियोगनिर्वेदपरित्यक्तराज्यभारो नित्यावभृथस्नानप्रशान्तरजा अजः।

भरतः—नमोऽस्तु श्लाघनीयपश्चात्तापाय। (दशरथस्य प्रतिमामवलो-

संवेशेति—संवेशनोत्थापनयोः शयनवेलायां तत उत्थानवेलायां च अनेक ब्राह्मणजनसहस्रप्रयुक्तपुण्याहशब्दरवः—अनेकैरगणितैः ब्राह्मणजनसहस्रैः सहस्र-सङ्ख्यैर्ब्राह्मणैः प्रयुक्तः कृतः पुण्याहशब्दरवः पुण्याहमन्त्रवाचनध्वनिर्यस्य स तथा-भूतः। यं शयानं जाग्रतं वा ब्राह्मणाः स्वस्तिवाचनेन संवर्द्धयन्तीति भावः।

एतां रक्षामपि बहुब्राह्मणकृतपुण्याहशब्दरवकृतामपि गुप्तिम्। अतिक्रान्तः अतिक्रम्य कृतप्रवृत्तिः। ब्राह्मणेषु तथाशीःपरायणेष्वपि मृत्युर्न शक्तो निवर्त्तयितुं पर्यनुयोगः।

प्रियावियोगनिर्वेदपरित्यक्तराज्यभारः—प्रियायाः इन्दुमत्याः वियोगेन विरहेण निर्वेदः विषयवैमुख्यं तेन परित्यक्तो राज्यभारो धरणीशासनभारो येन सः। नित्यावभृथस्नानप्रशान्तरजाः नित्यैः प्रतिवासरोपक्लृप्तैः अवभृथस्नानैः यज्ञ-दीक्षान्ताभिषेकैः प्रशान्तं प्रक्षालितं रजः रजोगुणकृतमन्तरशुद्धत्वं यस्य स तथा। अन्योऽपि हि रजसाप्लुतो जलेन स्नात्वा रजोरहितो भवतीति तथोक्तिः।

श्लाघनीयपश्चात्तापाय—श्लाघनीयः प्रशंसायोग्यः पश्चात्तापः प्रियात्यासक्तिवि-

---

देवकुलिक—ये हैं महाराज रघु। जिनके कान सोते-जागते समय ब्राह्मणों के पुण्याहवाचन की मन्त्रध्वनि से पूर्ण हुआ करते थे।

भरत—ओह! प्रबल मौत इस घेरे को भी पारकर गई। ब्राह्मणों की सेवामें समग्र संपत्ति अर्पित करनेवाले महाराज रघुको मेरा प्रणाम। ये आगे कौन हैं?

देवकुलिक—ये हैं अपनी प्रियतमा महारानी के वियोग में विरक्त होकर राज-पाट को त्याग देने वाले और नित्य प्रति किये जाने वाले यज्ञों के अवसान में अभिषेकों से सम्पूर्ण कल्मषभार को धो देने वाले महाराज अज।

भरत—प्रशंसनीय पश्चात्ताप, आपको नमस्कार। (दशरथ की प्रतिमा को

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

कथन् पर्याकुलो भूत्वा) भोः ! बहुमानेऽव्याक्षिप्तेन मनसा सुव्यक्तं नावधारितम् । अभिधीयतां कस्तावदत्रभवान् ?

देवकुलिकः—अयं दिलीपः ।

भरतः—पितृपितामहो महाराजस्य । ततस्ततः ।

देवकुलिकः—अत्रभवान् रघुः ।

भरतः—पितामहो महाराजस्य । ततस्ततः ।

देवकुलिकः—अत्रभवानजः ।

भरतः—पिता तातस्य । किमिति किमिति ?

देवकुलिकः—अयं दिलीपः, अयं रघुः, अयमजः ।

भरतः—भवन्तं किञ्चित्पृच्छामि । धरमाणानामपि प्रतिमाः स्थाप्यन्ते ?

पयोऽनुतापो यस्य तस्मै । प्रियावियोगदूनस्य तत्खेदापाकृतयेऽहरहः सवमप्रवृत्तिः प्रशंसनीयेति भावः । पर्याकुलः—पृष्ठपूर्वमर्थमपि पुरतो दशरथप्रतिमामालोक्य व्याक्षिप्तचेताः किमिदमापतितमिति क्षोभेणैकपदेऽस्तव्यस्तचित्तदशः । बहुमानेऽव्याक्षिप्तेन पुरुषगौरवादन्यत्रासक्तेन गुणगौरवभावनाकृष्टहृदयतया प्रदीयमानमपि परिचयं पुनः प्रष्टुमयं कारणोपन्यासः । अभिधीयतां पुनरुच्यताम् ।

धरमाणानां जीवनं धारयताम् । धृङ्-प्राणधारणे इत्यस्य तु नायं प्रयोगः । तथा सति म्रियमाणानामिति स्यात्, किन्तु धृञ्-धारणे इत्यस्यैव ।

देखते हुए और घबरा कर) मेरा हृदय महापुरुषों की गौरवचिन्ता में लग गया था, इसलिये ठीक से समझ नहीं सका । अतः फिर से आप बतावें—ये कौन हैं ?

देवकुलिक—यह दिलीप हैं ।

भरत—महाराज के प्रपितामह । आगे चलिये ।

देवकुलिक—ये हैं रघु ।

भरत—महाराज के पितामह । इसके आगे ।

देवकुलिक—ये हैं अज ।

भरत—महाराज के पिता । क्या कहा ? क्या ?

देवकुलिक—ये दिलीप हैं, ये रघु हैं, ये अज हैं ।

भरत—आपसे कुछ पूछना चाहता हूँ । क्या जीवितों की भी प्रतिमायें स्थापित की जाती हैं ?

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitized by eGangotri

देवकुलिकः--न खलु, अतिक्रान्तानामेव ।

भरतः--तेन ह्यापृच्छे भवन्तम् ।

देवकुलिकः--तिष्ठ ।

येन प्राणाश्च राज्यं च स्त्रीशुल्कार्थे विसर्जिताः ।
इमां दशरथस्य त्वं प्रतिमां किं नु पृच्छसे ? ॥ ८ ॥

भरतः--हा तात ! (मूर्च्छितः पतति । पुनः प्रत्यागत्य)

हृदय ! भव सकामं यत्कृते शङ्कसे त्वं
शृणु पितृनिधनं तद् गच्छ धैर्यं च तावत् ।

अतिक्रान्तानामेव इह लीलां समाप्य लोकान्तरे गतानामेव ।

आपृच्छे गच्छन्नामन्त्रये । नमनकालिकमनुज्ञायाचनामन्त्रणादिकमाप्रश्न उच्यते, तथा च कालिदासेन प्रयुज्यते मेघदूते--'आपृच्छस्व प्रियसख ममुं तुङ्गमालिङ्ग्य शैलम्' इति । 'आङि नुप्रच्छ्यो' रिति तङ् ।

येनेति--येन राज्ञा दशरथेन स्त्रीशुल्कार्थे विवाहावसरे स्त्रियै देयतया प्रतिज्ञातं द्रव्यं स्त्रीशुल्कं तदर्थे प्राणाः राज्यं राज्यकर्म च विसर्जिताः परित्यक्ताः, तस्य दशरथस्य इमां पुरोवर्त्तमानां प्रतिमां त्वं किन्नु पृच्छसे किमिति न जिज्ञाससे । जिज्ञास्यचरित्रत्वात्तथाऽभिधानम् । अत्र प्राणा विसर्जिताः, राज्यं च विसर्जितमिति लिङ्गवचनविपरिणामेनान्वयः कार्यः, अन्यथैकशेषे नपुंसकबहुवचनप्रसक्तिः स्यादिति बोध्यम् ॥ ८ ॥

प्रत्यागत्य--संज्ञां लब्ध्वा ।

हृदयेति--हे हृदय चित्त ! सकामं पूर्णमनोरथं भव । पूर्णकामत्वं च स्वशङ्कितार्थाविसंवादादित्याह--त्वं यत्कृते यस्मिन् विषये शङ्कसे स्वाकर्णनीयत्वेनोत्प्रेक्षसे स्म, तत् स्वाशङ्कितं विषयं शृणु आकर्णय निश्शङ्कं निशमय स्वाशङ्कितं पितृमरणमिति भावः । मध्येमार्गं जायमानैरशकुनलक्षणैरन्यैश्च विकृतिदर्शनादिभिर्यत्त्वया

देवकुलिक--नहीं जी केवल मृतकों की ।

भरत--अच्छा, अब आप मुझे आज्ञा दें ।

देवकुलिक--ठहरो,

जिन्होंने स्त्री-शुल्क के लिये अपने राज्य और प्राण सब कुछ छोड़ दिये, उन्हीं महाराज दशरथ की प्रतिमा के विषय में आप क्यों कुछ नहीं जानना चाहते ? ॥

भरत--हा पिताजी (मूर्च्छित होकर गिरता है, फिर होश में आकर)

हृदय, अब तुम्हारी कामना पूर्ण हुई, जिसकी तुम्हें आशङ्का थी, वह पितृमरण-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्पृशति तु यदि नीचो मामयं शुल्कशब्द-
स्त्वथ च भवति सत्यं तत्र देहो विशोध्यः ॥ ९ ॥

आर्य ?

देवकुलिकः—आर्येति इक्ष्वाकुकुलालापः खल्वयम् । कथित् कैकेयी-पुत्रो भरतो भवान् ननु ?

भरतः—अथ किम् , अथ किम् । दशरथपुत्रो भरतोऽस्मि, न कैकेय्याः ।

देवकुलिकः—तेन ह्यापृच्छे भवन्तम् ।

पितृपादनिघनवृत्तमकर्णनीयत्वेन सम्भावितं तदधुना शृण्वदात्मनः पूरय मनःकाममिति स्पष्टार्थः । तु किन्तु नीचः गर्हितः अयं शुल्कशब्दः मां स्पृशेत् यदि मां सम्बन्धीयात् विषयीकुर्यात् , मद्राज्याभिषेचनं शुल्कशब्दार्थत्वेन वक्तुरभिप्रेतं चेदित्यर्थः (न केवलं कथनमात्रेण किन्तु तत्सत्यत्वपरीक्षणेन) । अथ च सत्यं भवति यदि, (तद्वचनं तदभिप्रायेणोच्यमानं सत्यं यदि) तत्र तर्हि देहः विशोध्यः अग्निपु पाकादिना शुद्धिं प्रापणीयः । अयमाशयः—अन्योऽपि कृतमहापापः प्रायश्चित्तान्तरेणाशोध्ये स्वपापे क्वचिदग्निपुटे स्थित्वा प्राणान् जहाति शुद्धयति च, तथैवाहमपि यदि मदीयजनन्या मदभिषेचनार्थमेव स्वविवाहशुल्कभावेन राज्यं याचमानया प्राणाः पितृपादानामपहारिता इति सत्योक्तिस्तदा अग्निपुटे दग्ध्वा स्वं निजमयशः क्षालयिष्यामीति ॥

आर्येति—आर्य इत्येवं रूपं सामान्येऽपि जने सबहुमानमामन्त्रणं सम्बोधनम् इक्ष्वाकुकुलोत्पन्नपुरुषसाधारणम् । इयती सुजनता नम्रता मिष्ठभाषिता चैतेष्वेव सम्भाव्यत इति भावः ।

अथ किम् अङ्गीकारेण इक्ष्वाकुकुलत्वमात्रे स्वीकृतिः प्रदत्ता न सर्वांशे, तदाह—न कैकेय्या इति ।

वृत्तान्त सुनो और धीरज बाँधो । किन्तु हाय ! यदि श्री-शुल्क में याचित राज्य का उद्देश्य मैं बनाया गया होऊँगा, तब तो देह की शुद्धि करनी होगी अर्थात् कड़ी परीक्षा देकर अपना निर्दोषत्व साबित करना पड़ेगा ॥ ९ ॥

आर्य !

देवकुलिक—'आर्य' कहकर बात करना तो इक्ष्वाकुवंशी लोगों का क्रम है, क्या आप कैकेयीपुत्र भरत तो नहीं हैं ?

भरत—जी हाँ, दशरथ का पुत्र भरत हूँ, कैकेयी का पुत्र नहीं ।

देवकुलिक—अच्छा, अब आप मुझे आज्ञा दें ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भरतः—तिष्ठ। शेषमभिधीयताम्।
देवकुलिकः—का गतिः? श्रूयताम्। उपरतस्तत्रभवान् दशरथः।
सीतालक्ष्मणसहायस्य रामस्य वनगमनप्रयोजनं न जाने।
भरतः—कथं कथमार्योऽपि वनं गतः? (द्विगुणं मोहमुपगतः)
देवकुलिकः—कुमार! समाश्वसिहि समाश्वसिहि।
भरतः—(समाश्वस्य)

अयोध्यामटवीभूतां पित्रा भ्रात्रा च वर्जिताम्।
पिपासार्तोऽनुधावामि क्षीणतोयां नदीमिव॥ १०॥

आर्य! विस्तरश्रवणं मे मनसः स्थैर्यमुत्पादयति। तत् सर्वमनवशेषमभिधीयताम्।

का गतिरिति—अयोध्यावृत्तान्तमभिधातुमागृहीतस्य मम कष्टनिवेद्येऽपि तस्मिन् प्रवृत्तिः कर्त्तव्यैवेत्यनभ्युपायतामापद्य परितापं व्यनक्ति। उपरतः मृतः।

अयोध्यामिति-पित्रा परलोकप्रवासेन भ्रात्रा वनगतेन च वर्जितां परित्यक्ताम् अत एव प्रियजनपरिहीनतया निरानन्दामटवीभूतामरण्यभावं गताम् अयोध्याम् पिपासया पानीयाभिलाषेण आर्त्तः पीडितः क्षीणतोयां शुष्कजलां नदीं धारामिव अनुधावामि। अयमर्थः—यथा कोऽपि पिपासार्त्तः मरुषु शुष्यत्तोयां सरितमनुधावन् विफलाभिलाषो भवति, तथैवाहमपि प्रियपितृपादसेवेहपरायणभ्रातृदिदृक्षयोभाभ्यामपि ताभ्यां विरहिते अयोध्यानामनि पुरे प्रविशामि, तत्राभिलाषपूर्त्तेरसम्भवादिति। उपमालङ्कारः॥ १०॥

विस्तरश्रवणं विवरणपूर्वकाकर्णनम्, (पितृभ्रातृव्यसनस्येति शेषः) स्थैर्यम् आकुलीभाववैधुर्यम्, अनवशेषं निःशेषम्, अभिषिच्यमाने राज्यधुरि नियोज्यमाने।

भरत—ठहरिये, और कुछ कहिये।

देवकुलिक—क्या किया जाय? सुनिये। महाराज दशरथ अब नहीं रहे। सीता और लक्ष्मणके साथ राम क्यों वन चले गये? इसका पता मुझको नहीं है।

भरत—क्या आर्य भी वन को चले गये? (फिर मूर्च्छित होते हैं)

देवकुलिक—कुमार, धीरज धरो, धीरज धरो।

भरत—(होश में आकर)

हाय पिताजी और आर्य राम से शून्य इस वन के समान अयोध्या में जा रहा हूँ, जैसे कोई प्यासा आदमी सूखी नदी की ओर दौड़ता जा रहा हो॥ १०॥

आर्य, विस्तारपूर्वक सुनने से मेरे मन को कुछ सहारा मिल रहा है, कृपया पूरा वृत्तान्त कह सुनाइये।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

देवकुलिकः—श्रूयतां, तत्रभवता राज्ञाभिषिच्यमाने तत्रभवति रामे भवतो जनन्याऽभिहितं किल।

भरतः—तिष्ठ।

तं स्मृत्वा शुल्कदोषं भवतु मम सुतो राजेत्यभिहितं
तद्धैर्येणाश्वसन्त्या व्रज सुत ! वनमित्यार्योऽप्यभिहितः।
तं दृष्ट्वा बद्धचीरं निधनमसदृशं राजा ननु गतः
पात्यन्ते धिक्प्रलापा ननु मयि सदृशाः शेषाः प्रकृतिभिः॥

(मोहमुपगतः)

अत्र वर्त्तमानार्थकशानचा कैकेयीकर्तृकविघ्नस्य अभिषेकप्रवृत्तिकालिकत्वमुक्तं तेन च तादृशव्यवहारस्य नितान्तमनौचित्यम्, तेनाधिकखेदावहत्वं च व्यञ्जितम्। भवतो जनन्या तव मात्रा, अत्रापि तस्या नाम्नोनुपादानं क्षोभस्य व्यञ्जनार्थम्।

तिष्ठ अलमितोऽग्रेऽभिधायेत्यर्थः। एतावतैव तदाचरितेन तन्मनोवृत्तेः परिचये शेषस्य स्वयमूहितुं शक्यत्वादिति भावः।

तं स्मृत्वेति—तं पूर्वोक्तं शुल्कं वैवाहिकपणम् (अनर्थकारितया) दोषं स्मृत्वा मनसिकृत्य 'मम कैकेय्याः सुतो भरतो राजा भवतु' इति कैकेय्या राज्ञेऽभिहितमुक्तम्, तद्धैर्येण स्वोक्तस्यार्थस्य राज्ञा स्वीकृतत्वे पुत्रकर्तृकराजत्वप्राप्तौ जातेन विश्वासेन आश्वसन्त्याऽशिकसफलतया सन्तोषं वहन्त्या तया कैकेय्या आर्यः रामोऽपि 'त्वं वनं व्रज चतुर्दश वर्षाणि वने निवासे व्यतिगमयेति' अभिहितः उदीरितः। तं रामं बद्धचीरं 'वनवासाय प्रस्थातुकामेन तदुपयुक्तवसनादिधारणीयमि'ति परिहितवल्कलं दृष्ट्वा राजा दशरथः असदृशं स्वरूपाननुरूपं निधनं मृत्युं गतः। पुत्रशोकेन प्राणान् पर्यत्याक्षीदित्यर्थः। (अधुना कैकेय्या तथाऽनुष्ठिते) शेषाः सर्वस्यास्य

देवकुलिक—सुनिये, जब माननीय महाराज राजकुमार राम का अभिषेक कर रहे थे उस समय आपकी माता ने कहा……

भरत—बसकीजिये,

उस अनर्थकारी विवाहशुल्क की याद आने से कहा होगा कि 'मेरा पुत्र राज्याधिरूढ हो'। इस प्रार्थना के सफल हो जाने से उसका हार्दिक बल बढ़ गया होगा, और उसने दूसरी प्रार्थना की होगी कि—राम वन को जाँय। वल्कलधारी रामको वन जाते देख राजा बेमौत मर गये होंगे। इन सब बातों से दुःखी प्रजा इन सभी बातों का मूल मुझे मानकर धिक्कारती होगी। उसका धिक्कारना ठीक भी है॥ ११॥

(मूर्च्छित हो गये)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. eGangotri

(नेपथ्ये)

उत्सरतार्याः ! उत्सरत ।

उस्सरह अय्या ! उस्सरह ।

देवकुलिकः--(विलोक्य) अये,

काले खल्वागता देव्यः पुत्रे मोहमुपागते ।
हस्तस्पर्शो हि मातॄणामजलस्य जलाञ्जलिः ॥ १२ ॥

(ततः प्रविशन्ति देव्यः सुमन्त्रश्च)

सुमन्त्रः--इत इतो भवत्यः ।

दुराचरणस्य फलभूताः धिक्प्रलापाः धिगित्युक्तयो निन्दावादाः प्रकृतिभिः अमात्यपुरोगैः पुरजनैः मयि भरते पात्यन्ते निधीयन्ते । अयमेष भरतो यदर्थमयमनर्थः समुपनतो धिगिमम् इत्यधिक्षिपन्ति जना इति भावः । तिष्ठेत्यनेन शेषस्य स्वयमूहनं प्रतिज्ञातं तदनेन प्रकाशितमिति बोध्यम् ॥ १२ ॥

दशरथप्रतिमां साक्षात्कर्तुं कौसल्यादयो देव्य आजिगमिषन्ति, तदेतदवस्थानुरूपं समुदाचारमाचरति परिजनः--उत्सरतेत्यादिना ।

काले इति—देव्यः कौसल्यादयो राजाङ्गनाः काले उचिते समये आगताः उपेताः खलु । तदेव समर्थयितुमाह--पुत्रे इति । पुत्रसमाश्वासनावसरस्योपस्थितत्वादत्रासामधुनोपसत्तिः कालान्तरोपसत्त्यपेक्षया समधिकोपयोगेत्याशयः । ननु सामान्यजनेनापि मूर्च्छितस्य भरतस्य वीजनादिनोपचारेण मूर्च्छाया निरसनीयत्वे तन्मातॄणामुपस्थितिर्नाधिकप्रयोजनेत्याशङ्कायामाह--हस्तेति । मातॄणां हस्तस्पर्शः मातृभिः क्रियमाणः पाणिकरणकः स्पर्शः अजलस्य जलरहितस्य जलार्थिनः जलाञ्जलिः स इव तृप्तिप्रदो मातृहस्तस्पर्श इति भावः । अत्र सामान्येन विशेषसमर्थनरूपोऽर्थान्तरन्यासोऽलङ्कारः ॥ १२ ॥

(नेपथ्य में)

हट जाइये । हट जाइये ।

देवकुलिक— (देखकर) अच्छा,

पुत्र के मूर्च्छित होने पर मातायें आ गईं, बड़ा अच्छा हुआ । क्योंकि पुत्र के लिये माता का हस्तस्पर्श प्यासे के लिए जलधारा के समान हुआ करता है ॥१२॥

(देवियों तथा सुमन्त्र का प्रवेश)

सुमन्त्र—महारानि, आपलोग इधर से आवें ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitized by eGangotri

इदं गृहं तत् प्रतिमानृपस्य नः समुच्छ्रयो यस्य स हर्म्यदुर्लभः।
अयन्त्रितैरप्रतिहारिकागतैर्विना प्रणामं पथिकैरुपास्यते ॥१३॥

(प्रविश्यावलोक्य) भवत्यः ! न खलु न खलु प्रवेष्टव्यम्।

अयं हि पतितः कोऽपि वयःस्थ इव पार्थिवः।

देवकुलिकः—

परशङ्कामलं कर्तुं गृह्यतां भरतो ह्ययम् ॥ १४ ॥

(निष्क्रान्तः)

इदमिति। यस्य प्रतिमागृहस्य समुच्छ्रय औन्नत्यम्, हर्म्यदुर्लभः प्रासाद-दुरापः सः प्रसिद्धः, तदिदं नितरां प्रसिद्धम्, नः अस्माकं हतभाग्यानां प्रतिमा-नृपस्य प्रतिमारूपेणावशिष्टस्य राज्ञः प्रतिमागृहम् अस्तीति शेषः। (यत् इदम् प्रतिमागृहम्) अप्रतिहारिकागतैः द्वारपालनैरपेक्ष्येण प्रविष्टैरत एव अयन्त्रितैः कपाटादिनियन्त्रणरहितैः पथिकैः अध्वगैः विना प्रणामम् अन्तरेणैव नमस्कारम् उपस्थिते मार्गश्रमापनोदनाय निशातिवाहनाय वा अध्युष्यते। साक्षान्नृपस्य भवन प्रतीहारिद्वारागतैः पदे पदे नियन्त्रितैः अमात्यादिभिरपि प्रणामादिसमुचितशिष्टा-चारपूर्वकं प्रविश्यते सेव्यते च, प्रतिमागृहमिदं तु पथिकैः स्वयं निरवरोधं प्रविश्यते प्रणामादिकमन्तरेणैवाध्युष्यते चेति प्रतिमागृहस्य राजगृहान्न्यूनताख्यो व्यतिरेकः।'

प्रविशन्तीनां देवीनां निषेधः कृतः, सम्प्रति तत्कारणमाह—अयमिति। वयःस्थः वयसि वर्त्तमानस्तरुणः पार्थिव इव दशरथ इव कोऽपि पतितः भूमौ निप-तितः। अस्तीति शेषः।

परशङ्कां परः भरताद्भिन्नोऽयमिति शङ्कां वितर्कं कर्त्तुम् अलं वृथा, परोऽयमिति मा शङ्किष्ठा इति भावः। नियमेन बोधयन्नाह—अयं भूमौ भरतः पतितः गृह्यताम्, उत्थाप्य अङ्कमारोप्य शीतलजलवीजनादिकोपचारेण प्रकृतिमानेतुमिमं प्रयत्यतामिति यावत्॥

यह है कि प्रतिमारूप से अवस्थित महाराज का सदन, जो ऊंचाई में राज-महलों से भी बड़ा है। यात्री लोग यहाँ बिना रोक-टोक के आते जाते और बिना प्रणाम के उपासना करते हैं ॥ १३ ॥

(बैठकर और देखकर) आप अन्दर मत आवें,

यहाँ कोई कुमार गिर पड़ा है। मालूम पड़ता है जैसे राजा दशरथ की जवानी की देह हो।

देवकुलिक—आप दूसरे की आशङ्का मत करें, ये भरत हैं, इन्हें संभालिये॥१४॥

(जाता है)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

देव्यः—(सहसोपगम्य) हा जात ! भरत ! (हा जाद ! भरद !)

भरतः—(किञ्चित् समाश्वस्य) आर्य !

सुमन्त्रः—जयतु महा (इत्यर्धोक्ते सविषादम्) अहो स्वरसादृश्यम्। मन्ये प्रतिमास्थो महाराजा व्याहरतीति ।

भरतः—अथ मातृणामिदानीं काऽवस्था ।

देव्यः—जात ! एषा नोऽवस्था । (अवगुण्ठनमपनयन्ति)
जाद ! एसा णो अवत्था ।

सुमन्त्रः—भवत्यः ! निगृह्यतामुत्कण्ठा ।

भरतः—(सुमन्त्रं विलोक्य) सर्वसमुदाचारसन्निकर्षस्तु मां सूचयति। कच्चित् तात ! सुमन्त्रो भवान् ननु ?

स्वरसादृश्यं वाग्भङ्गीतुल्यत्वम् , येन भरते वदति प्रतिमागतो महाराजो वदतीति मादृशोऽपि चिरसहचरो जनो भ्राम्यति ।

इदानीं तातपादनिधनरामप्रवासानन्तरम् ।

अवगुण्ठनमपनयन्ति—अवगुण्ठनपटमपनीय स्वशिरःसिन्दूरप्रमोषं शिरोधूननजनितं भयथुं च दर्शयन्ति, तेन नितान्तक्लेशावस्थाऽनक्षरोच्चारणमेवावेदिता भवति । निगृह्यतां मनस्सु नियम्यताम् । उत्कण्ठा आवेगः ।

सर्वसमुदाचारसन्निकर्षः सर्वस्मिन् सर्वप्रकारके अवगुण्ठनापनयनादिरूपे (पुत्रविस्रब्धवृद्धमन्त्रिभिन्नपुरुषसन्निकर्षे विधातुमयोग्येऽपि) सन्निकर्षः सन्निधिस्थितिस्तु मां सूचयति बोधयति'अमुको भवानि'ति अनुमापयति । अनुमितमेवार्थं निश्चयायोदाहरति—कच्चिदिति । अवगुण्ठनापसारणादिकं कार्यं राजदाराणामतिविविक्ते प्रियपुत्रा-

---

रानियाँ—(वेग से समीप जाकर) हा पुत्र ! भरत !

भरत—(कुछ होश में आकर) आर्य !

सुमन्त्र—जय हो महा·····(आधा कहकर ही शोक से रुककर) अहा ! कितना स्वरसादृश्य है ? ज्ञात होता है जैसे दशरथ की प्रतिमा ही बोल रही हो।

भरत—माताओं की क्या अवस्था है ?

रानियाँ—पुत्र, यह हमारी अवस्था है। (घूंघट हटाती है)

सुमन्त्र—देवियों, अपने आवेग को रोकें।

भरत—(सुमन्त्र को देखकर) सभी प्रकार के व्यवहार में आपकी उपस्थिति से मुझे जान पड़ता है, आप सुमन्त्र हैं ?

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सुमन्त्रः—कुमार ! अथ किम् । सुमन्त्रोऽस्मि ।

अन्वास्यमानश्चिरजीवदोषैः कृतघ्नभावेन विडम्ब्यमानः ।
अहं हि तस्मिन् नृपतौ विपन्ने जीवामि शून्यस्य रथस्य सूतः ॥१५॥

भरतः—हा तात ! (उत्थाय) तात ! अभिवादनक्रममुपदेष्टुमिच्छामि मातॄणाम् ।

सुमन्त्रः—बाढम् । इयं तत्रभवतो रामस्य जननी देवी कौसल्या ।

भरतः—अम्ब ! अनपराद्धोऽहमभिवादये ।

दिपरिजनादिमात्रसन्निधाने संभवति, भवति च सन्निहिते तत्ताभिराचरितमिति कार्येण रूपादिसंवादेन चात्र भरतस्य सुमन्त्रपरिचयो बोध्यः ।

अन्वास्यमान इति—चिरजीवदोषैः दीर्घजीविपुरुषसुलभैः स्वप्रियजन-विपदुपनिपातप्रत्यक्षीकरणादिरूपैर्दूषणैः अन्वास्यमानः अनुगम्यमानः, कृतघ्नभावेन कृतघ्नतया विडम्ब्यमानः लोकैः कृतघ्नोऽयमिति परिहास्यमानः, (स्वामिमरणेऽपि तदननुवृत्त्या परिहासः) अहं सुमन्त्रः तस्मिन् प्रसिद्धपराक्रमे नृपतौ विपन्ने विपद्ग्रस्ते मृत इत्यर्थः, शून्यस्य राज्ञा रहितत्वेन रिक्तस्य रथस्य सूतश्चालकः जीवामि कथञ्चित् प्राणान् धारयामि । अयमाशयः—यद्यहं चिरजीवितां नाप्स्यम्; ईदृशं राजमरणरामवनवासादिदर्शनावसरं मनोव्यथकं नाध्यगमिष्यम्, राजनि मृते तदनुवृत्त्यकरणात् कृतघ्नोऽयमिति लोकानां परिहासस्य पात्रतां नाश्रयिष्यम्, मृते च राजनि शून्यं रथं नावाहयिष्यमिति सर्वमपीदं मदीयचिरजीविताविजृम्भितमिति धिङ् मम जीवनम् ॥ १५ ॥

अभिवादनेति—बहुकालं प्रोष्य दृष्टासु मातृषु का केति विशेषमजानन् कस्यै प्रथमं प्रणाममुपनयेदिति व्यामोहेनेदृशः प्रश्नः ।

अनपराद्धः अकृतापराधः, एतेन केकैय्या कृते कुकर्मणि स्वासम्मतिः प्रकाशिता ।

सुमन्त्र—कुमार, हाँ मैं सुमन्त्र ही हूँ ।

दीर्घकालजीविता ने मुझमें अनेक बुराइयाँ ला दीं । कृतघ्नताने मुझे विडम्बित किया, और अब मैं राजा के मर जाने पर सुने रथ का सारथि हूँ ॥ १५ ॥

भरत—हा तात, (उठकर) तात, अब मैं माताओं के प्रणाम करने का क्रम जानना चाहता हूँ ।

सुमन्त्र—अच्छा । ये हैं राम की माता देवी कौसल्या ।

भरत—अम्ब, निरपराध मैं आपको प्रणाम करता हूँ ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कौसल्या—जात ! निःसन्तापो भव ।

जाद ! णिस्सन्दावो होहि ।

भरतः—(आत्मगतम्) आक्रष्ट इवास्म्यमेन । (प्रकाशम्) अनुगृहीतोऽस्मि । ततस्ततः ।

सुमन्त्रः—इयं तत्रभवतो लक्ष्मणस्य जननी देवी सुमित्रा ।

भरतः—अम्ब ! लक्ष्मणेनातिसन्धितोऽहमभिवादये ।

सुमित्रा—जात ! यशोभागी भव ।

जाद ! जसोभाई होहि ।

भरतः—अम्ब ! इदं प्रयतिष्ये । अनुगृहीतोऽस्मि ततस्ततः ।

सुमन्त्रः—इयं ते जननी ।

निःसन्तापः विगतहृदयज्वरः, एतेन कौसल्याया उदारहृदयतोक्ता ।

आक्रुष्ट इव अनेन कृतापराधे अपराधिजनात्मीये अपराधसम्बन्धयोग्ये वा मयि प्रवृत्तेनेदृशेन मङ्गलाशीर्वचनेन आक्रुष्ट इव उपालब्ध इव अस्मीति । कौसल्योदीरितः शुभाशीर्वादोऽप्युपालम्भवत् मम हृदयं व्यथयतीति भावः । एतेन भरतस्य स्वविषया जुगुप्सा तया च सन्तापातिशयो व्यज्यते ।

अतिसन्धितः रामानुगमनलक्ष्मणातिलाभावसरे संविभागमकृत्वा स्वयं तद्ग्रहणेन वञ्चितः ।

प्रयतिष्ये यशोलाभमुद्दिश्य यत्नं करिष्ये । एतेन भरतस्य राज्यविषयकोऽलोभः कर्त्तव्यनिर्धारणक्षमता च प्रकटिता ।

कौसल्या—बेटा, तेरे सन्ताप शान्त हों ।

भरत—(स्वगत) इस आशीर्वाद से कुछ भर्त्सना सी प्रकट होती है । (प्रकट) बड़ी कृपा । और ।

सुमन्त्र—ये हैं लक्ष्मण की माता सुमित्रा ।

भरत—माता, रामसेवा के लिये मुझे अवसर न देकर लक्ष्मण द्वारा वञ्चित मैं तुमको प्रणाम करता हूँ ।

सुमित्रा—बेटा, यशस्वी बनो ।

भरत—अम्ब, इसके लिये प्रयत्न करूंगा । आगे ?

सुमन्त्र—ये हैं आपकी जननी ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

भरतः—(सरोषमुत्थाय) आः पापे !

मम मातुश्च मातुश्च मध्यस्था त्वं न शोभसे ।
गङ्गायमुनयोर्मध्ये कुनदीव प्रवेशिता ॥ १६ ॥

कैकेयी—जात ! किं मया कृतम् ?
जद ! किं मए किदं ?

भरतः—किं कृतमिति वदसि ?

वयमयशसा, चीरेणार्यो, नृपो गृहमृत्युना,
प्रततरुदितैः कृत्स्नाऽयोध्या, मृगः सह लक्ष्मणः ।
दयिततनयाः शोकेनाम्बाः, स्नुषाऽध्वपरिश्रमै-

ममेति—मम मातुः कौसल्यायाः, मातुः सुमित्रायाश्च मध्ये अन्तरभागे त्वं कैकेयी न शोभसे न शोभामावहसि, सदृशयोरेव सहवासस्य शोभाऽऽधायकत्वात् । अशोभनत्वमेवोपमया प्रकाशयति—गङ्गायमुनयोरिति । कुनदी क्षुद्रा सरित् । एते क्षुद्रा सरिद्यावत्या मात्रया गौरवतारतम्ये गङ्गापेक्षया यमुनापेक्षया वाऽधमा, तावत्यैवमात्रयात्वमनयोरपेक्षयाऽधमेति तयोर्भरतस्यातिशयित आदरभावो व्यक्तः ॥ १६ ॥

किं मया कृतम् किमकार्यं मया कृतं येनैवमुपालभस इति भावः ।

वयमिति—त्वया वयम् अयशसा योजिताः 'भरत एवं राज्यलोभेन मात्रैवं कारितवान्' इत्येवंरूपया अकीर्त्या योजिताः, आर्यः रामः चीरेण वल्कलेन योजित इति संबन्धनीयम्, एवमग्रेऽपि सर्वत्र यथालिङ्गवचनं विपरिणम्य योजिता इत्यनुषञ्जनीयम् । रामो वनवासोचितवेषविशेषं ग्राहित इत्यर्थः । नृपो राजा दशरथः गृहमृत्युना योजितः मुनिवृत्तिमाश्रित्य वने मर्तुमुचितो गृहमरणेन संयोजितः । कृत्स्ना सकलावययुक्ता अयोध्या प्रततरुदितैः अविरलाश्रुवर्षणैः योजिता । लक्ष्मणो मृगैः सह योजितः वने मृगसहवासितां गमित इत्यर्थः । दयितास्तनया यासां ता दयिततनयाः प्रियपुत्राः अम्बाः जनन्यः शोकेन भर्तृवियोगवैधव्यपुत्रप्रवासादिदुःखेन योजिताः ।

भरत—(बड़े क्रोध से उठकर) आः पापे !

मेरी माता कौसल्या और माता सुमित्रा के बीच में बैठी तुम उसी भाँति बुरी लगती हो, जैसे गङ्गा और यमुना के बीच में प्रविष्ट कुनदी ॥ १६ ॥

कैकेयी—बेटा, मैंने क्या किया ?

भरत—कहती है क्या किया ?

मुझे अयश गठरी से कलङ्कित कर दिया, आर्य रामको वल्कलधारी बना दिया, महाराज को मरनेके लिये बाधित किया, सारी अयोध्या को रुलाया, लक्ष्मण को

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

धिगिति वचसा चोग्रेणात्मा त्वया ननु योजिताः ॥१७॥

कौसल्या—जात ! सर्वसमुदाचारमध्यस्थः किं न वन्दसे मातरम् ?

जाद ! सव्वसमुदाआरमज्झत्थो किं ण वन्दसि मादरं ।

भरतः—मातरमिति । अम्ब ! त्वमेव मे माता । अम्ब ! अभिवादये ।

कौसल्या—न हि, न हि । इयं ते जननी ।

णहि णहि इअं दे जणणी ।

भरतः—आसीत् पुरा । न त्विदानीम् । पश्यतु भवती—

स्नुषा पुत्रवधूः सीतादेवी अध्वपरिश्रमैः मार्गसञ्चारायासैर्योजिता, आत्मा च उग्रेण मर्मभेदिना धिगिति वचसा 'धिक् कैकेयीम्' इति निन्दावचनेन योजितः । एतावत्या अनर्थपरम्पराया मूलं भूत्वापि किं मया कृतमिति स्वकर्त्तव्यप्रश्नप्रगल्भायास्तव धाष्ट्यमतितरां समृद्धमिति । एतेन भरतस्य कैकेयीं प्रति घृणाख्यो भावो व्यक्तः, प्रस्तुतानामप्रस्तुतानां चैकक्रियाभिसम्बन्धनात्तुल्ययोगितालङ्कारः, तथा च तल्लक्षणम्—'प्रस्तुतानां पदार्थानामन्येषां वा यदा भवेत् । एकधर्माभिसम्बन्धः स्यात्तदा तुल्ययोगिता' इति ॥ १७ ॥

सर्वसमुदाचारमध्यस्थः सकलसदाचारपालनप्रवणः । मातरं कैकेयीम्, किन्न वन्दसे ? कुतो न प्रणमसि ? सर्वसदाचारपालको भूत्वा मातृवन्दनरूपात् सदाचारात् कुतश्च्यवस इति ।

त्वमेव मे माता न चेयं कैकेयी मम माता, अत एनामप्रणमतोऽपि मम न मातृवन्दनरूपसदाचारपरित्यागरूपायशसा मलीमसत्वमिति ।

आसीदिति—पुरा अस्यां कैकेय्यां मे जननीबहुमानः पूर्वमासीत् , न त्वधुनाऽस्ति, भर्तृपुत्रद्रोहापराधिन्यास्तादृशादरपात्रताऽभावादिति भावः ।

मृग-सहवासी बना दिया, पुत्रप्रणयिनी माताओं को शोक-सागर में डुबो दिया, पुत्रवधू सीता को जङ्गलों में भटकने और यातना भोगने के लिये भेज दिया और अपने को भी धिक्कार का पात्र बनाया ॥ १७ ॥

कौसल्या—बेटा, सब प्रकार से मर्यादा की रक्षा में प्रयत्नशील तुम अपनी माता को प्रणाम क्यों नहीं करते ?

भरत—अपनी माता को, मेरी माता तो तुम ही हो, तुमको नमस्कार ।

कौसल्या—नहीं नहीं, तुम्हारी माता ये हैं ।

भरत—हाँ, पहले थीं, अब नहीं हैं । आप देखें—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

त्यक्त्वा स्नेहं शीलसङ्क्रान्तदोषैः पुत्रास्तावन्नन्वपुत्राः क्रियन्ते ।
लोकेऽपूर्वं स्थापयाम्येव धर्मं भर्तृद्रोहादस्तु माताऽप्यमाता ॥१८॥

कैकेयी—जात ! महाराजस्य सत्यवचनं रक्षन्त्या मया तथोक्तम् ।
जाद ! महाराअस्स सच्चवअणं रक्खन्तीए मय तह उत्तं ।

भरतः—किमिति किमिति ?

कैकेयी—पुत्रको मे राजा भवत्विति ।
पुत्रओ मे राजा होदु त्ति ।

भरतः—अथ स इदानीमार्योऽपि भवत्याः कः ?

त्यक्त्वेति—शीलसंक्रान्तदोषैः सहवासिमन्थरादिपरिजनगतदुष्टस्वभावतासङ्क्रमणरूपैर्दोषैः स्नेहं त्यक्त्वा ममतामुत्सृज्य पुत्रा अपुत्राः क्रियन्ते अपुत्रवद्गण्यन्ते, द्वेषजन्यदुर्व्यवहारभाजनतां नीयन्ते इत्यर्थः । अथवा द्विष्टव्यवहारेण पुत्रानर्हे कर्मणि प्रवर्त्त्यन्त इत्यर्थः । तथा च मातुरमात्रुचितकार्यकारित्वे तस्यास्तदुत्तररूपेण मयापि पुत्रेणाद्य यावदनाचरितमेव किमपि कर्त्तव्यमिति तदाह- लोकेऽपूर्वमिति । एषोऽहं लोके भुवनेऽपूर्वमन्याननुष्ठितं धर्मं स्थापयामि प्रवर्त्तयामि । कोऽसौ धर्म इत्याह—भर्तृद्रोहादिति । माता अपि भर्तृद्रोहादमाता अस्त्विति । अयमर्थः—पुत्रद्रोहद्वारेण स्वभर्तृमरणरूपद्रोहाचरणान्मातापि मातृबहुमानाभाजनमस्तु । यया तया मात्रा इदं प्रथमतया पुत्रे द्रोह आरब्धस्तथा मयापि पुत्रेण तस्यां मातरि मातृबहुमानत्यागः कृत इति, एतच्च 'कृते च प्रतिकर्त्तव्यमेव धर्मः सनातनः' इत्यनुरुध्योक्तम् । शालिनीवृत्तम्, तल्लक्षणं यथा—'शालिन्युक्ता म्तौ तगौ गोऽब्धिलोकैः' इति ॥ १८ ॥

सत्यवचनं विवाहसमयदत्तं शुल्कप्रतिज्ञावाक्यम् । रक्षन्त्या यथार्थयन्त्या । यदि मया वरो न व्रियेत, राजा मिथ्यावचनतां नीयेतेत्याशयः ।

अथेति—'पुत्रको मे राजा भवत्विति' वरं याचमानाया भवत्या आर्यः रामः कः

दुष्ट परिजनों के सहवास से स्नेह को छोड़कर इसने अपने पुत्रों से सम्बन्ध तोड़ लिया है । आज मैं इस अपूर्व धर्म की स्थापना करने जा रहा हूँ कि जो स्त्री अपने स्वामी का द्रोह करे, वह पुत्रवती होने पर भी माता कहलाने की अधिकारिणी नहीं है ॥ १८ ॥

कैकेयी—बेटा, महाराज की प्रतिज्ञा की रक्षा के लिए मैंने वैसा कहा था ।

भरत—सो क्या ?

कैकेयी—यही कि मेरा पुत्र राज्याधिकारी हो ।

भरत—क्या, राम तुम्हारे कौन होते हैं ?

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पितुर्मे नौरसः पुत्रो न क्रमेणाभिषिच्यते ।
दयिता भ्रातरो न स्युः प्रकृतीनां न रोचते ? ॥ १९ ॥

कैकेयी—जात ! शुल्कलुब्धा ननु प्रष्टव्या ?

जाद ! सुक्कलुद्धा णणु पुच्छिदव्वा ?

भरतः—वल्कलैर्हृतराजश्रीः पदातिः सह भार्यया ।
वनवासं त्वयाऽऽज्ञप्तः शुल्केऽप्येतदुदाहृतम् ॥ २० ॥

कीदृशः सम्बन्धी । पुत्रो न भवति किमित्यर्थः । आर्ये राज्येऽभिषिच्यमाने तं प्रतिषिध्य मदर्थं राज्यं याचमानाया भवत्याः रामं प्रति पुत्रभावो न स्थित इति भवत्याऽनुचितमाचरितमिति ।

पितुरिति—आर्यः रामः मे मम पितुः औरसः धर्मभार्यायां स्वबीजोत्पन्नपुत्रो न भवति किम् ? काक्वा तस्य तद्भावोऽभिधेयः । क्रमेण वयःक्रमेण नाभिषिच्यते ? पुत्रेषु वयसा प्रथमः राज्येऽभिषेच्य इति व्यवहारः किमस्मत्कुले नास्ति ? अस्त्वेवेत्यर्थः । भ्रातरः आर्यरामादयो मत्सहिताः दयिताः अन्योन्यस्नेहपरायणाः न स्युः किम् ? न भवन्ति किम् ? सन्त्येवेत्यर्थः । (आर्यस्याभिषेकः) प्रकृतीनाम् अमात्यादीनां न रोचते न प्रियं किम् ? अयमाशयः—रामे पितुरौरसे पुत्रे कुलसमुदाचारमनुसृत्य ज्येष्ठक्रमेणाभिषिच्यमाने तदभिषेके बन्धुविरोधस्य प्रकृतिकोपस्य चासम्भावनायां भवत्या तदभिषेके विघ्नमाचर्यं सर्वथातिदारुणं चरितमिति भावः ॥

प्रष्टव्येति—शुल्के प्रतिज्ञातस्यार्थस्यावश्यप्रदेयतया तं याचमानाहं न केनापि निन्दिताचरणदोषेण भर्त्सनीयेति भावः ।

वल्कलैरिति—शुल्कप्रतिज्ञातमर्थं याचितुमहमविकारिणीति भाषणेन कुपितो भरतः । पुत्रराज्याभिषेकस्य यथा कथञ्चित्प्राप्तयाचनयोग्यत्वेऽपि रामवनवासस्य सर्वथाऽयोग्यत्वमाहानेन । वल्कलैः चीरैर्हृतराजश्रीः अपहृतराजलक्ष्मीकः पदातिः पादचारी भार्यया सह भार्यासहितः (आर्यरामः) त्वया वनवासम् आज्ञप्तः वने वसेत्या-

---

क्या वे मेरे पिता के औरस पुत्र नहीं ? क्या उनका अभिषेक ज्येष्ठ के क्रम से प्राप्त नहीं ? क्या हममें भ्रातृप्रेम का अभाव है ? क्या राम का अभिषेक प्रजानुमोदित नहीं ? ॥ १९ ॥

कैकेयी—बेटा, क्या विवाहशुल्क का लालच रखने वाली से ऐसे प्रश्न किए जाते हैं ?

भरत—तुमने राम को राज्य से वञ्चित कर चीर पहना कर सीतासहित पैदल वन को भेजा, यह भी विवाहशुल्क में कहा गया था ? ॥ २० ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कैकेयी—जात ! देशकाले निवेदयामि ।

जाद ! देसकाले णिवेदेमि ।

भरतः—

अयशसि यदि लोभः कीर्तयित्वा किमस्मान्
किम् नृपफलतर्षः किं नरेन्द्रो न दद्यात् ।
अथ तु नृपतिमातेत्येष शब्दस्तवेष्टो
वदतु भवति ! सत्यं किं तवार्यो न पुत्रः ? ॥ २१ ॥

दिष्टः । शुल्के एतदपि सभार्यस्यायंस्य वनगमनमपि उदाहृतं कथितपूर्वम् किम् ? कामं पुत्राभिषेचनमुदाहृतम्, आर्यवनगमनं तु कदाचिदपि नोदाहृतमितीदानीमकाण्डे कल्पितवत्यसीति धिक् त्वां दुर्बुद्धिमिति भावः ॥ २० ॥

निवेदयामि रामवनवासाज्ञाप्रदानस्य कारणं समुचिते देशे काले च त्वां बोधयिष्यामीति तदाशयः । एतेन पुत्रस्य प्रलोभनार्थं तया प्रपञ्चप्रथनप्रकारः प्रकटितः ।

अयशसीति=यदि अयशसि कीर्त्तिविपर्यये लोभो यदि चेति अस्मान् कीर्त्तयित्वा किम् ? अस्मन्नामकीर्त्तनेन किं प्रयोजनं तेन विनैवायशसः सुलभत्वादिति भावः । एवं चाकीर्तिमात्रस्योद्देश्यत्वे प्रकारान्तरेणापि तल्लाभसम्भवे भरतार्थं राज्यं याच इति मदीयनाम्नः सम्बन्धनस्य तत्र नितरामनावश्यकत्वमिति भावः । नृपफलतर्षः राजप्रियत्वप्राप्यभोग्यवस्तुतृष्णा किमु ? नरेन्द्रः किं न दद्यात् ? सर्वार्थदातरि राजनि तव प्रिये तल्लोभोऽपि तवानुचित एवेत्याशयः । अथ तव नृपतिमाता राजजननी इत्येष शब्दः (स्वबोधकत्वेन) इष्टः अभिलषितश्चेत्, (अयि) भवति, आर्यः रामः तव पुत्रः न भवति किम् ? इति सत्यं वदतु, सत्यभावेन रामस्य पुत्रत्वे तदन्यथाभावे वा त्वां भावनामाविष्करोतु । एवं च रामस्य तव पुत्रत्वे राजमातेति विरुद्धस्यापि त्वया तस्मिन्नभिषिच्यमानेऽपि लग्यतया वृथा कदर्थितोऽयं लोक इति भावः । मालिनीवृत्तम्, तल्लक्षणं यथा—'ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः' इति ॥ २१ ॥

कैकेयी—उचित स्थान और अवसर मिलने पर कभी बताऊँगी ।

भरत—यदि तुम्हें अयश ही मोल लेना था तो इस बीच में मेरा नाम क्यों ले लिया ? यदि राजैश्वर्य की कामना थी तो महाराज से तुम्हें क्या नहीं मिल सकता था ? यदि तुम्हें राजमाता कहलाने की लालसा थी तो सच बता, क्या राम तुम्हारे पुत्र नहीं हैं ? उनके राजा होने से तुम राजमाता नहीं बन सकती थी ? ॥ २१ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कष्टं कृतं भवत्या,

त्वया राज्यैषिण्या नृपतिरसुभिर्नैव गणितः
सुतं ज्येष्ठं च त्वं व्रज वनमिति प्रेषितवती।
न शीर्णं यद् दृष्ट्वा जनकतनयां वल्कलवतीं-
महो धात्रा सृष्टं भवति! हृदयं वज्रकठिनम् ॥ २२॥

सुमन्त्रः—कुमार! एतौ वसिष्ठवामदेवौ सह प्रकृतिभिरभिषेकं पुरस्कृत्य भवन्तं प्रत्युद्गतौ विज्ञापयतः—

गोपहीना यथा गावो विलयं यान्त्यपालिताः।
एवं नृपतिहीना हि विलयं यान्ति वै प्रजाः ॥ २३ ॥

त्वयेति। भवति, राज्यैषिण्या पुत्रार्थं राज्यं कामयमानया त्वया नृपतिः राजा असुभिर्न गणितः प्राणैः परित्यज्यमानो नापेक्षितः (एतेन भर्तृद्रोह उक्तः), ज्येष्ठं सर्वश्रेष्ठं सुतं पुत्रं रामं च त्वं वनं प्रेषितवती अस्मात् मदभिषेकदर्शनसतृष्णात् नगरान्निष्कासितवती (एष पुत्रद्रोहः), जनकतनयां सीतां वल्कलवतीं चीराणि वसानां दृष्ट्वा यत् तव हृदयं न शीर्णम् द्विधा न विदलितं तत् तव हृदयं धात्रा वज्रकठिनं वज्रवत् कर्कशं सृष्टम्। अयमाशयः—त्वया राज्यलोभेन भर्तारं विपादयन्त्या कठोरता प्रदर्शिता ततोऽपि पुत्रस्य वनवासाकामनया जननीहृदयदुरापं दौरात्म्यं व्यञ्जितम्, यथा कथञ्चिदनयोर्वृत्तयोर्लोभप्राबल्येनकल्पनीयत्वेऽपि सीतासमानां पुत्रवधूं वल्कलानि परिदधतीं वीक्षमाणायास्तव हृदयं यन्न भिन्नं तदवश्यं तस्य वज्रसाधारणं काठिन्यमिति।

प्रकृतिभिः अमात्यादिभिः, अभिषेकं तदुपयोगिद्रव्यजातम्, पुरस्कृत्य सह नीत्वा।

गोपहीनेति—यथा गोपहीना गावोऽपालिताः (सत्यः) विलयं विनाशं यान्ति तथैव प्रजाः नृपविहीना राज्ञा विरहिताः विलयं यान्ति विपद्यन्ते, बाह्यान्तराक्रमणदोषे

तुमने बड़ा बुरा किया—

राज्यलालसा से तुमने महाराजके प्राणों की कुछ चिंता न की। अपने बड़े लड़के को तुमने वन भेज दिया। जनकदुलारीसीताको वल्कलवसना देखकर भी तुम्हारा हृदय नहीं विदीर्ण हुआ? विधाता ने तुम्हारे हृदयको वज्र कठिन बनायाहै॥२२॥

सुमन्त्र—कुमार, भगवान् वसिष्ठ और वामदेव, प्रजावर्ग तथा अमात्यों के साथ आपके राज्याभिषेक के लिये आपको सूचित करते हैं कि—

जिस प्रकार गोपाल के बिना गायें विनष्ट हो जाती हैं, ठीक उसी तरह राजा के बिना प्रजाओं का नाश हो रहा है ॥ २३ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

भरतः—अनुगच्छन्तु मां प्रकृतयः ।
सुमन्त्रः—अभिषेकं विसृज्य क भवान् यास्यति ?
भरतः—अभिषेकमिति ! इहात्रभवत्यै प्रदीयताम् ।
सुमन्त्रः—क्व भवान् यास्यति ?
भरतः—तत्र यास्यामि यत्रासौ वर्तते लक्ष्मणप्रियः ।
नायोध्या तं विनायोध्या सायोध्या यत्र राघवः ॥ २४॥
(निष्क्रान्ताः सर्वे)
तृतीयोऽङ्कः ।

भ्यस्त्रातुरभावादिति भावः ॥ २३ ॥

अनुगच्छन्तु मदीयाज्ञां पालयन्तु, एतेन राज्यभारस्य स्वीकारः कृतः । केवलमभिषेकस्य स्वीकारो न कृतः । अथवा यत्राहं यामि तत्र चलन्तु प्रकृतयः, तत्रैवाभिषेकस्यापि निर्णयो भवेदिति भावः ।

'अनुगच्छन्तु मां प्रकृतय' इत्यनेन गमने सूचिते 'क्व यास्यसी'ति सुमन्त्रेण पृष्टे तदुत्तरमाह—तत्रेति । 'लक्ष्मणप्रियः' इत्युक्त्या यत्सौभाग्यं प्रति ईर्ष्योक्ता । शेषं सुगमम् ॥ ३४ ॥

इति मैथिलपण्डितश्रीरामचन्द्रमिश्रकृते 'प्रतिमानाटकप्रकाशे' तृतीयोऽङ्कः ॥ २ ॥

भरत—प्रजायें मेरे साथ चलें ।
सुमन्त्र—राज्याभिषेक को छोड़ कर आप कहाँ जायेंगे ?
भरत—अभिषेक ? अभिषेक इनको दिया जाय ।
सुमन्त्र—आप कहाँ जायेंगे ?
भरत—मैं वहीं जाऊँगा, जहाँ लक्ष्मणप्रिय राम हैं, उनके बिना अयोध्या अयोध्या नहीं रही । राम जहाँ, अयोध्या वहाँ ॥ २४ ॥
(सबका प्रस्थान)
तृतीय अङ्क समाप्त ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अथ चतुर्थोऽङ्कः

(ततः प्रविशतश्चेट्यौ)

विजया--हला नन्दिनिके ! भण भण। अद्य कौसल्यापुरोगैः सर्वैरन्तःपुरैः प्रतिमागेहं द्रष्टुं गतैस्तत्र किल भर्तृदारको भरतो दृष्टः ? अहं च मन्दभागा द्वारे स्थिता।

हला णन्दिणिए ! भणेहि भणेहि। अज्ज कोसल्लापुरोगेहि सव्वेहि अन्तेवुरेहि पडिमागेहं दट्ठुं गदेहि तहिं किल भट्टिदारओ भरदो दिट्ठो ? अहं च मन्दभाआ दुवारे ट्ठिदा।

नन्दिनिका--हला ! दृष्टोऽस्माभिः कौतूहलेन भर्तृदारको भरतः।

हला ; दिट्ठो अम्हेहि कौदूहलेण भट्टिदारओ भरदो।

विजया—भट्टिनी कुमारेण किं भणिता ?

भट्टिणी कुमारेण किं भणिदा ?

नन्दिनिका--किं भणितम् ? अवलोकितुमपि नेच्छति कुमारः।

किं भणिदं ? आलोइदुं वि णेच्छदि कुमारो।

प्रविशत इति--'तत्र यास्यामि यत्रासौ वर्त्तते लक्ष्मणप्रियाः' इति भरतस्य वनगमननिश्चयः प्रोक्तः। तदनुरुध्य तस्य वनगमनं वने रामेण सह समागमनं चात्र घटयिष्यते। तदवतारयितुं प्रवेशकेनात्र दद्वनप्रस्थानं प्राह।

मन्देति--मन्दभागा भरतदर्शनसौभाग्यरहिता द्वारे स्थिता द्वारप्रतिपालनाधिकृता द्वारं परित्यज्य भरतावलोकनार्थं प्रतिमागृहाभ्यन्तरभागं प्रवेष्टुं न पारितवती।

कौतूहलेन चिरादर्शनजनितेन औत्सुक्ये।

(दो चेटियों का प्रवेश)

विजया—सखी नन्दिनिका, कहो-कहो, आज कौशल्या प्रभृति सारा अन्तःपुर प्रतिमागृह देखने गया था, क्या वहाँ भरत को देखा है ? मैं मन्दभागिनी तो दरवाजे पर ही खड़ी रही।

नन्दिनिका—सखी हमने तो बड़े कौतूहल से कुमार भरत को देखा है।

विजया—राजकुमार ने महारानी को क्या कहा ?

नन्दिनिका—क्या कहते ? राजकुमार तो उन्हें देखना तक नहीं चाहते।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विजया—अहो अत्याहितम् । राज्यलुब्धया भर्तृदारकस्य रामस्य
अहो अच्चाहिदम् रज्जलुद्धाए भट्टिदारअस्स रामस्स
राज्यविभ्रष्टं कुर्वत्यात्मनो वैधव्यमादिष्टम् । लोकोऽपि
रज्जविब्भट्ठं करन्तीए अत्तणो वेहव्वं आदिट्ठं । लोओ वि
विनाशं गमितः । निघृणा खलु भट्टिनी । पापकं कृतम् ।
विणासं गमिओ । णिग्घिणा हु भट्टिणी । पापअं किदं ।

नन्दिनिका—हला ! शृणु । प्रकृतिभिरानीतमभिषेकं विसृज्य राम-
हला ! सुणाहि । पइदीहि आणीदं अभिसेअं विसज्जिअ राम-
तपोवनं गतः कुमारः ।
तपोवणं गदो कुमारो ।

विजया—(सविषादम्) हम् ! एव गतः कुमारः । नन्दिनिके । एह्यावां
हम् । एवं गदो कुमारो । णन्दिणिए । एहि, अम्हे
भट्टिनीं पश्यावः ।
भट्टिणिं पेक्खामो । (निष्क्रान्ते)

प्रवेशकः ।

अत्याहितम् । महती अनर्थपरम्परा । रामस्य राज्यविभ्रष्टं राज्यच्युतिम् । आदिष्टम् उपनमितम् । निर्घृणा निष्करुणा ।

प्रकृतिभिः अमात्यादिभिः, आनीतम् उपकल्पितम् । रामतपोवनं रामाधिष्ठितं तपोऽनुकूलं वनम् ।

एवं गतः एतादृशीं दशां गतः । दशा चात्र मातृमुखदर्शनविरामप्रकृत्युपकल्पिताभिषेकोपकरणोपेक्षा वनगमनप्रवृत्तिप्रभृतिः ।

विजया—ओह ! कैसा अन्याय है, इस राज्यलुब्धा रानी ने राम को राज्यच्युत किया, खुद विधवा बनी और प्रजाओं को अनाथ किया । सचमुच यह रानी बड़ी क्रूर है । इसने बड़ा बुरा किया ।

नन्दिनिका—सखी सुनो, अमात्यादि द्वारा प्रस्तुत राज्याभिषेक को ठुकराकर राजकुमार राम के तपो वन को चले गये ।

विजया—(खेद से) राजकुमार चले गये । नन्दिनिका, आओ, हम दोनों चल कर रानी को देखें ।

(दोनों का प्रस्थान)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(ततः प्रविशति भरतो रथेन सुमन्त्रः सूतश्च)

भरतः--स्वर्गं गते नरपतौ सुकृतानुयात्रे
पौराश्रुपातसलिलैरनुगम्यमानः ।
द्रष्टुं प्रयाम्यकृपणेषु तपोवनेषु
रामाभिधानमपरं जगतः शशाङ्कम् ॥ १ ॥

सुमन्त्रः--एष एष आयुष्मान् भरतः—
दैत्येन्द्रमानमथनस्य नृपस्य पुत्रो
यज्ञोपयुक्तविभवस्य नृपस्य पौत्रः ।
भ्राता पितुः प्रियकरस्य जगत्प्रियस्य
रामस्य रामसदृशेन पथा प्रयाति ॥ २ ॥

स्वर्गमिति—सुकृत पुण्यमनुयात्र सहगामि यस्य तस्मिन् सुकृतानुयात्रे पुण्यानुगे नरपतौ राजनि स्वर्गं गते दिवमुपयाते पौराणां पुरवासिनामश्रुपातसलिलैर्बाष्पजलैरनुगम्यमानः अहम् अकृपणेषु उदारेषु (रमणीयेषु) तपोवनेषु (वसन्तमिति सम्बन्धनीयम्) रामाभिधानं रामसंज्ञकं जगतः संसारस्य अपरं प्रसिद्धचन्द्रादतिरिच्यमानं शशाङ्कं जगदाह्लादकत्वशीतलशीलत्वादिना चन्द्रं द्रष्टुं प्रयामि गच्छामि । रामे चन्द्रत्वारोपाद्रूपकम् । ईदृशाः प्रयोगाः परत्रापि दृश्यन्ते । यथा नैषधीये—'इदं तमुर्वीतलशीतलद्युतिम्' इति । वसन्ततिलकं वृत्तम् ।

दैत्येन्द्रेति—दैत्येन्द्रोऽसुरश्रेष्ठस्तस्य मानं दर्पस्तन्मथनस्य दलनकारकस्य असुराधिपाहङ्कारापहारिणो दशरथस्य नृपस्य राज्ञः पुत्रस्तनयः । यज्ञोपयुक्तविभवस्य यज्ञार्थविनियुक्तधनसम्पदो नृपस्य अजस्य पौत्रः । पितुःप्रियकरस्य तातेप्सिताचारिणः जगत्प्रियस्य जगतीहितकारिणः । रामस्य भ्राता भरतः रामसदृशेन रामतुल्येन पथा

(रथ में बैठे हुए भरत, सुमन्त्र और सारथि का प्रवेश)

भरत—महाराज दशरथ अपने पुण्य के बल स्वर्ग गये। मैं पुरवासियों के अश्रु-प्रवाह का संबल लेकर, उदार, तपोवन में रमते हुए राम को देखने जा रहा हूँ, जो पृथ्वी पर के दूसरे चन्द्र हैं ॥ १ ॥

सुमन्त्र—यह चिरायु भरत—

दैत्यराज के अभिमान को दूर करनेवाले दशरथ के पुत्र, समूची राज्यसमृद्धि को यज्ञों में लगा देने वाले अज के पौत्र, पितृप्रिय राम के भ्राता, राम की भाँति आदर्श-पथ पर जा रहे हैं ॥ २ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

भरतः—भोस्तात !

सुमन्त्रः—कुमार ! अयमस्मि ।

भरतः—क्व तत्रभवान् अमार्यो रामः ? क्वासौ महाराजस्य प्रतिनिधिः । क्व सन्निदर्शनं सारवताम् ? क्वासौ प्रत्यादेशो राज्यलुब्धायाः कैकेय्याः ? क्व तत् पात्रं यशसः ? क्वासौ नरपतेः पुत्रः ? क्वासौ सत्यमनुव्रतः ?

मम मातुः प्रियं कर्तुं येन लक्ष्मीविसर्जिता ।

मार्गेण प्रयाति । यादृशेन मार्गेण रामो व्यवहरति, तादृशेन विश्वप्रशंस्येन मार्गेण भरतोऽपि व्यवहरतीति यावत् । अत्र पितृपितामहभ्रातॄणां तत्तद्गुणगणकीर्त्तनेन भरतेऽपि तेषां गुणानां स्वाभाविकी स्थितिरावेदिता । विशेषणानां साभिप्रायतया परिकरोऽत्रालङ्कारः, 'विशेषणानां साभिप्रायत्वे परिकरः' इति तल्लक्षणात् । पूर्वोक्तमेव वृत्तम् ॥ २ ॥

महाराजस्य प्रतिनिधिः स्थानीयः एतेन तस्मिन् भरतस्य पितरीव बहुमानः सूचितः । सारवतां बालशालिनां सत् समीचीनं निदर्शनम् दृष्टान्तः । प्रत्यादेशः तिरस्क्रिया, राज्यप्राप्तये छलेन व्यवहरन्त्याः कैकेय्याः प्राप्तमपि राज्यं तृणाय मन्यमानो वनाय प्रतिष्ठमानो रामो मूर्तिरिव तत्पराभवस्य भवति स्मेति भावः । नरपतेः पुत्रः तादृशकठोरतराज्ञापालनेऽप्यकुण्ठमनोभावतया यथार्थभावेन पुत्रपद-व्यवहाराहः, एतेन स्वस्याधन्यत्वं व्यञ्जितम् । अन्यत्स्पष्टमिति तद्व्याख्यानं स्वयमूहनीयम् । अत्र सर्वत्र 'प्रत्यादेशो धनुष्मताम्, अग्रणीर्विदग्धानाम्, धौरेयः साहसिकानाम्' इत्यत्रेवोल्लेखालङ्कारः, तल्लक्षणं यथा—'क्वचिद् भेदाद् ग्रहीतॄणां विषयाणां तथा क्वचित् । एकस्यानेकधोल्लेखो यः स उल्लेख उच्यते ॥' इति ।

ममेति—मम भरतस्य मातुः कैकेय्याः प्रियं हितं कर्त्तुः येन रामेण लक्ष्मीः

भरत—तात !

सुमन्त्र—राजकुमार, यहीं तो हूँ !

भरत—कहाँ हैं हमारे पूज्य राम कहाँ हैं वे महाराज के प्रिय प्रतिनिधि ? कहाँ हैं वे वीरों के उत्तम उदाहरण ? कहाँ हैं वे राज्यलुब्धा कैकेयी के तिरस्कर्ता ? कहाँ हैं वे यशोनिधि ? कहाँ हैं वे महाराज के आदर्श पुत्र ? कहाँ हैं वे सत्यसंकल्प ? मेरी माता की इष्टसिद्धि के लिए जिन्होंने राज्य के ऐश्वर्य को ठुकरा दिया ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तमहं द्रष्टुमिच्छामि दैवतं परमं मम ॥ ३ ॥

सुमन्त्रः—कुमार ! एतस्मिन्नाश्रमपदे—

अत्र रामश्च सीता च लक्ष्मणश्च महायशाः ।
सत्यं शीलं च भक्तिश्च येषु विग्रहवत् स्थिता ॥ ४ ॥

भरतः—तेन हि स्थाप्यतां रथः ।

सूतः—यदाज्ञापयत्यायुष्मान् । (तथा करोति)

भरतः—(रथादवतीर्य) सूत ! एकान्ते विश्रामयाश्वान् ।

सूतः—यदाज्ञापयत्यायुष्मान् । (निष्क्रान्तः)

भरतः—भोस्तात ! निवेद्यतां निवेद्यताम् ।

(उपस्थितापि) राज्यश्रीः विसर्जिता परित्यक्ता, तं मम परमं सतताराध्यं दैवतं द्रष्टुं विलोकयितुम्, अहं भरतः, इच्छामि इच्छन् यामीति । अन्यदीयमातुः प्रियं कर्तुं यः समुपस्थितां राज्यश्रियं परिहरति, सोऽयमसाधारणमाहात्म्यवत्तया देवोपमः श्रद्धयाऽऽराध्य इति तमहं द्रष्टुं गच्छामीति तदाशयः ॥ ३ ॥

अत्रेति । महायशाः प्रचुरविमलकीर्त्तिः रामः, सीता, लक्ष्मणश्च तिष्ठन्तीति शेषः । येषु रामसीतालक्ष्मणेषु सत्यं शीलं भक्तिश्चेति त्रयम् । क्रमशः सत्यनिष्ठा, स्नेहो, गुरुजनविषयो भावश्चेति त्रितयं विग्रहवत् मूर्त्तिभागिव स्थितम् । तत्र रामे सत्यं सदा सत्यपालनपराणयत्वात्, सीतायां शीलं पत्यनुरागाधीनचित्तत्वात् लक्ष्मणे भक्तिः संतताज्ञाप्रतिपालनादिति बोध्यम् ॥ ४ ॥

विश्रामय मार्गश्रममपाकर्तुं विश्रान्तान् कारय ।

अपने उन्हीं आराध्य देव के दर्शन की कामना है ॥ ३ ॥

सुमन्त्र—कुमार, इसी आश्रम में—

महायशा राम, सीता और लक्ष्मण वास करते हैं; जहाँ ऐसा मालूम पड़ता है, मानो मूर्त्तिमान् सत्य, भक्ति और शील रहते हों ॥ ४ ॥

भरत—अच्छा, तो रथ रोको !

सूत—जो आज्ञा । (रथ को खड़ा करता है)

भरत—(रथ से उतरकर) सारथि, घोड़ों को एक ओर ले जाकर विश्राम करने दो ।

सूत—जो आज्ञा । (प्रस्थान)

भरत—तात, सूचित कीजिए ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

सुमन्त्रः—कुमार ! किमिति निवेद्यते ?

भरतः—राज्यलुब्धायाः कैकेय्याः पुत्रो भरतः प्राप्त इति ।

सुमन्त्रः—कुमार ! अलं गुरुजनापवादमभिधातुम् ।

भरतः—सुष्ठु, न न्याय्यं परदोषमभिधातुम् । तेन हि उच्यताम्—'इक्ष्वाकुकुलन्यग्भूतो भरतो दर्शनमभिलषती'ति ।

सुमन्त्रः—कुमार ! नाहमेवं वक्तुं समर्थः । अथ पुनर्भरतः प्राप्त इति ब्रूयाम् ?

भरतः—न न । नाम केवलमभिधीयमानमकृतप्रायश्चित्तमिव मे प्रतिभाति । किं ब्रह्मघ्नानामपि परेण निवेदनं क्रियते ? तस्मात् तिष्ठतु तातः । अहमेव निवेदयिष्ये । भो भो ! निवेद्यतां निवेद्यतां तत्रभवते पितृवचनकराय राघवाय—

परदोषमन्यदोषम् न न्याय्यम् अनुचितमित्यर्थः । इक्ष्वाकुकुलन्यग्भूतः इक्ष्वाकुवंशकलङ्कभूतः ।

न नेति—केवलं मम नाम नाभिधीयतामित्यर्थः । तत्र हेतुमाह—नामेति । दोषविशेषास्पृष्टकेवलनामोपादानेन मत्प्राप्तिनिवेदनं न कर्तव्यम् । तदेवोपपादयति अकृतेति । वस्तुतो विद्यमानस्य दोषस्य कीर्त्तनेनान्वयं लम्भयित्वाऽभिधीयमानं तु कृतानुतापरूपप्रायश्चित्तं भवतीति, तथैव मदीयनाम सूचयितुमुपयुक्तमिति भावः । ब्रह्मघ्नानां ब्रह्महत्यासमानपापकलुषितानाम्, तन्नाम्नः परेणाभिधातुमयोग्यत्वादिति भावः ।

सुमन्त्र—कुमार, क्या सूचित किया जाय ?

भरत—राज्यलुब्धा कैकेयी का पुत्र भरत आया है ।

सुमन्त्र—गुरुजनों की निन्दा आप न किया करें ।

भरत—ठीक है, दूसरे की निन्दा करना अच्छा नहीं है । यह सूचित कीजिये कि इक्ष्वाकुकुलकलङ्क भरत आपका दर्शन करना चाहता है ।

सुमन्त्र—ऐसा मैं नहीं कह सकता । हाँ, भरत आये हैं, ऐसा निवेदन करूँ ?

भरत—नहीं, नहीं, केवल नाम लेने से प्रायश्चित्त नहीं हुआ-सा मुझे मालूम पड़ता है । ब्रह्मघातियों की सूचना भी दूसरे देते हैं ? आप रहने दें । मैं खुद सूचित करूँगा । पिता के वचनों की रक्षा करनेवाले महानुभाव रघुकुलतिलक को सूचित करो—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

निर्घृणश्च कृतघ्नश्च प्राकृतः प्रियसाहसः।
भक्तिमानागतः कश्चित् कथं तिष्ठतु यात्विति ॥ ५ ॥

(ततः प्रविशति रामः सीतालक्ष्मणाभ्याम्)

रामः—(आकर्ण्य सहर्षम्) सौमित्रे ! किं शृणोषि ? अयि विदेहराजपुत्रि ! त्वमपि शृणोषि ?

कस्यासौ सदृशतरः स्वरः पितुर्मे गाम्भीर्यात् परिभवतीव मेघनादम्।
यः कुर्वन् मम हृदयस्य बन्धुशङ्कां सस्नेहः श्रुतिपथमिष्टतः प्रविष्टः ॥६॥

निर्घृणश्चेति—निर्घृणः दयारहितः, कृतघ्नः कीर्त्तिविघाती च, प्राकृतः पामरः, प्रियसाहसः अनुचितसाहसिक्यप्रेमपरायणः, (एतावद्दोषगणसङ्कुलोऽपि) भक्तिमान् त्वद्विषयेण भक्तिगुणेन युक्तः कश्चित् अनिर्देशार्हाभिधान आगतः, स कथं केन प्रकारेण तिष्ठतु त्वद्दर्शनप्रतीक्षाद्वारि सक्तो भवतु यातु दर्शनानर्हतया दृष्टिगोचरादपसरतु वा ? दोषाधिक्यादपगच्छतु, भक्तिमहिम्ना त्वद्दर्शनं प्रतीक्षतां वेति द्वैते विनिगमनाविरहादिति भावः ॥ ५ ॥

कस्यासाविति—मे मम पितुः सदृशतरः मत्पितृस्वरतुलितः कस्य असौ स्वरः वर्णपद्धतिप्रयोगपरिपाटी गाम्भीर्यात् मेघनादं घनरवं परिभवति अतिशेत इव। यः सस्नेहः स्नेहाख्यमानसभावव्यञ्जकः मम हृदयस्य बन्धुशङ्कां बन्धुरयमिति सन्देहं जनयन् इष्टतः इष्टतया कर्णरसायनतया श्रुतिपथं कर्णविवरं प्रविष्टः। अयं भावः—कस्यायं मत्तातपादस्वरसदृशो घनगर्जितानुकारी च शब्दो मम श्रोत्रमाप्याययन् वर्त्तते, यमुपश्रुत्य मम बन्धुना कृतोऽयं शब्द इति मम मनः सन्दिग्धे। प्रहर्षिणीवृत्तम्, 'म्नौ ज्रौ गस्त्रिदशयतिः प्रहर्षिणीयम्' इति तल्लक्षणम् ॥ ६ ॥

एक नृशंस, कृतघ्न, अधम और उद्दण्ड, किन्तु भक्तिशाली व्यक्ति आया है। क्या वह दरवाजे पर प्रतीक्षा में ठहरे या लौट जाय ॥ ५ ॥

(राम का सीता और लक्ष्मण के साथ प्रवेश)

राम—(सुनकर, हर्ष के साथ) लक्ष्मण, क्या सुन रहे हो ? जनकपुत्रि, क्या तुम भी सुन रही हो ?

मेरे पिताजी के स्वर से एक दम मिलनेवाला और गम्भीरता में मेघगर्जन के समान यह स्वर किसका हो सकता है ? यह स्वर मेरे हृदय में भ्रातृ-सन्देह उत्पन्न करता है, तथा स्नेहपूर्ण रूप में कर्णगोचर हो रहा है ॥ ६ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लक्ष्मणः—आर्य । ममापि खल्वेष स्वरसंयोगो बन्धुजनबहुमानमावहति ।
एष हि—
घनः स्पष्टो धीरः समदवृषभस्निग्धमधुरः
कलः कण्ठे वक्षस्यनुपहतसञ्चाररभसः ।
यथास्थानं प्राप्य स्फुटकरणनानाक्षरतया
चतुर्णां वर्णानामभयमिव दातुं व्यवसितः ॥ ७ ॥
रामः—सर्वथा नायमबान्धवस्य स्वरसंयोगः क्लेदयतीव मे हृदयम् ।
वत्स ! लक्ष्मण ! दृश्यतां दृश्यतां तावत् ।
लक्ष्मणः—यदाज्ञापयत्यार्यः । (परिक्रामति)

घन इति—घनो निबिडः मांसलः, स्पष्टो व्यक्ताक्षरः, धीरो गंभीरः, समदवृषभस्निग्धमधुरः मत्तवृषस्वरवत् स्निग्धमधुरः सरसरमणीयः कलः कोमलध्वनिः स्फुटं प्रकटं सौष्ठवयुक्तं वा करणं वा बाह्याभ्यन्तरलक्षणः प्रयत्नो येषां तानि स्फुटकरणानि नानाक्षराणि यस्मिन् स स्फुटकरणनानाक्षरस्तस्य भावस्तया प्रयत्नकृताक्षरलभ्यस्फुटीभावेनेत्यर्थः । कण्ठे गले वक्षसि हृदयदेशे च यथास्थानं प्राप्य यस्याक्षरस्य यत् स्थानं तालवादि तत्तत् स्थानमनतिक्रमेण संस्पृश्येत्यर्थः । अत एव च स्थानप्रयत्नकृतदोषविरहिततया अनुपहतसञ्चाररभसः अप्रतिबद्धप्रचारवेगः एष हि स्वरः चतुर्णां वर्णानां ब्राह्मणादीनाम् अभयं दातुं व्यवसितः उद्युक्त इव प्रतिभातीति भावः । स्वरस्य यथोक्तगुणयोगोक्त्या तत्प्रयोक्तुः चातुर्वर्ण्यरक्षाचातुर्यं समर्थ्यते । एतेन चातुर्वर्ण्यरक्षाधिकारव्यञ्जकस्वरप्रयोक्तुर्महापुरुषत्वं प्रतिपादितम्, अन्यत्सुगमम् । शिखरिणीवृत्तम् ॥

क्लेदयति आर्द्रीकरोति, स्वजनस्वरस्यैवैष स्वभावो यद्हृदयमावर्जयेदिति । तथा च भवभूतिः—'अविज्ञातेऽपि बन्धौ हि बलात् प्रह्लादते मनः' इति ।

लक्ष्मण—आर्य, निश्चय ही यह स्वर मेरे हृदय में बन्धुजनोचित सम्मानभाव पैदा कर रहा है, क्योंकि—

यह स्वरसंयोग घन, स्पष्ट, गम्भीर, मतवाले साँड़ की आवाज के तुल्य सरस, मधुर, अभिरामता से भरा, यथास्थान से वर्णोच्चारण वाला, गले और छाती में अप्रतिहत वेग से प्रभावशाली है, जिससे प्रतीत हो रहा है कि चारों वर्णों को वह अभयदान देने को उद्यत हो ॥ ७ ॥

राम—निश्चय ही यह स्वरसंयोग किसी अबान्धव जन का नहीं है । इसे सुन कर मेरा हृदय पसीजा जा रहा है । वत्स लक्ष्मण, देखो तो ।

लक्ष्मण—जो आज्ञा । (टहलता है)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भरतः—अये, कथं न कश्चित् प्रतिवचनं प्रयच्छति ? किन्नु खलु विज्ञातोऽस्मि कैकेय्याः पुत्रो भरतः प्राप्त इति ?

लक्ष्मणः—(विलोक्य) अये अयमार्यो रामः ! न न । रूपसादृश्यम् ।

मुखमनुपमं त्वार्यास्याभं शशाङ्कमनोहरं
ममपितृसमं पीनं वक्षः सुरारिशरक्षतम् ।
द्युतिपरिवृतस्तेजोराशिर्जगत्प्रियदर्शनो
नरपतिरयं देवेन्द्रो वा स्वयं मधुसूदनः ॥ ८ ॥

अये इति खेदे । प्रतिवचनम् उत्तरम् । एतेनोपेक्षां मनसिकृत्य स्वापराधं स्मरति कैकेय्या इति । एतेन द्वेषाधीनद्वेषो मयि सम्भवत्येषाम् , स च मत्परिचयोपलब्धावेवेति तथाऽभिधानम् ।

न नेति—मनसि सञ्जातं रामभ्रमं झटिति विशेषदर्शनान्निषेधति—न नेति । सम्भ्रमकृता द्विरुक्तिः ।

मुखमिति—आर्यस्य रामस्य मुखस्य आस्यस्य आभेव आभा शोभा यस्य तत् , शशाङ्कमनोहरं चन्द्रवद्रमणीयं लोचनावर्जकम् अनुपमम् अन्यदीयवदनैस्तुलयितुमशक्यं मुखम् , मम पितृसमं तातेन तुल्यं सुरारिशरक्षतं देवसाहायकाचरणावसरेषु असुरगणबाणपातक्षततया व्रणकिणितम् , पीनं विशालं, वक्षः उरोदेशः, द्युतिपरिवृतः परितः प्रसरन्त्या कान्त्या मण्डलीभावेन वेष्टितस्तेजोराशिस्तेजसां समूह इव स्थितोऽयं जगत्प्रियदर्शनो धरणीलोचनरोचनः अयं नरपतिः कोऽपि राजविशेषः आकारान्तरधारी दशरथो वा देवेन्द्रो वा स्वयं मधुसूदनो विष्णुर्वा भवेत् । विशेषादर्शनात् सामान्यगुणयोगाच्च संशयोदयः । शुद्धः ससन्देहालङ्कारः । तल्लक्षणं यथा 'संदेहः प्रकृतेऽन्यस्य संशयः प्रतिभोत्थितः । शुद्धो निश्चयगर्भोऽसौ निश्चयान्त इति त्रिधा ॥' इति ॥

भरत—एँ, कोई उत्तर क्यों नहीं दे रहा है ? क्या वे लोग समझ गये कि कैकेयी का पुत्र भरत आया है ।

लक्ष्मण—(भरत की ओर देखकर) ओहो ! यह तो आर्य राम हैं । नहीं नहीं केवल आकृतिसाम्य है ।

चन्द्रमा के समान मनोहर आर्य से मिलता-जुलता कैसा कमनीय मुख है ? देवासुरसंग्राम में देवों की सहायता के लिए असुरों के बाणप्रहार से चिन्हित मेरे पिताजी की छाती से मिलती-जुलती चौड़ी छाती है, चारों ओर बिखरी ज्योति से दीप्तिमान्, तेजस्वी संसार की आँखों को प्यारे लगनेवाले यह क्या महाराज हैं ? या देवराज इन्द्र हैं ? या स्वयं विष्णुभगवान् हैं ? ॥ ८ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

(सुमन्त्रं दृष्ट्वा) अये तातः !

सुमन्त्रः—अये कुमारो लक्ष्मणः !

भरतः—एवं, गुरुरयम् । आर्य ? अभिवादये !

लक्ष्मणः—एह्येहि । आयुष्मान् भव (सुमन्त्रं वीक्ष्य) तात ! कोऽत्रभवान् ?

सुमन्त्रः—कुमार !

रघोश्चतुर्थोऽयमजात् तृतीयः पितुः प्रकाशस्य तव द्वितीयः ।
यस्यानुजस्त्वं स्वकुलस्य केतोस्तस्यानुजोऽयं भरतः कुमारः ॥९॥

लक्ष्मणः—एह्येहीक्ष्वाकुकुमारः ! वत्स ! स्वस्ति, आयुष्मान् भव ।

असुरसमरदक्षैर्वज्रसंघृष्टचापै-
रनुपमबलवीर्यैः स्वैः कुलैस्तुल्यवीर्यैः ।

रघोरिति । रघोश्चतुर्थः वंशक्रमगणनायां चतुर्थत्वेन परिगणनीयः, अजात् तृतीयः तत्पौत्रः प्रकाशस्य लोकविख्यातस्य तव पितुर्द्वितीयः, आत्मा प्रथम आत्मजो द्वितीय इति गणनायामिति भावः । स्वकुलस्य रघुवंशस्य केतोर्विजयवैजयन्तीस्वरूपस्य यस्य रामस्य त्वमनुजः, तस्यैव रामास्यानुजोऽयं कुमारो भरत इति भावः । एनेन त्वयायं भ्रातृभावेनादरणीयो न तु कैकेयीसम्बन्धेन तिरस्करणीय इति सूचितम् ॥ ९ ॥

असुरेति । असुरैः दैत्यैः सह समरे युद्धे दक्षैः समर्थैः, वज्रेण इन्द्रायुधेन सह संघृष्टं जातस्पर्धं चापं धनुर्येषां तैः (असुरदमने करणीये मत्पूर्वपुरुषाणां धनुरिन्द्रायुधेन सहाहमहमिकां दधारेति लक्ष्मणस्याभिमानः) स्वकुलैः स्वगोत्रोत्पन्नैः तुल्य-

---

(सुमन्त्र को देखकर) ओहो, यह तो तात हैं !

सुमन्त्र—ओहो, क्या राजकुमार लक्ष्मण हैं ।

भरत—हाँ, यह बड़े भाई ही हैं । आर्य, अभिवादन करता हूँ ।

लक्ष्मण—आओ आओ । चिरञ्जीवी रहो । (सुमन्त्र की ओर देखकर) तात, ये कौन हैं ?

सुमन्त्र—कुमार ।

यह हैं महाराज रघु से चतुर्थ, महाराज अज से तृतीय जगत्प्रसिद्ध तुम्हारे पिता दशरथ से द्वितीय, और जिस कुलश्रेष्ठ राम के अनुज तुम हो, उन्हीं का अनुज भरत कुमार ॥ ९ ॥

लक्ष्मण—आओ, आओ, इक्ष्वाकुवंशभूषण कुमार, वत्स, तुम्हारा कल्याण हो तुम चिरञ्जीवी रहो ।

असुरों के साथ संग्राम में कुशल, असुरसंहारः से वज्रस्पर्धी धनुष को धारण

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

रघुरिव स नरेन्द्रो यज्ञविश्रान्तकोशो
भव जगति गुणानां भाजनं भ्राजितानाम् ॥ १० ॥

भरतः—अनुगृहीतोऽस्मि ।

लक्ष्मणः—कुमार ! इह तिष्ठ । त्वदागमनमार्याय निवेदयामि ।

भरतः—आर्य ! अचिरमिदानीमभिवादयितुमिच्छामि । शीघ्रं निवेद्यताम् ।

लक्ष्मणः—बाढ़म् । (उपेत्य) जयत्वार्यः । आर्य !

अयं ते दयितो भ्राता भरतो भ्रातृवत्सलः ।
संक्रान्तं यत्र ते रूपमादर्श इव तिष्ठति ॥ ११ ॥

वीर्यः तुलितपराक्रमः त्वम्, सः प्रसिद्धः यज्ञविश्रान्तकोशः यज्ञे सर्वस्वदक्षिणाके विश्वजिद्यागे विश्रान्तः निरवशेषविनियुक्तः कोशो वित्तसञ्चयो येन तादृशः । गुणानां शौर्यौदार्यादीनां भ्राजितानां शोभनानां भाजनम् आश्रयः आधारीभूतो नरेन्द्रो भव । अस्मत्पूर्वपुरुषा दैत्यान् पराभूय शक्रेण सहासनं लब्ध्वा सर्वस्वदक्षिणाकेन यज्ञेनेष्ट्वा च यां कीर्त्तिमुपार्जितवन्तस्तद्रक्षणेऽवहितो वर्त्तेथा इति राजपदेऽभिषेक्तुं दत्तावसराय भरताय लक्ष्मणोक्तिः कामपि मानसिकीं कदर्थनामिङ्गितयतीव ॥ १० ॥

अयमिति । अयं पुरो दृश्यमानस्ते दयितः प्रीतिपात्रम् भ्रातृवत्सलो भ्रातृष्वनुरक्तः भरतो नाम, भ्रातास्तीति शेषः । यत्र भरते ते तव रूपमादर्शे दर्पण इव संक्रान्तं प्रतिफलितम् । आदर्शे यथा कस्यापि रूपमविकलमशेषं च प्रतिफलति तथैव तव रूपं भरते संक्रान्तमिति भावः ॥ ११ ॥

करने वाले अतुल पराक्रम एवं वीर्य वाले अपने पूर्वजों की तरह पराक्रमी बनो । समूचे ऐश्वर्य को यज्ञ में लगा देने वाले महाराज रघु की भाँति संसार में दीप्यमान गुणों के भाजन बनो ॥ १० ॥

भरत—मैं आपका अत्यनुगृहीत हूँ ।

लक्ष्मण—कुमार! वहाँ ठहरो, मैं तुम्हारे आने की सूचना आर्य को दे रहा हूँ ।

भरत—आर्य, मैं अब शीघ्र ही उनका अभिवादन करना चाहता हूँ । उनको शीघ्र सूचित कीजिये ।

लक्ष्मण—बहुत अच्छा, (राम के समीप आकर) जय हो आर्य की । आर्य, आपके प्रिय अनुज भरत आर्य हैं, जिनमें दर्पण की भाँति पूर्णतः आपका रूप प्रतिबिम्बित है ॥ ११ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रामः—वत्स लक्ष्मण ! किमेवं भरतः प्राप्तः ?

लक्ष्मणः—आर्य ! अथ किम् ।

रामः—मैथिलि ! भरतावलोकनार्थं विशालीक्रियतां ते चक्षुः ।

सीता—आर्यपुत्र ! किं भरत आगतः ?

अज्जउत्त ! किं भरदो आअदो ?

रामः—मैथिलि ! अथ किम् ।

अद्य खल्ववगच्छामि पित्रा मे दुष्करं कृतम् ।
कीदृशस्तनयस्नेहो भ्रातृस्नेहोऽयमीदृशः ॥ १२ ॥

लक्ष्मणः—आर्य ! किं प्रविशतु कुमारः ?

विशालीक्रियतां विस्तार्यताम्, एतेन रामस्य भरतं प्रत्यादरातिशय उक्तः, अत्यादरस्नेहभाजनं हि वस्तु विवृत्य नेत्रे पश्यन्ति ।

अद्येति-अद्य अस्मिन् भरतकर्तृकमदनुगमनवासरे अवगच्छामि निश्चिनोमि । मे मम पित्रा दुष्करं स्वपुत्रराज्यभ्रंशनादिदुःक्षणप्राणनरूपम् असुकरं कृतम् असामान्यधैर्यगुणयोगात् कृतम् अनुष्ठितम् । ईदृशः अयम् भ्रातृस्नेहः भरतस्य स्वहस्तगतराज्यपरित्यागपूर्वकवनगतमल्लक्षणभ्रात्रनुगमनरूपकार्यप्रयोजकः (चेत्) पुत्रस्नेहः कीदृशः ? कीदृशकार्यप्रयोजकः स्यादिति । अयमाशयः—यदि भ्रातृस्नेहेन बाधितो भरतो निस्सपत्नमुपनतं राज्यमुपेक्ष्य वनगतं मामनुगतस्तदा पुत्रस्नेहः कीदृशं कठिनमध्यवसायं प्रवर्त्तयेत्, नास्ति किमप्यसाध्यं तस्येत्यर्थः । अथ तादृशे पुत्रस्नेहे सत्यपि मम पिता मदीयराज्यविभ्रंशनं दृष्ट्वापि तावन्तमपि कालं याज्जीवनं धारयितुमशकत्तदीयधैर्येणैव पराक्रान्तमिति समधिकधैर्यशाली ममासीत्तातपाद इति ॥ १२ ॥

राम—वत्स लक्ष्मण, क्या सचमुच भरत आये हैं ?

लक्ष्मण—आर्य, और क्या ?

राम—मैथिलि, भरत को देखने के लिए अपनी आँख विशाल बनाओ ।

सीता—आर्यपुत्र, क्या भरत आये हैं ?

राम—मैथिलि, हाँ सच ।

आज मान रहा हूँ कि हमारे पिताजी ने बड़ा कठिन कष्ट उठाया होगा । भला, पुत्रस्नेह कितना गम्भीर होता होगा जब कि भ्रातृस्नेह इस तरह का है ॥ १२ ॥

लक्ष्मण—आर्य, क्या कुमार भीतर आवें ?

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रामः-वत्स ! लक्ष्मण ! इदमपि तावदात्माभिप्रायमनुवर्तयितुमिच्छसि ।
गच्छ सत्कृत्य शीघ्रं प्रवेश्यतां कुमारः ।

लक्ष्मणः-- यदाज्ञापयत्यार्यः ।

रामः--अथवा तिष्ठ त्वम् ।

इयं स्वयं गच्छतु मानहेतोर्मातेव भावं तनये निवेश्य ।
तुषारपूर्णोत्पलपत्रनेत्रा हर्षास्रमासारमिवोत्सृजन्ती ॥ १३ ॥

सीता--यदार्यपुत्र आज्ञापयति । (उत्थाय परिक्रम्य भरतमवलोक्य) हं जं अय्यउत्तो आणवेदि ।

इदमिति--इदमपि भरतप्रवेशार्थमपि मदीयामादातुमिच्छस्याज्ञां वाञ्छसि, स हि त्वया स्वयमेव प्रवेशनीय आसीत्, अत्यात्मीयतया तत्प्रवेशे मदाज्ञाया अनपेक्ष्यत्वादिति भावः ।

इयमिति—तुषारपूर्णे हिमावृते उत्पलपत्रे कुवलयदले इव नेत्रे लोचने यस्याः सा आनन्दाश्रुपरिप्लुतनयनेन्दीवरा, आसारं धारासम्पातमिव हर्षास्रं भरतागमनजन्यानन्दाश्रुप्रवाहम् उत्सृजन्ती विसृजन्ती इयं सीता माता इव तनये पुत्रे भावं वत्सलतां निवेश्य पुरस्कृत्य मानहेतोः भरतस्यादरार्थं स्वयम् आत्मनैव गच्छतु । यथा माता पुत्रमागतं निशम्य हर्षाश्रुपरिप्लुताक्षी स्वयमागत्य स्नेहेन तं संभावयति, तथा भरतस्यागतस्य सत्कारार्थं सीता स्वयं यातु । एतेन भरतं प्रति तद्बहुमान उक्तः ॥ १३ ॥

हम् इति विस्मयव्यञ्जकम्, स च भरते दृष्टे तस्मिन् रामभ्रमेण जनितो रूप-

---

राम—वत्स लक्ष्मण, क्या इसमें भी मेरी राय जानना चाहते हो ? जाओ, शीघ्र सत्कारपूर्वक भरत को भीतर ले जाओ ।

लक्ष्मण—आर्य की जो आज्ञा ।

राम—अथवा तुम ठहरो ।

तुषारपूर्ण, कमलतुल्य तथा आनन्दाश्रुपूर्ण नयनवाली यह सीता खुद आनन्दाश्रु बरसाती हुई पुत्र के प्रति माता की ममता के सदृश ममता लिये हुए जाकर भरत का सत्कार करे ॥ १३ ॥

सीता—जो आज्ञा आर्यपुत्र की । (उठकर और भरत को देखकर) हूँ, क्या आर्यपुत्र मुझसे पहले ही भीतर से बाहर निकल आये ? नहीं नहीं, यह तो आकृति-साम्य है ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ततस्तां वेलामिदानीं निष्क्रान्त आर्यपुत्रः । नहि नहि ।
तदो तं वेलं दाणि णिक्कन्तो अय्यउत्तो । णहि णहि ।
रूपसादृश्यम् ।
रूवसादिस्सं ।

सुमन्त्रः--अये वधूः ?

भरतः--अये, इयमत्रभवती जनकराजपुत्री ?

इदं तत् स्त्रीमयं तेजो जातं क्षेत्रोदराद्धलात् ।
जनकस्य नृपेन्द्रस्य तपसः सन्निदर्शनम् ॥ १४ ॥

आर्ये ? अभिवादये, भरतोऽहमस्मि ।

सीता--(आत्मगतम्) नहि रूपमेव । स्वरयोगोऽपि स एव (प्रकाशम्)
णहि रूवं एव्व । सरजोओ वि सो एव्व ।

वत्स ! चिरं जीव ।
वच्छ ! चिरं जीव ।

सामान्यकृतश्च वेदितव्यः, तां यस्यामेव वेलायां क्षणेऽहमुटजान्निर्गता तत्क्षण एवार्यपुत्रोऽपि मन्ये ततो बहिर्गतो येनेह पुरतो दृश्यते । न हीति । निपुणं निभालयन्त्या रामभ्रमव्यावर्त्तनीयमुक्तिः ।

इदमिति--क्षेत्रोदरात् क्षेत्रं कर्षणीया भूमिस्तदुदरात् तन्मध्यदेशात् हलात् सीरात् जातं जनकस्य सीतापितुर्विदेहस्य राज्ञः नृपेन्द्रस्य तपसः सन्निदर्शनम् उत्तममुदाहरणम्, इदं पुरोवर्त्ति स्त्रीमयं वनितामावेन परिणतं तत् प्रसिद्धं तेजः । जनकस्तपःफलभूतां यामयोनिजां तेजसा भासमानां तनयामलब्ध सा सीतैवेत्यमिति भावः ॥ १४ ॥

भ्रातृमनोरथं त्वत्समागमविषयकम्, पूरय सफलय ।
किं करिष्यसि । मया सह पश्चाद्वा रामं द्रष्टुं प्रवेक्ष्यसीति प्रश्नः ।

सुमन्त्र—क्या बहूजी हैं ?

भरत—ओहो, ये तो पूज्या जनकतनया हैं ।

यह वही दीप्तिशाली स्त्रीरूप तेज है जो खेत जोतने के समय पृथ्वीगर्भ से निकला था और जो राजाधिराज जनक के तप का ज्वलन्त उदाहरण है ॥ १४ ॥

भरत—आर्ये मैं भरत आपको नमस्कार करता हूँ ।

सीता—(स्वगत) केवल आकृति ही नहीं, स्वर भी बिलकुल मिलता-जुलता है । (प्रकाश) वत्स, चिरंजीवी होवो ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भरतः--अनुगृहीतोऽस्मि ।

सीता--एहि वत्स ! भ्रातृमनोरथं पूरय ।

एहि वच्छ ! भादुमणोरहं पूरेहि ।

सुमन्त्रः--प्रविशतु कुमारः ।

भरतः--तात इदानीं किं करिष्यसि ?

सुमन्त्रः--अहं पश्चात् प्रवेक्ष्यामि स्वर्गं याते नराधिपे ।

विदितार्थस्य रामस्य ममैतत् पूर्वदर्शनम् ॥ १५ ॥

भरतः--एवमस्तु । (राममुपगम्य) आर्य ! अभिवादये, भरतोऽहमस्मि ।

रामः--(सहर्षम्) एह्येहि इक्ष्वाकुकुमार ! स्वस्ति, आयुष्मान् भव !

वक्षः प्रसारय कपाटपुटप्रमाणमालिङ्ग मां सुविपुलेन भुजद्वयेन ।

अहमिति--(यतः) नराधिपे राजनि दशरथे स्वर्गं याते विदितार्थस्य अवगततत्स्वर्गगमनमाचारस्य (कर्त्तरि षष्ठी) रामस्य अधुना भुवि एतत् पूर्वदर्शनं मम प्रथमः साक्षात्कारः (अतः) अहं पश्चात् त्वयि प्रविष्टवति प्रवेक्ष्यामि । अयमाशयः--यदवधि दशरथो दिवमुपयातस्तदादि नाहं राममैक्षिषि, तदधुना मां दृष्ट्वा प्रमीतं तातमनुस्मृत्य रामो विमनायेत, सा च तदवस्था प्रियभ्रातृसमागमानन्दपरिपन्थिनी स्यादतो नाहं पूर्वं प्रवेष्टुमिच्छामि, न वा त्वया सह, किन्तु त्वया पूर्वं प्रविष्टेन सह समागमं कृत्वाऽऽनन्दमनुभूतवति रामे प्रविष्टस्य मम दर्शनेन जनितोऽपि तातस्मृतिप्रभूतो विषादो नाभूतमानन्दं लघयेदिति ॥ १५ ॥

वक्ष इति--कपाटपुटप्रमाणं कपाटोदरविस्तीर्णम्, वक्षः उरोदेशम्, प्रसारय

भरत—आपका अनुगृहीत हुआ ।

सीता—आओ वत्स, अपने भाई के मनोरथ को पूर्ण करो ।

सुमन्त्र—कुमार भीतर जावें ।

भरत—तात, आप इस समय क्या करेंगे ?

सुमन्त्र—महाराज जब से स्वर्गवासी हुए हैं, और इसकी सूचना राम को मिली है इसके बाद यह मेरी राम से पहली भेंट है, अतः मैं पीछे जाऊँगा ॥ १५ ॥

भरत—ऐसा ही सही । (राम के समीप जाकर) मैं भरत आपको नमस्कार करता हूँ ।

राम—(हर्ष से) आओ इक्ष्वाकुकुमार तुम्हारा कल्याण हो । तुम चिरायु होवो । किवाड़ की जोड़ी की तरह चौड़ी अपनी छाती फैलाओ, अपने विशाल बाहुओं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

उन्नामयाननमिदं शरदिन्दुकल्पं प्रह्लादय व्यसनदग्धमिदं शरीरम्॥१६॥

भरतः—अनुगृहीतोऽस्मि।

सुमन्त्रः—(उपेत्य) जयत्वायुष्मान्।

रामः—हा तात!

गत्वा पूर्वं स्वसैन्यैरभिसरिसमये खं समानैर्विमानै-
र्विख्यातो यो विमर्दे स स इति बहुशः सासुराणां सुराणाम्।
सश्रीमांस्त्यक्तदेहो दयितमपि विना स्नेहवन्तं भवन्तं

विस्तृतं कुरु, तथा च सति त्वदालिङ्गनस्य सुखमधिकमनुभवितुं शक्नुयामिति भावः मां सुविपुलेन अतिलम्बेन भुजद्वयेन बाहुयुगलेन आलिङ्ग्य परिष्वजस्य। इदं गमत शरदिन्दुकल्पं शारदशर्वरीशसदृशम् आननम् उन्नामय उन्नतं कुरु। तथा च सति सकलभागेषु दृष्टिर्मम व्याप्रियेताधिकमानन्दं च विन्देति। (एभिश्च व्यापारैः) व्यसनदग्धं तातवियोगत्वद्विच्छेदादिजनितेन दुःखेनोपहतम् इदं शरीरं प्रह्लादय शिशिरय। 'स्निग्धजनसंविभक्तं हि दुःखं सह्यवेदनं भवती'ति न्यायेन कियतांशेन प्रसादमधिगच्छेयमिति भावः। वसन्ततिलकं वृत्तम्॥ १६॥

गत्वेति—यः पूर्वं पुरा समये सासुराणां दैत्यैः सहितानां सुराणां देवानां विमर्दे संग्रामे देवासुरयुद्ध इत्यर्थः; अभिसरेः साहायकार्थं प्रस्थानस्य समये समानैः देवाद्युषितविमानोपमैः विमानै व्योमयानैः (करणैः) स्वसैन्यैरात्मसैनिकैः (सह) खं गत्वाऽऽकाशमुत्प्लुत्य सः सः (दोर्वीर्यातिशयेन सर्वेषां पश्यतां विस्मयजननेन) सोऽयं दशरथ इति विख्यातः प्रसिद्धः, जात इति शेषः। सश्रीमान् लब्धलक्ष्मीकः त्यक्तदेहः विमुक्तकायो नरेन्द्रः महाराजः दयितं प्रियसुहृदं स्नेहवन्तं अनुरागशालिनं भवन्तं

द्वारा मुझसे भेंटो। शरद्ऋतुके चाँदके सदृश अपने मुखको उठाओ, और शोक की ज्वाला में जलते हुए मेरे अङ्गोंको शीतल करो॥ १६॥

भरत—मैं आपका अनुगृहीत हुआ।

सुमन्त्र—(आकर) जय हो आयुष्मान् की।

राम—हा तात,

आप पहले देवासुर संग्रामोंमें देवोंकी सहायताके लिए स्वर्ग जाते थे, उस यात्रामें आपके विमान देव विमानोंके सदृश होते थे, और उस युद्धमें महाराजकी विजयपर लोग आदर-सम्मान प्रकट करते थे, वही आप अपने प्रीतिपात्रोंके

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

स्वर्गस्थः साम्प्रतं किं रमयति पितृभिः स्वैर्नरेन्द्रैर्नरेन्द्रः ॥ १७ ॥

सुमन्त्रः—(सशोकम्)

नरपतिनिधनं भवत्प्रवासं भरतविषादमनाथतां कुलस्य ।
बहुविधमनुभूय दुष्प्रसह्यं गुण इव बह्वपराद्धमायुषा मे ॥ १८ ॥

सीता—रुदन्तमार्यपुत्रं पुनरपि रोदयति तातः ।

रोदन्तं अय्यउत्तं पुणो वि रोदावीअदि तादो ।

रामः—मैथिलि ! एष पर्यवस्थापयाम्यात्मानम् । वत्स ! लक्ष्मण ! आपस्तावत् ।

विना अन्तरा स्वर्गस्थः सन् अधुना पितृभूतैः पितृकोटिगणनीयैः स्वैरात्मीयैः नरेन्द्रैः रमयति आत्मानं विनोदयति किम् ? न कथमपीति प्रश्नकाकुलभ्योऽर्थः । यः पुरा त्वया सहितो देवसहायतायै सशरीरः स्वर्गं गतः, स इदानीं त्वां विना शरीरं त्यक्त्वा तत्र गतोऽपि कथमिवात्मानं विनोदयेत्, सुहृद्विनाकृतत्वादिति भावः । शौर्यातिशयरूपसमृद्धिवर्णनादुदात्तालङ्कारः, 'उदात्तं वस्तुनः सम्पद्' इति तल्लक्षणात् । पूर्वार्द्धे प्रतीयमानो वीरो रस उत्तरार्धे राजमरणात् प्रतीयमानस्य करुणस्याङ्गमिति बोध्यम् । स्रग्धराच्छन्दः, 'म्रभ्नैर्यानां त्रयेण त्रिमुनियतियुता स्रग्धरा कीर्त्तितेयम्' इति हि तल्लक्षणम् ॥ १७ ॥

नरपतीति । नरपतिनिधनं राज्ञो देहावसानम्, भवत्प्रवासं भवतां त्रयाणां वनयात्राम्, भरतविषादं भरतस्य भवत्प्रवासादिनिमित्तं दुःखम्, कुलस्य ईदृगुन्नतस्येक्ष्वाकुवंशस्यानाथताम् अशरणताम्, इत्येवं रूपं बहुप्रकारकं दुष्प्रसह्यं कृच्छ्रेण सोढव्यं दुःखं क्लेशमनुभूय मे मम आयुषा जीवितेन गुणे चिरजीवित्वलक्षणे इव बह्वपराद्धम् अनल्प उपघातः कृतः । यद्यहं चिरजीवितां नाध्यगमिष्यं तदैतानि दुःखानि नान्वभविष्यमिति ममायुषा चिरस्थायितांश एवापराधः कृत इति भावः । पुष्पिताग्रावृत्तम् ॥

विना स्वर्गमें भी क्या आनन्द पाते होंगे ? ॥ १७ ॥

सुमन्त्र—(शोकसे) महाराजकी मृत्यु, आपका वनवास, भरतकी तकलीफ वंशकी अनाथता, वगैरह नाना प्रकारके कष्टोंको दिखाकर हमारी लम्बी उम्रने गुणोंके साथ दोष ही अधिक दिये ॥ १८ ॥

सीता—रोते हुए आर्यपुत्रको तात और भी रुला रहे हैं ।

राम—मैथिलि, यह देखो, अपने को संभाल लेता हूँ । वत्स लक्ष्मण जल ले आओ ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

लक्ष्मणः—यदाज्ञापयत्यार्यः ।

भरतः—आर्य ! न खलु न्याय्यम् । क्रमेण शुश्रूषयिष्ये । अहमेव यास्यामि । (कलशं गृहीत्वा निष्क्रम्य प्रविश्य) इमा आपः ।

रामः—(आचम्य) मैथिलि ! विशीर्यते खलु लक्ष्मणस्य व्यापारः ।

सीता—आर्यपुत्र ! नन्वेतेनापि शुश्रूषयितव्यः ।

अय्यउत्त ! णं एदिणा पि सुस्सूसइदव्वो ।

रामः—सुष्ठु खल्विह लक्ष्मणः शुश्रूषयतु । तत्रस्थो मां भरतः शुश्रूषयतु ।

इह स्थास्यामि देहेन तत्र स्थास्यामि कर्मणा ।
नाम्नैव भवतो राज्यं कृतरक्षं भविष्यति ॥ १९ ॥

पर्यवस्थापयामि प्रकृतावारोपयामि । आपस्तावत् जलमाह्रियताम्, येन मुखप्रक्षालनादिना प्रकृतिपुनरापत्तौ क्षमेयेति भावः ।

क्रमेण अवरजत्वानुसारेण, योऽवरजः । स श्रेष्ठं शुश्रूषेतेति भावः

विशीर्यते विच्छिद्यते, अधुनावधि वने लक्ष्मणस्यैव जलाहरणादि कार्यमासीत्, अधुना भरतस्तत्र व्याप्रियत इति तद्विच्छेदः ।

इह वने, तत्रस्थः नगरस्थः शुश्रूषयतु मत्कर्मानुतिष्ठतु, तदयं शुश्रूषाविभागोऽतिरमणीय इति भावः ।

इहेति । इह त्वया नित्यनिवासेन सनाथीकृते वने देहेन सदेहः स्थास्यामि; तत्र राजधान्यां कर्मणा राज्यपालनात्मकेन कर्त्तव्येन स्थास्यामि । कायेनात्र तिष्ठन् सर्वमपि राजधानीकार्यमनायासं सम्पादयिष्यामीति । ननु नित्यावधानसाध्ये राज-

---

लक्ष्मण—जो आज्ञा ।

भरत—आर्य, यह ठीक नहीं होगा । क्रमसे शुश्रूषा करेंगे । मैं ही जल लाऊँगा (कलश लेकर जाता और आता है) यह लीजिये जल ।

राम—(आचमन करके) मैथिलि, लक्ष्मणका धन्धा छूट-सा रहा है ।

सीता—आर्यपुत्र, इनको भी शुश्रूषा करनी चाहिये ।

राम—अच्छा; तो यहाँ लक्ष्मण शुश्रूषा करें और वहाँ भरत शुश्रूषा करेंगे

भरत—आप मुझ पर प्रसन्न हों ।

देहसे मुझे यहाँ रहने दिया जाय, वहाँ केवल मेरा प्रबन्ध रहेगा । रक्षा तो आपके नाम मात्र से हो जायगी ॥ १९ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

रामः—वत्स ! कैकेयीमातः ! मा मैवम् ।

पितुर्नियोगादहमागतो वनं न वत्स ! दर्पान्न भयान्न विभ्रमात् ।
कुलं च नः सत्यधनं ब्रवीमि ते कथं भवान् नीचपथे प्रवर्तते ॥२०॥

सुमन्त्रः—अथेदानीमभिषेकोदकं क्व तिष्ठतु ?

रामः—यत्र मे मात्राऽभिहितं, तत्रैव तावत् तिष्ठतु ।

भरतः—प्रसीदत्वार्यः । आर्य ! अलमिदानीं व्रणे प्रहर्तुम् ।

कर्मणि भवतोऽत्र दूरदेशे कृतकार्यता कथं संभाव्यतामित्यत्राह—नाम्नैवेति रामस्य राज्यमिति भवन्नामधेयान्वयमात्रेण अस्मदायासलेशं विनैवेत्यर्थः । कृतरक्षं सुरक्षितं भविष्यति । एवञ्चात्र मयि स्थिते न कस्यापि किमपि हीयत इति मा मामत्र स्थातुमिच्छन्तं प्रतिषेधीति भावः ॥ १९ ॥

कैकेयीमातः कैकेयी माता यस्येति विग्रहे बहुव्रीहौ समासे 'मातङ्मातृकमातृषु वा' इति वार्त्तिके मातृकमात्रोरुभयोर्निर्देशात् कपो विकल्पनाद्रूपम् ।

पितुरिति—अहं पितुः नियोगात् अनुशासनात् वनं काननम्, आगतः भयाद् वनं नागतः, दर्पाद् वनं नागतः, विभ्रमाद् बुद्धिनाशाद् वनं नागतः । नः अस्माकं कुलं वंशश्च सत्यधनं सत्यपालनव्यसनितया प्रसिद्धम् (तत्) ते ब्रवीमि (त्वया ज्ञायमानमपि) अवधानविशेषदानार्थं बोधयामि । एवं स्थिते भवान् नीचपथे राज्यभारग्रहणरूपपित्राज्ञापरित्यागलक्षणे कुत्सितमार्गे कथं केन प्रवर्त्तते ? न कथमपि भवता तत्र पथि वर्त्तनीयमिति भावः ॥ २० ॥

अभिषेकोदकम् अभिषेकार्थमानीतम् अनेकपुण्यतीर्थोद्धृतं जलम् । क्व तिष्ठतु कस्य शिरसि निधातव्यं भवान् मन्यत् इत्यर्थः ।

व्रणे प्रहर्त्तुम् क्लेशिते क्लेशयितुम् । मद्राज्यवार्त्तयैव भवान् इमामवस्थां गमित-

---

सीता—वत्स, कैकेयीनन्दन, नहीं नहीं, ऐसा मत कहिये ।

मैं पिताकी आज्ञासे वन आया हूँ, वत्स ! न तो मैं अभिमानसे यहाँ आया हूँ, न भयसे, और न चित्तविभ्रमसे । हमारा वंश सत्यका पुजारी होता आया है, फिर तुम उससे उतरकर नीच पथपर क्यों उतरना चाहते हो ? ॥ २० ॥

सुमन्त्र—तो बताइये, अब अभिषेकका जल किसपर छोड़ा जाय ?

राम—जिसपर मेरी माताने कहा, उसीपर दीजिये ।

भरत—आर्य, आप मुझपर दया दिखावें, आर्य, अब फोड़ेपर नमक मत छिड़कें ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

अपि सुगुण ! ममापि त्वत्प्रसूतिः प्रसूतिः
स खलु निभृतधीमांस्ते पिता मे पिता च ।
सुपुरुष ! पुरुषाणां मातृदोषो न दोषो
वरद ! भरतमार्तं पश्य तावद्यथावत् ॥ २१ ॥

सीता—आर्यपुत्र ! अतिकरुणं मन्त्रयते भरतः । किमिदानीमार्य-
अय्यउत्त ! अधिकरुणं मन्तेअइ भरदो । किं दाणिं अय्य-
पुत्रेण चिन्त्यते ।
उत्तेण चिन्तीअदि ।

रामः—मैथिलि !

इति खेदमावहतो मम राज्याभिषेकप्रसङ्गः पुनरपि खेदं दीपयति, तस्माद्विरम्यतां तथोक्तेरिति भावः ।

अपीति—हे सुगुण, शोभनगुणनिलय ! त्वत्प्रसूतिः त्वदुत्पत्तिवंशो ममापि प्रसूतिः अपि ममापि प्रभवश्चेदित्यर्थः । निभृतधीमान् अचञ्चलप्रशस्तधिषणः स प्रसिद्धः खलु ते पिता मे चेदितीहापि सम्बन्धनीयम् । हे सुपुरुष ! पुरुषाणां मातृदोषो मातृकृतोऽपराधो न दोषश्चेत्, हे वरद, ईप्सितार्थदायिन् ! आर्तम् अतिपीडितम् यथावद् यथार्हम् भरतं पश्य तावदिति वाक्यालङ्कारे । यदि मामपि रघुवंशोद्भवं दशरथपुत्रं स्वभ्रातरं च जानासि, मातृकृतापराधेनादण्डनीयं च प्रतिपद्यसे, तदा मा मामुपेक्षिष्टा इति भावः ॥ २१ ॥

अतिकरुणम् अतिशयहृदयाकर्षकम् । चिन्त्यते विचार्यते, नास्ति भरत इत्थं विलपति कस्याप्यर्थस्य चिन्तनस्यावसरस्तस्मादाशु भरतोक्तप्रकारेणानुष्ठानमनुजानीहीति द्रुताया: सीताया आशयः ।

हे सुगुण, मेरा भी जन्म उसी वंशमें हुआ जिसके आप अलंकार हैं, मैं भी उन्हींका पुत्र हूँ जिनके आप वंशधर हैं । हे सुपुरुष, मातृदोषसे पुरुषोंको दोषी नहीं गिना जाता, अतः आप अभिलषित वरदाता होनेके कारण व्यथित भरत को दयादृष्टिसे देखें ॥ २१ ॥

सीता—आर्यपुत्र, भरतकी बातें अतिकरुणमय हो रही हैं । आप इस समय क्या सोच रहे हैं ?

राम—मैथिलि,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तं चिन्तयामि नृपतिं सुरलोकयातं
येनायमात्मजविशिष्टगुणो न दृष्टः।
ईदृग्विधं गुणनिधिं समवाप्य लोके
धिग् भो ! विधेर्यदि बलं पुरुषोत्तमेषु ॥ २२ ॥

वत्स ! कैकेयीमातः !

यत्सत्यं परितोषितोऽस्मि भवता निष्कल्मषात्मा भवां-
स्त्वद्वाक्यस्य वशानुगोऽस्मि भवतः ख्यातैर्गुणैर्निर्जितः।
किन्त्वेतन्नृपतेर्वचस्तदनृतं कर्तुं न युक्तं त्वया

तं चिन्तयामीति— सुरलोकयातं स्वर्गगतं तं नरपतिं तातमहाराजं चिन्तयामि, भरतनिष्ठगुणावलीसाक्षात्कारवेलायामस्यां स्मरामि येन अयं विश्वविलक्षणः आत्मजविशिष्टगुणः आत्मजेषु चतुर्ष्वपि स्वतनयेषु मध्ये विशिष्टगुणः सर्वाधिकगुणपूर्णः न दृष्टः तत्त्वेन साक्षात्कर्तुं न शक्तः, इदमीयगुणविकासावसरे तन्निधनादियमीदृशी भणितिः। ईदृग्विधम् एतादृशं गुणमयं पुत्रं समवाप्य लब्ध्वा लोके पुरुषोत्तमेषु मानुषश्रेष्ठेषु तातपादसदृशेषु यदि विधेर्भाग्यस्य बलं प्रभुत्वं तर्हि धिग् भोः। एतादृशविशिष्टपुत्रलाभेन धन्यस्यापि तातस्य तदीयगुणसाक्षात्कारणपरिपन्थिदैवपारवश्यमतीवानुचितमिति भावः ॥ २२ ॥

यत्सत्यमिति—भवता यत्सत्यं वस्तुतः परितोषितः स्नेहमयेन सरलेन च व्यवहारेण सन्तुष्टान्तरङ्गः कृतोऽस्मि। भवान् निष्कल्मषात्मा निष्पापबुद्धिः। भवतः ख्यातैः लोकेऽसाधारणतया प्रसिद्धिमाग्भिः गुणैः सौजन्यसारल्यादिभिः निर्जितः पराजितः स्वायत्तीकृतः। (अहम्) त्वद्वाक्यस्य त्वदीयवचनस्य वशानुगः वश्योऽस्मि, भवदुक्तमलङ्घनीयं मन्ये इत्यर्थः। नन्वेवमनुष्ठीयतां मद्वचनमित्यत्राह—किन्त्व-

---

मैं सुरधामको प्रस्थित पिताजीको सोचता हूँ, जो अपने इन अनुपम गुणोंकी निधि इस पुत्ररत्नको नहीं देख सके। ऐसे गुणागार पुत्रको पाकर भी पिताजी कालकवलित हो ही गये, हत दैवको धिक्कार ॥ २२ ॥

वत्स कैकेयीनन्दन,

तुमने मुझे सचमुच बहुत प्रसन्न किया, तुम्हारी अन्तरात्मा अत्यन्त निर्मल है तुम्हारे वचनोंने मुझे वशमें कर लिया है, तुम्हारे जगद्विदित गुणोंने मुझे जीत लिया है। परन्तु महाराजकी यह आज्ञा है कि भरतको राजगद्दी मिले, उसे असत्य करना उचित नहीं। तुम्हीं बताओ तुम्हारे ऐसे धर्मधुरंधर पुत्रको पैदा करके तुम्हारे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

किञ्चोरपाद्य भवद्विधं भवतु ते मिथ्याभिधायी पिता ॥२३॥

भरतः—यावद् भविष्यति भवन्नियमावसानं
तावद् भवेयमिह ते नृप ! पादमूले ।

रामः—मैवं, नृपः स्वसुकृतैरनुयातु सिद्धिं
मे शापितो, न परिरक्षसि चेत् स्वराज्यम् ॥ २४ ॥

भरतः—हन्त अनुत्तरमभिहितम् । भवतु समयतस्ते राज्यं परि-

त्यादि । किन्तु एतत् राज्ये भरतोऽभिषेक्तव्य इतीदं नृपतेर्वचो वचनम् अस्तीति शेषः । तत् त्वया अमृतं मिथ्याभूतं (मां निर्बन्धेन राज्येऽभिषिच्य तदुक्तिरसत्या मा कारि कर्त्तुं न युक्तम् । पितुर्वचनस्य त्वादृशेन सुपुत्रेण सर्वदा पालनीयत्वेन आशंस्यमानत्वाद् इत्याशयः । किञ्च भवद्विधं पुत्रमुत्पाद्यापि ते पिता मिथ्याऽभिधायी असत्याभिधानदोषपांसुलो भवतु नैतदुपपद्यत इति भावः । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम्॥२३॥

यावदिति—यावत् यावन्तं कालं व्याप्य भवतो नियमस्य वनवासव्रतस्य अवसानं समाप्तिर्भविष्यति तावत् इह वने नृप, राजन् ते पादमूले त्वदाश्रितो भवेयं वर्तेयेति । यावद् भवान् स्ववनवासावधि व्यतियापयति तावदिह भवन्तं शुश्रूषमाणस्तिष्ठेयमिति भरतस्यानुरोधः ।

पद्यस्य उत्तरार्द्धभागं रामोक्तमाह—**मैवमिति**—मैवम् एवं मा वादीरित्यर्थः नृपः तातपादः स्वसुकृतैः स्वसत्यवादित्वादिजनितपुण्यैः सिद्धिं फलोदयम् अनुयातु लभताम् । 'त्वत्कर्त्तृकराज्यास्वीकरणे तु तातस्य मिथ्यावादित्वमिदं प्रथमतयोद्भूतं सिद्धेश्च्यावयेदतोऽलं तथाभिधायेत्याशयः (एवमपि) स्वराज्यं निजं राजकर्त्तव्यं न परिरक्षसि चेत् मे मम शापितः अभिशप्तः असि भविष्यसि । वर्त्तमानसामीप्ये लट् अहं त्वां शापेन विपादयिष्यामीति रामाभिप्रायः ॥ वसन्ततिलकं वृत्तम् । तल्लक्षणं पूर्वमुक्तम् ॥ २४ ॥

अनुत्तरम् अविद्यमानप्रतिवचनम्, पितुः सत्यवचनतापालनाय त्वया राज्यमङ्गी-

---

पिता मिथ्यावादी बनें ? ॥ २३ ॥

भरत—तब तक मैं आपकी चरण-शुश्रूषा में रहूँ, जब तक आपके वनवास नियमका अवसान हो ।

राम—ऐसा हठ मत करो, पिताजी अपने किये पुण्योंसे निरवच्छिन्न स्वर्ग भोगें तुम्हें मेरी शपथ, यदि तुम अपना राज्य न सँभालो ॥ २४ ॥

भरत—हाय आपने मुझे अनुत्तर कर दिया । अच्छा, एक शर्तपर आपका राज्य

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पालयामि ।

रामः—वत्स ! कः समयः ?

भरतः—मम हस्ते निक्षिप्तं तव राज्यं चतुर्दशवर्षान्ते प्रतिगृहीतुमिच्छामि।

रामः—एवमस्तु ।

भरतः—आर्य ! श्रुतम् । आर्ये ! श्रुतम् । तात ! श्रुतम् ।

सर्वे—वयमपि श्रोतारः ।

भरतः—आर्य ! अन्यमपि वरं हर्तुमिच्छामि ।

रामः—वत्स किमिच्छसि ! किमहं ददामि ? किमहमनुष्ठास्यामि ?

करणीयमन्यथा शापं प्रदास्यामीत्येवं रूपम् । समयतः किमपि निश्चित्य संविदमनुसृत्येत्यर्थः—'समयाः शपथाचारकालसिद्धान्तसंविदः' इत्यमरः, न तु निरवधिकालस्य कृते राजा भविष्यामीति भावः ।

कः समयः, तवेष्ट इति शेषः, एतेन त्वयोच्यमानमेव समयमङ्गीकरोमीति कथनेन रामस्य प्रेमपारवश्यं सूचितम् ।

निक्षिप्तं न्यासीकृतम् । चतुर्दशवर्षान्ते चतुर्दशानां वर्षाणां वनवासयापनीयानाम् अन्तेऽवसाने । प्रतिग्रहीतुं स्वीकर्तुम् (त्वयेति योजनीयम्) अथवा प्रतिग्रहीतुं प्रतिग्राहयितुम् । अन्तर्गावितण्यर्थोऽत्र ग्रहिः ।

आर्य ! श्रुतमिति—रामकृतसमयाङ्गीकारस्यान्यथाभावमुद्भाव्य सीतालक्ष्मणसुमन्त्रान् साक्षिणः प्रत्यवस्थापयितुमित्थमुच्यते ।

किमहमिति—किं प्रदाय किमनुष्ठाय वा तोषयेयमिति प्रश्नेन त्वत्कृते मम किमप्यदेयमननुष्ठेयं वा नास्ति तदर्हसि यथारुचि प्रार्थयितुमिति प्रघट्टकार्थः ।

संभालूँगा ।

राम—कौन-सी शर्त्त ?

भरत—(शर्त्त यही कि) चौदह वर्षोंके बाद अपना राज्य वापस लें, और तब तक मैं धरोहरकी तरह आपके राज्यका रक्षक बनूँ ।

राम—एवमस्तु ।

भरत—आर्य, सुना आपने ? आर्ये, आपने सुना ? तात, सुना आपने ?

सभी—हम सभी श्रोता साक्षी रहेंगे ।

भरत—एक वरदान और चाहता हूँ ।

राम—वत्स, क्या चाहते हो ? क्या दूँ, क्या करने को कहते हो ?

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

भरतः—पादोपभुक्ते तव पादुके म एते प्रयच्छ प्रणताय मूर्ध्ना।
यावद्भवानेष्यति कार्यसिद्धिं तावद्भविष्याम्यनयोर्विधेयः ॥२५॥

रामः—(स्वगतम्) हन्त भोः !

सुचिरेणापि कालेन यशः किञ्चिन्मयार्जितम्।
अचिरेणैव कालेन भरतेनाद्य सञ्चितम् ॥ २६ ॥

सीता—आर्यपुत्र ! ननु दीयते खलु प्रथमयाचनं भरताय।

अय्यउत्त ! णं दीयदि खु पुडमजाअणं भरदस्स।

पादोपभुक्ते इति—मूर्ध्ना शिरसा प्रणताय प्रणमते मे मह्यम् एते पादोपभुक्ते चरणाभ्यां व्यवहृते पादुके काष्ठनिर्मिते पादत्राणे प्रयच्छ वितर। किमर्थं पादुकायाचनमिदमित्याह—यावदिति। यावत् यदवधि भवान् कार्यसिद्धिम् एष्यति स्वकार्यमवसाप्यागमिष्यति तावत् तावत्कालपर्यन्तमनयोः पादुकयोर्विधेय आज्ञाकारी भविष्यामि तदनन्तरं तुभ्यं राज्यं प्रत्यर्पयिष्यामीति भावः, तथा च रामायणे—'चतुर्दश हि वर्षाणि जटाचीरधरो ह्यहम्। फलमूलाशनो वीर भवेयं रघुनन्दन। तव पादुकयोर्न्यस्य राज्यतन्त्रं परन्तपः ॥'

इन्द्रवज्रावृत्तम्, तल्लक्षणं यथा—'स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः' ॥ २५ ॥

सुचिरेणेति—सुचिरेण कालेन अपि मया किञ्चिदत्यल्पं यशः (पित्राज्ञापालनपरायणत्वरूपम्) कीर्तिः अर्जितम्। भरतेनाद्य मामित्थमात्मवशीकुर्वता अचिरेण कालेन अतिशीघ्रतया अर्जितम्। यादृशस्य पितृभक्तत्वरूपस्य यशसोऽर्जनाय मया चिरकालं परिश्रान्तम्, अद्य तादृशमेव ततोऽपि वोत्कृष्टं भ्रातृभक्तत्वात्मकं यशो भरतेन अचिरेणैव कालेन अर्जितमित्यहो भरतस्य महापुरुषत्वमिति भावः ॥२६॥

प्रथमयाचनं प्राथम्येन याच्यमानं पादुकारूपं वस्तु। अत्र भवदीयपादुकयोः आवर्जयितु निक्षेप्तुम्।

भरत—आपके चरणोंमें लगी ये चरण-पादुकाएँ मुझ नत किङ्करको दीजिये, मैं तब तक उन्हीं पादुकाओंका वशवर्ती रहूँगा जब तक आप अपना कार्य सिद्ध करके जायेंगे ॥ २५ ॥

राम—(स्वगत) अहा !

मैंने बहुत दिनोंमें जितना यश सञ्चित किया था, भरतने उतना यश आनन फानन उपार्जित कर लिया ॥ २६ ॥

सीता—आर्यपुत्र, आप भरतको पहिली बार माँगी गई चीज देते हैं ?

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitized by eGangotri

रामः—तथास्तु। वत्स! गृह्यताम्।

भरतः—अनुगृहीतोऽस्मि। (गृहीत्वा) आर्य! अत्राभिषेकोदकमावर्जयितुमिच्छामि।

रामः—तात! यदिष्टं भरतस्य तत् सर्वं क्रियताम्।

सुमन्त्रः—यदाज्ञापयत्यायुष्मान्।

भरतः—(आत्मगतम्) हन्त भोः!

श्रद्धेयः स्वजनस्य पौररुचितो लोकस्य दृष्टिक्षमः
स्वर्गस्थस्य नराधिपस्य दयितः शीलान्वितोऽहं सुतः।
भ्रातॄणां गुणशालिनां बहुमतः कीर्त्तेर्महद् भाजनं
संवादेषु कथाश्रयो गुणवतां लब्धप्रियाणां प्रियः॥ २७॥

हन्त अत्र प्रसादे हन्तशब्दः, स च रामानुग्रहसिद्धया कृतकृत्यतया भरतस्य बोध्यः, तदेव विवृणोति श्लोकेनाग्रिमेण।

श्रद्धेय इति—अहं (सम्प्रति) स्वजनस्य निजबन्धुजनस्य श्रद्धेयः विश्वासभाजनम्, जात इति शेषः। एवमग्रेऽपि सर्वत्र जात इत्यूहनीयम्। पौररुचितः पौराणां नागराणां रुचित इष्टः। लोकस्य दृष्टौ दर्शने क्षमः, रामेणानुगृहीतस्य ममेदानीं बन्धुजनविश्वासपात्रता पौरप्रीतिभाजना लोकलोचनसाक्षात्कारयोग्यता चाभूदित्यर्थः। स्वर्गस्थस्य दिवंगतस्य नराधिपस्य राज्ञः शीलान्वितः सद्वृत्तः दयितः प्रियः सुतश्च पुत्रोऽहं सञ्जातः। रामाज्ञया तदादेशानुवर्त्तनात्तत् प्रियत्वादिकस्यापि रामानुग्रहलभ्यत्वमुक्तम्। गुणशालिनां भ्रातॄणां बहुमतः बहुमानविषयः। कीर्त्तेः महत् प्रकृष्टं भाजनं जातोऽस्मीति सर्वत्र योज्यम्। गुणवतां संवादेषु परस्परालापेषु कथाश्रयः

राम—तथास्तु, वत्स! लो।

भरत—बड़ी कृपा, (पादुकाएँ लेकर) आर्य, इसपर अभिषेक जल प्रक्षेप करना चाहता हूँ।

राम—तात, भरत जो-जो चाहें, सब किया जाय।

सुमन्त्र—आयुष्मान् की जो आज्ञा।

भरत—अहा!

अब मैं सगे-सम्बन्धियोंका श्रद्धापात्र, नगरवासियोंका प्रेमभाजन, संसारकी ओर आँख उठाकर देखने योग्य, स्वर्गीय महाराजका सुचरित पुत्र, भाई लोगोंका प्यारा, कीर्त्तिका भाजन, गुणवानोंके परस्पर वार्त्तालापमें चर्चाका विषय तथा पूर्णमनोरथ जनोंका स्नेही हुआ हूँ॥ २७॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रामः—वत्स ! कैकेयीमातः ! राज्यं नाम मुहूर्तमपि नोपेक्षणीयम् ।
तस्मादद्यैव विजयाय प्रतिनिवर्ततां कुमारः ।

सीता—हम् , अद्यैव गमिष्यति कुमारो भरतः ।
हं, अज्ज एव्व गमिस्सदि कुमारो भरदो ।

रामः—अलमतिस्नेहेन । अद्यैव विजयाय प्रतिनिवर्ततां कुमारः ।

भरतः—आर्य ! अद्यैवाहं गमिष्यामि ।

आशावन्तः पुरे पौराः स्थास्यन्ति त्वद्दिदृक्षया ।
तेषां प्रीतिं करिष्यामि त्वत्प्रसादस्य दर्शनात् ॥ २८ ॥

प्रस्ताविषयः लब्धप्रियाणाम् अधिगतकामानां प्रियः पूर्णकामतया तत्साजात्यात्तत्प्रीतिपात्रमित्यर्थः । एतत्सर्वं रामकृपाया एव फलमन्यथा तु जनाः कैकेयीकृतापराधसम्बन्धेन मामतिजघन्य जानीयुरिति भावः । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ २७ ॥

विजयाय—राज्यकार्यनिर्वहणाय ।

आशावन्त इति—पौराः पुरवासिनः पुरे नगरे (शेषाः) त्वद्दिदृक्षया त्वदवलोकनोत्कण्ठया आशावन्तः त्वद्दर्शनविषयकाशाशालिनः स्थास्यन्ति भविष्यन्ति । 'भरतो राममनुरुध्य प्रसाद्य चायोध्यामानेष्यती'ति विश्वासेन त्वद्दर्शनेन चक्षुःसाफल्यसम्भावनापरायणाः पौराः स्थास्यन्तीत्यर्थः । तेषां त्वां दिदृक्षमाणानां पौराणां प्रीतिं प्रसन्नताम्, त्वत्प्रसादस्य त्वया दीयमानस्य पादुकारूपस्य वरस्य दर्शनात् पादुकादर्शयित्वेत्यर्थः, करिष्यामि । त्वां दर्शयितुमशक्तो भरतस्त्वत्पादुकादर्शनेनापि बलवदुत्कण्ठितपुरवासिजनपरितोषाय कियतांशेन कल्पिष्यत इत्यर्थः, एतेनात्र स्थित्या स्वापरितोषः, अयोध्यापरावृत्त्या च पुरजनपरितोष इति द्वयोरनयोः साध्ययोर्मध्ये चरम एव समादरः, प्रकृत्यनुरञ्जनस्य भवदादेशावयवत्वादित्याशयः ॥ २८ ॥

राम—वत्स कैकेयीनन्दन, राज्यकी ओरसे थोड़ी देरके लिए भी असावधानता नहीं करनी चाहिये । इसलिए तुमको आज ही जाना है ।

सीता—क्या भरतकुमार आज ही लौटेंगे ?

राम—अधिक स्नेह मत प्रदर्शित करो, कुमारको राज्यकी हिफाजतके लिए आज ही लौटना है ।

भरत—आर्य, मैं आज ही जाऊँगा ।

नगरनिवासी आशा लगाए आपके दर्शनों के लिए अधीर हो राह देखते होंगे, मैं जाकर आपकी चरणपादुका उन्हें दिखाऊँगा, जिससे प्रसन्नता मिलेगी ॥२८॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सुमन्त्रः—आयुष्मन् ! मयेदानीं किं कर्तव्यम् ?

रामः—तात ! महाराजवत् परिपाल्यतां कुमारः ।

सुमन्त्रः—यदि जीवामि, तावत् प्रयतिष्ये ।

रामः—वत्स ! कैकेयीमातः ! आरुह्यतां ममाग्रतो रथः ।

भरतः—यदाज्ञापयत्यार्यः ।

(रथमारोहतः)

रामः—मैथिलि ? इतस्तावत् । वत्स ! लक्ष्मण ! इतस्तावत् । आश्रमपदद्वारमात्रमपि भरतस्यानुयात्रं भविष्यामः ।

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे)

चतुर्थोऽङ्कः ।

अनुयात्रं भविष्यामः । अनुगमिष्यामः । एतेनादरो व्यञ्जितः दूरं तु नानुगमिष्यामः 'यमिच्छेत् पुनरायातं न तं दूरमनुव्रजेदि'ति व्यवहारस्मरणादिति भावः ।

इति मैथिलपण्डितश्रीरामचन्द्रमिश्रकृते 'प्रतिमानाटक'—प्रकाशे चतुर्थाङ्कः ॥ ४ ॥

सुमन्त्र—आयुष्मन्, अब मुझे क्या करना है ।

राम—तात, महाराजकी जगह आप भरतके साथ रहें ।

सुमन्त्र—यदि जीता रहा, तो कोशिश करूँगा ।

राम—वत्स कैकेयीनन्दन, मेरे सामने रथ पर चढ़ो ।

भरत—जो आज्ञा ।

(दोनों रथ में बैठते हैं)

राम—मैथिलि, लक्ष्मण, इधर आओ चलो, आश्रमके द्वारतक भरतका अनुगमन करें ।

(सभी जाते हैं)

चौथा अङ्क समाप्त

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अथ पञ्चमोऽङ्कः

(ततः प्रविशति सीता तापसी च)

सीता—आर्य ! उपहारसुमनआकीर्णः सम्मार्जित आश्रमः। आश्रम-
अय्ये ! उवहारसुमणाइण्णो सम्मज्जिदो अस्समो। अस्सम-
पदविभवेनानुष्ठितो देवसमुदाचारः। तद् यावदार्यपुत्रो नाग-
पदविभवेण अणुट्ठिओ देवसमुदाआरो। ता जाव अय्यउत्तो ण आअ-
च्छति, तावदिमान् बालवृक्षानुदकप्रदानेनानुक्रोशयिष्यामि।
च्छदि, दाव इमाणं बालरुक्खाणं उदअप्पदाणेण अणुक्कोसइस्सं।

तापसी—अविघ्नमस्य भवतु।
अविग्घं से होदु।

(ततः प्रविशति रामः)

रामः—(सशोकम्)
त्यक्त्वा तां गुरुणा मया च रहितां रम्यामयोध्यां पुरी-

उपहारसुमनआकीर्णः देवनिर्माल्यपुष्पाकीर्णः। सम्मार्जितः पुष्पाद्यपनयेन संशोध्य स्फीततां गमितः। आश्रमपदविभवेन आसमन्तात् श्राम्यन्ति तपसा कार्यं क्लेशयन्ति यत्र स आश्रमः, तदेव पदं स्थानम्, तत्र सुलभेन पुष्पफलाद्युपकरण-सम्पदेति भावः, देवसमुदाचारः देवार्चनादिराचारः। उदकप्रदानेन जलसेचनेन। अनुक्रोशयिष्यामि अनुग्रहीष्यामि।

प्रविघ्नं विघ्नाभाव. अव्ययीभावसमासः।

त्यक्त्वेति—गुरुणा तातपादेन मया च रहितां शून्यीकृतां रम्यां सर्वमनो-हरामयोध्यां नाम निजां पुरीं नगरीं त्यक्त्वा अखिलं सम्पूर्णमपि मम वनवासिनो

(सीता और तापसी का प्रवेश)

सीता—आर्ये, निर्माल्यपुष्पसे आकीर्ण आश्रम झाड़-बुहार दिया है, आश्रम-सुलभ फल-फूल आदि उपकरणोंसे देवपूजन कर लिया है, इस समय इन छोटे-छोटे पौधोंको ही सींचती हूँ, जब तक आर्यपुत्र नहीं आते।

तापसी—तुम्हारा कार्य निर्विघ्न हो।

(रामका प्रवेश)

राम—(शोकके साथ)
पूज्य पिताजी और मुझसे रहित उस सुन्दर अयोध्या-नगरीको छोड़कर मेरे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मुद्यस्यापि ममाभिषेकमखिलं मत्सन्निधावागतः।
रक्षार्थं भरतः पुनर्गुणनिधिस्तत्रैव सम्प्रेषितः
कष्टं भो? नृपतेर्धुरं सुमहतीमेकः समुत्कर्षति ॥ १ ॥

(विमृश्य) इदृशमेवैतत्। यावदिदानीमीदृशशोकविनोदनार्थमवस्थाकुटुम्बिनीं मैथिलीं पश्यामि। तत् क नु खलु गता वैदेही? (परिक्रम्यावलोक्य) अये इमानि खलु प्रत्यग्राभिषिक्तानि वृक्षमूलानि अदूरगतां मैथिलीं सूचयन्ति। तथाहि—

रामस्य अभिषेकं राजसंस्कारविधिम् उद्यम्य मदभिषेकप्रयासं संपाद्य (मामभिषेक्तुम्) मत्सन्निधौ मम समीपे इव वने आगतः सम्प्राप्तः, (सः) गुणानां राज्यस्पृहावैधुर्यभ्रातृवात्सल्यनिष्कपटत्वादीनां निधिः आकरः भरतः तत्रैव शून्यायामयोध्यायामेव संप्रेषितः यथागतं प्रत्यावर्त्तितः सन्, एकः सहायान्तररहितः सुमहतीं नानाविधकार्येष्ववधानदानस्यावश्यकताऽतिशयगुर्वीम्, नृपतेर्धुरं राज्यभारम्, समुत्कर्षति समुद्वहति इति कष्टं भोः! अतिशयखेदावहम्। अयमर्थः—तातपादेषु दिवङ्गतेषु अस्मासु च वनवासिषु संवृत्तेषु रिक्तामयोध्यां परित्यज्य मदभिषेकार्थमखिलमप्युपकरणमुपादाय वनभागतो भरतः पुनर्मया परावर्तितो मदादेशमनुसृत्य राज्यभारं केवलो बिभर्त्ति, न तस्य कामपि सहायतामहमाचरामीति। खिद्येऽहमिति। 'एकोऽन्यार्थे प्रधाने च प्रथमे केवले तथा। साधारणे समानेऽल्पे संख्यायां च प्रयुज्यते॥' इति शार्दूलविक्रीडितम् ॥ १ ॥

ईदृशं कष्टमयम्, एतत् राज्यकार्यम्, तथा चोक्तम्—'नातिश्रमापनयनाय यथा श्रमाय, राज्यं स्वहस्तधृतदण्डमिवातपत्रम्॥' इति। अवस्थाकुटुम्बिनीं सर्वावस्थासहायाम्, प्रत्यग्राभिषिक्तानि अचिरसिक्तानि अदूरगतां समीपावस्थितवृक्षान्तरसेचनसमासक्ताम्। सीतायाः समीपावस्थितत्वं तु दृश्यमानवृक्षाणामचिरसिक्तत्वबुद्धिबोधितम्, तदचिरसिक्तत्वं प्रमापयितुमग्रे पद्यमुपन्यस्यति।

राज्याभिषेकके सारे उपकरण लेकर कुमार भरत मेरे पास आये। मैंने उन्हें साम्राज्यरक्षाके लिए फिर वहीं वापस भेज दिया। आजकल महाराजके गुरुतर भारको वह अकेले ही उठाये हुए हैं ॥ १ ॥

(कुछ सोचकर) यह राज्यकार्य ऐसा ही होता है। अच्छा अब इस प्रकारके अवसादको भुलानेके लिए अपनी सर्वावस्थासहचरी सीतासे मिलूँ। सीता कहाँ गई? (घूमकर और देखकर) यह तत्काल सींचे गये वृक्षगण बता रहे हैं कि अभी-अभी वैदेही कहीं गई है। क्योंकि—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भ्रमति सलिलं वृक्षावर्ते सफेनमवस्थितं
तृषितपतिता नैते क्लिष्टं पिबन्ति जलं खगाः।
स्थलमभिपतत्यार्द्राः कीटा विले जलपूरिते
नववलयिनो वृक्षा मूले जलक्षयरेखया ॥ २ ॥

(विलोक्य) अये इयं वैदेही। भोः! कष्टम्।

योऽस्याः करः साम्यति दर्पणेऽपि स नैति खेदं कलशं वहन्त्याः।

भ्रमतीति—सलिलं (सीतया वृक्षमूलेषु दुरादाहृत्य दीयमानम्) जलम् वृक्षावर्त्ते वृक्षाधोदेशनिर्मितालवाले सफेनं फेनिलदशामनतिक्रान्तम् अवस्थितम् भूम्यन्तरप्रविष्टम् भ्रमति। वृक्षालवालेषु दीयमानं जलं फेनिलं जायते कालेन धरया च शोष्यते, तदत्र फेनिलत्वं धरयाऽशोषितत्वं च जलस्य वृक्षाणामचिरसिक्तभावं बोधयति। तृषिताः पिपासवः अत एव पतिताः जलमालोक्य पादपतलमवतीर्णा एते खगाः पक्षिणः क्लिष्टं नवनिक्षेपकृतकालुष्योपहतं न पिबन्ति। तन्निर्मलतां कालसाध्यां प्रतीक्षन्ते इत्यर्थः। बिले गर्त्ते जलपूरिते आर्द्राः जलक्लिन्नाः कीटाः स्थलम् अभिपतन्ति जलप्लावनमसहमानाः धरांशमन्यमुपसर्पन्तीति भावः। अत्रापि अभिपतन्तीति लटा कीटानां निर्गमस्य जायमानत्वेन जलक्षेपस्याचिरनिर्वृत्तत्वं व्यञ्जितम्। वृक्षाः मूले मूलावच्छेदेन जलक्षयरेखया जलह्रासजनितया जलमिलितपङ्कप्रसूतया रेखया नववलयिनः वलयायितनूतनरेखाशालिनः, सन्तीति शेषः। अत्रापि वलयस्य नवीनत्वमचिरसंजातत्वं तच्चानुपदमेवोत्पन्नस्य जलह्रासस्य सूचकम्, तेन च सेकस्यातिशीघ्रकृतत्वं प्रतीयते। प्रकृतिवर्णनात् स्वभावोक्तिः हरिणीवृत्तम्; तल्लक्षणं यथा—'हरिणी न्सौम्रौस्लौगृतुसमुद्रऋषयः' ॥ २ ॥

योऽस्या इति—यः अस्याः सीतायाः करो बाहुः दर्पणे मुखप्रधानतावसरधारणीयदर्पणे अपि श्राम्यति आयासमनुभवति, सः कलशं (जलपूर्णम् अतएव गुरुतरं) घटं (अधुना वने) वहन्त्याः सीतायाः करः खेदं व्यथाम्, आयासविशे-

---

वृक्षोंमें आलवाल फेनिल जलसे पूर्ण हैं और प्याससे समीपगत होकर भी यह चहकता हुआ खगकुल जल नहीं पी रहा है क्योंकि पानी अभी साफ नहीं हो पाया है, दरारोंमें रहनेवाले कीड़े दरारोंके जलपूर्ण हो जानेके कारण बाहर भागे जा रहे हैं, और पेड़ोंकी जड़में चारों ओर नई बलयाकार रेखा बनी हुई है ॥२॥

(देखकर), अरे, यही तो सीता है, अहा!

इसके जो हाथ दर्पण उठाने के श्रमसे भी थक जाता था, वही हाथ अब घड़ोंके

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कष्टं वनं स्त्रीजनसौकुमार्यं समं लताभिः कठिनीकरोति ॥ ३ ॥

(उपेत्य) मैथिलि ! अपि तपो वर्धते ?

सीता—हम् आयपुत्रः । जयत्वार्यपुत्रः ।

हं अय्यउत्तो ! जेदु अय्यउत्तो ।

रामः—मैथिलि ! यदि ते नास्ति धर्मविघ्नः, आस्यताम् ।

सीता—यदार्यपुत्र आज्ञापयति । (उपविशति)

जं अय्यउत्तो आणवेदि ।

रामः—मैथिलि ! प्रतिवचनार्थिनीमिव त्वां पश्यामि किमिदम् ?

षम् न एति नानुभवति ? कष्टं खेदावहोऽयं विषयः (यत्) लताभिः समं स्त्रीजनसौकुमार्यं लतामार्दवोपमेयं ललनाजनमार्दवं वनम् (कर्तृ) कठिनीकरोति सर्वविधायाससहनशीलं विदधातीत्यर्थः । एष वनवासस्यैव महिमा यदियं मृणालकोमलकाययष्टिः स्वेन करेण दर्पणमपि धारयितुमपारयन्ती पूर्वमिदानीं स्वयं जलपूर्णं कलशमादाय वृक्षान् सिञ्चति इति उपजातिर्वृत्तम्, तल्लक्षणमाहुर्यथा—'स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः । उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ । अनन्तरोदीरितलक्ष्मभाजौ पादौ यदीयावुपजातयस्ताः' इति ॥ ३ ॥

तपः वृक्षमूले जलप्रदानलक्षणं शरीरपरिश्रमसाध्यं पुण्यकर्म । अपि वर्धते ? अपि निर्विघ्नं सम्पद्यते अपिशब्दोऽयं प्रश्नार्थोऽपि, तथा च कालिदासः—'जलान्यपि स्नानविधिक्षमाणि ते ? अपि स्वशक्त्या तपसि प्रवर्त्तते ? अपि प्रसन्नं हरिणेषु ते मनः ? इत्यादि ।

धर्मविघ्नः क्षनुष्ठानावसरातिपातः । वृक्षसेचनमवसितं चेदित्यर्थः ।

प्रतिवचनार्थिनीं किमपि पिपृच्छिषन्तीम् । पश्यामि ओष्ठस्फुरणादिमुखचेष्टाभिर्लक्षयामि ।

उठानेमें भी नहीं थक रहा है। वननिवास लताओंके साथ स्त्रियोंकी भी सुकुमारताको कठोरतामें परिणत कर देता है ॥ ३ ॥

(समीप आकर) मैथिली, तपस्या तो चल रही है ?

सीता—जय हो आर्यपुत्र की ।

राम—यदि तुमको किसी प्रकार का धर्मविघ्न न हो तो बैठो ।

सीता—जो आज्ञा । (बैठती है)

राम—सीते, मालूम होता है तुम कुछ पूछना चाहती हो । क्या बात है ?

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

सीता—शोकशून्यहृदयस्येवार्यपुत्रस्य मुखरागः किमेतत् ?
सोअसुण्णहिअअस्स विअ अय्यउत्तस्स मुहराओ । किं एदं ?

रामः—मैथिलि ! स्थाने खलु कृता चिन्ता ।

कृतान्तशल्याभिहते शरीरे तथैव तावद्धृदयव्रणो मे ।
नानाफलाः शोकशराभिघातास्तत्रैव तत्रैव पुनः पतन्ति ॥४॥

सीता—आर्यपुत्रस्य क इव सन्तापः ?
अय्यउत्तस्स को विअ सन्दावो ?

राम—श्वस्तत्रभवतस्तातस्यानुसंवत्सरश्राद्धविधिः । कल्पविशेषेण निर्वपनक्रियामिच्छन्ति पितरः । तत् कथं निर्वर्तयिष्यामीत्येतच्चिन्त्यते । अथवा—

शोकशून्यहृदयस्य शोकेन निमित्तभूतेन शून्यं निर्विषयं तदेकायत्तं हृदयं यस्य तस्य । मुखरागः मुखवर्णः औदास्यविवर्णतेत्यर्थः ।

स्थाने उचितेऽवश्यसमाधेये विषये चिन्ता कथमिदं निर्वहेयमिति भावना । एतेन चिन्ताविषयस्यावश्यसमाधेयत्वप्रतिपादनेन चिन्तामहत्त्वमुपचीयते ।

कृतान्तेति—कृतान्तशल्याभिमते शल्यवद्व्यथकेन कालेन अभिहते आहते मे शरीरे (पितृवियोगखेदक्लिष्टे) हृदयव्रणः पितृवियोगशोकलक्षणो मानसिकः खेदस्तथैव तावत् यथापूर्वावस्थ एव न विरूढो न वा विरोहदवस्थः, किन्तु नव एवेत्यर्थः । तत्रैव हृदयव्रणे नानाफलाः अनेकप्रयोजनाः (बहुप्रकारकप्रयोजनाभिसन्धिनिमित्ताः) शोकशराभिघाताः पुनः पतन्ति । तत्रैवेति द्विरुक्तिर्मर्मप्रहारस्य नितान्तव्यथकत्वप्रतीतये । अयमर्थः=पितृविरहदुःखशल्यमनुत्खातमेव यावत्तावन्नानाविधप्रयोजनोपनिपातचिन्ता मम मानसं व्यथयितुमुपतिष्ठन्त इति । उपजातिश्छन्दः॥४॥

श्वः आगामिनि दिने । अनुसंवत्सरश्राद्धविधिः वार्षिकं श्राद्धम् । कल्पविशेषेण सामर्थ्यानुसारेण । निर्वपनक्रियां पिण्डदानविधिम्, इच्छन्ति कामयन्ते । तथा च

सीता—आपके चेहरेपर शोकका चिह्न देखता हूँ । क्या बात है ।

राम—चिन्ता करनेकी बात तो है ही ।

दुर्दैव के बाणप्रहारोंसे व्यथित मेरे हृदयका घाव तो अभी भरा नहीं है, और फिर नानामुख शोकशल्योंसे दैवने उसी पर प्रहार करना आरम्भ कर दिया है॥४॥

सीता—आर्यपुत्रको किस बातकी चिन्ता है ?

राम—कल पिताजीका वार्षिक श्राद्धदिवस है, पितरोंको सामर्थ्यानुसार श्राद्ध

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गच्छन्ति तुष्टिं खलु येन केन त एव जानन्ति हि तां दशां मे।
इच्छामि पूजां च तथापि कर्तुं तातस्य रामस्य च सानुरूपाम् ॥५॥

सीता--आर्यपुत्र ! निर्वर्तयिष्यति श्राद्धं भरत ऋद्ध्या, अवस्थानुरूपं
अय्यउत्त ! णिव्वत्तइस्सदि सद्धं भरदो रिद्धीए, अवत्थाणुरूवं
फलोदकेनाप्यार्यपुत्रः। एतत् तातस्य बहुमततरं भविष्यति।
फलोदएण वि अय्यउत्तो। एदं तादस्स बहुमदअरं भविस्सदि।

रामः—मैथिलि !
फलानि दृष्ट्वा दर्भेषु स्वहस्तरचितानि नः।

स्मरन्ति—'जीवतो वाक्यकरणात् क्षयाहे भूरिभोजनात्। गयायां पिण्डदानाच्च त्रिभिः पुत्रस्य पुत्रता ॥' इति।

गच्छन्तीति। येन केन येन केनापि प्रकारेण (पुत्रदशानुसारिणा विधिना) पितरस्तुष्टिं तृप्तिं यान्ति लभन्ते खलु। हि यतः त एव पितर एव मे मम तां वर्त्तमान-वनवासकालिकीं दशां जानन्ति। एवञ्च स्वसामर्थ्यमनुसृत्य वार्षिकं सम्पादयतो मम व्यवहारेण पितरो मयि न खिद्येरन्निति भावः। नन्वेवं विज्ञायापि चिन्त्यत इत्य-नुचितमित्यत आह—इच्छामीति। तथापि स्वसामर्थ्यानुश्राद्धविधेः पितृतृप्तिसाधन-ताप्रत्यये सत्यपि तातस्य पितुः रामस्य स्वस्य च सानुरूपां योग्याम्, पूजां श्राद्ध-क्रियां कर्तुं विधातुमिच्छामि। दिगन्तविख्यातप्रभावस्य पितुः प्रथितस्य स्वस्य चानु-रूपं श्राद्धं विधातुमेव मम चिन्ता न पितृपरितोषविषयेति भावः। अत्र सानुरूपाम् इत्यस्य स्थाने 'अनुरूपाम्' इतीयतैव निर्वाहे 'स' इति व्यर्थम्। वंशस्थं वृत्तम् ॥५॥

ऋद्ध्या समृद्धिसम्पाद्यैः महार्घ्यैः पदार्थैः, फलोदकेन फलेन जलेन चेत्यर्थः, फलं च उदकं चेति द्वन्द्वः, 'जातिरप्राणिनाम्' इत्येकवद्भावः।

फलानीति—दर्भेषु कुशेषु न तु सौवर्णादिपात्रेषु नः अस्माकम् स्वहस्तरचि-

---

चाहिए। उसे मैं किस भाँति पूरा करूँगा ? यही चिन्ता है, अथवा—

वे जिस भाँति तृप्त होते हों, होवें, उन्हें हमारी स्थितिका ज्ञान तो है ही। तथापि मैं पिताजीकी प्रतिष्ठा तथा अपने सामर्थ्यके अनुरूप पितृश्राद्ध करना चाहता हूँ ॥ ५ ॥

सीता—आर्यपुत्र, बड़े वैभवके साथ पिताजीका श्राद्ध तो भरत करेंगे ही, आप भी अपनी अवस्थाके योग्य फल-जलसे श्राद्ध करें, पिताजी इसे ही पर्याप्त मानलेंगे।

राम—मैथिलि,

कुशोंपर हमारे अपने हाथोंसे विन्यस्त फलोंको देखते ही हमारे वनवासकी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

स्मारितो वनवासं च तातस्तत्रापि रोदिति ॥ ६ ॥

(ततः प्रविशति परिव्राजकवेषो रावणः)

रावणः—एषः भो !

नियतमनियतात्मा रूपमेतद् गृहीत्वा खरवधकृतवैरं राघवं वञ्चयित्वा ।
स्वरपदपरिहीणां हव्यधारामिवाहं जनकनृपसुतां तां हर्तुकामः प्रयामि॥

तानि निजकरन्यस्तानि न तु भृत्यादिनिहितानि फलानि न तु महार्घवस्तूनि दृष्ट्वा ततो दशरथः वनवासम् अस्माकमत्र वने निवासं स्मारितस्तत्र स्वर्गेऽपि रोदिति विलपिष्यति । अस्माकमशक्तिकृतमुपहारदारिद्र्यमालोक्य वनवासितां स्मृत्वा स्वर्गेऽपि तातो रोदिष्यतीति किमनुष्ठीयतामिति रामस्य चिन्ताया विषयः ॥ ६ ॥

प्रविशति रङ्गमञ्चमवतरति । सीतापहरणं घटयिष्यन् श्राद्धप्रसङ्गेन ब्राह्मण-परिव्राजकवेषस्य रावणस्य प्रवेशमाहानेन प्रसङ्गेन ।

नियतमिति । अनियतात्मा अजितेन्द्रियः अहम् एतद्रूपं वञ्चकपरिव्राजक-वेषं गृहीत्वाहं नियतं जितेन्द्रियं खरवधकृतवैरं खरो नाम मत्प्रियो राक्षसस्तस्य वधेन कृतवैरं कृतापराधम्, राघवं वञ्चयित्वा काञ्चनमृगमाययाऽऽश्रमपदादन्यत्र गमयित्वा तां राघवविरहितां जनकनृपसुतां सीताम्, स्वरपदपरिहीणां स्वरपदविभागवर्जिताम्, स्वरेण पदेन च दुष्टैर्मन्त्रैर्देवेभ्यो दीयमानां हव्यधारां हविराज्यधारामिव हर्तुकामः प्रयामि । अयमाशयः—यथा मन्त्रदोषेण दीयमानाया हव्यधाराया राक्षसा ग्रहीतारो भवन्ति, तथैव खरदूषणादिवधं विधाय कृतवैरं रामं वञ्चयित्वा सीतामहमपहरामीति। एतयोपमया स्वस्य सीताप्राप्त्यनधिकारं सूचयति । अत्र हर्तुं कामो यस्येति विग्रहे 'तुं काममनसोरपी' ति मलोपः । 'परिहीणाम्' इति प्रयोगे णत्वं चिन्त्यम्,परेरनुप-सर्गतया णत्वाप्राप्तेः । अनुपसर्गत्वं च 'अधिपरी अनर्थकौ' इति कर्मप्रवचनीयसंज्ञयो-पसर्गसंज्ञाबाधेन बोध्यम् । मालिनीच्छन्दः, लक्षणं पूर्वमुक्तम् ॥ ७ ॥

याद आ जानेसे पिताजी वहाँ भी रो देंगे ॥ ६ ॥

(संन्यासी के वेशमें रावण का प्रवेश)

रावण—अरे यह—

रामने खरका वध करके मेरे साथ वैर बढ़ाया है। मैं आज उसे ठगनेके लिए अविरक्त होकर भी विरक्तका रूप धारण करता हूँ । मैं सीताका हरण करने उस प्रकार जा रहा हूँ, जिस प्रकार स्वर तथा पदसे अशुद्ध मन्त्रोच्चारण होमकी आज्यधारा को हर लेता है ॥ ७ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गच्छन्ति तुष्टिं खलु येन केन त एव जानन्ति हि तां दशां मे।
इच्छामि पूजां च तथापि कर्तुं तातस्य रामस्य च सानुरूपाम् ॥५॥

सीता--आर्यपुत्र ! निर्वर्तयिष्यति श्राद्धं भरत ऋद्धया, अवस्थानुरूपं
अय्यउत्त ! णिव्वत्तइस्सदि सद्धं भरदो रिद्धीए, अवत्थाणुरूवं
फलोदकेनाप्यार्यपुत्रः। एतत् तातस्य बहुमततरं भविष्यति।
फलोदएण वि अय्यउत्तो। एदं तादस्स बहुमदअरं भविस्सदि।

रामः—मैथिलि !
फलानि दृष्ट्वा दर्भेषु स्वहस्तरचितानि नः।

स्मरन्ति—'जीवतो वाक्यकरणात् क्षयाहे भूरिभोजनात्। गयायां पिण्डदानाच्च त्रिभिः पुत्रस्य पुत्रता ॥' इति।

गच्छन्तीति। येन केन येन केनापि प्रकारेण (पुत्रदशानुसारिणा विधिना) पितरस्तुष्टिं तृप्तिं यान्ति लभन्ते खलु। हि यतः त एव पितर एव मे मम तां वर्त्तमान-वनवासकालिकीं दशां जानन्ति। एवञ्च स्वसामर्थ्यमनुसृत्य वार्षिकं सम्पादयतो मम व्यवहारेण पितरो मयि न खिद्येरन्निति भावः। नन्वेवं विज्ञायापि चिन्त्यत इत्य-नुचितमित्यत आह—इच्छामीति। तथापि स्वसामर्थ्यानुश्राद्धविधेः पितृतृप्तिसाधन-ताप्रत्यये सत्यपि तातस्य पितुः रामस्य स्वस्य च सानुरूपां योग्याम्, पूजां श्राद्ध-क्रियां कर्तुं विधातुमिच्छामि। दिगन्तविख्यातप्रभावस्य पितुः प्रथितस्य स्वस्य चानु-रूपं श्राद्धं विधातुमेव मम चिन्ता न पितृपरितोषविषयेति भावः। अत्र सानुरूपाम् इत्यस्य स्थाने 'अनुरूपाम्' इतीयतैव निर्वाहे 'स' इति व्यर्थम्। वंशस्थं वृत्तम् ॥५॥

ऋद्धया समृद्धिसम्पाद्यैः महार्घ्यैः पदार्थैः, फलोदकेन फलेन जलेन चेत्यर्थः, फलं च उदकं चेति द्वन्द्वः, 'जातिरप्राणिनाम्' इत्येकवद्भावः।

फलानीति—दर्भेषु कुशेषु न तु सौवर्णादिपात्रेषु नः अस्माकम् स्वहस्तरचि-

---

चाहिए। उसे मैं किस भाँति पूरा करूँगा ? यही चिन्ता है, अथवा—

वे जिस भाँति तृप्त होते हों, होवें, उन्हें हमारी स्थितिका ज्ञान तो है ही। तथापि मैं पिताजीकी प्रतिष्ठा तथा अपने सामर्थ्यके अनुरूप पितृश्राद्ध करना चाहता हूँ ॥ ५ ॥

सीता-आर्यपुत्र, बड़े वैभवके साथ पिताजीका श्राद्ध तो भरत करेंगे ही, आप भी अपनी अवस्थाके योग्य फल-जलसे श्राद्ध करें, पिताजी इसे ही पर्याप्त मानलेंगे।

राम—मैथिलि,

कुशोंपर हमारे अपने हाथोंसे विन्यस्त फलोंको देखते ही हमारे वनवासकी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitized by eGangotri

स्मारितो वनवासं च तातस्तत्रापि रोदिति ॥ ६ ॥

(ततः प्रविशति परिव्राजकवेषो रावणः)

रावणः—एषः भो !

नियतमनियतात्मा रूपमेतद् गृहीत्वा खरवधकृतवैरं राघवं वञ्चयित्वा ।
स्वरपदपरिहीणां हव्यधारामिवाहं जनकनृपसुतां तां हर्तुकामः प्रयामि॥

तानि निजकरन्यस्तानि न तु भृत्यादिनिहितानि फलानि न तु महार्घवस्तूनि दृष्ट्वा ततो दशरथः वनवासम् अस्माकमत्र वने निवासं स्मारितस्तत्र स्वर्गेऽपि रोदिति विलपिष्यति । अस्माकमशक्तिकृतमुपहारदारिद्र्यमालोक्य वनवासितां स्मृत्वा स्वर्गेऽपि तातो रोदिष्यतीति किमनुष्ठीयतामिति रामस्य चिन्ताया विषयः ॥ ६ ॥

प्रविशति रङ्गमञ्चमवतरति । सीतापहरणं घटयिष्यन् श्राद्धप्रसङ्गेन ब्राह्मण-परिव्राजकवेषस्य रावणस्य प्रवेशमाहानेन प्रसङ्गेन ।

नियतमिति । अनियतात्मा अजितेन्द्रियः अहम् एतद्रूपं वञ्चकपरिव्राजक-वेषं गृहीत्वाहं नियतं जितेन्द्रियं खरवधकृतवैरं खरो नाम मत्प्रियो राक्षसस्तस्य वधेन कृतवैरं कृतापराधम्, राघवं वञ्चयित्वा काञ्चनमृगमाययाऽऽश्रमपदादन्यत्र गमयित्वा तां राघवविरहितां जनकनृपसुतां सीताम्, स्वरपदपरिहीणां स्वरपदविभागवर्जिताम्, स्वरेण पदेन च दुष्टैर्मन्त्रैर्देवेभ्यो दीयमानां हव्यधारां हविराज्यधारामिव हर्तुंकामः प्रयामि । अयमाशयः—यथा मन्त्रदोषेण दीयमानाया हव्यधाराया राक्षसा ग्रहीतारो भवन्ति, तथैव खरदूषणादिवधं विधाय कृतवैरं रामं वञ्चयित्वा सीतामहमपहरामीति। एतयोपमया स्वस्य सीताप्राप्त्यनधिकारं सूचयति । अत्र हर्तुं कामो यस्येति विग्रहे 'तुं काममनसोरपी' ति मलोपः । 'परिहीणाम्' इति प्रयोगे णत्वं चिन्त्यम्,परेरनुप-सर्गतया णत्वाप्राप्तेः । अनुपसर्गत्वं च 'अधिपरी अनर्थकौ' इति कर्मप्रवचनीयसंज्ञयो-पसर्गसंज्ञाबाधेन बोध्यम् । मालिनीच्छन्दः, लक्षणं पूर्वमुक्तम् ॥ ७ ॥

याद आ जानेसे पिताजी वहाँ भी रो देंगे ॥ ६ ॥

(संन्यासी के वेशमें रावण का प्रवेश)

रावण—अरे यह—

रामने खरका वध करके मेरे साथ वैर बढ़ाया है। मैं आज उसे ठगनेके लिए अविरक्त होकर भी विरक्तका रूप धारण करता हूँ। मैं सीताका हरण करने उस प्रकार जा रहा हूँ, जिस प्रकार स्वर तथा पदसे अशुद्ध मन्त्रोच्चारण होमकी आज्यधारा को हर लेता है ॥ ७ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(परिक्रम्याधो विलोक्य) इदं रामस्याश्रमपदद्वारम् । यावदवतरामि । (अवतरति) यावदहमप्यतिथिसमुदाचारमनुष्ठास्यामि । अहमतिथिः । कोऽत्र भोः ?

रामः—(श्रुत्वा) स्वागतमतिथये ।

रावणः—साधु विशेषितं खलु रूपं स्वरेण ।

रामः—(विलोक्य) अये भगवन् । भगवान् ! अभिवादये ।

रावणः—स्वस्ति ।

रामः—भगवन् ! एतदासनमास्यताम् ।

रावणः—(आत्मगतम्) कथमाज्ञप्त इवास्म्यनेन । (प्रकाशम्) बाढम् (उपविशति)

रामः—मैथिलि ! पाद्यमानय भगवते ।

साधु स्वभावसुन्दरम्, रूपम् आकृतिः, स्वरेण श्रवणावर्जकेन शब्देन विशेषितं रमणीयतरं कृतमित्यर्थः ।

भगवान् संन्यासिविशेषः ।

आस्यताम् इदमासनम् अलङ्क्रियताम् इति वक्तव्ये आस्यतामिति कथनं कियन्तमाज्ञाभावं व्यञ्जयति, तद्वक्ष्यति आज्ञप्त इवेति ।

पाद्यं पादार्थमुदकम् ।

(घूमकर तथा नीचेकी ओर देखकर) यह है रामाश्रमद्वार । अच्छा, नीचे तो उतर लूँ । (उतरता है) अब मैं अतिथिका रूप धारण करता हूँ । मैं अतिथि आया हूँ, कौन है यहाँ ?

राम—(सुनकर) स्वागत अतिथिका ।

रावण—इसके स्वरने रूपको और चमका दिया है ।

राम—(देखकर) भगवान् हैं ? भगवन् , प्रणाम ।

रावण—कल्याण हो ।

राम—भगवन्, यह है आसन, आप विराजिए ।

रावण—(आत्मगत) यह हुकूमत क्यों कर रहा है ? (प्रकट) बहुत अच्छा । (बैठता है) ।

राम—सीता, महात्माके लिए पाद्य जल लाओ ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

सीता---यदार्यपुत्र आज्ञापयति । (निष्क्रम्य, प्रविश्य) इमा आपः ।
जं अय्यउत्तो आणवेदि । इमा आवो ।
रामः---शुश्रूषय भगवन्तम् ।
सीता—यदार्यपुत्र आज्ञापयति ।
जं अय्यउत्तो आणवेदि ।
रावणः—(मायाप्रकाशनपर्याकुलो भूत्वा) भवतु भवतु ।
इयमेका पृथिव्यां हि मानुषीणामरुन्धती ।
यस्या भर्तेति नारीभिः सत्कृतः कथ्यते भवान् ॥ ८ ॥
रामः—तेन हि आनय, अहमेव शुश्रूषयिष्ये ।

शुश्रूषय पादप्रक्षालनेनोपचरेत्यर्थः ।

मायाप्रकाशनेति---मायायाः स्वकृतस्य कपटपरिव्राजकवेषस्य प्रकाशनेन प्रकटतया (संभावितया) पर्याकुलः व्याकुलः । सीतया हि स्वपादे स्पृश्यमाने अजितेन्द्रियस्य रावणस्य रोमाञ्चोद्गमादिना माया प्रकटीभवेदिति शङ्काकुलीभावः । भवतु शुश्रूषणं परित्यजतु इति ।

इयमेकेति---इयं हि निश्चयेन पृथिव्यां धरित्रीपृष्ठे मानुषीणां मानवीनाम् एका सजातीयद्वितीयरहिता अरुन्धती पतिव्रताशिरोमणिः । अरुन्धती नाम वसिष्ठधर्मपत्नी स्वपातिव्रत्यप्रभावेण सप्तर्षिमध्ये वसति, इह तत्प्रयोगः पतिव्रतासामान्यपरः । यस्याः सीताया भर्त्ता स्वामीति हेतोः भवान् नारीभिः सत्कृतः पूजितः सन् कथ्यते वर्ण्यते । पतिव्रतायाः सीताया लोकनमस्यत्वम् । तत्पातिव्रत्यप्रभावेण तत्पतिर्भवानपि यतो लोके पूज्यतेऽतः पतिव्रताप्रधानभूतया सीतया क्रियमाणं पादस्पर्शं नानुमन्य इति भावः ॥ ८ ॥

सीता—ओ आज्ञा (बाहरसे जल लाकर) यह है जल ।
राम—महात्माकी शुश्रूषा करो ।
सीता—जो आज्ञा ।
रावण—(भेद खुलनेके भयसे हक्का-बक्का होकर) रहने दो रहने दो ।
यह सीता पृथ्वीपरकी अरुन्धती मानवी है, जिसके स्वामी होने के कारण स्त्रियाँ आपका यश गाती हैं ॥ ८ ॥
राम—लाओ, मैं खुद शुश्रूषा करूँगा ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

रावणः—अयि, छायां परिहृत्य शरीरं न लङ्घयामि। वाचानुवृत्तिः खल्व-तिथिसत्कारः। पूजितोऽस्मि। आस्यताम्।

रामः—बाढम्। (उपविशति)

रावणः—(आत्मगतम्) यावदहमपि ब्राह्मणसमुदाचारमनुष्ठास्यामि। (प्रकाशम्) भोः! काश्यपगोत्रोऽस्मि। साङ्गोपाङ्गं वेदमधीये, मानवीयं धर्मशास्त्रं, माहेश्वरं योगशास्त्रं, बार्हस्पत्यमर्थशास्त्रं, मेधातिथेर्न्यायशास्त्रं प्राचेतसं श्राद्धकल्पं च।

रामः—कथं कथं श्राद्धकल्पमिति।

अयीति—योऽहं भवदीयशरीरस्य सततानुगमनात् छायातुल्यां सीतामपि शुश्रूषार्थस्पर्शदूषणलक्षणाल्लङ्घनात् परिहरामि, स कथं साक्षाद्भवच्छरीरमेव लङ्घये-यमित्यर्थः। वाचा सूनृतया गिरा, अनुवृत्तिः अनुकूलभाषणम्। तदुक्तमातिथ्यप्रस्तावे 'तृणानि भूमिरुदकं वाक् चतुर्थी च सूनृता' इति।

शाङ्गोपाङ्गम् अङ्गैः षड्भिः शिक्षाव्याकरणच्छन्दोनिरुक्तज्योतिषकल्पाभिधेयैः। उपाङ्गैः पुराणन्यायमीमांसाधर्मशास्त्ररूपैश्चतुर्भिश्च सहितम्। मानवीयं मनुना प्रवर्त्तितम्। धर्मशास्त्रं धर्मानुशासनम्। बार्हस्पत्यं बृहस्पतिना प्रोक्तं राजनीतिप्रति-पादनप्रधानं शास्त्रविशेषम्। माहेश्वरं महेश्वराच्छिवादागतं माहेश्वरं योगशास्त्रं पातञ्जलयोगशास्त्रस्य मूलभूतम्। मेधातिथेर्गौतमस्य। प्रचेतसा वरुणेन प्रोक्तं प्राचेतसं, श्राद्धकल्पं श्राद्धप्रक्रियाम्। अधीये इति क्रियायाः सर्वत्र समः सम्बन्धः।

कथं कथमित्यादरातिशयद्योतिका द्विरुक्तिः।

रावण—छायाके समान सीताकी सेवासे निषेध करने वाला मैं शरीरकी सेवा कैसे ग्रहण करूँगा। मीठे वचनोंसे स्वागत ही सच्चा अतिथिसत्कार होता है। मेरी शुश्रूषा हो चुकी। आप विराजिए।

राम—अच्छा, जो आज्ञा। (बैठता है।)

रावण—(स्वगत) तब तक मैं ब्राह्मणका आचार करूँ। (प्रकट) अजी मेरा गोत्र काश्यप है। मैंने साङ्गोपाङ्ग वेद, मानवीय धर्मशास्त्र, माहेश्वर योगशास्त्र, बृहस्पतिका अर्थशास्त्र, मेधातिथिका न्यायशास्त्र और प्रचेताका श्राद्धकल्प इनका अध्ययन किया है।

राम—क्या कहा? श्राद्धकल्प।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रावणः—सर्वाः श्रुतीरतिक्रम्य श्राद्धकल्पे स्पृहा दर्शिता। किमेतत्?
रामः—भगवन्! भ्रष्टायां पितृमत्तायामागम इदानीमेषः।
रावणः—अलं हरिहृत्य, पृच्छतु भवान्।
रामः—भगवन्! निर्वपनक्रियाकाले केन पितॄंस्तर्पयामि।
रावणः—सर्वं श्रद्धया दत्तं श्राद्धम्।
रामः—भगवन्! अनादरतः परित्यक्तं भवति। विशेषार्थं पृच्छामि।
रावणः—श्रूयताम्। विरूढेषु दर्भाः, ओषधीषु तिलाः, कलायं

श्रुतीः वेदान् तदङ्गभूतानि शास्त्राण्यपि श्रुतिपदेनात्र सङ्गृह्णाति ग्रन्थकृत्।

भ्रष्टायां समाप्तायाम्, पितृमत्तायां जीवत्पितृकतायाम्, एष एव श्राद्धकल्प एव, आगमः शास्त्रम्, प्रमीतपितृकस्य मम श्राद्धकल्प एवोपयोगावहः, प्रयोजनेनापेक्षणात्। अपेक्षोपेक्षे हि प्रयोजनतदभावाभ्यां सृज्येते पदार्थानाम् इति रामाशयः।

श्राद्धमिति—पितॄनुद्दिश्य श्रद्धया दीयमानं श्राद्धम्। येन केनापि श्रद्धया दत्तेन पदार्थेन पितरस्तृप्यन्ति, न तु बहुमूल्यानेव पदार्थानपेक्षन्त इति भावः। श्राद्धप्रसङ्गे मनुराह—'यद्यद्ददाति विधिवत् श्रद्धाभक्तिसमन्वितः। तत्तत् पितॄणां भवति परत्रानन्तमक्षयम्॥' इति। अनादरतः अश्रद्धया, दत्तं परित्यक्तं भवति, परित्यागमात्रं तत्, न तु श्राद्धमश्रद्धोपहतत्वादिति भावः। विशेषार्थं श्रद्धापूर्वकं दीयमानेषु पदार्थेष्वप्यस्ति कश्चिद्विशेष इति भावः।

विरूढेषु तृणजातिषु, दर्भाः कुशाः, ओषधीषु 'ओषध्यः फलपाकान्ताः' इति परिभाषितासु, कलायं कालशाकः, वार्ध्रीणसः पक्षिभेदः 'नीलग्रीवो रक्तशीर्षः कृष्णपादः

रावण—आपने और सभी शास्त्रोंको छोड़कर श्राद्धकल्पमें अत्यादर प्रकट किया क्या बात है?

राम-पितृहीन होनेके कारण इस समय हमारे लिए इसीका ज्ञान अपेक्षित है।

रावण—आपको यह विषय छोड़ना न चाहिये। पूछिये।

राम—महाराज, पिण्डदानके समय किस चीजसे पितरोंको तृप्त करूँ।

रावण—जो कुछ श्रद्धासे दिया जाय, वह सब श्राद्ध कहलाता है।

राम—अश्रद्धासे दिया गया तो त्याग कर दिया जाता है। मैं तो विशेष जानने के लिए पूछ रहा हूँ।

रावण—सुनिये। घासोंमें कुश, ओषधियोंमें तिल, शाकोंमें कलाय, मछलियोंमें

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

शाकेषु, मत्स्येषु महाशफरः, पक्षिषु वार्ध्रीणसः, पशुषु गौः खड्गो वा इत्येते मानुषाणां विहिताः ।

रामः—भगवन् ! वाशब्देनावगतमन्यदप्यस्तीति ।

रावणः—अस्ति प्रभावसम्पाद्यम् ।

रामः—भगवन् ! एष एव मे निश्चयः ।

उभयस्यास्ति सान्निध्यं यद्येतत् साधयिष्यति ।
धनुर्वा तपसि श्रान्ते श्रान्ते धनुषि वा तपः ॥ ९ ॥

रावणः—सन्ति । हिमवति प्रतिवसन्ति ।

सितच्छदः । वार्ध्रीणसः स्यात् पक्षीशः' इति लक्षितः । मार्कण्डेयोऽपि 'रक्तपादो रक्तशिरा रक्तचक्षुर्विहङ्गमः । कृष्णवर्णेन न तथा पक्षी वार्ध्रीणसो मतः ॥' इति । 'कालशाकं महाशल्का' खड्गलोहामिषं मधु । आनन्त्यायैव कल्पन्ते मुन्यन्नानि च सर्वशः ॥' इति मनुः । खड्गः गण्डकः पशुभेदः ।

वाशब्देन अनुक्तसमुच्चयार्थकतयात्र प्रयुक्तेन वापदेन । एतेनोक्तावशिष्टमपि पितृतृप्तये क्षममस्तीति प्रतीयत इति भावः ।

एष एव प्रभावसम्पादितेन द्रव्येण पितॄंस्तर्पयामीत्येवंरूप एव ।

उभयस्येति—मयि मल्लक्षणे जने उभयस्य साधनभूतस्य तपसो धनुषश्चेति साधकद्वयस्य सान्निध्यं समीपवर्तित्वमस्ति । अहं धनुषा तपसा वा यत्किमपि प्रभावसम्पाद्यमाहर्तुमीशः तपोबलक्षात्रबलातिरिक्ततृतीयबलस्याप्रसिद्धेरुभयोश्च तयोर्मयि सान्निध्यमिति प्रभावसाध्यं नाम ममासाध्यं न भवतीति भावः । तदेवाह—तपसि श्रान्ते प्रयोगातिशयेन खिन्ने धनुषि च तथाभूते तपोवने वा व्यापारणीयमिति मदसाध्य न प्रत्येमीति भावः ॥ ९ ॥

सन्तीति-प्रभावसम्पाद्यानि द्रव्याणि नालीकानीति भावः। स्थानमाह-हिमवतीति।

महाशफर, पक्षियोंमें वार्ध्रीणस और पशुओंमें गाय या गैंडा, मनुष्योंके लिए ये ही विहित हैं ।

राम—महाराज, क्या कुछ और है ?

रावण—हाँ, है, किन्तु उसे कोई प्रतापी ही प्राप्त कर सकता है ।

राम—यही मेरा भी निश्चय है ।

जो इस कार्यको सिद्ध करेंगे वे दोनों (तप, बल) साधन मेरे पास मौजूद हैं । यदि तपस्या असफल हुई तो बल और बलके असफल होने पर तप ॥ ९ ॥

रावण—हैं तो, परन्तु हिमालय पर रहते हैं ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रामः—हिमवतीति । ततस्ततः ।

रावणः—हिमवतः सप्तमे शृङ्गे प्रत्यक्षस्थाणुशिरःपतितगङ्गाम्बुपायिनो वैदूर्यश्यामपृष्ठाः पवनसमजवाः काञ्चनपार्श्वा नाम मृगाः यैर्वैखानसवालखिल्यनैमिषीयादयो महर्षयश्चिन्तितमात्रोपस्थित-विपन्नैः श्राद्धान्यभिवर्धयन्ति ।

तैस्तर्पिताः सुतफलं पितरो लभन्ते
हित्वा जरां खमुपयान्ति हि दीप्यमानाः ।

शृङ्गे ऊर्ध्वोन्मुखं शिखरं शृङ्गं व्यपदिशन्ति तत्र । प्रत्यक्षस्थाणुशिरःपतित-गङ्गाम्बुपायिनः प्रत्यक्षस्य स्वयं लोचनगोचरतामुपगतस्य स्थाणोः शिवस्य शिरसः पतितं स्खलितं यद् गङ्गाम्बु तत् पातुं शीलमेषामिति तथा । हिमवतः सानुषु सततं शिवसान्निध्यात्तत्रस्था मृगाः शिवशिरसः पतन्त्या गङ्गाया अधरास्पृष्टमेव जलं पिब-न्तीति । वैदूर्यश्यामपृष्ठाः बालवायदेशोद्भवरत्नभेदो वैदूर्यम्, तद् इव श्यामं पृष्ठं येषां ते तथा । काञ्चनपार्श्वाः स्वर्णवर्णपार्श्वतया तदाख्यया प्रसिद्धाः । यैः काञ्चनपार्श्वमृगैः, वैखानसाः वानप्रस्थाः । वालखिल्यास्तदाख्याः । एते हि प्रमाणतोऽतिह्रस्वा अङ्गुष्ठो-दरप्रमाणा ऋषयः श्रूयन्ते । नैमिषीयाः नैमिषारण्यवासिनः तदादयः तत्प्रभृतयः । चिन्तितमात्रोपस्थितविपन्नै चिन्तितमात्रैरेव स्वसमीपे सन्निधाय विपन्नैः मृतैः । श्राद्धानि पितृकार्याणि अभिवर्धयन्ति समेधयन्ति । तदेवाहाग्रिमपद्येन—

तैस्तर्पिता इति—तैः काञ्चनपार्श्वमृगैस्तर्पिताः पितरः सुतफलं पुत्रजन्यप्रयो-जनं लभन्ते । किन्तल्लभ्यमित्याह—हि यतः जरां वयोहानिं हित्वा विमुच्य दीप्य-मानास्तेजसा भ्राजमानाः खं स्वर्गमुपयान्ति । वार्धक्यभयरहिताः स्वर्गे वसन्तीति

राम—हिमालयपर, और ?

रावण—हिमालयकी सातवीं चोटीपर महादेवके मस्तकसे गिरनेवाली गङ्गाका जल पीनेवाले वैदूर्यके सदृश श्यामपृष्ठ, वायुके समान शीघ्रगामी काञ्चनपार्श्व-नामके मृग रहा करते हैं । वैखानस, वालखिल्य+, नैमिषादि महर्षि ध्यानमात्रसे उन्हें बुलाते तथा उनके मांससे पितरोंको श्राद्ध अर्पित करते हैं ।

उन काञ्चनमृगों से तर्पित पितर पुत्र होनेका लाभ पा लेते हैं, और वार्धक्य

वानप्रस्थश्चतुर्भेदो वैखानास, उदुम्बरः ।
वालखिल्यो वनेवासी तल्लक्षणमथोच्यते ।। इति बृहत्पाराशरसंहिता ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तुल्यं सुरैः समुपयान्ति विमानवास-
मावर्तिभिश्च विषयैर्न बलाद् ध्रियन्ते ॥ १० ॥

रामः—मैथिलि !

आपृच्छ पुत्रकृतकान् हरिणान् द्रुमांश्च,
विन्ध्यं वनं तव सखीर्दयिता लताश्च ।
वत्स्यामि तेषु हिमवद्गिरिकाननेषु
दीप्तैरिवौषधिवनैरुपरञ्जितेषु ॥ ११ ॥

भावः । तथा च प्रसिद्धिः—'वित्तेशानां न च खलु वयो यौवनादन्यदस्ति' । किञ्च सुरैस्तुल्यं सदृशं विमानवासं व्योमयानवासं समुपयान्ति लभन्ते । आवर्तिभिः जननमरणपूर्णभवभ्रमिप्रदैर्विषयैः इन्द्रियार्थैश्च बलात् आकृष्य न ध्रियन्ते बध्यन्ते । सांसारिकविषयलोभान्मुच्यन्त इत्यर्थः ॥ १० ॥

एवं काञ्चनपार्श्वमृगसम्पाद्यक्षाद्धप्रशंसामुपश्रुत्य तदुपलब्धेर्हिमवच्छिखरगमनैकसाध्यतया तत्र गन्तुं निवासं कर्तुं च कृतरुचिराह रामो—मैथिलीत्यादि ।

आपृच्छेति—पुत्रकृतकान्- पुत्रभावेन लालितान् हरिणान् मृगान् द्रुमान् वृक्षान्, विन्ध्यं विन्ध्याख्यपर्वतपादविशीर्णं काननम्, तव दयिताः स्नेहशीलाः सखीः प्रियवयस्याः लताश्च आपृच्छ गमनकालिकामन्त्रणया सम्भावय । तादृशानुज्ञानादेशहेतुमाह—वत्स्यामीत्युत्तरार्द्धेन । दीप्तैरिव सततशिवसान्निध्योपलब्धतद्भालवर्त्तिशीतरश्मिभासाग्निप्रदीप्तैरिव ओषधिवनैरुपरञ्जितेषु ज्योतिष्मल्लताप्रकाशितेषु तेषु काञ्चनमृगशालिषु हिमवद्गिरिकाननेषु वत्स्यामि निवासं करिष्यामि । तत्र निवसतो मम वनवासव्रतमपि न हीयते, उत्तमपितृतर्पणं च कृतं भवतीति तत्रैव वासं रोचय इति रामाशयः ॥ ११ ॥

त्यागकर दीप्तिमान् हो सीधे स्वर्ग जाते हैं । वहाँ ये देवोंके साथ विमानमें रहते तथा फिर आवागमनके फेरमें डालनेवाली वासनासे बलपूर्वक आकृष्ट नहीं किये जाते ॥ ११ ॥

राम—मैथिलि,

अपने प्यारे पुत्रतुल्य मृगों, वृक्षों, विन्ध्याचलकी वनभूमि और प्यारी लताओं से तुम अब मिलकर विदाई लेलो, मैं अब यहाँसे जाकर चमकने वाली बूटियों से भासित हिमालयपर वास करूँगा, अतः वहाँ जाना है ॥ ११ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सीता—यदार्यपुत्र आज्ञापयति ।

जं अय्यउत्तो आणवेदि ।

रावणः—कौसल्यामातः ! अलमतिमनोरथेन, न ते मानुषैर्दृश्यन्ते ।

रामः—भगवन् ! किं हिमवति प्रतिवसन्ति ?

रावणः—अथ किम् ?

रामः—तेन हि पश्यतु भवान् ।

सौवर्णान् वा मृगांस्तान् मे हिमवान् दर्शयिष्यति ।
भिन्नो मद्बाणवेगेन क्रौञ्चत्वं वा गमिष्यति ॥ १२ ॥

अतिमनोरथेन मानुषोचितसीमातिक्रमणपूर्वकं प्रवृत्तेन काञ्चनमृगकरणपितृश्राद्धानुष्ठानाभिलाषेण । मनोरथस्यास्यातिशयितत्वमेवाह—न त इति ।

प्रतिवसन्ति तिष्ठन्ति । अथ तिष्ठन्ति न शक्यं तैर्मयाऽनुपलब्धैस्तत्र वर्त्तमानैस्तैर्भवितुमिति रामस्य पराक्रमाभिमानः ।

सौवर्णान् इति—हिमवान् हिमवद्गिरिवासिमुनिजनकर्तृकपितृश्राद्धोपयुक्तान् सौवर्णान् काञ्चनपार्श्वाभिधानान् तान् मृगान् मे मम दर्शयिष्यति प्रत्यक्षीकारयिष्यति, वा अथवा मद्बाणवेगेन मदीयबाणरंहसा भिन्नो विदारितान्तरः सन् क्रौञ्चत्वं तदाख्यपर्वतदशां गमिष्यति । यदि तान्मृगान् हिमालयो मम दृष्टिगोचरतां न प्रापयिष्यति तदा तं कुमारः क्रौञ्चगिरिमिवाहं बाणैर्दारयिष्यामीति भावः । पुरा किल शिवाच्छरविद्यामधीयानयोः परशुरामकार्तिकेययोरहमहमिकया स्वबाणविद्योत्कृष्टतां परीक्षितुं बाणान् क्षिपतोः क्रौञ्चगिरौ रन्ध्रं जातमिति कथात्रानुसन्धेया । प्रयुक्तोऽयमर्थो मेघदूते—'हंसद्वारं, भृगुपतियशोवर्त्म तत्क्रौञ्चरन्ध्रम्' ॥ १२ ॥

सीता—जो आज्ञा ।

रावण—कौसल्यानन्दन, ज्यादे मनोरथ मत बढ़ाओ, काञ्चनमृग मनुष्योंके दृष्टिगोचर नहीं हुआ करते हैं ।

राम—क्या ये हिमालय पर रहते हैं ?

रावण—और क्या ?

राम—तब आप देखें—

हिमालय या तो स्वयं उन काञ्चनमृगों को लाकर मेरे सामने हाजिर करेगा या मेरे बाणों द्वारा विदीर्ण होकर क्रौञ्च पर्वत की दशा को प्राप्त होगा ॥ १२ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitized by eGangotri

रावणः—(स्वगतम्) अहो असह्यः खल्वस्यावलेपः। (प्रकाशम्) अये विद्युत्सम्पात इव दृश्यते। कौसल्यामातः! इहस्थमेव भवन्तं पूजयति हिमवान्। एष काञ्चनपार्श्वः।

रामः—भगवतो वृद्धिरेषा।

सीता—दिष्ट्याऽऽर्यपुत्रो वर्धते

दिट्ठिआ अय्यउत्तो वड्ढइ।

रामः—न न,

तातस्यैतानि भाग्यानि यदि स्वयमिहागतः।
अर्हत्येष हि पूजायां लक्ष्मणं ब्रूहि मैथिलि!॥ १३॥

सीता—आर्यपुत्र! ननु तीर्थयात्रात उपावर्तमानं कुलपतिं प्रत्युद्ग

अय्यउत्त! णं तित्थअत्तादो उवावत्तमाणं कुलवदिं पच्चुग-

अवलेपः पराक्रमाभिमानः (तदयमर्हति मायाकृतां वञ्चनाम्) इहस्थं हिमवद्गिरिकाननमप्राप्तमेव। पूजयति निजाङ्गणचारिकाञ्चनमृगोपहारेण समर्चयति। एतेन गौरवप्रकर्षं उक्तः। वृद्धिः प्रभावातिशयः।

तातस्येति—यदि (काञ्चनमृगः) इह मदध्युषितप्रदेशे स्वयमन्तरैव कमपि प्रयासविशेषमागतः प्राप्तः, एतानि तातस्य पितुः (श्वः करिष्यमाणवार्षिकश्राद्धोपयुक्तवस्तुस्वयमुपनिपातहेतुभूतानि) भाग्यानि। एष हि काञ्चनपार्श्वो मृगः पूजायां वार्षिकविधौ अर्हति उपयुज्यते। मैथिलि सीते, लक्ष्मणं ब्रूहि। इममर्थमिति शेषः। तथा च स शीघ्रमेवैनमानयिष्यतीति भावः॥ १३॥

कुलपतिं तत्तपोवनप्रधानमृषिविशेषम्। प्रत्युद्गच्छ प्रत्युद्यानेन सम्भावय।

रावण—(स्वगत) इसका घमण्ड तो सहा नहीं जाता। (प्रकट) बिजलीकी सी चमक मालूम पड़ रही है। कौसल्यानन्दन, तुम्हारे यहीं रहने पर भी हिमालय तुम्हारा आदर कर रहा है, यह है काञ्चनमृग।

राम—यह आपकी महिमा है।

सीता—अहोभाग्य, आप बड़े प्रभावी हैं।

राम—नहीं, नहीं।

यह पिताजीका भाग्यातिशय है कि यह काञ्चनमृग खुद यहाँ आ पहुँचा है। यह पूजाके लायक है; मैथिलि, लक्ष्मणको खबर दो॥ १३॥

सीता—आर्यपुत्र, लक्ष्मणको तो आपने तीर्थयात्रासे लौटते हुए कुलपति* की

---

* कुलपतिलक्षण—
मुनीनां दशसाहस्रं योऽन्नदानादिपोषणात्।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

च्छति सन्दिष्टः सौमित्रिः ।
च्छेहित्ति सन्दिष्टो सोमित्ती ।

रामः—तेन हि अहमेव यास्यामि ।

सीता—आर्यपुत्र ! अहं किं करिष्यामि ?
अय्यउत्त ! अहं किं करिस्सं ?

रामः—शुश्रूषयस्व भगवन्तम् ।

सीता—यदायपुत्र आज्ञापयति ।
ज अय्यउत्तो आणवेदि ।

(निष्क्रान्तो रामः)

रावणः—अये अयमर्घ्यमादायोपसर्पति राघवः । एष इदानीं पूजामनवेक्ष्य धावन्तं मृगं दृष्ट्वा धनुरारोपयति राघवः ।
अहो बलमहो वीर्यमहो सत्वमहो जवः

चिरप्रवासात् परावृत्तो हि स्निग्धः प्रत्युद्गम्य कुशलादिकं जिज्ञास्यत इति शिष्टसमुदाचारः ।

अनवेक्ष्य परित्यज्य ।

अहो बलमिति—अहो इत्याश्चर्ये, बलं शारीरिकी शक्तिः, वीर्यमान्तरिकः

भगवानीके लिए भेजा है ।

राम—तब तो मैं ही जाऊँगा ।

सीता—आर्यपुत्र ! मैं क्या करूँगी ?

राम—महाराजकी शुश्रूषा ।

सीता—जो आज्ञा ।

(रामका प्रस्थान)

रावण—अभी तो राम मेरे निमित्त अर्घ्य लिये आ रहे थे, और अभी पूजा-पराङ्मुख हो भागे जाते हुए काञ्चनमृग को देखकर धनुष चढ़ा रहे हैं । अहा ! कैसा असीम पराक्रम, कैसी अनुपम बहादुरी, कैसा लोकोत्तर पौरुष और कैसा

अध्यापयति विप्रर्षिरसौ कुलपतिः स्मृतः ॥

वहाँ कुलपतिके होनेमें प्रमाण—

एते ते तापसा देवि ! दृश्यन्ते तनुमध्यमे ।
अत्रिः कुलपतिर्यत्र सूर्यवैश्वानरोपमः ॥ (रामायण युद्धकाण्ड १२३ अ०)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

राम इत्यक्षरैरल्पैः स्थाने व्याप्तमिदं जगत् ॥ १४ ॥

एष मृग एकप्लुतातिक्रान्तशरविषयो वनगहनं प्रविष्टः ।

सीता—(आत्मगतम्) आर्यपुत्रविरहिताया भयं मेऽत्रोत्पद्यते ।

अय्यउत्तविरहिदाए भअं मे एत्थ उप्पज्जइ ।

रावणः—(आत्मगतम्)

मायापापहृते रामे सीतामेकां तपोवनात् ।

हरामि रुदतीं बालाममन्त्रोक्तामिवाहुतिम् ॥ १५ ॥

सीता—यावदुटज प्रविशामि ।

जाव उडजं पविसामि । (गन्तुमीहते)

रावणः—(स्वरूपं गृहीत्वा) सीते ! तिष्ठ । तिष्ठ ।

उत्साहः, सत्त्वं धीरभावः, जवः वेगः (धनुषि बाणयोजनशीघ्रतायामत्र जवः) राम इत्येतैरल्पैस्त्रित्वमप्यभजद्भिरक्षरैर्जगद्व्याप्तमिति स्थाने खलु । एतादृशलोकोत्तर-वीर्यादिशालिनोऽस्य रामस्य युक्तं कीर्त्या जगद्व्यापनमिति ॥ १४ ॥

एकप्लुतातिक्रान्तशरविषयः, एकेन प्लुतेन शीघ्रगतिप्रकारभेदेन अतिक्रान्तो लङ्घितः शरविषयो प्राणगोचरो येन स तथाभूतः वनगहनं दुर्गभवनभूमिम् ।

मायेति—मायया काञ्चनमृगोपस्थानरूपया वञ्चनयाऽपहृते दूरदेशं नीते रामे एकाम् असहायाम् (अत एव) रुदतीम् आक्रोशन्तीम् अमन्त्रोक्ताम् अस्वाहा-कृताम् आहुतिं हव्यमिव तपोवनात् सीतां हरामि अपनयामि । एतेन रावणस्य रामाद् भयं व्यञ्जितम् ॥ १५ ॥

अद्भुत वेग है । 'राम' इन थोड़ेसे अक्षरोंसे मानो संसार व्याप्त हो रहा है ॥१४॥

वह देखो, यह मृग एक ही छलांगमें शरलक्ष्यतासे बाहर घनी झाड़ीमें घुस गया ।

सीता—(स्वगत) आर्यपुत्रसे रहित मुझ अकेलीको कुछ भय-सा लग रहा है ।

रावण—(स्वगत) मैंने मायाके द्वारा रामको दूर हटा दिया, यहाँ अब निर्जन तपोवन है । अब मैं इस रोती हुई सीताको मन्त्रोच्चारणशून्य आहुति की भाँति हरण करता हूँ ॥ १५ ॥

सीता—तब तक पर्णकुटी में पैठूँ (जाना चाहती है) ।

रावण—(स्वरूप धारण करके) सीते, ठहरो, ठहरो ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सीता—(भयम्) हं क इदानीमयम् ?

हं को दाणि अअं ?

रावणः—किं न जानीषे ?

युद्धे येन सुराः सदानवगणाः शक्रादयो निर्जिता
दृष्ट्वा शूर्पणखाविरूपकरणं श्रुत्वा हतौ भ्रातरौ ।
दर्पाद् दुर्मतिमप्रमेयबलिनं रामं विलोभ्य च्छलैः
स त्वां हर्तुमना विशालनयने ! प्राप्तोऽस्म्यहं रावणः ॥१६॥

सीता—हं रावणो नाम ।

हं लावणो णाम । (प्रतिष्ठते)

रावणः—आः ! रावणस्य चक्षुर्विषयमागता क यास्यसि ?

युद्धे येनेति । विशाले आयते लोचने नयने यस्याः सा तत्संबुद्धौ विशालनयने, येन दानवानां दैत्यानां गणैः सङ्घैः सहिताः सदानवगणाः शक्रादयः सुरा देवा युद्धे समरे निर्जिताः निरवशेषं परास्ताः सोऽहं रावणः शूर्पणखायाः स्वस्वसुः विरूपकरणं नासाच्छेदादिना वैरूप्यसंपादनं दृष्ट्वा हतौ रामेण निधनं लम्भितौ भ्रातरौ खरदूषणौ श्रुत्वाऽऽकर्ण्य दर्पात् भुजवीर्याभिमानात् दुर्मतिं बुद्धिभ्रंशजुषम् अप्रमेयबलिनं स्वल्पतयाऽगणनीयसैन्यं रामं छलैर्विलोभ्य मायानिर्मितकाञ्चनमृगोपस्थापनेन प्रतार्य त्वां हर्तुमना त्वदपहरणं कर्तुम् इव वनोद्देशे प्राप्तोऽस्मि । अत्र 'भ्रातरौ हतौ श्रुत्वा' इति प्रयोगे भ्रातुः श्रवणकर्मता कथमिति शङ्कायां धर्मधर्मिणोरभेदमुपचर्य तथा प्रयोग इति समाधातव्यम् । तथा च प्रयुज्यते—'राक्षसीरश्रृणोत् कपिः' इति वाल्मीकीये । 'विलपन्त कपिञ्जलमश्रौषम्' इति कादम्बर्याम् । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ १६ ॥

सीता—(डरकर) हैं, अब यह कौन ?

रावण—क्या नहीं जानती ?

जिसने संग्राममें दानवों और देवोंको परास्त किया जिसने शूर्पणखाका नासाभङ्ग तथा खरदूषण को मारा जाना सुना, वही मैं रावण इस समय दर्पसे उद्धत रामको मायासे वञ्चित कर तुम्हें हर ले जाने को उपस्थित हुआ हूँ ॥१६॥

सीता—हैं, रावण, (चलती है) ।

रावण—रावण की आँखों के सामने से जायगी कहाँ ?

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सीता—आयपुत्र ! परित्रायस्व परित्रायस्व। सौमित्रे ! परित्रायस्व
अय्यउत्त ! परित्ताआहि परित्ताआहि। सोमित्ती ! परित्ताआहि
परित्रायस्व माम्।
परित्ताआहिं म।

रावणः—सीते श्रूयतां मत्पराक्रमः।

भग्नः शक्रः कम्पितो वित्तनाथः कृष्टः सोमो मर्दितः सूर्यपुत्रः।
धिग् भो स्वर्गं भीतदेवैर्निविष्टं धन्या भूमिर्वर्तते यत्र सीता ॥१७॥

सीता—आर्यपुत्र ! परित्रायस्व परित्रायस्व। सौमित्रे ! परित्रायस्व
अय्यउत्त ! परित्ताआहि परित्ताआहि। सोमित्ती ! परित्ताआहि
परित्रायस्व माम्।
परित्ताआहि मं।

रावणः—

रामं वा शरणमुपेहि लक्ष्मणं वा स्वर्गस्थं दशरथमेव वा नरेन्द्रम्।

भग्न इति—शक्र इन्द्रो भग्नो युद्धे पराजितः, वित्तनाथः कुबेरः कम्पितः भयेन चालितः, सोमः चन्द्रः कृष्टः कर्षितः स्वावासदेशादाकृष्य स्वप्रासादशिखरे स्थापितः। सूर्यपुत्रः यमः मर्दितः मानापाकरणेन निस्तेजस्कः कृत इत्यर्थः। एतादृशपराक्रमोऽहमस्मीति रावणस्य गर्वः। नन्वेवं तर्हि स्वर्ग एव त्वया स्वावासभूमिः किमिति न कृतेत्यत्राह—धिगिति। भीतदेवैः, भीरुस्वभावैः सुरैः निविष्टमधिष्ठितं स्वर्गं धिक्, सा भूमिरियं धरित्री धन्या प्रशंसनीया, यत्र सीता (सीतासदृशी रमणीयगुणसौन्दर्या स्त्री) वर्त्तते। शालिनीवृत्तम् ॥ १७ ॥

राम इति—रामं शरणं त्रातारमुपेहि गच्छ, लक्ष्मणं वा शरणमुपेहि त्रातारमाश्रयस्व, स्वर्गस्थं दशरथं तन्नामानं वा नरेन्द्रं शरणमुपेहि त्रातारमाश्रयस्व; नानेन

सीता—आर्यपुत्र, रक्षा करो, रक्षा करो। लक्ष्मण, रक्षा करो, रक्षा करो।

रावण—सीते, सुनो मेरा पराक्रम।

मैंने इन्द्रको परास्त किया, कुबेरको कँपाया, सोमको खींच लिया और यमराजको मर्दित किया है। धिक्कार है उस स्वर्गको जहाँ मेरे भयसे भीत देवगण रहा करते हैं, धन्य तो वह पृथ्वी है, जहाँ सीता रहती है ॥ १७ ॥

सीता—आर्यपुत्र, रक्षा करो, रक्षा करो, लक्ष्मण, मुझे बचाओ, बचाओ।

रावण—तुम चाहे रामकी शरण लो, लक्ष्मणकी अथवा स्वर्गवासी दशरथकी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

किं वा स्यात् कुपुरुषसंश्रितैर्वचोभिर्न व्याघ्रं मृगशिशवः प्रधर्षयन्ति॥

सीता—आर्यपुत्र ! परित्रायस्व परित्रायस्व ! सौमित्रे ! परित्रायस्व
अय्यउत्त ! परित्ताआहि परित्ताआहि । सोमित्ती ! परित्ताआहि
परित्रायस्व माम् ।
परित्ताआहि मं ।

रावणः—

विलपसि किमिदं विशालनेत्रे ! विगणय मां च यथा तवार्यपुत्रम् ।
विपुलबलयुतो ममैव योद्धुं ससुरगणोऽप्यसमर्थ एव रामः ॥१९॥

सीता—(रुषम्) शप्तोऽसि ।
सत्तो सि ।

किमपि साध्यमिति । एतैः कुपुरुषसंश्रितैः कुत्सितपुरुषविषयैः दुर्बलत्वेनातिकुत्सापात्ररामलक्ष्मणदशरथविषयैस्त्रायस्वेति वचनैर्मे मम रावणस्य किं स्यात् ? किमपि न च्छिद्येतेति भावः । तत्र दृष्टान्तमाह—न व्याघ्रमिति । व्याघ्रं द्वीपिनं मृगशिशवः हरिणशावकाः न प्रधर्षयन्ति नोत्पीडयन्ति । यथा व्याघ्रस्य कृते हरिणशिशवो न भयदास्तथा ममापि कृते रामलक्ष्मणदशरथाः फल्गव इति वृथा तानाक्रोशसीति भावः । प्रहर्षिणी वृत्तम् ॥ १८ ॥

विलपसीति—विशालनेत्रे विशालाक्षि, किमिदं विलपसि ? वृथा तवायं विलापो मत्सकाशात्त्वां त्रातुं कस्याप्यसमर्थत्वादिति भावः । मां तवार्यपुत्रं भर्त्तारं यथा इव विगणय जानीहि । यतोऽहं तव भर्त्तुरप्यधिकबलवानतो मामेव भर्त्तारमङ्गीकुर्वित्यर्थः । तथा हि एष त्वया त्राणार्थं प्रार्थ्यमानः विपुलेन महता सैन्येन युतः सहितः सुराणां देवानां गणैः समूहैश्च सहितः अपि रामः मम योद्धुं युद्धेऽवस्थातुम् असमर्थ एव । अशक्त एव । तस्मान्मामेव भर्त्तारं भजेति भावः । एतेन रावणस्य भुजबलावलेपो व्यक्तः । पुष्पिताग्रा वृत्तम् ॥ १९ ॥

ही शरण में जाओ । इन कायर पुरुषों की पुकार से मेरा क्या बिगड़ेगा, क्या मृग के बच्चों से सिंह का पराभव सम्भव है ॥ १८ ॥

सीता—आर्यपुत्र, रक्षा करो, रक्षा करो । लक्ष्मण, मेरा परित्राण करो ।

रावण—हे विशालनेत्रे, अब तुम यह वृथा विलाप क्यों कर रही हो ? अब से अपने आर्यपुत्र की जगह मुझे समझो । समस्त देवों के सहित तथा अपरिमित सेना से युक्त होकर भी राम मुझसे युद्ध करने में असमर्थ ही रहेगा ॥ १९ ॥

सीता—(क्रोध से) मैं तुमको शाप देती हूँ ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

रावणः—अहह ! अहो पतिव्रतायास्तेजः ।

योऽहमुत्पतितो वेगान्न दग्धः सूर्यरश्मिभिः ।
अस्याः परिमितैर्दग्धः शप्तोऽसीत्येभिरक्षरैः ॥ २० ॥

सीता—आर्यपुत्र ! परित्रायस्व परित्रायस्व ।
अज्जउत्त ! परित्ताआहि परित्ताआहि ।

रावणः—(सीतां गृहीत्वा) भोः भोः ! जनस्थानवासिनस्तपस्विनः !
शृण्वन्तु भवन्तः—

बलादेव दशग्रीवः सीतामादाय गच्छति ।
क्षात्रधर्मे यदि स्निग्धः कुर्याद् रामः पराक्रमम् ॥ २१ ॥

सीता—आर्यपुत्र ! परित्रायस्व परित्रायस्व ।
अज्जउत्त ! परित्ताआहि परित्ताआहि ।

अहहेति सीताशापोपहासे ।

योऽहमिति—वेगादुत्पतितः आकाशं गतो योऽहं सूर्यस्य रश्मिभिः भास्करस्य प्रखरैः करैर्न दग्धः परितापितोऽस्मि । सोऽहं सूर्यतेजःपरिभवनसमर्थोऽहम्; अस्याः सीतायाः शप्तोऽसि एभिरेतैः परिमितैः त्रिभिरक्षरैर्वर्णैः दग्धः परितापितोऽस्मि ? अयमुपहासः सीतानुकूलनाय कृतो बोध्यः । जनस्थानवासिनस्तपोधनाः = जनस्थानं दण्डकारण्यमध्यवर्ति मुनिजनाधिष्ठितं तपोवनम्, तत्र वसन्तीति ते । तपोधनाः मुनयः ॥ २० ॥

बलादिति । एषः दश ग्रीवाः कण्ठा यस्य सः दशग्रीवः रावणः बलात् पराक्रमात् बलमास्थायेत्यर्थे ल्यब्लोपे पञ्चमी । सीतामादाय गच्छति स्वपुरीमिति शेषः । यदि रामः क्षात्रधर्मे स्निग्धः अनुरागी तदा पराक्रमं कुर्यात् प्रकटयेत् । मया क्रियमाणस्यास्यापराधस्य प्रतिशोधयेदिति भावः ॥ २१ ॥

रावण— ह ह ह !! वाह रे पतिव्रता का तेज !

जो मैं वेग से आकाश में उड़ने के समय सूर्यकिरणों से नहीं जलता, वही मैं इससे 'मैं तुमको शाप देती हूँ' इन गिने अक्षरोंसे झुलस गया ? ॥ २० ॥

सीता—आर्यपुत्र, रक्षा करो, रक्षा करो ।

रावण—(सीता को पकड़कर) हे वनवासी तपस्वियों, आप सुन लें—

सीता को रावण बलपूर्वक हरण कर लिये जा रहा है, यदि राम को क्षात्रधर्म पर कुछ आस्था हो तो अपना पराक्रम प्रकट करे ॥ २१ ॥

सीता—आर्यपुत्र, रक्षा करो, रक्षा करो ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

रावणः—(परिक्रामन् विलोक्य) अये ! स्वपक्षपवनोत्क्षेपक्षुभितवनखण्ड-
श्चण्डचञ्चुरभिधावत्येष जटायुः । आः ! तिष्ठेदानीम् ।
मद्भुजाकृष्टनिस्त्रिंशकृत्तपक्षक्षतच्युतैः ।
रुधिरार्द्रगात्रं त्वां नयामि यमसादनम् ॥ २२ ॥
(निष्क्रान्तौ)
इति पञ्चमोऽङ्कः ।

स्वपक्षयोः निजगरुतोः पवनेन शीघ्रचालनप्रसूतेन वातेन, य उत्क्षेप उपरिक्षेपणम्, तेन क्षुभिताः सञ्चालिताः वनखण्डाः वनसमूहा येन तादृशः । एतेन ससम्भ्रमपतनेन जटायोरवसरमित्रत्वं व्यक्तम् । चण्डा भीषणा तीव्रप्रहारा चञ्चूर्यस्य सः । अभिधावति मां लक्ष्यीकृत्यागच्छति । एतेन रावणस्य चिन्तोक्ता । आः कोपे ।

मद्भुजेति—मम भुजेन बाहुना आकृष्टः कोशादुद्धृतो यः निस्त्रिंशः खड्गस्तेन कृत्तयोश्छिन्नयोः पक्षयोर्यत् क्षतं व्रणस्तस्मात् च्युतैर्गलितैः रुधिरैः रक्तैः आर्द्राणि सिक्तानि क्लिन्नानि अङ्गानि गात्राणि यस्य तथाभूतं त्वां यमस्य सदनमेव सादनं गृहं नयामि प्रापयामि । मया क्षतपक्षस्य रुधिरोक्षितस्य तव प्राणानचिरेणाहं हरामीत्यर्थः । प्राणहरणस्य यमसादनप्रापणभङ्ग्याभिधानात् पर्यायोक्तमलङ्कारोऽत्र ॥
इति मैथिलपण्डितश्रीरामचन्द्रमिश्रकृते 'प्रतिमानाटक-प्रकाशे' पञ्चमाङ्कः ॥५॥

रावण—(घूमकर तथा देखकर) अरे, अपने पंखोंकी तेज वायुसे सारे वनवृक्षोंको कम्पित कर देनेवाला और भयानक चोंचवाला यह जटायु मेरी ही ओर दौड़ा आता है, आः ! ठहर तो अभी :—

मैं अपने हाथोंसे अपनी तीक्ष्ण धारवाली तलवार निकाल कर तेरे पंखोंको काटता हूँ और शोणितसे भिगाकर तुझे यमलोक भेजता हूँ ॥ २२ ॥

(दोनों का प्रस्थान)

पञ्चम अङ्क समाप्त

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अथ षष्ठोऽङ्कः

(ततः प्रविशतो वृद्धतापसौ)

उभौ—परित्रायन्तां परित्रायन्तां भवन्तः !

प्रथमः—

इयं हि नीलोत्पलदामवर्चसा मृणालशुक्लोज्ज्वलदंष्ट्रहासिना ।
निशाचरेन्द्रेण निशार्धचारिणा मृगीव सीता परिभूय नीयते ॥ १ ॥

द्वितीयः—एषा खलु तत्र भवती वैदेही,

विचेष्टमानेव भुजङ्गमाङ्गना विधूयमानेव च पुष्पिता लता ।
प्रसह्य पापेन दशाननेन सा तपोवनात् सिद्धिरिवापनीयते ॥ २ ॥

उभौ—परित्रायन्तां परित्रायन्तां भवन्तः !

इयमिति—नीलोत्पलं कुवलयं तस्य दाम माला तद्वत् श्यामं कृष्णं वर्चस्तेजो यस्यासौ तेन, अतिश्यामलकान्तिशालिनेत्यर्थः, मृणालशुक्ला विषतन्तुधवला उज्ज्वला वर्णान्तरासङ्कीर्णश्वेता दंष्ट्रा यस्मिन् कर्मणि तथा हासिना स्मयमानेन बिसतन्तुधवलदशनरश्मि स्मितेन प्रकाशयतेत्यर्थः । निशार्धचारिणा चोरवत् रात्रिमध्यपर्यटकेन निशाचरेन्द्रेण इयं सीता जनकतनया मृगी हरिणी इव परिभूय क्लेशयित्वा नीयते स्वसदनं प्रापयितुमपह्रियते । एतेन सादृश्येन सीतायाः कान्दिशीकदशोक्ता । 'नीलोत्पलं कुवलयम्' इति कोशः । उपमालंकारः । वंशस्थं वृत्तम् ॥१॥

विचेष्टमानेति—विचेष्टमाना समुपस्थितविपत्प्रतीकाराय विविधं चेष्टमाना व्यापियमाणा भुजङ्गमाङ्गना सर्पिणी इव, विधूयमाना कम्पमाना पुष्पिता पुष्पावृता लता वल्ली इव सा तत्रभवती वैदेही सिद्धिरिव तपःफलसम्पदिव पापेन दुराचारेण

(दो वृद्ध तपस्वियोंका प्रवेश)

दोनों—वनवासियों, रक्षा करो, रक्षा करो ।

पहला—यह देखो, नीलकमलोंकी मालाके समान वर्णवाले और हँसनेके समय मृणालकी तरह श्वेत दन्तपंक्तिवाले निशाचारी रावण द्वारा, सिंहके द्वारा मृगीकी भाँति, सीता बलपूर्वक हरी जा रही है ॥ १ ॥

दूसरा—यह पूजनीय सीता—

छटपटाती हुई नागिनकी तरह, कम्पित पुष्पलताकी तरह, पापी दशानन द्वारा तपोवनसे तपःफलसिद्धिकी तरह बलपूर्वक अपहृत हो रही है ॥ २ ॥

दोनों—वनवासियों, रक्षा करो, रक्षा करो ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

प्रथम.—(ऊर्ध्वमवलोक्य) अये वचनसमकाल एव दशरथस्यानृण्यं कर्तुं 'मयि स्थिते क्व यास्यसी'ति रावणमाहूयान्तरिक्षमुत्पतितो जटायुः।

द्वितीयः—एष रोषादुद्वृत्तनयनः प्रतिनिवृत्तो रावणः।

प्रथमः—एष रावणः।

द्वितीयः—एष जटायुः।

उभौ—हन्तैतदन्तरिक्षे प्रवृत्तं युद्धम्।

प्रथमः—काश्यप ! काश्यप ! पश्य क्रव्यादीश्वरस्य सामर्थ्यम्।

पक्षाभ्यां परिभूय वीर्यविषयं द्वन्द्वं प्रतिव्यूहते
तुण्डाभ्यां सुनिघृष्टतीक्ष्णमचलः संवेष्टनं चेष्टते।

दशाननेन रावणेन तपोवनात् नीयते वाञ्छितं स्थानान्तरं प्राप्यते। अत्र प्रथमोपमया सीतायाः क्रोधातिशयस्तेन च तस्याश्चरित्रोत्कर्षः, द्वितीयोपमयाऽस्तव्यस्तशरीरता, पतदलङ्करणगणता च सिद्धिरिति चरमोपमया च रक्ष्यसर्वस्वता चेत्यादयोऽर्था व्यज्यन्ते। अत्रैकस्याः सीताया अनेकोपमानसम्बन्धान्मालोपमाऽलङ्कारः, तथा च तल्लक्षणम्—'मालोपमा यदेकस्योपमानं बहु दर्शितम्' इति ॥ २ ॥

दशरथस्यानृण्यम् दशरथेन सख्योपकृतस्य प्रत्युपकारम्=विपद्ग्रस्ततत्पुत्रवधूमोचनाय यावत्सामर्थ्यं प्रयत्नलक्षणम्। उद्वृत्तनयनः मण्डलावर्त्तितचक्षुः। प्रतिनिवृत्तः जटायोराह्वानेन तदभिमुखं परावृत्तः। अन्तरिक्षे व्योम्नि। क्रव्यादीश्वरस्य क्रव्यादाम् आमसांसभक्षकाणाम् (अत्र गृद्ध्राणाम्) ईश्वरस्य प्रभोः जटायोः।

पक्षाभ्यामिति—अयं जटायुः पक्षाभ्याम् परिभूय रावणं प्रहृत्य वीर्यविषयं पराक्रमसापेक्षं द्वन्द्वं युद्धं प्रतिव्यूहते प्रतियुध्यते, द्वन्द्वस्य वीर्यविषयमिति विशेषणेन

पहला—(ऊपर देखकर) अरे हमारे पुकारते ही दशरथसे उऋण होनेके लिए 'मेरे रहते तू कहाँ जायगा' इस तरह रावणको ललकारकर जटायु आकाशमें उड़ा।

दूसरा—यह देखो - रोषसे आँखोंको चढ़ाकर रावण पीछे की ओर लौटा।

पहला—यह देखो रावण।

दूसरा—यह देखो जटायु।

दोनों—ओहो, आकाशमें ही युद्ध छिड़ गया।

पहला—काश्यप, काश्यप, देखो, देखो, गृध्रराज जटायुके पराक्रम को। यह जटायु किस प्रकार अपने पंखोंसे रावणपर प्रहार करता हुआ उससे बहादुरी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitized by eGangotri

तीक्ष्णैरायसकण्टकैरिव नखैर्भीमान्तरं वक्षसो
वज्राग्रैरिव दार्यमाणविषमाच्छैलाच्छिला पाट्यते ॥ ३ ॥

द्वितीयः—हन्त ! सक्रुद्धेन रावणेनासिना क्रव्यादीश्वरः स दक्षिणांसदेशे हतः ।

उभौ—हा धिक् । पतितोऽत्रभवान् जटायुः ।

प्रथमः—भोः कष्टम् । एष खलु तत्रभवान् जटायुः—

कृत्वा स्ववीर्यसदृशं परमं प्रयत्नं क्रीडामयूरमिव शत्रुमचिन्तयित्वा ।
दीप्तं निशाचरपतेरवधूय तेजो नागेन्द्रभग्नवनवृक्ष इवावसन्नः ॥४॥

महता पराक्रमेण युध्यते इत्यर्थोऽभिमतः, अथवा वीर्यविषयम् इति परिभूयेत्यस्य कर्म, तथा च वीर्यविषयं स्वबललक्ष्यभूतं रावणं परिभूयेत्यर्थः । अचलः स्थिरः सन् तुण्डाभ्यां चञ्चूभ्यां सुनिघृष्टं तीक्ष्णं च यथा स्यात्तथा संवेष्टनं चेष्टते सम्यग् वेष्टनयुक्तं यथा स्यात्तथा चेष्टते । एव च तुण्डाग्रेण तीक्ष्णेन प्रतियोद्धारं निपत्य निघर्षति पुनर्वलयाकारेण वेष्टते चेत्यर्थः । आयसकण्टकैरिव लौहमयैः कण्टकैरिव तीक्ष्णैः निशिताग्रभागैः नखैः नखरैः वक्षसः रावणोरसः भीममतिभयानकं भयोत्पादकम् आन्तरम् मांसादिवज्राग्रैः कुलिशकोटिभिः दार्यमाणविषमात् पाटितत्वेनान्तरपदार्थप्रत्यक्षीभावभीषणात् शैलात् पर्वतात् शिलाप्रस्तरशकलमिव पाट्यते पाटयित्वा गृह्यते । अत्र कर्तृप्रत्ययकर्मप्रत्ययकृतः प्रक्रमभङ्गो दोषः । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ ३ ॥

कृत्वेति—स्ववीर्यसदृशं निजभुजबलानुरूपं परममुत्तमं प्रयत्नं प्रयासं सीतापरित्राणविषयं कृत्वा, शत्रुं रावणसदृशं विपक्षं क्रीडामयूरमिव क्रीडनकशिखावलमिव अचिन्तयित्वा अविगणय्य पराक्रमवत्तयाऽविभाव्येति भावः । निशाचरपतेः राक्षस-

---

के साथ द्वन्द्व युद्ध कर रहा है, किस प्रकार खूब डटकर अपने तीक्ष्ण चञ्चुयुगल द्वारा उसे काट खानेकी चेष्टा कर रहा है । वह लौहकण्टकतुल्य नखों से रावणकी छातीपर भयानक तथा विस्तृत घाव इस तरह पैदा कर रहा है, मानो वज्राग्रद्वारा कठोर शिला फाड़ी जा रही हो ॥ ३ ॥

दूसरा—शोक ! क्रुद्ध रावणने गृध्रराजके दाहिने कन्धेपर तलवारका प्रहार कर दिया ।

दोनों—हा शोक !! जटायु गिर गया ।

पहला—खेद ! यह पुण्यात्मा जटायु—

अपने पराक्रमके अनुरूप आखिरी दम तक लड़कर, शत्रुके बलवीर्यकी चिंता न कर और राक्षसराजके प्रचण्ड पराक्रमको दबाकर, इस समय वनगजके द्वारा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

उभौ—स्वर्ग्योऽयमस्तु ।

प्रथमः—काश्यप ! आगम्यताम् । इमं वृत्तान्तं तत्रभवते राघवाय निवेदयिष्यावः ।

द्वितीयः—बाढम् । प्रथमः कल्पः । (निष्क्रान्ता)

(विष्कम्भः)

(ततः प्रविशति काञ्चुकीयः)

काञ्चुकीयः—क इह भोः ! काञ्चनतोरणद्वारमशून्यं कुरुते ?

(प्रविश्य)

प्रतिहारी—आर्य ! अहं विजया । किं क्रियताम् ?

अय्य ! अहं विजया । किं करीअदु ?

काञ्चुकीयः—विजये ! निवेद्यतां निवेद्यतां भरतकुमाराय—'एष खलु

राजस्य दीप्तम् सुसमिद्धम् तेजः पराक्रमप्रतापम् अवधूय स्वपराक्रमप्रदर्शनेनाघः कृत्वा नागेन्द्रभग्नवनवृक्ष इव वारणभज्यमानकाननतरुरिव अवसन्नः अवसादं प्राप्य पतितः । अत्रैष जटायुरिति पूर्वोक्तेन सम्बन्धः । एवञ्च नास्ति सीतोद्धारं प्रत्याशेति खेदो व्यक्तः, वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ ४ ॥

स्वर्ग्यः स्वर्गार्हः, परोपकारत्यक्तदेहत्वात् पुण्यगत्यर्हः । प्रथमः कल्पः आद्यो विधिः सर्वप्रथममनुष्ठेयः ।

विष्कम्भ इति—वृत्तवर्त्तिष्यमाणकथांशनिदर्शकः । स चात्र शुद्धो बोध्यः मध्यमपात्रप्रयोजितत्वात् ।

काञ्चनतोरणद्वारम् सुवर्णरचितं बहिर्द्वारम् 'तोरणोऽस्त्री बहिर्द्वारम्' इत्यमरः

उत्पाटित वनवृक्षकी तरह उखाड़ फेंका गया है ॥ ४ ॥

दोनों—इसको स्वर्ग मिले ।

पहला—काश्यप, आओ इस समाचारकी सूचना रामको दें ।

दूसरा—बहुत अच्छा ! यह तो सबसे पहला कार्य है । (दोनोंका प्रस्थान)

(मिश्रविष्कम्भक)

(कञ्चुकीका प्रवेश)

कञ्चुकी—काञ्चनद्वार तोरणपर कौन नियुक्त है ? (प्रतिहारीका प्रवेश)

प्रतीहारी—आर्य, मैं हूँ विजया, कहिये क्या आज्ञा है ।

कञ्चुकी—विजये, राजकुमार भरतको सूचित कर दो कि वनमें रामके दर्शनार्थ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

रामदर्शनार्थं जनस्थानं प्रस्थितः प्रतिनिवृत्तस्तत्रभवान् सुमन्त्र' इति ।

प्रतिहारी—आर्य ! अपि कृतार्थस्तातसुमन्त्र आगतः ?

अय्य ! अवि किदत्थो तादसुमन्तो आअदो ?

काञ्चुकीयः—भवति ! न जाने ।

हृदयस्थितशोकाग्निशोषिताननमागतम् ।
दृष्ट्वैवाकुलमासीन्मे सुमन्त्रमधुना मनः ॥ ५ ॥

प्रतिहारी— आर्य ! एतच्छ्रुत्वा पर्याकुलमिव मे हृदयम् ।

अय्य ! एदं सुणिअ पय्याउलं विअ मे हिअअं ।

काञ्चुकीयः—भवति ! किमिदानीं स्थिता ? शीघ्रं निवेद्यताम् ।

प्रतिहारी—आर्य ! इयं निवेदयामि । (निष्क्रान्ता)

अय्य ! इअं णिवेदेमि ।

काञ्चुकीयः—(विलोक्य) अये ! अयमत्रभवान् भरतकुमारः सुम-

जनस्थानम् तपोवनाश्रमपदम् । प्रस्थितः गतः ।

कृतार्थः कृतः सम्पादितः, अर्थः रामदर्शनलक्षणं प्रयोजनं येन तादृशः, रामदर्शनसन्तुष्ट इति भावः ।

हृदयस्थितेति—हृदये स्थितेन वर्त्तमानेन शोकरूपेणाग्निना शोषितमाननं मुखं यस्य तथाभूतम् (अधुना) आगतं सुमन्त्रं दृष्ट्वा एव दर्शनकालमेव मम मन आकुलमासीत् अभवत् । एतेन तन्मुखमङ्गिप्रभृतिभिः कृतार्थता न विद्यते, तेन न जाने कृतार्थोऽकृतार्थो वा प्रत्यावृत्तः सुमन्त्र इति भावः ॥ ५ ॥

स्थिता कुण्ठिता ।

सुमन्त्रागमनजनितकुतूहलहृदयः सुमन्त्रस्यागमनेन जनितमुत्पादितं कुतूहलम्

गये हुये सुमन्त्र लौट आये हैं ।

प्रतिहारी—आर्य, क्या बात सुमन्त्र अपना कार्य करके लौटे हैं ।

कञ्चुकी—अजी, मुझे ठीक नहीं मालूम ।

सद्यः परावृत्त सुमन्त्र का, हृदयस्थित शोकानल से झुलसा हुआ मुखमण्डल देखकर मेरा हृदय तो भयभीत हो उठा ॥ ५ ॥

प्रतिहारी—आर्य, यह सुनकर मेरा हृदय तो सन्न हो रहा है ।

कञ्चुकी—खड़ी क्यों हो ? शीघ्र निवेदन करो ।

प्रतिहारी—ये लीजिये, अभी निवेदन करती हूँ । (प्रस्थान)

कञ्चुकी—ऐं, यह हैं भरत कुमार, जिनके शरीरपर वल्कल और शिरपर भूरी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

न्त्रागमनजनितकुतूहलहृदयश्चीरवल्कलवसनश्चित्रजटापुञ्जपिञ्जरितोत्तमाङ्ग इत एवाभिवर्तते । य एषः—

प्रख्यातसद्गुणगणः प्रतिपक्षकालस्तिग्मांशुवंशतिलकस्त्रिदशेन्द्रकल्पः।
आज्ञावशादखिलभूपरिरक्षणस्थः श्रीमानुदारकलभेभसमानयानः॥६॥

(ततः प्रविशति भरतः प्रतिहारी च)

भरतः—विजये ! एवमुपगतस्तत्रभवान् सुमन्त्रः ?

गत्वा तु पूर्वमयमार्यनिरीक्षणार्थं

उत्कण्ठातिशयो यत्र तत् सुमन्त्रागमनजनितकुतूहलम् तादृशं हृदयं यस्य सः चीरवल्कलवसनः चीरवल्कले वृक्षत्वमुखभेदकल्पिते वसने परिधानीयोत्तरीये यस्य सः । चित्रजटापुञ्जपिञ्जरितोत्तमाङ्गः चित्राणां नानाप्रकाराणां जटानां पुञ्जेन समूहेन पिञ्जरितं पीतरक्ततां नीतम् उत्तमाङ्गं शिरो यस्य स तथाभूतः ।

प्रख्यातेति—प्रख्यातो जगद्विदितो गुणगणः शौर्यौदार्यादिसद्गुणसमवायो यस्य तथाभूतः, प्रतिपक्षाणां विरुद्धानां शत्रूणां कालः साक्षान्मृत्युस्वरूपः, तिग्मांशुः सूर्यस्तस्य वंशस्तत्प्रथमपुरुषतया प्रवर्त्तितोऽन्ववायस्तत्र तिलको भूषणायमानः, त्रिदशेन्द्रकल्पः सुराधिपादीषदूनः, आज्ञावशात् भ्रातुराज्ञाया आदेशस्य वशे अधीनतायां स्थित्वेत्यर्थः, वशेऽवस्थायेत्यर्थविवक्षया ल्यब्लोपे पञ्चमी प्रयुक्ता । अखिलभूपरिरक्षणस्थः समस्तमहीमण्डलपालनावहितः, श्रीमान् प्रशस्तश्रीकः उदारो रमणीयविग्रहो यः कलभेभः त्रिंशद्वर्षवयस्कः करी तेन समानं तद्गमनोपमेयं यानं गमनं यस्य सः । एष भरतोऽस्तीति बोध्यम् । सर्वैरेव विशेषणैर्भरतस्यातिभूमिं गता सत्ख्यातिरुक्ता । वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ ६ ॥

उपगतः उपस्थितः, तत्रभवान् पूज्यः ।

गत्वेति—पूर्वमितः प्राचीने काले आर्यस्य रामस्य निरीक्षणार्थं दर्शनार्थं गत्वा

जटायें हैं, और जो सुमन्त्रके आनेकी खबर पाकर इधर ही आ रहे हैं ।

जो भरत लोकविख्यात सद्गुण, विपक्षियोंके लिए यमतुल्य, सूर्यवंशतिलक, इन्द्रके समान, श्रीरामकी आज्ञासे पृथ्वीकी रक्षामें तत्पर जवाँमर्द तथा गजराज के सदृश गमन वाले हैं ॥ ६ ॥

भरत—विजया, ऐसा, क्या आर्य सुमन्त्र लौट आये ?

आर्यके दर्शनोंके लिए पहले गये हुए मुझे वहाँसे आर्य द्वारा प्रदत्त चरण-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

लब्धप्रसादशपथे मयि सन्निवृत्ते ।
दृष्ट्वा किमागत इहात्रभवान् सुमन्त्रो
रामं प्रजानयनबुद्धिमनोभिरामम् ॥ ७ ॥

काञ्चुकीयः—(उपगम्य) जयतु कुमारः ।

भरतः—अथ कस्मिन् प्रदेशे वर्तते तत्रभवान् सुमन्त्रः ?

काञ्चुकीयः—असौ काञ्चनतोरणद्वारे ।

भरतः—तेन हि शीघ्रं प्रवेश्यताम् ?

काञ्चुकीयः—यदाज्ञापयति कुमारः । (निष्क्रान्तौ)

(ततः प्रविशति सुमन्त्रः प्रतिहारी च)

दण्डकारण्यभूमिं प्रपद्य लब्धप्रसादशपथे लब्धः प्रसादः पादुकारूपः प्रसन्नताङ्कः शपथः चतुर्दशहायनात्मकवनवासाध्यवसानेऽहमागत्य राज्यं प्रतिग्रहीष्यामीत्येवं लक्षणो वागनुग्रहश्च येन तादृशे मयि सन्निवृत्ते रामाधिष्ठितकाननात् प्रत्यागते अयं सुमन्त्रः प्रजानां जनानां नयनानां नेत्राणां बुद्धीनां (ग्राहिका प्रत्यक्षानन्तरप्रकटप्रभावा चेतना बुद्धिः) धियां मनसां हृदयानाञ्च अभिरामं रमणीयम् रामं दृष्ट्वा प्रत्यक्षीकृत्य इह राजधान्याम् आगतः प्राप्तः किम् ? यद्येवं कृतार्थीकृता वयं तद्विषयकवृत्तान्तावगमावसरलाभादिति भावः । एतेन भरतस्य रामविषयक उत्कटकोटिको भावो व्यक्तः । बुद्धिमनसोः पृथगुपादानं ग्रहणस्मरणावस्थाभेदविवक्षया कृतं, तेन रामस्य प्रथमदर्शनसमये स्मरणकाले च प्रजानन्दजनकतया लोकानुरागप्रकर्षः प्रतिपादितः । वृत्तमनन्तरोक्तम् ॥ ७ ॥

पादुकारूप प्रसाद तथा चौदह वर्षोंके बाद राज्य सम्भालनेका आश्वासन लेकर आनेपर यह आर्य सुमन्त्र प्रजाके नयन, बुद्धि तथा मनके अभिराम श्रीरामका दर्शन कर लौटे हैं क्या ? ॥ ७ ॥

कञ्चुकी—(समीप जाकर) जय हो कुमार की ।

भरत—क्यों, आर्य सुमन्त्र किधर हैं ।

कञ्चुकी—वे स्वर्णतोरणद्वारपर खड़े हैं ।

भरत—उन्हें शीघ्र भीतर बुला लाओ ।

कञ्चुकी—जो आज्ञा ।

(दोनोंका प्रस्थान)

(सुमन्त्र तथा प्रतिहारीका प्रवेश)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

सुमन्त्रः—(सशोकम्) कष्टं भोः ! कष्टम् ।

नरपतिनिधनं मयानुभूतं नृपतिसुतव्यसनं मयैव दृष्टम् ।
श्रुत इह स च मैथिलीप्रणाशो गुण इव बह्वपराद्धमायुषा मे ॥ ८ ॥

प्रतिहारी—(सुमन्त्रमुद्दिश्य) एत्वेत्वार्यः । एष भर्ता । उपसर्पत्वार्यः ।

एदु एदु अय्यो । एसो भट्टा । उपसप्पदु अय्यो ।

सुमन्त्र—(उपसृत्य) जयतु कुमारः ।

भरतः—तात ! अपि दृष्टस्त्वया लोकाविष्कृतपितृस्नेहः । अपि दृष्टं द्विधाभूतमरुन्धतीचारित्रम् । अपि दृष्टं त्वया निष्कारण-

---

नरपतीति—नरपते राज्ञो दशरथस्य निधनं मरणम् मया सुमन्त्रेणानुभूतम् प्रत्यक्षीकृतम्, नृपतिसुतानां राममरतलक्ष्मणानां व्यसनं दुःखम् (रामस्य वनगमनम्, भरतस्य ततोऽप्यधिककष्टसाध्यव्रतधारणम्, लक्ष्मणस्य रामानुगमनजन्यवनवासात्मकम्) मयैव दृष्टम् । इह अत्रायुषि सीताप्रणाशः सीतापहारश्च श्रुतः, (तदेवम्) मे आयुषा गुणे बह्वपराद्धम् आयुषो दीर्घत्वं गुणस्य एव चात्र दोषो जात इति भावः । विशेषजिज्ञासायां द्रष्टव्या चतुर्थाङ्कगताष्टादशपद्यव्याख्या ॥ ८ ॥

लोकाविष्कृतपितृभक्तिः लोके प्रकटितपितृभक्तिः, कीर्त्तितपितृभक्तिर्वा, अर्थतः राम एव विवक्षितः, तस्यैव तथात्वात्प्रकृतत्वाच्च । अरुन्धतीचारित्र तदभिधानाया वसिष्ठभार्यायाः प्रसिद्धं पातिव्रत्यम् । द्विधाभूतम् अपरेण रूपेण सीतालक्षणेन वर्तमानम् । एतेन सीतापातिव्रत्यस्यारुन्धतीपातिव्रत्यसादृश्यं प्रतिपादितम् । निष्कारणविहि-

---

सुमन्त्र—(शोकपूर्वक) शोक, हा शोक !

मेरे फूटे भाग्यने महाराजकी मृत्यु देखनेको मुझे बाध्य किया, रामवनगमनका खेद भी भोगना पड़ा, और अब सीताका हरण भी सुन रहा हूँ। हाय, मेरी इस लम्बी आयुने गुणके बदले अपराध ही अधिक किये ॥ ८ ॥

प्रतिहारी—(सुमन्त्रको लक्ष्य करके) आइये आइये, ये हैं भर्त्ता, इनसे मिल लें ।

सुमन्त्र—(समीप जाकर) जय हो कुमार की ।

भरत—तात, क्या आपने लोकविख्यात पितृभक्तके दर्शन किये ? आपको द्वितीय अरुन्धतीचरित्र देखनेका अवसर मिला ? क्या आपने अकारण वनवास

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitized by eGangotri

विहितवनवासं सौभ्रात्रम् ।

(सुमन्त्रः सचिन्तस्तिष्ठति)

प्रतिहारी—भर्तृदारकः खल्वार्यं पृच्छति ।

भट्टिदारओ खु अय्यं पुच्छदि ।

सुमन्त्रः—भवति ! किं माम् ?

भरतः—(स्वगतम्) अतिमहान् खल्वायासः । सन्तापाद् भ्रष्टहृदयः । (प्रकाशम्) अपि मार्गात् प्रतिनिवृत्तस्तत्रभवान् ?

सुमन्त्रः—कुमार ! त्वन्नियोगाद् रामदर्शनार्थं जनस्थानं प्रस्थितः कथमहमन्तरा प्रतिनिवर्तिष्ये ।

वनवासम् । पित्राज्ञादिकारणमन्तरेणैव वनवासभाजनम् । मूर्त्तिमान् भ्रातृस्नेहो लक्ष्मण इति प्रष्टुराशयः (स हि लक्ष्मणो भ्रातृस्नेहमात्रेण वनवासमाश्रितवानिति तथोक्तिः) ।

आर्यं पृच्छति एतेनावश्यकं तत्र भवतो ध्यानदानमिति सुमन्त्र उद्बोधितः ।

मामिति—पृच्छतीति शेषः, एतेन प्रश्नेन सुमन्त्रस्य नितान्तचिन्ताचुम्बितस्वान्ततोक्ता ।

आयासः खेदः । भ्रष्टहृदयः भ्रष्टं स्थानाच्चलितं हृदयं चित्तं यस्य तादृशः एतेनासावघानताहेतुतया सन्ताप ऊहितः, स च रामदर्शनार्थंवनगमनाज्ञापालनासामर्थ्यकृत एव । तथा चाग्रिमः प्रश्नः ।

रामदर्शनार्थम् केवलं रामदर्शनार्थमेव वनगमनं कष्टकरं मे, तत्र तदर्थाय त्वदाज्ञाप्यासीत्, अथाप्यहं प्रस्थाय मध्ये मार्गात् परावर्तेयेति सर्वथाऽसम्भाव्यमित्यर्थः ।

स्वीकार करनेवाले भ्रातृस्नेहसे साक्षात्कार किया ?

(सुमन्त्र चिन्ताग्रस्त-सा खड़ा रहता है)

प्रतिहारी—राजकुमार आपसे ही पूछते हैं ।

सुमन्त्र—मुझसे ?

भरत—(स्वगत) बड़ी तकलीफ है । शोकसे इनका हृदय अपने स्थान पर नहीं है । (प्रकट) क्या आप बीचमें से ही लौट आये ?

सुमन्त्र—कुमार, तुम्हारे आदेशसे रामको देखने वनको चला था, बीचसे कैसे लौट आता ?

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भरतः—किन्नु खलु क्रोधेन वा लज्जया वात्मानं न दर्शयन्ति ?

सुमन्त्रः—कुमार !

कुतः क्रोधो विनीतानां लज्जा वा कृतचेतसाम् ।
मया दृष्टं तु तच्छून्यं तैर्विहीनं तपोवनम् ॥ ९ ॥

भरतः—अथ क्व गता इति श्रुताः ।

सुमन्त्रः—अस्ति किल किष्किन्धा नाम वनौकसां निवासः । तत्र गता इति श्रुताः ।

भरतः—हन्त ! अविज्ञातपुरुषविशेषाः खलु वानराः । दुःखिताः प्रतिवसन्ति ।

सुमन्त्रः—कुमार ! तिर्यग्योनयोऽप्युपकृतमवगच्छन्ति ।

क्रोधेन राज्यभ्रंशनादिकारणीभूतास्मद्द्वेषेण । लज्जया वनवासस्वरूपस्वजीवनस्तरह्रासोद्भवया ह्रिया ।

कुत इति—विनीतानाम् विनयावनतानाम्, कृतं सुसंस्कृतं चेतः येषां तेषां लज्जा कुतः ? नोपपद्यत इति भावः । एवं च तददर्शनं न क्रोधेन न लज्जया वा जनितम्, किन्तु स्थानपरित्यागेनेत्याह—मयेति । तैर्विहीनं विरहितम्, अत एव शून्यं रिक्तमिव प्रतीयमानम्, अश्रीकमित्यर्थः तद्वनं मया दृष्टं विलोकितम् ॥ ९ ॥

अविज्ञातपुरुषविशेषाः अविज्ञातः अविदितः पुरुषविशेषः पुरुषश्रेष्ठो यैस्तथाभूताः । अथवा पुरुषविशेषः पुरुषवैशिष्ट्यम् ।

उपकृतमवगच्छन्ति कृतज्ञा भवन्ति ।

भरत—कहीं वे लोग क्रोध और संकोचके कारण अपनेको छिपाकर तो नहीं रहते ?

सुमन्त्र—कुमार,—

विनयीजनोंको क्रोध कहाँ और निर्मल अन्तःकरणमें लज्जाका प्रवेश कहाँ ? किन्तु मैंने जब तपोवन देखा तब वह उन लोगोंसे रहित तथा सुनसान था ॥ ९ ॥

भरत—तो फिर वे चले कहाँ गये, कुछ खबर है ?

सुमन्त्र—वनवासी वानरोंका किष्किन्धा नामक एक स्थान है । सुना है—वहीं चले गये ।

भरत—वानरोंको पुरुष परिचय नहीं होता । कष्टसे रहते होंगे ।

सुमन्त्र—पशु-पक्षी भी उपकार मानते हैं ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitized by eGangotri

भरतः—तात ! कथमिव ?

सुमन्त्रः—सुग्रीवो भ्रंशितो राज्याद् भ्रात्रा ज्येष्ठेन बालिना ।
हृतदारो वसञ्छैले तुल्यदुःखेन मोक्षितः ॥ १० ॥

भरतः—तात ! कथं तुल्यदुःखेन नाम ?

सुमन्त्रः—(स्वगतम्) हन्त ! सर्वमुक्तमेव मया । (प्रकाशम्) कुमार । न खलु किञ्चित् । ऐश्वर्यभ्रंशतुल्यता ममाभिप्रेता !

भरतः—तात ! किं गूहसे ? स्वर्गं गतेन महाराजपादमूलेन शापितः स्याः, यदि न सत्यं ब्रूयाः ।

सुग्रीव इति । ज्येष्ठेन अग्रजन्मना भ्रात्रा बालिना राज्याद् भ्रंशितः अपहृत-राज्यलक्ष्मीकः हृतदारः स्वायत्तीकृतपत्नीकः शैले ऋष्यमूकाभिधाने पर्वते वसन् सुग्रीवः तुल्यं समानं दुःखं हृतदारत्वलक्षणं यस्य तेन रामेण मोक्षितः मोक्षं गमितः । बालिनं हत्वा तारानामस्त्रिया राज्येन च योजित इत्यर्थः । अत्र रामस्य सुग्रीवतुल्यदुःखतोक्त्या तस्यापीहाभ्यन्तरे भार्याऽपहृतेत्युक्तम् ॥ १० ॥

सुमन्त्रोक्तं 'हृतदारो वसञ्छैले तुल्यदुःखेन मोक्षितः' इति वचः श्रुत्वा साशङ्को भरतस्तं पृच्छति—तातेति । तुल्यदुःखेन समानकष्टेन इत्याहेति ।

सुमन्त्रः स्वोक्तिमनुचितां मन्यमानो मनसि विचारयति—हन्तेति । हन्तेति खेदे । तुल्यदुःखेनेत्यादि कथितवता मया सर्वमुक्तप्रायमिति नोचितं कृतमिति पुनस्तदन्यथा समर्थयन्नाह—कुमारेत्यादिना । ऐश्वर्यतुल्यभ्रंशता राज्यसम्पदो द्वयोर्भ्रष्टतया तुल्यतेति मत्कथनस्याशय इति ।

स्ववाक्यमन्यथाकृत्य समर्थितवन्तं सुमन्त्रं भरतस्तथ्यभाषणायोपायान्तरशून्यतया पितृशपथं दत्त्वा पृच्छति तातेत्यादि । गूहसे गोपयसि । स्वर्गं गतेन मृतेन, महाराज

भरत—तात, सो कैसे ?

सुमन्त्र—सुग्रीवको उसीके बड़े भाई बालिने राज्यच्युत कर दिया था और उसकी स्त्री भी छीन ली थी। उस सुग्रीवको तत्समानधर्मा रामने क्लेशमुक्त कर दिया है ॥ १० ॥

भरत—तात, 'सुग्रीवसमानधर्मा राम' इसका क्या आशय ?

सुमन्त्र—(स्वगत) हाँ ! मैंने सब बात खोल दी (प्रकट) कुछ नहीं, मेरा अभिप्राय राज्यच्युति की समानता है ।

भरत—तात, सच्ची बात क्यों छिपाते हो ? तुमको स्वर्गवासी महाराजकी शपथ है, यदि मिथ्या बताया ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

सुमन्त्रः—का गतिः। श्रूयतां,

वैरं मुनिजनस्यार्थे रक्षसा महता कृतम्।
सीता मायामुपाश्रित्य रावणेन ततो हृता ॥ ११ ॥

भरतः—कथं हृतेति ? (मोहमुपगतः)

सुमन्त्रः—समाश्वसिहि, समाश्वसिहि।

भरतः—(पुनः समाश्वस्य) भोः कष्टम्।

पित्रा च बान्धवजनेन च विप्रयुक्तो दुःखं महत् समनुभूय वनप्रदेशे।
भार्यावियोगमुपलभ्य पुनर्ममार्यो जीमूतचन्द्र इव खे प्रभया वियुक्तः॥

पादमूलेन मत्पितृचरणेन शापितः शपथं लम्भितः।

भरतेनैवं दशरथशपथं लम्भितः सुमन्त्रः सम्प्रति सीतापहरणगोपनस्याशक्यत्वात्सानुतापमाह—केति गतिरवस्था मम तव भरतस्य वेति शेषः।

वैरमिति—मुनिजनस्य ऋषिजनस्यार्थे कृते (रामेण) महता बलिना रक्षसा निशाचरेण रावणेनेत्यर्थः, वैरं विरोधः कृतम्। ततस्तस्माद्रावणेन दशाननेन मायां कपटम्, उपाश्रित्य सीता राघवकुलवधूर्मैथिली हृता चोरिता ॥ ११ ॥

सीताहरणमुपश्रुत्य भृशमाहतो भरत आह—कथमिति।

पित्रेति—मम आर्यः रामः पित्रा बान्धवजनेन च विप्रयुक्तो दूरीकृतो वनप्रदेशे काननोद्देशे महत् दुस्सहं दुःखं क्लेशमनुभूय लब्ध्वा भार्यावियोगं सीताविप्रवासजन्यपत्नीविरहमुपलभ्य आसाद्य पुनः खे जीमूतचन्द्र इव मेघावृतशशीव प्रभया ज्योत्स्नया वियुक्तो जात इति शेषः। यथाऽऽकाशे वर्त्तमानस्य शशिनो मेघेनावरणे तत्प्रभा वियुज्य तं तापयति तथैव पित्रा बान्धवैश्च वियुज्य खेदमनुभवतो रामस्य सीताविरहो भूयः परितापकरो जात इति भावः। अत्रोपमाऽलङ्कारेण मेघावरणे चन्द्रस्य प्रभयेव

सुमन्त्र—लाचारी है। सुनिये—

मुनियोंकी रक्षाके कारण बलवान् राक्षसोंसे शत्रुता हो गयी थी। इसी कारण रावणने कपटवेष धारणकर सीताका हरण कर लिया ॥ ११ ॥

भरत—क्या सीता हर ली गई ! (मूर्च्छित होता है)

सुमन्त्र—धैर्य धरें, धैर्य धरें।

भरत—(फिर संभलकर) हा शोक !

मेरे आर्य राम पिता तथा बान्धवों से बिछुड़े, वनों में दारुण दुःख सहे और अब भार्यावियोग प्राप्त कर गगनमण्डल में मेघावृत चन्द्रमाके समान प्रभाहीन हो गये ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitized by eGangotri

भोः ! किमिदानीं करिष्ये ? भवतु, दृष्टम् ! अनुगच्छतु मां तातः !

सुमन्त्रः—यदाज्ञापयति कुमारः ।

(उभौ परिक्रामतः)

सुमन्त्रः—कुमार ! न खलु न खलु गन्तव्यम् । देवीनां चतुश्शालमिदम् ।

भरतः—अत्रैव मे कार्यम् । भोः ! क इह प्रतिहारे ?

(प्रविश्य)

प्रतिहारी—जयतु भर्तृदारकः । विजया खल्वहम् ।

जेदु भट्टिदारओ । विजआ खु अहं ।

भरतः—विजये ! ममागमनं निवेदयात्र भवत्यै ।

प्रतिहारी—कतमस्यै भट्टिन्यै निवेदयामि ?

कदमाए भट्टिणीए णिवेदेमि ?

भरतः—या मां राजानमिच्छति ।

रामस्य पुनः सम्भवति सीतया संयोगरूपं वस्तुव्यज्यते । वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥१२॥

चतुश्शालम् गृहप्रकारभेदः । अन्योन्याभिमुखशालाचतुष्टयम् ।

राजानमिच्छति—कस्यै देव्यै त्वदागमनं निवेदयामीति प्रश्नस्य भरतेनेत्थमुत्तरणे मद्राज्यकामनाकमनर्थमुपस्थापितवतीति मया वक्तुं कैकेय्येव द्रष्टव्येति गूढो भावः ।

हाय ! अब क्या किया जाय ? अथवा सोच लिया,—आप मेरे साथ आवें ।

सुमन्त्र—जो आज्ञा ?

(दोनों घूमते हैं)

सुमन्त्र—(भरतको अन्तःपुरकी ओर जाते देखकर) कुमार, मत जाइये, यह देवियोंका अन्तःपुर है ।

भरत—यहीं मुझे कार्य है । अरे, यहाँ द्वार पर कौन है ?

(प्रतिहारीका प्रवेश)

प्रतिहारी—कुमारकी जय हो । मैं हूँ विजया ।

भरत—विजया, माताजीको मेरे आनेकी सूचना दो ।

प्रतिहारी—कौन-सी महारानीजीको सूचना दूँ ।

भरत—जो मुझे राजा देखना चाहती हैं ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

प्रतिहारी—(आत्मगतम्) हं किन्नु खलु भवेत् ? (प्रकाशम्) भर्तः ! तथा !
हं किणु खु भवे ? भट्टा ! तह ।

(निष्क्रान्ता)

(ततः प्रविशति कैकेयी प्रतिहारी च)

कैकेयी—विजये ! मां प्रेक्षितुं भरत आगतः ?
विजए ! मं पेक्खिदुं भरदो आअदो ?

प्रतिहारी—भट्टिनि ! तथा भर्तृदारकस्य रामस्य सकाशात्
भट्टिणि ! तह । भट्टिदारअस्स रामस्स सआसादो
तातसुमन्त्र आगतः । तेन सह भर्तृदारको भरतो
तादसुमन्तो आअदो । तेन सह भट्टिदारओ भरदो
भट्टिनीं प्रेक्षितुमिच्छति किल ।
भट्टिणिं पेक्खिदुं इच्छति किल ।

कैकेयी—(स्वगतम्) केन खलूद्घातेन मामुपालप्स्यते भरतः ?
केण खु उग्घादेण मं उवालम्भिस्सदि भरदो ?

प्रतिहारी—भट्टिनि ! किं प्रविशतु भर्तृदारकः ?
भट्टिणि ! किं पविसदु भट्टिदारओ ?

कैकेयी—गच्छ । प्रवेशयैनम् ।
गच्छ । पवेसेहि णं ।

प्रतिहारी—भट्टिनि ! तथा (परिक्रम्योपसृत्य) जयतु भर्तृदारकः ।
भट्टिणि ! तह जेदु भट्टिदारओ ।

उद्घातेन प्रस्तावेन । उपालप्स्यते धिक्करिष्यति ।

प्रतिहारी—(स्वगत) न जाने क्या बात हो ? (प्रकट) आपकी जो आज्ञा । (जाती है)

(बाद कैकेयी तथा प्रतिहारी का प्रवेश)

कैकेयी—विजया, क्या भरत मुझसे मिलने आया है ?

प्रतिहारी—रानीजी, जी हाँ । राजकुमार रामके पाससे सुमन्त्र लौट आये हैं । सम्भव है उनके साथ राजकुमार रानीजी से मिलना चाहते हों ।

कैकेयी—न जाने किस उपक्रमसे भरत मुझे उलहना दे ?

प्रतिहारी—रानीजी, क्या राजकुमार आवें ?

कैकेयी—जाओ भीतर बुला लाओ ।

प्रतिहारी—रानीजी जो आज्ञा । (चलकर तथा पास आकर) जय हो

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitized by eGangotri

प्रविशतु किल ।
पविसदु किल ।

भरतः—विजये, किं निवेदितम् ?

प्रतिहारी—आम् ।

भरतः—तेन हि प्रविशावः । (प्रविशतः)

कैकेयी—जात ! विजया मन्त्रयते—रामस्य सकाशात् सुमन्त्र
जाद ! विअआ मन्तेदि—रामस्य सआसादो सुमन्तो
आगत इति ।
आअद त्ति ।

भरतः—अतः परं प्रियं निवेदयाम्यत्रभवत्यै ।

कैकेयी—जात ! अपि कौसल्या सुमित्रा च शब्दयितव्ये ।
जाद ! अपि कोसल्ला सुमित्ता अ सद्दावइदव्वा ।

भरतः—न खलु ताभ्यां श्रोतव्यम् ।

कैकेयी—(आत्मगतम्) हं किन्नु खलु भवेद् ? (प्रकाशम्) भण जात !
हं किं णु हु भवे ? भणाहि जादे !

शब्दयितव्या आकारयितव्या, रामसकाशादागतजनातीतवृत्तान्तस्य तयापि श्रोतुमिष्यमाणत्वान्मातृभावेनौचित्याच्च । ताभ्याम् कौसल्यासुमित्राभ्याम् । भवत्या एव रामनिष्कासनपुण्योपचयशालितया तत्र रामदुःखगाथाश्रवणेऽधिकारो न तयोरिति भरतस्य सोपालम्भं तात्पर्यम् ।

राजकुमार की, आप भीतर चलें ।

भरत—विजया, क्या सूचना दे दी ?

प्रतिहारी—जी हाँ,

भरत—तो भीतर चलें ।

(दोनों भीतर जाते हैं)

कैकेयी—वत्स, विजया कहती है—रामके पाससे सुमन्त्र आये हैं ?

भरत—आपको इससे भी अधिक प्रिय बात सुनाता हूँ ।

कैकेयी—वत्स, तो क्या कौसल्या और सुमित्राको भी बुला लिया जाय ?

भरत—नहीं, उनके सुननेकी बात नहीं ।

कैकेयी—(स्वगत) हाय, न जाने, ऐसी कौन-सी बात है ? (प्रकट) सुनाओ बेटा ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भरतः—श्रूयतां,

यः स्वराज्यं परित्यज्य त्वन्नियोगाद् वनं गतः।
तस्य भार्या हृता सीता पर्याप्तस्ते मनोरथः॥ १३॥

कैकेयी—हं !

भरतः—हन्त भोः ? सत्त्वयुक्तानामिक्ष्वाकूणां मनस्विनाम्।
वधूप्रधर्षणं प्राप्तं प्राप्यात्रभवतीं वधूम्॥ १४॥

कैकेयी—(आत्मगतम्) भवतु, इदानीं कालः कथयितुम्। (प्रकाशम्)
भोदु दाणि कालो कहेउं।

जात ! त्वं न जानासि महाराजस्य शापम्।
जाद ! तुवं ण जाणासि महाराअस्स सावं।

यः राज्यमिति—यः रामः त्वन्नियोगात् त्वत्प्रेरणावशात् स्वस्यात्मनो राज्यं परित्यज्य वनं गतस्तस्य भार्या सीता (रावणेन) हृता, (इति) ते तव मनोरथः पर्याप्तः अभिलाषः पूरितः। रामस्य वनवासे हेतुत्वं गतायास्तव तद्भार्याहरणवृत्तान्तोऽपि श्रोतुमिष्टः स्यादिति भरतस्य सोल्लुण्ठनं वचनम्॥ १३॥

'हम्' सीताहरणश्रवणे खेदप्रकाशकमव्ययपदमिदम्।

हन्तेति—अत्रभवतीम् पूजनीयाम्भवतीम् (विपरीतलक्षणया निन्दनीयाचरणां त्वाम्) वधूं प्राप्य वधूभावेन लब्ध्वा सत्त्वयुक्तानां पराक्रमशालिनां मनस्विनाम् मानवताम् (पूर्वं कदापि मानभङ्गावसरमीदृशमप्राप्तवताम्) इक्ष्वाकूणां तदास्य वंशोद्भवानाम् वधूप्रधर्षणं स्त्रीहरणं प्राप्तमुपनतम्। अतो धिक् त्वामिति भावः॥

शापम् श्रवणस्य पित्रा प्रदत्तम्। रामस्य वनगमने सः शाप एव कारणं नाहमिति त्वत्कर्तृकं मदुपालम्भनं सर्वं त्वदज्ञानमूलकमित्याशयः।

भरत—सुनो—

जो राम तुम्हारी आज्ञा से राजपाट छोड़कर बन चला गया था, उसकी भार्या सीता (रावण द्वारा) हर ली गई है। अब तुम्हारा मनोरथ पूर्ण हुआ॥१३॥

कैकेयी—अहो ?

भरत—हा शोक ? तुम जैसी बहू को पाकर महापराक्रमी और मानवाले इक्ष्वाकुवंश को बधूहरण के दिन भी देखने पड़े॥ १४॥

कैकेयी—(स्वगत) अच्छा, अब रहस्य कह देने का मौका आ गया। (प्रकट) वत्स, तुम महाराज के शाप की बात नहीं जानते।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भरत.—किं शप्तो महाराजः ?

कैकेयी—सुमन्त्र ! आचक्ष्व विस्तरेण ।

सुमन्त ! आमक्ख वित्थरेण ।

सुमन्त्रः—यदाज्ञापयति भवती । कुमार ! श्रूयताम्—पुरा मृगयां गतेन महाराजेन कस्मिंश्चित् सरसि कलशं पूरयमाणो वनगज-बृंहितानुकारिशब्दसमुत्पन्नवनगजशङ्कया शब्दवेधिना शरेण विपन्नचक्षुषो महर्षेश्चक्षुर्भूतो मुनितनयो हिंसितः ।

भरतः—हिंसित इति । शान्तं शान्तं पापम् । ततस्ततः ?

सुमन्त्रः—ततस्तमेवंगतं दृष्ट्वा,

तेनोक्तं रुदितस्यान्ते मुनिना सत्यभाषिणा ।
यथाहं भोस्त्वमप्येवं पुत्रशोकाद् विपत्स्यसे ॥१५॥ इति ।

मृगयाम् आखेटकम् । बृंहित करिगर्जितम् । तदनुकरोति सादृश्येनानुहरति भूतेन शब्देन हेतुभूतेन उत्पन्नो वनगजोऽयमिति शङ्काभ्रमः तथा । शब्दवेधिना शब्दानुसारेण लक्ष्यमदृष्ट्वैव लक्ष्यवेधिना । विपन्नचक्षुषोऽन्धस्य महर्षेः ।

तेनोक्तमिति—सत्यं भाषितुं शीलं यस्य तेन अवितथवचनेन रुदितस्य रोदनस्यान्ते यथाऽहं पुत्रशोकाद् (विपद्ये) एवं त्वमपि विपत्स्यसे मरिष्यसि । इत्येवमुक्तम् अभिशप्तम् । तथा चात्र संवदति कालिदासः—'दिष्टान्तमाप्स्यति भवानपि पुत्रशोकादन्ते वयस्यहमिवेति' ॥ १५ ॥

भरत—क्या महाराज को शाप था ?

कैकेयी—सुमन्त्र, विस्तारपूर्वक कह दो ।

सुमन्त्र—महारानी की जो आज्ञा । कुमार, सुनिये—महाराज एक समय शिकार को गये थे, उन्होंने अन्धमुनि के नयनरूप पुत्र श्रवण को वनगज के भ्रम से मार डाला, जब कि वह जलाशय में घड़ा भर रहा था, जिससे गड़गड़ाहट की धुन आती थी । महाराज ने उसे ही लक्ष्यकर शब्दवेधी बाण छोड़ दिया ।

भरत—मार दिया । महापाप ! इसके बाद क्या हुआ ?

सुमन्त्र—तब उस पुत्र को इस स्थिति में देखकर—

उस सत्यवचन अन्धमुनि ने खूब रो लेने के बाद महाराजको शाप दिया कि—राजन् , मेरी ही तरह तुम भी पुत्रशोक में तड़प-तड़प कर प्राण दोगे ॥१५॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

भरतः—नन्विदं कष्टं नाम !

कैकेयी—जात ! एतन्निमित्तमपराधे मां निक्षिप्य पुत्रको रामो वनं
जाद ! एतण्णिमित्तं अवराहे मां णिक्खिविअ पुत्तओ रामो वणं
प्रेषितः, न खलु राज्यलोभेन। अपरिहरणीयो महर्षिशापः
पेसिदो, ण हु रज्जलोहेण । अपरिहरणीओ महरिसिसाओ
पुत्रविप्रवासं विना न भवति।
पुत्तविप्पवासं विणा ण होइ।

भरतः—अथ तुल्ये पुत्रविप्रवासे कथमहमरण्यं न प्रेषितः ?

कैकेयी—जात ! मातुलकुले वर्तमानस्य प्रकृतीभूतस्ते विप्रवासः।
जात ! मादुलकुले वत्तमाणस्स पइदीहूदो दे विप्पवासो।

भरतः—अथ चतुर्दश वर्षाणि किं कारणमवेक्षितानि।

कैकेयी—जात ! चतुर्दश दिवसा इति वक्तुकामया पर्याकुलहृदयया
जाद ! चउद्दस दिअस त्ति वत्तुकामाए पय्याउलहिअआए

एतन्निमित्तम् मुनिशापश्चरितार्थः स्यादित्येतदर्थम् । माम् आत्मानम्, अपराधे निक्षिप्य अपराधिनी भूत्वा। रामवनप्रेषणे मुनिशापसार्थक्यकरणमेव कारणं न तु राज्यलोभ इति भावः।

नन्वेवं पुत्रवियोगस्य राजमरणसाधनत्वेऽहमेव किमिति न वनं प्रेषित इत्यत्राह प्रकृतीति। प्रकृतीभूतः स्वाभाविकतामापन्नः, तव मातुलकुलवासस्य सार्वदिकतया राजमरणकारणत्वापगमाद्राम एव वनं गमित इत्यर्थः।

अल्पकालिकेनापि पुत्रप्रवासेन राज्ञो मरणे सिद्धयति किमिति रामश्चतुर्दश-वर्षव्यापिवनवासक्लेशेन कदर्थित इति पृच्छति भरतः—अथेति।

पर्याकुलहृदयया सम्भावितप्रियपुत्रराम वियोगाद् भ्रान्तचित्तया।

भरत—यह कष्टकर कथा है।

कैकेयी—इसीलिए मैंने अपनेको दोषी बनाकर बेटा रामको वन भेजा, राज्य के लोभसे नहीं। अवश्यंभावी महर्षिशाप पुत्रवियोगके बिना सफल कैसे होता ?

भरत—पुत्रवियोग तो तुल्य ही था, फिर मुझको ही क्यों न वन भेजा ?

कैकेयी—मातामह कुलमें रहनेके कारण तुम्हारा वियोग महाराजके लिए सह्य-सा हो रहा था।

भरत—अच्छा तो फिर चौदह वर्षों की अवधि किस लिये लगा दी ?

कैकेयी—मैं तो चौदह दिन कहना चाहती थी, किन्तु मानसिक व्याकुलतासे चौदह वर्ष कहा गया।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चतुर्दश वर्षाणीत्युक्तम् ।
चउद्दस वरिसाणि त्ति उत्तं ।

भरतः--अस्ति पाण्डित्यं सम्यग् विचारयितुम् । अथ विदितमेतद् गुरुजनस्य ?

सुमन्त्रः--कुमार ! वसिष्ठवामदेवप्रभृतीनामनुमतं विदितं च ।

भरतः--हन्त त्रैलोक्यसाक्षिणः खल्वेते । दिष्ट्यानपराद्धात्रभवती । अम्ब ! यद् भ्रातृस्नेहात् समुत्पन्नमन्युना मया दूषितात्रभवती, तत् सर्वं मर्षयितव्यम् । अम्ब ! अभिवादये ।

कैकेयी--जात ! का नाम माता पुत्रकस्यापराधं न मर्षयति ?
जात ! का णाम माता पुत्तअस्स अवराहं ण मरिसेदि ?

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ । कोऽत्र दोषः ।
अट्ठेहि उट्ठेहि । को एत्थ दोसो ।

भरतः--अनुगृहीतोऽस्मि । आपृच्छाम्यत्रभवतीम् । अद्यैवाहमार्यस्य साहाय्यार्थं कृत्स्नं राजमण्डलमुद्योजयामि । अहमिदानीम्--

वेलामिमां मत्तगजान्धकारां करोमि सैन्यौघनिवेशनद्धाम् ।

अनुमतं सम्मतम्, न केवलं गुरुजनस्यैतत्सर्वं मदुक्तं विदितमात्रमपि तु सम्मतमपीति भावः ।

एवमवगतेन प्रकरणेन मातुर्निरपराधतां प्रसीदन्नाह--हन्तेति । सुगमम् ।

वेलामिति--इमां वेलां समुद्रतटभूमिं मत्तगजान्धकारां स्रवन्मदवारिकरि-

---

भरत—इसीको कहते हैं बात मिला देने की (स्त्रियों की) चातुरी । तो क्या यह बात गुरुजनों को ज्ञात थी ?

सुमन्त्र—कुमार, वसिष्ठ, वामदेव आदि को यह ज्ञात तथा सम्मत थी ।

भरत—अहो भाग्य, ये लोग त्रैलोक्यसाक्षी हैं । भाग्यवश मेरी माँ बेकसूर है । माँ, मैंने भ्रातृस्नेह के कारण क्रुद्ध होकर जो तुम्हारा अपमान किया, उसे क्षमा करो ! माँ, मैं तेरे चरणों पर पड़ता हूँ ।

कैकेयी—बेटा, भला ऐसी कौन माता होगी जो अपने पुत्रका अपराध न क्षमा कर दे । उठो, बेटा, उठो, इसमें तुम्हारा अपराध ही क्या है ?

भरत—मैं तुम्हारा बड़ा अनुगृहीत हुआ । मुझे जाने की आज्ञा दो । आर्यकी सहायताके लिए मैं आज ही सम्पूर्ण राजमण्डलको सन्नद्ध करता हूँ । अभी मैं—इस सागरतटको अपने मतवाले हाथियोंसे अन्धकारमय बना दूँगा, तथा अपनी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बलैस्तरद्भिश्च नयामि तुल्यं ग्लानिं समुद्रं सह रावणेन ॥१६॥

अये शब्द इव । तूर्णं ज्ञायतां शब्दः ।

(प्रविश्य)

प्रतिहारी—जयतु कुमारः । इमं वृत्तान्तं श्रुत्वा ज्येष्ठभट्टिनी मोहं गता ।

जेदु कुमारो । इमं वुत्तन्तं सुणिअ जेट्ठभट्टिणी मोहं गआ ।

कैकेयी—हम् ।

भरतः—कथं मोहमुपगताम्बा ?

कैकेयी—एहि ! जात ! आर्यामाश्वासयिष्यावः ।

एहि ! जाद ! अय्यां अस्सासइस्सामो ।

भरतः—यदाज्ञापयत्यम्बा । (निष्क्रान्ताः सर्वे)

इति षष्ठोऽङ्कः ।

पृतनयाऽप्रकाशाम् सैन्योघस्य बलसमूहस्य निवेशैः शिविरैः नद्धाम् व्याप्तां च करोमि । अधुनैव मदीययुद्धवारणाः समुद्रतटमावृण्वन्तु सैन्यानि च तत्र शिविरेषु वसन्तु इत्यर्थः । तरद्भिः समुद्रं प्लवमानैः बलैः सैनिकैश्च रावणेन सह समुद्रं सागरम् तुल्यं समकालं ग्लानिन्नयामि, स्वाधीनं कृत्वा हर्षक्षयमाजं करोमीत्यर्थः । एतेन भरतस्य रावणेऽमर्षातिशयो व्यक्तः ? उपजातिर्वृत्तम् ॥ १६ ॥

इति मैथिलपण्डितश्रीरामचन्द्रमिश्रकृते प्रतिमानाटक 'प्रकाशे' षष्ठोऽङ्कः ।

अनन्त सेनाके पड़ावसे भर दूँगा। समुद्र पार करती हुई मेरी सेना रावण के साथ ही समुद्र को भी ध्वस्त कर देगी ॥ १६ ॥

अरे, कुछ कोलाहल सा मालूम पड़ता है, जल्दी पता लगाओ, क्या बात है ?

(प्रतिहारी का प्रवेश).

प्रतिहारी—कुमारकी जय हो। इस दुःखद समाचारको सुनकर बड़ी रानी मूर्च्छित हो गईं।

कैकेयी—अहो ?

भरत—क्या माताजी मूर्च्छित हो गईं।

कैकेयी—आओ बेटा, आर्याको धीरज बँधावें।

भरत—जो माताजी की आज्ञा। (सबका प्रस्थान)

छठा अङ्क समाप्त

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अथ सप्तमोऽङ्कः

(ततः प्रविशति तापसः)

तापसः—नन्दिलक ! नन्दिलक !

(प्रविश्य)

नन्दिलकः—आर्य ! अयमस्मि ।

अय्य । अअं ह्मि ।

तापसः—नन्दिलक ! कुलपतिविज्ञापयति—एष खलु स्वदारापहारिणं त्रैलोक्यविद्रावण रावणं नाशयित्वा राक्षसगणविरुद्धवृत्तं गुणगणविभूषणं विभीषणमभिषिच्य देवदेवर्षिसिद्धविमलचारित्रां तत्रभवतीं सीतामादाय ऋक्षराक्षस-

---

अथ रावणं जितवतो रामस्य सीतया सह तपोवनं प्रति गमनम्, तत्र मातृसहितस्य भरतस्य समागमः, मिलितानां सर्वेषां पुनरयोध्यां प्रतिनिवर्त्तनमित्यादिकथावस्तु निवेश्य प्रबन्धमुपसंहर्तुं सप्तमाङ्कमारभते—ततः प्रविशतीति ।

कुलपतिः तपोवनाधिष्ठाता मुनिवरः । विज्ञापयति बोधयति ।

स्वदारापहारिणम् स्वस्य दाराणां पत्न्या अपहारिणम् अपहर्त्तारम् , त्रयो लोका एव त्रैलोक्यम्, चातुर्वर्ण्यादित्वात्स्वार्थे ष्यञ् । तत् विद्रावयति भयद्रुतं करोतीति त्रैलोक्यविद्रावणस्तम् । गुणगणविभूषणं गुणानां दयादाक्षिण्यविवेकादीनां गणास्समूहास्ते विभूषणानि तदाश्रितत्वेन शोभाजनकानि यस्य तादृशः, अथवा गुणगणानां विभूषणम् अलङ्कर्त्तारम्, तमाश्रितवतां गुणगणानां शोभासमृद्धेः अभिषिच्य लङ्काराज्याभिषिक्तं कृत्वा । देवर्षिसिद्धविमलचारित्रां देवैर्ऋषिभिः प्रमाणभूतैः साक्षिभिः सिद्धं निश्चित्य प्रत्यायितं निष्कलङ्कतया विमलं शुद्धं चारित्रं शीलं यस्यास्ताम् । ऋक्ष-

---

(तपस्वी का प्रवेश)

तपस्वी—नन्दिलक, नन्दिलक,

(नन्दिलक का प्रवेश)

नन्दिलक—आर्य, यह आया ।

तपस्वी—नन्दिलक, कुलपति आदेश देते हैं कि अपनी स्त्री को हरकर ले जाने वाले तथा तीनों भुवनों को प्रताप से तवाह करनेवाले रावण का नाश कर, दुराचारी राक्षसों के प्रतिकूल आदर्शचरित्र विभीषण को लङ्काराज्य पर अभिषिक्त कर, ऋषियों के समक्ष परीक्षित निष्कलङ्क सीता को साथ लेकर, ऋक्षराज तथा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वानरमुख्यैः परिवृतः सम्प्राप्तस्तत्रभवान् शरद्विमलगगन-चन्द्राभिरामो रामः। तदद्यास्मिन्नाश्रमपदेऽस्मद्विभवेन यत् सङ्कल्पयितव्यम्, तत् सर्वं सज्जीक्रियतामिति।

नन्दिलकः—आर्य! सर्वं सज्जीकृतम्। किन्तु,
अय्य! सव्वं सज्जीकिदं। किन्तु,

तापसः—किमेतत्?

नन्दिलकः—अत्र विभीषणसम्बन्धिनो राक्षसाः। तेषां भक्षणनिमित्तं
एत्थ विभीषणकेरआ रक्खसा। तेसं भक्खणणिमित्तं
कुलपतिः प्रमाणम्।
कुलवदी पमाणं।

तापसः—किमर्थम्?

नन्दिलकः—ते खलु खादन्ति।
ते खु खज्जन्ति।

राक्षसवानरमुख्यैः ऋक्षमुख्या जाम्बवादयः, राक्षसमुख्या विभीषणादयः, वानर-मुख्याः सुग्रीवादयस्तैः। शरद्विमलचन्द्राभिरामः शरदि तदाख्यत्तुविशेषे विमलः निर्मलप्रकाशो यश्चन्द्रस्तद्वदभिरामो रमणीयदर्शनः। अस्मद्विभवेन आरण्यकसुलभेन। सङ्कल्पयितव्यं तत्स्वागतार्थमुपकल्पनीयम्।

किमेतत् 'किन्तु' इत्यग्रे किं भवता विवक्षितं तदुच्यतामिति भावः।

विभीषणसम्बन्धिनः तदुपचारकाः परिजनाः। राक्षसाः क्रव्यादाः। भक्षण-निमित्तम् भक्षणार्थे। कुलपतिः अरण्यवासिमुनिमुख्यः। प्रमाणं राक्षसभक्षणीयवस्तु-निर्णयप्रभुः।

वानराधीश के दलबलों के सहित निर्मल शरदिन्दुसदृश अभिराम राम यहीं आ रहे हैं। आज इस अरण्य में अरण्यसुलभ भोग वैभव के अनुसार उनका स्वागत करने के लिए जो अभीष्ट है, वह सब सज्जित करके रखा जाय।

नन्दिलक—सब ठीक कर लिया गया है। किन्तु···

तपस्वि—वह क्या?

नन्दिलक—जहाँ विभीषण के साथी राक्षस भी आये हुए हैं, उनके भोजन के विषय में कुलपति ही जानें।

तपस्वी—क्यों?

नन्दिलक—वे खाते हैं (नर) मांस।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तापसः—अलमलं सम्भ्रमेण । विभीषणविधेयाः खलु राक्षसाः ।

नन्दिलकः—नमो राक्षससज्जनाय । (निष्क्रान्तः)

णमो रक्खससज्जणाअ ।

तापसः—(विलोक्य) अये अत्रभवान् राघवः । य एषः—

जय नरवर ! जेयः स्याद् द्वितीयस्तवारि-
स्तव भवतु विधेया भूमिरेकातपत्रा ।
इति मुनिभिरनेकैः स्तूयमानः प्रसन्नैः
क्षितितलप्रवतीर्णो मानवेन्द्रो विमानात् ॥ १ ॥

जयतु भवान् जयतु । (निष्क्रान्तः)

(मिश्रविष्कम्भकः ।)

विभीषणविधेयाः तदधीनाः एतेनात्र तेषामनुपद्रावकत्वं बोधितम् ।

राक्षससज्जनाय राक्षसेषु मुख्याय सत्पुरुषाय ।

जयेति—नरवर पुरुषेषु श्रेष्ठ जय सर्वोत्कर्षेण वर्त्तस्व, द्वितीयः रावणापेक्षया परस्तव अरिर्जेयो जेतुमर्हः शक्त्या पराभवितुं योग्यः स्यात, रावणस्य जितत्वाद् द्वितीयारिजयाशंसनम् । भूमिर्धरणी एकातपत्रा अप्रतिद्वन्द्वशासना तवैकस्य राज्ञः पालनेऽवस्थिता स्यादित्यन्वयः । इति एवं प्रकारेण प्रसन्नैः रावणवधसन्तुष्टैरनेकैर्भूरिभिः मुनिभिः सन्निकटवनवासिभिस्तपस्विभिः स्तुयमानः वन्द्यमानो मानवेन्द्रो मनुजेश्वरो रामो विमानात् पुष्पकाख्यात् व्योमयानात् रावणजयप्राप्तात् क्षितितलं धरणीभागमवतीर्णः अवरूढः ॥ १ ॥

तपस्वी—नहीं, नहीं, डरो मत, सब राक्षस विभीषण के वशवर्त्ती हैं ।

नन्दिलक—इस सज्जन राक्षस को नमस्कार ।

(प्रस्थान)

तपस्वी—(देखकर) अहा । ये हैं राघव, जो यह—

हे नरश्रेष्ठ, आपकी जय हो, आप अपने दूसरे शत्रुओंपर भी विजय प्राप्त करें, एकच्छत्र महीमण्डलपर आपका अधिकार हो, आनन्दित-मुनिजन उपर्युक्त प्रकार से अभिनन्दन कर रहे हैं और आप पुष्पक विमानसे पृथ्वी पर आ गये हैं ॥ १ ॥

आपकी जय हो । (प्रस्थान)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(ततः प्रविशति रामः)

रामः—भोः !

समुदितबलवीर्यं रावणं नाशयित्वा
जगति गुणसमग्रां प्राप्य सीतां विशुद्धाम् ।
वचनमपि गुरूणामन्तशः पूरयित्वा
मुनिजनवनवासं प्राप्तवानस्मि भूयः ॥ २ ॥

तापसीनामभिवादनार्थमभ्यन्तरं प्रविष्टा चिरायते खलु मैथिली । (विलोक्य) अये ! इयं वैदेही ।

सखीति सीतेति च जानकीति यथावयः स्निग्धतरं स्नुषेति ।

मिश्रविष्कम्भकः नीचमध्यमोभयविधपात्रप्रयोजितत्वात् सङ्कीर्णो विष्कम्भकः । तल्लक्षणमन्यत्रोक्तम् ।

समुदितेति—समुदितमेकत्राहृतम् बलवीर्यं सैन्यसाहसं यस्य तादृशम् (रामेण युद्धे त्रिलोकार्जितयशसः संशयतुलाऽऽरूढतामवगत्य सर्वमपि स्वं बलं साहसं च विन्ययुङ्क्त, तादृशमपि रामो जिगाय तमिति रामबलप्रशंसा बोध्या) रावणं नाशयित्वाऽऽमूलचूलं विनाश्य जगति गुणसमग्रां दारोचितगुणपरिपूर्णाम् विशुद्धाम् अग्निप्रवेशपरीक्षाप्रमाणितनिष्कलङ्कचरित्राम् प्राप्य पुनरासाद्य गुरूणां तातपादानाम् वचनम् आज्ञाम् 'वने वस समाश्चतुर्दशे'त्येवंलक्षणाम् अन्तशः अक्षरशः अन्तं यावत् पूरयित्वा परिपाल्य भूयः पुनरपि मुनिजनवनवासं मुनिजनाध्युषितवनवर्त्तिप्राचीनस्वनिवासदेशम् प्राप्तवानस्मि । एतेन रामस्य कृतकृत्यताजनितः प्रमोदो व्यज्यते । मालिनीवृत्तम् ॥ २ ॥

अभ्यन्तरम् उटजाभ्यन्तरम् । चिरायते विलम्बते ।

सखीति—सखीति तुल्यवयोभिः सीतेति जानकीति च वयसाऽधिकाभिः, वृद्धा-

---

(राम का प्रवेश)

राम—अहा !

अतुलबलपराक्रम रावणका संहार करके सर्वगुणसम्पन्ना और निष्कलङ्का सीता को प्राप्त कर और पिताजीकी आज्ञाका अन्त तक पूर्णरूपसे पालन कर मैं फिर अब उसी मुनिके आश्रममें आ गया हूँ ॥ २ ॥

मुनिपत्नियोंकी वन्दनाके लिए भीतर गई हुई सीताको बहुत विलम्ब हुआ जाता है, (देखकर) अरे यही तो सीता है ।

ऋषिपत्नियाँ इसके साथ मधुर वार्त्तालाप कर रही हैं और सभी इधर आ रही

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तपस्विदारैर्जनकेन्द्रपुत्री सम्भाष्यमाणा समुपैति मन्दम् ॥ ३ ॥

(ततः प्रविशति सीता तापसी च)

तापसी—हला ! एष ते कुटुम्बिकः । उपसर्पैनम् । न शक्यं त्वामेहला ! एसो देव कुटुम्बिओं । उपसप्प णं । ण सक्कं तुमं एकाकिनीं प्रेक्षितुम् ।
आइणि पेक्खिदुं ।

सीता—हम् अद्याप्यविश्वसनीयमिव मे प्रतिभाति । (उपसृत्य)
हं अज्ज वि अविस्ससणीअं मं पडिभादि ।
जयत्वार्यपुत्रः ।
जेदु अय्यउत्तो ।

रामः—मैथिलि ! अपि जानासि, पूर्वाधिष्ठानमस्माकं जनस्थानमासीत् । अप्यत्र ज्ञायन्ते पुत्रकृतका वृक्षाः ।

मिश्र स्नुषेति तपस्विदारैर्मुनिपत्नीभिः स्निग्धतरमतिमधुरं सम्भाष्यमाणा व्याह्रियमाणा जनकेन्द्रपुत्री मन्दं शनैः शनैः समुपैति मामुपसर्पति ॥ ३ ॥

कुटुम्बिको भर्त्ता ।

एकाकिनीम् सहायान्तररहिताम् । तथाविधा भूत्वा त्वमपह्रियसे तेन त्वां तथाविधां कर्तुं नेच्छामि तेनोपसर्प प्रियपतिमिति भावः ।

अद्यापि प्रियसम्प्रयोगकालेऽपि । अविश्वसनीयं विश्वासानर्हम् , मन्दभागिन्याः प्रियप्राप्तिर्न संभविनीति धारणा चिरविरहकदर्थनया जनिता,तदाधारीकृत्येत्थमुच्यते ।

अपि जानासि स्मरसि किम् ? पुत्रकृतकाः पुत्रनिर्विशेषं परिवर्द्धितत्वात् कृत्रिमपुत्रकाः ।

हैं । अपनी अपनी अवस्थाके अनुसार कोई मुनिपत्नी सीताको 'सखी', कोई 'सीता', कोई 'जानकी' और कोई 'बहू' कहकर पुकारती है ॥

(सीता और तापसीका प्रवेश)

तापसी—सखी, ये हैं तुम्हारे पतिदेव, उनके पास जाओ । तुम्हें अकेली नहीं देख सकती हूँ ।

सीता—आज भी मुझे विश्वास नहीं होता । (समीप जाकर) जय हो आर्यपुत्र की ।

राम—मैथिली, क्या जानती हो कि पहले हम इस जनस्थान में रहा करते थे और पहचानती हो इन कृतकपुत्र वृक्षों को ?

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सीता—जानामि जानामि। अवलोकितपत्रका उल्लोकयितव्या इदानीं
जाणामि जाणामि। ओलोइअपत्तआ उल्लोअइदव्वा दाणिं
संवृत्ताः।
संवुत्ता।

रामः—एवमेतत्। निम्नस्थलोत्पादको हि कालः। मैथिलि! अप्युपलभ्यतेऽस्य सप्तपर्णस्याधस्ताच्छुक्लवाससं भरतं दृष्ट्वा परित्रस्तं मृगयूथमासीत्।

सीता—आर्यपुत्र! दृढं खलु स्मरामि।
अय्यउत्त! दिढं खु सुमरामि।

रामः—अयं तु नस्तपसः साक्षिभूतो महाकच्छः। अत्रास्माभिरासीनैस्तातस्य निर्वपनक्रियां चिन्तयद्भिः काञ्चनपार्श्वो नाम मृगो दृष्टः।

अवलोकितपत्रकाः अतिबालतया द्वित्रपत्रा अत एव च अवक्षिप्तचक्षुषा दृष्टाः, (इदानीम्) उल्लोकयितव्याः सन्नतत्वादूर्ध्वनिक्षिप्तचक्षुषा द्रष्टव्याः। अत्युन्नतं हि वस्तु वीक्षितुं चक्षुरूर्ध्वं व्यापारणीयं भवतीति भावः।

निम्नस्थलोत्पादकः निम्नं च स्थलं च तयोरुत्पादकः निम्नोत्पादकः स्थलोत्पादकश्चेति। कश्चिद्धि देशः स्थलरूपः कालतो निम्नभावं भजते, कश्चिच्च निम्नरूपः स्थलतामापद्यत इत्याशयः। अप्युपलभ्यते स्मर्यते, परित्रस्तं भयकातरम्, मृगयूथं हरिणकुलम्। शुक्लवाससं भरतं दृष्ट्वाऽनारण्यकोऽयमस्मानुपद्रवेदिति चिन्तया तेषां भीतिः।

महाकच्छः महान् जलाशयः, (जलप्रायं हि कच्छमाहुः)।

सीता—याद है, खूब याद है, जिन वृक्षों को नन्हें-नन्हें पत्तों वाली अवस्था में देखा था, अब वे आँखें ऊपर करके देखने योग्य हो गये हैं।

राम—बिलकुल ऐसी ही बात है, समय ही उत्थान-पतन का कारण है। मैथिली, याद है-इस सप्तपर्ण वृक्षके नीचे श्वेतवस्त्रधारी भरत को देखकर मृगगण भयभीत हो उठे थे?

सीता—आर्यपुत्र, खूब याद है!

राम—यह हमारे तप का साक्षी महासरोवर है, यहाँ बैठकर हमने पिताजी की श्राद्धक्रिया की चिन्ता करने के समय काञ्चनपार्श्व मृग को देखा था।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सीता—हम् आर्यपुत्र ! मा खलु मा खल्वेवं भणितुम् । (भीता वेपते) हं अय्यउत्त । मा खु मा खु एवं भणिदुं ।

रामः—अलमलं सम्भ्रमेण । अतिक्रान्तः खल्वेष कालः । (दिशो विलोक्य)

अये कुतो नु,

रेणुः समुत्पतति लोध्रसमानगौरः
सम्प्रावृणोति च दिशः पवनावधूतः ।
शङ्खध्वनिश्च पटहस्वनधीरनादैः
सम्मूर्च्छितो वनमिदं नगरीकरोति ॥ ४ ॥

(प्रविश्य)

लक्ष्मणः—जयत्वार्यः आर्य !

'मा खलु' इत्यादि । अत्र प्रसङ्गे काञ्चनपार्श्वाभिधानस्मरणेन रावणकृतापहारस्मरणात्सीताया भयमिति तच्चर्चां प्रतिषेधति ।

अतिक्रान्तः व्यतीतः, तादृशदुरदृष्टस्यावसितत्वात् । सैन्यैः परिवारेण च सहितस्य भरतस्यागमनात् समुद्भूतं रजो दूरात् पश्यन् तदुत्पत्तिकारणापरिज्ञानादाह—अये कुतो न्विति ।

रेणुरिति—लोध्रसमानगौरः लोध्रपुष्पतुल्यगौरवर्णयुतः रेणुः समुत्पतति भुव उत्तिष्ठति, (स च रेणुः पवनेन वायुनाऽवधूतः प्रसारितः दिशः सम्प्रावृणोति समाच्छादयति । पटहस्वनैः धीरनादैः वीरगर्जितैश्च सम्मूर्च्छितः सम्यग्वर्द्धितः शङ्खध्वनिश्च इदं वन नगरीकरोति नगरभावं नयति । किन्निमित्तमिदं सर्वासु दिशासु प्रसरति शङ्खध्वनिर्विविधप्रकारका वीरनादाश्च जायमाना वनस्य ग्रामतामर्थादशान्तिमुत्पादयन्तीति भावः । स्वप्नवासवदत्तेऽप्येतादृश्युक्तिरस्य कवेः 'कोऽयं भो निभृतं तपोवनमिदं ग्रामीकरोत्याज्ञया' इति । वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ ४ ॥

सीता—आर्यपुत्र, न, न, अब इस प्रसङ्ग को मत छेड़िये । (डर जाती है)

राम—डरो मत, अब वे दिन बीत गये । (चारों ओर देखकर) अरे कहाँ से—यह लोध्रपुष्पसदृश धवल धूल उड़ती आ रही है, जो वायुवेग से सकल दिशाओं को आच्छादित करती आ रही है । यह शङ्खध्वनि, बाजे तथा बहादुरोंके गर्जन से उपबृंहित होकर इस शांत तपोवन को नगर का रूप दे रहे हैं ॥ ४ ॥

(लक्ष्मण का प्रवेश)

लक्ष्मण—जय हो आर्य की । आर्य,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

अयं सैन्येन महता त्वद्दर्शनसमुत्सुकः।
मातृभिः सह सम्प्राप्तो भरतो भ्रातृवत्सलः ॥ ५ ॥

रामः—वत्स लक्ष्मण ! किमेवं भरतः प्राप्तः ?

लक्ष्मणः—आर्य ! अथ किम्।

रामः—मैथिलि ! श्वश्रूजनपुरोगं भरतमवलोकयितुं विशालीक्रियतां ते चक्षुः।

सीता—आर्यपुत्र ! एष्टव्ये काले भरत आगतः।
अय्यउत्त ! इच्छिदव्व काले भरदो आअदो।

(तत प्रतिशति भरतः समातृकः)

भरतः—तैस्तैः प्रवृद्धविषयैर्विषमैर्विमुक्तं
मेघैर्विमुक्तममलं शरदीव सोमम्।

अयमिति—अयं भरतस्त्वद्दर्शनसमुत्सुकस्त्वदवलोकनार्थमुत्कण्ठितः महता सैन्येन भ्रातृभिश्च सह सम्प्राप्त इहागतः। तस्येहागमनकारणमाह भ्रातृवत्सल इति।

श्वश्रूजनपुरोगम् श्वश्रूजनपुरस्सरम्। विशालीक्रियताम् दीर्घीक्रियताम्। अतिप्रियं हि वस्तु विशालाभ्यां दृग्भ्यां द्रष्टुमिष्यते, तथा च प्रयुक्तं कालिदासेन—'विलोकयन्त्यो वपुरापुरक्ष्णां प्रकामविस्तारफलं हरिण्यः' इति। पण्डितराजेनापि—'विशालाभ्यामाभ्यां किमिव नयनाभ्यामिह फलं, न याभ्यामालीढा परमरमणीया तव तनुः।' इति।

एष्टव्ये—अभीष्टे।

तैस्तैरिति—अद्य तुष्टहृदयः प्रसन्नमनाः स्वजनानुबद्धः स्वजनानुयतः अहम् शरदि मेघापगमे मेघैः मुक्तम् अपगतावरणम् अमलं दीप्तिशालिनम् सोमं चन्द्रमस-

---

यह देखिये, आपके दर्शनों के लिए लालायित, भ्रातृवत्सल भरत माताओं को साथ लेकर बड़ी भारी सेना से अन्वित यहीं आ गये ॥ ५ ॥

राम—लक्ष्मण, क्या ऐसी बात ? भरत आ गये ?

लक्ष्मण—आर्य, और क्या ?

राम—मैथिली, भरत के साथ तुम्हारी सासें आ रही हैं उनके दर्शन के लिए आँखों को विशाल बना लो।

सीता—आर्यपुत्र, ऐन मौके पर भरत आ गये।

(माताओं के साथ भरत का प्रवेश)

राम—मेघनिर्मुक्त शरत्कालिक चन्द्रमा के समान नाना प्रकार के संकटोंसे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

आर्यासहायमहमद्य गुरुं दिदृक्षुः
प्राप्तोऽस्मि तुष्टहृदयः स्वजनानुबद्धः ॥ ६ ॥

रामः—अम्बाः ! अभिवादये ।

सर्वाः—जात ! चिरं जीव । दिष्टया वर्धामहे अवसितप्रतिज्ञं त्वां
जाद ! चिरं जीव । दिट्ठिआ वड्ढामो अवसिदपडिण्णं तुमं
कुशलिनं सह वध्वा प्रेक्ष्य ।
कुसलिणं सह बहुए पेक्खिअ ।

रामः—अनुगृहीतोऽस्मि ।

लक्ष्मणः—अम्बाः ! अभिवादये ।

सर्वाः—जात ! चिरं जीव ।
जाद ! चिरं जीव ।

लक्ष्मणः—अनुगृहीतोऽस्मि ।

सीता—आर्याः ! वन्दे ।
अय्या ! वन्दामि ।

मिव तैस्तैर्वाचापि प्रकाशयितुमशक्यैरयोग्यैश्च प्रवृद्धविषयैः नानाप्रकारैः विषमैः सङ्कटैः विमुक्तम् आर्यासहायम् सीतासनाथवामभागम् गुरुम् पितृतुल्यम् पूजनीयम् दिदृक्षुः द्रष्टुमुत्सुकः प्राप्तोऽस्मि । सङ्कटमुक्तस्य रामस्य मेघनिर्मुक्तचन्द्रसादृश्यवर्णनादुपमालङ्कारः, तथा चोपमया यथा चन्द्रेण जगदाह्लाद्यते तथा रामेणापि भुवनं स्वगुणैः प्रसादं प्रापयिष्यत इति वस्तु व्यज्यते । वृत्तमनुपदोक्तम् ॥ ६ ॥

अवसितप्रतिज्ञम् पूर्णप्रतिज्ञम्, नियतसमयावधिवनवासनिश्चयोऽत्र प्रतिज्ञा ।

उत्तीर्ण तथा सीता सहित अपने गुरुवर के दर्शनार्थ मैं अतिप्रसन्न हृदय से आत्मीयजनों के साथ यहाँ आया हूँ ॥ ६ ॥

राम—पूज्य माताओं को प्रणाम ।

सब—प्रियपुत्र, चिरञ्जीव हो । हमारे धन्यभाग्य, जो हम चौदह वर्षों के अनन्तर सीता सहित तुमको सादन्द देखती हैं ।

राम—बड़ी कृपा ।

लक्ष्मण—माताओं को प्रणाम ।

सब—चिरञ्जीवी रहो ।

लक्ष्मण—अनुगृहीत हूँ ।

सीता—पूज्य जनों को प्रणाम ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitized by eGangotri

सर्वाः—वत्से ! चिरमङ्गला भव ।

वच्छ ! चिरमङ्गला होहि ।

सीता—अनुगृहीतास्मि ।

अणुग्गहिदम्हि ।

भरतः—आर्य ! अभिवादये, भरतोऽहमस्मि ।

रामः—एह्येहि वत्स ! इक्ष्वाकुकुमार ! स्वस्ति, आयुष्मान् भव ।

वक्षः प्रसारय कवाटपुटप्रमाणमालिङ्ग मां सुविपुलेन भुजद्वयेन ।
उन्नामयाननमिदं शरदिन्दुकल्पं प्रह्लादय व्यसनदग्धमिदं शरीरम् ।७।

भरतः—अनुगृहीतोऽस्मि । आर्ये ! अभिवादये भरतोऽहमस्मि ।

सीता—आर्यपुत्रेण चिरसञ्चारी भव ।

अय्यउत्तेण चिरसञ्चारी होहि ।

भरतः—अनुगृहीतोऽस्मि । आर्य ! अभिवादये ।

लक्ष्मणः—एह्येहि वत्स ! दीर्घायुर्भव । परिष्वजस्व गाढम् । (आलिङ्गति)

भरतः—अनुगृहीतोऽस्मि । आर्य ! प्रतिगृह्यतां राज्यभारः ।

चिरमङ्गला—अनल्पकालस्थायिसौभाग्या ।

वक्षः प्रसारयेति—व्याख्यातमिदं पद्यं पूर्वं (पृ० १११) चतुर्थेऽङ्के ।।७।।

सब—बेटी, सदा सुहागिन रहो ।

सीता—कृपा से अनुगृहीत हुई ।

भरत—आर्य, मैं भरत आपको अभिवादन करता हूँ ।

राम—आओ, आओ, इक्ष्वाकुकुमार, तुम्हारा कल्याण हो, चिरजीवी रहो ।

किवाड़की चौखटके समान चौड़ी अपनी छाती फैलाओ, अपने विशाल बाहुओंसे मुझसे मिलो । शरद्ऋतुके चाँदसे तुलित अपने मुखड़ेको ऊपर उठाओ और शोकसन्तप्त मेरे हृदयको आह्लादित करो ॥ ७ ॥

भरत—मैं आपका अतिअनुगृहीत हूँ । आर्ये, मैं भरत आपको अभिवादन करता हूँ ।

सीता—आर्यपुत्रके चिरसङ्गी बनो ।

भरत—बड़ी कृपा । आर्य, नमस्कार ।

लक्ष्मण—आओ अओ, चिरजीवी रहो, जी भरकर गले लगो । (भेंटता है)

भरत—बड़ी कृपा । आर्य, अपना राज्यभार संभालिए ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitized by eGangotri

रामः---वत्स ! कथमिव ?

कैकेयी---जात ! चिराभिलषितः खल्वेष मनोरथः ।

जाद ! चिराहिलसिदो खु एसो मणोरहो ।

(ततः प्रविशति शत्रुघ्नः)

शत्रुघ्नः---विविधैर्व्यसनैः क्लिष्टमक्लिष्टगुणतेजसम् ।
द्रष्टुं मे त्वरते बुद्धी रावणान्तकरं गुरुम् ॥ ८ ॥

(उपगम्य) आर्य ! शत्रुघ्नोऽहमभिवादये ।

रामः---एह्येहि वत्स ! स्वस्ति, आयुष्मान् भव ।

शत्रुघ्नः---अनुगृहीतोऽस्मि । आर्ये ! अभिवादये ।

सीता---वत्स ! चिरंजीव ।

वच्छ ! चिरं जीव ।

शत्रुघ्नः---अनुगृहीतोऽस्मि । आर्य ! अभिवादये ।

लक्ष्मणः---स्वस्ति, आयुष्मान् भव ।

चिराभिलषितः सुदीर्घकालवाञ्छितः । एषः त्वत्कर्तृकराज्यभारग्रहणरूपः ।

विविधैरिति—विविधैर्नानाप्रकारकैः व्यसनैः सङ्कटैः क्लिष्टं सम्पीडितम् (तथापि) अक्लिष्टगुणतेजसम् अनुपहतगुणप्रभावम् रावणान्तकरम्, तं गुरुम् पूज्यमार्यरामं द्रष्टुं मे बुद्धिर्मनस्त्वरते शीघ्रतां करोति बलादुत्कण्ठत इत्यर्थः ॥८॥

राम—क्यों ?

कैकेयी—बेटा, यह हमलोगों का चिरमनोरथ है ।

(शत्रुघ्न का प्रवेश)

शत्रुघ्न—नाना प्रकारके संकटोंसे सताये जानेपर भी अतिगुणी तथा तेजस्वी और रावणसंहारकारी अपने गुरुदेवके दर्शनार्थ मेरा मन उतावला हो रहा है ॥

(पास जाकर) मैं शत्रुघ्न आपको अभिवादन करता हूँ ।

राम—आओ आओ वत्स, तुम्हारा कल्याण हो, तुम चिरायु होवो ।

शत्रुघ्न—बड़ी कृपा । आर्ये, प्रणाम ।

सीता—तुम्हारा कल्याण हो ।

शत्रुघ्न—बड़ा अनुग्रह, आर्य प्रणाम ।

लक्ष्मण—तुम्हारा चिरजीवन मङ्गलमय हो ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

शत्रुघ्नः—अनुगृहीतोऽस्मि । आर्य ! एतौ वसिष्ठवामदेवौ सह प्रकृतिभिर-
भिषेकं पुरस्कृत्य त्वद्दर्शनमभिलषतः ।

तीर्थोदकेन मुनिभिः स्वयमाहृतेन
नानानदीनदगतेन तव प्रसादात् ।
इच्छन्ति ते मुनिगणाः प्रथमाभिषिक्तं
द्रष्टुं मुखं सलिलसिक्तमिवारविन्दम् ॥ ६ ॥

कैकेयी—गच्छ जात ! अभिलषाभिषेकम् ।

गच्छ जाद ! अभिलसेहि अभिसेअं ।

रामः—यदाज्ञापयत्यम्बा । (निष्क्रान्तः)

(नेपथ्ये)

जयतु भवान् । जयतु स्वामी । जयतु महाराजः । जयतु देवः । जयतु भद्रमुखः । जयत्वार्यः । जयतु रावणान्तकः ।

एतौ सन्निहितौ, वसिष्ठवामदेवौ कुलगुरुपुरोहितौ । प्रकृतिभिः प्रजाभिः । अभिषेकं पुरस्कृत्य अभिषेचनमुद्दिश्य ।

तीर्थोदकेनेति—मुनिगणाः ऋषयस्तव प्रसादात् रावणवधकृतसुलभसञ्चार-लब्धान्तरानन्दात् स्वयमाहृतेन नानानदीनदगतेन भिन्नभिन्नपुण्यसलिलधारा-सम्बन्धिना तीर्थोदकेन प्रथमाभिषिक्तं प्राक्कृताभिषेकं तव मुखं सलिलसिक्तं जलाभ्युक्षितं कमलमिव द्रष्टुमिच्छन्ति । अचिराभिषिक्तस्य जलकणशालिवदनं जलसिक्तपद्ममिवेत्युपमा । वसन्ततिलकं वृत्तम् ।

शत्रुघ्न—मैं आपका आभारी हूँ । ये महर्षि वसिष्ठ और वामदेव, प्रजावर्ग तथा अमात्योंके साथ राज्याभिषेकके उद्देश्यसे आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं ।

मुनिजन स्वयं जाकर छोटे-बड़े नदों और नदियोंसे तीर्थजल लाए हैं । उनकी इच्छा है कि कृपया आप पहले अभिषेक ग्रहण कर लें । उसके बाद अभिषेक जल से सिक्त आपके मुखको वे लोग जलसिक्त कमलकी तरह देखें ॥ ६ ॥

कैकेयी—जाओ बेटा, राज्याभिषेक स्वीकार करो ।

राम—माताजी की जो आज्ञा ।

(नेपथ्य में)

आपकी जय, स्वामीकी जय, महाराजाधिराजकी जय, देवकी जय, भद्रमुख की जय, आर्यकी जय, रावणके संहारककी जय ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कैकेयी—एते पुरोहिताः कञ्चुकिनः पुत्रकस्य मे विजयघोषं वर्धयन्त आशीर्भिः पूजयन्ति ।
एदे पुरोहिता कञ्चुइणो पुत्तअस्स मे विजअघोसं वड्ढअन्त आसीहि पूजअन्ति ।

सुमित्रा—प्रकृतयः परिचारकाः सज्जनाश्च पुत्रकस्य मे विजयं वर्धयन्ति ।
पइदीओ परिचारआ सज्जणा अ पुत्तअस्स मे विजअं वड्ढअन्ति ।

(नेपथ्ये)

भो भो जनस्थानवासिनस्तपस्विनः ! शृण्वन्तु शृण्वन्तु भवन्तः ।

हत्वा रिपुप्रभवमप्रतिमं तमौघं
सूर्योऽन्धकारमिव शौर्यमयैर्मयूखैः ।
सीतामवाप्य सकलाशुभवर्जनीयां
रामो महीं जयति सर्वजनाभिरामः ॥ १० ॥

हत्वेति—अप्रतिमम् अतुलनीयं रिपोः शत्रोः प्रभव उत्पत्तिर्यस्य तम् तमसः सङ्कटस्य ओघं समूहं सूर्यः अन्धकारमिव शौर्यमयैः पराक्रमरूपैः मयूखैः किरणैः हत्वा विनाश्य सकलैः अशुभैरमङ्गलैर्वर्जनीयां रहितां सीतां प्राप्य सर्वजन मिरामः सकललोकप्रियः रामः महीं पृथ्वीं जयति स्वायत्तीकरोति । यथा—सूर्योऽशुभिस्तमस ओघं विनाश्य प्रकाशेन भुवं व्याप्नोति तथैव रामोऽपि शत्रुकृतान् क्लेशान् शौर्येणातिक्रम्य सीतां पुनरासाद्य तेजसा भुवं व्याप्नोति । उपमाऽत्र स्फुटा । तमस

कैकेयी—अहा, ये पूज्य पुरोहित, कञ्चुकी वगैरह मेरे पुत्रका जयघोष, आशीर्वाद तथा अभिनन्दन कर रहे हैं ।

सुमित्रा—अहा ! अमात्य, परिचारक तथा अन्य सज्जन वृन्द मेरे पुत्रकी जयाशंसा कर रहे हैं ।

(नेपथ्य में)

ओ जनस्थाननिवासी तपस्वियों, आप लोग सुन लें ।

जिस तरह सूर्य अपनी प्रखर किरणोंसे अन्धकारका नाश करता है, उसी तरह शत्रुसे फैलाए हुए अतुल तमःपटलको अपने पराक्रमसे नाशकर मङ्गलमयी सीताको प्राप्तकर नयनाभिराम रामने समूची पृथ्वीपर अधिकार कर लिया है ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

कैकेयी—अम्महे ! पुत्रस्य मे विजयघोषणा वर्धते ।
अम्महे ! पुत्तस्य मे विजअघोषणा बढ्ढइ ।

(ततः प्रविशति कृताभिषेको रामः सपरिवारः)

रामः—(विलोक्याकाशे) भोस्तात !

स्वर्गेऽपि तुष्टिमुपगच्छ विमुञ्च दन्यं
कर्म त्वयाभिलषितं मयि यत् तदेतत् ।
राजा किलास्मि भुवि सत्कृतभारवाही
धर्मेण लोकपरिरक्षणमभ्युपेतम् ॥ ११ ॥

भरतः—अधिगतनृपशब्दं धार्यमाणातपत्रं
विकसितकृतमौलिं तीर्थतोयाभिषिक्तम् ।

ओघमिति समासे सन्धिरपाणिनीयः । केचित्तु 'ये ये सान्तास्ते तेऽदन्ता' इत्याभिमानेनेदमित्याहुः ॥ १० ॥

स्वर्गेपीति—स्वर्गे अपि (लोके तु त्वं नालब्धास्तुष्टिम्) इदानीं दिव्यपि तुष्टिं मद्राज्याभिषेकजन्यमानन्दमुपगच्छ लभस्व, दैन्यं खेदं मनोरथापूर्तिकृतम् विमुञ्च जहीहि । त्वया मयि यत्कर्म राज्यारोहणरूपमभिलषितमिष्टमासीत् एतत् सम्प्रति मत्कर्म राज्याभिषेकरूपमेतत् तत् । त्वयाभीष्यमाणं मद्राज्याभिषेकरूपं कार्यमधुना सम्पन्नमिति स्वर्गस्थस्य तव प्रसादः खेदत्यागश्च प्राप्तावसर इति भावः । तदेवोपपादयति राजेति । भुवि सत्कृतभारवाही समाहृतराज्यरूपभारवाही राजा अस्मि, धर्मेण धर्मपूर्वकम् लोकपरिरक्षणम् (मया) अभ्युपेतम् अङ्गीकृतम् । किलेति वाक्यालङ्कारे ॥ ११ ॥

अधिगतेति—अधिगतः नृपशब्दः राजशब्दवाच्यता येन तम्, धार्यमणमातपत्रं छत्रं यस्मिन् त समालम्बितराजधार्यश्वेतातपत्रं विकसितकृतमौलिम् उन्न-

---

कैकेयी—अहा, मेरे पुत्रकी जयघोषणा बढ़ रही है ।

(कृताभिषेक रामका परिवारके साथ प्रवेश)

राम—(आकाशकी ओर देखकर) पितृदेव,

आप अब स्वर्गमें ही आनन्द प्राप्त करें और कष्ट भूल जाँय । आपने मेरा राज्याभिषेक करना चाहा था, वह अब पूरा हुआ । अब मैं पृथ्वीपर पुण्यभारका वहन करनेवाला राजा बन गया हूँ । मैंने न्यायपूर्वक प्रजापालनका उत्तरदायित्व उठा लिया है ॥ ११ ॥

भरत—आज अपने पूज्य भ्राता को देखनेसे मेरी आँखें नहीं थकतीं । उन्होंने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

गुरुमधिगतलीलं वन्द्यमानं जनौघै-
र्नवशशिनमिवार्यं पश्यतो मे न तृप्तिः ॥ १२ ॥

शत्रुघ्नः—एतदार्याभिषेकेण कुलं मे नष्टकल्मषम् ।
पुनः प्रकाशतां याति सोमस्येवोदये जगत् ॥ १३ ॥

रामः—वत्स लक्ष्मण ! अधिगतराज्योऽहमस्मि !

लक्ष्मणः—दिष्ट्या भवान् वर्धते ।

(प्रविश्य)

काञ्चुकीयः—जयतु महाराजः । एष खलु तत्रभवान् विभीषणो विज्ञापयति—सुग्रीवनीलमैन्दजाम्बवद्धनूमत्प्रमुखाश्चानु-

---

मितमूर्द्धानम् तीर्थतोयाभिषिक्तं गुरुं पूज्यम् अधिगतलीलम् आसादितश्रीकम् जनौघैः लोकसमूहैर्वन्द्यमानं प्रणम्यमानम् नवशशिनं प्रत्यग्रोदितमिन्दुमिव आर्यं रामं पश्यतो विलोकयतो मे तृप्तिः सन्तोषो न । भवतीति शेषः । यथा सम्भृतशोकस्य लोकैः प्रणम्यमानस्याचिरोदितस्य चन्द्रमसो दर्शनेन चक्षुषी न तृप्यतस्तथैवार्यरामदर्शनान्ममापि चक्षुषी न तृप्यत इत्युपमा । मालिनीवृत्तम् ॥ १२ ॥

एतदार्येति—आर्यस्य पूज्यस्य रामस्याभिषेकेण राज्यारोहणेन नष्टं कल्मषं कलङ्को (न्यायप्राप्तज्येष्ठभ्रात्रभिषेकाभावावसरसमुत्थः) यस्य तदेतन्मे कुलं सोमस्य चन्द्रस्योदये जगदिव पुनः प्रकाशतां दीप्तिशालितां याति । स्पष्टमन्यत् ॥ १३ ॥

'महाराज' की पदवी पाई, राजच्छत्र ग्रहण किया, शिर पर प्रकाशमान मुकुट पहना, पावन तीर्थजलसे अभिषेक स्वीकार किया और राजगौरव पाया । चारों ओर प्रजाएँ उनका जयकार कराती हैं, नये चाँदकी भाँति उनका अभिनन्दन किया जा रहा है ॥ १२ ॥

शत्रुघ्न—जिस प्रकार चन्द्रमाके उदयसे सारा संसार प्रकाशित होने लगता है, उसी प्रकार आर्यके राज्याभिषेकसे निष्कलङ्क मेरा यह रघुकुल फिरसे प्रकाशमान हो रहा है ॥ १३ ॥

राम—वत्स लक्ष्मण, अब मैंने राज्य पा लिया ।

लक्ष्मण—अहोभाग्य, आपको बधाई ।

(कञ्चुकी का प्रवेश)

कञ्चुकी—जय हो महाराज की । यह लङ्काधिपति विभीषण निवेदन करते हैं,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

गच्छन्तो विज्ञापयन्ति—'दिष्ट्या भवान् वर्धत' इति ।

रामः—'सहायानां प्रसादाद् वर्धत' इति कथ्यताम् ।

काञ्चुकीयः—यदाज्ञापयति महाराजः ।

कैकेयी—धन्या खल्वस्मि । इममभ्युदयमयोध्यायां प्रेक्षितुमिच्छामि ।

धण्णा खु म्हि । इदं अब्भुदअं अओज्जाअं पेक्खिदं, इच्छामि ।

रामः—द्रक्ष्यति भवती । (विलोक्य) अये ! प्रभाभिर्वनमिदमखिलं सूर्यवत् प्रतिभाति । (विभाव्य) आः ज्ञातम् । सम्प्राप्तं पुष्पकं दिवि रावणस्य विमानम् । कृतसमयमिदं स्मृतमात्रमुपगच्छतीति । तत् सर्वैरारुह्यताम् ।

(सर्वे आरोहन्ति)

रामः—अद्यैव यास्यामि पुरीमयोध्यां
सम्बन्धिमित्रैरनुगम्यमानः ।

सूर्यवत् सूर्ययुक्तम्, अत्र सादृश्यार्थकवत्प्रत्ययो न, किन्तु आश्रयार्थो भतुवेव । कृतसमयं कृतसिद्धान्तम् । 'समयाः शपथाचारकालसिद्धान्तसंविदः' इति कोशः ।

अद्यैवेति—सम्बन्धिमित्रैः सम्बन्धिभिर्भरतप्रभृतिभिर्मित्रैः सुग्रीवविभीषणादिभिश्च अनुगम्यमानोऽहम् अद्यैव अस्मिन्नेवाहनि (विलम्बमकृत्वैव) अयोध्यां तन्नामस्ववंशराजधानीं यास्यामि प्राप्स्यामीति मात्राज्ञां पिपालयिषो रामस्योक्तिः । तदेव

सुग्रीव, नील, मैन्द, जाम्बवान् तथा हनुमान् वगैरह आपके अनुचर निवेदन करते हैं—अहोभाग्य, आपको बधाई ।

राम—'सहायकों की कृपा से सब विजय है' ऐसा कह दो ।

कञ्चुकी—जो आज्ञा ।

कैकेयी—मैं धन्य हूँ । इस अभ्युदयको मैं अब अयोध्यामें भी देखना चाहती हूँ ।

राम—आप वहाँ भी देखेंगी । (देखकर) प्रभापुञ्जसे यह समस्त कानन सूर्यकी भाँति चमक रहा है । (विचार कर) अच्छा, समझ गया, आकाश में रावण वाला पुष्पक विमान आ रहा है । स्मरणमात्र करनेसे वह ठीक समय पर उपस्थित हो जाता है । अब आप लोग इसपर चढ़िये ।

(सब सवार होते हैं)

राम—मैं आज ही अपने बन्धु-बान्धवोंके साथ मित्रोंको लेकर अयोध्या जा रहा हूँ ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

लक्ष्मणः—अद्यैव पश्यन्तु च नागरःस्त्वां
चन्द्रं सनक्षत्रमिवोदयस्थम् ॥ १४ ॥

(भरतवाक्यम्)

तथा रामश्च जानक्या बन्धुभिश्च समागतः ।
तथा लक्ष्म्या समायुक्तो राजा भूमिं प्रशास्तु नः ॥ १५ ॥

(निष्क्रान्ताः सर्वे)

इति सप्तमोऽङ्कः ।

लक्ष्मणः समर्थयति—अद्यैवेति । नागराः अयोध्यानगरनिवासिनः च त्वाम् उदयस्थम् उदयाचलशिखरारूढम् अभ्युदयप्रवणं च सनक्षत्रं नक्षत्रगणपरिवृतं सहृद्बन्धुवृतं च चन्द्रमिव अद्यैव पश्यन्तु । चन्द्रसाम्यादुपमाऽलङ्कारः । इन्द्रवज्रावृत्तम् ॥ १४ ॥

भरतवाक्यम्—भरतस्य नटस्य वाक्यं सामाजिकाभ्युदयाशंसनरूपम् । एष हि समुदाचारो यत्प्रयोगान्ते भरतेन सामाजिकतत्प्रमुखादीनां शुभाशंसनमाचर्यते । सा चेयं प्रशस्तिः निर्वहणसन्धिचरमाङ्कम् ।

यथा रामश्चेति—रामो यथा जानक्या बन्धुभिश्च समागतः तथा लक्ष्म्या समायुक्तो नोऽस्माकं राजा भूमिं धरणीं प्रशास्तु परिपालयतु ॥ १५ ॥

'निष्क्रान्ताः सर्वे' इति समाप्तिं सप्तमाङ्कस्य सूचयति ।

शरदि रामवियदंबरलोचनमानमितायां,मासि तपसि नागाधिनाथशुभतिथौ सितायाम्।
प्रतिमानाटकमिदं 'प्रकाशं' युतं सम्पन्नं, क्षन्तव्यं कृपया विद्वद्भिरिहानुपपन्नम् ॥१॥

इति मुजफ्फरपुरमण्डलान्तर्वर्ति 'पकडी' संज्ञकग्रामवासिना मुजफ्फरपुरस्थधर्मसमाज-संस्कृतमहाविद्यालये वेदान्तदर्शनाध्यापकेन व्याकरणवेदान्तसाहित्याचार्याद्युपाधिना मैथिलपण्डितश्रीरामचन्द्रशर्मणा प्रणीतः प्रतिमानाटक 'प्रकाशः' सम्पूर्णः ॥

लक्ष्मण—और आज ही सभी नगरवासी उदयाचलगत नक्षत्रसहित चन्द्रमा की भाँति आपके दर्शन प्राप्त करें ॥ १४ ॥

(भरत वाक्य)

जिस प्रकार भगवान् राम जानकी तथा बन्धुओंके साथ राज्य करते रहे, उसी तरह राजलक्ष्मी से युक्त हमारे महाराज (राजसिंह) पृथ्वीका पालन करें ॥ १५ ॥

(सबका प्रस्थान)

प्रतिमानाटक समाप्त

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

परिशिष्टम्

नोट्स

१ नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः (पृ. १)

इस नाटक में और भास के अन्य कतिपय नाटकों में भी सर्वप्रथम लिखा मिलता है—नान्द्यन्ते इत्यादि। परन्तु अन्य कविकृत नाटकों में पहले यथायोग्य एक या तदधिक श्लोकों में मङ्गलाचरण निबद्ध करके तब लिखा जाता है—नान्द्यन्ते इति०। यह परिपाटी भास के समय में नहीं थी, भास के मतानुसार सब नट मिल कर पहले नान्दी कर लेते थे, जो परदे के पीछे ही कर ली जाती थी, बाद में केवल सूत्रधार प्रवेश करता था, जो कथाज्ञापक श्लोक कहता था। यही क्रम भास के नाटकों में सर्वत्र पाया जाता है। इसीलिए नान्दी का आधुनिक लक्षण इनके मङ्गल श्लोकों में नहीं पाया जाता, क्योंकि इनकी नान्दी तो ग्रन्थ में निबद्ध होती ही नहीं, वह तो पहले ही कर ली जाती है।

२ प्रतिहाररक्षी (पृ. ४)

यह शब्द स्त्रीलिङ्ग है, 'प्रतिहार रक्षति' इस विग्रह में 'कर्मण्यण्' इस सूत्र से अण् प्रत्यय स्त्रीलिङ्ग होने से टित्वमूलक ङीप्। णिनि प्रत्यय करने पर तो प्रतिहाररक्षिणी यह रूप होगा, अतः अण् ही करना चाहिये।

३ स्थापना (पृ. ५)

इस स्थापना शब्द से प्रस्तावना विवक्षित है। नाट्यशास्त्र में लिखा है—'प्रसाद्य रङ्गं विधिवत्कवेर्नाम च कीर्त्तयेत्। प्रस्तावनां ततः कुर्यात्काव्यप्रख्यापनाश्रयाम्'॥ इसके अनुसार प्रस्तावना में काव्य की प्रशंसा और उससे पूर्व कविनामनिर्देश हो जाना चाहिये, परन्तु इस प्रथा को भास आदि प्राचीन नाटककारों ने मान्यता नहीं दी थी। उस पद्धति को कालिदास ने प्रवृत्त किया, तदनुसार परवर्त्ती कवियों ने भी आचरण किया। पीछे चलकर वह लीक-सी बन गई।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भास के समय तक स्थापना शब्द से जो प्रस्तावना समझी जाती रही उसमें केवल कथावतारणा ही लक्ष्य होती थी, कवि का नामादि उसमें नहीं रहा करता था। इसी से तो नाटकों के मिलने पर भी उनके कर्त्ता के विषय में अन्धकार ही रहा करता था। भासनाटकचक्रों के लिए जो इतना विवाद चला उसका भी सम्भवतः यही कारण था। अस्तु, कारण जो भी हो, स्थिति यही थी।

४ सङ्कल्पितम् (पृ. ६)

सङ्कल्प शब्द का अर्थ इच्छा है। एतदनुसार सङ्कल्पित शब्द का अर्थ होगा—चिन्तित, इष्ट मनोरथ विषय। इसी अर्थ में इस शब्द का प्रयोग कालिदास ने किया भी है, जैसे—'सङ्कल्पितं प्रथममेव मया त्वदर्थे भर्तारमात्मसदृशं स्वगुणैर्गतासि'। भास ने यहाँ 'सङ्कल्पित' शब्द का 'कल्पित' (जुटाया गया) अर्थ किया है, जिसे अवाचकत्व दोषाक्रान्त कहा जा सकता है, परन्तु मेरी सम्मति में भास के समय में भाषा गढ़ी जा रही थी, प्रयोग को नियत रूप नहीं प्राप्त हो सका था, अतः उनका तादृश प्रयोग निन्दनीय नहीं माना जाना चाहिये।

५ परिशङ्कितवर्णा (पृ. १०)

परिशङ्कितवर्णा का अर्थ यहाँ 'डरी हुई' (शङ्कितों के समान चेहरा वाली) ही विवक्षित है 'भयभीताकारसदृशाकारा। परिशङ्किताया वर्ण इव वर्णो यस्याः सा तादृशी' इसी विग्रह से यह अर्थ निकल सकता है, परन्तु इस विग्रह में सभी पदों की प्रथमान्तता सम्पन्न करने के लिए परिशङ्कित शब्द में 'परिशङ्कित-सम्बन्धिवर्ण' इस अर्थ की लक्षणा करनी होगी, उसके बिना काम ही नहीं चलेगा। यह अप्रचलित प्रयोग होगा।

६ प्रहृषितानि (पृ. १३)

यहाँ पर 'हृषेर्लोमसु' इस सूत्र से इट् हुआ है। हृष् धातु दो हैं—'हृषु अलीके' 'हृष् तुष्टौ'। हृष्टं हृषितं लोम। इस प्रसङ्ग में एक वार्तिक भी है—'विस्मितपतिघातयोश्च'। यहाँ बालमनोरमाकार ने स्पष्टीकरण यों किया है—'तत्र लोमसु विस्मितप्रतिघातयोश्च 'हृषु अलीके' इत्यस्मात् 'यस्य विभाषा' इति

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नित्यमिण्निषेधे प्राप्ते विभाषेयम्, 'हृष् तुष्टौ' इत्यस्मात् नित्यमिट्प्राप्तौ विभाषा' इति ॥

७ द्वन्द्वानि (पृ. २१)

द्वन्द्व शब्द का अर्थ होता है जोड़ा, जोड़े के लिए कई तरह का प्रयोग संस्कृत में आया है, मिथुन, युग आदि, उनमें मिथुन और द्वन्द्व ऐसे हैं जिनका प्रयोग पदान्तर प्रयोग निरपेक्ष भाव से भी होता है। शेष शब्दों को प्रयोग में अलग नहीं लाया जाता है। द्वन्द्व से 'जाड़ा-गर्मी' 'स्त्री-पुरुष' यह दोनों अर्थ मुख्यतः प्रतीत होते हैं। 'सर्वर्तुमिर्वृतिकरे निवसन्नुपैति न द्वन्द्वदुःखमिह किञ्चिदकिञ्चनोऽपि' यहाँ द्वन्द्व शब्द 'जाड़ा-गर्मी' अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है, और 'द्वन्द्वं दक्षमरीचिसंभवमिदं तत्स्रष्टुरेकान्तरम्' (शाकुन्तल) यहाँ द्वन्द्व शब्द से 'स्त्री-पुरुष' यह अर्थ लिया गया है। यहाँ 'द्वन्द्वानि' का अर्थ 'स्त्री-पुरुष' से है।

८ शत्रुघ्नलक्ष्मणगृहीतघटे (पृ. २२)

राम का राज्याभिषेक हो रहा है, लक्ष्मण और शत्रुघ्न जलघट लिए खड़े हैं, यही इसका अर्थ है। यहाँ एक बात खटकती है, वह यह है कि जब रामराज्याभिषेक हो रहा था, उस समय सभी रामायणों के अनुसार शत्रुघ्न भरत के साथ उनकी ननिहाल में थे, फिर यहाँ शत्रुघ्न का नाम कैसे घड़े उठाने वालो में गिनाया गया है ? इसका उत्तर यह दिया जा सकता है कि शत्रुघ्न यह नाम नहीं है किन्तु लक्ष्मण का विशेषणमात्र है, तदनुसार इसका यह अर्थ होगा कि शत्रुहन्ता लक्ष्मण घड़ा लिये खड़े थे। शत्रुघ्न की बात इस पक्ष में नहीं है। मैं तो यही समझता हूँ कि रामायण की सभी कथायें जब इनके नाटकों में ठीक ठीक नहीं मिलती हैं तब यहाँ भी शत्रुघ्न पद विशेषण नहीं, व्यक्तिवाचक ही माना जाय। लक्ष्मण और शत्रुघ्न दोनों ही घड़े लिये हैं यही अर्थ किया जाय। भास के अनुसार भरत मात्र ही ननिहाल में थे, क्योंकि आने के समय में भी भरत के साथ शत्रुघ्न की कहीं चर्चा नहीं की गई है। यह कोई आवश्यक चीज नहीं है कि रामायणोक्त कथानक का अक्षरशः अनुवर्तन किया जाय, अतः हमारी समझ में शत्रुघ्न शब्द विशेषण नहीं, यहाँ नाम ही है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

९ सुमित्रामातः (पृ. ३५)

'सुमित्रा माता यस्य' इस विग्रह में बहुव्रीहि समास होने पर 'सुमित्रामातृ' शब्द का अर्थ होगा लक्ष्मण। उसी शब्द के सम्बोधन का यह रूप है। यहाँ यह शङ्का की जा सकती है कि प्रोक्तविग्रह में 'नद्यृतश्च' इस सूत्र से नित्य कप् होने पर सुमित्रामातृक शब्द होना चाहिये ? इस प्रश्न का उत्तर यह होगा कि— 'मातन्मातृकमातृषु वा' इस वार्तिक में मातृ शब्द से कप् को वैकल्पिकत्व हो गया, कोई दोष नहीं रहा, देखिये—'अत एव निपातनात् मातृशब्दस्य मातजादेशः कब्विकल्पश्च' (कौमुदी, समासाश्रयप्रकरण)

१० नियतीव व्यवस्थिता (पृ० ३७)

यहाँ 'नियतिः' की जगह 'नियती' ऐसा रूप लिया गया है जो प्रचलित व्याकरण नियमानुसार अशुद्ध मालूम होता है, क्योंकि क्तिन्प्रत्ययान्त से ङीप् अविहित है। इसी शङ्का को देखकर कुछ लोग 'वियति' (आकाशे) ऐसा पाठभेद कल्पित करते हैं, परन्तु इस पाठ में 'वियति' का कोई उपयोग नहीं देखने में आता है, 'नियति' के अर्थ में जो दृढ़ता व्यक्त होती है वह उसके बदलने पर हट जाती है और उसके हटते ही काव्यकृत चमत्कार भाग खड़ा होता है, ऐसी हालत में वियति यह पाठ ठीक नहीं कहा जा सकता। नियति इस पाठ में जो व्याकरण की त्रुटि है, उसे कवि नहीं मानें तो कोई हर्ज नहीं, अर्थचमत्कार अक्षत रहना चाहिये उसे ठीक रखने के लिए व्याकरण को नमस्कार किया जा सकता है। तथापि यदि व्याकरणशुद्धि आवश्यक प्रतीत हो तो क्तिजन्त बनाकर या बाहुलकादि की शरण में जाया जा सकता है।

११ अनुचरतीत्यादि (पृ. ४१)

अनुचरति—'अनुचर इव आचरति' इस विग्रह में क्विप् अथवा अनुचरति, सामान्य तिजन्त, अर्थ तो वही होगा अनुचरण-अनुसरण-अनुगमन सभी पर्याय ही हैं। इसी श्लोक में 'पङ्कलग्नम्' का अर्थ 'पङ्कमग्नम्' करना चाहिये, न जाने पङ्कमग्नम् छोड़कर क्यों कवि ने पङ्कलग्नम् यह लिखना पसन्द किया। यह भी हो सकता है कि लेखनप्रमाद से 'पङ्कलग्नम्' यह पाठ हो गया हो।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

१२ निर्योगात् (पृ. ४२)

'निर्योग' शब्द का अर्थ है पहने जाने वाले कपड़े—धोती, कुरता आदि। इसमें योगार्थ मालूम नहीं पड़ता है, परन्तु रूढि के अनुसार यही माना गया है।

१३ तपःसंग्रामेत्यादि (पृ.४३)

लक्ष्मण वन जाने का उत्सुक होकर बार-बार प्रार्थना करते हैं कि मुझे भी वल्कल दीजिए, मैं भी वन चलने की तैयारी कर लूँ, राम बार-बार उन्हें रोकते हैं, अन्त में रामजी उन्हें वन की कठिनाई बताने के ख्याल से वल्कलों का स्वरूप बताते हैं, जिसमें उस वल्कल का कठोर तपोरूपत्व भी निहित है, यही वह श्लोक है, इसमें राम ने तीन परम्परितरूपक बाँधे हैं, १. तपःसङ्ग्रामकवच, यह वल्कल क्या है, तपस्यारूप युद्ध का जिरहबख्तर है। जो व्यक्ति ठीक से जिरहबख्तर नहीं पहन सकेगा वह युद्ध में सफल नहीं होगा। जिस तरह युद्ध में सतत सतर्कता अपेक्षित रहती है, उसी तरह तपस्या में भी सतत जागरूक रहना होगा। इसी अभिप्राय से तपस्या को संग्राम रूपक दिया है और वल्कल को इसलिए कहा है कि जिस प्रकार युद्ध का प्रथम उद्योग कवचधारण है उसी प्रकार तपस्या का भी प्रथम सोपान वल्कल-परिधान होगा। इसे पहन कर इधर-उधर करने का मौका नहीं रहेगा। २. नियमद्विरदाङ्कुश—नियम नितान्त स्वाधीन होते हैं जैसे हाथी। उनको वश करना कठिन कार्य है। इनको स्वायत्त करने में वल्कल अङ्कुश का काम करेंगे। इससे यह कहना है कि नियमों का पालन अति सावधानता से करना होगा। ३. 'खलीनमिन्द्रियाश्वानाम्' इन्द्रिय अश्व हैं जो स्वभावतः चपल हैं। इन्हें वश में करने लिए लगाम की जरूरत है वही यह वल्कल है। इससे कहना है कि दुर्जय इन्द्रियों पर कठोर संयम रखना हो तो उस वल्कल को ग्रहण करो। लक्ष्मण ने यह चुनौती स्वीकार की, खुशी-खुशी कहा—'अनुगृहीतोऽस्मि'।

१४ वधूसहायम् (पृ. ४१)

'वधूः सहायो यत्र तादृशम्' ऐसा विग्रह करके इस 'वधूसहायम्' पद को 'वनगमनम्' का विशेषण माना गया है। 'वधूसहायम्' कहने से सहायान्तर का

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अभाव व्यङ्ग्य होता है। 'श्रुत्वा-उत्थाय' इन क्रियाओं में पौर्वापर्य विवक्षित है, परन्तु उनका पौर्वापर्य नितान्त सान्निध्यद्योतक है।

१५ युगक्षयसन्निकर्षे (पृ. ४७)

युगक्षय समीप आने पर—यही इसका अर्थ है। युगक्षय हो जाने पर तो मेरु भी ध्वस्त हो जायगा, फिर चलेगा कौन ? जब प्रलय समीप आता है तब मेरु चलता है जिससे गृह, वृक्ष आदि नष्ट हो जाते हैं। यहाँ की उपमाओं से राजा की विकलता प्रतीत होती है।

१६ हेषाशून्यमुखाः (पृ. ४८)

हेषा शब्द का अर्थ है अश्व की हिनहिनाहट। घोड़े जब प्रसन्नता या किसी चीज की लिप्सा आदि प्रकट करना चाहते हैं तब जो हिनहिनाहट होती है उसे ही हेषा कहते हैं। 'बहिर्द्वारे तेषां भवति हयहेषा कलकलः'

१७ छाययेवानुगम्यते (पृ. ५५)

'वने रघुकुलश्रेष्ठो रामो लक्ष्मणेन छायया इव अनुगम्यते' यही अन्वय है। यहाँ कुछ लोग यह शङ्का करते हैं कि इसमें उपमा दुष्ट है क्योंकि छाया स्त्रीलिङ्ग है और लक्ष्मण पुंलिङ्ग। इसका उत्तर यह है कि यह दोष तब माना जाता है जब साधारण धर्म के अन्वय होने में कोई बाधा हो, जैसे—'सुधेव विमलश्चन्द्रः' इस उदाहरण में साधारणधर्मवाचक 'विमलः' पद का उपमानभूत सुधा में अन्वय नहीं हो सकता। यहाँ तो साधारण धर्म है अनुगमन, जो क्रियोपस्थापित है, उभयत्र अन्वययोग्य है। अतः यह दोष यहाँ नहीं होगा। इसी बात को दृष्टि में रखकर आचार्यों ने निर्णय किया है कि—

'न लिङ्गवचने भिन्ने न न्यूनाधिकते तथा।
उपमादूषणायालं यत्रोद्वेगो न धीमताम्' ॥

१८ धन्याः खलु (पृ.५७)

इस श्लोक को देखकर इसी के समान होने के कारण अधोलिखित श्लोक याद आ जाता है—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

'धन्याः खलु वने वाताः कह्लारस्पर्शशीतलाः ।
राममिन्दीवरश्यामं ये स्पृशन्त्यनिवारिताः ॥

१९ शोकार्णवकरम् (पृ. ५८)

शोकरूप समुद्र पैदा करने वाला, जिस वचन को सुनकर शोकसागर उमड़ पड़े, वैसा वचन । यहाँ 'शोककर' इसी अर्थ की अधिकता व्यक्त करने के लिए 'शोकार्णवकरम्' कहा है ।

२० हृदयातुरौषधेः (पृ. ५९)

'हृदयरूप बीमार के लिए ओषधरूप' यह नाम के विशेषण रूप में प्रयुक्त हुआ है जिन नामों को सुनकर हृदय रूप बीमार स्वस्थ हो उठता है । यह उन नामों की महिमा है, या स्नेह की महिमा है ।

२१ आगताः पितरः (पृ. ६४)

दशरथ मरने पर आ गये हैं, राम का वियोग उनके प्राणों पर पड़ा, वह मुमूर्षु दशा में कहते हैं—'आगताः पितरः' मैं अपने मृतपूर्वजों को देख रहा हूँ । यह प्रेतजनदर्शन मृत्युसूचक है । आयुर्वेदवालों ने इसे अरिष्ट कहा है—

... ... प्रेतानां यक्षरक्षसाम् ।
पिशाचोरगनागानां भूतानां विकृतामपि ॥
यो वा मयूरकण्ठाभं विधूमं वह्निमीक्षते ।
आतुरस्य भवेन्मृत्युः स्वस्थो व्याधिमवाप्नुयात् ॥

२२ कपोतसन्दानकम् (पृ. ६८)

कपोतसन्दानक शब्द से कबूतरों के घोंसले का तात्पर्य है । सन्दानक का अर्थ बन्धन है । सन्दानित=बद्ध । देखिये कादम्बरी, शुकनासोपदेश—'दृढगुणसंन्दानिताऽपि पलायते' ।

२३ रजश्चाश्वोद्भूतं पतति (पृ. ७१)

घोड़े तेजी से भागते जा रहे हैं, उनके द्वारा उड़ाई गई धूल घोड़ों पर नहीं पड़ती क्योंकि तब तक वे आगे बढ़ गये रहते हैं । इसी अर्थ को ऐसे ही अवसर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. Digitized by eGangotri

पर कालिदास ने भी कहा—'स्वेषामपि प्रसरतां रजसामलङ्घ्याः' (शाकुन्तल, १,८)। इस तुलना को देखने पर यह कल्पना कि कालिदास ने भास का यह श्लोक देखा था—क्या नितान्त असङ्गत कहा जायगा ?

२४ त्वरता (पृ. ७२)

त्वरत इति त्वरम्, यद्वा त्वरास्ति अस्येति वा त्वरम्, आद्ये पचाद्यच् अन्त्ये अर्श आद्यच्। तस्य भावस्त्वरता। वस्तुतः यह पाठ ठीक नहीं है, सत्वरता यह पाठ होना चाहिये।

२५ विश्रमः (पृ. ७५)

विश्राम अर्थ में विश्रम शब्द का प्रयोग होता है, वही शब्द ठीक भी है, क्योंकि—'नोदात्तोपदेशस्य मान्तस्यानाचमेः' इससे वृद्धि का निषेध हो जाता है। अनुदात्तोपदेश धातुओं में चार ही धातु माने गये हैं—यम्, रम्, नम्, गम्। श्रम् धातु उदात्तोपदेश ही हुआ। अत एव कहा है—'विश्रम इति त्वपाणिनीयम्'।

२६ क्रियामाधुर्यम् (पृ. ७६)

क्रियया उत्खननादिमूर्त्तिनिर्माणकलया माधुर्यम् रमणीयता। इन पत्थरों पर जो मूर्त्तियाँ बनी हैं वे कितनी रमणीय हैं। यहाँ माधुर्य शब्द सुन्दरतापर्यवसायी हो गया है।

२७ मानुषविश्वासताम् (पृ. ७६)

मानुषविश्वासताम्—मनुष्यत्वप्रकारकप्रतीतियोग्यताम्। ये मूर्त्तियाँ इतनी अच्छी खुदी हैं कि इन्हें देखने से यह प्रतीति हो आती है कि ये मनुष्य ही हैं। इनमें मनुष्यता का विश्वास हो आता है। यह शब्द कुछ अप्रयुक्त-सा है।

२८ प्रतिमानामल्पान्तराकृतिः। पृ. ७७)

'यादृशी प्रतिमानामाकृतिस्तदाकारा' जैसी यहाँ की प्रतिमायें हैं उसी आकार का किन्तु छोटा। भरतजी दशरथ आदि राजाओं के सदृश थे किन्तु अल्पवयस होने से छोटे थे, इससे रूपसाम्य तो था किन्तु परिणाहसाम्य नहीं था।

२९ ब्राह्मणजनस्य प्रणामं परिहरामि (पृ. ७८)

इन्हें आप ब्राह्मण समझ कर प्रणाम करने चले थे उसका निषेध करता हूँ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

इसका कारण यह है—आप इन्हें ब्राह्मण समझते हैं किन्तु ये ब्राह्मण नहीं हैं, क्षत्रिय हैं।

३० अभिसरीम् (पृ. ७८)

'अभिसरी' शब्द अति अप्रसिद्ध है। इसका अर्थ यहाँ युद्धार्थ यात्रा, अथवा युद्ध में आगे रहना, यही कुछ किया जा सकता है। भास ने जो कुछ शब्द अपने मन से गढ़े थे, उनमें से यह भी एक है।

३१ प्रियावियोगनिर्वेदपरित्यक्तम् (पृ. ८०)

अज की स्त्री का नाम इन्दुमती था। वह अति सुन्दर थी, उसकी मृत्यु देवकुसुमदर्शन द्वारा शापवश हो गई। उसके मरने पर महाराज विरक्तवत् रहने लगे। इसी पीड़ा को यहाँ उनका निर्वेद कहा गया है। निर्वेद की परिभाषा यह है—

'तत्त्वज्ञानापदीर्ष्यादिनिर्वेदः स्वावमाननम्।
दैन्यचिन्ताश्रुनिःश्वासवैवर्ण्योच्छ्वसितादिकृत् ॥'

आपत्ति स्त्रीनाश रूप कारण से निर्वेद हुआ अज को, और उन्होंने इतनी चिन्ता की कि उनकी स्वस्थता जाती रही; कुछ ही दिनों में चल बसे।

३२ धरमाणानाम् (पृ. ८१)

धरमाणानाम् का अर्थ है जीते हुए लोगों का। यहाँ 'धृङ् प्राणधारणे' धातु से शानच् करने पर 'ध्रियमाणानाम्' रूप होगा, वह दिवादि का है। माघ में आया है—'ध्रियते यावदेकोऽपि रिपुः'। धरमाण शब्द बनाने के लिए 'धृञ् धारणे' इस भौवादिक धातु से शानच् करना चाहिये।

३३ सर्वसमुदाचारसन्निकर्षः (पृ. ८८)

सभी प्रकार के व्यवहारों का होना। यहाँ तात्पर्य यह है कि आपके सामने जो सभी प्रकार के व्यवहार किये जा रहे हैं उन्हें देखकर यही विश्वास करना पड़ता है कि आप सुमन्त्र हैं। यदि आप सुमन्त्र नहीं होते तो मातायें आपके सामने घूँघट नहीं दूर करतीं। उनके इस व्यवहार से आपकी सुमन्त्रता प्रमाणित होती है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

३४ अभिवादनक्रममुपदेष्टुमिच्छामि (पृ. ८९)

माताओं को किस क्रम से प्रणाम किया जाय, कौन बड़ी माता है जिनको पहले, उसके बाद मझली माँ को, उसके बाद छोटी माँ को पहचान कर ही तो क्रमशः प्रणाम किया जायगा, तदर्थ आप उन्हें परिचित करा दें जिससे यथोचित क्रम से प्रणाम किया जाय। यही इस वाक्य का अर्थ है। इस अर्थ में यह वाक्य अवाचक है, क्योंकि यहाँ 'उपदेष्टुम्' का सम्बन्ध ठीक नहीं बैठ रहा है अतः उसकी जगह—'अभिवादनक्रममुपदिष्टमिच्छामि' ऐसा पाठ मानना चाहिये। बहुत सम्भव है यही पाठ रहा भी हो, पीछे लेखनप्रमाद से वर्त्तमान पाठ प्रचलित हो गया होगा।

३५ आक्रुष्ट इवास्म्यनेन (पृ. ९०)

कौसल्या ने भरत से कहा—निःसन्तापो भव। इसका अर्थ स्पष्ट है तुम्हारे सन्ताप दूर हों। यहाँ सन्ताप कैसा ? यह विचारणीय है, सभी अपने मन की सोचेंगे। कौसल्या ने कहा कि राम-वनगमन से जो सन्ताप तुमको है वह छूट जाय, उससे तुम्हें त्राण प्राप्त हो। भरत को दूसरा ही अभिप्राय ज्ञात हुआ। उन्होंने समझा कि ये मुझे ताने दे रही हैं—रामरूप विरोधी के रहने से जो राज्याप्राप्तिरूप सन्ताप था वह अब दूर हो गया, निश्चिन्त हो जाओ। कौसल्या के कथन का यही मतलब भरत ने लगाया।

३६ अतिसन्धितः (पृ. ९०)

अतिसन्धा अतिसन्धानम्, वञ्चनमित्यर्थः, देखिये शाकुन्तल—'परातिसन्धानमधीयते ये विद्येति ते सन्तु किलाप्तवाचः' सा अतिसन्धा सञ्जाता अस्येति अतिसन्धितः, 'तदस्य संजातं तारकादिभ्य इतच्' यही इसकी सिद्धि का उपाय है। धा से सीधे क्त प्रत्यय करने पर तो 'अतिसंहितः' यह रूप होगा। अतिसन्धित= वञ्चित। लक्ष्मण ने जिसे वञ्चित कर रखा है अर्थात् उन्होंने स्वयं राम की सेवा का अवसर प्राप्त कर लिया, भरत को वैसा नहीं करने दिया, यही लक्ष्मण द्वारा यहाँ भरत की अतिसन्धा है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

३७ इदं प्रयतिष्ये (पृ. ९०)

यत् धातु प्रयत्नार्थक तथा अकर्मक है, इसके योग में इदं पद का किसी प्रकार समन्वय नहीं होता है । यहाँ 'इह प्रयतिष्ये' ऐसा पाठ हो जाय तो सब ठीक हो जायगा ।

३८ अभिषेकं पुरस्कृत्य (पृ. ९६)

'अभिषेकं पुरस्कृत्य' इसमें अभिषेक शब्द से क्रिया नहीं, क्रिया की सामग्री ली गई है, क्रिया लेकर कोई क्या जायेगा, उसकी सामग्री जल, छत्र आदि लेकर जाने का प्रसङ्ग भी है ।

३९ प्रत्यादेशो राज्यलुब्धायाः कैकेय्याः (पृ. १०१)

राम राज्यलुब्धा कैकेयी के लिए तिरस्कार स्वरूप थे । राम राज्य से एकदम निरपेक्ष थे और कैकेयी ने राज्य के लिए अति अकर्त्तव्य किया, ऐसी दशा में कैकेयी के विषय में कुछ नहीं कह कर राम का बन जाना ही कैकेयी का पर्याप्त तिरस्कार हो गया । इसी व्यवहार को प्रत्यादेश-तिरस्कार का रूप दे दिया गया है । ऐसे उदाहरण बाण की कादम्बरी में भी अधिक आये हुए हैं—'प्रत्यादेशो धनुष्मताम्, धौरेयः साहसिकानाम्, अग्रणीर्विदग्धानाम्, धौरेयः साहसिकानाम् ।'

४० इक्ष्वाकुकुलन्यङ्कभूतः (पृ. १०३)

न्यङ्क शब्द का अर्थ है 'कलंक' । न्यङ्क शब्द अप्रचलित है । इसका 'नि–अङ्क' निकृष्ट भाग इस अवयवार्थ का बहुत थोड़ा भाव आशयार्थ में आता है ।

४१ पितृवचनकराय (पृ. १०३)

करोति इति करः, पितृवचनस्य करः इति पितृवचनकरः, तस्मै पितृवचनकराय । पितृवचनं करोति यः स तस्मै इस विग्रह में पितृवचनकाराय, ऐसा रूप होगा, क्योंकि कर्मण्यण् से अण् प्रत्यय हो जायगा । इसीलिए कौमुदी में लिखा है । 'कथं तर्हि गङ्गाधरभूधरादयः, कर्मणः शैवत्वविवक्षायां भविष्यन्ति ।'

४२ विशालीक्रियतां ते चक्षुः (पृ. १०७)

भरत को देखने के लिए तुम अपनी आँखें विशाल कर लो । अच्छी वस्तु

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

देखने के लिए बड़ी आँखों का होना वर्णित है, देखिए—'विलोकयन्त्यो वपुरा-पुरक्ष्णां प्रकामविस्तारफलं हरिण्यः' (रघुवंश)।

४३ गुरुरयम् , आर्य ! अभिवादये, आयुष्मान् भव (पृ. १०७)

भरत ने लक्ष्मण के विषय में कहा—'गुरुरयम्' आप श्रेष्ठ हैं; फिर लक्ष्मण के प्रति कहा—'आर्य अभिवादये', लक्ष्मण ने आशीर्वाद दिया—'आयुष्मान् भव।' इस कथोपकथन के सिलसिले से प्रकट होता है कि लक्ष्मण बड़े थे और भरत छोटे। भरत ने प्रणाम किया, लक्ष्मण ने श्रेष्ठजनोचित आशीर्वाद दिया। परन्तु यह बात संदिग्ध है, सभी रामायणकार या रामायणाश्रित साहित्यग्रन्थकार भरत को ज्येष्ठ मानते हैं, लक्ष्मण को छोटा। फिर भास को क्या सूझा कि उन्होंने उल्टा लिख दिया ? इस प्रश्न का उत्तर यह दिया जा सकता है कि राम तथा लक्ष्मण समान-चरु-भाग-प्रसूत थे, अतः राम की तरह लक्ष्मण भी भरत से ज्येष्ठ हुए। यह भी कहा जा सकता है कि चरुभाग जो पुत्रेष्टियज्ञोपरान्त रानियों को दिया गया था उसमें लक्ष्मणजनक चरुभाग प्रथमार्पित रहा हो। इन उत्तरों में सन्तोषक्षमता नहीं है। रामायण की कथा में इस तरह की गलती क्षम्य नहीं है। नाटकीय चमत्कारार्थ कवि ने परिवर्त्तन किया है यह बात भी नहीं कही जा सकती, क्योंकि नाटकीयांश में कोई चमत्कार उससे नहीं बढ़ पाया है। मैं समझता हूँ कि भास के समय में कोई रामायण ऐसा भी प्रचलित रहा होगा जिसमें लक्ष्मण को भरत से ज्येष्ठ कहा गया होगा। कालक्रम से वह रामायण लुप्त हो गया है। इस तरह की बातें अति असम्भव नहीं कही जा सकती हैं।

४४ आत्मजविशिष्टगुणः (पृ. ११८)

आत्मज (पुत्र) के विशिष्ट (अद्भुत) गुण। इस वाक्य में समास न करके आत्मजस्य विशिष्टगुणः ऐसा कहने से साहित्यिक चमत्कार कम हो जाता, इसलिए व्याकरण की परवाह न करके समास कर दिया गया है।

४५ कः समयः ? (पृ. १२०)

यहाँ समय शब्द का अर्थ है 'शर्त्त' 'सिद्धान्त' 'समया'—'शपथाचारकाल-सिद्धान्तसंविदः' (इत्यमरः) 'शर्त्त पर आपका राज्य चला दूँगा' ऐसा भरत ने स्वीकार किया, जिस पर राम ने पूछा कि कौन शर्त ?

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

४६ प्रतिग्रहीतुम् (पृ. १२०)

यहाँ 'प्रतिग्रहीतुम्' पद अन्तर्भावितण्यर्थ मानने पर ही प्राकरणिक सङ्गत अर्थ हो सकेगा, नहीं तो विवक्षितार्थ प्रतीति नहीं होगी। 'प्रतिग्रहीतुम्' का साधारण अर्थ है—लेने के लिए। देखिये, कुमारसम्भव—'प्रतिग्रहीतुं प्रणयि-प्रियत्वात्त्रिलोचनस्तामुपचक्रमे च'। इसीलिए यहाँ 'प्रतिग्रहीतुम्' में ग्रहधातु को अन्तर्भावितण्यर्थ मान लेने से 'ग्रहण कराना चाहता हूँ' यह अभीष्ट अर्थ होगा।

४७ अवस्थाकुटुम्बिनीम् (पृ. १२६)

'कुटुम्बिनी' शब्द से स्त्री या सहायक स्त्री, यही अर्थ प्रतीत होता है, उसके साथ अवस्था पद जोड़कर राम सीता की प्रशंसा कर रहे हैं। उनके कहने का अर्थ यह होता है कि सीता साधारण विलासलुब्धा स्त्री नहीं, वह हमारी भी दशा की सहायिका स्त्री है।

४८ निवपनक्रियाम् (पृ. १२९)

निवपन शब्द का अर्थ है पितरों के उद्देश्य से किया गया श्राद्धतर्पण आदि। कालिदास ने भी इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग किया है। देखिये शाकुन्तल—

'अस्मत्परं बत यथाश्रुति संभृतानि। को नः कुले निवपनानि नियच्छतीति॥'

निवपन, निवाप दोनों समानार्थक हैं। 'येभ्यो निवापाञ्जलयः पितृणाम् निवाप शब्द से 'नैवाप' भी बनकर प्रयुक्त हुआ है—'दशरथदुरवापं प्राप नैवापमक्रमः'॥

४९ स्वरपदपरिहीणाम् (पृ. १३१)

स्वर तथा पद से रहित। यहाँ हीन और परिहीन में कोई अर्थभेद नहीं है, क्योंकि परि निरर्थक है। निरर्थक परि को 'अधिपरी अनर्थकौ' इससे कर्मप्रवचनीय संज्ञा होगी, उपसर्गसंज्ञा का उससे बोध हो जायगा, अतः परिहीण पद में णत्व अयुक्त है, अत एव—कारिकावली में 'सामान्यपरिहीनास्तु सर्वे जात्यादयो मताः' ऐसा दन्त्यघटित ही पाठ है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitized by eGangotri

५० 'माहेश्वरं योगशास्त्रम् , मेधातिथेर्न्यायशास्त्रम् प्राचेतसं श्राद्धकल्पम्' (पृ १३४)

महेश्वरकृत योगशास्त्र। यह माहेश्वर योगशास्त्र कौन है इस विषय में बड़ा सन्देह है, प्रसिद्ध योगशास्त्र तो पातञ्जल ही है। महेश्वरकृत योगशास्त्र, हो सकता है पहले रहा हो, अब तो उसकी प्रसिद्धि नहीं रही। यह भी सम्भव है वह माहेश्वर योगशास्त्र प्रचलित पातञ्जल योगशास्त्र का मूलभूत रहा हो, समय की गति से उसका लोप हो गया है। आज सर्वत्र जिस पाणिनीय व्याकरण की ख्याति है उसका भी मूलभूत अन्य बहुविध व्याकरण था, जो अब नहीं रहा।

मेधातिथि को न्यायशास्त्र का प्रवर्त्तक कहा गया है। मेधातिथि प्रसिद्ध हैं उनका ग्रंथ तो धर्मशास्त्र में ही मिलता है। ये मेधातिथि कौन थे? इस प्रश्न का उत्तर अब यही दिया जा सकता है कि ये भी कोई प्राचीन आचार्य रहे होंगे जिनसे प्रेरणा प्राप्त कर गौतम का न्याय बना होगा, जो आज प्रचार में है। इन बातों पर अनुसन्धान होना चाहिये। वरुणकृत श्राद्धकल्प की भी यही स्थिति है।

५१ क्रौञ्चत्वं वा गमिष्यति (पृ. १३९)

परशुराम और कार्त्तिकेय महादेव से अस्त्रवेद का सविधि अध्ययन कर रहे थे। दोनों में विद्या के तारतम्य का सङ्घर्ष उपस्थित हुआ। महादेव ने परीक्षा के लिए तय किया कि इस पर्वत को बाणों द्वारा जो भिन्न कर देगा उसे प्राथम्य प्राप्त होगा। परशुराम ने वैसा किया, इसीलिए उनको यश के साथ गुरुकृपा भी मिली। इन्हीं कारणों से उस शरदलित पर्वत को कालिदास ने—'हंसद्वारं भृगुपतियशोवर्त्म तत्क्रौञ्चरन्ध्रम्' कहा है।

५२ क्रव्यात् (पृ. १५०)

'राक्षसः कौणपः क्रव्यात्'। 'अदोऽनन्ने' इस सूत्र से क्रव्योपपदक अद् धातु से विट् प्रत्यय, उसका सर्वापहार, क्रव्य—आम मांस।

५३ गुण इव बह्वपराद्धमायुषा मे (पृ. १५५)

अधिक दिनों तक जीना गुण माना जाता है, परन्तु मेरी चिरजीविता गुण की जगह दोष हो रही है क्योंकि जीते रहने से ही मुझे अप्रिय घटनायें देखनी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पड़ी हैं। इस पद्यांश में किस प्रकार अन्वय किया गया है समझ में नहीं आता। 'गुण इव' इतना अंश नहीं रहे तब तो ठीक बैठता है, अन्यथा वह मेघ की तरंह लटक जाता है। हम तो इसे कवि की अशक्ति ही मानते हैं।

५४ शब्दयितव्या (पृ. १६२)

यहाँ शब्द पद से णिच् प्रत्यय करके उससे तव्य प्रत्यय किया गया है। शब्दयितव्या आह्वातव्या (पुकारी जाय)।

५५ दूषिताऽत्र भवती (पृ. १६६)

इसका अर्थ है—मैंने आपका तिरस्कार किया, निन्दा की। ऐसे शब्द का प्रयोग कुछ दूसरे ही अर्थ में अब होता है। भास का तात्पर्य निन्दा से ही था।

५६ अन्तशः (पृ. १७१)

अन्तशः—अन्त तक, आसमाप्ति। यहाँ का शस् प्रत्यय चिन्तनीय है।

५७ निम्नस्थलोत्पादको हि कालः (पृ. १७३)

समय सभी खाइयों का पाटनेवाला होता है। समय से सभी घाव भर जाते हैं। किसी भारी दुःख को भी समय सह्य बना देता है।

५८ एष्टव्ये काले (पृ. १७५)

इष्टे काले—उचित समय में। यह इसका भाव है परन्तु एष्टव्य शब्द से यह अर्थ नहीं निकल सकता है।

५९ उन्नामयाननमिदम् (पृ. १८१)

उत् नम् णिच् लोट् मध्यम पुरुष का एकवचन। मुख उठाओ। व्याकरण के अनुसार 'उन्नमय' होना चाहिये। उन्नामय अशुद्ध है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रतिमानाटकगतानि सुभाषितानि

१. अनुचरति शशाङ्कं राहुदोषेऽपि तारा ।
२. अलमिदानीं व्रणे प्रहर्त्तुम् ।
३. अल्पं तुल्यशीलानि द्वन्द्वानि सृज्यन्ते ।
४. विधिरनतिक्रमणीयः ।
५. किं ब्रह्मघ्नानामपि परेण निवेदनं क्रियते ?
६. कुतः क्रोधो विनीतानां लज्जा वा कृतचेतसाम् ।
७. गङ्गायमुनयोर्मध्ये कुनदीव प्रवेशिता ।
८. गोपहीना गावो विलयं यान्ति ।
९. छायां परिहृत्य शरीरं न लङ्घयामि ।
१०. तिर्यग्योनयोऽप्युपकृतमवगच्छन्ति ।
११. न न्याय्यं परदोषमभिधातुम् ।
१२. न व्याघ्रं मृगशिशवः प्रधर्षयन्ति ।
१३. निम्नस्थलोत्पादको हि कालः ।
१४. निर्दोषदृश्या हि भवन्ति नार्यो यज्ञे विवाहे व्यसने वने च ।
१५. पतति च वनवृक्षे याति भूमिं लता च ।
१६. पिपासार्त्तोऽनुधावामि क्षीणतोयां नदीमिव ।
१७. पुरुषाणां मातृदोषो न दोषः ।
१८. बहुवृत्तान्तानि राजकुलानि नाम ।
१९. भर्तृनाथा हि नार्यः ।
२०. राज्यं नाम मुहूर्त्तमपि नोपेक्षणीयम् ।
२१. शरीरेऽरिः प्रहरति, स्वजनो हृदये ।
२२. सर्वशोभनीयं सुरूपं नाम ।
२३. सर्वोऽपि मृदुः परिभूयते ।
२४. सुलभापराधः परिजनो नाम ।
२५. स्वः पुत्रः कुरुते पितुर्यदि वचः कस्तत्र भो विस्मयः ?
२६. हस्तस्पर्शो हि मातृणामजलस्य जलाञ्जलिः ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नाटकीय-वस्तुलक्षणानि

नाटकम्—वीरशृङ्गारयोरेकः प्रधानं यत्र वर्ण्यते ।
प्रख्यातनायकोपेतं [1]नाटकं तदुदाहृतम् ॥

जिसमें वीर, शृङ्गार में अन्यतर रस प्रधान हो, अन्य रस अङ्गभूत रहें और प्रख्यात नायक हो, वह नाटक कहा जाता है ।

पूर्वरङ्गः—यन्नाट्यवस्तुनः पूर्वं रङ्गविघ्नोपशान्तये ।
कुशीलवाः प्रकुर्वन्ति पूर्वरङ्गः स उच्यते ॥

नाटकीय कथा की अवतारणा से पहले रङ्गभूमि के विघ्नों को दूर करने के उद्देश्य से नर्त्तक लोग जो कुछ करते हैं, उसे पूर्वरङ्ग कहते हैं ।

नान्दी—आशीर्वचनसंयुक्ता स्तुतिर्यस्मात् प्रयुज्यते ।
देवद्विजनृपादीनां तस्मान्नान्दीति संज्ञिता ॥

देवगण, ब्राह्मण और राजादिकों की आशीर्वाद सहित स्तुति इसके द्वारा की जाती है इसलिएं लोग इसे नान्दी कहते हैं ।

सूत्रधारः—आसूत्रयन् गुणान् नेतुः कवेरपि च वस्तुनः ।
रङ्गप्रसाधनप्रौढः सूत्रधार इहोदितः ॥

नायक, कवि और कथावस्तु के गुणों को संक्षेप में (नान्दी द्वारा) सूचित करने वाला सूत्रधार नाम से विदित कराया जाता है । इसका रङ्गमञ्च को सजाने की कला में प्रवीण होना भी आवश्यक है ।

---

१. 'नाटकं ख्यातवृत्तं स्यात् पञ्चसन्धिसुसंयुतम् ।
विलासद्धर्यादिगुणवद्युक्तं नानाविभूतिभिः ॥
सुखदुःखसमुद्भूतिर्नानारसनिरन्तरम् ।
पञ्चादिका दशपरास्तत्राङ्काः परिकीर्त्तिताः ॥
प्रख्यातवंशो राजर्षिर्धीरोदात्तः प्रतापवान् ।
दिव्योऽथ दिव्यादिव्यो वा गुणवान् नायको मतः ।
एक एव भवेदङ्गी शृङ्गारो वीर एव वा ।
अङ्गमन्ये रसाः सर्वे कार्यं निर्वहणेऽद्भुतम् ।
चत्वारः पञ्च वा मुख्याः कार्यव्यापृतपूरुषाः ।
गोपुच्छाग्रसमग्र तु बन्धनं तस्य कीर्त्तितम्' इति । (सा० द०)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रयोगातिशयः—यदि प्रयोग एकस्मिन् प्रयोगोऽन्यः प्रयुज्यते।
तेन पात्रप्रवेशश्चेत् प्रयोगातिशयस्तदा॥

यदि एक ही प्रयोग में अन्य प्रयोग प्रारम्भ हो जाय और उसी के द्वारा पात्र का प्रवेश कराया गया हो तो उसे 'प्रयोगातिशय' कहते हैं। यह पाँच प्रकार वाली प्रस्तावना का एक भेद है। जैसे कि साहित्यदर्पण में कहा गया है—

उद्घात्यकः कथोद्घातः प्रयोगातिशयस्तथा। प्रवर्त्तकावलगिते पञ्च प्रस्तावनाभिदाः॥

नेपथ्यम्—कुशीलवकुटुम्बस्य गृहं नेपथ्यमुच्यते।

अभिनेता लोग जहाँ ठहर कर नाटकोचित भूमिका धारण करते हैं, वह नेपथ्य कहा जाता है। इसी को आजकल 'ग्रीन हाउस' कहते हैं।

प्रस्तावना—सूत्रधारो नटीं ब्रूते मारिषं वा विदूषकम्।
स्वकार्यं प्रस्तुताक्षेपि चित्रोक्त्या यत्तदामुखम्॥

जहाँ सूत्रधार विचित्र ढङ्ग से नटी, मारिष या विदूषक से ऐसी बातें कहे, जिससे प्रस्तुत नाटक की कथा का सूचन हो जाय, उसे आमुख कहते हैं। इसी का 'प्रस्तावना' यह नामान्तर है। इसी की जगह में पुराने कविगण भास आदि 'स्थापना' शब्द का व्यवहार करते हैं।

अङ्कः—अङ्क इति रूढिशब्दो भावैश्च रसैश्च रोहयत्यर्थान्।
नानाविधानयुक्तो यस्मात्तस्माद् भवेदङ्कः॥
यत्रार्थस्य समाप्तिर्यस्य च बीजस्य भवति संहारः।
किञ्चिदवलग्नबिन्दुः सोऽङ्क इति सदाऽवगन्तव्यः॥

जो भाव और रसों के द्वारा अर्थों को अंकुरित करता है, जिसके अन्दर नाना प्रकार के विधान हों, जहाँ एक अर्थका अवसान तथा [1]बीजका उपसंहार और अंशतः बिन्दुका[2] सम्बन्ध होता है उसे अङ्क कहते। यह शब्द 'प्रकरण' अर्थ में रूढ है।

---

१. अल्पमात्रं समुद्दिष्टं बहुधा यद्विसर्पति। फलस्य प्रथमो हेतुर्बीजमित्यभिधीयते॥
जो अल्पमात्रा में कहा जाय और आगे चलकर विस्तृत हो, वह बीज कहा जाता है। यह फलसिद्धि का प्रथम कारण माना जाता है।

२. अवान्तरार्थविच्छेदे बिन्दुरच्छेदकारणम्।
मध्यापाती कथा के विच्छेद होने पर भी प्रधान कथा के प्रक्रांत रहने में जो कारण होता है, उसे बिन्दु कहते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मिश्रविष्कम्भकः--वृत्तवर्त्तिष्यमाणानां कथांशानां निदर्शकः।
संक्षिप्तार्थस्तु विष्कम्भ आदावङ्कस्य दर्शितः॥
मध्येन मध्यमाभ्यां वा पात्राभ्यां सम्प्रयोजितः।
शुद्धः स्यात् स तु सङ्कीर्णो नीचमध्यमकल्पितः॥

बीती हुई और आगे वाली कथाओं की सूचना तथा कथांश का संक्षेप करने वाला (छोटा अंक) विष्कम्भक कहा गया है। उसके प्रयोग का स्थान अंक का आदि माना गया है। जहाँ विष्कम्भक में एक अथवा दो मध्यम पात्रमात्र का प्रयोग हो उसे शुद्ध विष्कम्भक और नीच तथा मध्यम दोनों तरह के पात्रों का प्रयोग हो उसे मिश्रविष्कम्भक मानते हैं।

स्वगतम्--अश्राव्यं खलु यद्वस्तु तदिह स्वगतं मतम्।

जो बात सुनाने के योग्य न हो अर्थात् उसे साथ में अभिनय करने वाले न सुनें केवल सामाजिक ही सुनें, इसी अभिप्राय से कही जाय उसे 'स्वगत' कहते हैं। इसी को आत्मगत भी कहते हैं।

प्रकाशम्--सर्वश्राव्यं प्रकाशं स्यात्।

जो बात सबको सुनाने के लिए कही जाय, उसे 'प्रकाश' कहते हैं।

प्रवेशकः--प्रवेशकोऽनुदात्तोक्त्या नीचपात्रप्रयोजितः।

प्रवेशक का प्रयोग नीच पात्रों के द्वारा ही कराया जाता है। इसमें उदात्त रमणीय उक्तियों का अभाव होना चाहिये।

अपवारितम्--रहस्यं कथ्यतेऽन्यस्य परावृत्त्याऽपवारितम्।

जो बात कुछ पात्रविशेष से छिपा कर कुछ पात्रों को कही जाती है, उसे अपवारित कहते हैं।

आकाशभाषितम्--किं ब्रवीष्येवमित्यादि विना पात्रं ब्रवीति यत्।
श्रुत्वेवानुक्तमप्येकस्तत् स्यादाकाशभाषितम्॥

बिना किसी दूसरे जनके, बिना कहने पर ही, बिना सुने ही, क्या कहा? इत्यादि प्रश्नों द्वारा स्वयं प्रकरण बना कर जो बात कही जाती है, उसे आकाशभाषित कहते हैं।

काञ्चुकीयः--ये नित्यं सत्यसम्पन्नाः कामदोषविवर्जिताः।
ज्ञानविज्ञानकुशलाः काञ्चुकीयास्तु ते मताः॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitized by eGangotri

जो सदा सत्य बोलने वाले, निश्छलव्यवहारी, कामदोषशून्य और ज्ञानविज्ञान में निपुण होते हैं वे काञ्चुकीय कहलाते हैं।

नायकः--त्यागी कृती कुलीनः सुश्रीको रूपयौवनोत्साही।
दक्षोऽनुरक्तलोकस्तेजोवैदग्ध्यशीलवान्नेता ॥

दानशील, पण्डित, सत्कुलप्रसूत, धनवान् और रूप, यौवन तथा उत्साह से सम्पन्न, चतुर, लोकप्रिय, तेजस्वी और सुशील पुरुष नेता होता है, अर्थात् नाटक के लिए ऐसे ही नायक चुने जाते हैं।

नायिका--नायकसामान्यगुणैर्युक्ता नायिका।

नायक में अपेक्षित सद्गुणों से युक्त नायिका होती है।

धीरोदात्तः--अविकत्थनः क्षमावानतिगम्भीरो महासत्त्वः।
स्थेयान् निगूढमानो धीरोदात्तो दृढव्रतः कथितः ॥

जो स्वयं अपनी तारीफ नहीं करनेवाला, सहनशील, धीर, महामना, स्थिर-प्रकृति, नम्रता से अभिमान को छिपाकर रखने वाला और सत्यवक्ता हो; उस नायक को धीरोदात्त नायक कहते हैं।

रसः--विभावेनानुभावेन व्यक्तः सञ्चारिणा तथा।
रसतामेति रत्यादिः स्थायिभावः सचेतसाम् ॥
प्रपानकरसन्यायाच्चर्व्यमाणो रसो भवेत्।

सहृदयों के हृदय में वर्तमान रत्यादि स्थायिभाव, विभाव, अनुभाव और व्यभिचारिभाव की सहायता से अभिव्यक्त होकर प्रपानक रस की तरह आस्वाद विषय बनकर रस संज्ञा को प्राप्त होते हैं।

करुणः--इष्टनाशादनिष्टाप्तेः करुणाख्यो रसो भवेत्।
शोकोऽत्र स्थायिभावः स्याच्छोच्यमालम्बनं मतम् ॥

इष्टवस्तु के नाश और अनिष्ट की प्राप्ति से करुणरसका आविर्भाव होता है, इसमें शोक स्थायिभाव होता है और शोच्य आलम्बन विभाव होता है।

वीररसः--उत्तमप्रकृतिर्धीर उत्साहस्थायिभावकः।

जिसका स्थायिभाव उत्साह हो और जो उत्तम पात्रमात्रमें आश्रित हो, उसे वीर रस कहते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रतिमानाटकगतवृत्तलक्षणानि

इन्द्रवज्रा— स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः ।

जिस छन्द में दो तगण, एक जगण और दो गुरु वर्ण हों, उसे इन्द्रवज्रा कहते हैं ।

मालिनी—ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः ।

यदि दो नगण, एक मगण, पुनः दो यगण हों तो उस वृत्त का नाम मालिनी कहा गया है ।

उपजातिः—स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः, उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ ।
अनन्तरोदीरितलक्ष्मभाजौ पादौ यदीयावुपजातयस्ताः ॥

जिस छन्द में दो तगण, एक जगण और दो गुरु अक्षर हों, उसे इन्द्रवज्रा कहते हैं । जिसमें एक जगण, एक तगण, फिर एक जगण और दो गुरु वर्ण हों, उसे उपेन्द्रवज्रा नाम से पुकारते हैं । जिसके चरणों में इन्द्रवज्रा और उपेन्द्रवज्रा दोनों छन्दों के लक्षण चरणभेद से मिलें, उसे उपजाति नामक वृत्त कहते हैं ।

पुष्पिताग्रा—अयुजि नयुगरेफतो यकारो
युजि च नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा ॥

जिस वृत्त के विषम चरणों में दो नगण, एक रगण, अनन्तर एक यगण हो और सम चरणों में नगण, जगण, पुनः, जगण, रगण, उसके आगे एक गुरु वर्ण हो, उसे पुष्पिताग्रा कहते हैं । विषम चरण—प्रथम, तृतीय को और सम चरण—द्वितीय और चतुर्थ को जानना चाहिये ।

वसन्ततिलका—उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः ।

जिसमें तगण, भगण, जगण, फिर जगण, उसके बाद दो गुरु वर्ण हों, वह वसन्ततिलका कहा जाता है ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शार्दूलविक्रीडितम्--सूर्याश्वैर्मसजास्ततः सगुरवः शार्दूलविक्रीडितम् ।

जिस छन्द में मगण, सगण, जगण, सगण, तगणद्वय और एक गुरु वर्ण हो, बारह और सात वर्णों पर यति हो, उसे शार्दूलविक्रीडित नामक वृत्त कहते हैं।

वंशस्थम्--जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ ।

जगण, तगण, जगण, रगण, यदि क्रम से हों तो वंशस्थ नामक वृत्त कहा गया है।

सुवदना--ज्ञेया सप्ताश्वषड्भिर्मरभनययुता भ्लौ गः सुवदना ।

जिसमें मगण, रगण, भगण, नगण, यगण, पुनः भगण, एक लघु वर्ण और अन्त में एक गुरु वर्ण रहे, ७, ७, ६ वर्णों पर यति हो, उसे सुवदना छन्द कहते हैं।

प्रभा--स्वरशरविरतिर्ननो रौ प्रभा ।

दो नगण, दो रगण तथा सात और पाँच वर्णों पर विराम होने से प्रभा वृत्त बन जाता है।

स्रग्विणी--रैश्चतुर्भिर्युता स्रग्विणी संमता ।

यदि चार रगण हों तो स्रग्विणी छन्द होता है।

शालिनी--शालिन्युक्ता म्तौ तगौ गोऽब्धिलोकैः ।

जिसमें एक मगण, दो तगण, तदनन्तर दो गुरु वर्ण रहें और चार तथा सातवर्णों पर यति हो उसे शालिनी कहते हैं।

प्रहर्षिणी--म्नौ ज्रौ गस्त्रिदशयतिः प्रहर्षिणीयम् ।

यदि क्रमशः मगण, नगण, जगण, रगण और अन्तमें एक गुरु वर्ण हो तो उसे प्रहर्षिणी नामक वृत्त कहते हैं। इसमें ३, १० वर्णों पर यति होती है।

शिखरिणी--रसै रुद्रैश्छिन्ना यमनसभला गः शिखरिणी ।

यगण, मगण, नगण, सगण, भगण इन पाँच गणों के बाद एक लघु और एक गुरु हो, और ६, ११ वर्णों पर यति हो तो उसे शिखरिणी छन्द कहते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्रग्धरा—म्रभ्नैर्यानां त्रयेण त्रिमुनियतियुता स्रग्धरा कीर्त्तितेयम् ।

यदि मगण, रगण, भगण, नगण, यगण, यगण, यगण इस तरहका गणन्यास हो और तीन बार प्रति सातवें वर्ण पर यति हो तो उसे स्रग्धरा कहते हैं ।

आर्या—यस्याः प्रथमे पादे द्वादश मात्रास्तथा तृतीयेऽपि ।
अष्टादश द्वितीये चतुर्थके पञ्चदश सार्या ॥

जिस मात्रावृत्त के प्रथम और तृतीय चरणों में १२–१२ मात्रायें, द्वितीय पाद में १८ मात्रायें और चतुर्थ में १५ मात्रायें रहें, उसे आर्या कहते हैं ।

अनुष्टुप्—पञ्चमं लघु सर्वत्र सप्तमं द्विचतुर्थयोः ।
षष्ठं गुरु विजानीयादेतत् पद्यस्य लक्षणम् ॥

अनुष्टुप् छन्द के सब चरणों में ५ वाँ वर्ण लघु, छठा वर्ण गुरु और द्वितीय चतुर्थ चरणों में ७ वाँ लघु होता है ।

हरिणी—रसयुगहयैर्न्सौ म्रौ स्लौ गो यदा हरिणी तदा ।

जिसमें नगण, सगण, मगण, रगण, सगण, तदनन्तर एक लघु तथा एक गुरु वर्ण रहें, छः, चार और सात वर्णों पर यति हो, उस छन्द को हरिणी कहते हैं । गणसामान्य का लक्षण—

मस्त्रिगुरुस्त्रिलघुश्च नकारो भादिगुरुः पुनरादिलघुर्यः ।
जो गुरुमध्यगतो रलमध्यः सोऽन्त्यगुरुः कथितोऽन्त्यलघुस्तः ॥

लघु वर्ण खड़ी पाई (।) द्वारा और गुरुवर्ण इस चिह्न (ऽ) द्वारा व्यक्त किया जाता है । फलतः सभी गणोंको इस प्रकार न्यस्त करना चाहिये ।

मगण-ऽऽऽ, नगण-।।।, भगण-ऽ।।, यगण-ऽऽ, जगण-।ऽ।, रगण-ऽ।ऽ, सगण-।।ऽ, तगण-ऽऽ। ये ही आठ गण हैं । इनके ही विवर्त्तसे ये छन्द बनते हैं ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

टीकाकर्तुः परिचयः

माण्डरसंज्ञकमैथिलभूसुरवंशेऽजनिष्ट कृती ।
श्रीमान् 'कन्हाइ'मिश्रो हृतजनताऽज्ञानताभिस्रः ॥ १ ॥
उदितः 'छीतन'शर्मा ततः सुमेरोरिवादित्यः ।
योऽमानि मानिनिवहश्रयान् सुकृतावदातात्मा ॥ २ ॥
मृतपितृकः स हि बाल्ये मातुलकुलमाश्रितः शरणम् ।
ग्रामे पकड़ीनामनि गृहस्थतां प्रापितो न्यवसत् ॥ ३ ॥
तत्तनयेषु प्रथमो वयसा ज्ञानेन यशसा ।
'मधुसूदन' मिश्राख्यो भक्तश्चतुराग्रणीरभवत् ॥ ४ ॥
तत एव श्री'जयमणि'संज्ञायां मातरि प्रापम् ।
जनिमब्धिरामवसुभूमितशाके 'रामचन्द्रो'ऽहम् ॥ ५ ॥
प्रभवादष्टमशरदि स्नेहान्मामुपनिनीषन्तम् ।
तातं सदा स्वतन्त्रा नियतिरकार्षीत्कथाशेषम् ॥ ६ ॥
बाल्ये पण्डित'झिङ्गुरशर्म'कृपाप्राप्तबोधस्य ।
अथ चक्षुषी चमत्कृतसंस्कृतभाषाप्रयोगेषु ॥ ७ ॥
उन्मीलिते अभूतां श्री'श्रीनाथाख्य'विबुधस्य ।
मम मातुलस्य चरणौ निषेवमाणस्य न चिरेण ॥ ८ ॥
गूढं शास्त्ररहस्यं ज्ञातुं निखिलं निबद्धकक्षस्य ।
उपदेशको ममाभू'दीश्वरनाथो' विदां वन्द्यः ॥ ९ ॥
स्वाभाविक्या कृपया स्नेहेनान्ताप्ररूढेन ।
मम तादृशा च यो मामपुषत्सोदर्यभावेन ॥१०॥
तत्कृपयाधिगताखिलसंस्कृतसाहित्यमर्माणम् ।
बुधवर'किशोरिशर्मा' मां व्यधिताचार्यपदभाजम् ॥११॥
श्रीयुत'जटेश्वरा'भिधविद्वद्वरपादमुपजीव्य ।
दर्शनशास्त्ररहस्यं न चिरेणाशेषमाचकलम् ॥१२॥
एतानन्यांश्च गुरून्मनसि ममावस्थितान्सततम् ।
ध्यायामि यत्कृपा मे मानुष्यकमञ्जसाऽस्राक्षीत् ॥१३॥
सोऽहं वाक्परिचरणव्यापृतचेताः 'प्रकाश'ममुं ।
निरमामिह विद्वांसः कृपास्पृशं स्वां दृशं दध्युः ॥१४॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कृष्णदास संस्कृत सीरीज

७४

भासनाटकचक्रे

अभिषेकनाटकम्

"शशिप्रभा" संस्कृत-हिन्दीव्याख्योपेतम्

व्याख्याकारः

डॉ० जमुना पाठकः

एम. ए., पी-एच. डी.

संस्कृत-विभागः

काशी हिन्दू विश्वविद्यालयः, वाराणसी

प्रस्तावकः

डॉ० श्रीनारायण मिश्रः

रीडर, संस्कृत विभागः काशी हिन्दू विश्वविद्यालयः

कृष्णदास अकादमी, वाराणसी

१९८५

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रकाशक : चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी
मुद्रक : चौखम्बा प्रेस, वाराणसी

संस्करण : प्रथम, वि० सं० २०४२

मूल्य रू०

© कृष्णदास अकादमी

पो० बा० नं० १११८

चौक (चित्रा सिनेमा बिल्डिंग), वाराणसी-२२१००१
(भारत)

अपरं च प्राप्तिस्थानम्

चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस

के० ३७/९९, गोपाल मन्दिर लेन
पो० बा० १००८, वाराणसी-२२१००१ (भारत)
फोन : ६३१४५

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

KRISHNADAS SANSKRIT SERIES
74

ABHISEKA NĀTAKAM

OF

MAHĀKAVI BHĀSA

Edited With

'Shashiprabha' Sanskrit-Hindi Commentaries

By

Dr. JAMUNA PATHAK

M. A., Ph. D.

Department Of Sanskrit, Arts faculty, Banaras Hindu University

Foreword by

Dr. SRINARAYANA MISHRA

Reader, Department of Sanskrit,

Banaras Hindu University

KRISHNADAS Academy

VARANASI-221001

1985

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

© KRISHNADAS ACADEMY

Oriental Publishers & Distributors

POST BOX No. 1118

Chowk, (Chitra Cinema Building), Varanasi–221001

(INDIA)

First Edition

1985

Also can be had from

Chowkhamba Sanskrit Series Office

K. 37/99, Gopal Mandir Lane

Post Box 1008, Varanasi–221001 (India)

Phone : 63145

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रस्तावना

परमपुरुषार्थसिद्धये लोके यानि शास्त्राण्याचार्यैः प्रवर्तितानि तेषु काव्यशास्त्रं कान्तासम्मितोपदेशरूपत्वादतीव श्लाघ्यमित्यत्र न कस्यापि विप्रतिपत्तिः। काव्यस्यापि श्रव्यदृश्यभेदेन प्रकारद्वयं प्रसिद्धम्। अनयोर्यावता सौकर्येण दृश्यकाव्येन रसास्वादो जायते तावता न श्रव्येणेत्यत्रापि सम्प्रतिपत्तिरेव विदुषामास्ते। अत एव "नाट्यं भिन्नरुचेर्जनस्य बहुधाऽप्येकं समाराधनम्" इति सूक्तिः प्रचलिता। नाट्येषु नाटकप्रकरणादिदशप्रकारा रूपकपदाऽभिधेयाः, उपरूपकाणि च कियन्ति सन्ति तथाऽपि नाटकं सर्वाङ्गत्वात् श्रेष्ठमिति मन्यत एव। अत एव "काव्येषु नाटकं रम्यम्" इति प्रोच्यते।

सम्प्रत्युपलभ्यमानेषु नाटकेषु प्राचीनतमानि महाकविभासग्रथितानि स्वप्नवासवदत्तप्रभृतीनि त्रयोदश नाटकानि। एतानि न केवलं प्राचीनतमत्वादपितु सुतरामभिनेयत्वात् वस्तुवैशिष्ट्याच्चोत्तमानि। अन्यानि सन्ति भूयांसि सरसानि विश्रुतानि नाटकानि सहृदयावर्जकाणि, परं तानि दीर्घकायत्वादभिनेयतामतिक्रान्तानि सन्त्यन्ततः श्रव्यनिर्विशेषाणीव प्रतिभान्ति।

भासनाटकचक्रे रामायणमहाभारतीयकथांशमादायैव बहूनि प्रवृत्तानि। तत्र रामायणीयकिष्किन्धा-सुन्दर-युद्धकाण्डानां कथामादाय प्रवृत्तं देवकृतरामराज्याभिषेकपर्यवसायि नाटकमभिषेकं नामान्यतमम्। इदं च नाटकीयाशेषगुणपूर्णत्वादतीव प्रशस्यं रूपकं षटस्वङ्केषु परिसमाप्यते।

अस्याभिषेकनाटकस्य भासनाटकचक्रे स्वातन्त्र्येण चानेकं संस्करणम् किञ्चिन्मूलमात्रम्, अपरं च सव्याख्यमुपलभ्यमानमपि न सर्वथा विदुषां सन्तोषास्पदमिति कृत्वा डॉ० श्रीजमुनापाठकमहोदयेनास्मत्प्रियशिष्येण सम्प्रति काशीहिन्दू विश्वविद्यालयीयसंस्कृतविभागसदस्येन स्वकीयाभ्यां संस्कृतहिन्दीव्याख्याभ्यामलङ्कृतमिदं नाटकमस्माकमतितरां प्रमोदावहम्। स्वविद्यावैभवेन सरसमिदं रूपकं सरसतरं कुर्वन् श्रीपाठकमहोदयः समेषां सहृदयानां साधुवादमर्हति। सर्वेऽपि काव्यरसज्ञा नाटकमिदं श्रीपाठकमहोदयविरचितव्याख्याद्वयसमन्वितमङ्गीकृत्य व्याख्यातुः परिश्रमं सफलयिष्यन्तीति दृढं विश्वसिति।

दीपावली
वि. सं. २०४२

विदुषां विधेयः—
श्रीनारायणमिश्रः

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दो शब्द

नाटक-ग्रन्थों की रमणीयता सर्वविदित है—'काव्येषु नाटकं रम्यम्'। कोई भी सहृदय इनसे आकृष्ट हुए बिना नहीं रह सकता। इसी आकर्षण के कारण नाटकों पर कार्य करने के लिए मेरी अभिरुचि उत्पन्न हुई। परिणामतः १९७८ में अभिज्ञानशाकुन्तल की व्याख्या प्रकाशित हुई। तत्पश्चात् अन्य कई नाटकों पर कार्य किया, किन्तु दुर्भाग्यवश वे अभी प्रकाशित नहीं हो सके हैं।

इस नाटक का सम्पादन; डॉ० सुधाकर मालवीय, संस्कृत-विभाग; का० हि० वि० वि०, वाराणसी के निर्देशन में हो सका है। वे मेरे अग्रज हैं। अस्तु, उनसे मैं शुभाकांक्षी हूँ। कृष्णदास अकादमी; वाराणसी के सुयोग्य कर्मठ संचालक का मैं विशेष आभारी हूँ जिन्होंने इस संस्करण के प्रकाशन का श्रेय ग्रहण किया।

अन्ततः, गुरुवर्य डॉ० श्री नारायण मिश्र जी, प्रवाचक, संस्कृत-विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी के असीम शुभाशीर्वाद से यह कार्य सम्पन्न हो सका है। अत एव मैं उनके चरण-कमलों में विनयावनत हूँ। इसमें जो कुछ भी गुण है, वह श्रद्धेय गुरु जी की देन है तथा जितने दोष हैं, वे मेरे हैं। अस्तु;

विद्वच्चरणानुरागी—
जमुना पाठक

दीपावली, १९८५

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भूमिका

महाकवि भास

संस्कृत-कवियों का मुख्य उद्देश्य विषयवस्तु-ख्यापन ही था। आत्म-ख्यापन से वे बहुत दूर रहते थे। यहाँ तक कि कतिपय उपलब्ध ग्रन्थों में उनके कर्त्ता के नाम का भी अभाव है। महाकवि भास इन्हीं कवियों में एक हैं। नाटक-जगत् में इनका नाम प्राचीन-काल से ही प्रसिद्ध है तथा इस क्षेत्र में इनका प्रथम-स्थान है किन्तु इनकी किसी भी कृति में इनका नाम तक उपलब्ध नहीं हैं। अतः इनके कृतियों के कर्त्तृत्व के विषय में भी सन्देह बना रहा है। यद्यपि विद्वानों ने बाह्य तथा अन्तः-साक्ष्य के आधार पर इस सन्देह का निराकरण किया है फिर भी इस क्षेत्र में पर्याप्त शोध की आवश्यकता है।

भास संस्कृत के प्रथम नाटककार हैं। इसका तात्पर्य यह नहीं कि संस्कृत-वाङ्मय में इनसे पूर्व नाटकों की रचना नहीं हुई थी प्रत्युत् सम्प्रति उपलब्ध नाटकों में सबसे प्राचीन इन्हीं के नाटक उपलब्ध हैं। प्राचीन अलङ्कार-शास्त्र के आचार्यों ने अपने लक्षण-ग्रन्थों में इनकी कृतियों से अनेक उदाहरण प्रस्तुत किया है। किन्तु बड़े दुःख का विषय है कि ऐसे प्रथितयश नाटककार के जीवन-परिचय के विषय में हम बिल्कुल अनभिज्ञ है।

भास का स्थिति-काल

भास का स्थिति-काल भी अधिक विवादास्पद है। उल्लेख के अभाव में निश्चित-रूप से कुछ भी कहना कठिन है। फिर भी ये कालिदास से पूर्ववर्ती अवश्य थे क्योंकि उन्होंने मालविकाग्निमित्र में बड़ी श्रद्धा के साथ भास के नाम का स्मरण किया है। इससे यह प्रतीत होता है कि कालिदास के समय तक भास नाटककार के रूप में प्रसिद्धि को प्राप्त कर चुके थे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कालिदास के समय के विषय में भी विद्वानों में अत्यधिक मतभेद है। कतिपय विद्वान् कालिदास को चतुर्थ शताब्दी में मानते हैं अतः उनके अनुसार भास चतुर्थ शताब्दी से पूर्ववर्ती हैं। कतिपय विद्वान् कालिदास को ई० पू० प्रथम-शताब्दी में स्वीकार करते हैं।[1] उनके अनुसार भास का समय ई० पू० प्रथम शताब्दी से पहले निश्चित होता है।

भास के नाटकों की खोज के पूर्व सबसे प्राचीन शूद्रक का 'मृच्छकटिक' नाटक माना जाता था किन्तु यह नाटक भास के 'चारुदत्त' नाटक के अनुकरण पर विरचित तथा उसका परिवर्धित रूप है। इस प्रकार चारुदत्त-नाटक की रचना मृच्छकटिक के कर्त्ता शूद्रक से प्राचीन ठहरती हैं। शूद्रक का शासन काल ई०पू० २२०–१९७ वर्ष था अतः भास को इससे पूर्ववर्ती होना चाहिए।

भास के एक श्लोक को कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र में उद्धृत किया है। इसके अतिरिक्त भास ने प्रतिमा-नाटक में बृहस्पति के अर्थशास्त्र का उल्लेख किया है। इससे प्रतीत होता है कि कौटिल्य के अर्थशास्त्र की रचना भास के बाद हुई थी। इस प्रकार भास का समय कौटिल्य के समय से भी पूर्ववर्ती हैं। कौटिल्य के समय की उच्चतम सीमा ई०पू० चतुर्थ शताब्दी है।

भास कालिदास के पूर्ववर्ती थे अतः उनके समय की निम्नतम सीमा ई० पू० प्रथम शताब्दी है। इस प्रकार भास का समय ई० पू० प्रथम शताब्दी से ई० पू० चतुर्थ शताब्दी के मध्य में निश्चित होता है।

भास की कृतियाँ—नाटकचक्र

सम्प्रति भास-कृत् नाटक 'नाटकचक्र' के नाम से प्रसिद्ध हैं। इसमें १३ नाटकों का उल्लेख है। जिसमें ६ नाटकों का कथानक महाभारत से लिया गया है—मध्यम-व्यायोग, दूतवाक्य, दूतघटोत्कच, कर्णभार, उरुभङ्ग, पञ्चरात्र। दो नाटकों का उपजीव्य रामायण है–प्रतिमा, अभिषेक। एक नाटक भागवत-पुराण पर आधारित है—बालचरित। दो नाटक लोक-कथाओं से

---

१. विस्तृत-विवरण के लिए : द्रष्टव्य मेरे द्वारा सम्पादित अभिज्ञान-शाकुन्तलम् की भूमिका—पृ० १२-१७

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सम्बन्धित है—दरिद्रचारुदत्त और अविमारक। दो नाटक उदयन कथा पर आश्रित हैं—प्रतिज्ञायौगन्धरायण तथा स्वप्नवासदत्तम्। इन सभी नाटकों में भास की मौलिक एवं अनूठी कल्पनाशक्ति तथा अद्भुत नाट्यकुशलता का परिचय मिलता है। रचनाक्रम के आधार पर इन नाटकों का संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है—

(१) प्रतिज्ञायौगन्धरायण—इस नाटक में चार अङ्क हैं। इसमें वत्सराज उदयन तथा उज्जयिनी के राजा प्रद्योत की राजकुमारी वासवदत्ता के प्रेम तथा परिचय का वर्णन है। उदयन को जब प्रद्योत कैद कर लेता है तब उसका (उदयन का) मन्त्री यौगन्धरायण उसे कैद से छुड़ाने तथा वासवदत्ता के साथ उसका विवाह कराने की प्रतिज्ञा करता है। इसी प्रतिज्ञा के कारण ही इस नाटक का नाम 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण' रखा गया है। यौगन्धरायण अपनी प्रतिज्ञानुसार उदयन को वासदत्ता-सहित उज्जयिनी से भगाने में सफल हो जाता है तथा उदयन और वासवदत्ता का विवाह सम्पन्न हो जाता है। यह सुखान्त नाटक है।

(२) स्वप्नवासवदत्तम्—यह छः अङ्कों का नाटक है। इसमें प्रतिज्ञायौगन्धरायण की कथा के बाद की कथा का विवेचन है। वासवदत्ता के परिणय के बाद राजकार्य को छोड़कर उदयन उसमें अत्यधिक आसक्त हो जाता है। इस कमजोरी से उसका एक शत्रु आरुणि उस पर चढ़ाई करके उसका राज्य छीन लेता है। पुनः राज्य प्राप्ति के लिए यौगन्धरायण उदयन का विवाह मगधराज दर्शक की बहन पद्मावती से कराना चाहता है किन्तु वासवदत्ता के रहते उदयन का अन्य स्त्री के प्रति आकृष्ट होना असम्भव जानकर उदयन के आखेट के लिए बाहर चले जाने पर शिविर में आग लगवा कर यह कहला दिया कि वासवदत्ता जल कर मर गयी। यह सुनकर उदयन शोकाकुल हो गया। उधर यौगन्धरायण वासवदत्ता को पद्मावती के पास धरोहर रख देता है। बाद में उदयन का पद्मावती से विवाह हो जाता है। तत्पश्चात् दोनों वत्स और मगध की सेनाओं से आरुणि पराजित हो जाता है और अपहृत वत्सराज्य उदयन को प्राप्त हो जाता है। पुनः बड़े

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

नाटकीय ढंग से वासवदत्ता और यौगन्धरायण प्रकट होते हैं। यह सुखान्त नाटक है।

(३) उरुभङ्ग—यह एकाङ्की नाटक है। द्रौपदी के अपमान के प्रतिकार-स्वरूप भीम द्वारा दुर्योधन के जङ्घा को तोड़ने का वर्णन है। इसी घटना के आधार पर नाटक का नाम 'उरुभङ्ग' रखा गया है। सम्पूर्ण संस्कृत-साहित्य में केवल यही अकेला दुःखान्त नाटक उपलब्ध होता है।

(४) दूतवाक्यम्—यह भी एकाङ्की नाटक है। इसमें महाभारत-युद्ध के पहले श्री कृष्ण के दौत्यकार्य का वर्णन है। सन्धि-कार्य के लिए पाण्डवों की ओर से श्री कृष्ण दूत बनकर दुर्योधन के पास जाते हैं। किन्तु दुर्योधन उनकी बात नहीं मानता और वे निराश होकर लौट आते हैं।

(५) पञ्चरात्रम्—यह तीन अङ्कों का नाटक है। यज्ञ की समाप्ति पर द्रोणाचार्य ने दुर्योधन से दक्षिणा माँगी कि पाण्डवों को आधा राज्य दे दो। दुर्योधन इस शर्त पर तैयार होता है कि यदि पाण्डव पाँच रात्रि के अन्दर ही मिल जाँय तो उन्हें आधा राज्य दे दिया जाएगा। कौरवों ने विराट् की राजधानी पर गायों के लिये चढ़ाई किया। राजकुमार उत्तर ने अज्ञात-वास में स्थित पाण्डवों की सहायता से विजय प्राप्त की। इसी समय पाण्डवों के प्रकाश में आ जाने पर द्रोणाचार्य ने आधा राज्य देने की प्रतिज्ञा का स्मरण दिलाया और दुर्योधन मान लिया।

(६) बालचित—यह पाँच अङ्कों का नाटक है। इस नाटक में भगवान् श्री कृष्ण की बाललीलाओं का वर्णन है, इसलिए इसका नाम 'बालचरित' रखा गया हैं। इसमें श्री कृष्ण के जन्म लेकर कंस-वध तक की कथा समायोजित है।

(७) दूतघटोत्कच—यह एकाङ्की नाटक है। इसमें अभिमन्यु की मृत्यु के पश्चात् हिडिम्बापुत्र घटोत्कच दूत बन कर श्री कृष्ण का सन्देह कौरवों के पास ले जाता है। दुर्योधन अपमान करता है जिससे दुर्योधन और घटोत्कच में गरमा-गरमी हो जाती है। धृतराष्ट्र शान्त करते हैं। घटोत्कच अभिमन्यु के वध का बदला अर्जुन द्वारा लिये जाने की धमकी देकर वापस

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

चला जाता है। दौत्य-प्रधान होने के कारण इसका नाम 'दूतघटोत्कच' रखा गया है। कथा-वस्तु कवि-कल्पना-प्रसूत है क्योंकि घटोत्कच के दौत्यकार्य का वर्णन महाभारत में उपलब्ध नहीं होता।

(८) कर्णभार—यह भी एकाङ्की नाटक है। द्रोणाचार्य की मृत्यु के पश्चात् कर्ण कौरवों का सेनापति बनाया जाता है अतः युद्ध का सम्पूर्ण भार कर्ण पर आ जाता है। कर्ण का यह नियम था कि दोपहर के समय वह जल में खड़ा होकर सूर्य को अर्घ्य देता था और उस समय ब्राह्मणों को उनकी इच्छानुसार दान देता था। इसी अवसर पर ब्राह्मण के रूप में उपस्थित होकर इन्द्र ने कर्ण से कवच और कुण्डल की याचना की। कर्ण सहर्ष उसे दान में दे देता है।

(९) मध्यमव्यायोग—यह एकाङ्की नाटक है। इसकी रचना मध्यम-पाण्डव भीमसेन को आश्रित करके की गयी है। इसमें भीम द्वारा घटोत्कच के हाथ से एक ब्राह्मण के मध्यम पुत्र की रक्षा करना, भीम की अपने पुत्र घटोत्कच के दर्शन से आनन्दानुभूति तथा हिडिम्बा-मिलन का वर्णन है।

(१०) प्रतिमानाटकम्—यह सात अङ्कों का नाटक है। राम के वनवास से लेकर रावणवध-पर्यन्त चौदह वर्ष की कथाओं का संक्षेप में वर्णन है। राज्याभिषेक के बाद यह नाटक समाप्त हो जाता है। इक्ष्वाकुवंशीय राजाओं की प्रतिमा को देखकर उनके मृत्यु का अनुमान भरत को हो जाने के कारण ही इसका 'प्रतिमा' नाम रखा गया है।

(११) अभिषेकनाटकम्—इसमें छः अङ्क हैं। इसमें किष्किन्धा-काण्ड से लेकर युद्धकाण्ड-पर्यन्त कथा का वर्णन है। रावण की मृत्यु के पश्चात् राम का राज्याभिषेक भी लङ्का में ही हो जाता है। इसका विस्तृत विवरण आगे प्रस्तुत किया जाएगा।

(१२) अविमारक—छः अङ्कों वाले इस नाटक में सौवीर के राजकुमार अविमारक तथा राजा कुन्तिभोज की पुत्री कुरङ्गी की प्रेमलीला का वर्णन है। नायक के नाम पर ही इस नाटक का नाम 'अविमारक' रखा गया है।

(१३) चारुदत्तम्—यह चार अङ्कों का नाटक है। नायक के नाम पर ही इस नाटक का नाम 'चारुदत्त' रखा गया है। इसमें निर्धन किन्तु उदारमना

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ब्राह्मण चारुदत्त तथा वसन्तसेना नामक वेश्या के प्रणय-सम्बन्ध का वर्णन है। यह नाटक अपूर्ण है। सम्भवतः यह भास की अन्तिम रचना है, जिसको मृत्युपर्यन्त पूरा नहीं कर सके।

नाटकचक्र के रूपकों का एककर्त्तृत्व

बाह्य तथा अन्तः-साक्ष्य के आधार पर यह सिद्ध होता है। कि 'नाटकचक्र' के सभी नाटक किसी एक ही कवि की रचनाएँ हैं। जो इस प्रकार है—

१—बाह्य-साक्ष्य—नाटकचक्र के नाटकों की आकृति का सूक्ष्म विश्लेषण करने पर निम्नलिखित तथ्य प्राप्त होते हैं—

(१) सभी नाटक सूत्रधार के प्रवेश से प्रारम्भ होते हैं। संस्कृत के अन्य नाटकों में मङ्गलाचरण-रूप नान्दीपाठ के पश्चात् सूत्रधार का प्रवेश होता है।

(२) कर्णभार को छोड़कर सभी नाटकों में 'प्रस्तावना' के स्थान पर 'स्थापना' शब्द का प्रयोग मिलता है।

(३) इन सभी नाटकों में प्ररोचना (कवि-परिचय) का अभाव है।

(४) प्रतिज्ञायौगन्धरायण, स्वप्नवासवदत्तम्, प्रतिमानाटकम्, पञ्चरात्रम् तथा उरुभङ्गम्—इन नाटकों के प्रथम श्लोक में मुद्रणालङ्कार द्वारा पात्रों के नामों की सूचना मिल जाती है।

(५) इन नाटकों की समाप्ति प्रायः समान है। अधिकांश नाटकों के 'भरतवाक्य' एक ही हैं। लगभग सभी नाटकों के भरतवाक्य में 'राजसिंहः प्रशास्तु नः' यह अवश्य प्रयुक्त है।

(६) इन नाटकों की भूमिका अत्यन्त छोटी है। उनमें यह विशेषता भी है कि प्रायः एक ही भूमिका कई नाटकों में उपलब्ध होती है।

(७) कुछ पात्र भिन्न-भिन्न नाटकों में एक ही नाम और कार्य के लिए प्रयुक्त हुए हैं।

२—अन्तःसाक्ष्य—'नाटकचक्र' के नाटकों का आन्तरिक सूक्ष्म-विश्लेषण करने पर निम्नलिखित तथ्य प्राप्त होते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(१) सभी नाटकों की भाषा तथा शैली प्रायः समान है। कुछ पद वाक्य तथा पाठ्य समान रूप से पाये जाते हैं। सूक्यंकर की सूची के अनुसार समान-पाठ्य इत्यादि की संख्या १२७ है।

(२) इन सभी नाटकों में अपाणिनीय और आर्ष शब्दों का अधिक प्रयोग हुआ है। इन शब्दों को पाणिनि व्याकरण द्वारा सिद्ध नहीं किया जा सकता।

(३) इन नाटकों में अधिकांशतः अनुष्टुप् छन्दों का ही प्रयोग हुआ है। इनमें सुवदना, दण्डक इत्यादि अप्रचलितः छन्दों का भी प्रयोग हुआ है।

(४) इन नाटकों में व्यङ्ग्य शक्ति का अभाव ही वैशिष्ट्य है। इसलिए पताका-स्थानक का प्रयोग सर्वत्र मिलता है।

(५) इनमें कुछ नाटक ऐसे हैं जो पूर्णरूपेण एक दूसरे से सम्बन्धित है। प्रतिज्ञायौगन्धरायण स्वप्नवासदत्तम् का पूर्वभाग प्रतीत होता है। प्रतिमा-नाटक भी अभिषेकनाटक का अङ्ग प्रतीत होता है। दोनों नाटकों में पात्रों की भिन्नता नगण्य है।

उपर्युक्त समानताओं एवं वैशिष्ट्यों के आधार पर यह सिद्ध होता है कि सभी नाटक किसी एक ही कवि की कृतियाँ है।

नाटकचक्र के नाटकों का भास-कर्त्तृत्व

'नाटकचक्र' के नाटक भास की ही रचनाएँ हैं। वह इस तथ्य से प्रमाणित हो जाता है कि बाण ने हर्षचरित में भासप्रशंसक कुछ पद्यों का निर्माण किया है। उसमें उन्होंने यह बतलाया है कि भास ही एक ऐसे नाटककार है जिनके नाटकों का आरम्भ सूत्रधार के प्रवेश से होता है।

सूत्रधारकृतारम्भैर्नाटकैर्बहुभूमिकैः।
सपताकैर्यशो भासो देवकुलैरिव॥

अतः नाटकचक्र के सभी नाटक का आरम्भ सूत्रधार के प्रवेश के साथ होने से वे भासकृत् सिद्ध होते हैं।

राजशेखर ने तो स्पष्ट उल्लेख किया है कि स्वप्नवासवदत्तम् नाटक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भास के नाटकचक्रों में है और इसकी तुलना में कोई दूसरा नाटक इतना प्रभावशाली एवम् आकर्षक नहीं है—

भासनाटकचक्रेऽपि छेकैः क्षिप्ते परीक्षितुम् ।
स्वप्नवासवदत्तस्य दाहको भून्न पावकः ॥

इस प्रकार सिद्ध होता है कि स्वप्नवासवदत्तम् भासकृत् नाटक है तथा स्वप्नवासवदत्तम्-युक्त 'नाटकचक्र' के अन्य नाटक भी भास की रचनाएँ हैं ।

भास की नाट्यकला

भास संस्कृत-साहित्य के सफल नाटककार हैं । यद्यपि इन्होंने नाट्यशास्त्र के नियमों का अक्षरशः पालन नहीं किया है किन्तु अपनी अनूठी प्रतिभा से उन्हें रोचक बना दिया है। संस्कृत के प्रायः सभी नाटक अभिनेयता की दृष्टि से अनुपयुक्त प्रतीत होते हैं किन्तु भास के सभी नाटक अभिनय की दृष्टि से सफल हैं । भास ने ही सर्व-प्रथम एकाङ्की नाटकों का प्रणयन किया । भास के नाटकों में विषय-वस्तु की सङ्घटना, चरित्र-चित्रण, कथोपकथन, रसयोजना तथा भाषा-शैली इतनी हृदयग्राही, आकर्षक, उपयुक्त तथा समीचीन है कि उनकी नाट्य-रचनाओं को सहृदय के हृदय का भाजन बना देती है ।

इस प्रकार भास के नाटकों की कथावस्तु कतिपय सार्थक घटनाओं द्वारा उद्घाटित एवं विकसित की गयी है । उसमें कहीं भी अस्वाभाविकता प्रतीत नहीं होती । भास परोक्ष की घटनाओं को इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं, मानों प्रेक्षक उनका साक्षात् दर्शन कर रहा हो । जैसे—प्रतिज्ञायौगन्धरायण में उदयन और वासवदत्ता रङ्गमञ्च पर कभी नहीं आते, किन्तु दर्शक उनकी उपस्थिति का निरन्तर आभास करते हैं । भास के नाटकों में अप्रत्यासित घटनाओं का भी बड़े स्वाभाविक ढंग ते चित्रण हुआ है ।

भास ने पात्रों का चरित्रचित्रण भी अत्यधिक निपुणता से किया है। पात्रों को उन्होंने वास्तविकता, मनोवैज्ञानिकता एवं मार्मिकता के साथ चित्रित करके सर्वथा नवीन एवं प्रभावोत्पादक बना दिया है । इनके नाटकों के पात्र

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जीवन की गहनतम व्यावहारिक अनुभूतियों एवं हृदय की संवेदनाओं को प्रकट करने में पूर्ण समर्थ है। स्वप्नवासवदत्तम् का उदयन यदि प्रेम के लिए अत्यधिक समर्पित है तो वासवदत्ता उसी प्रेम के उत्कृष्ट-त्याग की साक्षात् मूर्ति है। पद्मावती एक आदर्श की प्रतिमा है तो यौगन्धरायण कर्त्तव्यनिष्ठता की मूर्ति है। विदूषक तो गम्भीर से गम्भीर व्यक्ति को हास्यरस में सराबोर कर देते हैं। इस प्रकार भास के सभी पात्र उनकी उत्कृष्ट निपुणता से सजे-सँवरे हैं।

भास के नाटकों में कथोपकथन अत्यधिक नपा तुला है। कोई भी पात्र व्यर्थ का वाग्विस्तार नहीं करता और न ही कल्पना का रंग चढ़ाता है। पात्रों का कथोपकथन अत्यधिक संक्षिप्त एवं जीवन्त है। उनका एक-एक वाक्य उनके हृदय के स्तरों को उभाड़ता हुआ दर्शकों के सामने रख देता है।

भास की भाषा में स्वाभाविकता की अधिकता है जिससे अनुमान होता है कि उनके समय में संस्कृत आम बोल-चाल की भाषा थी। वाक्य छोटे-छोटे, पद प्रायः समास-रहित हैं। सरलता से समझ में आ जाते हैं। कवि ने स्वाभाविक अलंकारों का ही प्रयोग किया है, जानबूझ कर उनको थोपा नहीं है। वास्तव में भास सूत्र-काल के व्यक्ति थे। अति संक्षेप में अपनी बातों को कहना उस समय की परम्परा थी। भास उस परम्परा से अछूते नहीं थे।

भास की शैली ओज, प्रसाद और माधुर्य गुणों से ओतप्रोत हैं। विकट-बन्ध, क्लिष्ट-कल्पना, तथा समास-भूयत्व का उनमें अभाव है। पदों का विन्यास स्वाभाविक है तथा भावसौष्ठव एवं प्रवाह की प्रचुरता है। भास रस के अनुकूल शैली में भी परिवर्तन कर देते हैं। उन्होंने उपमा, रूपक इत्यादि सरस एवं प्रचलित अलंकारों का ही अधिकतर प्रयोग किया है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भास की नाट्यकला उत्कृष्ट है। जिसके कारण उनके नाटक प्रेक्षकों के अन्तःकरण में सरलता से घर कर जाते हैं।

भास का प्रकृति-चित्रण

भास एक नाटककार हैं, काव्यकार नहीं। अतएव उनका प्रकृति-चित्रण कथावस्तु को गतिशील बनाने वाला और संक्षिप्त हैं। भास प्रकृति का नैसर्गिक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वर्णन करके उसका हृदयग्राही रूप उपस्थित करते हैं। इनका प्रकृति-चित्रण आलम्बन-रूप से ही अधिक हुआ है, उद्दीपन-रूप में बहुत कम। भास के चित्र अत्यधिक स्वाभाविक और बिम्बग्राही होते है। जैसे भास का सन्ध्या-कालीन सूर्य का वर्णन दर्शनीय है—

अस्तद्रिमस्तकगतः प्रतिसंहृतांशुः
सन्ध्यानुरञ्जितवपुः प्रतिभाति सूर्यः।
रक्तोज्वलांशुकवृते द्विरदस्य कुम्भे
जाम्बूनदेन रचितः पुलको यथैव ॥

(अभिषेक ४।२३)

अर्थात् अस्ताचल के शिखर पर स्थित, किरणों को समेटे हुए, सन्ध्या द्वारा लाल बनाए गये भगवान् सूर्य उसी प्रकार सुशोभित हो रहे हैं जैसे हाथी के लाल चमकीले रेशमी कपड़े से ढके मस्तक-भाग पर सोने का बना गोला-कार आभूषण शोभायमान हो।

सायंकाल का कैसा स्वाभाविक चित्र खींचा है भास ने—

खगावासोपेताः सलिलमवगाढो मुनिजनः
प्रदीप्तोऽग्निर्भाति प्रविचरति धूमो मुनिवनम्।
परिभ्रष्टो दूराद् रविरपि च संक्षिप्तकिरणः
रथं व्यावर्त्यासौ प्रविशति शनैरस्तशिखरम् ॥

(स्वप्नवासव १।१६)

अर्थात् चिड़ियाँ अपने-अपने घोसलों में चली गयी, मुनिलोग स्नान करने लगे, आग जल गयी (अतः) तपोवन में धूआँ फैल गया और बहुत ऊँचे से गिरे हुए सूर्य भी किरणों को समेट कर तथा रथ को छोटा करके धीरे-धीरे अस्ताचल को जा रहे हैं।

सूर्यास्त के बाद चन्द्रोदय का कितना बिम्बग्राही वर्णन भास ने किया है—

उदयति हि शशाङ्कः क्लिन्नखर्जूरपाण्डुः
युवतिजनसहायो राजमार्गप्रदीपः।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तिमिरनिचयमध्ये रश्मयो यस्य गौराः
हृतजल इव पङ्के क्षीरधारा पतन्ति ॥
(चारुदत्त १।२९)

सरस खजूर के समान पीले वर्ण वाला, युवतियों का सहायक, राजमार्ग का दीपक चन्द्रमा उदित हो रहा है अन्धकार की राशि के मध्य में उसकी श्वेत किरणें उसी प्रकार पड़ रही है जैसे सूखे जलवाले कीचड़ में दूध की धारा हो।

समुद्र का कितना स्वाभाविक वर्णन है—

क्वचित्फेनोद्गारी क्वचिदपि च मीनाकुलजलः
क्वचिच्छङ्खाकीर्णः क्वचिदपि च नीलाम्बुदनिभः।
क्वचिद् वीचीमालः क्वचिदपि च नक्रप्रतिभयः
क्वचिद्भीमावर्तः क्वचिदपि च निष्कम्पसलिलः ॥
(अभिषेक ४।१७)

यह समुद्र कहीं फेनों को उगलता हुआ, कहीं मछलियों से व्याप्त जल वाला, कहीं बिखरे शङ्खों वाला, कहीं काले बादल के समान श्याम-वर्ण वाला कहीं तरङ्गों के समूह से युक्त, कहीं नक्रों के कारण भयानक, कहीं भयङ्कर भँवरों वाला और शान्त-जल वाला बना हुआ है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भास संक्षिप्त तथा स्वाभाविक प्रकृति-चित्रण में सिद्धहस्त हैं।

अभिषेक का संक्षिप्त कथानक

प्रथम अङ्क—प्रथम अङ्क की स्थापना से ज्ञात होता है कि बालि सुग्रीव की पत्नी को बलात् लेकर सुग्रीव को निकाल दिया है। सीता-हरण के पश्चात् सीता को खोजते हुए राम और लक्ष्मण से सुग्रीव की भेंट हो गयी है। राम और सुग्रीव दोनों परस्पर सहयोग के लिये वचनबद्ध हो गये हैं। बाली को मारने की तैयारी हो गयी है ॥ स्थापना समाप्त ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

तत्पश्चात् हनुमान् के साथ रामलक्ष्मण-सहित सुग्रीव बालि से लड़ने के लिए किष्किन्धा को प्रस्थान करता है। वहाँ पहुँचकर राम की आज्ञा लेकर सुग्रीव बालि को युद्ध के लिए ललकारता है। अपनी पत्नी तारा के द्वारा रोके जाने पर भी बालि अपने पराक्रम की प्रशंसा करता हुआ युद्धार्थ चल देता है। दोनों में घमासान युद्ध होता है। हनुमान् के द्वारा प्रतिज्ञा की याद दिलाये जाने पर राम एक ही बाण में बालि को मार देते हैं। खून से लथपथ होकर बालि जमीन पर गिर पड़ता है। बाण पर लिखे राम के नामक्षरों को पढ़कर वह राम से अपने को मारे जाने का कारण पूछता है। 'अनुजवधू का अभिमर्षण' इस कारण को सुनकर निरुत्तर हो जाता है। वह राम से क्षमा माँगता है तथा अपने पुत्र अंगद और कुलक्रमागत सुवर्णहार सुग्रीव को सौंपकर इस संसार से विदा हो जाता है। राम सुग्रीव का अभिषेक करने के लिये लक्ष्मण को आज्ञा देते हैं।

द्वितीय अङ्क—द्वितीय अंक के विष्कम्भक से ज्ञात होता है कि सुग्रीव ने सीता का पता लगाने के लिए चारों ओर सेना भेज दिया है। उनमें से कुछ वापस भी आ गये हैं। किन्तु हनुमान्-सहित अंगद के नेतृत्व में दक्षिण-दिशा में गयी हुई सेना समुद्रतट पर पहुँच गयी है। उन्हें सम्पाति द्वारा यह पता लगा है कि रावण सीता का अपहरण करके ले गया है। इस समाचार को पाकर हनुमान् लङ्का पहुँच गये है ॥ विष्कम्भक समाप्त ॥

हनुमान् लंका के सभी स्थानों पर जाते हैं किन्तु उन्हें सीता कहीं दिखलायी नहीं पड़ती। अन्त में वे प्रमदवन में जाते हैं। वहाँ राक्षसियों से घिरी हुई वियोगिनी सीता दिखलायी पड़ती हैं। अशोक वृक्ष के कोटरे में छिपकर सम्पूर्ण वृत्तान्त मालूम करते हैं। रावण सीता को अपनी ओर आकृष्ट करने का बहुत प्रयत्न करता है। सीता उसे शाप दे देती हैं। स्नान का समय हो जाने के कारण सपरिवार रावण चला जाता है। हनुमान् सीता के सम्मुख प्रकट होते हैं। सीता द्वारा पूछे जाने पर हनुमान् उससे राम का समाचार बताते हैं तथा उसे आश्वस्थ करते हैं कि शीघ्र ही राम बानर-सेना साथ आकर रावण का संहार करेंगे। सीता हनुमान् से कहती है कि जाकर प्रियतम

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

से मेरा समाचार इस ढंग से कहना कि वे शोकाकुल न हो जाएँ। सीता से आशीर्वाद लेकर रावण को अपने आगमन की सूचना देने के लिए उपाय सोचते हुए हनुमान् निकल जाते हैं।

तृतीय अङ्क—शङ्कुकर्ण तथा प्रतीहारी के वार्तालाप से ज्ञात होता है कि हनुमान् ने अशोकवाटिका उजाड़ दिया है। तत्पश्चात् रावण प्रवेश करता है। रावण द्वारा पूछे जाने पर—किसी वानर ने अशोकवाटिका उजाड़ दिया है, यह शङ्कुकर्ण बतलाता है। रावण वानर को पकड़ने के लिए निर्देश देता है तथा एक हजार सेना भेजता है। हनुमान् बड़े-बड़े वृक्षों से उस सेना को मार डालते हैं। पुनः अक्षयकुमार को भेजता है। अक्षयकुमार के साथ रावण की आज्ञा के बिना ही पाँच और सेनापति जाते हैं किन्तु हनुमान् अक्षय कुमार को भी मार डालते हैं। पुनः अक्षयकुमार को मारा गया सुनकर मेघनाथ जाता है। रावण को देखने की इच्छा से हनुमान् मेघनाथ के बन्धन में बँध जाते हैं। यह समाचार सुनकर रावण विभीषण को बुलवा लेता है तथा उसके आदेश से हनुमान् भी लाये जाते हैं। रावण के द्वारा पूछे जाने पर हनुमान् बतलाते हैं कि राम के द्वारा भेजा गया मैं हनुमान् नामक वानर हूँ तथा राम का सन्देश सुनाते है कि राम शीघ्र आकर आप रावण का विनाश करेंगे। छलपूर्वक सीतापहरण किये जाने की निन्दा करते हैं। विभीषण भी हनुमान् के कथन का समर्थन करता है। रावण विभीषण को शत्रु (राम) का पक्षपाती कहकर निकाल देता है तथा राम से युद्ध करने का सन्देश कहकर हनुमान् की पूँछ जलाकर छोड़ देने का निर्देश देता है।

चतुर्थ अंक—चतुर्थ अङ्क के विष्कम्भक से ज्ञात होता है कि हनुमान् सीता का समाचार लेकर राम के पास पहुँच गये हैं। सुग्रीव ने लंका पर चढ़ाई के लिए सेना को तैयार होने का निर्देश दे दिया है। उनके निर्देशानुसार सेना तैयार हो गयी है॥ विष्कम्भक समाप्त॥

सेना समुद्र तट पर पहुँच चुकी है। वहीं विभीषण भी राम की शरण में आते हैं। राम विभीषण को 'लङ्केश' उपाधि से विभूषित करते हैं। विभीषण के कथनानुसार राम के दिव्यास्त्र छोड़ने के लिए उद्यत होने पर समुद्र मार्ग

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दे देता है तथा सम्पूर्ण वाहिनी लङ्का पहुँच जाती है। वहाँ त्रिकूटाचल पर सेना का निवास बनाया जाता है। सेना-गणना के समय रावण द्वारा भेजे गये दो राक्षस-शुक और सारण वानर सेना में सम्मिलित पाये जाते हैं। उदारमना राम उनको रावण के युद्ध के लिए सन्देश देकर छोड़ देते हैं।

पञ्चम अंक—पञ्चम अङ्क के विष्कम्भक से सूचित होता है कि युद्ध प्रारम्भ हो गया है। रावण के सभी साधन समाप्त हो चुके हैं। तथा बड़े-बड़े प्रहस्त, कुम्भकर्ण इत्यादि सेनानी मार दिये गये हैं। मेघनाथ भी युद्ध के लिए चला गया है। रावण के आदेशानुसार विद्युज्जिह्व राम तथा लक्ष्मण के शिरों की प्रतिकृति लाने गया है॥ विष्कम्भक समाप्त॥

तत्पश्चात् रावण आकर सीता से पुनः प्रणय-याचना करता है। सीता उसे धिक्कारती है। इसी समय एक राक्षस राम और लक्ष्मण का शिर लाकर रावण को देता है और कहता है कि ये दोनों भाई मेघनाथ द्वारा मार दिये गये है। रावण सीता को दोनों के कटे शिरों को दिखलाता है। सीता दोनों शिरों को देख कर मूर्च्छित हो जाती है। सीता पुनः होश में आकर विलाप करने लगती है तथा रावण से प्रार्थना करती है कि उसी तलवार से मेरा शिर काट दो। इतने में आकर एक राक्षस रावण को सूचना देता है कि तुम्हारे पुत्र मेघनाथ को राम ने मार दिया है। रावण शोकाभिभूत होकर मूर्च्छित हो जाता है और होश में आकर विलाप करने लगता है। मेघनाथ के मार दिये जाने पर सेना में भगदड़ मच जाता है। राक्षस रावण की सेना को धैर्य बँधाता है कि अभी देव-दानव विजयी रावण के रहते तुम्हें धैर्य नहीं छोड़ना चाहिए। रावण शत्रुता की आश्रय-भूता तथा विपत्तियों की जड़ सीता को मार डालना चाहता है किन्तु राक्षस द्वारा रोके जाने पर रुक जाता हैं और रथ पर बैठकर युद्ध के लिए चल देता है।

षष्ठ अंक—षष्ठ अंक के विष्कम्भक से ज्ञात होता है कि राम और रावण में घमासान युद्ध हो रहा है। सभी देवतागण आकाश में स्थित होकर युद्ध को देख रहे हैं। युद्ध में बहुत से राक्षस मार दिये गये हैं। राक्षसगण भी वानरों पर जी-जान से प्रहार कर रहे हैं। वानर राक्षसों पर पर्वत फेंक रहे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

हैं। रावण रथ पर सवार होकर आक्रमण कर रहा है और राम भूमि पर खड़े होकर। राम रावण द्वारा छोड़े गये बाणों को नष्ट कर दे रहे हैं। इसी बीच इन्द्र ने मातलि द्वारा हाँके जाते हुए रथ को राम के लिए भेज दिया। राम मातलि के कहने पर उस पर सवार हो जाते हैं। राम और रावण के युद्ध को देखने के लिए कर आश्चर्य से सुग्रीव और रावण के सैनिक शस्त्रों का प्रहार रोक दिये हैं। इसी बीच में राम ने बड़ी सर्तकता के साथ ब्रह्मास्त्र को छोड़ दिया जो रावण को मार कर पुनः राम के पास लौट आया है। रावण को मरा देख कर देवता-गण पुष्पों की वर्षा करने लगे और उनकी दुन्दुभी की गम्भीर ध्वनि से आकाश गूँज रहा है ॥ विष्कम्भक समाप्त ॥

राम रावण को मारने के बाद विभीषण को लंका का राजा बना देते हैं तथा स्वयं सीता को आश्वासन देने हेतु लंका नगरी में प्रवेश करना चाहते हैं। इसी समय लक्ष्मण राम से उनके समीप आ रही सीता की सूचना देते हैं। रावण के गृह में निवास से दूषित सीता को राम तुरन्त ग्रहण नहीं करते हैं। राम का अभिप्राय जान कर सीता अग्नि में प्रवेश हेतु पति की अनुमति चाहती हैं तथा उसे प्राप्त कर अग्नि में प्रवेश कर जाती हैं। अग्निदेव सीता को साथ लेकर राम के पास जाते हैं और सीता को पवित्र होने की घोषणा करके राम से ग्रहण करने का अनुरोध करते हैं। राम यह कह कर सीता को स्वीकार करते हैं कि मैं इसकी पवित्रता को जानता था किन्तु लोगों को विश्वास दिलाने हेतु मैंने अग्निपरीक्षा ली है। विमान में स्वर्ग से पधारे राजा दशरथ तथा ऋषि-देव-गणों की उपस्थिति में राम का राजतिलक होता है। इन्द्र के आदेश से लंका में भरत, शत्रुघ्न और समस्त अयोध्यावासी उपस्थित होते हैं। उन्हें देखकर राम अत्यधिक प्रसन्न होते है और भरत-वाक्य के साथ नाटक समाप्त हो जाता है।

कथानक का स्रोत एवं मूलकथा में परिवर्तन

अभिषेक नाटक का कथानक वाल्मीकिरामायण पर आधारित है। इस नाटक में वाल्मीकि-रामायण के किष्किन्धाकाण्ड, सुन्दरकाण्ड एवं युद्ध-काण्ड की कथा वर्णित है। कवि ने रामायणीय कथा में थोड़ा परिवर्तन करके

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

उसे लोगों के समक्ष नाटक के रूप में प्रस्तुत किया है। इस परिवर्तन के कारण मूलकथा में थोड़ी नवीनता आ गयी है जिससे दर्शकों की उत्सुकता अन्त तक बनी रहती है। कवि द्वारा परिवर्तित स्थल द्रष्टव्य हैं—

(१) रामायणीय कथा में बालि तथा सुग्रीव का स्वरूप एक जैसा होने से राम बालि को पहचान नहीं पाते। अतः सन्देह होने के कारण बालि को मार नहीं पाते। सुग्रीव युद्ध में परास्त होकर भाग जाता है। पुनः गजपुष्पी-लता को गले में धारण करके जाता है तथा इस बार बालि और सुग्रीव को पहचान कर राम बालि का वध करते हैं किन्तु अभिषेक में पहली बार के युद्ध में ही सुग्रीव बालि से मार खाकर गिर जाता है तथा हनुमान् द्वारा प्रतिज्ञा का याद दिलाये जाने पर राम बालि का वध कर देते हैं।

(२) रामायणीय कथा में हनुमान् सीता को विश्वास दिलाने के लिए राम की अङ्गूठी ले जाते हैं तथा वापस होते समय राम के विश्वास के लिए सीता की चूड़ामणि को ले आते हैं। भास ने इस घटना का परित्याग करके नयापन लाया है। अभिषेकनाटक की सीता बिना किसी चिह्न के ही बात-चीत के चलते हनुमान् और उनकी बातों की विश्वसनीयता की परीक्षा कर लेती हैं। इसी प्रकार बिना किसी चिह्न के प्रमाण के ही राम भी हनुमान् की बातों पर विश्वास कर लेते हैं।

(३) समुद्र पार करने के लिये रामाणीय कथा में नल और नील द्वारा पुल बनवाया जाता है किन्तु अभिषेकनाटक में स्वयं वरुण राम के सम्मुख उपस्थित होते हैं। पुनः उनकी कृपा से समुद्र का जल दो भागों में बँट जाता है तथा बीच का जल स्थिर हो जाता है जिससे सेना पार चली जाती है।

(४) रामायणीय कथा में मेघनाथ का लक्ष्मण से युद्ध होता है। लक्ष्मण मूर्च्छित हो जाते हैं। सञ्जीवनी बूटी द्वारा जिलाये जाते हैं। पुनः दोनों में युद्ध होता है तथा लक्ष्मण द्वारा मेघनाथ मारा जाता है किन्तु भास ने राम द्वारा ही मेघनाथ का बध दिखलाया है।

(५) रामायणीय कथा में रावण वध के बाद जब राम अयोध्या पहुचते हैं तब वहाँ उनका राज्याभिषेक होता है किन्तु अभिषेकनाटक में लंका में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

ही अग्निदेव दशरथ तथा देवों की उपस्थिति में उनका राज्याभिषेक कर देते हैं। मजे की बात तो यह है कि उक्त अवसर पर इन्द्र के आदेश से भरत तथा शत्रुघ्न-सहित सम्पूर्ण अयोध्या के प्रजाजन लंका में पहुँच जाते हैं।

नाटक का नामकरण—अभिषेक घटना-प्रधान नाटक है। घटनाओं के आधार पर ही नाटक का नामकरण हुआ है। इस नाटक में तीन बार राज्याभिषेक हुआ है (१) बालि के बध के बाद किष्किन्धा के राज्य पर सुग्रीव का अभिषेक (२) रावण द्वारा निर्वासित तथा राम की शरण में आये हुए विभीषण का लङ्का के राज्य पर अभिषेक तथा (३) रावण-बध के पश्चात् लङ्का में ही समस्त अयोध्यावासियों की उपस्थिति में अयोध्या के राज्य पर राम का अभिषेक। इन्हीं अभिषेक की घटनाओं के आधार पर इसका 'अभिषेक' नाम उपयुक्त है। इसमें प्रमुख राज्याभिषेक था—अयोध्या राज्य पर राम का। प्रमुखतः राम का राज्याभिषेक ही इस नाटक के नाम का प्रमुख आधार है।

पात्रों का चरित्र-चित्रण

राम

नाट्यशास्त्रीय लक्षणों के अनुसार राम इस नाटक के धीरोदात्त नायक हैं। वे स्वभाव से अत्यन्त गम्भीर हैं। रावण के वध के पश्चात् उनसे मिलने के लिए जब सीता जाती हैं तो रावण के घर रहने के कारण उसे अपने पवित्र इक्ष्वाकुवंश का कलंक कहकर रोक देते हैं। सीता के अग्नि में प्रविष्ट होने के बाद जब अग्निदेव सीता की पवित्रता का प्रमाण देते हैं तब उसे स्वीकार करते हैं। यद्यपि वे जानते हैं कि सीता पवित्र है फिर भी उसकी पवित्रता के विषय में लोगों को विश्वास दिलाने के लिए ऐसा करते हैं।

जानताऽपि च वैदेह्याः शुचितां धूमकेतन !
प्रत्यार्थं हि लोकानामेवमेव मया कृतम् ॥ (६ । २९)

इस नाटक में राम को अवतारी एक वीर पुरुष के रूप में चित्रित किया गया है। लोकमर्यादा एवं धर्म की रक्षा ही उनका परम उद्देश्य है। बालि से

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitized by Muthulakshmi Research Academy Collection by eGangotri

राम की व्यक्तिगत कोई शत्रुता नहीं थी। उसने अपने छोटे भाई सुग्रीव को राज्य से बाहर निकाल दिया था। इतना ही नहीं बालि ने सुग्रीव की पत्नी के साथ अभिगमन किया था, जो अनुचित था।

भवता वानरेन्द्रेण धर्माधर्मौ विजानता।
आत्मानं मृगमुद्दिश्य भ्रातृदाराभिमर्शनम् ॥ (१।२०)

राम शरणागत-वत्सल हैं। शरण में आये हुए शत्रुपक्ष के व्यक्ति को भी स्वागत-सहित अपना कर उसकी रक्षा करते हैं। शरणागत की सहायता एवं उसकी रक्षा ही धर्म है। जब रावण द्वारा परित्यक्त तथा अपमानित विभीषण राम की शरण में आता है तो वे उसे सहर्ष स्वीकार कर लेते हैं तथा उसे लंकाधिराज बना देते हैं—अद्यप्रभृति मद्वचनाल्लंकेश्वरो भव'।

रावण द्वारा भेजे गये दो गुप्तचर शुक और सारण राम की सेना में पकड़े जाते हैं। विभीषण उन दोनों को रावण का अभिन्न गुप्तचर कहकर यथोचित दण्ड देने के लिए आग्रह करता है किन्तु राम उनके साथ वीरोचित व्यवहार करते है—उन दोनों को छोड़ देते हैं—

अनयोः शासनादेव न मे वृद्धिर्भविष्यति।
क्षयो वा राक्षसेन्द्रस्य तस्मादेतौ विमोचय ॥ (४।२१)

इस नाटक में राम को विष्णु का अवतार बतलाया गया है। स्वयं जगत् के कारण-रूप चक्र, शार्ङ्ग तथा गदाधारी विष्णु मनुष्य का रूप ग्रहण करके लोक-मङ्गल के लिए पृथ्वी पर अवतरित हुए हैं—

मानुषं रूपमास्थाय चक्रशार्ङ्गगदाधरः।
स्वयं कारणभूतः सन् कार्यार्थी समुपागतः ॥ (४।१४)

सीता

सीता इस नाटक की स्वीया नायिका है। वह आदर्श भारतीया नारी हैं। भारतीय स्त्रियों का सबसे बड़ा धर्म है—पातिव्रत-धर्म। वह उसमें कूट-कूट कर भरा है। इस समय वह पति के विरह-वेदना से सन्तप्त है। राक्षस-राज रावण उसे हरण करके अपनी राजधानी लंका में ले गया है। वह उसे डरा-धमका

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

कर तथा समझा-बुझा कर उससे प्रणय-याचना करता है। किन्तु वह अपने पातिव्रत-धर्म पर अड़िग रहती है। और उसे शाप देने के लिए तत्पर हो जाती है—"शप्तोऽसि"। सीता के इस शाप से त्रिभुवन-विजेता रावण घबड़ा जाता है—

देवाः सेन्द्रादयो भग्ना दानवाश्च मया रणे।
सोऽहं मोहं गतोऽस्म्यद्य सीतायास्त्रिभिरक्षरैः॥ (२।१८)

सीता का अपने पति राम के प्रति सच्चा अनुराग है। पति के सुख-दुःख को अपना सुख-दुःख समझती है। जब हनुमान् सीता से राम का समाचार सुनाते हैं कि राम आप के वियोग में सर्वदा सन्तप्त रहते हैं तो वह दुःखी हो जाती है। वह नहीं चाहती कि राम को किसी प्रकार का कष्ट हो। इसी लिए वे हनुमान् से कहती है कि आप मेरी इस कष्ट की दशा को आर्यपुत्र से ऐसे ढंग से कहना जिससे वे शोकाभिभूत न हो जाँय।

भद्र! एतां मेऽवस्थां श्रुत्वार्यपुत्रो यथा शोकपरवशो न भवति तथा मे वृत्तान्तं भण।

वह विरह से अत्यधिक सन्तप्त है। इस समय इसकी अवस्था धूप में फेकी हुई माला के समान हो गयी है—

असितभुजकल्पां धारयन्त्येकवेणीं करपरिमितमध्या कान्तसंसक्तचित्ता।
अनशनकृशदेहा वाष्पसंसिक्तवक्त्रा सरसिजमालेवातपे विप्रविद्धा॥
(२।८)

उसके लिए पति-भक्ति के समक्ष सब कुछ तुच्छ है। रावण उन्हें प्रणय के बदले अपनी विशाल-शक्ति, धन-सम्पत्ति तथा राज्यलक्ष्मी तक देने को तैयार है किन्तु वह उसको त्याग देती है। रावण के द्वारा यह धमकी दिये जाने पर कि आज मेरे शस्त्र द्वारा दोनों—राम तथा लक्ष्मण को धराशायी कर दिया जाएगा। वे इस पर विश्वास नहीं मानती। क्योंकि वे राम के पराक्रम से अत्यधिक प्रभावित हैं। अतः रावण को मूर्ख कहती हुई इस कार्य को वह हाथ से मन्दराचल उठाना बताती है—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

हं मूढः खल्वसि रावणकः यो मन्दरं हस्तेन तुलयितुकामः ।

रावण की माया द्वारा कटे हुए राम तथा लक्ष्मण के सिर को देखकर वह मूर्च्छित हो जाती है तथा रावण से अपने सिर को भी उसी तलवार से अलग करने के लिए प्रार्थना करती है—

भद्र ! येनासिनार्यपुत्रस्यासदृशं कृतं तेन मामपि मारय ।

रावण के मार दिये जाने पर वह बड़ी उत्सुकता तथा अभिलाषा के साथ राम से मिलने जाती है किन्तु राम द्वारा रावण के घर में निवास करने के कारण कुलकङ्किनी कह कर रोक दी जाती हैं। उसे अग्नि में प्रवेश करना पड़ता है। अग्निदेव साथ आकर उसकी पवित्रता का साक्ष्य देते हैं—

इमां गृह्णीष्व राजेन्द्र ! सर्वलोकनमस्कृताम् ।
अपापामक्षतां शुद्धां जानकीं पुरुषोत्तम ! ।। (६।२८)

और दे भी क्यों न। जगत्पावनी जानकी तो भगवती लक्ष्मी हैं। भगवती लक्ष्मी की अवतार-भूता जानकी में अवपित्रता कहाँ से प्रवेश करती। जो संसार को पवित्र करने वाली है उनकी पवित्रता के विषय में यह सन्देह ? इसी लिए अग्निदेव ने उनकी पवित्रता को प्रमाणित किया।

इमां भगवतीं लक्ष्मीं जानीहि जनकात्मजाम् ।
सा भवन्तमनुप्राप्ता मानुषी तनुमास्थिता ।। (६।२८)

हनुमान्

हनुमान् अतुलित बलशाली, महापराक्रमी तथा सच्ची निष्ठा से युक्त बानर हैं वे सुग्रीव के मन्त्री हैं। विपत्ति में सर्वदा अपने स्वामी का साथ देते हैं। मैत्री हो जाने पर जब राम के द्वारा उत्साहित सुग्रीव बालि से लड़ने जाता है तब बालि के द्वारा आहत कर दिया जाता है। सुग्रीव की ऐसी दशा देखकर हनुमान् अत्यधिक दुःखी होते हैं और बालि को शीघ्र मारने के लिए राम को उनकी प्रतिज्ञा की याद दिलाते हैं—

बलवान् वानरेन्द्रस्तु दुर्बलस्तु पतिर्मम ।
अवस्था शपथश्चैव सर्वमार्येण चिन्त्यताम् ।। (१।१५)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सीता के अन्वेषण में हनुमान् का प्रमुख हाथ होता है। समुद्र पार लङ्का में प्रवेश करना बड़े साहस और पराक्रम का कार्य है। सम्पाति द्वारा सीता का वृत्तान्त सुनकर हनुमान् अपने बल से समुद्र को लाँघ कर लङ्का पहुँच जाते हैं—

लब्ध्वा वृत्तान्तं रामपत्न्याः खगेन्द्रात् आरुह्यागेन्द्रं सद्विपेन्द्रं महेन्द्रम्।
लङ्कामभ्येतुं वायुपुत्रेण शीघ्रं वीर्यप्राबल्याल्लङ्घितः सागरोऽद्य ॥
(२।१)

लङ्का के सभी स्थलों में ढूढ़ते हुए वे क्रीडोद्यान में पहुँचते हैं। वहाँ अशोक-वृक्ष के कोटर में बैठकर सभी वृत्तान्त को समझते हैं। रावण के अभिमान को देख कर उनका क्रोध बढ़ जाता है किन्तु वे सन्तुलित रहते हैं। वे सोचते है कि यदि मैं रावण को मार देता हूँ तब तो कार्य पूरा हो जाएगा किन्तु यदि मुझे रावण ने मार दिया तो राम का सारा का चौपट हो जाएगा—

यद्यहं रावणं हन्मि कार्यसिद्धिर्भविष्यति।
यदि मां प्रहरेद् रक्षो महत् कार्यं विपद्यते ॥ (२।१६)

हनुमान् महान् निर्भीक हैं। जिस रावण से देवता तक कांपते हैं। उसे वे लंका में अपने आगमन की सूचना दिये बिना नहीं लौटना चाहते। जब रावण को हनुमान् द्वारा अशोक-वाटिका उजाड़ दिये जाने का समाचार मिलता है तब वह अपनी सेना-सहित अक्षयकुमार को भेजता है। हनुमान् सेना-सहित अक्षयकुमार को मार डालते हैं।

क्रोधात् संरक्तनेत्रं त्वरिततरहयं स्यन्दनं वाहयन्तं
प्रावृट्कालाभ्रकल्पं परमलघुतरं बाणजालान् वमन्तम्।
तान् बाणान् निर्विधून्वन् कपिरपि सहसा तद्रथं लङ्घयित्वा
कण्ठे सङ्गृह्य धृष्टं मुदिततरमुखो मुष्टिना निर्जघान ॥ (३।७)

तदन्तर मेघनाथ के पहुँचने पर उसे मारने में सक्षम होते हुए भी उसे मारते नहीं। उनका उद्देश्य तो रावण के सम्मुख उपस्थित होना था, अतः मेघनाथ के पाश में बँध जाते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

संवृत्तं तुमुलं युद्धं कुमारस्य च तस्य च ।
ततः स वानरः शीघ्रं बद्धं पाशेन साम्प्रतम् ।। (३।१०)

राम के प्रति उनकी अटूट निष्ठा तथा सच्ची भक्ति है। राम की सेवा में सदा तत्पर रहते हैं। उनकी कोई भी आज्ञा हनुमान् के लिए शिरोधार्य है। वे बिना तर्क-वितर्क के राम की आज्ञा का पालन अपना परम-कर्त्तव्य समझते हैं। परिपूता सीता को अग्नि में प्रविष्ट होने के लिए राम की अनुमति हो जाने पर लक्ष्मण सकुचाने लगते हैं किन्तु हनुमान् इस विषय में तर्क करना व्यर्थ समझते हैं।

सुग्रीव

सुग्रीव अपने बड़े भाई बाली द्वारा संत्रस्त वानर है। बड़ा भाई उसको राज्य से बाहर निकाल कर उसकी पत्नी को अपना लिया है। नाटक में सुग्रीव आदि से लेकर अन्त तक वर्तमान रहता है किन्तु उसका चरित्र विशेष उभड़ नहीं पाया है। राम तथा सुग्रीव—दोनों पत्नी से वियुक्त हैं दोनों की परिस्थिति समान है—

एष खलु सीतापहरणजनितसन्तापस्य रघुकुलप्रदीपस्य सर्वलोकनयनाभिरामस्य रामस्य च दाराभिमर्शननिर्विषपीकृतस्य सर्वहर्यृक्षराजस्य सुविपुलमहाग्रीवस्य सुग्रीस्य च परस्परपरोकारकृतप्रतिज्ञयोः सर्ववानराधिपतिहेममालिनं बालिनं हन्तुं समुद्योगः प्रवर्तते।

वह स्वयं तो बालि का मुकाबला करने में समर्थ नहीं हैं किन्तु राम बालि को मारते है और उनके सहयोग से उसका राज्याभिषेक होता है तथा अपनी पत्नी को वापस पाता है—

रामः—लक्ष्मण ! सुग्रीवस्याभिषेकः कल्प्यताम् ।

वह राम का परममित्र तथा सच्चा भक्त है। वह राम के प्रति कृतज्ञ है। उनके प्रत्युपकार के लिए सीता का पता लगाने के निमित्त चारों दिशाओं में वानर भेजता है तथा सीता का पता लग जाने पर रावण से युद्ध करने के लिए सम्पूर्ण वानर-सेना को तैयार करता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

लंकायां किल वर्तते नृपसुता शोकाभिभूता भृशं
पौलस्त्येन विहाय धर्मसमयं संक्लेश्यमाना ततः।
श्रुत्वैतद् भृशशोकतप्तमनसो रामस्य कार्यार्थिना
राज्ञा वानरवाहिनी प्रतिभया सन्नाहमाज्ञापिता ॥
(४।१)

वह राजनीति में भी पटु है। वह जानता है कि बिना सोचे समझे शत्रु-पक्ष के व्यक्ति को अपना लेना खतरनाक भी हो सकता है। अतः जब रावण द्वारा परित्यक्त तथा अवमानित विभीषण राम की शरण में आता है तो वह बिना सोचे-समझे उनसे विभीषण को प्रश्रय न देने का परामर्श देता है क्योंकि राक्षस लोग बड़े मायावी होते हैं—

देव ! बहुमायाश्छलयोधिनश्च राक्षसाः। तस्मात् सम्प्रधार्य प्रवेश्यतां विभीषणः।

लक्ष्मण

लक्ष्मण राम के छोटे भाई हैं। उनकी सबसे बड़ी विशेषता है—बड़े भाई राम के प्रति श्रद्धा एवं भक्ति। वे बड़े भाई के प्रति झगड़ा या तकरार करना अनुचित मानते हैं। जब सुग्रीव बड़े भाई वालि के साथ लड़ने लगता है तब लक्ष्मण इसे असज्जन व्यक्ति का आचरण बताते हैं।

विकसितशतपत्ररक्तनेत्रः कनकमयाङ्गदनद्धपीनबाहुः।
हरिवरमुपयति वानरत्वाद् गुरुमभिभूय सतां विहाय वृत्तम् ॥
(१।१४)

राम की आज्ञा का पालन वे अपना परम कर्त्तव्य समझते हैं। उनकी आज्ञा के विषय में कुछ भी बिना सोचे उसका पालन करते हैं। शत्रुपक्षीय विभीषण के आने पर जब राम स्वागत-पूर्वक विभीषण को ले आने के लिए कहते हैं तब बिना हिचक के उसको मान लेते हैं—यदाज्ञापयति आर्यः।

रावण-वध के पश्चात् अपने पास आती हुई सीता को राक्षस-गृह में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

निवास के कारण अपने कुल का कलंक बताते हुए राम की आज्ञा सुनते ही थोड़ा स्तब्ध रह जाते हैं।

विज्ञाय देव्याः शौचं च श्रुत्वा चार्यस्य शासनम्।
धर्मस्नेहान्तरे न्यस्ता बुद्धिर्दोलयते मम ॥ (६।२३)

फिर भी राम के आदेशानुसार सीता के अग्नि-प्रवेश के लिए तैयारी कर देते हैं।

इस प्रकार हम देखते है कि नाटक में लक्ष्मण प्रारम्भ से अन्त तक उपस्थित रहते हैं किन्तु उनका चरित्र पूर्णतः उभर नहीं पाया है।

विभीषण

विभीषण सत्य, न्याय और धर्म का प्रबल समर्थक तथा रावण का छोटा भाई है। यद्यपि उसका जन्म राक्षसवंश में अवश्य हुआ है किन्तु उसमें राक्षस-वृत्ति का बिल्कुल अभाव है। रावण विभीषण की मन्त्रणा लेता है। जब मेघनाद द्वारा हनुमान् बाँध लिए जाते हैं तब भी रावण विभीषण को मन्त्रणा के लिए बुलवाता है। विभीषण उस समय भी लोकमर्यादा के अनुसार सीता को वापस करने के लिए निवेदन करता है—

प्रसीद राजन्! वचनं हितं मे प्रदीयतां राघवधर्मपत्नी।
इदं कुलं राक्षसकुलपुङ्गवेन त्वया हि नेच्छामि विपद्यमानम् ॥
(३।१९)

रावण जब हनुमान् को मारने का आदेश देता है तब विभीषण राजा के धर्म के उपयुक्त परामर्श देता है कि अपराध करने पर भी दूत सर्वथा अवध्य होते हैं—

सर्वापराधेष्ववध्याः खलु दूताः।

इन सब उचित परामर्श के कारण रावण इसे प्रतिपक्षी राम के पक्ष का ग्रहण करने वाला कहकर उसे राज्य से बाहर निकलवा देता है—

ममानवेक्ष्य सौभ्रात्रं शत्रुपक्षमुपाश्रितम्।
नोत्सहे पुरतो द्रष्टुं तस्मादेष निरस्यताम् ॥ (३।२५)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

इतने पर भी वह रावण को विषयवासना छोड़कर ही कार्य करने का परामर्श देकर राम की शरण में चल देता है।

शासितोऽहं त्वया राजन् ! प्रयामि न च दोषवान् ।
त्यक्त्वा रोषं च कामं च यथा कार्यम् तथा कुरु ॥
(३।२६)

वह यह समझता है कि राम की शरण में ही कल्याण निहित है। राम के बिना राक्षस-कुल का भी उद्धार सम्भव नहीं है। अतः वह राम की शरण में जाने का निश्चय कर लेता है।

अद्यैव तं कमललोचनमुग्रचापं
रामं हि रावणवधाय कृतप्रतिज्ञम् ।
संश्रित्य संश्रितहितप्रथितं नृदेवं
नष्टं निशाचरकुलं पुनरुद्धरिष्ये ॥ (३।२७)

राम की शरण में जाकर वह राम का मित्र बन जाता है तथा समय-समय पर उचित राय देता है। अन्यायी रावण को संरक्षण देने वाला समुद्र लङ्का जाने में मार्ग का अवरोधक बना हुआ है। रावण के परामर्श के अनुसार राम ज्यों हि समुद्र के प्रति दिव्यास्त्र का प्रयोग करने का सङ्कल्प करते हैं त्योंहि समुद्र पार जाने के लिए मार्ग दे देता है।

रावण द्वारा भेजे गये दो गुप्तचर राक्षस—शुक तथा सारण राम की सेना में प्रवेश कर जाते हैं। पूछे जाने पर वे भी अपने को शरणागत बतलाते हैं। उस समय विभीषण उन्हें पहचान कर उचित दण्ड देने को कहता है।

एतौ हि राक्षसेन्द्रस्य सम्मतौ मन्त्रिणौ नृप !
प्राणान्तिकेऽपि व्यसने लङ्केशं नैव मुञ्चतः ॥ (४।२०)
तस्माद्यथार्हं दण्डमाज्ञापयतु देवः ।

भगवान् राम के पास पहुँचते ही अपनी सज्जनता से उन्हें प्रभावित कर देता है। उसकी सज्जनता तथा धार्मिक-प्रवृत्ति के कारण ही राम रावण के मरने के पूर्व ही उसे लङ्का का राजा बना देते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

रावण

नाट्यशास्त्रीय लक्षणों के आधार पर रावण नाटक का धीरोद्धत प्रतिनायक है। वह छलप्रपञ्च से युक्त, अभिमानी आत्मश्लाघा तथा, उग्र स्वभाव वाला लङ्का का राजा है। वह छल द्वारा सीता का हरण कर लाया है।

अपास्य मायया रामं त्वया राक्षसपुङ्गव !
भिक्षुवेषं समास्थाय छलेनापहृता हि सा ॥ (३।१८)

सीता जब समझाने तथा डरवाने से उसके प्रणयनिवेदन को स्वीकार नहीं करती तब भी माया तथा छल का आश्रय लेता है। राम तथा लक्ष्मण का कटा हुआ कृत्रिम सिर मँगवाता है और सीता से कहता है कि इन्हें मेघनाथ ने मार डाला है।

सीते ! भावं परित्यज्य मानुषेऽस्मिन् गतायुषि ।
अद्यैव त्वं विशालाक्षि ! महतीं श्रियमाप्नुहि ॥ (५।९)

मेघनाद के मार दिये जाने पर वह अत्यधिक शोकाभिभूत हो उठता है। सुतस्नेह उसके रग-रग में प्रवाहित होने लगता है। वह विलाप करने लगता है।

हा वत्स ! सर्वजगतां ज्वरकृत् ! कृतास्त्र !
हा वत्स ! वासवजिदानतवैरिचक्र ! ।
हा वत्स ! वीर ! गुरुवत्सल ! युद्धशौण्ड !
हा वत्स ! मामिह विहाय गतोऽसि कस्मात् ॥ (५।१३)

जब मेघनाथ के मार दिये जाने का समाचार सुनता है तो उसे विश्वास नहीं होता क्योंकि वह मेघनाद देव तथा दैत्यों दोनों को पराजित कर रखा है। फिर एक मनुष्य में ऐसे मेघनाब को मारने की हस्ती कैसे हो सकती है।

देवाः सेन्द्रा जिता येन दैत्याश्चापि पराङ्मुखाः ।
इन्द्रजित्सोऽपि समरे मानुषेण निहन्यते ॥ (५।१२)

इन सब अनर्थों का कारण वह सीता को मानकर उसे मारना चाहता है किन्तु राक्षस के द्वारा 'स्त्री वध निन्दित है' यह कहे जाने पर रुक जाता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अभिमान तो उसकी नसों में कूट-कूट कर भरा है। अपने सामने वह देव तथा दैत्यों को भी कुछ नहीं समझता, फिर मनुष्य राम को वह क्या समझे।

दिव्यास्त्रैस्त्रिदशगणा मयाभिभूता
दैत्येन्द्रा मम वशवर्तिनः समस्ताः।
पौलस्त्योऽप्यपहृतपुष्पकोऽवसन्नो
भो ! रामः कथमभियाति मानुषो माम् ॥ (३।१७)

वह अशोक-वाटिका को नष्ट होने में देवताओं का हाथ मानता है अतः उन्हें धूल में मिला देने की डींग हाँकता है। राम को सियार बनाता हुआ अपने को सिंह कहकर उनका उपहास करता है।

कथं लम्बसटो सिंहो मृगेण विनिपात्यते।
गजो वा सुमहान् मत्तः शृगालेन निहन्यते ॥ (३।२०)

अभिमान के कारण उसकी बुद्धि भ्रष्ट हो गयी है। वह कामवासना से जगत्पावनी सीता को भी दूषित करने की चेष्टा करता है। विभीषण के समझाने पर भी उसकी बात अनसुनी कर देता है। सम्पूर्ण लङ्का की सम्पत्ति, नष्ट हो रही है उसकी उसे रञ्चमात्र भी चिन्ता नहीं है वह तो सीता को लुभाने के चक्कर में पड़ा है—

निद्रां मे निशि विस्मरन्ति नयनान्यालोक्य सीताननं
तत्संश्लेषसुखार्थिनी तनुतरा याता तनुः पाण्डुताम्।
सन्तापं रमणीयवस्तुविषये बध्नाति पुष्पेषुणा
कष्टं निर्जितविष्टपत्रयभुजो निर्जीयते रावणः ॥ (५।६)

वैसे रावण कुशल शासक है। उसके शासन-काल में लङ्का की उन्नति चरमोत्कर्ष पर है। सुवर्ण, मणि, विद्रुम इत्यादि की भरमार लगी हुई है। उसके प्रमदवन की शोभा अवर्णनीय है।

कनकरचितविद्रुमेन्द्रनीलैर्विकृतमहाद्रुमपंक्तिचित्रदेशा।
रुचिरतरनगा विभाति शुभ्रा नभसि सुरेन्द्रविहारभूमिकल्पा ॥
(२।५)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वह पक्का राजनीतिज्ञ भी है। हनुमान् को मारने का निर्देश देते-देते रुक जाता है। दूत-वध लोकापवाद का विषय है—'दूतवधः खलु वचनीयः' मेघनाथ का बध सुनकर सभी अनिष्ट की जड़ सीता को ही मारना चाहता है किन्तु स्त्रीवध निन्दनीय सुनकर उनका वध नहीं करता।

वह दृढ़-निश्चय वाला व्यक्ति है। उसे राम से युद्ध करके उन्हें परास्त करना है। जब वह पराक्रम-शाली कुबेर से राज्यलक्ष्मी को छीन सकता है तो मनुष्यरूप राम को क्या समझता। अपनी जाती हुई राज्यलक्ष्मी को उन्हें मारकर रोक लेने का दावा करता है।

बलादेव गृहीतासि तदा वैश्रवणालये।
बलादेव ग्रहीष्ये त्वां हत्वा राघवमाहवे ॥ (५।५)

बालि

बालि किष्किन्धा का राजा तथा सुग्रीव का बड़ा भाई है। वह महा-बलशाली है। उसे अपने बल पर बहुत बड़ा गर्व है। अतः सुग्रीव की गर्जना सुनकर वह आग-बबूला हो जाता है। पत्नी के द्वारा रोके जाने पर भी वह अपने बल की सराहना करते हुए उससे युद्ध करने जाने के लिए तैयार हो जाता है।

तारे ! मया खलु पुरामृतमन्थनेऽपि
गत्वां प्रहस्य सुरदानवदैत्यसङ्घान्।
उत्फुल्लनेत्रमुरगेन्द्रमुद्रग्ररूप—
माकृष्यमाणमवलोक्य सुविस्मितास्ते ॥ (१।११)

वह अपने बल के सामने इन्द्र, शङ्कर, विष्णु को भी कुछ नहीं जोड़ता। इस लिए सुग्रीव से कहता है कि अब तुम बच नहीं सकते।

इन्द्रो वा शरणं तेऽस्तु प्रभुर्वा मधुसूदनः।
मच्चक्षुष्पथमासाद्य सजीवो नैव यास्यति ॥ (१।१२)

सुग्रीव में ताकत कहाँ जो बालि का सामना कर सके। वह तो राम के द्वारा उसे मारे जाने का वादा किये जाने पर उस (बालि) पर आक्रमण

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

करता है। राम उसे मारते तो अवश्य हैं किन्तु छिपकर। वे भी उसे सामने से मारने में असमर्थ हैं। राम के इस कृत्य को निन्दनीय मानता है।

भवता सौम्यरूपेण यशसो भाजनेन च।
छलेन मां प्रहरता प्ररूढमयशः कृतम्॥ (१।१८)

फिर भी बालि समझदार व्यक्ति है। वह अपने छोटे भाई की पत्नी के साथ अभिगमन किया है, जो अनुचित है। राम द्वारा यह तर्क दिये जाने वह अपने वध को न्याय-संगत मान लेता है।

'अनुत्तरा वयम्'।

मरते समय वह सुग्रीव से क्षमा मांगता है तथा अपने पुत्र अङ्गद की सुरक्षा का भार सुग्रीव को सौंप देता है।

मया कृत दोषमपास्य बुद्धया
त्वया हरीणामधिपेन सम्यक्।
विमुच्य रोषं परिगृह्य धर्मं
कुलप्रवालं परिगृह्यतां नः॥ (१।२६)

—जमुना पाठक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitized by eGangotri

पात्र-परिचय

पुरुष—

१. राम—दशरथ के ज्येष्ठ पुत्र।
२. लक्ष्मण—राम का छोटा भाई।
३. बालि—सुग्रीव का बड़ा भाई और किष्किन्धा का राजा।
४. सुग्रीव—बालि का छोटा भाई।
५. अङ्गद—बालि का पुत्र।
६. हनुमान्—सुग्रीव का मंत्री।
७. नील—एक वानर-अधिकारी।
८. बलाध्यक्ष—वानर-सेनापति।
९. बिलमुख—एक वानर योद्धा।
१०. ककुभ—एक वानर-अधिकारी।
११. वानर-काञ्चुकीय—सुग्रीव का कञ्चुकी।
१२. रावण—लङ्का का राजा।
१३. विभीषण—रावण का छोटा भाई।
१४. विद्युज्जिह्व—एक राक्षस।
१५. शंकुकर्ण—रावण का एक सेवक।
१६. शुक, सारण—रावण के मंत्री।
१७. राक्षस-काञ्चुकीय—रावण का कञ्चुकी।
१८. तीन विद्याधर।
१९. अग्निदेव।
२०. वरुणदेव।

स्त्रियाँ—

१. सीता—रामपत्नी।
२. तारा—बालि-पत्नी।
३. राक्षसियाँ।
४. विजया—रावण की प्रतिहारी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitized by eGangotri

अभिषेकनाटकम्

'शशिप्रभा' संस्कृत-हिन्दीव्याख्योपेतम्

प्रथमोऽङ्कः

(नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः)

सूत्रधारः—

यो गाधिपुत्रमखविघ्नकराभिहन्ता
युद्धे विराधखरदूषणवीर्यहन्ता ।
दर्पोद्धतोल्बणकबन्धकपीन्द्रहन्ता
पायात् स वो निशिचरेन्द्रकुलाभिहन्ता ॥ १ ॥

---

* शशिप्रभा *

अन्वयः—यः गाधिपुत्रमखविघ्नकराभिहन्ता, युद्धे विराधखरदूषणवीर्यहन्ता, दर्पोद्धतोल्बणकबन्धकपीन्द्रहन्ता; निशिचरेन्द्रकुलाभिहन्ता (अस्ति) सः वः पायात् ।

(नान्दी के पश्चात् सूत्रधार प्रवेश करता है।)

सूत्रधार—जो गाधि के पुत्र (विश्वामित्र) के यज्ञ में विघ्न करने वाले (राक्षसों) का वध करने वाला है, युद्ध में विराध, खर, दूषण (आदि राक्षसों) के पराक्रम का अन्त करने वाला है, अत्यधिक गर्वशाली तथा उग्र कबन्ध और कपीश (बाली) को मारने वाला है तथा राक्षसेन्द्र (रावण) के वंश का संहार करने वाला है, वह भगवान् (राम)-आप लोगों की रक्षा करें।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

एवमार्यमिश्रान् विज्ञापयामि (परिक्रम्यावलोक्य) अये किन्नु खलु मयि विज्ञापनव्यग्रे शब्द इव श्रूयते ! अङ्ग, पश्यामि ।

(नेपथ्ये)

सुग्रीव ! इत इतः ।

(प्रविश्य)

पारिपार्श्विकः—भाव !

यो गाधिपुत्रेति—यः=भगवान्, गाधिपुत्रमखविघ्नकराभिहन्ता=गाधेः चन्द्रवंशीयस्य क्षत्रियविशेषस्य पुत्रः सुतः विश्वामित्र इत्यर्थः तस्य मखे यज्ञे विघ्नकराणां विघ्नविधायकानां अभिहन्ता वधकर्ता, युद्धे=रणे, विराधखरदूषणवीर्यहन्ता=विराधश्च खरश्च दूषणश्च इति विराधखरदूषणाः तेषां वीर्यस्य पराक्रमस्य हन्ता विनाशकः, दर्पोद्धतोल्बणकबन्धकपीन्द्रहन्ता=दर्पेण अभिमानेन उद्धतौ उद्गूर्णौ च उल्बणौ बलशालिनौ च कबन्धः राक्षसविशेषः कपीन्द्रः च बाली च तयोः हन्ता वधकर्ता, निशिचरेन्द्रकुलाभिहन्ता=निशिचराणां राक्षसानां इन्द्रः स्वामी तस्य कुलस्य वंशस्य अभिहन्ता ध्वंसकः, अस्तीति शेषः, सः=भगवान् रामः, वः=युष्मान्, पायात्=रक्ष्यात् । अन्त्यानुप्रासः अलङ्कारः । वसन्ततिलकाछन्दः ।

एवमिति—एवम्=अनेन प्रकारेण, आर्यमिश्रान्=पूजनीयान्, विज्ञापयामि=निवेदयामि, परिक्रम्य=परिभ्रम्य, अवलोक्य=दृष्ट्वा, विज्ञापनव्यग्रे=निवेदनव्यासक्ते, श्रूयते=आकर्ण्यते ।

आप आदरणीय सज्जनों (दर्शकों) को मैं यह सूचित करता हूँ । (घूम कर और देखकर) अरे ! मेरे द्वारा विज्ञापित करने में व्यस्त होने पर यह कैसा शब्द सुनायी दे रहा है । अच्छा, देखता हूँ ।

[नेपथ्य में]

हे सुग्रीव ! इधर से, इधर से आइये ।

(प्रवेश करके)

पारिपार्श्विक—हे महाशय !

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

कुतो नु खल्वेष समुत्थितो ध्वनिः प्रवर्तते श्रोत्रविदारणो महान् ।
प्रचण्डवातोद्धृतभीमगामिनां बलाहकानामिव खेऽभिगर्जताम् ॥२॥

सूत्रधारः—मार्ष ! किं नावगच्छसि । एष खलु सीतापहरणजनित-सन्तापस्य रघुकुलप्रदीपस्य सर्वलोकनयनाभिरामस्य रामस्य च, दाराभिमर्शननिर्विषयीकृतस्य सर्वहर्यृक्षराजस्य सुविपुलमहाग्रीवस्य सुग्रीवस्य च परस्परोपकारकृतप्रतिज्ञयोः सर्ववानराधिपतिं हेममालिनं बालिनं हन्तुं समुद्योगः प्रवर्तते । तत एतौ हि—

अन्वयः—प्रचण्डवातोद्धतभीमगामिनां खे अभिगच्छतां बलाहकानाम् इव श्रोत्रविदारणः एषः महान् ध्वनिः कुतः नु खलु समुत्थितः प्रवर्तते ।

कुतः इति—प्रचण्डवातोद्धतभीमगामिनां=प्रचण्डः प्रकर्षेण चण्डाः भीषणाः ये वाताः वायवः तैः उद्धृताः उत्थापिताः भीमं भीषणं यथा स्यात् तद्वत् गामिनां चलितानाम्, खे=आकाशे, अभिगर्जतां=अभितः परितः गर्जतां ध्वनिं कुर्वताम्, बलाहकानामिव=मेघानामिव, श्रोत्रविदारणः=श्रोत्रयोः कर्णयोः विदारणः भेदकः, एषः=अयम्, महान् ध्वनिः=विपुलः शब्दः, कुतः=कस्मात्स्थानात्, नु=इति पृच्छायाम्, खलु=निश्चयेन, समुत्थितः=उत्पन्नः, प्रवर्तते=प्रसरति । उपमालङ्कारः । वंशस्थछन्दः ।

मार्षेति—मार्ष=हे मारिष, अवगच्छसि=जानासि, सीतापहरणजनित-सन्तापस्य=सीतायाः जानक्याः अपहरणेन अपनयनेन जनितः उत्पादितः सन्तापः दुःखं यस्य तस्य, रघुकुलप्रदीपस्य=रघूणां रघुवंशीयानां नृपाणां

कानों को फाड़ता हुआ-सा—यह महान् शब्द कहाँ से आ रहा है, मानो यह प्रबल आँधी से प्रेरित होकर आकाश में दौड़ने वाले मेघों का गर्जन हो ।

सूत्रधार—अरे ! क्या नहीं जानते हो । यह सीताहरण से पीड़ित रघुवंश के दीपक सर्वलोकप्रिय राम एवं पत्नीहरण-पूर्वक निष्कासित सम्पूर्ण वानर एवं ऋक्षों के स्वामी उन्नत ग्रीवा वाले सुग्रीव की परस्पर उपकार करने की प्रतिज्ञा (हुई है, उस प्रतिज्ञा) के अनुसार सम्पूर्ण वानरों के स्वामी स्वर्णमालाधारी बाली को मारने के लिए उपाय हो रहा है । इसीलिए यह—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

इदानीं राज्यविभ्रष्टं सुग्रीवं रामलक्ष्मणौ ।
पुनः स्थापयितुं प्राप्ताविन्द्रं हरिहराविव ॥ ३ ॥
(निष्क्रान्तौ)

यत्कुलं वंशं तस्य प्रदीपस्य, सर्वलोकनयनाभिरामस्य=सर्वे च ते लोकाः जनाः तेषां नयनानां नेत्राणाम् अभिरामः रमणीयः, रामस्य=राघवस्य, दाराभिमर्षणनिर्विषयीकृतस्य=दाराणां स्त्रियाः अभिमर्षणम् आघर्षणम् अभिगमनमित्यर्थः तेन निर्विषयीकृतस्य बहिष्कृतस्य, सर्वहर्यृक्षराजस्य=सर्वे च ते हरयः वानराः ऋक्षाश्च भल्लूकाश्च तेषां राजा अधिपः तस्य, सुविपुल-महाग्रीवस्य=सु सुष्ठु विपुला विस्तृता महती विशाला च ग्रीवा गलः यस्य तस्य, सुग्रीवस्य=एतन्नामकस्य कपिराजस्य, परस्परोपकारकृतप्रतिज्ञयोः= परस्परः अन्योऽन्यः यः उपकारः हितकार्यः तस्मिन् कृता विहिता प्रतिज्ञा दृढ़सङ्कल्पः याभ्यां तयोः, सर्ववानराधिपतिः=सर्वे सकलाः ये वानराः कपयः तेषाम् अधिपतिः ईशम्, हेममालिनं=हेम्नः सुवर्णस्य माला हारः यस्य तम्, बालिनं=बालीनामकं राक्षसम्, हन्तुं=मारितुम्, समुद्योगः=समुपायः, प्रवर्तते=क्रियते ।

अन्वयः—इदानीं हरिहरौ राज्यविभ्रष्टम् इन्द्रम् इव रामलक्ष्मणौ राज्य-विभ्रष्टं सुग्रीवं (पुनः) राज्ये स्थापयितुं प्राप्तौ (स्तः) ।

इदानीमिति—इदानीम्=अधुना, हरिहरौ=हरिः विष्णुः हरः च शङ्करः च, राज्यविभ्रष्टं=राज्यात् राज्याधिकारात् विभ्रष्टं विच्युतम्, इन्द्रमिव=पुरन्दरमिव, रामलक्ष्मणौ=रामः रामचन्द्रः लक्ष्मणः च सौमित्रिः च द्वौ, सुग्रीवं=एतन्नामकं वानरराजम्, पुनः=मुहुः, स्थापयितुम्=आरो-पयितुम्, प्राप्ते=आगतौ । उपमालङ्कारः । अनुष्टुप् छन्दः ।

इस समय राज्यच्युत सुग्रीव को पुनः राज्य पर स्थापित करने के लिए राम और लक्ष्मण आये हैं, मानो इन्द्र को पुनः राज्य पर स्थापित करने के लिए आये हुए विष्णु और शिव हों ।

[निकल जाते हैं]

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

॥ स्थापना ॥

(ततः प्रविशति रामो लक्ष्मणसुग्रीवौ हनुमांश्च)

रामः—सुग्रीव ! इत इतः ।

मत्सायकान्निहतभिन्नविकीर्णदेहं
शत्रुं तवाद्य सहसा भुवि पातयामि ।
राजन् ! भयं त्यज ममापि समीपवर्ती
दृष्टस्त्वया च समरे निहतः स बाली ॥ ४ ॥

अन्वयः—अद्य सहसा मत्सायकात् निहतभिन्नविकीर्णदेहं तव शत्रुं भुवि पातयामि । हे राजन् ! त्वं भयं त्यज समरे च निहतः सः बाली मम अपि समीपवर्ती सन् त्वया दृष्टः ।

मत्सायकेति—अद्य=अस्मिन्दिवसे, सहसा=अकस्मात्, मत्सायकात्=मम सायकात् बाणात्, निहतभिन्नविकीर्णदेहं=निहतः मारितः भिन्नः छिन्नः विकीर्णः इतस्ततः प्रसृतः देहः शरीरं तम्, तव=सुग्रीवस्य, शत्रुं=रिपुम्, भुवि=पृथिव्याम्, पातयामि=पतितं करोमि, राजन्=हे नृप सुग्रीव ! भयं=भीतिम्, त्यज=मुञ्च, समरे च=युद्धे च, निहतः=मारितः, सः=पुरोवर्ती, बाली=एतन्नामकः तव अग्रजः, मम अपि=मम रामस्य अपि, समीपवर्ती=समीपस्थ, सन्, त्वया=सुग्रीवेण, दृष्टः=विलोकितः । वसन्ततिलकाछन्दः ।

॥ स्थापना समाप्त ॥

(तत्पश्चात् राम, लक्ष्मण, सुग्रीव और हनुमान् प्रवेश करते हैं)

राम—हे सुग्रीव ! इधर से, इधर से आओ ।

आज मैं अपने बाणों द्वारा तुम्हारे शत्रु (बाली) के शरीर को विदीर्ण करके (उसे) धराशायी कर रहा हूँ । हे राजन् ! मेरे समीप में रहकर भय छोड़ो । अभी तुम युद्ध में मरे हुए बाली को देखोगे ।

सुग्रीव—हे महाराज ! आप की कृपा से मैं देवताओं के राज्य की आशा करता हूँ, वानरों के राज्य की क्या बात है । क्योंकि—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

सुग्रीवः—देव ! अहं खल्वार्यस्य प्रसादाद् देवानामपि राज्यमाशङ्के किं पुनर्वानराणाम् । कुतः—

मुक्तो देव ! तवाद्य बालिहृदयं भेत्तुं न मे संशयः
सालान् सप्तमहावने हिमगिरेः शृङ्गोपमाञ्छ्रीधर !
भित्वा वेगवशात् प्रविश्य धरणीं गत्वा च नागालयं
मज्जन् वीर ! पयोनिधौ पुनरयं सम्प्राप्तवान् सायकः ॥५॥

देवेति—देव=हे महाराज ! अहं=सुग्रीवः, खलु=निश्चयेन, आर्यस्य=पूजनीयस्य भवतः, प्रसादात्=अनुग्रहात्, देवानामपि=सुराणामपि, राज्यं=राज्याधिकारम्, आशङ्के=आशंसे ।

अन्वयः—हे देव ! श्रीधर ! (त्वया) मुक्तः तव अयं सायकः महावने हिमगिरेः शृङ्गोपमान् सप्त सालान् भित्त्वा वेगवशात् धरणीं प्रविश्य नागालयं च गत्वा पयोनिधौ मज्जन् पुनः अद्य वालिहृदयं भेत्तुं प्राप्तवान् (इति) मे न संशयः (अस्ति) ।

मुक्तः इति—श्रीधर देव=हे लक्ष्मीनाथ देव ! मुक्तः=क्षिप्तः, तव=रामस्य, अयं=पुरोवर्ती, सायकः=बाणः, महावने=विशालारण्ये, हिमगिरेः=हिमालयस्य, शृङ्गोपमान्=शिखरसदृशम्, सप्त=सप्त संख्यकान्, सालान्=एतन्नामकवृक्षविशेषान्, भित्वा=छित्वा, वेगवशात्=जवकारणात्, धरणीं=पृथिवीम्, प्रविश्य=प्रवेशं कृत्वा, नागालयं च=सर्पगृहं पातालपुरं च, गत्वा=यात्वा, पयोनिधौ=समुद्रे, मज्जन्=अवगाहमानः, पुनः=भूयः, अद्य=अस्मिन्दिवसे, बालिहृदयं=बालिनः एतन्नामकराक्षसस्य हृदयं=अन्तःकरणम्, भेत्तुं=छेत्तुम्, प्राप्तवान्=गतवान्, मे=मम, न=नहि, संशयं=सन्देहः, अस्तीति शेषः । दीपकालङ्कारः । शार्दूलविक्रीडितं छन्दः ।

हे लक्ष्मीनाथ देव ! आपका छोड़ा हुआ बाण महावन में हिमालय के शिखरों जैसे सात साल वृक्षों को तोड़कर, तेजी से पृथिवी में घुसकर, पाताल में जाकर तथा समुद्र में डूबता हुआ, हे वीर ! आज बाली का हृदयभेदन करने के लिए (आपके पास) आ रहा है—इसमें मुझे सन्देह नहीं है ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हनुमान्— तव नृप ! मुखनिःसृतैर्वचोभि—
विगतभया हि वयं विनष्टशोकाः ।
रघुवर ! हरये जयं प्रदातुं
गिरिमभिगच्छ सनीरनीरदाभम् ॥ ६ ॥

लक्ष्मणः— आर्य ! सोपस्नेहतया वनान्तरस्याभितः खलु किष्किन्धया भवितव्यम् ।

सुग्रीवः—सम्यगाह कुमारः ।

अन्वयः—हे नृप ! मुखनिःसृतैः तव वचोभिः वयं हि विगतभयाः विनष्ट-शोकाः च (स्म) हे रघुवर ! विजयं प्रदातुं सनीरनीर-दाभम् गिरिम् अभिगच्छ ।

तवेति—नृप=हे राजन्, मुखनिःसृतैः=मुखात् वक्त्रात् निःसृतैः विनिर्गतैः, तव=रामस्य, वचोभिः=वचनैः, वयं=हनूमानादयः, विगत-भयाः=भयरहिता; विनष्टशोकाः=शोकरहिताः । रघुवर=हे रघुश्रेष्ठ ! हरये=वानराय, विजयं=जयम्, प्रदातुं=वितरितुम्, सनीरनीरदाभं= सनीरेण जलेन सह वर्तमानः सनीरः सनीरः चासौ नीरदः बादलः तस्य आभा कान्तिः इव आभा यस्य तम्, गिरिं=पर्वतम्, अभिगच्छ=अभियाहि । उपमालङ्कारः । पुष्पिताग्राछन्दः ।

सोपस्नेहतयेति—सोपस्नेहतया=स्वच्छतया, वनान्तरस्य=अरण्यसमी-पस्य, किष्किन्धया=एतन्नामकनगर्या, भवितव्यं=भवनीयम् ।

सम्यगेति—सम्यक्=उचितम् ।

हनुमान्—हे राजन्, आपके मुख से निकले वचनों से हम लोग निर्भय एवं शोकरहित हो गये हैं । हे रघुवर ! वानर (सुग्रीव) को विजय प्रदान करने के लिए जलपूर्ण बादल के समान इस पर्वत पर चलिए ।

लक्ष्मण—हे आर्य ! (जङ्गल के) स्वच्छ होने के कारण (ज्ञात होता है कि) इस वन के पास ही किष्किन्धा होना चाहिये ।

सुग्रीव—कुमार (लक्ष्मण) ने ठीक ही कहा ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सम्प्राप्ता हरिवरबाहुसम्प्रगुप्ता किष्किन्धा तव नृप ! बाहुसम्प्रगुप्ता ।
तिष्ठ त्वं नृवर ! करोम्यहं विसंज्ञं नादेन प्रचलमहीधरं नृलोकम् ॥७॥

रामः—भवतु, गच्छ ।

सुग्रीवः—यदाज्ञापयति देवः । (परिक्रम्य) भोः ।

अपराधमनुद्दिश्य परित्यक्तस्त्वया विभो ! ।
युद्धे त्वत्पादशुश्रूषां सुग्रीवः कर्त्तुमिच्छति ॥ ८ ॥

अन्वयः—हे नृप ! (पूर्वं) हरिवरबाहुसम्प्रगुप्ता (सम्प्रति) तव बाहुसम्प्रगुप्ता किष्किन्धा सम्प्राप्ता । हे नृवर ! त्वं तिष्ठ, अहं नादेन प्रचलमहीधरं नृलोकं (च) विसंज्ञं करोमि ।

सम्प्राप्तेति—नृप=हे राजन् ! (पूर्वम्) हरिवरबाहुसम्प्रगुप्ता=हरिवरस्य वानरश्रेष्ठस्य बाहुभ्यां भुजाभ्यां सम्प्रगुप्ता संरक्षिता, (सम्प्रति) तव=भवतः, बाहुसम्प्रगुप्ता बाहुभ्यां भुजाभ्यां सम्प्रगुप्ता संरक्षिता, किष्किन्धा=एतन्नामकनगरी, सम्प्राप्ता=आगता । नृवर=हे नरश्रेष्ठ ! त्वं=भवान्, तिष्ठ=स्थितिं विधास्यतु, अहं=सुग्रीवः, नादेन=गर्जनेन, नृलोकं=नरजगत्, विसंज्ञं=चेतनारहितम्, प्रचलमहीधरं=कम्पमानपर्वतम् करोमि विदधे । अन्त्यानुप्रासालङ्कारः । प्रहर्षिणीच्छन्दः ।

अन्वयः—हे विभो ! अपराधम् अनुद्दिश्य त्वया परित्यक्तः सुग्रीवः युद्धे त्वत्पादशुश्रूषां कर्तुम् इच्छति ।

अपराधेति—विभो=हे प्रभो ! अपराधम्=दोषम्, अनुद्दिश्य=न निरूप्य, त्वया=बालिना, सुग्रीवः=अहं सुग्रीवः, युद्धे=रणे, त्वत्पादशुश्रूषां=तव पादौ चरणौ तयोः शुश्रूषां सेवाम्, कर्तुं=विधातुम्, इच्छति=वाञ्छति ।

हे राजन् ! पहले कपिराज (बाली) के बाहुओं से रक्षित (किन्तु अब) आपके भुजाओं के अधीन किष्किन्धा आ गयी । हे नृवर ! आप रुकिए । मैं गर्जन से पर्वत को प्रकम्पित तथा नरलोक को चेतनाविहीन कर रहा हूँ ।

राम—अच्छा, जाओ ।

सुग्रीव—महाराज जैसी आज्ञा देते हैं । (घूमकर) अहा !

हे महाराज (बाली) ! बिना अपराध को बताए आपके द्वारा निकाल दिया गया यह सुग्रीव युद्ध में आपके चरणों की सेवा करना चाहता है ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(नेपथ्ये)

कथं कथं सुग्रीव इति ।

(ततः प्रविशति बाली; गृहीतवस्त्रया तारया सह ।)

बाली—कथं कथं सुग्रीव इति ।

तारे ! विमुञ्च मम वस्त्रमनिन्दिताङ्गि !
प्रस्रस्तवक्त्रनयने ! किमसि प्रवृत्ता ।
सुग्रीवमद्य समरे विनिपात्यमानं
तं पश्य शोणितपरिप्लुतसर्वगात्रम् ॥ ९ ॥

अन्वयः—हे अनिन्दिताङ्गि तारे ! मम वस्त्रं विमुञ्च । हे प्रस्रस्तवक्त्रनयने ! किं प्रवृत्ता असि । अद्य समरे विनिपात्यमानं तं सुग्रीव शोणितपरिप्लुतसर्वगात्रं पश्य ।

तारे इति—अनिन्दिताङ्गि=हे मनोहराङ्गि ! तारे=हे मम पत्नी तारे ! मम वस्त्रं=मम वसनम्, विमुञ्च=त्यज । प्रस्रस्तवक्त्रनयने=हे शिथिलनेत्रे ! किं=केन कारणेन, प्रवृत्ता असि=संलग्ना असि, अद्य=अस्मिन्दिवसे, तं=पुरोवर्तमानम्, सुग्रीव =एतन्नामकं ममानुजम्, समरे=युद्धे, विनिपात्यमानं=विनाश्यमानम्, शोणितपरिप्लुतसर्वगात्रं=शोणितेन रुधिरेण परिप्लुतं परिपूर्णं सर्वं सम्पूर्णं गात्रं शरीरं यस्य तम्, पश्य=विलोकय । वसन्ततिलकाच्छन्दः ।

[नेपथ्य में]

क्या सुग्रीव आया है ।

[तत्पश्चात् वस्त्र पकड़ी हुई तारा के साथ बाली प्रवेश करता है]

बाली—क्या सुग्रीव आया है ।

हे अनिन्दिताङ्गि तारा ! मेरे वस्त्र को छोड़ो । हे उदासीन मुख और नेत्रों वाली ! क्यों मुझे (रोकने में) लगी हो । आज युद्ध में (मेरे द्वारा) मारे जाते हुए तथा रक्त से लथपथ शरीर वाले सुग्रीव को देखो ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तारा—पसीअउ पसीअउ महाराओ। अप्पेण कारणेण ण आगमिस्सइ सुग्गीओ। ता अमच्चवग्गेण सह सम्मतिअ गन्तव्वं। [प्रसीदतु प्रसीदतु महाराजः। अल्पेन कारणेन नागमिष्यति सुग्रीवः। तदमात्यवर्गेण सह सम्मन्त्र्य गन्तव्यम्।]

बाली—आः,

शक्रो वा भवतु गतिः शशाङ्कवक्त्रे !
शत्रोर्मे निशितपरश्वधः शिवो वा।
नालं मामभिमुखमेत्य सम्प्रहर्तुं
विष्णुर्वा विकसितपुण्डरीकनेत्रः ॥ १० ॥

अल्पेनेति—अल्पेन=लघुना, कारणेन=हेतुना, न आगमिष्यति, न आयास्यति। तत्=अत एव, अमात्यवर्गेण=मन्त्रिदलेन, संमन्त्र्य=मन्त्रणां कृत्वा, गन्तव्यं=गमनीयम्।

अन्वयः—हे शशाङ्कवक्त्रे ! शक्रः वा निशितपरश्वधः शिवः वा विकसितपुण्डरीकनेत्रः विष्णुः वा मे शत्रोः गतिः भवतु, अभिमुखम् एत्य मां सम्प्रहर्तुं न अलम्।

शक्र इति—शशाङ्कवक्त्रे=चन्द्रमुखि, शक्रः वा=इन्द्रः वा, निशितपरश्वधः=निशितौ तीक्ष्णौ परश्वधौ परशुकुठारौ यस्य सः, शिवः वा=शङ्करः वा, विकसितपुण्डरीकनेत्रः=प्रफुल्लितकमलनयनः, विष्णुः वा=नारायणः वा, मे=मम, शत्रोः=अरेः सुग्रीवस्य, गतिः=रक्षकः, भवतु=जायताम्, अभिमुखं=सम्मुखम्, एत्य=आगत्य, माम्=बालीम्, सम्प्रहर्तुं=आहन्तुम्, न अलं=न समर्थः। उपमालङ्कारः। प्रहर्षिणीच्छन्दः।

तारा—हे महाराज ! प्रसन्न होइये, प्रसन्न होइये। साधारण कारण से सुग्रीव नहीं आएगा। तो मन्त्रीवर्ग से मन्त्रणा करके जाना चाहिए।

बाली—ओह !

हे शशिमुखी ! मेरे शत्रु (सुग्रीव) के रक्षक इन्द्र हों अथवा हाथ में तीक्ष्ण परशु धारण करने वाले शिव हों अथवा विकसित कमल के समान नेत्रों वाले विष्णु हों, (मेरे) सामने आकर भी मुझ पर प्रहार नहीं कर सकते।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तारा—पसीअउ पसीअउ महाराओ। इमस्स जणस्स अणुग्गहं दाव करेउं अरिहदि महाराओ। [प्रसीदतु प्रसीदतु महाराजः। अस्य जनस्यानुग्रहं तावत् कर्तुमर्हति महाराजः।]

बाली—श्रूयतां मत्पराक्रमः।

तारे ! मया खलु पुरामृतमन्थनेऽपि
गत्वा प्रहस्य सुरदानवदैत्यसङ्घान्।
उत्फुल्लनेत्रमुरगेन्द्रमुदग्ररूप-
माकृष्यमाणमवलोक्य सुविस्मितास्ते ॥ ११ ॥

तारा—पसीअउ पसीअउ महाराओ। [प्रसीदतु प्रसीदतु महाराजः।]

अन्वयः—हे तारे ! पुरा अमृतमन्थने अपि गत्वा सुरदानवदैत्यसङ्घान् मया आकृष्यमाणम् उत्फुल्लनेत्रम् उदग्रनेत्रम् उदग्ररूपम् उरगेन्द्रम् अवलोक्यते सुविस्मिताः खलु (जाताः)।

तारे इति—तारे=हे तारे ! पुरा=प्राचीनकाले, अमृतमन्थने अपि=अमृतस्य सुधायाः मन्थने मथने अपि, गत्वा=यात्वा, सुरदानवदैत्यसङ्घान्=सुराः देवाः दानवाः राक्षसाः दैत्याः दैतेयाश्च तेषां सङ्घान् समूहान्, प्रहस्य=उपहस्य, मया=बालिना, आकृष्यमाणं=धृष्यमाणम्, उत्फुल्लनेत्रं=विस्फारितनयनं, उदग्ररूपं=भयङ्करूपम्, उरगेन्द्रं=शेषनागम्, अवलोक्य=विलोक्य, ते=सर्वे, सुविस्मिताः=आश्चर्ययुक्ताः, खलु=निश्चयेन, जाताः इति शेषः। वसन्ततिलकाच्छन्दः।

तारा—हे महाराज प्रसन्न होइए, प्रसन्न होइए। इस व्यक्ति (मुझ) पर कृपा करनी चाहिये।

बाली—मेरा पराक्रम सुनो।

हे तारा ! पहले अमृतमन्थन (के समय) पर भी जाकर देवता, राक्षस और दैत्यगणों पर हँसकर मेरे द्वारा खींचे जाते हुए शेषनाग को देखकर जिसकी आँखें फटी-सी हो रही थीं और चेहरा उत्तेजित हो उठा था—वे सब बहुत चकित हो गये थे।

तारा—हे महाराज ! प्रसन्न होइए, प्रसन्न होइए।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitized by eGangotri

बाली—आः, मम वशानुवर्तिनी भव। प्रविश्य त्वमभ्यन्तरम्।

तारा—एसा गच्छामि मन्दभाआ। (निष्क्रान्ता)। [एषा गच्छामि मन्दभागा।]

बाली—हन्त प्रविष्टा तारा। यावदहं सुग्रीवं भग्नग्रीवं करोमि। (द्रुतमुपगम्य) सुग्रीव ! तिष्ठ तिष्ठ।

इन्द्रो वा शरणं तेऽस्तु प्रभुर्वा मधुसूदनः।
मच्चक्षुष्पथमासाद्य सजीवो नैव यास्यसि ॥ १२ ॥

इत इतः।

सुग्रीवः—यदाज्ञापयति महाराजः।

ममेति—वशानुवर्तिनी = ममाज्ञापालिका, अभ्यन्तरम् = रनिवासम्, प्रविश = प्रवेशं कुरु।

प्रविष्टेति—प्रविष्टा = प्रवेश कृता, भग्नग्रीवं = खण्डितगलम्।

अन्वयः—इन्द्रः वा प्रभुः मधुसूदनः वा ते शरणम् अस्तु मच्चक्षुष्पथम् आसाद्य सजीवः न एव यास्यसि

इन्द्रो वेति—इन्द्रः वा = शक्रः वा, प्रभुः = स्वामी, मधुसूदनः वा = विष्णुः वा, ते = तव सुग्रीवस्य, शरणं = संरक्षकः, अस्तु = भवतु, मच्चक्षुष्पथं = मम चक्षुः नयनं तस्य पन्थानं मार्गम्, गोचरमित्यर्थः, आसाद्य = प्राप्य, सजीवः = जीवितः, न एव यास्यसि = नैव गमिष्यसि। अनुष्टुप् छन्दः।

बाली—ओह ! मेरी बात मानो, तुम अन्दर जाओ।

तारा—यह मैं जाती हूँ। (निकल जाती है।)

बाली—ओह ! तारा अन्दर चली गयी। तो मैं सुग्रीव की गर्दन तोड़ता हूँ। (शीघ्रता से जाकर) हे सुग्रीव ! रुको, रुको।

इन्द्र तुम्हारे रक्षक हों अथवा भगवान् विष्णु, मेरे आँखों के सामने आकर तुम जीवित नहीं जाओगे।

इधर से, उधर से।

सुग्रीव—जो महाराज की आज्ञा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(उभौ नियुद्धं कुरुतः ।)

रामः—एष एष बाली,

सन्दष्टोष्ठश्चण्डसंरक्तनेत्रो मुष्टिं कृत्वा गाढमुद्वृत्तदंष्ट्रः ।
गर्जन् भीमं वानरो भाति युद्धे संवर्त्ताग्निः सन्दिधक्षुर्यथैव ॥ १३ ॥

लक्ष्मणः—सुग्रीवमपि पश्यत्वार्यः,

विकसितशतपत्ररक्तनेत्रः कनकमयाङ्गदनद्धपीनबाहुः ।
हरिवरमुपयातिवानरत्वाद्गुरुमभिभूय सतां विहाय वृत्तम् ॥ १४ ॥

अन्वयः—वानरः सन्दष्टोष्ठः चण्डसंरक्तनेत्रः उद्वृत्तदंष्ट्रः च मुष्टिं गाढं कृत्वा भीमं गर्जन् युद्धे (जगत्) सन्दिधक्षुः संवर्त्ताग्निः यथा एव भाति ।

सन्दष्टोष्ठेति—वानरः=कपिः बाली, सन्दष्टोष्ठः=सन्दष्टः दन्तैः खण्डितः ओष्ठः दन्तच्छदः येन सः, चण्डसंरक्तनेत्रः=चण्डेन क्रोधेन संरक्ते लोहिते नेत्रे नयने यस्य सः, उद्वृत्तदंष्ट्रः=उद्वृत्ता बहिर्निःसृता दंष्ट्रा=दन्तविशेषः दाढ़ः यस्य सः, मुष्टिं=वक्रपाणिम्, गाढं=कठोरम्, कृत्वा=विधाय, भीमं=भीषणम् गर्जन्=गर्जनं विधास्यन्, युद्धे=रणे, संवर्त्ताग्निः यथा=प्रलयाग्निः इव, भाति=भ्राजते । उपमालङ्कारः । शालिनीच्छन्दः ।

अन्वयः—विकसितशतपत्ररक्तनेत्रः कनकमयाङ्गदनद्धपीनबाहुः वानरत्वात् सतां वृत्तं विहाय, गुरुम् अभिभूय हरिवरम् उपयाति ।

[दोनों युद्ध करते हैं ।]

राम—यह बाली,

वानर (बाली) दाँतों से ओठ काटे, क्रोध में आँख लाल किये, दाढ़ ऊपर किये (तथा) भयङ्कर रूप से गरजता हुआ युद्ध में (जगत् को) भस्म कर देने वाली प्रलय-अग्नि की तरह चमक रहा है ।

लक्ष्मण—महाराज सुग्रीव को भी देखिए,

खिले हुए कमल के समान लाल आँखों तथा सोने के बाजूबन्दों से बँधी मोटी भुजाओं वाला (वह) वानर होने के कारण सज्जनों का आचरण त्याग कर (अपने) श्रेष्ठ (भाई) का अपमान करके वानरराज (बाली) पर आक्रमण कर रहा है ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बालिना ताडितः पतितः सुग्रीवः ।

हनुमान्—हा ! धिक् । (ससम्भ्रमं राममुपगम्य) जयतु देवः । अस्यैषावस्था ।

बलवान् वानरेन्द्रस्तु दुर्बलश्च पतिर्मम ।
अवस्था शपथश्चैव सर्वमार्येण चिन्त्यताम् ॥ १५ ॥

रामः—हनूमन् ! अलमलं सम्भ्रमेण । एतदनुष्ठीयते । (शरं

विकसितेति—विकसितशतपत्ररक्तनेत्रः = विकसितं प्रफुल्लितं यत् शतपत्रं कमलं तद्वत् रक्ते लोहिते नेत्रे नयने यस्य सः, कनकमयाङ्गदनद्ध-पीनबाहुः = कनकमयं सुवर्णरचितं अङ्गदं केयूरं तेन नद्धः बद्धः पीनः स्थूलः बाहुः भुजः यस्य सः, (सुग्रीवः) वानरत्वात् = कपित्वात्, सतां = सत्पुरुषाणाम्, वृत्तम् = आचरणम्, विहाय = त्यक्त्वा, गुरुं = श्रेष्ठम् ज्येष्ठभ्रातरं बालिनमित्यर्थः, अभिभूय = पराभूय, हरिवरं = वानरश्रेष्ठम्, उपयाति = अभियाति । उपमा काव्यलिङ्गं चालङ्कारौ । पुष्पिताग्राच्छन्दः ।

अन्वयः—वानरेन्द्रः तु बलवान् मम पतिः च दुर्बलः (अस्ति), आर्येण अवस्था शपथः च सर्वम् एव चिन्त्यताम् ।

बलवानीति—वानरेन्द्रः = कपीन्द्रः बाली, तु = निश्चितमेव, बलवान् = बलशाली अस्तीति शेषः । मम = हनुमतः, पतिः च = स्वामी च, दुर्बलः = अल्पबलः, अस्तीति शेषः । आर्येण = भवता रामेण, अवस्था = दशा, शपथः = बालिहननप्रतिज्ञा च, सर्वमेव = सम्पूर्णमेव, चिन्त्यतां = विचार्यताम् । अनुष्टुप् छन्दः ।

हनूमन्निति—अनुष्ठीयते = क्रियते ।

बाली के द्वारा ताडित सुग्रीव गिर गया ।

हनुमान्—ओह, धिक्कार है । (घबड़ाहट के साथ राम के पास जाकर) महाराज की जय हो । इस (सुग्रीव) की यह अवस्था ।

वानरराज (बाली) बलवान् है, मेरे स्वामी (सुग्रीव) दुर्बल हैं । आप (मेरे स्वामी की) अवस्था और (अपनी) शपथ (इन) सब पर ध्यान दीजिए ।

राम—हे हनुमान् ! घबड़ाना व्यर्थ है । यही कर रहा हूँ । (बाण

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मुक्त्वा) हन्त पतितो बाली ।

लक्ष्मणः—एष एष बाली,

रुधिरकलितगात्रः स्रस्तसंरक्तनेत्रः
कठिनविपुलबाहुः काललोकं विविक्षुः ।
अभिपतति कथञ्चिद् धीरमाकर्षमाणः
शरवरपरिवीतं शान्तवेगं शरीरम् ॥ १६ ॥

बाली—(मोहमुपगम्य पुनः समाश्वस्य शरे नामाक्षराणि वाचयित्वा राममुद्दिश्य)

अन्वयः—रुधिरकलितगात्रः स्रस्तसंरक्तनेत्रः कठिनविपुलबाहुः काकलोकं विवक्षुः शरवरपरिवीतं शान्तवेगं शरीरं कथञ्चित् धीरं यथा स्यात्तथा आकर्षमाणः अभिपतति ।

रुधिरेति—रुधिरकलितगात्रः=रुधिरेण रक्तेन कलितं युक्तं गात्रं शरीरं यस्य सः, स्रस्तसंरक्तनेत्रः=स्रस्ते शिथिले संरक्ते लोहिते च नेत्रे नयने यस्य, सः, कठिनविपुलबाहुः=कठिनौ दृढौ विपुलौ विशालौ च बाहू हस्तौ यस्य सः, काकलोकं=यमलोकम्, विविक्षुः=प्रविष्टुमिच्छुः, शरवरपरिवीतं=शरवरेण बाणश्रेष्ठेन परिवीतं विद्धम्, शान्तवेगं=शान्तः अवसितः वेगः गतिरयः यस्य तत्, शरीरं=देहम्, कथमपि=केनापि प्रकारेण, धीरं=दृढम्, आकर्षमाणः=आकर्षन्, अभिपतति=आक्रामति । मालिनीच्छन्दः ।

छोड़कर) हाय ! बाली गिर गया ।

लक्ष्मण—यह बाली,

खून से लथपथ शरीर, नीचे लटकी लाल आँखों वाला, दृढ़ और विशाल भुजाओं वाला, यमलोक जाना चाहता हुआ (बाली) उत्कृष्ट बाण से बींधे, वेग में ठंडे पड़े शरीर को किसी प्रकार धैर्य के साथ घसीटे जाता हुआ आक्रमण कर रहा है ।

बाली—(मूर्च्छित होकर पुनः होश में आकर बाण पर नाम के अक्षरों को पढ़कर राम को उद्दिष्ट करके)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

युक्तं भो ! नरपतिधर्ममास्थितेन युद्धे मां छलयितुमक्रमेण राम !
वीरेण व्यपगतधर्मसंशयेन लोकानां छलमपनेतुमुद्यतेन ॥ १७ ॥

हन्त भोः !

भवता सौम्यरूपेण यशसो भाजनेन च ।
छलेन मां प्रहरता प्ररूढमयशः कृतम् ॥ १८ ॥

भो राघवः ! चीरवल्कलधारिणा वेषविपर्यस्तचित्तेन मम भ्रात्रा सह युद्धव्यग्रस्याधर्म्यः खलु प्रच्छन्नो वधः ।

अन्वयः—भो राम ! नरपतिधर्मम् आस्थितेन व्यपगतधर्मसंशयेन लोकानां छलम् अपनेतुं उद्यतेन वीरेण त्वया युद्धे अक्रमेण माम् छलयितुं युक्तम् ?

युक्तमिति—भो राम = हे राम ! नरपतिधर्मं = नृपतिकर्तव्यम्, आस्थितेन = आश्रितेन, व्यपगतधर्मसंशयेन = व्यपगतः असन्दिग्धः धर्मसंशयः धर्मसन्देहः यस्य तेन, लोकानां = जनानाम्, छलं = कपटम्, अपनेतुम् = अपाकर्तुम्, उद्यतेन = सन्नद्धेन, वीरेण = वीरपुरुषेण, युद्धे = रणे, अक्रमेण = अन्यायेन, माम्, छलयितुं = प्रतारयितुम्, युक्तं = उचितम्, अस्तीति शेषः । प्रहर्षिणीच्छन्दः ।

अन्वयः—सौम्यरूपेण यशसः भाजनेन छलेन माम् प्रहरता भवतः अयशः प्ररूढं कृतम् ।

भवतेति—सौम्यरूपेण = प्रियाकारेण, यशसः = कीर्तेः, भाजनेन = पात्रेण, भवता = रामेण, छलेन = कपटेन, मां = बालीम्, प्रहरता = प्रहारं कुर्वता, अयशः = अपकीर्तिः, प्ररूढं = अङ्कुरितम्, कृतं = विहितम् ।

भो राघवेति—चीरवल्कलधारिणा = चीररूपं वल्कलं वृक्षत्वक् धारयतीति तेन, वेषविपर्यस्तचित्तेन = वेषेण परिधानेन विपर्यस्तं विपरीतं चित्तं

हे राम ! राजा के धर्म पर आरूढ़, असन्दिग्ध धर्मज्ञान वाले, संसार का छलप्रयत्न दूर करने में संलग्न और वीर आप के द्वारा अन्याय से छलना (अन्यायपूर्वक छल से मारना) क्या उचित है ।

ओह, खेद है !

सौम्यरूप वाले तथा यश के पात्र आपके द्वारा छलपूर्वक मेरे ऊपर प्रहार करते हुए (आप) के द्वारा महान् अपयश अङ्कुरित (प्राप्त) किया गया ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

रामः—कथमधर्म्यः खलु प्रच्छन्नो वध इति ।

बाली—कः संशयः ।

रामः—न खल्वेतत् । पश्य,

वागुराच्छन्नमाश्रित्य मृगाणामिष्यते वधः ।
वध्यत्वाच्च मृगत्वाच्च भवाञ्छन्नेन दण्डितः ॥ १९ ॥

बाली—दण्ड्य इति मां भवान् मन्यते ।

रामः—कः संशयः ?

बाली—केन कारणेन ?

मनः यस्य तेन, युद्धव्यग्रयस्य=युद्धे रणे व्यग्रस्य व्यासक्तस्य, अधर्म्यः=धर्म-प्रतिकूलः, प्रच्छन्नः=अप्रकटः, वधः=घातः कृतः ।

अन्वयः—वागुराच्छन्नम् आश्रित्य मृगाणां वधः इष्यते । वध्यमानत्वात् च मृगत्वात् च भवान् छन्नेन दण्डितः ।

वागुरेति—वागुराच्छन्नं=वागुरा जालं च छन्नं छेदनं च तम्, आश्रित्य =आश्रयं कृत्वा, मृगाणां=पशूनाम्, वधः=हननम्, इष्यते=अनुमन्यते, वध्यत्वात्=वधार्हत्वात्, मृगत्वात् च=पशुत्वात् च, भवान्=बाली; छन्नेन= प्रच्छन्नेन मया इति शेषः, दण्डितः=दण्डं दत्तः । काव्यलिङ्गम् अलङ्कारः । अनुष्टुप्छन्दः ।

हे राम ! चीरवल्कल धारण करने वाले (फिर भी) वेष के विपरीत हृदय वाले आपके द्वारा, भाई के साथ युद्ध में व्यस्त मेरा छिपकर मारा जाना अधर्म है ।

राम—छिपकर मारना कैसे अधर्म है ?

बाली—क्या इसमें सन्देह है ।

राम—यह नहीं है, देखो,

जाल और छिपाव का आश्रय लेकर पशुओं का वध अनुमत है । वध-योग्य और पशु होने के कारण छिपे हुए मैंने आपको दण्ड दिया है ।

बाली—आप मुझको दण्डनीय मानते हैं ।

राम—(इसमें) क्या सन्देह है ।

बाली—किस कारण से (मुझे दण्डनीय मानते हैं ।)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

रामः—अगम्यागमनेन ।

बाली—अगम्यागमनेनेति । एषोऽस्माकं धर्मः ।

रामः—ननु युक्तं भोः !

भवता वानरेन्द्रेण धर्माधर्मौ विजानता ।
आत्मानं मृगमुद्दिश्य भ्रातृदाराभिमर्शनम् ॥ २० ॥

बाली—भ्रातृदाराभिमर्शनेन तुल्यदोषयोरहमेव दण्डितो, न सुग्रीवः ।

अगम्येति—अगम्यागमनेन = अगम्या अभिगन्तुम् अयोग्या तस्या गमनं सम्भोगाः तेन ।

अन्वयः—धर्माधर्मौ विजानता वानरेन्द्रेण मृगम् उद्दिश्य भवताभातृदाराभिमर्शनं युक्तम् ?

भवतेति—धर्माधर्मौ = धर्मश्च, अधर्मश्च तौ, विजानता = बुध्यमानेन, वानरेन्द्रेण = वानराणां कपीनाम् इन्द्रेण स्वामिना, भवता = त्वया बालिना, मृगं = पशुम्, उद्दिश्य = कथयित्वा, भ्रातृदाराभिमर्शनं = भ्रातुः अनुजस्य सुग्रीवस्य दाराणां पत्न्याः अभिमर्शनम् अभिगमनम्, युक्तम् = उचितम् । अनुष्टुप्च्छन्दः ।

भातृदारेति—भातृदाराभिमर्शनेन = अनुजपत्न्याभिगमनेन, तुल्यदोषययोः = समानापराधयोः, दण्डितः = दण्डं प्राप्तः ।

राम—अगम्यागमन के कारण (तुमको दण्डनीय मानता हूँ ।)

बाली—अगम्यागमन के कारण ? यह तो हमारा धर्म है ।

राम—अरे ! क्या यह उचित है ।

धर्म और अर्थ को जानते हुए आप वानरेन्द्र के द्वारा अपने को (साधारण) मृग कहकर भाई की पत्नी को दूषित किया जाना (क्या उचित है ।)

बाली—भाई की पत्नी को दूषित करने के कारण समान अपराध वाले (मुझ तथा सुग्रीव) दोनों में मैं ही दण्डित हुआ, सुग्रीव क्यों नहीं (दण्डित) हुआ ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

बाली—सुग्रीवेणाभिमृष्टाऽभूद् धर्मपत्नी गुरोर्मम ।
तस्य दाराभिमर्शेन कथं दण्ड्योऽस्मि राघव ! ॥ २१ ॥

रामः—न त्वेवं हि कदाचिज्ज्येष्ठस्य यवीयसो दाराभिमर्शनम् ।

बाली—हन्त अनुत्तरा वयम् । भवता दण्डित्वाद् विगतपापोऽहं ननु ।

रामः—एवमस्तु ।

सुग्रीवः—हा धिक् ।

रामः—दण्डितस्त्वं हि दण्ड्यत्वाद्, अदण्ड्योनैव दण्डयते ।

अन्वयः—सुग्रीवेण गुरोः मम धर्मपत्नी अभिमृष्टा अभूत् तस्य दाराभिमर्शेन हे राघवः ! (अहं) कथः दण्डयः अस्मि ।

सुग्रीवेण—सुग्रीवेण = एतन्नामकेन ममानुजेन, गुरोः = अग्रस्य मम, धर्मपत्नी = भार्या तारा, अभिमृष्टा = अभिगता, अभूत् । तस्य = सुग्रीवस्य, दाराभिर्शेन = पत्न्याभिगमनेन, राघव = हे राम !, कथं = कस्मात्कारणात्, दण्ड्यः = दण्डनीयः, अस्मि । अनुष्टुप्छन्दः ।

हन्तेति—अनुत्तरा = उत्तररहिता । विगतपापः = पापरहितः ।

राम—दण्डनीय होने कारण तुम (बाली) ही दण्डित हुए । दण्डनीय न होने के कारण (सुग्रीव) दण्डित नहीं हुआ ।

बाली—हे राम ! सुग्रीव के द्वारा मुझ बड़े (भाई) की पत्नी दूषित की गयी । (तब) उसकी पत्नी को दूषित करने के कारण मैं ही क्यों दण्डनीय हूँ ?

राम—छोटे (भाई) के संसर्ग से बड़े (भाई) की पत्नी इस प्रकार (दूषित) नहीं होती है ।

बाली—ओह ! हम निरुत्तर हो गये । आपके द्वारा दण्डित किया गया मैं निष्पाप हो गया ।

राम—ऐसा ही है ।

सुग्रीव—ओह ! धिक्कार है ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

करिकरसदृशौ गजेन्द्रगामि-
स्तव रिपुशस्त्रपरिक्षताङ्गदौ च ।
अवनितलगतौ समीक्ष्य बाहू
हरिवर ! हा पततीव मेऽद्य चित्तम् ॥ २२ ॥

बाली—सुग्रीव ! अलमलं विषादेन । ईदृशो लोकधर्मः ।

(नेपथ्ये)

हा हा महाराओ ।

बाली—सुग्रीव ! संवार्यतां संवार्यतां स्त्रीजनः । एवंगतं नार्हति मां द्रष्टुम् ।

अवन्यः—हे गजेन्द्रगामिन् ! हरिवर ! तव करिकरसदृशौ रिपुशस्त्रपरिक्षताङ्गदौ अवनितलगतौ च बाहू समीक्ष्य हा ! मे चित्तम् अद्य पतति इव ।

करिकरेति—हे गजेन्द्रगामिन्=हे गजेन्द्रगामिन् ! हरिवर=कपिराज ! करिकरसदृशौ=करिणः हस्तिनः करः शूण्डः तेन सदृशौ समानौ, रिपुशस्त्रपरिक्षताङ्गदौ=रिपोः शत्रोः शस्त्रेण आयुधेन परिक्षते भग्ने अङ्गदे केयूरे ययोः तौ, अवनितलगतौ=अवन्याः पृथिव्याः तलं अधः गतौ प्राप्तौ, तव=भवतः, बाहू=भुजौ, समीक्ष्य=विलोक्य, हा=खेदे, मे=मम सुग्रीवस्य, चित्तं=ममः, पतति=स्रंसते । उत्प्रेक्षालङ्कारः । पुष्पिताग्राच्छन्दः ।

सुग्रीवेति—संवार्यतां=निरुद्ध्यत्ताम्, स्त्रीजनः=नारीलोकः, एवं गतं=एतां दशां प्राप्तम्, द्रष्टुं=विलोकयितुम्, न अर्हति=समर्थः नास्ति ।

हे गजराज के समान गति वाले कपिराज (बाली) ! हाथी की सूड़ के समान, शत्रु के शस्त्र से टूट गये बाजूबन्दों वाली तथा भूतल पर पड़ी हुई भुजाओं को देखकर मेरा मन आज मानो बैठा जा रहा है।

बाली—हे सुग्रीव ! विषाद करना व्यर्थ है। यह तो संसार का नियम है।

[नेपथ्य में]

हाय ! हाय ! महाराज !

बाली—हे सुग्रीव ! स्त्रियों को रोको, रोको। ऐसी अवस्था में पड़े हुए मुझको (वे) देख नहीं सकतीं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

सुग्रीवः—यदाज्ञापयति महाराजः। हनूमन् ! एवं क्रियताम्।

हनूमान्—यदाज्ञापयति कुमारः। (निष्क्रान्तः)

(ततः प्रविशत्यङ्गदो हनूमांश्च)

हनूमान्—अङ्गद ! इत इतः।

अङ्गदः—

श्रुत्वा कालवशं यान्तं हरिमृक्षगणेश्वरम्।
समापतितसन्तापः प्रयामि शिथिलक्रमः॥ २३॥

हनूमन् ! कुत्र महाराजः।

हनूमन्—एष महाराजः,

अन्वयः—ऋक्षगणेश्वरं हरिं कालवशं यान्तं श्रुत्वा समापतितसन्तापः (अहं) शिथिलक्रमः प्रयामि।

श्रुत्वेति—ऋक्षगणेश्वरं=ऋक्षाणां भल्लूकानां गणस्य समूहस्य ईश्वरं स्वामिनम्, हरिं=वानरं बालीमित्यर्थः, कालवशं=कालस्य मृत्योः वशम् अधीनताम्, यान्तं=गच्छन्तम्, श्रुत्वा=आकर्ण्य, समापतितसन्तापः=समापतितः समागतः सन्तापः शोकः यस्मिन् सः, शिथिलक्रमः=शिथिलः मन्दः क्रमः पादप्रक्षेपः यस्य सः, प्रयामि=गच्छामि। काव्यलिङ्गमलङ्कारः। अनुष्टुप्छन्दः।

सुग्रीव—महाराज जो आज्ञा देते हैं। हे हनुमान् ! ऐसा करो।

हनुमान्—कुमार जो आज्ञा देते हैं। (निकल जाता है)।

(तत्पश्चात् अङ्गद और हनुमान् प्रवेश करते हैं)

हनुमान्—हे अङ्गद ! इधर से, इधर से (आइए)।

अङ्गद—वानरगण और ऋक्षगण के स्वामी (वाली) का यमपुर में जाना (मृत्यु को प्राप्त होना) सुनकर खिन्न (और) शिथिल अङ्गों वाला मैं चल रहा हूँ।

हे हनुमान् ! महाराज कहाँ हैं ?

हनुमान्—ये महाराज हैं—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

शरनिर्भिन्नहृदयो विभाति धरणीतले ।
गुहशक्तिसमाक्रान्तो यथा क्रौञ्चाचलोत्तमः ।। २४ ।।

अङ्गदः—(उपसृत्य) हा महाराज !

अतिबलसुखशायी पूर्वमासीर्हरीन्द्रः
क्षितितलपरिवर्ती क्षीणसर्वाङ्गचेष्टः ।
शरवरपरिवीतं व्यक्तमुत्सृज्य देहं
किमभिलषसि वीर स्वर्गमद्याभिगन्तुम् ।। २५ ।।

अन्वयः—शरनिर्भिन्नहृदयः धरणीतले यथा गुहशक्तिसमाक्रान्तः उत्तमः क्रौञ्चाचल (तथा) विभाति ।

शरनिर्भिन्नेति—शरनिर्भिन्नहृदयः=शरेण वाणेन निर्भिन्नं विद्धं हृदयं वक्षस्थलं यस्य सः, धरणीतले=धरण्याः पृथिव्याः तले पृष्ठे, यथा=येन प्रकारेण गुहशक्तिसमाक्रान्तः=गुहस्य कार्तिकेयस्य शक्त्या प्रक्षेपास्त्रेण समाक्रान्तः आहतः, क्रौञ्चाचलोत्तमः=उत्तमः श्रेष्ठः क्रौञ्चः एतन्नामकः चासौ अचलः पर्वतः, विभाति=शोभते । उपमालङ्कारः । अनुष्टुप्छन्दः ।

अन्वयः—हरीन्द्रः (त्वं) पूर्वं अतिबलसुखशायी आसीः (किन्तु) क्षीणसर्वाङ्गचेष्टः क्षितितलपरिवर्ती (असि) । हे वीर ! शरवरपरिवीतं देहम् उत्सृज्य (त्वं) व्यक्तम् अद्य स्वर्गम् अभिगतुं म अभिलषसि किम् ।

अतिबलेति—हरीन्दः=वानरेन्द्रः, पूर्वं=पूर्वकाले, अतिबलसुखशायी=अतिबलेन अतिशयितेन सत्त्वेन सुखशायी सुखेन शयितुं शीलं यस्य सः, आसीः=अभवः, अधुना तु इति शेषः, क्षीणसर्वाङ्गचेष्ट=क्षीणा विनिष्टाः सर्वाङ्ग-

---

बाण द्वारा विद्ध हृदय वाले (महाराज) भूतल पर (पड़े हुए) ऐसे दिखलायी दे रहे हैं जैसे कार्तिकेय की शक्ति द्वारा बींधा हुआ क्रौञ्चपर्वत हो।

अंगद—(समीप जाकर) हा महाराज !

वानराज (आप) पहले) महान् बल के कारण सुखपूर्वक सोने वाले थे (किन्तु अब सभी अंगों की चेष्ठाओं से क्षीण हुए भूतल पर लोटने वाले बने हुए हैं। हे वीर श्रेष्ठ बाण द्वारा बीधे हुए शरीर को छोड़कर हमारे देखते देखते ही क्यों स्वर्ग की इच्छा कर रहे हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(इति भूमौ पतितः ।)

बाली—अङ्गद ! अलमलं विषादेन, भोः सुग्रीव !
मया कृतं दोषमपास्य बुद्ध्या त्वया हरीणामधिपेन सम्यक् ।
विमुच्य रोषं परिगृह्य धर्मं कुलप्रवालं परिगृह्यतां नः ॥ २६ ॥

सुग्रीवः—यदाज्ञापयति महाराजः ।

बाली—भो राघव ! यस्मिन् कस्मिन् वापराधेऽनयोर्वानर चापलं

चेष्टाः सर्वावयवविक्रियाः यस्य सः, क्षितितलपरिवर्ती = क्षितितले भूतले परिवर्तते विलुठतीति । वीरः = हे शूर ! शरवरपरिवीतं = शरेषु वाणेषु वरः श्रेष्ठः तेन परिवीतं विद्धम्, देहं = शरीरम्, उत्सृज्य = त्यक्त्वा, व्यक्तं = अस्माकं समक्षम् अद्य = अस्मिन्दिवसे, स्वर्गं = स्वर्गलोकम्, अभिगतुम् = अभियातुम्, अभिलषसि = इच्छसि । मालिनीच्छदः ।

अन्वयः—हरीणाम् अधिपेन त्वया मया कृतं दोषं बुद्धया सम्यक् अपास्य रोषं विमुच्य धर्मं परिगृह्य नः कुलप्रबालम् परिगृह्यताम् ।

मया कृतमिति—हरीणां = वानराणाम्, अधिपेन = स्वामिना, त्वया = सुग्रीवेण, मया = बालिना, कृतं = अनुष्ठितम्, दोषम् = अपराधम्, बुद्ध्या = मनसा, सम्यक् = पूर्णरूपेण, अपास्य = दूरीकृत्य, रोषं = कोपम्, विमुच्य = त्यक्त्वा, धर्मं = नैतिककर्त्तव्यम्, परिगृह्य = स्वीकृत्य, नः = अस्माकम्, कुलप्रवालं, = कुलस्य वंशस्य प्रबालं अंकुरम्, परिगृह्यतां = स्वीक्रियताम् । रूपकमलङ्कारः उपेन्द्रवज्राच्छन्दः ।

भो राघवेति—अपराधे = दोषे, अनयोः = अङ्गदसुग्रीवयोः, वानरचापलं

(भूमि पर गिरता है)

बाली—हे अङ्गद ! विषाद करना व्यर्थ है । हे सुग्रीव !

मेरे द्वारा किये गये (तुम्हारा निर्वासन करके तुम्हारी पत्नी का ग्रहण) दोष को बुद्धि (हृदय) से दूर करके, (मेरे प्रति अपने) क्रोध को भुला कर तथा धर्म को धारण करके बानरों के स्वामी के रूप में तुम हमारे वंशाङ्कुर (पुत्र) को स्वीकार करो (अर्थात् रक्षा करो) ।

सुग्रीव—जो महाराज की आज्ञा ।

बाली—हे राम ! किसी भी अपराध में आप इन दोनों (अङ्गद और

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

क्षन्तुमर्हसि ।

रामः—बाढम् ।

बाली—सुग्रीव ! प्रतिगृह्यतामस्मत्कुलधनं हेममाला ।

सुग्रीवः—अनुगृहीतोऽस्मि । (प्रतिगृह्णाति)

बाली—हनूमन् ! आपस्तावत् ।

हनूमान्—यज्ञापयति महाराजः । (निष्क्रम्य प्रविष्य) इमा आपः ।

बाली—(आचम्य) परित्यजन्तीव मां प्राणाः । इमा गङ्गाप्रभृतयो महानद्य एता उर्वश्यादयोऽप्सरसो मामभिगताः । एष सहस्रहंसप्रयुक्तो वीरवाही विमानः कालेन प्रेषितो मां नेतुमागतः । अयमयमागच्छामि । (स्वर्यातः) ।

=वानराणां कपीनां चापलं चाञ्चल्यम्, क्षन्तुं=मर्षयितुम्, अर्हसि=योग्योऽसि । बाढम्=स्वीकारे । प्रतिगृह्यतां=स्वीक्रियताम्, अस्मत्कुलधनं=अस्माकं कुलस्य वंशस्य धनं सम्पत्तिः, हेममाला=हेम्नः सुवर्णस्य माला हारः । अनुगृहीतः=उपकृतः । आपः=जलम् ।

परित्यजेति—मां=बालिम्, प्राणाः=प्राणवायवः, परित्यजतीव=

सुग्रीव) की वानर चपलता को क्षमा कीजिएगा ।

राम—ठीक है ।

बाली—हे सुग्रीव ! हमारे कुल की सम्पत्ति (इस) सुवर्ण की माला को ग्रहण करो ।

सुग्रीव—मैं अनुगृहीत हूँ ।

बाली—हे हनुमान् ! पानी लाओ ।

हनुमान्—जो महाराज की आज्ञा ! (निकल कर प्रवेश करके) यह पानी है ।

बाली—(आचमन करके) मेरे प्राण मुझे छोड़ रहे हैं । ये गंगा इत्यादि नदियाँ, उर्वशी इत्यादि अप्सराएँ मुझे लेने आ रही हैं । यह हजार हंसों वाला वीरवाही (नामक) यमराज द्वारा भेजा गया विमान मुझे लेने के लिए आ गया है । अच्छा, यह मैं आ रहा हूँ ।(स्वर्ग चला गया)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सर्वे—हा हा महाराज !।

राम—हन्त स्वर्गं गतो बाली। सुग्रीव ! क्रियतामस्य संस्कारः।

सुग्रीव—यदाज्ञापयति देवः।

रामः—लक्ष्मण ! सुग्रीवस्याभिषेकः कल्प्यताम् !

लक्ष्मणः—यदाज्ञापयत्यार्यः !

(निष्क्रान्ताः सर्वे)

प्रथमोऽङ्कः

—०—

उज्झन्ति इव। अभिगता=प्रत्यायाता। सहस्रहंसप्रयुक्तः=सहस्रसंख्यकैः हंसैः पक्षिविशेषैः प्रयुक्तः आकृष्टः, विमानः=यानम्, कालेन=यमेन, प्रेषितः=प्रेरितः। आगच्छामि=आयामि।

संस्कारः=अन्त्येष्टिः। अभिषेकः=राज्याभिषेकः, कल्प्यतां=क्रियताम्।

॥ इति प्रथमोऽङ्क ॥

—०—

सभीं—हाय, हाय महाराज।

राम—हाय, वाली स्वर्ग चला गया। हे सुग्रीव इसका संस्क;र करो।

सुग्रीव—जो महाराज की आज्ञा।

राम—हे लक्ष्मण ! सुग्रीव के अभिषेक की तैयारी करो।

लक्ष्मण—जो आप की आज्ञा।

(सभी निकल जाते हैं)

॥ प्रथम अङ्क समाप्त ॥

—०—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

द्वितीयोऽङ्कः

(ततः प्रविशति ककुभः)

ककुभः—निष्ठितप्रायत्वात् कार्यस्याहारव्यापृताः सर्वे वानरयूथपाः तस्मादहमपि किञ्चिदाहारजातं सम्भावयामि। (तथा करोति।)

(प्रविश्य)

विलमुख—पेसियो म्हि महालाएन सुग्गीवेण-अय्यरामस्य किदोव-आरप्पच्चुवआरणिमित्तं सव्वासु दिसासु सीदाविअअणे पेशिया सव्वे वाणरा आअदा। तेसं दक्खिणापहमुहस्स कुमारस्स अंगदस्स पवुत्तिं जाणिअ सिग्घं आअच्छंति। ता कहिं णुहु गओ कुमारो। (परिक्रम्याग्रतो विलोक्य) एसो अय्यकउहो। जाव णं पुच्छामि। (उपसृत्य) सुहं अय्यस्स। [प्रेषितोऽस्मि महाराजेन सुग्रीवेण आर्यरामस्य कृतोपकारप्रत्युपकारनिमित्तं

निष्ठितेति— निष्ठितप्रायत्वात्=निष्ठितः समाप्तः प्रायत्वं बाहुल्यम् यस्य तस्मात्; कार्यस्य=अनुष्ठेयस्य, आहारव्यापृताः= आहारे भोजनकार्ये व्यापृताः व्यग्राः, वानयूथपाः=वानराणां कपीनां, यूथानि समूहानि पान्ति रक्षन्ति इति तथोक्ताः। तस्मात् अतएव, अहमपि=ककुभः अपि, आहारजातं =भोजनसमूहम् सम्भावयामि=करोमि।

प्रेषितः इति— कृतोपकारप्रत्युपकारनिमित्तं=कृतः विहितः यः उपकारः हितं तस्मिन् प्रत्युपकारः प्रतिहितं निमित्तं हेतुः यस्मिन् यथा स्यात्तथा।

(तत्पश्चात् ककुभ प्रवेश करता है)

ककुभ—कार्य के समाप्त हो जाने के कारण सभी वानरवृन्द भोजन में लगे हुए हैं। अत एव मैं भी कुछ भोजन कर लूँ। (वैसा करता है अर्थात् भोजन करता है)।

(प्रवेश करके)

विलमुख—'आर्य राम के द्वारा किये गये उपकार का प्रत्युपकार

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सर्वासु दिशासु सीताविचयने प्रेषिताः सर्वे वानरा आगताः। तेषां दक्षिणापथ-मुख्यस्य कुमारस्याङ्गदस्य प्रवृत्तिं ज्ञात्वा शीघ्रमागच्छेति। तत् क्व नु खलु गतः कुमारः। एष आर्यककुभः। यावदेनं पृच्छामि। सुखमार्यस्य।]

ककुभः—अये बिलमुखः! कुतो भवान्।

बिलमुखः—अय्य! महालाअस्ससासणेण कुमारं अंगदं पेक्खिदुं आअदो म्हि। [आर्य! महाराजस्य शासनेन कुमारमङ्गदं प्रेक्षितुमागतोऽस्मि।]

ककुभः—अपि कुशली आर्य रामो महाराजश्च।

बिलमुखः—आम्।

सीताविचयने=सीतायाः जानक्याः विचयने अन्वेषणे, प्रेषिता=प्रेरिता, आगताः=आयाताः। तेषां=वानराणाम्, दक्षिणापथमुख्यस्य=दक्षिणदिशि यः पथा पन्था तस्मिन् मुखम् आननं यस्य तस्य, प्रवृत्तिं=वृत्तम्, ज्ञात्वा=विज्ञाय, शीघ्र=त्वरितम्, आगच्छ=आयाहि। सुखं=कुशलम्।

आर्येति—महाराजस्य=सुग्रीवस्य, शासनेन=आदेशेन, प्रेक्षितुं=विलोकितुम्, आगतः अस्मि=आयातः अस्मि। अभिप्रायः=आशयः, कार्यस्य=करणीयस्य, अर्धम्=अर्धभागम्, निष्ठितं=समाप्तम्।

(बदला) करने के लिए सभी दिशाओं में सीता की खोज में भेजे गये सभी वानर आ गये। उन (भेजे गये वानरों) में 'दक्षिण दिशा में गये हुए कुमार अङ्गद का समाचार लेकर शीघ्र आओ' (इसी कार्य के लिए) महाराज सुग्रीव के द्वारा भेजा गया हूँ। न जाने कुमार कहा चले गये। यह (सामने) आर्य ककुभ हैं। तो इनसे पूछता हूँ। (समीप जाकर) आप सुखी तो हैं?

ककुभ—अरे विलमुख! आप किधर से (आ रहे हैं)।

बिलमुख—हे आर्य! महाराज (सुग्रीव) के आदेशानुसार कुमार अङ्गद को खोजने के लिए आया हूँ।

ककुभः—आर्य राम तथा महाराज (सुग्रीव) सकुशल तो हैं?

बिलमुख—हाँ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ककुभः—कोऽभिप्रायो महाराजस्य ।

(बिलमुखः पेशिओ म्हि इति पूर्ववत् पठति)

ककुभः—किं न जानीषे निष्ठितधर्म आर्यस्य ।

बिलमुखः—किं किम् ।

ककुभः—श्रूयतां,

लब्ध्वा वृत्तान्तं रामपत्न्याः खगेन्द्राद् आरुह्यागेन्द्रं सद्विपेन्द्रम् ।
लङ्कामभ्येतुं वायुपुत्रेण शीघ्रं वीर्यप्राबल्याल्लङ्घितः सागरोऽद्य ॥१॥

तस्मादागच्छ, कुमारपादमूलमेव संश्रयावः ।

अन्वयः—खगेन्द्रात् रामपत्न्याः वृत्तान्तं लब्ध्वा सद्विपेन्द्रम् अगेन्द्रं महेन्द्रम् आरुह्य शीघ्रं लङ्काम् अभ्येतुं वायुपुत्रेण वीर्यप्राबल्यात् अद्य सागरः लङ्घितः ।

लब्ध्वेति—खगेन्द्रात्=पक्षिराज्ञः, रामपत्न्याः=सीतायाः, वृत्तान्तं=समाचारम्, लब्ध्वा=प्राप्य, सद्विपेन्द्रं=गजराज सहितम्, अगेन्द्रं=पर्वतराजम्, महेन्द्र=एतन्नामकं पर्वतम्, आरुह्य=उपरिगत्वा, शीघ्रं=त्वरितम्, लङ्का=एतन्नामकनगरीम्, अभ्येतुं=अभिगन्तुम्' वायुपुत्रेण=हनुमता, वीर्यप्राबल्यात्=वीर्यं वीरत्वं तस्य प्राबल्यात् प्रकृष्टत्वात्, अद्य=अस्मिन् दिवसे, सागरः=समुद्रः, लङ्घितः=अतिक्रान्तः । वैश्वदेवीच्छन्दः ।

ककुभ—महाराज (सुग्रीव) की क्या इच्छा है ।

(बिलमुख पहले वाली बात को दुहराता है)

ककुभ—क्या नहीं जानते हो कि आधा कार्य हो गया है ।

बिलमुख—क्या, क्या ।

ककुभ—सुनो—

खगराज (सम्पाति) से राम की पत्नी (सीता) का समाचार पाकर हाथियों के समूह से युक्त पर्वतों में प्रमुख (महेन्द्र) पर्वत पर चढ़कर वायुपुत्र (हनुमान्) के द्वारा लङ्का जाने के लिए अपने पराक्रम से आज समुद्र लाँघ लिया गया है ।

तो आओ, कुमार (अङ्गद) के समीप ही चलें ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(निष्क्रान्तौ)।

विष्कम्भकः।

(ततः प्रविशति राक्षसीगणपरिवृत्ता सीता।)

सीता—हद्धि अदिधीरा खु म्हि मन्दभाआ। जा अय्यउत्तविरहिदा रक्खसराअभवणं आणीदा आणिट्ठाणि अणरिहाणि जहमणोरहप्पवुत्ताणि वअणाणि साविअमाणा जीवामि मन्दभाआ। आदु अय्यउत्तसाअअप्पच्चएण कहं वि अत्ताणं पय्यवत्थावेमि। किं णु खु अज्ज पज्जालिअमाणे कम्मअग्गिमण्डले उदअप्पसेओ विअ किञ्चि हिअ अप्पसादो समुप्पण्णो। किं खु मं अन्तरेण पसण्णहि अओअय्यउत्तो भवे। [हा धिग् अतिधीरा खल्वस्मि मन्दभागा। आर्यपुत्रविरहिता राक्षसराजभवनमानीतानिष्टान्यनर्हाणि यथामनोरथप्रवृत्तानि वचनानि श्राव्यमाणा जीवामि मन्दभागा। अथवा आर्यपुत्रसायकप्रत्ययेन कथमप्यात्मानं पर्यवस्थापयामि।

हा धिगिति—अतिधीरा=अतिधैर्ययुक्ता, मन्दभागा=मन्दः दुर्बलः भाग्यं यस्याः सा। आर्यपुत्रविराहिता=आर्यपुत्रेण पत्या रामेण विरहिता वियुक्ता, राक्षसराजभवनं=राक्षसराजस्य रावणस्य भवनं गृहम्, आनीता=प्रापिता, अनिष्टानि=अशुभानि, अनर्हाणि=अयोग्यनि अनुचितानीत्यर्थः, यथामनोरथप्रवृत्तानि=यथामनोरथं यथाभिलषित प्रवृत्तानि प्रारब्धानि, वचनानि=कथनानि, श्राव्यमाणा=श्रोतुं प्रेर्यमाणा, जीवामि=जीवनं धारयामि। आर्यपुत्रसायकप्रत्ययेन=आर्यपुत्रस्य भर्तुः सायकेषु बाणेषु यः प्रत्ययः विश्वासः तेन, कथमपि=केनापि प्रकारेण, पर्यवस्थापयामि=समाश्वासयामि

(दोनों दिकल जाते हैं)

॥ विष्कम्भक समाप्त ॥

(तत्पश्चात् राक्षसियों के समूह से घिरी हुई सीता प्रवेश करती है)

सीता—हाय धिक्कार है। मैं अभागिनी अत्यन्त कठोर हूँ। आर्यपुत्र (राम) से विछुड़ कर राक्षसराज (रावण) के भवन (लङ्का) में लायी गयी, अप्रिय अनुचित तथा यथेच्छ कही गयी बातों को सुनाती हुई भी मैं जीवित हूँ। अथवा आर्यपुत्र (राम) के बाणों पर विश्वास होने के कारण किसी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

किन्तु खल्वद्य प्रज्वाल्यमाने कर्मकाराग्निमण्डले उदकप्रसेक इव किञ्चिद् हृदयप्रसादः समुत्पन्नः। किन्तु खलु मामन्तरेण प्रसन्नहृदय आर्यपुत्रो भवेत्।)

(ततः प्रविशति हनूमान् अङ्गुलीयकहस्तः।)

हनुमान्—(लङ्कां प्रविश्य) अहो रावणभवनस्य विन्यासः।

कनकरचितचित्रतोरणाढ्या मणिवरविद्रुमशोभितप्रदेशा।
विमलविकृतसञ्चितैर्विमानैर्वियति महेन्द्रपुरीव भाति लङ्का ॥२॥

प्रज्वाल्यमाने=प्रज्वलितुं प्रेर्यमाणे, कर्मकाराग्निमण्डले=कर्मकारस्य लोहकारस्य अग्निमण्डले अग्निसमूहे, उदकप्रसेकः इव=उदकस्य जलस्य प्रसेकः सेचनम् इव, हृदयप्रसादः=हृदयस्य अन्तःकरणस्य प्रसादः शान्तिः समुत्पन्नः=जातः, अन्तरेण=विना, प्रसन्नहृदयः=प्रसन्नं प्रफुल्लितं हृदयम् अन्तकरणम् यस्य सः।

अहः इति—रावणभवनस्य=रावणस्य एतन्नामकस्य राक्षस्य भवनः आलयः तस्य, विन्यासः=रचना क्रमः।

अन्वयः—कनकरचितचित्रतोरणाढ्या मणिवरविद्रुमशोभितप्रदेशा लङ्का विमलविकृतसञ्चितैःविमानैः वियति महेन्द्रपुरी इव भाति।

कनकेति—कनकरचितचित्रतोरणाढ्या=कनकेन हिरण्येन रचितं निर्मितं चित्रं विचित्रवर्णं च यत् तोरणं बहिर्द्वारं तेन आढ्या समृद्धा, मणिवरविद्रुमशोभितप्रदेशा=मणिवराः रत्नश्रेष्ठाः विद्रुमाः प्रवालाश्च तैः शोभिता

प्रकार जीवित रही हूँ किन्तु आज कर्मकार द्वारा प्रज्वलित अग्नि पर जल सींचने के समान कुछ हृदय में प्रसन्नता उत्पन्न हुई है। क्या आर्यपुत्र मेरे बिना प्रसन्न होंगे।

(अङ्गूठी हाथ में लिए हनुमान् प्रवेश करता है)

हनुमान्—(लङ्का में प्रवेश करके) रावण के भवन का विन्यास आश्चर्यजनक है।

सुवर्ण रचित रंग विरङ्गे बहिर्द्वार से समृद्ध तथा उत्कृष्ट मणियों और मूँगों से शोभायमान स्थानों वाली यह लङ्का निर्मल विचित्र और घने अट्टालिकाओं से ऐसी चमक रही है जैसे आकाश (स्वर्ग) में इन्द्रपुरी हो।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

अहो न खलु,

एतां प्राप्य दशग्रीवो राजलक्ष्मीमनुत्तमाम् ।
विमार्गप्रतिपन्नत्वात् व्यापादयितुमुद्यतः ॥ ३॥

(सर्वतो गत्वा) विचरितप्राया लङ्का ।

गर्भागारविनिष्कुटेषु बहुशः शालाविमानादिषु
स्नानागारनिशाचरेन्द्रभवनप्रासादहर्म्येषु च ।
पानागारनिशान्तदेशविवरेष्वाक्रान्तवानस्म्यहं
सर्वं विचितं न चैव नृपतेः पत्नी मया दृश्यते ॥ ४ ॥

शोभायमाना प्रदेशाः स्थानानि यस्याः सा; लङ्का = एतन्नामकनगरी, विमलविकृतसञ्चितैः = विमलानि उज्जवलानि विकृतानि विचित्राणि च सञ्चितानि निविडानि च तैः, विमानैः आट्टलिकाभिः, वियति = गगने, महेन्द्रपुरी इव = देवराजनगरी इव, भाति = शोभते । उपमालङ्कारः । पुष्पिताग्राच्छन्दः ।

अन्वयः —अनुत्तमां राजलक्ष्मीं प्राप्य दशग्रीवः विमार्गप्रतिपन्नत्वात् एतां व्यापादयितुम् उद्यतः अस्तिः ।

एतामिति—अनुत्तमां = सर्वश्रेष्ठाम्, राजलक्ष्मीं = राजश्रियम् प्राप्यः = लब्ध्वा, दशग्रीवः = रावणः, विमार्गप्रतिपन्नत्वात् = विमार्गं कुपथं प्रतिपन्नत्वात् प्राप्त्यात्, एतां = राजलक्ष्मीम्, व्यापादयितुं = विनाशयितुम्, उद्यतः = उद्युक्तः; अस्तीति शेषः । काव्यलिङ्गमलङ्कारः । अनुष्टुप्च्छन्दः ।

अन्वयः—गर्भागारविनिष्कुटेषु शालाविमानादिषु स्नानागारनिशाचरेन्द-

---

ओह ! आश्चर्य है,

इस असाधरण राजलक्ष्मी को प्राप्त करके रावण अपनी कुमार्ग-प्रवृत्ति के कारण (इस राजलक्ष्मी को) नष्ट करने के लिए तैयार है।

(चारों ओर घूमकर) लङ्का का प्रायः भ्रमण (मेरे द्वारा) कर लिया गया।

गृह मध्यवर्ती उद्यानों, गृहों तथा विमानों में, स्नानागारों तथा राक्षसेन्द्र (रावण) के भवनों, अट्टालिकाओं और महलों में, मद्यशालाओं तथा भवन के सुरङ्गों में (मैं) प्रवेश किया तथा अनेक प्रकार से खोजा किन्तु महाराज (राम) की पत्नी (सीता) मेरे द्वारा देखी नहीं गयी ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

अहो व्यर्थो मे परिश्रमः। भवतु, एतद्धर्म्याग्रमारुह्यावलोकयामि। (तथा कृत्वा) अये अयं प्रमदवनराशिः। इमं प्रविश्य परीक्षिष्ये। (प्रविश्यावलोक्य) अहो प्रमवनसमृद्धिः इह हि,

कनकरचितविद्रुमेन्द्रनीलैर्विकृतमहाद्रुमपङ्क्तिचित्रदेशा।

भवनप्रासादहर्म्येषु पानागारनिशान्तदेशविवरेषु च अहं बहुशः आक्रान्तवान् अस्मि। भोः सर्वं विचितम् च, नृपतेः पत्नी न एव मया दृश्यते।

गर्भागारेति—गर्भागारविनिष्कुटेषु= गर्भस्य अन्तरस्य, आगाराणि गृहाणि च विनिष्कुटेषु उद्यानेषु, शालाविमानादिषु=शालाः गृहाणि विमानानि आदिः येषां तेषु, स्नानागारनिशाचरेन्द्रभवनप्रसादहर्म्येषु=स्नानागाराणि स्नानगृहाणि निशाचरेन्द्रस्य राक्षसेन्द्रस्य रावणस्य भवनानि गृहाणि प्रसादाः आट्टालिकानि हर्म्याणि राजगृहाणि च तेषु, पानागारनिशान्तदेशविविरेषु च=पानागाराणि मधुशालाः निशान्ताः निःशब्दाः देशविवराणि सुरङ्गानि तेषु च, अहं=हनूमान्, बहुशः=बहुप्रकारेण, आक्रान्तवान् अस्मि=समन्तात् भ्रमन् अस्मि। भो=अरे! सर्वं=सम्पूर्णम्, स्थानमितिशेषः, विचितं=अन्विष्टम्, नृपतेः= राज्ञः रामस्य, पत्नी=दारा सीता, न एव=नहि एव, मया=हनुमता, दृश्यते=विलोक्यते। शार्दुलविक्रीडितं छन्दः।

अहो इति—व्यर्थः=प्रयोजनरहितः, प्ररिश्रमः=श्रमः, एतत् पुरोवर्तमानः, हर्म्याग्रम्=राजभवनशिखरम्, आरुह्य=ऊर्ध्वं गत्वा, अवलोकयामि=विलोकयामि। प्रमदवनराशिः=विलासोद्यानपंक्तिः। परीक्षिष्ये=निरीक्षणं करिष्ये:, प्रमदवनसमृद्धिः=विलासोद्यानसम्पन्नता।

अन्वयः—कनकरचितविद्रुमेन्द्रनीलैः विकृतमहाद्रुमपंक्तिचित्रदेशा रुचिर-

---

ओह! मेरा परिश्रम व्यर्थ हो गया। अच्छा, इस महल पर चढ़कर देखता हूँ। (वैसा करके) अरे! यह तो प्रमदवन है। इसमें प्रवेश करके खोजता हूँ। (प्रवेश करके देखकर) अहा! प्रमदवन की रमणीयता (कैसी) अद्भुत है)। क्योंकि यहाँ—

स्वर्ण-खचित मूँगे (प्रवाल) तथा इन्द्रनील से बना हुआ, विचित्र और बड़े बड़े वृक्षों की पंक्तियों से रङ्ग-विरङ्गा स्थान यह चमकीले पर्वतों

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

रुचिरतरनगा विभाति शुभ्रा नभसि सुरेन्द्रविहारभूमिकल्पा ॥५॥

अपि च—

चित्रप्रस्रुतहेमधातुरुचिराः शैलाश्च दृष्टा मया
नानावारिचराण्डजैर्विरचिता दृष्टा मया दीर्घिकाः ।
नित्यं पुष्पफलाढ्यपादपयुता देशाश्च दृष्टा मया
सर्वं दृष्टमिदं हि रावणगृहे सीता न दृष्टा मया ॥ ६॥

तरनगा शुभ्रा नभसि सुरेन्द्रविहारभूमिकल्पा विभाति ।

कनकरचितेति—कनकरचितविद्रुमेन्द्रनीलैः = कनकरचिताः सुवर्णरचिता विद्रुमाः प्रवालाः इन्द्रनीलाः च नीलकान्तमणयः च तैः, विकृतमहाद्रुमपंक्तिचित्रदेशा = विकृताः परिवर्तनं प्राप्ताः ये महान्तः विशालाः द्रुमाः वृक्षाः तेषां पंक्तिभिः श्रेणिभिः चित्राः कर्बुराः देशाः स्थानानि यस्याः सा, रुचिरतरनगा = रुचिरतराः देदीप्यमानाः नगाः पर्वताः यस्यां सा, शुभ्रा = उज्ज्वला, नभसि = आकाशे, सुरेन्द्रविहारभूमिकल्पा = इन्द्रविहारभूमिसदृशा, विभाति = शोभते ।

अन्वयः—मया चित्रप्रस्रुतहेमधातुरुचिराः शैलाः च दृष्टाः, मया नानावारिचराण्डजैः विरचिता दीर्घिकाः, मया नित्यं पुष्पफलाढ्यपादपयुताः देशाः च दृष्टाः । इदं सर्वं हि दृष्टं (किन्तु) मया रावणगृहे सीता न दृष्टा ।

चित्रप्रस्रुतेति—मया = हनुमता, चित्रप्रस्रुतहेमधातुरुचिराः = चित्राः विचित्राः प्रस्रुतः प्रस्पन्दितः यः हेम्नः सुवर्णस्य धातुः खनिजं तेन रुचिराः

से युक्त तथा उज्जवल बनी हुई ऐसी शोभायमान है जैसे आकाश में इन्द्र की बिहार भूमि (जगमगाती है) ।

और भी—

मेरे द्वारा नाना प्रकार के तथा रिसे हुए सुवर्ण धातु से चमकीले पर्वत देख लिये गये । अनेक प्रकार के जलचर-जीवों और पक्षियों से शोभायमान बावलियाँ देख ली गयीं । मेरे द्वारा सर्वदा पुष्पों और फलों से सम्पन्न वृक्षों वाले स्थान भी देख लिये गये । यह सब कुछ (मेरे द्वारा) देख लिया गया किन्तु रावण के घर में मेरे द्वारा सीता नहीं देखी गयीं ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

को नु खल्वेतस्मिन् प्रदेशे सप्रभ इव दृश्यते। तत्र तावदवलोकयामि। (तथा कृत्वा) अये का खल्वियम्।

राक्षसीभिः परिवृत्ता विकृताभिः सुमध्यमा।
नीलजीमूतमध्यस्था विद्युल्लेखेव शोभते ॥ ७ ॥

यैषा—

भास्वराः, शैलाः च=पर्वताः च, दृष्टाः=विलोकिता। मया=हनुमता, नानावारिचराण्डजैः=नाना विविधा ये वारिचराः जलचराः अण्डजाः पक्षिणः च तैः, विरचिताः=सुशोभिताः, दीर्घिकाः=सरस्यः, दृष्टाः=विलोकिताः। मया=हनुमता, नित्यं=सर्वदा,पुष्पफलाढ्यपादपयुताः=पुष्पाणि कुसुमानि फलानि प्रसूतानि तैः आढ्याः सम्पन्नाः पादपाः वृक्षाः तैः युताः युक्ताः, देशाः=स्थानानि, इदं=पूर्वोक्तम्, सर्वं=पर्वतादिकम्, हि=निश्चयेन, मया=हनुमता, दृष्टं=विलोकितम्, (किन्तु) रावणस्य=दशाननस्य, गृहे=भवने, सीता=जानकी, न दृष्टा=न विलोकिता। शार्दूलविक्रीडितं छन्दः।

को नु इति—सप्रभः इव=कान्तिसम्पन्नः इव, दृश्यते=अवलोक्यते,।

अन्वयः—विकृताभिः राक्षसीभिः परिवृत्ता सुमध्यमा नीलजीमूतमध्यस्था विद्युल्लेखा इव शोभते।

राक्षसीभिः इति—विकृताभिः=विकृताकारभिः, राक्षसीभिः=राक्षसस्त्रीभिः, परिवृता=परिगता, सुमध्यमा=सुन्दरी स्त्री, नीलजीमूतमध्यस्था=नीलाः नीलवर्णाः ये जीमूताः बादलाः तेषां मध्ये तिष्ठतीति सा, विद्युल्लेखा इव=तडितरेखा इव, शोभते=विराजते। उपमालङ्कारः। अनुष्टुप्छन्दः।

इस स्थान पर यह कान्तिमान्—सा कौन दिखलायी पड़ रहा है। तो वहाँ देखता हूँ। (वैसा करके) अरे! यह (स्त्री) कौन है।

नीले बादलों के मध्य में स्थित विद्युतरेखा की भाँति, भद्दे आकार वाली (=कुरूप) राक्षसियों से घिरी हुई (यह कौन) स्त्री शोभायमान हो रही है।

जो यह—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

असितभुजगकल्पां धारयन्त्येकवेणीं
करपरिमितमध्या कान्तसंसक्तचित्ता ।
अनशनकृशदेहा वाष्पसंसिक्तवक्त्रा
सरसिजवनमालेवातपे विप्रविद्धा ॥ ८ ॥

अये कथं दीपिकावलोकः । (विलोक्य) अये रावणः ।

मणिविरचितमौलिश्चारुताम्रायताक्षी
मदसललितगामी मत्तमातङ्गलीलः ।
युवतिजननिकाये भात्यसौ राक्षसेशो
हरिरिव हरिणीनामन्तरे चेष्टमानः ॥ ९ ॥

अन्वयः—असितभुजगकल्पा एकवेणीं धारयन्ती करपरिमितमध्या कान्तसंसक्तचित्ता अनशनकृशदेहा वाष्पसंसिक्तवक्त्रा आतपे विप्रविद्धा सरसिजवनमाला इव (भाति) ।

असितेति—असितभुजगकल्पा=असितः कृष्णवर्णः यः भुजगः सर्पः तेन कल्पा सदृशा, एकवेणीं=कबरीम्, धारयन्ती=वहन्ती, करपरिमितमध्या=कृशोदरी, अनशनकृशदेहा=अनशनेन उपवासेन कृशदेहा क्षीणशरीरा, वाष्पसंसिक्तवक्त्रा=वाष्पेण अश्रुजलेन संसिक्तम् आर्द्रम् वक्त्रं मुखं यस्याः सा, आतपे=घर्मे, विप्रविद्धा=प्रक्षिप्ता, सरसिजवनमाला इव=सरसिजानां कमलानाम् वनस्य समूहस्य माला हारः इव, दृश्यते इति योजनीयम् ।

अन्वयः—मणिविरचितमौलिः चारुतामायताक्षी मदसललितगामी मत्तमातङ्गलीलः चेष्टमानः असौ राक्षसेशः युवतिजननिकाये हरिणानाम् अन्तरे चेष्टमानः हरिः इव भाति ।

काले नाग के समान एकवेणी को धारण करती हुई, पतली कमर वाली, प्रियतम में अनुरक्त चित्त वाली, अनाहार के कारण दुर्बल शरीर वाली, आँसुओं से गीले मुख वाली, धूप में सूखती हुई कमल की माला की भाँति है ।

अरे ! क्या दीपक का प्रकाश है । (देखकर) अरे ! (यह तो) रावण है ।

मणियों (के आभूषण) से युक्त सिर वाला ; सुन्दर लाल और विशाल आँखों वाला ; मद से सविलास गमन करने वाला, मस्त हाथी की तरह चाल वाला (यह) राक्षसेन्द्र (रावण) स्त्रियों के बीच में चेष्टा करता हुआ ऐसा शोभायमान हो रहा है मानों हरिणियों के मध्य में सिंह हो ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

किमिदानीं करिष्यते। भवतु, दृष्टम्। एनमशोकपादपमारुह्य कोटरान्तरितो भूत्वा दृढं वृत्तान्तं ज्ञास्यामि। (तथा करोति।)

(ततः प्रविशति रावणः सपरिवारः।)

रावणः—

दिव्यास्त्रैः सुरदैत्यदानवचमूविद्रावणं रावणं
युद्धे क्रुद्धसुरेभदन्तकुलिशव्यालीढवक्षःस्थलम्।
सीता मामविवेकिनी न रमते सक्ता च मुग्धेक्षणा
क्षुद्रे क्षत्रियतापसे ध्रुवमहो दैवस्य विघ्नक्रिया ॥१०॥

मणिविरचितेति—मणिविरचितमौलिः=मणिविरचितः रत्नरचितः मौलिः मुकुटं यस्य सः, चारुताम्रायताक्षीः=चारूणि मनोहराणि च ताम्राणि रक्तवर्णानि च आयतानि विशालानि च अक्षीणि नयनानि यस्य सः, मदसल-ललितगामी=मदेन गर्वेण सललितं सविलासं यथा स्यात्तथा गच्छतीति गामी, मत्तमातङ्गलीलः=मत्तः मादोत्कटः यः मातङ्गः गजः तद्वत् लीला क्रीडा यस्य सः, युवतिजननिकाये=स्त्रीवर्गसमूहे, चेष्टमानः=चेष्टां कुर्वन्, असौ=पुरोवर्तमानः, राक्षसेशः=राक्षसेन्द्रः रावणः, हरिणीनां=मृगीणाम्, अन्तरे=मध्ये, हरिः इव=सिंहः इव, भाति=शोभते। उपमालङ्कारः। मालिनीच्छन्दः।

किमेति—अशोकपादपं=अशोकवृक्षम्, आरुह्य=आरोहं कृत्वा, कोट-रान्तरितः=कोटरेन क्रोडेन अन्तरितः व्यवहितः, दृढं=निश्चयपूर्वकम्, वृत्तान्तं=समाचारम्, ज्ञास्यामि=उपलप्स्ये।

अन्वयः—अविवेकिनी मुग्धा सीता दिव्यास्त्रैः सुरदैत्यदानवचमूविद्रावणं

अब क्या करूँ। अच्छा! (उपाय) समझ गया। इस अशोक के पेड़ पर चढ़ कर कोटर में छिप कर सभी समाचार को मालूम करूँगा।

(तत्पश्चात् सपरिवार रावण प्रवेश करता है)

रावण—दिव्य अस्त्रों द्वारा देवता तथा राक्षसों की सेना को खदेड़ देने वाले तथा युद्ध में क्रोधित ऐरावत के दन्तरूपी वज्र से क्षत हुए वक्षःस्थल वाले मुझ (रावण) पर भोली-भाली नादान सीता अनुरक्त होकर रमण नहीं करती, क्षुद्र क्षत्रिय—तपस्वी पर अनुराग करती है, निश्चय ही (मेरे) दुर्भाग्य का यह विघ्न-कार्य है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

(ऊर्ध्वमवलोक्य) एष एष चन्द्रमाः,
रजतरचितदर्पणप्रकाशः करनिकरैर्हृदयं ममाभिपीड्य ।
उदयति गगने विजृम्भमाणः कुमुदवनप्रियवान्धवः शशाङ्कः ॥११॥

युद्धे क्रुद्धसुरेभदन्तकुलिशव्यालीढवक्षःस्थलं मां न रमते, क्षुद्रे क्षत्रियतापसे च सक्ता ।

दिव्यास्त्रैः इति—अविवेकिनी=मूढा, मुग्धा=मनोहरा, सीता=जानकी, दिव्यास्त्रैः=दिव्यायुधैः सुरदैत्यदानवचमूविद्रावणं=सुराः देवाः दैत्याश्च दानवाः राक्षसाश्च तेषां चमूनां सेनानां विद्रावणम् अपकर्त्तारम् युद्धे=रणे, क्रुद्धसुरेभदन्तकुलिशव्यालीढवक्षःस्थलम्=कुद्धाः कुपिता ये सुराणां देवानां इभाः गजाः तेषां दन्ताः दशनाः कुलिशाः वज्राः इव तैः व्यालीढम् आस्वादितम् वक्षःस्थलम् उरस्थलं यस्य तम्, मां रावणम्, न रमते=न रमयति, क्षुद्रे=तुच्छे, क्षत्रियतापसे=क्षत्रियः चासौ तापसः तपस्वी तस्मिन्, च, सक्ता=अनुरक्ता, अस्तीति शेषः, अहो=आश्चर्यम्, ध्रुवं=निश्चयेन, देवस्य=भागस्य, विघ्नक्रिया=बाधकम् । उपमालङ्कारः । शार्दूलविक्रीडितं छन्दः ।

अन्वयः—रजतरचितदर्पणप्रकाशः कुमुदवनप्रियवान्धवः शशाङ्कः गगने विजृम्भमाणः करनिकरैः मम हृदयम् अभिपीड्य उदयति ।

रजतेति—रजतरचितदर्पणप्रकाशः=रजतेन रौप्येन रचितः निर्मितः यः दर्पणः मुकुरः तस्य इव प्रकाशः आलोकः यस्य सः, कुमुदवनप्रियबान्धवः=कुमुदानां कैरवाणां यत् वनं समूहः तस्य प्रियवान्धवः स्नेहीबान्धवः शशाङ्कः चन्द्रः, गगने=शाकाशे, विजृम्भमाणः=प्रसरन्, करनिकरैः=रश्मिसमूहैः, मम=रावणस्य, हृदयम्=अन्तःस्थलम्, अभिपीड्य=सन्ताप्य,उदयति=उदेति । उपमालङ्कारः । पुष्पिताग्राच्छन्दः ।

(ऊपर देखकर) यह, यह चन्द्रमा—

चाँदी से निर्मित दर्पण के प्रकाश के समान प्रकाश वाला, अपने सामर्थ्य को प्रदर्शित करता हुआ, कुमुद-समूह का प्रियबन्धु, (यह) चन्द्रमा अपने किरणों से मुझ (रावण) के हृदय को (काम से) पीड़ित करता हुआ आकाश में उदित हो रहा है ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(परिक्रम्य) एषा सीता पादपमूलमाश्रित्य ध्यानसंवीतहृदयानशनक्षामवदना स्वदेहमिव प्रवेष्टुकामा सङ्गूढस्तनोदरी दुर्दिनान्तर्गता चन्द्रलेखेव राक्षसीगणपरिवृतोपविष्टा । यैषा,

अपास्य भोगान् मां चैव श्रियं च महतीमिमाम् ।
मानुषे न्यस्तहृदया नैव वश्यत्वमागता ।। १२ ।।

हनूमान्—हन्त सविज्ञातम् ।

एषेति—एषा=पुरोवर्तमाना, सीता=जानकी, पादपमूलं=वृक्षतलम्, आश्रित्य=सेवित्वा, ध्यानसंवीतहृदया=ध्याने चिन्तने संवीतं व्यापृतं हृदयं यस्याः सा, अनशनक्षामवदना=अनशनेन अनाहारेण क्षामं दुर्बलं वदनं मुखं यस्याः सा, स्वदेहं=स्वकीयं शरीरम्, प्रवेष्टुकामा=प्रवेष्टुं प्रवेशं कर्तुं कामः अभिलाषः यस्याः सा, सङ्गूढस्तनोदरी=संगूढं तिरोहितं स्तनोदरं=कुचोदरं यया सा, दुर्दिनान्तर्गता=दुर्दिनस्य मेघाच्छन्नदिवस्य अन्तर्गता अन्तर्भूता, चन्द्रलेखा इव=शशिकला इव, राक्षसीगणपरिवृता=राक्षसीनां राक्षसस्त्रीणां गणेन समूहेन परिवृता परिगता, उपविष्टा=स्थिता, अस्तीति शेषः ।

अवन्यः—भोगान् मां च इमां महतीं श्रियं च अपास्य मानुषे न्यस्तहृदया वश्यत्वं न एव आगता ।

अपास्येति—भोगान्=विषयसुखान्, मां=रावणम्, च, इमाम्=एताम्, महतीं=विपुलाम्, श्रियं च=राजलक्ष्मीं च, अपास्य=तिरस्कृत्य, मानुषे=

(घूमकर) पेड़ की जड़ में बैठ कर (पति के) चिन्तन में संलग्न हृदय वाली तथा अनाहार के कारण कृश मुख वाली, मानो अपने शरीर में सिमटने की इच्छा वाली, ढके हुए स्तनों तथा शरीर वाली यह सीता राक्षसियों से घिरी हुई ऐसी बैठी है मानो वर्षा में (बादलों से) घिरी हुई चन्द्रकला हो । जो यह—

(यह सीता) मुझ (रावण) को, (सम्पूर्ण) भोगों को तथा इस विशाल लक्ष्मी को छोड़कर मनुष्य (राम) पर अनुरक्त हृदय वाली है । (यह मेरे) वश में नहीं ही आयी ।

हनुमान्—ओह ! समझ गया ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

इयं सा राजतनया पत्नी रामस्य मैथिली ।
सिंहदर्शनवित्रस्ता मृगीव परितप्यते ॥ १३ ॥

रावणः—(उपेत्य)

सीते ! त्यज त्वं व्रतमुग्रचर्यं भजस्व मां भामिनि ! सर्वगात्रैः ।
अपास्य तं मानुषमद्य भद्रे ! गतायुषं कामपथान्निवृत्तम् ॥ १४ ॥

मनुष्ये, रामे इत्यर्थः, न्यस्तहृदया=न्यस्तं स्थापितं हृदयं अन्तःकरणं यया सा, वश्यत्वम्=अधीनत्वम्, न एव आगता=नैव आयाता । अनुष्टुप्छन्दः ।

अन्वयः—इयं सा राजतनया रामस्य पत्नी मैथिली सिंहदर्शनवित्रस्ता मृगी इव परितप्यते ।

इयमिति—इयम्=एषा पुरोवर्तमाना, सा=पूर्वोक्ता, राजतनया=राजकुमारी, रामस्य, पत्नी=भार्या, मैथिली=जानकी, सिंहदर्शनवित्रस्ता=सिंहस्य मृगेन्द्रस्य दर्शनात् विलोकनात् वित्रस्ता भयभीता, मृगी इव=हरिणी इव, परितप्यते=दुःखीभवति । उपमालङ्कारः । अनुष्टुप्छन्दः ॥

अन्वयः—हे सीते ! त्वम् उग्रचर्यं व्रतं त्यज । हे भामिनी ! कामपथात् निवृत्तं गतायुषं तं मानुषम् अपास्य हे भद्रे ? अद्य सर्वगात्रैः मां भजस्व ।

सीतेति—सीते=हे जानकिः त्वं=भवती, अग्रचर्यं=कठोरानुष्ठानम्, व्रतं=नियमम्, त्यज्=उज्झ । भामिनि=हे कामिनि ! कामपथात्=कामदेवमार्गात्, निवृत्तम्=पराङ्मुखम्, गतायुषं=समाप्तजीवनम् तम्=पूर्वोक्तम्, मानुषं=मनुष्यम्, अपास्य=तिरस्कृत्य, भद्रे=हे कल्याणि ! अद्य=अस्मिन्दिवसे, सर्वगात्रैः=सर्वाङ्गैः, माम्=रावणं भजस्व=स्वीकुरु । अनुष्टुप्छन्दः ।

यही वह राम की पत्नी राजकुमारी सीता है जो सिंह को देखने से डरी हुई हरिणी की भाँति दुःखी हो रही है ।

रावण—(समीप जाकर)

हे सीते ! तुम (इस) कठोर व्रत को छोड़ो । हे कामिनि ! (अपने) सभी अङ्गों से मुझको स्वीकार करो । हे कल्याणी ! कामपथ से विरक्त (निष्काम) तथा समाप्त आयु वाले उस मनुष्य (राम) को अब छोड़ दो ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सीता—हस्सी खु रावणओ, जो वअणगदसिद्धिं वि ण जाणादि ।
[हास्यः खलु रावणकः, यो वचनगतसिद्धिमपि न जानाति ।]

हनूमान्—(सक्रोधम्) अहो रावणस्यावलेपः !

तौ च बाहू न विज्ञाय तच्चापि सुमहद्धनुः ।
सायकं चापि रामस्य गतायुरिति भाषते ॥ १५ ॥

न शक्नोमि रोषं धारयितुम् ! भवतु, अहमेवार्यरामस्य कार्यं साधयामि । अथवा,

---

हास्यः इति—रावणकः=कुत्सितः रावणः, खलु=निश्चयेन, हास्यः=हसनीयः, वचनगतसिद्धिं=वचने कथने गता स्थिता सिद्धिः निष्पत्तिः ताम्, न जानाति=न वेत्ति ।

अहो इति—अवलेपः=अभिमानः ।

अन्वयः—रामस्य तौ च बाहू तत् च अपि सुमहत् धनुः सायकं च अपि न विज्ञाय गतायुः इति भाषते ।

तौ चेति—रामस्य=राघवस्य, तौ=प्रसिद्धौ, बाहू=भुजौ, तत्=प्रसिद्धम्, च अपि, सुमहत्=सुविशालम्, धनुः=चापम् सायकं=बाणम्, च अपि, न विज्ञाय=न ज्ञात्वा, इति=एवं प्रकारेण, भाषते=कथयति । अनुष्टुप्च्छन्दः ।

न शक्नोमीति—शक्नोमि=समर्थोऽस्मि, रोषं=क्रोधम्, धारयितुं=धारणं कर्तुम् । कार्यं=रावणवधरूपं अनुष्ठानम्, साधयामि=करोमि ।

सीता—निश्चित ही नीच रावण उपहार (हँसी) के योग्य है जो बोलने का ढंग भी नहीं जानता है ।

हनुमान्—(क्रोध के साथ) ओह ! (यह) रावण का अभिमान है !

(यह रावण) राम के उन हाथों को (उनके) उस विशाल धनुष को तथा बाण को बिना जाने ही (राम को) समाप्त आयु वाला कह रहा है ।

मैं (अपने) क्रोध को धारण करने (रोकने) में समर्थ नहीं हूँ । अच्छा, मैं ही राम का कार्य कर दे रहा हूँ । अथवा—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यद्यहं रावणं हन्मि कार्यसिद्धिर्भविष्यति ।
यदि मां प्रहरेद् रक्षो महत् कार्यं विपद्यते ॥ १६ ॥

रावणः—

वरतनु ! तनुगात्रि ! कान्तनेत्रे ! कुवलयदामनिभां विमुच्य वेणीम् ।
बहुविधिमणिरत्नभूषिताङ्गं दशशिरसं मनसा भजस्व देवि!॥१७॥

अन्वयः—यदि अहं रावणं हन्मि कार्यसिद्धिः भविष्यति; यदि रक्षः मां प्रहरेत्, महत् कार्यं विप्रद्यते ।

यद्यहमिति—यदि=चेत्, अहं=हनुमान्, रावणं=दशाननम्, हन्मि=मारयामि, कार्यसिद्धिः=कार्यस्य रावणवधरूपस्यानुष्ठास्य सिद्धिः निष्पत्तिः, भविष्यति, यदि=चेत्, रक्षः=राक्षसः रावणः, मां, प्रहरेत्,=मारयेत्, महत्=विपुलम्, कार्यं=रामस्य सीताप्रत्यानयनरूपमनुष्ठानम्, विपद्यते=निष्फलीभवति । अनुष्टुप्च्छन्दः ।

अन्वयः—हे वरतनु ! तनुगात्रि ! कान्तनेत्रे ! कुवलयदामनिभां वेणीं विमुच्य हे देवि ! बहुविधमणिरत्नभूषिताङ्गं दशशिरसं मनसा भजस्व ।

वरतन्विति—वरतनु=हे सुन्दरि, तनुगात्रि= हे कृशाङ्गिः ! कान्तनेत्रे =हे सुनयने ! देवि=हे सीते ! कुवलयदामनिभां=कुवलयानां नील-कमलानां यत् दाम माला तन्निभां=तत्सदृशाम्, वेणीं=कबरीम्, विमुच्य=विहाय, बहुविधमणिरत्नभूषिताङ्गं=बहवः अनेकाः विधाः प्रकाराः येषां तानि यानि मणिरत्नानि बहुमूल्याः पाषाणविशेषाः तैः भूषितानि सुशोभितानि अङ्गानि गात्राणि यस्य तम्, दशशिरसं=दशाननं मां रावणम्, मनसा=चित्तेन, भजस्व=स्वीकुरु । उपमालङ्कारः । पुष्पिताग्राछन्दः ।

यदि मैं रावण को मार दूँगा (तो सीता प्राप्तिरूपी) कार्य सिद्ध (पूरा) हो जाएगा । यदि राक्षस (रावण) मुझे मार देगा (तो सीता प्राप्ति-रूपी) कार्य नष्ट हो जाएगा ।

रावण—हे सुन्दरी ! हे कृशाङ्गी ! हे सुनयने देवि (सीते) ! नीलकमल की माला के समान (इस) वेणी को छोड़कर अनेक प्रकार के मणियों तथा रत्नों से भूषित शरीर वाले (इस) दशानन (रावण) को मन से स्वीकार करो ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सीता—हं विपरीओ खु धम्मो, जं जीवदि खु अअं पापरक्खसो ।
[हं, विपरीतः खलु धर्मः, यद् जीवति खल्वयं पापराक्षसः ।]

रावणः—मनु देवि !

सीता—सत्तो सि । [शप्तोऽसि]

रावण—हहह, अहो पतिव्रतायास्तेजः !

देवाः सेन्द्रादयो भग्ना दानवाश्च मया रणे ।
सोऽहं मोहं गतोऽस्म्यद्य सीतायास्त्रिभिरक्षरैः ॥ १८ ॥

(नेपथ्ये)

हंमिति—हं=खेदे ! विपरीतः=विरुद्धः, पापराक्षसः=पापः पापयुक्तः चासौ राक्षसः निशिचरः, रावणः इत्यर्थः ।

अन्वयः—सेन्द्रादयः देवाः दानवाः च मया रणे भग्नाः । सः अहम् अद्य सीतायाः त्रिभिः अक्षरैः मोहं गतः अस्मि ।

देवाः इति—सेन्द्रादयः=इन्द्रादिभिः सह, देवाः=सुराः, दानवाः=दैत्याश्च, मया=रावणेन, रणे=युद्धे, भग्नाः=पराजिताः, सः=प्रसिद्धः, अहं=रावणः, अद्य=अस्मिन्दिवसे, सीतायाः=जानक्याः, त्रिभिः=त्रिसङ्ख्यकैः, अक्षरैः=वर्णैः, 'शप्तोसि' इत्यात्मकैः, मोहं=मुग्धताम्, गतः=प्राप्तः, अस्मि । अनुष्टुप्च्छन्दः ।

सीता—ओह ! धर्म भी बड़ा उल्टा है, जो पापी राक्षस (अभी) जी रहा है ।

रावण—हे देवि !

सीता—(मेरे द्वारा) शाप दे दिये जाओगे ।

रावण—ओह ! पतिव्रता का तेज (आश्चर्यजनक) है ।

सम्पूर्ण इन्द्र इत्यादि देवता तथा राक्षस मेरे द्वारा युद्ध में पराजित कर दिये गये; वही मैं आज सीता के (शप्तोऽसि—इन) तीन अक्षरों के द्वारा मुग्ध हो रहा हूँ ।

[नेपथ्य में]

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जयतु देवः। जयतु लङ्केश्वरः। जयतु स्वामी। जयतु महाराजः दश नाडिकाः पूर्णाः। अतिक्रामति स्नानवेला। इत इतो महाराजः।

(निष्क्रान्ताः सपरिवारो रावणः)

हनूमान्—हन्त निर्गतो रावणः, सुप्ताश्च राक्षसस्त्रियः। अयं कालो देवीमुपसर्पितुम्। (कोटरादवरुह्य) जयत्वविधवा।

प्रेषितोऽहं नरेन्द्रेण रामेण विदितात्मना।
त्वद्गतस्नेहसन्तापविक्लवीकृतचेतसा ॥ १९ ॥

जयत्विति—लङ्केश्वरः=लङ्केशः रावणः, नाडिका=घटिका, पूर्णाः=समाप्ता, स्नानवेला=स्नानसमयः, अतिक्रामति=अत्येति।

हन्तेति—हन्त=खेदे! निर्गतः=निर्यातः, सुप्ताः=शयिता, राक्षसस्त्रियः=राक्षसानामसुराणां स्त्रियः नार्यः, अयम्=एषः, कालः=समयः, देवीं=सीताम्, उपासर्पितुं=उपयातुम् अविधवा=सौभागवती।

अन्वयः—विदितात्मना त्वद्गतस्नेहसन्तापविक्लवीकृतचेतसा नरेन्द्रेण रामेण अहं प्रेषितः।

प्रेषितः इति—विदितात्मना=ज्ञातधृतिः, त्वद्गतस्नेहसन्तापविक्लवीकृतचेतसा=त्वयि सीतायां गतः स्थितः यः स्नेहः प्रणयः तस्मात् यः सन्तापः, दुःखं तेन विक्लवीकृतं विह्वलीकृतं चेतः मनः यस्य तेन, नरेन्द्रेण=राज्ञा, रामेण=राघवेण, प्रेषितः अस्मि=प्रहितः अस्मि। अनुष्टुप्छन्दः।

देव विजयी होंवे, लङ्केश्वर विजयी होंवे, स्वामी विजयी होंवे, महाराज विजयी होंवे। दश बज गया। स्नान का समय बीत रहा है। महाराज इधर, इधर से (चलिए)।

(सपरिवार रावण निकल जाता है)

हनुमान्—अरे! रावण निकल गया और राक्षसों की स्त्रियाँ सो गयी। देवी (सीता) के समीप चलने का यह (उचित) समय है। (कोटर से उतर कर) सुहागिनी (आप) की जय हो।

आप (सीता) के स्नेह के सन्ताप से व्याकुल हृदय वाले आत्मज्ञ राजा राम के द्वारा मैं भेजा गया हूँ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सीता—(आत्मगतम्) को णु खु अअं, पापरक्सो अय्यउत्तकेरओत्ति अत्ताणं ववदिसिअ वाणररूवेण मं वञ्चिदुकामो भवे। भोदु, तुह्णिआ भविस्सं। [को नु खल्वयं, पापराक्षस आर्यपुत्रसम्बन्धीत्यात्मानं व्यपदिश्य वानररूपेण मां वञ्चयितुकामो भवेत्। भवतु, तूष्णीका भविष्यामि।]

हनूमान्—कथं न प्रत्येति भवती। अलमन्यशङ्कया। श्रोतुमर्हति भवती।

इक्ष्वाकुकुलदीपेन सन्धाय हरिणा त्वहम्।
प्रेषितस्त्वद्विचित्यर्थं हनूमान् नाम वानरः॥ २०॥

कोन्विति—पापराक्षसः=पापः पापयुक्तः राक्षसः निशाचरः, आर्यपुत्र-सम्बन्धी=आर्यपुत्रस्य प्राणनाथस्य सम्बन्धी सम्बन्धवान्, आत्मानं=स्वम् व्यपदिश्य=कथयित्वा, वञ्चयितुकामः=वञ्चयितुं प्रतारयितुं कामः अभिलाषः यस्यः सः। तूष्णीका=शान्ता।

कथमिति—प्रत्येति=विश्वासिति। अन्यशङ्कया=अन्यथा चिन्तता।

अन्वयः—इक्ष्वाकुकुलदीपेन सन्धाय हरिणा त्वद्विचित्यर्थम् अहं हनूमान् नाम वानरः प्रेषितः।

इक्ष्वाकुकुलेति—इक्ष्वाकुलदीपेन=रघुवंशश्रेष्ठेन रामेण, सन्धाय=सन्धि कृत्वा, हरिणा=वानरेण सुग्रीवेण, त्वद्विचित्यर्थं=तव ते सीतायाः विचितिः अन्वेषणं तस्मै, अहं=हनुमान्, हनुमान्=पवनतनयः, नाम, वानरः=कपिः, प्रेषितः=प्रहितः। उपमालङ्कारः। अनुष्टुप्छन्दः।

सीता—(अपने मन में) यह कौन है? यह कोई पापी राक्षस (अपने को) आर्यपुत्र (राम) का सम्बन्धी बतला कर वानर के रूप से मुझे छलना चाहता है। ठीक है, चुपचाप रहूँगी।

हनुमान्—आप विश्वास क्यों नहीं करतीं हैं। अन्यथा सोचना व्यर्थ है। आप सुनिए—

वानरों से सन्धि करके आप की खोज करने के लिए इक्ष्वाकुवंश के दीपक (राम) के द्वारा भेजा गया मैं हनुमान् नामक नामक वानर हूँ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

सीता—(आत्मगतम्) जो वा को वा भोदु। अय्यउत्तणामसङ्कित्तणेण अहं एदेण अभिभासिस्सं। (प्रकाशम्) भद्द ! बुत्तन्तो अय्यउत्तस्स ? (यो वा को वा भवतु। आर्यपुत्र नामसङ्कीर्तनेनाहमेतेनाभिभाषिष्ये। भद्र ! को वृत्तान्त आर्यपुत्रस्य ?)

हनूमान्—भवति ! श्रूयताम्,

अनशनपरितप्तं पाण्डु स क्षामवक्त्रं
तव वरगुणचिन्तावीतलावण्यलीलम्।
वहति विगतधैर्यं हीयमानं शरीरं
मनसिजशरदग्धं बाष्पपर्याकुलाक्षम् ॥ २१ ॥

यो वेति—आर्यपुत्रनामसङ्कीतनेन=आर्यपुत्रस्य प्राणनाथस्य नाम्नः नामधेयस्य सङ्कीतनेन उच्चारणेन, अहं=सीता, एतेन=पुरोवर्तमानेन हनूमता, अभिभाषिष्ये=आलपिष्यामि। वृत्तान्तः=समाचारः।

भवतीति—श्रूयताम्=आकर्ण्यताम्।

अन्वयः-सः अनशनपरितप्तं पाण्डु क्षामवक्त्रं तव वरगुणचिन्तावीतलावण्यलीलं मनसिजशरदग्धं विगतधैर्यं बाष्पपर्याकुलाक्षं हीयमानं शरीरं वहति।

अनशनेति-सः=रामः, अनशनपरितप्तं=अनशनेन अनाहारेण परितप्तं पीडितम्, पाण्डु=पीतवर्णम्, क्षामवक्त्रं=शुष्कमुखम्, तव=सीतायाः, वरगुणचिन्तावीतलावण्यलीलं=वरगुणाः श्रेष्ठगुणाः तेषां चिन्तया चिन्तनेन, वीतलावण्यलीलं समाप्तसौन्दर्यविलासम् मनसिजशरदग्धं=कामबाणपीडितम्, विगतधैर्यं=धैर्यरहितम्, बाष्पपर्याकुलाक्षं=

सीता—(अपने मन में) जो कोई भी हो। आर्यपुत्र का नाम लेने के कारण इससे बातें करूँगी। (प्रकट रूप में) हे भद्र ! आर्यपुत्र का क्या समाचार है।

हनुमान्—हे देवि ! सुनिए—

वे राम अनाहार के कारण सन्तप, पीत वर्ण वाले, सूखे हुए मुख वाले, आप के श्रेष्ठ गुणों का चिन्तन करने के कारण सौन्दर्य और विलास से रहित, कामदेव के बाणों से जले हुए धैर्य-रहित, अश्रु पूर्ण आँखों वाले दुर्बल शरीर को धारण कर रहे हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सीता—(आत्मगतम्) हद्धि वीलिआ खु म्हि मन्दभाआ एवं सोअन्तं अय्यउत्तं सुणिअ। अय्यउत्तस्स विरहपरिस्समं वि मे सफलो संवुत्तो त्ति पेक्खामि, जदि खु अअं वाणरो सच्चं मन्तेदि। अय्यउत्तस्स इमस्सि जणे अणुक्कीसं परिस्समं च सुणिअ सुहस्स दुक्खस्स अअन्तरे डोलाआदि विअ मे हिअअं। (प्रकाशम्) भद्द! कहं तुम्मेहि अय्यउत्तस्स सङ्गामो जादो। [हा धिग्व्रीडिता खल्वस्मि मन्दभागा एवं शोचन्तमार्यपुत्रं श्रुत्वा। आर्यपुत्रस्य विरहपरिश्रमोऽपि मे सफलः संवृत्त इति पश्यामि, यदि खल्वयं वानरः सत्यं मन्त्रयते। आर्यपुत्रस्यास्मिन् जनेऽनुक्रोशः परिश्रमं च श्रुत्वा सुखस्य दुःखस्य चान्तरे दोलायत इव मे हृदयम्। भद्र! कथं युष्माभिरार्यपुत्रस्य सङ्गमो जातः]।

हनूमान्—भवति! श्रूयताम्—

अश्रुपूर्णनेत्रम्, हीयमानं=क्षीणमाणम्, शरीरं=देहम्, वहति=धारयति। काव्यलिङ्गमलङ्कारः। मालिनीच्छन्दः।

हा धिगेति—व्रीडिता=लज्जिता, मन्दभागा=दुर्भाग्यशालिनी; शोचन्तं=चिन्तयन्तम्। विरहपरिश्रमः=वियोगखेदः, संवृत्तः=जातः, मन्त्रयते=कथयति। अस्मिन् जने=मयि सीतायाम्, अनुक्रोशं=अनुकम्पाम्, परिश्रमं=श्रमम्, अन्तरे=मध्ये, मे=मम, सीतायाः, हृदयम्=अन्तःकरणम्, दोलायत इव=दोला प्रेंखा तद्वत् आचरणं करोति इव। सङ्गमः=समागमः।

सीता—(अपने मन में) ओह! धिक्कार है। इस प्रकार (मेरे प्रति) शोक करते हुए आर्यपुत्र (के समाचार) को सुनकर मैं अभागिनी लज्जित हो रही हूँ। यदि यह वानर सत्य कह रहा है तो मेरा आर्यपुत्र-विषयक विरह-कष्ट भी सफल हो गया, ऐसा मैं देखती (समझती) हूँ। आर्यपुत्र का इस व्यक्ति (मुझ सीता) के प्रति दया और सन्ताप को सुनकर मेरा हृदय मानो झूले के समान सुख और दुःख के बीच लटक रहा है। (प्रकट रूप में) हे भद्र! कैसे आर्यपुत्र की आप से भेंट हुई।

हनुमान्—आप, सुनिए—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

हत्वा बालिनमाहवे कपिवरं त्वत्कारणादग्रजं
सुग्रीवस्य कृतं नरेन्द्रतनये ! राज्यं हरीणां ततः ।
राज्ञा त्वद्विचयाय चापि हरयः सर्वा दिशः प्रेषिता-
स्तेषामस्म्यहमद्य गृध्रवचनात् त्वां देवि ! सम्प्राप्तवान् ॥ २२ ॥

अपि च, ईदृशमिव ।

सीता—अहो अअरुणा क्खु इस्सरा एव्वं सोअन्तं अय्यंउत्तं कर-अन्तो [अहो अकरुणा खल्वीश्वरा एवं शोचन्तमार्यपुत्रं कुर्वन्तः ।]

अन्वयः—हे नरेन्द्रतनये ! त्वत्कारणात् अग्रजं कपिवरं बालिनं हत्वा ततः हरिणां राज्यं सुग्रीवं कृतम् । राज्ञा च त्वद्विचयाय हरयः सर्वाः दिशः प्रेषिता । हे देवि ! तेषाम् अहम् अद्य गृध्रवचनात् त्वां सम्प्राप्तवान् अस्मि ।

हत्वेति—नरेन्द्रतनये=हे राजपुत्री !, त्वत्कारणात्=तव हेतोः, अग्रजं =ज्येष्ठभ्रातरम्, कपिवरं=वानरश्रेष्ठम्, बालिनं=एतन्नामकं सुग्रीवाग्रजम्, हत्वा=मारयित्वा, ततः=तत्पश्चात्, हरीणां=वानराणाम्, राज्यं=राज्य-कार्यम् सुग्रीवस्य=एतन्नामकस्य वानरेन्द्रस्य, कृतं=विहितम् राज्ञा= सुग्रीवेण, त्वद्विवयाय=तव विचयाय अन्वेषणाय, हरयः=वानराः च सर्वाः=निखिलाः, दिशः=दिशा, प्रेषिताः=प्रहिताः । देवि=हे महिषि ! तेषां=कपीनाम्, अहं=हनुमान्, अद्य=अस्मिन्दिवसे, गृध्रवचनात्= गृध्रस्य सम्पातेः वचनात् कथनात्, त्वां=सीताम्, सम्प्राप्तवान्=आगतवान् अस्मि । शार्दूलविक्रीडितं छन्दः ।

हे राजकुमारी ! आप के कारण युद्ध में सुग्रीव के बड़े भाई कपीन्द्र बाली को मारकर तत्पश्चात् (सुग्रीव) को वानरों का राज्य (दिया)। (तदनन्तर) आप को खोजने के लिए राजा (सुग्रीव) के द्वारा सभी दिशाओं में वानर भेजे गये हैं । हे देवि ! उन्हीं में से मैं आज गृध (जटायु) के वचनानुसार आप को पा सका हूँ ।

और भी, ऐसा ही है ।

सीता—ओह ! आर्यपुत्र को चिन्तित करता हुआ ईश्वर निश्चित ही निष्ठुर है ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitized by eGangotri

हनूमान्—भवति मा विषादेन। रामो हि,

प्रगृहीतमहाचापो वृतो वानरसेनया।
समुद्धर्तुं दशग्रीवं लङ्कामेवाभियास्यति ॥ २३ ॥

सीता—किण्णु सिविणो मए दिट्ठो। भद्द! अवि सच्चं। ण आणामि। [किन्नु खलु स्वप्नो मया दृष्टः। भद्र! अपि सत्यम्? न जानामि।]

हनूमान्—(स्वगतम्) भोः! कष्टम्।

एवं गाढं परिज्ञाय भर्तारं भर्तृवत्सला।
न प्रत्यायति शोकार्ता यथा देहान्तरं गता ॥ २४ ॥

अहो इति—अकरुणाः=निष्ठुराः, ईश्वराः=देवाः। निष्पादैन=शाकेन।

अन्वयः—प्रगृहीतमहाचावः वानरसेनया वृतः (रामः) दशग्रीवं समुद्धर्तुं लङ्काम् एव अभियास्यति।

प्रगृहीतेति—प्रगृहीतमहाचापः=प्रगृहीतः धृतः महान् चापः धनुः येन सः, वानरसेनया=कपिबलेन, वृतः=परिवृत्तः, दशग्रीवं=रावणम्, समुद्धर्तुं=विनाशयितुम्, लङ्कामेव=एतन्नामकनगरीमेव, अभियास्यति=आक्रमिष्यति।

किन्निवति—मया=सीतया, स्वप्नः=स्वापः दुष्टः=विलोकितः।

अन्वयः—भर्तृवत्सला भर्त्तारम् एवं गाढं परिज्ञाय शोकार्ता न प्रत्यायति यथा देहान्तरं गतः।

हनुमान्—आप शोक न करें। क्योंकि राम—

विशाल धनुष को धारण करने वाले, वानर सेना से युक्त (राम) दशानन (रावण) को मारने के लिए लङ्का पर शीघ्र ही आक्रमण करेगें।

सीता—क्या मेरे द्वारा स्वप्न देखा जा रहा है। हे भद्र! क्या सच है। मैं नहीं जानती हूँ।

हनुमान्—(अपने मन में) ओह! कष्ट है।

पतिपरायणा तथा शोकार्ता (सीता) पति के विषय में इस प्रकार भलीभाँति जानकर भी विश्वास नहीं कर रही है, जैसे (यह) लोकान्तर गयी हुई हो।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(प्रकाशम्) भवति ! अयमिदानीं,
समुदितवरचापबाणपाणिं पतिमिह राजसुते ! तवानयामि ।
भव हि विगत संशया मयि त्वं नरवरपार्श्वगता विनीतशोका ॥२५॥

सीता—भद्द ! एद मे अवत्थं सुणिअ अय्यउत्तो जह सोअपरवसो ण होइ, तह मे उत्तन्तं भणेहि । [भद्र ! एतां मेऽवस्थां श्रुत्वार्यपुत्रो यथा शोक-परवशो न भवति, तथा मे वृत्तान्तं भण ।]

एवमेति—भर्तृवत्सला=पतिप्रिया, भर्तारं=पतिम्, एवम्=अनेन प्रकारेण, गाढं=पूर्णतया, परिज्ञाय=ज्ञात्वा, शोकार्ता=दुःख पीडिता, न=नहि, प्रत्ययायति=विश्वसिति, यथा=येन प्रकारेण, देहान्तरं=द्वितीयं शरीरम्, गतः=प्राप्तः । अनुष्टुप्च्छन्दः ।

अन्वयः—हे राजसुते ! समुदितवरचापबाणपाणिं तव पतिम् इह आनयामि, त्वं हि मयि विगतसंशया नरवरपार्श्वगता विनीतशोका भव ।

समुदितेति—राजसुते=हे राजकुमारि ! समुदितवरचापबाणपाणिं=समुदितौ उत्थितौ च वरौ विशालौ च चापबाणौ धनुशरः च पाणौ यस्य तम्, तव=सीतायाः, पतिं=भर्त्तारम्, इह=अत्र, आनयामि=प्रापयामि, त्वं=सीता, हि=निश्चयेन, मयि=ममविषये, विगतसंशया=सन्देहरहिता, नरवरपार्श्वगता=नरवरस्य नरश्रेष्ठस्य रामस्य पार्श्वं सामीप्यं गता प्राप्ता, विनीतशोका=शोकरहिता, भव=स्याः । पुष्पिताग्राच्छन्दः ।

भद्रेति—भद्र=हे कल्याणकारकः ! मे=मम, एतां=पुरोवर्तमानाम्, अवस्थां=दशाम्, श्रुत्वा=आकर्ण्य, यथा=येन प्रकारेण, शोकपरवशः=दुःख-

---

(प्रकट रूप में) हे पूजनीय ! यह अब—

हे राजकुमारी ! हाथ में विशाल धनुष और बाण धारण करने वाले तुम्हारे पति (राम) को (लङ्का में) लाऊँगा । मेरे प्रति निःशङ्क होइए । आप (शीघ्र ही) नरेन्द्र (राम) की समीपवर्ती तथा शोक-रहित होंएगी ।

सीता—हे भद्र ! मेरी ऐसी अवस्था को सुनकर आर्यपुत्र शोकाभिभूत न हो जाँय, इस प्रकार मेरे समाचार को (उनसे) कहना ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitized by eGangotri

हनूमान्—यदाज्ञापयति ।

सीता—गच्छ, कय्यसिद्धी होतु । (गच्छ, कार्यसिद्धिर्भवतु ।)

हनूमान्—अनुगृहीतोऽस्मि । (परिक्रम्य) कथमिदानीं ममागमनं रावणाय निवेदयामि । भवतु, दृष्टम् ।

परभृतगणजुष्टं पद्मषण्डाभिरामं
सुरुचिरतरुषण्डं तोयदाभं त्रिकूटम् ।
करचरणविमर्दैः काननं चूर्णयित्वा
विगतविषयदर्पं राक्षसेशं करोमि ॥ २६ ॥

पराधीनः, न भवति, तथा=तेन प्रकारेण, मे=मम, वृत्तान्तं=समाचारम्, भण=कथय ।

अनुगृहीतः इति—अनुगृहीतः=अनुकम्पितः, निवेदयामि=सूचयामि, दृष्टं=चिन्तितम् ।

अन्वयः—करचरणविमर्दैः परभृतगणजुष्टं पद्मषण्डाभिरामं सुरुचिरतरुषण्डं तोयदाभं त्रिकूटं काननं चूर्णयित्वा राक्षसेशं विगतविषयदर्पं करोमि ।

परभृतेति—करचरणविमर्दैः=करचरणैः हस्तपादैः विमर्दैः मर्दनैः, परभृतगणजुष्टं=परभृतानां कोकिलानां गणेन समूहेन जुष्टं सेवितम्, पद्मषण्डाभिरामं=पद्मानां कमलानां षण्डेन समूहेन अभिरामं शोभायमानम्, सुरुचिरतरुषण्डं=सुरुचिराः मनोहराः ये तरुषण्डाः वृक्षसमूहाः यस्मिन् तत्,

---

हनुमान्—आप जैसी आज्ञा देती है । (वैसा ही करूँगा) ।

सीता—जाओ । कार्य पूरा होवे ।

हनुमान्—मैं अनुगृहीत हूँ । (घूमकर) अपने आने की सूचना रावण को कैसे दूँ । अच्छा, (उपाय) सूझ गया ।

कोयलों के समूह से सेवित, कमल-फुलों से शोभायामन रमणीय वृक्षों वाले, मेघ के समान श्यामल इस त्रिकूट (नामक) उपवन को (अपने) हाथों तथा पैरों के घातों से मर्दित करके राक्षसेन्द्र (रावण) को गर्व-रहित कर रहा हूँ ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(निष्क्रान्तौ)

॥ इति द्वितीयोऽङ्कः ॥

—*—

तोयदाभं=बादलसदृशम्, त्रिकूटं=त्रयः त्रिसंख्यकाः कूटाः शैलशृङ्गाणि यस्मिन् तत्, काननं=वनम्, चूर्णयित्वा=मर्दयित्वा, राक्षसेशं=राक्षसेन्द्रं रावणम्, विगतविषयदर्पं=विगतः नष्टः विषयदर्पः अभिमानः यस्य तम्, करोमि=विदधामि। उपमालङ्कारः। मालिनीच्छन्दः।

॥ इति द्वितीयोऽङ्कः ॥

—*—

(दोनों निकल जाते हैं)

॥ द्वितीय अङ्क समाप्त ॥

—*—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अथ तृतीयोऽङ्कः

(ततः प्रविशति शङ्कुकर्णः)

शङ्कुकर्णः—क इह भोः ! काञ्चनतोरणद्वारमशून्यं कुरुते ।

(प्रविश्य)

प्रतिहारी—अय्य ! अहं विजआ । किं करीअदु । [आर्य ! अहं विजया । किं क्रियताम् ?]

शङ्कुकर्णः—विजये ! निवेद्यतां निवेद्यतां महाराजाय लङ्केश्वराय—भग्नप्रायाशोकवनिकेति । कुतः,

यस्यां न प्रियमण्डनापि महिषी देवस्य मन्दोदरी
स्नेहाल्लुम्पति पल्लवान्न च पुनर्वीजन्ति यस्यां भयात् ।

कइहेति—इह=अत्र, काञ्चनतोरणद्वारं=काञ्चनस्य सुवर्णस्य, तोरणद्वारंबहिर्द्वारम्, अशून्यं=न शून्यं रहितम्, कुरुते=विधत्ते ।

विजयेति—निवेद्यतां=सूच्यताम्, लङ्केश्वराय=रावणाय, भग्नप्राया=भग्नः विनिष्टः प्रायः बाहुल्यं यस्याः सा, अशोकवानिका=अशोकवनिका ।

अन्वयः—यस्यां देवस्य महिषी मन्दोदरी प्रियमण्डना अपि सती स्नेहात् पल्लवान् न लुम्पति, यस्यां च पुनः करैः अपृष्टबालद्रुमाः वीजन्तः मलया-

---

(तत्पश्चात् शङ्कुकर्ण प्रवेश करता है)

शङ्कुकर्ण—यहाँ काञ्चनतोरण द्वार पर कौन उपस्थित है ?

(प्रवेश करके)

प्रतीहारी—हे आर्य ! मैं विजया हूँ । क्या किया जाय ।

शङ्कुकर्ण—हे विजया ! सूचित करो, महाराजा लङ्केश्वर (रावण) को सूचित करो कि अशोकवाटिका भग्नप्राय हो गयी । क्योंकि—

आभूषण-प्रिया (आभूषण को पसन्द करने वाली) भी महाराज (आप) की महारानी मन्दोदरी स्नेह के कारण जिस (अशोकवाटिका) में पत्ते नहीं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वीजन्तो मलयानिला अपि करैरस्पृष्टबालद्रुमाः
सेयं शक्ररिपोरशोकवनिका भग्नेति विज्ञाप्यताम् ॥ १ ॥

प्रतिहारी—अय्य ! णिच्चं भट्टिपादमूले बत्तमाणस्स जणस्स अदिट्ठपुरुवो अअं सम्भमो । किं एदं । [आर्य ! नित्यं भर्तृपादमूले वर्तमानस्य जनस्यादृष्टपूर्वोऽयं संभ्रमः । किमेतद् ।]

शङ्कुकर्णः—भवति ! अतिपाति कार्यमिदम् । शीघ्रं निवेद्यतां

लिनाः अपि भयात् न वीजन्ति, सा इयं शक्ररिपोः अशोकवनिका भग्ना इति विज्ञाप्यताम् ।

यस्यामिति—यस्याम् = अशोकवाटिकायाम्, देवस्य = महाराजस्य, महिषी = राज्ञी मन्दोदरी, प्रियमण्डना अपि = आभूषणप्रिया अपि, स्नेहात् = प्रेम्णः, पल्लवान् = किसलयान्, न लुम्पति = न त्रोटयति, यस्याम् = अशोकवाटिकायाम्, वीजन्तः = चलन्तः, मलयानिलाः अपि = मलयवायवः अपि, भयात् = भीतेः, न पुनः वीजन्ति = नैव वहन्ति; या = अशोकवाटिका च, करैः = हस्तैः, अस्पृष्टबालद्रुमाः = अस्पृष्टा न परामृष्टाः बालद्रुमाः लघुवृक्षाः यस्यां सा, सा = पूर्वोक्ता, इयं = पुरोवर्तमाना, शक्ररिपोः = रावणस्य, अशोकवनिका = अशोकवाटिका, भग्ना = छिन्ना-भिन्ना जाता । शार्दूलविक्रीडितं छन्दः ।

आर्येति—नित्यं = प्रतिदिनम्, भर्तृपादमूले = स्वामीचरणतले, वर्तमानस्य = विद्यमानस्य; जनस्य = व्यक्तेः, सम्भ्रमः = वैक्लव्यम् ।

भवतीति—अतिपाति = आकस्मिकम् ।

तोड़ती थी, हवा करने वाले मलयानिल भी (आप के) भय से जिसमें पंखा नहीं झलते थे । जिसके वृक्ष के पत्ते नहीं छुए गये हैं, इन्द्रशत्रु (रावण) की वही अशोकवाटिका तोड़ डाली गयी—ऐसा (रावण से) सूचित कर दो ।

प्रतिहारी—हे आर्य ! प्रतिदिन स्वामी के चरणों में रहने वाले व्यक्ति (आप शङ्कुकर्ण) का यह अपूर्वदृष्ट (इतनी अधिक) घबराहट क्यों है । यह क्या (बात) है ?

शङ्कुकर्ण—हे पूजनीये ! यह कार्य बहुत शीघ्रता वाला है । सूचित करो,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

निवेद्यताम् ।

प्रतिहारी—अय्य ! इयं णिवेदेमि । (निष्क्रान्ता) [आर्य ! इयं निवेदयामि ।]

शङ्कुकर्णः—(पुरतो विलोक्य) अये, अयं महाराजो लङ्केश्वर इत एवाभिवर्तते । य एषः,

अमलकमलसन्निभोग्रनेत्रः कनकमयोज्ज्वलदीपिकापुरोगः ।
त्वरितमभिपतत्यसौ सरोषो युगपरिणामसमुद्यतो यथार्कः ॥ २ ॥

(ततः प्रविशति यथानिर्दिष्टो रावणः)

अये इति—अभिवर्तते = आगच्छति ।

अन्वयः—अमलकमलसन्निभोग्रनेत्रः कनकमयोज्ज्वलदीपिकापुरोगः सरोषः असौ यथा युगपरिणामसमुद्यतः अर्कः (तथा) त्वरितम् अभिपतति ।

अमलकमलेति—अमलकमलसन्निभोग्रनेत्रः = अमलं स्वच्छं यत् कमलं जलजं तत्सन्निभे तत्सदृशे उग्रे भीषणे नेत्रे नयने यस्य सः, कनकमयोज्ज्वलदीपिकापुरोगः = कनकमयाः सुवर्णयुक्ताः उज्ज्वलाः शुभ्राः दीपिकाः उल्काः पुरोगाः अग्रगामिन्यः यस्य सः, सरोषः = सक्रोधः, असौ = पुरोवर्तमानः, रावणः इति शेषः, यथा = येन प्रकारेण, युगपरिणामसमुद्यतः = युगपरिणामाय युगान्ताय समुद्यतः उद्युक्तः, अर्कः = सूर्यः, यथा = इव, त्वरितं = शीघ्रम्, अभिपतति = अभिगच्छति । उपमालङ्कारः । पुष्पिताग्राच्छन्दः ।

शीघ्र सूचित करो ।

प्रतिहारी—हे आर्य ! यह मैं सूचित करती हूँ । (निकल जाती है)

शङ्कुकर्ण—(चारों ओर देखकर) अरे ! यह महाराज लङ्केश्वर इधर ही आ रहे हैं । जो यह—

निर्मल कमल के समान तथा भीषण आँखों वाले, आगे-आगे चलने वाले सुवर्णमय उज्ज्वल दीपक से युक्त ये (महाराज रावण) क्रोध के साथ प्रलय-कालिक सूर्य की भाँति शीघ्रता से आ रहे हैं ।

(तत्पश्चात् यथोक्त अवस्था वाला रावण प्रवेश करता है)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

रावणः—

कथं कथं भो नववाक्यवादिञ्छृणोमि शीघ्रं वद केन चाद्य ।
मुमूर्षुणा मुक्तभयेन धृष्टं वनाभिमर्दात् परिधर्षितोऽहम् ॥ ३ ॥

शङ्कुकर्णः—(उपसृत्य) जयतु महाराजः । अविदितागमनेन केनचिद् वानरेण ससंरम्भमभिमृदिताशोकवनिका ।

रावणः—(सावज्ञम्) कथं वानरेणेति । गच्छ, शीघ्रं निगृह्यानय ।

शङ्कुकर्णः—यदाज्ञापयति महाराजः । (निष्क्रान्तः) ।

अन्वयः—भो नववाक्यवादिन् ! शृणोमि, शीघ्रं वद, मुमूर्षुणा मुक्तभयेन केन च कथं कथम् अद्य वनाभिमर्दात् अहं धृष्टं परिधर्षितः ।

कथमिति—भो नववाक्यवादिन्=हे नूतनवाक्यवक्ताः शृणोमि=श्रवणं करोमि, शीघ्रं=त्वरितम्, वद=कथय, केन, मुमूर्षुणा=मृत्युमभिलषता, मुक्तभयेन=निर्भयेन, अद्य=अस्मिन् दिवसे, वनाभिमर्दात्=वनस्य अशोकवाटिकायाः अभिमर्दात् भङ्गात्, अहं=रावणः, धृष्टं=धृष्टतापूर्वकम्, परिधर्षितः=तिरस्कृतः, अस्मीति शेषः । उपेन्द्रवज्राच्छन्दः ।

जयत्विति—अविदितागमनेन=अविदितम् अज्ञातम् आगमनम् यस्य तेन, ससंरम्भं=सक्रोधम्, अभिमृदिता=अभिदलिता ।

कथमिति—निगृह्य=गृहीत्वा, आनय=प्रापय ।

रावण—

अरे नयी बात कहने वाले ! मैं सुन रहा हूँ । शीघ्र बतलाओ—अपनी मृत्यु को चाहने वाले अत एव निर्भय किस (व्यक्ति) के द्वारा धृष्टतापूर्वक वन का विनाश करने के कारण मैं अपमानित किया गया हूँ ।

शङ्कुकर्ण—(समीप जाकर) महाराज विजयी होवें । अकस्मात् आये हुए किसी वानर के द्वारा शीघ्रता से अशोकवाटिका उजाड़ दी गयी है ।

रावण—(तिरस्कार-पूर्वक) क्या वानर के द्वारा (अशोकवाटिका उजाड़ दी गयी) । जाओ शीघ्र पकड़कर ले आओ ।

शङ्कुकर्ण—जैसी आप आज्ञा देते हैं । (निकल जाता है)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitized by eGangotri

रावणः—भवतु भवतु ।

युधि जगत्त्रयभीतिकृतोऽपि मे यदि कृतं त्रिदशैरिदमप्रियम् ।
अनुभवन्त्वचिरादमृताशिनः फलमतो निजशाठ्यसमुद्भवम् ॥ ४ ॥

(प्रविश्य)

शङ्कुकर्णः—जयतु महाराजः । महाराज ! महाबलः खलु स वानरः । तेन खलु मृणालवदुत्पाटिताः सालवृक्षाः, मुष्टिना भग्नो दारुपर्वतकः, पाणितलाभ्यामभिमृदितानि लतागृहाणि, नादेनैव विसंज्ञी-

---

अन्वयः—यदि युधि जगत्त्रयभीतिकृतः अपि मे इदम् अप्रियं त्रिदशैः कृतं (तर्हि) अमृताशनाः अतः निजशाठ्यसमुद्भवं फलम् अचिरात् अनुभवन्तु ।

युधीति—यदि = चेत्, जगत्त्रयभीतिकृतः अपि = लोकत्रयभयकारकस्य अपि, मे = मम, इदम् = एतत्, अप्रियम् = अप्रीतिकरम्, त्रिदशैः = देवैः, कृतं = विहितम्, तर्हि, अमृताशिनः = देवाः, अतः = अस्मात् कारणात्, निजशाठ्यसमुद्भवं = निजं स्वकीयं शाठ्यं धूर्तता तस्मात् समुद्भवः उत्पत्तिः यस्य तत्, फलं = परिणामम्, अचिरात् = शीघ्रमेव, अनुभवन्तु = प्राप्नुवन्तु । द्रुतविलम्बितं छन्दः ।

जयत्विति—महाबलः = अतिबलशाली, तेन = वानरेण, सालवृक्षाः = सालनामकतरवः, मृणालवत् = कमलदण्डवत्, उत्पाटिता = उन्मूलिता, दारुपर्वतकः = दारुनामकः पर्वतः, मुष्टिना = मुष्टिकया, भग्नः = विनाशितः, लतागृहाणि = कुञ्जानि, पाणितलाभ्यां = करतलाभ्याम्, अभिमृदितानि =

रावण—अच्छा, अच्छा !

युद्ध में तीनों लोकों को भयभीत करने वाले मुझ रावण का यदि देवताओं द्वारा यह अप्रिय (कार्य) किया गया है तो अमृत का भोजन करने वाले वे (देवता) अपनी दुष्टता से उत्पन्न फल को शीघ्र प्राप्त करेंगे ।

[प्रवेश करके]

शङ्कुकर्ण—महाराज विजयी हों । हे महाराज ! वह वानर बड़ा बलशाली है । उसके द्वारा ही साल के वृक्ष कमलनाल की तरह उखाड़ दिये गये, मुष्टिका (के प्रहार) से दारु पर्वत तोड़ दिया गया, करतल (हथेली) से लता-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कृताः प्रमदवनपालाः । तस्य ग्रहणसमर्थं बलमाज्ञापयितुमर्हति महाराजः ।

रावणः—तेन हि किङ्कराणां सहस्रं बलमाज्ञापय वानरग्रहणाय ।

शङ्कुकर्णः—यदाज्ञापयति महाराजः (निष्क्रम्य प्रविश्य) जयतु महाराजः ।

अस्मदीयैर्महावृक्षैरस्मदीया महाबलः ।
क्षिप्रमेव हतास्तेन किङ्करा द्रुमयोधिना ॥ ५ ॥

विदलितातिं, प्रमदवनपालाः=प्रमदोद्यानरक्षकाः, नादेन=गर्जनेन, विसंज्ञीकृता मूर्छितकृता । तस्य=वानरस्य, ग्रहणसमर्थं=ग्रहणे आरोधे समर्थम् समम्, बलं=सैन्यम्, आज्ञापयितुं=आदेष्टुम्, अर्हति=समर्थोऽस्ति ।

तेन हि इति—किङ्कराणा=सैनिकानाम् सहस्रसंख्याकम्, बलं=सेनाम्, अज्ञापय=आदिश ।

अन्वयः—द्रुमयोधिना तेन अस्मदीयैः महावृक्षैः अस्मदीयाः महाबलाः किंकराः क्षिप्रम् एव हताः ।

अस्मदीयैः इति—द्रुमयोधिना=द्रुमैः वृक्षैः युद्धयते युद्धं करोतीति तथोक्तेन, तेन=वानरेण, अस्मदीयैः=अस्माकीनैः, महावृक्षैः=महातरुभिः, अस्मदीया=अस्माकीनाः, महाबलाः=महाबलयुक्ताः, किंकराः=भृत्याः, क्षिप्रं=त्वरितम्, एव, हताः=मारिता । अनुष्टुप्छन्दः ।

गृह मसल दिये गये, गर्जन से ही प्रमदवन के रक्षक मूर्च्छित कर दिये गये । उसको पकड़ लाने में समर्थ सैनिक को महाराज आज्ञा दीजिए ।

रावण—तो भृत्यों की एक हजार सेना को वानर को पकड़ने के लिए आदेश दे दो ।

शङ्कुकर्ण—जैसी आप की आज्ञा । (निकल कर पुनः प्रवेश करके) महाराज विजयी होवे ।

वृक्ष से युद्ध करने वाले (उस वानर) के द्वारा हमारे ही वृक्षों से (प्रहार करके) हमारी बलशाली सेना शीघ्र ही मार दी गयी ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitized by eGangotri

रावणः—कथं हता इति। तेन हि कुमारमक्षमाज्ञापय वानर-ग्रहणाय।

शङ्कुकर्णः—यदाज्ञापयति महाराजः। (निष्क्रान्तः।)

रावणः—(विचिन्त्य)

कुमारो हि कृतास्त्रश्च शूरश्च बलवानपि।
प्रसह्य चापि गृह्णीयाद्धन्याद् वा तं वनौकसम्॥ ६॥

(प्रविश्य)

शङ्कुकर्णः—अनन्तरीयं बलमज्ञापयितुमर्हति महाराजः।

रावणः—किमर्थम्?

अन्वयः— कुमारः कृतास्त्रः शूरः बलवान् अपि (अस्ति), प्रसह्य च अपि तं वनौकसं गृह्णीयात् हन्यात् वा।

कुमार इति—कुमारः=अक्षयः, हि=निश्चयेन, कृतास्त्रः=कृतानि शिक्षितानि अस्त्राणि आयुधानि येन, शूरः=वीरः, बलवान् अपि=बलशाली अपि, अस्ति इति शेषः। प्रसह्य=बलात्, तं=पूर्वोक्तम्, वनौकसं=वानरम्, गृह्णीयात्=ग्रहणं कुर्यात्, हन्यात् वा=व्यापादयेत् वा। अनुष्टुप्च्छन्दः।

अनन्तरीयमिति—अनन्तरीयम्=अनन्तरवर्ति, बलं=सैन्यम्, आज्ञापयितुम्=आदेष्टुम्, अर्हति=समर्थः अस्ति।

रावण—क्यों मार दी गयी? तो कुमार अक्ष को वानर को पकड़ने के लिए आदेश दे दो।

शङ्कुकर्ण—जो महाराज की आज्ञा। (निकल जाता है)

रावण—(सोच कर)—

कुमार ने अस्त्र (चलाना) सीखा है। (वह) वीर तथा बलशाली है। उस वानर को पकड़ लेगा या मार डालेगा।

[प्रवेश करके]

शङ्कुकर्ण—सुरक्षित सेना को महाराज आदेश दीजिए।

रावण—किस लिए।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शङ्कुकर्णः—श्रोतुमर्हत महाराजः। कुमारं वानरमभिगच्छन्तं दृष्ट्वा महाराजेनानाज्ञापिता अप्यनुगताः पञ्च सेनापतयः।

रावणः—ततस्ततः ?

शङ्कुकर्णः—ततस्तानभिद्रुतान् दृष्ट्वा किञ्चिद् भीतेन इव तोरणमाश्रित्य काञ्चनपरिमुद्यम्य निपातितस्तेन हरिणा पञ्च सेनापतयः।

रावणः—ततस्ततः ?

शङ्कुकर्णः—ततः कुमारमक्षं—

क्रोधात् संरक्तनेत्रं त्वरिततरहयं स्यन्दनं वाहयन्तं
प्रावृट्कालाभ्रकल्पनं परमलघुतरं बाणजालान् वमन्तम्।

श्रोतुमिति—वानरं = कपिं प्रति, अभिगच्छन्तं = अभियान्तम्, कुमारम् = अक्षम्, दृष्ट्वा = विलोक्य, महाराजेन = भवता, अनाज्ञापिता अपि = अनादिष्टा अपि, अनुगता = अनुयाता।

ततस्तानिति—अभिद्रुतान् = अत्मानं प्रति पलायितान्, तान् = अनुयातान् सेनापतीन्, दृष्ट्वा = विलोक्य, किञ्चित्, = ईषत्, भीतः = भयं प्राप्तः, तोरणं = बहिद्वारम्, आश्रित्य = उपगम्य, काञ्चनपरिघं = सुवर्णमुसलम्, उद्यम्य = उत्थाप्य, तेन = पूर्वोक्तेन, हरिणा = वानरेण, निपातितः = मारितः।

अन्वयः—क्रोधात् संरक्तनेत्र त्वरिततरहयं स्यन्दनं वाहयन्त प्रावृट्कालाभ्रकल्पं परमलघुतरं बाणजालान् वमन्तं (कुमारं) तान् बाणान् निर्विधून्वन्

शङ्कुकर्ण—सुनिए महाराज। वानर की ओर जाते हुए कुमार (अक्ष) को देखकर आप की आज्ञा बिना ही पाँच सेनापति (उसके) पीछे गये।

रावण—तब, तब (क्या हुआ)।

शङ्कुकर्ण—तब आक्रमण के लिए आते हुए उन (सेनापतियों) को देखकर कुछ डरे हुए के समान होकर उस वानर के द्वारा काञ्चनद्वार पर चढ़कर सुवर्णमय परिघ के प्रहार से पाँचों सेनापति मार डाले गये।

रावण—तब, तब।

शङ्कुकर्ण—तब कुमार अक्ष को—

क्रोध के कारण लाल आँखों वाले, बड़े वेग से घोड़े और रथ को हाँकते

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitized by eGangotri

तान् बाणान् निर्विधुन्वन् कपिरपि सहसा तद्रथं लङ्घयित्वा
कण्ठेसङ्गृह्य धृष्टं मुदिततरमुखो मुष्टिना निजघान ॥ ७ ॥

रावणः—(सरोषम्) आः, कथं कथं निर्जघानेति !

तिष्ठ त्वमहमेवनमासाद्य कपिजन्तुकम् ।
एष भस्मीकरोम्यस्मत्क्रोधानलकणैः क्षणात् ॥ ८ ॥

कपिः अपि सहसा तद्रथं लंघयित्वा कण्ठे संगृह्य मुदिततरमुखः धृष्टं मुष्टिना निर्जघान ।

क्रोधादिति—क्रोधात् = पञ्चसेनापतिवधात् रोषात्, संरक्तनेत्रं = संरक्ते रक्तवर्णे नयने यस्य तम्, त्वरिततरहयं = त्वरितरः द्रुततरः हयः अश्वः यस्य तम्, स्यन्दनं = रथम्, वाहयन्तं = चालयन्तम्, प्रावृट्कालाभ्रकल्पं = प्रावृट्कालः वर्षासमयः तस्य अभ्रस्य मेघस्य कल्पं सदृशम्, परमलघुतरं = परमम् अत्यन्तं लघुः त्वरितं यथास्यात्तथा, बाणजालान् = शरसमूहान् वमन्तं = वर्षन्तम् कुमारम् = अक्षम्, तान् = पूर्वोक्तान्, बाणान् = शरान्, निर्विधून्वन् = अपाकुर्वन्, कपिः = वानरः, सहसा = अकस्मात्, तस्य = कुमारस्य, रथं = स्यन्दनम् = लङ्घयित्वा = आरुह्य, कण्ठे = गले, संगृह्य = गृहीत्वा, मुदितं = हृष्टम्, धृष्टं = धृष्टतापूर्वकम्, मुष्टिना = मुष्टिकया, निर्जघान = हतवान् । उपमालङ्कारः । स्रग्धराच्छन्दः ।

अन्वयः—त्वं तिष्ठ, एषः अहम् एव एनं कपिजन्तुकम् आसाद्य अस्मत्क्रोधानलकणैः क्षणात् भस्मीकरोमि ।

तिष्ठेति—त्वं = शङ्कुकर्णः, तिष्ठ = विरम, एषः = अयम्, अहमेव =

हुए, वर्षाकालीन मेघ की भाँति शीघ्रतापूर्वक बाणसमूहों को छोड़ते हुए (कुमार अक्ष) को, उन बाणों को काटता हुआ वानर भी उनके रथ पर हमला करके धृष्टता-पूर्वक गला दबाकार प्रसन्नमुख से मुष्टिका के द्वारा मार डाला ।

रावण—(क्रोध के साथ) क्या, क्या मार दिया ?

तुम रुको । मैं ही उस क्षुद्र वानर को अपने क्रोधाग्नि के कणों से शीघ्र भस्म करता हूँ ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शङ्कुकर्णः—प्रसीदतु प्रसीदतु महाराजः। कुमारमक्षं निहतं श्रुत्वा क्रोधाविष्टहृदयः कुमारेन्द्रजिदभिगतवांस्तं वनौकसम्।

रावणः—तेन हि गच्छ। ज्ञायतां वृत्तान्तः।

शङ्कुकर्णः—यदाज्ञापयति महाराजः! (निष्क्रान्तः)

रावणः—कुमारो हि कृतास्त्रश्च,

अवश्यं युधि वीराणां वधो वा विजयोऽथवा।
तथापि क्षुद्रकर्मेदं मह्यमीषन्मनोज्वरः॥ ९॥

रावणः एव, एनम्=इमम्, कपिजन्तुकं=तुच्छजन्तुम् आसाद्य=प्राप्य, अस्मत्क्रोधानलकणैः=अस्माकं क्रोधस्य कोपस्य एव अनलस्य अग्नेः कणैः लवैः, क्षणात्=शीघ्रमेव, भस्मीकरोमि=दहामि।

प्रसीदत्विति—निहतं=मारितम्, श्रुत्वा=आकर्ण्य, क्रोधाविष्टहृदयः=क्रोधाविष्टः कोपाभिभूतः हृदयम् अन्तकरणः यस्य सः, कुमारेन्द्रजित्=कुमारः इन्द्रजित् मेघनाथः, अभिगतवान्।

अन्वयः—युधि वीराणाम् अवश्यं वधः वा विजयः अथवा तथापि इदं क्षुद्रकर्म मह्यम् ईषत् मनोज्वरः (अस्ति)।

अवश्यमिति—युधि=युद्धे, वीराणां=शूराणाम्, अवश्यं=निश्चितरूपेण, वधः=हननम्, विजयः वा=जयः वा, तथापि, इदम्=एतत् क्षुद्रकर्म=वानरमारणरूपं क्षुद्रं तुच्छं कर्म कार्यम्, मह्यं=मम कृते, ईषत्=किमपि, मनोज्वरः=चित्तसन्तापः, अस्तीति शेषः। रूपकालङ्कारः। अनुष्टुप् च्छन्दः।

शङ्कुकर्ण—प्रसन्न होइए, प्रसन्न होइए महाराज। कुमार अक्ष का मारा जाना सुनकर क्रोधपूर्ण हृदय वाले कुमार इन्द्रजित् (मेघनाथ) उस वानर के समीप गये हैं।

रावण—तो जाओ। फिर समाचार मालूम करो।

शङ्कुकर्ण—जो महाराज की आज्ञा। (निकल जाता है)

रावण—और कुमार अस्त्राभ्यासी है।

युद्ध में निश्चित ही वीरों की मृत्यु होती है अथवा विजय। तो भी यह नीच कार्य है, अतः मुझको खेद है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(प्रविश्य)

शङ्कुर्णः—जयतु महाराजः। जयतु लङ्केश्वरः! जयतु भद्रमुखः!

संवृत्तं तुमुलं युद्धं कुमारस्य च तस्य च।
ततः स वानरः शीघ्रं बद्धः पाशेन साम्प्रतम् ॥ १० ॥

रावणः—कोऽत्र विस्मयं इन्द्रजिता शाखामृगो बद्ध इति। कोऽत्र भोः!

(प्रविश्य)

राक्षसः—जयतु महाराजः!

रावणः—गच्छ विभीषणस्तावदाहूयताम्!

अन्वयः—कुमारस्य च तस्य च तुमुलं युद्धं संवृत्तम्। ततः शीघ्रं सः वानरः साम्प्रतं पाशेन बद्धः अस्ति।

संवृत्तमिति—कुमारस्य च=मेघनाथस्य च, तस्य च=वानरस्य हनुमतः च, तुमुलं=भयानकम्, युद्धं=संग्रामः, संवृत्तं=जातम्, ततः=तत्पश्चात्, शीघ्रं=त्वरितम्, सः=पूर्वोक्तः, वानरः=कपिः, सम्प्रतम्=अधुना, पाशेन=ब्रह्मपाशेन, बद्धः=बन्धनं प्राप्तः। अनुष्टुप्छन्दः।

कोऽत्रेति—विस्मयः=आश्चर्यम्, शाखामृगः=वानरः, इन्द्रजिता=मेघनाथेन, बद्धः=बन्धनं प्राप्तः।

[प्रवेश करके]

शङ्कुकर्ण—महाराज विजयी होंवे, लङ्केश्वर विजयी होंवे, भद्रमुख विजयी होवे।

कुमार (मेघनाथ) तथा उस (वानर) के बीच घोर युद्ध हुआ। तत्पश्चात् वह वानर शीघ्रतापूर्वक (कुमार के द्वारा) पाश से बाँध लिया गया है।

रावण—इन्द्रजित् (मेघनाथ) के द्वारा वानर बाँध लिया गया, इसमें क्या आश्चर्य है। अरे! यहाँ कौन है।

[प्रवेश करके]

राक्षस—महाराज विजयी होंवे।

रावण—तो जाओ, विभीषण को बुला लाओ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

राक्षसः—यदाज्ञापयति महाराजः ! (निष्क्रान्तः)
रावणः—त्वमपि तावद् वानरमानय ।
शङ्कुकर्णः—यदाज्ञापयति महाराजः ! (निष्क्रान्तः ।)
रावणः—(विचिन्त्य) भोः ! कष्टम् ।

अचिन्त्या मनसा लङ्का सहितैः सुरदानवैः ।
अभिभूय दशग्रीवं प्रविष्टः किल वानरः ॥ ११ ॥

अपि च,

जित्वा त्रैलोक्यमाजौ ससुरदनुसुतं यन्मया गर्वितेन
क्रान्त्वा कैलासमीश स्वगणपरिवृतं साकमाकम्प्य देव्या ।

अन्वयः—लङ्का सहितैः सुरदानवैः मनसा (अपि) अचिन्त्या (आसीत्) । दशग्रीवं अभिभूय वानरः किल प्रविष्टः ।

अचिन्त्येति—लङ्का = एतन्नाकनगरी, सुरदानवैः = सुराः देवाः दानवाः च असुराः च तैः, मनसा = चित्तेन, अचिन्त्या = अचिन्तनीया, आसीदिति शेषः । दशग्रीवं = रावणम्, अभिभूय = तिरस्कृत्य, वानरः = कपिः, किल = निश्चयेन, प्रविष्टः = प्रवेशं प्राप्तः । अनुष्टुप्छन्दः ।

अन्वयः—यत् आजौ ससुरदनुसुतं त्रैलोक्यं जित्वा गर्वितेन मया कैलासं क्रान्त्वा देव्या साकं स्वगणपरिवृतम् ईशम् आकम्प्य तस्मात् प्रसादं लब्ध्वा

राक्षस—जो महाराज की आज्ञा । (निकल जाता है)
रावण—तो तुम भी वानर को ले आओ ।
शङ्कुकर्ण—जो महाराज की आज्ञा । (निकल जाता है)
रावण—(सोच कर) ओह ! कष्ट है ।

जो लङ्का देवता तथा दानवों द्वारा मन से भी अशोचनीय (अनाक्रमणीय) है, दशानन (रावण) को तिरस्कृत करके (उसमें) वानर प्रवेश कर गया है ।

और भी—

क्योंकि युद्ध में देवता और दानव सहित तीनों लोकों को जीतकर, कैलास को लाँघ कर पार्वती के साथ अपने गणों से घिरे हुए शङ्कर को हिला कर, उन (महादेव) से प्रसाद प्राप्त करके, अभिमान में आये हुए मेरे द्वारा अपमानित

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitized by eGangotri

लब्ध्वा तस्मात् प्रसादं पुनरगसुतया नन्दिनानादृतत्वाद्
दत्तं शप्तं च ताभ्यां यदि कपिविकृतिच्छद्मना तन्ममं स्यात् ॥१२॥

(ततः प्रविशति विभीषणः)

विभीषणः—(सविमर्शम्) अहो नु खलु महाराजस्य विपरीता बुद्धिः संवृत्ता। कुतः—

अनादृतत्वात् पुनः अगसुतया नन्दिना च ताभ्यां तत् शप्तम् दत्तं, यदि कपिविकृतिच्छद्मना मम तत् स्यात्।

जित्वेति—यत्=यतः, आजौ=युधि, ससुरदनुसुतं=सुराः देवाः दनुसुताः दानवाः तैः सह, त्रैलोक्यं=लोकत्रयम्, जित्वा=पराजित्य, गर्वितेन=अभिमानिता, मया=रावणेन, कैलाशम्=एतन्नामकपर्वतम्, क्रान्त्वा=अभिक्रम्य, देव्या=पार्वत्या, साकं=सह, स्वगणपरिवृत्तं=स्वगणेन नन्दिप्रमथादयेन परिवृत्तं परिगतम्, ईशं=शङ्करम्, आकम्प्य=कम्पयित्वा, तस्मात्=आकम्पनात्, प्रसादं=अनुग्रहरूपेण चन्द्रहासम्, लब्ध्वा=प्राप्य, अनादृतत्वात्=तिरस्कारात्, अगसुतया=पर्वतपुत्र्या पार्वत्या, नन्दिना=शङ्करस्य प्रधानगणेन, ताभ्याम्=उभाभ्याम्. शप्तं=शापम्, दत्त=प्रतिपादितम्। यदि=इति सम्भावनायाम्, कपिः=वानरः हनूमान्, निर्वृत्तिः=तस्य शापस्य वानररूपेण परिणमन् विक्रिया, छद्मना=तस्य व्याजेन, तत्=शापः, स्यात्=भवेत्। व्याजापह्नुतिरलङ्कारः। स्रग्धराच्छन्दः।

अहो इति—महाराजस्य=रावणस्य, विपरीता=प्रतिकूला, बुद्धिः=मतिः, संवृत्ता=जाता।

किए जाने के कारण पार्वती और नन्दी दोनों ने शाप दे दिया। सम्भवतः वानर के बहाने वह (शाप) काम कर रहा है।

(तत्पश्चात् विभीषण प्रवेश करता है)

विभीषण—(सोच कर) ओह! महाराज की बुद्धि विपरीत हो गयी है। क्योंकि—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

मयोक्तो मैथिली तस्मै बहुशो दीयतामिति ।
न मे शृणोति वचनं सुहृदां शोककारणात् ॥ १३ ॥

(उपेत्य) जयतु महाराजः !

रावणः—विभीषण ! एह्येहि । उपविश ।

विभीषणः—एष एष उपविशामि । (उपविशति)

रावणः—विभीषण ! निर्विण्णमिव त्वां लक्षये ।

विभीषणः—निर्वेद एव खल्वनुक्तग्राहिणं स्वामिनमुपाश्रितस्य भृत्यजनस्य ।

अन्वयः—'मैथिली तस्मै दीयताम्' इति मया बहुशः उक्तः (रावणः) सुहृदां शोककारणात् मे वचनं न शृणोति ।

मयोक्तः इति—मैथिली=जानकी, तस्मै=रामाय, दीयताम्=अर्प्यताम्, इति, मया=विभीषणेन, बहुशः=अनेकशः, उक्तः=कथितः, सुहृदां=मित्राणाम्, शोककारणात्=दुःखहेतोः, मे=मम, वचनं=कथनम्, न शृणोति=न आकर्णयति । अनुष्टुप्छन्दः ।

विभीषणेति—एहि=आगच्छ, उपविश=उपतिष्ठ । निर्विण्णम् इव=विषण्णम् इव, लक्षये=विलोकयामि ।

निर्वेद इति—अनुक्तग्राहिणं=उक्तं कथितं न गृह्णाति न मन्यते इति तम्, स्वामिनं=प्रभुम्, उपाश्रित्यस्य=सेवमानस्य, भृत्यजनस्य=सेवकलोकस्य, निर्वेदः एव=विषादः एव; खलु=निश्चयेन । एषा=इयम्,

---

मैंने बहुत कहा कि जानकी उनको (राम को) दे दीजिए (किन्तु) मित्रों को शोक (देने की इच्छा) के कारण से मेरी बातों को नहीं सुनते ।

(समीप जाकर) महाराज विजयी होवें ।

रावण—हे विभीषण ! यहाँ आओ । बैठो ।

विभीषण—यह, यह मैं बैठता हूँ । (बैठता है)

रावण—हे विभीषण ! तुमको उदास-सा देख रहा हूँ ।

विभीषण—कहे गये को न मानने वाले स्वामी के आश्रित रहने वाले भृत्य लोगों को उदास ही रहना होता है ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

रावणः—छिद्यतामेषा कथा। त्वमपि तावद् वानरमानय।

विभीषणः—यदाज्ञापयति महाराजः। (निष्क्रान्तः।)

(ततः प्रविशति राक्षसैर्गृहीतो हनूमान्)

सर्वे—आः इत इत।

हनूमान्—

नैवाहं धर्षितस्तेन नैर्ऋतेन दुरात्मना।
स्वयं ग्रहणमापन्नो राक्षसेशदिदृक्षया॥ १४॥

(उपगम्य) भो! राजन्! अपि कुशली भवान्?

रावणः—(सावज्ञम्) विभीषण! किमस्य तत् कर्म?

कथा=वार्ता, छिद्यतां=समाप्यताम्।

अन्वय—दुरात्मना तेन नैर्ऋतेन अहम् न एव धर्षितः, राक्षसेशदिदृक्षया स्वयं ग्रहणम् आपन्नः।

नैवाहमिति–दुरात्मना=दुर्मना, तेन=मेघनाथेन, नैर्ऋत्येन=राक्षसेन, अहं=हनूमान्, नैव=नहि एव, धर्षितः=अभिभूतः, किन्तु, राक्षसेशदिदृक्षया =राक्षसेशस्य राक्षसेन्द्रस्य रावणस्य दिदृक्षया विलोकितुं इच्छया, स्वयमेव =आत्मना एव, ग्रहणं=बन्धनम्, आपन्नः=प्राप्तः। अनुष्टुप्च्छन्दः।

भो राजनिति–कुशली=कुशलपूर्वकम्, तत्=पूर्वोक्तम्, कर्म=कार्यम्।

रावण—इस वार्ता को छोड़ो। तो तुम भी वानर लेते आओ।

विभीषण—जो महाराज की आज्ञा। (निकल जाता है)

(तत्पश्चात् राक्षसों द्वारा पकड़े गये हनुमान् प्रवेश करते हैं)

सभी—अरे! इधर से, इधर से चलो।

हनुमान्—मैं उस दुष्ट राक्षस द्वारा नहीं पकड़ा गया हूँ। राक्षसेन्द्र (रावण) को देखने की इच्छा से मैं स्वयं बँध गया हूँ।

(समीप जाकर) हे राजन्! आप सकुशल तो हैं?

रावण—(तिरस्कारपूर्वक) हे विभीषण! क्या इस (वानर) ने ही वह (अशोकवाटिका को उजाड़ना इत्यादि) कार्य किया है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विभीषणः—महाराज ! अतोऽप्यधिकम् ।

रावणः—कथं त्वमवगच्छसि ?

विभीषणः—प्रष्टुमर्हति महाराजः कस्त्वमिति ।

रावणः—भो वानर ! कस्त्वम् ? केन कारणेन धर्षितोऽस्माकमन्तःपुरं प्रविष्टः ।

हनूमान्—भोः ! श्रूयताम्,

अञ्जनायां समुत्पन्नो मारुतस्यौरसः सुतः ।
प्रेषितो राघवेणाहं हनूमान् नाम वानरः ॥ १५ ॥

विभीषणः—महाराज ! किं श्रुतम् ?

अतः अपि=अस्मादपि, अधिकम्=अतिरिक्तम् । अवगच्छसि=जानासि, अर्हसि=योग्योऽसि, अन्तःपुरम्=अवरोधकम्, प्रविष्टः=प्रवेशं कृतः ।

अन्वयः—अञ्जनायां समुत्पन्नः मारुतस्य औरसः सुतः हनूमान् नाम वानरः अहं राघवेण प्रेषितः (अस्मि) ।

अञ्जनायामिति—अञ्जनायाम्=एतन्नाम्न्यां वानर्याम्, समुत्पन्नः=जातः, मारुतस्य=वायोः, औरसः सुतः=पुत्रः, हनूमान् नाम=एतन्नामकः, वानरः=कपिः, राघवेण=रामेण, प्रेषितः=प्रहितः, अस्मीति शेषः । अनुष्टुप्छन्दः ।

विभीषण—हे महाराज ! उससे भी अधिक ।

रावण—तुम कैसे जानते हो ?

विभीषण—महाराज आप (इससे) पूछिए कि तुम कौन हो ?

रावण—हे वानर ! तुम कौन हो ? किस कारण से विना सोचे-समझे हमारे अन्तःपुर में प्रवेश किये ।

हनुमान्—अरे ! सुनिए,

अञ्जना के गर्भ से उत्पन्न मैं पवन (देव) का औरस पुत्र हनुमान् नामक वानर, रामचन्द्र के द्वारा भेजा गया हूँ ।

विभीषण—हे महाराज ! क्या सुन लिया आप ने ?

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

रावणः—किं श्रुतेन !

विभीषणः—हनूमन् ! किमाह तत्रभवान् राघवः ।

हनूमान्—भोः श्रूयतां रामशासनम् ।

रावणः—कथं कथं रामशासनमित्याह । आः हन्यतामयं वानरः ।

विभीषणः—प्रसीदतु प्रसीदतु महाराजः ! सर्वापराधेष्वध्याः खलु दूताः । अथवा रामस्य वचनं श्रुत्वा पश्चाद् यथेष्टं कर्तुमर्हति महाराजः ।

रावणः—भो वानर ! किमाह स मानुषः ?

हनूमान्—भो ! श्रूयतां,

वरशरणमुपेहि शंकरं वा प्रविश च दुर्गमं रसातलं वा ।
शरवरपरिभिन्नसर्वगात्रं यममदनं प्रतियापयाम्यहं त्वाम् ॥ १६ ॥

हनूमनिति—तत्रभवान्=पूज्यः, राघवः=रामः, किमाह=किं अकथयत् । रामशासनं=रामादेशम्, हन्यतां=मार्यताम् । सर्वापराधेषु=सर्वे च ते अपराधाः आगांसि तेषु; अवध्याः=अमारणीयाः । पश्चात्=तदन्तरम्, यथेष्टं=इच्छानुसारम् ।

अन्वयः—वरशरणं शङ्करं वा उपेहि, दुर्गतमं रसातलं वा प्रविश च, शरवरपरिभिन्नसर्वगात्रं त्वाम् अहं यमसदनं प्रतियापयामि ।

रावण—सुनने से क्या (प्रयोजन) !

विभीषण—हे हनुमान् ! पूजनीय राघव ने क्या कहा है ?

हनुमान्—अरे सुनिए, राम का आदेश ।

रावण—क्या, क्या यह राम का आदेश कहता है, तो मार दिया जाय यह वानर ।

विभीषण—प्रसन्न होइए, हे महाराज ! सभी अपराध में दूत अवध्य होते हैं । अथवा राम का आदेश सुनकर तत्पश्चात् आप अपनी इच्छानुसार कीजिएगा ।

रावण—हे वानर ! उस मनुष्य राम ने क्या कहा है ।

हनुमान्—अरे ! सुनिए,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रावणः—हः हः हः !

दिव्यास्त्रैस्त्रिदशगणा भयाभिभूता
दैत्येन्द्रा मम वशवर्तिनः समस्ताः ।
पौलस्त्योऽप्यपहृतपुष्पकोऽवसन्नो
भो ! रामः कथमभियाति मानुषो मांम् ॥ १७ ॥

वरशरणेति—वरशरणं=श्रेष्ठाश्रयम्, शङ्करं वा=शिवम् वा, उपेहि=उपगच्छ, दुर्गमम्=अतिदुर्गमम्, रसातलं वा=पातालम् वा, प्रविश=प्रवेशं कुरु। शरवरपरिभिन्नसर्वगात्रं=शरवरेण बाणश्रेष्ठेन परिभिन्नानि परिछिन्नानि सर्वाणि गात्राणि अङ्गानि यस्य तम्, त्वं=रावणम्, अहं=रामः, यमसदनं=यमराजगृहम्, प्रतियापयामि=प्रेषयामि। पुष्पिताग्राच्छन्दः।

अन्वयः—मया दिव्यास्त्रै त्रिदशगणाः अभिभूतः, समस्ताः दैत्येन्द्राः मम वशवर्तिनः (सन्ति) अपहृतपुष्पकः पौलस्त्यः अवसन्नः। भो ! मानुषः रामः कथं माम् अभियाति।

दिव्यास्त्रैरिति—मया=रावणेन, दिव्यास्त्रैः=दिव्यायुधैः, त्रिदशगणाः=देवसमूहाः, अभिभूताः=परास्ताः, समस्ताः=सम्पूर्णाः, दैत्येन्द्राः=दानवेन्द्राः, मम=रावणस्य, वशवर्तिनः=वशीभूता; सन्तीति शेषः। अपहृतपुष्पकः=अपहृतः अछिन्नं पुष्पकं एतन्नामकं विमानं यस्मात् सः, पौलस्त्यः=

शङ्कर के श्रेष्ठ शरण में जाओ अथवा दुर्गम पाताल में प्रवेश करो। मैं (राम) बाणों से छिन्न-भिन्न हुए शरीर वाले तुम (रावण) को यमराज के घर भेजूँगा।

रावण—अहा !

मेरे द्वारा दिव्यास्त्रों से देवगण परास्त कर दिये गये। सम्पूर्ण राक्षसराज मेरे वशीभूत हैं। (मेरे द्वारा) छीन लिए गये पुष्पक (नामक विमान) वाले कुबेर भी नत हो गये हैं। अरे ! मनुष्य राम मुझ पर कैसे आक्रमण करेगा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

हनूमान्—एवंविधेन भवता किमर्थं प्रच्छन्नं तस्य दारापहरणं कृतम् ?

विभीषणः—सम्यगाह हनूमान् ।

अपास्य मायया रामं त्वया राक्षसपुङ्गवः !
भिक्षुवेषं समास्थाय छलेनापहृता हि सा ॥ १८ ॥

रावणः—विभीषण ! किं विपक्षपक्षमवलम्बसे ?

कुवेरः, अवसन्नः = अवसादं प्राप्तः, अस्तीति शेषः । भो = हनूमन् ! मानुषः = मनुष्यः, रामः = राघवः, कथं = केन प्रकारेण, मां = रावणम्, अभियाति = युद्धार्थमागच्छति । प्रहर्षिणीच्छन्दः ।

एवं विधेनेति—एवं विधेन = एवं प्रकारेण, भवता = राघवेण, किमर्थं = किन्निमित्तम्, प्रच्छन्नं = निभृतम्, तस्य = रामस्य, दारापहरणं = भार्यापनयनम् । कृतं = विहितम् ।

अन्वयः—हे राक्षसपुङ्गवः त्वया मायया रामम् अपास्य भिक्षुवेषं समास्थाय छलेन सा अपहृता ।

अपास्येति—राक्षसपुङ्गव = हे राक्षसश्रेष्ठ ! त्वया = रावणेन, मायया = छलेन, रामं = राघवम्, अपास्य = दूरीकृत्य, भिक्षुवेषं = भिक्षोः याचकस्य वेषं रूपम्, आस्थाय = आश्रित्य, छलेन = मायया, सा = रामदारा सीता, अपहृता = अपनीता । अनुष्टुप्छन्दः ।

विभीषणेति—विपक्षपक्षं = विपक्षः विरुद्धः पक्षः यस्यः सः तस्य पक्षं मतम्, अवलम्बसे = आश्रयसि ।

हनुमान्—ऐसे (बलशाली) आप के द्वारा फिर छिपकर (क्यों) उनकी पत्नी का अपहरण किया गया ?

विभीषण—हनुमान् ने ठीक कहा ।

हे राक्षस श्रेष्ठ ! माया से राम को दूर हटाकर (फिर) भिक्षु का वेष बना कर तुम्हारे द्वारा छलपूर्वक वह सीता हरीं गयीं ।

रावण—हे विभीषण ! क्यों तुम शत्रु का पक्ष ले रहा है ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

विभीषणः—

प्रसीद राजन् ! वचनं हितं मे प्रदीयतां राघवधर्मपत्नी ।
इदं कुलं राक्षसपुङ्गवेन त्वया हि नेच्छामि विपद्यमानम् ॥ १९ ॥

रावणः—विभीषण ! अलमलं भयेन ।

कथं लम्बसटः सिंहो मृगेण विनिपात्यते ।
गजो वा सुमहान् मत्तः श्रृगालेन निहन्यते ॥ २० ॥

हनूमान्—भो रावण ! विपद्यमानभाग्येन भवता किं युक्तं राघवमेवं

अन्वयः—हे राजन् ! प्रसीद, मे वचनं हितं राघवधर्मपत्नी प्रदीयताम् । (अहं) हि राक्षसकुलं त्वया विपद्यमानं न इच्छामि ।

प्रसीदेति—राजन्=हे नृप ! प्रसीद=प्रसन्नः भवतु । मे=मम विभीषणस्य, वचनं=कथनम्, हितं=हितकरम्, अस्तीति शेषः । राघवधर्मपत्नी=राघवस्य रामस्य धर्मपत्नी दारा जानकी, प्रदीयतां=प्रत्यर्प्यताम्, हि=यतः, इदम्=एतत्, राक्षसकुलं=असुरवंशम्, त्वया=रावणेन, विपद्यमानं=विनश्यत्, न इच्छामि=न वाञ्छामि । उपेन्द्रवज्राच्छन्दः ।

अन्वयः—लम्बसटः सिंहः कथं मृगेण विनिपात्यते वा सुमहान् मत्तःगजः श्रृङ्गालेन निहन्यते ?

कथमिति—लम्बसटः=दीर्घकेसरः, सिंह=मृगेन्द्रः, कथं=केन प्रकारेण, मृगेण=हरिणा, विनिपात्यते=व्यापाद्यते, वा=अथवा, सुमहान्=विशालः, मत्तः=उत्कटमदः, गजः=हस्ती, श्रृङ्गालेन=जम्बूकेन, निहन्यते=वध्यते । अप्रस्तुतप्रशंसालङ्कारः । अनुष्टुप्च्छन्दः ।

भो रावणेति—विपद्यमानभाग्येन=विनष्टसौभाग्येन, भवता=रावणेन,

विभीषण—हे राजन् ! प्रसन्न होइए । मेरे हितकर वचन को (सुनिए) । राम की धर्मपत्नी सीता को वापस दे दीजिए । राक्षसश्रेष्ठ आप (रावण) के द्वारा विनष्ट होते हुए इस को मैं नहीं (देखना) चाहता हूँ ।

रावण—हे विभीषण ! भय करना व्यर्थ है ।

लम्बे केसर वाला सिंह हरिण के द्वारा कैसे मारा जाएगा । अथवा विशाल हाथी सियार द्वारा कैसे मारा जा सकेगा ।

हनुमान्—हे रावण ! फूटे हुए भाग्य वाले आप के द्वारा राम के प्रति

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वक्तुम् । मा तावद् भोः !

नक्तञ्चरापद ! रावण ! राघवं तं
वीराग्रगण्यमतुलं त्रिदशेन्द्रकल्पम् ।
प्रक्षीणपुण्य ! भवता भुवनैकनाथं
वक्तुं किमेवमुचितं गतसार ! नीचैः ॥ २१ ॥

रावणः—कथं कथं नामाभिधत्ते । हन्यतामयं वानरः । अथवा दूत-वधः खलु वचनीयः । शङ्कुकर्ण ! लाङ्गूलमादीप्य विसृज्यतावयं वानरः ।

राघवं=रामम्, एवम्=अनेन प्रकारेण, वक्तुं=कथितुम्, किं युक्तम्=किमुचितम्, अस्तीति शेषः ।

अन्वयः—हे नक्तञ्चरापद ! प्रक्षीणपुण्यः गतसारः रावणः वीराग्रगण्यम् अतुलं त्रिदशेन्द्रकल्पं भुवनैकनाथं तं राघवं एवं नीचैः वक्तुं भवता उचितं किम् ?

नक्तञ्चरेति—नक्तञ्चरापद=हे राक्षसाधम ! प्रक्षीणपुण्य=हे नष्ट-सत्कर्म ! गतसार=हे विनष्टबलः ! रावण=हे दशानन ! वीराग्रगण्यं=वीरेषु शूरेषु अग्रगण्यः मुख्यः तम्, अतुलम्=अद्वितीयम्, त्रिदशेन्द्रकल्पं=इन्द्रसदृशम्, भुवनैकनाथं=भुवनस्य जगतः एकम् एकमात्रं नाथः प्रभुः तम्, तं=पूर्वोक्तम्, राघवं=रामम्, एवम्=अनेन प्रकारेण, नीचैः=सावज्ञम्, वक्तुं=कथितुम्, भवता=रावणेन, किम्, उचितं=युक्तम्, अस्तीति शेषः । उपमालङ्कारः । वसन्ततिलकाच्छन्दः ।

कथमिति—नाम=रावणेति मम नाम, अभिधत्ते=उच्चारयति । दूत-

ऐसा कहा जाना क्या उचित है । अरे ! ऐसा नहीं—

हे राक्षसाधम ! हे नष्ट पुण्य वाले ! हे समाप्त बल वाले ! हे रावण ! अद्वितीय, वीरों में अग्रगण्य, इन्द्र के समान, भुवनों के अकेले स्वामी राम के प्रति आप के द्वारा इस प्रकार कहा जाना क्या उचित है ?

रावण—क्यों (मेरा) नाम ले रहा है । मार दिया जाय यह वानर । अथवा दूत का वध निन्दनीय है । हे शङ्कुकर्ण ! पूँछ में आग लगाकर यह

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शङ्कुकर्णः—यदाज्ञापयति महाराजः। इत इतः।

रावणः—अथवा एहि तावत्।

हनूमान्—अयमस्मि।

रावणः—अभिधीयतां मद्वचनात् स मानुषः।

अभिभूतो मया राम ! दारापहरणादसि।
यदि तेऽस्ति धनुःश्लाघा दीयतां मे रणो महान् ॥ २२ ॥

हनूमान्—अचिराद् द्रक्ष्यसि,

वधः=दूतमारणः, वचनीयः=निन्दनीयः। लाङ्गूलं=पुच्छम्, आदीप्य=प्रज्ज्वाल्य, विसृज्यतां=मुच्यताम्, अभिधीयतां=कथ्यताम्, मद्वचनात्=ममादेशात्, सः=पूर्वोक्तः, मानुषः=मनुष्यः रामः।

अन्वयः—हे रामः दारापहरणात् मया अभिभूतः असि। यदि ते धनुःश्लाघा अस्ति (तर्हि) मे महान् रणः दीयताम्।

अभिभूतः इति—राम=हे राघव ! दारापहरणात्=दारायाः धर्मपत्न्याः अपहरणात् आनयनात्, मया=रावणेन, अभिभूतः=पराजितः, असि, यदि=चेत्, ते=तव, धनुःश्लाघा=धनुषः चापस्य श्लाघा अभिमानः, तर्हि, मे=मम रावणस्य, महान्=घोरम्, रणः=सङ्ग्रामः, दीयतां=प्रत्यर्प्यताम्। अनुष्टुप् च्छन्दः।

अचिरादिति—अचिरात्=शीघ्रम्, द्रक्ष्यसि=अवलोकयिष्यसि।

वानर छोड़ दिया जाय।

शङ्कुकर्ण—जो महाराज की आज्ञा। इधर से, इधर से (आओ)

रावण—अथवा इधर आओ।

हनुमान्—यह मैं हूँ।

रावण—मेरी ओर से उस मनुष्य से कहना—

हे राम ! (तुम्हारी) पत्नी का अपहरण होने के कारण मेरे द्वारा अपमानित हुए हो। यदि तुम्हें धनुष पर भरोसा हो तो मुझको महान् युद्ध प्रदान करो (अर्थात् मेरे साथ युद्ध करो)।

हनुमान्—शीघ्र देखोगे—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitized by eGangotri

अभिहतवरवप्रगोपुराट्टां रघुवरकार्मुकनादनिर्जितस्त्वम् ।
हरिगणपरिपीडितैः समन्तात् प्रमदवनैरभिसंवृतां स्वलङ्काम् ।। २३ ।।

रावणः—आः निर्वास्यतामयं वानरः ।

राक्षसाः—इत इतः ।

(रक्षोभिः सह निष्क्रान्तो हनूमान्)

विभीषणः—प्रसीदतु प्रसीदतु महाराजः । अस्ति काचिद् विवक्षा महाराजस्य हितमन्तरेण ।

रावणः—उच्यतां, तच्छ्रेयो वयमपि श्रोतारः ।

अन्वयः—रघुवरकार्मुकनादनिर्जितः त्वं लङ्काम् अभिहतवरवप्रगोपुराट्टां समन्तात् हरिगणपरिपीडितैः प्रमदवनैः अभिसंवृत्ताम् (द्रक्ष्यसि) ।

अभिहतेति—रघुवरकार्मुकनादनिर्जितः = रघुवरस्य रामस्य कार्मुकनादेन धनुष्टङ्कारेण निर्जितः पराजितः, त्वं = रावणः, स्वलङ्कां = स्वस्य आत्मनः लङ्काम् एतन्नामकनगरीम्, अभिहतवरवप्रगोपुराट्टां = अभिहताः विनाशिता वराः श्रेष्ठाः वप्रः प्राकारश्च गोपुरं पुरद्वारश्च अट्टा अट्टालिकाश्च यस्याः ताम्, समन्तात् = परितः, हरिगणपरिपीडितैः = हरिगणैः वानरयूथैः परिपीडितैः परिमृदितैः, प्रमदवनैः = प्रमदोद्यानैः, अभिसंवृत्ताम् = परिवृत्ताम्, पश्यसि = विलोकयसि । पुष्पिताग्राच्छन्दः ।

आः इति—निर्वास्यतां = निष्कास्यताम्, विवक्षा = वक्तुमिच्छा, हित-

---

राम के धनुष् की टङ्कार द्वारा पराजित हुआ तुम अपनी नष्ट ध्वस्त हुई परकोटे, नगरद्वार और अटारियों वाली (तथा) वानरवृन्दों द्वारा पददलित प्रमदवनों से भरी हुई लङ्का को (शीघ्र देखोगे) ।

रावण—अरे ! यह वानर भगा दिया जाय ।

राक्षस—इधर से, इधर से (आओ) ।

(राक्षसों के साथ हनुमान् निकल जाता है)

विभीषण—प्रसन्न होइए, हे महाराज ! प्रसन्न होइए । हृदय में आप की भलाई होने के कारण कुछ कहने की इच्छा है ।

रावण—कहो, उस भलाई को हम भी सुनने वाले हैं ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

विभीषणः—सर्वथा राक्षसकुलस्य विनाशोऽभ्यागत इति मन्ये ।

रावणः—केन कारणेन ?

विभीषणः—महाराजस्य विप्रतिपत्त्या ।

रावणः—का मे विप्रतिपत्तिः ?

विभीषणः—ननु सीतापहरणमेव ।

रावणः—सीतापहरणेन को दोषः स्यात् ?

विभीषणः—अधर्मश्च ।

रावणः—च शब्देन सावशेषमिव ते वचनम् ! तद्ब्रूहि ।

विभीषणः—तदेव ननु ।

रावणः—विभीषण ! किं गूहसे । मम खलु प्राणैः शापित स्याः, यदि सत्यं न ब्रूयाः ।

मन्तरेण = हितविषये, तच्छ्रेयः = तत् हितम्, श्रोतारः = श्रवणं कर्त्तारः, राक्षसकुलस्य = निशिचरवंशस्य, अभ्यागतः = अभ्यायातः । विप्रतिपत्त्या = विरुद्धज्ञानेन । सीतापहरणं = सीतानयनम्, सावशेषमिव = अवशेषेण सहितम् इव,

---

विभीषण—मैं समझता हूँ कि सर्वथा राक्षस-कुल का विनाश-काल आ गया है ।

रावण—किस कारण से ?

विभीषण—आप की नासमझी के कारण ।

रावण—कौन मेरी नासमझी है ?

विभीषण—सीता का अपहरण ही ।

रावण—सीता के अपहरण से क्या दोष है ?

विभीषण—अधर्म भी ।

रावण—तुम्हारे 'भी' शब्द से तुम्हारा कथन अवशिष्ट (प्रतीत होता है), तो (उसको भी) कहो ।

विभीषण—वही तो ।

रावण—हे विभीषण ! क्यों छिपाते हो ? मेरे जीवन से शपथ है यदि सत्य नहीं बोलते ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विभीषणः–अभयं दातुमर्हति महाराजः !

रावणः–दत्तमभयम् । उच्यताम् ।

विभीषणः–बलवद्विग्रहश्च ।

रावणः–(सरोषम्) कथं कथं बलवद्विग्रहो नाम ?

शत्रुपक्षमुपाश्रित्य मामयं राक्षसाधमः ।
क्रोधमाहारयंस्तीव्रमभीरुरभिभाषते ॥ २४ ॥

कोऽत्र ?

ममानवेक्ष्य सौभ्रात्रं शत्रुपक्षमुपाश्रितम् ।
नोत्सहे पुरतो द्रष्टुं तस्मादेष निरस्यताम् ॥ २५ ॥

गूहसे=गोपायसे, अभयं=अभयदानम् । उच्यतां=कथ्यताम् । बलवद्विग्रहः =बलवता प्रबलेन रामेण विग्रहः युद्धम् ।

अन्वयः—शत्रुपक्षम् उपाश्रित्य अभीरुः अयं राक्षसाधमः (मम) क्रोधम् आहारयन् मां तीव्रम् अभिभाषते ।

शत्रुपक्षमिति—शत्रुपक्षम्=अरिपक्षम्, उपाश्रित्य=आश्रयं गृहीत्वा, अभीरुः=निर्भयः, अयम्=एषः, राक्षसाधमः=नीचराक्षसः विभीषणः, तीव्रं=कटु, क्रोधं=कोपम्, आहारयन्=जनयन्, अभिभाषते=कथयति । अनुष्टुप्च्छन्दः ।

अन्वयः—मम सौभ्रात्रम् अनवेक्ष्य शत्रुपक्षम् उपाश्रितम् (एतं) पुरतः द्रष्टुं न उत्सहे, तस्मात् एषः निरस्यताम् ।

विभीषण—हे महाराज ! मुझे अभय प्रदान करें ।

रावण—अभय दे दिया । कहो ।

विभीषण—बलवान् से विरोध ।

रावण—(क्रोध के साथ) कैसा, कैसा बलवान् से विरोध ?

यह राक्षसाधम (नीच राक्षस विभीषण) शत्रु (राम) का पक्ष लेकर मुझको तीव्र क्रोध उत्पन्न करता हुआ निडर बातें कर रहा है ।

यहाँ कौन है ?

मेरे सौभ्रात्र (उत्तम भ्रातृभाव) की उपेक्षा करके शत्रुपक्ष से मिल जाने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विभीषणः—प्रसीदतु महाराजः अहमेव यास्यामि ।

शसितोऽहं त्वया राज़न् ! प्रयामि न च दोषवान् ।
त्यक्त्वा रोषं कामं च यथा कार्यं तथा कुरु ॥ २६ ॥

(परिक्रम्य) अयमिदानीम्—

अद्यैव तं कमललोचनमुग्रचापं
रामं हि रावणवधाय कृतप्रतिज्ञम् ।

समेति—मम = रावणस्य, सौभ्रात्रं = सुभ्रातृत्वम्, अनवेक्ष्य = अविचार्य, शत्रुपक्षं = वैरिपक्षम्, उपाश्रितम् = आश्रयगतं विभीषणम्, पुरतः = अग्रे, द्रष्टुं = विलोकितुम्, न उत्सहे = न शक्नोमि, तस्मात् = तस्मात् करणात्, एषः = विभीषणः, निरस्यतां = निष्कास्यताम् । अनुष्टुप्छन्दः ।

अन्वयः—हे राजन् ! त्वया शासितः अहं प्रयामि (अहं) च दोषवान् न (अस्मि) । रोषं कामं च त्यक्त्वा यथा कार्यं तथा कुरु ।

शासितः इति—राजन् = हे नृप ! त्वया = रावणेन, शासितः = आदिष्टः, अहं = विभीषणः, प्रयामि = गच्छामि, च, दोषवान् = अपराधी, न = नहि अस्मि । रोषं = क्रोधम्, कामं = विषयभोगेच्छाम् च, त्यक्त्वा = परित्यज्य, यथा = येन प्रकारेण, कार्यं = करणीयम्, तथा = तेन प्रकारेण कुरु = विधेहि । अनुष्टुप्छन्दः ।

अन्वयः—अद्य एव कमललोचनम् उग्रचापं रावणवधाय कृतप्रतिज्ञं संश्रितहितप्रथितं नृदेवं संश्रित्य नष्टं निशाचरकुलं पुनः उद्धरिष्ये ।

वाले (इस विभीषण को) सामने देखने के लिए उत्साह (इच्छा) नहीं करता हूँ, अतः यह दूर किया जाय ।

विभीषण—महाराज प्रसन्न होइए, मैं ही जा रहा हूँ ।

हे राजन् ! आप के द्वारा आदेश दिया गया मैं जा रहा हूँ । (इसमें) मैं दोषी नहीं हूँ । (आप) क्रोध एवं काम का परित्याग करके जैसा किया जाना चाहिए, वैसा कीजिए । (घूमकर) अब यह मैं,

आज ही उस कमल के समान नेत्र वाले, महाधनुर्धारी, रावण के वध के लिए कृतप्रतिज्ञ तथा आश्रित जनों की भलाई करने में प्रसिद्ध मनुष्यदेव

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संश्रित्य संश्रितहितप्रथितं नृदेवं
नष्टं निशाचरकुलं पुनरुद्धरिष्ये ॥ २७ ॥

रावणः—हन्त निर्गतो विभीषणः । यावदहमपि नगररक्षां सम्पादयामि ।

(निष्क्रान्ता)

॥ इति तृतीयोऽङ्कः ॥

—*—

अद्यैवेति—अद्य एव = अस्मिन्दिवसे एव, कमललोचनं = राजीवनयनम्, उग्रचापं = भीषणधनुः, रावणवधाय = दशाननमारणाय, कृतप्रतिज्ञं = विहितप्रणम्, संश्रितहितप्रथितम्, = संश्रितानाम् आश्रितानां हितप्रथितम् उपकारख्यातम्, नृदेवं = नरेन्द्रम्, तम् = पूर्वोक्तम्, रामं = राघवम्, संश्रित्य = आश्रित्य, नष्टं = विनष्टम्, निशाचरकुलं = राक्षसवंशम्, पुनः = भूयः, उद्धरिष्ये = उद्धारं करिष्ये । उपमालङ्कारः । वसन्ततिलकाच्छन्दः ।

हन्तेति—निर्गतः = निर्यातः । नगररक्षां = पुरीरक्षणम्, सम्पादयामि = करोमि ।

॥ इति तृतीयोऽङ्कः ॥

—*—

राम का आश्रय लेकर नष्ट राक्षस-कुल का फिर उद्धार करूँगा। (निकल जाता है)

रावण—ओह ! विभीषण निकल गया । तो मैं भी नगर की रक्षा करूँगा ।

(निकल जाता है)

॥ तृतीय अङ्क समाप्त ॥

—*—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अथ चतुर्थोऽङ्कः

(ततः प्रविशति वानरकाञ्चुकीयः)

काञ्चुकीयः—भो भो बलाध्यक्ष ! सन्नाहमाज्ञापय वानरवाहिनीम् ।

(प्रविश्य)

बलाध्यक्षः—आर्य ! किंकृतोऽयं समुद्योगः ?

काञ्चुकीयः—तत्रभवता हनूमतानीतः खल्वार्यरामस्य देव्या सीताया वृत्तान्तः ।

बलाध्यक्षः—किमिति किमिति ?

काञ्चुकीयः—श्रूयतां,

भो भो इति—भो=हे ! बलाध्यक्षः=सेनाध्यक्षः । वानरवाहिनीम्=वानराणां कपीनां वाहिनीं सेनाम्, सन्नाहं=सज्जताम्, आज्ञापय=आदिश । किंकृतः=केन विहितम्, समुद्योगः=समुद्यमः ।

तत्रभवतेति—हनूमता=पवनतनयेन, आनीतः=आहृतः । वृत्तान्तः=समाचारः ।

(तत्पश्चात् वानरकाञ्चुकीय प्रवेश करता है)

काञ्चुकीय—हे, हे सेनाध्यक्ष ! वानरसेना को तैयार होने का आदेश दीजिए ।

(प्रवेश करके)

सेनाध्यक्ष—हे आर्य ! किसलिए यह तैयारी की जा रही है ।

काञ्चुकीय—पूजनीय हनुमान् के द्वारा सीता देवी का आर्य राम के प्रति समाचार लाया है ।

सेनाध्यक्ष—क्या, क्या (समाचार है) ?

काञ्चुकीय—सुनिये—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लङ्कायां किल वर्तते नृपसुता शोकाभिभूता भृशं
पौलस्त्येन विहाय धर्मसमयं संक्लेश्यमाना ततः ।
श्रुत्वैतद् भृशशोकतप्तमनसो रामस्य कार्यार्थिना
राज्ञा वानरवाहिनी प्रतिभयासन्नाहमाज्ञापिता ।। १ ।।

बलाध्यक्षः—एवम् ! यदाज्ञापयति महाराजः ।

काञ्चुकीयः—यावदहमपि सन्नद्धा वानरवाहिनीति महाराजाय निवेदयामि ।

अन्वयः—भृशं शोकाभिभूता धर्मसमयं विहाय पौलस्त्येन संक्लेश्यमाना नृपसुता लङ्कायां वर्तते किल । ततः एतत् श्रुत्वा भृशशोकतप्तमनसः रामस्य-कार्यार्थिना राज्ञा प्रतिभयः वानरवाहिनी सन्नाहम् आज्ञापिता ।

लङ्कायामिति—भृशं=अत्यधिकम्, शोकाभिभूता=शोकसन्तप्ता, धर्म-समयं=धर्माचरणम्, विहाय त्यक्त्वा, पौलस्त्येन=रावणेन, संक्लेश्यमाना=पीड्यमाना, नृपसुता=राजकुमारी सीता, लङ्कायाम्=एतन्नामकनगर्याम्, वर्तते=अस्ति । ततः=हनुमतः, एतत्=वृतान्तम्, श्रुत्वा=आकर्ण्य, भृश-शोकतप्तमनसः=भृशेन अत्यधिकेन शोकेन दुःखेन तप्तः पीडितं मनः चित्तं यस्य तस्य, रामस्य=राघवस्य, कार्यार्थिना=कार्येच्छुकेन, राज्ञा=नृपेन सुग्रीवेण, प्रतिभया=भीतिकरा, वानरवाहिनी=कपिसेना, सन्नाहं=सज्जताम्, आज्ञापिता=आदिष्टा । शार्दूलविक्रीडितं छन्दः ।

यावदिति—सन्नद्धा=सज्जा, निवेदयामि=सूचयामि ।

'धर्म-मर्यादा का उलङ्घन करने वाले रावण के द्वारा (नाना प्रकार से) पीड़ित की जाती हुई अत्यधिक शोकसन्तप्ता राजकुमारी (सीता) लङ्का में है' यह सुनकर अत्यन्त शोक से सन्तप्त हृदय वाले राम के (सीता-प्राप्ति-रूपी) कार्य को करने की इच्छा वाले राजा सुग्रीव के द्वारा शत्रुओं को भयभीत करने वाली वानरसेना को तैयार होने का आदेश दिया गया है ।

सेनाध्यक्ष—ऐसी बात है । महाराज की जैसी आज्ञा ।

काञ्चुकीय—तब तक मैं भी महाराज (सुग्रीव) को सूचित कर दूँ कि वानर-सेना तैयार है ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(निष्क्रान्तौ)

॥ इति विष्कम्भकः ॥

(ततः प्रविशति रामो लक्ष्मणः सुग्रीवो हनूमांश्च)

रामः—

आक्रान्ताः पृथुसानुकुञ्जगहना मेघोपमाः पर्वताः
सिंहव्याघ्रगजेन्द्रपीतसलिला नद्यश्च तीर्णा मया ।
क्रान्तं पुष्पफलाढ्यपादपयुतं चित्रं महत् काननं
सम्प्राप्तोऽस्मि कपीन्द्रसैन्यसहितो वेलातटं साम्प्रतम् ॥ २ ॥

अन्वयः—पृथुसानुकुञ्जगहना मेघोपमाः पर्वताः आक्रान्ताः, सिंहव्याघ्रगजेन्द्रपीतसलिला नद्यः च मया तीर्णाः, पुष्पफलाढ्यपादपयुतं चित्रं महत् काननं क्रान्तम्, कपीन्द्रसैन्य सहितः (अहं) साम्प्रतं वेलातटं सम्प्राप्तः अस्मि ।

आक्रान्ताः इति—पृथुसानुकुञ्जगहना=पृथूनि विशालानि यानि सानूनि शिखराणि तेषु ये कुञ्जाः गुल्मानि तैः गहनाः घनाः, मेघोपमाः=मेघसदृशाः, पर्वताः=गिरयः, आक्रान्ताः=लङ्घिताः । सिंहव्याघ्रगजेन्द्रपीतसलिलाः=सिंहाः केशरिणः च व्याघ्राः शार्दूलाश्च गजेन्द्राः गजराजाश्च तैः पीतानि पानकृतानि यानि सलिलानि जलानि यासां ताः, नद्यः=सरितः च, मया=रामेण, तीर्णाः=पारं गतवान्. पुष्पफलाढ्यपादपयुतं=पुष्पाणि कुसुमानि फलानि प्रसवानि च तैः आढ्याः परिपूर्णाः पादपाः वृक्षाः तैः युतं युक्तम्, चित्रं=आश्चर्यजनकम्, महत्=विशालम्, काननं=वनम्, क्रान्तं=लङ्घितम् । कपीन्द्रसैन्यसहितः=कपीन्द्रस्य वानरेन्द्रस्य सुग्रीवस्य सैन्येन सेनया सहितः युक्तः,

---

(दोनों निकल जाते हैं)

॥ विष्कम्भक समाप्त ॥

(तत्पश्चात् राम, लक्ष्मण, सुग्रीव तथा हनुमान् प्रवेश करते हैं)

राम—विशाल शिखरों पर वर्तमान कुञ्जों के कारण घने तथा बादल के सदृश पर्वत मेरे (द्वारा) लाँघ दिये गये, अब वानरेन्द्र (सुग्रीव) की सेना के साथ समुद्र तट पर मैं उपस्थित हूँ ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

लक्ष्मणः—एष एष भगवान् वरुणः,

सजलजलधरेन्द्रनीलनीरो
विलुलितफेनतरङ्गचारुहारः ।
समधिगतनदीसहस्रबाहु-
र्हरिरिव भाति सरित्पतिः शयानः ॥ ३ ॥

रामः—कथं कथं भोः !

रिपुमुद्धर्तुमुद्यन्तं मामयं सक्तसायकम् ।
सजीवमद्य तं कर्तुं निवारयति सागरः ॥ ४ ॥

साम्प्रतम् = इदानीम्, वेलातटं = समुद्रतीरम्, सम्प्राप्तः अस्मि = आगतः अस्मि । उपमालङ्कारः । शार्दूलविक्रीडितं छन्दः ।

अन्वयः—सजलजलधरेन्द्रनीलनीरः विलुलितफेनतरङ्गचारुहारः समधिगतनदीसहस्रबाहुः सरित्पतिः शयानः हरिः इव भाति ।

सजलेति—सजलजलधरेन्द्रनीलनीरः = सजलं जलभरितः यः जलधरः मेघः तद्वत् यः इन्द्रनीलः इन्द्रनीलमणिरिव नीरम् जलम् यस्य सः, विलुलितफेनतरङ्गचारुहारः = विलुलिताः उत्क्षिप्ता ये फेनतरङ्गाः फेनवीचयः तैः चारुः सुन्दरः हारः माला यस्य सः, समधिगतनदीसहस्रबाहुः = समधिगतानि प्राप्तानि ये नदीसहस्राणि सरित्सहस्राणि तदेव बाहवः भुजा यं तथाभूतः, सरित्पतिः = नदीश्वरः वरुणः, शयानः = स्वपन् । हरिः इव = विष्णुः इव, भाति = शोभते । उपमालङ्कारः । पुष्पिताग्राच्छन्दः ।

अन्वयः—अयं सागरः रिपुम् उद्धर्तुम् उद्यन्तं सक्तसायकं माम् अद्य तं

लक्ष्मण—यह, यह भगवान् वरुण,

जल से युक्त बादल के समान काले जल वाले, फैली हुई तरङ्ग-रूपी सुन्दर हार वाले सरित्पति (वरुण) सोते हुए सहस्रभुज (विष्णु) के समान, मिलने वाली नदी रूपी हजार हाथों से युक्त (होकर) शोभायमान हो रहे है ।

राम—अरे ! क्यों, क्यों ?

उस (रावण) को सजीव बनाये रखने के लिए यह समुद्र आज शत्रु

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

सुग्रीवः—अये वियति,

सजलजलदसन्निभप्रकाशः
कनकमयामलभूषणोज्ज्वलाङ्गः ।
अभिपतति कुतो नु राक्षसोऽसौ
शलभ इवाशु हुताशनं प्रवेष्टुम् ॥ ५ ॥

हनूमान्—भो भो वानरवीराः ! अप्रमत्ता भवन्तु भवन्तः ।

सजीवं कर्तुं निवारयति ।

रिपुमिति—अयम्=एषः, सागरः=समुद्रः, रिपुं=शत्रुम्, उद्धर्तुं=विनाशयितुम्, उद्यन्तम्=उद्यतम्, सक्तसायकं=आरोपितबाणम्, माम्=रामम्, अद्य=अस्मिन् दिवसे, तं=रावणम्, सजीवं=जीवन्तम्, कर्तुं=विधातुम्, निवारयति=रुणद्धि । अनुष्टुप्च्छन्दः ।

अन्वयः—सजलजलदसन्निभप्रकाशः कनकमयामलभूषणोज्ज्वलाङ्गः असौ राक्षसः आशु हुताशनं प्रवेष्टुं शलभः इव कुतः नु अभिपतति ।

सजलेति—सजलजलदसन्निभप्रकाशः=सजलेन सनीरेण यः जलदः बादलः तत्सन्निभः सदृशः प्रकाशः कान्तिः यस्य सः, कनकमयामलभूषणोज्ज्वलाङ्गः=कनकमयानि सुवर्णयुक्तानि अमलानि निर्मलानि च यानि भूषणानि आभूषणानि तैः उज्ज्वलानि देदीप्यमानानि अङ्गानि अवयवाः यस्यः सः, असौ=अयम्, राक्षसः=निशाचरः, आशु=शीघ्रम्, हुताशनम्=अग्निम्, प्रवेष्टुम्=प्रवेशं कर्तुम्, शलभः इव=पतङ्गः इव, कुतः=कस्मात्, नु=निश्चयेन, अभिपतति=अभिमुखम् आयाति । उपमालङ्कारः । पुष्पिताग्राच्छन्दः ।

रावण को नष्ट करने के लिए उद्यत तथा धनुष धारण करने वाले मुझको रोक रहा है ।

सुग्रीव—अरे दुर्भाग्य !

जल से युक्त बादल के समान कान्ति वाला, सुवर्णयुक्त निर्मल आभूषणों से शोभायमान अङ्गों वाला यह राक्षस आग में प्रवेश करने के लिए (उद्यत) पतङ्ग के समान क्यों आ रहा है ।

हनुमान्—हे, हे वानर-वीरो ! आप लोग सावधान हो जाँय ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitized by eGangotri

शैलैर्द्रुमैः सम्प्रति मुष्टिबन्धैर्दन्तैर्नखैर्जानुभिरुग्रनादैः ।
रक्षोवधार्थं युधि वानरेन्द्रास्तिष्ठन्तु रक्षन्तु च नो नरेन्द्रम् ॥ ६ ॥

रामः—राक्षस इति । हनूमन् ! अलमलं सम्भ्रमेण ।

हनूमान्—यदाज्ञापयति देवः ।

(ततः प्रविशति विभीषणः)

विभीषणः—भोः ! प्राप्तोऽस्मि राघवस्य शिविरसन्निवेशम् । (विचिन्त्य) अकृतदूतसम्प्रेषणमविदितागमनममित्रसम्बन्धिनं कथं नु खलु मामवगच्छेत् तत्रभवान् राघवः । कुतः,

---

भो भो इति—वानरवीराः = कपिशूराः, अप्रमत्ताः = सावधानाः ।

अन्वयः—सम्प्रति वानरेन्द्राः शैलैः द्रुमैः मुष्टिबन्धैः दन्तैः नखैः जानुभिः उग्रनादैः (च) युधि रक्षोवधार्थं तिष्ठन्तु, नः नरेन्द्रः च रक्षन्तु ।

शैलैः इति—शैलैः = पर्वतैः, द्रुमैः = वृक्षैः, मुष्टिबन्धैः = मुष्टिकाप्रहारैः, दन्तैः = द्विजैः, नखैः = नखरैः, जानुभिः = उरुभिः, उग्रनादैः = उच्चगर्जनैः, युधि = युद्धे, रक्षोवधार्थम् = राक्षसमारणाय, तिष्ठन्तु = स्थिताः भवन्तु, नः = अस्माकम्, नरेन्द्रं = राजानम्, च रक्षन्तु = पान्तु । उपजातिः छन्दः ।

राक्षसः इति—सम्भ्रमः = सभयम्, अलं = व्यर्थः ।

भो इति—राघवस्य = रामस्य, शिविरसन्निवेशं = शिविरस्य सेनानिवासस्य सन्निवेशं स्थानम्, प्राप्तः अस्मि = आगतः अस्मि । अकृतदूतसम्प्रेषणं =

पर्वतों, पेड़ों, मुष्टि-प्रहारों, दाँतों, नाखूनों, जङ्घाओं तथा घनघोर गर्जनों से (आप) वानर-गण युद्ध में राक्षसों के वध के लिए उद्यत रहें और हमारे महाराज की रक्षा करें ।

राम—राक्षस है । हे हनुमान् ! घबड़ाना व्यर्थ है

हनुमान्—जो महाराज की आज्ञा

(तत्पश्चात् विभीषण प्रवेश करता है)

विभीषण—अरे ! राघव के शिविर के समीप आ गया हूँ । (सोचकर) बिना दूत भेजे, अतर्कित भाव से उपस्थित मुझ शत्रुसम्बन्धी को पूजनीय राघव क्या समझेंगे । क्योंकि—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

क्रुद्धस्य यस्य पुरतः सहितोऽप्यशक्तः
स्थातुं सुरैः सुररिपोर्युधि वज्रपाणिः ।
तस्यानुजं रघुपतिः शरणागतं मां
किं वक्ष्यतीति हृदयं परिशङ्कितं मे ॥ ७ ॥

अथवा,

दृष्टधर्मार्थतत्त्वोऽयं साधुः संश्रितवत्सलः ।
शङ्कनीयः कथं रामो विशुद्धमनसा मया ॥ ८ ॥

अकृतम् अविहितं दूतसम्प्रेषणं दूतसम्प्रेरणम् येन तम्, अविदितागमनम्=अविदितम् अज्ञातम् आगमनम् उपस्थापनं यस्य तम्, अमित्रसम्बन्धिनम्=अमित्रस्य शत्रोः सम्बन्धिनं बान्धवम्, अवगच्छेत्=अवधारयेत् ।

अन्वयः—क्रुद्धस्य यस्य सुररिपोः पुरतः सुरैः सहितः अपि वज्रपाणि स्थातुम् अशक्यः तस्य शरणागतम् अनुजं माम् रघुपतिः किं वक्ष्यति इति मे हृदयं परिशङ्कितम् ।

क्रुद्धस्येति—क्रुद्धस्य=कुपितस्य, यस्य=रावणस्य, देवरिपोः=देवशत्रोः रावणस्य, पुरतः=अग्रे, सुरैः=देवेभिः, सहितैः=सह अपि, वज्रपाणिः=इन्द्रः, स्थातुं=स्थिरं भवितुम्, अशक्तः=असमर्थः, तस्य=रावणस्य; शरणागतम्=आश्रयप्राप्तम्, अनुजम्=कनिष्ठभ्रातरम्; मां=विभीषणम्, रघुपतिः=रामः, किं वक्ष्यति=किं कथयिष्यति, इति, मे=मम विभीषणस्य; हृदयं=अन्तःकरणम्, परिशङ्कितम्=आशङ्कितम्, अस्तीति शेषः । अर्थापत्तिरलङ्कारः । वसन्ततिलकाच्छन्दः ।

अन्वयः—दृष्टधर्मार्थतत्वः संश्रितवत्सलः अयं साधु रामः विशुद्धमनसा

युद्ध में क्रोधित जिस देव-शत्रु (रावण) के सामने देवताओं के साथ वज्रपाणि (इन्द्र) भी स्थिर रहने में असमर्थ थे; उसी के शरणागत अनुज मुझ (विभीषण) को राम क्या कहेंगे ? यह मेरे हृदय में आशङ्का है ।

अथवा,

धर्म और अर्थ के तत्त्व को जानने वाले, आश्रित जनों (शरणागत लोगों)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(अधोऽवलोक्य) इदं रघुकुलवृषभस्य स्कन्धावारम् । यावदवतरामि । (अवतीर्य) हन्त इह स्थित्वा ममागमनं देवाय निवेदयामि ।

हनूमान्—(ऊर्ध्वमवलोक्य) अये कथं तत्रभवान् विभीषणः !

विभीषणः—अये हनूमान् ? हनूमन् ! ममागमनं देवाय निवेदय ।

हनूमान्—बाढम् । (उपगम्य) जयतु जयतु देवः ।

राजंस्त्वत्कारणादेव भ्रात्रा निर्विषयीकृतः ।
विभीषणोऽयं धर्मात्मा शरणार्थमुपागतः ॥ ९ ॥

मया कथं शङ्कनीयः ।

दृष्टधर्मार्थेति—दृष्टधर्मार्थतत्त्वः = दृष्टं ज्ञातं धर्मार्थतत्त्वं धर्मार्थयाथार्थ्यम् येन सः, संश्रितवत्सलः = संश्रितेषु शरणागतेषु वत्सलः स्नेहयुक्तः, अयम् = एषः पुरोविद्यमानः, साधुः = सज्जनः रामः = राघवः, विशुद्धमनसा = पवित्रचेतसा, मया = विभीषणेन, कथं = केन प्रकारेण, शङ्कनीयः = शङ्क्यः । अनुष्टुप्च्छन्दः ।

इदमिति—इदम् = एतत्पुरोवर्तमानम्, रघुकुलवृषभस्य = रघुवंशश्रेष्ठस्य, स्कन्धावारं = सेनानिवासम्, स्थित्वा = स्थितिं प्राप्य, मम = आत्मनः ।

अन्वयः—हे राजन् ! त्वत्कारणात् एव भ्रात्रा निर्विषयीकृतः अयं धर्मात्मा

से प्रेम करने वाले तथा सज्जन ये राम पवित्र हृदय वाले मुझ (विभीषण) के द्वारा शङ्का करने योग्य कैसे हैं ।

(नीचे की ओर देखकर) यह रघुकुल-श्रेष्ठ (राम) की सेना का निवास-स्थल है । तो उतरता हूँ । (उतरकर) अरे ! यहाँ (ही) रुककर अपने आगमन को महाराज (राम) को सूचित करता हूँ ।

हनुमान्—(ऊपर देखकर) अरे ! क्या पूजनीय विभीषण है ?

विभीषण—अरे ! क्या हनुमान् हैं ? हे हनुमान् ! मेरे आने को महाराज से सूचित कर दो ।

हनुमान्—अच्छा । (समीप जाकर) विजयी हों, महाराज विजयी हों ।

हे राजन् ! आप (राम) के कारण ही भाई (रावण) के द्वारा निष्कासित ये धर्मात्मा विभीषण आश्रय के लिए आये हैं ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitized by eGangotri

रामः—कथं विभीषणः शरणागत इति? वत्स लक्ष्मण! गच्छ, सत्कृत्य प्रवेश्यतां विभीषणः।

लक्ष्मणः—यदाज्ञापयत्यार्यः।

रामः—सुग्रीव! वक्तुकाममिव त्वां लक्षये।

सुग्रीवः—देव! बहुमायाश्छलयोधिनश्च राक्षसाः। तस्मात् सम्प्रधार्य प्रवेश्यतां विभीषणः।

हनुमान्—महाराज! मा मैवं,

देवे यथा वयं भक्तास्तथा मन्ये विभीषणम्।

विभीषणः शरणार्थम् उपागतः।

राजनिति—राजन्=हे नृप! त्वत्कारणात्=तव हेतोः, भ्रात्रा=अग्रजेन रावणेन, निर्विषयीकृतः=देशात् निष्कासितः, अयम्=एषः पुरोविद्यमानः, धर्मात्मा=धर्मशीलः, विभीषणः=एतन्नामकः रावणस्यानुजः, शरणार्थम्=आश्रयार्थम्, उपागतः=उपायातः। अनुष्टुप्च्छन्दः।

कथमिति—वत्स=हे भ्राता, सत्कृत्य=सत्कारं कृत्वा, प्रवेश्यतां=प्रविष्टः क्रियताम्। वक्तुकामम्=वक्त कथितु कामः इच्छा यस्य तम्, लक्षये=पश्यामि। बहुमायेति—बहुमायाच्छलयोधिनः=बहुमाया बह्वी विपुला मायाः मोहनोच्चाटनादिकं येषां ते छलेन कपटेन युद्धयन्ते युद्धं कुर्वन्तीति। सम्प्रधार्य=विचार्य। प्रवेश्यतां=प्रविष्टः क्रियंताम्।

अन्वयः—देवे यथा वयं भक्ताः तथा विभीषणं मन्ये। पूर्वं मया पुरे

राम—क्या विभीषण शरण में आये हैं? हे भाई लक्ष्मण! जाओ, सत्कार करके विभीषण को ले जाओ।

लक्ष्मण—जो आप की आज्ञा।

राम—हे सुग्रीव! मैं समझता हूँ कि (आप) कुछ कहना चाहते हैं।

सुग्रीव—हे महाराज! राक्षस बहुत मायावी और छलपूर्वक युद्ध करने वाले होते हैं। तो विचार करके विभीषण को प्रवेश कराया जाय।

हनुमान्—हे महाराज! नहीं, ऐसा नहीं।

जैसे हम महाराज आप के भक्त हैं वैसे ही विभीषण को भी मैं समझता

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitized by eGangotri

भ्रात्रा विवदमानोऽपि दृष्टः पूर्वं पुरे मया ॥ १० ॥

रामः—यद्येवं गच्छ, सत्कृत्य प्रवेश्यतां विभीषणः ।

लक्ष्मणः—यदाज्ञापयत्यार्यः । (परिक्रम्य) अये विभीषणः । विभीषण ! अपि कुशली भवान् !

विभीषणः—अये कुमारो लक्ष्मणः ? कुमार ! अद्य कुशली संवृत्तोऽस्मि ।

लक्ष्मणः—विभीषण ! उपसर्पावस्तावदार्यम् ।

विभीषणः—बाढम् ।

(उपसर्पतः)

भ्रात्रा विवदमानः अपि दृष्टः ।

देवे इति—देवे = महाराजे त्वयि, यथा = येन प्रकारेण, वयं = हनूमानादयः, भक्ताः = भक्तिपूर्णाः, तथा = तेन प्रकारेण, विभीषणम् = एतन्नामकरावणानुजम्, मन्ये = अवगच्छामि । पूर्वम् = पूर्वकाले, मया = हनुमता, पुरे = लङ्कायाम्, भ्रात्रा = अग्रजेन रावणेन, विवदमानः = विवादं कुर्वन्; दृष्टः = विलोकितः । उपमालङ्कारः । अनुष्टुप्छन्दः ।

यदाज्ञापयेति—कुशली = कुशलयुक्तः, उपसर्पावः = समीपं गच्छावः ।

हूँ । क्योंकि मेरे द्वारा (लङ्का) नगर में (आप के लिए) भाई के साथ झगड़ा करते हुए देखा गया था ।

राम—यदि ऐसा है तो जाओ, सत्कार करके विभीषण को ले जाओ ।

लक्ष्मण—जैसी आर्य की आज्ञा । (घूमकर) अरे विभीषण हैं ! हे विभीषण हैं ! आप सकुशल तो हैं ?

विभीषण—अरे कुमार लक्ष्मण हैं ! हे कुमार ! आज सकुशल हो गया हूँ ।

लक्ष्मण—हे विभीषण ! आर्य (राम) के समीप चलिए ।

विभीषण—अच्छा ।

(दोनों समीप जाते हैं)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लक्ष्मणः—जयत्वार्यः ।

विभीषणः—प्रसीदतु देवः । जयतु देवः ।

रामः—अये विभीषणः । विभीषण ! अपि कुशली भवान् ?

विभीषणः—देव ! अद्य कुशली संवृत्तोऽस्मि ।

भवन्तं पद्मपत्राक्षं शरण्यं शरणागतः ।
अद्यास्मि कुशली राजंस्त्वद्दर्शनविकल्मषः ॥ ११ ॥

रामः—अद्यप्रभृति मद्वचनाल्लङ्केश्वरो भव ।

विभीषणः—अनुगृहीतोऽस्मि ।

रामः—विभीषण ! त्वदागमनादेव सिद्धमस्मत्कार्यम् । सागरतरणे

अन्वयः—हे राजन् ! पद्मपत्राक्षं शरण्यं भवन्तं शरणागतः (अहं) अद्य कुशली त्वद्दर्शनविकल्मषः च अस्मि ।

भवन्तमिति—राजन्=हे भूपाल ! पद्मपत्राक्षं=कमलदलनयनम्, शरण्यं=शरणागतरक्षकम्, भवन्तं=रामम्, शरणागतः=आश्रयप्राप्तः, अद्यः=अस्मिन् दिवसे, त्वद्दर्शनविकल्मषः=तव दर्शनेन विकल्मषः निष्पापः, अस्मि=भवामि । उपमालङ्कारः । अनुष्टुप्च्छन्दः ।

अद्येति—अद्यप्रभृति=अस्मात् दिवसात्, मद्वचनात्=ममादेशात्, लङ्केश्वरः=लङ्केशः, अनुगृहीतः=अनुकम्पितः । त्वदागमनात्=तव आगमनात्;

लक्ष्मण—आर्य विजयी हों ।

विभीषण—प्रसन्न होइए महाराज ! आप की विजय हो ।

राम—अरे विभीषण हैं । हे विभीषण ! आप सकुशल तो हैं ?

विभीषण—हे महाराज ! आज सकुशल हो गया हूँ ।

हे राजन् ! कमल-पत्र के समान नेत्र वाले, (शरणागत लोगों के) आश्रय आप की शरण में आया हुआ मैं आज आप के दर्शन से पाप-रहित होकर सकुशल हो गया हूँ ।

राम—आज से आप मेरे आदेश से लङ्केश्वर होइए ।

विभीषण—अनुगृहीत हूँ ।

राम—हे विभीषण ! आप के आने से ही हमारा कार्य सिद्ध हो गया ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

खलूपायो नाधिगम्यते ।

विभीषणः—देव ! किमत्रावगन्तव्यम् । यदि मार्गं न ददाति, समुद्रे दिव्यमस्त्रं विस्रष्टुमर्हति देवः ।

रामः—साधु विभीषण ! साधु । भवतु, एवं तावत् करिष्ये । (सहसोत्तिष्ठन् सरोषम्)

मम शरपरिदग्धतोयपङ्कं हतशतमत्स्यविकीर्णभूमिभागम् ।
यदि मम न ददाति मार्गमेनं प्रतिहतवीचिरयं करोमि शीघ्रम् ॥१२॥

सिद्धं=पूर्णम्, अस्मत्कार्यं=अस्माकं कार्यम् । सागरतरणे=समुद्रलङ्घने, उपायः=युक्तिः, न अधिगम्यते=न ज्ञायते । विस्रष्टुं=प्रक्षेप्तुम् ।

अन्वयः—यदि मम मार्गं न ददाति (तर्हि) शीघ्रम् एव एनम् मम शरपरिदग्धतोयपङ्कं हतशतमत्स्यविकीर्णभूमिभागं करोमि ।

ममेति—यदि=चेत्, मम=मह्यम्, मार्गम्=पन्थानम्, न ददाति=न प्रयच्छति, शीघ्रं=त्वरितम्, एनं=समुद्रम्, मम=रामस्य, शरपरिदग्धतोयपङ्कं=शरेण बाणेन परिदग्धे प्लुष्टे तोयपङ्के जलकर्दमौ यस्य तम्, हतशतमत्स्यविकीर्णभूमिभागं=हताः मृतः शतानि अनेकसङ्ख्यकानि ये मत्स्याः मीनाः तैः विकीर्णः व्याप्तः भूमिभागः भूमिप्रदेशः यस्य तम्, प्रतिहतवीचिरवं=प्रतिहतः समाप्तः वीचिरवः तरङ्गशब्दः यस्य तम्, करोमि=विदधे । पुष्पिताग्राच्छन्दः ।

समुद्र पार करने का उपाय नहीं समझ में आ रहा है ।

विभीषण—हे महाराज ! इसमें क्या समझना है । यदि (समुद्र) रास्ता नहीं देता तो आप समुद्र में दिव्यास्त्र छोड़ सकते हैं ।

राम—ठीक है, हे विभीषण ! ठीक है । अच्छा, तो ऐसा ही करता हूँ ।

(सहसा उठकर क्रोध के साथ)

(यह समुद्र) यदि मुझको रास्ता नहीं देता तो इस (समुद्र) को मैं शीघ्र ही अपने बाणों से दग्ध जल तथा पङ्क वाला, (जल सूख जाने से) मरी हुई सैकड़ों मछलियों से व्याप्त-स्थान वाला तथा समाप्त तरंग-ध्वनि वाला बना रहा हूँ ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(ततः प्रविशति वरुणः)

वरुणः—(ससम्भ्रमम्)

नारायणस्य नररूपमुपाश्रित्य
कार्यार्थमभ्युपगतस्य कृतापराधः ।
देवस्य देवरिपुदेहहरात् प्रतूर्णं
भीतः शराच्छरणमेनमुपाश्रयामि ॥ १३ ॥

(विलोक्य) अये अयं भगवान्,

मानुषं रूपमास्थाय चक्रशार्ङ्गगदाधरः ।
स्वयं कारणभूतः सन् कार्यार्थी समुपागतः ॥ १४ ॥

अन्वयः—नररूपम् उपाश्रितस्य नारायणस्य कार्यार्थम् अभ्युपगतस्य देवस्य कृतापराधः (अहं) देवरिपुदेहहरात् शरात् भीतः सन् प्रतूर्णम् एनं शरणम् उपाश्रयामि ।

नारायणस्येति—नररूपं = मानुषस्वरूपम्, उपाश्रित्यस्य = धारयतः, कार्यार्थं = कार्याय, अभ्युपागतस्य = संसारे आगतस्य, नारायणस्य = विष्णोः, देवस्य = महाराजस्य, कृतापराधः = विहितदोषः, अहमिति शेषः, देवरिपु-देहहरात् = देवरिपूणां सुरशत्रूणां देहाणां शरीराणां हरात् हरति विनाशयति इति तस्मात्, शरात् = बाणात्, भीतः = त्रस्तः, प्रतूर्णं = शीघ्रम्, एनं = रामम्, शरणम् = आश्रयम्, उपाश्रयामि = गृह्णामि । काव्यलिङ्गमलङ्कारः । वसन्ततिलकाच्छन्दः ।

अन्वयः—स्वयं कारणभूतः चक्रशार्ङ्गगदाधरः मानुषं रूपम् आस्थाय

वरुण—(घबराहट के साथ)

मनुष्य का रूप धारण करने वाले, कार्य के लिए आये हुए विष्णुरूप महाराज (राम) के प्रति अपराधी बना हुआ मैं देवताओं के शत्रुओं के शरीर का नाश कर देने वाले बाण से डरा हुआ शीघ्र इनकी (राम की) शरण लेता हूँ । (देखकर) अरे ! ये भगवान् हैं,

स्वयं (संसार के) कारणरूप तथा चक्र, शार्ङ्ग और गदाधारी (विष्णु)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नमो भगवते त्रैलोक्यकारणाय नारायणाय ।

लक्ष्मणः—(विलोक्य) अये को नु खल्वेषः ?

मणिविरचितमौलिश्चारुताम्रायताक्षो
नवकुवलयनीलो मत्तमातङ्गलीलः ।
सलिलनिचयमध्यादुत्थितस्त्वेष शीघ्र-
मवनतमिव कुर्वंस्तेजसा जीवलोम् ॥ १५ ॥

कार्यार्थी सन् समुपागतः ।

मानुषमिति—स्वयम् = आत्मना, कारणभूतः = जगदुत्पादकभूतः, चक्रशार्ङ्गगदाधरः = चक्रम् आयुधविशेषं शार्ङ्गम् धनुश्च गदा मुद्गरश्चेति तासां धरः धारकः, मानुषं = मनुष्यविषयकम्, रूपं = स्वरूपम्, आस्थाय = धारयित्वा, कार्यार्थी = कार्याभिलाषी, समुपागतः = समीपमागतः । अनुष्टुप्छन्दः ।

अन्वयः—मणिविरचितमौलिः चारुताम्रायताक्षः नवकुवलयनीलः मत्तमातङ्गलीलः एषः सलिलनिचयमध्यात् उत्थितः शीघ्रं तेजसा जीवलोकम् अनवतं कुर्वन् इव (कः) ?

मणीति—मणिविरचितमौलिः = मणिभिः रत्नैः विरचितः निर्मितः मौलिः मुकुटं यस्य सः, चारुताम्रायताक्षः = चारूणी सुन्दरे ताम्रे लौहवर्णे आयते विशाले च अक्षिणी नेत्रे यस्य सः, नवकुवलयनीलः = नवं नूतनं यत् कुवलयं कमलं तद्वत् नीलः श्यामः, मत्तमातङ्गलीलः = मत्तः उत्कटमदः यः

मनुष्य का रूप धारण कर कार्य-हेतु आये हैं ।

तीनों लोकों के कारणरूप भगवान् विष्णु को नमस्कार है ।

लक्ष्मण—(देखकर) अरे ! यह कौन है ?

मणि-खचित मुकुट वाला; सुन्दर लाल तथा विशाल आँखों वाला, नये नीलकमल के सदृश नीला, मदमत्त हाथी के समान चाल वाला, जल के बीच से उठा हुआ, शीघ्र ही अपने तेज से संसार को झुकाता हुआ-सा (यह कौन है) ?

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

विभीषणः—देव ! अयं खलु भगवान् वरुणः प्राप्तः ।
रामः—किं वरुणोऽयम् । भगवन् ! वरुण ! नमस्ते ।
वरुणः—न मे नमस्कारं कर्तुमर्हति देवेशः । अथवा,

राजपुत्र ! कुतः कोपो रोषेण किमलं तव ।
कर्तव्यं तावदस्माभिर्वद शीघ्रं नरोत्तम ! ॥ १६ ॥

रामः—लङ्कागमने मार्गं दातुमर्हति भवान् ।
वरुणः—एष मार्गः । प्रयातु भवान् । (अन्तर्हितः)

मावङ्गः हस्ती तद्वत् लीला विलासः यस्य सः, सलिलनिचयमध्यात्=सलिलस्य जलस्य निचयाः तरङ्गाः तेषां मध्यात् अन्तरालात्, उत्थितः=उद्गतः, शीघ्रं=त्वरितम्, तेजसा=वर्चसा, जीवलोकं=प्राणिलोकम्, अनवतं कुर्वन् इव=नमयन् इव, एषः कः ? उपमोत्प्रेक्षा चालङ्कारौ । मालिनीच्छन्दः ।

अन्वयः—हे राजपुत्रः ! कुतः कोपः तव रोषेण किम् अलम् । हे नरोत्तम ! अस्माभिः कर्त्तव्यं तावत् शीघ्रं वद ।

राजपुत्रेति—राजपुत्र=हे राजकुमार ! तव=ते, कुतः=कस्मात्, कोपः=क्रोधः । रोषेण=क्रोधेन, अलं=किम्प्रयोजनम् । नरोत्तम=हे पुरुषोत्तम ! अस्माभिः=वरुणैः, कर्त्तव्यं=करणीयम्, तावत्=तत्, शीघ्रं=त्वरितम्, वद=कथय । अनुष्टुप्च्छन्दः ।

लङ्कागमने इति—मार्गं=पन्थानम्, दातुं=प्रदातुम्, अर्हति=समर्थः

विभीषण—हे महाराज ! ये भगवान् वरुण आये हैं ।

राम—क्या ये वरुण हैं ? हे वरुण ! आप को नमस्कार है ।

वरुण—देवताओं के स्वामी आप को मुझे नमस्कार नहीं करना चाहिए । अथवा—

हे राजकुमार ! आप का क्रोध किस कारण है ? क्रोध से क्या (लाभ) ? हे पुरुषोत्तम ! हमारे द्वारा करणीय कार्य को शीघ्र बतलाओ ।

राम—आप मुझे लङ्का जाने के लिए मार्ग देने में समर्थ हैं ।

वरुण—यह मार्ग है । आप जाइए । (अन्तर्धान हो जाता है)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

रामः-कथमन्तर्हितो भगवान् वरुणः। विभीषण ! पश्य पश्य भगवत्प्रसादान्निष्कम्पवीचिमन्तं सलिलाधिपतिम्।

विभीषणः—देव ! साम्प्रतं द्विधाभूत इव दृश्यते जलनिधिः।

रामः—क्व हनूमान् ?

हनूमान्—जयतु देवः।

रामः—हनूमन् ! गच्छाग्रतः।

हनूमान्-यदाज्ञापयति देवः।

(सर्वे परिक्रामन्ति)

रामः—(विलोक्य सविस्मयम्) वत्स लक्ष्मण ! वयस्य विभीषण ! महाराज सुग्रीव ! सखे हनूमन् ! पश्यन्तु पश्यन्तु भवन्तः। अहो विचित्रता सागरस्य इह हि,

---

अस्ति। एषः=अयम्, मार्गः=पन्था, प्रयातु=गच्छतु।

कथमिति--अन्तर्हितः=तिरोहितः, भगवत्प्रसादात्=भगवतः वरुणस्य प्रसादात् अनुग्रहात्, निष्कम्पवीचिं=निष्कम्पाः निश्चलाः वीचयः तरङ्गाः यस्य तम्, सलिलाधिपतिं=जलस्वामिनम्, । देवेति—देव=हे महाराज ! जलनिधिः=समुद्रः, द्विधाभूतः इव=द्वयोः भागयोः विभक्तः इव।

वत्सेति—वयस्य=हे मित्र ! विचित्रता=आश्चर्यजनकता।

राम—क्या भगवान् वरुण अन्तर्धान हो गये। हे विभीषण ! देखिए, देखिए। भगवान् वरुण देव की कृपा से समुद्र स्थिर तरंगों वाला हो गया है।

विभीषण—हे महाराज ! समुद्र अब दो भागों में बँटता हुआ-सा दिखलायी पड़ रहा है।

राम—हनुमान् कहाँ हैं ?

हनुमान्—महाराज विजयी होंवे।

राम—हे हनुमान् ! आगे चलो।

हनुमान्—जैसी महाराज की आज्ञा।

(सभी घूमते हैं)

राम—(देखकर आश्चर्यपूर्वक) हे भाई लक्ष्मण ! हे मित्र विभीषण !

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

क्वचित् फेनोद्गारी क्वचिदपि च मीनाकुलजलः
क्वचिच्छङ्खाकीर्णः क्वचिदपि च नीलाम्बुदनिभः ।
क्वचिद् वीचीमालः क्वचिदपि नक्रप्रतिभयः
क्वचिद् भीमावर्तः क्वचिदपि च निष्कम्पसलिलः ॥१७॥
भगवत्प्रसादादतीतः सागरः ।

अन्वयः—क्वचित् फेनोद्गारी क्वचित् अपि मीनाकुलजलः, क्वचित् शङ्खाकीर्णः क्वचित् अपि च नक्रप्रभृतयः क्वचित् भीमावर्तः क्वचित् अपि च निष्कम्पसलिलः (अस्ति) ।

क्वचिदिति—क्वचित्=कस्मिंश्चित् प्रदेशे, फेनोद्गारी=फेनम् हिण्डीरम् उद्गिरति उद्वमति इति सः, मीनाकुलजलः=मीनैः मत्स्यैः आकुलं व्याप्तं जलं नीरं यस्य सः, क्वचित्=कस्मिंश्चित् स्थाने, शङ्खाकीर्णः=शङ्खैः कम्बुभिः आकीर्णः व्याप्तः, क्वचिदपि=कस्मिंश्चित् प्रदेशेऽपि, नीलाम्बुदनिभः=नीलः नीलवर्णः यः अम्बुदः बादलः तन्निभः तत्सदृशः, क्वचित्=कस्मिंश्चित् स्थले,, वीचीमालः=वीचीनां तरङ्गानां मालाः श्रेणी यस्मिन् सः, क्वचिदपि=कस्मिंश्चिदधिष्ठाने, नक्रप्रतिभयः=नक्रैः कुम्भीरैः प्रतिभयः भयङ्करः, क्वचित्=कस्मिंश्चिद्देशे, भीमावर्तः=भीमाः भयङ्कराः आवर्ताः जलभ्रमयः यस्मिन् सः, क्वचिदपि=कस्मिंश्चित्प्रदेशे, निष्कम्पसलिलः=निश्चलजलः, अस्ति । शिखरिणीच्छन्दः ।

भगवदिति—अतीतः=लङ्घितः । सागरः=समुद्रः ।

हे महाराज सुग्रीव ! हे मित्र हनुमान् ! देखिए, देखिए आप लोग । यहाँ समुद्र की कैसी विचित्रता है, क्योंकि—

(यह समुद्र) कहीं फेन से व्याकुल, कहीं मछलियों से परिपूर्ण जल वाला, कही शङ्खों से व्याप्त, कहीं नीले बादल के समान जल (-युक्त), कहीं तरङ्ग समूहों वाला, कहीं नक्रों के कारण भयानक, कहीं भयङ्कर भँवरों से युक्त और कहीं स्थिर शान्त-जल से युक्त है ।

भगवान् (वरुण) की कृपा से समुद्र पार कर लिया गया ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

हनूमान्—देव ! इयमियं लङ्का ।

रामः–(चिरं विलोक्य) अहो राक्षसनगरस्य श्रीरचिराद् विपत्स्यते ।

मम शरवरवातपातभग्ना कपिवरसैन्यतरङ्गताडितान्ता ।
उदधिजलगतेव नौर्विपन्ना निपतति रावणकर्णधारदोषात् ॥ १८ ॥

सुग्रीव ! अस्मिन् सुवेलपर्वते क्रियतां सेनानिवेशः । (उपविशति)

अन्वयः—मम शरवरवातपातभग्ना कपिवर सैन्यतरङ्गताडितान्ता (लङ्कापुर्याः श्रीः) रावणकर्णधारदोषात् विपन्ना उदधिजलगता नौ इव निपतति !

अहो इति—राक्षसनगरस्य = राक्षसस्य रावणस्य नगरस्य पुरस्य, श्रीः = समृद्धिः, अचिरात् = शीघ्रमेव, विपत्स्यते = विनश्यति ।

ममेति—मम = रामस्य, शरवरवातपातभग्ना = शरवरः बाणश्रेष्ठः एव वातः वायुः तस्य पातेन आक्रमणेन भग्ना भिन्ना, कपिवरसैन्यतरङ्गताडितान्ता = कपिवरस्य सुग्रीवस्य सैन्यानि सैनिकाः एव तरङ्गाः वीचयः तैः ताडिताः आहताः अन्ताः प्रान्तभागाः यस्याः साः, उदधिजलगता = समुद्रजलस्थिता, नौः इव = नौका इव, निपतति = मज्जतीत्यर्थः । उपमा रूपकलङ्कारौ । पुष्पिताग्राच्छन्दः ।

हनुमान्—हे महाराज ! यह लङ्का है ।

राम—(देर तक देखकर) ओह ! राक्षस-नगर (लङ्का) की समृद्धि शीघ्र ही नष्ट हो जायेगी ।

रावण-रूपी कर्णधार के अपराध के कारण मेरे बाण-रूपी वायु के गिरने से चूर, तथा वानर-श्रेष्ठ (सुग्रीव) की सेना-रूपी तरंगों से उसी प्रकार नष्ट हो जाएगी जैसे समुद्र के जल में स्थित नौका (वातचालित होकर तरङ्गों द्वारा विनष्ट कर दी जाती है) ।

हे सुग्रीव ! इस सुवेल पर्वत पर सेना का निवास बनाइए । (बैठ जाते हैं) ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सुग्रीवः—यदाज्ञापयति देवः। नील ! एवं क्रियताम्।

(प्रविश्य)

नीलः—यदाज्ञापयति महाराजः। (निष्क्रम्य प्रविश्य) जयतु देवः। क्रमान्निवेश्यमानासु सेनासु वृन्दपरिग्रहेषु परीक्ष्यमाणेषु पुस्तकप्रामाण्यात् कुतश्चिदप्यविज्ञायमानौ द्वौ वनौकसौ गृहीतौ। वयं न जानीमः कर्त्तव्यम्। देवस्तस्मात् प्रमाणम्।

रामः—शीघ्रं प्रवेशयत्वेतौ।

नीलः—यदाज्ञापयति देवः। (निष्क्रान्तः)

सुग्रीवेति—अस्मिन्=वर्तमाने, सुवेलपर्वते=सुवेलनामकगिरौ, सेनानिवेशः=सैन्यनिवासः, क्रियतां=विधीयताम्।

यदाज्ञापयतीति—यत्=यथा, आज्ञापयति=आदिशति, क्रमात्=क्रमशः, निवेश्यमानासु=स्थाप्यमानासु, सेनासु=सैन्येषु, वृन्दपरिग्रहेषु=वृन्दानां सैनिकसमूहानां परिग्रहेषु ग्रहणेषु, परीक्ष्यमाणेषु=अवेक्ष्यमाणेषु, पुस्तकप्रामाण्यात्=पुस्तकानां पञ्जिकानां प्रामाण्यात् प्रमाणाधारात्, अविज्ञायमानौ=अप्रत्यभिज्ञायमानौ, वनौकसौ=वानरौ, गृहीतौ=धृतौ। कर्त्तव्यः=करणीयम्, न जानीमः=न जानामि। तस्मात्=अत एव, देवः=महाराजः भवान्।

सुग्रीव—जैसी आप की आज्ञा। हे नील ! ऐसा ही करो।

(प्रवेश करके)

नील—जैसी महाराज की आज्ञा। (निकल कर पुनः प्रवेश करके) महाराज विजयी हों। क्रमानुसार सेनाओं के बसाये जाने के समय (सेना के) समूह की गिनती करने पर लेख (लिस्ट) के सहारे परिश्रम करने पर किसी प्रकार भी न पहचान में आने वाले दो वानर पकड़े गये हैं। हम नहीं जानते कि (उनके प्रति) क्या किया जाय। अतः आप ही प्रमाण हैं।

राम—वे दोनों शीघ्र लाये जाँय।

नील—महाराज की जैसी आज्ञा। (निकल जाता है)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(ततः प्रविशति नीलो वानरैर्गृह्यमाणौ वानररूपधारिणौ सम्पुटिकाहस्तौ शुकसारणौ च)

वानराः—अङ्घो भणथ । के तुम्हे भणथ । [अङ्घो भणतम् । कौ युवां भणतम् ।]

उभौ—भट्टा ! अम्हे अय्यकुमुदस्य सेवआ । [भर्तः ! आवामार्यकुमुदस्य सेवकौ ।]

वानराः—भट्टा ! अय्यकुमुदस्य सेवअत्ति अत्ताणं अवदिसन्ति । [भर्तः ! आर्यकुमुदस्य सेवकावित्यात्मानमपदिशतः ।]

विभीषणः—(सावधानं शुकसारणौ विलोक्य)

स्वसैनिकौ न चाप्येतौ वनौकसौ ।
प्रेषितौ रावणेनैतौ राक्षसौ शुकसारणौ ॥ १९ ॥

यदिति—वानरैः=कपिभिः, गृह्यमाणौ=आकृष्यमाणौ, वानररूपधारिणौ=कपिस्वरूपधारकौ, सम्पुटिकाहस्तौ=सम्पुटिका पेटिका हस्ते करे ययोः तौ ।

अङ्घो इति—भणतं=कथयतम्, आर्यकुमुदस्य=आर्यस्य पूजनीयस्य कुमुदस्य एतन्नामकस्य सुग्रीवसेनापतेः, सेवकौ=भृत्यौ । आत्मनं=स्वम्, अपदिशतः=छलपूर्वकं कथयतः ।

अन्वयः—एतौ न च अपि स्वसैनिकौ न च अपि एतौ वनौकसौ (स्तः) । एतौ (तु) रावणेन प्रेषितौ शुकसारणौ राक्षसौ (स्तः) ।

(तत्पश्चात् नील तथा वानरों द्वारा पकड़े गये, पेटी बँधी हाथ वाले वानररूप-धारी शुक और सारण प्रवेश करते हैं)

वानर—अरे ! बताओ, तुम दोनों कौन हो ?

दोनों—हे स्वामी ! हम आर्य कुमुन्द के सेवक हैं ।

वानर—हे स्वामी ! ये दोनों आर्य कुमुद का सेवक बतलाते हैं ।

विभीषण—(सावधानी से शुक और सारण को देखकर)

ये दोनों न अपने सैनिक हैं और न दोनों वानर ही हैं । ये दोनों रावण द्वारा भेजे गये शुक और सारण (नामक) राक्षस हैं ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उभौ—(आत्मगतम्) हन्त कुमारेण विज्ञातौ स्वः ! (प्रकाशम्) आर्य ! आवां खलु राक्षसराजस्य विप्रतिपत्त्या विपद्यमानं राक्षसकुलं दृष्ट्वास्पदमलभमानौ आर्यसंश्रयार्थं वानररूपेण सम्प्राप्तौ ।

राम:—वयस्य ! विभीषण ! कथमिव भवान् मन्यते ।

विभीषण—देव !

एतौ हि राक्षसेन्द्रस्य सम्मतौ मन्त्रिणौ नृप !
प्राणान्तिकेऽपि व्यसने लङ्केशं नैव मुञ्चतः ॥ २० ॥

स्वसैनिकौ इति—एतौ=इमौ पुरोविद्यमानौ, स्वसैनिकौ=स्वौ स्वकीयौ सैनिकौ भटौ, न=नहि स्तः, न च=न चापि, इमौ, वनौकसौ=वानरौ, स्तः । एतौ=इमौ, रावणेन=दशाननेन, प्रेषितौ=प्रहितौ, शुकसारणौ=एतन्नामकौ, राक्षसौ=निशाचरौ, वर्तेते । अनुष्टुप्च्छन्दः ।

हन्तेति—कुमारेण=विभीषणेन, विज्ञातौ=प्रत्यभिज्ञातौ, आवां=द्वौ, राक्षसराजस्य=राक्षसेन्द्रस्य रावणस्य, विप्रतिपत्त्या=विपरीतबुद्ध्या, विपद्यमानं=विनश्यमानम्, राक्षसकुलं=रजनीचरवंशम्, दृष्ट्वा=विलोक्य, आस्पदं=स्थानम्, अलभमानौ=न प्राप्तवन्तौ, आर्यसंश्रयार्थं=भवतः शरणाय, सम्प्राप्तौ=आगतौ ।

अन्वयः—हे नृप ! एतौ राक्षसेन्द्रस्य सम्मतो मन्त्रिणो स्तः प्राणान्तिके व्यसने अपि लङ्केशं न एव मुञ्चतः ।

एतौ इति—नृप=हे राजन् ! राक्षसराजस्य=राक्षसेन्द्रस्य रावणस्य,

दोनों—(अपने मन में) ओह ! कुमार (विभीषण) द्वारा हम दोनों पहचान लिये गये । (प्रकटरूप में) हे आर्य ! राक्षसराज (रावण) की दुर्बुद्धि के कारण विपत्ति में पड़े राक्षसकुल को देखकर स्थान पाने की इच्छा से वानर के रूप में हम दोनों आप की शरण में आये हैं ।

राम—हे मित्र विभीषण ! आप क्या समझते हैं ?

विभीषण—हे महाराज !

हे राजन् ! ये दोनों राक्षसेन्द्र (रावण) के अतिप्रिय मन्त्री हैं । प्राणान्तकारक कष्ट में लङ्केश (रावण) को नहीं छोड़ेंगे ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तस्मात् यथार्हं दण्डमाज्ञापयतु देवः ।

रामः—विभीषण ! मा मैवम् ।

अनयोः शासनादेव न मे वृद्धिर्भविष्यति ।
क्षयो वा राक्षसेन्द्रस्य तस्मादेतौ विमोचय ॥ २१ ॥

लक्ष्मणः—यदि विमुञ्चेत्, सर्वस्कन्धावारं प्रविश्य परीक्ष्य पुनर्मोक्षमाज्ञापयत्वार्यः ।

सम्मतौ = प्रियौ, मन्त्रिणौ = अमात्यौ, स्तः इति शेषः । प्राणान्तिकेऽपि = प्राणघातकेऽपि, व्यसने = सङ्कटे, लङ्केशं = रावणम्, नैव = नहि एव, मुञ्चतः = त्यजतः । अनुष्टुप्च्छन्दः ।

तस्मादिति—तस्मात् = अत एव, यथार्हं = यथोचितम् दण्डम् = शासनम्, आज्ञापयतु = आदिशतु ।

अन्वयः—अनयोः शासनात् एव मे वृद्धिः राक्षसेन्द्रस्य क्षयः वा न भविष्यति, तस्मात् एतौ विमोचय ।

अनयोः इति—अनयोः = एतयोः, शासनात् = दण्डात्, एव, न = नहि, मे = मम रामस्य, वृद्धिः = अभ्युदयः, वा = अथवा, राक्षसेन्द्रस्य = रावणस्य, क्षयः = नाशः, भविष्यति; तस्मात् = अतएव, एतौ = इमौ, विमोचय = मुक्तौ कारय । अनुष्टुप्च्छन्दः ।

यदीति—विमुञ्चेत् = मुक्तं कुर्यात्, सर्वस्कन्धावारं = सर्वश्चासौ स्कन्धावारं सेनानिवासम्, प्रविश्य = गत्वा, परीक्ष्य = निरीक्ष्य, मोक्षं = विमुक्तिम्, आज्ञापयतु = आदिशतु ।

अतः आप यथायोग्य दण्ड का आदेश दीजिए ।

राम—हे विभीषण ! ऐसा मत कहो ।

इन दोनों को दण्ड देने से मेरा अभ्युदय अथवा राक्षसेन्द्र (रावण) की अवनति नहीं होगी, अतः इन दोनों को छोड़ दीजिए ।

लक्ष्मण—यदि छोड़ना है तो सेना-निवास में प्रवेश कराकर (घुमाकर) तथा (सम्पूर्ण सैनिकों को) दिखलाकर तब आप छोड़ने का आदेश दीजिए ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

रामः—सम्यगभिहितं लक्ष्मणेन । नील ! एवं क्रियताम् ।

नीलः—यदाज्ञापयति देवः ।

रामः—अथवा एहि तावत् ।

उभौ—इमौ स्वः

रामः—अभिधीयतां मद्वचनात् स राक्षसेन्द्रः,

मम दारापहारेण स्वयङ्ग्राहितविग्रहः ।
आगतोऽहं न पश्यामि द्रष्टुकामो रणातिथिः ॥ २२ ॥

उभौ—यदाज्ञापयति देवः । (निष्क्रान्तौ)

रामः—विभीषण ! वयमपि तावदानन्तरीयं बलं परीक्षिष्यामहे ।

सम्यगिति—सम्यक् = उचितम्, अभिहितं = कथितम्, क्रियताम् = अनुष्ठीयताम् ।

अन्वयः—मम दारापहारेण स्वयंग्राहितविग्रहः आगतः रणातिथिः (अहं) द्रष्टुकामः (त्वां) न पश्यामि ।

ममेति—मम = रामस्य, दारापहारेण = भार्यापहरणेन, स्वयंग्राहितविग्रहः = स्वयम् आत्मना एव ग्राहितः ग्रहणं कारितः विग्रहः युद्धम् यस्य सः; आगतः = आयातः, रणातिथिः = रणाय युद्धाय अतिथिः आगन्तुकः, द्रष्टुकामः = विलोकितुमभिलाषः, न = नहि, पश्यामि = अवलोकयामि । अनुष्टुप्छन्दः ।

राम—लक्ष्मण के द्वारा ठीक कहा गया । हे नील ! ऐसा ही करो ।

नील—जो महाराज की आज्ञा ।

अथवा—तब तक यहाँ आओ ।

राम—मेरे कथनानुसार रावण से कह देना—

मेरी (राम की) पत्नी का अपहरण करके आप के द्वारा स्वयं शत्रुता ग्रहण की गयी है । अतः युद्ध के लिये आया हुआ अतिथि मैं (आप को) देखना चाहता हूँ किन्तु देख नहीं रहा हूँ ।

दोनों—जो महाराज की आज्ञा । (दोनों निकल जाते हैं)

राम—हे विभीषण ! तब तक हम भी अपने आन्तरिक सेना की

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विभीषणः—यदाज्ञापयति देवः ।

रामः—(परिक्रम्य विलोक्य) अये अस्तमितो भगवान् दिवाकरः । सम्प्रति हि,

अस्ताद्रिमस्तकगतः प्रतिसंहृतांशुः
सन्ध्यानुरञ्जितवपुः प्रतिभाति सूर्यः ।
रक्तोज्ज्वलांशुकवृते द्विरदस्य कुम्भे
जाम्बूनदेन रचितः पुलको यथैव ॥ २३ ॥

विभीषणेति—वयम् = रामः, अपि, आनन्तरीयं = सामीप्यम्, बलं = सैन्यम्, परीक्षिष्यामहे = निरीक्षिष्यामहे । अस्तम् इतः = अस्ताचलं गतः, दिवाकरः = सूर्यः ।

अन्वयः—अस्ताद्रिमस्तकगतः प्रतिसंहृतांशु सन्ध्यानुरञ्जितवपुः सूर्यः रक्तोज्ज्वलांशुकवृते द्विरस्य कुम्भे जाम्बूनदेन रचितः पुलकः यथा एव प्रतिभाति ।

अस्ताद्रीति—अस्ताद्रिमस्तकगतः = अस्तस्य अस्तंगमनस्य अद्रिः = पर्वतः तस्य मस्तकं शिखरं गतः यातः, प्रतिसंहृतांशुः = प्रतिसंहृता सङ्कोचिता अंशवः किरणः येन सः, सन्ध्यानुरञ्जितवपुः = सन्ध्यया सायंकालेन अनुरञ्जितः रक्तीकृतः वपुः शरीरं यस्य सः, सूर्यः = भानुः, रक्तोज्ज्वलांशुकवृते = रक्तं लोहवर्णं उज्ज्वलं शुभ्रं यत् अंशुकं कौशेयवस्त्रं तेन वृते

जाँच कर लें ।

विभीषण—जो महाराज की आज्ञा ।

राम—(घूमकर और देखकर) अरे ! भगवान् सूर्य डूब रहे हैं । क्योंकि इस समय—

अस्ताचल के शिखर पर पहुँचे हुए, समेटे हुए किरण समूह वाले तथा सन्ध्या-कालीन लालिमा से युक्त शरीर वाले सूर्य ऐसा प्रतीत हो रहा है जैसे लाल तथा उज्ज्वल वस्त्र आच्छादित गजकुम्भ पर सुवर्ण से बनाया गया तिलक हो ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(निष्क्रान्ताः सर्वे)

॥ इति चतुर्थोऽङ्कः ॥

—*—

वेष्ठिते, द्विरदस्य = हस्तिनः, कुम्भे = मस्तके, जाम्बूनदेन = सुवर्णेन, रचितः = निर्मितः, पुलकः इव = तिलकः इव, प्रतिभाति = शोभते। उपमालङ्कारः। वसन्ततिलकाच्छन्दः।

॥ इति चतुर्थोऽङ्कः ॥

—*—

(सभी निकल जाते हैं)

॥ चतुर्थ अङ्क समाप्त ॥

—*—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अथ पञ्चमोऽङ्कः

(ततः प्रविशति राक्षसकाञ्चुकीयः)

राक्षसकाञ्चुकीयः—क इह भोः ! प्रवालतोरणद्वारमशून्यं कुरुते ।

(प्रविश्यान्यो राक्षसः)

राक्षसः—आर्य ! अयमस्मि । किं क्रियताम् ?

काञ्चुकीयः—गच्छ, महाराजस्य शासनात् विद्युज्जिह्वस्तावदाहूयताम् ।

राक्षसः—आर्य ! तथा ? (निष्क्रान्तः)

काञ्चुकीयः—अहो नु खलु विपद्यमानाभ्युदये राक्षसकुले विपन्नसर्वसाधनस्य निहतवीरपुरुषस्य स्वयं च प्राणसंशयं प्राप्तस्येदानीमपि प्रसन्नत्वं नोपगच्छति महाराजस्य बुद्धिः । को हि नाम,

---

प्रवालेति—प्रवालतोरणद्वारं=प्रवालस्य तोरणस्य तोरणद्वारं बहिर्द्वारम्, अशून्यं=न शून्यं रहितमित्यर्थः, कुरुते=विधत्ते, शासनात्=आदेशात्, विद्युज्जिह्वः=एतन्नामकः राक्षसः, आहूयताम्=आकार्यताम्, विपद्यमानाभ्यु-

---

(तत्पश्चात् राक्षसकाञ्चुकीय प्रवेश करता है)

राक्षसकाञ्चुकीय—अरे ! यहाँ प्रवालतोरण द्वार पर कौन उपस्थित है ।

(दूसरा राक्षस प्रवेश करके)

राक्षस—हे आर्य ! यह मैं हूँ । क्या करना है ।

काञ्चुकीय—जाओ, महाराज के आदेश से विद्युज्जिह्व को बुला लाओ।

राक्षस—हे आर्य ! वैसा ही (करता हूँ) । (निकल जाता है)

काञ्चुकीय—ओह ! राक्षसकुल का अभ्युदय विपत्ति में पड़ने पर भी समाप्त सभी साधन वाले, मार दिये गये वीर पुरुषों वाले तथा सन्देह में पड़े प्राणों वाले महाराज (रावण) की बुद्धि स्वच्छता को नहीं प्राप्त हो रही है । कौन है जो—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitized by eGangotri

चलत्तरङ्गाहतभीमवेलमुदीर्णनक्राकुलनीलनीरम् ।
समुद्रमाक्रान्तमवेक्ष्य तस्मै दारप्रदानान्न करोति शान्तिम् ॥ १ ॥

अपि च,

प्रहस्तप्रमुखा वीराः कुम्भकर्णपुरस्सराः ।
निहता राघवेणाद्य शक्रजिच्चापि निर्गतः ॥ २ ॥

दये = विपद्यमानः विनश्यन् अभ्युदयः समृद्धिः यस्य तस्मिन्, राक्षसकुले = राक्षसवंशे, विपन्नसर्वसाधनस्य = विपन्नानि विनष्टानि, सर्वाणि सकलानि साधनानि उपायाः यस्य तस्य, निहतवीरपुरुषस्य = निहताः मारिताः वीरपुरुषाः शूरपुरुषाः यस्य तस्य, स्वयं च = आत्मना च, प्राणसंशयं = प्राणानां जीवनस्य संशयं सन्देहम्, प्राप्तस्य = अधिगतस्य, महाराजस्य = रावणस्य, बुद्धिः अपि = मतिः अपि, प्रसन्नत्वं = प्रसन्नस्य भावम्, न उपगच्छति = न प्राप्नोति ।

अन्वयः—चलत्तरङ्गाहतभीमवेलम् उदीर्णनक्राकुलनीलनीरं समुद्रम् आक्रान्तम् अवेक्ष्य तस्मै दारप्रदानात् शान्तिं न करोति ।

चलत्तेति—चलत्तरङ्गहतभीमवेलं = चलन्तः उद्गच्छन्तः ये तरङ्गाः वीचयः तैः आहता प्रताडिता भीमा भयङ्करा वेला तीरम् यस्य तम्, उदीर्णनक्राकुलनीलनीरम् = उदीर्णाः उपरि आगताः ये नक्राः कुम्भीराः तैः आकुलं व्याप्तं नीलं नीलवर्णं नीरं जलं यस्य तम्, समुद्रं = सागरम्, आक्रान्तं = तीर्णम्, अवेक्ष्य = विलोक्य, तस्मै = रामाय, दारप्रदानात् = भार्यार्पणात्, शान्तिं = सन्धिम्, न करोति = न विधत्ते । काव्यलिङ्गमलंकारः । उपजातिः छन्दः ।

अन्वयः—प्रहस्तप्रमुखाः कुम्भकर्णपुरस्सराः वीराः राघवेण निहताः अद्य शक्रजित् अपि च निर्गतः ।

प्रहस्तेति—प्रहस्तप्रमुखा = प्रहस्तः एतन्नामक राक्षसः प्रमुखः मुख्यः

चलती हुई तरङ्गों से प्रताड़ित भयङ्कर तटों वाले तथा ऊपर आये हुए ग्राहों के कारण नीले जल वाले समुद्र को पार करने वाले (राम) को देखकर उन्हें उनकी पत्नी प्रत्यर्पित करके सन्धि नहीं करता । और भी—

जिन वीरों का प्रहस्त प्रधान और कुम्भकर्ण नेता था वे (वीर) राम के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

एवमपि गते,

मदनवशगतो महानयार्थं सचिववचोऽप्यनवेक्ष्य वीरमानी ।
रघुकुलवृषभस्य तस्य देवीं जनकसुतां न ददाति योद्धुकामः ॥३॥

(प्रविश्य)

विद्युज्जिह्वः—अपि सुखमार्यस्य ।

काञ्चुकीयः—विद्युज्जिह्व ! गच्छ, महाराजवचनाद् रामलक्ष्मणयोः शिरः प्रतिकृतिरानीयताम् ।

येषु ते, कुम्भकर्णपुरस्सराः=कुम्भकर्णः रावणस्य भ्राता पुरःसरः अग्रणी येषां ते, वीराः=शूराः, राघवेण=रामेण, निहताः=मारिताः, अद्य =अस्मिन्दिवसे, शक्रजित् च=इन्द्रजित् मेघनादः अपि, निर्गतः=युद्धाय गतः ।

अन्वयः—मदनवशगतः वीरमानी महानयार्थं सचिववचः अपि अनवेक्ष्य योद्धुकामः तस्य रघुकुलवृषभस्य देवीं जनकसुतां न ददाति ।

मदनवशेति—मदनवशगतः=कामाधीनप्राप्तः, वीरमानी=आत्मनं वीरं मन्यमानः, महानयार्थं=नीतितत्त्वयुक्तम्, सचिववचः अपि=अमात्यवचनमपि, अनवेक्ष्य=अविचार्य, योद्धुकामः=योद्धुं युद्धकर्तुम् कामः अभिलाषः यस्य सः, तस्य=पूर्वोक्तस्य, रघुकुलवृषभस्य रघूणां रघुवंशीयानां वृषभस्य श्रेष्ठस्य, देवीं=महीषीम्, जनकसुतां=जानकीम्, न ददाति=न अर्पयति । पुष्पिताग्राच्छन्दः ।

गच्छेति—महाराजवचनात्=रावणादेशात्, शिरप्रतिकृतिः=शिरसोः

द्वारा मार दिये गये और आज इन्द्रजित् (मेघनाथ) भी (युद्ध के लिए) चला गया है ।

ऐसा होने पर भी—

काम के परवश हुआ तथा अपने को वीर मानने वाला (रावण) मन्त्रियों की भी बातों पर ध्यान न देकर युद्ध को चाहता हुआ उस रघुकुल श्रेष्ठ (राम) की पत्नी जानकी को नहीं दे रहा है ।

(प्रवेश करके)

विद्युज्जिह्व—आप का (कुशल) तो है ?

काञ्चुकीय—हे विद्युज्जिह्व ! जाओ, महाराज (रावण) के आदेशा-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विद्युज्जिह्वः—यदाज्ञापयति महाराजः। (निष्क्रान्तः)

काञ्चुकीयः—यावदहमपि महाराजस्य प्रत्यन्तरीभविष्यामि।

(निष्क्रान्तः)

॥ इति विष्कम्भकः ॥

(ततः प्रविशति राक्षसीगणपरिवृता सीता)

सीता—किण्णु हु अय्यउत्तस्य आगमणेण पहलादिअस्स हिअअस्स अज्ज आवेओ विअ संवुत्तो! अणिट्ठाणि णिमित्ताणि अ दिस्सन्ति। एवं वि दाणि हिअअस्स महन्तो अब्भुदओ वड्ढइ। सव्वहा इस्सरा सन्ति करन्तु। [किन्नु खल्वार्यपुत्रस्यागमने प्रह्लादिस्य हृदयस्याद्यावेग इव संवृत्तः। अनिष्टानि निमित्तानि च दृश्यन्ते। एवमपीदानीं हृदयस्य महानभ्युदयो वर्धते! सर्वथेश्वराः शान्ति कुर्वन्तु।]

मूर्ध्नोः प्रतिकृतिः प्रतिरूपम्, प्रत्यन्तरीभविष्यामि=समीपवर्ती भविष्यामि।

किन्नु इति—आर्यपुत्रस्य=प्रियतमस्य, आगमनेन=आयातेन, प्रह्लादितस्य=प्रसन्नस्य, हृदयस्य=चित्तस्य, अद्य=अस्मिन्दिवसे, आवेगः=उद्वेगः, संवृत्तः=जातः। अनिष्टानि=अशुभानि, निमित्ताति=शकुनानि, दृश्यन्ते=विलोक्यन्ते। एवम्=अनेन प्रकारेण, इदानीम्=अधुना, हृदयस्य=चित्तस्य, महान्=विपुलः, अभ्युदयः=कल्याणः, अभिवर्तते=वृद्धिं गच्छति, सर्वथा=सर्वप्रकारेण, ईश्वराः=देवाः, शान्ति=उपद्रवोपशमनं, कुर्वन्तु=विधास्यन्तु।

नुसार राम और लक्ष्मण के सिर की प्रतिकृति ले जाओ!

विद्युज्जिह्व—जो महाराज की आज्ञा। (निकल जाता है)

काञ्चुकीय—तब तक मैं भी महाराज का समीपवर्ती होऊँगा।

(निकल जाता है)

॥ विष्कम्भक समाप्त ॥

(तत्पश्चात् राक्षसीगणों से घिरी हुई सीता प्रवेश करती है)

सीता—किन्तु आर्यपुत्र के आगमन से (मेरे) प्रसन्न हृदय में उद्वेग-सा हो रहा है। अशुभ लक्षण भी दिखलाई पड़ रहे हैं। ऐसा होने पर भी हृदय का महान् अभ्युदय बढ़ रहा है। सर्वथा ईश्वर शान्ति करें।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(ततः प्रविशति रावणः)

रावणः—मा तावद्,

एषा विहाय भवनं मम सम्प्रयाता
नारी नवामलजलोद्भवलग्नहस्ता ।
लङ्का यदा हि समरे वशमागता मे
पौलस्त्यमाशु परिजित्य तदा गृहीता ॥ ४ ॥

भवति ! तिष्ठ तिष्ठ । न खलु न खलु गन्तव्यम् । किं ब्रवीषि—उत्सृज्य त्वां राममुपगच्छामीति । आः अपध्वंस ।

अन्वयः—समरे पौलस्त्यं आशु परिजित्य यदा हि एषा नवामलजलोद्भवलग्नहस्ता नारी लङ्का मे वशम् आगता तदा (मया) गृहीता (इदानीं तु) मम भवनं विहाय सम्प्रयाता ।

समरे इति—समरे=युद्धे, पौलस्त्यं=कुबेरम्, आशु=शीघ्रम्, परिजित्य=पराभूय, यदा=यस्मिन्काले, हि=निश्चयेन, एषा=पुरोवर्तमाना; नवामलजलोद्भवलग्नहस्ता=नवं नूतनम् अमलं विमलं च यत् जलोद्भवं कमलं तस्मिन् लग्नः आसक्तः हस्तः करः यस्या सा, लङ्का एव नारी=स्त्री; मे=मम, वशम्=अधिकारे, आगता=आयाता, तदा=तस्मिन् काले; गृहीता=मया स्वीकृता, (अधुना तु), मम=रावणस्य, भवनं=गृहम्, विहाय=त्यक्त्वा, सम्प्रयाता=गता । रूपक अलङ्कारः । वसन्ततिलकाच्छन्दः ।

भवति इति—उत्सृज्य=त्यक्त्वा, त्वां=रावणम्, रामं=राघवम्;

(तत्पश्चात् रावण प्रवेश करता है)

रावण—नहीं तो—

युद्ध में कुबेर को शीघ्र पराजित करके जब नवीन तथा निर्मल कमल से युक्त हाथों वाली यह नारी-रूपी लङ्का वश में आयी तो (मेरे द्वारा) अपना ली गयी । (किन्तु अब) मेरे घर को छोड़कर जा रही है ।

हे नारी, ! रुको, रुको । मत, मत जाओ । क्या कहती हो—तुम (रावण) को छोड़कर राम के पास जा रही हूँ । ओह ! विनष्ट हो जाओ ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बलादेव गृहीतासि तदा वैश्रवणालये ।
बलादेव ग्रहीष्ये त्वां हत्वा राघवमाहवे ॥ ५ ॥

किमनया । यावदहमपि सीतां विलोभयिष्ये । (मदनावेशं निरूप्य) अहो नु खल्वतुलबलता कुसुमधन्वनः कुतः,

निद्रां मे निशि विस्मरन्ति नयनान्यालोक्य सीताननं
तत्संश्लेषसुखार्थिनी तनुतरा याता तनुः पाण्डुताम् ।

समीपं यामि । उपध्वंस = विनाशं गच्छ ।

अन्वयः—तदा वैश्रवणालये बलात् एव गृहीता असि ।(अधुना) आहवे राघवं हत्वा बलात् एव त्वां ग्रहीष्ये ।

बलादेवेति—तदा = तस्मिन्काले, वैश्रवणालये = वैश्रवणस्य कुबेरस्य आलये भवने, बलात् = बलपूर्वकम्, एव, गृहीता असि = आत्मायत्तीकृता असि । (अधुना) आहवे = युद्धे, राघवं = रामम्, हत्वा = व्यापाद्य, बलात् एव = बलपूर्वकमेव, त्वां = लक्ष्मीम्, ग्रहीष्ये = स्ववशे करिष्ये ।

किमेति—अनया = लङ्कया, किं = किं प्रयोजनम् । सीतां = जानकीम्, विलोभयिष्ये = आकर्षयामि, अतुलबलता = अपरिमितबलशालिता, कुसुमधन्वनः = कामदेवस्य ।

अन्वयः—सीताननम् आलोक्य मे नयनानि निशि निद्रां विस्मरन्ति तत्संश्लेषसुखार्थिनी तनुः तरा पाण्डुतां याता, रमणीयवस्तुविषये (च) सन्तापं

उस समय कुबेर के घर में तुम (मेरे द्वारा) बलपूर्वक ग्रहण की गयी थी, (इस समय भी) युद्ध में राम को मारकर तुम्हें बलपूर्वक ही ग्रहण करूँगा ।

इस (लङ्का) से क्या ? तब तक मैं सीता को लुभाऊँगा । (कामावेश का अभिनय करके) कामदेव की बलशालिता अपरिमित है क्योंकि—

सीता के मुख को देखकर मेरी आखें रात में नींद भूल जाती हैं (अर्थात् रात को नींद नहीं आती) । उस (सीता) के स्पर्श के सुख को चाहने वाली (मेरी) देह कृशतर होती हुई पीली पड़ी जा रही है तथा (उस सीता के बिना) रमणीय वस्तुओं के प्रति सन्तप्त हुआ करती है । कष्ट है कि जीते

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सन्तापं रमणीयवस्तुविषये बध्नाति पुष्पेषुणा
कष्टं निर्जितविष्टपत्रयभुजो निर्जीयते रावणः ॥ ६ ॥

(उपेत्य)

सीते ! त्यज त्वमरविन्दपलाशनेत्रे !
चित्तं हि मानुषगतं मम चित्तनाथे ! ।
शस्त्रेण मेऽद्य समरे विनिपात्यमानं
प्रेक्षस्व लक्ष्मणयुतं तव चित्तकान्तम् ॥ ७ ॥

बध्नाति । कष्टम् ! निर्जिताविष्टपत्रयभुजः रावणः पुष्पेषुणा निर्जीयते ।

निद्रामिति—सीताननम्=जानकीमुखम्, आलोक्य=विलोक्य, मे=मम, नयनानि=नेत्राणि, निशि=रात्रौ, निद्रां=स्वापम्, विस्मरन्ति=विस्मृतिं कुर्वन्ति । तत्संश्लेषसुखार्थी=तस्याः सीतायाः संश्लेषः आलिंगनं तस्य सुखस्य आनन्दस्य अर्थी अभिलाषी, तनुः=शरीरम्, तनुतरा=क्षीणतरा, यांता=गता, रमणीयवस्तुविषये=रमणीयानि मनोहराणि च यानि वस्तूनि पदार्थाः तेषां विषये सम्बन्धे, सन्तापं=विषाहम्, बध्नाति=धारयति । कष्टं=दुःखम्, निर्जितविष्टपत्रयभुजः=निर्जितं पराजितं विष्टपत्रयं भुवनत्रयं भुङ्क्ते निविशते इति तथोक्तः रावणः, पुष्पेषुणा=कामदेवेन, निर्जीयते=पराभूयते । शार्दूलविक्रीडितं छन्दः ।

अन्वयः—हे अरविन्दपलाशनेत्रे ! मम चित्तनाथे ! त्वं हि मानुषगतं चित्तं त्यज । अद्य समरे में शस्त्रेण विनिपात्यमानं लक्ष्मणयुतं तव चित्तकान्तं प्रेक्षस्व ।

सीतेति—अरविन्दपलाशनेत्रे=हे कमलपक्षनयने ! मम=रावणस्य,

गये तीनों लोकों का भोग करने वाला रावण कामदेव के द्वारा पराजित हो गया है ।

(समीप जाकर)

हे कमल-पत्र के समान आखों वाली मेरी प्राणेश्वरी सीते ! मनुष्य (राम) में अनुरक्त चित्त को हटा लो । आज युद्ध में मेरे शास्त्र द्वारा लक्ष्मण सहित मारे हुए अपने प्राणप्रिय (राम) को देखो ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सीता—हं मूढो खु सि रावणओ, जो मन्दरं हत्थेण तुलयिदुकामो ।
[हं मूढः खल्वसि रावणकः, यो मन्दरं हस्तेन तुलयितुकामः ।]

(प्रविश्य)

राक्षसः—जयतु महाराजः ।

एते तयोर्मानुषयोः शिरसी राजपुत्रयोः ।
युधि हत्वा कुमारेण गृहीते त्वत्प्रियार्थिना ॥ ८ ॥

रावणः—सीते ! पश्य पश्य तयोर्मानुषयोः शिरसी ।

चित्तनाथे = हे प्राणनाथे ! सीते = जनकात्मजे ! त्वं = सीता; हि = निश्चयेन, मानुषगते = मनुष्ये रामे गतम् अनुरक्तम्, चित्तं = हृदयम्, त्यज = विसृज, अद्य = अस्मिन् दिवसे, समरे = युद्धे, मे = मम, शस्त्रेण = आयुधेन, विनिपात्यमानं = वधमानम्, लक्ष्मणयुतं = सलक्ष्मणम्, तव = सीतायाः, चित्तकान्तं = प्रियतमं, प्रेक्षस्व = पश्य । उपमालङ्कारः । वसन्ततिलकाच्छन्दः ।

अन्वयः—त्वत्प्रियार्थिना कुमारेण युधि हत्वा तयोः मानुषयोः राजपुत्रयोः एते शिरसी गृहीते ।

एते इति—त्वत्प्रियार्थिना = तव रावणस्य प्रियार्थिना अभीष्टार्थिना, कुमारेण = मेघनादेन, युधि = युद्धे, हत्वा = मारयित्वा, तयोः मानुषयोः = मनुष्यजात्योः, राजपुत्रयोः = राजकुमारयोः, एते = इमे, शीरसी = शीर्षे, गृहीते स्तः । अनुष्टुप्च्छन्दः ।

सीता—ओह ! रावण तुम निश्चित ही मूर्ख हो । जो मन्दराचल को हाथ से तौलना (उठाना) चाहते हो ।

(प्रवेश करके)

राक्षस—महाराज विजयी होवें ।

आप का प्रिय चाहने वाले कुमार (मेघनाथ) के द्वारा युद्ध में मारकर उन दोनों मनुष्य राजकुमारों के ये सिर उतार लिये गये हैं ।

रावण—हे सीते ! उन दोनों मनुष्यों के सिर को देखो, देखो ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सीता—हा अय्यउत्त ! (इति मूर्च्छिता पतति) (हा आर्यपुत्र !)

रावणः—

सीते ! भावं परित्यज्य मानुषेऽस्मिन् गतायुषि ।
अद्यैव त्वं विशालाक्षि ! महतीं श्रियमाप्नुहि ॥ ९ ॥

सीता—(प्रत्यभिज्ञाय) हा अय्यउत्त ! परिमलणवकमलसण्णिहे वदणे परिवुत्तणअणे पेक्खन्ती अदिधीरा खु म्हि मन्दभाआ । हा अय्यउत्त ! एदस्सिं दुःखसाअरे मं णिक्खिविअ कहिं गदो सि । जाव ण भरामि । किं णु खु अलिअं एदं भवे । भद्द ! जेण असिणा अय्यउत्तस्य असदिसं किदं, तेण मं वि मारेहि । [हा आर्यपुत्र ! परिमलनवकमलसन्निभे वदने परिवृत्तनयने पश्यन्ती अतिधीरा खल्वस्मि मन्दभागा । हा आर्यपुत्र ! एतस्मिन् दुःखसागरे मां निक्षिप्य कुत्र गतोऽसि । यावन्न म्रिये । किन्नु खल्वलीकमेतद् भवेत् । भद्र ! येनासिनार्यपुत्रस्यासदृशं कृतं तेन मामपि मारय ।]

अन्वयः—हे सीते ! गतायुषि अस्मिन् मानुषे भावं परित्यज्य हे विशालाक्षि ! त्वम् अद्य एव महतीं श्रियम् आप्नुहि ।

सीतेति–विशलाक्षि=आयतनयने ! सीते=हे जनकात्मजे ! गतायुषि=मृते, अस्मिन्=पुरोवर्तमाने, मानुषे=नरे, भावम्=अनुरागम्, परित्यज्य=त्यक्त्वा, त्वं=सीता, अद्य एव=अस्मिन्दिवसे एव, महतीं=विशालाम्, श्रियं=लक्ष्मीम्, आप्नुहि=प्राप्नुहि । अनुष्टुप्च्छन्दः ।

प्रत्यभिज्ञायेति—प्रत्यभिज्ञाय=संज्ञां लब्ध्वा, परिमलनवकमलसन्निभे=

सीता—हाय आर्यपुत्र ! (मूर्च्छित होकर गिर पड़ती है) ।

रावण—हे विशाल नेत्रों वाली सीते ! मरे हुए इस मनुष्य के प्रति अनुराग छोड़कर आज ही तुम विशाल लक्ष्मी को प्राप्त करो ।

सीता—(होश में आकर) हाय आर्यपुत्र ! सुगन्धित तथा नूतन कमल जैसे मुख पर पलटी हुई आँखों को देखकर मैं अभागिनी अतिधीर हूँ । हाय आर्यपुत्र ! मुझको इस दुःख-सागर में फेंक कर कहाँ चले गये । मैं अभी मरी भी नहीं । कहीं यह झूठ ही न हो । हे भद्र ! जिस तलवार से आर्यपुत्र का अनुचित किया गया उसी से मुझको भी मार दीजिए ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

रावणः—

व्यक्तमिन्द्रजिता युद्धे हते तस्मिन् नराधमे ।
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा केन त्वं मोक्षयिष्यसे ॥ १० ॥

(नेपथ्ये) रामेण रामेण ।

सीता—चिरं जीव ।

(प्रविश्य)

राक्षसः—(ससम्भ्रमम्) रामेण रामेण ।

रावणः—किं रामेण रामेणेति प्रलपसि ।

परिमलः सौरभयुक्तं नवलकलं नवीनजलजं तत्सन्निभे तत्सदृशे, वदने=मुखे, परिवृत्तनयने=परिवृत्ते घूर्णिते नयने नेत्रे, पश्यन्ती=अवलोकयन्ती, अतिधीरा=अत्यधिकेन धैर्ययुक्ता, मन्दभाग्या=दुर्भाग्ययुक्ता, अस्मि । दुःखसागरे=दुखं: कष्टम् एव सागरः समुद्रः तस्मिन्, निक्षिप्य=पातयित्वा, गतः=यातः, न म्रिये=प्राणान् न त्यजामि, अलीकं=मिथ्या, भवेत्=स्यात्, असिना=खड्गेन, असदृशम्=अनुचितम् ।

अन्वयः—भ्रात्रा लक्ष्मणेन सह तस्मिन् नराधमे इन्द्रजिता व्यक्तं युद्धे हते सति केन त्वं मोक्षयिष्यसे ।

व्यक्तमिति—भ्राता=अनुजेन, लक्ष्मणेन सह=लक्ष्मणसहितेन, तस्मिन्, नराधमे=नीचे रामे, इन्द्रजिता=मेघनादेन, व्यक्तं=प्रत्यक्षम्, युद्धे=रणे, हते=व्यापादिते, केन=पुरुषेण, त्वं=सीता, मोक्षयिष्यसे=बन्धनमुक्ता करिष्ये ।

रावण—युद्ध में इन्द्रजित् (मेघनाथ) द्वारा भाई लक्ष्मण के साथ उस नराधम (राम) के मार दिये जाने पर तुम किसके द्वारा छुड़ायी जाओगी ।

(नेपथ्य में) राम के द्वारा, राम के द्वारा ।

सीता—बहुत समय तक जीवित रहो ।

(प्रवेश करके)

राक्षस—(घबड़ाया हुआ) राम के द्वारा, राम के द्वारा ।

रावण—क्या राम के द्वारा, राम के द्वारा बक रहे हो ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

राक्षसः—प्रसीदतु प्रसीदतु महाराजः । अतिपातिवृत्तान्तनिवेदन-त्वरयावस्थान्तरं नावेक्षितम् ।

रावणः—ब्रूहि ब्रूहि । किं कृतं मनुजतापसेन ।

राक्षसः—श्रोतुमर्हति महाराज तेन खलु,

उदीर्णसत्त्वेन महाबलेन लङ्केश्वरं त्वामभिभूय शीघ्रम् ।
सलक्ष्मणेनाद्य हि राघवेण प्रसह्य युद्धे निहतः सुतस्ते ॥ ११ ॥

रामेणेति—अतिपातिवृत्तान्तनिवेदनत्वरयावस्थान्तरं=अतिपाति अत्यावश्यकं यः वृत्तान्तः समाचारः तस्य निवेदनस्य विज्ञापनस्य त्वरया शीघ्रतया अवस्थान्तरम् अन्य अवस्था स्थितिः इति अवस्थान्तरम्, न अवेक्षितम्= न ध्यानं दत्तम् । मनुजतापसेन=मनुष्यतपस्विना, किं=किं कार्यम्, कृतं=विहितम् ।

अन्वयः—उदीर्णसत्त्वेन महाबलेन सलक्ष्मणेन राघवेण हि लङ्केश्वरं त्वां शीघ्रम् अभिभूय युद्धे अद्य प्रसह्य हि ते सुतः निहतः ।

उदीर्णेति—उदीर्णसत्त्वेन=दृढ़निश्चययुक्तेन, महाबलेन=अतिबलशालिना, सलक्ष्मणेन=लक्ष्मणसहितेन, राघवेण=रामेण, हि=निश्चयेन, त्वां=भवन्तम्, लङ्केश्वरं=लङ्काधिपतिम्, शीघ्र=त्वरया, अभिभूय=तिरस्कृत्य, युद्धे=रणे, अद्य=अस्मिन्दिवसे, प्रसह्य=बलात्, ते=तव, सुतः=पुत्रः, हतः=व्यापादितः । अनुष्टुप्छन्दः ।

राक्षस—प्रसन्न होइए, महाराज प्रसन्न होइए । अत्यावश्यक समाचार की सूचना देने की शीघ्रता के कारण (मेरे द्वारा) अन्य अवस्था का ध्यान नहीं दिया गया ।

रावण—कहो, कहो उस मनुष्य तपस्वी द्वारा क्या किया गया ।

राक्षस—महाराज सुनिए । उसके द्वारा,

बढ़े हुए निश्चय वाले, महाबलशाली लक्ष्मण के साथ (उस) राम के द्वारा, आप लङ्केश्वर (रावण) को शीघ्र तिरस्कृत करके, आज युद्ध में आप का बेटा (मेघनाथ) बलात् मार दिया गया ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

रावणः—आ दुरात्मन् ! समरभीरो !

देवाः सेन्द्रा जिता येन दैत्याश्चापि पराङ्मुखाः ।
इन्द्रजित् सोऽपि समरे मानुषेण निहन्यते ॥ १२ ॥

राक्षसः—प्रसीदतु महाराजः । महाराजपादमूले कुमारमन्तरेणानृतं नाभिधीयते ।

रावणः—हा वत्स ! मेघनाद ! । (इति मूर्च्छितः पतति)

राक्षसः—महारा !ज समाश्वसिहि समाश्वसिहि ।

रावणः—(प्रत्यभिज्ञाय)

हा वत्स ! सर्वजगतां ज्वरकृत् ! कृतास्त्र !
हा वत्स ! वासवजिदानतवैरिचक्र ! ।

अन्वयः—येन सेन्द्राः देवाः जिताः दैत्याः च अपि पराङ्मुखाः, सः अपि इन्द्रजित् समरे मानुषेण निहन्यते ।

देवाः इति—येन=मेघनादेन, सेन्द्राः=इन्द्रेण सहिताः, देवाः=सुराः, दैत्याश्च=असुराश्च, अपि, पराङ्मुखाः=विमुखाः अभवन्, सः=इन्द्रजित् मेघनादः अपि, समरे=युद्धे, मानुषेण=मानवेन, निहन्यते=मार्यते । अनुष्टुप्च्छन्दः ।

अन्वयः—हा वत्स ! सार्वजगतां ज्वरकृत् ! कृतास्त्र ! हा वत्स ! वासवजित् ! आनतवैरिचक्र ! हा वत्स ! वीर! गुरुवत्सलः युद्धशौण्ड ! हा वत्स !

रावण—अरे दुरात्मा ! युद्ध में डरने वाले !

जिस (मेघनाथ) के द्वारा इन्द्र के सहित देवता पराजित कर दिये गये तथा दैत्य (युद्ध से) भगा दिये गये, वह इन्द्रजित् भी युद्ध में मनुष्य के द्वारा मार दिया गया ।

राक्षस—महाराज प्रसन्न होइए । कुमार (मेघनाथ) के विषय में आपके समक्ष झूठ कैसे बोलूँगा ।

रावण—हाय बेटा मेघनाथ ! (मूर्च्छित होकर गिर जाता है) ।

राक्षस—हे महाराज ! धैर्य रखिए ।

रावण—(पहचान कर) हाय बेटा ! हे सभी लोकों को ज्वर पैदा करने वाले ! अस्त्रों के अभ्यासी ! हाय बेटा ! इन्द्र को पराजित कर देनें वाले !

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitized by eGangotri

हा वत्स ! वीर ! गुरुवत्सल ! युद्धशौण्ड !
हा वत्स ! मामिह विहाय गतोऽसि कस्मात् ॥१३॥

(इति मोहमुपगतः)

राक्षसः—हा धिक् त्रैलोक्यविजयी लङ्केश्वर एतामवस्थां प्रापितो हतकेन विधिना। महाराज ! समाश्वसिहि समाश्वसिहि।

रावणः—(समाश्वस्य) इदानीमनर्थहेतुभूतया सीतया किमनया त्रैलोक्यविजयविफलया चपलया श्रिया च। किं भोः कृतान्तहतक ! अद्यापि भयविह्वलोऽसि !

इह मां विहाय कस्मात् गतः असि।

हा वत्सेति—हा वत्स=हे पुत्रः ! सर्वजगतां=सर्वाणि च तानि जगन्ति लोकाः तेषाम्, ज्वरकृत्=सन्तापकारक ! कृतास्त्र=हे अस्त्राभ्यासी ! वासवजित्=हे इन्द्रजित्, आनतवैरिचक्र=हे प्रणतशत्रुदल ! गुरुवत्सल=हे गुरोः मातपित्रोः वत्सल प्रिय ! युद्धशौण्ड=हे युद्धे समरे शौण्ड निपुण ! इह मां रावणम्, विहाय=त्यक्त्वा, कस्मात्=कस्मात् कारणात्, गतः=यातः। वसन्ततिलकाच्छन्दः।

धिगेति—त्रैलोक्यविजयी=लोकत्रयविजेता, लङ्केश्वरः=लङ्काधिपतिः, एताम्=पुरोवर्तमानाम्, अवस्थां=दशाम्, प्रापितः=नीतः। हतकेन=कुकर्मणा, विधिना=भाग्येन।

इदानीमिति—इदानीम्=अधुना, अनर्थहेतुभूतया=अनर्थस्य विपत्तेः हेतुः

तथा शत्रुदलों को झुका देने वाले ! हाय बेटा ! हाय वीर ! गुरुवत्सल ! युद्धवीर ! हाय बेटा ! यहाँ मुझे छोड़कर क्यों चले गये। (मूर्च्छित हो जाता है)।

राक्षस—ओह धिक्कार है, नीच भाग्य के द्वारा तीनों लोकों को पराजित करने वाले लङ्केश्वर (रावण) इस अवस्था को पहुँचा दिये गये हैं। हे महाराज ! धैर्य धारण कीजिए, धैर्य धारण कीजिए।

रावण—(आश्वस्त होकर) अब अनर्थों का कारण बनी हुई सीता से तथा त्रैलोक्य विजय करने पर भी व्यर्थ हुई उस चञ्चल लक्ष्मी से क्या प्रयोजन ? अरे हे नीच यमराज ! क्या अब भी तुम भयभीत हो ?

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इदानीमपि निःस्नेहो वत्सेनेन्द्रजिता विना ।
कष्टं कठोरहृदयो जीवत्येष दशाननः ॥ १४ ॥

(इति सन्तापात् पतति)

राक्षसः—हा भो रजनीचरवीराः ! एवंगते राजन्यन्तःकक्ष्यास्थिता रक्षिणश्चाप्रमत्ता भवन्तु भवन्तः ।

(नेपथ्ये)

कारणं भूता अनया, त्रैलोक्यविजयाविफलया = लोकत्रय विजये कृतेऽपि विफलया निष्फलया, चपलया = चञ्चलया, सीतया = जनकात्मजया । कृतान्तहतक = हे नीच यमराज ! भयविह्वलः = भयेन भीत्या विह्वलः व्याकुलः, असि = वर्तसे ।

अन्वयः—निःस्नेहः वत्सेन इन्द्रजिता विना इदानीम् अपि कठोर हृदयः एषः दशाननः जीवति (इति) कष्टम् ।

इदानीमिति—निःस्नेह = स्नेहरहितः सन्, वत्सेन = पुत्रेण, इन्द्रजिता = मेघनादेन, विना, इदानीम् = अधुना, अपि, कठोरहृदयः = दारुणमनः, एषः = अयम्, दशाननः = रावणः, जीवति = प्राणिति । अनुष्टुप्च्छन्दः ।

रजनीचरेति—रजनीचरवीराः = राक्षसशूराः, राजनि = रावणे, एवं गते = एतामवस्थाम् प्राप्ते सति, अन्तःकक्ष्यास्थिताः = अन्तः अभ्यान्तरे कक्ष्या प्रकोष्ठः तस्मिन् स्थिताः वर्तमानाः, रक्षिणः = रक्षकाः, भवन्तः = यूयम्, अप्रमत्ता भवन्तु = सावधाना भवन्तु ।

बेटा इन्द्रजित् के विना अब भी निःस्नेह तथा कठोर हृदय वाला यह दशानन (रावण) जीवित है, यह कष्ट है ।

(सन्ताप से गिर पड़ता है)

राक्षस—हे राक्षस वीरों ! आप रनिवास में स्थित रक्षक-गण राजा की ऐसी दशा होने पर सावधान हो जाओ ।

(नेपथ्य में)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भो भो रजनीचरवीराः ! समरमुखनिरस्तप्रहस्तनिकुम्भकुम्भकर्णेन्द्रजिद्विकलबलजलधिजनितभयचकितविमुखाः ! चपलपलायनमनुचितमविरतममरसमराणि जितवतां भवताम्, अथ च विश्वलोकविजयविख्यात्विंशद्बाहुशालिनि भर्तर्यत्र स्थितवति लङ्केश्वरे ।

रावणः—(श्रुत्वा सामर्षम्) गच्छ, भूयो ज्ञायतां वृत्तान्तः ।

राक्षसः—यदाज्ञापयति महाराजः । (निष्क्रम्य प्रविश्य) जयतु महाराजः । एष हि रामः,

---

समरमुखेति—समरमुखनिरस्तप्रहस्तनिकुम्भकुम्भकर्णेन्द्रजिद्विकलबलजलधिजनितभयचकितविमुखाः=समरस्य युद्धस्य मुखे अग्रभागे निरस्ताः हताः प्रहस्ताश्च निकुम्भश्च कुम्भकर्णश्च इन्द्रजित् मेघनादश्च तैः विकलः रहितम् बलं सैन्यम् एव जलधि समुद्रः तस्मिन् जनितम् उत्पादितम् यत् भयं तेन चकिताः आकुलाः विमुखाः पराङ्मुखाश्च, अविरतम्=निरन्तरम्, अमरसमराणि=देवयुद्धानि, जितवतां=जेतृणाम् भवताम्, चपलपलायनं=चपलं त्वरितं पलायनं युद्धात् विमुखीभूय धावनम्, अनुचितम्=अयोग्यम्, विश्वलोकेविजयविख्यातविशद्बाहुशालिनि=विश्वस्य जगतः लोकस्य च विजये जयने विख्याताः प्रसिद्धाः ये विंशत् भुजा बाहवः तैः शालितु शीलं यस्य सः, भर्तरि=स्वामिनि, स्थितवति=जीवति सति, भूयः=पुनः, ज्ञायताम्=उपलभ्यताम्, वृत्तान्तः, समाचारः ।

हे हे राक्षस वीरो ! युद्ध की अगली सैनिक पंक्ति में मारे गये प्रहस्त, निकुम्भ, कुम्भकर्ण और मेघनाद से रहित हुई सेना-रूपी समुद्र में उत्पन्न भय से व्याकुल और (युद्ध से) पीठ फेरने वालो ! निरन्तर देवताओं के साथ युद्ध जीतने वाले आपलोगों को (युद्ध क्षेत्र से) शीघ्र भाग जाना अनुचित है और वह भी विश्वविजय में विख्यात बीस भुजाओं वाले स्वामी लङ्केश (रावण) के यहाँ रहते ।

रावण—(सुनकर क्रोध-पूर्वक) जाओ, फिर समाचार मालूम करो ।

राक्षस—जैसी महाराज की आज्ञा । (निकल कर पुनः प्रवेश करके) महाराज विजयी होवें । यह राम—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitized by eGangotri

धनुषि निहितबाणस्त्वामतिक्रम्य गर्वा-
द्धरिगणपरिवारो हाससम्फुल्लनेत्रः ।
रणशिरसि सुतं ते पातयित्वा तु राज-
न्नभिपतति हि लङ्कां सन्दिधक्षुर्यथैव ॥ १५ ॥

रावणः—(सहसोत्थाय सरोषम्) क्वासौ क्वासौ (असिमुद्यम्य)
वज्रीभकुम्भतटभेदकठोरधारः
क्रोधोपहारमसिरेष विधास्यति त्वाम् ।

अन्वयः—हे राजन् ! गर्वात् त्वाम् अतिक्रम्य धनुषि निहितबाणः हरिगण-परिवारः हाससम्फुल्लनेत्रः (रामः) रणशिरसि ते सुतं पातयित्वा यथा लङ्का सन्दिधक्षुः एव हि अभिपतति ।

धनुषीति—राजन्=हे नृप ! गर्वात्=अभिमानात्, त्वां=रावणम्, अतिक्रम्य=अवज्ञाय, धनुषि=चापे, निहितबाणः=निहितः आरोपितः बाणः शरः येन सः, हरिगणपरिवारः=हरिणां वानराणां गणः दलं, परिवारः अनुयायिवर्गः यस्य सः, हाससम्फुल्लनेत्रः=हासेन स्मितेन प्रफुल्ले विकसिते नेत्रे नयने यस्य सः, रणशिरसि=युद्धाग्रे, ते=तव, सुतं=पुत्रम्, पातयित्वा=धाराशायीकृत्य, यथा=येन प्रकारेण, लङ्काम्=एतन्नामकनगरम्, सन्दिधक्षुः=सन्दग्धुमिच्छुः एव, अभिपतति=आक्रामति । मालिनीच्छन्दः ।

अन्वयः—वज्रीभकुम्भतटभेदकठोरधारः मत्करस्थः एषः असि त्वां क्रोधोपहारं विधास्यति । सम्प्रति अनिमिषाः इह (त्वां) अवन्तु । हे क्षुद्र !

हे राजन् ! गर्व के कारण आप को तिरस्कृत करके धनुष पर चढ़े बाण वाला, वानरगण से परिवृत्त, मुस्कराहट से विकसित आँखों वाला, युद्ध में आप के पुत्र को मार कर मानो फूँकने की इच्छा से लङ्का में घुस रहा है ।

रावण—(सहसा उठकर क्रोधपूर्वक) कहाँ है वह, कहा हैं वह ? (तलवार उठाकर)

इन्द्र के हाथी (ऐरावत) के गण्डस्थलों के किनारों को फाड़ देने के कारण कठोर धार वाला, मेरे हाथ में स्थित यह तलवार तुम (राम) को क्रोध का

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सम्प्रत्यवन्त्वनिमिषा इह मत्करस्थः
क्षुद्र ! क्व यास्यसि कुतापस ! तिष्ठ तिष्ठ ॥१६॥

राक्षसः—महाराज ! अलमतिसाहसेन ।

सीता—अणिट्ठाणि अणरुहाणि अणिमित्ताणि इदाणिं करअतस्स रावणस्स अइरेण मरणं भविस्सदि । [अनिष्टान्यनर्हाण्यनिमित्तानीदानीं कुर्वतो रावणस्याचिरेण मरणं भविष्यति ।]

रावणः—अस्याः कारणेन बहवो भ्रातरः सुताः सुहृदश्च मे

कुतापस ! क्व यास्यसि ? तिष्ठ तिष्ठ ।

वज्रीभेति—वज्रीभकुम्भतटभेदकठोरधारः = वज्रीभः ऐरावतः तस्य कुम्भयोः गण्डस्थलयोः तटयोः प्रान्तयोः भेदेन छेदेन कठोरा कठिना धारा अग्रं यस्य सः, मत्करस्थ = मम मे करस्थः हस्तस्थः, एषः = पुरोवर्तमानः, असिः = खड्गः, त्वां = रावणम्, क्रोधोपहारम् = क्रोधस्य कोपस्य उपहारं बलिम्, विधास्यति = करिष्यति । सम्प्रति = इदानीम्, अनिमिषा = निरन्तरम्, इह = अत्र, अवन्तु = रक्षन्तु, हे क्षुद्र = हे नीच ! कुतापस = कुत्सिततपस्वी, क्व = कुत्र, यास्यसि = गमिष्यसि, तिष्ठ तिष्ठ = विरम विरम । रूपक अलङ्कारः । वसन्ततिलकाच्छन्दः ।

अलमेति—अलम् = इति प्रतिषेधे, अतिसाहसेन = सीमातिरेकसाहसेन ।

अनिष्टेति—अनिष्टानि = अनुचितानि, अनर्हाणि = निष्प्रयोजनानि, अनिमित्तानि = निमित्तरहितानि, इदानीम् = अधुना, कुर्वतः = अनुतिष्ठतः, अचिरेण = शीघ्रम्, मरणं = यमपुरगमनम्, भविष्यति = विधास्यति ।

अस्याः इति—अस्याः = सीतायाः, कारणेन = हेतुना, भ्रातरः = बान्धवः,

---

उपहार बनाएगी । अब देवता यहाँ (तुम्हारी) रक्षा करें । अरे नीच दुष्ट तापस ! रुको, रुको । (अब) बचकर कहाँ जाओगे ।

राक्षस—हे महाराज ! साहस करना व्यर्थ है ।

सीता—अनिष्ट, अनुचित और निष्प्रयोजन कार्यों को करते हुए रावण की मृत्यु अब शीघ्र ही होगी ।

रावण—इस (सीता) के कारण मेरे बहुत से भाई, पुत्र और मित्र मारे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

निहताः। तस्मादमित्रविषयमस्या हृदयं भित्त्वा कृष्टान्त्रमालालङ्कृताः खड्गाशनिपातेन स मनुजयुगलं सकलवानरकुलं ध्वंसयामि।

राक्षसः—प्रसीदतु प्रसीदतु महाराजः। अलमलमिदानीमविरलावलेपमन्तरेणानवरतवृथाप्रयासेन। अवश्यं च स्त्रीवधो न कर्तव्यः।

रावणः—तेन हि स्यन्दनमानय।

राक्षसः—यदाज्ञापयति महाराजः। (निष्क्रम्य प्रविश्य) जयतु महाराजः। इदं स्यन्दनम्।

रावणः—(रथमारुह्य)

सुताः=आत्मजाः, सुहृदः=मित्राः, मे=मम, निहताः=मारिताः। तस्मात्=अत एव, अमित्रविषयं=शत्रुभूतम्, अस्याः=पुरोवर्तमानायाः सीतायाः हृदयं=अन्तःस्थलम्, भित्त्वा=छित्वा, कृष्टान्त्रमालालङ्कृतः=कृष्टानि बहिर्निस्सरितानि यानि अन्त्राणि पुरीतन्ति तेषां मालया स्रजा अलङ्कृतः भूषितः अहम्, खड्गाशनिपातेन=खड्गः कृपाणः अशनः इव वज्रम् इव तस्य निपातेन पातनेन, समनुजयुगलं=मनुजयोः मनुष्योः युगलं द्वयम् तेन सह विद्यमानम्, सकलवानरकुलं=सम्पूर्णकपिवंशम्, ध्वंसयामि=विनाशयामि।

प्रसीदतु इति—अविरलावलेपनं=अविरले शत्रुसेनयां अवलेपः परिचतम्, अन्तरेण=विना, अनवरतवृथाप्रयासेन=अनवरतः सततं यः वृथा व्यर्थः प्रयासः प्रयत्नः तेन। स्त्रीवधः=नारीहननम्, न कर्तव्यः=न करणीयः।

गये। अतः शत्रुता की आश्रयभूता इस (सीता) के हृदय को चीर कर इसकी आतों की माला से सुशोभित हुआ मैं मनुष्य-युगल (राम और लक्ष्मण) के सहित सम्पूर्ण वानरगण को तलवार की धार से विनष्ट कर देता हूँ।

राक्षस—प्रसन्न होइए, महाराज (आप) प्रसन्न होइए। अब बिना शत्रु-सेना का परिचय पाये व्यर्थ प्रयास नहीं करना चाहिए। स्त्री-वध तो अवश्य ही नहीं करना चाहिए।

रावण—तो रथ ले आओ।

राक्षस—महाराज की जो आज्ञा। (निकल कर फिर प्रवेश करके) महाराज विजयी होवें। यह रथ (आ गया)।

रावण—(रथ पर चढ़कर)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

समावृतं सुरैरद्य सीते ! द्रक्ष्यसि राघवम् ।
मम चापच्युतैस्तीक्ष्णैर्बाणैराक्रान्तचेतसम् ॥ १७ ॥

(निष्क्रान्तः सपरिवारो रावणः)

सीता—इस्सरा ! अत्तणो कुलसदिसेण हारित्तेण जदि अहं अणुसरामि अय्यउत्तं, अय्यउत्तस्स विजओ होदु ! [ईश्वरः ! आत्मनः कुलसदृशेन चारित्रेण यद्यहमनुसराम्यार्यपुत्रम्, आर्यपुत्रस्य विजयो भवतु]

(निष्क्रान्ताः)

॥ इति पञ्चमोऽङ्कः ॥

—*—

अन्वयः—हे सीते ! सुरैः समावृत्तं राघवम् अद्य मम चापच्युतैः तीक्ष्णैः बाणैः आक्रान्तचेतसं द्रक्ष्यसि ।

समावृत्तमिति—सीते = हे जानकी ! सुरैः = देवैः, समावृतं = परिगतम्, चापेन = धनुषा, च्युतैः = प्रक्षिप्तैः, तीक्ष्णैः = तीव्रैः, बाणैः = शरैः, आक्रान्तचेतसम् = आक्रान्तं परिवृतं चेतः हृदयं यस्य तम्, द्रक्ष्यसि = विलोकयिष्यसि । अनुष्टुप्छन्दः ।

ईश्वराः इति—ईश्वराः = हे देवाः ! आत्मनः = स्वस्य, कुलसदृशेन = वंशोचितेन, अहं = सीता, अनुचरामि = अनुसरामि, आर्यपुत्रं = रामम्, आर्यपुत्रस्य = रामस्य, विजयः = जयः, भवतु ।

॥ इति पञ्चमोऽङ्कः ॥

—*—

हे सीते ! देवताओं से घिरे हुए राम को आज मेरे धनुष से निकले हुए तेज बाणों से विद्ध हृदय वाला देखोगी ।

(सपरिवार रावण निकल जाता है)

सीता—हे ईश्वर ! यदि मैं अपने कुलोचित चरित्र से आर्यपुत्र का अनुगमन करती (चाहती) हूँ तो अवश्य आर्यपुत्र की विजय हो ।

(सभी निकल जाते हैं)

॥ पञ्चम अङ्क समाप्त ॥

—*—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अथ षष्ठोऽङ्कः

(ततः प्रविशन्ति विद्याधरास्त्रयः)

सर्वे—एते स्मो भो ! एते स्मः ।

प्रथमः—इक्ष्वाकुवंशविपुलोज्ज्वलदीप्तकेतोः

द्वितीयः—रामस्य रावणवधाय कृतोद्यमस्य

तृतीयः—सङ्ग्रामदर्शनकूतूहलबद्धचित्ताः

सर्वे—प्राप्ता वयं हिमवतः शिखरात् प्रतूर्णम् ॥ १ ॥

अन्वयः—इक्ष्वाकुवंशविपुलोज्ज्वलदीप्तकेतोः रावणवधाय कृतोद्यमस्य रामस्य सङ्ग्रामदर्शनकुतूहलबद्धचित्ताः वयं हिमवतः शिखरात् प्रतूर्णं प्राप्ताः ।

इक्ष्वाक्विति—इक्ष्वाकुवंशविपुलोज्ज्वलदीप्तकेतोः = इक्ष्वाकोः एतन्नामकस्य रघुवंशस्य प्रवर्तकस्य वंशस्य कुलस्य विपुलः विशालः उज्ज्वलः विमलः दीप्तः देदीप्यमानः ध्वजः पताकास्वरूपः, रावणवधाय = रावणस्य वधाय मारणाय, कृतोद्यमस्य = कृतः विहितः उद्यमः उद्योगः येन तस्य, रामस्य = रामचन्द्रस्य, संग्रामदर्शनकुतूहलबद्धचित्ताः = सङ्ग्रामस्य युद्धस्य दर्शने विलोकने यत् कुतूहलं कौतुकं तस्मिन् बद्धम् आसक्तं चित्तं मनः येषां ते, वयम् = विद्याधराः, हिमवतः = हिमालयस्य, शिखरात् = शृङ्गात्, प्रतूर्णम् = शीघ्रम्, प्राप्ताः = आगताः स्मः । रूपक अलंकारः । वसन्ततिलकाच्छन्दः ।

(तत्पश्चात् तीन विद्याधर प्रवेश करते हैं)

सभी—अरे ! ये हम हैं, ये हम है ।

प्रथम—इक्ष्वाकु-कुल के विशाल तथा विमल देदीप्यमान पताकास्वरूप... ।

द्वितीय—रावण के वध के लिए उद्योग करने वाले राम के... ।

तृतीय—युद्ध को देखने की उत्कण्ठा से... ।

सभी—हम सभी हिमालय की चोटी से अतिशीघ्र आ गये है ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रथमः—चित्ररथ ! एते देवदेर्षिसिद्धविद्याधरादयो निरन्तरं नभः कृत्वा स्थिताः। तस्माद् वयमत्येतेषामेतान् गणान् परिहरतः स्वैरमेकान्ते स्थित्वा रामरावणयोर्युद्धविशेषं पश्यामः।

उभौ—बाढम्।

(तथा कृत्वा)

प्रथमः—अहो प्रतिभयदर्शनीया खल्वियं युद्धभूमिः। इह हि,

चित्ररथेति—चित्ररथ=भो एतन्नामकगन्धर्वराजविशेषः ! एते=पुरोवर्तमानाः, देववेर्षिसिद्धविद्याधरादयः=देवाः सुराः देवर्षयः दिव्याः ऋषयः सिद्धाः देवयोनिविशेषाः विद्याधराः गन्धर्वाः च आदिः येषां ते, निरन्तरम्=अवकाशरहितम्, नभः=आकाशम्, कृत्वा=विधाय, स्थिताः=अवस्थिताः, सन्तीति योजनीयम्। तस्मात्=तत्कारणात्, वयमपि=विद्याधराः अपि, एतान्=पुरोविद्यमानान्, गणान्=समूहान्, परिहरन्तः=त्यजन्तः; स्वैरम्=स्वेच्छापूर्वकम्, एकान्ते=एकान्तस्थाने, स्थित्वा=अवतिष्ठ्य, रामरावणयोः=एतन्नाकयोः द्वयोः, युद्धविशेषम्=युद्धस्य समरस्य विशेषं वैशिष्ट्यम्, पश्यामः=अवलोकयामः।

प्रतिभयेति—प्रतिभयदर्शनीया=प्रतिभया भयङ्करा दर्शनीया च रमणीया च, इयम्=एषा पुरोवर्तमाना, युद्धभूमिः=युद्धस्य समरस्य भूमिः स्थली।

प्रथम—हे चित्ररथ ! ये देवता, देवर्षि, सिद्ध तथा गन्धर्व इत्यादि आकाश में घेर कर अवस्थित है। अतः हम लोग भी इन (लोगों के) समूह को छोड़ते हुए अपनी इच्छानुसार एकान्त में बैठकर राम-रावण के विशिष्ट युद्ध को देखते है।

दोनों—ठीक है।

(वैसा करके)

प्रथम—ओह ! यह युद्ध-भूमि निश्चित ही भयङ्कर और दर्शनीय है। क्योंकि यहाँ—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रजनिचरशरीरनीरकीर्णा कपिवरवीचियुता वरासिनक्रा ।
उदधिरिव विभाति युद्धभूमी रघुवरचन्द्रशरांशुवृद्धवेगा ॥ २ ॥

द्वितीयः—एवमेतत् ।

एते पादशैलभग्नशिरसो मुष्टिप्रहारैर्हता
क्रुद्धैर्वानरयूथपैरतिबलैरुत्पुच्छकर्णैर्वृताः ।
कण्ठग्राहविवृत्ततुङ्गनयनैर्दंष्ट्रोष्ठतीव्रैर्मुखैः
शैला वज्रहता इवाशु समरे रक्षगणाः पातिताः ॥ ३ ॥

अन्वयः—रजनिचरशरीरनीरकीर्णा कपिवरवीचियुता वरासिनक्रा रघुवरचन्द्रशरांशुवृद्धवेगा युद्धभूमिः उदधिः इव विभाति ।

रजनीति—रजनिचरशरीरनीरकीर्णाः = रजनीचराणां राक्षसानां शरीराणि देहाः एव नीरं जलं तेन कीर्णा व्याप्ता, कपिवरवीचियुता = कपिवरः वानरश्रेष्ठः एव वीचयः तरङ्गाः ताभिः युता युक्ता, वरासिनक्रा = वराः श्रेष्ठाः असयः खड्गाः एव नक्राः जलचरजीवविशेषाः यस्यां सा, रघुवरचन्द्रशरांशुवृद्धवेगा = रघुषु रघुवंशीयेषु वरः श्रेष्ठः रामः एव चन्द्रः चन्द्रमा तस्य शराः बाणाः एव अंशवः किरणाः तैः वृद्धः वृद्धिप्राप्तः वेगः रथः यस्याः सा, युद्धभूमिः = समरस्थली, उदधिः इव = समुद्रः इव, विभाति = शोभते । रूपकोपमचालङ्कारौ । पुष्पिताग्राच्छन्दः ।

अन्वयः—एते पादपशैलभग्नशिरसः मुष्टिप्रहारैः हताः, क्रुद्धैः अतिबलैः उत्पुच्छकर्णैः वानरयूथपैः वृताः, कण्ठग्राहविवृत्ततुङ्गनयनैः दंष्ट्रोष्ठतीव्रैः मुखैः रक्षोगणाः समरे वज्राहताः शैलाः इव आशु पातिताः ।

राक्षसों के शरीर-रूपी जल से व्याप्त, बड़े-बड़े वानर-रूपी तरङ्गों से युक्त, बड़े-बड़े खड्ग-रूपी ग्राहों वाली तथा राम-रूपी चन्द्रमा के बाण-रूपी किरणों से बढ़े हुए वेग वाली यह युद्धभूमि समुद्र के समान शोभायमान है ।

द्वितीय—यह ऐसी ही है—

ये वृक्षों तथा पर्वतों द्वारा फोड़े गये शिरों वाले, मुष्टिका-प्रहार द्वारा मारे गये, क्रोधित तथा महाबलशाली और पूँछ तथा कान को ऊपर किये हुए वानर-गण के नेताओं द्वारा घिरे हुए, गला दबा देने से उल्टी तथा बाहर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तृतीयः—एते चापि द्रष्टव्या भवद्भ्यां,

निशितविमलखड्गाः क्रोधविस्फारिताक्षा
विमलविकृतदंष्ट्रा नीलजीमूतकल्पाः ।
हरिगणपतिसैन्यं हन्तुकामाः समन्ताद्
रभसविवृतवक्त्रा राक्षसाः सम्पतन्ति ॥ ४ ॥

एते इति—एते=पुरोविद्यमानाः, पादपशैलभग्नशिरसः=पादपाः वृक्षाः शैलाः च पर्वताः च तैः भग्नानि खण्डितानि शिरांसि मस्तकानि येषां ते, मुष्टिप्रहारैः, मुष्टीनां=मुष्टिकानां प्रहारैः आघातैः, हताः=मारिताः, क्रुद्धैः=कुपितैः, अतिबलैः=अति अतिशयिते बलं सामर्थ्यम् येषां तैः, उत्पुच्छकर्णैः=उत् ऊर्ध्वं पुच्छानि लाङ्गूलानि कर्णाः च श्रोत्राणि च येषां तैः, वानरयूथपैः=वानराणां शाखामृगाणां यूथपैः दलपतिभिः, वृताः=परिवेष्टिताः, कण्ठग्राहविवृतुङ्गनयनैः=कण्ठस्य गलप्रदेशस्य ग्राहेण ग्रहणेन विवृतानि घूर्णितानि अतएव तुङ्गानि उच्चानि निर्गतानि नयनानि नेत्राणि येषां तैः, दंष्ट्रोष्ठ तीव्रैः=दंष्ट्राः दन्तैः खण्डिताः ये ओष्ठाः दन्तच्छदाः तैः तीव्रैः भीषणैः, मुखैः=आननैः रक्षोगणाः=राक्षसानां गणाः समूहाः, समरे=युद्धे, वज्रेण=इन्द्रकुलिशेन, हताः=मारिताः, शैलाः इव=पर्वताः इव, आशु=शीघ्रम्, पातिताः=धराशायिनः कृताः । उपमालङ्कारः । शार्दूलविक्रीडितं छन्दः ।

अन्वयः—निशितविमलखड्गाः क्रोधविस्फारिताक्षाः विमलविकृतदंष्ट्राः नीलजीमूतकल्पाः हरिगणपतिसैन्यं हन्तुकामाः रभसविवृतवक्त्राः समन्ताद् सम्पतन्तः राक्षसाः (द्रष्टव्याः) ।

निकली हुई आखों वाले तथा दाँतों से कटे हुए ओठ के कारण भयङ्कर मुख वाले राक्षसों के समूह, (इन्द्र द्वारा) वज्र से मारे गये पर्वत के समान युद्ध में शीघ्र (मार कर) गिरा दिये गये हैं

तृतीय—और आप दोनों के द्वारा ये भी देखे जाने चाहिए ।

तेज और चमकते हुए खड्गों वाले, क्रोध के कारण विस्फारित आखों वाले, स्वच्छ (सफेद) और भयङ्कर दाढ़ों वाले, नीले बादल के समान,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रथमः—अहो नु खलु,

बाणाः पात्यन्ते राक्षसैर्वानरेषु
द्वितीयः—शैला क्षिप्यन्ते वानरैर्नैर्ऋतेषु ।
तृतीयः—मुष्टिप्रक्षेपैर्जानुसङ्घट्टनैश्च
सर्वे—भीमश्चित्रं भोः ! सम्प्रमर्दः प्रवृत्तः ॥ ५ ॥

निशितेति—निशितविमलखड्गाः=निशिताः तीक्ष्णाः च ये विमलाः स्वच्छाः च खड्गाः कृपाणाः, क्रोधविस्फारिताक्षाः=क्रोधेन कोपेन विस्फारिते स्फारीकृते अक्षिणी नयने यैः ते, विमलविकृतदंष्ट्रा=विमलाः स्वच्छाः विहताः कराला: दन्ताः दीर्घदन्ताः येषां ते; नीलजीमूतकल्पाः=नीलाः श्यामाः ये जीमूताः मेघाः तेषां कल्पाः सदृशाः, हरिगणपतिसैन्यं=हरीणां वानराणां ये गणाः समूहाः तेषां ये पतयः अध्यक्षाः तेषां सैन्यं सेनाम्, हन्तुकामाः=हन्तुं व्यापादयितुं कामः अभिलाषः येषां ते, रभसविवृतवक्त्रा=रभसेन वेगेन विवृतानि उद्घाटितानि वक्त्राणि मुखानि यैः ते, समन्तात्=परितः, सम्पतन्तः=आक्रमणं कुर्वन्तः, राक्षसाः=असुराः, (भवद्भ्यां द्रष्टव्याः) ।

अन्वय—राक्षसैः वानरेषु बाणाः पात्यन्ते वानरैः नैर्ऋतेषु शैलाः क्षिप्यन्ते, मुष्टिप्रक्षेपैः जानुसङ्घट्टनैः च भीमः सम्मर्दः प्रवृत्तः इति भो ! चित्रम् ।

बाणेति—राक्षसैः=असुरैः, वानरेषु=कपिषु, बाणाः=शराः, पात्यन्ते

वानरों के समूहों के प्रधानों की सेनाओं को मारने की इच्छा वाले, तथा युद्ध के उत्साह के कारण मुँह बाये हुए ये राक्षस चारों ओर से (वानर-सेना) पर टूट रहे हैं ।

प्रथम—ओह ! आश्चर्य है—
राक्षसों के द्वारा वानरों पर बाण फेंके जा रहे हैं... ।
द्वितीय—वानरों के द्वारा राक्षसों पर पर्वत फेंके जा रहे हैं... ।
तृतीय—मुष्टिप्रहारों तथा घुटनों की टक्करों द्वारा... ।
सभी—अरे भयङ्कर युद्ध हो रहा है ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रथमः—रावणमपि पश्येतां भवन्तौ,

कनकरचितदण्डां शक्तिमुल्लालयन्तं
विमलविकृतदंष्ट्रं स्यन्दनं वाहतन्तम् ।
उदयशिखरमध्ये पूर्णबिम्बं शशाङ्कं
ग्रहमिव भगणेशं राममालोक्य रुष्टम् ।। ६ ।।

=क्षिप्यन्ते, वानरैः=कपिभिः, नैर्ऋतेषु=राक्षसेषु, शैलाः=पर्वताः, क्षिप्यन्ते=पात्यन्ते, मुष्टिप्रक्षेपैः=मुष्टिनां मुष्टिकानाम् प्रक्षेपैः प्रहारैः,जानुसङ्घटनैः=जानुभ्याम् उरुपर्वभ्यां, सङ्घटनैः अभिघातैः च, भीमः=भयङ्कर, सम्प्रमर्दः=सम्पीडनम्, प्रवृतं=आरब्धः, इति भोः, चित्रम्=आश्चर्यकरम्, वर्तते इति योजनीयम् । वैश्वदेवीच्छन्दः ।

अन्वयः—कनकरचितदण्डां शक्तिम् उल्लालयन्तं, विमलविकृतदंष्ट्रं स्पन्दनं वाहयन्तं, उदयशिखरिमध्ये पूर्णबिम्बं भगणेशं शशाङ्कम् आलोक्य रुष्टं ग्रहम् इव रामम् आलोक्य रुष्टं (रावणं पश्येताम्) ।

कनकेति—कनकरचितदण्डा=कनकेन सुवर्णेन रचितः निर्मितः दण्डः यष्टिः यस्या ताम्, शक्तिं=प्रक्षेपास्त्रविशेषम्, उल्लालयन्तम्=उपरि घूर्णयन्तम्, विमलविकृततदंष्ट्रं=विमला निर्मला विकृता भयङ्करा च दष्ट्रा दीर्घदशनः यस्य तम्, स्पन्दनं=रथम्, वाहयन्तं=चालयन्तम्, उदयशिखरिमध्ये=उदयस्य सूर्योदयस्य शिखरी पर्वतः तस्य मध्ये मध्यभागे, पूर्वबिम्बं=अविकलमण्डलम्, भगणेशं=भानां ग्रहनक्षत्राणां ईशम् अधिपतिम्, शशाङ्कं=शशः शशकः अङ्कः चिह्नं यस्मिन् तम्; चन्द्रमित्यर्थः, आलोक्य=विलोक्य, रुष्टं=क्रुद्धम्, रावणमपि पश्येताम् । उपमालङ्कारः । मालिनीच्छन्दः ।

प्रथम—आप दोनों इस रावण को देखिए—

सुवर्ण-निर्मित दण्ड वाली शक्ति को ऊपर घुमाते हुए, श्वेत और भयङ्कर दाढ़ों वाले, रथ को हांकते तथा उदयाचल के मध्य पूर्णमण्डल वाले नक्षत्रेश चन्द्रमा को देखकर क्रोधित राहु के समान राम को देखकर क्रोधित हुए (रावण को देखिए) ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

द्वितीयः—राममपि पश्येतां भवन्तौ ।

सव्येन चापमवलम्ब्य करेण वीर-
मन्येन सायकवरं परिवर्तयन्तम् ।
भूमौ स्थितं रथगतं रिपुमीक्षमाणं
क्रौञ्चं यथा गिरिवरं युधि कार्त्तिकेयम् ॥ ७ ॥

तृतीयः—हहह !!!

रावणेन विमुक्तेयं शक्तिः कालान्तकोपमा ।
रामेण स्मयमानेन द्विधा छिन्ना धनुष्मता ॥ ८ ॥

अन्वयः—सव्येन करेण चापम् अवलम्ब्य अन्येन (दक्षिणेन) सायकवरं परिवर्तयन्तं भूमौ स्थितं युधि गिरिवरं क्रौञ्चम् ईक्षमाणम् कार्तिकेयं यथा (रामं पश्येताम्) ।

सव्येनेति—सव्येन = वामेन, करेण = हस्तेन, चापं = धनुः, अवलम्ब्य = अवधार्य, अन्येन = वामेतरेण दक्षिणेन, सायकवरं = बाणश्रेष्ठम्, परिवर्तयन्तं = भ्रमयन्तम्, भूमौ = पृथिव्याम्, स्थितं = वर्तमानम्, युधि = युद्धे, गिरिवरं = पर्वतश्रेष्ठम्, क्रौञ्चं = एतन्नामकं पर्वतविशेषम्, ईक्षमाणं = पश्यन्तम्, कार्तिकेयं यथा = कार्तिकेयमिव, युधि = युद्धे, रिपुं = शत्रुं रावणम्, ईक्षमाणम्, वीरं = शूरम्, राममपि पश्येताम् ।

अन्वयः—रावणेन कालान्तकोपमः इयं शक्तिः विमुक्ता धनुष्मता रामेण स्मयमानेन द्विधा छिन्ना ।

द्वितीय—आप दोनों राम को भी देखिए—

बाएँ हाथ से धनुष पकड़ कर दूसरे (दाहिने) हाथ से उत्तम बाण को घुमाते हुए, भूमि पर खड़े तथा युद्ध में पर्वतश्रेष्ठ क्रौञ्च को देखते हुए कार्तिकेय के समान रथस्थ (रथ पर सवार) शत्रु (रावण) को देखते हुए वीर (राम) को (भी देखिए) ।

तृतीय—ओह !

रावण के द्वारा (राम पर) छोड़ी गयी तथा हँसते हुए प्रलयकालीन मृत्यु-सदृश यह शक्ति, धनुर्धारी राम के द्वारा दो भागों में काट दी गयी ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

प्रथमः—

शक्तिं निपातितां दृष्ट्वा क्रोधविस्फारितेक्षणः ।
रामं प्रत्येषवं वर्षमभिवर्षति रावणः ॥ ९ ॥

द्वितीयः—अहो रामस्य शोभा ।

एता रावणजीमूताद् बाणधारा विनिस्सृताः ।
विभान्ति राममासाद्य वारिधारा वृषं यथा ॥ १० ॥

रावणेनेति—रावणेन = दशानेन, कालान्तकोपमा = प्रलयकालसदृशा, इयम् = एषा, शक्तिः = प्रक्षेपास्त्रविशेषः, विमुक्ता = प्रक्षिप्ता, धनुष्मता = चापधारिणा, रामेण = रामचन्द्रेण, स्मयमानेन = ईशत् हास्यमानेन, द्विधा = द्वयोः भागयोः, छिन्ना = खण्डिता । उपमालङ्कारः । अनुष्टुप्च्छन्दः ।

अन्वयः—शक्तिं निपातितां दृष्ट्वा क्रोधविस्फारितेक्षणः रावणः रामं प्रति ऐषवं वर्षम् अभिवर्षति ।

शक्तिमिति—शक्तिं = प्रक्षेपास्त्रविशेषम्, निपातितां = खण्डीकृत्य भूमौ पात्यताम्, दृष्ट्वा = अवलोक्य, क्रोधविस्फारितेक्षणः = क्रोधेन कोपेन विस्फारिते विस्तारिते इक्षणे नेत्रे येन सः, रामं प्रति = रामे, ऐषवं = इषूणाम्, वर्षं = वृष्टिम्, अभिवर्षति = पातयति । अनुष्टुप्च्छन्दः ।

अन्वयः—रावणजीमूतात् विनिःसृताः एताः बाणधाराः रामम् आसाद्य वृषं वारिधारा यथा विभान्ति ।

एता इति—रावणजीमूतात् = रावणः दशाननः एव जीमूतः मेघः तस्मात्, विनिःसृता = विनिर्गता, एता = पुरोवर्तमाना, बाणधारा = बाणानां शराणां धारा परम्परा, रामं = राघवम्, आसाद्य = प्राप्य, वृषं =

प्रथम—शक्ति (को काटकर) गिरायी गयी देखकर क्रोध के कारण विस्फारित नेत्रों वाला रावण राम के प्रति बाणों की वर्षा कर रहा है ।

द्वितीय—अरे ! राम की शोभा (दर्शनीय है) ।

रावण-रूपी बादल से निकली हुई बाण-रूपी (जल की) धाराएँ राम को प्राप्त करके उसी प्रकार शोभायमान हो रहीं हैं जैसे साँड़ को पाकर (बादल के)/जल की धाराएँ ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तृतीयः -- एष एषः,

कनकरचितचापं तीक्ष्णमुद्यम्य शीघ्रं
रणशिरसि सुघोरं बाणजालं विधुन्वन् ।
रथगतमभियान्तं रावणं याति पद्भ्यां
गजपतिमिव मत्तं तीक्ष्णदंष्ट्रो मृगेन्द्रः ॥ ११ ॥

सर्वे—अये ज्वलित इव प्रभयायं देशः । किन्नु खल्विदम् !

प्रथमः—आ ! युद्धसामान्यजनितशङ्केन महेन्द्रेण प्रेषितो मातलि-

वृषभम्, वारिधारा यथा=जलधाराः इव, विभ्रान्ति=शोभन्ते । रूपकोपमौ अलंकारौ । अनुष्टुप्छन्दः ।

अन्वयः—एषः रामः शीघ्रं तीक्ष्णं कनकरचितचापं उद्यम्य रणशिरसि सुघोरं बाणजालं विधुन्वन् रथगतम् अभियान्तं रावणं तीक्ष्णदंष्ट्रः मृगेन्द्रः मत्तं गजपतिम् इव पद्भ्यां याति ।

कनकेति—एषः=पुरोवर्तमानः, रामः=राघवः, शीघ्रं=त्वरितम् कनकरचितचापं=सुवर्णनिर्मितधनुः, उद्यम्य=उत्थाप्य, रणशिरसि=संग्रामस्य शिरसि अग्रे, घोरं=भयङ्करम्, बाणजालं=शरजालम्, विधून्वन्=प्रक्षिपन्, रथगतं=रथस्थम्, अभियान्तं=आगच्छन्तम्, रावणं=दशाननम् तीक्ष्णदंष्ट्रं=तीक्ष्णा निशिता दंष्ट्रा दीर्घदन्तः यस्य सः, मृगेन्द्रः=सिंहः, मत्तं=मदोत्कम्, गजपतिम् इव=गजराजमिव, पद्भ्यां=पादाभ्याम्, याति=गच्छति । उपमालङ्कारः । मालिनीच्छन्दः ।

अये इति—अयं=पुरोवर्तमानः, देशः=स्थानः, प्रभया=दीप्त्या, ज्वलितः

तृतीय—यह, यह,

सुवर्ण-निर्मित धनुष को शीघ्रता से उठाकर युद्ध की आगे वाली पंक्ति में भयङ्कर बाण-समूह को फेंकते हुए (ये राम) रथ पर बैठे आ रहे रावण की ओर पैदल ही इस प्रकार जा रहे हैं जैसे तेज दाढ़ वाला सिंह मतवाले हाथी ओर जाता है ।

सभी—अरे, यह क्या ! यह स्थान मानो ज्योति से जल रहा है ।

प्रथम—ओह ! युद्ध की समानता के विषय में आशङ्कित इन्द्र द्वारा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वाहितो रथः ।

द्वितीयः—उपस्थितं मातलिं दृष्ट्वा तस्य वचनाद् रथमारूढवान् रामः ।

तृतीयः—एष हि,

सुरवरजयदर्पदेशिकेऽस्मिन् दितिसुतनाशकरे रथे विभाति ।
रजनिचरविनाशकारणः संस्त्रिपुरवधाय यथा पुरा कपर्दी ॥ १२ ॥

=द्योतितः इव, युद्धसामान्यजनितशङ्केन=युद्धस्य समरस्य सामान्यं समानता तस्मिन् जाता उत्पन्ना शङ्का संशयः यस्य तेन, महेन्द्रेण=शक्रेण, प्रेषितः=प्रहितः, मातलिवाहितः—मातलिना एतन्नामकेन सारथिना वाहितः चालितः रथः=स्यन्दनः ।

उपस्थितमिति—उपस्थितम्=आगतम्, मातलिं=इन्द्रसारथिम्, दृष्ट्वा=अवलोक्य, तस्य=मातलेः, वचनात्=कथनात्, रामः=राघवः, रथं=स्यन्दनम्, आरुढवान् ।

अन्वयः—सुरवरजयदर्पदेशिके दितिसुतनाशकरे अस्मिन् रथे एषः हि रामः रजनिचरविनाशकरणः सन् पुरा त्रिपुरवधाय कदर्पी यथा विभाति ।

सुरवरेति—सुरवरजयदर्पदेशिके=सुरवरस्य इन्द्रस्य जयदर्पयोः देशिके उपदेशके, दितिसुतनाशकरे=दितिसुतानां राक्षसाणां नाशकरे क्षयकारिणे, रथे=स्यन्दने, एषः=पुरोवर्तमानः, राघवः=रामः, हि=निश्चयेन, रजनिचरविनाशकारणः=रजनिचरस्य रावणस्य विनाशस्य संहारस्य कारणः

भेजा गया मातलि-वाहित (=मातलि द्वारा हाँका जाता हुआ), रथ है ।

द्वितीय—आये हुए मातलि को देखकर उसके कहने से राम रथ पर चढ़ गये ।

तृतीय—क्योंकि यह—

इन्द्र की विजय और गर्व का उपदेशक तथा दैत्यों के विनाशकारी इस रथ पर (आरूढ़) और राक्षस (रावण) के विनाश के लिए कारण बने हुए राम इस प्रकार शोभायमान हो रहे हैं जैसे प्राचीनकाल में त्रिपुर (नामक राक्षस) के बध के लिए शङ्कर हों ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

प्रथमः—अहो महत्प्रवृत्त युद्धम् ।
शरवरपरिपीततीव्रबाणं नरवरनैर्ऋतयोः समीक्ष्य युद्धम् ।
विरतविविधशस्त्रपातमेते हरिवरराक्षससैनिकाः स्थिताश्च ॥१३॥
द्वितीयः—अहो नु खलु,
चारिभिरेतौ परिवर्तमानौ रथे स्थितौ बाणगणान् वमन्तौ ।
स्वरश्मिजालैर्धरणिं दहन्तौ सूर्याविव द्वौ नभसि भ्रमन्तौ ॥ १४ ॥

हेतुः सन्, पुरा = प्राचीनकाले, त्रिपुरवधाय = त्रिपुरासुरविनाशाय, कपर्दी यथा = शङ्करः इव, विभाति = शोभते । उपमालङ्कारः । पुष्पिताग्राच्छन्दः ।

अन्वयः—नरवरनैर्ऋतयोः शरवरपरिपीततीव्रबाणं युद्ध समीक्ष्य एते हरिवरराक्षससैनिकाः विरतविविधशास्त्रपातं स्थिताः च ।

शरवरेति—नरवरनैर्ऋत्योः = रामरावणयोः, शरवरपरिपीततीव्रबाणं = शरवरैः उत्तमैः बाणैः परिपीताः विनाशिताः तीव्राः तीक्ष्णाः बाणाः शराः यस्मिन् तम्, युद्धं = समरम्, समीक्ष्य = दृष्ट्वा, एते = पुरोवर्तमानाः हरिवर-राक्षससैनिकाः = हरिवरस्य सुग्रीवस्य राक्षसस्य रावणस्य च सैनिकाः, सैन्य-जनाः, विरतविविधशस्त्रपातं = विरतः निरुद्धः विविधानाम् अनेकप्रकाराणां शस्त्राणाम् आयुधानां पातः प्रक्षेपः यस्मिन् तम्, स्थिताः च = स्थितवन्तः । पुष्पिताग्राच्छन्दः ।

अन्वयः—रथे स्थितौ चारीभिः परिवर्तमानौ, बाणगणान् वमन्तौ एतौ नभसि भ्रमन्तौ स्वरश्मिजालैः धरणिं दहन्तौ द्वौ सूर्यौ इव (विभातः) ।

चारीभिरिति—रथे = स्यन्दने, स्थितौ = आरूढौ, चारिभिः = गतिभिः,

प्रथम—ओह ! भयङ्कर युद्ध हो रहा है—

पुरुषोत्तम (राम) तथा (रावण) के युद्ध, जिसमें (राम के) उत्कृष्ट बाण (रावण के) तीक्ष्ण बाणों को निगल रहे है, को देखकर ये कपिवर (सुग्रीव) तथा राक्षस (रावण) के सैनिक (अपने) अनेक शस्त्रों के प्रहार से विरत हो गये हैं ।

द्वितीय—ओह ! आश्चर्य है—

रथ पर अवस्थित, (युद्ध के उपयुक्त) चालों से घूमते हुए, बाण-समूह

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तृतीयः—रावणमपि पश्येतां भवन्तौ ।

शरैर्भीमवेगैर्हयान् मर्दयित्वा ध्वजं चापि शीघ्रं बलेनाभिहत्य ।
महद् बाणवर्षं सृजन्तं नदन्तं हसन्तं नृदेवं भृशं भीषयन्तम् ॥१५॥

प्रथमः—एष हि रामः,

परिवर्तमानौ=परिभ्रमन्तौ, बाणगणान्=शरसमूहान्, वमन्तौ=उद्गिरन्तौ, एतौ=पुरोवर्तमानौ रामरावणौ, नभसि=आकाशे, भ्रमन्तौ=भ्रमणं कुर्वन्तौ, स्वरश्मिजालैः=आत्मीयकिरणसमूहैः, धरणिं=पृथिवीम्, दहन्तौ=प्लोषन्तौ, द्वौ सूर्यौ इव=द्वौ भास्करौ इव, विभातः शोभते ।

अन्वयः—भीमवेगैः शरैः हयान् मर्दयित्वा, ध्वजं च अपि बलेन शीघ्रम् अभिहत्य महत् बाणवर्षं सृजन्तं नन्दतं हसन्तं नृदेवं भृशं भीषयन्तम् (रावणमपि पश्येताम्) ।

शरैर्भीमैरिति—भीमवेगैः =भयङ्करवेगैः, शरैः=बाणैः, हयान्=रथस्य अश्वान्, मर्दयित्वा=जर्जरीकृत्य, ध्वजांश्च=पताकामपि; बलेन=बलपूर्वकेण, शीघ्रं=त्वरितम्, अभिहत्य=आक्रम्य, महत्=विपुलम्, बाणवर्षम्=शरवृष्टिम्, सृजन्तं=जनयन्तम्, नन्दन्तं=गर्जन्तम्, हसन्तं=स्मयमानम्, नृदेवं=रामम्, भृशम्=अत्यन्तम्, भीषयन्तं=भाययन्तम्, रावणम् अपि पश्येयाम् । दीपकालङ्कारः । भुजङ्गप्रयातं छन्दः ।

को छोड़ते हुए ये दोनों (राम और रावण) ऐसे शोभायमान हो रहे हैं मानो आकाश में घूमते हुए तथा अपनी किरण से पृथिवी को जलाते हुए दो सूर्य हों ।

तृतीय—आप दोनों रावण को भी देखिए—

भयङ्कर वेग वाले बाणों से (राम के रथ के) घोड़ों को क्षत-विक्षत करके तथा झण्डे पर शीघ्र ही बलपूर्वक आघात करके महान् बाणों की वर्षा करते हुए, गर्जन करते हुए (रावण को देखिए) जो हँसते हुए नरपति (राम) को अत्याधिक डरा रहा है ।

प्रथम—यह राम भी—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

स्थानाक्रामणवामनीकृततनुः किञ्चित् समाश्वास्य वै
तीव्रं बाणमवेक्ष्य रक्तनयनो मध्याह्नसूर्यप्रभः ।
व्यक्तं मातलिना स्वयं नरपतिर्दत्तास्पदो वीर्यवान्
क्रुद्धः संहितवान् वरास्त्रममितं पैतामहं पार्थिवः ॥ १६ ॥

द्वितीयः—एतदस्त्रं,
रघुवरभुजवेगविप्रमुक्तं ज्वलनदिवाकरयुक्ततीक्ष्णधारम् ।

अन्वयः—स्थानाक्रामणवामनीकृततनुः किञ्चित् समाश्वास्य तीव्रं बाणम् अवेक्ष्य रक्तनयनः मध्याह्नसूर्यप्रभः मातलिना स्वयं दत्तास्पदः वीर्यवान् नरपतिः क्रुद्धः सन् अमितं पैतामहं वरास्त्रं संहितवान् ।

स्थानेति—स्थानाक्रामणवामनीकृततनुः=स्थानेन दृढस्थित्या आक्रामणम् आक्रमणं तस्मिन् वामनीकृता न्युब्जीकृता तनुः शरीरं येन सः, किञ्चित् =ईषत्, वै=निश्चयेन, समाश्वास्य=श्वासग्रहणं कृत्वा, तीव्रं=तीक्ष्णम्, बाणं=शरम्, अवेक्ष्य=विलोक्य, रक्तनयनः=लोहितनेत्रः, मध्याह्नसूर्यप्रभः= मध्याह्नसमयस्य सूर्यस्य भास्करस्य प्रभा कान्तिः इव कान्तिः यस्य सः, व्यक्तं =स्पष्टम्, मातलिना=इन्द्रसारथिना, स्वयम्=आत्मना, दत्तास्पदं=दत्तं त्यक्तम् आस्पदं स्थानं यस्मैः सः; वीर्यमान्=वीरः, नरपतिः=नरेन्द्रः, पार्थिवः=रामः, क्रुद्धः=कुपितः सन्, अमितम्=अपरिमेयम्, पैतामहं= ब्राह्मम्, वरास्त्रम्=श्रेष्ठप्रक्षेपास्त्रम्, संहितवान्=आरोपितवान् । उपमा दीपकं चालङ्कारौ । शार्दूलविक्रीडितं छन्दः ।

अन्वयः—रघुवरभुजवेगविप्रमुक्तं ज्वलनदिवाकरयुक्ततीक्ष्णधारं (अस्त्रं)

दृढ़-स्थिति से आक्रमण में शरीर को बौना बनाए हुए, थोड़ा स्थिर होकर, (रावण के) तीक्ष्ण-बाण को देखकर लाल आँखें किये, मध्याह्न-कालीन सूर्य के तेज के समान तेज वाले, स्पष्टतः मातलि के द्वारा स्वयं (रथ में खिसककर) दिये हुए स्थान से युक्त, वीर राजा (राम) ने क्रुद्ध होकर (अपने) पितामह द्वारा प्राप्त उत्कृष्ट ब्रह्मास्त्र को चढ़ा लिया है।

द्वितीय—यह अस्त्र,

राम के बाहु-वेग से छोड़ा गया, अग्नि और सूर्य से युक्त तेज धार

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

रजनिचरवरं निहत्य सङ्ख्ये पुनरभिगच्छति राममेव शीघ्रम्॥१७॥

सर्वे—हन्त निपातितो रावणः।

प्रथमः—

रावणं निहतं दृष्टवा पुष्पवृष्टिर्निपातिता।
एता नदन्ति गम्भीरं भेर्यस्त्रिदिवसद्मनाम् ॥ १८ ॥

द्वितीयः—भवतु। सिद्धं देवकार्यम्।

सङ्ख्ये रजनिचरवरं निहत्य पुनः शीघ्रं रामम् एव अभिगच्छति।

रघुवरेति—रघुवरभुजवेगविप्रमुक्तं = रघुवरस्य रामस्य भुजस्य बाहोः वेगेण रयेण विप्रमुक्तं त्यक्तम्, ज्वलनदिवाकरयुक्ततीक्ष्णधारं = ज्वलनः अग्निः दिवाकरः च सूर्यः च ताभ्यां युक्ता मिलिता तीक्ष्णा निशिता धारा अग्रम् यस्य तत्, एतत् = पुरोवर्तमानम्, अस्त्रं = ब्रह्मास्त्रम्, सङ्ख्ये = युद्धे, रजनिचरवरं = रजनिचरेषु राक्षसेषु वरं मुख्यं रावणम्, निहत्य = हत्वा, पुनः = भूयः, शीघ्रं = त्वरितम्, रामम् एव = राघवमेव, अभिगच्छति = अभियाति। पुष्पिताग्राच्छन्दः।

अन्वयः—रावणं निहतं दृष्ट्वा पुष्पवृष्टिः निपातिता एता त्रिदिवसद्मनां भेर्यः गम्भीरं नदन्ति।

रावणमिति—रावणं = दशाननम्, निहितं = मारितम्, दृष्ट्वा = अवलोक्य, पुष्पवृष्टिः = पुष्पाणां प्रसूनानां वृष्टिः वर्षम्, निपतिता = उपरिष्टात् देवादिभिः कृता। एताः = इमाः, त्रिदिवसद्मनां = देवानाम्, भेर्यः = दुन्दुभयः, गम्भीरं = उच्चम्, नदन्ति = ध्वनिं कुर्वन्ति। अनुष्टुप्छन्दः।

सिद्धमिति—सिद्धं = पूर्णम्, देवकार्यं = राक्षसविनाशरूपसुरकार्यम्, सर्व-

---

वाला (यह ब्रह्मास्त्र) युद्ध में राक्षस-श्रेष्ठ (रावण) को मारकर फिर शीघ्रतापूर्वक राम के पास आ रहा है।

सभी—ओह! रावण गिर गया।

प्रथम—रावण को मारा हुआ देखकर (देवताओं द्वारा) पुष्पवर्षा की गयी तथा (स्वर्ग में) देवताओं की दुन्दुभी बज रही है।

द्वितीय—ठीक है, देवकार्य पूरा हो गया।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रथमः—तदागम्यताम्। वयमपि तावत् सर्वहितं रामं सम्भावयिष्यामः।

उभौ—बाढम्। प्रथमः कल्पः।

(निष्क्रान्ताः सर्वे)

॥ इति विष्कम्भकः ॥

(ततः प्रविशति रामः)

रामः—

हत्वा रावणमाहवेऽद्य तरसा मद्बाणवेगार्दितं
कृत्वा चापि विभीषणं शुभमतिं लङ्केश्वरं साम्प्रतम्।
तीर्त्वा चैवमनल्पसत्वचरितं दोर्भ्यां प्रतिज्ञार्णवं
लङ्कामभ्युपयामि बन्धुसहितः सीतां समाश्वासितुम् ॥ १९ ॥

हितं=सकलहितकारकम्, सम्भावयिष्यामः=सत्करिष्यामः। प्रथमः=उत्तमः, कल्पः=विचारः।

॥ इति विष्कम्भकः ॥

अन्वयः—अद्य आहवे मद्बाणवेगार्दितं रावणं तरसा हत्वा शुभमतिं विभीषणं च साम्प्रतं लङ्केश्वरं कृत्वा दोर्भ्याम् अनल्पसत्वचरितं प्रतिज्ञार्णवं च तीर्त्वा बन्धुसहितः (अहं) सीतां समाश्वासितुं लङ्काम् अभ्युपयामि।

हत्वेति—अद्य=अस्मिन् दिवसे, आहवे=युद्धे, मद्बाणवेगार्दितं=मद्बाणः मम शरः तस्य वेगेण रयेण आर्दितम् आहतम्, रावणं=दशाननम्, तरसा=

प्रथम—तो आओ, हम लोग भी सभी लोगों का कल्याण करने वाले राम का अभिनन्दन करें।

दोनों—ठीक है, (यह) अच्छा विचार है।

(सभी निकल जाते हैं)

॥ विष्कम्भक समाप्त ॥

(तत्पश्चात् राम प्रवेश करते हैं)

राम—आज युद्ध में मेरे बाण के बेग से पीड़ित रावण को मारकर, और पवित्र बुद्धि वाले विभीषण को लङ्का का राजा बनाकर बड़े-बड़े

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(प्रविश्य)

लक्ष्मणः—जयत्वार्यः । आर्य ! एषा ह्यार्यार्यस्य समीपमुपसर्पति ।

रामः—वत्स ! लक्ष्मण !

अपायाच्च हि वैदेह्या उषिताया रिपुक्षये ।
दर्शनात् साम्प्रतं धैर्यं मन्युर्मे वारयिष्यति ॥ २० ॥

शीघ्रम्, हत्वा = व्यापाद्य, शुभ्रमतिं = विमलबुद्धिम्, विभीषणं च = रावणानुज च, साम्प्रतम् = इदानीम्, लङ्केश्वरं = लङ्काधिपतिम्, कृत्वा = विधाय दोर्भ्याम् = बाहुभ्याम्, अनल्पसत्त्वचरितं = अनल्पानि महान्तिसत्त्वचारितानि बलकार्याणि यस्मिन् तम्, प्रतिज्ञार्णवं = प्रतिज्ञा प्रणः एव अर्णवः समुद्रः तम्, तीर्त्वा = पारं कृत्वा, बन्धुसहितः = बन्धुना बान्धवेन सहितः युक्तः, सीतां = जानकीम्, समाश्वासितुम् = आश्वासनं दातुम्, लङ्कां = एतन्नामकनगरम्, अभ्युपयामि = अभिगच्छामि । रूपकदीपकौ अलङ्कारौ । शार्दूलविक्रीडितं छन्दः ।

अन्वयः—अपायात् हि रिपुक्षये उषितायाः च वैदेह्याः दर्शनात् मन्यु मे धैर्यं साम्प्रतं वारयिस्यति ।

अपायेति—दूरमपगमनात्, रिपुक्षये = रिपोः रावणस्य क्षये गृहे, उषितायाः निवासितायाः, वैदेह्याः = सीतायाः, दर्शनात् = विलोकनात्, मन्युः

सात्त्विक आचरणों वाले प्रतिज्ञा-रूपी सागर को अपनी भुजाओं के (बल) द्वारा पार करके अब भाई लक्ष्मण के साथ सीता को आश्वस्त करने के लिए लङ्का को जा रहा हूँ ।

(प्रवेश करके)

लक्ष्मण—आर्य विजयी होंवे । हे आर्य ! यह आर्या (सीता) आर्य (आप) के समीप आ रही है ।

राम—हे भाई लक्ष्मण !

(मुझसे) दूर चली जाने के कारण तथा शत्रु (रावण) के घर में निवास किये हुई जानकी को देखकर मेरा क्रोध धैर्य को निश्चित ही रोक देगा ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लक्ष्मणः—यदाज्ञापयत्यार्यः। (निष्क्रान्तः)

(प्रविश्य)

विभीषणः—जयतु देवः।

एषा हि राजंस्तव धर्मपत्नी त्वद्बाहुवीर्येण विधूतदुःखा।
लक्ष्मीः पुरा दैत्यकुलच्युतेव तव प्रसादात् समुपस्थिता सा ॥ २१॥

रामः—विभीषण! तत्रैव तावत् तिष्ठतु रजनिचरावमर्शजातकल्मषा इक्ष्वाकुकुलस्याङ्कभूता। राजानं दशरथं पितरमुद्दिश्य न युक्तं भोः

=क्रोधः, हि=निश्चयेन, मे=मन, धैर्यम्=उत्साहम्, वारयिष्यति=रोत्स्यति। काव्यलिङ्गमलङ्कारः। अनुष्टुप्छन्दः।

अन्वयः—हे राजन्! त्वद्बाहुवीर्येण विधूतदुःखा एषा हि सा तव धर्मपत्नी पुरादैत्यकुलच्युता लक्ष्मीः इव तव प्रसादात् (त्वां) समुपस्थिता।

एषेति—राजन्=हे नरेन्द्र! त्वद्बाहुवीर्येण=तव रामस्य बाह्वोः भुजयोः वीर्येण शौर्येण, विधूतदुःखा=विधूतं निराकृतं दुःखं कष्टं यस्याः सा, एषा=पुरोवर्तमाना, सा=पूर्वोक्ता, तव=रामस्य, धर्मपत्नी=भार्या, पुरा=प्राचीनकाले, दैत्यकुलच्युता=दानववंशमुक्ता, लक्ष्मीः इव=श्रीःइव, तव=रामस्य, प्रसादात्=अनुग्रहात्, समुपस्थिता=आगता। उपमालङ्कारः। उपजातिः छन्दः।

विभीषणेति—रजनिचरावमर्शजातकल्मषा=रजनिचरस्य रावणस्य यः

लक्ष्मण—जैसी आप की आज्ञा। (निकल जाता है)

(प्रवेश करके)

विभीषण—महाराज विजयी होंवे।

हे राजन्, आप के बाहुबल के द्वारा दूर हुए कष्टों वाली, यह वही आप की धर्मपत्नी, प्राचीन-काल में दैत्य-कुल से उन्मुक्त लक्ष्मी की भाँति, आप की कृपा से आप के पास उपस्थित हैं।

राम—हे विभीषण! राक्षस (रावण) के स्पर्श से दूषित (अत एव) इक्ष्वाकु-वंश की कलङ्क-स्वरूपा हुई वह (सीता) तब तक वहीं रहे। हे लङ्केश्वर! पिता दशरथ का विचार करके उस (सीता को) मेरे द्वारा देखना

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लङ्काधिपते ! मां द्रष्टुम् । अपि च,

मज्जमानमकार्येषु पुरुषं विषयेषु वै ।
निवारयति यो राजन् ! स मित्रं रिपुरन्यथा ॥ २२ ॥

विभीषणः—प्रसीदतु देव !

रामः—नार्हति भवानतः परं पीडयितुम् ।

(प्रविश्य)

लक्ष्मणः—जयत्वार्यः । आर्यस्याभिप्रायं श्रुत्वैवाग्निप्रवेशाय प्रसादं

अवमर्शः सम्पर्कः तेन जातम् उत्पन्नं कल्मषं लाञ्छनं यस्यां सा, इक्ष्वाकुकुलस्य =रघुवंशस्य, अङ्कभूता=कलङ्कभूता, उद्दिश्य=लक्ष्यीकृत्य, न युक्तम्= उचितम् नास्ति ।

अन्वयः—हे राजम् ! यः अकार्येषु विषयेषु मज्जमानं पुरुषं निवारयति, सः वै मित्रम् अन्यथा रिपुः ।

मज्जमानेति—हे राजन्=भो नृपेन्द्र ! यः, अकार्येषु=कर्तुमयोग्येषु कर्मसु, विषयेषु=इन्द्रियोपभोग्यवस्तुषु, मज्जमानं=निमग्नीभवन्तम्, पुरुषं =जनम्, निवारयति=दूरीकरोति, सः=पूर्वोक्तः जनः, वै=निश्चयेन, मित्रं=सखा; अन्यथा=इतरथा, रिपुः=शत्रुः, अस्तीति शेषः । अनुष्टुप्छन्दः ।

नार्हतीति—न अर्हति=न योग्योऽस्ति, भवान्=विभीषणः, अतः= अस्मात्, परम्=अधिकम्, पीडयितुं=पीडितं कर्तुम् ।

आर्यस्येति—आर्यस्य=पूजनीयस्य भवतः रामस्य, अभिप्रायम्=

जाना उचित नहीं हैं । और भी—

हे राजन् ! जो अकरणीय विषयों में डूबते हुए व्यक्ति को हटाता है, वही मित्र है अन्यथा वह शत्रु है ।

विभीषण—हे महाराज प्रसन्न होइए ।

राम—आप इससे अधिक मुझे कष्ट न दें ।

(प्रवेश करके)

लक्ष्मण—आर्य विजयी होवें । आप के अभिप्राय को सुनकर आर्या

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रतिपालयत्यार्या ।

रामः—लक्ष्मण ! अस्याः पतिव्रतायाश्छन्दमनुतिष्ठ ।

लक्ष्मणः—यदाज्ञापयत्यार्यः । (परिक्रम्य) भोः कष्टम् !

विज्ञाय देव्याः शौचं च श्रुत्वा चार्यस्य शासनम् ।
धर्मस्नेहान्तरे न्यस्ता बुद्धिर्दोलायते मम ॥ २३ ॥

कोऽत्र ।

(प्रविश्य)

हनूमान्—जयतु कुमारः ।

आशयम्, श्रुत्वा=आकर्ण्य, अग्निप्रवेशाय=अग्नौ वह्नौ प्रवेशाय प्रवेष्टुम्, आर्या=पूजनीया सीता, प्रसादम्=अनुमतिम्, प्रतिपालयति=प्रतीक्षते ।

अस्याः इति—पतिव्रतायाः=सत्याः नार्या, छन्दं=इच्छाम्, अनुतिष्ठ=कुरु ।

अन्वयः—देव्याः शौचं विज्ञाय आर्यस्य च शासनं श्रुत्वा धर्मस्नेहान्तरे न्यस्ता मम बुद्धिः दोलायते ।

विज्ञायेति—देव्याः=महिष्याः सीतायाः, शौचं=पवित्रताम्, विज्ञाय=अवबोध्य, आर्यस्य=रामस्य, शासनम्=आज्ञाम्, श्रुत्वा=आकर्ण्य, धर्मस्नेहान्तरे=धर्मानुरागमध्ये, न्यस्ता=स्थिता, मम=लक्ष्मणस्य, बुद्धिः=मतिः, दोलायते=द्वैधीभवति । सन्देहालङ्कारः । अनुष्टुप्छन्दः ।

(सीता) अग्नि में प्रवेश करने के लिए (आप के) अनुमति की प्रतीक्षा कर रहीं है ।

राम—हे लक्ष्मण ! इस पवित्रता (सीता) की इच्छा पूरी करो ।

लक्ष्मण—जैसी आप की आज्ञा । (घूमकर) अरे ! कष्ट है ।

देवी (सीता) की पवित्रता जानकर तथा आर्य (राम) का आदेश सुनकर धर्म और स्नेह के बीच में पड़ी बुद्धि झूल रही है ।

यहाँ कौन है ?

(प्रवेश करके)

हनुमान्—कुमार विजयी होवें ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

लक्ष्मणः—हनूमन् ! यदि ते शक्तिरस्ति, एवमाज्ञापयत्यार्यः ।

हनूमान्—अत्र किं तर्कयति कुमारः ।

लक्ष्मणः—निष्फलो मम तर्कः । अथवा वयमार्यस्याभिप्रायमनुवर्तितारः । गच्छामस्तावत् ।

हनूमान्—यदाज्ञापयति कुमारः । (निष्क्रान्तौ)

(प्रविश्य)

लक्ष्मणः—प्रसीदत्वार्यः । आर्य ! आश्चर्यमाश्चर्यम् । एषा ह्यार्या,
विकसितशतपत्रदामकल्पा ज्वलनमिहाशु विमुक्तजीविताशा ।

यदीति—शक्तिः=सामर्थ्यः, अस्ति=वर्तते, एवम्=अनेन प्रकारेण, आज्ञापयति=आदिशति ।

अत्रेति—अत्र=अस्मिन् विषये, कुमारः=भवान् लक्ष्मणः, किं, तर्कयति=विचारयति ।

निष्फलः इति—निष्फलः=व्यर्थः मम=लक्ष्मणस्य, तर्कः=वितर्कः । वयं=वयं सर्वे, आर्यस्य=पूजनीयस्य रामस्य, अभिप्रायम्=अभिलाषम्, अनुवर्तितारः=अनुसर्तारः ।

अन्वयः—विकसितशतपत्रदामकल्पा विमुक्तजीविताशा इह तव श्रमं

लक्ष्मण—हे हनुमान् ! यदि तुममें (आज्ञा-पालन की) शक्ति हो तो आर्य (राम) की ऐसी आज्ञा है ।

हनुमान्—इस विषय में कुमार आप क्या सोचते हैं ?

लक्ष्मण—मेरा सोचना व्यर्थ है । अथवा हम लोग तो आर्य (राम) की इच्छा का अनुसरण करने वाले हैं । तो चलते हैं ।

हनुमान्—जैसी कुमार की आज्ञा । (दोनों निकल जाते हैं)

(प्रवेश करके)

लक्ष्मण—आर्य प्रसन्न होइए । हे आर्य ! आश्चर्य है, आश्चर्य है । यह आर्या—

खिले हुए कमलों की माला के समान तथा जीवन की आशा छोड़े हुई (यह आर्या) आप के परिश्रम को व्यर्थ करके तेजी से आग में इस प्रकार

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

श्रममिह तव निष्फलं च कृत्वा प्रविशति पद्मवनं यथैव हंसी ॥२४॥

रामः—आश्चर्यमाश्चर्यम् । लक्ष्मण ! निवारय निवारय ।

लक्ष्मणः—यदाज्ञापयत्यार्यः ।

(प्रविश्य)

हनूमान्—जयतु देवः ।

एषा कनकमालेव ज्वलनाद् वर्धितप्रभा ।
पावना पावकं प्राप्य निर्विकारमुपागता ॥ २५ ॥

निष्फलं कृत्वा हंसी पद्मवनं यथा इह आशुः ज्वलनं प्रविशति ।

विकसितेति—विकसितशतपत्रदामकल्पा = विकसितानि प्रफुल्लितानि यानि शतपत्राणि कमलानि तेषां यत् दाम माला तस्याः कल्पा सदृशा, विमुक्त-जीविताशा = विमुक्ता त्यक्ता जीविताशा जीवनाशा यया सा, इह = अत्र, तव = भवतः, श्रमं = परिश्रमम्, निष्फलं = निरर्थकम् कृत्वा = विधाय, यथा एव = येन प्रकारेण एव, हंसी = हंसपत्नी, पद्मवनं = कमलवनम्, तथैव = तेन प्रकारेण इह = अत्र, आशु = शीघ्रम्, जलनम् = अग्निम्, प्रविशति = प्रवेशं करोति । उपमालङ्कारः । पुष्पिताग्राच्छन्दः ।

अन्वयः—एषा पावना (सीता) पावकं प्राप्य कनकमाला इव वर्धितप्रभा ज्वलनात् निर्विकारम् उपगता ।

एषेति—एषा = पुरोवर्तमाना, पावना = शुद्धा देवी सीता, पावकम् = अग्निम्, प्राप्य = प्रविश्य, कनकमाला इव = सुवर्णहारः इव, वर्धितप्रभा =

प्रवेश कर रहीं है जैसे हंसिनी कमलवन में (प्रवेश करती है) ।

राम—आश्चर्य है, आश्चर्य है । हे लक्ष्मण ! रोको, रोको ।

लक्ष्मण—जो आप की आज्ञा ।

(प्रवेश करके)

हनुमान्—महाराज विजयी होवे ।

अग्नि को प्राप्त करके सुवर्ण की माला की भाँति वर्धित कान्ति वाली यह पवित्र (सीता) अग्नि से निर्विकार (=ज्यों की त्यों) निकल रहीं हैं ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रामः—(सविस्मयम्) किमिति किमिति ।

लक्ष्मणः—अहो, आश्चर्यम् ।

(प्रविश्य)

सुग्रीवः—जयतु देवः ।

को नु खल्वेष जीवन्तीमादाय जनकात्मजाम् ।
प्रणम्यरूपः सम्भूतो ज्वलतो हव्यवाहनात् ॥ २६ ॥

लक्ष्मणः—अये अयमार्या पुरस्कृत्येत एवाभिवर्तते भगवान् विभावसुः ।

वर्धिता वृद्धि प्राप्ता प्रभा कान्तिः यस्याः सा, स्खलनात्=अग्नेः, निर्विकारं=विकाररहितम्, उपगता=बहिर्निर्गता । परिकराङ्कुरः छेकानुप्रासः चालङ्कारौ । अनुष्टुप्च्छन्दः ।

अन्वयः—जीवन्तीं जनकात्मजाम् आदाय ज्वलतः हव्यवाहनात् सम्भूतः प्रणम्यरूपः कः नु खलु एषः (अस्ति) ।

को नु इति—जीवन्तीं=सजीवताम्, जनकात्मजां=जानकीम्, आदाय=गृहीत्वा, ज्वलतः=देदीप्यमानात्, हव्यवाहनात्=अग्नेः, सम्भूतः=उद्गतः, प्रणम्यरूपः=प्रणम्यं वन्दनीयं रूप स्वरूपं यस्य सः, कः नु=वितर्के, खलु=निश्चयेन अस्ति ।

अयमिति—अयं=पुरोवर्तमानः, आर्यां=सीताम्, पुरस्कृत्य=अग्रे कृत्वा, विभावसुः=अग्निः, अभिवर्तते=आगच्छति । उपसर्पामः=समीपं गच्छामः, नारायणः=विष्णुः, देवेशः=देवेश्वरः ।

राम—(आश्चर्य के साथ) यह क्या, यह क्या ?

(प्रवेश करके)

सुग्रीव—महाराज विजयी होवें ।

जीवित जानकी को लेकर जलती अग्नि से निकला हुआ वन्दनीय स्वरूप वाला यह कौन है ।

लक्ष्मण—अरे ! आर्या (सीता) को आगे करके यह भगवान् अग्निदेव इधर ही आ रहे हैं ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रामः—अये अयं भगवान् हुताशनः उपसर्पामस्तावत् ।

(सर्वे उपसर्पन्ति)

(ततः प्रविशत्यग्निः सीतां गृहीत्वा)

अग्निः—एष भगवान् नारायणः । जयतु देवः ।

रामः—भगवन् ! नमस्ते ।

अग्निः—न मे नमस्कारं कर्तुमर्हति देवेशः ।

इमां गृह्णीष्व राजेन्द्र ! सर्वलोकनमस्कृताम् ।
अपापामक्षतां शुद्धां जानकीं पुरुषोत्तम ! ॥ २७ ॥

अपि च,

इमां भगवतीं लक्ष्मीं जानीहि जनकात्मजाम् ।
सा भवन्तमनुप्राप्ता मानुषीं तनुमास्थिता ॥ २८ ॥

अन्वयः—हे राजेन्द्र ! पुरुषोत्तम ! सर्वलोकनमस्कृतां अपापाम् अक्षतां शुद्धाम् इमां जानकीं गृह्णीष्व ।

इमामिति—राजेन्द्र=हे नृपेन्द्र ! पुरुषोत्तम=हे नरश्रेष्ठ, सर्वलोकनमस्कृतां=सर्वे सकलाः ते लोकाः जगन्ति तैः नमस्कृतां प्रणताम्, अपापां=पापरहिताम्, अक्षतां=क्षतिरहिताम्, शुद्धां=पवित्राम्, इमां=पुरोवर्तमानाम्, जानकीं=जनकात्मजाम्, गृह्णीष्व=स्वीकुरु । अनुष्टुप्च्छन्दः ।

अन्वयः—इमां जानकात्मजां भगवतीं लक्ष्मीं जानीहि । मानुषीं तनुम् आस्थिता सा भवन्तम् अनुप्राप्ता ।

राम—अरे ! ये भगवान् अग्निदेव हैं तो (उनके) समीप चलते हैं ।

(सभी लोग समीप जाते हैं)

(तत्पश्चात् सीता को लेकर अग्निदेव प्रवेश करते हैं)

अग्नि—ये भगवान् विष्णु हैं । महाराज विजयी होंवे ।

राम—हे भगवान् ! आपको नमस्कार है ।

अग्नि—देवाधिपति को मुझे नमस्कार नहीं करना चाहिए ।

हे पुरुषोत्तम राजेन्द्र ! सभी लोगों द्वारा नमस्कार की जाने वाली, निष्पाप, अक्षत तथा पवित्र इस सीता को स्वीकार कीजिए ।

और भी—

इस जानकी को आप भगवती लक्ष्मी समझिए । मनुष्य-देह में स्थित यह

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रामः—अनुगृहीतोऽस्मि ।

जानतापि च वैदेह्याः शुचितां धूमकेतन !
प्रत्ययार्थं हि लोकानामेवमेव मया कृतम् ॥ २९ ॥

(नेपथ्ये दिव्यगन्धर्वा गायन्ति)

नमो भगवते त्रैलोक्यकारणाय नारायणाय ।

ब्रह्मा ते हृदयं जगत्त्रयपते ! रुद्रश्च कोपस्तव
नेत्रे चन्द्रदिवाकरौ सुरपते ! जिह्वा च ते भारती ।

इमामिति—इमां = पुरोवर्तमानाम्, जनकात्मजां = जानकीम्, भगवतीं = ऐश्वर्यादिसम्पन्नाम्, लक्ष्मीं = श्रियम्, जानहि = अवगच्छ । मानुषीं = मानवीयाम्, तनुं = शरीरम्, आस्थिता = आश्रिता, सा = सीता, भवन्तं = त्वां रामम्, अनुप्राप्ता = उपयाता । अनुष्टुप्च्छन्दः ।

अन्वयः—हे धूमकेतन ! वैदेह्याः शुचितां जानता अपि च मया हि लोकानां प्रत्ययार्थम् एव एवं कृतम् ।

जानतेति—धूमकेतन = हे अग्ने ! वैदेह्याः = सीतायाः, शुचितां = पवित्रताम्, जानता अपि = अवगच्छता अपि, मया = रामेण, लोकानां = जनानाम्, प्रत्ययार्थम् एव = विश्वासार्थम् एव, एवं = अग्नौ सीतापरीक्षणम् कृतं = विहितम् । अनुष्टुप्च्छन्दः ।

अन्वयः—हे जगत्त्रयपते ! ब्रह्मा ते हृदयम्, रुद्रः च तव कोपः (अस्ति) । हे सुरपते ! चन्द्रदिवाकरौ नेत्रे (स्तः), भारती ते जिह्वा (अस्ति) ।

आप के पास आयी है ।

राम—मैं अनुगृहीत हूँ ।

हे अग्नि देव ! जानकी को पवित्र जानते हुए भी मेरे द्वारा लोगों के विश्वास के लिए ऐसा किया गया ।

(नेपथ्य में दिव्यगन्धर्व गाते हैं)

तीनों लोकों के उत्पादक भगवान् विष्णु को नमस्कार है ।

हे तीनों लोकों के स्वामी ! ब्रह्मा आप के हृदय और शङ्कर आप के कोप हैं । हे देवपते ! चन्द्रमा और सूर्य आप की आँखे तथा सरस्वती जिह्वा है ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सब्रह्मेन्द्रमरुद्गणं त्रिभुवनं सृष्टं त्वयैव प्रभो !
सीतेयं जलसम्भवालयरता विष्णुर्भवान् गृह्यताम् ॥३०॥

(पुनर्नेपथ्ये अपरे गायन्ति)

मग्नेयं हि जले वराहवपुषा भूमिस्त्वयैवोद्धृता
विक्रान्तं भुवनत्रयं सुरपते ! पादत्रयेण त्वया ।

हे प्रभो ! सब्रह्मेन्द्रमरुद्गणं त्रिभुवनं त्वया एव सृष्टम्, इयं सीता जलसम्भवालयरता (अस्ति), भवान् विष्णु अस्ति, इयं गृह्यताम् ।

ब्रह्मेति—जगत्त्रयपते=हे त्रिलोकस्वामी ! ब्रह्मा=स्रष्टा, ते=तव, हृदयं=अन्तःकरणम्, रुद्रः च=शंकरः च, तव=ते, कोपः=क्रोधः, सुरपते=हे देवराज ! चन्द्रदिवाकरौ=शशीसूर्यौ, नेत्रे=अक्षिणी, भारती च=सरस्वती च, ते=तव, जिह्वा=रसना, अस्ति इति शेषः । हे प्रभो ! सब्रह्मेन्द्रमरुद्गणं =ब्रह्मा च इन्द्रश्च मरुद्गणाश्च तेन सह वर्तमानम्, त्रिभुवनं=त्रिलोकम्, त्वया एव=भवता एव, सृष्टम्=विरचितम् । इयं=पुरोवर्तमाना, सीता=जानकी, जलसम्भवालयरता=जलसम्भवं जलजं तस्मिन् आलयः गृहं तस्मिन् रता अनुरक्ता, अस्तीति शेषः, भवान् विष्णुः=भवान् नारायणः, अस्तीति शेषः । इयं=सीता, गृह्यतां=स्वीक्रियताम् । रूपक अलङ्कारः । शार्दूलविक्रीडितं छन्दः ।

अन्वयः—जले मग्ना इयं भूमिः हि वाराहवपुषा त्वया एव उद्धृता, हे सुरपते ! त्वया पादत्रयेण भुवनत्रयं विक्रान्तम् (तदानीं) देवाः न हि तथा

हे प्रभो ! ब्रह्मा, इन्द्र तथा देवगणों के साथ तीनों भुवन आप के द्वारा रचे गये हैं । कमलालय में रमण करने वाली यह सीता (स्वरूप लक्ष्मी) को आप (विष्णु) स्वीकार करें ।

(फिर नेपथ्य में दूसरे गाते हैं)

वाराहरूपधारी आप के द्वारा जल में निमग्न यह पृथिवी बाहर निकाली गयी । हे देवपते ! आप के द्वारा तीन पगों में तीनों लोक लाँघ दिया गया ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

स्वैरं रूपमुपस्थितेन भवता देव्या यथा साम्प्रतं
हत्वा रावणमाहवे न हि तथा देवाः समाश्वासिताः ॥ ३१ ॥

अग्निः—भद्रमुख ! एते देवदेवर्षिसिद्धविद्याधरगन्धर्वाप्सरोगणा-स्वविभवैर्भवन्तं वर्धयन्ति ।

रामः—अनुगृहीतोऽस्मि ।

(समाश्वासिताः)यथा स्वैरं रूपम् उपस्थितेन आहवे रावणं हत्वा देव्या (सह) भवता साम्प्रतं समाश्वासिताः ।

मग्नेयमिति—जले=तोये, मग्ना=व्रुडिता, इयम्=एषा, भूमिः=पृथिवी, हि=निश्चयेन, वराहवपुषा=शूकरशरीरेण, त्वया एव=भवता एव, उद्धृता=उपरि आनीता । सुरपते=हे सुरेश ! त्वया=भवता, पादत्रयेण=पादानां पादक्रमणां त्रयेण त्रिकेन; भुवनत्रयं=लोकत्रयम्, विक्रान्तं=लङ्घितम्, तदानीमिति शेषः, देवाः=सुराः, न हि=नैव, तथा=तेन प्रकारेण, यथा=येन प्रकारेण, स्वैरं=स्वेच्छया, रूपं=स्वरूपम्, उपस्थितेन=प्राप्तेन, आहवे=युद्धे, रावणं=दशाननम्, हत्वा=मारयित्वा, देव्या=सीतया, भवता=त्वया, साम्प्रतम्=अधुनाः, समाश्वासिता=आश्वासिताः । शार्दूलविक्रीडितं छन्दः ।

भद्रमुखेति—भद्रमुख=हे कल्याणमुख ! एते=पुरोवर्तमानाः, देवदेवर्षिसिद्धविद्याधरगन्धर्वाप्सरोगणाः=देवाः सुराः देवर्षयः दिव्यर्षयः सिद्धाः देवयोनिविशेषाः विद्याधराः देवयोनिविशेषाः अप्सरसः देवयोनिविशेषाश्च तेषां गणाः समूहाः । स्वविभवैः=आत्मीयस्थित्यैः, भवन्तं रामम्, वर्धयन्ति=

स्वेच्छानुसार रूप-धारण करने वाले आप के द्वारा (उस समय) देवता वैसे नहीं आश्वस्थ किये गये जैसे इस युद्ध में रावण को मार कर देवी (सीता के) साथ (आप द्वारा) इस समय आश्वस्त हुए ।

अग्नि—हे भद्रमुख ! देवता, देवर्षि, सिद्ध, विद्याधर, गन्धर्व, अप्सरागण अपनी स्थितियों के अनुसार आप को बधाई दे रहे हैं ।

राम—मैं अनुगृहीत हूँ ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अग्निः—भद्रमुख ! अभिषेकार्थमित इतो भवान् ।
रामः—यदाज्ञापयति भगवान् ।

(निष्क्रान्तौ)

(नेपथ्ये)

जयतु देवः । जयतु स्वामी । जयतु भद्रमुखः । जयतु महराजः । जयतु रावणान्तकः । जयत्वायुष्मान् ।

विभीषणः—एष एष महाराजः,

तीर्त्वा प्रतिज्ञार्णवमाहवेऽद्य
सम्प्राप्य देवीं च विधूतपापाम् ।
देवैः समस्तैश्च कृताभिषेको
विभाति शुभ्रे नभसीव चन्द्रः ॥ ३२ ॥

वर्धापनं ददति । अभिषेकार्थम्=राज्याभिषेकाय, रावणान्तकः=रावणस्य दशाननस्य अन्तकः विनाशकः ।

अन्वयः—प्रतिज्ञार्णवं तीर्त्वा आहवे अद्य विधूतपापं देवीं च सम्प्राप्य समस्तैः देवैः कृताभिषेकः च एषः महाराजः शुभ्रे नभसि चन्द्रः इव विभाति ।

तीर्त्वेति—प्रतिज्ञार्णवं=प्रणसमुद्रम्, तीर्त्वा=अतिक्रम्य, आहवे=युद्धे,

---

अग्नि—हे भद्रमुख ! अभिषेक के लिए आप इधर आइए ।
राम—जो आप की आज्ञा ।

(दोनों निकल जाते हैं)

(नेपथ्य में)

देव विजयी होंवे । स्वामी विजयी होंवे । भद्रमुख विजयी होंवे । महाराज विजयी होंवे । रावण का अन्त करने वाले विजयी होंवे । चिरञ्जीवी विजयी होंवे ।

विभीषण—ये, ये महाराज,

प्रतिज्ञा-रूपी सागर को पार करके युद्ध में आज (रावण का वध करके) निष्कलङ्क महारानी (सीता) को प्राप्त कर सभी देवताओं के द्वारा अभिषिक्त

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लक्ष्मणः—अहो नु खल्वार्यस्य वैष्णवं तेजः ।

यमवरुणकुबेरवासवाद्यैस्त्रिदशगणैरभिसंवृतो विभाति ।
दशरथवचनात् कृताभिषेकस्त्रिदशपतित्वमवाप्य वृत्रहेव ॥ ३३ ॥

(ततः प्रविशति कृताभिषेको रामः सीतया सह)

अद्य=अस्मिन्दिवसे, विधूतपापं=विगतकल्मषम्, देवीं च=सीताम् च, सम्प्राप्य=लब्ध्वा, समस्तैः=सकलैः, देवैः=सुरैः, कृताभिषेकः च=विहित-राज्याभिषेकः च; एषः=पुरोवर्तमानः, महाराजः=रामः, शुभ्रे=निर्मले, नभसि=आकाशे, चन्द्र इव=चन्द्रमा इव, विभाति=शोभते । रूपक अलङ्कारः । उपजातिः छन्दः ।

अहो इति—नु खलु=आश्चर्यकारकम्, आर्यस्य=रामस्य, वैष्णवं=विष्णुसम्बन्धिम्, तेजः=वर्चः ।

अन्वयः—यमवरुणकुबेरवासवाद्यैः त्रिदशगणैः अभिसंवृतः दशरथवचनात् कृताभिषेकः (रामः) त्रिदशपतित्वम् अपाप्य वृत्रहा इव विभाति ।

यमेति—यमवरुणकुबेरवासवाद्यैः=यमः यमराजः वरुणः जलदेवः कुबेरः धनदः वासवः इन्द्रश्च आद्याः आदयः येषां तैः, त्रिदशगणैः=देवसमूहैः, अभिसंवृतः=परिगतः, दशरथवचनात्=दशरथकथनात्, कृताभिषेकः=विहि-तराज्याभिषेकः, त्रिदशपतित्वं=देवस्वामित्वम्, अवाप्य=प्राप्य, वृत्रहा इव=इन्द्रः इव, विभाति=शोभते । उपमालंकारः । पुष्पिताग्राच्छन्दः ।

हुए ये महाराज (राम), स्वच्छ आकाश में चन्द्रमा की भाँति शोभायमान हो रहे हैं ।

लक्ष्मण—ओह, आर्य का वैष्णव तेज आश्चर्य-जनक है ।

यम, वरुण, कुबेर, इन्द्र इत्यादि देवताओं से घिरे हुए, दशरथ के कथनानुसार किये गये अभिषेक वाले (आर्य) ऐसे शोभायमान हो रहे हैं जैसे देवताओं का स्वामित्व प्राप्त करके इन्द्र (शोभायमान हुए थे) ।

(तत्पश्चात् सीता के साथ अभिषिक्त राम प्रवेश करते हैं)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रामः—वत्स ! लक्ष्मण !

येनाहं कृतमङ्गलप्रतिसरो भद्रासनारोपितो-
ऽप्यम्बायाः प्रियमिच्छता नृपतिना भिन्नाभिषेकः कृतः ।
त्यक्तं दैवगतिं गतेन गुरुणा प्रत्यक्षतः साम्प्रतं
तेनैवाद्य पुनः प्रहृष्टमनसा प्राप्ताभिषेकः कृतः ॥ ३४ ॥

अग्निः—भद्रमुख ! एता हि महेन्द्रनियोगाद् भरतशत्रुघ्नपुरःसरा प्रकृतयो भवन्तमुपस्थिताः ।

अन्वयः—कृतमङ्गलप्रतिसरः भद्रासनारोपितः अपि येन नृपतिना अहम् अम्बायाः प्रियम् इच्छता (सता) अहं भिन्नाभिषेकः कृतः, व्यक्तं दैवगतिं गतेन तेन एव गुरुणा अद्य प्रसन्नमनसा (सता) साम्प्रतं प्रत्यक्षतः पुनः अहं प्राप्ताभिषेसुः कृतः अस्मि ।

येनाहमिति—कृतमङ्गलप्रतिसरः=कृतः सम्पादितः मङ्गलः माङ्गलिकः प्रतिसरः सूत्रम्, भद्रासनारोपितः अपि=भद्रासने सिंहासने आरोपितः अधिष्ठापितः अपि, येन नृपतिना=राज्ञा, अहं=रामः, भिन्नाभिषेकः=रुद्धराज्याभिषेकः, कृतः=विहितः, व्यक्तं=स्पष्टम्, देवगतिं=दिव्यां गतिम्, गतेन=स्वर्गंप्राप्तेन, तेन एव=पूर्वोक्तेन एव, गुरुणा=पित्रा, अद्य=अस्मिन्दिवसे, प्रसन्नमनसा=प्रमुदितचित्तेन, साम्प्रतम्=इदानीम्, प्रत्यक्षतः=प्रत्यक्षरूपेण, पुनः, अहं, प्राप्ताभिषेकः=सम्पादिताभिषेकः, कृतः=विहितः, अस्मीति शेषः । शार्दूलविक्रीडितं छन्दः ।

भद्रमुखेति—महेन्द्रनियोगात्=इन्द्रादेशात्, भरतशत्रुघ्नपुरःसराः=

राम—हे भाई लक्ष्मण !

मङ्गल-सूत्र सम्पन्न हो जाने पर नृपासन पर बैठाया गया भी मैं माता (कैकेयी) का हित चाहते हुए जिस नरपति (पिता जी) के द्वारा राज्याभिषेक से रोक दिया गया, प्रत्यक्ष-रूप से स्वर्ग को गये उन्हीं पिताजी द्वारा आज प्रसन्न मन से अब अभिषिक्त किया गया हूँ ।

अग्नि—हे भद्रमुख ! इन्द्र के आदेश से भरत और शत्रुघ्न के साथ आपके प्रजा लोग उपस्थित हैं ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

रामः—भगवन् ! प्रहृष्टोऽस्मि ।

अग्निः—इमे महेन्द्रादयोऽमृतभुजो भवन्तमभिवर्धयन्ति ।

रामः—अनुगृहीतोऽस्मि ।

अग्निः—भद्रमुख ! किं भूयः प्रियमुपहरामि ।

रामः—यदि मे भवान् प्रसन्नः, किमतः परमहमिच्छामि ।

(भरतवाक्यम्)

भवन्त्वरजसो गावः परचक्रं प्रशाम्यतु ।
इमामपि महीं कृत्स्नां राजसिंहः प्रशास्तु नः ॥ ३५ ॥

भरतशत्रुघ्नौ पुरःसरौ अग्रगौ यासां तथा भूताः, प्रकृतयः=प्रजाजनाः, समुपस्थिताः=उपगताः । प्रहृष्टः=प्रसन्नः, अमृतभुजः=देवाः, उपहरामि=करोमि ।

अन्वयः—गावः अजरसः भवन्तु, परचक्रं प्रशाम्यतु, न राजसिंहः अपि इमां कृत्स्नां महीं प्रशास्तु ।

भवन्त्विति—गावः=इन्द्रियाणि, अरजसः=निवृतरजोगुणाः, परचक्रं=शत्रुमण्डलम्, प्रशाम्यतु=शान्तिं गच्छतु । नः=अस्माकम्, राजसिंहः अपि=राजश्रेष्ठः अपि, इमाम्=एताम्, कृत्स्नां=समग्राम्, महीं=पृथिवीम्, प्रशास्तु=परिपालयतु । आशीरलंकारः । अनुष्टुप्च्छन्दः ।

राम—हे भगवन् ! मैं प्रसन्न हूँ ।

अग्नि—ये इन्द्रादि देवता आप की अभ्यर्थना कर रहे हैं ।

राम—मैं अनुगृहीत हूँ ।

अग्नि—हे भद्रमुख ! मैं आप का और क्या प्रिय करूँ ।

राम—यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो इससे अधिक मैं क्या चाहता हूँ—

(भरतवाक्य)

हमारी इन्द्रियाँ रजोविकार से रहित हों, शत्रु-मण्डल शान्त हो जाय । और हमारा 'राजसिंह' भी सम्पूर्ण पृथिवी पर शासन करे ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(निष्क्रान्ताः सर्वे)

॥ इति षष्ठोऽङ्कः ॥

॥ अभिषेकनाटकं समाप्तम् ॥

—*—

॥ इति षष्ठोऽङ्कः ॥

॥ अभिषेकनाटकं समाप्तम् ॥

—*—

(सभी निकल जाते हैं)

॥ षष्ठ अङ्क समाप्त ॥

॥ अभिषेकनाटक समाप्त ॥

॥ अभिषेक नाटक पर 'शशिप्रभानाम्नी' हिन्दी-संस्कृत व्याख्या समाप्त ॥

—o—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

परिशिष्ट—१

अभिषेक नाटक के सुभाषित तथा लोकोक्तियाँ

श्लोक अथवा श्लोकखण्ड

अवश्यं युधि वीराणां वधो वा विजयोऽथवा । (३ । ९)
अहो दैवस्य विघ्नक्रिया ! (२ । १०)
कथं लम्बसटः सिंहो मृगेण विनिपात्यते ।
गजो वा सुमहान् मत्तः शृंगालेन निहन्यते ॥ (३ । २०)
धर्मस्नेहान्तरे न्यस्ता बुद्धिर्दोलायते मे । (६ । २३)
मज्जमानमकार्येषु पुरुषं विषयेषु वै ।
निवारयति यो राजन् ! स मित्रं रिपुरन्यथा ॥ (६ । २२)
वागुराच्छन्नमाश्रित्य मृगाणामिष्यते वधः । (१ । १९)

गद्य	पृष्ठ	पंक्ति
अदण्ड्यो नैव दण्ड्यते ।	१९	८
अधर्मः खलु प्रच्छन्नो वधः ।	१७	२
अमात्य-वर्गेण सह संमन्त्र्य गन्तव्यम् ।	१०	४
अवश्यं स्त्री-वधो न कर्त्तव्यः ।	१२१	५
अहो अकरुणाः खल्वीश्वराः ।	४७	८
अहो नु खल्वतुलबलता कुमुमधन्वतः ।	१०९	५
दूतवधः खलु वचनीयः ।	७२	८
न त्वेव हि कदाचिज्ज्येष्ठस्य यवीयसो दाराभिमर्शनम् ।	१९	४
निर्वेद एव खल्वनुक्तग्राहिणं स्वामिनमुपाश्रितस्य भृत्यजनस्य ।	६५	८
बहुमायाश्छलयोधिनश्च राक्षसाः ।	८७	६
सर्वापराद्धेष्ववध्याः खलु दूताः ।	६८	६

—०—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

परिशिष्ट—२

श्लोकानुक्रमणिका

श्लोक	संख्या	श्लोक	संख्या	श्लोक	संख्या
अचिंत्या मनसा	३।२	इमां भगवतीं	६।२८	गर्भागारविनि	२।४
अञ्जनायां समु	३।१५	इयं सा राज	२।१३	चलत्तरङ्गाहत	५।१
अतिबलसुख	१।२५	उदीर्णसत्त्वेन	५।११	चारीभिरेतौ	६।१४
अद्यैव तं कमल	३।२७	एतां प्राप्य दक्ष	२।३	चित्रप्रस्रुत	२।६
अनयोः शासना	४।२१	एता रावण	६।१०	जानतापि च	६।२९
अनशनपरि	२।२१	एते तयोर्भानु	५।८	जित्वा त्रैलोक्य	३।११
अपराधमनु	१।८	एते पादप	६।३	तव नृप मुख	१।६
अपापाश्च हि	६।२०	एतौ हि राक्षसे	४।२०	तारे मया खलु	१।१२
अपास्य भोगान्	२।१२	एवं गाढं परि	२।२४	तारे विमुञ्च	१।९
अपास्य मायया	३।१८	एषा कनक	६।२५	तिष्ठत्वमह	३।७
अभिभूतो मया	३।२२	एषा विहाय	५।४	तीर्त्वा प्रतिज्ञा	६।३२
अभिहतवर	३।२३	एषा हि राज	६।२१	तौ च बाहू न	२।१५
अमलकमल	३।२	कथं कथं भो	३।३	दिव्यास्त्रैः सुर	२।१०
अवश्यं युधि	३।९	कथं लम्बसटः	३।२०	दिव्यास्त्रैस्त्रिदशे	३।१७
असितभुजग	२।८	कनकरचितचापं	६।११	दृष्टधर्मार्थं	४।८
अस्ताद्रिमस्तक	४।२३	कनकरचितचित्र	२।२	देवाः सेन्द्राः	२।१८
अस्मदीयैर्महा	३।५	कनकरचितचण्डा	६।६	देवा सेन्द्रादयो	२।१८
आक्रान्ताः पृथु	४।२	कनकरचितविद्रु	२।५	देवे यथा वयं	४।१०
इक्ष्वाकुकुल	२।२०	करिकरसदृशौ	१।२२	धनुषि निहित	५।१५
इक्ष्वाकुवंश	६।१	कुतोनु खल्वेष	१।२	नक्तञ्चरापसद	३।२१
इदानीं राज्य	१।३	कुमारो हि कृता	३।६	नारायणस्य	४।१३
इदानीं राज्य	१।२	कोनु खल्वेष	६।२६	निद्रां मे निशि	५।६
इदानीमपि	५।१४	क्रुद्धस्य यस्य	४।७	निशितविमल	६।४
इन्द्रो वा शरण	१।१२	क्रोधात्संरक्तः	३।७	नैवाहं धर्षित	३।१४
इमां गृह्णीष्व	६।२७	क्वचित् फेनोद्गमर्शी	४।१७	परभृतगण	२।२६

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अगृहीतमहा २।२३
असीद राजन् ३।१९
अहस्तप्रमुखा ५।२
आदिष्टोहं नरे २।१९
बलवान् वानरे १।१५
बलादेव गृही ५।५
बाणाः पात्यन्ते ६।५
ब्रह्मा ते हृदयं ६।३०
भवता वानरे १।२०
भवता सौम्य १।१८
भवन्तं पद्मप ४।११
भवन्त्वरजसो ६।३५
भस्मेयं हि जले ६।३१
मज्जमानमका ६।२२
मणिविरचित २।९
मणिविरचित ४।१५
मत्सायकान्निह १।४
मदनवशगतो ५।३
मम दाराय ४।२२
मम शरपरि ४।१२
मम शरवर ४।१८
ममानवेक्ष्य ३।२५
मया कृतं दोष १।२६
मयोक्तो मैथिली ६।१३
मानुषं रूप ४।१४
मुक्तो देव १।५
यद्यहं रावणं २।१६
यमवरुणकुबेर ६।३३
यस्यां न प्रिय ३।१
युक्तं भो नर १।१७
युधि जगत्त्रय ३।४
येनाहं कृत ६।३४
यो गाधिपुत्र १।१
रघुवरभुज ६।१७
रजतरचित २।२
रजनीचरशरीर ६।२
राक्षसीभिः परि २।७
राजंस्त्वत्वाकारणा ४।९
राजपुत्र कुतः ४।१६
रावणं निहितं ६।१८
रावणेन विमु ६।८
रिपुमुद्धत्तुमुद्यन्तं ४।४
रुधिरकलित १।१६
लङ्कायां किल ४।१
लब्ध्वा वृत्तान्तं २।१
वज्रीभकुम्भतट ५।१६
वरतनुतनुगात्रि २।१७
वरशरणमुपेहि ३।१६
वागुराच्छन्न १।१९
विकसितशत १।१४
विकसितशत ६।२४
विज्ञाय देव्या ६।२३
व्यक्तमिन्द्रजिता ५।१०
शक्ति निपातितां ६।९
शक्रो वा भवतु १।१०
शत्रुपक्षमुपा ३।२४
शरनिर्भिन्नहृदय १।२४
शरवरपरिपीत ६।१३
शरैर्भीमवेगै ६।१५
शासितोहं त्वया ३।२६
शैलैद्रुमैः सम्प्र ४।६
श्रुत्वा कालवशं १।२३
सवृत्तं तुमुलं ३।१०
सजलजलद ४।५
सजलजलधरे ४।३
सन्देष्टोष्ठश्चण्ड १।१३
समावृत्तं सुरै ५।१७
समुदितवरचाप २।२५
सम्प्राप्ताहरिवर १।९
सव्येन चापम ६।७
सीते त्यज त्वं २।१४
सीते त्यज त्वं ५।७
सीते भावं परि ५।९
सुग्रीवेणाभिमृ १।२१
सुरवरजयदर्प ६।१२
स्थानाक्रामण ६।१
स्वसैनिकौ न ४।१९
हत्वा रावण ६।१२
हत्वा वालिन २।२२
हा वत्स सर्व ५।१२

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

नाट्य-नाटक-ग्रन्थाः

अभिज्ञानशाकुन्तलम् । महाकविकालिदाससप्रणीत ।
'ज्योत्स्ना' 'सरला' संस्कृत-हिन्दी व्याख्या सहित ।
व्याख्याकार—डॉ. सुधाकर मालवीय **H.B.** 325.00, **P.B.** 175.00

अविमारकम् । सान्वय 'कमलेश्वरी' संस्कृत-हिन्दी व्याख्या,
परिशिष्ट सहित । व्याख्याकार— डॉ. बालगोविन्द झा 60.00

उत्तररामचरितम् । महाकवि भवभूति प्रणीत । 'शांति' संस्कृत-हिन्दी व्याख्या सहित ।
व्याख्याकार—डॉ. रमाशङ्कर त्रिपाठी **H.B.** 35[illegible]0, **P.B.** 1[illegible]0.00

कर्पूरमञ्जरी । 'सुधा' संस्कृत-हिन्दी व्याख्योपेता ।
व्याख्याकार— पण्डित परमेश्वरदीन पाण्डेय [illegible]00

चन्द्रकलानाटिका । 'शशिप्रभा' संस्कृत-हिन्दी टीका सहित ।
व्याख्याकार— डॉ. जमुना पाठक [illegible]00

चारुदत्तम् । 'सुधा' संस्कृत-हिन्दी टीका सहित ।
पं. परमेश्वरदीन पाण्डेय [illegible]00

चैतन्यचन्द्रोदयनाटकम् । कविकर्णपूरकृतम्। 'प्रकाश' हिन्दी टी[illegible]हित ।
आचार्य रामचन्द्र मिश्र 75.00

नागानन्द-नाटकम् । 'कल्याणी' संस्कृत-हिन्दी व्याख्योपेतम् ।
व्याख्याकार— पण्डित रामनाथ त्रिपाठी शास्त्री 45.00

पञ्चरात्रम् । भासकृतम् । सपरिशिष्ट 'विमला' संस्कृत-हिन्दी व्याख्योपेतम् ।
समालोचनात्मक भूमिका सहितम् । व्याख्याकार— डॉ. जगदीशचन्द्र मिश्र 40.00

प्रतिमानाटकम् । 'प्रकाश' संस्कृत-हिन्दी व्याख्या सहित ।
व्याख्याकार— डॉ. सत्यव्रत सिंह 70.00

प्रबोधचन्द्रोदयम् । 'कल्याणी' संस्कृत-हिन्दी व्याख्या, परिशिष्ट, नोट्स सहित।
व्या.–पण्डित रामनाथ त्रिपाठी शास्त्री **H.B.** 300.00, **P.B.** 135.00

बालचरितम् । सपरिशिष्ट 'कल्याणी' संस्कृत-हिन्दी व्याख्या नोट्स सहित ।
व्याख्याकार—पण्डित रामनाथ त्रिपाठी शास्त्री 40.00

मालतीमाधवम् । 'चन्द्रकला' संस्कृत-हिन्दी टीका सहित ।
पण्डित शेषराज शर्मा रेग्मी शास्त्री **H.B.** 250.0, **P.B.** 125.00

मृच्छकटिकम् । सविमर्श 'भावप्रकाशिका' संस्कृत-हिन्दी व्याख्या सहित ।
व्याख्याकार— डॉ. जयशङ्करलाल त्रिपाठी **H.B.** 350.00, **P.B.** 165.00

स्वप्नवासवदत्तम् । 'कमलेश्वरी' संस्कृत-हिन्दी व्याख्योपेतम् ।
व्याख्याकार— डॉ. बालगोविन्द झा 55.00

Also can be had from : **Chowkhamba Sanskrit Series Office, Varanasi.**

₹ 500.00 (Set in 2 Vols.)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi